हिंदी शब्दसागर

आठवाँ भाग

['मनः' से 'ल्हीक' तक, शब्दसंख्या–२०,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट   रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह   जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन   रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

कमलापति त्रिपाठी

धीरेंद्र वर्मा   हरवंशलाल शर्मा
नगेंद्र   शिवनंदनलाल दर
रामधन शर्मा   सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८९३ सं० २०२८ वि० १९७१ ई०

मूल्य २५), संपूर्ण दस भागों का २५०)

शंभुनाथ वाजपेयी
द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी-जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुन: अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी-जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तर-दायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन:संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुन:संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन: उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खंडों तक भारत सरकार ने वहन किया है, इसी लिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा: 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत आठवें खंड में 'मनः' से लेकर 'ल्हीक' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से समन्वित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग २०,००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ४२८ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में लगभग ५६४ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते थे और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि याः : पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं, सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी :
मेष संक्रांति, २०२८ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं।]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अखिलेश (शब्द०)	अखिलेश कवि
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अधखिला (शब्द०)	अधखिला फूल (उपन्यास), अयोध्यासिंह उपाध्याय
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनुराग बाग (शब्द०)	अनुराग बाग
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कलामंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, (५ खंड) संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोग संहिता
अष्टांग०	अष्टांगयोग संहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनुक्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इति०	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह, प्र० सं०

इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इनशा (शब्द०)	इनशा अल्ला खाँ
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर (२ भाग), वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली (४ भाग) बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर (४ भा०) संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कर्पूर मंजरी (शब्द०)	कर्पूरमंजरी नाटक, भारतेंदु लिखित
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी (१–४ भा०), संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी ग्रंथ
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य०	काव्यशास्त्र
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य : यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काशीराम (शब्द०)	काशीराम कवि
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
काष्ठजिह्वा (शब्द०)	काष्ठजिह्वा स्वामी
कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
खुसरो (शब्द०)	अमीर खुसरो
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक

गंग ग्रं०	गंग कवित्त (ग्रंथावली), संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
गर्ग संहिता (शब्द०)	गर्ग संहिता
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास गिरिधरदास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंधर (शब्द०)	गुंधर कवि
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोकुल (शब्द०)	कवि गोकुल
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवादक
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण (२ भाग), सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद०	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चाणक्य (शब्द०)	चाणक्य नीति दर्पण
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि (२ भाग), रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंदःप्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जंतुप्रबंध (शब्द०)	जंतुप्रबंध ग्रंथ
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जगन्नाथ (शब्द०)	जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
जनमेजय०	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर 'प्रसाद' भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पंचम सं०
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ

जमाना (शब्द०)	जमाना अखबार (शब्द०)।
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जरासंधवध (शब्द०)	जरासंधवध नाम का काव्य
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तिथितत्व (शब्द०)	तिथितत्व निर्णय
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुलसी सुधाकर (शब्द०)	तुलसी सुधाकर
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब (हाथरसवाले) की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९,१९११
तेग अली (शब्द०)	बदमाश दर्पण के रचयिता तेग अली
तेग०, तेगबहादुर (शब्द०)	गुरु तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध भागवत
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, संपा० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दास (शब्द०)	कवि भिखारीदास
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयाल (शब्द०)	कवि दीनदयाल गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अश्क,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)	दुर्गाप्रसाद मिश्र
दुर्गाप्रसाद (शब्द०)	दुर्गाप्रसाद कवि
दुर्गेशनंदिनी (शब्द०)	दुर्गेशनंदिनी, उपन्यास, मूल लेखक बंकिमचंद्र चटर्जी (अनुवाद)
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देवकीनंदन (शब्द०)	देवकीनंदन खत्री
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र०सं०
देव (शब्द०)	देव कवि

देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देवदत्त (शब्द०)	देवदत्त कवि
देवीप्रसाद (शब्द०)	मुंशी देवीप्रसाद ।
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता (दो भाग), शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विज (शब्द०)	द्विज कवि
द्विजदेव (शब्द०)	अयोध्यानरेश महाराजा मानसिंह 'द्विजदेव'
द्विवेदी (शब्द०)	आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बानी	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
धीर (शब्द०)	'धीर' कवि
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
ध्रुव०	ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद, भारती भंडार
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्नदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
नानक (शब्द०)	संत नानक गुरु
नाभादास (शब्द०)	नाभादास संत
नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास

निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी), निबंधसंग्रह
निश्चलदास (शब्द०)	संत निश्चलदास जी
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
निहाल (शब्द०)	निहाल कवि
नूतनामृतसागर (शब्द०)	नूतनामृतसागर नाम का ग्रंथ
नूर (शब्द०)	'नूर' उपनाम के कवि
नृपशंभु (शब्द०)	शिवाजी के पुत्र महाराज शंभाजी
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू सहब की बानी (१-३ भाग), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०

पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्ण (शब्द०)	पूर्ण कवि
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो (५ खंड), संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्र० सा०	प्रगतिशील (वादी) साहित्य
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी के रचयिता प्रताप कवि
प्रताप सिंह (शब्द०)	प्रताप सिंह
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९९ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद (चार भाग), पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली (तीन भाग), संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बापू	बापू, कवितासंग्रह, सियारामशरण गुप्त, प्र० सं०
बालकृष्ण (शब्द०)	बालकृष्ण
बालमुकुंद (शब्द०)	बालमुकुंद गुप्त
बिरहा (शब्द०)	प्रचलित बिरहा गीत
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिसराम (शब्द०)	बिसराम कवि
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथगार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह, ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, संपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
बैताल (शब्द०)	बैताल कवि
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (बीरबल)
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भजन (शब्द०)	भजन
भट्ट (शब्द०)	बालकृष्ण भट्ट
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम सं०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली (४ भाग), संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषाशिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली (दो भाग), संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूधर (शब्द०)	भूधर कवि
भूपति (शब्द०)	भूपति कवि
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मधुसूदन (शब्द०)	मधुसूदन कवि ।
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महावीरप्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप ग्रंथ
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मीरा (शब्द०)	भक्त मीरा बाई
मीर हसन (शब्द०)	मीर हसन
मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

मुकुंदलाल (शब्द०)	मुकुंदलाल कवि
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मुरारिदान (शब्द०)	कवि मुरारिदान
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगलेश (शब्द०)	कवि युगलेश
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा०, रघुनाथदास (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज, रघुराज सिंह (शब्द०)	रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंह, सं० १८८०-१९३६ वि०
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ, द्वि० और प्रथम सं० १९८०
रत्नावली (शब्द०)	रत्नावली नाटिका
रश्मि०	रश्मिबंध, सुमित्रानंदन पंत राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रसिया (शब्द०)	रसिया कवि ? रसिया गीत ?
रहिमन (शब्द०)	रहीम कवि
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
रहीम०	रहीम रत्नावली
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
राज०	राजतरंगिणी
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राजनीतिक०	राजनीतिक विचारधाराएँ
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम०	रामचरितमानस, संपा० विजयानंद त्रिपाठी, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७३ वि०
राम, रामकवि (शब्द०)	राम कवि
रामकृष्ण (शब्द०)	रामकृष्ण
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्मसंग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली (भक्तमाल)
रामसहाय (शब्द०)	रामसहाय कवि कृत सतसई

रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रिखिनाथ (शब्द०)	कवि रिखिनाथ
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू, लल्लूलाल (शब्द०)	लल्लूलाल
लवकुश चरित्र (शब्द०)	लवकुश चरित्र
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
वाल्मीकीय० (शब्द०)	वाल्मीकीय रामायण
विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
विश्वनाथ सिंह (शब्द०)	रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जी (सं० १८४६-१९११ वि०)
विश्वास (शब्द०)	विश्वास ?
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेणी (शब्द०)	वेणी (या बेनी) कवि
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ	व्यंग्यार्थ कौमुदी प्रताप कवि कृत, बाबू रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९५७
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
व्रज (शब्द०)	व्रज विलास
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शरक (शब्द०)	शंकर कवि
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एँड संस, आगरा, प्र० सं०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि, शिवाजी के पुत्र संभाजी
शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५
शिरमौर (शब्द०)	कवि शिरमौर
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर
शेखर (शब्द०)	शेखर कवि
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र.सं.
शैली	शैली, पं० करुणापति त्रिपाठी, प्र० सं०
श्यामबिहारी (शब्द०)	श्यामबिहारी कवि
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रद्धाराम (शब्द०)	श्रद्धाराम फुल्लौरी
श्रीकृष्णसंदेश (शब्द०)	श्रीकृष्णसंदेश
श्रीधर (शब्द०)	श्रीधर कवि
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीपति (शब्द०)	श्रीपति कवि
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संचिता	संचिता (कवितासंग्रह)
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत० दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
सं० दा० (शब्द०)	संगीत दामोदर
सं० शा० (शब्द०)	संगीत शाकुंतल
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी

	रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ, हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह (२ भाग), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानंद
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान (महाभारत)
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
सरस्वती (शब्द०)	सरस्वती, मासिक पत्रिका
सर्पाघातचिकित्सा(शब्द०)	सर्पाघात चिकित्सा
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सरलाबाई (शब्द०)	सरलाबाई, कवयित्री।
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन, श्री श्यामसुंदर दास, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
सिद्धांतसंग्रह (शब्द०)	सिद्धांतसंग्रह
सीतल (शब्द०)	कवि सीतल
सीताराम (शब्द०)	सीताराम कवि
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली (दो भाग), संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
सुंदरीसिंदूर (शब्द०)	सुंदरी सिंदूर, कवितासंग्रह
सुकवि (शब्द०)	सुकवि उपनाम नाम के कवि
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुखदेव (शब्द०)	कवि 'सुखदेव'
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुधानिधि	कवि तोष और सुधानिधि, सं० सुरेंद्र माथुर, ना० प्र० स० काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि, सुंदरदास जी
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर (दो भाग), ना०प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता
स्वामी रा० (शब्द०)	स्वामी रामकृष्ण
स्वामी हरिदास(शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हंसराज (शब्द०)	हंसराज
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

हनुमन्नाटक (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान, हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार, प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिंदी का०	हिंदी काव्य की अंतश्चेतना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिं० ना०	हिंदी के नाटक
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा०	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हित हरिवंश (शब्द०)	वैष्णव संत हित हरिवंश
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूँ०	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हृदयराम (शब्द०)	कवि हृदयराम

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अक० रूप	अकर्मक रूप
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्ध मा०	अर्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इता०	इतालवी
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभय०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कनाड़ी	कन्नड़ भाषा
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
*	संभाव्य व्युत्पत्ति
?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
चीे०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
ति०	तिब्बती भाषा
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
तुल०	तुलनीय
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रत्य०	प्रत्यय
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरांसीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बँग०	बँगला भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
बुंदेल०	,, ,,
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलाया की भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी
यौ०	यौगिक
राज०	राजस्थानी
लश०	लशकरी
ला०	लाक्षणिक
लै०	लैटिन
व० कृ०	वर्तमान कृदंत
वर्ण वि०	वर्णविपर्यय
वि०	विशेषण
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
वै०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
व्यंग्य	व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त
(शब्द०)	हिंदी शब्दसागर प्र० सं०
सं०	संस्कृत
संयो०	संयोजक अव्यय
संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
स०	सकर्मक
सक० रूप	सकर्मक रूप
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
सर्व०	सर्वनाम
सिंहली	सिंहली भाषा
स्पे०	स्पेनी भाषा
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०	स्त्रीलिंग
हिं०	हिंदी
(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
>	व्युत्पन्न
†	प्रांतीय प्रयोग
‡	ग्राम्य प्रयोग
√	धातुचिह्न

हिंदी शब्दसागर

मनः—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्**] मन ।

मनःकल्पित—वि० [सं०] मन द्वारा कल्पित । मनगढ़ंत [को०] ।

मनःकांत—वि० संज्ञा पुं० [सं० **मनःकान्त**] दे० 'मनस्कांत' ।

मनःकाम—संज्ञा पुं० [सं०] मनोरथ । मनस्काम [को०] ।

मनःकार—संज्ञा पुं० [सं०] मन का एकाग्र करना । सुख दुःख आदि का पूर्ण ज्ञान वा जानकारी ।

मनःक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] मन का उद्वेग ।

मनःपति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

मनःपर्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन से संकल्प विकल्प वा बोध प्राप्त करने की शक्ति ।

मनःपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिससे चिंतित अर्थ का साक्षात् होता है। यह ज्ञान ईर्ष्या और अंतराय नामक ज्ञानावरणों के दूर होने पर निर्वाण या मुक्ति की प्राप्ति के पूर्व की अवस्था में प्राप्त होता है। इसमें जीवों को मनरूपी द्रव्य के पर्यायों का साक्षात् ज्ञान होता है।

मनःपाप—संज्ञा पुं० [सं०] मानसिक पाप । मन का पाप [को०] ।

मनःपीड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] मानसिक संताप या क्लेश [को०] ।

मनःपूत—वि० [सं०] जिसे मन पवित्र मानता है। जिसे अंतरात्मा अंगीकार करती हो [को०] ।

मनःप्रणीत—वि० [सं०] १. मनःकल्पित । मनगढ़ंत। २. रुचिकर या मन को सुख देनेवाला [को०] ।

मनःप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] मन की प्रसन्नता । उ०—मनःप्रसाद चाहिए केवल क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद ?—पंचवटी, पृ० १० ।

मनःप्रसूत—वि० [सं०] मन से उत्पन्न । मन से कल्पित [को०] ।

मनःप्रिय—वि० [सं०] जो मन को प्रिय हो या अच्छा लगे [को०] ।

मनःप्रीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन की प्रसन्नता ।

मनःशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन की शक्ति । मनोबल [को०] ।

मनःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मन और मनोविकारों का वर्णन हो। मनोविज्ञान । उ०—मनःशास्त्र कुछ और बताता है, पर जो हो ।—रजत०, पृ० १७ ।

मनःशिल—संज्ञा पुं० [पुं०] मैनसिल ।

मनःशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

मनःशीघ्र—वि० [सं०] मन की तरह तीव्र [को०] ।

मनःसंकल्प—संज्ञा पुं० [सं० **मनःसङ्कल्प**] मन की इच्छा । हृदय की चाहना [को०] ।

मनःसंग—संज्ञा पुं० [सं० **मनःसङ्ग**] मन की किसी विषय में आसक्ति [को०] ।

मनःसंताप—संज्ञा पुं० [सं० **मनःसन्ताप**] मानसिक पीड़ा या मन का क्लेश [को०] ।

मनःसुख[1]—वि० [सं०] जो मन को रुचे । रुचिकर ।

मनःसुख[2]—संज्ञा पुं० मन का सुख [को०] ।

मनःस्थैर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मन की दृढ़ता । चित्त की स्थिरता [को०] ।

मन[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्**] १. प्राणियों में वह शक्ति या कारण जिससे उनमें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध और विचार आदि होते हैं। अंतःकरण । चित्त ।

विशेष—वैशेषिक दर्शन में मन एक अप्रत्यक्ष द्रव्य माना गया है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, और संस्कार इसके गुण बतलाए गए हैं और इसे अणुरूप माना गया है। इनका धर्म संकल्प विकल्प करना बतलाया गया है तथा इसे उभयात्मक लिखा है; अर्थात् उसमें ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय दोनों के धर्म हैं। (एकादशं मनो विद्धि स्वगुणेनोभयात्मकम् ।—गीता) । योगशास्त्र में इसे चित्त कहा है। बौद्ध आदि इसे छठी इंद्रिय मानते हैं। विशेष दे० 'चित्त'।

२. अंतःकरण की चार वृत्तियों में से एक जिससे संकल्प विकल्प होता है ।

मुहा०—**किसी से मन अटकना या उलझना** = प्रीति होना । प्रेम होना । **मन आना या मन में आना** = समझ पड़ना । जँचना । उ०—(क) मंगल मूरति कंचन पत्र की मैन रचो मन आवत नीठि है ।—दास (शब्द०) । (ख) और दीन बहु रतन पखाना । सोन रूप जो मनहि न आना ।—जायसी (शब्द०) । **मन का खराब होना** = (१) मन फिरना । (२) नाराज होना । अप्रसन्न होना । (३) रोगी होना । बीमार होना । **अपने मन का होना** = (१) अपनी इच्छा या रुचि आदि के अनुकूल होना । उ०—यही कारण था कि लोग अपने मन के नहीं हो सकते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७६ । (२) किसी की सलाह या बात पर ध्यान न देना । स्वतंत्र, स्वच्छंद एवं जैसा जी में आवे वैसा करना । **मन टूटना** = साहस छूटना । हताश होना । उ०—फूटो निज कर्म नहिं लूटो सुख जानकी को टूटो न धनुष टूट गए मन सबके ।—हनुमन्नाटक (शब्द०) । **मन का दाग** = मन का मैल। पापवृत्ति। दुष्प्रवृत्ति। उ०—साखी शब्द बहुत सुना, मिटा न मन का दाग। संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ।—कबीर सा० सं०, पृ० ५६ । **मन की दौड़** = मन की गति। मन की पहुँच । उ०—है जहाँ पर न दौड़ मन की भी, वाँ बिचारी निगाह क्या दौड़े ।—चोखे०, पृ० २ । **मन बिगड़ना** = (१) मन का हट जाना । मन का उदासीन

हो जाना। (२) मतली आना। कै मालूम होना। (३) उन्मत्त होना। पागल होना। **मन बढ़ना** = साहस बढ़ना। उत्साह बढ़ना। प्रोत्साहित होना। उ०—(क) सुनि मन धीरज भयल हो रमैया राम। मन बढ़ि रहल लजाय हो रमैया राम।—कबीर (शब्द०)। (ख) आपस के नित के बैर से शत्रुओं का मन बढ़ा।—शिवप्रसाद (शब्द०)। **किसी का मन बूझना** = किसी के मन की थाह लेना। उ०—तुम्हारा मन बूझने के लिये ही मैंने यह बातें कहीं।—हरिऔध (शब्द०)। **मन का बूझना या मानना** = मन में शांति होना। मन में धैर्य आना। **मन मन** = मन ही मन। मन में। उ०—पिय सँग सोवत सोय न जाई। मन मन इमि सोचै सुख दाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६। **मन मानना** = मन में शांति होना। संतोष होना। जैसे,—हमारा मन नहीं मानता; हम उन्हें देखने अवश्य जायँगे। **मन का भेद पाना** = हृदय की गूढ़ बात समझना। मन का रहस्य जानना। उ०—मन का भेद न पावै कोई।—जग० श०, पृ० ५४। **मन का मारा** = खिन्नहृदय। दुखी चित्तवाला। **मन का मैला** = मन का खोटा। कपटी। घाती। **मन की मनैं रहना** = दे० 'मन की मन में रहना'। उ०—मन की मनैं रही मन माया। ज्यों तरंग जल जलैं समाया।—पृ० रा०, २६।८६। **मन खो जाना** = विस्मयान्वित होना। चकित होना। उ०—पै यह सगुन सरूप तुम्हारौ। ह्याँ मन खोयौ जात हमारौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६। **मन छूना** = (१) मन को आह्लादित करना। मन को प्रसन्न करना। मन को प्रभावित करना। (२) आंतरिक बात समझना। हृदय की बात जानना। (३) पूर्ण प्राप्ति न कराना। पूरी तरह से किसी वस्तु को न देना। नाम करना। उ०—मन छूना, शोभा बरसना, दिन ढलना या डूबना उदासी टपकना, इत्यादि ऐसी ही कविसमयसिद्ध उक्तियाँ हैं जो बोलचाल में रूढ़ि होकर आ गई हैं।—रस० पृ० ४१। **मन ठिकाने रहना** = चित्त स्थिर रहना। मन शांत रहना। उ०—चर्चा वार्ता बिना मन ठिकाने रहत नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११७। **मन धरना** = (१) दे० 'मन छूना'। (२) मन में धारण करना। उ०—कसौ कसौटी तासु का, जो कसनी ठहराइ। खोटे खरे जु मन धरे, त्यागैं बिरद लजाइ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०। **मन हरा होना** = मन प्रसन्न होना। चित्त प्रसन्न रहना। **मन की मन में रहना** = इच्छा पूरी न होना। जैसे,—मन की मन में ही रह गई; और वे चले गए। **मन के लड्डू खाना** = ऐसी बात को सोचकर प्रसन्न होना, जिसका होना असंभव या दुःसाध्य हो। व्यर्थ की आशा पर प्रसन्न होना। उ०—विरह से पागल प्रेमी लोग मन के लड्डू से भूख बुझा लेते हैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। **मन खोलना** = दुराव छोड़ना। निष्कपट होना। शुद्ध हृदय होना। **मन चलना** = इच्छा होना। प्रवृत्ति होना। जैसे,—बीमारी में किसी चीज पर मन नहीं चलता। **किसी का मन टटोलना या मन को टटोलना** = किसी के मन की थाह लेना। किसी की इच्छा को जानना। जैसे,—आओ, कुछ आमोद प्रमोद की बातें कर उसका मन टटोलें। **मन डोलना** = (१) मन का चलायमान होना। मन का चंचल होना। (२) लालच उत्पन्न होना। लोभ आना। **मन डोलाना** = (१) मन में चंचलता उत्पन्न करना। मन चलायमान करना। उ० भोजन करत [illegible] गोदि [illegible] जो मन न डोलावै। सूरदास प्रभु जब [illegible] गोई जन पावै।—सूर (शब्द०)। (२) लालच उत्पन्न करना। लोभ दिलाना। **अपना मन डोलना** = लालच करना। **मन देना** = (१) जी लगाना। मन लगाना। उ०—(क) एक बार जो मन देइ सेवा। सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) रघुपतिपुरी जनम [illegible] भयऊ। पुनि मैं मन सेवा मम दयऊ।—तुलसी (शब्द०)। (२) ध्यान देना। **किसी को मन देना** = किसी पर आसक्त होना। मोहित होना। **किसी पर मन धरना** = ध्यान देना। मन लगाना। उ०—(क) त्रास भयो अपराध आप लखि अस्तुति करन लगे। सूरदास स्वामी मनमोहन तामें मन न धरे।—सूर (शब्द०)। (ख) जोई भक्ति भाजन मन धरे। [illegible] सो मिलि अनुसरे।—लल्लू (शब्द०)। **मन तोड़ना या हरना** = भग्नोत्साह होना। साहस छोड़ना। उ०—अंग बिनु है गर्व नहीं एको फबै सुनत देखत नयन [illegible] मनोहर तोरे।—सूर (शब्द०)। **(किसी से) मन फट जाना या फिर जाना** = घृणा होना। नफरत होना। उ०—राग अनै अमरस रै, वलै प्रगट्यौ वेध। मन फाटौ भाग्यौ मिलै, खूंटै डाग न खेध।—रा० रू०, पृ० ३४५। **मन फिराना** = दे० 'मन फेरना'। **मन फेरना** = चित्त को हटाना। मन को किसी ओर से अलग करना। प्रवृत्ति बदलना। उ०—फिरि फिरि फेरि फेरि फेर्यो मैं हरी को मन फेरै फिरी पुनि पुनि भाग का भर्यो परी।—केशव (शब्द०)। **मन बढ़ाना** = साहस दिलाना। उत्साह बढ़ाना। प्रोत्साहित करना। उ०—कियो सिरनाय नृपति ने महर को आप पहरावनी सब दिवाए। [illegible] के लियो सिर नाइ के हरषि नंदराय के मन बढ़ाए।—सूर (शब्द०)। **मन बहना या बह पड़ना** = चित्त का किसी ओर ढल जाना। मन का बरबस किसी ओर चला जाना। उ०—ज्यों जोगी जन मन बहि परै। बहुरि जाय बन निर्भय करै।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१। **मन में बसना** = मन में खुभना। पसंद आना। अच्छा लगना। रुचना। भाना। जैसे,—उनकी सूरत तो मेरे मन में बस गई है। उ०—गुरु के भेला जिव डरै काया छीजनहार। कुमति कमाई मन बसै लागु जुवा की लार।—कबीर (शब्द०)। **मन बहलाना** = खिन्न या दुःखी चित्त को किसी काम में लगाकर आनंदित करना। दुःख छोड़कर आनंद से समय काटना। चित्त प्रसन्न करना। जी बहलाना। उ०—ना किसान अब समाचार जहँ आप सुनैहैं। ना नाऊ की बातें सबको मन बहलैहैं।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। **मन भरना** = (१) प्रतीति होना। निश्चय या विश्वास होना। (२) संतोष होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। उ०—यह बीसों फूलों पर गया, पर इसका मन न भरा।—अयोध्या (शब्द०)। **मन भर जाना** = (१) अघा जाना। तृप्ति

होना। (२) अधिक प्रवृत्ति न रह जाना। **मन भाना** = भला लगना। पसंद होना। रुचना। उ० - (क) बामिनि को बामदेव कामिनि को कामदेव रण जयथंभ रामदेव मनये जू।—केशव (शब्द०)। (ख) भाँति अनेक बिहंगम सुंदर फूलैं फलैं तरु ते मन भावैं। प्रताप (शब्द०)। (ग) हरिहर ब्रह्मा के मन भाई। विधि अच्छर लै युगुति बनाई।—कबीर (शब्द०)। (घ) कहेहु नीक मोरेहु मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा। - तुलसी (शब्द०)। (ङ) बाला बैसँधि मैं छवि पावै। मन भावैं मुँह कहत न आवै। - नंद० ग्रं०, पृ० १२१। **मन भारी करना** = दुःखी होना। उदास होना। **मन मरना** = इच्छा समात होना। किसी प्रकार की रुचि न होना। उ०—मन मरना, मन छूना, शोभा बरसना, उदासी टपकना इत्यादि ऐसी ही कविसमयसिद्ध उक्तियाँ हैं जो बोलचाल में रूढ़ि होकर आ गई हैं। —रस०, पृ० २१। **मन मरा होना** = बिलकुल उदास या निष्क्रिय होना। उ०—चोट पर है चोट चित को लग रही। आज उनका मन बहुत ही है मरा।—चुभते०, पृ० २८। **मन मानना** = (१) संतोष होना। तसल्ली होना। उ०—(क) मधुकर कहि कैसे मन मानें। जिनके एक अनन्य ब्रत सूझे क्यों दूजो उर आनै—सूर (शब्द०)। (ख) राजा भा निश्चे मन माना। बाँधा रतन छोड़ि कै आना।—जायसी (शब्द०)। (२) निश्चय होना। प्रतीति होना। उ० –(क) कै बिनु सपथ न अस मन माना। सपथ बोलु बाचा परमाना।—जायसी (शब्द०)। (३) अच्छा लगना। रुचना। पसंद आना। भाना। उ०—सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना। – तुलसी (शब्द०)। (४) स्नेह होना अनुराग होना। उ०—सखी री श्याम सों मन मान्यो। नीके करि चित कमल नैन सों घालि एक ठों सान्यों।—सूर (शब्द०)। **मन मारना** = इच्छा नष्ट करना। इच्छा को दबाना। उ०—दिन गए सिंघ मार लेने के। है भला कौन मार मन पाता।—चुभते०, पृ० ७१। **किसी से मन मिलना** = (१) प्रेम होना। अनुराग होना। (२) मित्रता होना। दोस्ती होना। उ०—ए जेते दिन मन मिल गए तिय पिय बिन मीको, तेते दिन मेरे आन लेखे।—अकबरी०, पृ० २९। **मन में आना** = (१) मन में किसी भाव का उत्पन्न होना। उ०—तासों उन कटु बचन सुनाए। पै ताके मन कछू न आए। –सूर (शब्द०)। (२) समझ पड़ना। ध्यान में आना। उ०—यह तनु क्यों ही दियौ न आवे। और देत कछु मन नहिं आवे।—सूर (शब्द०)। (३) अच्छा जान पड़ना। भला लगना। **मन में आनना**† = दे० 'मन में लाना'। **मन में जमना या बैठना** = (१) ठीक जँचना। उचित या युक्तियुक्त प्रतीत होना। (२) विचार में आना। ध्यान में आना। **मन में ठानना** = निश्चय करना। दृढ़ संकल्प करना। **मन में धरना** = दे० 'मन में रखना'। **मन में भरना** = हृदयंगम करना। मन में जमाना। **मन में रखना** = (१) गुप्त रखना। प्रकट न करना। जैसे,—अभी यह बात मन में ही रखना; किसी से कहना मत। (२) स्मरण रखना। जैसे,—हमारी सब बातें मन में रखना, भूल न जाना। **मन में होरी लगना** = बिरह व्यथा से पीड़ित होना। उ० - होरी नाहक खेलूँ मैं वन में, पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४। **मन में लाना** = विचार करना। सोचना। ध्यान देना। उ०—कहै पदमाकर झकोर झिल्ली शोरन को मोरन को महत न कोऊ मन ल्यावतो।—पद्माकर (शब्द०)। **मन मोहना या मन को मोहना** = किसी के मन को अपनी ओर आकृष्ट करना। लुभाना। अनुरक्त करना। उ०—जग जदपि दिगबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै। केशव (शब्द०)। **मन मिलना** = दो मनुष्यों की प्रकृति या प्रवृत्तियों का अनुकूल अथवा एक समान होना। जैसे,—मन मिले का मेला। नहीं तो सबसे भला अकेला। (शब्द०)। **मन मारना** = (१) खिन्न चित्त होना। उदास होना। उ०—(क) भूसुत शत्रु थान किन हेरत लखत मोहिं मन मारैं। मुनि रिपु पुत्रबधू किन बैरिन मोकों देत सवारैं।—सूर (शब्द०)। (ख) मौन गहौं मन मारे रहौं निज पीतम की कहौं कौन कहानी।—प्रताप (शब्द०)। (२) इच्छा को दबाना। मन को वश में करना। उ० – मन नहिं मार मना करी सका न पाँच प्रहारि। सील साँच सरधा नहीं अजहूँ इंद्रि उघारि। –कबीर (शब्द०)। **मन मारे हुए या मन मारे** = दुःखी। उदास। खिन्नचित्त। उ०—(क) कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रिया वियोग फिरत मन मारे परे सिंधु तट आनि। ता सुंदरि हित मोहिं पठायो सकौं न हौं पहिचानि।—सूर (शब्द०)। (ग) भवन ही मन मारि बैठी सहज सखि इक आई। देखि तनु अति विरह व्याकुल कहति बचन बनाई।—सूर (शब्द०)। (घ) उर धरि धीरजु गउए दुआरे। पूछहिं सकल देखि मन मारे। –तुलसी (शब्द०)। **मन मैला करना** = मन में खिन्न होना। अप्रसन्न या असंतुष्ट होना। उ०—माइ मिले मन का करिहौ मुह ही के मिले ते किए मन मैले। –केशव (शब्द०)। **किसी से मन मोटा होना** = किसी से अनबन होना। **किसी का मन मोटा होना** = विराग होना। उदासीन होना। **मन मोड़ना** = प्रवृत्ति या विचार को दूसरी ओर लगाना। उ०—विधाता ने हमारा तुम्हारा वियोग कर दिया; मुझे अब मन मोड़ लेना पड़ा। —तोताराम (शब्द०)। **किसी का मन रखना** = किसी की इच्छा पूर्ण करना। किसी के मन में आई हुई बात पूरी करना। जैसे—यहाँ के राजाओं से सारे बादशाह दबते थे और इनका वे लोग सब तरह मन रखते थे। उ०—पत रखे जो पत रखाना हो हमें। चूक है मन रख न जो हम मन रखें। —चोखे०, पृ० ३८। **मन लगना** = (१) जी लगना। तबीयत लगना। (२) चित्त विनोद होना। उ०—बिरहागि ह्वै दुगुनी जगै। मन बाग देखत ना लगै।—गुमान (शब्द०)। **मन लगाना** = (१) चित्त लगाना। मनोयोग देना। (२) चित्त विनोद करना। मन की उदासी मिटाना। (३) प्रेम करना। अनुराग करना। **मन लाना**(पु) = मन लगाना। जी लगाना।

उ०—(क) गगन मँडल माँ भा उजियारा उलटा फेर लगाया। कहै कबीर जन भए विवेकी जिन मंत्री मन लाया। कबीर (शब्द०)। (ख) छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) किए जो परम तत्व मन लावा। घूमि मात सुनि और न भावा।—जायसी (शब्द०)। (२) प्रेम करना। आसक्त होना। उ०—पवन साँस तोसों मन लाई। जोवै मारग दृष्टि बिछाई।—जायसी (शब्द०)। **मन से उतरना** = (१) मन में आदर भाव न रह जाना। तिरस्कृत होना। घृणित ठहरना। (२) याद न रहना। विस्मृत होना। **मन से उतारना** = (१) मन में पहले का सा आदर भाव न रखना। तिरस्कार करना। घृणा करना। (२) चित्त से उतारना। विस्मृत करना। भुलाना। **मन हरना** = मुग्ध करना। मोहित करना। मोह लेना। अपने ऊपर अनुरक्त करना। उ०—(क) चेटक लाइ हर्राहं मन जब लागे हों गरि फेंट। साठ नाठ उठि भागहिं ना पहिचान न भेंट।—जायसी (शब्द०)। (ख) वह देखो युवति वृंद में ठाढ़ी नील बसन तनु गोरी। सूरदास मेरो मन बाकी चितवन देखि हरेउ री।—सूर (शब्द०)। (ग) कानन लसत बिजुरिया मन हरि लीन। तिन पर परैं बिजुरिया जिन रचि दीन।—रहीम (शब्द०)। (घ) स्वप्न रूप भावण सुधि करि करि। गयो दुहुन के यहि विधि मन हरि।—शं० दि० (शब्द०)। **मन ही मन रिंधना** = जलना। मन ही मन दुःखी होना। मन ही मन ईर्ष्या करना। उ०—जब तक ख्याल आ जाता और वह मन ही मन रिंधने लगता।—अभिशप्त, पृ० १०। **किसी का मन हाथ में लेना या करना** = वशीभूत करना। अपने वश में करना। **मन ही मन** = हृदय में। चुपचाप बिना कुछ कहे हुए। भीतर ही भीतर। उ०—(क) ललिता मुख चितवत मुसुकाने। आप हँसी पिय मुख अवलोकत दुहुनि मनहिं मन जाने।—सूर (शब्द०) (ख) प्रथम केलि तिय कलह की, कथा न कछु कहि जाय। अतनु ताप तनुहीं सहै, मन ही मन अकुलाय।—पद्माकर (शब्द०)।

३. इच्छा। इरादा। विचार।

मुहा०—**मन करना** = इच्छा करना। चाहना। उ०—मन न मनावन को करै देत रुठाय रुठाय। कौतुक लाग्यौ पिय प्रिया खिजहु रिझावति जाय।—बिहारी (शब्द०)। **मनमाना** = अपने मन के अनुसार। यथेच्छ मन चाहा। उ०—दुहूँ ओर की सहचरी करत दुहुन की भीर। मन मान्यौ मौसर मिल्यौ मिटी मदन की पीर।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६५। **मन होना** = इच्छा होना। उ०—उमगत अनुराग सभा के सराहे भाग देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भयो।—तुलसी (शब्द०)। **मनमाना घर जाना** = मनमानी। स्वेच्छाचारिता।

मन(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० **मणि**] मणि। बहुमूल्य पत्थर।

मन³—संज्ञा पुं० [?] चालीस सेर का एक मान या तौल।

मनई†—संज्ञा पुं० [सं० **मानव**] मनुष्य। आदमी। उ०—बरसे नीर झराझर मनई उबर न पाए।—गि० दा० (शब्द०)।

मनकना—क्रि० अ० [अनु०] १. हिलना। डोलना। चेष्टा करना। हाथ पैर चलाना। उ०—आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहारे नेकहु न मनके।—भूषण (शब्द०)। २. तर्क वितर्क करना। चीं चपड़ करना।

मनकरा(पु)—वि० [हिं० **मणि+कर** (प्रत्य०)] चमकदार। प्रकाशमान। उ०—दुइज ललाट अधिक मनकरा। शंकर देखि माथ भुइँ धरा।—जायसी (शब्द०)।

मनकर्षन—वि० [सं० **मनः+कर्षण**] आकर्षक। उ०—याको नाम एक संकर्षन। जन हर्षन मन के मनकर्षन।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

मनका¹—संज्ञा पुं० [सं० **मणिक या मणिका**] १. पत्थर, लकड़ी आदि का बेधा हुआ गोल खंड या दाना जिसे पिरोकर माला या सुमिरनी आदि बनाई जाती है। गुरिया। उ०—माला फेरत जग मुआ गया न मन का फेर। कर का मनका छाँड़ि के मन का मनका फेर।—कबीर (शब्द०)। २. माला या सुमिरनी। (क्व०)।

मनका²—संज्ञा पुं० [सं० **मन्यका** (= **गले की नस**)] गरदन के पीछे की हड्डी जो रीढ़ के बिलकुल ऊपर होती है।

मुहा०—**मनका ढलना या ढलकना** = मरने के समय गरदन टेढ़ी हो जाना। मृत्यु के समय गरदन का एक ओर झुक जाना।

विशेष—यह अवस्था ठीक मरने के समय होती है; और इसके उपरांत मनुष्य नहीं बचता।

मनकामना—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मन+कामना**] मनोरथ। अभिलाषा। इच्छा। उ०—सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी।—तुलसी (शब्द०)।

मनकूला—वि० स्त्री० [अ०] स्थिर या स्थावर का उलटा। चर।

यौ०—**जायदाद मनकूला** = चर संपत्ति। **गैर मनकूला** = स्थिर। स्थायी। स्थावर।

मनकूहा—वि० स्त्री० [अ० **मनकूहह्**] जिसके साथ निकाह हुआ हो। विवाहिता। पाणिगृहीता। जैसे, मनकूहा औरत।

मनक्कना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मनकना'। उ०—फिरक्कान कुंतं झरै बंसु कक्की। मनों बीजलट्टी कुलट्टी मनक्की।—पृ० रा०, २४।१५७।

मनखा†—संज्ञा पुं० [सं० **मनुष्य**] दे० 'मनुष्य'। उ०—मनखा जनम पदारथ पायो ऐसो बहुर न आतो।—संतबाणी०, पृ० ६८।

मनगढ़ंत¹—वि० [हिं० **मन+गढ़ना**] जिसकी वास्तविक सत्ता न हो, केवल कल्पना कर ली गई हो। कपोलकल्पित। जैसे,—आपकी सब बातें मनगढ़ंत ही हुआ करती हैं।

मनगढ़ंत²—संज्ञा स्त्री० कोरी कल्पना। कपोलकल्पना। जैसे,—यह सब आपकी मनगढ़ंत है।

मनगमता‡—वि० [हिं० **मन+गम**; गुज० **गमवुं** (= **अच्छा लगना, भाना**)] मनोभीष्ट। मन को रुचनेवाला। उ०—मनगमता पाम्या नहीं ऊँटकटाला खाइ।—ढोला०, दू० ४२७।

मनचला—वि० [हिं० **मन+चलना**] १. धीर। निडर। जैसे, मनचला सिपाही। २. साहसी। हिम्मतवाला। ३. रसिक।

मनचाहता—वि० [हिं० **मन+चाहना**] [स्त्री० **मनचाहती, मनचाहंदी**] १. जिसे मन चाहे। प्रिय। २. मन के अनुकूल। यथेच्छ। उ०—सखिए साहिब आविया, मनचाहंदी मोइ। वाड़ी हुआ वधाँमणा, सज्जण मिलिया सोइ।—ढोला०, दू० ५३२।

मनचाहा—वि० [हिं० **मन+चाहना**] [वि० स्त्री० **मनचाही**] इच्छित। अभिलषित।

मनचीत, मनचीता—वि० [हिं० **मन+चेतना**] [वि० स्त्री० **मनचीती**] मनचाहा। मनभाया। मन में सोचा हुआ। उ०—(क) घर डर बिसरेउ बढ़ेउ उछाह। मनचीते हरि पायो नाह।—सूर (शब्द०)। (ख) मेरे मन को दुख परिहरौ। मनचीतो कारज सब करौ।—लल्लू (शब्द०)। (ग) पूरो जदपि भयो नहीं मनचीत्यो रति नाह।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (घ) क्या लाए थे निपट पराजय तुम अपने मनचीत, सखे?—अपलक, पृ० ७०।

मनछा†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मत्स्य**] मछली। मत्स्य। उ०—पंछी जल मो घर करै, मनछा चढ़े अकास।—रामानंद०, पृ० ३२।

मनजम—वि० [अ० **मनज़म**] छंदोबद्ध [को०]।

मनजात—संज्ञा पुं० [हिं० **मन+**सं० **जात**] कामदेव। उ०—मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरे न हिए।—तुलसी (शब्द०)।

मनडाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **मन+डा** (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'मन'। उ०—चेतरे अजूँ मनडा चतुर, रट रट श्री सीतारमण।—रघु० रू०, पृ० ४३।

मनतोरवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

मनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचार। चिंतन। सोचना। २. भली-भाँति अध्ययन करना। ३. वेदांत शास्त्रानुसार सुने हुए वाक्यों पर बार बार विचार करना और प्रश्नोत्तर या शंका-समाधान द्वारा उसका निश्चय करना।

मननशील—वि० [सं० **मनन+शील**] जो किसी विषय पर बहुत अच्छी तरह विचार करता हो। विचारशील। विचारवान्।

मननाना—क्रि० अ० [**मन् मन् से** अनु०] गुंजारना। गूँजना। उ०—मननात भौंर भूषण अमोल झननात झवा झूलनि सरसे।—गुमान (शब्द०)।

मननीय—वि० [सं०] मनन करने योग्य। विचारणीय [को०]।

मनफलⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **मन+**सं० **फल**] मन में इच्छित फल या परिणाम। मनोरथ। उ०—मनफल पावैं तोरि डारी कुलपाज है।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २३।

मनबंछितⓅ—वि० [हिं० **मन+**सं० **वाञ्छित**] दे० 'मनवांछित'। उ०—हित चितकनि महा मनबंछित को फल विधना आजु दए।—घनानंद, पृ० ४८३।

मनबांछित—वि० [हिं० सं० **मनोवाञ्छित**] दे० 'मनोवांछित'। उ० जागी महरि पुत्र मुख देखेउ आनँद तूर बजाई। कंचन कलस हेम द्विज पूजा चंदन भवन लिपाई। दिन दसहीं ते बरसे कुसुमनि फूलनि गोकुल ठाई। नंद कहै इच्छा सब पूजी मनवांछित फल पाई।—सूर (शब्द०)।

मनभंग—संज्ञा पुं० [सं० **मन+भङ्ग**] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

मनभाया—वि० [हिं० **मन+भाना**] [वि० स्त्री० **मनभाई**] जो मन को भावे। जो अच्छा लगे। मनोनुकूल। उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कियो कान्ह ग्वालिनि मनभायो।—सूर (शब्द०)। (ख) ख्याल मनभाय कहूँ करिके गोपाल घेरे आए अति आलस कढ़ेई बड़े तरके।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) करत सुहाय सुहाय मनभाय वर पाय सबै कार चतुराई अधिकाय अधिकात है।—प्रताप (शब्द०)। (घ) आतुर है पिय केलि करी सुभरी निज अंक करी मन भाई।—(शब्द०)।

मनभाँवरोⓅ—वि० [हिं० **मन+भाना**] १. मन को अच्छा लगनेवाला। २. मन का भ्रमर। उ०—जसुमति नंदन त्रिभुवन वंदन दुख फंदन मनभाँवरो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५१।

मनभावतⓅ—वि० [हिं० **मन+भाना**] दे० 'मनभावना'। उ०—रूपवंत जस दरपन धन तू जाकर कंत। चाहौ जैसे मनोहर मिला सो मनभावंत।—जायसी (शब्द०)।

मनभावता—वि० [हिं० **मन+भाना**] [वि० स्त्री० **मनभावती**] १. जो मन को भला लगता हो। २. प्रिय। प्यारा। उ०—(क) कहि पठई मनभावती पिय आवन की बात। फूली आँगन में फिरै आँग न अंग समात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मोंहि तुम्हें न उन्हें न इन्हें, मनभावती सो न मनावन ऐहै।—पद्माकर (शब्द०)।

मनभावन—वि० [हिं० **मन+भाना**] [वि० स्त्री० **मनभावनी**] १. मन को अच्छा लगनेवाला। उ०—चरण धोइ चरणोदक लीनो माँगि देऊँ मनभावन। तीन पैड़ वसुधा हौं चाहौं परण-कुटी को छावन।—सूर (शब्द०)। २. प्रिय। प्यारा। उ०—(क) भले सुदिन भए पूत अमर अजरावन रे। जुग जुग जीवहु कान्ह सबहि मनभावन रे।—सूर (शब्द०)। (ख) केशोदास सुंदर श्रवन ब्रजसुंदरी के मानो मनभावन के भावते भवन हैं।—केशव (शब्द०)। (ग) शंख भेरि निशान बाजहिं नचहिं शुद्ध सुहावनी। भाट बोलैं बिरद नारी बचन कहैं मन-भावनी।—सूर (शब्द०)।

मनमंतⓅ—वि० [सं० **मदमत्त**] दे० 'मदमत्त'। उ०—छंडे सिर छत्रं साहि सुतंत्रं। गो धीरत्रं मनमंतं।—पृ० रा०, २४।२५२।

मनमतⓅ[1]—वि० [सं० **मदमत्त**] दे० 'मैमंत'।

मनमतⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मन्मथ**] दे० 'मन्मथ'। उ०—जब कामिनि से भौ परसंगा। उपजे मनमत भाव अनंगा।—दरिया० बानी०, पृ० ६४।

मनमति—वि० [हिं० **मन+मति**] अपने मन का काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। उ०—भाई, ये मनमति होना अच्छा नहीं, किसी की बात मान भी लेनी चाहिए।—श्रद्धाराम (शब्द०)।

मनमत्थ⁽⁹⁾—संज्ञा पुं० [सं० **मन्मथ**] दे० 'मन्मथ'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि इषधी तून निषंग। भाथ मनो मनमत्थ की पिंडुरी भरी सुरंग।—अनेकार्थ०, पृ० ३६।

मनमथ—संज्ञा पुं० [सं० **मन्मथ**] दे० 'मन्मथ'।

यौ०—**मनमथपिता** = हृदय। उ०—स्वांतहृदय मनमथपिता आतम मानस नाँउ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०।

मनमथन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

मनमथी⁽⁹⁾—वि० [हिं० मन्मथ + ई (प्रत्य०)] मन्मथ संबंधी। उ०—करि रस अनंग क्रीडा बढ़िय सुवेलि सुमन मनमथी।—पृ० रा०, २४।४६०।

मनमानता—वि० [हिं० मन + **मानना** [वि० स्त्री० **मनमानती**] मनमाना। मनचाहा। मनोवांछित। उ०—सब ग्वालों ने प्रसन्न हो निधड़क फूल तोड़ मनमानती झोलियाँ भर लीं।—लल्लू (शब्द०)।

मनमाना—वि० [हिं० **मन** + **मानना**] [वि० स्त्री० **मनमानी**] १. जिसे मन चाहे। जो मन को अच्छा लगे। उ०—तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि, मेरे मनमाने राउ निपट सयाने हैं।—तुलसी (शब्द०)। २. मन के अनुकूल। मनोनीत। पसंद। उ०—पालने आन्यो, सबहि अति मनमान्यो नीको सो दिन धराइ, सखिन मंगल गवाइ, रंगमहल में पढ्यौ है कन्हैया।—सूर (शब्द०)। ३. यथेच्छ। इच्छानुकूल। मनचाहा। जैसे,—आप किसी की बात तो मानते ही नहीं। हमेशा मनमाना करते हैं।

मनमानिब⁽⁹⁾†—वि० [हिं० **मन** + **मानना**] मनमाना। यथेष्ट। अत्यधिक। प्रचुर। उ०—जिते यज्ञ के योग्य तिते द्रव सब मनमानिब।—ह० रासो, पृ० १०।

मनमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मनमाना**] इच्छानुकूल काम करने की प्रवृत्ति। स्वेच्छाचारिता।

मनमुख⁽⁹⁾†—वि० [हिं० **मन** × **मुखी**] दे० 'मनमुखी'। उ०—इन चारों प्रकार के लोगों में कोई गुरमुख नहीं है सब मनमुख हैं।—कबीर मं०, पृ० ३६२।

मनमुखी†—वि० [हिं० **मन** + सं० **मुख्य**] मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। उ०—गुरु द्रोही औ मनमुखी नारी पुरुष विचार। ते नर चौरासी भ्रमहिं जब लगि शशि दिनकार।—कबीर (शब्द०)।

मनमुटाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मन** + **मोटा**] मन में भेद पड़ना। मन मोटा होना। वैमनस्य होना।

क्रि० प्र०—**पड़ना**।—**होना**।

मनमेलू⁽⁹⁾—वि० [हिं० **मन** + **मिलाना**] मन मिलानेवाला। हितू। उ०—मो सी मनमेलू सों रूखी परति अचगरी निपट पुढ़ाई ही की।—घनानंद, पृ० ५४१।

मनमोद†—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का डिंगल गीत। इसमें पहले दोहा और फिर कड़खा रहता है। उ०—गुण दोहै सी भाल गत, ऊपर कड़खौ आग। दूहै गीत मनमोद यूं वद रघुनत वाखाण।—रघु० रू०, पृ० १०३।

मनमोदक—संज्ञा पुं० [हिं० **मन** + **मोदक**] अपनी प्रसन्नता के लिये बनाई हुई असंभव या कल्पित बात। मन का लड्डू। उ०—वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई।—तुलसी (शब्द०)।

मनमोहन¹—वि० [हिं० **मन** + **मोहन**] [वि० स्त्री० **मनमोहनी**] १. मन को मोहनेवाला। मन को लुभानेवाला। चित्ताकर्षक। मुग्धकारक। उ०—(क) रूप जगत मनमोहन ओहि पदमावति नाउँ। कोटि दरब मुहि देहौं आनि करौं एक ठाउँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) पहुँची कनक की छिड़ी बानक सों बनी मनमोहनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५। २. प्रिय। प्यारा।

मनमोहन²—संज्ञा पुं० १. श्रीकृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—मनमोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान।—सूर (शब्द०)। २. एक मात्रिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती हैं, जिनमें से अंतिम मात्राओं का लघु होना आवश्यक है। जैसे,—[illegible] करम सुभहु भव पावहु परम। ३. एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष बरमा, आसाम आदि देशों में होता है। यह सीधा और ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी साफ होती है और इसपर रंग खूब खिलता है। इसके फूल बहुत सुगंधित होते हैं जिनसे अतर निकाला जाता है। इस अतर को 'इलंग' कहते हैं और यूरोप में इसका बहुत खपत होता है। इसे अब लोग बंगाल में भी बागों में लगाते हैं। यह बीजों से उगता है।

मनमौजी—वि० [हिं० **मन** + **मौज**] मन की मौज के अनुसार काम करनेवाला।

मनरंज⁽⁹⁾—वि० [हिं० मन + **रंजना**] मनोरंजन करनेवाला। मनोरंजक। उ०—[illegible] बहु नायक मनरंज। बात कहत थी बाल के ओर आए इस कंज।—मतिराम (शब्द०)।

मनरंजन¹—वि० [हिं० **मन** + **रंजना**] मनोरंजन करनेवाला। मन को प्रसन्न करनेवाला। मनोरंजक। उ०—(क) भृंगी री भज चरण कमल पद जहँ नहिं निशि को त्रास। जहँ विधु भान समान प्रभा नख सो वारिज सुखरास। जिहिं किंजल्क भक्ति नव लक्षण काम ज्ञान रस एक। निगम सनक शुक नारद शारद मुनिजन भृंग अनेक। शिव विरंचि खंजन मनरंजन छिन छिन करत प्रवेश। अखिल कोश तहँ बसत सुकृत जन परगट श्याम दिनेश। सुनि मधुकरी भरम तजि निर्भय राजिव वर की आस। सूरज प्रेम सिंधु में प्रफुलित तहँ चलि करै निवास।—सूर (शब्द०)। (ख) थिरकत सहज सुभाव सौं चलत चपल गत सैन। मनरंजन रिझवार के खंजन तेरे नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

मनरंजन²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मनोरंजन'।

मनरति(पु)—वि० [हिं० मन + सं० रति] मन में रमण करनेवाली। मन को अच्छी लगनेवाली। उ०—देवराज रावत सुता देवत्तनि जद्दौन। गौरि नाम सारंग वर मनरति मूरति जौन।—पृ० रा०, १।३६२।

मनरोचन—वि० [सं० मन + रोचन] मन को मुग्ध करनेवाला या रुचनेवाला सुंदर। उ०—तापर भौंर भलो मनरोचन लोक बिलोचन को सथिरी है।—केशव (शब्द०)।

मनरौन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मन + सं० रमण > हिं० रौन] मन-रमण। प्रियतम। उ०—सहज सुभावनि सौं भौंहनि के भावनि सौं, हरति है मन 'मतिराम' मनरौन को।—मति० ग्रं० पृ० ३४५।

मनलाडू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मन + लड्डू] दे० मनमोदक'। उ०—धर्म अर्थ कामना सुनावत सब सुख मुक्ति समेत। काकी भूख गई मनलाडू सो देखहु चित चेत।—सूर (शब्द०)।

मनवंछित(पु)—वि० [सं० मनोवाञ्छित] दे० 'मनोवांछित'। उ०—मेल्ही चाँवर वइसणाइ, मनवंछित भोजन अर चीर।—बी० रासो, पृ० ६२।

मनवाँ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] नरमा। देवकपास। रामकपास। उ०—चहुँ कित चितवै चित चकित सजल किए चल नैन। लखि सनवा मनवाँ परै मन वाके नहि चैन।—स० सप्तक, पृ० २६२।

मनवाँ(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मनुआँ'। उ०—मोरा मनवाँ है तुमी सन लागीलौ।—घनानंद, पृ० ३६२।

मनवाना[1]—क्रि० स० [हिं० मानना का प्रे० रूप] मानने का प्रेरणार्थक रूप। मानने के लिये प्रेरणा करना। किसी को मानने में प्रवृत्त करना। उ०—भावत ही की सखी सों भट्ट मनभावते भावती को मनवायो।—रघुनाथ (शब्द०)।

मनवाना[2]—क्रि० स० [हिं० मनाना] मनाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मनाने में प्रवृत्त करना।

मनवार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मन या मनुहार] निहोरा। खातिरी। उ०—गाल लुगायाँ गावही, नर मुख उचत म गाल। अमल गाल मनवार कर, का सुभ वचन उगाल।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ७८।

मनशा—संज्ञा स्त्री० [अ० मन्शह्] १. इच्छा। विचार। इरादा। २. तात्पर्य। मतलब। अर्थ। ३. उद्देश्य। कारण। सबब (को०)। ४. मनोकामना। मनोरथ (को०)।

मनश्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] मन की आँख। अंतश्चक्षु। अंतर्दृष्टि। उ०—देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक, धन्य, तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिर पावन।—ग्राम्या, पृ० ५३।

मनसना(पु)—क्रि० स० [हिं० मानस, सं० मनस्यन्] १. इच्छा करना। विचार करना। इरादा करना। उ०—(क) भँवर जो मनसा मानसर लीन्ह कमल रस आय। घुन हियाव ना कै सका झूर काठ तस खाय।—जायसी (शब्द०)। (ख) पवन बाँध अपसरहिं अकासा। मनसहिं जहाँ जाहिं तहँ बासा।—जायसी (शब्द०)। (ग) याही ते शूल रही शिशुपालहि। सुमिरि सुमिरि पछिताति सदा वह मान भंग के कालहि। दुलहिनि कहति दौरि दीजहु द्विज पाती नँद के लालहि। वर सुबरात बुलाइ बड़े हित मनसि मनोहर बालहि।—सूर (शब्द०)। २. संकल्प करना। दृढ़ निश्चय या विचार करना। उ०—जोई चाहै सोई लेइ मने नहिं कीजै यह शिव के चढ़ाइबे को मनस्यो कमल है।—रघुनाथ (शब्द०)। ३. हाथ में जल लेकर संकल्प का मंत्र पढ़कर कोई चीज दान करना।

मनसफ(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० मनसब] दे० 'मनसब-३'। उ०—मनीदास कह बकसी कीन्हा। मनसफ है कागद लिख दीन्हाँ।—संत० दरिया, पृ० ५।

मनसब—संज्ञा पुं० [अ०] १. पद। स्थान। उ०—पक्का मतो करि मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का के मिसि उतरत दरियाव हैं।—भूषण (शब्द०)।

यौ०—मनसबदार।

२. कर्म। काम। ३. अधिकार। ४. वृत्ति।

मनसबदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो किसी मनसब पर हो। उच्चपदस्थ पुरुष। ओहदेदार। उ०—मंसन की कहा है मतंगनि के माँगिबे को मनसबदारनि के मन ललकत हैं।—मतिराम (शब्द०)।

मनसा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

विशेष—पुराणानुसार यह जरत्कारु मुनि की पत्नी और आस्तीक की माता थी तथा कश्यप की पुत्री और वासुकि नाग की बहिन थी।

मनसा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मानस या अ० मनशाह्] १. कामना। इच्छा। उ०—(क) तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय। कोउ काहू को है नहीं सब देखे ठोंक बजाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) छिन न रहै नँदलाल इहाँ बिनु जो कोउ कोटि सिखावै। सूरदास ज्यों मन ते मनसा अनत कहूँ नहिं जावै।—सूर (शब्द०)। २. संकल्प। अध्यवसाय। इरादा। उ०—(क) देव नदी कहँ जोजन जानि किए मनसा कुल कोटि उधारे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।—तुलसी (शब्द०)। ३. अभिलाषा। मनोरथ। उ०—(क) मनसा को दाता कहै श्रुति प्रभु प्रवीन को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहा कमी जाको राम धनी। मनसा नाथ मनोरथ पूरण सुखनिधान जाको मौज धनी।—तुलसी (शब्द०)। ४. मन। उ०—विफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के।—तुलसी (शब्द०)। ५. बुद्धि। उ०—युगल कमल सों मिलन कमल युग युगल कमल ले संग। पाँच कमल मधि युगल कमल लखि मनसा भई अपंग।—सूर (शब्द०)। ६. अभिप्राय। तात्पर्य। प्रयोजन। उ०—प्रभु मनसहिं लवलीन मनु चलत बाजि छबि पाव। भूषित उड़गन तड़ित घन जनु वर बरहि नचाव।—तुलसी (शब्द०)।

मनसा[3]—वि० १. मन से उत्पन्न । २. मन का । उ०—धर्म विचारत मन में होई । मनसा पाप न लागत कोई ।—सूर (शब्द०) ।

मनसा[4]—क्रि० वि० मन से । मन के द्वारा । उ०—मनसा वाचा कर्मणा हम सों छाड़हु नेह । राजा को विपदा परी तुम तिनकी सुधि लेह ।—केशव (शब्द०) ।

मनसा[5]—संज्ञा पुं० दे० 'मसी' ।

मनसा[6]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है । मकड़ा । मधाना । खमकरा । विशेष दे० 'मकड़ा' ।

मनसाकरⓟ—वि० [हिं० **मनसा** + सं० **कर** (प्रत्य०)] मनोवांछित फल देनेवाला । मनोकामना पूर्ण करनेवाला । उ०—बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु शुभ तरंगिनी शोभ सनी ।—केशव (शब्द०) ।

मनसादेवी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मनसा** + **देवी**] एक देवी जो साँपों के कुल की अधिष्ठात्री मानी जाती है । प्रायः लोग साँप के काटने पर इनकी मिन्नत करते हैं ।

मनसाना[1]—क्रि० अ० [हिं० **मनसा**] उमंग में आना । तरंग में आना । उ०—पाई भेद गरुड़ मनसाना ।—कबीर सा०, पृ० ५८७ ।

मनसाना[2]—क्रि० स० [हिं० **मनसा का प्रे० रूप**] मनसने का काम दूसरे से कराना । संकल्प का मंत्र आदि पढ़कर या पढ़ाकर दूसरे से दान आदि कराना ।

मनसाना[3]—क्रि० अ० [हिं० **मानुस** + **आना**] मनुष्यता आना । पुरुषत्व जगना । मनुसाई आना ।

मनसापंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मनसापञ्चमी**] आषाढ़ की कृष्णा पंचमी । इस दिन मनसा देवी का उत्सव होता है ।

मनसायन†—वि० [हिं० **मानुस** (= मनुष्य) + **आयन** (प्रत्य०)] १. १. वह स्थान जहाँ मनबहलाव के लिये कुछ लोग हों ।

मुहा०—**मनसायन करना या रखना** = बातचीत आदि के द्वारा इस प्रकार किसी का मन बहलाना जिसमें उसे अकेले होने का कष्ट न जान पड़े ।

२. मनोरम स्थान । गुलजार जगह ।

मनसिकार—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय में धारण कर लेना । मन में ग्रहण कर लेना [को०] ।

मनसिज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव । २. वासना । काम (को०) ।

मनसिमंद—वि० [सं० **मनसिमन्द**] प्रेम में शिथिल या निश्चेष्ट [को०] ।

मनसिशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव । २. चंद्रमा [को०] ।

मनसूख—वि० [अ० **मन्सूख**] १. जो अप्रामाणिक ठहरा दिया गया हो । अतिवर्तित । जैसे,—डिगरी मनसूख कराना । २. परित्यक्त । त्यागा हुआ । जैसे,—हमने वहाँ जाने का इरादा मनसूख कर दिया ।

मनसूखी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मनसूखी**] मनसूख होने का भाव या क्रिया ।

मनसूब—वि० [अ० **मंसूब**] १. संबंधित । २. मँगेतर । ३. मनोवांछित । इच्छानुकूल । उ०—झूलै जो गुखद हिंडोलना मनसूब सुवा पाय ।—गुलाल०, पृ० ८० ।

मनसूबा—संज्ञा पुं० [अ० **मनसूबह्**] १. युक्ति । आयोजन । ढंग । उ०—(क) अब कीजै कैसा मनसूबा । हैं हैरान गीगरे सूबा ।—लाल (शब्द०) । (ख) लंक की विशालता लै उरज उतंग भए रंग कवि दूलह है तेरे मनसूबे को । - दूलह (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—**करना** ।—**ठानना** ।—**होना** ।

मुहा०—**मनसूबा बाँधना** = युक्ति निकालना । ढंग सोचना । उ०—उसने पक्का मनसूबा बाँधा था कि यदि लड़ाई हो तो आप धनुष बान लेके हाथी पर फौज के साथ जावें ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

२. इरादा । विचार । उ० - शकटार अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

मनसूर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध मुसलमान साधु जो सूफी मत का आचार्य माना जाता है । उ०—रोशन दिलों के बीच भक्ति ज्यों झटा पठा । माखन लिया मनसूर दूर काढ़ दे मठा ।—तुलसी० श०, पृ० १४१ ।

विशेष—यह नवीं शताब्दी में बैजानगर में हुसेन हल्लाज के घर उत्पन्न हुआ था । यह 'अनहलक' अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' कहा करता था । बगदाद के खलीफा मकतदिर ने इसे इस्लाम का विरोधी समझकर सन् ९१९ ईस्वी में सूली पर चढ़ा दिया और इसके शव को भस्म करा दिया था ।

मनसेधू†—संज्ञा पुं० [सं० **मनुष्य**] पुरुष । आदमी ।

मनस्क—संज्ञा पुं० [सं०] मन का अल्पार्थक रूप । (इसका प्रयोग समस्त पदों में देखा जाता है) । जैसे, अन्यमनस्क ।

मनस्कांत[1]—वि० [सं० **मनस्कान्त**] १. मनोनीत । मन के अनुकूल । २. प्रिय । प्यारा ।

मनस्कांत[2]—संज्ञा पुं० मन की अभिलाषा । मनोरथ ।

मनस्काम—संज्ञा पुं० [सं०] मन की अभिलाषा । मनोरथ ।

मनस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्ण ज्ञान । पूर्ण चेतना । २. (सुख दुःख का) पूर्ण ज्ञान । ३. ध्यान । ४. निश्चय [को०] ।

मनस्तत्व—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्** + **तत्त्व**] मन संबंधी बात । मन के विषय में कोई गूढ़ ज्ञातव्य तथ्य । उ०—मनस्तत्व के किसी सिद्धांत का आविष्कार करनेवाले हो क्या ?—ज्ञानदान, पृ० ४३ ।

मनस्तात्विक—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्** + **तात्त्विक**] मनोवेत्ता । मनोवैज्ञानिक । उ०—फ्रायड, अडलर, युंग आदि मनस्तात्विकों ने यह सिद्ध कर दिखाया है ।—सा० समीक्षा, पृ० १५१ ।

मनस्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनःपीड़ा । आंतरिक दुःख । उ०—मुझ पथिकिनि को भी आश्रय दो, मनस्ताप मेरा हर के ।—वीणा, पृ० ११ । २. अनुताप । पश्चात्ताप । पछतावा ।

मनस्ताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरताल । २. दुर्गा देवी के वाहन सिंह का नाम ।

मनस्तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनस्तोष । मन का संतोष [को०] ।

मनस्तृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन की तृप्ति । मनस्तुष्टि [को०] ।

मनस्तोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा जी का एक नाम ।

मनस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनस्वी होने का भाव । दृढ़ निश्चय या स्थिरचित्त होना । विचार की स्थिरता । उ०—नहीं तो आज इतनी भी तो स्वतंत्रता, निश्चितता, मनस्विता और उत्साह चित्त में न होता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

मनस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मृकंडु ऋषि की पत्नी का नाम । २. प्रजापति की एक स्त्री का नाम जिससे सोम की उत्पत्ति हुई थी । ३. दुर्गा का एक नाम (को०) । ४. उच्च विचारवाली स्त्री । सती स्त्री । उ०—साध्वी सती मनस्विनी सुचरित्रा सुचि होय । अनेकार्थ०, पृ० ५२ ।

मनस्वी[1]—वि० [सं० **मनस्विन्**] [स्त्री० **मनस्विनी**] १. श्रेष्ठ मन से संपन्न । बुद्धिमान् । उच्च विचारवाला । २. स्थिर चित्तवाला । दृढ़निश्चयी । ३. मनमौजी । स्वेच्छाचारी ।

मनस्वी[2]—संज्ञा पुं० शरभ ।

मनहंस—संज्ञा पुं० [हिं० **मन + हंस**] पंद्रह अक्षरों के एक वर्णिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सगण; फिर दो जगण, फिर भगण और अंत में रगण होता है (स ज ज भ र) । इसे मानसहंस भी कहते हैं । जैसे,—बिरहीन को पलखात हौ यहि नाम सो । यहि ते पलाश प्रसिद्ध हो गति बाम सों । कछु फूल लागत लाल हैं तेहि हेतु सों । इमि देखि के पुहुमी पुरंदर चेत सों ।

मनहर[1]—वि० [हिं० **मन + हरना वा** सं० **मनोहर**] मन को हरनेवाला । मनोहर ।

मनहर[2]—संज्ञा पुं० घनाक्षरी छंद का एक नाम । दे० 'घनाक्षरी' ।

मनहरण[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मन + हरण**] १. मन हरने की क्रिया या भाव । २. पंद्रह अक्षरों का एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं । इसे नलिनी और भ्रमरावली भी कहते हैं । जैसे,—दुर्जन की हानि विरधापनोई करै पर गुण लोप होत इक मोतिन को हार ही । (शब्द) ।

मनहरण[2]—वि० मनोहर । सुंदर ।

मनहरन(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मनहरण**] दे० 'मनहरण' ।

मनहरन[2]—वि० [स्त्री० **मनहरनी**] मन हरनेवाला । उ०—(क) जदपि पुराने बक तऊ सरवर निपट कुचाल । नए भए तु कहा भए ये मनहरन मराल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) कलिमल हरनी मंगलकरनी । मनहरनी श्रीसुक मुनि बरनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९० ।

मनहार—वि० [हिं०] दे० 'मनोहारी' ।

मनहारि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'मनोहारी' ।

मनहुँ(पु)—अव्य० [हिं० **मानना या मानो**] मानो । जैसे । यथा । उ०—(क) चाहहु सुनइ राम गुन गूढ़ा । कीन्हहुँ प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पंडित अति सिगरी पुरी मनहुँ गिरा गति मूढ़ । सिंहिनि युत जनु चंडिका मोहत मूढ़ अमूढ़ ।—केशव (शब्द०) ।

मनहूस—वि० [अ०] १. अशुभ । बुरा जैसे,—उँगलियाँ तोड़ना बहुत मनहूस है । २. अप्रियदर्शन । जो देखने में बेरौनक जान पड़े जैसे,—वाह क्या मनहूस सूरत है ! ३. सुस्त । आलसी । निकम्मा ।

मनहूसियत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मनहूस**] दे० 'मनहूसी' ।

मनहूसी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मन्हूस + ई**] उदासी । उदासीनता । विराग [को०] ।

मना[1]—वि० [अ० **मन्अ**] १. जिसके संबंध में निषेध हो । निषिद्ध । वर्जित । जैसे —मनु जी के धर्मशास्त्र में पासा खेलना मना है । २. जो कुछ करने से रोका गया हो । वारण किया हुआ ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल विधेय रूप में होता है । जैसे,—'यह काम मना है' । यह नहीं कहते 'मना काम न करना चाहिए ।'

३. अनुचित । नामुनासिब ।

मना[2]—संज्ञा पुं० रोक । निषेध । वारण ।

मनाई[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **मनाही**] दे० 'मनाही' ।

मनाक्—वि० [सं०] १. अल्प । थोड़ा । २. मंद ।

यौ० - **मनाक्कर** । **मनाक्प्रिय** ।

मनाक(पु)—वि० [सं० **मनाक्**] अल्प । थोड़ा । जरा सा । उ०—(क) टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से ते नाक बिनु भए भृगुनायक पलक में ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दाहिनों दियो पिनाकु सहमि भयो मनाकु महाव्याल विकल विलोकि जनु जरी है ।—तुलसी (शब्द०) ।

मनाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी ।

मनाक्कर—वि० [सं०] कुछ भी काम न करनेवाला । मट्ठर । सुस्त । काहिल [को०] ।

मनाक्प्रिय—वि० [सं०] बहुत कम प्रिय । अल्पप्रिय [को०] ।

मनाग—वि० [सं० **मनाग्**] दे० 'मनाक' । उ०—अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मनादी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुनादी' ।

मनाना—क्रि० स० [हिं० **मानना का प्रे० रूप**] १. दूसरे को मानने पर उद्यत करना । यह कहलवाना कि हाँ कोई बात ऐसी ही है । स्वीकार कराना । सकरवाना । २. जो अप्रसन्न हो, उसे संतुष्ट या अनुकूल करना । रूठे हुए को प्रसन्न करना । राजी करना । जैसे,—वह रूठा था, हमने मना लिया । उ०—(क) सो सुकृती सुचि मंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै ।

सुर तीरथ ताहि मनावन आवत पावन होत है तात न छ्वै ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मोहिं तुम्हैं न उन्हैं न इन्हें मनभावती सो न मनावन आइहै ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. अप्रसन्न को प्रसन्न करने के लिये अनुनय विनय करना । रूठे हुए को प्रसन्न क ने के लिये मीठी मीठी बातें करना । मनुहार करना । उ०—(क) जैसे आव तैसे साधि सौंहनि मनाइ लाई तुम इक मेरी बात एती बिसरैयो ना ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) केतो मनावैं पाउँ परि केतो मनावैं रोइ । हिंदू पूजैं देवता तुरुक न काहुक होइ ।—कबीर (शब्द०) । (ग) लाज कियो जो पिय नहिं पाऊँ । तजों लाज कर जोरि मनाऊँ —जायसी (शब्द०) । ४. देवता आदि से किसी काम के होने के लिये प्रार्थना करना । उ० (क) यह कहि कहि देवता मनावति । भोग समग्री धरति उठावति ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुकृति सुमिरि मनाइ पितर सुर सीस ईस पद नाइ कै । रघुबर कर धनुभंग चहत सब आपनौ सो हित चित लाइ कै ।—तुलसी (शब्द०) । ५. प्रार्थना करना । स्तुति करना । (क) तुम सब सिद्ध मनावहु, होइ गणेश सिध लेहु । चेला को न चलावै मिलै गुरू जेहि भेउ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) ताके युग पद कमल मनाऊँ । जासु कृपा निरमल मति पाऊँ ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) करी प्रतिज्ञा कहेउ भीष्म मुख पुनि पुनि देव मनाऊँ ।—सूर (शब्द०) ।

मनायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मनावी' [को०] ।

मनार—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'मीनार' ।

मनारा—संज्ञा पुं० [अ० मनारह्] दे० 'मनार' [को०] ।

मनाल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चकोर जो शिमले की ओर होता है । इसके सुंदर परों के लिये इसका शिकार किया जाता है ।

मनाल[2]—संज्ञा पुं० [अ०] धन संपत्ति । रकम । जायदाद [को०] ।

मनावंछत(पु)†—वि० [सं० मनोवाच्छित] दे० 'मनोवांछित' । उ०—विकट पूरूँ मनावंछत गहर गुण गाजै ।—रघु० रू०, पृ० १५० ।

मनावन†—संज्ञा पुं० [हिं० मनाना] १. मनाने की क्रिया । उ०—फूलनि माल बनावन लाल पहिरि पहिरावन । सुभग सरोज सुधावन जोत मनोज मनावन ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८ । २. रूठे हुए को प्रसन्न करने का काम । ३. मनाने का भाव ।

मनावी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनु की स्त्री का नाम ।

मनाही—संज्ञा स्त्री० [अ० मन्ही का बहु व०, अथवा हिं० मना] न करने की आज्ञा । रोक । अवरोध । निषेध । उ०—मुकर्रर तादाद से जियादा जमीन, गाय, बैल, बकरी रखने की मनाही थी ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

मनि—संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] दे० मणि । उ०—बिच बिच छहरति मनो बूंद मुक्ता मनि पोहति ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२ ।

मनिका†—संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] माला में पिरोया हुआ दाना । गुरिया । दाना । उ०—माला फेरत युग गया गया न मन का फेर । करका मनिका छोड़िकै मन का मनिका फेर ।—कबीर (शब्द०) ।

मनिख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मानुख' । उ०—मनमुखि मनिख भूत पशु गुरुमुख्य ज्ञाता देव । रज्जब०, पृ० ८ ।

मनित—वि० [सं०] ज्ञात । जाना हुआ ।

मनिधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मणिधर] दे० 'मणिधर' ।

मनियर‡—संज्ञा पुं० [सं० मणिधर, प्रा० मणियर] १. दे० 'मणिधर' । २. वह जो मणि के समान दीप्तोज्ज्वल हो ।

मनिया—संज्ञा स्त्री० [सं० माणिक्य, हिं० मनिका] १. गुरिया । मनिका । दाना जो माला में पिरोया हो । २. कंठा । गुरिया । माला । उ०—हौं करि रही कंठ में मनियां निर्गुन कहा रसहि ते काज । सूरदास सरगुन मिलि मोहन रोम रोम सुख साज । सूर (शब्द०) ।

मनियार(पु)† - वि० [हिं० मणि + आर (प्रत्य०)] १. देदीप्यमान । उज्वल । चमकीला । उ०—प्रथमहि दीप अमर मनियारा । तहवाँ मूल सुरति बैठारा ।—कबीर सा०, पृ० ६३६ । २. दर्शनीय । शोभायुक्त । स्वच्छ । रौनकदार । सुहावना । उ०—बन कुसुमित गिर गन मनियारा । स्रवहि सकल सरितामृत धारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मनिष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] दे० 'मनुष्य' । उ०—जिन रथी मद्धि उठे असुर धपै ज्वाल तिन मुष बिषय । नर भषय जहाँ लसकर सहर मिलै मनिष तेते भषय ।—पृ० रा०, १।५११ ।

मनिसार(पु)—वि० [सं० मणि + हिं० सार (प्रत्य०)] मणि के समान । देदीप्यमान । मनियार । उ०—पुरुष अमान अजर मनिसारा ।—कबीर सा०, पृ० ६२ ।

मनिहार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मणिकार, प्रा० मनियार] [स्त्री० मनिहारिन] चूड़ी बनानेवाला चुड़िहारा जो स्त्रियों को चूड़ियां पहनाता है ।

मनिहार(पु)[2]—वि० [हिं० मणि + हार (प्रत्य०)] देदीप्यमान । दर्शनीय । मनियार । मनोहर । उ०—नैन रसाल बदन मनिहारा ।—कबीर सा०, पृ० १६०४ ।

मनिहारिन - संज्ञा स्त्री० [हिं० मनिहारा] चूड़ी बनाने, बेचने और पहनानेवाली स्त्री । चुड़िहारिन ।

यौ०—मनिहारिन लीला=श्रीकृष्ण की एक लीला जिसमें वे मनिहारिन का वेश बनाकर राधा को चूड़ी पहनाने जाया करते थे ।

मनी(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०। तुल० हिं० मान (= अभिमान)] अहंकार । उ०—(क) होये भलो ऐसे ही अजहुँ गए राम सरन परिहरि मनी । भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मति समान जाके मनी नैकि न आवत पास । रसनिधि भावक करत है ताही मन में बास ।—रसनिधि (शब्द०) ।

मनी[2]—वि० घमंडी । अभिमानी । उ०—मनी मारे गर्व गाफिल बेमेहर बेपीर बे ।—रै० बानी, पृ० ३२ ।

मनी[3]—संज्ञा स्त्री० [अ०] धातु । शुक्र । वीर्य ।

मनी⑤४— संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] दे० 'मणि'। दे० 'मणि'

मनी५—संज्ञा पुं० [अं०] रुपया पैसा। सिक्का।

मनीआर्डर—संज्ञा पुं० [अं०] रुपए की हुंडी जो किसी के रुपया चुकाने पर एक डाकखाने से दूसरे डाकखाने में इसलिये भेजी जाती है कि वह वहाँ के किसी मनुष्य को हुंडी में लिखी रकम चुका दे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया प्रायः लोग इसी प्रकार डाकखाने की मारफत भेजा करते हैं।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—जाना। भेजना। —लगाना।

मनीक—संज्ञा पुं० [सं०] आँजन।

मनीजर—संज्ञा पुं० [अं० मैनेजर] व्यवस्थापक। प्रबंधक। उ०—कोऊ मनीजर सरकारी रखि काम चलावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १४।

मनीबैग—संज्ञा पुं० [अं०] चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का छोटा बटुआ जिसके अंदर कई खाने होते हैं जिनमें रुपए, रेजगी आदि रखते हैं।

मनीमन†—क्रि० वि० [हिं० मन+ही+मन] मन ही मन। मन में। बिना बोले। उ०—मनीमन में ईश्वर को धन्यवाद देता। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४९।

मनीर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोरनी।

मनीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। अकल। २. स्तुति। प्रशंसा। ३. आकांक्षा। इच्छा (को०)।

मनीषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। मनीषा। २. इच्छा (को०)।

मनीषित—वि० [सं०] मनोभिलषित। वांछित।

मनीषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धिमत्ता। बुद्धिमानी।

मनीषी१—वि० [सं० मनीषिन्] १. पंडित। ज्ञानी। विद्वान्। २. बुद्धिमान्। मेधावी। अकलमंद। चतुर। ३. स्तुति करनेवाला (को०)।

मनीषी२—संज्ञा पुं० १. विद्वान् व्यक्ति। पंडित। ज्ञानी पुरुष। २. वह जो स्तुति या स्तवन करता हो [को०]।

मनु१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा के पुत्र जो मनुष्यों के मूल पुरुष माने जाते हैं।

विशेष—वेदों में मनु को यज्ञों का आदिप्रवर्तक लिखा है। ऋग्वेद में कण्व और अत्रि को यज्ञप्रवर्तन में मनु का सहायक लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि मनु एक बार जलाशय में हाथ धोते थे; उसी समय उनके हाथ में एक छोटी सी मछली आई। उसने मनु से अपनी रक्षा की प्रार्थना की और कहा कि आप मेरी रक्षा कीजिए; मैं आपकी भी रक्षा करूँगी। उसने मनु से एक आनेवाली बाढ़ की बात कही और उन्हें एक नाव बनाने के लिये कहा। मनु ने उस मछली की रक्षा की; पर वह मछली थोड़े ही दिनों में बहुत बड़ी हो गई। जब बाढ़ आई, मनु अपनी नाव पर बैठकर पानी पर चले और अपनी नाव उस मछली की आड़ में बाँध दी। मछली उत्तर को चली और हिमालय पर्वत की चोटी पर उनकी नाव उसने पहुँचा दी। वहाँ मनु ने अपनी नाव बाँध दी। उस बड़े ओघ से अकेले मनु ही बचे थे। उन्हीं से फिर मनुष्य जाति की वृद्धि हुई। ऐतरेय ब्राह्मण में मनु के अपने पुत्रों में अपनी संपत्ति का विभाग करने का वर्णन मिलता है। उसमें यह भी लिखा है कि उन्होंने नाभानेदिष्ठ को अपनी संपत्ति का भागी नहीं बनाया था। निघंटु में 'मनु' शब्द का पाठ द्युस्थान देवगणों में है और वाजसनेय संहिता में मनु को प्रजापति लिखा है। पुराणों और सूर्यसिद्धांत आदि ज्योतिष के ग्रंथों के अनुसार एक कल्प में चौदह मनुओं का अधिकार होता है और उनके उस अधिकारकाल को मन्वंतर कहते हैं। चौदह मनुओं के नाम ये हैं—(१) स्वायंभू। (२) स्वारोचिष्। (३) उत्तम। (४) तामस। (५) रवत। (६) चाक्षुष। (७) वैवस्वत। (८) सावर्णि। (९) दक्षसावर्णि। (१०) ब्रह्मसावर्णि। (११) धर्मसावर्णि। (१२) रुद्रसावर्णि। (१३) देवसावर्णि और (१४) इंद्रसावर्णि। वर्तमान मन्वंतर वैवस्वत मनु का है। मनुस्मृति में मनु को विराट् का पुत्र लिखा है और मनु से दस प्रजापतियों की उत्पत्ति लिखी है।

२. विष्णु। ३. अंतःकरण। मन। ४. जैनियों के अनुसार एक जिन का नाम। ५. कृष्णाश्व के एक पुत्र का नाम। ६. मंत्र। ७. वैवस्वत मनु। ८. अग्नि। ९. एक रुद्र का नाम। १०. १४ की संख्या। ११. ब्रह्मा।

मनु२—संज्ञा स्त्री० १. मनु की स्त्री। मनावी। २. बनमेथी का साग। पृक्का।

मनु३—अव्य० [हिं० मानना] मानों। जैसे। उ०—(क) रतन जड़ित कंकण बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहै। डार डार मनु मदन विटप तरु विकच देखि मन मोहै।—सूर (शब्द०)। (ख) मोर मुकुट की चंद्रकन यों राजत नंदनंद। मनु ससि सेखर की अकस किए सिखर सत चंद।—बिहारी (शब्द०)।

मनुआँ१—संज्ञा पुं० [हिं० मन] मन। उ०—(क) मनुआ चाह देख औ भोगू। पंथ भुलाइ विनासै जोगू।—जायसी (शब्द०)। (ख) चंचल मनुआ दुहुदिसि धावत अचल जाहि ठहराना। कहु नानक यहि विधि को जो नर मुक्ति ताहि तुम माना।—तेगबहादुर (शब्द०)।

मनुआँ२—संज्ञा पुं० [हिं० मानव] मनुष्य। उ०—खाय पकाय लुटाय ले ऐ मनुआँ मजवान। लेना होय सो लेइ ले यही गोइ मैदान।—कबीर (शब्द०)।

मनुआँ३—संज्ञा पुं० [देश०] देवं कपास। नरमा मनवाँ।

मनुक्ख⑤†—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] मनुष्य। मानव। मनुज। चारहु लाख मनुक्खा देही। लख चौरासी यह सुनि लेही।—सहजो०, पृ० ३६।

मनुख⑤—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] मनुज। मानव। मानुख। उ०—लख चौरासी भरमि, मनुख तन पाइल हो।—धरम०, पृ० ६४।

मनुग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत के पौत्र और द्युतिमान् के पुत्र का नाम।

मनुछय(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] दे० 'मनुष्य'। उ०—चित्रनहारे चित्रि तूँ रे चतुरंगी नाह। का चहुआन सु किति कवि मन मनुछय हरि लाह।—पृ० रा०, १। ७६६।

मनुज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मनुजा, मनुजी] मनुष्य। आदमी।

मनुजता—संज्ञा स्त्री० [सं० मनुज+ता (प्रत्य०)] मनुष्यता। मानवता।

मनुजत्व—संज्ञा पुं० [सं० मनुज+त्व (प्रत्य०)] मनुष्यत्व। मानवता।

मनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानवी। स्त्री [को०]।

मनुजात[1]—वि० [सं०] मनु से उत्पन्न।

मनुजात[2]—संज्ञा पुं० मनुष्य। आदमी।

मनुजाद[1]—वि० [सं०] नरभक्षक। मनुष्यों को खानेवाला।

मनुजाद[2]—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। उ०—(क) चिन्न बैताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग भोगौघ वृश्चिक विकारम्।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८९। (ख) मान है अपमान को मनुजाद तू जब तक न कर।—बेला, पृ० ६८।

मनुजाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। मनुष्यों का अधिप। उ०—याहि न मारि देखि दसि मेरी। हौ अनुजा मनुजाधिप तेरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

मनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० मनुजेन्द्र] राजा [को०]।

मनुजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०]।

मनुजोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ मनुष्य। उत्तम पुरुष।

मनुज्येष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार। २. लाठी।

मनुयुग—संज्ञा पुं० [सं०] मन्वंतर।

मनुवाँ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मन] मन। उ०—मनुवाँ चहै दरब औ भोगू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२२।

मनुश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मनुष—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] १. मनुष्य। आदमी। उ०—कह्यौ तिन तुम्हें हम मनुष जानत नहीं जगतपितु जगतहित देह धारचो करोगे काज जो कियो ना कोउ नृपति किए जस जाय हम दोष सारो।—सूर (शब्द०)। २. पति। खाविंद। उ०—माष मोर मनुष है अति सुजान। धंधा कूटि कूटि करै बिहान।—कबीर (शब्द०)।

मनुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री।

मनुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] जरायुज जाति का एक स्तनपायी प्राणी जो अपने मस्तिष्क या बुद्धिबल की अधिकता के कारण सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। आदमी। नर।

विशेष—मनुष्य महाभूत कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में सृष्टि के आदि में प्रायः सब जीव जंतुओं की उत्पत्ति एक साथ बताई गई है। पर आधुनिक प्राणिविज्ञान के अनुसार मूल अणुजीवों से क्रमशः उन्नति प्राप्त करते हुए एक के पीछे दूसरे उन्नत जीव होते गए हैं। जैसे बिना रीढ़वाले जीवों से रीढ़वाले अंडज जीव हुए। फिर उन्हीं से जरायुज हुए। जरायुजों में सबके पीछे किपुरुष वर्ग के बंदर या वनमानुस हुए। वनमानुसों से होते होते अंत में मनुष्य हुए। वैज्ञानिकों ने मनुष्य को पाँच प्रधान जातियों में बाँटा है (१) काकेशी, जिसके अंतर्गत आर्य और असुर (सामी) हैं। (२) मंगोल, चीन, जापान आदि के पीले लोग। (३) हब्शी। (४) अमेरिकन। और (५) मलाया।

पर्या०—मानुष। मनुज। मानव। नर। द्विपद। पुमान्। पंचजन। पुरुष। पूरुष।

मनुष्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषकार। उद्योग। प्रयत्न।

मनुष्यकृत—वि० [सं०] मनुष्य द्वारा बनाया हुआ। मानवकृत। २. कृत्रिम; जो प्राकृतिक न हो [को०]।

मनुष्यगणना—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य+गणना] दे० 'मर्दुमशुमारी'।

मनुष्यगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य बार बार मरकर मनुष्य का ही जन्म पाता है। ऐसे कर्म परस्त्रीगमन, मांसभक्षण, चोरी आदि बतलाए गए हैं।

मनुष्यजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानव जाति। मानव समुदाय [को०]।

मनुष्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनुष्य का भाव। आदमीपन। २. दया भाव। चित्त की कोमलता। शील। ३. सभ्यता। शिष्टता। व्यवहार ज्ञान। तमीज। आदमीयत।

मनुष्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यता। आदमीयत। उ०—मनुष्यत्व का सत्व तत्व यों किसने समझा बूझा है।—साकेत, पृ० ३७१।

मनुष्यधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्यधर्मन्] कुबेर।

मनुष्ययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि अभ्यागत का आदर संमान। अतिथियज्ञ। नृयज्ञ।

मनुष्ययान—संज्ञा पुं० [सं०] पालकी [को०]।

मनुष्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जिसे मनुष्य खींचते हैं। नररथ।

मनुष्यराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या राशि।

मनुष्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] मर्त्यलोक। भूलोक।

मनुष्यहार—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य का अपहरण या चोरी [को०]।

मनुष्यहारी—वि० [सं० मनुष्यहारिन्] मनुष्य को चुरानेवाला [को०]।

मनुष्येतर—वि० [सं०] मनुष्य से भिन्न। मानव से भिन्न। उ०—मनुष्येतर बाह्य प्रकृति का आलंबन के रूप में ग्रहण...पाया जाता है।—रस०, पृ० ९।

मनुसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मनुस्मृति'।

मनुसाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० मनुष्य+आई] १. पुरुषार्थ। पराक्रम। बहादुरी। उ०—(क) साखामृग के बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो अस करउँ न तदपि बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहि मनुसाई।—तुलसी (शब्द०)। २. मनुष्यता। आदमीयत।

मनुसाना—क्रि० अ० [सं० मनुष्य+हिं० आना (प्रत्य०)] मनुष्य का भाव जगना। मनुष्य होने का भाव उत्पन्न होना।

मनुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र के एक प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम जो मनुप्रणीत है। मनुसंहिता। मानव धर्मशास्त्र।

विशेष—कहा जाता है, पहले मनुस्मृति में एक लाख श्लोक थे। फिर उसका संक्षेप १२ हजार श्लोकों में किया गया और अंत में उसका संक्षेप चार हजार श्लोकों में किया गया। आजकल की मनुस्मृति में ढाई हजार से कुछ ही अधिक श्लोक मिलते हैं। यह भृगुप्रोक्त कहलाती है और इसमें बारह अध्याय हैं। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, संस्कार, नित्य और नैमित्तिक कर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म, वर्णधर्म, प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त एक नारदप्रोक्त मनुसंहिता का भी पता चलता है; पर वह पूरी नहीं मिलती।

मनुहर(पु)—वि० [सं० **मनोहर**] दे० 'मनोहर'। उ०—मनुहरि कटि-थल मेखला, पग झाझर झणकार।—ढोला०, दू० ४८१।

मनुहार[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मान + हरना**] १. वह विनती जो किसी का मान छुड़ाने या क्रोध शांत करके उसे प्रसन्न करने के लिये की जाती है। मनौआ। खुशामद। उ०—मारौ मनुहारन भरी गारिउ भरी मिठाहिं। वाको अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—**किसी को मनुहार कराना**=विनती करना। खुशामद करना। मनाना। उ०—(क) तुम्हरे हेतु हरि लियो अवतार। अब तुम जाइ करो मनुहार।—सूर (शब्द०)। (ख) दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर षयकारी। क्यों सौंपेउ सारंग हारि हिय करिहै बहु मनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कहत रुद्र मन माहिं विचारि। अब हरि की कीजै मनुहारि।—लल्लू (शब्द०)। (घ) जो मेरो कृत मानहु मोहन करि लाग्रों मनुहारि। सूर रसिक तबही पै बदिहौं मुरली सकी न सँभारि।—सूर (शब्द०)। २. विनय। प्रार्थना। उ०—(क) तापसी करि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि। बहुरि तेहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सबै करति मनुहारि ऊधो कहियो हो जैसे गोकुल आवैं।—सूर (शब्द०)। ३. सत्कार। आदर। उ०—सौंहें किए हू न सौं हैं करे मनुहार करेहू न सूध निहारे।—केशव (शब्द०)।

मनुहार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मन + हरना**] शांति। तृप्ति। उ०—कुरला काम केरि मनुहारी। कुरला जेहि नहि सो न सुनारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १४०।

मनुहारना(पु)—क्रि० स० [हिं० **मान + हारना**] १. मनाना। खुशामद करना। उ०—(क) पूजा करेउ बहुत मनुहारी। बोले मीठे बचन बिचारी।—सबलसिंह (शब्द०)। (ख) कै पटुता परवीन तिया मनुहारि सुबाल कहै मन माने।—प्रताप (शब्द०)। २. विनय करना। प्रार्थना करना। उ०—निग्रहा-नुग्रह जो करे अरु देइ आशिष गारि। सो सबै सिर मान लीजै सर्वथा मनुहारि।—केशव (शब्द०)। ३. सत्कार करना। आदर करना। उ०—सुरभी ऐन कुंभ सम धारै। नंदिनि धेनु सरिस मनुहारै।—मन्नालाल (शब्द०)। ४. खुशामद करना।

मनुहारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मनुहार'। उ०—करत लाल मनुहारि, पै तू न लखति इहि ओर।—मति० ग्रं०, पृ० ४०८।

मनुहारी(पु)—सं० स्त्री० [हिं० **मनुहार**] दे० 'मनुहार'। उ०—तुम न बिहारी नेकु मानो मनुहारी हम पायँ परि हारो अरु करि हारी नहियाँ।—तोष (शब्द०)।

मनूँ(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'मानों'। उ०—चंड तेज मनूँ ऊगंत सूर।—ह० रासो०, पृ० ६१।

मनूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुनौवर**] एक प्रकार की बुकनी जो मुरादाबादी कलई के बर्तनों को उजला करने में काम आती है। यह धातुओं को गलाने की पुरानी घरियों को कूटकर बनाई जाती है।

मने†—वि० [अ० **मनअ**, हिं० **मना**] दे० 'मना'। उ०—(क) जानि नाम अजान लीन्हे नरक जमपुर मने।—तुलसी (शब्द०)। (ख) शिव सुपूजन माँह मने करे। मनहु सो अपकीरति सों भरे।—गुमान (शब्द०)।

मनेजर—संज्ञा पुं० [अं० **मैनेजर**] किसी कार्यालय आदि का वह प्रधान अधिकारी जिसका काम सब प्रकार की व्यवस्था और देख रेख करना हो। प्रबंधकर्ता।

मनो†—अव्य [हिं० **मानना**] मानो। जैसे। उ०—(क) मनो सर्व स्त्रीन में कामवामा। हनूमान ऐसी लखी रामरामा।—केशव (शब्द०)। (ख) मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान। धस्यो मनो हिय घर समर ड्योढ़ी लसत निसान।—बिहारी (शब्द०)।

मनोकामना—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मन + कामना**] इच्छा। अभिलाषा।

मनोगत[1]—वि० [सं०] १. जो मन में हो। मन में आया हुआ। दिली। २. इच्छित।

मनोगत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. आकांक्षा। इच्छा (को०)। ३. विचार (को०)।

मनोगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन की गति। चित्तवृत्ति। उ०—तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौन के गौन हुँ ते बढ़ि जाते।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७। २. इच्छा। आंतरिक अभीष्ट। खाहिश। उ०—किंतु विधिना को यही मनोगति थी।—दुर्गेशनंदिनी (शब्द०)।

मनोगवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा।

मनोगुप्त—वि० [सं०] मन में छिपाया हुआ। अव्यक्त (विचार आदि)।

मनोगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

मनोगृहीत—वि० [सं० **मनः + गृहीत**] मन में गृहीत या ग्रहण किया हुआ।

मनोगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार मन को अशुभ प्रवृत्ति से हटाने की क्रिया या भाव।

मनोग्राही—वि० [सं० **मनः + ग्राहिन्**] मन को ग्रहण करनेवाला। मन को अपनी ओर खींचनेवाला। आकर्षक।

मनोग्राह्य—वि० [सं०] जो मन या चित्त द्वारा ग्रहण हो सके। मन द्वारा ग्रहण के योग्य [को०]।

मनोज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। मदन। उ०—जय सच्चिदानंद जग-पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन। —तुलसी (शब्द०)।
यौ०—**मनोज पंचमी** = माघ शुक्ल पंचमी। बसंत पंचमी। उ०—आजु मनोज पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ेए हिलमिलि आनंदघन बरसैए।—घनानंद, पृ० ३९२।

मनोजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० **मनोजन्मन्**] दे० 'मनोज' [को०]।

मनोजव[1]—वि० [सं० **मनोजवस्**] [वि० स्त्री० **मनोजवा**] १. मन के समान वेगवान्। अत्यंत वेगवान्। २. पितृतुल्य।

मनोजव[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. अनिल या वायु के एक पुत्र का नाम जो उसकी शिवा नाम की पत्नी से उत्पन्न हुआ था। ३. रुद्र के एक पुत्र का नाम। ४. एक तीर्थ का नाम। ५. छठे मन्वंतर में होनेवाले इंद्र का नाम।

मनोजवस—वि० [सं०] दे० 'मनोजव[1]' [को०]।

मनोजवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलिहारी। करियारी। २. मार्कंडेय पुराणानुसार अग्नि की एक जिह्वा का नाम। ३. स्कंद की माता का नाम। ४. क्रौंच द्वीप की एक नदी का नाम।

मनोजवी—वि० [सं० **मनोजविन्**] मनोजव। अति वेगवान्। बहुत तेज चलनेवाला।

मनोजवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामवृद्धि नामक क्षुप। इसे कर्णाट में कामज कहते हैं।

मनोजीवी—वि० [सं० **मनस्** + **जीवी**] बुद्धिजीवी। उ०—वनजीवी, पशुजीवी मनुज, मनोजीवी तब नहीं बना था।—युगपथ, पृ० १२४।

मनोज्ञ[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मनोज्ञा**] मनोहर। सुंदर।

मनोज्ञ[2]—संज्ञा पुं० १. कुंद नामक फूल। २. एक गंधर्व का नाम (को०)। ३. सरल का वृक्ष (को०)।

मनोज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता। मनोहरता। खूबसूरती।

मनोज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलौंजी। मँगरैला। २. जावित्री। ३. मदिरा। शराब। ४. बाँझ ककोड़ा। आवर्तकी। ५. मनःशिला। मैनसिल (को०)। ६. राजपुत्री। राज-कुमारी (को०)।

मनोदंड—संज्ञा पुं० [सं० **मनोदण्ड**] मन की वृत्तियों का निरोध। चित्त को चंचलता से रोककर एकाग्र करना। मन का निग्रह।

मनोदत्त—वि० [सं०] १. मन द्वारा दिया हुआ वा संकल्पित। २. दत्तचित्त। विचारमग्न (को०)।

मनोदाह—संज्ञा पुं० [सं०] मनस्ताप। मानसिक जलन। आंतरिक कष्ट। उ०—जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा औ मनोदाह से क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर जनगण चीत्कार कर रहे।—युगपथ, पृ० १२०।

मनोदाही—वि० [सं० **मनोदाहिन्**] [वि० स्त्री० **मनोदाहिनी**] मन को जलानेवाली। हृदयदाही।

मनोदुष्ट—वि० [सं०] जिसका मन दूषित हो। जो मन ही से पापी हो। जिसका अंतःकरण कलुषित हो। दुष्ट या खराब हृदयवाला।

मनोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० **मनः** + **दृष्टि**] आंतरिक दृष्टि। मानसिक दृष्टि। उ०—सौंदर्य उसकी मनोदृष्टि का एक व्यापार मात्र है।—स० दर्शन, पृ० ६९।

मनोदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] अंतरात्मा। विवेक।

मनोध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

मनोनयन—संज्ञा पुं० [सं०] चुनाव। चुनना। पसंद करना।

मनोनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की वृत्तियों का निरोध। मन का निग्रह। मन का वश में रखना। मनोगुप्ति।

मनोनियोग—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्** + **नियोग**] एकाग्रता। उ०—हम दोनों एक दूसरे के आवेष्ट हैं और अनिवार्य, अटल मनो-नियोग से एक दूसरे का पीछा कर रहे हैं।—चिंता, पृ० ५६।

मनोनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० **मनः** + **निवेश**] एकाग्रता। मनोयोग। उ०—उसने देखा कि महामंत्री बड़े कुतूहल और मनोनिवेश से कुलपुत्रों का परिचय सुन रहा है।—इंद्र०, पृ० १३१।

मनोनीत—वि० [सं०] १. जो मन के अनुकूल हो। पसंद। २. चुना हुआ।

मनोबल—संज्ञा पुं० [सं० **मनः** + **बल**] आत्मिक शक्ति। मानसिक शक्ति या बल। उ०—लिच्छिवी कुमारी में इतना मनोबल कहाँ कि वह यों अड़ जाती।—अजात०, पृ० ३३।

मनोभंग—संज्ञा पुं० [सं० **मनोभङ्ग**] १. नैराश्य। २. उदासी।

मनोभव—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—जागै मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।—मानस, १।८६।

मनोभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मन की स्थिति। मनोवृत्ति। २. मन का भाव। हार्दिक अभिप्राय। उ०—नीना मनोरमा के मनोभावों को जानती थी। उसने सोचा इस अबला को कितना दुःख है!—काया०, पृ० २५६।

मनोभावना—संज्ञा पुं० [सं० **मनो** + **भावना**] दे० 'मनोभाव'। उ०—उनके नाटकों में घटनाओं के आकर्षण की अपेक्षा चरित्रों की विविधता और उनकी मनोभावनाओं का उन्मेष और प्रदर्शन अधिक है।—नया०, पृ० १५७।

मनोभिराम—वि० [सं०] मनोज्ञ। सुंदर।

मनोभिलाष—संज्ञा पुं० [सं०] मन की इच्छा। मनोकामना [को०]।

मनोभू—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। मदन।

मनोभूत—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरम्।—तुलसी (शब्द०)।

मनोमथन—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव।

मनोमय—वि० [सं०] मनोरूप। मानसिक।

मनोमय कोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत शास्त्रानुसार पाँच कोशों

में से तीसरा कोश। मन, अहंकार और कर्मेंद्रियाँ इस कोश के अंतर्गत मानी जाती हैं। इसे बौद्ध दर्शन में 'संज्ञा स्कंध' कहते कहते हैं। उ०—मनोमय कोश पंच कर्म इंद्रिय प्रसिधि पंच ज्ञान इंद्रिय विज्ञान कोश जानिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५९८।

मनोमालिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] मन में मैल उत्पन्न होना। मनमुटाव। उ०—केदार बाबू तो बहुत सच्चरित जान पड़ते हैं फिर स्त्री पुरुष में इतना मनोमालिन्य क्यों हो गया ?—मान०, भा० १, पृ० ९८।

मनोमुखी—वि० [सं० **मनस् + मुख + ई** (प्रत्य०)] अंतर्मुखी। आभ्यंतर जगत् में विचरण करनेवाला। उ०—मनोमुखी है काया। शुभे! आज शुभ दिन ही आया।—कुणाल०, पृ० ४६।

मनोमोहिनी—वि० [सं० **मनस् + मोहिनी**] मन को मोहित करनेवाली। उ०—तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया।—अपरा, पृ० ७१।

मनोयायी—वि० [सं० **मनोयायिन्**] १. अपनी इच्छा या मौज से जानेवाला। २. मन की तरह तेज [को०]।

मनोयोग—संज्ञा पुं० [सं०] मन को एकाग्र करके किसी एक पदार्थ पर लगाना। चित्त की वृत्ति का निरोध करके एकाग्र करना और उसे एक पदार्थ पर लगाना। उ०—विजय की सामग्री बड़े मनोयोग से हैंडबेग में सजा रही थी।—कंकाल, पृ० ९२।

मनोयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनोरंजक—वि० [सं० **मनोरञ्जक**] मन को प्रसन्न या आह्लादित करनेवाला [को०]।

मनोरंजन[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मनोरञ्जन**] [वि० **मनोरंजक, मनोरंजनीय**] १. मन को प्रसन्न करने की क्रिया या भाव। मन का संप्रसादन। मनोविनोद। दिल बहलाव। उ०—मनोरंजन वह शक्ति है जिससे कविता अपना प्रभाव जमाने के लिये मनुष्य की चित्तवृत्ति को स्थिर किए रहती है, उसे इधर उधर जाने नहीं देती।—रस०, पृ० २६। २. एक बँगला मिठाई का नाम।

मनोरंजन[२]—वि० [वि० स्त्री० **मनोरंजिनी**] दे० 'मनोरंजक'। उ०—तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा।—अपरा पृ० ७०।

मनोरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा। वांछा। इच्छा। उ०—(क) करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके।—मानस, २। २२५। (ख) वंस मनोरथ पिय मिले घट भया उजारा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७२।

मनोरथतृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जो चैत्र शुक्ल तृतीया को होता है।

मनोरथदायक[१]—वि० [सं०] इच्छा पूरी करनेवाला [को०]।

मनोरथदायक[२]—संज्ञा पुं० कल्पतरु का नाम।

मनोरथद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जो चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन पड़ता है।

मनोरथसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा पूरी होना। इच्छा की पूर्ति होना [को०]।

मनोरना†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास।

मनोरम[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मनोरमा**] मनोज्ञ। मनोहर। सुंदर।

मनोरम—संज्ञा पुं० सखी छंद के एक भेद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती हैं और ५, ४ और ५ पर विराम होता है। इसका मात्राक्रम २+३+२+२+३+२ है और तीसरी तथा दूसरी मात्रा सदा लघु होती है। जैसे,—जानकी नाथै, भजो रे। और सब धंधा तजो रे। सार है जग में जू येही। की प्रभु सों जन सनेही।

मनोरमण—वि० [सं० **मनस् + रमण**] जिसमें मन रमण करे। जो मन में रमे। उ०—देखा है, प्रात किरण फूटी हैं मनोरमण।—अर्चना, पृ० ६।

मनोरमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोरोचन। २. सात सरस्वतियों में से चौथी का नाम। ३. बौद्ध धर्मानुसार बुद्ध की एक शक्ति का नाम। ४. छंदोमंजरी के अनुसार एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दस वर्ण होते हैं जिनमें पहला, दूसरा, तीसरा, सातवाँ और नवाँ वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं। ५. महाकवि चंद्रशेखर के अनुसार आर्या के ५७ भेदों में एक जिसमें १२ गुरु और ३३ लघु वर्ण होते हैं। ६. दस अक्षर के एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, रगण और अंत में गुरु होता है। जैसे,—लहत मुक्ति पाप हो क्षमा। ७. केशव के मतानुसार चौदह अक्षरों का एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक पाद में ४ सगण और अंत में दो लघु होते हैं। जैसे,—यह शासन पठए नृप कानन। ८. केशव के मतानुसार दोधक छंद का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में ४ भगण और दो गुरु होते हैं। ९. सूदन के मतानुसार दस अक्षरों के एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीन तगण और एक गुरु होता है। जैसे,—बीते कुछ घोस ही में जहाँ। १०. मार्कंडेय पुराणानुसार इंदीवर नामक एक गंधर्व की कन्या का नाम।

मनोरवा‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मनोरम**] १. मनोरम। सुंदर। मधुर। २. दे० 'मनोरा'। उ०—ऊठत नाम मनोरवा हो हो संतन कै यह ज्ञान। याहि सुफल जिन्ह जान्यो बाजत अभय निसान।—गुलाल०, पृ० २८।

मनोरा—संज्ञा पुं० [सं० **मनोहर** या **मनोरमा**] दीवार पर गोबर से बनाए हुए चित्र जो कार्तिक के महीने में दीवाली के पीछे बनाए जाते हैं। स्त्रियाँ और लड़कियाँ इन्हें रंग विरंग के फूल पत्तों से सजाती हैं, प्रतिदिन सायंकाल को पूजती हैं और दीपक जलाकर गीत गाती जाती हैं। झिंझिया। लोढ़िया। उ०—जेहि घर पिय सो मनोरा पूजा। मोकहँ बिरह, सवति दुख दूजा।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—**मनोरा झूमक** = एक प्रकार का गीत जिसे स्त्रियाँ फागुन में गाती हैं और जिसके अंत में यह पद (मनोरा झूमक) आता है। उ०—(क) कहूँ मनोरा झूमक होई। कर औ फूल लिए सब कोई। जायसी (शब्द०)। (ख) गोकुल सकल ग्वालिनी हो घर खेलैं फाग, मनोरा झूमक रे।—सूर (शब्द०)।

मनोराग - संज्ञा पुं० [सं०] मन का राग। अनुराग। प्रेम। उ०—तीव्र मनोराग उत्पन्न करने की शक्ति कामायनी में ही है। - बी० श० महा०, पृ० ३१५।

मनोराज - संज्ञा पुं० [सं० **मनोराज्य**] मानसिक कल्पना। मन की कल्पना। उ०—राग को न साज न बिराग जोग जाग जिय, काया नहिं छोड़े देत ठाठिबो कुठाट को। मनोराज करत अकाज भयो आजु लागि, चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।—तुलसी (शब्द०)।

मनराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पनालोक। हवाई किला। ख्याली पुलाव [को०]।

मनोरिया संज्ञा स्त्री० [हिं० **मनोहर या** देश०] एक प्रकार की सिकड़ी की जंजीर जिसकी कड़ियों पर चिकनी चपटी दाल जड़ी रहती है और जिसमें घुँघुरुओं के गुच्छे लगातार बंदनवार की तरह लटकते हैं।

विशेष—यह जंजीर स्त्रियों की साड़ी या ओढ़नी के किनारे पर उस जगह टाँकी जाती जो ओढ़ते समय ठीक सिर पर पड़ता है। घूँघट काढ़ने पर यह जंजीर मुँह और सिर के चारो ओर आ जाती है।

मनोरुक्—संज्ञा पुं० [सं० **मनोरुज्**] हृदय की पीड़ा। मनोव्यथा [को०]।

मनोर्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मनोरथ**] दे० 'मनोरथ'। उ०—सबको मनोर्थ पूर्ण कियौ।—ह० रासो, पृ० ३३।

मनोलय—संज्ञा पुं० [सं०] चेतना का लय या समाप्ति होना। चेतनाशून्यता [को०]।

मनोलौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] मन की लोलुपता। चित्त की चंचलता। सनक [को०]।

मनोल्लास—संज्ञा पुं० [सं० **मनस् + उल्लास**] मन की खुशी। प्रसन्नता। उ०—सारा मनोल्लास आँसुओं के प्रवाह में बह गया, विलीन हो गया।—मान०, भा० १, पृ० ३६।

मनोवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार मेरु पर्वत पर के एक नगर का नाम। २. चित्रांगद विद्याधर की कन्या का नाम।

मनोवर्गणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वे सूक्ष्म तत्व जिनसे मन की रचना हुई है।

मनोवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेयसी। प्रियतमा [को०]।

मनोवांछा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मनोवाञ्छा**] इच्छा। अभिलाषा। आकांक्षा। ख्वाहिश।

मनोवांछित[1]—वि० [सं० **मनोवाञ्छित**] इच्छित। मनमाँगा। यथेच्छ। जैसे,—इससे आपको मनोवांछित फल मिलेगा।

मनोवांछित[2]—संज्ञा पुं० दे० 'मनोवांछा'।

मनोविकार—संज्ञा पुं० [सं०] मन की वह अवस्था जिसमें किसी प्रकार का सुखद या दुःखद भाव, विचार या विकार उत्पन्न होता है। जैसे, राग, द्वेष, क्रोध, दया आदि चित्तवृत्तियाँ। चित्त का विकार।

विशेष—मनोविकार किसी प्रकार के भाव या विचार के कारण होता है और उसके साथ मन का लक्ष्य किसी पदार्थ या बात की ओर होता है। जैसे, किसी को दुखी देखकर दया अथवा अत्याचारी का अत्याचार देखकर क्रोध का उत्पन्न होना। जिस समय कोई मनोविकार उत्पन्न होता है, उस समय कुछ शारीरिक विक्रियाएँ भी होती हैं; रोमांच, स्वेद, कंप आदि। पर ये विक्रियाएँ साधारणतः इतनी सूक्ष्म होती हैं कि दूसरों को दिखाई नहीं देतीं। हाँ, यदि मनोविकार बहुत तीव्र रूप में हो, तो उसके कारण होनेवाली शारीरिक विक्रियाएँ अवश्य ही बहुत स्पष्ट होती हैं और बहुधा मनुष्य की आकृति से ही उसके मनोविकारों का स्वरूप प्रकट हो आता है।

क्रि० प्र०—**उठना**।—**होना**।

मनोविकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मनोविकार' [को०]।

मनोविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें चित्त की वृत्तियों का विवेचन होता है। वह विज्ञान जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि मनुष्य के चित्त में कौन सी वृत्ति कब, क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होती है। चित्त की वृत्तियों की मीमांसा करनेवाला शास्त्र।

यौ०—**मनोविज्ञानवेत्ता** = दे० 'मनोवैज्ञानिक'।

मनोविज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० **मनोविज्ञान + ई** (प्रत्य०)] दे० 'मनोवैज्ञानिक'। उ०—इनमें से (९ भावों में से) हास, उत्साह और निर्वेद को छोड़ शेष सब भाव वे ही हैं जिन्हें आधुनिक मनोविज्ञानियों ने मूल भाव कहा है।—रस०, पृ० १७३।

मनोविनोद - संज्ञा पुं० [सं०] आनंद। मनोरंजन [को०]।

मनोविश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं० **मनःविश्लेषण**] १. मन में उठनेवाले विचारों का विश्लेषण। मन को समझना। २. मनोविज्ञान के अनुसार मन में प्रवहमान विचारों का सूक्ष्म निरीक्षण और उनसे उत्पन्न कारणों को समझना जो मानसिक रोगों को जन्म देते हैं। यह मनोविज्ञान की एक विशेष धारा है।

मनोविश्लेषणवादी—वि० [सं० **मनोविश्लेषण + वादिन्**] मनोविज्ञान की मनोविश्लेषण धारा का अनुयायी। मनोविश्लेषण को माननेवाला। उ०—उन्होंने जहाँ इस यथार्थवाद की महिमा स्वीकार की वहाँ मनोविश्लेषणवादी लेखकों की भर्त्सना की।—इति०, पृ० १२२।

मनोवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की वृत्ति। मनोविकार। विशेष—दे० 'मनोविकार'।

मनोवृत्यात्मक—वि० [सं० **मनोवृत्ति + आत्मक**] मनोवृत्ति से संबंधित। प्रवृत्तिविषयक। उ०—छायावाद की मनोवृत्यात्मक

संश्लिष्टता में व्यक्तित्व की स्थापना है ।—आचार्य०, पृ० २१६ ।

मनोवेग—संज्ञा पुं० [सं०] मन का विकार । मनोविकार ।

यौ०—**मनोवेगमूलक** = मनोवेग से संबंधित । जिसके मूल में मनोवेग हो । उ०—कोई कविता का स्वरूप उसका आनंददायक होना, कोई मनोवेगमूलक होना मानते हैं ।—बी० श० महा०, पृ० ८ ।

मनोवैज्ञानिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मनोविज्ञान का ज्ञाता ।

मनोवैज्ञानिक[2]—वि० मनोविज्ञान संबंधी । मनोविज्ञान का ।

मनोव्यथा—संज्ञा पुं० [सं०] मनस्ताप । मानसिक पीड़ा [को०] ।

मनोव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानसिक रोग या वेदना [को०] ।

मनोव्यापार—संज्ञा पुं० [सं०] मन की क्रिया । मन का व्यापार । संकल्प विकल्प । विचार ।

मनोसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मन ?] मन की वृत्ति । मनोविकार । उ०—सर्व मनोसर जाय मरि जो देखै तस चार । पहले सो दुःख बरनि कै बरनौ बहुक सिगार ।—(शब्द०) ।

मनोहत—वि० [सं०] निराश । हताश [को०] ।

मनोहर[1]—वि० [सं०] [संज्ञा **मनोहरता**] १. मन हरनेवाला । चित्त को आकर्षित करनेवाला । २. सुंदर । मनोज्ञ । उ०—इस प्रकार से घूमते छोड़ काम सब और । देखो नृप ने निज प्रिया एक मनोहर ठौर ।—शकुं०, पृ० ११ ।

मनोहर[2]—संज्ञा पुं० १. छप्पय छंद के एक भेद का नाम, जिसमें १३ गुरु, १२६ लघु, १४६ वर्ण और १५२ मात्राएँ अथवा १३ गुरु, १२२ लघु, १३५ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं । २. एक संकर राग का नाम जो गौरी, मारवा और त्रिवण के मिलने से बना है । ३. कुंद पुष्प । ४. सुवर्ण । सोना ।

मनोहरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनोहर होने का भाव । सुंदरता । उ०—राजकुअर तेहि अवसर आए । मनहु मनोहरता तन छाए ।—मानस, १।२४० ।

मनोहरताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मनोहरता**] सुंदरता । मनोहरता । उ०—(क) मंगल सगुन मनोहरताई । रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया । मनि खंभनि प्रतिबिंब झलक छबि छलकिहै भरि अँगनैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

मनोहरपन—संज्ञा पुं० [सं० **मनोहर** + हिं० **पन** (प्रत्य०)] मनोहरता । सुंदरता । उ०—ऐसे कवियों के बनाए नाटक कि जो मनोहरपन से पूर्ण हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६ ।

मनोहरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाती पुष्प । २. स्वर्णजुही । सोनजुही । ३. त्रिशिर की माता का नाम । ४. एक अप्सरा का नाम ।

मनोहरी—संज्ञा पुं० [हिं० **मनोहर** + **ई** (प्रत्य०)] कान में पहनने की एक प्रकार की छोटी बाली ।

मनोहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० **मनोहर्तृ**] दे० 'मनोहारी' [को०] ।

मनोहारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मनोहारित्व' ।

मनोहारित्व—संज्ञा पुं० [सं०] मनोहरता । सुंदरता । उ०—ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने अपनी कृतियों को साहित्यिक को मनोहारित्व प्रदान किया है । पा० सा० सि०, पृ० ८ ।

मनोहारी—वि० [सं० **मनोहारिन्**] [वि० स्त्री० **मनोहारिणी**] १. मनोहर । चित्ताकर्षक । सुंदर । २. हृदय चुरानेवाला ।

मनोह्लाद—संज्ञा पुं० [सं०] मन की प्रसन्नता [को०] ।

मनोह्लादी—वि० [सं० **मनोह्लादिन्**] [वि० स्त्री० **मनोह्लादिनी**] १. मन को प्रसन्न करनेवाला । दिल खुश करनेवाला । २. मनोहर । सुंदर ।

मनोह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला । मैनसिल ।

मनौ(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'मानो' । उ०—कनक दंड जुग जंघ तुव लखियत आभा ऐन । धर जोबन खरसान पर मनौ खरादे मैन ।—स० सप्तक, पृ० ३४७ ।

मनौज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मनोज**] दे० 'मनोज' । उ०—ताकि ताकि चोटैं करत उद्भट सुभट मनौज ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २० ।

मनौती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मानना** + **औती** (प्रत्य०)] १. असंतुष्ट को संतुष्ट करना । मनाना । मनुहार । उ०—कभी गालियाँ देता था कभी धमकाता था, कभी इनाम का लालच दिखलाता था, कभी मनौती करता था; पर कोठरी का दरवाजा किसी ने न खोला ।—शिवप्रसाद (शब्द०) । २. किसी देवता की विशेष रूप से पूजा करने की प्रतिज्ञा या संकल्प । मानता । मन्नत ।

क्रि० प्र०—**उतारना** ।—**करना** ।—**चढ़ाना** ।—**मानना** ।

मनौरथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मनोरथ**] दे० 'मनोरथ' । उ०—जौन मनौरथ रथ तहँ होई । क्यों पहुँचै पिय पै तिय सोई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७ ।

मन्न(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मन**] १. मन । चालीस सेर वजन का एक परिमाण । उ०—दस लक्ख कोटि दस सहस मन्न ।—हृ० रासो, पृ० ६० ।

मन्न(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मनस्**] मन । चित्त ।

मन्नत—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मानना**] किसी देवता की पूजा करने की वह प्रतिज्ञा जो किसी कामनाविशेष की पूर्ति के लिये की जाती है । मानता । मनौती । उ०—(बाबर ने) मन्नत मानी कि अगर साँगा पर फतह पाऊँ, फिर कभी शराब न पीऊँ और दाढ़ी बढ़ने दूँ ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

मुहा०—**मन्नत उतारना या बढ़ाना** = पूजा की प्रतिज्ञा पूरी करना । **मन्नत मानना** = यह प्रतिज्ञा करना कि अमुक कार्य के हो जाने पर अमुक पूजा की जाएगी ।

मन्ना—संज्ञा पुं० [देश०] शहद की तरह का एक प्रकार का मीठा निर्यास जो बाँस आदि कुछ विशेष वृक्षों में से निकलता है और जिसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है ।

मन्मथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. कपित्थ। कैथ। ३. कामचिंता। ४. साठ संवत्सरों में से उनतीसवें संवत्सर का नाम।

यौ०—मन्मथमन्मथ = कामदेव के मन को मथनेवाला, अत्यंत आकर्षक वा सौंदर्यशील।

मन्मथकर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार के एक अनुचर का नाम।

मन्मथकर[२]—वि० कामोद्दीपक। कामचिंतावर्धक [को०]।

मन्मथजल—संज्ञा पुं० [सं० मन्मथ + जल] स्त्रीशुक्र। रज। उ०—पातुर लोभी अधिक ढिठाई। मन्मथजल बिरगिध बसाई।—चित्रा०, पृ० २१४।

मन्मथप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की प्रिया। रति [को०]।

मन्मथबंधु—संज्ञा पुं० [सं० मन्मथबन्धु] चंद्रमा [को०]।

मन्मथयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कामवासना की तुष्टि। स्त्रीसंभोग। मैथुन [को०]।

मन्मथलेख—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमपत्र।

मन्मथसख—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का मित्र, वसंत [को०]।

मन्मथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। दाक्षायणी [को०]।

मन्मथानंद—संज्ञा पुं० [सं० मन्मथानन्द] १. एक प्रकार का आम जिसे महाराज चूत भी कहते हैं। २. विषयानंद। विषयजन्य सुख या आनंद।

मन्मथानल—संज्ञा पुं० [सं०] कामाग्नि [को०]।

मन्मथालय—संज्ञा पुं० [सं० [१. आम का पेड़। २. कामियों के मनोरथ पूर्ण होने की जगह। प्रेमी और प्रेमिका के मिलने का स्थान। विहारस्थल। २. योनि। भग (को०)।

मन्मथाविष्ट—वि० [सं०] कामोद्दीप्त [को०]।

मन्मथी—वि० [सं० मन्मथिन्] कामी। कामुक।

मन्मथोद्दीपन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] कामोत्तेजन होना।

मन्मथोद्दीपन[२]—वि० कामोत्तेजक [को०]।

मन्मन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दंपति की गोपनीय एवं मंदस्वर में की जानेवाली बातचीत। २. गोपनीय कानाफूसी। ३. मदन। कामदेव [को०]।

मन्मनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] बोलने में जीभ का हकलाना जो एक दोष है [को०]।

मन्मय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मन्मयी] तन्मय का विलोम। मुझमें लीन। मुझमें अनुरक्त। उ०—अकस्मात निःशब्द आए जयी, मनोवृत्ति थी नाथ की मन्मयी।—साकेत, पृ० ३०५।

मन्य[१]—वि० [सं०] अपने को समझनेवाला। अपने को अमुक जैसा माननेवाला (समासांत में प्रयुक्त) जैसे पंडितंमन्य [को०]।

मन्य[२]—संज्ञा पुं० [सं० मान या प्रा० मण्णण] मान। इज्जत। उ०—धन रंगा तोर त्तिय धर्ध्य। जिन रस्यौ जीवत नृप मन्यं।—पृ० रा०, ७।१८२।

मन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले पर की एक शिरा या नस जो पीछे की ओर होती है। मन्या।

मन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गले की एक शिरा या नस। मन्यका। २. ज्ञान। समझ (को०)।

मन्याका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मन्यका' [को०]।

मन्यास्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० मन्यास्तम्भ] एक रोग का नाम जिसमें गले पर की मन्या शिरा कड़ी हो जाती है और गरदन इधर उधर नहीं घूम सकती।

मन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तोत्र। २. कर्म। ३. शोक। ४. याग। ५. कोप। क्रोध। उ०—कोप क्रोध आमर्ष रुठ रोष मन्यु तम सोइ।—अनेकार्थ०, पृ० २५। ६. दीनता। ७. अहंकार। ८. शिव। ९. अग्नि। १०. भागवत के अनुसार वितथ राजा के पुत्र का नाम। ११. साहस। उत्साह (को०)।

मन्युदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोध का अधिमानी देवता। २. एक ऋषि का नाम।

मन्युपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेकपर्णी। मंडूकपर्णी।

मन्युमान्[१]—वि० [सं० मन्युमत्] शोक, क्रोध, दीनता या अहंकार से युक्त।

मन्युमान्[२]—संज्ञा पुं० अग्नि [को०]।

मन्युसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के दशम मंडल का एक सूक्त जो मन्युदेव के प्रति है [को०]।

मन्वंतर—संज्ञा पुं० [सं० मन्वन्तर] १. इकहत्तर चतुर्युगी का काल। ब्रह्मा के एक दिन का चौदहवाँ भाग। विशेष—दे० 'मनु'। उ०—समीचीन धर्म की प्रवृत्ति। सो कहिए मन्वंतर वृत्ति।—नंद० ग्रं०, पृ० २१७। २. दुर्भिक्ष। अकाल। कहत।

मन्वंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मन्वन्तरा] प्राचीन काल का एक प्रकार का उत्सव जो आषाढ़ शुक्ल दशमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी और भाद्र शुक्ल तृतीया को होता था।

मन्वाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य।

मन्होल—संज्ञा पुं० [देश०] तमाल।

मप्पना—क्रि० स० [सं० मापन या देशी मप्प (= माप)] दे० 'मापना'। उ०—बंचि उचारि सुमंत तिहि सरमय मप्पिय बाँह।—पृ० रा०, २४। ३७६।

मफर—संज्ञा पुं० [अ० मफ़र] १ भागकर छिपने का स्थान। २. रक्षा। बचाव। ३. उपाय। तरीका [को०]।

मफरूर—वि० [अ० मफ़रूर] १. भगोड़ा। भागा हुआ। २. फरार। उ०—वह दूसरे मामले में मफरूर था।—फूलो०, पृ० ६४।

मबादा—अव्य० [फ़ा०] ऐसा न हो। उ०—छुपा राख तूँ आज ते राज यो। मबादा सुने कोई आवाज यो।—दक्खिनी०, पृ० ८६।

मम—सर्व० [सं० अहं <अस्मद् शब्द का षष्ठी एकवचन रूप] मेरा

या मेरी। उ०—(क) साईं यो मति जानियो प्रीति घटै मम चित्त। मरूँ तो तुम सुमिरत मरूं जीवन सुमिरूँ नित्त।—कबीर (शब्द०)। (ख) नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन। करहु सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन।—तुलसी (शब्द०)। (ग) महाराज तुम तौ हौ साध। मम कन्या ते भयो अपराध।—सूर (शब्द०)।

ममकारⓅ†—संज्ञा पुं० [सं०] ममत्व। ममता। अहंकार। उ०—रोम ररंकार को गम्म कैसे लहै शब्द के संग ममकार होई।—राम० धर्म, पृ० १३९। २. वयक्तिक वा निज की संपत्ति।

ममकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ममकार' [को०]।

ममतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **ममत्व**] दे० 'ममत्व', 'ममता'। उ०—गुरु पग परसे बंधन छूटै। मोह ममत को फाँसी टूटै।—सहजो०, पृ० ६।

ममता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'यह मेरा है' इस प्रकार का भाव। किसी पदार्थ को अपना समझने का भाव। ममत्व। अपनापन। उ०—सुमति न जानै नाम न जानै मैं ममता मारे।—जग० श०, पृ० ११४। २. स्नेह। प्रेम। ३. वह स्नेह जो माता पिता का अपनी संतानों के साथ होता है। ४. मोह। लोभ। ५. गर्व। अभिमान।

यौ०—**ममतायुक्त**। **ममताशून्य** = ममत्व या ममता से रहित।

ममताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **ममता** + हिं० **ई** (प्रत्य०)] ममता। मोह। उ०—गर्व गुमान त्यागि ममताई। ह्वै सतोल कीर रहि दिनताई।—जग० श०, पृ० ११८।

ममतायुक्त—वि० [सं०] १. अभिमानी। गर्वी। २. कृपण। ३. जिसमें ममता हो।

ममत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. ममता। अपनापन।

यौ०—**ममत्वयुक्त**। **ममत्वशून्य**। ममत्व**हीन** = ममता वा स्नेह से रहित। उ०—पक्षी का सा जीवन, हँसमुख किंतु ममत्वहीन निर्दय बालो के लिये। - अपरा, पृ० १३९।

ममनाईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मम**] १. शासन। राज्य। २. मनमाने कार्य। उ०—तहँवा हंस करत ममनाई।—कबीर सा०, पृ० १४।

ममनून—वि० [अ०] आभारी। अनुगृहीत। कृतज्ञ। उ०—मैं बहुत ममनून हूँगा। अगर आप इसपर अपनी राय···फरमावें।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५३।

ममरखी†—संज्ञा स्त्री० [देश० **या** अ० **मुबारक**] बधावा।

ममरी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **बरबरी**] बनतुलसी। बबई।

ममरीⓅ†[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मम** + **री** (प्रत्य०)] माता। उ०—ऐसे हमकूँ राम पियारे। ज्यों बालक कूँ ममरी।—चरण० बानी, पृ० ६०।

ममाखी—संज्ञा स्त्री० [बं० मौमाछी] शहद की मक्खी। मधुमक्खी। उ०—उत्तमता इसका निजस्व है, अंबुजवाले सर सा देखो। जीवन मधु एकत्र कर रहीं उन ममाखियों सा बस लेखो।—कामायनी, पृ० २७१।

ममान, ममाना†—संज्ञा पुं० [हिं० मामा + **आना** (प्रत्य०)] मामा का घर। ममियौरा।

ममारखⓅ—वि० [**अ० मुबारक**] शुभ। कल्याणप्रद। सौभाग्यशाली।

ममारखीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुबारकी** ?] बधाई। मुबारिकी। उ०—देति ममारखी बारहिं बार करैं सिगरी सब और सलामैं।—हम्मीर०, पृ० ६।

ममासाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मवास**] किला। गढ़। उ०—तेही आस चढ़ तोरै ममासा।—कबीर सा०, पृ० ८६।

ममिताⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **ममता**] दे० 'ममता'। उ०—धोखा देइ जीव सब राखा ममिता अदल चलाई।—संत० दरिया, पृ० १३५।

ममिया—वि० [हिं० मामा + **इया** (प्रत्य०)] जो संबंध में मामा के स्थान पर पड़ता हो। मामा के स्थान का। जैसे, ममिया ससुर, ममिया सास।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संबंधसूचक शब्दों के साथ होता है।

यौ०—**ममिया ससुर** = पति वा पत्नी का मामा। ममिया **सास** = पति अथवा पत्नी की मामी। ममिया **बहिन** = मामा की कन्या।

ममियाउर†—संज्ञा पुं० [हिं० **ममिया** + **पुर**] दे० 'ममियौरा'।

ममियौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० **ममिया** + **औरा** (प्रत्य०)] मामा का घर। ममाना।

ममी—संज्ञा स्त्री० [मम्मी] वह शव जो रासायनिक पदार्थ या मसाला आदि लगाकर नष्ट होने से बचाकर रखा जाता है। सुगंधित द्रव्यादि के लेप द्वारा सुरक्षित शव।

विशेष—मिस्र के पिरामिडों में ऐसे शव प्राप्त होते हैं, जो तीस हजार वर्षों से भी अधिक पहले के हैं।

ममीरा—संज्ञा पुं० [अ० मामीरान] हलदी की जाति के एक पौधे की जड़।

विशेष—इस पौधे की कई जातियाँ होती हैं। यह आँख के रोगों की अपूर्व औषधि मानी जाती है। यह पौधा सम शीतोष्ण प्रदेशों में होता है। आसाम के पूर्व के देशों के पहाड़ी स्थानों में भी यह बहुत होता है। कुछ दूसरे पौधों की जड़ें भी, जो इससे मिलती जुलती होती हैं, ममीरे के नाम से बिकती हैं और उन्हें नकली ममीरा कहते हैं।

ममोला—संज्ञा पुं० [देश०] १. धोबिन नाम का छोटा पक्षी जिसके पेट पर काली धारियाँ होती हैं। उ०—सैलौ मेरी गेंद ममोला, दिल मेरा वाई लिया माँ।—दक्खिनी०, पृ० ३६०। २. बीर बहूटी। ३. छोटा और प्यारा बच्चा। †४. एक प्रकार का घोड़ा। उ०—अमोला ममोला लिए मोल लक्खो।—पृ० रासो पृ० १६७।

ममोलियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश०] बीर बहूटी। ममोला। उ०—लूँबाँ झड़ नदियाँ लहर बक पंगत भर बाथ। मोरा सोर ममोलिया, सावण लायो साथ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

ममोसीⓅ—वि० [सं० मवास] गढ़ में निवास करनेवाला । गढ़पति । उ०—धीजं छिमा का संग लिए दल मोह को महल लुटायो । ताही समय ममोसी राजा । वाही को पकरि मँगायो ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २७ ।

मम्मⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० मर्म, प्रा० मम्म] दे० 'मर्म' । उ०—सक्कय वाणी बहुअ [न] भावइ । पाउंअ रस को मम्म न पावइ । —कीर्ति०, पृ० ६ ।

मम्म[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'मम्मा[1]' ।

मम्मा[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. स्तन । छाती । २. जल । पानी । (बालक) ।

मम्मा[2]—संज्ञा पुं० [सं० मातुल] [संज्ञा स्त्री० मम्मी] दे० 'मामा' ।

मम्मी[1]—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'ममी' । उ०—मिस्र की प्राचीनतम मम्मियाँ (मृत शव) इसी रंग में रँगा मिलती हैं ।—भा० इ० रू०, पृ० ७३ ।

मम्मी[2]—संज्ञा स्त्री० माँ । माता । अम्मा । धाय ।

मयंक—संज्ञा पुं० [सं० मृगाङ्क, प्रा० मयंक, मयंग] चंद्रमा । उ०—सरद मयंक बदन छबि सींवाँ । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—**मयंकमुखी** = जिसका मुख चंद्रमा के समान हो । उ०—तऊ न होति मयंकमुखी, तनक प्यास की हानि ।—मति० ग्रं०, पृ० ४०४ ।

मयंद—संज्ञा पुं० [सं० मृगेन्द्र, प्रा० मयंद] १. सिंह । उ०—मानियों बैठो नारिंद अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछारयो ।—भूषण (शब्द०) । २. राम की सेना के एक अधिनायक बानर का नाम । उ०—द्विविद मयंद नील नल अंगदादि विकटासि । दधिमुख केहरि कुमुद गव जामवंत बलरासि ।—तुलसी (शब्द०) ।

मयंदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे की छोटी सामी जो गाड़ी में चक्के की नाभि के दोनों ओर उस छेद के मुँह पर खोदकर बैठाई जाती है, जिसमें धुरे का सिरा रहता है । सामी ।

मय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँट । २. अश्वतर । खच्चर । ३. घोड़ा । ४. मुख । ५. एक देश का नाम । ६. पुराणानुसार एक प्रसिद्ध दानव का नाम जो बड़ा शिल्पी था । उ०—मय की सुता धौं कोहै मोहनी ह्वै मोह मन, आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिए ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—इसे असुरों और दैत्यों का शिल्पी कहते हैं । वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड में मय को दिति का पुत्र 'दैत्य' लिखा है । मायावी और दुंदुभि को उसका पुत्र और मंदोदरी को उसकी कन्या लिखा है । त्रिपुर दानव के तीन नगरों को इसने बनाया था और महाभारत के अनुसार खांडव वन के भस्म होने पर इसने ही पांडवों का महल भी बनाया ।

७. अमेरिका के मेक्सिको नामक देश के प्राचीन अधिवासी जो किसी समय बहुत अधिक उन्नत और सभ्य थे और जिनकी सभ्यता भारतवासियों की सभ्यता से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

मय[2]—प्रत्य० [सं०] [स्त्री० मयी] तद्धित का एक प्रत्यय जो तद्रूप, विकार और प्राचुर्य अर्थ में शब्दों के साथ लगाया जाता है । जैसे, आनंदमय । उ०—(क) **तद्रूप**—सिया राममय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि जुग पानी । —तुलसी (शब्द०) । (ख) **विकार**—अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) प्राचुर्य—मुद मंगलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ।—तुलसी (शब्द०) ।

मय[3]—अव्य० [अ०] संयुक्त । सहित । साथ । जैसे, मयसूद = सूद सहित ।

मय[4]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मदिरा । मद्य । शराब ।

यौ०—**मयखाना** = मदिरागृह । **मयपरस्त** = शराबी ।

मय[5]—संज्ञा पुं० [सं० मद, प्रा० मय] गर्व । अहंता । घमंड ।

मयगरⓅ—संज्ञा पुं० [प्रा० मयगल] दे० 'मयगल' । उ०—मन मयगरि मद मस्त दिवाना, जोवहिं उलटा चलावै ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ ।

मयगल—संज्ञा पुं० [सं० मदकल, प्रा० मयकल] मत्त हाथी । मदमस्त हाथी ।

मयट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्णकुटी [को०] ।

मयतनया, मयतनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदोदरी । उ०—मयतनुजा मंदोदरि नामा ।—मानस, १।१७८ ।

मयदानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मैदान' । उ०—झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान एकन ते एक मानो सुखमा जरद की ।—अकबरी०, पृ० १२१ ।

मयन—संज्ञा पुं० [सं० मदन, प्रा० मयण] कामदेव । उ०—कुंद इंदु सम देह, उमारमन करुना अयन । जाहि दीन पर नेह करहु कृपा मर्दन मयन ।—तुलसी (शब्द०) ।

मयना—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मैना' ।

मयमंत—वि० [सं० मदमत्त, प्रा० मयमत्त, मयमंत] मस्त । मदमस्त । उ०—(क) महाराज दसरथ पुनि सोवत । हा रघुपति लछिमन वैदेही सुमिरि सुमिरि गुण रोवत । त्रिया चरित मयमंत न सूझत उठि पखाल मुख धोवत । महा विपरीत रीत कछु औरे बार बार मुख जोवत ।—सूर (शब्द०) । (ख) जोबन अस मयमंत न कोई । नवै हस्ति जो आँकुस होई ।—जायसी (शब्द०) ।

मयमत्त—वि० [सं० मदमत्त] दे० 'मयमंत' ।

मयरेयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मैरेय] दे० 'मैरेय' । उ०—आसव मद कादंबरी हलिप्रिया मयरेय ।—अनेकार्थ०, पृ० ७२ ।

मयष्ट, मयष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] बनमूँग ।

मयसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० मय + सुता] मय दानव की कन्या, मंदोदरी । उ०—तब रावन मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ।—मानस, ६।८ ।

मयस्सर—वि० [अ०] १. मिलता या मिला हुआ । प्राप्त । उपलब्ध । सुलभ । उ०—सैयद महमूद ने यह कहकर पंडित जी को

प्रसन्न किया कि आपके इस धूलिधूसर जूते की धूलि ही के प्रसाद से यह कालोन मुझे मयस्सर हुआ है।—द्विवेदी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**होना**।

मुहा०—**मयस्सर आना** = मिलना। प्राप्त होना।

मया[२]-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा।

मया[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० **माया**] १. माया। भ्रमजाल। इंद्रजाल। २. जगत्। संसार। ३. जीव और शरीर का संबंध। जीवन। उ०—तुम जिय मैं तन जौ लहि मया। कहे जो जीव करै सो कया।—जायसी (शब्द०)। ४. प्रेमपाश। प्रेम का बंधन। मोह। उ०—(क) बहुत मया सुन राजा फूला। चला साथ पहुँचावै भूला।—जायसी (शब्द०)। (ख) का रानी का चेरी कोई। जेहि कहँ मया करे भल सोई।—जायसी (शब्द०)। (ग) मृगया यहे शूर तर बढ़ी। बंदी मुखनि चाप सो पड़ी। जो केहू चितवे यह दया। बात कहे तो बड़िए मया।—केशव (शब्द०)। ५. दया। अनुकंपा। छोह। उ०—(क) तहाँ चकोर कोकिला तेहि तन मया पईठ। नयनन रकत भरा यहि तुम पुनि कीन्ही डीठ।—जायसी (शब्द०)। (ख) सँदेसो देवकी सौं कहियौ। हौं तौ धाइ तिहारे सुत की मया करत ही रहियौ।—सूर०, १०।३१७५। (ग) कहि धौं मृगी मया करि हमसों कहि धौं मधुप मराल। सूरदास प्रभु के तुम संगी हौ कहँ परम दयाल।—सूर (शब्द०)।

मयाई(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मया**] मोह। ममता।

मयार—वि० [सं० **माया**, हिं० **मया**] [वि० स्त्री० **मयारी**] दयालु। कृपालु। उ०—(क) रोवत बूड़ उठा संसारू। महादेव तब भयो मयारू।—जायसी (शब्द०)। (ख) झारी भरी मुख धोइवे को आपनी बिसारी सारी सवारी अति देखत मयारि है।—रघुनाथ (शब्द०)।

मयारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह डंडा या धरन जिसपर हिंडोले की रस्सी लटकाई जाती है। उ०—सुनि विनय श्रीपति बिहँसि बोले विश्वकर्मा श्रुतिधारि। खचि खंभ कंचन के रचि पचि राजति मरुवा मयारि। पटुलो लगे नग नाग बहु रँग बनी डाँड़ी चारि। भँवरा भवैं भजि केलि भूले नगर नागर नारि।—सूर (शब्द०)। २. छाजन की वह धरन जिसपर बहुआ के आधार पर बँडेर रहती है। उ०—छानि बरेंडि औ पार पछीति मयारि कहा किहि काम के कोरे।—अकबरी०, पृ० ३५४।

मयी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँटनी।

मयी[२]—अव्य० स्त्री० [हिं०] दे० **'मय'**।

मयु—संज्ञा पुं० [सं०] १. किन्नर। २. मृग।

मयुराज—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

मयुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] बनमूँग।

मयुष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] बनमूँग।

मयूक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर।

मयूख—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। रश्मि। २. दीप्ति। प्रकाश। ३. ज्वाला। ४. शोभा। ५. कील। ६. पर्वत।

यौ०—**मयूखमाली** = सूर्य।

मयूखादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के एक भेद का नाम।

मयूखी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल के एक अस्त्र का नाम।

मयूखी[२]—वि० [सं० **मयूखिन्**] प्रकाशयुक्त। दीप्तिमान्। चमकीला (को०)।

मयूर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मयूरी**] १. मोर। २. मयूरशिखा नामक क्षुप। ३. अपामार्ग (को०)। ४. एक असुर का नाम। ५. मार्कंडेय पुराणानुसार सुमेरु पर्वत के उत्तर के एक पर्वत का नाम। ५. संस्कृत के एक प्रसिद्ध कवि जिनका लिखा सूर्यशतक उपलब्ध है। ये बाणभट्ट के साले और हर्ष के सभापंडित थे।

मयूरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपामार्ग। चिचड़ा। २. तूतिया। ३. मोर। ३. मयूरशिखा नामक क्षुप।

मयूरकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद का एक नाम।

मयूरगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस अक्षरों की एक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण म आदि में पाँच यगण, फिर मगण, यगण और अंत में भगण होता है। (य य य य य म य भ)।

मयूरग्रीवक—संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया।

मयूरचटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

मयूरचूड़—संज्ञा पुं० [सं० **मयूरचूड**] थुनेर। गठिवन का एक भेद।

मयूरचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मयूरचूडा**] मयूरशिखा नामक क्षुप।

मयूरजंघ—संज्ञा पुं० [सं० **मयूरजङ्घ**] सोनापाढ़ा। श्योनाक।

मयूरतुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] नीला तूतिया [को०]।

मयूरध्वज—संज्ञा पुं० [सं० **मयूर + ध्वज**] दे० 'मोरध्वज'।

मयूरनृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नाच जिसमें थिरकन अधिक होती है।

मयूरपदक—संज्ञा पुं० [सं०] नखाघात। नखक्षत जो मोर के पाव के आकार म हो।

मयूररथ—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय। स्कंद।

मयूरविदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोइया। अंबष्ठा।

मयूरशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरशिखा नामक क्षुप।

मयूरसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह अक्षरों के एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद में रगण, जगण, फिर रगण और अंत में बुलाक गुरु होता है।

मयूरसारी—वि० [सं० **मयूरसारिन्**] गर्वित।

मयूरस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

मयूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंबष्ठा। मोइया। २. नथिया या बुलाक (को०)। ३. एक प्रकार का विषैला कीड़ा।

मयूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरनी।

मयूरेश—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

मयेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] मय दानव। विशेष—दे० **'मय'**।

मयोभय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

मयोभू—वि०] सं०] यज्ञ के फल से उत्पन्न ।

मरंद—संज्ञा पुं० [सं० **मरन्द, मकरन्द**, प्रा० **मरंद**] मकरंद । उ०—जानैं नहि तव माधुरी मंद मरंद सुगंध ।—दीन० ग्रं०, पृ० ९२ ।

मरंदकोश—संज्ञा पुं० [सं० **मरन्द+कोश**] १. फूल का वह भाग जिसमें 'सुधा' या रस रहता है। मकरंदकोश । २. मधुमक्खियों का छत्ता ।

मर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु । २. संसार । जगत् । ३. प्राणी । मरणधर्मा । जीव । उ०—मर क्या, अमर अधीन हमारे कर्मों के हैं ।—साकेत, पृ० ४१९ । ४. पृथ्वी ।

मर[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **सुरा**] दे० 'मुरा' ।

मरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु । मरण । २. वह रोग जिसमें थोड़े ही काल में अनेक मनुष्य ग्रस्त होकर मरते हैं । वह भीषण संक्रामक रोग जिसमें बहुत से लोग मरें । मरी । ३. मार्कंडेय पुराणानुसार एक जाति का नाम ।

मरक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरकना** (=दबाना)] १. दबाकर संकेत करना । संकेत । इशारा । उ०—ग्रर ते टरत न बर परै दई मरक मनु मैन । होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चित चतुराई नैन ।—बिहारी (शब्द०) । २. हौसला । उ०—मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक ह्वै रस झेलिए ।—घनानंद, पृ० ४०३ । ३. खिचाव । उ०—एक गाँव बसि बैरी ऐसी राखिए मरक ।—घनानंद०, पृ० १३५ । ४. बदला । उ०—मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै भौरौ पुहुप लागे बरन बरन महकन ।—घनानंद, पृ० ३९० । ५. दे० 'मड़क' ।

मरकज—संज्ञा पुं० [अ० **मरकज़**] १. वृत्त का मध्य विंदु । २. प्रधान या मध्य स्थान । केंद्र ।

मरकजी—वि० [अ० **मरकज**] केंद्रीय । मुख्य ।

मरकट[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मर्कट**] दे० 'मर्कट' ।

मरकट[2]—वि० [सं० **मृतकवत्**] १. दुर्बल । दुबला पतला । कमजोर । २. अशुभ । मनहूस (लाक्ष०) । उ०—सुबह सुबह नशा के शबाब में, भैया नहीं बाबू नहीं, चाँदी नहीं सोना नहीं—यह साला मरकट सामने आ फटा ।—शराबी, पृ० ६० ।

विशेष—प्रातः बंदर का मुँह देखना अशुभ माना जाता है अतः यह अर्थ बोलचाल में प्रचलित है ।

मरकत - संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना ।

यौ०—**मरकत पत्री**=एक लता । पाची । **मरकतमंदर**=पन्ना का पहाड़ । मरकतमणि=पन्ना । **मरकतशिला**=पन्ना की चट्टान या सिल्ली । मरकतश्याम=पन्ना के समान गहरा हरा या काला ।

मरकताल—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की तरंगों की उतार की सब से अंतिम अवस्था । भाटा की चरम अवस्था जो प्रायः अमावास्या और पूर्णिमा से दो चार दिन पहले होती है ।

मरकद—संज्ञा पुं० [अ० **मर्क़द**] कब्र । समाधि । उ०—रसा हाजत नहीं कुछ रौशनी की कुंजे मर्कद में ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८ ।

मरकना—क्रि० अ० [अनु०] १. दबकर मरमराना । दबाव के नीचे पड़कर टूटना । दबना । उ०—सुनत ही सौतिन करेजा करकन लाग्यो मरकन लाग्यो मान भवन मन हारचो सो ।—देव (शब्द०) । २. दे० 'मुरकना' । उ०—कँटवासी बसवारिन को रकबा जहँ मरकत । बीच बीच कंटकित वृच्छ जाके बढ़ि लरकत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६ ।

मरकहा†—वि० [हिं० **मारना=हा** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **मरकही**] सींग से मारनेवाला । जो सींग से बहुत मारता हो (पशु) । उ०—मरकहा बैल रात दिन फूँ फूँ किया करता है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५५९ । २. किसी को मारने पीटनेवाला (क्व०) ।

मरकाना—क्रि० स० [हिं० **मरकना**] १. दबाकर चूर करना । इतना दबाना कि मरमराहट का शब्द उत्पन्न हो । तोड़ना । उ०—यो राहत कूँ दुनियाँ के मरकान कर, ल्या राखे पग तलै आनकर ।—दक्खिनी०, पृ० १४६ । २. दे० 'मुड़काना' ।

मरकूम—वि० [अ० **मरक़ूम**] [वि०स्त्री० **मरकूमा**] लिखित । लिखा हुआ । उ०—जो कुछ कि कजा काजी में मरकूम हुआ है ।—कबीर मं०, पृ० १४१ ।

मरकोटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई ।

मरक्कतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मरकत**] दे० 'मरकत' । उ०—मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चली बर बीर बहूटी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९५ ।

मरखंडा‡—वि० [हिं० **मारना**] दे० 'मरखन्ना' ।

मरखन्ना†—वि० [हिं० **मारना+न्ना** (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० **मरखन्नी**] सींग से मारनेवाला । मरकहा (पशु) ।

मरखम—संज्ञा पुं० [हिं० **मलखंभ**] वह खूँटा जो कातर में गाड़ा रहता है ।

मरगजाⓅ†[1]—वि० [हिं० **मलना+गींजना**] [वि० स्त्री० **मरगजी**] मला दला । मसला हुआ । गींजा हुआ । मलित दलित । उ०—(क) सब अरगज मरगज भा लोचन पीत सरोज । सत्य कहहु पद्मावत सखी परी सब खोज ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धर पठई प्यारी अंक भरि । कर अपने मुख परसि त्रिया के प्रेम सहित दोऊ भुज धरि धरि । सँग सुख लूटि हरष भई हिरदय चली भवन भामिनि गजगति ढरि । अँग मरगजी पटोरी राजति छबि निरखत ठाढ़े ठाढ़े हरि ।—सूर (शब्द०) । (ग) तुम सौतिन देखत दई अपने हिय ते लाल । फिरत सबन में डहडही डहै मरगजी माल ।—बिहारी (शब्द०) । (घ) अटपटे भूषन मरगजी सारी, वंदन परस्यो भाल सों ।—छीत०, पृ० ७१ ।

मरगजा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलगजा[2]' ।

मरगी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरना**, मि० फ़ा० **मर्ग**] फैलनेवाला रोग । मरक । मरी ।

मरगोल—संज्ञा पुं० [अ० **मरग़ोल**] गाने में ली जानेवाली गिटकिरी। स्वर:कंपन। (संगीत)।

क्रि० प्र०—**भरना**।—**लेना**।

मरगोलनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० **मरगोल**] सुदर स्वर में बोलना। गिटकिरी लेते हुए बोलना। उ०—सुआ···देखा एकस के हाथ में। जो मरगोलता है वो हर बात में।—दक्खिनी०, पृ० ७८।

मरगोला—संज्ञा पुं० [अ० **मरग़ोला**] दे० 'मरगोल'।

मरघट[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मर (=मृत्यु)+घाट**] वह घाट या स्थान जहाँ मुर्दे फूँके जाते हैं। मुर्दों को जलाने की जगह। स्मशान घाट। मसान। उ०—(क) जा घर साधु न सेवइ पारब्रह्म पात नाहिं। ते घर मरघट सारिखा भूत बसे ता माहिं।—कबीर (शब्द०)। (ख) हरिश्चंद्र का पुत्र रोहित मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट गई।—लल्लू (शब्द०)।

मुहा०—**मरघट का भुतना**=प्रेत।

मरघट[२]—वि० १. बहुत ही कुरूप और विकराल आकृति का। कुरूप। २. जो सदा उदास रहता हो। मनहूस। रोना। ३. चेष्टाहीन। निष्क्रिय।

मरचा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिरचा'।

मरचूबा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मरचोबा'। उ०—मरचूबा सितबर से नवंबर तक बोते हैं।—कृषि०, पृ० २३६।

मरचोबा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की तरकारी जिसका व्यवहार योरप में अधिकता से होता है।

मरज—संज्ञा पुं० [अ० **मर्ज़**] १. रोग। बीमारी। उ०—(क) आली कछू को कछू उपचार करैं पै न पाइ सकै मरजैं री।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नेह तरजनि बिरहागि सरजनि सुनि मान मरजनि गरजनि बदरान की।—श्रीपति (शब्द०)। २. बुरी लत। खराब आदत। कुटेव। जैसे,—आपको तो बकने का मरज है। (इस अर्थ में इसका प्रयोग अनुचित बातों के लिये होता है।)

मरजादⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्य्यादा**] १. सीमा। हद। उ०—गुरु नाम है गम्य का शिष्य सीख ले सोय। बिनु पद ई मरजाद बिनु गुरू शिष्य नहिं होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिन बदन बखानी।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रतिष्ठा। आदर। इज्जत। महत्व। उ०—(क) गुरू मरजाद न भक्तिपन नहिं पिय का अधिकार। कहै कबीर व्यभिचारिणी आठ पहर भरतार।—कबीर (शब्द०) (ख) यह जो अंध बीस हू लोचन छल बल करत आनि मुख हेरी। आइ शृगाल सिंह बलि माँगत यह मरजाद जात प्रभु तेरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**खोना**।—**जाना**।—**रखना**।

३. रीति। परिपाटी। नियम। विधि। उ०—संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ अस मरजादा।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—**मरजादवाला**=संमानित व्यक्ति। महान् पुरुष। उ०—लाज जो उतारता है मरजादवालों की।—अपरा, पृ० ८४।

मरजादा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्यादा**] दे० 'मरजाद'। उ०—करति न लाज हाट घर बर की कुछ मरजादा जाति डगी सी। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४६२।

मरजादिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरजादा**] दे० 'मर्यादा'। उ०—होइ सुधाता सब्द सम, समझौ कवि मरजादि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३१।

मरजिया[१]—वि० [हिं० **मरना+जीना**] १. मरकर जीनेवाला। जो मरने से बचा हो। उ०—(क) तस राजै रानी कंठ लाई। पिय मरजिया नारि जनु पाई।—जायसी (शब्द०)। २. मृतप्राय। जो मरने के समीप हो। मरणासन्न। उ०—पद्मावति जो पावा पीऊ। जनु मरजिये परा तनु जीऊ।—जायसी (शब्द०)। ३. जो प्राण देने पर उतारू हो। मरनेवाला। उ०—अब यह कौन पानि मैं पीया। भै तन पाँख पतँग मरजीया।—जायसी (शब्द०)। ४. अधमरा। उ०—जहँ अस परी समुँद नग दीया। तेहि किम जिया चहै मरजीया।—जायसी (शब्द०)।

मरजिया[२]—संज्ञा पुं० जो पानी में डूबकर उसके भीतर से चीजों को निकालता है। समुद्र में डूबकर उसके भीतर से मोती आदि निकालनेवाला। जिवकिया उ०—(क) जस मरजिया समुँद धँसि मारे हाथ आव तब सीप। ढूँढ़ि लेहु जो स्वर्ग दुआरे चढ़े सो सिंहल दीप।—जायसी (शब्द०)। (ख) कविता चेला बिधि गुरू सीप सेवाती बुंद। तेहि मानुष का आस का जो मरजिया समुंद।—जायसी (शब्द०)। (ग) तन समुद्र मन मरजिया एक बार धँसि लेइ। की लाल लै नीकसे की लालच जिउ देइ।—कबीर (शब्द०)।

मरजी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मर्ज़ी**] १. इच्छा। कामना। चाह। उ०—(क) बरजी हमैं और सुनाइबे को कहि तोष लख्यो सिगरी मरजी।—तोष (शब्द०)। (ख) दरजी किते तिते धन गरजी। ब्योंतहि पटु पट जिमि नृप मरजी।—गोपाल (शब्द०)। २. प्रसन्नता। खुशी। ३. आज्ञा। स्वीकृति। उ०—(क) वा विधि साँवरे रावरे की न मिली मरजी न मजा न मजाखै।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) इनकी सबकी मरजी करिकै अपने मन को समुझावने है।—ठाकुर (शब्द०)। (ग) मरजी जो उठी पिय की सुधि लै चपला चमकै न रहै बरजी।—(शब्द०)।

मरजीवा—संज्ञा पुं० [हिं० **मरना+जीना**] दे० 'मरजिया[२]'। उ०—मोती उपजे सीप में सीप समुंदर माहिं। कोइ मरजिवा काढ़ेसी जीवन की गम नाहिं।—कबीर (शब्द०)।

मरज्यादⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्य्याद**] दे० 'मरजाद'। उ०—मिले राज मंझं मरज्याद छुट्टी। उमा सत्त सामंत की सक्ति षुट्टी।—पृ० रा०, १२:२७८।

मरटⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **मरत (=मृत्यु)**] मौत। मृत्यु। उ०—धार मुरै मुख ना मुरै मरट मुच्छ क्रत जोह।—पृ० रा०, २५।४४३।

मरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरने का भाव। मृत्यु। मौत। २.

वत्सनाभ। बछनाग। ३. कुंडली में आठवाँ स्थान (को०)। ४. बंद होना। रुक जाना। समाप्त होना। जैसे वर्षा का।

मरणधर्मा—वि० [सं० **मरणधर्मन्**] मरणशील। मरणस्वभाव। जो मरता हो।

मरणशील—वि० [सं०] दे० 'मरणधर्मा'।

मरणशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरणधर्मिता। मरने का भाव।

मरणांत, मरणांतक—वि० [सं० **मरणान्त, मरणान्तक**] जिसकी समाप्ति मृत्यु हो। अंत में जिससे मृत्यु प्राप्त हो [को०]।

मरणाशंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्र मरने की इच्छा। जल्दी मरने की कामना। (जैन)।

मरणाशौच—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्धक। किसी की मृत्यु होने पर परिवार तथा जातिबंधु को लगनेवाला अशौच।

मरणीय—वि० [सं०] मरणशील। मरणधर्मा [को०]।

मरणोन्मुख—वि० [सं०] जो मृत्यु के निकट हो। जिसकी मृत्यु आ गई हो [को०]।

मरत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ?] मरण। मृत्यु। मौत।

मरतबा—संज्ञा पुं० [अ० **मरतबह्**] १. पद। पदवी। ओहदा।

क्रि० प्र०—**पाना**। **बढ़ना**।—**बढ़ाना**।—**मिलना**।

२. बार। दफा। जैसे,—मैं आपके घर कई मरतबा गया था।

मरतबान—संज्ञा पुं० [सं० **मृद्भाण्ड**] दे० 'अमृतबान'।

मरद(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मर्द**] दे० 'मर्द'। उ०—अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत बिलोकनि में कासी करामात जोगी जागता मरद की।—तुलसी (शब्द०)।

मरदई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मर्द** + **ई** (प्रत्य०)] १. मनुष्यत्व। आदमीयत। २. साहस। ३. वीरता। बहादुरी।

क्रि० प्र०—**करना**।—**दिखाना**।

मरदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मर्दन**] दे० 'मर्दन'।

मरदना(पु)—क्रि० स० [सं० **मर्दन**] १. मसलना। मर्दन करना। मलना। उ०—(क) अति करहि उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पदन मरदि मद सदन शत्रु सुर लोक पठावत।—गोपाल (शब्द०)। २. ध्वंस करना। चूर्ण करना। उ०—अमल कमल कुल कलित ललित गति बेलि सों बलित मधु माधवी को पानिए। मृगमद मरदि कपूर धूरि चूरि पग केसरि को केशव विलास पहिचानिए।—केशव (शब्द०)। ३. माड़ना। गूँधना। जैसे, आटा मरदना।

मरदनिया†—संज्ञा पुं० [हिं० **मर्दाना**] वह पुष्टतनु भृत्य जो बड़े आदमियों के अंग में तेल आदि मला करता है। शरीर में तेल मलनेवाला सेवक। उ०—लिए तेल मरदनियाँ आए। उबटि सुगंध ऊपरि अन्हवाए।—लल्लू (शब्द०)।

मरदाँन(पु)—वि० [फ़ा० **मर्दानह्**] दे० 'मरदाना'। उ०—जहँ मंगद मरदाँन कन्ह तहँ जानि नाग भुग्र। मिले तक्कि तरवार भारि उभ्भारि सीस दुग्र।—पृ० रा०, ८.५८।

मरदानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वीरता। शूरता। शौर्य। उ०—काम इहै मरदानगी को आन परें सु लिए बहने हैं।—ठाकुर०, पृ० ३१। २. साहस।

क्रि० प्र०—दिखाना।

मरदाना[१]—वि० [फ़ा० **मरदानह्**] [वि० स्त्री० **मरदानी**] १. पुरुष संबंधी। पुरुषों का। जैसे, मरदानी बैठक। २. पुरुषों का सा। जैसे, मरदाना भेस,। ३. वीरोचित। जैसे, मरदाना काम। ४. बहादुर। जवाँमर्द।

मरदाना[२]‡—क्रि० अ० [हिं० **मरद**] साहस करना। वीरता दिखाना।

मरदुआ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मर्द**] १. मर्द बननेवाला। झूठा या दिखावटी मर्द। तुच्छ आदमी। कायर। उ०—वाहरे वाहरे मरदुए, कुरबान जाऊँ तेरे ईमान पर।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ६६२। २. अपरिचित व्यक्ति। गैर आदमी। ३. खाविंद। पति। (स्त्रि०)।

मरदूद—वि० [अ०] १. तिरस्कृत। २. लुच्चा। नीच। उ०—मरदूद तुझे मरना सही। काइम अकल करके कही।—तुरसी श०, पृ० २४।

मरद्द(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मर्द**] दे० 'मर्द'। उ०—सजे संग चंद पुँडरी मरद्द।—प० रासो०, पृ० ७५।

मरन—संज्ञा पुं० [सं० **मरण**] दे० 'मरण'। उ०—(क) अब भा मरन सत्य हम जाना।—मानस, ४।२७। (ख) मरन भएउ कछु संसय नाहीं।—मानस, ४।२६।

यौ०—**मरनपुर** = मृत्युलोक। मर्त्यलोक। उ०—हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २०१।

मरना—क्रि० अ० [सं० **मरण**] १. प्राणियों या वनस्पतियों के शरीर में ऐसा विकार होना जिससे उनकी सब शारीरिक क्रियाएँ बंद हो जायँ। मृत्यु को प्राप्त होना। उ०—(क) साईं यों मत जानियो प्रीति घट मम चित्त। मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जीवत सुमिरों नित्त।—कबीर (शब्द०)। (ख) कर गहि खंग तोर बध करिहौं सुनि मारिच डर मान्यो। रामचंद्र के हाथ मरूँगो परम पुरुष फल जान्यो।—सूर (शब्द०)। (ग) लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहैं मरिहैं करिहैं कछु साके।—तुलसी (शब्द०)। (घ) मरिबे को साहस कियो बढ़ी बिरह की पीर। दौरति ह्वै समुहै ससी सरसिज सुरभि समीर।—बिहारी (शब्द०)। (ङ) मरन गो कई बार जियाया।—कबीर सा०, पृ० १५११।

मुहा०—**मरना जीना** = शादी गमी। शुभाशुभ अवसर। सुख दुःख। **मरने की छुट्टी न होना या न मिलना** = बिलकुल छुट्टी न मिलना। अवकाश का अभाव होना। दिन रात कार्य में फँसा होना। **मरता क्या न करता** = जीवन से निराश व्यक्ति का सब कुछ करने को तैयार हो जाना। पराजय या असफलता को जान लेनेवाले व्यक्ति का सब कुछ करने को तैयार होना। **मरते गिरते** = किसी तरह। गिरते पड़ते। **मरते जीते** = दे० 'मरते गिरते'। **मरते दम तक** = दे० 'मरते मरते'। **मरते मरते** = आखिरी दम तक। अंतिम समय तक। **मरा सा** = अत्यंत दुर्बल। क्षीणकाय। **मरे या मरते को मारना** = पीड़ित

को और पीड़ा पहुँचाना। उ०—मरे को मारे शाह मदार (बोल०)।

२. बहुत अधिक कष्ट उठाना। बहुत दुःख सहना। पचना। उ०—(क) एक बार मरि मिलैं जो आए। दूसरा बार मरै कित जाए।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुलसी भरोसो न भवेस भोरानाथ को तो कोटिक कलेस करो मरो छार छानि सो।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तुलसी तेहि सेवत कौन मरैं, रज ते लघु को करैं मेरु से भारैं।—तुलसी (शब्द०) (घ) कठिन दुहूँ बिधि दीप को सुन हो मीत सुजान। सब निसि बिनु देखे जरैं मरैं लखै मुख भान।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—**किसी के लिये मरना** = हैरान होना। कष्ट सहना। **किसी पर मरना** = लुब्ध होना। आसक्त होना। **मर पचना** = अत्यंत कष्ट सहना। **मर मरकर** = बहुत अधिक कष्ट उठाकर। उ०—२३ मील पहाड़ी यात्रा थी, किंतु कल तो मर मरकर मैं पैदल ही २१ मील चला आया था।—किन्नर०, पृ० ३४। **किसी की बात पर मरना या किसी बात के लिये मरना** = दुःख सहना। **मर मिटना** = श्रम करते करते विनष्ट हो जाना। उ०—सबने मर मिटने की ठान ली थी।—इन्शा (शब्द०)। **मरा जाना** = (१) व्याकुल होना। व्यग्र होना। जैसे,—सूद देते देते किसान मरे जाते हैं। (२) उत्सुक होना। उतावली करना।

३. मुरझाना। कुम्हलाना। सूखना। जैसे, पान का मरना, फल का मरना। ४. मृतक के समान हो जाना। लज्जा, संकोच या घृणा आदि के कारण सिर न उठा सकना। उ०—(क) यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू। अब और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखिए रघुनाथ जू।—केशव (शब्द०)। (ख) तब सुधि पदुमावति मन भई। सँवरि बिछोह मुरछि मरि गई।—जायसी (शब्द०)। ५. किसी पदार्थ का किसी विकार के कारण काम का न रह जाना। जैसे, आग का मरना, चूने का मरना, सुहागा मरना, धूल मरना।

मुहा०—**पानी मरना** = (१) पानी का दीवार या दीवार की नींव में धँसना। (२) किसी के सिर कोई कलंक आना। उ०—पुनि पुनि पानि वहीं ठाँ मरै। फेर न निकसे जो तहँ परै।—जायसी (शब्द०)।

६. खेल में किसी गोटी या लड़के का खेल के नियमानुसार किसी कारण से खेल से अलग किया जाना। जैसे, गोटी का मरना, गोइयाँ का मरना, इत्यादि। ७. किसी वेग का शांत होना। दबना। जैसे, भूख का मरना, प्यास का मरना, चुल्ल का मरना, पित्त का मरना इत्यादि। उ०—मुँह मोरे मोरे ना मरति रिसि केशवदास मारहु धौं कहे कमल सनाल सों।—केशव (शब्द०)। ८. डाह करना। जलना। ९. झंखना। झनखना। पछताना। रोना। १०. हारना। वशीभूत होना। पराजित होना। उ०—तू मन नाथ मार के स्वाँसा। जो पै मरहि आप कर नासा। चारिहु लोक चार कह बाता। गुप्त लाव मन जो सो राता।—जायसी (शब्द०)। ११. भस्म होना। कुश्ता होना। जैसे, धातु आदि का मरना। १२. डूब जाना। प्राप्ति या वसूली की आशा न रह जाना। जैसे, बकाया या पावना आदि।

मरनि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मरनी'।

मरनी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरना**] १. मृत्यु। मौत। २. दुःख। कष्ट। हैरानी। उ०—सुनि योगी की अम्मर करनी। न्योरी विरह बिथा की मरनी।—जायसी (शब्द०)। ३. वह शोक जो किसी के मरने पर उसके संबंधियों को होता है। ४. वह कृत्य जो किसी के मरने पर उसके संबंधी लोग करते हैं।

यौ०—**मरनी करनी** = मृत्यु और मृतक की अंत्येष्टि क्रिया।

मरबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कंद जो पहाड़ी प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

विशेष—इसके टुकड़े गज गज भर के गड्ढे खोदकर बोए जाते हैं। बोवाई सदा हो सकती है; पर गर्मी के दिनों में इसमें पानी देने की आवश्यकता होती है। यह दो प्रकार की होती है—मीठी और तीक्ष्ण या गला काटनेवाली। दोनों से तीखुर बनाया जाता है। इसकी जड़ को आलू या कंद भी कहते हैं। कंद को धोकर उसके लच्छे बनाते हैं। फिर लच्छे को दबाकर या कुचलकर रस निकालते हैं जिसे सुखाकर सत्त बनता है जो तीखुर कहलाता है। रस निकले हुए खोइए को भी सुखा और पीसकर कोका के नाम से बेचते हैं। इसकी खेती पहाड़ों में अधिकता से होती है।

मरभख—संज्ञा पुं० [देश०] वह जो सदैव खाने के लिये लालायित रहता है।

मरभुक्खा—वि० [हिं० **मरना + भूखा**] १. भूख का मारा हुआ। भुक्खड़। २. कंगाल। दरिद्र।

मरभूखा—संज्ञा पुं० [हिं० **मरना + भूख**] भुक्खड़। भुखमरा। उ०—न जाने कहाँ के मरभूखे जमा हो गए हैं।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४९८।

मरमँनि†—वि० [सं० मर्म] मर्मवाली। दुखियारी। उ०—मरमँनि, सोइ रे चादर ताँनि, माइलि बोले बोलने भावज बोले बोलने।—पोद्दार अभि०, ग्रं०, पृ०, ९२७।

मरम—संज्ञा पुं० [सं० मर्म] दे० 'मर्म'। उ०—जिय को मरम तुम साफ कहत किन काहे फिरत मँड़राए हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४५।

मरमती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—इस वृक्ष की लकड़ी कड़ी और बहुत टिकाऊ होती है तथा खेती के औजार और घर के सँगहे आदि बनाने के काम आती है। यह पेड़ छोटा होता है और भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में मिलता है। यह बीजों से उत्पन्न होता है।

मरमर—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का दानेदार चिकना पत्थर जिसपर घोटने से अच्छी चमक आती है।

विशेष—इसमें चूने का अंश अधिक होता है और इसे जलाने से अच्छी कली निकलती है। यद्यपि संसार के भिन्न भिन्न प्रदेशों में अनेक रंगों के मरमर मिलते हैं, पर सफेद रंग के मरमर ही को लोग विशेषकर मरमर या 'संग मरमर' कहते हैं। जो मरमर काला होता है, उसे 'संग मूसा' कहते हैं। मरमर पत्थर की मूर्तियाँ, खिलौने, बरतन आदि बनाए जाते हैं और उसकी पटिया और ढोके मकान बनाने में भी काम आते हैं। अच्छा मरमर इटली से आता है; पर भारतवर्ष में भी यह जोधपुर, जयपुर, कृष्णगढ़ और जबलपुर आदि स्थानों में मिलता है।

मरमरा‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मल **या अनु०**] वह पानी जो थोड़ा खारा हो।

मरमरा[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] एक पक्षी का नाम।

मरमरा[3]—वि० जो सहज में टूट जाय। जरा सा दबाने पर मर मर शब्द करके टूट जानेवाला।

मरमराना—क्रि० अ० [**अनु०, तुल सं० मड्मडायिता**] १. मरमर शब्द करना। २. अधिक दबाव पाकर पेड़ की शाखा या लकड़ी आदि का मरमर शब्द करके दबना। उ०—भयो भूरि भार धरा चलत खरा कुमार करत चिकार चार दिग्गज सहित सोग। गिरिधरदास भूमि मंडल मरमरात अति घबरात से परात हैं दिसन लोग। परम बिसेस भार सहि ना सकत सेस एक सिर ब्रह्म अंड सहस धरत जोग। लटकि लटकि सीस झटकि झटकि चित्त अटकि अटकि डारैं पटकि पटकि भोग। —गोपाल (शब्द०)।

मरमराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरमराना**] १. किसी लकड़ी या शाखा के टूटने का शब्द। चरमराहट। २. धीमी धीमी आवाज। सूखे पत्ते आदि के पैरों से दबने की ध्वनि। ३.‡ असंतोष प्रकट करने की क्रिया। भुनभुनाहट।

मरमा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मर्म] दे० 'मर्म'। उ०—घायल भए नाद के लागे मरमा है सबद कटारी हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८४।

मरमिन(पु)—वि० स्त्री० [सं० मर्म] मरमवाली। दुखियारी। दे० 'मर्मी'। उ०—एक नारि दूजे मरमिन ह्वै कित दुख मैं झोंकै री। 'हरीचंद' कहवाइ सुघर क्यों बढ़वति सोकै री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३८२।

मरमी(पु)†—वि० [सं० मर्मिन्] रहस्य जाननेवाला। उ०—सखी मरमी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कवि भानस गुनी।—मानस, ३।२०।

मरम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मर्म] दे० 'मर्म'। उ०—मरम्मय सुद्धय विद्धय सेल।—प० रासो, पृ० ४२।

मरम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी वस्तु के टूटे फूटे अंगों को ठीक करने की क्रिया या भाव। दुरुस्ती। जीर्णोद्धार। जैसे, मकान की मरम्मत, घड़ी की मरम्मत।

मुहा०—**मरम्मत करना** = (१) टूटे फूटे अंशों को दुरुस्त करना या सँवारना। (२) पीटना। ठोंकना। मारना।

मरयाद(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्य्यादा] दे० 'मर्यादा'। उ०—रहो मरयाद बोले तुम हमेशा, करेगा फज्ल सूँ ई बात आगाह।—दक्खिनी०, पृ० ११६।

मरल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली। यह दो हाथ तक लंबी होती है और दलदलों या ऐसे तालाबों में पाई जाती है जिसमें घास फूस अधिक उगता है।

मरल(पु)[2]—वि० [हिं० **मरना का भोजपुरी रूप 'मृत'**] मृत। मरा हुआ। उ०—मरल गौ कई बार जियाया। बहुतक अचरज तिन दिखलाया।—कबीर सा०, पृ० १५११।

मरवट[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरना**] वह माफी जमीन जो किसी के मारे जाने पर उसके लड़के बाल्रों को दी जाती है।

मरवट[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पटुए की कच्ची छाल जो निकालकर सुखाई गई हो। सन का उलटा।

मरवट[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलपट**] वे लकीरें जो रामलीला आदि के पात्रों के गालों पर चंदन या रंग आदि से बनाई जाती हैं। उ०—घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू, मरवट मुख पै शिर पै भौरी मेरी दुलहिया भोली जू।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

मरवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मरुआ'।

मरवाना—क्रि० स० [हिं० **मारना का प्रे० रूप**] १. मारने का प्रेरणार्थक रूप। मारने के लिये प्रेरणा करना। २. बध कराना।

संयो० क्रि०—**डालना**।

३. दे० 'मराना'।

मरसा—संज्ञा पुं० [सं० **मारिष**] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ गोल झुर्रीदार और कोमल होती हैं। उ०—मरसा (लाल साग) के बड़े बड़े पत्तों को देखकर मुह से लार टपकती है।—किन्नर०, पृ० ७०।

विशेष—इसके पेड़ तीन चार हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके डंठलों और पत्तियों का साग पकाकर लोग खाते हैं। मरसा दो प्रकार का होता है। एक लाल और दूसरा सफेद। लाल मरसा खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है। मरसा बरसात के दिनों में बोया जाता है और भादों कुआर तक इसका साग खाने योग्य होता है। पूरी बाढ़ के पहुँचने पर इसके सिरे पर एक मंजरी निकलती है जो एक बालिश्त से एक हाथ तक लंबी होती है। उस समय इसके डंठल और पत्तियाँ भी कड़ी हो जाती हैं और देर तक पकाई जाने पर कठिनाई से गलती हैं। मंजरी में सफेद सफेद छोटे फूल लगते हैं और फूलों के मुरझा जाने पर बीज पड़ते हैं। बीज छोटे, गोल, चिपटे और चमकीले काले रंग के होते हैं। यह बीज ओषधि में काम आते हैं। वैद्यक में इसके स्वाद को मधुर, इसकी प्रकृति शीतल और गुण रक्तपित्तनाशक,

वातकफवर्धक और विष्टंभकारक लिखा है; और लाल मरसे को हल्का, चरपरा और सारक बताया गया है।

मरसिया—संज्ञा पुं० [अ०] १. शोकसूचक कविता जो किसी की मृत्यु के संबंध में बनाई जाती है। यह उर्दू भाषा में अनेक छंदों में लिखी जाती है। इसमें किसी के मरने की घटना और उसके गुणों का ऐसे प्रभावोत्पादक शब्दों में वर्णन किया जाता है जिससे सुननेवालों में शोक उत्पन्न हो। ऐसी कविता प्राय: मुहर्रम के दिनों में पढ़ी जाती है। उ०—इसे कजली क्यों, मरसिया कहना चाहिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६२।

क्रि० प्र०—**पढ़ना**।—**लिखना**।—**सुनाना**।

२. सियापा। मरणशोक। रोना पीटना।

क्रि० प्र०—**पढ़ना**।

यौ०—**मरसियाख्वाँ**=मरसिया पढ़नेवाला। **मरसियाख्वानी**= मरसिया पढ़ने का कार्य। मरसिया पढ़ना।

मरहट⑤†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मरघट**] मसान। मरघट। उ०—कबिरा मंदिर आपने नित उठि करता आलि। मरहट देखी डरपता चौड़े दीया जालि।—कबीर (शब्द०)।

मरहट⑤†[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोठ। उ०—मूँग माख मरहट की पहिती चनक कनक सम दारी जी।—रघुनाथ (शब्द०)।

मरहटा—संज्ञा पुं० [सं० **महाराष्ट्र**] १. महाराष्ट्र देश का रहनेवाला। मरहठा। २. उनतीस मात्राओं के एक मात्रिक छंद का नाम जिसमें १०, ८ और ११ पर विश्राम होता है तथा अंत में एक गुरु और लघु होता है। उ०—अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि। बहुसत मख धूपनि धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारि। चित्री बहु चित्रन परम विचित्रिनि केशवदास निहारि। जनु विश्वरूप को विमल आरसी रचो विरंचि विचारि।—केशव (शब्द०)।

मरहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महाराष्ट्री**, प्रा० **मरहट्टी**, **मरहठी**] मराराष्ट्र की भाषा। मराठा। मरहट्टी। उ०—हिंदुस्तान में हिंदी, उर्दू, ब्रज, मारवाड़ी, मरहटी, गुजराती आदि अनेक भाषा बोली जाती हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६।

मरहठ⑤†[१]—संज्ञा पुं० [सं० **महाराष्ट्र**, प्रा० **मरहट्ट**, **मरहठ**] मरहठा। महाराष्ट्रीय। उ०—नाहिन उघरे गूढ़ न ऐसे। मरहठ देस बधू कुच जैसे।—नंद० ग्रं०, पृ० ११८।

मरहठ†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **मरघट**] [वि० **मरहठी**] मरघट। श्मशान। उ०—फाका फरी ज्ञान का गदका बाँधो मरहठ बाना।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३८।

मरहठा—संज्ञा पुं० [सं० **महाराष्ट्र**, प्रा० **मरहट्ट**] [स्त्री० **मरहठिन**] महाराष्ट्र देश का रहनेवाला। महाराष्ट्र। विशेष दे० '**महाराष्ट्र**'।

मरहठी[१]—वि० [हिं० **मरहठा**] महाराष्ट्र या मरहठों से संबंध रखनेवाला। मरहठों का। जैसे, मरहठी कपड़ा, मरहठी चाल।

मरहठी[२]—संज्ञा स्त्री० वह भाषा जो महाराष्ट्र देश में बोली जाती है। मरहठों की बोली। मराठी।

मरहबा—संज्ञा स्त्री० [अ० **मर्हबह्**] धन्य। बहुत खूब। साधु। शाबास [को०]।

मरहम—संज्ञा पुं० [अ०] ओषधियों का वह गाढ़ा और चिकना लेप जो घाव पर उसे भरने के लिये अथवा पीड़ित स्थानों पर लगाया जाता है। उ०—मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग परे हिये जो घाव। ता कहँ मरहम सरिस यह तुव दरसन नरराव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६९९।

क्रि० प्र०—**लगाना**।

यौ०—**मरहम पट्टी**=(१) आघात की चिकित्सा। घाव पर मरहम और पट्टी लगाना। (२) किसी जीर्ण पदार्थ की थोड़ी बहुत मरम्मत।

मरहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अनुग्रह। दया। कृपा। २. नजर। उपहार। भेंट [को०]।

मरहला—संज्ञा पुं० [अ० **मरहलह्**] १. वह स्थान जहाँ यात्री रात के समय ठहर जाते हैं। टिकान। मंजिल। पड़ाव। २. दिन भर की या १२ मील की यात्रा। लंबी यात्रा। ३. किले के चारों ओर के गुंबद या ऊँचा स्थान जहाँ से निगरानी और संघर्ष किया जाय (को०)। ४. झमेला। कठिन या मुश्किल काम। ५. झोपड़ी। ६. दर्जा। मरातिब।

मुहा०—**मरहला तय करना**=झमेला निबटाना। कठिन काम पूरा करना। **मरहला पड़ना या मचना**=झमेला पड़ना। कठिनता उपस्थित होना। **मरहला डालना**=झगड़ा खड़ा करना।

यौ०—**मरहलेदार**=यात्रामार्ग की देखरेख करनेवाला।

मरहून—वि० [अ०] जो रेहन किया हो। गिरों रखा हुआ। (कच०)। उ०—कहे तूँ झूठ क्यूँ बोला है सपना। पिदर कूँ तूँ कर्या मरहून अपना।—दक्खिनी०, पृ० ३३९।

मरहूना—वि० [फ़ा०] जो रेहन किया गया हो। जो गिरों रखा गया हो। जैसे, जायदाद मरहूना। (कच०)।

मरहूम—वि० [अ०] [वि० स्त्री० **मरहूमा**] १. स्वर्गवासी। मृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी आदरणीय मृत व्यक्ति की चर्चा करते हुए उसके नाम के अंत में किया जाता है।

२. क्षमा किया हुआ (को०)।

मराठा—संज्ञा पुं० [सं० **महाराष्ट्र**, प्रा० **मरहट्ट**] महाराष्ट्र देश का निवासी। महाराष्ट्रीय।

मराठी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाराष्ट्र**] महाराष्ट्र की भाषा। महाराष्ट्री। मराठी भाषा।

मराठी[२]—वि० महाराष्ट्र से संबंधित। महाराष्ट्रीय।

मरातिब—संज्ञा पुं० [अ०] १. दरजा। पद। २. उत्तरोत्तर आनेवाली अवस्थाएँ।

मुहा०—**मरातिब तै करना**=किसी विषय के सारे झगड़ों का निबटेरा करना।

३. पृष्ठ। तह। ४. मकान का खंड। तल्ला। उ०—अति उतंग

सुंदर शशिशाला सात मरातिबवारे ।—रघुनाथ (शब्द०)। ५. ध्वजा। झंडा। उ०—जामवंत हनुमंत नल नील मरातिब साथ। छरी छबीली शोभिजै दिक्पालन के हाथ।—केशव (शब्द०)।

यौ०—**माही मरातिब**=एक प्रकार की ध्वजा जो मुसलमान राजाओं की सवारी के आगे हाथियों पर चलती है। ये ध्वजाएँ संख्या या प्रकार में सात होती हैं, जिनपर क्रमशः सूर्य, पंजा, तुला, नाग, मछली, गोल तथा सूर्यमुखी के चिह्न होते हैं।

मराना—क्रि० स० [हिं० **मारना का प्रे०रूप**] १. मारने के लिये प्रेरणा करना। मरवाना। उ०—(क) पिता तुम्हार राज कर भोगी। पूजै विप्र मरावै जोगी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पंच कहै सिव सती बिवाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी को अपने ऊपर आघात करने के लिये प्रेरणा करना या करने देना। ३. गुदाभंजन कराना। (बाजारू)।

मराय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एकाह यज्ञ। २. एक प्रकार का साम।

मरायलⓅ†—वि० [हिं० **मारना+आयल** (प्रत्य०)] १. जो किसी से कई बार मार खा चुका हो। पीटा हुआ। उ०—सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। कहि अस कोपि गगन पथ धायल।—तुलसी (शब्द०)। २. निःसत्व। सत्वहीन। जैसे, मरायल अन्न, मरायल पौधा। ३. मरियल। निर्बल। निर्जीव। ४. घाटा। टोटा।

क्रि० प्र०—**आना**।—**पड़ना**।

मरार¹—संज्ञा पुं० [सं०] खलिहान।

मरार†²—संज्ञा पुं० [देश०] कोयरी। काछी।

मराल¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मराली**] १. एक प्रकार की बत्तख जो हलकी ललाई लिए सफेद रंग की होती है। २. घोड़ा। ३. हाथी। ४. कारंडव नामक पक्षी। ५. हंस। उ०—सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से।—तुलसी (शब्द०)। ६. अनार की वाटिका। ७. काजल। ८. बादल। ९. दुष्ट। खल।

मराल²—वि० मृदु। कोमल। मुलायम [को०]।

मरालक—संज्ञा पुं० [सं०] हंस पक्षी [को०]।

मरालिका—संज्ञा पुं० [सं०] शिकाकाई का पौधा या उसकी फली [को०]।

मरालीⓅ—वि० [सं० **मराल**+हिं० **ई** (प्रत्य०)] हंस का। हंस संबंधी। विवेक और ज्ञान का। उ०—मैं पामर गुणहीन कुचाली। तुम्ह दीन्हेउ मोहि पंथ मराली।—कबीर सा० पृ० ४३८।

मरिंदⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मलिंद', 'मिलिंद'। २. दे० 'मरंद'।

मरिखम—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल+स्तम्भ, हिं० **मलखंभ**] दे० 'मलखंभ'।

मरिच—संज्ञा पुं० [सं०] मिरिच। काली मिरिच। उ०—पीपर मरिच मंगलिय आनहु। शुंठी हरर बहेर बखानहु।—पृ० रासो०, पृ० १७।

मरिचा—संज्ञा पुं० [सं० **मरिच**] बड़ी लाल मिरिच। विशेष—दे० 'मिरिच'।

मरिजीवाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मरजीवा'। उ०—सुंदर बैठि सकै नहि जीवत दै डुबकी मरिजीवहि जाही।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ७।

मरियम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह बालिका जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। कन्या। २. पतिव्रता और साध्वी स्त्री। ३. ईसा मसीह की माता का नाम।

विशेष—कहते हैं, इन्हें कौमार अवस्था में ही बिना किसी पुरुष के संयोग के, ईश्वरी माया से, गर्भ रह गया था जिससे महात्मा मसीह का जन्म हुआ था।

मरियम का पंजा—संज्ञा पुं० [अ० **मरियम**+हिं० **पंजा**] एक प्रकार की सुगंधित वनस्पति जिसका आकार हाथ के पंजे का सा होता है।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है, कि ईसा मसीह की माता मरियम ने प्रसव के समय इस वनस्पति पर हाथ रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसव पीड़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीड़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

मरियल—वि० [हिं० **मरना+इयल** (प्रत्य०)] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

यौ०—**मरियल टट्टू**=बहुत सुस्त या कमजोर आदमी।

मरिया†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मढ़ना**] १. वह रस्सी जो खाट में पायताने की ओर उंचन लगाकर ऊपर से एक पट्टी से दूसरी पट्टी तक बाने की तरह बाँधी जाती है। २. नाव में वह तख्ता जो उसके पेंदे में गूढ़े के नीचे बेड़े बल में लगा रहता है। मढ़िया।

मरिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मारना**] लोहे की एक छोटी हथौड़ी जिससे धातुओं पर खुदाई का काम करनेवाले कलम को ठोकते हैं।

मरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **मारी**] वह रोग जो स्पर्शदोष से फैलता है और जिसमें एक साथ बहुत से लोग मरते हैं। मारी। उ०—इस ही बीच ईति बिस्तरी। परी आगरे पहिली मरी।—अर्ध०, पृ० ५२।

मरी²—संज्ञा स्त्री० [**हिं० मारना**] एक प्रकार का भूत। मरही।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह किसी ऐसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्री की प्रेतात्मा होती है जो किसी रोग, आघात अथवा किसी अन्य कारणवश पूर्णायु को न पहुँचकर अल्पायु में मरी हो।

मरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] देशी सागूदाने का पेड़।

विशेष—यह भारतवर्ष तथा लंका सिंगापुर आदि द्वीपों में उत्पन्न होता है। यह पेड़ देखने में बहुत सुंदर मालूम होता है।

इससे ताड़ी निकाली जाती है जिसे लोग पीते हैं और जिससे गुड़ भी बनाते हैं। इसकी कोमल बालों या मंजरी की तरकारी बनाई जाती है। इसके पुराने स्कंध में के गूदे से सागूदाना निकलता है जो पानी में पकाकर खाया जाता है या पीसकर जिसकी रोटियाँ बनाई जाती है; और रेशे से कूँची, ब्रुश, रस्सी और जाल बनाए जाते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत और टिकाऊ होती है। इसे भेरवा भी कहते हैं।

मरीच¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मरिच', 'मिरिच' [को०]।

मरीच(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० मारीच] दे० 'मारीच'। उ०—कंचन मृग रूप मरीच कियो, सीता मुख आगल नीसरियो।—रघु० रू०, पृ० १३३।

मरीचि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम।

विशेष—पुराणों में इन्हें ब्रह्मा का मानसिक पुत्र लिखा है, एक प्रजापति माना है और सप्तर्षियों में गिनाया गया है। किसी किसी पुराण में इनकी स्त्री का नाम 'कला' और किसी किसी में 'संभूति' लिखा है।

२. एक मरुत् का नाम। ३. एक ऋषि का नाम जो भृगु के पुत्र और कश्यप के पिता थे। ४. दनु के एक पुत्र का नाम। ५. प्रियव्रतवंशी एक राजा का नाम। ६. एक प्राचीन मान जो छह त्रसरेणु के बराबर होता है। ७. एक दैत्य का नाम। ८. कृष्ण का एक नाम (को०)। ९. एक पुरातन स्मृतिकार का नाम (को०)। १० कृपण। कदर्य (को०)।

मरीचि²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरण। उ०—(क) अति सुकुमारी वृषभान की दुलारी सो कैसे सहै प्यारी मरीचै मारतंड की।—सरलाबाई (शब्द०)। (ख) कित्ति सुधा दिग भित्त पखारत चंद मरीचिन को करि कूचो।—मतिराम (शब्द०)। (ग) रघुनाथ पिय बस करिबे को चली बाल मुख की मरीचि जल दिसि मढ़ि कै लई।—रघुनाथ (शब्द०)। २. प्रभा। कांति। ज्योति। उ०—कीधौं मृगलोचन मरीचिका मरीचि किधौं रूप की रुचिर रुचि शुचि सों दुराई है।—केशव (शब्द०)। ३. मरीचिका। मृगतृष्णा। उ०—बीच मरीचिनु के मृग लौं अब धावै न रे सुन काहू नरिंद के।—देव (शब्द०)।

मरीचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मृगतृष्णा। सिरोह। २. किरण। उ०—बारिज बरत बिन वारे वारि बारु बीच बीच बीच बीचिका मरीचिका सी छहरी।—देव (शब्द०)। (ख) चहचही सेज चहूँ चहक चमेलिन सों, बेलिन सो मंजु मंजु गुंजन मलिंद जाल। तैसई मरीचिका दरीचिन के दीबे ही में, छपा की छबीली छबि छहरत तत्काल।—देव (शब्द०)।

मरीचिगर्भ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. दक्षसावर्णि मन्वंतर में होनेवाले एक प्रकार के देवताओं का गण।

मरीचिगर्भ²—वि० प्रकाशकणों से युक्त [को०]।

मरीचिजल—संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा।

मरीचितोय—संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा।

मरीचिप—वि० [सं०] प्रकाश कणों का पान करनेवाले (बालखिल्य ऋषि)।

मरीचिमान्—वि०, संज्ञा पुं० [सं० मरीचिमत्] दे० 'मरीचिमाली'।

मरीचिमाली¹—वि० [सं० मरीचिमालिन्] [वि० स्त्री० मरीचिमालिनी] किरणयुक्त। ज्योतिर्मय। चमकता हुआ [को०]।

मरीचिमाली²—संज्ञा पुं० सूर्य।

मरीची¹—वि० [सं० मरीचिन्] [वि० स्त्री० मरीचिनी] किरणयुक्त। जिसमें किरणें हों।

मरीची²—संज्ञा पुं० १ सूर्य। २. चंद्रमा।

मरीज—वि० [अ० मरीज़] रोगी। रोगग्रस्त। बीमार।

मरीजा—संज्ञा स्त्री० [अ० मरीज़ह्] बीमार स्त्री। रोगिणी [को०]।

मरीना—संज्ञा पुं० [स्पेनी० मेरिनो] एक प्रकार का बहुत मुलायम ऊनी पतला कपड़ा जो मेरीनो नामक भेड़ के ऊन से बनता है।

मरुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० मरुण्डा] उच्च ललाटवाली स्त्री [को०]।

मरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह भूमि जहाँ जल न हो और केवल बलुआ मैदान हो। मरुस्थल। निर्जल स्थान। रेगिस्तान। मरुभूमि। २. वह पर्वत जिसमें जल का अभाव हो। ३. मारवाड़ और उसके आसपास के देश का नाम। ४. मरुआ नामक पौधा। ५. एक सूर्यवंशी राजा का नाम। ६. नरकासुर के एक सहचर असुर का नाम। ७. कुरवक नामक पौधा।

मरु(पु)²—वि० [सं० मेरु या हिं० मरना] कठिन। दुरूह। दे० 'मरू'। उ०—कल्प समान रैन तेहिं बाढ़ी। तिल तिल मरु जुग जुग पर गाढ़ी।—जायसी (शब्द०)।

मरुअटि—संज्ञा स्त्री० [देश०] वे रोली के टीके जो हल्दी चढ़ जाने के बाद मुँह पर लगाए जाते हैं। उ०—भूआ भेंना करें आरती, माँथें मरुअटि लगवाँमें, ऊपर चाँमर चुपटाँमें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३५।

मरुआ¹—संज्ञा पुं० [सं० मरुव] बनतुलसी या बबरी की जाति के एक पौधे का नाम। नागबेल। नादबोई। उ०—अति व्याकुल भइ गोपिका ढूँढ़त गिरिधारी। बूझति हैं बनबेलि सों देखे बनवारी। बूझा मरुआ कुंद सौ कहे गोद पसारी। बकुल बहुल बट कदम पै ठाढ़ी ब्रजनारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह पौधा बागों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ बबरी की पत्तियों से कुछ बड़ी, नुकीली, मोटी, नरम और चिकनी होती हैं जिनमें से उग्र गंध आती है। इसके दल देवताओं पर चढ़ाए जाते हैं। इसका पेड़ डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और इसकी फुनगी पर कार्तिक अगहन में तुलसी की भाँति मंजरी निकलती है जिसमें नन्हें नन्हें सफेद फूल लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर बीजों से भरे हुए छोटे छोटे बीजकोश निकल आते हैं जिनमें से पकने पर बहुत बीज निकलते हैं। ये बीज पानी में पड़ने पर ईसबगोल की तरह फूल जाते हैं। यह पौधा बीजों से उगता है; पर यदि इसकी कोमल टहनी या फुनगी लगाई जाय तो वह भी लग जाती है। रंग के भेद

से मरुआ दो प्रकार का होता है, काला और सफेद। काले मरुए का प्रयोग ओषधि रूप में नहीं होता और केवल फूल आदि के साथ देवताओं पर चढ़ाने के काम आता है। सफेद मरुआ ओषधियों में काम आता है। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, रूखा और रुचिकर तथा तीखा, गरम, हलका, पित्तवर्धक, कफ और वात का नाशक, विष, कृमि और कुष्ठ रोग नाशक माना गया है।

पर्या०—**मरुवक। मरुत्तक। फणिज्जक। प्रस्थपुष्प। समीरण। कुलसौरभ। गंधपत्र। खटपत्र।**

मरुआ[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मराड या मेरु या अनु०**] १. मकान की छाजन में सब से ऊपर की बल्ली जिसपर छाजन का ऊपरी सिरा रहता है। बँड़ेर। २. जुलाहों के करघे में लकड़ी का वह टुकड़ा जो डेढ़ बालिश्त लंबा और आठ अंगुल मोटा होता है और छत की कड़ी में जड़ा होता है। ३. हिंडोले में वह ऊपर की लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है या हिंडोले को लटकाने की लकड़ी जड़ी या लगाई जाती है। उ०—कंचन के खंभ मयारि मरुआ डाँड़ी खचित हीरा बीच लाल प्रवाल। रेसम बुनाई नवरतन लाई पालनो लटकन बहुत पिरोजा लाल।—सूर (शब्द०)।

मरुआ[3]—संज्ञा पुं० [हिं० **माँड़**] माँड़।

मरुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोर। २. एक प्रकार का मृग।

मरुकच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रदेश का नाम।

विशेष—यह दक्षिण दिशा में है और हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों के अधिकार में माना गया है।

मरुकांतार—संज्ञा पुं० [सं० **मरुकान्तार**] बालू या रेत का मैदान। रेगिस्तान। मरुभूमि।

मरुकुच्च—संज्ञा पुं० [सं० **मरुकुत्स**, प्रा० **मरुकुच्च**] दे० 'मरुकुत्स'।

मरुकुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] वाराही संहिता के अनुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के अनुसार पश्चिमोत्तर दिशा में है और जो उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों के अधिकार में है।

मरुचीपट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण दिशा के एक देश का नाम जो हस्त, चित्रा और स्वाती के अधिकार में है।

मरुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. नख नामक सुगंधित द्रव्य। २. बाँस का कल्ला।

मरुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायण की जाति की एक लता जो मरुस्थल में होती है।

मरुजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। कौंछ।

मरुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका ललाट ऊँचा हो।

मरुत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देवगण का नाम।

विशेष—वेदों में इन्हें रुद्र और वृश्नि का पुत्र लिखा है और इनकी संख्या ६० की तिगुनी मानी गई है; पर पुराणों में इन्हें कश्यप और दिति का पुत्र लिखा गया है जिसे उसके वैमात्रिक भाई इंद्र ने गर्भ काटकर एक से उनचास टुकड़े कर डाले थे, जो उनचास मरुद् हुए। वेदों में मरुद्गण का स्थान अंतरिक्ष लिखा है, उनके घोड़े का नाम 'पृशित' बतलाया है तथा उन्हें इंद्र का सखा लिखा है। पुराणों में इन्हें वायुकोण का दिक्पाल माना गया है।

२. वायु। वात। हवा। ३. प्राण। ४. हिरण्य। सोना। ५. एक साध्य का नाम। ६. सौंदर्य। ७. बृहद्रथ राजा का एक नाम। ८. मरुआ। ९. ऋत्विक्। १०. गठवन। ११. असवर्ग। १२. दे० 'मरुत्त'।

मरुतजण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मरुत्+जन**] राक्षस। उ०—कंत कमला कलह रटक पाण करे, घाव बाण करे कटक घाया, मरुतजण मोह सू।—रघु० रू०, पृ० १३१।

मरुतवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मरुत्वत्**] दे० 'मरुत्वान्'।

मरुत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] राजमाष। उड़द।

मरुत्त—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक चक्रवर्ती राजा जो चंद्रवंशी महाराज करंधर के पुत्र अवीक्षित का पुत्र था।

विशेष—इसने अनेक बार बड़े बड़े यज्ञ किए थे जिनमें समस्त यज्ञपात्र सोने के बनवाए थे। इसके प्रभावती, सौवीरा, सुकेशी, केकयी, सैरंध्री, वसुमती और सुशोभना नाम की सात रानियाँ थीं, जिनसे अठारह लड़के उत्पन्न हुए थे। भागवत में इसे यदुवंशी और करंधर का पुत्र लिखा है।

मरुत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मरुआ नामक पौधा।

मरुत्तनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान्। २. भीमसेन [को०]।

मरुत्पट—संज्ञा पुं० [सं०] पाल [को०]।

मरुत्पति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

मरुत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

मरुत्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

मरुत्प्लव—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

मरुत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] ओला।

मरुत्वती—संज्ञा स्त्री० [सं० **मरुत्वती**] धर्म की पत्नी का नाम। यह प्रजापति की कन्या थी।

मरुत्वर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० **मरुत्वर्त्मन्**] आकाश [को०]।

मरुत्वान्—संज्ञा पुं० [सं० **मरुत्वत्**] १. इंद्र। २. महाभारत के अनुसार देवताओं के एक गण का नाम जो धर्म के पुत्र माने जाते हैं। २. हनुमान्।

मरुत्सख—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. अग्नि।

मरुत्सहाय—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

मरुत्सुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। २. भीम।

मरुत्सूनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। २. भीम [को०]।

मरुत्स्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ।

मरुथल—संज्ञा पुं० [सं० **मरुस्थल**] दे० 'मरुस्थल'। उ०—सूख गए

सर, सरित, द्वार निस्सीम जलधि का जल है। ज्ञानघूर्णि पर चढ़ा मनुज को मार रहा मरुथल है।—नील०, पृ० ८४।

मरुद्—संज्ञा पुं० [सं०] 'मरुत्' का समासगत रूप [को०]।

मरुदांदोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धौंकनी। २. प्राचीन काल की एक प्रकार की धौंकनी जो हरिन या भैंस के चमड़े से बनती थी।

मरुदिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल। गूगुल।

मरुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ऋषभदेव के पिता का नाम।

मरुद्गण—संज्ञा पुं० [सं०] देवगण जो पुराणों में ४९ माने जाते हैं। विशेष दे० 'मरुत्–१'।

मरुद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. वह यान जिसमें देवमूर्तियाँ रखकर घुमाई जाती हैं। देवयान [को०]।

मरुद्वर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

मरुद्वधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की एक नदी का वैदिक नाम।

मरुद्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. धूँआ। २. आग।

मरुद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

मरुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपजाऊ और सजल हरा भरा स्थान जो मरुस्थल में हो। ओसिस।

मरुद्वेग—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।

मरुधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० मरुधन्वन्] १. मरुस्थल। निर्जल प्रदेश। २. इंदीवर नामक विद्याधर के पुत्र का नाम।

मरुधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मारवाड़ देश। उ०—प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि।—बिहारी (शब्द०)। २. मरुभूमि। मरुस्थल।

मरुन्माला—संज्ञा पुं० [सं०] पृक्का नाम की लता। असबर्ग।

मरुभूमि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू का निर्जल मैदान जहाँ कोई वृक्ष या वनस्पति आदि न उगती हो। रेगिस्तान।

मरुभूमि²—संज्ञा पुं० [सं०] करील का पेड़।

मरुमरीचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मरु + मरीचिका] दे० 'मृगतृष्णा'। उ०—भारी मरुमरीचिका की सी ताक रही उदास आकाश। —अपरा, पृ० १०८।

मरुर—संज्ञा पुं० [सं० मूर्वा] गोरचकरा।

मरुरनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० मरोरना] 'मरोरना' का अकर्मक रूप। ऐंठना। बल खाना। उ०—(क) तीखी दीठ तूख सी पतूख सी अहरि, अंग ऊख सी मरुरि मुख लागति महूख सी।—देव (शब्द०)। (ख) मरुरत अंगन अमर रतरंग केश मरुरत नाथ देव जीति कै जगत है।—देव (शब्द०)।

मरुल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बत्तक की एक जाति का नाम। कारंडव।

मरुव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरुआ। २. राहु (को०)।

मरुवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक कँटीले पेड़ का नाम जिसे मैनी कहते हैं। २. मरुआ। नागदौना। ३. तिल का पौधा। ४. व्याघ्र। बाघ। ५. राहु।

मरुवटⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मरवट'। उ०—मौर बँध्यो सिर कानन कुंडल मरुवट मुखहिं सुभाएँ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४६।

मरुवा†—संज्ञा पुं० [सं० मरुवक] दे० 'मरुआ'। उ०—सुभग सेज पटुली सुख बाढ़्यो मरुवा बेलिन प्राची कोरैं। नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

मरुसंभव—संज्ञा पुं० [सं० मरुसम्भव] एक प्रकार की छोटी मूली।

मरुसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० मरुसम्भवा] १. महेंद्रवारुणी। २. एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ बहुत छोटा होता है। ३. छोटा धमास। क्षुद्र जवास। ४. एक प्रकार का कनेर।

मरुसा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मरसा'।

मरुस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] बालू का मैदान जिसमें निर्जल होने के कारण कोई वृक्ष या वनस्पति न उगती हो। मरुभूमि। रेगिस्तान। उ०—नवकोटि मरुस्थल बीर बरं। दश अट्ठ सुअर्बुद राज धरं।—पृ० रा०, १२।४३।

मरुस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा धमास।

मरूⓅ—वि० [सं० मेरु या हिं० मरना] कठिन। दुरूह।

मुहा०—मरू करि के या मरू करिⓅ = कठिनाई से। ज्यों त्यों करके। बहुत मुश्किल से। उ०—(क) ता कहँ तौ अब लौं बहराइ कै राखी बसाई मरू करि मैं है। केशव (शब्द०)। (ख) देह में नेक सँभार रह्यो न यहाँ लगि भाजि मरू करि आई।—मति० ग्रं०, पृ० २८६। (ग) अँसुआ ठहरात गरौ घहरात मरू करि आधिक बात कहीं।—देव (शब्द०)। (घ) द्यौस तो बीत्यो मरू करिके अब आई है राति सो कैसे धौं बीतिहै।—(शब्द०)।

मरूक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मृग। २. मयूर। मोर। ३. मेढक (को०)।

मरूद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवास। २. कपास। ३. एक प्रकार का खैर।

मरूर¹—संज्ञा पुं० [सं०] गोरचकरा।

मरूरⓅ²—संज्ञा स्त्री० [हिं० मरोड़] पीड़ा। उ० भरति मरूरनि विसूरनि उदेग बढ़ि चित चरपटी मति चिंता पागिए रहै।—घनानंद, पृ० ५८७। २. दे० 'मरूरा'।

मरूर³—वि० ऐंठवाला। बली। उ०—जुरे रजपुत्त मरद्द मरूर। —प० रासो, पृ० ४१।

मरूराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० मरोड़] ऐंठन। बल। मरोड़।

मुहा०—मरूरा देना = बल देना। मरोड़ना। उमेठना। उ०—मुख के पवन परस्पर सुखवत गहे पानि पिय जूरो। बूझति जानि मन्मथ चिनगी फिर मानो दियो मरूरो।—सूर (शब्द०)।

मरूल—संज्ञा पुं० [सं० मूर्वा] गोरचकरा। मरूर।

मरेठी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलना + ऐंठना] वह रस्सी जिससे हेंगा

या पटेला बाँधकर खेत में खींचा या चलाया जाता है। बरहा। बेड़। गुरिया। बखर।

मरेठी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुलेठी**, तुल० सं० **मधुयष्टि**] दे० 'मुलेठी'।

मरेरना—क्रि० स० [हिं० **मरोरना**] पीड़ित करना। व्यथा पहुँचाना। उ०—कवि ठाकुर वे पिय दूर बसैं तन मैन मरोर **मरेरती** सी। —ठाकुर०, पृ० ७८१।

मरोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरोड़ना**] १. मरोड़ने का भाव या क्रिया। उ०—मानत लाज लगाम नहिं नेकु न गहत मरोर। होत तोहि लखि बाल के दृग तुरंग मँह जोर।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—**मरोड़ खाना**=चक्कर खाना। उ०—न्हाय बसन पहिरन लगी बस न चल्यो चित चोर। खाय मरोड़ खड़े गिरयो गड़े कड़े कुच कोर।—रामसहाय (शब्द०)। **मन में मरोड़ करना**=मन में दुराव या कपट रखना। कपट करना। उ०—साधू आवत देखि के मन में करत मरोर। सो होवेगा चूहड़ा बसे गाँव की ओर।—कबीर (शब्द०)। **मरोड़ की बात**=पेंचदार बात। घुमाव की बात।

२. मरोड़ने से पड़ा हुआ घुमाव। ऐंठन। बल। ३. उद्वेग आदि के कारण उत्पन्न पीड़ा। व्यथा। क्षोभ। उ० (क) घिरि आए बहु ओर घन तेहिं तकि मारेस सोर। मोर सोर सुनि होत री तन में अधिक मरोर।—रामसहाय (शब्द०)। (ख) झिलत झकोर रहै जोबन को जोर रहै समद मरोर रहै शोर रहै तब सों। —पद्माकर (शब्द०)। (ग) इक तो मार मरोर ते मरति भरति है साँस। दूजे बारत मास री यह सुचि लौं सुचि मास।—रामसहाय (शब्द०)।

मुहा०—**मरोड़ खाना**=उलझन में पड़ना। उ०—गुलफनि लों ज्यों त्यों गयो करि करि साहस जोर। फिर न फिरयो मुरवान चपि चित अति खात मरोर।—रामसहाय (शब्द०)।

४. पेट में ऐंठन और पीड़ा होना। पेट ऐंठना। ५. घमंड। गर्व। उ०—आए आप भली कही मेटन मान मरोर। दूर करौ यह देखिहै छला छिगुनिया छोर।—बिहारी (शब्द०)। ६. क्रोध। गुस्सा।

मुहा०—**मरोड़ गहना**=क्रोध करना। उ०—रह्यो मोह मिलना रह्यो यों कहि गहैं मरोर। उत दै सखिहि उराहनो इत चितई मो ओर।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—पुरानी कविताओं में प्रायः 'मरोड़' के स्थान में 'मरोर' ही पाया जाता है।

मरोड़ना[१]—क्रि० स० [हिं० **मोड़ना**] १. एक ओर से घुमाकर दूसरी ओर फेरना। बल डालना। ऐंठना। उ०—(क) बाँह मरोरे जात हौ मोहि सोवत लियो जगाय। कहै कबीर पुकारि कै यहि पैंड़े ह्वै कै जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) गोड़ चाप लै जीभ मरोरी। दधि ढरकायो भाजन फोरी।—सूर (शब्द०) (ग) कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी।—तुलसी (शब्द०)। (घ) मोहि झकझोरि डारी कुच को मरोर डारी तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यों।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र० **देना**। **डालना**।—**पड़ना**।

मुहा०—**अंग मरोड़ना**=अँगड़ाई लेना। उ०—सब अंग मरोरि मुरो मन मैं भरि पूरि रही रस मैं न भई। गुमान (शब्द०)। **भौंह मरोड़ना या दृग** (आदि) मरोड़ना=(१) भ्रूभंग करना। आँख से इशारा करना या कनखी मारना। उ०—(क) अंतर में पति की सुरति गहि गहि गहकि गुनाह। दृग मरोरि मुख मोरि तिय छुवन देत नहिं छाँह।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) पान दियो हँसि प्यार सों प्यारी बहू लखि त्यों हँसि भौंह मरोरी।—देव (शब्द०)। (२) नाक भौंह चढ़ाना। भौंह सिकोड़ना। उ०—(क) हौं हूँ गई पदुमाकर दौरि सो भौंह मरोरत सेज लौं आई।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) मुनि सौतिन के गुन की चरचा द्विज जू तिय भौंह मरोरन लागी।—द्विजदेव (शब्द०)।

२. ऐंठकर नष्ट करना या मार डालना। उ०—(क) महाबीर बाँकुरे बराकी बाँह पीर क्यों न लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोर मारियो। तुलसी (शब्द०)। (ख) माँड़ि मारयो कलह बियोग मारयो बोरि कै मरोरि मारयो अभिमान भरयो भय मान्यो है।—केशव (शब्द०)। (ग) कपि पुनि उपवन बारिहि तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**डालना**।—**देना**।

३. पीड़ा देना। दुःख देना। वेदना उत्पन्न करना। उ० (क) बार बधू पिय पंथ लखि अँगरानी अंग मोरि। **पौढ़ि** रही परयंक मनु डारी मदन मरोरि।—मतिराम (शब्द०)। (ख) एक आली गई कहि कान में आइ परी जहाँ मैन मरोरी गई।—वेणी (शब्द०)। ४. मलना। मींजना। मसलना।

मुहा० **हाथ मरोड़ना**(पु)=हाथ मलना। पछताना। उ०—(क) अब पछताब दरब जस जोरी। करहु स्वर्ग पर हाथ मरोरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुरुष पुरातन छाड़ि कर चली आन के साथ। लोभी संगत बीछुड़ी खड़ी मरोरइ हाथ।—दादू (शब्द०)।

विशेष—पुरानी कविताओं में 'मरोड़ना' का रूप प्रायः 'मरोरना' ही पाया जाता है।

मरोड़ना[२]—क्रि० अ० पेट ऐंठना। पेट में ऐंठन उत्पन्न होना।

मरोड़फली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरोड़**+**फली**] एक प्रकार की फली जो प्रायः पेट के मरोड़ के लिये गुणकारी होती है। मुर्रा। अवतरनी।

मरोड़ा—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरोड़ना**] १. ऐंठन। मरोड़। उमेठ। बल। २. पेट की वह पीड़ा जिसमें अंदर की ओर कुछ ऐंठन सी जान पड़ती हो।

विशेष—यह एक रोग है जिसमें मलोत्सर्ग के समय पेट में ऐंठन सी होती है और प्रायः कोष्ठबद्ध रहता है। कभी कभी आँव के साथ भी मरोड़ होता है।

क्रि० प्र०—**उठना**।—**पड़ना**।

मरोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरोड़ना**] १. ऐंठन । घुमाव । बल ।

मुहा०—**मरोड़ी करना** = खींचातानी करना । इधर उधर करना ।

२. वह बत्ती जो आटे आदि में सने हुए हाथों से मलने पर छूटकर निकलती है । ३. गुत्थी । गाँठ ।

मरोर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मरोड़' ।

मरोरना[१]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मरोड़ना' ।

मरोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरोड़ना**] दे० 'मरोड़ी' ।

मुहा०—**मरोरी करना** = इधर उधर करना । खींचातानी करना । उ०—नख सिख लों चित चोर सकल अंग चीन्हें पर कत करत मरोरी । एक सुनि सूर हहरयो मेरो सरबस अरु उलटी डोलों सँग डोरी ।—सूर (शब्द०) ।

मरोलि—संज्ञा पुं० [सं०] मकर की जाति का एक बड़ा सामुद्रिक जंतु ।

मरोह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **मरोर**] मरोर । मसोस । उ०—सपन जान चित उठा मरोहू । औटि करेज पानि या लोहू ।—चित्रा०, पृ० ३६ ।

मरौर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मरोड़' । उ०—उतही ते मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर । सीखति है मुग्धा मनो भयमिस भृकुटि मरौर ।—शकुंतला, पृ० १७ ।

मर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. देह । शरीर । २. वायु । हवा । ३. शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम । ४. बंदर ।

मर्कक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकड़ा । २. हरगीला नामक पक्षी ।

मर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंदर । बानर । उ०—मर्कट मूठि स्वाद नहिं बहुरै घर घर रटत फिरौ ।—कबीर ग्रं०, भा० २, पृ० १४० । २. मकड़ा । ३. हरगीला नामक पक्षी । ४. एक प्रकार का विष । ५. दोहे के एक भेद का नाम जिसमें सत्रह गुरु और चौदह लघु मात्राएँ होती हैं । जैसे,—ब्रज में गोपन संग मैं राधा देखे श्याम । ६. छप्पय का आठवाँ भेद जिसमें ६३ गुरु, २६ लघु कुल ८९ वर्ण या १५२ मात्राएँ या ६३ गुरु, २२ लघु कुल ८५ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं ।

मर्कटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बानर । बंदर । २. मकड़ी । ३. एक प्रकार की मछली । ४. मडुआ नामक अन्न । ५. मकरा नामक घास । ६. एक दैत्य का नाम ।

मर्कटतिंदुक—संज्ञा पुं० [सं० **मर्कटतिन्दुक**] कुपीलु ।

मर्कटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] बंदरों का राजा, सुग्रीव ।

मर्कटपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग । चिचड़ा ।

मर्कटप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] खिरनी का पेड़ ।

मर्कटबास—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी का जाला ।

मर्कटशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल ।

मर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बानरी । बँदरी । २. मकड़ी । ३. भूरी केवाँच । कौंछ । ४. अपामार्ग । ५. अजमोदा । ६. एक प्रकार का करंज । ७. छंद के ९ प्रत्ययों में से अंतिम प्रत्यय ।

विशेष—इसके द्वारा मात्रा के प्रस्तार में छंद के लघु, गुरु, कला और वर्णों की संख्या का परिज्ञान होता है ।

मर्कटेंदु—संज्ञा पुं० [सं० **मर्कटेन्दु**] कुचिला ।

मर्कत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मरकत**] दे० 'मरकत' ।

मर्कब—संज्ञा पुं० [अ०] १. सवारी । वाहन । २. घोड़ा । अश्व । उ०—खाक बाव अब आतरस लाया । सिकम माए कै मर्कब बनाया ।—संत० दरिया, पृ० १३ ।

मर्कर—संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज । भँगरा । भँगरैया ।

मर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुरंग । २. तहखाना । ३. भाँड़ा । बर्तन । ४. बाँझ स्त्री ।

मर्ग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मौत । उ०—नालए रश्क न हो बायसे दरदे सरे मर्ग । गैर के सर पै लगाता है वह संदल घिस्के ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८६ ।

मर्घटी(पु)—वि० [हिं० **मरघट**] मरघट का । श्मशान संबंधी । मसान का । उ०—हाड़ की कंठ मैं चारु माला धरे । मर्घटी खोपड़ी में अहारै करे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५९ ।

मर्चा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिर्च' ।

मर्चेंट—संज्ञा पुं० [अं०] व्यापार वाणिज्य करनेवाला । व्यापारी । सौदागर ।

मर्ज—संज्ञा पुं० [अ० **मर्ज़**] १. रोग । व्याधि । बीमारी । २. आदत । लत । व्यसन । ३. दुःख । कष्ट [को०] ।

मर्जबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मर्ज़बान**] किसान । कृषक । काश्तकार । उ०—यह मुगल सल्तनत का मर्जबान था और उसका सरबराकार विनायक था ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ६७ ।

मर्जादा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्य्यादा**] दे० 'मर्यादा' । उ०—आज समुद्र ने अपनी मर्जादा छोड़ दी ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ७३ ।

मर्जी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मर्ज़ी**] दे० 'मरजी' ।

मर्जू[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोबी । २. गुदाभंजन करानेवाला । लौंडा [को०] ।

मर्जू[२]—संज्ञा स्त्री० धोना । साफ करना [को०] ।

मर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य । २. भूलोक ।

मर्तबा—संज्ञा पुं० [अ० **मर्तबह्**] १. पद । पदवी । जैसे,—आज कल वे अच्छे मर्तबे पर हैं । (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—**चढ़ना** ।—**देना** ।—**पाना** ।—**बढ़ना** ।—**मिलना** ।

२. बार । बेर । दफा । जैसे,—मैं आपके मकान पर कई मर्तबा गया था, पर आप नहीं मिले ।

मर्तबान[१]—संज्ञा पुं० [सं० मृद्भाण्ड, हिं० **अमृतबान**] रोगनी बर्तन जिसमें अचार, मुरब्बा, घी आदि रखा जाता है । अमृतबान ।

मर्तबान[२]—संज्ञा पुं० [देश० वा **बरमी**] भारत की पूर्वी सीमा से सटे हुए बर्मा राज्य के पेगू प्रदेश का एक नगर और समुद्र की खाड़ी । रंगून, मोलमिन बंदरगाह इसी खाड़ी में हैं ।

मर्त्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य । २. भूलोक । ३. शरीर ।

मर्त्य[२]—वि० मरणशील । नश्वर [को०] ।

मर्त्यधर्मा—वि० [सं० **मर्त्यधर्मन्**] मरणशील । नश्वर [को०] ।

मर्त्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मानव स्वभाव । मानवीय प्रकृति [को०] ।

मर्त्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मर्त्यमुखी**] किन्नर ।

मर्त्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी । मनुष्यलोक ।

मर्द[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुल० सं० **मर्त्त और मर्त्य**] १. मनुष्य । पुरुष । आदमी । २. साहसी पुरुष । पुरुषार्थी मनुष्य । उ०—मर्द शीश पर नवे मर्द बोली पहिचाने । मर्द खिलावे खाय मर्द चिंता नहिं आने । मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावे । गहिरे सँकरे काम मर्द के मर्दै आवै । पुनि मर्द उन्हीं को जानिए दुख सुख साथी कर्म के । बैताल कहै सुन विक्रम, तू ये लच्छण मर्द के ।—(शब्द०) ।

मुहा०—**मर्द आदमी** = (१) भला आदमी । सभ्य पुरुष । (२) वीर । बहादुर । **मर्द बच्चा** = वीर बालक । **मर्द की दुम** = अपने को बहादुर लगानेवाला (व्यंग्य) । उ०—बड़े मर्द की दुम हो गोली चलाओ न जब जानें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६० ।

३. वीर पुरुष । योद्धा । जवान । उ०—चलेउ भूप गोनर्द वर्द बाहन समान बल । संग लिए बहु मर्द गर्द लखि होत अपर-दल ।—गिरधरदास (शब्द०) । ४. पुरुष । नर । जैसे—मर्द और औरतें । ५. पति । भर्ता ।

मर्द[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पीसना । मर्दन [को०] ।

मर्दक—वि० [सं०] दे० 'मर्द्दक' ।

मर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मर्द्दन' । उ०—(क) तेरा नाम तभी है, जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरणतल में मर्दन करे ।—राधाकृष्ण (शब्द०) । (ख) मर्दनीक मर्दन करै बढ़ै धात तन बेल ।—पृ० रा०, ६।१३० ।

मर्दनाⓅ—क्रि० स० [सं० **मर्दन**] १. अंग आदि पर जोर से हाथ फेरना । मालिश करना । उ०—तन मर्दति पिय के तिया, दरसावति झुट रोष ।—पद्माकर (शब्द०) । २. उबटन तेल आदि को अंगों पर चुपड़कर बलपूर्वक चुपड़े हुए स्थान पर बार बार हाथ फेरना जिससे अंग में उसका सार या स्निग्ध अंश घुस जाय । मलना । ३. चूर्णित करना । तोड़ फोड़ डालना । ४. मसककर विकृत करना । नाश करना । कुचलना । रौंदना । उ०—(क) कबहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खे । कबहुँ बाजि सन बाजि मर्दि गजराज करक्खे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) खाऐसि फल अरु विटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) जेहि शर मधु मद मर्दि महासुर मर्दन कीन्हों । मारचो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीन्हों ।—केशव (शब्द०) ।

मर्दनीकⓅ—वि० [सं० **मर्दन** + हिं० **ईक** (प्रत्य०)] मर्दन करनेवाला । मालिश करनेवाला । उ०—करि पावँन पवित्र बर मोहन सुरभि सुतेल । मर्दनीक मर्दन करै, बढ़ै धात तन बेल ।—पृ० रा०, ६।१३० ।

मर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय होता है । मादल । मर्द्दल ।

मर्दानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'मरदानगी' ।

मर्दाना—वि० [फ़ा० **मर्दानह्**] १. पुरुष संबंधी । २. मनुष्योचित । ३. वीरोचित । ४. वीर । साहसी । ५. पुरुष का सा । पुरुषवत् ।

यौ०—**मर्दानावार** = वीरोचित । मर्द का सा । मर्द की तरह ।

मर्दित—वि० [सं०] दे० 'मर्द्दित' ।

मर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मरदानगी । वीरता । बहादुरी ।

मर्दुआ—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मर्द** + हिं० **उआ** (प्रत्य०)] १. नाम का मर्द । तुच्छ मनुष्य । २. पति । ३. पराया वा गैर आदमी (स्त्रियाँ) ।

मर्दुम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मनुष्य । आदमी । २. आँख की पुतली । कनीनिका (को०) ।

यौ०—**मर्दुमआज़ार** = अत्याचारी । **मर्दुमआज़ारी** = लोगों को सताना । अत्याचार । **मर्दुमआमेज** = लोगों में घुलमिलकर रहनेवाला । **मर्दुमखोर** । **मर्दुमशनास** = बुरे भले की परख करनेवाला । **मर्दुमशुमारी** ।

मर्दुमक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कनीनिका । आँख की पुतली [को०] ।

मर्दुमखोर—वि० [फ़ा० मर्दुमखोर] मनुष्य को खा जानेवाला । नरभक्षी । उ०—लगा काटनेवालों और रक्तपिपासु मर्दुमखोरों के बीच आ फँसा है ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ७ ।

मर्दुमशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. किसी देश में रहनेवाले मनुष्यों की गणना । मनुष्यगणना । जनगणना ।

विशेष—यद्यपि भारतवर्ष के मदरास और पंजाब प्रांतों में समय समय पर वहाँ के रहनेवालों की गिनती करने की प्रथा बहुत पूर्व से चली आती थी, पर पाश्चात्य देशों में नवीन प्रणाली की मनुष्यगणना की प्रथा रोम से आरंभ हुई है, जहाँ स्वतंत्र मनुष्यों के कुटुंब, संपत्ति, दास और मुखिया की परिस्थिति आदि का विवरण यथासमय लिखकर मनुष्यों की गणना की जाती थी । इंगलैंड में सबसे पहले मनुष्यगणना सन् १८०१ में प्रारंभ हुई और १८११ में आयरलैंड में गणना की चेष्टा हुई पर सन् १८५१ तक की मनुष्यगणना परिपूर्ण नहीं कही जा सकती । सन् १८६१ में नियमित रूप में इंगलैंड, स्काटलैंड और आयरलैंड में मनुष्यगणना प्रारंभ हुई, जिसमें प्रत्येक गाँव और नगर के मनुष्यों की आयु, वैवाहिक संबंध; पेशे, जन्मस्थान आदि का सविस्तार विवरण लिखा गया; और सन् १८७१ में व्यवस्थित रूप से राजकीय या इंपीरियल मनुष्यगणना हुई । ठीक इसी समय अर्थात् सन् १८६७ और १८७२ में भारतवर्ष में भी मनुष्यगणना प्रारंभ हुई । पर उस समय काश्मीर, हैदराबाद, राजपूताने और मध्यभारत के देशी राज्यों में मनुष्य-गणना नहीं हुई और गणना का प्रबंध भी समुचित नहीं था । भारतवर्ष की ठीक ठीक मनुष्यगणना का आरंभ १८८१ से माना जा सकता है । यह मनुष्यगणना १७ फरवरी को हुई थी । तबसे प्रति दसवें वर्ष प्रत्येक गाँव और नगर में रहने-

वालों का नाम, आयु, धर्म, जाति, शिक्षा, भाषा, व्यापार आदि का विवरण लिखा जाता है।

२. किसी स्थान में रहनेवाले मनुष्यों की संख्या। जनसंख्या। आबादी।

मर्दुमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मरदानगी। पौरुष। वीरता। २. पुंसत्व।

क्रि० प्र०—**दिखलाना**।—**रखना**।

मर्दूद—वि० [फ़ा०] दे० 'मरदूद'। उ०—कौन मर्दूद कह सकता है।—सैर कु०, पृ० १२।

मर्दे आदमी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] शरीफ वा सज्जन व्यक्ति।

मर्देखुदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मर्देखुदा] पवित्रात्मा। भक्त। उ०—नाम अपना जब सुने मर्देखुदा। किए दिल में यहाँ तो मैं रुसवा हुआ।—दक्खिनी०, पृ० २०३।

मर्देपीर—वि० [फ़ा० मर्द + पीर] पवित्रात्मा। फकीर। उ०—राह में एक बुजुर्ग मर्देपीर मियाँ साहब मिले।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३।

मर्द्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मर्द'[२]।

मर्द्दक—वि० [सं०] १. मर्दन करनेवाला। मर्दनकारक। २. दबानेवाला। तिरोभावक।

मर्द्दन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मर्द्दित] १. कुचलना। रौंदना। उ०—भगवान करें, इस दरबार में तुझे वही मिले जो महादेव जी के सिर पर है और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो काँटों को मर्द्दन करता है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. दूसरे के अंगों पर अपने हाथों से बलपूर्वक रगड़ना। मलना। जैसे,—तैल मर्द्दन करना। उ०—(क) तेल लगाइ कियो रुचि मर्द्दन वस्त्रादिक रुचि रुचि धोए। तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै विषयनि के मुख जोए।—सूर (शब्द०)। (ख) हरि मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पाँवड़े दीन्हें अंतर प्रेम बढ़ायो। आदर बहुत कियो यादवपति मर्द्दन करि अन्हवायो। चोवा चंदन और कुमकुमा परिमल अंग चढ़ायो।—सूर (शब्द०)। (ग) पादपद्म निति मर्द्दन करई। तन छाया सम निति अनुसरई।—शं० दि० (शब्द०)। ३. तेल, उबटन आदि शरीर में लगाना। मलना। उ०—भाव दियो आवैंगे श्याम। अंग अंग आभूषण साजति राजति अपने धाम। रति रण जानि अनंग नृपति सों आप नृपति राजति बल जोरति। अति सुगंध मर्द्दन अँग अँग ठनि बनि बनि भूषन भेषति।—सूर (शब्द०)। ४. द्वंद्व युद्ध में एक मल्ल का दूसरे मल्ल की गर्दन आदि पर हाथों से घस्सा लगाना। घस्सा। उ०—आकर्षण मर्द्दन भुजबंधन। दाँव करत भे कर धरि कंधन।—गोपाल (शब्द०)। ५. ध्वंस। नाश। उ०—जेहि शर मधुमद मर्दि महासुर मर्द्दन कीन्हों। मारचो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीन्हो।—केशव (शब्द०)। ६. रसेश्वरदर्शन के अनुसार अठारह प्रकार के रससंस्कारों में दूसरा संस्कार। इसमें पारे आदि को ओषधियों के साथ खरल करते या घोटते हैं। घोटना। ७. घोंटना। रगड़ना।

मर्द्दन[२]—वि० [वि० स्त्री० मर्द्दनी] नाशक। विनाशक। संहारकर्ता। उ०—(क) कुंद इंदु सम देह उमारमण करुना अयन। जाहि दीन पर नेह करहु कृपा मर्द्दन मयन।—तुलसी (शब्द०)। किन गजपति मर्द्दन प्रबल सिंह पींजरा दीन।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

मर्द्दल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का मृदंग की तरह का एक प्रकार का बाजा।

विशेष—इस बाजे का उल्लेख महाभारत में है और आजकल इसका प्रचार बंगाल में पाया जाता है; जहाँ यह विशेषकर मृतकों की अर्थी के साथ अथवा हरिकीर्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मर्द्दित—वि० [सं०] १. जो मर्द्दन किया गया हो। मला या मसला हुआ। २. टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ३. नष्ट किया हुआ।

मर्म—संज्ञा पुं० [सं० मर्म्म या मर्म्मन्] १. स्वरूप। २. रहस्य। तत्व। भेद।

क्रि० प्र०—**देना**।—**पाना**।—**लेना**।

यौ०—**मर्मज्ञ**।

३. संधिस्थान। ४. प्राणियों के शरीर में वह स्थान जहाँ आघात पहुँचने से अधिक वेदना होती है।

विशेष—वैद्यक में मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि के सन्निपात स्थान को मर्म माना गया है और वहाँ प्राणों का निवासस्थान लिखा गया है। प्रकृति, स्थान और परिणाम भेद से मर्म पाँच प्रकार के होते हैं और कुल मर्मों को संख्या १०७ मानी गई है। प्रकृति के विचार से मर्मों को संख्या इस प्रकार है—मांस मर्म ११, अस्थि मर्म ८, संधि मर्म २०, स्नायु मर्म २७ और शिरा मर्म ४१। स्थान के विचार से मर्मों की संख्या इस प्रकार है—सिकिथ (सिक्थ) या पैरों में २२, भुजाओं में २२ उर और कुक्षि में १२, पृष्ठ में १४ तथा ग्रीवा और ऊर्ध्व भाग में ३७। परिणाम के विचार से मर्मों की संख्या इस प्रकार है—सद्यः प्राणहर १९, कालांतर मारक ३३, वैकल्पकारक ४४, रुजाकारक ८ और विशल्यघ्न ३।

यौ०—**मर्मच्छेदन**। **मर्मप्रहार**। **मर्मभेदक**। **मर्मभेदी**। **मर्मवचन**। **मर्मस्पर्शी**।

मर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी। शौहर। पति [को०]।

मर्मग—वि० [सं०] अत्यंत तीक्ष्ण वा तीव्र। मर्मभेदी। अरुंतुद।

मर्मघाती—वि० [सं० मर्मघातिन्] मर्म पर चोट पहुँचानेवाला। अत्यंत पीड़ा देनेवाला [को०]।

मर्मघ्न—वि० [सं०] अत्यधिक कष्टकर [को०]।

मर्मचर—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय।

मर्मच्छिद्—वि० [सं०] दे० 'मर्मच्छेदी'।

मर्मच्छेदक—वि० [सं०] मर्मभेदक। मर्म भेदनेवाला।

मर्मच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणघातन। जान लेना। २. अधिक कष्ट देना। बहुत सताना।

मर्मच्छेदी—वि० [सं० मर्मच्छेदिन्] प्राणघातक। अत्यंत कष्टकर [को०]।

मर्मछवि—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्म + छवि] सुंदर रूप। वह रूप या

छवि जो मन को आकर्षित करे। उ०—हमारी समझ में यह प्रस्तुत अर्थ जीवन या जगत् की मर्मछवियों, वहाँ अनुस्यूत मूल्यों का ही पर्याय हो सकता है।—आचार्य०, पृ० १४५।

मर्मज्ञ—वि० [सं०] १. जो किसी बात का मर्म या गूढ़ रहस्य जानता हो। तत्वज्ञ। २. भेद की बात जाननेवाला। रहस्य जाननेवाला।

मर्मपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्मपीडा**] मन को पहुँचनेवाला क्लेश। आंतरिक दुःख।

मर्मप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] वह आघात जो मर्मस्थान पर हो। मर्मस्थान की चोट।

विशेष—वैद्यक में इसे व्रण का एक भेद माना है। इसमें रोगी गिरता पड़ता, अटपट बकता, घबराता और मूर्छित होता है। उसके शरीर में गरमी छटकती है, गरमी का बहुत अधिक अनुभव होता है, और इंद्रियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

मर्मभिद्—वि० [सं०] मर्मच्छिद्। मर्मभेदी। उ०—दुष्ट रावण कुंभकरण पाकारिजित् मर्मभिद् कर्म परिपाकदाता।—तुलसी (शब्द०)।

मर्मभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहस्योद्घाटन। महत्वपूर्ण बातों का प्रकट होना। २. हृदय वा मर्म का वेधन [को०]।

मर्मभेदक—वि० [सं०] १. मर्म छेदनेवाला। २. हृदयविदारक। बहुत अधिक हार्दिक कष्ट पहुँचानेवाला।

मर्मभेदन—संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर [को०]।

मर्मभेदी[1]—वि० [सं० **मर्मभेदिन्**] हृदय पर आघात पहुँचानेवाला। आंतरिक कष्ट देनेवाला। जैसे,—आपको इस प्रकार की मर्मभेदी बातें न कहनी चाहिए।

मर्मभेदी[2]—संज्ञा पुं० बाण। तीर [को०]।

मर्ममय—वि० [सं०] रहस्यपूर्ण।

मर्मर[1]—संज्ञा पुं० [यू०] दे० 'मरमर'।

मर्मर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्तों के चरमराने या हवा वा अन्य किसी कारण से उनके हिलने से होनेवाला शब्द। २. एक प्रकार का पहनावा [को०]।

मर्मरित—वि० [सं०] मर्मर की ध्वनि से युक्त।

मर्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का देवदार वृक्ष। २. हल्दी। ३. कान के बाह्य भाग की एक नस [को०]।

मर्मरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दरिद्र व्यक्ति। भिखारी। २. दुष्ट आदमी [को०]।

मर्मवचन—संज्ञा पुं० [हिं० मर्म + **वचन**] वह बात जिससे सुननेवाले को आंतरिक कष्ट पहुँचे। मर्मभेदी बात। उ०—मर्मबचन सीता तब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी (शब्द०)।

मर्मवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] रहस्य की बात। भेद की या गूढ़ बात।

मर्मवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्म + **वाणी**] भेदभरी वाणी। गूढ़ बात। मर्मवाक्य। उ०—श्रीमुख से श्रीकृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने गीतागीत सिंहनाद मर्मवाणी जीवन संग्राम की, सार्थक समन्वय ज्ञान कर्म भक्ति योग का।—अनामिका, पृ० ५८।

मर्मविद्—वि० [सं०] मर्म या तत्व जाननेवाला। मर्मज्ञ।

मर्मविदारण—संज्ञा पुं० [सं०] मर्मच्छेदन। मर्मच्छेद।

मर्मवेदी—वि० [सं० मर्मवेदिन्] मर्मज्ञ।

मर्मवेधी—वि० [सं० **मर्मवेधिन्**] दे० 'मर्मभेदी'।

मर्मव्यथा—संज्ञा पुं० [सं०] मर्म पीड़ा। तीव्र वेदना [को०]।

मर्मशरीर—संज्ञा पुं० [सं० मर्म + **शरीर**] नित्यस्वरूप। मुख्य रूप। गूढ़ अंग। अनिवार्य लक्षण। उ०—पर ज्यों ज्यों शास्त्रीय विचार गंभीर और सूक्ष्म होता गया त्यों त्यों साध्य और साधनों को विविक्त करके काव्य के नित्यस्वरूप या मर्मशरीर को अलग निकालने का प्रयास बढ़ता गया।—रस०, पृ० ५०।

मर्मस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मर्मस्थान। विशेष दे० 'मर्म'। २. हृदय। मन। अंतस्तल। उ०—कविता अपनी मनोरंजन शक्ति द्वारा पढ़ने या सुननेवाले का चित्त रमाए रहती है, जीवनपट पर उक्त कर्मों की सुंदरता या विरूपता अंकित करके हृदय के मर्मस्थलों का स्पर्श करती है।—रस०, पृ० २७।

मर्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] मर्मस्थल। मर्म। विशेष दे० 'मर्म'।

मर्मस्पर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्मस्पृश्**] मर्मस्पर्शी होने का भाव। मार्मिकता। उ०—रागात्मक गुण के अंतर्गत मर्मस्पर्शिता एवं सजीवता की इन लोगों ने गणना की है।—शैली, पृ० ८८।

मर्मस्पर्शी—वि० [सं० **मर्मस्पर्शिन्**] दे० 'मर्मस्पृश्'।

मर्मस्पृश्—वि० [सं०] हृदय को स्पर्श करनेवाला। हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। मर्मस्पर्शी।

मर्मांतक—वि० [सं० **मर्मान्तक**] मन में चुभनेवाला। मर्मभेदक। हृदयस्पर्शी। उ०—मानव दुर्गति की गाथा से ओत प्रोत मर्मांतक।—ग्राम्या, पृ० १४।

मर्मांतिक—वि० [सं० **मर्मान्तक**] दे० 'मर्मांतक'। उ०—फिर देता दृढ़ संदेश देश को मर्मांतिक, भाषा के बिना न रहती अन्य गंध प्रांतिक।—अनामिका, पृ० ८६।

मर्माघात—संज्ञा पुं० [सं०] मर्मस्थल पर आघात। मार्मिक पीड़ा [को०]।

मर्मातिग—वि० [सं०] मर्मस्थल पर पहुँचनेवाला। मर्म को वेधनेवाला [को०]।

मर्मानुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्म + **अनुभूति**] मार्मिक अनुभूति। मर्मस्पर्शी अनुभूति। उ०—शुद्ध मर्मानुभूति द्वारा प्रेरित कुशल कवि भी प्राचीन आख्यानों को बराबर लेते आए हैं, और अब भी लेते हैं।—रस०, पृ० ६४।

मर्मान्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बात का तत्व या गूढ़ रहस्य जानना। तत्वानुसंधान।

मर्माभास—संज्ञा पुं० [सं० मर्म + **आभास**] रहस्यपूर्ण अनुभव।

भेदभरे तथ्य की झलक। उ०—योग भोग, जप तप, धन संचय गार्हस्थाश्रम, दृढ़ संन्यास। त्याग तपस्या, व्रत सब देखा पाया है जो मर्माभास।—अनामिका, पृ० १६६।

मर्माभिघातज—संज्ञा पुं० [सं० मर्म + **अभिघातज**] एक प्रकार का दाह। उ०—इसमें मर्मस्थान में **मर्माभिघातज** दाह होय सो सातवाँ असाध्य है।—माधव०, पृ० १२०।

मर्माविद्—वि० [सं०] मर्म भेदनेवाला। मर्मभेदी।

मर्माविध्—वि० [सं० मर्म + **आविध्**] मर्म भेदनेवाला। मर्मभेदी।

मर्माहत—वि० [सं० मर्म + **आहत**] जिसके मर्म को बहुत अधिक चोट पहुँची हो। जिसके हृदय को बहुत अधिक पीड़ा मिली हो। उ०—मर्माहत स्वर भर।—अपरा, पृ० ६३।

मर्मिक—वि० [सं०] मर्मविद्। मर्मज्ञ।

मर्मी—वि० [हिं० **मर्म**] रहस्य जाननेवाला। तत्वज्ञ। मर्मज्ञ। उ०—(क) ममा मूल गहल मन माना। मर्मी होय सो मर्महि जाना।—कबीर (शब्द०)। (ख) मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी।—तुलसी (शब्द०)।

मर्मोद्घाटन—संज्ञा पुं० [सं०] रहस्योद्घाटन। रहस्य का प्रकट होना [को०]।

मर्मोपघाती—वि० [सं० **मर्मोपघातिन्**] दे० 'मर्माविध्' [को०]।

मर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य। २. युवक व्यक्ति (को०)। ३. नर। मादा का विलोम (को०)। ४. प्रेमी पुरुष (को०)। ५. उष्ट्र। ऊँट (को०)। ५. बीजाश्व। दे० 'साँड़' (को०)।

मर्य[2]—वि० मरणशील। मर्त्य [को०]।

मर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा या ठिगना व्यक्ति। २. नर। मादा का विलोम [को०]।

मर्या—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा [को०]।

मर्याद—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्य्यादा**] दे० 'मर्य्याद'। उ०—रोक रहजन को प्रगति का, फेर से, बाधक जो हो। दर बदर भटका उसे, मर्याद तू जब तक न कर।—बेला, पृ० ६८।

मर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मर्य्यादा'।

मर्यादाधावन—संज्ञा पुं० [सं०] सीमारेखा या चिह्न की ओर दौड़ना [को०]।

मर्यादाधुर्य—संज्ञा पुं० [सं० **मर्यादा + धुर्य**] दे० 'कोटपाल'। उ०—प्रतिहार साम्राज्य में सीमा का रक्षक कोटपाल ही 'मर्यादा-धुर्य' कहा गया है।—**पू० म० भा०**, पृ० १०४।

मर्यादापर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मर्य्यादागिरि'। उ०—पूरब और पच्छिम तरफ की जमीन का उठाव दीखता है, जो हिमालय के साथ के सीमांत के पहाड़ों या मर्यादापर्वतों को सूचित करता है।—भारत० नि०, पृ० २५।

मर्यादापुरुषोत्तम—संज्ञा पुं० [सं० **मर्यादा + पुरुषोत्तम**] भगवान् रामचंद्र। उ०—मर्यादापुरुषोत्तम के सर्वोत्तम अनन्य, लीला सहचर, दिव्य भावधर इनपर प्रहार करने पर होगी देवि तुम्हारी विषम हार।—**अपरा, पृ० ४३**।

मर्यादामार्गी—वि० [सं० **मर्यादा + मार्गिन्**] मर्यादा का अनुगमन करनेवाला। मर्यादावादी। उ०—वहाँ कृष्णदास को एक **मर्यादा**मार्गी वैष्णव को संग भयो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३४।

मर्यादावादी—वि० [सं० **मर्यादा + वादिन्**] मर्यादा को माननेवाला। मर्यादानुयायी। उ०—पर शुक्ला जी, जैसा मैंने निवेदन किया, मर्यादावादी थे।—आचार्य०, पृ० १३६।

मर्यादाव्यतिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा पार करना। सीमोल्लंघन करना [को०]।

मर्यादित—वि० [सं०] सीमित। सीमाबद्ध। उ०—**मर्यादित** रहता है इनका जीवन पारावार। अपने छोटे से जग में है सीमित इनका प्यार।—ग्रामिका, पृ० ८८।

मर्यादी[1]—वि० [सं० **मर्यादिन्**] १. सीमा में रहनेवाला। सीमोल्लंघन न करनेवाला। २. मर्यादावादी। मर्यादा को माननेवाला। उ०—ताके पास तीन तूँबा, काँधे पर तो खासा कौ, पीछे कटि पर मर्यादी सेबको कौ, आगे कटि पर बाहिर कौ, या भाँति सो रहै आवें।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ४३।

मर्यादी[2]—संज्ञा पुं० पड़ोसी। सीमा के निकट रहनेवाला [को०]।

मर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा।

मर्य्यादा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मर्यादा**] १. दे० 'मर्यादा'। उ०—भो मर्य्याद बहुत सुख लागा। यहि लेखे सब संशय भागा।—कबीर (शब्द०)। २. रीति। रसम। प्रथा। ३. चाल। ढंग। ४. विवाह में वर पक्षवालों का वह भोज जो उन्हें विवाह के तीसरे दिन कन्यापक्ष की ओर से दिया जाता है। बढ़हार। बढ़ार।

मुहा०—**मर्य्यादा रहना** = बरात का विवाह के तीसरे दिन ठहरकर भोज में संमिलित होना।

मर्य्यादा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीमा। हद। २. कूल। नदी या समुद्र का किनारा। ३. दो या दो से अधिक मनुष्यों के बीच की प्रतिज्ञा। मुआहिदा। करार। ४. नियम। ५. सदाचार। ६. मान प्रतिष्ठा। गौरव।

क्रि० प्र०—**रखना**।

मुहा०—**मर्य्यादा जाना** = साख खत्म होना। विश्वास जाता रहना। **मर्य्यादा लेना** = लज्जा उतारना। लज्जित करना।

७. धर्म।

मर्य्यादागिरि—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा पर का पहाड़। वह पहाड़ जो सीमा का निर्धारण करे [को०]।

मर्य्यादाबंध—संज्ञा पुं० [सं० **मर्य्यादाबन्ध**] १. अधिकार की रक्षा। २. नजरबंदी।

मर्य्यादी—वि० [सं० **मर्य्यादिन्**] सीमावान। सीमायुक्त।

मर्राना(५)—क्रि० अ० [हिं० **मरमराना** अनु०] मर मर की ध्वनि करते गिरना। चरमराकर गिरना। उ०—पीना भा संसार जाहि ऊपर मर्रानी।—पलटू०, पृ० ५६।

मर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरना**] वह भूमि जो कर्ज लेनेवाले ने सूद के बदले में महाजन को दी है।

मर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंभीर विचार। २. राय। संमति। ३. नस्य। सुँघनी [को०]।

मर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ना। २. परीक्षा। जाँच। ३. विचार। ४. राय देना। ५. अलग करना। हटाना। ६. व्याख्या करना [को०]।

मर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] क्षांति।

मर्षण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षमा। माफी। २. घर्षण। रगड़।

मर्षण[2]—वि० १. नाशक। ध्वंसक। २. दूर करनेवाला। रोकने या हटानेवाला। उ०—लहरा भव पादप, मर्षण मन मोड़ेगी।—अपरा, पृ० २०७।

मर्षणीय—वि० [सं०] क्षमा करने के योग्य। क्षम्य।

मर्षित—वि० [सं०] १. सहन किया हुआ। २. क्षमा किया हुआ [को०]।

मर्षी—वि० [सं० मर्षिन्] सहन करनेवाला। क्षमाशील [को०]।

मर्सियाखाँ—संज्ञा पुं० [अ० **मरसिया** + फ़ा० ख्वाँ] दे० 'मरसियाख्वाँ'। उ०—कई मर्सियाखाँ और कई गजल सुनाते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

मलंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० (मलंग = आपसे बाहर)] १. एक प्रकार के मुसलमान साधु। ये मदारशाह के अनुयायी होते हैं तथा सिर के बाल बढ़ाते और नंगे सिर तथा नंगे पैर अकेले भीख माँगते फिरते हैं। उ०—(क) कौड़ा आँसू बूँद, करि साँकर बरुनी सजल। कौने बदन न मूँद, दृग मलंग डारे रहै।—बिहारी (शब्द०)। (ख) किधौं मैन मलंग चढ्यो थल तुंग अँजीर अरी न परै झटकी।—मुकुंदलाल (शब्द०)। २. एक प्रकार का बड़ा बगुला जो स्वच्छ, सफेद रंग का होता है। यह भारतवर्ष और बरमा में होता है; और प्रायः एकांत में और अकेला रहता है।

मलंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलंग'।

मल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैल। कीट। जैसे, धातुओं का मल। उ०—लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोई स्वच्छता करइ मल हानी।—तुलसी (शब्द०)। २. शरीर से निकलनेवाली मैल या विकार।

विशेष—ये मल बारह प्रकार के माने गए हैं।—(१) वसा, (२) शुक्र, (३) रक्त, (४) मज्जा, (५) मूत्र, (६) विष्ठा, (७) कर्णमल या खूँट, (८) नख, (९) श्लेष्मा या कफ, (१०) आँसू, (११) शरीर के ऊपर जमी हुई मैल और (१२) पसीना।

३. विष्ठा। पुरीष। ४. दूषण। विकार। ५. शुद्धतानाशक पदार्थ। ६. पाप। ७. दोष। बुराई। ऐब। ८. हीरे का एक दोष। ९. जैन शास्त्रानुसार आत्माश्रित दुष्ट भाव। यह पाँच प्रकार का माना गया है—(१) मिथ्या ज्ञान, (२) अधर्म, (३) शक्ति, (४) हेतु और (५) च्युति। १०. कपूर। ११. प्रकृतिदोष। जैसे, वात, पित्त, कफ।

मल[2]—वि० १. गंदा। अशुद्ध। २. नीच। दुष्ट। ३. नास्तिक [को०]।

मल[3]—[देश०] फीलवानों का एक सांकेतिक शब्द जो हाथियों को उठाने के लिये कहा जाता है।

मलऊन—वि० [अ० **मलऊन**] तिरस्कृत। दुष्ट। धिक्कृत। उ०—यह लश्कर लेकर वह मलऊन। मक्के को तरफ कीता है मुँह।—दक्खिनी०, पृ० २२१।

मलक[1]—संज्ञा पुं० [अ०] देवता। फरिश्ता [को०]।

मलक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० **मलकाना**] १. आँखों के खोलने बंद करने की क्रिया। दृष्टि को स्थिर न रखना। २. हिलना डोलना। उ०—लागत पलक मलक नहिं लावै।—कबीर सा०, पृ० १५८६।

मलकना—क्रि० अ० [हिं० **मलकना**] १. हिलना डोलना। २. इतराना। इठलाना। उ०—झूमत चलि मद मत्त गयंद ज्यौं, मलकत बाँह दुराइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८९।

मलकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलकना**] मलकने की क्रिया। हिलने डोलने या इठलाने की क्रिया। उ०—मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकुट की। सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की।—नंद० ग्रं०, पृ० २२।

मलकरना—संज्ञा पुं० [देश०] बरतन पर नकाशी करनेवालों का एक औजार जिससे खोदने पर दोहरी लकीर बनती है।

मलकर्षण—वि० [सं०] साफ करनेवाला। गंदगी दूर करनेवाला [को०]।

मलकलमौत—संज्ञा पुं० [अ० **मलकुलमौत**] दे० मलकुलमौत'। उ०—जेहि विधि पारा मरै न मारा। मलकलमौत सो करै विचारा।—संत० दरिया, पृ० २३।

मलका—संज्ञा स्त्री० [अ० **मलिकह्**] बादशाह या महाराज की पटरानी। महारानी। उ०—मेरी मलका! चुंबन, कल जैसा दिन दुश्मन की किस्मत में भी न आए।—पिंजरे०, पृ० १२२।

मलकाछ—संज्ञा पुं० [हिं० **मल्ल + काछ**] ठाकुरों के शृंगार के लिये एक प्रकार की कछनी जिसमें तीन झब्बे लगे होते हैं।

मलकाना[1]—क्रि० स० [अनु०] १. हिलाना। डोलाना। विचलित करना। जैसे, आँख मलकाना।

मलकाना[2]—क्रि० अ० बना बनाकर बातें करना।

मलकुलमौत—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

मलकूत[1]—वि० [अ०] पवित्र। फरिश्तों से संबंधित। उ०—जिन ताकूँ नादार झंकारे तो मंजिल मलकूत तूज।—दक्खिनी०, पृ० ५६।

मलकूत[2]—संज्ञा पुं० १. शासन। राज्य। २. स्वर्ग। देवलोक। ३. फरिश्ता। देवगण [को०]।

मलखंभ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलखम'।

मलखम—संज्ञा पुं० [सं० **मल्ल** + हिं० **खंभा**] १. लकड़ी का एक प्रकार का खंभा जिसपर कसरत करनेवाले फुरती से चढ़ और उतरकर कसरत करते हैं। मालखंभ।

विशेष—मलखम तीन प्रकार के होते हैं—गड़ा मलखम, लटका

मलखम और बेत का मलखम। गड़ा मलखम एक लंबा मोटा चार पाँच हाथ ऊँचा मुगदर के आकार का खंभा होता है जो भूमि में गड़ा रहता है। लटका हुआ या लटकौआँ मलखम छत्त या किसी और धरन के सहारे ऊपर से अधोमुख लटका रहता है। जब इस खंभे की जगह धरन आदि में बेंत लटकाया जाता है, तब इसे बेंत का मलखम कहते हैं इसपर कसरत करनेवाले बेत को हाथ में पकड़कर उसपर अनेक मुद्राओं से कसरत करते हैं। इसे बाँस, लग्गी या मलखानी भी कहते हैं। मलखम की कसरत भारतवर्ष की एक प्राचीन मल्ल नामक क्षत्रिय जाति की निकाली हुई है। इसी मल्ल जाति को आविष्कार की हुई कुश्ती को मल्लयुद्ध भी कहते हैं। मलखम पर चढ़ने उतरने को 'पकड़' कहते हैं। इस कसरत से मनुष्य में फुरती आती है और रानें दृढ़ होती हैं।

२. वह कसरत जो मलखम पर या उसके सहारे से की जाय। ३. पत्थर या लकड़ी के पुरानी चाल के कोल्हू में लकड़ी का एक खूँटा जो कातर या पाट में कोल्हू से दूसरी छोर पर गाड़ा जाता है और जिसमें ढेंके की रस्सी बाँधी जाती है; अथवा जिसमें रस्सी लगाकर ढेंकी बाँधकर जाट के ऊपर लगाते हैं। इसे मरखम भी कहते हैं।

मलखाना[१]—वि० [हिं० **मल + खाना**] मल खानेवाला। उ०—कोउ न जग में होत कुटिल जैसे मलखाने। उसर बैठि मरजाद भ्रष्ट आचार न जाने।—गिरिधरदास (शब्द०)।

मलखाना[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मल्ल** + हिं० **खान**] १. महोबे के राजा परमाल के भतीजे मलखान का नाम। यह पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था। २. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में बसनेवाले एक प्रकार के राजपूत जो मुसलमान बना लिए गए थे। इन लोगों का आचार विचार अब तक प्रायः हिंदुओं का सा है।

मलखानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलखम**] एक ऊँचा गोल और सीधा पतला खंभा जिसपर बेंत से मलखम की कसरत की जाती है। इसे बाँस और लग्गी भी कहते हैं। विशेष दे० 'मलखम'।

मलगजाⓅ[१]—वि० [हिं० **मलना + गींजना**] मला दला हुआ। गींजा हुआ। मरगजा।

मलगजा[२]—संज्ञा पुं० बेसन में लपेटकर तेल या घी में छाने हुए बैंगन, कुँहड़ा आदि के पतले टुकड़े।

मलगिरी[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मलयागिर**] एक प्रकार का हल्का कत्थई रंग।

विशेष—यह रंग रँगने के लिये कपड़ा पहले हड़ के हलके काढ़े में और फिर कसीस के पानी में डुबोते हैं; और फिर उसे एक रंग में जिसमें कत्था, चूना, मेंहदी की पत्ती और चंदन का चूरा पीसकर घोला रहता है और छैलछबीला, नागरमोथा, कपूर-कचरी, नख, पाँजर, बिरमी, सुगंधबाला सुगंध कोकल, बालछड़, जरांकुश, बुढ़ना, सुगंधमैत्री, लौंग इलायची, केशर और कस्तूरी का चूर्ण मिला रहता है, डालकर पहर भर उबालते हैं और उतारने पर उसे दिन रात उसी में पड़ा रहने देते हैं। दूसरे दिन कपड़े को उसमें से निकालकर निचोड़ लेते हैं और बर्तन के रंग को छानकर उसमें हिना का इत्र मिलाकर उसमें फिर उस कपड़े को डुबाकर सुखाते हैं। पर आजकल प्रायः रँगरेज मलगिरि रंग रँगने में कपड़े को कत्थे और चूने के रंग में रँगते हैं; फिर उसे कसीस के पानी में डुबा देते हैं इसके बाद रँगे हुए कपड़े को आहार देकर निचोड़ते और सुखाते हैं और अंत में उसपर हिना का इत्र मल देते हैं।

मलगिरि[२]—वि० मलगिरि रंग का।

मलघन—संज्ञा पुं० [सं० **मलघ्न**] एक प्रकार की कचनार, जो लता रूप में होती है।

विशेष—यह हिमालय की तराई, मध्य भारत और टेनासरम के जंगलों में पाई जाती है। इसकी छाल मलू कहलाती है जिसपर रंग अच्छा चढ़ता है और जो कूटने पर ऊन की तरह चमकदार हो जाती है। इसे ऊन में मिलाकर तागा काता जाता है जिससे ऊनी कपड़े बुने जाते हैं। यह छाल ऐसी साफ होती है कि ऊन में मिलाने पर इसकी मिलावट बहुत कम पहचानी जाती है।

मलघ्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मलघ्नी**] मलनाशक।

मलघ्न—संज्ञा पुं० १. शाल्मली कंद। सेमल का मुसला। २. कचनार का एक भेद। 'मलघन'।

मलघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदौना।

मलज—संज्ञा पुं० [सं०] पीब।

मलजुद्धⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मल्लयुद्ध**] दे० 'मल्लयुद्ध'। उ०—मलजुद्ध समुद्ध सुबीर करैं।—ह० रासो, पृ० १५७।

मलज्वर—संज्ञा पुं० [सं० **मल + ज्वर**] अमृतसागर के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो मल के रुकने के कारण होता है। इससे रोगी के पेट में शूल और सिर में पीड़ा होती है, मुँह सूखा रहता है, जलन होती है, भ्रम होता है और कभी कभी मूर्छा भी आती है।

मलझन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बेल जो बागों में लगाई जाती है।

मलट—संज्ञा पुं० [अं० **मैलेट**] १. लकड़ी का हथौड़ा जिससे खूँटे आदि गाड़े जाते हैं। २. काठ का वह हथौड़ा जिससे छापने के पहले सीसे के अक्षर ठोंककर बैठाए और बराबर किए जाते हैं।

मलतन[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मल्लत्व**, प्रा० **मल्लत्तण** या हिं० **मल** (=**मल्ल**) + **तन** (प्रत्य०)] बहादुरी। शक्ति का अभिमान। उ०—सभ भागी सिद्धाँ की मलतन।—प्राण०, पृ० १२०।

मलता—वि० [हिं० **मलना**] मला या घिसा हुआ (सिक्का)। जैसे, मलता पैसा, मलती अठन्नी।

मलद—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक प्रदेश का नाम।

विशेष—कहते हैं, ताड़का यहीं रहती थी। इसे मल्लभूमि भी कहते थे।

मलदूषित—वि० [सं०] मलीन। मैला।

मलद्रावी—संज्ञा पुं० [सं० मलद्राविन्] जयपाल । जमालगोटा ।

मलद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर की वे इंद्रियाँ जिनसे मल निकलते हैं । २. पाखाने का स्थान । गुदा ।

मलधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धाय जो बच्चों का मलमूत्र धोने पर नियुक्त हो ।

मलधारी—संज्ञा पुं० [सं० मलधारिन्] एक प्रकार के जैन साधु जो शरीर में मल लगाए रहते हैं और उसको धोते और शुद्ध नहीं करते ।

मलन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मर्दन । २. पोतना । लेप करना । लगाना । ३. तंबू । शामियाना (को०) ।

मलन⑤[२]—वि० मसलनेवाला । पीस डालनेवाला । मल देनेवाला । उ०—अफजल का मलन शिवराज आया सरजा ।—भूषण ग्रं०, पृ० ११७ ।

मलन⑤[३]—वि० [हिं०] दूषित । बुरा । दे० 'मलिन' । उ०—मलन काज मैं खलन की मति अति होति अनूप ।—दीन० ग्रं०, पृ० ८१ ।

मलना—क्रि० स० [सं० मलन] १. हाथ अथवा किसी और पदार्थ से किसी तल पर उसे साफ, मुलायम या अच्छा करने के लिये रगड़ना । हाथ या किसी और चीज से दबाते हुए घिसना । मर्दन । मींजना । मसलना । जैसे, लोई मलना, घोड़ा मलना बरतन मलना । उ०—(क) यहि सर घड़ा न बूड़ता मंगर मलि मलि न्हाय । देवल बूड़ा कलस लौं पच्छि पियासा जाय । —कबीर (शब्द०) । (ख) चलि सखि तेहि सरोवर जाहिं । जेहि सरोवर कमल कमला रवि बिना विकसाहिं । हंस उज्वल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं । मुक्ति मुक्ता अंबु के फल तिन्हैं चुनि चुनि खाहिं ।—सूर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—डालना —देना ।

मुहा०—दलना मलना = (१) चूर्ण करना । पीसकर टुकड़े टुकड़े करना । उ०—रन मत्त रावण सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ।—तुलसी (शब्द०) । (२) मसलना । हाथों से रगड़ना । घिसना । हाथ मलना = (१) पछताना । पश्चात्ताप-करना । उ०—बार बार करतल कहँ मलि कै । निज कर पीठ रदन सों दलि कै ।—गोपाल (शब्द०) । (२) क्रोध प्रगट करना । उ०—चलो सुकर्मा बीर भलो अंबर तन धारे । मलो करहि भरि क्रोध हलोरन नद बहुवारे ।—गोपाल (शब्द०) ।

२. किसी तरल पदार्थ या चूर्ण आदि को किसी तल पर रखकर हाथ से रगड़ना । मालिश करना । जैसे, तेल मलना, सुरती मलना । उ०—(क) मधु सों गीले हाथ ह्वै ऐंचो धनुष न जाइ । ते पराग मलि कुसुम शर बेधत मोहिं बनाइ ।—गुमान (शब्द०) । (ख) चलेउ भूप पुरुमित्र मित्रहुति मगध मित्र मन । पट पवित्र मनि चित्र सहित मलि इत्र धरे तन ।—गोपाल (शब्द०) । ३. किसी पदार्थ को टुकड़े टुकड़े या चूर्ण करने के लिये हाथ से रगड़ना या दबाना । मसलना । मींजना । उ०—जो कहो तिहारो बल पायँ बाएँ हाथ नाथ, आँगुरी सों मेरु मलि डारों यह छिन मैं ।—हनुमन्नाटक (शब्द०) । ४. मरोड़ना । ऐंठना । जैसे, मुँह मलना, नाक मलना, कान मलना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

५. हाथ से बार बार रगड़ना या दबाना । जैसे, छाती मलना, गाल मलना ।

मलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलना] आठ दस अंगुल लंबा, दो अंगुल चौड़ा, सुडौल और चिकना कतजन के आकार का बाँस का एक टुकड़ा जिससे कुम्हार मलकर सुराहियाँ आदि चिकनी करते हैं ।

मलपंकी—वि० [सं० मलपङ्किन्] १. मलीन । मैला । २. कीचड़ में सना हुआ ।

मलपाक—संज्ञा पुं० [सं० मल + पाक] शरीर की वह स्थिति जिसमें दोषों की प्रकृति बदल जाती है, वे हलके हो जाते हैं, शरीर हलका हो जाता है और इंद्रियाँ निर्मल हो जाती हैं ।—माधव०, पृ० २८ ।

मलपात्र—संज्ञा पुं० [सं० मल + पात्र] वह पात्र जो शौच के उपयोग में लाया जाता हो । कमोड ।

मलपू—संज्ञा पुं० [सं०] कठूमर ।

मलपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक का पहला या बाह्य पृष्ठ [को०] ।

मलप्पना⑤—क्रि० अ० [प्रा० मल्लप्पण] १. पहलवानों के समान मस्ती भरी चाल चलना । क्रीड़ा में कुदान करना । उ०—करंत केलि सारसी मलप्पते महा रसी । विरद्द नेक बोलते पलक्क चष्ष खोलते ।—पृ० रा०, १७।६० ।

मलफ⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलफना] कूद । कुदान । उ०—गाज मलफ एता गुणाँ, सोहाँ काज सरंत ।—बाँकी०, ग्रं० भा० १, पृ० १७ ।

मलफना⑤—क्रि० अ० [हिं०] कूदना । कुदान भरना । उ०—तैं जेहा दीधा तुरी, मृग जीपण मलफंत । चढ़े जिकाँ अन पह चढ़ै तोरण वारण तंत ।—बाँकी०, ग्रं०, भा० ३, पृ० १० ।

मलफूफ—वि० [अ० मल्फ़ूफ़] १. जो लपेटा हुआ हो । जिसपर कागज या कपड़ा चढ़ा हो । २. जो लिफाफे में बंद हो । उ०—प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोयम का किस्सा 'खूने अजमत' मलफूफ है —प्रेम० और गोर्की, पृ० ५४ ।

मलबा—संज्ञा पुं० [हिं० मलभार] १. कूड़ा कर्कट । कतवार । २. टूटी या गिराई हुई इमारत की ईंटें, पत्थर और चूना आदि । ३. एक प्रकार की उगाही या बेहरी जो गाँव में पट्टीदारों से दौरे के हाकिमों आदि के खर्च के लिये वसूल की जाती है ।

मलभांड—संज्ञा पुं० [सं० मल + भाण्ड] दे० 'मलपात्र' ।

मलभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा ।

मलभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी ।

मलमई⑤—वि० [सं० मल + हिं० मई (प्रत्य०)] मलयुक्त ।

लोक सृष्टि सिरजति यह माया। तुम तें दूरि मलमई काया। नंद० ग्रं०, पृ० ३१५।

मलमल—संज्ञा स्त्री० [सं० मलमल्लक] एक प्रकार का पतला कपड़ा जो बहुत बारीक सूत से बुना जाता है। उ०—(क) मलमल खासा पहनते खाते नागर पान। टेढ़ा होकर चालते करते बहुत गुमान। —कबीर (शब्द०)। (ख) कमरी थोरे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान। —गिरधरराय (शब्द०)।

विशेष—प्राचीन काल में यह कपड़ा भारतवर्ष में विशेषकर बंगाल और बिहार में बुना जाता था और वहीं से भिन्न भिन्न देशों में जाता था। अब तक ढाके और मुर्शिदाबाद में अच्छी मलमल बनती है।

मलमला—संज्ञा पुं० [देश०] कुलफे का साग।

मलमलाना[1]—क्रि० स० [हिं० मलना] १. बार बार स्पर्श कराना। लगातार छुलाना। २. बार बार खोलना और ढकना। जैसे, पलक मलमलाना। ३. पुनः पुनः आलिंगन करना। उ०—नवल मुनि नवल पिया नयो नयो दरस बिचि तन मलमले प्राणपति पीय को अभर भरचो री। प्रीति की रीति प्रास चंचल करत निरखि नागरी नैन चिबुक सो मोरी। तब कामकेलि कमनीय चंदय चकोर चातक स्वाति बूंद परचो री। सुनि सूरदास रस राशि रस बरसि कै चली जनु हरति ले कुहू सु गोरी। —सूर (शब्द०)।

मलमलाना[2]—क्रि० अ० [अनु०] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

मलमलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलमलाने की क्रिया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

मलमल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] कौपीन।

मलमाँस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलमास'। उ०—अली शुभ तीरथ तीर लसै मलमाँस पवित्र नदी जुग संग। —श्यामा०, पृ० ३२६।

मलमा—संज्ञा पुं० [हिं० मलबा] दे० 'मलबा'।

मलमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह अमांत मास जिसमें संक्रांति न पड़ती हो। इसे अधिक मास भी कहते हैं।

विशेष—यों तो साधारण रीति से बारह महीने का वर्ष माना जाता है, पर कभी कभी तेरह महीने का भी वर्ष होता है। पर यह बात केवल चांद्र मास में ही होती है, और मास सदा वर्ष में बारह ही होते हैं। चांद्र मास की वृद्धि का हेतु यह है कि दिन रात्रि का मान, जिसे दिनमान कहते हैं, ६० दंड का माना जाता है। पर एक तिथि का मान ५८ दंड का माना जाता है। इसलिये ३० दिन में ३१ तिथियाँ पड़ती हैं। इस हिसाब से चांद्र वर्ष और सामान्य वर्ष में प्रति वर्ष बारह दिन का अंतर पड़ा करता है जो पाँच वर्ष में पूरे दो महीने का अंतर डाल देता है। ऐसे अधिक महीने को मलमास कहते हैं। वह चांद्र मास, जिसमें सूर्य की संक्रांति पड़ती है, शुद्ध मास कहलाता है। पर संक्रांतिवर्जित मास तीन प्रकार के माने गए हैं जिन्हें भानुलंघित, क्षय और मलमास कहते हैं। भानुलंघित और मलमास वे मास कहलाते हैं जिनमें सूर्यसंक्रांति न पड़े। पर यदि सूर्यसंक्रांति शुक्ल प्रतिपदा को पड़ी हो, तो उसे क्षय मास कहते हैं। बारह महीने दो अयनों में बाँटे गए हैं एक वैशाख से कुआर तक, दूसरा कातिक से चैत तक। यह मलमास प्रायः फागुन से अगहन तक दस ही महीनों में पड़ता है। शेष दो महीनों में से पूस में तो कभी कभी मलमास पड़ता ही नहीं; और माघ में बहुत ही कम पड़ा करता है। इसका नियम यह है कि यदि दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों अयनों में मलमासयुक्त मास पड़ें, तो दक्षिणायन का मास भानुलंघित और उत्तरायण का मास मलमास कहलावेगा। पर यदि एक ही अयन में दो मास मलमास-लक्षण-युक्त हों, तो पहला मलमास और दूसरा भानुलंघित कहलावेगा। पर ऐसे दो उसी वर्ष में पड़ते हैं जिसमें क्षय मास भी पड़ता है। पर कातिक, अगहन और पूस के महीने में क्षय मास नहीं होता। विवाहादि शुभ कृत्य जिस प्रकार मलमास में वर्जित हैं, उसी प्रकार भानुलंघित और क्षय मास में भी वर्जित हैं।

पर्या०—अधिक मास। पुरुषोत्तम। मलिम्लुच। अधिमास। असंक्रांत मास। नपुंसक मास।

मलय—संज्ञा पुं० [सं० मलय (=पर्वत)] १. दक्षिण भारत के एक पर्वत का नाम।

विशेष—(१) यह पश्चिमी घाट का वह भाग है जो मैसूर राज्य के दक्षिण और ट्रावंकोर के पूर्व में है। यहाँ चंदन बहुत उत्पन्न होता है। पुराणों में इसे सात कुलपर्वतों में गिनाया गया है।

(२) मलय शब्द पवन, समीर, वायु आदि शब्दों के आदि में समस्त होकर (१) सुगंधित और (२) दक्षिणी वायु का अर्थ देता है। जैसे, मलयसमीर, मलयपवन, आदि।

पर्या०—आषाढ़। दक्षिणाचल। चंदनाद्रि। मलयाचल।

२. मलाबार देश। ३. मलाबार देश के रहनेवाले मनुष्य। ४. एक उपद्वीप का नाम। ५. सफेद चंदन। उ०—दारु विचारु कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग। —मानस, १।१०। ६. गरुड़ के एक पुत्र का नाम। ७. नंदन वन। ८. उद्यान। उपवन। बाग (को०)। ९. छप्पय के एक भेद का नाम। इसमें २५ गुरु, १०२ लघु, कुल १२७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। १०. पहाड़ का एक प्रदेश। शैलांग। ११. ऋषभदेव के एक पुत्र का नाम।

मलयगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलय नामक पर्वत जो भारतवर्ष के दक्षिण दिशा में है।

विशेष—यहाँ चंदन अधिक और उत्तम उत्पन्न होता है। यह पश्चिमी घाट का वह भाग है जो मैसूर के दक्षिण औरो

ट्रावंकोर के ' में वपू है। पुराणों में इसे कुलपर्वतों में गिनाया है।
२. मलयगिरि में उत्पन्न चंदन। उ०—बेधी जानि मलयगिरि बासा। सीस चढ़ी लोटहि चहुँ पासा।—जायसी (शब्द०)। ३. हिमालय पर्वत का वह देश जहाँ कामरूप और आसाम है। ४. दे० 'मलयगिरी'।

मलयगिरी—संज्ञा पुं० [हिं० **मलयगिरि**] दारचीनी की जाति का एक प्रकार का बड़ा और बहुत ऊँचा वृक्ष जो कामरूप, आसाम और दार्जिलिंग में उत्पन्न होता है।
विशेष—इसकी छाल दो अंगुल से चार पाँच अँगुल तक मोटी होती है और लकड़ी भारी, पीलापन लिए सफेद रंग की होती है। इसकी छाल और लकड़ी दोनों सुगंधित होती हैं। लकड़ी बहुत मजबूत होती है और साफ करने पर चमकदार निकलती है जिसमें दीमक आदि कीड़े नहीं लगते। इससे मेज, कुरसी, संदूक आदि बनते हैं और इमारत आदि में भी यह काम आती है। वसंत ऋतु में बीज बोने से यह वृक्ष उगता है।

मलयज[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। उ०—मलयज घसि घनसार मैं खौरि किए गयगौनि। सेत बसन सजि तजि गली चली चाँदनी रैनि।—स० सप्तक, पृ० २५०। २. राहु।

मलयज[२]—वि० मलय पर्वत से आनेवाली। मलय पर्वत की। उ०—सोता तारक किरन पुलक रोमावलि मलयज वात।—लहर, पृ० ५२।
यौ०—**मलयजरज** = चंदन का चूर्ण। **मलयजवात** = दक्षिण की वायु। मलयानिल।

मलयद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. मदन। मैना या मैनी नामक पेड़।

मलयपवन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मलयानिल'।

मलयभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय के एक प्रदेश का नाम।

मलयवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

मलयसमीर—संज्ञा पुं० [सं०] मलयानिल। मलय पवन। दक्षिणी वायु [को०]।

मलया[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. त्रिवृता। निसोथ। २. सोमराजी। बावची। बकुची।

मलया(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मलय**] श्वेत चंदन। मलयज। मलय। उ०—मलया के परसंग से सीतल होअत साँप।—पलटू०, पृ० ३७।

मलयागिरि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलयगिरि'। उ०—मलयागिरि कै पीठि सँवारी। बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९६।

मलयाचल—संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि। मलय पर्वत।

मलयाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] मलयाचल। मलय पर्वत [को०]।

मलयानिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलय पर्वत की ओर से आनेवाली वायु। दक्षिण की वायु। उ०—जा, मलयानिल, लौट जा, यहाँ अवधि का शाप। लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप।—साकेत, पृ० २९२। २. सुगंधित वायु। ३. वसंत काल की वायु।

मलयालम[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मलय** (= पर्वत) + **अलम** (= उपत्यका)] दक्षिण के एक पहाड़ी देश का नाम जो पश्चिमी घाट के किनारे किनारे फैला हुआ है। इसे केरल भी कहते हैं। यहाँ की भाषा मलयालम कहलाती है। यहाँ नायर नामक हिंदुओं और मोपला नामक मुसलमान जाति की आबादी है। केरल।

मलयालम[२]—संज्ञा स्त्री० केरल प्रदेश में प्रचलित भाषा जो दक्षिण की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है।

मलयालि—संज्ञा पुं० [त० **मलयालम**] मलयालम में बसनेवाली एक पहाड़ी जाति का नाम। इस जाति के लोग पशुपालन और खेती करते हैं और तमिल भाषा बोलते हैं।

मलयाली[१]—वि० [**त० मलयालम**] १. मलाबार देश का। मलाबार देश संबंधी। २. मलाबार देश में उत्पन्न।

मलयाली[२]—संज्ञा स्त्री० मलाबार देश की भाषा। केरल में प्रचलित भाषा।

मलयुग—संज्ञा पुं० [सं० मल (= पाप) + **युग**] दे० 'कलियुग'। उ०—नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो। अब गरीब जन पोषिए पायबो न हेरो।—तुलसी (शब्द०)।

मलयोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

मलराना(पु)—क्रि० स० [सं० **मल्ह**] दे० 'मल्हराना'।

मलरुचि—वि० [सं०] दूषित रुचि का। पापी। उ०—सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी। समनि सोक संताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी।............दंडपानि भैरव विषान मलरुचि खलगन भे दासी। लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी।—तुलसी (शब्द०)।

मलरोधक—वि० [सं०] जो मल को रोके। जिसके खाने से कोष्ठ बद्ध हो। कब्जियत करनेवाला। काबिज।

मलरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्टंभ। कोष्ठबद्ध। कब्जियत।

मलवंधा—वि० [?] स्वादरहित और अरुचि उत्पन्न करनेवाला। उ०—आकास का मलवंधा स्वाद।—गोरख०, पृ० २२३।

मलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुमती स्त्री [को०]।

मलवा[१]—संज्ञा पुं० [**बरमी**] हावर की जाति का एक पेड़ जो बरमा में होता है।
विशेष—यह बहुत अधिक उँचा नहीं होता। इसकी लकड़ी चिकनी और नारंगी रंग की होती है और मेज, आदि बनाने के काम में आती है।

मलवा[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलबा'।

मलवाना—क्रि० स० [हिं० **मलना का प्रे० रूप**] मलने के लिये प्रेरणा करना। मलने का काम दूसरे से कराना।

मलवासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुमती स्त्री। वह स्त्री जो अपने मासिक धर्म में हो [को०]।

मलविनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शंखपुष्पी। २. क्षार। ३. निर्मली।

मलविसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] मलत्याग। शौच होना [को०]।

मलवेग—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीसार।

मलशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का साफ होना। कोष्ठबद्धता दूर होना [को०]।

मलसा—संज्ञा पुं० [सं० **मल्लक**] घी रखने का कुप्पा।

मलसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलसा**] मिट्टी का बर्तन जिसमें प्रायः मुसलमान खाना पकाते हैं।

मलसूत—संज्ञा पुं० [अ० मबसूत] भारी बोझ उठाकर गाड़ी या नाव आदि पर लादने का यंत्र। गोध। दमकला।

मलहंता—संज्ञा पुं० [सं० **मलहन्तृ**] सेमल का मूसल।

मलहम—संज्ञा पुं० [अ० **मरहम्**] ओषधियों के योग से बना हुआ चिकना चमकीला लेप जो घाव, फोड़े आदि पर लगाया जाता है। मरहम।

मलहर—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा। जयमाल।

मलहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार राजा रौद्राश्व की कन्या का नाम।

मलहारक—संज्ञा पुं० [सं०] भंगी। मेहतर।

मला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा। २. चमड़े से बना हुआ पदार्थ। ३. कसकुट। ४. भुइँ आँवला। ५. बिच्छू का डंक। ६. आँबा हलदी।

मलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [देश० या अ० माल (=**सार तत्व**)] दूध की साढ़ी। उ०—छाछ को ललात जैसे राम नाम के प्रसाद खात खून सात सौंधे दूध की मलाई है।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—जब दूध हलकी आँच पर गरम किया जाता है, तब वह गाढ़ा होता जाता है और उसके ऊपर सार भाग की एक हलकी तह जमती है। यही तह बार बार जमने से मोटी हो जाती है। इसी को मलाई कहते हैं। यह मुलायम और चिकनाई से भरी होती है तथा जमाए जाने पर इसी मलाई को मथकर मसका निकाला जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—जमाना।—पड़ना।

२. सारतत्व। रस। उ०—भूरि दई विष भूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई।—(शब्द०)। ३. एक रंग का नाम जो बहुत हलका बादामी होता है।

मलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलना**] १. मलने की क्रिया या भाव २. मलने की मजदूरी।

मलाकर्षी—संज्ञा पुं० [सं० मलाकर्षिन्] [स्त्री० **मलाकर्षिणी**] मलहारक। भंगी। मेहतर।

मलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामिनी स्त्री। उ०—नंद लला यहि में न मलाकान कोने धों काम कला तुलकी।—अकबरी०, पृ० ३५१। २. वेश्या। ३. दूती। ४. हथिनी।

मलाट—संज्ञा पुं० [देश० **या अं० मौटिल्ड**] एक प्रकार का मोटा घटिया कागज जो प्रायः खाकी रंग का होता है और कागजों के बंडल बाँधने या इसी प्रकार के और कामों में आता है।

मलानⓟ—वि० [सं० **म्लान**] दे० 'म्लान'। उ०—बरष चारि दस विपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। आइ पायँ पुनि देखिहउँ मन जनि करसि मलान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुनि सजनी सुर भान है अति मलान मति मंद। पूनो रजनी में जु गिलि देत उगिलि यह चंद।—शृं० स० (शब्द०)।

मलानिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **म्लानि**] दे० 'म्लानि'। उ०—जानि जिय अनुमानहीं सिय सहस बिधि सनमानि। राम सदगुन धाम परमित भई कछुक मलानि।—तुलसी (शब्द०)

मलापह—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मलापहा**] १. मलनाशक। मल दूर करनेवाला। २. पापनाशक।

मलाबार—संज्ञा पुं० [सं० **मलय** + हिं० **बार** (=किनारा)] भारत के दक्षिणी प्रांत का वह प्रदेश जो पश्चिमा किनारे पर है। यह प्रदेश पश्चिमी घाट के पच्छिमी समुद्र के तट पर है।

मलाबारी—वि० [हिं० **मलबार** + **ई** (प्रत्य०)] मलाबार का निवासी।

मलामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लानत। फटकार। दुतकार। उ०—आया रोज क्यामत मलामत से पाक हुए, रहैगा सलामत खुदाई आप आप ते।—(शब्द०)।

यौ०—लानत मलामत।

२. किसी पदार्थ में का निकृष्ट या खराब अंश। गंदगी।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

मलामती—वि० [फ़ा०] १. जो मलामत करने के योग्य हो। दुतकारने या फटकारने योग्य। २. घृणित। जघन्य।

मलायक—संज्ञा पुं० [**अ० मलक का बहु० मलाइक**] देवगण [को०]।

मलार—संज्ञा पुं० [सं० **मल्लार**] संगीत शास्त्रानुसार एक राग का नाम। उ०—पूस मास सुनि सखिन पै साई चलत सवार। गहि कर बिन परबीन तिय राग्यौ राग मलार।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—कुछ आचार्य इसे छह प्रधान रागों के अंतर्भूत मानते हैं, पर दूसरे इसके बदले हिंडाल या मेघराग को स्थान देते हैं। यह राग वर्षाऋतु में गाया जाता है। बेलावली, पूरबी कान्हड़ा, माधवी, काड़ा और केदारिका ये छह इसकी रागिनियाँ हैं। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसके गाने की ऋतु वर्षा और समय रात का दूसरा पहर है। संगीत-सार ने इस मेघ राग का छठा पुत्र माना है। इसका रंग श्याम, आकृति भयानक, गले में साँप का माला पहने, फूलों के आभूषण धारण किए सस्त्रीक बतलाया गया है। इसका स्थान विंध्याचल, वस्त्र केले का पत्ता और मुकुट केले की कलिका कही जाती है। इसका अस्त्र धनुष, कटारी और छुरा लिखा है।

मुहा०—मलार गाना = बहुत प्रसन्न होकर कुछ कहना, विशेषतः गाना। जैसे,—आप ता दिन भर घर पर बैठे मलार गाया करते हैं।

मलारि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षार।

मलारी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मल्लारी**] वसंत राग की एक रागिनी का नाम।

मलाल—संज्ञा पुं० [अ०] १. दुःख। रंज।

मुहा०—**मलाल आना या मलाल पैदा होना** = (१) रंज होना। मन में दुःख होना। (२) मन में मैल उत्पन्न होना। **मलाल निकलना** = मन में दबा हुआ दुःख कुछ बक झककर दूर करना।

२. उदासीनता। उदासी।

मलावरोध—संज्ञा पुं० [सं०] मल का रुकना। कब्जियत [को०]।

मलावह—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार पापों की एक कोटि।

विशेष—इसमें कृमिकीटों और पक्षियों की हत्या, मद्य के साथ एक पात्र में लाए हुए पदार्थों को खाना, फल, ईंधन और फूल की चोरी और अधैर्य संमिलित हैं।

मलाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। २. अँतड़ियाँ [को०]।

मलाह—संज्ञा पुं० [हिं० **मल्लाह**] दे० 'मल्लाह'। उ०—रूप कहर दरियाव में तरिबो है न सलाह। नैनन समुझावत रहै निसि दिन ज्ञान मलाह।—रसनिधि (शब्द०)।

मलाहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेहरे पर का नमक। सौंदर्य। उ०—शोर दरिया तक मलाहत का तेरी पहुँचा है शोर। बेनमक आगे तेरे लब के नमकदाँ हो गया।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

मलिंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मलंग**] दे० 'मलंग'।

मलिंद—संज्ञा पुं० [सं० **मिलिन्द**] भ्रमर। भौंरा। उ०—(क) मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले, मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नेह सरीखी रज्जु नहिं, कविवर करै विचार। वारिज बाँध्यो मलिंद लखि, दार विदारन हार।—दीनदयाल (शब्द०)। (ग) मंजुल मंजरी पै हो मलिंद विचारि कै भार सम्हारि कै दीजियो।—व्यंग्यार्थ (शब्द०)।

मलिक—संज्ञा पुं० [अ०। सं०] [स्त्री० **मलिका**] १. राजा। उ०—तब्बे चितइ मलिक असलान, सब्ब सेन मह पलइ पातिसाह।—कीर्ति०, पृ० ११०। २. अधीश्वर। ३. मुसलमानों की एक जाति का नाम जो प्रायः कृषि कर्म करती है। ये लोग मध्यम श्रेणी के माने जाते हैं। ४. किन्नरों और कथकों के एक वर्ग की उपाधि।

मलिकजादा—संज्ञा पुं० [अ० **मलिक** + फ़ा० **ज़ादह्**] बादशाह का लड़का। शाहजादा [को०]।

मलिका[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **मलिकह्**] १. रानी। २. अधीश्वरी।

मलिका[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मल्लिका'।

मलिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० **म्लेच्छ**] दे० 'म्लेच्छ'। उ०—तबही विश्वामित्र तहँ विविध मुआयुध वाहि। व्याकुल कीन्ह मलिच्छ दल सब शक यवन विदाहि।—पद्माकर (शब्द०)।

मलिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० **म्लेच्छ**] दे० 'म्लेच्छ'। उ०—तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर, त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है।—भूषण ग्रं०, पृ० ३७।

मलिच्छ‡—वि० [सं० **म्लेच्छ या मलिष्ठ** (= **मलिन**)] मैला। गंदा।

मलिछ—संज्ञा पुं० [सं० **म्लेच्छ, हिं० मलिच्छ**] दे० 'मलिच्छ'। उ०—अरे मलिछ बिसवासी देवा। कत मैं आइ कीन्हि तोरि सेवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५६।

मलित—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी कूँची जिससे सुनार नक्काशी के गहनों को साफ करते हैं।

मलिन[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मलिना, मलिनी**] १. मलयुक्त। मैला। गँदला। स्वच्छ का उलटा। उ०—चाहे न चंपकली की थली मलिनी नलिनी कि दिशान सिधावै।—केशव (शब्द०)। २. दूषित। खराब। ३. जिसका रंग खराब हो। मटमैला। धूमिल। बदरंग। उ०—मलिन भए रस माल सरोवर मुनिजन मानस हंस।—सूर (शब्द०)। ४. पापात्मा। पापी। ५. धीमा। फीका। जैसे, ज्योति मलिन होना। ६. म्लान। विषएण। उदासीन। जैसे, मलिन-मन, मलिनमुख।

यौ०—**मलिनप्रभ**। **मलिनमुख**। **मलिनाकाश** = धूमिल आकाश। उ०—धूलि धूम अरु मेघ करि दीसै **मलिनाकाश**।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७७८।

मलिन[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार के साधु जो मैला कुचैला कपड़ा पहनते हैं। पाशुपत। २. मट्ठा। ३. सोहागा। ४. काला अगर या अगर चंदन। ५. गौ का ताजा दूध। ६. हंस। ७. दस्ता। मूठ। ८. दोष। ९. रत्नों की चमक और रंग का फीका और धुँधला होना। रत्नों के लिये यह एक दोष समझा जाता है।

मलिनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलिन होने का भाव। मैलापन।

मलिनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मलिन होने का भाव। मलिनता। मैलापन मालिन्य।

मलिनप्रभ—वि० [सं०] जिसकी कांति मलिन हो। धूलिधूसर। धुँधला [को०]।

मलिनमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. बैल की पूँछ। ३. प्रेत। ४. एक प्रकार का बंदर (को०)।

मलिनमुख[2]—वि० १. जिसका मुँह उदास हो। उदासीन वदन। २. क्रूर। ३. खल।

मलिनांबु—संज्ञा पुं० [सं० **मलिनाम्बु**] मसी। स्याही।

मलिना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रजस्वला स्त्री। २. लाल साँड़। ३. छोटी भटकटैया।

मलिनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मलिन** + **आई** (प्रत्य०)] मैलापन। मलिनता। उ०—(क) सुखी भए सुरसंत भूमिसुर खलगन मन मलिनाई। सबै सुमन विकसत रवि निकसत कुमुद विपिन बिलखाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।—केशव (शब्द०)।

मलिनाना—क्रि० अ० [हिं० **मलिन से नामिक धातु**] मैला होना। उ०—भरे नेह सोहैं खरे निपट रहे मलिनाय।—शृं० स० (शब्द०)।

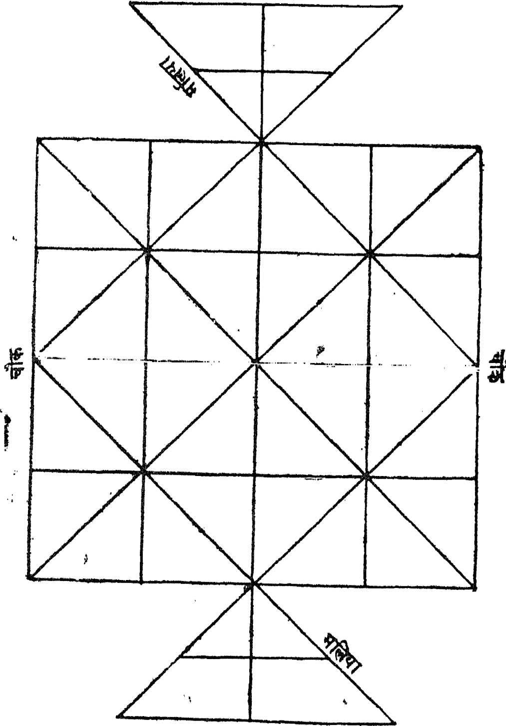
मलिनियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मालिन] दे० 'मालिनी'। उ०—बतिया सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो।—तुलसी ग्रं०,पृ० ४।

मलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री।

मलिनीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] पापों की एक कोटि का नाम। मलावह।

मलिम्लुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलमास। २. अग्नि। ३. चोर। ४. वायु। ५. चित्रक वृक्ष (को०)। ६. पंचयज्ञ न करनेवाला पुरुष।

मलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लक या मल्लिका, हिं० मरिया] १. मिट्टी के एक बर्तन का नाम जिसका मुँह तंग होता है। इसमें घी, दूध, दही आदि पदार्थ रखे जाते हैं। २. गोटी के खेल में वह त्रिकोण चक्र जो चौक के दोनों ओर बीच में बना रहता है। इस खेल को अठारह गोटी कहते हैं।



विशेष—यह खेल दो आदमी खेलते हैं और प्रत्येक पक्ष में अठारह गोटियाँ होती हैं जिनमें से छह गोटियाँ मलिया में और शेष बारह ढाई पंक्तियों में रखी जाती हैं। केवल बीच का बिंदु खाली रहता है। गोटियों की चाल एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक लकीरों के मार्ग से होती है। जब एक गोटी किसी दूसरी गोटी का उल्लंघन करती है, तब वह पहली गोटी मानों मर जाती है और खेल में से निकालकर अलग कर दी जाती है। दोनों ओर की सब गोटियाँ जब मलिया से चौक में निकल आती हैं, तब यदि किसी पक्षवाला 'मलियामेट' शब्द कह दे तो दोनों ओर की मलिया मिटा दी जाती है और फिर गोटियाँ चौक में ही रहती हैं। पर यदि कोई मलियामेट न कहे तो गोटियाँ बराबर मलिया में आती जाती रहती हैं।

यौ०—मलियामेट।

३. घेरा। चक्कर। लपेट।

मुहा०—मलिया बाँधना = रस्सी को मोड़कर बाँधना। (लश०)।

मलियाचलⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मलयाचल] दे० 'मलयाचल'। उ०—विस्व सुवासित होय जिके मुख वासहूँ। मलियाचल महकंत बसंत बिलासहूँ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३ पृ० ३६।

मलियामेट—संज्ञा पुं० [हिं० मलिया + मिटाना] सत्तानाश। तहस नहस। जैसे,—उसने सारा घर मलियामेट कर दिया।

मलिष्ठ—वि० [सं०] १. अत्यंत मलिन। बहुत अधिक मैला कुचैला। २. पापी (को०)।

मलिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुमती स्त्री [को०]।

मलिस—संज्ञा स्त्री० [देश०] छेनी के आकार का सुनारों का एक औजार जिससे हँसुली की गिरह या घुंडियाँ उभारी जाती हैं।

मलीण†—संज्ञा पुं० [?] स्त्रियों की तरह नखरा। जनखापन। उ०—मारवड़ियो महिला तणी मारे रोज मलीण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १४।

मलीदा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चूरमा। २. एक प्रकार का बहुत मुलायम ऊनी वस्त्र।

विशेष—यह वस्त्र बहुत मुलायम और गरम होता है। यह बुने जाने के बाद मलकर गफ और मुलायम बनाया जाता है। यह प्रायः काश्मीर और पंजाब से आता है।

मलीन[१]—वि० [सं० मलिन] १. मैला। अस्वच्छ। उ०—(क) जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मन मलीन मुख सुंदर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. उदास। उ०—अति मलीन वृषभानु कुमारी। हरिश्रम जल अंतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी।—सूर (शब्द०)।

मलीनⓅ[२]—संज्ञा पुं० पाप। उ०—अनै बृजिन दुकृत दुरित अघ मलीन मसि पंक।—अनेकार्थ०, पृ० ५५।

मलीनता—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलीन + ता (प्रत्य०)] दे० 'मलिनता'।

मलीनीⓅ—वि० [हिं० मलीन + ई (प्रत्य०)] मैला। अस्वच्छ। मलीन। उ०—तस हौं अहा मलीनी करा। मिलेउँ आइ तुम्ह भा निरभरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७३।

मलीमस[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा। २. पीले रंग का कसीस। ३. पाप।

मलीमस[२]—वि० १. मलिन। मैला। २. काला। ३. पापी।

मलीयस्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मलीयसी] अत्यंत मलिन। बहुत अधिक मैला कुचैला।

मलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदर। पेट। २. एक प्रकार का पशु।

मलुकानाⓅ†—क्रि० अ० [सं० आलोकन या हिं० मुलकाना] दिखाई देना। उ०—निर्मल जोति नहीं मलुकाई। नानक अनहदि शब्दि समाई।—प्राण०, पृ० १७१।

मलू—संज्ञा स्त्री० [सं० मालु] १. मलधन नामक कचनार की छाल। यह बहुत दृढ़ होती है और रँगने पर कूटकर ऊन में मिलाई जाती है। २. मलधन नामक वृक्ष।

मलूक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कीड़ा। २. एक प्रकार का पक्षी। उ०—मैना मलूक कोइल कपोत। बगहंस और कलहंस गोत।—सूदन (शब्द०)। ३. बौद्ध शास्त्रानुसार एक संख्यास्थान। ४. दे० 'अमलूक'।

मलूक[३]—वि० [देश०] सुंदर। मनोहर। उ०—प्यारी प्यारी वे मलूक हरियाली कुंजें। शोभा छबि आनंद भरी सब सुख की पुंजें।—श्रीधर (शब्द०)।

मलूकदास—संज्ञा पुं० [देश०] एक संत कवि। उ०—तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी हैं। एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हंसी नहि तेरी हँसी है।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १९७।

विशेष—ये इलाहाबाद के कड़ा गाँव के लाला सुंदरदास कक्कड़ (खत्री) के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६३१ वैशाख कृष्ण ५ को हुआ और १०८ वर्ष की अवस्था में संवत् १७३९ में इन्होंने अपना शरीर त्याग किया था।

मलून—संज्ञा पुं० [सं० मल] पक्वाशय में विष्ठा से उत्पन्न एक प्रकार के कीड़े। उ०—इन (कृमियों) के पांच नाम हैं—ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, मलून और लेलिह।—माधव०, पृ० ७१।

मलूल—वि० [अ०] दुखी। रंजीदा। उदास। उ०—भला अपने दिल कूं करो मत मलूल, रखो उस कतैं खोल मानिंद फूल।—दक्खिनी०, पृ० २३६।

मलेच्छ—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छ] दे० 'म्लेच्छ'।

मलेच्छ—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छ] दे० 'म्लेच्छ'। उ०—पाछैं एक मलेच्छ वा गाम ऊपर चढ़ि के (आयो), वो लराई में कृष्णदास देह छोरी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३८।

मलेछⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छ, हिं० मलेच्छ, मलेछ] दे० 'म्लेच्छ'। उ०—मलेछ सोई जो मल के खावे सो मल कबहि ना धोवै।—संत० दरिया, पृ० ९७।

मलेटरी†—संज्ञा स्त्री० [अं० मिलिटरी] सेना। फौज। उ०—मलेटरी ने बहुरा चेथरू को गिरफ्फ कर लिया है।—मैला०, पृ० १।

मलेपंज—संज्ञा पुं० [देश०] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुड्ढा घोड़ा।

मलेयाⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० मलय] मलयागिरि चंदन। श्वेत उ०—पवन भछै सो होए भुअंगा। करहि जोग मलेया के संगा।—संत० दरिया, पृ० १४।

मलेरिया—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ज्वर जो वर्षा ऋतु में फैलता है।

विशेष—यह जाड़ा देकर आता है। पहले डाक्टरों का विश्वास था कि वस्तुओं के सड़ने या किसी अन्य कारण से वायु में विष फैलता है जिससे सविराम, अर्थात् अंतरिया, तिजरा, चौथिया आदि ज्वर, जो मलेरिया के अंतर्गत हैं, फैलते हैं। पर अब उन्होंने यह निश्चय किया है कि मच्छड़ों के दंश से मलेरिया का विष मनुष्यों के रक्त में पहुँचता है जिससे सविराम ज्वर का रोग उत्पन्न होता है।

मलैगिरि—संज्ञा पुं० [सं० मलयगिरि] दे० 'मलयगिरि'। उ०—बेना नाग मलैगिरि पीठी। सासि माथे होइ दुइजि बईठी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५६।

मलैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलाई] एक प्रकार का दूध का भाग जो जाड़े के दिनों में रात भर दूध को ओस में रखकर मथने से तैयार होता है।

मलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मलत्याग। शौच [को०]।

मलोल—संज्ञा पुं० [अ० मलूल] दे० 'मलाल'।

मलोलना—क्रि० अ० [अ० मलूल, हिं० मलोल] दुखी होना। पछताना।

मलोला—संज्ञा पुं० [अ० मलूल या वलवला] १. मानसिक व्यथा। दुःख। रंज। उ०—राधे अहो हरि भावते को भरिके भुज भेंटिए मेटि मलोलैं।—देव (शब्द०)।

मुहा०—**मलोला या मलोले आना**=दुःख होना। पछतावा होना पश्चात्ताप होना। **मलोले खाना**=मानसिक व्यथा सहना। दुःख उठना। उ०—उन्होंने मसोसे के मलोले खा के कहा।—इंशाअल्लाह (शब्द०)। **दिल के मलोले निकालना**=भड़ास निकालना। कुछ बक झककर मन का दुःख दूर करना।

२. वह इच्छा जो उमड़ उमड़कर मानसिक व्याकुलता उत्पन्न करे। अरमान। जैसे,—मेरे मन का मलोला कब होगा। (गीत)।

क्रि० प्र०—**आना**।—**उठना**।—**निकालना**।

मल्यागिरⓅ‡—संज्ञा पुं० [हिं० मलयागिर] दे० 'मलयगिरि' उ०—नाम अमर मल्यागिर भाई। पीवत विष अमृत हो जाई।—कबीर सा०, पृ० ८९२।

मल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन जाति का नाम।

विशेष—इस जाति के लोग द्वंद्वयुद्ध में बड़े निपुण होते थे; इसीलिये द्वंद्वयुद्ध का नाम मल्लयुद्ध और कुश्ती लड़नेवाले का नाम मल्ल पड़ गया है। महाभारत में मल्ल जाति, उनके राजा और उनके देश का उल्लेख है। भारतवर्ष के अनेक स्थान जैसे मुलतान (मल्लस्थान) मालव, मालभूमि आदि में मल्ल शब्द विकृत रूप में मिलता है। त्रिपिटक से कुशनगर में मल्लों के राज्य का होना पाया जाता है। मनुस्मृति में मल्लों को लिच्छिवी (लिच्छवि) आदि के साथ संस्कारच्युत या व्रात्य क्षत्रिय लिखा है। पर मल्ल आदि क्षत्रिय जातियाँ बौद्ध मतावलंबी हो गई थीं। इसका उल्लेख स्थान स्थान पर त्रिपिटक में मिलता है जिससे ब्राह्मणों के अधिकार से उनका निकल जाना और व्रात्य होना ठीक जान पड़ता है और कदाचित् इसीलिये स्मृतियों में ये व्रात्य कहे गए हैं।

२. द्वंद्वयुद्ध करनेवाला। पहलवान। पट्ठा। उ०—कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५६। ३. मनुस्मृति के अनुसार एक व्रात्य क्षत्रिय जाति का नाम। ४. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार लेट पिता तीवरी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति का नाम। ५. पराशर पद्धति के अनुसार कुंदकार पिता और तंतुवाय माता

से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। ६. पात्र। ७. कपोल। ८. एक प्रकार की मछली। ९. एक प्राचीन देश का नाम जो विराट देश के पास था। १०. दीप। उ०—दगदगाति जो मल्ल सी अग्नि राशि की कांति। सोई मणि माणिक विषे, कांति रंग की भाँति।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

मल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाँत। २. दीवट। चिरागदान। ३. दीप। दीया। ४. नारियल के छिलके का बना हुआ पात्र। ५. बर्तन। पात्र। ६. डब्बे या संपुट का पल्ला।

मल्लकाछ संज्ञा पुं० [सं० **मल्ल**+हिं० **काछ**] दे० 'मलकाछ'। उ०—तब तो मोर मुकुट, काछनी, धोती, उपरेना, वागा, पाग, फेंटा, कुलही, टिपारो, मल्लकाछ, पिछोरा या प्रकार भाँति भाँति के सिंगार करे।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ९३।

मल्लक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० **मल्लक्रीडा**] मल्लयुद्ध। कुश्ती।

मल्लखंभ - संज्ञा पुं० [सं० **मल्ल**+हिं० **खंभ**] दे० 'मलखम'।

मल्लज—संज्ञा पुं० [सं०] काली मिर्च।

मल्लतरु—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल या पियार का पेड़। चिरौंजी।

मल्लताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत शास्त्रानुसार एक ताल का नाम जिसमें पहले चार लघु और फिर दो द्रुत मात्राएँ होती हैं। यह ताल के आठ मुख्य भेदों में से एक माना जाता है।

मल्लतूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नगाड़ा जो रस्साकसी के समय बजाया जाता था [को०]।

मल्लनाग—संज्ञा पुं० [सं०] कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन का एक नाम।

मल्लपछार—वि० [सं० मल्ल+हिं० **पछाड़ना**] पहलवानों को पछाड़नेवाला। उ०—मदहारी श्री मुकुटधर, मधुपुर मल्लपछार।—दरिया० बानी, पृ० १८।

मल्लभू— संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मल्लभूमि' [को०]।

मल्लभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मलद नामक देश। २. कुश्ती लड़ने की जगह। अखाड़ा।

मल्लयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] परस्पर द्वंद्वयुद्ध जो बिना शस्त्र के केवल हाथों से किया जाय। बाहुयुद्ध। कुश्ती।

पर्या०—**नियुद्ध**। बाहुयुद्ध।

विशेष—यह युद्ध प्राचीन मल्ल जाति के नाम से प्रख्यात है। इस जाति के लोग अखाड़ों में व्यायाम और युद्ध किया करते थे। महाभारत काल में इनकी युद्धप्रणाली को राजा लोग इतना पसंद करते थे कि प्रायः सभी राजाओं के दरबार में मल्ल नियुक्त किए जाते थे और उन्हें अखाड़ों में लड़ाया जाता था। कितने लोग मल्लों को रखकर उनसे स्वयं शिक्षा प्राप्त करते थे और मल्लयुद्ध में निपुणता बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। जरासंध और भीम मल्लयुद्ध के बड़े व्यसनी थे। जरासंध के यहाँ मल्लों की एक सेना भी थी।

मल्लविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश्ती की कला या विद्या। मल्लयुद्ध की विद्या।

मल्लशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लयुद्ध करने का स्थान। मल्लभूमि। अखाड़ा।

मल्ला[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। नारी। २. मल्लिका। चमेली। ३. एक लता का नाम। पत्रवल्ली।

मल्ला[२]—संज्ञा पुं० [देश०] १. जुलाहों के हत्था नामक औजार का ऊपरी भाग जिसे पकड़कर वह चलाया जाता है। २. एक प्रकार का लाल रंग जो कपड़े को लाल या गुलाबी रंग के माठ में बचे हुए रंग में डुबाने से आता है।

मल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] मलार नामक राग। विशेष दे० 'मलार'।

मल्लारि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण। २. शिव।

मल्लारि[२]—संज्ञा स्त्री० एक रागिनी। दे० 'मल्लारी'।

मल्लारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंत राग की एक रागिनी का नाम।

विशेष—हलायुध ने इसे मेघ राग की रागिनी और ओडव जाति की माना है और ध, नि, रि, ग, म, ध, इसका स्वरग्राम बतलाया है।

मल्लाह—संज्ञा पुं० [**अ०**] [स्त्री० **मल्लाहिन**] एक अंत्यज जाति जो नाव चलाकर और मछलियाँ मारकर अपना निर्वाह करती है। केवट। धीवर। माझी।

मल्लाही[१]—वि० [**फा०**] मल्लाह संबंधी। मल्लाह का।

मुहा०—**मल्लाही काँटा** = लोहे का एक काँटा जिसका सिर चिपटा करके मोड़ा या घुमाया होता है। ऐसा काँटा नाव की पटरियों के जड़ने में काम आता है।

मल्लाही[२]—संज्ञा स्त्री० मल्लाह का काम, मजदूरी या पद।

मल्लि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार चौबीस जिनों में उन्नीसवें जिन का नाम। इन्हें मल्लिनाथ कहते हैं।

मल्लि[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।

मल्लिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का हंस जिसके पैर और चोंच काली होती है। २. जोलाहों की ढरकी। ३. माघ का महीना।

मल्लिक[२]—संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'मलिक'।

मल्लिक[३]—संज्ञा पुं० बंगालियों की एक जाति और अल्ल या उपनाम।

मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बेला जिसे मोतिया कहते हैं। उ०—दृगजल से सानंद, खिलेगा कभी मल्लिकापुंज।—झरना, पृ० ९।

विशेष—वैद्यक में इसका स्वाद कड़वा और चरपरा, प्रकृति गरम और गुण हलका, वीर्यवर्धक, वात-पित्त-नाशक, अरुचि और विष में हितकर तथा व्रण और कोढ़ का नाशक लिखा है। इसका फूल सफेद और गोल तथा गंध मनोरम होती है। कुछ लोग भ्रमवश इसे चमेली समझते हैं।

२. आठ अक्षरों का एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण और अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे—एक काल रामदेव। सोधु बंधु करत सेव। शोभिजै सबै सो और। मंत्रि मित्र ठौर ठौर। ३. सुमुखि वृत्ति का एक नाम।

४. एक वाद्य का नाम (को०)। ५. दीवट (को०) ६. एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन (को०)।

मल्लिकाक्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का घोड़ा जिसकी आँख पर सफेद धब्बे होते हैं। २. घोड़े की आँख पर के सफेद धब्बे। ३. एक प्रकार के हंस का नाम।

मल्लिकाक्ष[3]—वि० सफेद आँखवाला। कंजा।

मल्लिकाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख पर सफेद धब्बेवाली कुतिया [को०]।

मल्लिकाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मल्लिकाक्ष' [को०]।

मल्लिकाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलिकापुष्प [को०]।

मल्लिकामोद—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद का नाम जिसमें चार विराम होते हैं।

मल्लिकाछद—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक का आच्छादन। (अं) लैंप शेड [को०]।

मल्लिकापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. मल्लिका का फूल। २. कुटजवृक्ष।

मल्लिकार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम जो श्रीशैल पर है। यह द्वादश ज्योतिर्लिंग में से एक है।

मल्लिगंधि—संज्ञा पुं० [सं० **मल्लिगन्धि**] अगर।

मल्लिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनियों के उन्नीसवें तीर्थंकर का नाम। २. संस्कृत काव्यों (रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधचरित, मेघदूत आदि) के प्रसिद्ध टीकाकार जिनका समय १४वीं १५वीं शताब्दी के लगभग है। इनका पूरा नाम मल्लिनाथ सूरि था।

मल्लिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] छत्राक। कुकुरमुत्ता [को०]।

मल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मल्लिका। उ०—लपटत इव माधविका सुबास। फूली मल्ली मिलि करि उजास।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३११। २. सुंदरी वृत्ति का एक नाम।

मल्लु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. बंदर।

मल्लू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मल्लु'।

मल्हनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग अधिक चौड़ा होता है।

मल्हपनाⓅ†—क्रि० अ० [प्रा० **मल्ह**] लीला करना। लीला के साथ धीरे धीरे चलना। उ०—सही समाँणी साथि करि, मंदिर कूँ मल्हपंत।—ढोला०, दू० ६८।

मल्हम—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मरहम**] दे० 'मलहम'। उ०—हाय हाय मुख तें कढ़ै परे इस्क के घाव। मल्हम यहि सहि जानियो मोहन दरस दिखाव।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३५।

मल्हराना†—क्रि० स० [सं० **मल्ह (= गोस्तन)**] चुप करना। पुचकारना। मल्हाना। उ०—रुचिर सेज लै गई मोहन को भुजा उछंग सुवावति है। सूरदास प्रभु सोई कन्हैया हलरावति मल्हरावति है।—सूर (शब्द०)।

विशेष—गौओं को दुहते समय जब दुहनेवाला उनके स्तन से दूध निकालता है, तब नई गौएँ बहुत उछलती कूदती और लात चलाती हैं। इसके लिये दुहनेवाले उन्हें चुमकारते पुचकारते हैं जिससे वे शांत हों और दुहने दें। इसीलिये 'मल्ह' शब्द से, जिसका अर्थ गोस्तन है, मल्हराना, मल्हाना, मल्हारना आदि क्रियाएँ चुमकारने के अर्थ में बनी हैं।

मल्हाना†[1]—क्रि० स० [सं० **मल्ह (=गोस्तन)**] चुमकारना। पुचकारना। मल्हराना। उ०—(क) यशोदा हरि पालनहि झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।—सूर (शब्द०)। (ख) बछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई। सानुज हिय हुलसति, तुलसी के प्रभु की ललित ललित लरिकाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कहति मल्हाइ मल्हाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। मोद कंद कुल कुमुद चंद मेरे रामचंद्र रघुरैया।—तुलसी (शब्द०)।

मल्हानाⓅ[2]—क्रि० अ० [**अप० मल्ह**] पुचकारना। किसी का चरित्र-गान करना। रह रहकर गाना। उ०—कवरण देस तइं आविया, किहाँ तुम्हारउ वास। कुरगँ ढोलउ, कुंण मारुवि, राति मल्हाया जास।—ढोला०, दू०, १६५।

मल्हावेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो प्रायः वृक्षों पर चढ़कर उन्हें बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। विशेष दे० 'मौला'।

मल्हार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मलार'।

मल्हारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मल्हाना'।

मवक्किल—संज्ञा पुं० [**अ० मुवक्किल**] [स्त्री० **मविक्किला (क्व०)**] १. अपनी ओर से वकील या प्रतिनिधि नियत करनेवाला पुरुष। मुकदमे में अपनी ओर से कचहरी या न्यायालय में काम करने के लिये अधिकारी प्रतिनिधि नियत करनेवाला पुरुष। २. किसी को अपना काम सुपुर्द करनेवाला। असामी।

मवनⓅ[1]—वि० [सं० **मौन**] दे० 'मौन'। उ०—कोउ तौ मवन कोऊ नगन विचार है।—भीखा० श०, पृ० ५५।

मवनⓅ[2]—वि० [हिं० **मापना**] १. मापित। मापा या नापा हुआ। २. विचारित। उ०—मवन मंत चुक्कौ न सोइ वर मंत विचारौ।—पृ० रा०, २७। २३।

मवनीⓅ—वि० [सं० **मौनी**] दे० 'मौनी'। उ०—पेम पियाला पीवे मवनी।—कबीर रे०, पृ० २।

मवर—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मतानुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

मवर्रिखा—वि० [अ०] लिखित।

मवसर‡—संज्ञा पुं० [**अ० मुयस्सर**] मौसर। दर्शन का अवसर। उ०—मवसर तिका कुसुम फल मंजर। साख प्रसाख सरूप सुरंतर।—रा० रू०, पृ० ३५३।

मवाजिब—संज्ञा पुं० [अ०] नियमित मात्रा में नियमित समय पर मिलनेवाला पदार्थ। भृति। जैसे, वेतन, महसूल आदि। उ०—फकीरों के मवाजिब बंद हो गए।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मवाजी—वि० [**अ० मवाज़ी**] अनुमान किया हुआ। अनुमानित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग रुपए और गाँव के अंशों का द्योतन करने के लिये होता है। जैसे, मवाजी दस आना, मवाजी पाँच बीघा छह बिस्वा।

मवाद—संज्ञा पुं० [अ०] १. सामग्री। सामान। मसाला। २. पीव। मवाद। ३. प्रमाण। सबूत (को०)।

मवाली—संज्ञा पुं० [अ०] १. यार दोस्त। संगी साथी। २. बदमाश। गुंडा। ३. दक्षिण भारत की अर्धसभ्य और उच्छृंखल एक जाति।

मवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा का स्थान। त्राणस्थल। आश्रय। शरण। उ०—(क) चलन न पावत निगम पथ जग उपजी अति त्रास। कुच उतंग गिरिवर गह्यौ मीना मैन मवास।—बिहारी (शब्द०)। (ख) दैन लगै मन मृगहि जब बिरह अहेरी त्रास। जाइ लेत हैं दौरि तब प्रीतम सुबन मवास।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—**मवास करना** = बसेरा करना। निवास करना। उ०—कहै पदमाकर कलिंदी के कदंबन पै, मधुव्रन कीन्हों आइ महत मवासो है।—पद्माकर (शब्द०)।

२. किला। दुर्ग। गढ़। उ०—(क) हठी मरहठी ता में राख्यो न मवास कोऊ छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से।—भूषण (शब्द०)। (ख) रहि न सकी सब जगत में सिसिर सीत के भास। गरमि भाज गढ़वै भई तिय कुच अचल मवास।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सिंधु तरे बड़े वीर दले खल जोर हैं लंक से बंक मवासे।—तुलसी (शब्द०)। ३. वे पेड़ जो दुर्ग के प्राकार पर होते हैं। उ०—जहाँ तहाँ होरी जरै हरि होरी है। मनहुँ मवासे आगि अहो हरि होरी है।—सूर (शब्द०)।

मवासी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मवास] छोटा गढ़। गढ़ी। उ०—(क) जम ने जाइ पुकारिया डंडा दीया डारि। संत मवासी ह्वै रहा फाँसि न परै हमारि।—कबीर (शब्द०)। (ख) कोट किरीट किए मतिराम करे चढ़ि मोरपखानि मवासी।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—**मवासी तोड़ना** = (१) गढ़ तोड़ना। (२) विजय करना। संग्राम जीतना। उ०—कब दत्तै मवासी तोरी। कब सुकदेव तोपची जोरी।—कबीर (शब्द०)।

मवासी[2]—संज्ञा पुं० १. गढ़पति। किलेदार। उ०—(क) आइ मिले सब विकट मवासी। त्र्यौ अमल ज्यों रैयत खासी।—लाल (शब्द०)। (ख) हुते शत्रु जेते भए ते भिखारी। मवासे मवासीन की जोम भारी।—सूदन (शब्द०)। २. प्रधान। मुखिया। अधिनायक। उ०—(क) गोरस चुराइ खाइ वदन दुराइ राखै मन न धरत वृंदावन को मवासी। सूर श्याम तोहि घर घर सब जानैं इहाँ को है तिहारी दासी।—सूर (शब्द०)। (ख) बन मैं बंसी बजावत डोलत घर मैं भए हौ मवासी।—घनानंद, पृ० ४४४।

मवेशी—संज्ञा पुं० [अ० माशियह् का बहु व० मवाशी] पशु। ढोर। डंगर।

यौ०—**मवेशीखाना**।

मवेशीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० मवेशीखानह्] वह बाड़ा जिसमें मवेशी रखे जाते हैं।

विशेष—वर्तमान सरकारी राज्य में स्थान स्थान पर ऐसे मवेशीखाने हैं जिनमें ऐसे मवेशी बंद किए जाते हैं जिन्हें कृषक उनकी खेती को हानि पहुँचाने पर हाँककर ले जाते हैं। वे मवेशी तबतक उस मवेशीखाने में बंद रहते हैं जबतक कि उनका मालिक प्रति मवेशी कुछ दंड और खूराक खर्च वहाँ के कर्मचारी को नहीं दे देता। मवेशीखाने का कर्मचारी 'मुहर्रिर मवेशी' कहलाता है।

मश—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोध। २. मच्छड़।

मशक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मच्छड़। २. गार्ग्य गोत्र में उत्पन्न एक आचार्य का नाम जो एक कल्पसूत्र के रचयिता थे। ३. महाभारत के अनुसार शकद्वीप में क्षत्रियों का एक निवास-स्थान। ४. मसा नामक चर्मरोग।

मशक[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चमड़े का बना हुआ थैला जिसमें पानी भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

मशककुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मच्छड़ हाँकने की चौरी।

मशकबीन—संज्ञा पुं० [फ़ा० मशक + हिं० बीन] एक प्रकार का मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला बाजा जिसमें थैला सा बना रहता है और जिसमें एक नली फूँकने के लिये तथा अन्य स्वर संयोजनार्थ होती है। यह शब्द (अं० बैग पाइप का) हिंदी रूपांतर है।

मशकहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मसहरी'।

मशकावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

मशकी—संज्ञा पुं० [सं० मशकिन्] उदुंबर। गूलर का पेड़ जिसमें मशक रहते हैं [को०]।

मशकूर—वि० [अ०] कृतज्ञ [को०]।

मशक्कत—संज्ञा स्त्री० [अ० मशक़्क़त] १. मेहनत। श्रम। परिश्रम। २. वह परिश्रम जो जेलखाने के कैदियों को करना पड़ता है। जैसे, चक्की पीसना, कोल्हू पेरना, मिट्टी खोदना रस्सी बटना आदि। ३. कष्ट। दुःख। तकलीफ (को०)।

मशक्कती—वि० [अ० मशक़्क़त] मेहनत करनेवाला। मेहनती। परिश्रमी।

मशगला—संज्ञा पुं० [अ० मश्गलह्] १. उद्यम। व्यवसाय। २. व्यापार। शगल। ३. कार्य। काम [को०]।

मशगूल—वि० [अ० मश्गूल] काम में लगा हुआ। प्रवृत्त। लीन।

मशरब—संज्ञा पुं० [अ० मश्रब] १. पानी पीने का स्थान। २. मत। अकीदा। विश्वास [को०]।

मशरिक—संज्ञा पुं० [अ० मश्रिक़] सूर्य निकलने का स्थान। उदयाचल। २. पूर्व। पूरब। उ०—यों सुन्या हूँ शहर मशरिक

का नकल, बादशाह उस शहर स्याने था अकल ।—दक्खिनी०, पृ० ३६३ ।

मशरिकी—वि० [अ० मश्रिकी] १. पूर्वोय । पूरब का । २. जो पश्चिमी या यूरोप का न हो, एशिया का हो [को०] ।

मशरू—संज्ञा पुं० [अ० मशरूअ] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा ।
विशेष—यह रेशम और सूत से बुना जाता है। मुसलमान स्त्री पुरुष इसका पायजामा बनाकर पहनते हैं। यह अधिकतर बनारस में बनता है।

मशवरा—संज्ञा पुं० [अ० मश्वरह्] दे० 'मशविरा'।

मशविरा संज्ञा पुं० [अ० मश्वरह्] सलाह। परामर्श। मंत्रणा।
यौ०—सलाह मशविरा = परामर्श। उ०—उन्होंने समझा कि सुदूर पूर्व में भी एक प्रबल शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और बड़े बड़े राजकीय मामलों में अब आगे उससे भी सलाह मशविरा करने की जरूरत पड़ा करेगी।—द्विवेदी (शब्द०)।

मशहूर—वि० [अ०] प्रख्यात। प्रसिद्ध।

मशाता—संज्ञा स्त्री० [अ० मश्शातह्] १. प्रसाधिका। २. कुटनी। दूती। उ०—छिपी थी सो एक माह मद की छबीली। मशाता हो ईदी निगारत दिखाया। दक्खिनी०, पृ० ७३।

मशान—संज्ञा पुं० [सं० श्मशान] मरघट। उ०—बसे मशान भूत सँग लिये। रक्त फूल की माला दिए।—लल्लू (शब्द०)।

मशायरा—संज्ञा पुं० [अ० मशायरह्] दे० 'मुशायरा'। उ०—आज इस महल्ले में एक जगह मशायरा होगा इस वास्ते दो घड़ी वहाँ जाने का इरादा है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६।

मशाल—संज्ञा पुं० [अ० मशअल, मिशअल] एक प्रकार की मोटी बत्ती जिसके नीचे पकड़ने के लिये काठ का एक दस्ता लगा रहता है और जो हाथ में लेकर प्रकाश के लिये जलाई जाती है।
विशेष—यह कपड़े की बनाई जाती है और चार पाँच अंगुल के व्यास की तथा दो ढाई हाथ लंबी होती है। जलते रहने के लिये इसके मुँह पर बार बार तेल की धारा डाली जाती है।
मुहा०—मशाल लेकर या जलाकर ढूँढ़ना = अच्छी तरह ढूँढ़ना। बहुत ढूँढ़ना। उ०—अगर मशाल लेकर भी ढूँढ़ोगी तो इतना बड़ा दुश्मन न मिलेगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१३।

मशालची—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० मशालचिन] मशाल दिखलानेवाला। मशाल जलाकर हाथ में लेकर दिखलानेवाला।

मशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मसि' [को०]।

मशीखत—संज्ञा स्त्री० [अ० मशीखत] १. बड़प्पन। बुजुर्गी (को०)। २. शेखी। घमंड।
मुहा०—मशीखत बघारना = बढ़ बढ़कर बातें करना। शेखी बघारना।

मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से कोई चीज तैयार की जाय। कल।
यौ०—मशीनगन = एक प्रकार की बंदूक जिससे बहुत तेजी से गोलियाँ छूटती हैं। मशीनमैन = मशीन चलानेवाला आदमी। प्रेस मैन।

मशीनरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. किसी कारखाने के यंत्रों का समूह। २. कार्यप्रक्रिया। रचनापद्धति [को०]।

मशीर—संज्ञा पुं० [अ०] मशविरा देनेवाला। सलाह देनेवाला। मंत्रणा देनेवाला। मंत्री।

मशुन—संज्ञा पुं० [सं०] श्वान। कुत्ता [को०]।

मश्क—संज्ञा पुं० [अ० मश्क़] किसी काम को अच्छी तरह करने का अभ्यास। उ०—दिया सख्त मुश्किल मश्क दकीक। था पानी का वाँ इक चश्मा अमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

मश्करी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मसखरी] दे० 'मसखरी'। उ०—दुष्ट राणे ने मश्करी के साथ विष को चरणामृत कहलाकर भिजवाया।—राम० धर्म०, पृ० २८२।

मश्कूक—वि० [अ०] १. जिसपर शक हो। संदिग्ध। २. जिसको शक हो। शंकावान। शंकित [को०]।

मश्कूर—वि० [अ०] दे० 'मशकूर'।

मश्शाक—वि० [अ० मश्शाक़] जिसे कोई काम करने का खूब अभ्यास हो। अभ्यस्त।

मश्शाकी—संज्ञा स्त्री० [अ० मश्शाक] अभ्यस्त होना। निपुण होना। निपुणता [को०]।

मश्शाता—संज्ञा स्त्री० [अ० मश्शातह्] प्रसाधिका। दे० 'मशाता'।

मष—संज्ञा पुं० [सं० मख] दे० 'मख'। उ०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग। नेवते सादर सकल सुर जे पावत मष भाग।—मानस, १। ६०।

मषार(पु)—वि० [सं० अमर्ष] १. ईर्ष्यालु। द्वेषी। २. क्रोधी। ३. चिकना चुपड़ा। उ०—फंदैत कुरंग मे दून सार। जर हेम पट्ट डोरी मषार।—पृ० रा०, ५८। २१।

मषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काजल। सुरमा। ३. स्याही।

मषिकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषिघटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मषिपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने का काम करनेवाला। वह जो लिखने का काम करता हो। लेखक।

मषिप्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दावात। २. कलम।

मषिमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मषि'।

मष्ट—वि० [सं० मष्ट, प्रा० मष्ट = मट्ठ] १. संस्कारशून्य। जो भूल गया हो। २. उदासीन। मौन। उ०—(क) सो अवगुन कित कीजिए जिव दीजै जेहि काज। अब कहनो है कछु नहीं मष्ट भलो पखिराज।—जायसी (शब्द०) सुनिहैं लोग मष्ट अबहूँ करि तुमहिं कहाँ की लाज। सूर स्याम मेरो माखन भोगी तुम आवति बेकाज।—सूर०, १०। ७७५।

मुहा० — **मष्ट करना** = चुप रहना। मुँह न खोलना। उ०— (क) बोलत लखनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।—तुलसी (शब्द०)। (ग) स्याम तन देखि री आपु तन देखिए। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए।...कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आँगुरी बड़े बड़े नखनि के चिन्ह तेरैं। मष्ट करु हँसैंगे लोग, अँकवार भरि भुजा पाई कहाँ श्याम मेरे।—सूर०, १०।३०७। **मष्ट धारना** = मौन धारण करना। चुप्पी साधना। उ० सुन्यो बसुदेव दोउ नंदसुवन आए। त्रिया सौं कहत कछु सुनत है री नारि, रातिहू सपन कछु ऐसे पाए। गए अक्रूर तेहि नृपति माँगे बोलि, तुरत आए आइ कंस मारे। कहा पिय कहत, सुनिहै बात पौरिया, जाय कहिहै रहौ मष्ट धारे।—सूर०, १०।३०८६। **मष्ट मारना** = मौन धारण करना। चुपचाप रहना। उ०—एक दिन वह रात्रि समय स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन मष्ट मारे बैठा मन ही मन कुछ विचार करता था।—लल्लू (शब्द०)।

मष्णार —संज्ञा पुं० [सं०] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम।

मष्षरी(पु)—वि० [सं० **मत्सर या अमर्ष**, हिं० **माखना**] मत्सरवाला। क्रोधयुक्त। उ०—गजन पंति ढुलि ढाल तत्त तोषार पष्षरिय। जंत्र गोर गहरांन मिलत मेछांन मष्षरिय।—पृ० रा०, ३३।२६।

मसंद(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० **मसनद**, हिं० **मसनंद**] दे० **'मसनद'**। उ०—हम्मीर राव राजत मसंद। दुहुँ ओर चौर ढौरैं अमंद।—ह० रासो, पृ० १११।

मस(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मसि**] स्याही। रोशनाई। उ०—सात स्वर्ग को कागद करई। धरती समुद दुहुँ मस भरई।—जायसी (शब्द०)।

मस[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मशक**] मच्छड़। मशक। उ०—दादुर काकोदर दसन परे मसन मात ध्याउ।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६।

यौ० — **मसहरी** = दे० 'मशहरी'।

मस[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० **श्मश्रु**] मोछ निकलने से पहले उसके स्थान पर की रोमावली। उ०—उनके भी उगती मसों से रस का टपका पड़ना और अपनी परछाई से अकड़ना इत्यादि।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मुहा० — **मस भींजना** = मूछों का निकलना आरंभ होना। मूछों की रेखा दिखाई पड़ने लगना। उ०—उठत बैस मस भींजत सलोने सुठि सोभा देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं।—(शब्द०)।

मस[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० **'मसा'**।

मस[5]—संज्ञा पुं० [सं०] माप। तौल [को०]।

मस[6]—संज्ञा पुं० [अ०] १. चूसना। चूषण। २. छूना। ३. पसंद। रुचि [को०]।

मसक —संज्ञा पुं० [सं० **मशक**] मसा। मच्छड़। डाँस। उ०—मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।—तुलसी (शब्द०)।

मसक[2] संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मशक**] दे० 'मशक'। उ०—छूछी मसक पवन पानी ज्यों तैसेई जन्म बिकारी हो।—सूर (शब्द०)।

मसक[3]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मसकने की क्रिया या भाव।

मसक[4]—संज्ञा पुं० [हिं० **मसक**] एक प्रकार का बाजा। मशकबीन। उ०—झाँझ मजीरे मसक समय अनुसार।—प्रेमघन०, भा० १, पृ०७८।

मसकची—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मशक** + तु० ची (प्रत्य०)] भिश्ती। मसकवाला। उ०—उस समय बादशाह का गुमान एक मसकची था।—हुमायूँ०, पृ० ६६।

मसकत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० **मशक़्क़त**] दे० 'मशक्कत'। उ०—तुम कब मो सों पतित उधारयो। काहे को प्रभु बिरद बुलावत बिन मसकत को तारयो।—सूर (शब्द०)।

मसकन—संज्ञा पुं० [अ० **मस्कन**] निवासस्थान। घर। मकान। उ०—मुबारक शहर मगरिब थे मसकन। वलियाँ में सब अथै अफजल हर यक मन।—दक्खिनी०, पृ० ११५।

मसकना[1]—क्रि० स० [अनु०] १. खिंचाव या दबाव में डालकर कपड़े को इस प्रकार फाड़ना कि बुनावट के सब तंतु टूटकर अलग हो जायँ। २. किसी चीज को इस प्रकार दबाना कि वह बीच में से फट जाय या उसमें दरार पड़ जाय। उ०—महाबली बालि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु हैं।—तुलसी (शब्द०)। ३. जोर से दबाना। जोर से मलना। उ०—सो सुख भाषि सकै अब को रिस कै कसकै मसकै छतियाँ छियें। राति की जागी प्रभात उठी अँगरात जम्हात लजात लगी हियें।—पद्माकर (ग्रं०, पृ० १७१)। †४. बैलों को बलपूर्वक हाँकना। दौड़ाना। भगाना। उ०—गाड़ी वारे मसकि दे बैल अबै पुरवैया के बादर ऊन आए।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६।

संयो० क्रि०—**डालना**।—**देना**।

मसकना[2]—क्रि० अ० किसी पदार्थ का दबाव या खिंचाव आदि के कारण बीच में से फट जाना। जैसे,—कपड़ा मसक गया, दीवार मसक गई।

संयो० क्रि०—**जाना**।

२. (चित्त का) चिंतित होना। दु.ख के कारण धँसना। उ०—राजकुमार धीरे से उसी स्थान पर बैठ गए। पूर्वकालीन बातें स्मरण होने लगीं और कलेजा मसकने लगा।—गदाधरसिंह (शब्द०)।

मसकरा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० **मसखरा**] दे० **'मसखरा'**। उ०—(क) जूझैंगे तब कहैंगे अब क्या कहें बनाय। भीर परै मन मसकरा लड़ै किधौं भगि जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) दादू यहु मन मसकरा, जिनि कोई पतियाइ।—दादू०, पृ० २०६।

मसकरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मसखरी**] दे० 'मसखरी'। उ०—

काँद न देइ मसकरी करई। कहु हुइ भाँति कसे निस्तरई। —कबीर बी० (शिशु०), पृ० २०६।

मसकला—संज्ञा पुं० [अ० **मसक़लह्**] १. सिकलीगरों का एक औजार जो हँसिया के आकार का होता है और जिसमें काठ का एक दस्ता लगा रहता है। इससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है। प्रायः तलवारें आदि भी इसी से साफ की जाती हैं। उ०—(क) गुरु सिकलीगर कीजिए, ज्ञान मसकला देइ। मन की मैल छुड़ाइ कै, सुचि दर्पण कर लेइ।—कबीर (शब्द०)। (ख) शिष्य खाँड गुरु मसकला, चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहे सन्मुख रहे, निपजे शिष्य सुजान।—कबीर (शब्द०)। २. सैकल या सिकली करने की क्रिया।

मसकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मसकला'।

मसका[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मस्कह्**] १. नवनीत। मक्खन। नैनू। २. ताजा निकाला हुआ घी।

मसका[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. दही का पानी। २. रासायनिक परिभाषा में, बाँधा हुआ पारा। ३. चूने की बरी का वह चूर्ण जो उसपर पानी छिड़कने से हो जाता है। ४. कायस्थ। (सुनार)।

मसका(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० **मशक**] दे० 'मसक[2]'। उ०—**मसका** कहत मेरी सरभरि कौन उड़ै। मेरे आगे गरुड़ की कतीयक जर है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४९९।

मसकाना[1]—क्रि० स०, अ० [अनु०] दे० 'मसकना'।

मसकाना(पु)[2]—क्रि० अ० [अनु०] खाना। भक्षण करना। उ०—आफू षाय भाँगि **मसकावै**। ता मैं अकलि कहाँ तैं आवै। चढ़ताँ पित्त उतरताँ बाई। तातैं गोरख भाँगि न खाई। —गोरख०, पृ० ६९।

मसकाला(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० **मसक़लह्**] दे० 'मसकला'। उ०— कहाँ म्यान कहाँ म्यान का म्यांन कहाँ म्यांन का मसकाला। —रामानंद०, पृ० १३।

मसकीन(पु)†—वि० [अ० **मिसकीन**] १. गरीब। दीन। बेचारा। उ०—हौं मसकीन कुलीन कहावौ तुम योगी संन्यासी। ज्ञानी गुणी शूर कवि दाता ई मति काहु न नासी।—कबीर (शब्द०)। २. साधु। संत। उ०—क्या मूड़ी भूमिहि शिर नाए क्या जल देह नहाए। खून करै मसकीन कहावै गुण को रहै छिपाए। —कबीर (शब्द०)। ३. दरिद्र। कंगाल। ४. भोला भाला। ५. सुशील।

मसखरा—संज्ञा पुं० [अ० **मसखरह्**] १. बहुत हँसी मजाक करनेवाला। हँसोड़। ठट्ठेबाज। उ०—कबिरा यह मन मसखरा कहूँ तो माने रोस। जा मारग साहब मिलै तहाँ न चालै कोस।—कबीर (शब्द०)। २. विदूषक। नक्काल।

मसखरापन—संज्ञा पुं० [अ० **मसखरा**+हिं० **पन** (प्रत्य०)] दिल्लगी। ठठोली। हँसी। ठट्ठा। उ०—मुझको तो आपके मुसाहबों में सिवाय मसखरापन के और कोई लियाकत नहीं मालूम होती।—श्रीनिवासदास (शब्द०)।

मसखरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मसखरा**+हिं० **ई** (प्रत्य०)] दिल्लगी। हँसी। मजाक। उ०—जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।—तुलसी (शब्द०)।

मसखवा†—संज्ञा पुं० [हिं० **मांस**+**खाना**] वह जो मांस खाता हो। मांसाहारी। उ०—बूड़ाहि हस्ति घोर मानवा। चहुँ दिस आय जुरे मसखवा।—जायसी (शब्द०)।

मसजिद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मस्जिद**] सिजदा करने का स्थान। मुसलमानों के एकत्र होकर नमाज पढ़ने तथा ईश्वरवंदना करने के लिये विशिष्ट रूप में बना हुआ स्थान।

विशेष—मसजिद साधारणतः चौकोर बनाई जाती है और उसमें आगे की ओर कुछ खुला हुआ स्थान तथा हाथ मुँह धोने के लिये पानी का हौज होता है। पीछे की ओर नमाज पढ़ने के लिये दालान होता है जिसके ऊपर प्रायः एक से चार तक ऊँची मीनारें भी होती हैं, जिनमें से किसी एक पर चढ़कर अजान या नमाज के समय की सूचना दी जाती है।

मसड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिसरी**] कंद। (डिं०)।

मसड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

मसतक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मस्तक**] दे० 'मस्तक'। उ०—मा धण इणि परि राखिजई, जिम सिव मसतक गंग।—ढोला०, दू० ४५३।

मसती—संज्ञा पुं० [हिं० **मस्त**] हाथी। (डिं०)।

मसनंद(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० **मसनद**] दे० 'मसनद'। उ०—नर वर वर मसनंद सीस उस्सीस धराइअ।—सुजान०, पृ० २३।

मसन[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का टकुआ जिसकी सहायता से ऊन के कई तागे एक साथ मिलाकर बटे जाते हैं।

मसन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तौलना। मापना। २. एक प्रकार की जड़ी। ३. चोट। आघात। [को०]।

मसनद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बड़ा तकिया। गाव तकिया। २. तकिया लगाने की जगह। ३. अमीरों की बैठने की गद्दी। उ०—क्या मसनद तकिये मुल्क मकां, क्या चौकी कुरसी तख्त छतर।—नजीर (शब्द०)।

मसनदनशीन—संज्ञा पुं० [अ० **मसनद**+फ़ा० **नशीन**] मसनद पर बैठनेवाला। बड़ा आदमी। अमीर।

मसनवी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मस्नवी**] उर्दू काव्य का एक प्रकार जिसमें कोई कहानी या उपदेश एक ही वृत्ति में होता है और जिसमें हर शेर के दोनों मिसरे सानुप्रास होते हैं पर हर शेर का तुक भिन्न होता है। उ०—जेहि के मसनवी जगत महँ, अगम निगम अवगाह।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २३२।

मसना—क्रि० स० [हिं० **मसलना**] १. मसलना। उ०—(क) स्वास को चारु प्रकास बयारि न मंद सुगंध हियो मसती है।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) आजु परयो जानि जब आपने मैं सुने कान वाको संबोधन मोसो कह्यो ही मसतु है।—रघुनाथ

(शब्द०)। २. गूँधना। जैसे—नेत्रों के आस पास उर्द के मसे हुए आटे की एक अंगुल ऊँची दीवार सी बना दो।

मसनूई—वि० [अ० मस्नूई] १. बनावटी। कृत्रिम। २. झूठा। तथ्यरहित। ३. अस्वाभाविक। अप्राकृतिक [को०]।

मसपूरज†—संज्ञा स्त्री० [हिं० , अस्थि। हड्डी जिसके आधार पर मांस स्थिर रहता है। उ०—नदी सहस नाड़ियाँ प्रगट परवत मसपूरज।—रघु० रू०, पृ० ४५।

मसमुंद†—वि० [**मस ? + मूँदना (= बद होना)**] कशमकश। ठेलमठेल। धक्कमधक्का। उ०—तबहीं सूरज के सुभट निकट मचायो दुंद। निकसि सकैं नहि एकहू कस्यो कटक मसमुंद।—सूदन (शब्द०)।

मसयारा†—संज्ञा पुं० [अ० **मशअल**] १. मशाल। उ०—(क) जानहुँ नखत करहिं उजियारा। छिप गए दीपक औ मसयारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बारह अभरन सोरह सिंगारा। तोहि सोहै पिय ससि मसयारा।—जायसी (शब्द०)। २. मशालची। मशाल दिखानेवाला। उ०—सूक मुनेटा सिस मसयारा। पवन करै नित बार बोहारा।—जायसी (शब्द०)।

मसरना†—क्रि० स० [हिं० **मसलना**] दे० 'मसलना'। उ०—कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात। मसरत सुभग साँवरे गात।—घनानंद, पृ० १८३।

मसरफ—संज्ञा पुं० [अ० मसरफ़] १. व्यवहार में आना। काम में आना। उपयोग। २. व्यय करने की जगह, मौका वा अवसर (को०)। ३. प्रयोजन। हेतु (को०)।

क्रि० प्र०—**में आना**। —**में लाना**।

मसरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूर [को०]।

मसरू—संज्ञा पुं० [अ० **मशरूअ**] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। विशेष दे० 'मशरू'।

मसरूका—वि० [अ० **मसरूकह्**] चोरी किया हुआ। चुराया हुआ। जैसे, माल मसरूका। (कचहरी)।

मसरूफ़—वि० [अ० **मसरूफ़**] काम में लगा हुआ। काम करता हुआ।

मसल—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कहावत। कहनूत। लोकोक्ति। उ०—हिंदू हृदय जो आरति पावे। राम नाम कै मसल चलावे।—गुलाल०, पृ० १२५। २. समान। तुल्य। मिस्ल (को०)।

मसलति—संज्ञा स्त्री० [अ० **मसलहत**] दे० 'मसलहत'। उ०—बोलि खाँन सुलतान तब, मसलति करी जु साहि।—ह० रासो, पृ० ६३।

मसलन्—वि० [अ०] मिसाल के तौर पर। उदाहरण के रूप में। उदाहरणार्थ। जिस तरह। यथा। जैसे।

मसलन—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मसलना**] १. मसलने का कार्य या स्थिति। रगड़ने का भाव। उ०—चंचल किशोर सुंदरता की, मैं करती रहती रखवाली। मैं वह हलकी सी मसलन हूँ, जो बनती कानों की लाली।—कामायनी, पृ० १०३। २. स्पर्श। छुअन।

मसलना—क्रि० स० [हिं० **मलना**] १. हाथ से दबाते हुए रगड़ना। मलना। २. जोर से दबाना। उ०—आज किसी के मसले तारों की वह दूरागत झंकार। मुझे बुलाती है सहमी सी झंझा के परदों के पार।—यामा, पृ० १४।

संयो० क्रि०—**डालना**। - **देना**।

३. आटा गूँधना।

मसलहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] ऐसी गुप्त युक्ति अथवा छिपी हुई भलाई जो सहसा ऊपर से देखने से जानी न जा सके। अप्रकट शुभ हेतु। जैसे—(क) इसमें एक मसलहत है जो अभी तक आपकी समझ में नहीं आई। (ख) इस समय उसे यहाँ से उठा देने में एक मसलहत थी। २. परामर्श। सलाह। उ०—घरे मसलहत करैं बटुरिकै सौ सौ धावै।—पलटू०, पृ० ७०।

यौ०—**मसलहतअंदेश** = समझकर कार्य करनेवाला। **मसलहतपसंद** = (१) शुभकामी। खैरख्वाह। (२) दे० 'मसलहतअंदेश'। **मसलहतेवक्त** = समय की पुकार।

मसलहतिका—वि० [अ० **मसलहत**] परामर्श देनेवाला। सलाह-देनेवाला। उ०—काम औ क्रोध मसलहतिका वे दोऊ।—पलटू०, पृ० ४२।

मसला[1]—संज्ञा पुं० [अ० **मसलह्**] कहावत। कहनूत। लोकोक्ति। उ०—आप भलो तौ जग भलो यह मसलो जुअ गोइ। जौ हरि हित करि चित गहो कहो कहा दुख होइ।—स० सप्तक, पृ० २४६।

मसला[2]—संज्ञा **पुं०** [अ०] १. समस्या। विषय। प्रश्न। सवाल [को०]।

मुहा०—**मसला हल होना** = समस्या हल होना।

मसवई—संज्ञा स्त्री० [**मसोवा द्वीप**] एक प्रकार का बबूल का गोंद जो अदन से आता है। यह पहले मसोवा द्वीप से आता था, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

मसवारा—संज्ञा पुं० [हिं० **मास + वारा (प्रत्य०)**] प्रसूता का वह स्नान जो प्रसव के उपरांत एक मास समाप्त होने पर होता है।

मसवासी—संज्ञा पुं० [सं० **मासवासी**] १. एक स्थान पर केवल एक मास तक निवास करनेवाला विरक्त। वह साधु आदि जो एक मास से अधिक किसी स्थान में न रहे। उ०—कोई सुरिखेसुर कोइ सनियासी। कोई सुरामजति कोई मसवासी।—जायसी (शब्द०)। २. एक महीने से अधिक किसी पुरुष के पास न रहनेवाली स्त्री। गणिका। उ०—तिरिया जो न होइ हरिदासी। जौ दासी गणिका सम जानो दुष्ट राँड मसवासी।—रघुराज (शब्द०)।

मसविदा—संज्ञा पुं० [अ० **मुसविदा**] १. वह लेख जो पहली बार काट छाँट के लिये तैयार किया गया हो और अभी साफ करने को बाकी हो। खर्रा। मसौदा। २. युक्ति। उपाय। तरकीब।

क्रि० प्र०—**निकालना**।

मुहा०—**मसविदा बाँधना** = युक्ति रचना। उपाय सोचना।

मसहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मशहरी**] १. पलंग के ऊपर और चारों ओर लटकाया जानेवाला वह जालीदार कपड़ा जिसका उपयोग मच्छड़ों आदि से बचने के लिये होता है। २. ऐसा पलंग जिसके चारों पायों पर इस प्रकार का जालीदार कपड़ा लटकाने के लिये चार ऊँची लकड़ियाँ या छड़ लगे हों।

विशेष—ऊपर की ओर भी ये चारों लकड़ियाँ या छड़ लकड़ी की चार पट्टियों या छड़ों से प्रायः जोड़े रहते हैं।

मसहारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मांसाहारिन्**] मांसाहारी। मांस खानेवाला। उ०—(क) घटे नहिं कोह भरे उर छोह। नटे मसहार धरे मन मोह।—सूदन (शब्द०)। (ख) मसहार छाए नभ धरनि धाए स्यार।—सूदन (शब्द०)।

मसहूर— वि० [अ० **मशहूर**] दे० 'मशहूर'।

मसाँनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] उ०—घमसान मसाँन सु ज्योति जगी। —ह० रासो, पृ० १५७।

मसा[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मांसकील**] १. शरीर पर कहीं कहीं काले रंग का उभरा हुआ मांस का छोटा दाना जो वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का चर्मरोग माना जाता है, और जो शरीर में अपने होने के स्थान के विचार से शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। यह प्रायः सरसों अथवा मूंग के आकार से लेकर बेर तक के आकार का होता है। उ०—अंदाज से जियादा निपट नाज सुख नहीं। जो खाल अपने हद से बढ़ा सो मसा हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२। २. बवासीर रोग में मांस के दाने जो गुदा के मुँह पर या भीतर होते हैं। इनमें बहुत पीड़ा होती है और कभी कभी इनमें से खून भी बहता है।

मसा[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मशक**] मच्छड़।

मसाइक—संज्ञा पुं० [अ० **मुशायख** (शेख का बहुवचन)] दे० 'शेख'। उ०—पीर पैगंबर किया पयाना। सेख मसाइक सबै समाना। —दादू०, पृ० ५७३।

मसाणⓅ—संज्ञा पुं० [राज०] दे० 'मसान'। उ०—काहे रे नर करहु डफाण। अंतिकालि घर गोर मसाण।—दादू०, पृ० ४८४।

मसान—संज्ञा पुं० [सं० **श्मशान**] १. वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। मरघट। उ०—सब मसान पर हमरा राज। कफन माँगने का है काज।—भारतेंदु ग्रं०,भा० १, पृ० २९२।

पर्या०—पितृवन। शतानक। रुद्राक्रीड़। दाहसर। अंतशय्या। पितृकानन।

मुहा०—**मसान जगाना** = तंत्रशास्त्र के अनुसार स्मशान पर बैठकर शव की सिद्धि करना। मुरदा सिद्ध करना। उ०—कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहु मसान।—तुलसी (शब्द०)। **मसान पड़ना** = सन्नाटा हो जाना।

२. भूत पिशाच आदि।

यौ०—**मसान की बीमारी** = बच्चों को होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें वे घुल घुलकर मर जाते हैं।

३. रणभूमि। रणक्षेत्र। उ०—तुलसी महेश विधि लोकपाल देवगन देखत विमान चढ़ि कौतुक मसान के।—तुलसी (शब्द०)।

मसाना[१]—संज्ञा पुं० [अ० **मसानह्**] पेट में की वह थैली जिसमें पेशाब जमा रहता है। पेशाब की थैली। मूत्राशय। वस्ति।

मसानाⓅ[२]—संज्ञा पुं० [सं० **श्मशान**] दे० 'मसान'। उ०—लोथ पड़ी भहराय उठन हैं गिद्ध मसाना।—पलटू०, पृ० ७६।

मसानिया—संज्ञा पुं० [हिं० **मसान** (**श्मशान**) + इया (प्रत्य०)] १. श्मशान पर रहनेवाला डोम। २. वह जो श्मशान पर रहकर किसी प्रकार की साधना करता हो। ३. वह जो झाड़ फूँककर भूत प्रेत आदि उतारता हो। सयाना। ओझा।

मसानी—संज्ञा स्त्री० [सं० **श्मशानी**] स्मशान में रहनेवाली पिशाचिनी, डाकिनी इत्यादि। उ०—माइ मसानी सेढ़ि सीतला, भैरू भूत हनुमंत। साहब से न्यारा रहै जो इनको पूजंत।—कबीर (शब्द०)।

मसायख—संज्ञा पुं० [अ० **शेख**] दे० 'मसाइक'। उ०—ना कोइ पीर मसायख काजी।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५२।

मसार—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रनील मणि। नीलम।

मसाल—संज्ञा स्त्री० [अ० **मशाल**] दे० 'मशाल'। उ०—आनि इतै छन बारि दै छबि घनसार मसाल। कौन काज तहँ राज जहँ सुखन बदन दुतिजाल।—रामसहाय (शब्द०)।

मसालची—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मशालची**] दे० 'मशालची'।

मसालदुम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० **मशाल** + **दुम**] एक प्रकार का पक्षी जिसकी दुम बिलकुल काली रहती है, बाकी सारा शरीर चाहे जिस रंग का हो।

मसालहत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मसलहत**] सुलह। मेल। संधि। समझौता [को०]।

मसाला—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मसालह्**] १. किसी पदार्थ को प्रस्तुत करने के लिये आवश्यक सामग्री। वे चीजें जिनकी सहायता से कोई चीज तैयार होती है। जैसे, (क) मकान बनाने के लिये सुर्खी, चूना, ईंटें, आदि। (ख) रसोई बनाने के लिये हलदी, धनिया मिर्च, जीरा, तेजपत्ता आदि। (ग) कपड़ा पर टाँकने के लिये गोटा, पट्टा, किनारी आदि। (घ) ग्रंथ या लेख आदि लिखने के लिये दूसरे ग्रंथ आदि।

यौ०—**गरम मसाला**। **मसालेदार**। **मसाले का तेल**।

२. ओषधियों अथवा रासायनिक द्रव्यों का योग या समूह। जैसे, पतील साफ करने का मसाला, पान का मसाला सिर मलने का मसाला, तेल में मिलाने का मसाला। ३. साधन। जैसे,—अब तो आपको भी दिल्लगी का अच्छा मसाला मिल गया। ४. तेल। जैसे,—रोशनी बुझ रही है, मसाला लेते आना। ५. आतिशबाजी। जैसे,—उसकी बारात में अच्छे अच्छे मसाले छूटे थे। ६. नवयौवना और सुंदरी स्त्री (बाजारू)। ७. टार्च या चोरबत्ती में लगनेवाला मसाला। बैटरी का सेल।

मसाली—संज्ञा स्त्री० [अ० मशाल ?] रस्सी। डोरी। (लश०)।

क्रि० प्र०—**कसना**। **बाँधना**।

मसाले का तेल—संज्ञा पुं० [हिं० मसाला + तेल] एक प्रकार का सुगंधित तेल जो साधारण तिल के तेल में कचूर कचरी, बालछड़ आदि सुगंधित द्रव्य मिलाकर बनाया जाता है।

मसालेदार—वि० [अ० मसालह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें किसी प्रकार का मसाला लगा या मिला हो।

विशेष - इसका प्रयोग प्रायः खाद्य पदार्थों के लिये ही होता है।

मसाहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] नापना। पैमाइश [को०]।

मसिंदर—संज्ञा पुं० [अँ० मेसेंजर] जहाज में का वह बहुत बड़ा रस्सा जो चरखी या दौड़ में लपेटा रहता है और जिसकी सहायता से जहाज का गिराया हुआ लंगर उठाया जाता है। (लश०)।

मसि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिखने की स्याही। रोशनाई। उ०—तुम्हरे देश कागद मसि खूटो—सूर (शब्द०)। (ख) परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही।—तुलसी (शब्द०)। २. निर्गुंडी का फल। ३. काजल। ४. कालिख। उ०—जनु मुँह लाई गेरु मसि भए खरनि असवार।—तुलसी (शब्द०)। ५. पाप। उ०—अैन वृजिन् दुकृत दुरित अघ मलीन मसि पंक।—अनेकार्थ०, पृ० ५५। ६. नई उगती मूछों की रेख। मूँछ। उ०—उन्नत नासा अधर बिंब सुक की छबि छीनी। तिन बिच अद्भुत भाँति लसति कछुइक मसि भीनी।–नंद० ग्रं०, पृ० ३।

मसिआरा—वि० [सं० मसि + हिं० आरा (प्रत्य०)] १. कालिमायुक्त। २. कलंकयुक्त। कलंकी। उ०—सूक सोहिया ससि मसिआरा। पवन करै निति बार बुहारा।–जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २९९।

मसिक—संज्ञा पुं० [सं०] साँप का बिल [को०]।

मसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। निर्गुंडी।

मसिकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मसिजल—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने की स्याही। रोशनाई।

मसिजीवी—वि० [सं० मसि + जीविन्] लेखनकार्य करके आजीविका चलानेवाला।

मसित—वि० [सं०] पीसा या चूर्ण किया हुआ [को०]।

मसिदानी–संज्ञा स्त्री० [सं० मसि + फ़ा० दानी] दावात। मसिपात्र।

मसिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मसिधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात [को०]।

मसिपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने का काम करनेवाला। लेखक।

मसिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] कलम।

मसिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मसिप्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलम। २. दावात [को०]।

मसिबुंदा—संज्ञा पुं० [सं० मसिविन्दु] दे० 'मसिविंदु'। उ०—(क) मुनि मन हरत मंजु मसिबुंदा। ललित बदन बलि बालमुकुंदा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उर बघनहा कंठ कठुला झँडूले बार। बेनी लटकन मसिबुंदा मुनिमनहार।—सूर (शब्द०)।

मसिमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मसिमुख—वि० [सं०] जिसके मुँह में स्याही लगी हो। काले मुँहवाला। दुष्कर्म करनेवाला। उ०—जो भागै सत छाँड़ि कै मसिमुख चढ़ै बरात।—(शब्द०)।

मसियर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मशाल'। उ०—चहुँ दिसि मसियर नखत तहाईं। सूरुज चढ़ा चाँद कै ताईं।—जायसी (शब्द०)।

मसियाना—क्रि० अ० [हिं० मस] भली भाँति भर जाना। पूरा हो जाना। उ०—नेगी गेज मिले अरकाना। पँवरथ बाजे घर मसियाना।—जायसी (शब्द०)।

मसियार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मशाल'। (क) धरती सरग चहूँ दिसि पूरि रहे मसियार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१३। (ख) छपि गा दीपक औ मसियारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१३।

मसियारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मशालची'।

मसिवर्ण—वि० [सं०] स्याही के रंग का काला [को०]।

मसिविंदु—संज्ञा पुं० [सं० मसिविन्दु] काजल का बुंदा जो नजर से बचने के बच्चों को लगाया जाता है। दिठौना। उ०—लोयन नील सरोज से भू पर मसिविंदु विराज।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ललित भाल मसिविंदु विराजै। भृकुटी कुटिल श्रवण अति भ्राजै।—विश्राम (शब्द०)।

मसिल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मैनसिल'।

मसिहानी—संज्ञा स्त्री० [सं० मसिधानी] दावात। उ०—मन मसिहानी साँच की स्याही।—धरनी० बानी, पृ० ३।

मसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मसि'। उ०—दरसन ही ते लागै जममुख मसी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

मसीका—संज्ञा पुं० [हिं० माशा] १. आठ रत्ती का मान। माशा। २. चवन्नी। (दलाल)।

मसीत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मसजिद] मुसलमानों का बंदना-स्थान। मसजिद। उ०—कबिरा काजी स्वाद बस जीव हते तब दोय। चढ़ि मसीत एको कहै क्यों दरगह साँचा होय।—कबीर (शब्द०)।

मसीद—संज्ञा स्त्री० [अ० मस्जिद] दे० 'मसजिद'। उ०—माँगि कै खैबो मसीद को सोइबो लेनो है एक न देनो है दोऊ।—तुलसी (शब्द०)।

मसीना—संज्ञा पुं० [देश०; सं० मस्यन्न (= कदन्न ?)] मोटा अन्न। कदन्न।

मसीह—संज्ञा पुं० [अ०] ईसाइयों के धर्मगुरु हजरत ईसा का नाम।

मसीहा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह। २. वह जो मृतकों को जीवित करता हो। उ०—क्यों न दवा

करे मसीहा का। मुर्दे ठोकर से वो जिला करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ०, २२०।

विशेष—प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।

मसीहाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मसीहा का भाव। मसीहापन। २. मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की ताकत।

मसीही[1]—वि० [अ० **मसीह** + फ़ा० **ई** (प्रत्य०)] ईसामसीह संबंधी। मसीह का।

मसीही[2]—संज्ञा पुं० मसीह का अनुयायी। ईसाई।

मसीही[3]—संज्ञा स्त्री० चमत्कारिक या आध्यात्मिक कार्य [को०]।

मसुर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मसूर'।

मसुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मसूरिका**] दे० 'मसूरिका'।

मसुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मसूर'।

मसू(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मरू**, मि० पं० **मँसा** (= कठिनता से)] कठिनाई। कठिनता। मुश्किल।

मुहा०—**मसू करके** = बहुत कठिनता से। बड़ी मुश्किल से। उ०—रसखानि तिहारी सौं एरी जसोमति भागि मसू करि छूटन पाई।—रसखान (शब्द०)।

मसूक(पु)—वि० [**अ० मशूक**] दे० माशूक'। उ०—मगन मसूक एह गगन में कूदिया ढोल करि बाग मैदान हंका।—संत० दरिया, पृ० ७६।

मसूड़ा—संज्ञा पुं० [सं० **श्मश्रु** + हिं० **ड़ा** (प्रत्य०)] मुँह के अंदर दाँतों की पंक्ति के नीचे या ऊपर का मांस जिसपर दाँत जमे होते है।

मसूढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] धातु गलाने की भट्ठी।

मसूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अन्न जो द्विदल और चिपटा होता है और जिसका रंग मटमैला होता है। मसुरो।

विशेष—प्रायः इसकी दाल बनती है जो गुलाबी रंग की और अरहर की दाल से कुछ छोटी और पतली होती है। पकाने पर इसका भी रंग अरहर की दाल का सा हो जाता है। यह दाल बहुत ही पुष्टिकारक समझी जाती है। इसे प्रायः नीची जमीनों में, जहाँ पानी ठहरता है, खाली खेतों में अथवा धान के खेतों में बोते हैं। इसकी कच्ची फलियाँ भी खाई जाती हैं तथा इसकी सूखी पत्तियाँ और डंठल चारे के काम में भी आते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, संग्राहक, कफ और पित्त का नाशक तथा ज्वर को दूर करनेवाला माना है। द्विजों में कुछ लोग इसका खाना कदाचित् इसलिये अच्छा नहीं समझते कि इसके नाम का 'मांस' शब्द के साथ कुछ मेल मिलता है। पुराणों में रविवार के दिन इसका खाना निषिद्ध कहा गया है और विधवाओं के लिये इसका खाना नितांत वर्जित किया गया है।

पर्या०—**मांगल्यक। व्रीहिकांचन। पृथुबीजक। शूर। कल्याणबीज।** मसूरिका।

यौ०—**मसूर का सत्त** = भूने मसूर का आटा जो मीठा या नमक मिलाकर पानी में घोलकर खाया जाता है।

मसूरक—संज्ञा पुं० [सं०] गोल तकिया।

मसूरकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

मसूरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। रंडी। २. मसूर की दाल। ३. मसूर की बनी हुई बरी। उ०—कीन्ह मसूरा धन सो रसोई। जो कछु सब माँसू सो होई।—जायसी (शब्द०)।

मसूरा(पु) —संज्ञा पुं० [हिं० मसूढ़ा] दे० 'मसूढ़ा'।

मसूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीतला। माता। चेचक। २. छोटी माता जिसमें सारे शरीर में लाल छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। उ०—मसूरिका मसूर की दाल के समान बड़ी फुड़िया होती है।— माधव०, पृ० १८७। ३. कुटनी।

मसूरिकापिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **मसूरिकापिडिका**] एक प्रकार की माता या चेचक जिसमें मसूर की दाल के बराबर छोटे छोटे दाने निकलते हैं।

मसूरी —संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। चेचक। २. दे० 'मसूरी'।

मसूरी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

विशेष—यह पेड़ कद में छोटा होता है और प्रतिवर्ष शिशिर ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी सफेद, बढ़िया और बहुत मजबूत होती है, जिससे संदूक तथा सजावट के अनेक प्रकार के सामान बनाए जाते हैं। शिमले, शिकम और भूटान आदि में यह वृक्ष अधिकता से होता है।

मसूल—संज्ञा पुं० [**अ० महसूल**] दे० 'महसूल'।

मसूला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की पतली लंबी नाव।

मसूस—संज्ञा स्त्री० [हिं० मसू**सना**] मन मसोसने का भाव। कुढ़न। कल्पना। उ०—याही मसूस मरो का करों रिखिनाथ परोसिन मैं परो पैयाँ।—रिखिनाथ (शब्द०)।

मसूसन—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मसूसना**] मन मसूसने का भाव। आंतरिक व्यथा। कुढ़न। उ०—(क) कीजै कहा चाव अपनी कत इहाँ मसूसन मरिए। सूर (शब्द०) (ख) सूरन के मिस ही मन मूसति होंस मसूसन हीं फिरै कोठनि।—देव (शब्द०)। (ग) बाल नवेली न रूसनो जानति, भीतर मौन मसूसनि रोवै।—मति० ग्रं०, पृ० २९७।

मसूसना—क्रि० अ० [हिं० **मरोड़ना या फ़ा० अफसोस**, पं० म**सोस**] १. ऐंठना। मरोड़ना। बल देना। २. निचोड़ना। ३. किसी मनोवेग को रोकना। जब्त करना। उ०—केवल मन में मसूसि रह जाना पड़ता है।—श्यामा०, पृ० १३७। ४. मन ही मन रंज करना। कुढ़ना। कल्पना। (इस अर्थ में यह शब्द बहुधा मन शब्द के साथ आता है)। उ०—(क) डाँट दीजिए, हम मन ही मन मसूसकर रह जायँ।—राधाकृष्णदास (शब्द०)। (ख) सोवति सजोवति न दूसति न तूसति मसूसति रिसति रस रूसति हँसति सी।—देव (शब्द०)। ५. सिसकना। उ०—(क) खोइए सोय सबै श्रम यौं कहि रूसि कै बाल मसूसि कै रोई।—श्यामा०, पृ० १४१।

मसृण—वि० [सं०] जो रूखा या कड़ा न हो। चिकना और मुलायम।

मसृणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलसी [को०]।

मसेवरा†—संज्ञा पुं० [हिं० मांस+वरा (प्रत्य०)] मांस की बनी चीजें। जैसे, कोफता, कबाव आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सीझि रसोई। जो किछु सबै माँसु सौं होई।—जायसी (शब्द०)।

मसोढ़ा†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] सोना, चाँदी आदि गलाने की घरिया। (कुमाऊँ)।

मसोढ़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मसूढ़ा'।

मसोसⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **मसूसन**] दे० 'मसूस'। उ०—हारे उपाय कहा करौं, हाय भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।—घनानंद, पृ० १५६।

मसोसना क्रि० अ० [हिं० **मसोस**+**ना** (प्रत्य०)] दे० 'मसूसना'।

मसोसा—संज्ञा पुं० [हिं० **मसोसना**] १. मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। २. पश्चात्ताप। पछतावा।

मसौदा—संज्ञा पुं० [अ० **मसव्विदा**] १. काट छाँट करने दोहराने और साफ करने के उद्देश्य से पहली बार लिखा हुआ लेख। खर्रा। मसविदा। २. उपाय। युक्ति। तरकीब।

मुहा०—**मसौदा गाँठना या बाँधना**=कोई काम करने की युक्ति या उपाय सोचना। तरकीब सोचना।

यौ०—**मसौदानवीस**=मसौदा तैयार करनेवाला। **मसौदेबाज**।

मसौदेबाज—संज्ञा पुं० [अ० **मसौदा**+**फा० बाज** (प्रत्य०)] १. वह जो अच्छा उपाय निकालता हो। अच्छी युक्ति सोचनेवाला। २. धूर्त चालाक।

मस्कत—संज्ञा पुं० [अ० **मस्कत**] १. अरब का एक राज्य और उसका प्रधान नगर। २. उक्त राज्य का अनार [को०]।

मस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंश। बाँस। २. पोला बाँस। ३. गति। ४. ज्ञान।

मस्कराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'मसखरा'।

मस्करी[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मस्करिन्**] १. वह जो चौथे आश्रम में हो। संन्यासी। २. भिक्षु। ३. चंद्रमा।

मस्करी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मसखरी'।

मस्कलाⓅ—संज्ञा पुं० [अ० **मसकला**] दे० 'मसकला'। उ०—शब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरंड चलावै।—पलटू०, पृ० २।

मस्का—संज्ञा पुं० [अ० फ़ा० **मस्कह्**] १. मक्खन। नवनीत। २. दे० 'मसका'।

मस्कुर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मसूढ़ा'।

मस्खरा—संज्ञा पुं० [अ० **मस्खरह्**, हिं० **मसखरा**] दे० 'मसखरा'।

मस्खरागी—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मस्खरगी**] दे० 'मसखरी'। उ०—बड़ी सख्त दिसने लगी ऐब ते। हुई मस्खरागी बड़ी गैब ते।—दक्खिनी०, पृ० ९०।

मस्जिद—संज्ञा स्त्री० [अ० **मसजिद, मस्जिद**] दे० 'मसजिद'। उ०—क्या भो वजू व मज्जन कीन्हें, क्या मस्जिद सिर नाए। हृदया कपट निमाज गुजारै कह भो मक्का जाए।—कबीर (शब्द०)।

मस्त[1] वि० [फ़ा०। मि० सं० **मत्त**] १. जो नशे आदि के कारण मत्त हो। मतवाला। मदोन्मत्त। जैसे,—वह दिन रात शराब में मस्त रहता है। २. जिसे किसी बात का पता न लगता हो। जिसे किसी की चिंता या परवाह न होती हो। सदा प्रसन्न और निश्चित रहनेवाला। ३. जो अपनी पूरी जवानी पर आने के कारण आपे से बाहर हो रहा हो। यौवनमद से भरा हुआ। जैसे, मस्त हाथी, मस्त औरत। ४. जिसमें मद हो। मदपूर्ण। जैसे, मस्त आँखें। ५. परम प्रसन्न। मग्न। आनंदित। जैसे,—वह अपने बालबच्चों में ही मस्त रहता है। ६. अभिमानी। घमंडी। जैसे,—आजकल के मजदूर मस्त हो रहे हैं। इनसे काम लेना कुछ सहज नहीं है।

मस्त[2]—वि० [सं०] उच्च। ऊँचा [को०]।

मस्त[3]—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमांग। मस्तक। सिर [को०]।

यौ०—**मस्तदारु**। **मस्तमूलक**।

मस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर। उ०—मस्तक टीका काँध जनेऊ। कवि बिग्रास पंडित सहदेऊ।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—**मस्तकज्वर**=शिरोव्यथा। **मस्तकमूलक**=दे० 'मस्तमूलक'। **मस्तकलुंग**=मस्तिष्क के चारो ओर की छोटी छोटी शिराएँ। **मस्तकशूल**=दे० 'मस्तकज्वर'। **मस्तकस्नेह**=दिमाग।

मस्तकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'मस्तगी'।

मस्तगी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मस्तकी**] दवा के काम आनेवाला एक प्रकार का बढ़िया पीला गोंद जिसे रूमी मस्तगी भी कहते हैं।

विशेष—यह गोंद भूमध्य सागर के आसपास के प्रदेशों में होनेवाली एक प्रकार की सदाबहार झाड़ी के तनों को पाछकर निकाला जाता है, और जो अपने उत्पत्तिस्थान 'रूम' के कारण प्रायः 'रूमी मस्तगी' कहलाता है। यह गोंद वार्निश में मिलाया जाता है और औषधि रूप में भी काम आता है। दाँतों के अनेक रोगों में यह बहुत उपकारी होता है। इससे दाँतों का हिलना, पीड़ा, दुर्गंधि आदि दूर होती है। और भी कई रोगों में इसका व्यवहार किया जाता है।

मस्तदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का वृक्ष [को०]।

मस्तमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] गरदन [को०]।

मस्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मस्त्रा**] १. धातु गलाने की भट्ठी। (शाहजहाँपुर)।

मस्तानⓅ—वि० [फ़ा० **मस्तानह्**] दे० 'मस्ताना'। उ०—रसना रटि जेहि लागिगे चीख भयो मस्तान।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३४।

मस्ताना[2]—वि० [फ़ा० मस्तानह्] १. मस्तों का सा। मस्तों की तरह का। जैसे, मस्तानी चाल। २. मस्त। मत्त।

मस्ताना[3]—क्रि० अ० [फ़ा० मस्त+हिं० आना (प्रत्य०)] मस्ती पर आना। मस्त होना। मत्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

मस्ताना[4]—क्रि० स० मस्ती पर लाना। मस्त करना। मत्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

मस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] माप। तौल [को०]।

मस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मस्तिष्क'। उ०—साहिब तबही छाया कीन्हा। मस्तिक हाथ आमनि के दीन्हा।—कबीर सा०, पृ० १०१५।

मस्तिकी—संज्ञा स्त्री० [अ० मस्तकी] दे० मस्तगी'।

मस्तिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक के अंदर का गूदा। भेजा। मगज।

विशेष—कहा जाता है, भोजन का परिपाक होने पर जो रस बनता है, वह क्रमशः मस्तक में पहुँचकर स्निग्ध रूप धारण करता है और उसी के द्वारा स्मृति और बुद्धि काम करती है। उसी को 'मस्तिष्क' कहते हैं।

२. बुद्धि के रहने का स्थान। दिमाग।

मस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मस्त होने की क्रिया या भाव। मत्तता। मतवालापन।

क्रि० प्र०—**आना**।—**उतरना**।—**चढ़ना**।—**दिखाना**।

मुहा०—**मस्ती झड़ना** = मस्ती दूर होना। **मस्ती झाड़ना** = मस्ती दूर करना।

२. भोग की प्रबल कामना। प्रसंग की उत्कट इच्छा।

क्रि० प्र०—**आना**।—**उठना**। **चढ़ना**।—**झड़ना**।—**में आना**।

मुहा०—**मस्ती निकालना** = प्रसंग करके वीर्यपात करना। संभोग करके वीर्य स्खलित करना।

३. वह स्राव जो कुछ विशिष्ट पशुओं के मस्तक, कान, आँख, आदि के पास से कुछ विशिष्ट अवसरों पर, विशेषतः उनके मस्त होने के समय होता है। मद। जैसे, हाथी की मस्ती, ऊँट की मस्ती।

क्रि० प्र०—**टपकना**।—**बहना**।

४. वह स्राव जो कुछ विशिष्ट वृक्षों अथवा पत्थरों आदि में से कुछ अवसरों पर होता है। जैसे, नीम की मस्ती, पहाड़ की मस्ती।

क्रि० प्र०—**टपकना**। **बहना**।

५. अभिमान। घमंड। गर्व। गरूर। ६. युवावस्था का मद। जवानी का नशा।

मस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दही का पानी। २. छेने का पानी।

मस्तुलुंग—संज्ञा पुं० [सं० मस्तुलुङ्ग] मस्तिष्क। मगज।

मस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मस्त्रा] धातु गलाने की भट्ठी (फतहपुर)।

मस्तूल—संज्ञा पुं० [पुर्त०] बड़ी नावों आदि के बीच में खड़ा गाड़ा जानेवाला वह बड़ा लट्ठा या शहतीर जिसमें पाल बाँधते हैं। उ०—उसका ऊँचा मस्तूल झुका हुआ ऐसा दिखाई देता है मानो वह अपने प्यारे जलयान को समाधि को गले लगाकर रो रहा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५५२।

मस्सा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मसा'। उ०—तिल और मस्सा भी पूर्व कर्मानुसार ही प्रकट होते हैं।—कबीर सा०, पृ० ९८१।

मस्सीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० मस्जिद] दे० 'मसीत'। उ०—कौन मक्कान महजीत मस्सीत में।—जमीं असमान बिच कौन ठाईं।—तुरसी श०, पृ० १९।

महंगा†—संज्ञा पुं० [देशी] उष्ट्र। ऊँट [को०]।

महंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० महत् (= बड़ा)] १. साधुमंडली या मठ का अधिष्ठाता। साधुओं का मुखिया। २. महात्मा। सज्जन। उ०—तडित हगनि करि मेघ महंत। देखे ताप तपै सब जंत। नंद० ग्रं०, पृ० २८९।

महंत[2]—वि० बड़ा। श्रेष्ठ। प्रधान। मुखिया। उ०—सखा प्रवीन हमारे तुम हौ तुम हौ नहीं महंत।—(शब्द०)।

महंताई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'महंती'।

महंताना†—संज्ञा पुं० [अ० मेहनत, हिं० मेहनताना] दे० 'मेहनताना'।

महंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० महंत+ई (प्रत्य०)] १. महंत का भाव। २. महंत का पद।

क्रि० प्र०—**पाना**।—**मिलना**।

महंथ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० महान्त] दे० 'महंत'। उ०—पलटू कीन्हों दंडवत वे बोले कछु नाहिं। भगत जो बनै महंथ से नरक परै सो जाहिं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११४।

महंदस†—संज्ञा पुं० [अ० मुहद्दिस] हदीस अर्थात् पैगंबर की कही हुई बातों का जाननेवाला विद्वान्। उ०—महंदस के देह हात में जाम शाह। कहा यों जबान खोल बहराम शाह।—दक्खिनी०, पृ० २९०।

महंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेंहदी] दे० 'मेंहदी'। उ० सुपं नागवल्ली विरर्ध्द बरंगं। महंदी नषं जावकं रंग पग्गं।—पृ० रा०, ६७।८१२।

महँ(पु)†—अव्य० [सं० मध्य] में। उ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुतिसारा।—राम०, पृ० १०।

महँई(पु)†[1]—वि० [सं० महा अथवा सं० महति, महाति या महत्, प्रा० महइ, महई] महान्। भारी। उ०—विदित पठान राज महँ रहई। रहे पठान प्रबल तहँ महँई।—(शब्द०)।

महँई[2]—अव्य० [सं० मध्य] दे० 'महँ'।

महँक—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] दे० 'महक'।

महँकना—क्रि० अ० [हिं० महँक+ना (प्रत्य०)] दे० 'महकना'।

महँग†—वि० [हिं०] दे० 'महँगा'। उ०—पारस कै परसंग से लोहा महँग बिकान।—पलटू०, भा० १, पृ० ३७।

महँगा—वि० [सं० महार्घ] जिसका मूल्य साधारण या उचित की अपेक्षा अधिक हो। अधिक मूल्य पर बिकनेवाला। जैसे,—आजकल कपड़ा और गल्ला दोनों महँगे हैं। उ०—कारण अगर रहत है संगा। कारज अगर बिकत सो महँगा।—विश्राम (शब्द०)।

महँगाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महँगा + ई** (प्रत्य०)] दे० 'महँगी'।

महँगापन—संज्ञा पुं० [हिं० **महँगा + पन** (प्रत्य०)] महँगा होने का भाव। महँगी। उ०—करुणामय तब समझोगे इन प्राणों का महँगापन।—यामा, पृ० १६।

महँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महँगा + ई** (प्रत्य०)] १. महँगे होने का भाव। महँगापन। २. महँगे होने की अवस्था। ३. दुर्भिक्ष। अकाल। कहत।

क्रि० प्र०—**पड़ना**।

महँड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] भुने हुए चने (बिहार)।

मह[१]—अव्य० [हिं०] दे० 'महँ'। उ०—एहि मह रघुपति नाम उदारा।—मानस, १।

मह[२]—वि० [सं० **महत्**] १. महा। अति। बहुत। उ०—पिय बिन तिय यह दुखिया जान। तब यो गौरी कियो बखान।—लल्लू (शब्द०)। २. महत्। श्रेष्ठ। बड़ा।

यौ०—मह**सुन** = महाशून्य। उ०—मन पवनहिं जीतो जबै महसुन माहिं समाध।—गुलाल०, पृ० १४१।

मह[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्सव। २. यज्ञ। ३. दीप्ति। चमक। ४. महिष। भैंसा [को०]।

महकंदना‡(पु)—क्रि० अ० [पं० हिं० **महकना**] दे० महकना। उ०—या देही परिमल महकंदा। ता सुख बिसरे परमानंदा।—संतवाणी०, पृ० ७।

महक[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गमक; **या**, सं० **प्र + √स; प्रा०धात्वा० मघमघ > महमह या** सं० **महक्क** (= फैलनेवाली खुशबू)] गंध। बास। गमक। बू।

यौ०—**महकदार**। महकीला।

महक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिष्ठित व्यक्ति। २. कच्छप। कछुआ। ३. विष्णु [को०]।

महकदार—वि० [हिं० **महक** + फ़ा० **दार** (प्रत्य०)] जिसमें महक हो। महकनेवाला। गंध देनेवाला।

महकना—क्रि० अ० [हिं० **महक + ना** (प्रत्य०)] गंध देना। बास देना। उ०—महकत जेहि ठाँ सकल सुवासा। —माधवानल०, पृ० १९९।

महकमा—संज्ञा पुं० [अ०] किसी विशिष्ट कार्य के लिये अलग किया हुआ विभाग। सीगा। शरिस्ता। जैसे, चुंगी का महकमा, रजिस्टरी का महकमा।

महकान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **महक**] दे० 'महक'। उ०—कनक बरन जगमग तन में अस चंदन की महकान।—देवस्वामी (शब्द०)।

महकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाकाली**] पार्वती। (डिं०)।

महकीला—वि० [हिं० **महक + ईला** (प्रत्य०)] जिससे अच्छी महक आती हो। सुगंधित। महकदार। खुशबूदार।

महकूम—वि० [अ० **मह्कूम**] १. अधीन। वशीभूत। शासित। २. जिसे हुक्म दिया गया हो। उ०—जब हम हाकिम और हिंदू महकूम थे।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८९।

महकूमी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मह्कूमी**] पराधीनता। दासता। गुलामी [को०]।

महघ(पु)—वि० [सं० **महार्घ**] दे० 'महँगा'। उ०—जत बेसाहर की छुन महघ सबे मिल एहि ठाम।—विद्यापति, पृ० ३९३।

महघा(पु)—वि० [सं० **महार्घ**] दे० 'महँगा'। उ०—भई सगाई बावने परचो त्रेपने काल। महघा अंन न पाइए भयो जगत बेहाल।—अर्ध०, पृ० ११।

महचक्र—संज्ञा पुं० [डिं०] सूर्य।

महज—वि० [अ० **महज़**] १. शुद्ध। खालिस। जैसे,—यह तो महज पानी है। २. केवल। मात्र। सिर्फ। जैसे,—महज आपकी खातिर से मैं यहाँ आ गया। ३. सरासर। एकदम।

महजनी(पु)—वि० [हिं० **महाजनी**] महाजन का काम। उ०—मनुवाँ इमिल धुमल में अरुझेव छूटलि नाम महजनी। —भीखा श०, पृ० १०।

महजबीन—वि० [सं० फ़ा० **महाज़बीं**] जिसका भाल चाँद जैसा उज्वल हो। उ०—दिल्ली का सजधज क्या किसी माशूके महजबीन से कम है।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

महजर—संज्ञा पुं० [अ० **महज़र**] १. उपस्थित होने की जगह। २. वह साक्ष्य जिसपर बहुत लोगों के हस्ताक्षर हों [को०]।

महजरनामा—संज्ञा पुं० [अ० **महज़र** (= **खून**) + फ़ा० **नामा**] वह लेख जिसमें किसी की हत्या होने का प्रमाण हो। हत्या अथवा हत्यारे के संबंध का साक्ष्यपत्र। हिंसा विषयक साक्ष्यपत्र।

महजित—संज्ञा स्त्री० [अ० **मस्जिद**] दे० 'मसजिद'।

महजिद(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० **मस्जिद**] + दे० 'मसजिद'। उ०—तन महजिद मन मुलना बसै।—कबीर० रे०, पृ० ३८।

महजीत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० **मस्जिद**] दे० 'मसजिद'। उ०—तन मन महजीत बीच बाँग निवाजा। बूझो हर दम जित उठै अवाजा।—तुरसी० श०, पृ० ८६।

महजीद(पु)—स्त्री० [अ० **मस्जिद**] दे० 'मसजिद'। उ०—हिंदू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।—पलटू०, भा० २, पृ० ११४।

महजूज—वि० [अ० **महज़ूज़**] आनंदित। प्रसन्न। खुश। हर्षित। उ०—रहते महजूज वे तो साहेब की सूरत पर, दुनियाँ को तर्क मार दीन को सम्हाला है।—मलूक०, पृ० २७।

महज़ूम—संज्ञा पुं० [अ० मअ्जून] भाँग मिलाकर बनाई हुई एक प्रकार की मादक मिठाई। उ०—कहुँ करही उबलत मूखत महज़ूम बनत कहुँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४।

महज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महाजन' [को०]।

महण[1]—संज्ञा पुं० [डिं०] समुद्र। उ०—मुरभ थाँन मेवाड़, राँणा राजाँन सरीखा। महण देख अबंध, करै कुण बंध परीखा।—रा० रू०, पृ० २३।

महण[2]—संज्ञा पुं० [सं० मथन, प्रा० महण] मंथन। मथना।

यौ०—**महणारंभ** = मथना। मथने की क्रिया। उ०—मन समुद्र गुरु कमठ ह्वै किया जू महणारंभ।—रज्जब०, पृ० ४।

महत्[1]—वि० [सं०] १. महान्। बृहत्। बड़ा। २. सबसे बढ़कर। सर्वश्रेष्ठ। ३. भारी। ४. ऊँचा। उच्च (को०)। ५. तीव्र (को०)। ६. प्रधान (को०)।

यौ०—**महत्कथ**। **महज्जन**। **महच्छक्ति** = महान् शक्ति। बड़ी शक्ति। उ०—मिल जाना उस महच्छक्ति से।—इत्यलम्, पृ० १०३। महत्तत्व।

महत्[2]—संज्ञा पुं० १. प्रकृति का पहला विकार महत्तत्व। २. ब्रह्म। ३. राज्य। ४. जल।

महत(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० महत्व] दे० 'महत्व'। उ०—कहै पद्माकर झकोर झिल्ली झोरन को मोरन को महत न कोऊ मन ल्यावती।—पद्माकर (शब्द०)।

महत(पु)[2]—वि० [सं० महत्] अत्यधिक। उ०—सत्रुहि बहुत प्रसंसि कै कहत महत हरसाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४९३।

महतवान—संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई वह खूँटी जिसमें ताने को पीछे की ओर कसकर खींचे रहनेवाली डोरी लपेटकर बरतेले में बाँधी जाती है। पिंडा। मुन्नी। हथेला।

महता[1]—संज्ञा पुं० [सं० महत् (गुज० महेता, मेहता)] १. गाँव का मुखिया। सरदार। महतो। २. लेखक। मोहर्रिर। मुंशी। ३. (पु) प्रमुख व्यक्ति। प्रधान। उ०—कवन काजी तहाँ कवन महता।—प्राण०, पृ० ८२।

महता(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० महत्ता] अभिमान। घमंड। उ०—महता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं सो द्वैता क्यों मानो।—(शब्द०)

महता[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महत्तत्व। विज्ञान शक्ति। २. महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

महताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० महत्त] मुखियागिरी। प्रधान बनने का कार्य। प्रधानता। उ०—धर्मदास बहु किए महताई। सवा पाँच मुद्रा लेहु भाई।—कबीर सा०, पृ० ४३६।

महताब[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० (तुल० सं० महत् + आभ ?)] १. चाँदनी। चंद्रिका। उ०—मोद मदमाती मन मोहन मिलै के काज साजि मणि मंदिर मनोज कैसी महताब।—पद्माकर (शब्द०)। २. एक प्रकार की आतिशबाजी। दे० 'महताबी'। उ०—(क) जब चंद नखावली देखि चप्यो तब जोति किती महताब में है।—कमलापति (शब्द०)। (ख) चाँदनी मैं कवि संभु मनो चहूँ ओर विराजि रही महताबैं।—शंभु (शब्द०)। ३. जहाज पर रात के समय संकेत के लिये होनेवाली एक प्रकार की नीली रोशनी जो काठ की एक नली में कुछ मसाले भरकर जलाई जाती है। (लश०)।

महताब[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चाँद। चंद्रमा। शशि। उ०—आई वारबधू छबि छाई ऐसी गाँउ बीच, जाके मुख आगे दबै जोति महताब की।—रघुनाथ (शब्द०)। २. एक प्रकार का जंगली कौआ। मूतरी। महालत।

महताबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मोमबत्ती के आकार की बनी हुई एक प्रकार की आतिशबाजी जो मोटे कागज में बारूद, गंधक आदि मसाले लपेटकर बनाई जाती है और जिसके जलने से बहुत तेज प्रकाश होता है। इसकी रोशनी सफेद, लाल, नीली, पीली आदि कई प्रकार की होती है। उ० छाय रही सखि बिरह सो बे आबी तन छाम। पी आए लखि बरि उठी महताबी सी बाम।—स० सप्तक, पृ० २२९। २. किसी बड़े प्रासाद के आगे अथवा बाग के बीच में बना हुआ गोल या चौकोर ऊँचा चबूतरा जिसपर लोग रात के समय बैठकर चाँदनी का आनंद लेते हैं। †३. एक प्रकार का बड़ा नीबू। चकोतरा। (पूरब)।

महतारी(पु)†-संज्ञा स्त्री० [सं० माता] माँ। माता। जननी। उ०—(क) कौशल्या आदिक महतारी आरति करति बनाइ।—सूर (शब्द०)। (ख) हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारो।—तुलसी (शब्द०)।

महतिया(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० महत्] सरदार। उ० पाँच के उपर पचीस महतिया, इन परपंच पसारा।—धरम०, पृ० २४।

महती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारद की वीणा का नाम। २. बृहती। कँटाई। बनभंटा। ३. कुश द्वीप की एक नदी का नाम जो पारियात्र पर्वत से निकली है। ४. महिमा। महत्व। बड़ाई। उ० मातु पितु गुरु जाति जान्यो भली खोई महति।—सूर (शब्द०)। ५. योनि का फैल जाना जो एक रोग माना जाता है। ६. वह हिचकी जिससे गर्भस्थान पीड़ित हो और देह में कंप हो। ७. वैश्यों की एक जाति।

महती द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की वह द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र में पड़े। ऐसी द्वादशी को व्रत आदि करने का विधान है।

महतु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० महत्व] महिमा। बड़ाई। महत्व। उ०—बृंदावन ब्रज को महतु का पै बरन्यो जाय।—सूर (शब्द०)।

महतो—संज्ञा पुं० [हिं० महता] १. कुछ गयावाल पंडों की एक उपाधि। २. कहार (पूरब के पटना आदि जिलों में)। ३. जुलाहों का वह खूँटा जो भाँज के आगे गड़ा रहता है और जिसमें भाँज की डोरी फँसाई रहती है। ४. गाँव का प्रमुख व्यक्ति। चौधरी।

महत्कथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मीठी मीठी बातें करके बड़े आदमियों को प्रसन्न करता हो। खुशामदी।

महत्तत्व—संज्ञा पुं० [सं० **महत्तत्त्व**] १. सांख्य के अनुसार पचीस तत्वों में से तीसरा तत्व जो प्रकृति का पहला विकार है और जिससे अहंकार की उत्पत्ति होती है। प्रकृति का पहला कार्य या विकार। बुद्धितत्व। विशेष—दे० 'तत्व' और 'प्रकृति'। २. कुछ तांत्रिकों के अनुसार संसार के सात तत्वों में से सबसे अधिक सूक्ष्म तत्व। ३. जीवात्मा।

महत्तम—वि० [सं०] सबसे अधिक बड़ा या श्रेष्ठ।

यौ०—महत्तम समापवर्तक = गणित में वह बड़ी संख्या जिसका भाग दो या अधिक संख्याओं में पूरा पूरा किया जा सके।

महत्तर¹—वि० [सं०] दो पदार्थों में से बड़ा या श्रेष्ठ। महत् से श्रेष्ठ। उ०—सिद्ध नहीं, तुम लोकसिद्ध के साधन बने महत्तर।—ग्राम्या, पृ० ५२।

महत्तर²—संज्ञा पुं० शूद्र।

महत्तरक—संज्ञा पुं० [सं०] दरबारी [को०]।

महत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ाई। बड़प्पन। २. उच्चता। श्रेष्ठता। गुरुता। ३. ऊँचा पद। ४. महत्व। महिमा। उ०—नहीं किसी की रही एक सी जग में सत्ता। किंतु समय की जोग न होती कभी महत्ता।—प्रेमांजलि, पृ०, ४।

महत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषोत्तम।

महत्व—संज्ञा पुं० [सं० महत्त्व] १. महत् का भाव। बड़प्पन। बड़ाई। गुरुता। २. श्रेष्ठता। उत्तमत्ता। ३. अधिक आवश्यक या परिणामजनक।

यौ०—महत्वपूर्ण = जिसका महत्व हो। महत्वशाली। **महत्वयुक्त** = महत्वपूर्ण। **महत्वशाली** = महत्वपूर्ण।

महत्वाकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० महत्त्व + आकाङ्क्षा] महत्व की इच्छा। श्रेष्ठता का कामना। महत्वशाली बनने की आकांक्षा।

महत्वाकांक्षी—वि० [सं० **महत्त्वाकाङ्क्षिन्**] [वि० स्त्री० **महत्वाकांक्षिणी** जिसकी बहुत बड़ी आकांक्षा हो। उच्चाभिलाषी। उ०—वहाँ पहुँचने को चिर व्यग्र, महत्वाकांक्षी।—रजत०, पृ० ७।

महत्वान्वित—वि० [सं० **महत्त्व + अन्वित**] महत्व से युक्त—जिसे महत्ता या श्रेष्ठता प्राप्त हो। महत्वपूर्ण। उ०—मुख्य विषय के विवरण एवं उनकी व्याख्या के लिये योजित अप्रस्तुत वस्तु का स्थान गौण ही रहे, वह मुख्य से भी अधिक महत्वान्वित न हो जाय।—शैली, पृ० ८३।

महद्—वि० [सं०] दे० 'महत्'। उ०—क्या जगाई है तुम्हीं ने, सजन झिलमिल दीपमाला ? इस महद् ब्रह्मांड भर में खूब फैला है उजाला।—क्वासि, पृ० ४१।

महदावास—संज्ञा पुं० [सं०] विस्तृत भवन। विशाल लंबा चौड़ा भवन [को०]।

महदाशय—वि० [सं०] उच्च विचारवाला। ऊँचे मन का।

महदाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्चाशा। उच्च कामना। आशा [को०]।

महदाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] महान् से संरक्षण प्राप्त करना। श्रेष्ठ के आश्रय में रहना [को०]।

महदी—संज्ञा पुं० [अ० मह्दी] १. धार्मिक नेता। हादी। २. रहनुमा। राह दिखानेवाला। ३. शीआ संप्रदाय के बारहवें इमाम जिनके विषय में यह माना जाता है कि कयामत के समय वे फिर आसमान से आएँगे [को०]।

महदूद वि० [अ०] जिसकी हद बँधी हो। घेरा हुआ। सीमाबद्ध। परिमित। निश्चित। नियत।

महदेव(५) संज्ञा [सं० **महादेव**] शंकर। शिव। दे० 'महादेव'। उ०—महदेव सेव तुम चरन रत, पति पवित्र मन मोह धरि।—पृ० रा०, २४। ४५६।

महदेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर में होनेवाली बैलों की एक जाति। इस जाति के बैल बहुत हृष्ट पुष्ट और बलवान् होते।

महद्गुण—वि० [सं०] महान् पुरुष के गुणों से युक्त। श्रेष्ठ गुणों से युक्त [को०]।

महर्द्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक देवता का नाम।

महद्वारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी नाम की लता।

महन(५)†—संज्ञा पुं० [सं० **मथन, प्रा० महण**] दे० 'मथन'। उ०—मयन महन पुर दहन गहन जानि आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।—तुलसी (शब्द०)।

महना(५)¹—क्रि० स० [सं० **मथन, मन्थन**] १. दही या मठा आदि मथना। महना। बिलोना। २. किसी बात या विषय का आवश्यकता से अधिक विवेचन करना। बहुत पिष्टपेषण करना।

यौ०—महनामत्थन = व्यर्थ का बहुत अधिक वाद विवाद करना। **महनामथ** = हाय तोबा। चीख पुकार। उ०—बस इत्ता सुनता था कि जैसे हाथों के तोते उड़ गए, वह महनामथ मचाई कि तोबा ही भली।—सैर कु०, पृ० ७।

महना²—संज्ञा पुं० मथानी। रई।

महनारंभ—संज्ञा पुं० [हिं० **महना**] मथने को क्रिया। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। महनारंभ समुँद जस होई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२५।

महनि(५)—संज्ञा पुं० [सं० **मन्थन**] १. खलबली। हलचल। २. बिलोडन। घर्षण। उ०—महनि मच्चि जब सुरनि जुद्ध असुराँ सुर जब्बह।—पृ० रा०, ६।६२।

महनिया†—संज्ञा पुं० [हिं० **महना** (= **मथना**) + **इया** (प्रत्य०)] वह जो मथता हो। मथनेवाला।

महनीय—वि० [सं०] १. पूजन करने योग्य। पूजनीय। मान्य। २. गौरवपूर्ण। महिमायुक्त।

महनु(५)—संज्ञा पुं० [सं० **मथन**] मथन करनेवाला। विनाशक। उ०—नाम बामदेव दाहिना सदा असंग रंग अर्ध अंग अंगना अनंग को महनु है।—तुलसी (शब्द०)।

महनूर—वि० [फ़ा० माह + नूर] चाँद जैसी चमकवाला। उ०—

रज मित्ति सु गत्ति अनंत मती। महनूर अदब्ब न जाइ मती।—पृ० रा०, ६१। ६३७।

महन्ताना—संज्ञा पुं० [अ० **मेहनत**] दे० 'मेहनताना'। उ०—महरबानी करके मेरा पूरा महन्ताना मुझको दिला दो मैं इसी में तुम्हारी बड़ी सहायता समझूँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३५५।

महफिल—संज्ञा स्त्री० [अ० **महफ़िल**] १. मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान। मजलिस। सभा। समाज। जलसा। २. नृत्य गीत होने का स्थान। नाच गान होने का स्थान।

क्रि० प्र०—**जमना**।—**भरना**।—**लगना**।

महफूज—वि० [अ० **महफ़ूज़**] जिसकी हिफाजत की गई हो। सुरक्षित। बचाया हुआ। रक्षा किया हुआ।

महब—वि० [अ० **महव**] पूर्ण रूप से रत। लीन। उ०—जिस वक्त आदमी का दिल किसी बात के ख्याल में महब हो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१।

महबूब—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिससे प्रेम किया जाय। जिससे दिल लगाया जाय। उ०—रसनिधि आवत देखके मनमोहन महबूब। उमड़ी डिठ बरुनीन की हगन बधाई दूब।—रसनिधि (शब्द०)।

महबूबा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह स्त्री जिससे प्रेम किया जाय। प्रेमिका। माशूका। उ०—आशिकहूँ पुनि आप तौ महबूबा पुनि आप। चाहनहारो आप त्यौ बेपरवाही आप।—रसनिधि (शब्द०)।

महमंत(पु)—वि० [सं० **महा + मत्त**] मस्त। उन्मत्त। मदमत्त। उ०—काया कजरी बन अहै मन कुंजर महमंत। अंकुश ज्ञान रतंन है फेरै साधु संत।—कबीर (शब्द०)।

महमद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मृगमद**] दे० 'मृगमद'। उ०—साँभी समइ धन कियो सीणगार। सीरह महमंद गलि मोती हार।—बी० रासो, पृ० ११४।

महम—संज्ञा पुं० [अ०] चिंता। फिक्र। उ०—लागी महम गनीम पर काल कटक कटकंत।—कबीर ग्रं०, पृ० ५६०।

महमद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० **मुहम्मद**] दे० 'मुहम्मद'। उ०—परबल भंजन गरुअ महमद मदगामी।—कीर्ति०, पृ० १००।

महमदी(पु)—वि० [अ० मुहम्मदी] मुहम्मद का मतानुयायी। मुसलमान।

महमह—क्रि० वि० [हिं० **महकना**] सुगंधि के साथ। खुशबू के के साथ। उ०—(क) महमह महमह महकत धरती रोम रोम जनु पुलकि उठी।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) चारु चमेली बन रही महमह महकि सुबास।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

महमहण—संज्ञा पुं० [सं० **महि + मथन**] विष्णु (डिं०)।

महमहा—वि० [हिं० महमह] [वि०स्त्री० **महमही**] सुगंधित। खुशबूदार। उ०—(क) महमही मंद मंद मारुत मिलनि, तैसी गहगही खिलनि गुलाब के कलीन की।—रसखनि (शब्द०)। (ख) महमहे लोक दस चारहू सुगंधन तें उमहे महेश अज आदि सुर ठठ्ठ हैं।—(शब्द०)। (ग) सेत सारी सोहत उजारी मुख चंद की सी महलनि मंद मुसक्यान की महमही।—मति० ग्रं०, पृ० ३०८।

महमहाना—क्रि० अ० [हिं० **महमह अथवा महकना**] गमकना। सुगंधि देना। उ०—मल्लो द्रुम बलित ललित पारिजात पुंज मंजु बन बेलिन, चमेलिन महमहात।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

महमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **महिमा**] दे० 'महिमा'।

महमाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **महामाया**] दे० 'महमाय'। उ०—चारण भाट जपै महमाई। भोजक भाट तहाँ चलि आई।—कबीर सा०, पृ० ५४०।

महमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मेहमान**] दे० 'मेहमान'।

महमानिय(पु)—वि० [सं० **महा + मान्य**] अत्यंत संमानित। महामान्य। उ०—कहिय वत्त भूपति महमानिय।—प० रासो, पृ० ५१।

महमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मेहमानी**] दे० 'मेहमानी'।

महमिल—संज्ञा पुं० [अ०] ऊँट की पीठ पर कसा जानेवाला हौदा। पलान [को०]।

महमाय—संज्ञा स्त्री० [सं० **महामाया**] पार्वती। (डिं०)। उ०—बाल वृद्ध भच्छन करौं, हम का दै महमाय।—पृ० रा०, २२।१०।

महमूदी[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **महमूद + ई** (प्रत्य०)] सल्लम की तरह का एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा।

महमूदी[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पुराना छोटा सिक्का।

महमेज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **महमेज़**] एक प्रकार की लोहे की नाल।

विशेष—यह जूते में पीछे की ओर एँड़ी के पास लगाई जाती है और इसकी सहायता से घोड़े के सवार उसे चलाने के लिये एँड़ लगाते हैं। उसके पीछे एक छोटा घूमनेवाला काँटेदार पहिया लगा होता है, जो घोड़े की पीठ पर लगता है और घूमता है।

महम्मद—संज्ञा पुं० [अ० **मुहम्मद**] दे० 'मुहम्मद'।

महम्मदी—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'महमदी'।

महर[१]—संज्ञा पुं० [सं० **महत् या महार्ह**, हिं० **महरा** (= बड़ा, श्रेष्ठ) [स्त्री० **महरि**] १. व्रज में बोला जानेवाला एक आदरसूचक शब्द जिसका व्यवहार विशेषतः जमादारों और वैश्यों आदि के संबंध में होता है। (कभी कभी इस शब्द का व्यवहार केवल श्रीकृष्ण के पालक और पिता नंद के लिये भी बिना उनका नाम लिए ही होता है)। उ०—महर विनय दोऊ कर जोरे घृत मिष्टान पय बहुत मंगायो।—सूर (शब्द०)। (ख) पूरि अभिलाषन को चाखन के माखन लै दाखन मधुर भरे महर मंगाय रे।—दीन (शब्द०)। (ग) ब्रज की बिरह अरु संग महर की कुबरिहि बरत न नेकु लजाने।—तुलसी (शब्द०)। २. एक प्रकार का पक्षी। उ०—सारो सुवा महर कोकिला। रहसत आइ पपीहा मिला।—जायसी (शब्द०)। ३. दे० 'महरा'। उ०—नाऊ बारी महर सब, धाऊ धाय समेत।—रघुराज (शब्द०)।

महर²—वि० [फ़ा० मेह्र (= दया)] दयावान् । दयालु ।(डिं०) ।

महर³—संज्ञा पुं० [अ०] १. मुसलमानों में वह संपत्ति या धन जो विवाह के समय वर की ओर से कन्या को देना निश्चित होता है ।

मुहा०—**महर बख्शवाना** = महर के लिये निश्चित किए गए धन को पत्नी से कह सुनकर पति द्वारा माफ कराना । **महर बाँधना** = महर के लिये धन या संपत्ति नियत करना

महरⓅ†⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेह्र] दया । कृपा । उ०—किकरि ऊपर महर कर, संकर मेट सँदेह ।—रघु० रू०, पृ० ५६ ।

महर⁵—वि० [हिं० महक] महमहा । सुगंधित । उ०—(क) महर महर घर बाहर राउर देह । लहर लहर छवि तम जिमि, ज्वलन सनेह । —रहिमन (शब्द०) । (ख) महर महर करै फूल नींद नहिं आइल हो । - धरम० श०, पृ० ६२ ।

महरईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० महराई] श्रेष्ठता । प्रधानता । उ०—जौ महाराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन बौरा हो । —कबीर ग्रं०, पृ० ११२ ।

महरबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेहरबान] दे० 'मेहरबान' ।

महरम¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. मुसलमानों में किसी कन्या या स्त्री के लिये उसका कोई ऐसा बहुत पास का संबंधी जिसके साथ उसका विवाह न हो सकता हो । जैसे, पिता, चाचा, नाना, भाई, मामा आदि । मुसलमानी धर्म के अनुसार स्त्रियों को केवल ऐसे ही पुरुषों के सामने बिना परदे या घूँघट के जाना चाहिए । २. मित्र । दोस्त (को०) । ३. भेद का जाननेवाला । रहस्य से परिचित । उ०—दिल का महरम कोई न मिलिया जो मिलिया सो गरजी । कह कबीर असमानै फाटा क्योंकर सीवै दरजी ।—कबीर (शब्द०) ।

महरम²—संज्ञा स्त्री० १. अँगिया का मुलकट । अँगिया की कटोरी । २. अँगिया । उ०—गए जदपि मुनि सूर तन पत्थर घनै चलाय । व्यापै तन जे फूल वे महरम घाले आय ।- रसनिधि (शब्द०) ।

महरमदिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेह्र + दिली] सदयता । मेहरबानी । दयालुता । उ०—मारो कि तारो तुमसों अब है कछू न सारो । महरमदिली सों दिलवर टुक दीजिए सहारो ।—व्रज० ग्रं०, पृ० ४२ ।

महरमी—वि० [अ० महरम] जाननेवाला । जानकार । ज्ञाता । उ०- घाट औ बाट के भेद का महरमी । उसी की नाव पर पाँव दीजै ।—पलटू०, भा० २, पृ० १ ।

महरलोक—संज्ञा पुं० [सं० महर्लोक] दे० 'महर्लोक' । उ०—सत्यलोक जनलोक तप और महर निजलोक ।- सूर (शब्द०) ।

महरसीⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० महर्षि] दे० 'महर्षि' । उ०-- जान महरसी संत ताहि की निंदा करते ।—पलटू०, पृ० ८३ ।

महरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० महता] [स्त्री० महरी] १. कहार । उ०—सइयाँ, महरा मोर डोलिया फँदावै हो ।—धरम० श०, पृ० ७४ । २. नौकर । सेवक । उ०—महरा ने आकर कहा सरकार कोई स्त्री आपसे मिलने आई है ।—मान०, भा०, ५, पृ० २७४ । ३. श्वसुर के लिये आदरसूचक शब्द । (चमार) । ४. सरदार । नायक । उ०—दसवँ दाँव कै गा जो दसहरा । पलटा सोइ नाव लेइ महरा ।—जायसी (शब्द०) । ५. दे०' मेहरा' ।

महरा²—वि० प्रधान । श्रेष्ठ । बड़ा ।

महराई†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० महर + आई (प्रत्य०)] प्रधानता । श्रेष्ठता । उ०—कुंडल श्रवनन देउँ गलाई । महरा की सौंपौं महराई ।—जायसी (शब्द०) ।

महराज¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'महाराज' । उ०—चलेउ मद्र महराज सुभट सिरताज साज सजि ।—गोपाल (शब्द०) ।

महराज²—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० महराजिन] वह ब्राह्मण जो किसी के घर या मेस में रसोई बनाता हो ।

महराजाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'महाराज' ।

महराण—संज्ञा पुं० [सं० महार्णव] समुद्र (डिं०) । उ०—मनरा महराण समापण मोजाँ, कायण दीना तरण कुरंद ।—रघु० रू०, पृ० १६ ।

महराना¹—संज्ञा पुं० [डिं० महर + आना (प्रत्य०)] महरों के रहने का स्थान । महरों के रहने की जगह, महल्ला या गाँव । उ०—(क) तुमको लाज होत की हमको बात परै जो कहुँ महराने ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोकुल में आनंद होत है मंगल ध्वनि महराने ढोल । —सूर (शब्द०) ।

महराना²—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० महरानी] दे० 'महाराणा' ।

महरानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० महारानी] पटरानी । महारानी । उ० - वृंदाबन राजै दुवौ साजैं सुख के साज । महरानी राधा उतै महाराज ब्रजराज ।—स० सप्तक, पृ०, ३४३ ।

महराब—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेहराब' । उ०—बाट बाट बहु द्वार बिराजत चामीकर महरावैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

महरावⓅ—संज्ञा पुं० [सं० महाराज, प्रा० महाराव] दे० 'महाराज' । उ०—राणी कहैं सुनो महराव ।—हा० रासो, पृ० ११८ ।

महरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० महर] १. एक प्रकार का आदरसूचक शब्द जिसका व्यवहार ब्रज में प्रतिष्ठित स्त्रियों के संबंध में होता है ।

विशेष—कभी कभी इस शब्द का व्यवहार केवल यशोदा के लिये भी बिना उनका नाम लिए ही होता है ।

२. गृहस्वामिनी । मालकिन । घरवाली । उ०—बाल बोलि डहिक बिरावत चरित लखि गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात ।—तुलसी (शब्द०) । ३. ग्वालिन नामक पक्षी । दहिंगल । उ०—दही दही कर महरि पुकारा । हारिल बिनवइ आपु निहारा ।—जायसी (शब्द०) ।

महरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० महर] ग्वालिन नामक पक्षी । दहिंगल । २. दे० 'महरि' । उ०—करे नंद जसोदा महरी । पल भर कृष्ण राख ना बहरी ।—कबीर सा०, पृ० ४४ ।

महरुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] जस्ता । (सुनार) ।

महरू[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. चंडू पीने की नली । २. एक प्रकार का वृक्ष ।

महरू[2]—वि० [फ़ा० माहरू] चंद्रबदन । चंद्रमुख । उ०—वह जुल्फ मेरे महरू खमदार कहाँ है ।—कबीर मं०, पृ० ३२४ ।

महरूम—वि० [अ०] १. जिसे प्राप्त न हो । जिसे न मिले । वंचित । उ०—इन्सान खबर खैर से महरूम हुआ है ।—कबीर मं०, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—**करना ।—रखना ।—रहना** ।

२. वर्जित । जो रोका गया हो (को०) । ३. निषिद्ध (को०) । ४. बेनसीब । अभागा (को०) । ५. जो किसी काम का न हो । नाकाम । बेकाम (को०) ।

महरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० महर + एटा (प्रत्य०)] १. महर का बेटा । महर का लड़का । २. श्रीकृष्ण ।

महरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० महरेटा] वृषभानु महर की लड़की, श्रीराधिका । उ०—(क) नूपुर की धुनि सुनि रीझत है महरेटी खोलति न याते जब जब आपु गसि जात ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) लाली महरेटी के अधर सरसान लागे अधरन बान लागे बतिया रसाल की ।—रघुराज (शब्द०) ।

महरो—वि० [देशी] असमर्थ । —देशी०, पृ० २५७ ।

महर्घता संज्ञा स्त्री० [सं०] महँगे का भाव । महँगी ।

महर्बानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० महरबानी] दे० 'मेहरबानी' । उ०—हमको तो आपकी महर्बानी चाहिए ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३७ ।

महर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भू, भुव आदि चौदह लोकों में से एक ।

विशेष—१४ लोकों में से ७ ऊर्ध्वलोक और ७ अधोलोक हैं । महर्लोक इन ऊर्ध्वलोकों में से चौथा है ।

महर्षभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ । केवाँच ।

महर्षि—संज्ञा पुं० [सं० महा + ऋषि] १. बहुत बड़ा और श्रेष्ठ ऋषि । ऋषीश्वर । जैसे, वेदव्यास, नारद, अंगिरा इत्यादि । २. एक राग जो भैरवराग के आठ पुत्रों में से एक माना जाता है । उ०—पंचम ललित महर्षि बिलावल अरु वैशाख सुमाधव पिंगल । सहित समृद्धि आठ संताना । भैरव के जानहु नर त्राना । —गोपाल (शब्द०) ।

महर्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कंटकारी । भटकटैया ।

महल[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. राजा या रईस आदि के रहने का बहुत बड़ा और बढ़िया मकान । प्रासाद । उ०—निस गई पंच पल एक जाम । राजन्न महल प्रावेस ताम ।—पृ० रा०, १।३६९ । २. राजप्रासाद का वह विभाग जिसमें रानियाँ आदि रहती हों । रनिवास । अंतःपुर । उ०—कुंज कुंज नवपुंज महल सुबस बसो यह गाँव री ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । ३. बड़ा कमरा । ४. अवसर । मौका । वक्त । ५. पहाड़ी मधुमक्खी । सारंग । डंगर । ६. पत्नी । बीबी (को०) । ७. मकान । घर (को०) । ८. जगह । स्थान (को०) ।

यौ० महलदार = वह व्यक्ति जो मकान की व्यवस्था और रक्षा करे । **महलसरा** । **महलखास** = पटरानी । बड़ी बेगम ।

महलⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० महिला] दे० 'महिला' । उ०—जो मारू बीजी महल आखइ झूठ एवाल ।—ढोला०, दू० ४४० ।

महलम—वि० [अ० महलम] १. सर्वप्रधान । सर्वप्रमुख । २. गोचर । व्यक्त । ३. ईश-कृपा-प्राप्त । उ०—महलम जुगपति चिरेजिवे जीवथु ग्यासदीन सुरतान ।—विद्यापति, पृ० २ ।

महलसरा संज्ञा स्त्री० [अ० महल + फ़ा० सरा] महल का वह भाग जिसमें रानियाँ या बेगमें आदि रहती हैं । अंतःपुर । रनिवास । जैसे, शाही महलसरा ।

महलाठ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी दुम लंबी, ठोर काली, छाती खैरी, पीठ खाकी रंग की और पैर काले होते हैं ।

महलायतⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० महल] महल । प्रासाद । उ०—देखा महलायत एक पलकों के लगने में ।—नट०, पृ० ११२ ।

महलिया†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [अ० महल + हिं० इया (प्रत्य०)] छोटा महल । उ०—झरि लागै महलिया गगन घहराय ।—धरम० श०, पृ० ३३ ।

महलीⓅ†—वि० [अ० महल + हिं० ई (प्रत्य०)] महल (शरीर) में रहनेवाला (जीव) । उ०—गुरमुखि साचा जोग कमाउ । निज वरि महली पावहि थाउँ । —प्राण०, पृ० १०६ ।

महलो पटैला—संज्ञा पुं० [हिं० महल + पटैला] एक प्रकार की बड़ी नाव जिसपर केवल लकड़ी या पत्थर आदि लादा जाता है ।

महल्ल[1]—संज्ञा पुं०[सं०] राजा के अंतःपुर में रहनेवाला । हिजड़ा [को०] ।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द अरबी से आगत माना गया है ।

महल्लⓅ[2]—संज्ञा पुं० [अ० महल] दे० 'महल' । उ०—चढ़ै लोक चल्लै, मसोताँ महल्लै । झरोखो सझायौ, उठी साह आयौ । —रा० रू०, पृ० ३२ ।

महल्लक[1]—वि० [सं०] कमजोर । पुराना । जर्जर । क्षीण [को०] ।

महल्लक[2]—संज्ञा पुं० १. दे० 'महल्ल[1]' । २. बड़ा मकान । प्रासाद [को०] ।

महल्ला—संज्ञा पुं० [अ० महल्लह्] शहर का कोई विभाग या टुकड़ा जिसमें बहुत से मकान आदि हों ।

यौ०—**महल्लेदार** = महल्ले का चौधरी या प्रधान ।

महल्लिक—संज्ञा पुं० [सं०] हिजड़ा । जनखा । पुरुषेंद्रियरहित स्त्रीस्वभाव का व्यक्ति [को०] ।

महवटⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० महावट] माघ की वर्षा । दे० 'महावट' । उ०—नैन चुवहिं जस महवट नीरू । तोहि बिन अँग लाग सर चीरू ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५५ ।

महशर—संज्ञा पुं० [अ० महशर] १. महाप्रलय। २. कयामत का दिन। मुसलमानी धर्म के अनुसार वह अंतिम दिन जब ईश्वर सब प्राणियों का न्याय करेगा। उ०—रखता हूँ क्यूँ जफा को तुझ पर रवा ऐ जालिम। महशर में तुझसे आखिर मेरा हिसाब होगा।—क० कौ०, भा० ४, पृ० ८। ३. कयामत का मैदान। बहुत से लोगों के एकत्र होने का स्थान। ४. हंगामा। उपद्रव।

मुहा०—**महशर बरपा होना** = भारी हंगामा मचना।

महसिल—संज्ञा पुं० [अ० मुहस्सिल] तहसील वसूल करनेवाला। महसूल आदि वसूल करनेवाला। उगाहनेवाला। उ०—मीत नैन महसिल नए बैठत नहिं हुई सील। तन बीघा पै करत है ये मन की तहसील।—रसनिधि (शब्द०)।

महसीर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली। विशेष दे० 'महासीर'।

महसूद—वि० [अ० महसूद] जिससे ईर्ष्या की गई हो। ईर्षित [को०]।

महसूब—वि० [अ० महसूब] १. हिसाब में जोड़ा या गिना हुआ। २. मुजरा किया हुआ [को०]।

महसूर—वि० [अ० महसूर] १. घेरे में आया हुआ। घिरा हुआ। २. शत्रु के घेरे में आया हुआ [को०]।

महसूल[१]—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह धन जो राजा या कोई अधिकारी किसी विशिष्ट कार्य के लिये ले। कर। २. भाड़ा। किराया। जैसे,—आजकल रेल का महसूल कुछ बढ़ गया है। ३. भूकर। मालगुजारी। लगान।

महसूल[२]—वि० प्राप्त किया हुआ। हासिल [को०]।

महसूली—वि० [अ०] १. जिसपर किसी प्रकार का कर या महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य। २. जिसपर लगान या महसूल देना पड़ता हो।

महसूस—वि० [अ० महसूस] १. जिसका अनुभव किया जाय। अनुभूत। २. मालूम। ज्ञात। ३. प्रकट। स्पष्ट [को०]।

यौ०—**करना**। —**होना**।

महसूसात—संज्ञा पुं० [अ० महसूस का बहु व०] अनुभूति का समुच्चय। अनुभूतियाँ [को०]।

महस्वान्—वि० [सं० महस्वत्] ज्योतिर्मय। तेजयुक्त। शानदार। २. महान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

महस्वी—वि० [सं० महस्विन्] दे० 'महस्वान्' [को०]।

महांग[१]—वि० [सं० महाङ्ग] भारी भरकम। मोटा [को०]।

महांग[२]—संज्ञा पुं० १. ऊँट। २. एक प्रकार का चूहा। ३. शिव। ४. गोखरू। ५. रक्त चित्रक वृक्ष [को०]।

महांजन—संज्ञा पुं० [सं० महाञ्जन] एक पर्वत का नाम [को०]।

महांतक—संज्ञा पुं० [सं० महान्तक] १. मृत्यु। मौत। २. शिव [को०]।

महांधकार—संज्ञा पुं० [सं० महान्धकार] १. घोर अँधेरा। भयंकर अंधकार। २. आत्मा संबंधी घोर अज्ञान [को०]।

महांबुक—संज्ञा पुं० [सं० महाम्बुक] शिव [को०]।

महांबुज—संज्ञा पुं० [सं० महाम्बुज] १. दस अरब। २. दस खर्व।

महाँ[१]—अव्य० [हिं० महँ] दे० 'महँ'। उ०—प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ।—तुलसी (शब्द०)।

महाँ[२]—वि० [सं० महा] दे० 'महा'।

महा[१]—वि० [सं०] १. अत्यंत। बहुत। अधिक। उ०—महा अजय संसार रिपु जीत सकइ सो बीर। जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।—तुलसी (शब्द०)। २. सर्वश्रेष्ठ। सबसे बढ़कर। उ०—महा मंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू।—तुलसी (शब्द०)। ३. बहुत बड़ा। भारी। जैसे, महाबाहु, महासमुद्र। उ० –(क) बुंद सोखि गो कहा महा समुद्र छीजई।—केशव (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर सुबास तें जवास तें सुफूलन को रास तें जगी है महा सास तैं।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—ब्राह्मण, पात्र, यात्रा, प्रस्थान, निद्रा, तैल और मांस इन शब्दों में 'महा' शब्द लगाने से इन शब्दों के अर्थ कुत्सित हो जाते हैं। जैसे,—महाब्राह्मण = कट्टहा ब्राह्मण। महापात्र = कट्टहा ब्राह्मण। महायात्रा = मृत्यु। महाप्रस्थान = मृत्यु। महानिद्रा = मृत्यु। महामांस = मनुष्य का मांस।

यौ०—**महाबली** = अत्यंत शक्तिवान्। बलवान। समर्थ। उ०—साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताइ। दादू मोटा महाबली घटि घृत मथि करि खाइ।—दादू०, पृ० ७। **महाबिरही** = अत्यंत वियोगपीड़ित। उ०—मनहु महाबिरही अति कामी।—मानस, ३।२४। **महाबिरहिनी** = अति वियोगिनी। उ०—छिनक माँझ बरनी तिहि बाला। महाबिरहिनी ह्वै तिहि काला।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४। **महामनि** = मणि जिससे सर्पविष दूर होता है। उ०—मंत्र महामनि विषय ब्याल के।—मानस, १।३२।

महा(५)†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० महना] मट्ठा। छाछ। उ०—रीझि बूझो सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार दूध को जरयो पिवत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।—तुलसी (शब्द०)।

महा[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाय। २. गोपवल्ली [को०]।

महाअरंभ(५)—वि० [सं० महा + रंभ (= शोर, हलचल)] बहुत शोर। बहुत हलचल। उ०— नीर होइ तर, ऊपर सोई महा-अरंभ समुद जस होई। जायसी (शब्द०)।

महाअहि—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग।

महाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० मथन, हिं० महना + आई (प्रत्य०)] १. मथने का काम। २. नील की मथाई। नील के रंग को मथने का काम। ३. मथने का भाव। ४. मथने की मजदूरी।

महाईस(५) - संज्ञा पुं० [सं० महेश < महा + ईश] महादेव। उ०—महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर।—घनानंद, पृ० ४०६।

महाउतⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'महावत'। उ०—हूलै इतै पर मैन महाउत लाज के आँदू परे गथि पायन।—पद्माकर (शब्द०)।

महाउर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० महावर'। उ०—(क) प्यारो लगै यह जाकी सनेह महा उर बीच महाउर को रँग।—देव (शब्द०)। (ख) मोहि तौ साध महा उर है री महाउर नाइन तोसो दिवाऊँ।—दास (शब्द०)।

महाऔषधीⓅ—संज्ञा पुं० [पुं० **महौषध**] सोंठ। उ०—विस्वा नागर जगभिषक महाऔषधी नाँउ।—अनेकार्थ०, पृ० १०४।

महाकंकर—संज्ञा पुं० [सं० **महाकङ्कर**] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

महाकंद—संज्ञा पुं० [सं० **महाकन्द**] १. लहसुन। २. प्याज। उ०—सवा सै पान जीव प्रति लाग्रो। सवासेर महाकंद मँगाओ।—कबीर सा०, पृ० ५५५।

महाकंबु—संज्ञा पुं० [सं० **महाकम्बु**] शिव।

महाकच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण देव। ३. पर्वत। पहाड़। ४. एक प्राचीन देश का नाम।

महाकन्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवरकार ऋषि का नाम।

महाकपर्द—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सीपी या शंख [को०]।

महाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम। २. शिव के एक अनुचर का नाम।

महाकपि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव के एक अनुचर का नाम। २. एक बोधिसत्व का नाम।

महाकपित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का वृक्ष। २. रक्त लशुन। लाल लहसुन [को०]।

महाकपोत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार २६ प्रकार के बहुत ही विषधर साँपों में से एक प्रकार का साँप।

महाकपोल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

महाकरंज—संज्ञा पुं० [सं० **महाकरञ्ज**] एक प्रकार का करंज जो बड़ा होता है।

विशेष—इसका व्यवहार औषध रूप में होता है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, उष्ण, कटु तथा विष, कंडु, कुष्ठ, व्रण और त्वचा के दोषों का नाशक माना है।

पर्या०—**हस्तिचारिणी। विषघ्नी। काकघ्नी। मदहस्तिनी। मधुमती। रसायनी। हस्तिकरंज। काकमांडी। मधुमत्ता।**

महाकर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

महाकर[२]—वि० १. लंबे हाथवाला। महाबाहु। २. जिससे अच्छी आमदनी होती हो [को०]।

महाकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. एक नाग का नाम।

महाकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

महाकर्णिकार—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

महाकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० **महाकर्मन्**] शिव का एक नाम [को०]।

महाकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की रात [को०]।

महाकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है। ब्रह्माकल्प। विशेष दे० 'कल्प'।

यौ०—**महाकल्पांत** = महाकल्प का अंत समय। उ०—महाकल्पांत ब्रह्मांड मंडल दवन भवन कैलाश आसीन कासी।—तुलसी (शब्द०)।

महाकवि—संज्ञा पुं० [सं० **महा+कवि**] १. महान् कवि। सबसे बड़ा कवि। जैसे, कालिदास, भवभूति, वाण, माघ, भारवि, हर्ष आदि। उ०—उपाध्याय जी को······एक मात्र महाकवि और प्रशस्त आचार्य कहने में रंचक भी नहीं हिचकिचाते।—रस क०, पृ० ३। २. शुक्राचार्य (को०)।

महाकषाय—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल [को०]।

महाकांत—संज्ञा पुं० [सं० **महाकान्त**] शिव।

महाकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाकन्ता**] पृथ्वी। धरा।

महाकांतार—संज्ञा पुं० [सं० **महाकान्तार**] एक प्राचीन देश का नाम।

महाकाय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव जी का बंदी नामक गण और द्वारपाल। २. शिव (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४. मंगल ग्रह (को०)। ५. हाथी।

महाकाय[२]—वि० विशालकाय। भारी भरकम शरीरवाला। [को०]।

महाकार्तिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक की वह पूर्णिमा जो रोहिणी नक्षत्र में हो। यह बहुत बड़ी पुण्यतिथि मानी जाती है।

महाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सृष्टि और प्राणियों का अंत करनेवाले, महादेव। शिव का एक स्वरूप। उ०—करालं महाकाल कालं कृपालं।—तुलसी (शब्द०)। २. शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक जो उज्जैन (उज्जयिनी) में है। ३. विष्णु का एक नाम (को०)। ४. समय जो विष्णु के समान अखंड और अनंत है। ५. तुंबी लता। कटुतुंबी (को०)। ६. शिव के एक गण का नाम। ७. पुराणानुसार शिव के एक पुत्र का नाम।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि एक बार देवताओं ने अग्नि से शिव का वीर्य धारण करने के लिये कहा था। जब वह वीर्य धारण करने लगा, तब उसमें से दो बूँदें अलग जा पड़ीं जिनसे महाकाल और भृंगी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार इन दोनों पुत्रों ने भवानी को उस समय देख लिया था जिस समय वे शिव के साथ विहार करने के उपरांत बाहर निकल रही थीं। भवानी ने उन्हें शाप दिया जिससे ये दोनों वैताल और भैरव हुए।

महाकालपुर—संज्ञा पुं० [सं०] उज्जैन [को०]।

महाकालफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जो लाल होता है और जिसका बीज काला होता है [को०]।

महाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाकाल स्वरूप शिव की पत्नी जिसके पाँच मुख और आठ भुजाएँ मानी जाती हैं। २. दुर्गा की एक मूर्ति। ३. शक्ति की एक अनुचरी का नाम। ४. जैनों

के अनुसार सोलह विद्या देवियों में से एक जो अवसर्पिणी के पाँचवें अर्हत् की देवी है।

महाकालेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

महाकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काव्य'–१।

महाकाश[1] संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

महाकाश[2]—संज्ञा पुं० [सं० महा + आकाश] अनवच्छिन्न आकाश। पूर्ण आकाश। उ०-- महाकाश माँहि सब घट मठ देषियत, बाहिर भीतर एक गगन समायौ है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६०८।

महाकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] मकान। गृह [को०]।

महाकुंड—संज्ञा पुं० [सं० महाकुण्ड] शिव के एक अनुचर का नाम।

महाकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सबसे बड़ा पुत्र। युवराज।

महाकुमुदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी।

महाकुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उच्च कुल। श्रेष्ठ कुल। २. वह जो बहुत उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।

महाकुल[2]—वि० उच्च कुल में उत्पन्न। खानदानी [को०]।

महाकुलीन—वि० [सं०] दे० 'महाकुल' [को०]।

महाकुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ट के अठारह भेदों में से वह जिसमें हाथ पैर की उँगलियाँ गलकर गिर जाती हैं। गलित कुष्ट।

महाकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक परोपजीवी कीटभेद [को०]।

महाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश का नाम।

महाकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का एक नाम। २. कठोर तपस्या। महान् तप।

महाकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला साँप। २. एक प्रकार का चूहा।

महाकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महाकेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महाकोश' [को०]।

महाकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. बहुत बड़ा पिधान, आच्छादन या आधार (को०)।

महाकोशल—संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक मध्य प्रदेश का एक भाग।

महाकोशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

महाकोशातकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ननुआँ या घीया तरोई नाम की तरकारी।

महाक्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] महान् यज्ञ। बहुत बड़ा यज्ञ। जैसे राजसूय, अश्वमेध आदि।

महाक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

महाक्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महाक्लीतन—संज्ञा पुं० [सं०] शालिपर्णी।

महाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. विष्णु।

महाक्षयव्यय निवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में बहुत खर्च हो।

विशेष—कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो बेच देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजद्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।

महाक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

महाक्षीरा संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूध देनेवाली भैंस। महिषी [को०]।

महाक्षेत्र - संज्ञा पुं० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक तीर्थ जो सुमदना नदी के पूर्व ब्रह्माक्षेत्र के पश्चिम में है।

महाक्षोभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

महाखर्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या जो सौ खर्व की होती है।

महागंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० महागङ्गा] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

महागंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० महागन्ध] १. कुटज। २. जलबेंत। ३. चंदन। मलयज।

महागंध[2]—वि० अत्यंत सुगंधित। तीव्र गंधवाला [को०]।

महागंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० महागन्धा] १. नागबाला। २. केवड़ा। केतकी। ३. चामुंडा का एक नाम।

महागज—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

महागण—संज्ञा पुं० [सं०] १. महासमुद्र। २. बहुत से लोगों का समूह। मजमा। भीड़।

महागणपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव के एक अनुचर का नाम। २. गणपति। गणेश।

महागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बड़ी संख्या।

महागद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। बुखार। २. वह रोग जो कठिनता से अच्छा हो। जैसे, प्रमेह, कोढ़, भगंदर, बवासीर आदि। ३. एक प्रकार की औषध जो सोंठ, पीपल और गोल मिर्च आदि से बनती है।

महागत—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव (को०)।

महागर्दभगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० महागर्दभगन्धिका] भारंगी नामक वनस्पति [को०]।

महागर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव। ३. एकदानव का नाम।

महागल—वि० [सं०] जिसकी गर्दन लंबी हो [को०]।

महागव—संज्ञा पुं० [सं०] गवय। नील गाय [को०]।

महागिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा पहाड़। २. कुबेर के आठ पुत्रों में से एक।

विशेष—पिता के शिवपूजन के लिये यह सूँघकर कमलपुष्प लाया था। इसी दोष पर कुबेर से शाप पाकर यह कंस का भाई हुआ था और कृष्ण के हाथों मारा गया था।

महागीत—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महागुण— वि० [सं०] अत्यंत लाभदायक। जैसे, औषध।

महागुद—संज्ञा पुं० [सं०] महर्षि चरक के अनुसार एक प्रकार के कीड़े जो कफ से उत्पन्न होते हैं। (चरक)।

महागुनी—संज्ञा पुं० [अँ० **महोगनी**] दे० 'महोगनी'।

महागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत संमानित या श्रद्धेय पुरुष।
विशेष—इनकी संख्या तीन कही गई है—माता, पिता और गुरु।

महागुल्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

महागृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जिसके ककुद् बड़े हों [को०]।

महागोधूम—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े दाने का गेहूँ।

महागोपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारिवा। अनंतमूल।

महागौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. पुराणानुसार एक नदी जो विंध्य पर्वत से निकली है।

महाग्रंथिक—संज्ञा पुं० [सं० **महाग्रन्थिक**] वह औषध जिसके सेवन से रोग निश्चित रूप से रुक जाय और बढ़ने न पावे।

महाग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] राहु।

महाग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. शिव के एक अनुचर का नाम। ३. पुराणानुसार एक देश का नाम। ४. ऊँट।

महाग्रीवी—संज्ञा पुं० [सं० **महाग्रीविन्**] ऊँट। उष्ट्र [को०]।

महाघूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरा। शराब।

महाघृत—संज्ञा पुं० [सं०] १११ वर्ष का पुराना घी जो बहुत गुणकारी माना जाता है। वैद्यक में इसे कफनाशक, बलकारक और मेधाजनक माना है।

महाघोष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भारी शब्द। २. हाट। बाजार।

महाघोष[2]—वि० जोर की आवाजवाला [को०]।

महाघोषा—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ासिंगी।

महाचंचु—संज्ञा पुं० [सं० **महाचञ्चु**] एक प्रकार का साग। चेंच।

महाचंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० **महाचण्ड**] १. यम के दूत। २. शिव के अनुचर का नाम।

महाचंड[2]—वि० प्रचंड। भयानक।

महाचंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाचण्डा**] चामुंडा का एक नाम।

महाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

महाचक्रवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० **महाचक्रवर्तिन्**] बहुत बड़ा चक्रवर्ती राजा। सम्राट्।

महाचक्रजल—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक पर्वत का नाम।

महाचक्री—संज्ञा पुं० [सं० **महाचक्रिन्**] १. विष्णु। २. वह जो षड्यंत्र रचने में बहुत प्रवीण हो।

महाचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आर्या छंद जिसके दोनों दलों में चपला छंद के लक्षण हों।

महाचमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] विशाल सेना [को०]।

महाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० **महाचार्य**] १. शिव। २. प्रधान अचार्य।

महाचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

महाचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० महाचूडा] स्कंद की एक मातृका का नाम।

महाच्छाय—संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष। बड़ का पेड़।

महाछिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा [को०]।

महाजंघ—संज्ञा पुं० [सं० **महाजङ्घ**] ऊँट [को०]।

महाजंबीर—संज्ञा पुं० [सं० **महाजम्बीर**] कमला नीबू।

महाजंबु—संज्ञा पुं० [सं० **महाजम्बु**] बड़ा जामुन।

महाजंभ—संज्ञा पुं० [सं० **महाजम्भ**] शिव के एक अनुचर का नाम।

महाजट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

महाजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केशों की लंबी जटा। २. शिव की अस्तव्यस्त केशराशि [को०]।

महाजत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

महाजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा या श्रेष्ठ पुरुष। उ०—महामल्ल मुखर मोहक मित्र महाजन मनस्वी पंडित पाठक।—वर्ण०, पृ० १०। २. साधु। ३. धनी व्यक्ति। धनवान। दौलतमंद। ४. रुपए पैसे का लेन देन करनेवाला व्यक्ति। कोठीवाल। उ०—महतों से मुगुल महाजन से महाराज डाँड़ि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से।—भूषण (शब्द०)। ६. प्रामाणिक आचरणवाला व्यक्ति। भलामानुस। उ०—पथ सो जाइ महाजन थापै।—रघुनाथ (शब्द०)। ७. जनसमाज। जनसमूह।

महाजनपद—संज्ञा पुं० [सं० **महा + जनपद**] महादेश। बड़ा देश। उ०—ईसा पूर्व ६०० में भारतवर्ष में सोलह राज्य फैले हुए थे जिन्हें सोलह महाजनपद कहा जाता है।—पू० म० भा०, पृ० ११।

महाजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महाजन** + ई (प्रत्य०)] रुपए के लेन देन का व्यवसाय। हुंडी पुरजे का काम। कोठीवाली। २. एक प्रकार की लिपि जिसमें मात्राएँ आदि नहीं लगाई जातीं। यह लिपि महाजनों के यहाँ बही खाता लिखने में काम आती है। मुड़िया।

महाजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महाजल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—मलय तनु मिलि लसति सोभा महाजल गंभीर। निरखि लोचन भ्रमत पुनि पुनि धरत नहिं मन धीर।—सूर (शब्द०)।

महाजव—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार। मृग [को०]।

महाजवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमार की अनुचरी एक मातृका का नाम। २. एक नदी का नाम।

महाजनु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

महाजालि, महाजाली—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा। सोनामुखी [को०]।

महाजावालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

महाजिह्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. पुराणानुसार एक दैत्य का नाम।

महाजिह्व[2]—वि० जिसकी जीभ लंबी हो। लंबी जीभवाला [को०]।

महाज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० **महाज्ञानिन्**] १. वह जो बड़ा ज्ञानी हो। २. शिव।

महाज्योति—संज्ञा पुं० [सं० **महाज्योतिस्**] १. शिव। २. सूर्य [को०]।

महाज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी।

महाज्वाल[1]—वि० अत्यधिक ज्योतिर्मय। बहुत अधिक दीप्त या चमकता हुआ [को०]।

महाज्वाल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवन की अग्नि। २. पुराणानुसार एक नरक का नाम।

विशेष—कहते हैं, जो लोग अपनी पुत्रवधू या कन्या के साथ गमन करते हैं, वे इस नरक में जाते हैं।

३. महादेव। शिव।

महाज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की एक विद्यादेवी का नाम।

महाढ्य—वि० [सं०] धन संपत्ति से भरापूरा। अत्यंत धनी [को०]।

महातत्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महा+तत्व**] दे० 'महत्तत्व'। उ०—त्रिगुण तत्व ते महातत्व, महातत्व ते अहंकार। मन इंद्रिय शब्दादि पंचो ताते किए विस्तार।—सूर (शब्द०)। (ख) देव प्रकृति महातत्व सब्दादि गुण देवता ब्योम मरुदग्नि अनिलांबु उर्बी।—तुलसी (शब्द०)।

महातपा[1]—वि० [सं० **महातपस्**] कठिन तपस्या करनेवाला।

महातपा[2]—संज्ञा पुं० १. महान् तपस्वी। २ विष्णु [को०]।

महातप्तकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें तीन दिन तक गरम दूध, गरम घी या गरम जल पीकर चौथे दिन उपवास किया जाता है।

महातम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **माहात्म्य**] दे० 'माहात्म्य'। उ०—(क) करि प्रणाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सब सुखनिधि हरि नाम महातम पायो है नाहिंन पहिचानत।—सूर (शब्द०)।

महातल—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह भुवनों में से पृथ्वी के नीचे का पाँचवाँ भुवन या तल। उ०—अतल वितल अरु सुतल तलातल और महातल जान। पाताल और रसातल मिलि सातौ भुवन प्रमान।—सूर (शब्द०)।

महाताब(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० **महताब**] दे० 'महताब'। उ०—निसिचंद को देखि लखैं महाताब क्यों तारन देखि लखैं जुगनू।—श्यामा०, पृ० १७३।

महातारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

महातिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. महानिंब। बकायन। २. चिरायता।

महातीक्ष्ण[1]—वि० [सं०] १. अत्यंत तीक्ष्ण या तेज। २. बहुत कड़वा या झालदार।

महातीक्ष्ण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **महातीक्ष्णा**] भिलावाँ।

महातेजा[1]—संज्ञा पुं० [सं० **महातेजस्**] १. शिव। २. पारा। ३. कार्तिकेय (को०)। ४. वीर। योद्धा (को०)। ५. अग्नि (को०)।

महातेजा[2]—वि० १. महान् तेजवाला। २. अत्यंत शक्तिशाली [को०]।

महात्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महात्मा' (संबो०)। उ०—मुक्त हुए तुम मुक्त हुए जन, हे जगवंद्य महात्मन्।—ग्राम्या, पृ० ५३।

महात्मा—संज्ञा पुं० [सं० **महात्मन्**] १. वह जिसकी आत्मा या आशय बहुत उच्च हो। वह जिसका स्वभाव, आचरण और विचार आदि बहुत उच्च हो। महानुभाव। २. बहुत बड़ा साधु, संन्यासी या विरक्त। ३. दुष्ट। पाजी। (व्यंग्य)। ४. परमात्मा। ६. महादेव। शिव। ७. महत्तत्व।

महात्म्य—संज्ञा पुं० [सं० **माहात्म्य**] दे० 'माहात्म्य'। उ०—तथापि गीता ने ज्ञान का महात्म्य माना है क्योंकि ज्ञानी परमेश्वर को समझता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १८७।

महात्रिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहेड़ा, आँवला और हड़ इन तीनों का समूह।

महात्याग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान। २. शिव (को०)।

महात्याग[2]—वि० दे० 'महात्यागी'' [को०]।

महात्यागी[1]—संज्ञा पुं० [सं० **महात्यागिन्**] शिव।

महात्यागी[2]—वि० बहुत बड़ा त्यागी। अत्यंत दयालु [को०]।

महादंड—संज्ञा पुं० [सं० **महादण्ड**] १. यम के हाथ का दंड। २. यम के दूत। ३. लंबी भुजा (को०)। ४. कठोर दंड (को०)।

महादंडधर—संज्ञा पुं० [सं० **महादण्डधर**] यमराज [को०]।

महादंडधारी—संज्ञा पुं० [सं० **महादण्डधारिन्**] यमराज। उ०—करैं कोतवाली महादंडधारी। सफा मेघमाला, शिखी पाककारी।—केशव (शब्द०)।

महादंत—संज्ञा पुं० [सं० **महादन्त**] १. महादेव। २. हातीदाँत। ३. बड़े दाँतवाला हाथी (को०)।

महादंता—संज्ञा स्त्री० [सं० **महादन्ता**] नागबेज।

महादंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शंकर। २. एक राक्षस का नाम। ३. विद्याधर।

महादशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार मानव जीवन में किसी एक ग्रह का निर्धारित भोग्य काल।

विशेष—दे० 'दशा—४'।

महादान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार तुला पुरुष, सोने की गौ या घोड़ा आदि तथा पृथ्वी, हाथी, रथ, कन्या आदि पदार्थों का दान जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। २. वह दान जो ग्रहण आदि के समय डोमों, चमारों आदि जातियों को दिया जाता है।

महादानि(पु)—वि० [सं० **महा+दानि**] बहुत बड़ा दानी। उ०—मागहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।—मानस, १।१४८।

महादानी—वि० [सं० **महादानिन्**] दे० 'महादानि'। उ०—दान समै गनै धन तृन सो कुबेर हू को तनक सुमेरु महादानी ऊँचे मन को।—मति० ग्रं०, पृ० ३६४।

महादारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

महादूत—संज्ञा पुं० [सं०] यमदूत।

महादूषक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

महादेइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **महादेवी**] महारानी।

महादेव—संज्ञा पुं० [सं०] शंकर। शिव।

महादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. राजा की प्रधान पत्नी

या पटरानी की एक पदवी जो हिंदू काल में भारत में प्रचलित थी।

महादेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महाद्वीप'।

महादैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भौत्य मन्वंतर के एक दैत्य का नाम।

महाद्रावक—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का औषध जो सोनमक्खी, रसांजन, समुद्रफेन, सज्जी आदि से बनाया जाता है।

महाद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ। पीपल। २. ताड़। ३. महुआ। ४. पुराणानुसार एक वर्ष या देश का नाम।

महाद्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सुमेरु पर्वत।

महाद्रोणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोणपुष्पी।

महाद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. विशाल दरवाजा। बड़ा फाटक। २. मंदिर का प्रधान दरवाजा [को०]।

महाद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणों के अनुसार पृथिवी के सात मुख्य विभाग। २. पृथ्वी का वह बड़ा भाग जो चारो ओर नैसर्गिक सीमाओं से घिरा हुआ हो, जिसमें अनेक देश हों और अनेक जातियाँ बसती हों। जैसे, एशिया, अफ्रीका आदि (आधुनिक भूगोल)।

महाधन[१]—वि० [सं०] १. बहुमूल्य। अधिक मूल्य का। उ०—(क) बाहु विशाल ललित सायक धनु कर कंकन केयूर महाधन।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तहँ राजत निज बीर शेषनाग ताके तर कूरम बरात महाधन धीर।—सूर (शब्द०)। बहुत धनी।

महाधन[२]—संज्ञा पुं० १. स्वर्ण। सोना। २. धूप। सुगंध धूप। ३. कृषि। खेती। ४. बहुमूल्य वस्तु (को०)। ५. बहुत बड़ा युद्ध (को०)।

महाधनुस्—संज्ञा पुं० [सं० महाधनुष्] शिव [को०]।

महाधर†—संज्ञा पुं० [सं० महा + धर] महान्। श्रेष्ठ। महा धुरंधर। सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार। उ०—चारि महाधर बारह चेला येकंकारी हूवा।—गोरख०, पृ० १३३।

महाधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। २. शिव। ३. सुमेरु पर्वत [को०]।

महाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० महा + अधिकृत] सेनापति। सेनानायक। उ०—सेनापति शब्द के स्थान पर प्राचीन लेखों में बलाधिकृत या महाधिकृत शब्द पाए जाते हैं। —पू० म० भा०, पृ० १०३।

महाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक देवता का नाम।

महाध्वनि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

महाध्वनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पुण्यकार्य के लिये हिमालय में गया हो, और वहाँ मर गया हो।

महानंद—संज्ञा पुं० [सं० महानन्द] १. मगध देश का एक प्रतापी राजा जिसके डर से सिकंदर आगे न बढ़कर पंजाब ही से अपने देश को लौट गया था। २. दस अंगुल की मुरली। इस वाद्य के देवता ब्रह्मा माने गए हैं। ३. मुक्ति। मोक्ष। ४. आध्यात्मिक आनंद की स्थिति। उ०—बिना रसना जहँ राग बतीसों हीन महानंद पूरा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ८५।

महानंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० महानन्दा] १. सुरा। शराब। २. माघ शुक्ला नवमी। इस तिथि को दान, होम और व्रत आदि करने का विधान है। ३. बंगाल की एक छोटी नदी का नाम जो हिमालय के अंतर्गत दार्जिलिंग से निकली है।

महान्—वि० [सं० महत्] बहुत बड़ा। विशाल। जैसे,—देशसेवा का कार्य महान् है जो सब लोग नहीं कर सकते।

महान—वि० [सं० महान्] दे० 'महान्'।

महानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

महानगर—संज्ञा पुं० [सं० महा + नगर] बड़ा शहर। विशाल शहर।

महानग्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेमी। प्रेम करनेवाला। २. स्त्री का यार। उपपति। जार। ३. प्राचीन काल का एक राजकर्मचारी जो बहुत ऊँचे पद पर होता था।

महानट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महानता—संज्ञा स्त्री० [हिं० महान + ता (प्रत्य०)] दे० 'महत्ता'।

महानद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक नद का नाम। उ०—सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।—मानस, १।४०। २. एक तीर्थ का नाम।

महानदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विशाल नदी। जैसे, गंगा। २. एक नदी जो बंगाल की खाड़ी में गिरती है [को०]।

महानरक—संज्ञा पुं० [सं०] २१ नरकों में से एक नरक का नाम [को०]।

महानल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरसल [को०]।

महानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन शुक्ल नवमी। आश्विन के नवरात्र की नवमी।

महानस—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईघर।

महानसावलेही—संज्ञा पुं० [सं०] चौका खराब करनेवाला।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चौके को छूकर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनको जीभ उखाड़ ली जाती थी।

महानाटक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के लक्षणों से युक्त दस अंकोंवाला नाटक। विशेष—दे० 'नाटक'।

महानाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। २. ऊँट। ३. सिंह। ४. मेघ। बादल। ५. शंख। ६. बड़ा ढोल। ७. महादेव। शिव। ८. बहुत जोर की आवाज (को०)। ९. कान। श्रोत्र (को०)।

महानाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मंत्र जिससे शत्रु के फेंके हुए शस्त्र व्यर्थ जाते हैं। उ०—पद्मनाभ अरु महानाभ दोउ

द्वंदहु नाभ सुनाभा।—रघुनाथ (शब्द०)। २. एक दानव का नाम। ३. पुराणानुसार हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम।

महानायक—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों की माला के बीच में का बड़ा रत्न। २. सर्वोच्च या प्रधान नेता [को०]।

महानारायण—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

महानास—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

महानिंब—संज्ञा स्त्री० [सं० **महानिम्ब**] बकायन।

महानिद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मरण। मौत।

महानिधान—संज्ञा पुं० [सं०] बुभुक्षित धातुभेदी पारा जिसे 'बावन तोला पाव रत्ती' भी कहते हैं। उ०—महाराज का कल्याण हो, आपकी कृपा से महानिधान सिद्ध हुआ। आपको बधाई है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

महानियम—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

महानियुत—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

महानिरय—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

महानिर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] परिनिर्वाण जिसके अधिकारी केवल अर्हत् या बुद्धगण माने जाते हैं। उ०—महानिर्वाण वह, नहीं रहते जब कर्म, करण या कारण कुछ।—अनामिका, पृ० १०१।

महानिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि का मध्यभाग। रात्रि का दूसरा और तीसरा प्रहर। आधी रात। २. कल्पांत या प्रलय की रात्रि। ३. दुर्गा (को०)।

महानिशीथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक संप्रदाय का नाम।

महानीच—संज्ञा पुं० [सं०] धोबी।

महानीबू—संज्ञा पुं० [सं० **महा + नीबू**] बिजौरा नीबू।

महानीम—संज्ञा स्त्री० [सं० **महानिम्ब**] १. बकायन। २. तुन का पेड़।

महानील[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भृंगराज पक्षी। २. एक प्रकार का नीलम जो सिंहल द्वीप में होता है। ३. एक प्रकार का गुग्गुल। ४. एक पर्वत का नाम जो मेरु पर्वत के पास माना जाता है। ५. एक प्रकार का साँप। एक नाग का नाम।

महानील[२]—वि० जो अत्यधिक नीला हो [को०]।

महानीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली अपराजिता।

महानुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कोई बड़ा और आदरणीय व्यक्ति। महापुरुष। महाशय।

महानुभावता—संज्ञा स्त्री० [सं० **महानुभाव + ता** (प्रत्य०)] महानुभाव होने का भाव। बड़प्पन। जैसे,—यह आपकी महानुभावता है कि आपने अपनी गलती मान ली।

महानृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महानेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। त्रिनेत्र।

महानेमि—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ।

महापंक—संज्ञा पुं० [सं० **महापङ्क**] महापाप। (बौद्ध)।

महापंक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० **महापङ्क्ति**] एक प्रकार का छंद [को०]।

महापंचमूल—संज्ञा पुं० [सं० **महापञ्चमूल**] बेल, अरनी, सोनापाढ़ा, काश्मरी और पाटला इन पाँचों वृक्षों की जड़ों का समूह जिसका व्यवहार वैद्यक में होता है।

महापंचविष—संज्ञा पुं० [सं० **महापञ्चविष**] शृंगी, कालकूट मुस्तक, बछनाग और शंखकर्णी इन पाँचों विषों का समूह।

महापंचांगुल—संज्ञा पुं० [सं० **महापञ्चाङ्गुल**] लाल अंडी का वृक्ष।

महापक्ष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरुड। २. उल्लू। ३. एक प्रकार का राजहंस।

महापक्ष[२]—वि० १. बड़े पंखोंवाला। २. बड़े दल, समूह या परिवार-वाला [को०]।

महापक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **महापक्षिन्**] उलूक। उल्लू [को०]।

महापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्राचीन नदी का नाम। २. बड़ी नदी। महानदी।

महापट—संज्ञा पुं० [सं०] त्वक्। त्वचा [को०]।

महापथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत लंबा और चौड़ा रास्ता। राजपथ। २. याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार २१ नरकों में से १६ वाँ नरक। ३. परलोक का मार्ग। मृत्यु। मौत। ४. सुषुम्ना नाड़ी। ५. हिमालय के एक तीर्थ का नाम। ६. वह मार्ग जिससे पांडव स्वर्ग गए थे (को०)। ७. शिव।

महापथगमन—संज्ञा पुं० [सं०] मरण। देहांत।

महापथिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मरने के उद्देश्य से हिमालय पर्वत पर जाय।

महापद्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. नौ निधियों में से एक निधि। २. आठ दिग्गजों में से एक दिग्गज जो दक्षिण दिशा में स्थित है। ३. हाथी की एक जाति। ४. फनवाली जाति के अंतर्गत एक प्रकार का साँप। ५. एक प्रकार का दैत्य। ६. सफेद कमल। ७. महाभारत काल के एक नगर का नाम जो गंगा के किनारे पर था। ८. सौ पद्म की संख्या। ९. कुबेर के अनुचर एक किन्नर का नाम। १०. नारद का एक नाम (को०)। ११. जैनों के अनुसार महाहिमवान् पर्वत पर के जलाशय का नाम। १२. नंद नरेश का नाम (को०)।

महापद्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाकाव्य।

महापनस—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

महापर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाल वृक्ष।

महापविद्मत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

महापातक—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार पाँच बहुत बड़े पाप जो ये हैं—ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरु की पत्नी के साथ व्यभिचार और ये सब पाप करनेवालों का साथ करना।

विशेष—कहते हैं, जो लोग ये महापातक करते हैं, वे नरक भोगने के उपरांत भी सात जन्म तक घोर कष्ट भोगते हैं।

महापातकी—संज्ञा पुं० [सं० महापातकिन्] वह जिसने महापातक किया हो।

महापातर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० महापात्र] दे० 'महापात्र'। उ०—नाँव महापातर मोहि तेहिक भिखारी ढीठ।—जायसी ग्रं०, पृ०, ३०२।

महापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाब्राह्मण या कट्टहा ब्राह्मण जो मृतक कर्म का दान लेता है। २. महामंत्री। प्रधान मंत्री।

महापाद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महापाप—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा पा महापातक [को०]।

महापाप्मा—वि० [सं० महापाप्मन्] घोर पापी अथवा दुष्ट [को०]।

महापाय—संज्ञा पुं० [सं०] महापातक।

महापार्श्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम। २. एक राक्षस का नाम।

महापाश—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का यमदूत।

महापाशुपत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकुल। मौलसिरी। २. शैवों का एक प्राचीन संप्रदाय जिसमें पशुपति की उपासना होती थी।

महापासक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध भिक्षु। श्रमण।

महापितृयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का श्राद्ध या पितृयज्ञ जो साकमेध में दूसरे दिन होता था।

महापीठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पीठ'।

महापीलु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पीलु वृक्ष।

महापीलुपति—संज्ञा पुं० [सं० महापीलु + पति] हाथी का निरीक्षक। हाथी की देखभाल करनेवाला।—उ०—सेन लेख में महापीलुपति तथा महाव्यूहपति शब्दों का प्रयोग मिलता है। पहले शब्द से हाथी के निरीक्षक का तात्पर्य माना गया है। पू० म० भा०, पृ० १०४।

महापुंडरीक—संज्ञा पुं० [सं० महापुण्डरीक] जैनों के अनुसार रुक्मि पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

महापुट—संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार रस आदि तैयार करने का एक प्रकार।

विशेष—इसमें दो हाथ लंबा, दो हाथ चौड़ा और दो हाथ गहरा एक गड्ढा खोदकर उसमें एक हजार उपले रखते हैं; और उन उपलों पर मिट्टी के बर्तन में ओषधि आदि डालकर उसका मुँह बंद करके रख देते हैं; और तब ऊपर से पाँच सौ उपले रखकर आग लगा देते हैं।

महापुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बोधिसत्व का नाम। २. बहुत बड़ा पुण्य। महान् पुण्य (को०)।

महापुण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

महापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] लड़के का पुत्र। पोता। पौत्र।

महापुमान्—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

महापुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह नगर जो दुर्ग आदि से भली भाँति रक्षित हो। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

महापुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पुराण'। २. अपभ्रंश के कवि स्वयंभु कृत एक ग्रंथ का नाम।

महापुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजधानी।

महापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारायण। २. श्रेष्ठ पुरुष। महात्मा। ३. दुष्ट। पाजी। (व्यंग्य)।

महापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंद का वृक्ष। २. काला मूँग। ३. लाल कनेर। ४. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

महापुष्पा—संज्ञा पुं० [सं०] अपराजिता।

महापूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की वह पूजा जो आश्विन के नवरात्र में होती है।

महापृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक अनुवाक् का नाम जो अश्वमेध यज्ञ के संबंध में है। २. ऊँट।

महाप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दुर्गा का एक नाम जो सृष्टि का मूल कारण मानी जाती है।

महाप्रजापति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

महाप्रतिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक उच्च कर्मचारी जो प्रतिहारों अथवा नगर या प्रासाद की रक्षा करनेवाले चौकीदारों का प्रधान होता था। २. नगर में शांति रखनेवाला अधिकारी। कोतवाल।

महाप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महामात्य'। उ०—परमार राजा यशोवर्मा के लेख में 'महाप्रधान' शब्द का प्रयोग मिलता है। गहड़वाल ताम्रपत्रों में महामात्य शब्द आता है।—पू० म० भा०, पृ० १०२।

महाप्रबीन(पु)—वि० [सं० महा + प्रवीण] अत्यंत चतुर। उ०—जसुमति महा प्रबीन, एकु द्विज नारि बुलाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १९४।

महाप्रभ—वि० [सं०] अत्यंत कांतियुक्त। अति दीप्तिमय [को०]।

महाप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

महाप्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वल्लभाचार्य जी की एक आदरसूचक पदवी। २. बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य चैतन्य को एक आदरसूचक पदवी। ३. ईश्वर। ४. शिव। ५. इंद्र। ६. विष्णु। ७. राजा। ८. संन्यासी या साधु।

महाप्रयाण—संज्ञा पुं० [सं० महा + प्रयाण] दे० 'महाप्रस्थान'।

महाप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह काल जब संपूर्ण सृष्टि का विनाश हो जाता है और अनंत जल के अतिरिक्त कुछ भी बाकी नहीं रहता। ऐसा समय प्रत्येक कल्प अथवा ब्रह्मा के दिन के अंत में आता है। विशेष—दे० 'प्रलय'।

महाप्रलै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० महाप्रलय] दे० 'महाप्रलय'। उ०—

महाप्रलै कौ जल बल लै गिरि पर बरस्यो हरि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८।

महाप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर या देवताओं का प्रसाद। उ०—सो अब ताईं महाप्रसाद लियो नाहीं है।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६५। २. जगन्नाथ जी का चढ़ा हुआ भात। ३. मांस (देवी का प्रसाद) (व्यंग्य)। ४. अखाद्य पदार्थ (व्यंग्य)।

महाप्रसूत—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

महाप्रस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर त्यागने की कामना से हिमालय की ओर जाना। मरण-दीक्षा-पूर्वक उत्तर की ओर अभिगमन। २. मरण। देहांत।

महाप्राज्ञ—वि० [सं०] अत्यंत विद्वान्। महाज्ञानी।

महाप्राण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह वर्ण जिसके उच्चारण में प्राणवायु का विशेष व्यवहार करना पड़ता है।

विशेष—वर्णमाला में प्रत्येक वर्ग का दूसरा तथा चौथा अक्षर तथा हिंदी की कुछ अन्य ध्वनियाँ महाप्राण हैं। जैसे,—

कवर्ग का—ख, घ।

चवर्ग का—छ, झ।

टवर्ग का—ठ, ढ, ढ़।

तवर्ग का—थ, ध।

पवर्ग का—फ, भ। तथा श, ष, स और ह तथा न्ह, म्ह ल्ह आदि।

२. वह तीव्र या महाप्राण श्वास जो महाप्राण वर्णों के उच्चारण में लेनी पड़ती है (को०)। ३. काला कौआ (को०)।

महाप्राण[2]—वि० अत्यधिक सत्वयुक्त।

महाफल[1]—वि० [सं०] १. बहुत अधिक फल देनेवाला। २. बहुत अधिक पुरस्कार देनेवाला [को०]।

महाफल[2]—संज्ञा पुं० वेल का पेड़ [को०]।

महाफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तितलौकी। २. महाकोशातकी। ३. राज जंबू। ४. इंद्रवारुणी। ५. एक प्रकार का भाला [को०]।

महाफा, महाफ़ी—संज्ञा स्त्री० [अ० महफ़्फ़ह्, फ़ा० मुहाफ़ह्] बड़ी पर्देदार डोली। सवारी। पालकी। उ०—मेरी औरत महाफ़ी में बिठाकर, ले जाया कर जबर्दस्ती सरासर।—दक्खिनी०, पृ० ३१५।

महाबन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत घना और विशाल बन। उ०—फिरेउ महाबन परेउ भुलाई।—मानस, १।१५७। २. वृंदावन के एक बन का नाम।

महाबल[1]—वि० [सं०] अत्यंत बलवान्। बहुत बड़ा ताकतवर। उ०—(क) भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सत मति जय जय धारि विपृथु भट चल्यौ महाबल।—गोपाल (शब्द०)। (ग) मेघनाथ से पुत्र महाबल कुंभकरण से भाई।—सूर (शब्द०)।

महाबल[2]—संज्ञा पुं० १. पितरों के एक गण का नाम। २. बुद्ध। ३. तामस और रौच्य मन्वंतर के इंद्र का नाम। ४. वायु। ५. शिव के एक अनुचर का नाम। ६. एक नाग का नाम। ७. ठोस बाँस (को०)। ८. मकर। नक्र (को०)। ९. ताल वृक्ष (को०)। १०. सीसा।

महाबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहदेवी नाम की जड़ी। पीली सहदेइया। २. पिप्पली। पीपल। ३. धौ। ४. नील का पौधा। ५. कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। ६. एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

महाबलाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० महाबला+अधिकृत] सबसे बड़ा सेनाधिकारी। प्रधान सेनापति। उ०—क्या! महाबलाधिकृत अब नहीं हैं! शोक!—स्कंद०, पृ० ४।

महाबलि—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. गुफा। ३. मन।

महाबलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग जो उड़ीसा में आधुनिक महाबलेश्वर के निकट है [को०]।

महाबाहु[1]—वि० [सं०] १. लंबी भुजावाला। २. बली। बलवान्।

महाबाहु[2]—संज्ञा पुं० १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. एक राक्षस का नाम। ३. विष्णु का एक नाम।

महाबुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बुद्ध जो साधारण बुद्धों से श्रेष्ठ माने जाते हैं।

महाबुद्धि—वि० [सं०] १. बहुत बुद्धिमान्। २. धूर्त।

महाबृहती—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जो तीन पाद का होता है और जिसके प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं।

महाबेधक†—संज्ञा पुं० [सं० महा+बेधक] महायुद्ध। उ०—वाजिया वेढक महावेधक, सार साबल सोहड़ाँ।—रा० रू०, पृ० २८०।

महाबोधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्धदेव। २. बौद्ध भिक्षु (को०)।

महाब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ब्राह्मण जो मृतक कृत्य का दान लेता हो। कट्टहा। (साधारणतः लोक में ऐसा ब्राह्मण निंदित माना जाता है)। २. निकृष्ट ब्राह्मण। ३. ज्ञानी, पठित और विद्वान् विप्र (को०)।

महाब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] महासागर। उ०—धन के मान के बाँध को जर्जर कर, महाब्धि ज्ञान का बहा जो भर गर्जन साहित्यिक स्वर।—अनामिका, पृ० १८।

महाभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। २. पुराणानुसार मेरु पर्वत के उत्तर के एक सरोवर का नाम।

महाभद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंगा। २. काश्मरी।

महाभय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार अधर्म के एक पुत्र का नाम जो निर्ऋति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

महाभया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

महाभरपु—वि० [सं० महाभट] वीर योद्धा। उ०—स्वामि धर्म उर धरहु रहहु, मम सत्थ महाभर।—प० रासो, पृ० १६१।

महाभरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलंजन। पान की जड़।

महाभाग—वि० [सं०] १. भाग्यवान्। किस्मतवर। २. महान्, विशिष्ट। ३. पवित्रात्मा।

महाभागवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारह महाभक्त अर्थात् मनु, सनकादि, भरत, जनक, कपिल, ब्रह्मा, बलि, भीष्म, प्रह्लाद, शुकदेव, धर्मराज और शंभु। २. एक प्रकार के छंद का नाम। २६ मात्राओं के छंदों की संज्ञा। ३. परम वैष्णव। ४. दे० 'भागवत' (पुराण)।

महाभागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाक्षायिणी का एक नाम।

महाभागी—वि० [सं० महाभागिन्] अत्यंत भाग्यवान् [को०]।

महाभारत—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक परम प्रसिद्ध प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्य जिसमें कौरवों और पांडवों के युद्ध का वर्णन है।

विशेष—यह ग्रंथ आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शांति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थान और स्वर्गारोहण इन अट्ठारह पर्वों में विभक्त है। कुछ लोग हरिवंश पुराण को भी इसी के अंतर्गत और इसका अंतिम ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रंथ में लगभग ८०-९० हजार श्लोक हैं। ऐतिहासिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से इस ग्रंथ का महत्व बहुत अधिक है। यों तो महाभारत ग्रंथ कौरव-पांडव-युद्ध का इतिहास ही है पर इसमें वैदिक काल की यज्ञों में कही जानेवाली अनेक गाथाओं और आख्यानों आदि के संग्रह के अतिरिक्त धर्म, तत्वज्ञान, व्यवहार, राजनीति आदि अनेक विषयों का भी बहुत अच्छा समावेश है। कहते हैं, कौरव-पांडव-युद्ध के उपरांत व्यास जी ने 'जय' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की थी। वैशंपायन ने उसे और बढ़ाकर उसका नाम 'भारत' रखा। सबके पीछे सौति ने उसमें और भी बहुत सी कथाओं आदि का समावेश करके उसे वर्तमान रूप देकर 'महाभारत' बना दिया। महाभारत में जिन बातों का वर्णन है, उसके आधार पर एक ओर तो यह ग्रंथ वैदिक साहित्य तक जा पहुँचता है और दूसरी ओर जैनों तथा बौद्धों के आरंभिक काल के साहित्य से आ मिलता है। हिंदू इसे बहुत ही प्रामाणिक धर्मग्रंथ मानते हैं।

२. कोई बहुत बड़ा ग्रंथ। ३. कौरवों और पांडवों का प्रसिद्ध युद्ध जिसका वर्णन उक्त महाकाव्य में है। ४. कोई बड़ा युद्ध या लड़ाई झगड़ा। जैसे, यूरोपीय महाभारत। उ०—अबकी बार प्रत्यक्ष महाभारत होइ गया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०७।

महाभाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि के व्याकरण पर पतंजलि का लिखा हुआ प्रसिद्ध भाष्य।

महाभासुर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

महाभिक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध।

महाभिषव—संज्ञा पुं० [सं०] सोम का रस [को०]।

महाभिनिष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं० महा+अभिनिष्क्रमण] १. बाहर जाना। २. प्रव्रज्या के लिये बाहर जाना।

महाभीत—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा शांतनु का एक नाम। २. शिव के श्रृंगी नामक द्वारपाल का एक नाम।

महाभीता—संज्ञा पुं० [सं०] लजालू।

महाभीम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा शांतनु का एक नाम। २. शिव के श्रृंगी नामक द्वारपाल का एक नाम।

महाभीम[२]—वि० अत्यंत भयानक। बहुत भयंकर [को०]।

महाभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वालिन नाम का बरसाती कीड़ा।

महाभीष्म—संज्ञा पुं० [सं०] राजा शांतनु का एक नाम।

महाभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी बाँहें बहुत लंबी हों। आजानुबाहु।

महाभूत—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंचतत्व। उ०—कालहू के काल महाभूतनि के महाभूत करम के करम निदान के निदान हौ।—तुलसी (शब्द०)। विशेष—दे० 'भूत'।

महाभृंग—संज्ञा पुं० [सं० महाभृङ्ग] नीले फूलवाला भँगरा।

महाभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महाभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक विद्या का नाम।

महाभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप। २. दे० 'महाप्रसाद'।

महाभोगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महाभोगी—संज्ञा पुं० [सं० महाभोगिन्] बड़े फनवाला साँप।

महामंडल—संज्ञा पुं० [सं० महा+मण्डल] १. बहुत बड़ा संघटन। बड़ा संघ। २. बहुत विशाल परिधि या घेरा।

महामंडलिक—संज्ञा पुं० [सं० महा+माण्डलिक] प्राचीन राजाओं की एक उपाधि। उ०—प्रतिहार तथा पाल नरेशों के लेखों में उनके लिये राजन, राजन्यक, राजनक, सामंत अथवा महासामंत शब्दों का प्रयोग मिलता है। कहीं कहीं वह महामंडलिक के नाम से भी पुकारा जाता था।—पू० म० भा०, पृ० ९८।

महामंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद का कोई मंत्र। वेदमंत्र। २. सबसे बड़ा मंत्र। उत्कृष्ट मंत्र। उ—महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू।—मानस, १।१९। ३. वह मंत्र या सलाह जिसकी सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। अच्छी और बढ़िया सलाह। उ०—राजा राज-पुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्र दा।—केशव (शब्द०)।

महामंत्री—संज्ञा पुं० [सं० महामन्त्रिन्] राजा का प्रधान या सबसे बड़ा मंत्री।

महामट्ट—संज्ञा पुं० [सं० महा+मट्टक] बड़ा मटका। नाँद, जिसमें रँगरेज कपड़े रँगते हैं। उ०—फटै कुंभ प्राहार श्रोनं अजेजं। महामट्ट फुट्या मनो रंगरेजं।—पृ० रा०, १२। ३७८।

महामणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूल्यवान् रत्न। २. शिव [को०]।

महामति[१]—वि० [सं०] १. जो बहुत बड़ा बुद्धिमान् हो। २. जो बहुत अधिक उदार विचार का हो [को०]।

महामति[२]—संज्ञा पुं० १. गणेश। २. एक यक्ष का नाम। ३. एक बोधिसत्व का नाम। ४. बृहस्पति (को०)।

महामत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक अनुसार वह बहुत बड़ी मछली जो स्वयंभूरमण सागर में थी।

महामद—संज्ञा पुं० [सं०] मस्त हाथी।

महामना[1]—वि० [सं० **महामनस्**] १. उदारचित्त। दयालु। २. उच्च विचारवाला। उच्चमना। जैसे, हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के अनन्य उपासक महामना मदनमोहन मालवीय। ३. समर्थ। साहंकार [को०]।

महामना[2]—संज्ञा पुं० आख्यान वर्णित एक जंतु। शरभ [को०]।

महामयूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

महामह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा उत्सव। महोत्सव।

महामहिम—वि० [सं० **महा + महिमा**] १. महान् महिमायुक्त। महिमान्वित। उ०—सत्ता का महामहिम रथ जब वैभव के पथ पर चलता है। करते हैं उसका विजयघोष अगणित अनुचर अगणित चारण। २. राजा, महाराजा, स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति और राज्यपाल आदि के लिये आदरार्थ प्रयुक्त संबोधन। आदरयुक्त संबोधन।

महामहोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुरुओं का गुरु। बहुत बड़ा गुरु। २. संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों को शासन से मिलनेवाली एक प्रकार की उपाधि।

विशेष—स्वतंत्रताप्राप्ति के पूर्व भारत में संस्कृत के विद्वानों को यह उपाधि ब्रिटिश सरकार की ओर से मिलती रही है। अब यह उपाधि उसी प्रकार विद्वानों को स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा प्राप्त होती है।

महामांडलिक—संज्ञा पुं० [सं० **महा + मण्डलिक**] मंडल या राष्ट्र का अधिपति।

महामांस—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोमांस। गौ का गोश्त। उ०—जिधर देखिए महामांस से भरे टोकरे अधिकता से।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६। २. मनुष्य का मांस।

विशेष—कुछ लोग मनुष्य, गौ, हाथी, घोड़े, भैंस, सूअर, ऊँट और साँप इन आठ जीवों के मांस को महामांस मानते हैं। महामांस खाना परम निषिद्ध कहा गया है।

महामाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **महा** + हिं० **माई**] १. दुर्गा। उ०—अये गवरि, ईस्वरि सब लायक। महामाइ बरदाइ सुभायक।—नंद० ग्रं०, पृ० २९८। २. काली।

महामात्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का प्रधान या सबसे बड़ा अमात्य। महामंत्री।

महामात्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. महामात्य। २. महावत। ३. हाथियों का निरीक्षक।

महामात्र[2]—वि० १. प्रधान। बड़ा। २. बहुत बढ़िया। ३. समृद्ध। संपन्न। ४. धनवान्। अमीर।

महामात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महामात्य की पत्नी। २. आध्यात्मिक गुरु की स्त्री [को०]।

महामानव—संज्ञा पुं० [सं० **महा + मानव**] अत्यंत महान् पुरुष। दैवी पुरुष। ईश्वरीय अवतार।

महामानसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की एक देवी का नाम।

महामानसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की एक देवी। महामानसिका।

महामान्य—वि० [सं० **महा + मान्य**] अत्यंत संमानार्ह। परम प्रतिष्ठित।

महामाय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १, शिव। २. विष्णु। ३. एक असुर का नाम। ४. एक विद्याधर का नाम।

महामाय[2]—वि० मायावी।

महामाय(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० **महामायी**] दे० 'महामाई'। उ०—महामाय, बरदाय, सुसंकर तुमरे नायक —नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

महामाया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकृति। २. दुर्गा। ३. गंगा। ४. शुद्धोदन की पत्नी और बुद्ध की माता का नाम। ५. आर्या छंद का तेरहवाँ भेद जिसमें १५ गुरु और २७ लघु वर्ण होते हैं।

महामायी—संज्ञा पुं० [सं० **महामायिन्**] विष्णु [को०]।

महामारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह संक्रामक और भीषण रोग जिसमें एक साथ ही बहुत से लोग मरें। वबा। मरी। जैसे, हैजा, चेचक, प्लेग इत्यादि। २. महाकाली का एक नाम।

महामाल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाराच छंद का एक नाम।

महामाष—संज्ञा पुं० [सं०] राजमाष। बड़ा उड़द।

महामाषतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो साधारण तिल के तेल में चने की दाल, दशमूल और बकरी का मांस आदि मिलाकर पकाने से बनता है।

महामुंड—संज्ञा पुं० [सं० **महामुण्ड**] बोल नामक गंधद्रव्य।

महामुंडनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **महामुण्डनिका**] गोरखमुंडी।

महामुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० **महामुण्डी**] गोरखमुंडी [को०]।

महामुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंभीर नामक जलजंतु। घड़ियाल। २. नदी का मुहाना। वह स्थान जहाँ नदी गिरती है। ३. महादेव।

महामुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योग के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा या अंगों की स्थिति। २. एक बहुत बड़ी संख्या का नाम। ३. राजमुद्रा। राजमुहर।

महामुद्राधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० **महा + मुद्रा + अधिकृत**] प्राचीन काल का एक राजकीय पद जिसका अधिकारी विदेशियों को देश में आने का अनुमतिपत्र देता था। उ०—महामुद्राध्यक्ष का भी एक उपविभाग था जो राज्य में प्रवेश के लिये विदेशियों को अनुमतिपत्र देता था। लक्ष्मणसेन के लेख में इसे महामुद्राधिकृत कहा गया है।—पू० म० भा०, पृ० १०६।

महामुद्राध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० **महा + मुद्रा + अध्यक्ष**] दे० 'महामुद्राधिकृत'। उ०—इस विभाग के अंतर्गत महामुद्राध्यक्ष का

भी एक उपविभाग था जो राज्य में प्रवेश के लिये विदेशियों को अनुमति पत्र देता था।—पू० म० भा०, पृ० १०६।

महामुनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुनियों में श्रेष्ठ। बहुत बड़ा मुनि। २. कपटी व्यक्ति। ठग। धोखेबाज (व्यंग्य)। ३. अगस्त्य ऋषि। ४. बुद्ध। ५. कृपाचार्य। ६. काल। ७. व्यास। ८. एक जिन का नाम। ९. तुंबुरु का वृक्ष।

महामूर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु।

महामूल—संज्ञा पुं० [सं०] प्याज।

महामूल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक।

महामूल्य²—वि० १. जिसका मूल्य बहुत अधिक हो। बहुमूल्य। २. महँगा। महार्घ।

महामृग—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

महामृत्युंजय—संज्ञा पुं० [सं० **महामृत्युञ्जय**] १. शिव। २. शिव जी का एक मंत्र। कहते हैं, इसके जप से अकालमृत्यु टल जाती और आयु बढ़ती है।

महामेघ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महामेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महामेदा'।

महामेदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कंद जो मोरंग देश में पाया जाता है।

विशेष—यह देखने में अदरक के समान होता है। इसकी लता चलती है। वैद्यक में इसे शीतल, रुचिकर, कफ और शुक्र को बढ़ानेवाली, दाह, रक्तपित्त, क्षय और वात को नाश करनेवाली माना है। यह जड़ी आजकल नहीं मिलती। इसके स्थान पर च्यवनप्राश आदि में दूसरी ओषधि डालते हैं।

पर्या०—**देवमणि**। **वसुच्छिद्रा**। **देवेष्ट**। **सुरमेदा**। **दिव्या**। **त्रिदंती**। **सोमा**।

महामोघ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

महामेधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

महामैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

महामोदकारी—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में छह मगण होते हैं। इसका दूसरा नाम क्रीडाचक्र भी है।

महामोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सांसारिक सुखों के भोग की इच्छा जो अविद्या का रूपांतर मानी गई है। उ०—जै जै कलयुग राज की; जै महामोह महराज की।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४८३। २. भारी मोह। तीव्र आसक्ति (को०)।

महामोहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महाय(५)—वि० [सं० **महा**] महान्। बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) तीसर अपनो रूप रचि व्यंकट शैल धराय। कह्यौ सकल शिष्यन करहु यामें प्रीति महाय।—रघुराज (शब्द०)। (ख) याके सनमुख हम दोऊ बैठी रूप बनाय। हमपै तनक तकै नहीं अचरज लगत महाय।—रघुराज (शब्द०)।

महायक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. यक्षों का राजा। २. एक प्रकार के बौद्ध देवता।

महायज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंदू धर्मशास्त्र के अनुसार नित्य किए जानेवाले कर्म जो मुख्यत: पाँच हैं—(क) **ब्रह्मयज्ञ** = संध्योपासन, (२) **देवयज्ञ** = हवन, (३) **पितृयज्ञ** = तर्पण, (४) **भूतयज्ञ** = बलि और (५) **नृयज्ञ** = अतिथिसत्कार।

विशेष—इन पाँचों कर्मों के नित्य करने का विधान है। कहते हैं, मनुष्य नित्य जो पाप करता है, उनका नाश इन यज्ञों के अनुष्ठान से हो जाता है। २. महान् कार्य। ऐसा कार्य जिसका लक्ष्य अत्यंत ऊँचा हो।

महायम—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।

महायशा—संज्ञा पुं० [सं० **महायशस्**] महायशस्वी। अत्यंत प्रसिद्ध। ख्यात। संमानित [को०]।

महायाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'महायज्ञ'। २. बहुत बड़ा यज्ञ। जैसे, अश्वमेध, राजसूय आदि। उ०—इसीलिये अब ये महायाग सिर्फ पुराने महोत्सवों की निर्जीव नकल तथा पुरोहितों की आमदनी का एक जरिया मात्र रह गया।—भा० इ० रू०, पृ० १५२।

महायात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत।

महायान—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक विद्याधर का नाम। २. बौद्धों के तीन मुख्य संप्रदायों में से एक संप्रदाय।

विशेष—महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण के थोड़े ही दिनों बाद उनके शिष्यों और अनुयायियों में मतभेद होने के कारण यह संप्रदाय चला था। इसका प्रचार नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान आदि उत्तरीय देशों में है जहाँ इसमें तंत्र भी बहुत कुछ मिला हुआ है। जिस प्रकार शिव की शक्तियाँ हैं, उसी प्रकार बुद्ध की कई शक्तियाँ या देवियाँ हैं जिनकी उपासना की जाती है।

३. चौड़ा मार्ग। प्रशस्त पथ। उ०—यह वह महायान या चौड़ा मार्ग था जिसपर संकीर्णता को दूर करके सबको चलने का निमंत्रण दिया गया।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६५४।

महायाम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

महायाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

महायुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों का समूह जो देवताओं का एक युग माना जाता है।

महायुत—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ी संख्या जो सौ अयुत की होती है।

महायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० **महा + युद्ध**] बहुत बड़ा युद्ध। ऐसा युद्ध जिसमें संसार के अनेक शक्तिशाली देश भाग लें।

विशेष—ईस्वी सन् की बीसवीं शताब्दी के विगत काल में दो महायुद्ध हुए हैं एक सन् १९१४–१८ तक और दूसरा सन् १९३९–४५ तक।

महायुध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महायोगी—संज्ञा पुं० [सं० **महयोगिन्**] १. शिव। २. विष्णु। ३. मुर्गा [को०]।

महायोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह, पुलस्त्य, वसिष्ठ पुलह, अंगिरा, क्रतु और कश्यप जो बहुत बड़े ऋषि और योगी माने जाते हैं।

महायोगेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. नागदमनी।

महायोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों का एक प्रकार का रोग जिसमें उनकी योनि बहुत बढ़ जाती है।

महायौगिक—संज्ञा पुं० [सं०] २६ मात्राओं के छंदों की संज्ञा।

महारंग—संज्ञा पुं० [सं० महारङ्ग] अभिनय करने का विशाल रंगमंच [को०]।

महारंभ[१]—वि० [सं० महारम्भ] जिसका आरंभ करने में बहुत अधिक यत्न करना पड़े। बहुत बड़ा। उ०—सच है छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसा घबरा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है। पर जो बड़े लोग हैं, उनके सब काम महारंभ होते हैं, तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

महारंभ[२]—संज्ञा पुं० बड़ा काम [को०]

महारक्त—संज्ञा पुं० [सं०] मूंगा।

महारक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार महाप्रतिसरा, महामयूरी, महासहस्रप्रमर्दिनी, महाशीतवती और महामंत्रानुसारणी ये पांच देवियाँ।

महारजत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। सुवर्ण। उ०—जातरूप कलधौत पुनि चामीकर तपनीय। रुक्म रुद्र रोदन कनक महारजत रमनीय।—अनेकार्थ०, पृ० १६। २. धतूरा।

महारजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुसुम का फूल। २. सोना।

महारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] घोर जंगल। घना जंगल [को०]।

महारत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अभ्यास। मश्क। २. योग्यता। कौशल (को०)। ३. ज्ञान। जानकारी (को०)।

महारत्न—संज्ञा पुं० [सं०] मोती, हीरा, वैदूर्य, पद्मराग, गोमेद, पुष्पराग (पुखराज), पन्ना, मूंगा और नीलम इन नौ रत्नों में से कोई रत्न।

महारत्नवर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक देवी का नाम।

महारथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत भारी योद्धा जो अकेला दस हजार योद्धाओं से लड़ सके। २. बहुत बड़ा रथ। विशाल रथ (को०)। ३. आकांक्षा। मनोरथ (को०)।

महारथी—संज्ञा पुं० [सं० महारथिन्] १. दे० 'महारथ'। उ०—पूरण प्रकृति सात धीर बीर है विख्यात रथी महारथी अतिरथी रण साज के।—रघुराज (शब्द०)। २. किसी विषय का प्रकांड विद्वान् या जानकार व्यक्ति। जैसे, शास्त्रार्थमहारथी।

महारथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौड़ा रास्ता। सड़क।

महारम—संज्ञा पुं० [अ० महारिम] १. परिचित या जान पहचान का व्यक्ति। २. दोस्त। ३. भेद का जानकार। उ०—क्यों मिलेगा घर तुझे चुप शाह का। होयगा क्यों महारम उस दरगाह का ?—दक्खिनी०, पृ० १७७।

महारस[१]—संज्ञा सं० [सं०] १. काँजी। २. खजूर। ३. कसेरू। ४. ऊख। ५. पारा। ६. कांतीसार लोहा। ७. ईंगुर। ८. सोनामक्खी। ९. रूपामक्खी। १०. अभ्रक। ११. जामुन का वृक्ष।

महारस[२]—वि० जिसमें बहुत रस हो। अधिक रसवाला [को०]।

महाराⓅ†—सर्व० [हिं० हमारा] दे० 'हमारा'। उ०—अंग अंग मदन उमंग बल धारे रे। जारे उर कठिन महारे यों म्हारे हारे, प्यारे अब न्यारे ह्वै कै चित्त सों बिसारे रे।—नट०, पृ० ५२।

महाराज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० महारानी] १. राजाओं में श्रेष्ठ। बहुत बड़ा राजा। २. ब्राह्मण, गुरु, धर्माचार्य या और किसी पूज्य के लिये एक संबोधन। ३. एक उपाधि जो भारत में ब्रिटिश सरकार की ओर से राजाओं को दी जाती थी। ४. उँगलियों का नाखून (को०)।

महाराजचूत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम [को०]।

महाराजाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत बड़ा राजा। अनेक राजाओं महाराजाओं में श्रेष्ठ। सम्राट्। २. एक प्रकार की पदवी जो ब्रिटिश भारत में सरकार की ओर से बड़े बड़े राजाओं को मिलती थी।

महाराजिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के देवता जिनकी संख्या कुछ लोगों के मत से २२६ और कुछ लोगों के मत से ४००० है।

महाराज्ञी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. महारानी।

महाराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा राज्य। साम्राज्य।

महाराणा—संज्ञा पुं० [सं० महा + हिं० राणा] मेवाड़, चित्तौर और उदयपुर के राजाओं की उपाधि।

महारात्र—संज्ञा पुं० [सं०] आधी रात [को०]।

महारात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाप्रलयवाली रात, जब ब्रह्मा का लय हो जाता है और दूसरा महाकल्प होता है। २. तांत्रिकों के अनुसार ठीक आधी रात बीतने पर दो मुहूर्त का समय।

विशेष—यह काल बहुत ही पवित्र समझा जाता है। कहते हैं कि इस समय जो पुण्य कृत्य किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है।

३. दुर्गा। ४. आश्विन शुक्ल पक्ष की अष्टमी की रात्रि जिस दिन निशीथ में भगवती का पूजन किया जाता है। ५. दे० 'शिवरात्रि'।

महारावण—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह रावण जिसके हजार मुख और दो हजार भुजाएँ थीं। अद्‌भुत रामायण के अनुसार इसे जानकी जी ने मारा था।

महारावल—संज्ञा पुं० [सं० महा + हिं० रावल] जैसेलमेर, डूँगरपुर आदि राज्यों के राजाओं की उपाधि।

महाराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध राज्य।

विशेष—यह राज्य अरब सागर के तट पर, गुजरात के दक्षिण, कर्णाट के उत्तर और तैलंग प्रदेश के पश्चिम में है। कोंकण

प्रदेश इसी का दक्षिणी भाग है। बहुत प्राचीन काल में इस प्रदेश का उत्तरी भाग दंडक वन कहलाता था। यहाँ सातवाहन, चालुक्य, कलचुरी और यादव आदि वंशों का राज्य बहुत दिनों तक था। मुसलमानों के राजत्व काल में यहाँ बहमनी, निजामशाही और कुतुबशाही आदि वंशों का राज्य था। पीछे सुप्रसिद्ध वीर महाराज शिवाजी ने इस देश में अपना साम्राज्य स्थापित किया था। यह प्रदेश पहले आधुनिक बंबई प्रांत के लगभग रहा है और यहाँ के निवासी भी महाराष्ट्र कहलाते हैं।

२. इस राज्य के निवासी, विशेषतः ब्राह्मण निवासी। ३. बहुत बड़ा राष्ट्र। जैसे, अमेरिकन महाराष्ट्र।

महाराष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की प्राकृत भाषा जो प्राचीन काल में महाराष्ट्र देश में बोली जाती थी। उ०—वही अंत को महाराष्ट्री प्राकृत भी कहलाई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७५। २. महाराष्ट्र की आधुनिक देशभाषा। ३. जलपीपल।

महारास—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की वह लीला जो शरत्पूर्णिमा के दिन गोपियों के साथ रास नृत्य के रूप में हुई थी।

महारुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महारूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सर्ज रस। राल (को०)।

महारूपक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक।

महारुरु—संज्ञा पुं० [सं०] मृगों की एक जाति।

महारूख—संज्ञा पुं० [सं० **महावृक्ष**] १. थूहर। सेंहुड़। स्नुही। २. एक जंगली वृक्ष जो बहुत सुंदर होता है।

विशेष—इस वृक्ष की लकड़ी से आरायशी सामान बनता है। इसकी छाल में सुगंधि होती है। मदरास और मध्यप्रदेश में यह अधिकता से पाया जाता है।

महारेता—संज्ञा पुं० [सं० **महारेतस्**] शिव [को०]।

महारोग—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा रोग। जैसे, पागलपन, कोढ़, तपेदिक, दमा, भगंदर आदि।

विशेष—उन्माद, राजयक्ष्मा, श्वासरोग, त्वक्‌दोष अर्थात् कुष्ठ मधुमेह, अश्मरी, उदररोग (संभवतः संग्रहणी) और भगंदर, आयुर्वेद में उक्त आठ रोग महारोग कहे गए हैं। कहते हैं, इस प्रकार के रोग पूर्वजन्म के पापों के परिणामस्वरूप होते हैं। वैद्य लोग ऐसे रोगों की चिकित्सा करने से पहले रोगी से प्रायश्चित्त आदि कराते हैं।

महारोगी—संज्ञा पुं० [सं० **महारोगिन्**] जिसे कोई महारोग हो।

महारौद्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। २. एक प्रकार का छंद। २२ मात्राओं के छंदों की संज्ञा।

महारौद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महारौरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक नरक का नाम।

विशेष—कहते हैं, जो लोग देवताओं का धन चुराते या गुरु की पत्नी के साथ गमन करते हैं, वे इस नरक में भेजे जाते हैं।

२. एक प्रकार का साम।

महार्घ[1]—वि० [सं०] १. बहुमूल्य। बड़े मोल का। २. जिसका मूल्य ठीक से अधिक हो। महँगा।

महार्घ[2]—संज्ञा पुं० महासोमलता।

महार्घता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महार्घ होने का भाव। महँगी।

महार्घ्य—वि० [सं०] दे० 'महार्घ'।

महार्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत बड़ा समुद्र। महासागर। २. शिव। ३. पुराणानुसार एक दैत्य जिसे भगवान् ने कूर्म अवतार में अपने दाहिने पैर से उत्पन्न किया था।

महार्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

महार्थ[2]—वि० [सं०] १. बड़े या गंभीर अर्थवाला। महत्वपूर्ण। २. अत्यधिक संपत्तिवाला। प्रचुर धनयुक्त [को०]।

महार्द्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली अदरक। २. सोंठ।

महार्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] सौ करोड़ या दस अर्बुद की संख्या।

महार्ह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंदन।

महार्ह[2]—वि० दे० 'महार्घ'। उ०—उसे राज्य से भी महार्ह धन देता आकर कौन अहो।—साकेत, पृ० ३७१।

महाल—संज्ञा पुं० [अ० **महल का बहु व०**] १. वह स्थान जहाँ बहुत से बड़े मकान हों। मुहल्ला। टोला। पुरा। पाड़ा। उ०—ऐहैं जितेक महाल ते सब भानुजा मधि गंग के।—सुजान०, पृ० ८६। २. बंदोबस्त के काम के लिये किया हुआ जमीन का एक विभाग, जिसमें कई गाँव होते हैं। ३. भाग। पट्टी। हिस्सा। उ०—कैधौं रसाल के ताल फले कुच दोऊ महाल जगीर अनंग के।—(शब्द०)

महालक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी देवी की एक मूर्ति का नाम। २. पुराणानुसार नारायण की एक शक्ति का नाम। ३. एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे तीन रगण होते हैं। जैसे—(क) रात्रि द्यौसौ रहै कामिनी। पीव की जो मनोगामिनी। भाषती बोल बोलै अमी। जानिए सो महालक्ष्मी (ख) राधिका बल्लभै गाइ ले चित्रनो इंद्र से पाइ ले।

महालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुआर का कृष्णपक्ष जिसमें पितरों के लिये तर्पण और श्राद्ध आदि किया जाता है। पितृपक्ष। २. तीर्थ। ३. पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। ४. नारायण, जिनमें महदादि तत्व का लय होता है। ५. संपूर्ण विश्व का लय। प्रलय।

महालया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विन कृष्ण अमावस्या जिस दिन पितृविसर्जन होता है। पितृपक्ष की अंतिम तिथि।

महालिंग—संज्ञा पुं० [सं० **महालिङ्ग**] महादेव।

महालील(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महा + लीला**] महान् लीला करनेवाले, श्रीकृष्ण। उ०—महालील मायी महा, महापुरुष मतिमान।—घनानंद, पृ० २६८।

महालोक—संज्ञा पुं० [सं० **महा + लोक**] दे० 'महर्लोक'।

महालोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

महालोभ—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ।

महालोल—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ ।

महालोह—संज्ञा पुं० [सं०] चुंबक [को०] ।

महावंश—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ का नाम जो पाली में ५वीं शताब्दी में लिखा गया और जिसमें बौद्धधर्म और सिंहल का इतिहास है [को०] ।

महावक्षा[१]—संज्ञा पुं० [सं० महावक्षस्] महादेव ।

महावक्षा[२]—वि० विशाल वक्षवाला [को०] ।

महावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० माह (=माघ) वट (प्रत्य०)] पूस माघ की वर्षा । वह वर्षा जो जाड़े में हो । जाड़े की झड़ी । उ०—पैठी हो सरदी रग रग में और बर्फ पिघलता हो पत्थर । झड़ बाँध महावट पड़ती हो और तिस पर लहरें ले लेकर । सन्नाटा बाव का चलता हो तब देख बहारें जाड़े की ।—नजीर (शब्द०) ।

महावत—संज्ञा पुं० [सं० महामात्र] हाथी हाँकनेवाला । फीलवान । हाथीवान । उ०—(क) हूलै इते पर मैन महावत लाज के आँदू परे जउ पाइन ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) द्वार कुबलया गज ठढ़ियावा । अयुत नाग बल तास पावा । कहेसि महावत ते गोहराई । प्रविशत तै डारे चंपवाई ।—विश्राम (शब्द०) ।

महावतारी—संज्ञा पुं० [सं० महावतारिन्] २५ मात्राओं के छंदों की संज्ञा ।

महावथⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० महावत] दे० 'महावत' । उ०—मत्त महावथ हथ्थ महँ भल्लारी अति डील ।—पृ० रासो, पृ० ६१ ।

महावध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

महावन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महाबन' [को०] ।

महावर[१]—संज्ञा पुं० [सं० महावर्ण ?] लाख से बना हुआ एक प्रकार का लाल रंग जिससे सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने पाँवों को चित्रित कराती हैं । यावक । जावक । उ०—(क) पलन पीक अंजन अधर धरे महावर भाल । आज मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) आई हौ पायँ दिवाय महावर कुंजन ते करि कै सुख सेनी ।—मतिराम (शब्द०) । (ग) काहू दियो लाख रस सोई । जासो तुरत महावर होई ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

महावरⓅ[२]—वि० [सं० महाबल] दे० 'महाबल' । उ०—कुँअरप्पन प्रथिराज तपै तेजह सु महावर । सुकल बीजु दिन हुतें कला दिन चढ़त कलाकर ।—पृ० रा०, ५ । २ ।

महावरा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब ।

महावरा[२]—संज्ञा पुं० [अ० मुहावरा] दे० 'मुहावरा' ।

महावराह—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् का वराह अवतार ।

महावरी—संज्ञा पुं० [हिं० महावर] महावर की बनी हुई गोली या टिकिया जिससे स्त्रियों के पैर चित्रित किए जाते हैं । उ०—(क) पायँ महावर देन को नाइन बैठी आय । फिरि फिरि जानि महावरी एँड़ी मीड़ति जाय ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) छैल छबीली का छवा लहि महावरी संग । जानि परै नाइन लगै जबहिं निचोरन रंग । —रामसहाय (शब्द०) ।

महावरेदार—वि० [हिं० महावरा] दे० 'मुहावरेदार' । उ०—कमिटी ने सिफारिश की कि नंबर १ का तरजमा बहुत महावरेदार देशी भाषा में किया जाय ।—सरस्वती (शब्द०) ।

महावरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश । २. बरगद (को०) ।

महावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माधवी लता । २. बहुत बड़ी लता ।

महावस—संज्ञा पुं० [सं०] मगर वा शिशुमार नामक जलजंतु ।

महावसु—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्रावरुण का एक नाम । २. रजत । चाँदी (को०) ।

महावाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोऽहं शब्द । २. शंकराचार्य जी के मतानुयायियों के मत से 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म' और 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादि उपनिषद् के वाक्य । ३. दान आदि के समय पढ़ा जानेवाला संकल्प ।

महावात—संज्ञा पुं० [सं०] जोर की हवा । आँधी तूफान ।

महावादी—वि० [सं० महावादिन्] शास्त्रार्थ करने में शक्तिशाली [को०] ।

महावामदेव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम जो शांति कार्यों के समय पढ़ा जाता है ।

महावायु—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] तूफान ।

महावारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगास्नान का एक योग ।

विशेष—यदि चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को शतभिषा नक्षत्र हो तो उस दिन वारुणी योग होता है । यदि यह योग शनिवार को पड़े तो महावारुणी कहलाता है । पुराणों के अनुसार इस योग में गंगास्नान का बहुत अधिक फल होता है ।

महावार्ताकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनभंटा । जंगली बैंगन ।

महावार्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन के वार्तिक का नाम जो पाणिनि के सूत्रों पर है ।

महावाहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या का नाम [को०] ।

महाविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह । २. एक नाग का नाम ।

महाविड—संज्ञा पुं० [सं०] बनाया हुआ नमक । कृत्रिम नमक [को०] ।

महाविदेहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार मन की एक बहिर्वृत्ति ।

महाविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र में मानी हुई दस देवियाँ जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) काली, (२) तारा, (३) षोडशी, (४) भुवनेश्वरी, (५) भैरवी, (६) छिन्नमस्ता, (७) धूमावती, (८) बगलामुखी, (९) मातंगी और (१०) कमलात्मिका । इन्हें सिद्ध विद्या भी कहते हैं । कुछ तांत्रिकों का यह मत है कि इन्हीं दस महविद्याओं ने दस अवतार धारण किए थे । २. दुर्गा देवी । ३. गंगा ।

महाविद्यालय—संज्ञा पुं० [सं० महा+विद्यालय] बड़ा विद्यालय । उच्च शिक्षा की संस्था । कालेज ।

महाविद्येश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की एक मूर्ति का नाम ।

महाविभूत—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या का नाम ।

महाविभूति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

महाविरति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

महाविल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. अंतःकरण ।

महाविष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह साँप जिसके काटते ही तुरंत मृत्यु हो जाय । २. दो मुँहवाला साँप (को०) ।

महाविषुव—संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब सूर्य मीन से मेष राशि में जाता है और दिन रात दोनों समान होते हैं । इस दिन की गणना पुण्यतिथियों में होती है । मेष संक्रांति । चैत की संक्रांति ।

महावीचि—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम ।

महावीत—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पुष्कर द्वीप के एक पर्वत का नाम ।

महावीर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान जी । २. गौतम बुद्ध का एक नाम । ३. गरुड़ । ४. देवता । ५. सिंह । ६. मनु के पुत्र मरवानल का एक नाम । ७. वज्र । ८. सफेद घोड़ा । ९. बाज पक्षी । १०. कोयल (को०) । ११. विष्णु का एक नाम (को०) । १२. यज्ञ की अग्नि (को०) । १३. यज्ञ में प्रयुक्त पात्र (को०) । १४. जैनियों के चौबीसवें और अंतिम जिन या तीर्थंकर जो महापराक्रमी राजा सिद्धार्थ के वीर्य से उनकी रानी त्रिशला के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—कहते हैं, त्रिशला ने एक दिन सोलह शुभ स्वप्न देखे थे जिनके प्रभाव से वह गर्भवती हो गई थी । जब इनका जन्म हुआ तब इंद्र इन्हें ऐरावत पर बैठाकर मंदराचल पर ले गए थे और वहाँ इनका पूजन करके फिर इन्हें माता की गोद में पहुँचा गए थे । इनका नाम वर्धमान पड़ा था । ये बहुत ही शुद्ध और शांत प्रकृति के थे और भोगविलास की ओर इनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी । कहते हैं, तीस वर्ष की अवस्था में कोई बुद्ध या अर्हत् आकर इनमें ज्ञान का संचार कर गए थे । मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को ये अपना राज्य और सारा वैभव छोड़कर वन में चले गए और बारह वर्ष तक इन्होंने वहाँ घोर तपस्या की । इसके उपरांत ये इधर से उधर घूमकर उपदेश देने लगे । एक बार इन्होंने भोजन त्याग दिया, जिससे वैशाख कृष्ण दशमी को इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था । इन्होंने मौन धारण करके राजगृह में रहना आरंभ किया । वहाँ देवताओं ने इनके लिये एक रत्नजटित प्रासाद बनाया था । वहाँ इंद्र के भेजे हुए बहुत से देवता आदि इनके पास आए, जिन्हें इन्होंने अनेक उपदेश दिए और जैन धर्म का प्रचार आरंभ किया । कहते हैं कि इनके जीवनकाल में ही सारे मगध देश में जैन धर्म का प्रचार हो गया था । जैनियों के अनुसार ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया था, और तभी से 'वीर संवत्' चला है ।

महावीर[2]—वि० बहुत बड़ा वीर । बहुत बड़ा बहादुर ।

महावीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली ।

महावीर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा । २. एक बुद्ध का नाम । ३. जैनों के एक अर्हत् का नाम । ४. तामस शौच्य मन्वंतर के एक इंद्र का नाम । ५. वराहीकंद ।

महावीर्य[2]—वि० अत्यंत वीर्यवान् [को०] ।

महावीर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम । २. वनकपास । ३. महाशतावरी ।

महावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेहुँड़ । थूहर । २. बहुत बड़ा पेड़ । ३. करंज । ४. ताड़ । ५. महापीलु ।

महावृष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक तीर्थ जो सुरम्य पर्वत के पास है । २. बड़ा साँड़ (को०) ।

महावेग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. गरुड़ । ३. तीव्र गति । तेज चाल (को०) । ४. कपि । मर्कट (को०) ।

महावेग[2]—वि० अत्यंत वेगवान् [को०] ।

महावेगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम ।

महावेल—वि० [सं०] तरंगयुक्त । लहरीला [को०] ।

महाव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महारोग' ।

महाव्याहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार ऊपरवाले सात लोकों में से पहले तीन लोकों का समूह । भूः भुवः और स्वः ये तीन लोक । २. सत महाव्याहृतियों में प्रारंभ की तीन व्याहृतियाँ जिनका रूप प्रणव से युक्त कहा गया है ।—ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः ।

महाव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि ।

महाव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुष्टव्रण' ।

महाव्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद की एक ऋचा का नाम । २. वह व्रत जो बारह वर्षों तक चलता रहे । ३. आश्विन की दुर्गापूजा । ४. माघ मास में अरुणोदय के समय स्नान करना (को०) । ५. बहुत कठिन व्रत ।

महाव्रत[2]—वि० महाव्रत करने या लेनेवाला [को०] ।

महाव्रती—संज्ञा पुं० [सं० महाव्रतिन्] १. वह जिसने कोई महाव्रत धारण किया हो । २. शिव ।

महाशंख—संज्ञा पुं० [सं० महाशङ्ख] १. ललाट । २. कनपटी की हड्डी । ३. मनुष्य की ठठरी । ४. नौ निधियों में से एक । ५. बड़ा शंख । ६. एक प्रकार का सर्प । ७. एक बहुत बड़ी संख्या का नाम । ८. एक प्रकार का वृक्ष ।

महाशक्ति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. शिव । ३. पुराणानुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

महाशक्ति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । उ०—उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण ।—अपरा, पृ० ४६ ।

महाशठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीला धतूरा । राजधतूरा । २. अत्यंत शठ, मूर्ख वा छली व्यक्ति ।

महाशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाशतावरी । बड़ी शतावरी ।

महाशतावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी शतावरी । विशेष दे० 'सतावर' ।

महाशन—वि० [सं०] अतिभोजी । पेटू । बहुत खानेवाला [को०] ।

महाशय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उच्च आशयवाला व्यक्ति । महानुभाव । महात्मा । सज्जन । २. समुद्र ।

महाशय[२]—वि० उच्चात्मा । २. उदारमना ।

महाशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजाओं की शय्या या सिंहासन ।

महाशर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रामशर' ।

महाशल्क—संज्ञा पुं० [सं०] झिंगा मछली ।

महाशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला । गँगेरन ।

महाशाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसका निवास या गृह विशाल हो । महान् गृहस्थ [को०] ।

महाशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लंबा और खुशबूदार चावल [को०] ।

महाशासन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा की आज्ञा । २. राजा का वह मंत्री जो उसकी आज्ञाओं या दानपत्रों आदि का प्रचार करता हो । ३. उपनिषदों द्वारा व्याख्यात ब्रह्मज्ञान या परमार्थ बोध (को०) ।

महाशासन[२]—वि० महान् या श्रेष्ठ शासनवाला [को०] ।

महाशिरा—संज्ञा पुं० [सं० **महाशिरस्**] एक प्रकार का साँप [को०] ।

महाशिव—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

महाशिवरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवचतुर्दशी । शिवरात्रि [को०] ।

महाशीतवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों को पाँच महादेवियों में से एक देवी का नाम ।

महाशीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतमूली ।

महाशीष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

महाशील—संज्ञा पुं० [सं०] जनमेजय के एक पुत्र का नाम ।

महाशुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाशुण्डी**] हाथीसूँड़ नामक क्षुप ।

महाशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप । मोती की सीप ।

महाशुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दसवें स्वर्ग का नाम ।

महाशुक्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती ।

महाशुभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी ।

महाशूद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँचे पदवाला शूद्र । उच्च पदस्थ शूद्र । २. ग्वाला । गोप [को०] ।

महाशूद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोप की स्त्री । ग्वालिन [को०] ।

महाशून्य—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

महाशोण—संज्ञा पुं० [सं०] सोन नद ।

महाश्मशान—संज्ञा पुं० [सं०] काशी नगरी का एक नाम ।

महाश्मा—संज्ञा पुं० [सं० **महाश्मन्**] कीमती पत्थर [को०] ।

महाश्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध का एक नाम ।

महाश्रावणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी ।

महाश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम ।

महाश्रेष्ठी—संज्ञा पुं० [सं० महाश्रेष्ठिन्] बहुत बड़ा सेठ । उ०—विशाखा का विवाह पुण्यवर्धन से हुआ था जो साकेत के महाश्रेष्ठी मिगार का पुत्र था ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २४४ ।

महाश्लक्ष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिकता । बालुका । रेत [को०] ।

महाश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार श्वास रोग । २. वह अंतिम साँस जो मरने के समय चलती है । उ० महाश्वास जिस पुरुष को होय वह तत्काल मरण को प्राप्त होय ।—माधव०, पृ० ९५ ।

महाश्वेता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती । २. दुर्गा । ३. सफेद अपराजिता । ४. चीनी । शर्करा ।

महाषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. सरस्वती [को०] ।

महाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी ।

महासंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० महासङ्क्रान्ति] दे० 'संक्रांति' ।

महासंख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महाशङ्ख**] दे० 'महाशंख' । उ०—संखरूप शिवदेव महासंख बानारसी । दोऊ मिले अबेब साहिब सेवक एक से ।—अर्ध०, पृ० २२ ।

महासंधिविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० महासन्धिविग्रह] परराष्ट्रमंत्री का कार्यालय जहाँ से संधि और संघर्ष की समस्या हल की जाती है ।

महासंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अंत्येष्टि । दाह संस्कार । उ०—आज नरपति का महासंस्कार । उमड़ने दो लोक पारावार ।—साकेत, पृ० १९५ ।

महासंस्कारी—संज्ञा पुं० [सं० महासंस्कारिन्] एक प्रकार का छंद। १७ मात्राओं के छंदों की संज्ञा ।

महासती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत पतिव्रता एवं सच्चरित्र महिला । परम साध्वी स्त्री [को०] ।

महासत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार वह विश्वव्यापिनी सत्ता जिसमें विश्व के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्भुक्त है । सबसे बड़ी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है ।

महासत्ति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **महाशक्ति**] एक जंतु जो शृगाल से भिन्न होता है । उ०—डाँवी महासत्ति फेकरइ ।—बी० रासो, पृ० ६१ ।

महासत्व—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज ।

महासत्त्व[१]—संज्ञा पुं० [सं० महासत्त्व] १. कुबेर । २. शाक्य मुनि । ३. एक बोधिसत्व का नाम । ४. विशालकाय पशु । बड़े शरीर का पशु (को०) ।

महासत्त्व[२]—वि० १. योग्य । महान् । २. अत्यधिक शक्तिशाली । ३. न्यायपूर्ण । न्यायोचित [को०] ।

महासन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहासन ।

महासभा—संज्ञा पुं० [सं० महा+सभा] १. बहुत बड़ी सभा । विशाल समारोह । २. बहुत बड़ा संघटन । विशाल संघ । ३.

लोक निर्वाचित प्रतिनिधियों की सभा। उ०—इंग्लैंड आदि देशों की पार्लियामेंट आदि महासभाओं में भी कई दल रहते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१।

महासमंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० महासमङ्गा] कँगही या कंघी नामक पौधा।

महासमर—संज्ञा पुं० [सं०] महान् युद्ध। विश्वयुद्ध।

महासमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा समुद्र। महासागर।

महासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जगत् की रचना जो महाप्रलय के उपरांत फिर से होती है।

महासर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष।

महासह—संज्ञा पुं० [सं०] कुब्जक वृक्ष। कुरंटक। वाणपुष्प [को०]।

महासहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माषपर्णी। २. अम्लान वा कुब्जक वृक्ष [को०]।

महासांतपन—संज्ञा पुं० [सं० महासान्तपन] एक व्रत जिनमें पाँच दिन तक क्रम से पंचगव्य, छठे दिन कुशजल पीकर सातवें दिन उपवास किया जाता है।

महासांधिविग्रहिक—संज्ञा पुं० [सं० महासान्धिविग्रहिक] प्राचीन काल का वह राजकीय अधिकारी या मंत्री जो अन्य देश से संधि और झगड़े की समस्या सुलझाता था। उ०—महासांधिविग्रहिक! साधु! यह वंशपरंपरागत तुम्हारी ही विद्या है।—स्कंद०, पृ० १३।

महासागर—संज्ञा पुं० [सं०] विशाल समुद्र। जैसे, भारतीय महासागर, प्रशांत महासागर, आदि।

महासार—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर वृक्ष का एक भेद [को०]।

महासारथि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुण' [को०]।

महासाहस—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक उग्रता, बलात्कारिता, धृष्टता और निर्लज्जतापूर्ण काम [को०]।

महासाहसिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर। डाकू। २. वह व्यक्ति जो अत्यंत साहसी हो।

महासिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गादेवी का वाहन सिंह। २. शरभ (को०)।

महासि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी तलवार [को०]।

महासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] महान् सिद्धि। एक तांत्रिक शक्ति। इनकी संख्या ८ कही गई है।

महासिधि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० महासिद्धि] दे० 'महासिद्धि'। उ०—बगर बोहारति अष्ट महासिधि। द्वारे सथिया पूरति नौ निधि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१।

महासिल[१]—संज्ञा पुं० [अ०] १. आय। आमदनी। २. राजस्व। मालगुजारी। भूमिकर। लगान।

महासिल(पु)[२]—वि० लगान या कर आदि वसूल करनेवाला। उ०—काल महासिल साहु का सिर पर पहुँचा आय।—पलटू०, भा० १, पृ० २४।

महासीर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जो पहाड़ी नदियों में पाई जाती है और जिसका मांस बहुत अच्छा माना जाता है।

महासुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रृंगार। सजावट। २. बुद्धदेव का एक नाम। ३. मैथुन। संभोग (को०) ४. वज्रयानी बौद्धों के अनुसार निर्वाण के तीन अवयवों में से एक। उ०—निर्वाण के तीन अवयव ठहराए गए, शून्य, विज्ञान और महासुख।—इतिहास, पृ० ११।

विशेष—प्रज्ञा और उपाय के योग से सुलभ सहवास का यह सुख निर्वाण के सुख के समान माना जाता है। इसमें साधक इस प्रकार विलीन हो जाता है जिस प्रकार नमक पानी में।

महासुन्न(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० महाशून्य] दे० 'महाशून्य'। उ०—पारब्रह्म महासुन्न मँझारा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ७१।

महासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

महासुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महासूक्ष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेत। बालू [को०]।

माहासूचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध के समय की एक प्रकार की व्यूहरचना।

महासूत—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो युद्धक्षेत्र में बजाया जाता था।

महासेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। स्वामिकार्तिक। २. शिव। ३. बहुत बड़ा या सबसे प्रधान सेनापति।

महासौषिर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें दाँतों के मसूढ़े सड़ जाते हैं और मुँह में से बहुत दुर्गंधि आती है।

विशेष—कहते हैं, जब यह रोग होता है, तब आदमी सात दिनों के अंदर मर जाता है।

महास्कंध—संज्ञा पुं० [सं० महास्कन्ध] ऊँट।

महास्कंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० महास्कन्धा] जामुन का वृक्ष।

महास्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

महास्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रधान नाड़ी जिसमें से रक्त बहता है। इसे कंडरा या अस्थिबंधन नाड़ी कहते हैं।

महास्पद—वि० [सं०] १. ऊँचे पद पर आसीन। उच्चपदस्थ। २. शक्तिशाली। बलवान [को०]।

महास्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महास्वन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ढोल जिससे बहुत जोरों की आवाज निकलती हो [को०]।

महाहंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का हंस। २. विष्णु।

महाहनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. तक्षक की जाति का एक प्रकार का साँप। ३. एक दानव का नाम।

महाहविस्—संज्ञा पुं० [सं० महाहविष्] घृत। घी [को०]।

महाहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महाहास—संज्ञा पुं० [सं०] जोर से ठठाकर हँसना। अट्टहास।

महाहि—संज्ञा संज्ञा [सं०] वासुकि नाग।

महाहिक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का हिचकी का रोग जिसमें हिचकी आने के समय सारा शरीर काँप उठता है और

मर्मस्थान में वेदना होती है। उ०—जो हिचकी मर्मस्थान में पीड़ा करती हुई और सर्वगात्र को कँपाती हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय उसको महाहिक्का कहते हैं।—माधव०, पृ० ९३।

महाहिमवान्—संज्ञा पुं० [सं० महाहिमवत्] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो हैमवत और हरि नाम के दो खंडों में विभक्त है।

महाह्न—संज्ञा पुं० [सं०] अपराह्न। दिन का तीसरा पहर [को०]।

महाहुⓤ†—वि० [सं० **महार्घ्य**] महत्वपूर्ण। महान्। मूल्यवान्। उ०—बंधै रतन महाहु।—प्राण०, पृ० १७।

महाह्लद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

महाह्रस्व—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **महाह्रस्वा**] केंवाच। कौंछ।

महिँⓤ[1]—अव्य० [हिं०] दे० 'महँ'।

महिं[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'मोहिं'। उ०—ते काज राज सम्हैं सुमति लिषि कग्गद महिं अप्पयौ।—पृ० रा०, २६।११।

महिंजक—संज्ञा पुं० [सं० महिञ्जक] चूहा।

महिंधक—संज्ञा स्त्री० [सं० **महिन्धक**] १. चूहा। २. नेवला। ३. भार उठाने का छींका। सिकहर जिसे बहँगी के दोनों छोरों मे बाँधकर कहार बोझ उठाते हैं।

महि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। धरती। २. महिमा। ३. महत्ता। ४. महत्तत्व।

महिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। धरती। २. हिम। बर्फ।

यौ०—**महिकांशु**=चंद्रमा। शीतांशु।

महिखⓤ—संज्ञा पुं० [सं० **महिष**] दे० 'महिष'। उ०—महाराज दल मेल, पौल जोधाँण, पधारे। महिख पंच मैमत्त सगत पोखी खग धारे।—रा० रू०, पृ० ३५१।

महिखरी—संज्ञा स्त्री० [?] अट्ठाईस मात्राओं के एक छंद का नाम जिसमें चौदह मात्राओं पर यति होती है।

महित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का धनुष। पिनाक। २. त्रिशूल। ३. पूजित [को०]।

महित[2]—वि० पूजित। संमानित। आदृत [को०]।

महितारीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'महतारी'। उ०—कवनि महितारी कवन पिता।—प्राण०, पृ० १२४।

महित्व—संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति। प्रभुत्व। गौरव [को०]।

महिदास—संज्ञा पुं० [सं० **महि+दास**] दे० 'महीदास'।

महिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण। उ०—मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं।—मानस, १।३३१।

महिधर—संज्ञा पुं० [सं० **महि+धर**] १. दे० 'महिधर'। २. शेषनाग। उ०—जो सहससीसु अहीसु महिधर लखन सचराचर धनी।—मानस, २।१२६।

महिनⓤ[1]—वि० [हिं०] दे० 'महीन'। उ०—बैठि चाँदनी जल लहिर जेठ महिन पट धारी।—ब्रज ग्रं०, पृ० १०४।

महिन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। ईशत्व [को०]।

महिना†—संज्ञा पुं० [फ़ा० **माह**] मासिक भृति। दे० 'महीना-२'। उ०—सो बा म्लेच्छ ने गोपालदास जनार्दनदास को और वा दरोगा म्लेच्छ को इन तीनोन के महिना काटि लिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४२।

महिप—संज्ञा पुं० [सं० **महीप**] राजा। नरेश। उ०—अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।—मानस, २।२५३।

महिपालⓤ—संज्ञा पुं० [सं० **महि+पाल**] दे० 'महीपाल'। उ०—तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिय महा महिपाल।—मानस, १।२९२।

महिफर‡—संज्ञा पुं० [सं० **मधुफल**] मधु। शहद।

महिबालⓤ—संज्ञा पुं० [सं० **महि+बाल** (=पुत्र)] भौम। मंगल। उ०—कुज अंगारक भौम पुनि लोहितांग महिबाल।—अनेकार्थ०, पृ० ७२।

महिमंडⓤ—वि० [हिं० **महि+मंड**] महिमायुक्त। महिमान्वित। उ०—पार पारे कोऊ न सक्यौ है विचक्यौ है औऊ, खोजें सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।—घनानंद, पृ० १४२।

महिमⓤ—देश० पुं० [सं० **महिमा**] महत्व। गौरव। उ०—सन्नाह महिम बरनी न जाइ।—पृ० रा०, ७।६१।

महिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० **महिमन्**] महत्व। महात्म्य। बड़ाई। गौरव। उ०—सबही हंसा एक सरीखा अब गुरु महिमा को कौन विशेषा।—कबीर सा०, पृ० ९५४। २. प्रभाव। प्रताप। उ०—मुनि आचरज करइ जनि कोई। सत संगति महिमा नहिं गोई।—तुलसी (शब्द०)। ३. अणिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धियों या ऐश्वर्यों में से पाँचवीं जिससे सिद्ध योगी अपने आपको बहुत बड़ा बना लेता है।

यौ०—**महिमाधर**=महिमावान्। उ०—जागी विश्वाश्रय महिमाधर फिर देखा।—तुलसी०, पृ० १३। **महिमान्वित**=दे० 'महिमावान्'। **महिमामंडित**=गौरवयुक्त। **महिमामय**=दे० 'महिमावान्। **महिमामयी**=महिमायुक्त।

महिमानⓤ—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मेहमान+ई**] दे० 'मेहमान'। उ०—रष्षि पंच दिन राज चंद आदर बहु किन्नौ। भोजन भाव भगत्ति प्रीति महिमान सु किन्नौ।—पृ० रा०, ५८।१५३।

महिमानीⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महमान+ई**] दे० 'मेहमानी'। उ०—महिमानी पठई नृपति सबै सथ्थ के हेत।—ह० रासो, पृ० ५३।

महिमावान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० **महिमावत्**] मार्कंडेय पुराणानुसार एक प्रकार के पितृगण।

महिमावान्[2]—वि० महिमायुक्त। प्रतापी। गौरवपूर्ण। श्रेष्ठ।

महिम्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक प्रधान स्तोत्र जिसे पुष्पदंताचार्य ने रचा था। २. शिव, विष्णु आदि किसी देव की महिमापरक स्तोत्र।

महियⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मही**] दे० 'मही'। उ०—हय हथ्थि देत संकै न मन खल खंडन गढ़ गिरन वर। चिहुँ ओर जोर दसहूँ दिसा, कीरति विस्तारि महिय पर।—पृ० रा०, ५।१२।

यौ०—**महियपाल**=पृथ्वी का पालक, राजा। उ०—महियपाल भुवपाल बुंदेल भूपति सह बानिय।—प० रासो, पृ० ६६।

महियलⓅ— संज्ञा स्त्री० [सं० महीतल] दे० 'मही'। उ०—कहि महियल बल कितौ, एक दट्ठ हरि धारिय। कहि बासिग बल कित्तौ मु फुनि करि नेत्रां सारिय।—पृ० रा०, १। ७८०।

महियाँⓅ—अव्य० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ (= महँ)] में। उ०—(क) जेती लाज गोपालहि मेरी। तेती नाहिं बधू हौ जाकी अंबर हरत सबन तन हेरी। पति अति रोष करै मनो महियाँ भीषम दई बेद बिधि टेरी।—सूर (शब्द०)। (ख) सबै मिलि पूजौ हरि की बाहियाँ। जो नहि लेत उठाइ गोवर्धन को बाँचत ब्रज महियाँ। कोमल कर गिरि धरचो घोष पर शरद कमल की छहियाँ। सूरदास प्रभु तुमरे दरश आनंद होत ब्रज महियाँ।—सूर (शब्द०)।

महियां[†]—संज्ञा पुं० [हिं० महना] ईख के रस का फेन जो उबाल खाने पर निकलता है।

महियाउर[†]—संज्ञा पुं० [हिं० मही (= मट्ठा) + चाउर (= चावल)] मठे में पका हुआ चावल। उ०—माठा महिं महियाउर नावा। भीज बरा नैनू जनु खावा।—जायसी (शब्द०)।

महिर—संज्ञा पुं० [सं० मिहिर] १. सूर्य। २. मदार का पौधा (को०)।

महिरावण— संज्ञा पुं० [सं० महि + रावण] एक राक्षस का नाम।

विशेष—कहते हैं, यह रावण का लड़का था और पाताल में रहता था। यह रामचंद्र और लक्ष्मण को लंका के शिविर से उठाकर पाताल ले गया था। रामचंद्र और लक्ष्मण को ढूँढ़ते हुए हनुमान जो पाताल गए थे और महिरावण को मारकर राम लक्ष्मण को ले आए थे। यह कथा वाल्मीकि रामायण और पुराणों में नहीं पाई जाती।

महिलⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० महिला] दे० 'महिला'। उ०—(क) जमुन उतरि नावह निकट, मिलिय महिल इन रूप।—पृ० रा०, ६१। १४४। (ख) मिलि महिल सगुन सरूप। द्रग अप्प निरखत भूप।—पृ० रा०, ६१। १४६। (ग) को महिल को वर गेह।—पृ० रा०, ६१। १५४।

महिला[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। २. फूलप्रियंगु की लता। ३. रेणुका नामक गंधद्रव्य। ४. कामुक या मदोन्मत्त स्त्री (को०)।

महिलाⓅ[२]—संज्ञा पुं० [अ० महल] महल। उच्च स्थान। परम पद। उ०—तौ योगी महिला देखे सहिला नाँहीं लहिला वो महिला।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३५।

महिष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० महिषी] १. भैंसा। २. वह राजा जिसका अभिषेक शास्त्रानुसार किया गया हो। ३. एक राक्षस का नाम जिसे पुराणानुसार दुर्गा देवी ने मारा था। ४. एक वर्णसंकर जाति का नाम जो स्मृतियों में क्षत्रिय पिता और तीवरी माता से उत्पन्न कही गई है। ५. एक साम का नाम। ६. पुराणानुसार कुश द्वीप के एक पर्वत का नाम। ७. कुश द्वीप के एक वर्ष का नाम। ८. भागवत के अनुसार अनुह्लाद के पुत्र का नाम। ९. निरुक्त के अनुसार देवगण का एक भेद (को०)। १०. मत्स्यपुराणानुसार एक प्रकार की अग्नि (को०)।

महिषकंद—संज्ञा पुं० [सं० महिषकन्द] शुभ्रालु। भैंसाकंद।

महिषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णसंकर जाति का नाम।

महिषघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महिषध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमराज। २. जैन शास्त्रानुसार एक अर्हत का नाम।

महिषपाल, महिषपालक—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा पालनेवाला (को०)।

महिषमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जो काले रंग की होती है। इसके सेहरे बड़े बड़े होते हैं। यह बल वीर्यकारी और दीपन गुणयुक्त मानी जाती है।

महिषमर्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

महिषमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार जड़हन धान।

महिषवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिरेटा।

महिषवहन, महिषवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।

महिषाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा गुग्गुल।

महिषाक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल (को०)।

महिषार्दन—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद का एक नाम।

महिषासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जो रंभ नामक दैत्य का पुत्र था।

विशेष—कहते हैं, इसकी आकृति भैंसे की थी और इसे दुर्गाजी ने मारा था। मार्कंडेय पुराण में इसकी सविस्तर कथा लिखी है।

महिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भैंस। २. रानी, विशेषतः पटरानी। ३. सैरंध्री। ४. व्यभिचारिणी स्त्री। ५. पत्नी के व्यभिचार से प्राप्त संपत्ति। महिषिक (को०)। ६. एक प्रकार की चिड़िया। ७. एक औषधि का नाम।

यौ०—महिषीकंद। **महिषीपाल** = भैंस पालनेवाला। **महिषीप्रिया**। महिषीस्तंभ।

महिषीकंद—संज्ञा पुं० [सं० महिषीकन्द] एक प्रकार का कंद जिसे भैंसा कंद भी कहते हैं। शुभ्रालु।

महिषीप्रिया—संज्ञा पुं० [सं०] शूली नामक घास।

महिषेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. महिषासुर। उ०—महामोह महिषेश विशाला। राम कथा कालिका कराला।—तुलसी (शब्द०)। २. यमराज। उ०—कह महिषेश वहाँ ले जाओ। चित्रगुप्तिै वाहि देखाओ।—विश्राम (शब्द०)।

महिषोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

महिष्ठ—वि० [सं०] बहुत बड़ा।

महिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी की पुत्री, सीता (को०)।

महिष्षⓅ—संज्ञा पुं० [सं० महिष] दे० 'महिष'।

महिसुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महीसुर'। उ०—सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इनपर न सुराई।—मानस, १। १७३।

मही[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. मिट्टी। ३. अवकाश-देश। स्थान। ४. नदी। ५. क्षेत्र का आधार। ६. सेना।

७. झुंड। समूह। ८. एक की संख्या। ९. गाय। १०. हुरहुर। हुलहुल। ११. एक छंद का नाम जिसमें एक लघु और एक गुरु मात्रा होती है। जैसे, मही, लगी, नदी इत्यादि। १२. भू संपत्ति। जमीन जायदाद (को०)। १३. बहुत बड़ी सेना। विशाल सेना (को०)।

मही[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मथित**, हिं० **महना**] मट्ठा। छाछ। उ०—(क) तुलसी मुदित दूत भयो मानहुँ अमिय लाहु माँगत मही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छाँड़ि कनक मणि रत्न अमोलक काँच की किरच गही। ऐसी तू है चतुर विवेकी पय तजि पियत मही।—सूर (शब्द०)। (ग) दूध दही माखन मही बचै नहीं ब्रज माँझ। ऐसी चोरी करतु है फिरतु भोर अरु साँझ।—लल्लू (शब्द०)।

महीअल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महीतल**] भूमि। पृथ्वी। उ०—कालु अहेरी जीग्र न छोड़ जाल थाल महीअल सारे।—प्राण०, पृ० १३८।

महीक्षित्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीखड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिकलीगरों का एक औजार जिसकी धार कुंद होती है और जिसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है। इससे बर्तन आदि खुरचकर साफ किए जाते हैं और उनपर जिला की जाती है।

महीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अदरक। आदी। २. मंगल ग्रह। ३. नरकासुर (को०)।

महीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महीसुता। सीता (को०)।

महीतल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी। संसार।

महीदास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता एक ऋषि का नाम। यह इतरा नामक दासी के पुत्र थे।

महीदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का किला (को०)।

महीदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

महीधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। २. बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम। ३. शेषनाग। उ०—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत। संतति हित रवि कोविद गावत। संतति उपजत ही निशि वासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर।—केशव (शब्द०)। ४. एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसमें चौदह बार क्रम से लघु और गुरु आते हैं। यथा, सदा कुसंग धारिये, नहीं कुसंग सारिये, लगाय चित्त सीख मानिये खरी। ५. विष्णु (को०)। ६. वेदभाष्य के एक रचयिता जिनका भाष्य महीधर भाष्य नाम का है।

महीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महीधर। पर्वत। उ०—खस खस पड़ते समुन्नत महीध्र शृंग, अचला के अंक में लिपटते, करके प्रवाह भंग।—बापू, पृ० १५। २. विष्णु का नाम (को०)। ३. सात की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

महीध्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महीध्र। २. एक राजा का नाम।

महीन[1]—वि० [सं० **महा + झीन** (सं० **क्षीण**)] १. जिसकी मोटाई या घेरा बहुत ही कम हो। 'मोटा' का उलटा। पतला। सूक्ष्म। जैसे, महीन तागा, महीन तार, महीन सुई, आदि। २. जिसके दोनों ओर के तलों के बीच बहुत कम अंतर हो। जो बहुत कम मोटा हो। बारीक। झीना। पतला। जैसे, महीन कपड़ा, महीन कागज, महीन छाल। उ०—दास मनोहर आनन बाल को दीपित जाकी दिपैं सब दीपैं। श्रौन सुहाये विराजि रहे मुकुताहल संयुत ताहि समीपैं। सारी महीन सी लीन बिलोकि बिचारत है कवि के अवनीपैं। सोदर जानिस सीही मिली सुत संग लिए मनो सिंधु की सीपैं।—मनोहरदास (शब्द०)।

मुहा०—**महीन काम** = वह काम जिसके करने में बहुत सावधानी और आँख गड़ाने की आवश्यकता पड़ती हो। जैसे, सीना, चित्रकारी, सूची कर्म आदि।

३. जो बहुत कम या ऊँचा या तेज न हो। कोमल। धीमा। मंद।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः शब्द या स्वर के लिये ही आता है।

महीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीना—संज्ञा पुं० [सं० **मास या मासः** > मि० फ़ा० **माह**] १. काल का एक परिमाण जो वर्ष के बारहवें अंश के बराबर होता है।

विशेष—यह साधारणतया तीस दिन का होता है। पर कोई कोई महीने इससे अधिक और न्यून भी होते हैं। आजकल भारतवर्ष में कई प्रकार के महीने प्रचलित हैं—देशी, अरबी और अंग्रेजी। देशी या हिंदी महीने चार प्रकार के होते हैं—सौर मास, चांद्र मास, नक्षत्र मास और सावन मास (विवरण के लिये देखो 'मास')। अरबी महीना एक प्रकार का चांद्र मास है जो शुक्ल द्वितीया से प्रारंभ होता है। अँगरेजी महीना सौर मास का एक भेद है जिसमें संक्रांति से महीना नहीं बदलता किंतु प्रत्येक महीने के दिन नियत होते हैं। जो काल प्रचलित या चांद्र वर्ष में, उसे सौर वर्ष के बराबर करने के लिये जोड़ा जाता है, उसे लौंद कहते हैं; और यदि यह काल एक महीने का होता है, जो उसे लौंद का महीना या मलमास कहते हैं (दे० 'मलमास')। देशी वर्षों में प्रति तीसरे वर्ष मलमास होता है और उस समय वर्ष में बारह महीने न होकर तेरह महीने होते हैं। अँगरेजी वर्षों में प्रति चौथे वर्ष लौंद का एक दिन अधिक बढ़ाया जाता है; पर अरबी महीनों के वर्षों में सौर वर्ष से मेल मिलाने के लिये लौंद का काल नहीं जोड़ा जाता; इसलिये प्रति तीसरे वर्ष सौर वर्ष से लगभग एक महीने का अंतर पड़ जाता है। देशी महीनों के नाम इस प्रकार हैं—

संस्कृत	हिंदी
चैत्र	चैत
वैशाख	बैसाख
ज्येष्ठ	जेठ
आषाढ़	असाढ़
श्रावण	सावन
भाद्र या भाद्रपद	भादों

आश्विन	कुआर, आसोज या आसों
कार्तिक	कातिक
मार्गशीर्ष	अगहन या मँगसर
पौष	पूस
माघ	माघ या माह
फाल्गुन	फागुन

अरबी महीनों के नाम इस प्रकार हैं—मुहर्रम, सफर, रबी उल् अव्वल, जमादि उल् अव्वल, रबी उस् सानी, रज्जब, शाबान, रमजान, शौवाल, जीकाद, जिलहिज्ज। अँगरेजी महीनों के नाम इस प्रकार हैं—जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितंबर, अक्टूबर, नवंबर, दिसंबर।

२. वह वेतन जो महीना भर काम करने के बदले में काम करनेवाले को मिले। मासिक वेतन। दरमाहा। ३. स्त्रियों का रजोधर्म या मासिक धर्म।

मुहा०—**महीने से होना** = स्त्रियों का रजस्वला होना। रजोधर्म से होना।

महीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] नरेश। राजा [को०]।

महीप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—महा महीप भए पसु आई।—मानस, १।२८३।

महीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।—मानस, १।२९१।

महीपाल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंगलग्रह।

महीपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०]।

महीप्रकंप—संज्ञा पुं० [सं० **महीप्रकम्प**] भूडोल। भूकंप [को०]।

महीप्ररोह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष।

महीप्राचीर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

महीप्रावर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

महीभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० **महीभर्तृ**] [स्त्री० **महभर्त्री**] महीप। राजा। महीपति।

महीभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. पर्वत।

महीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० **महीमण्डल**] पृथ्वी। भूमंडल।

महीम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना।

विशेष—यह पीलापन लिए हरे रंग का होता है। इसे पूने का पौढ़ा भी कहते हैं।

महीमय—वि० [सं०] मृत्तिकानिर्मित। मृत्तिकामय [को०]।

महीमानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **महीयान्**] विशाल। दे० 'महीयान्'। उ०—प्रगटि पुरातन खंडना, महीमान सुख मंडना।—दादू०, पृ० ५४५।

महीमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंतु।

महीयस्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **महीयसी**] बहुत बड़ा। महान्। २. बलवान् (को०)।

महीयान—वि० [सं० **महीयस्** (= **महीयान्**)] १. अपेक्षाकृत बड़ा। बड़ा। विशाल। २. शक्तिशाली। बलवान। उ०—लोहित लोचन रावण मद मोचन महीयान।—अपरा, पृ० ३०।

महीर[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मही**] १. वह तलछट जो मक्खन तपाने से नीचे बैठ जाती है। उ०—ब्रह्म में जगत यह ऐसी विधि देखियत जैसी विधि देखियत फूलरी महीर मैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६५०। २. मट्ठे में पकाया हुआ चावल। मट्ठे की बनी खीर।

महीरण—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार धर्म के एक पुत्र का नाम। यह विश्वेदेवा के अंतर्भूत हैं।

महीरावण—संज्ञा पुं० [सं०] अद्भुत रामायण के अनुसार रावण के एक पुत्र का नाम। विशेष दे० 'महिरावण'।

महीरिषयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **महर्षि**] महर्षि। महान् ऋषि। उ०—तिन पुच्छिय बत्त महीरिषयं।—पृ० रा०,५९।५८।

महीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पेड़। उ०—विशीर्ण डालियाँ महीरुहों की टूटने लगीं। शमा की झालरें व टक्करों से फूटने लगीं।—सामधेनी, पृ० ७६।

महीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] केचुआ।

महीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] औरत। नारी। महिला [को०]।

महीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

महीसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **महीश**] दे० 'महीश'। उ०—जौ जगदीस तो अति भलो, जौ महीस तौ भाग। तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन अनुराग।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९३।

महीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। २. नरकासुर (को०)।

महीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०]।

महीसुर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण। उ०—तदपि महीसुर साप बस भार सकल अघ रूप।—मानस, १।१७६।

महीसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगलग्रह। २. दे० 'महीसुत'।

महुँⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'महँ'। उ०—भट महुँ प्रथम लीक जग जासू।—मानस, १।१८०।

महुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मधु, प्रा० **महु**] १. दे० 'मधु'। २. मधु का छत्ता (लाक्ष०)। उ०—महु ताज चलत मुहाल अन्य तरु साष लगन कहुँ।—पृ० रा०, ७।२३।

महुअर[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मधूक, प्रा० **महूअ**, हिं० **महुआ**] १. वह भेड़ जिसका ऊन कालापन लिए लाल रंग का होता है। २. वह रोटी जो महुआ मिलाकर पकाई गई हो।

महुअर[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मधुकर**, प्र० **महुअर**] १. एक प्रकार का बाजा जिसे तुमड़ी या तुंबी भी कहते है।

विशेष—यह कड़वी पतली तुंबी का होता है जिसमें दोनों ओर दो नलियाँ लगी होती हैं। एक ओर की नली को मुँह में लगाकर और दूसरी ओर की नली की छेद पर उँगलियाँ रखकर इसे

बजाते हैं। प्रायः मदारी लोग साँपों को मस्त करने के लिये इसे बजाते हैं।

२. एक प्रकार का इंद्रजाल का खेल जो महुअर बजाकर किया जाता है।

विशेष—इसमें दो प्रतिद्वंद्वी खेलाड़ी होते हैं जिनमें से प्रत्येक महुअर बजाकर दूसरे को मूर्छित अथवा चलने फिरने में असमर्थ करने का प्रयत्न करता है।

महुअर⑤‡²—संज्ञा पुं० [सं० मधुकर] [स्त्री० महुअरि, महुअरी] भ्रमर। दे० 'मधुकर'। उ०—मअरंदपाण विमुद्ध महुअर सद्द मानस मोहिया।—कीर्ति०, पृ० २६।

महुअरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० महुअर] दे० 'महुअर¹'। उ०—और खेल खेलत छबि पावत। महुअरि बेनु बजावत गावत।—नंद० ग्रं०, पृ० २५९।

महुअरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० महुआ] वह रोटी जो आटे में महुआ मिलाकर बनाई जाती है।

महुआ¹—संज्ञा पुं० [सं० मधूक, प्रा० महुअ] एक प्रकार का वृक्ष जो भारतवर्ष के सभी भागों में होता है और पहाड़ों पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

विशेष—इसको पत्तियाँ पाँच सात अंगुल चौड़ी, दस बारह अंगुल लंबी और दोनों ओर नुकीली होती हैं। पत्तियों का ऊपरी भाग हलके रंग का और पीठ भूरे रंग की होती है। हिमालय की तराई तथा पंजाब के अतिरिक्त सारे उत्तरीय भारत तथा दक्षिण में इसके जंगल पाए जाते हैं जिनमें वह स्वच्छंद रूप से उगता है। पर पंजाब में यह सिवाय बागों के, जहाँ लोग इसे लगाते हैं, और कहीं नहीं पाया जाता। इसका पेड़ ऊँचा और छतनार होता है और डालियाँ चारों ओर फैलती हैं। यह पेड़ तीस चालीस हाथ ऊँचा होता है और सब प्रकार की भूमि पर होता है। इसके फूल, फल, बीज, लकड़ी सभी चीजें काम में आती हैं। इसका पेड़ बीस पचीस वर्ष में फूलने और फलने लगता और सैकड़ों वर्ष तक फूलता फलता है। इसकी पत्तियाँ फूलने के पहले फागुन चैत में झड़ जाती हैं। पत्तियों के झड़ने पर इसकी डालियों के सिरों पर कलियों के गुच्छे निकलने लगते हैं जो कूँची के आकार के होते हैं। इसे महुए का कुचियाना कहते हैं। कलियाँ बढ़ती जाती हैं और उनके खिलने पर कोश के आकार का सफेद फूल निकलता है जो गुदारा और दोनों ओर खुला हुआ होता है और जिसके भीतर जीरे होते हैं। यही फूल खाने के काम में आता है और महुआ कहलाता है। महुए का फूल बीस बाइस दिन तक लगातार टपकता है। महुए के फूल में चीनी का प्रायः आधा अंश होता है, इसी से पशु, पक्षी और मनुष्य सब इसे चाव से खाते हैं। इसके रस में विशेषता यह होती है कि उसमें रोटियाँ पूरी की भाँति पकाई जा सकती हैं। इसका प्रयोग हरे और सूखे दोनों रूपों में होता है। हरे महुए के फूल को कुचलकर रस निकालकर पूरियाँ पकाई जाती हैं और पीसकर उसे आटे में मिलाकर रोटियाँ बनाते हैं जिन्हें 'महुअरी' कहते हैं। सूखे महुए को भूनकर उसमें पियार, पोस्ते के दाने आदि मिलाकर कूटते हैं। इस रूप में इसे लाटा कहते हैं। इसे भिगोकर और पीसकर आटे में मिलाकर 'महुअरी' बनाई जाती है। हरे और सूखे महुए लोग भूनकर भी खाते हैं। गरीबों के लिये यह बड़ा ही उपयोगी होता है। यह गौओं, भैंसों को भी खिलाया जाता है जिससे वे मोटी होती हैं और उनका दूध बढ़ता है। इससे शराब भी खींची जाती है। महुए की शराब को संस्कृत में 'माध्वी' और आजकल के गँवार 'ठर्रा' कहते हैं। महुए का फूल बहुत दिनों तक रहता है और बिगड़ता नहीं। इसका फल परवल के आकार का होता है और कलेंदी कहलाता है। इसे छील उबालकर और बीज निकालकर तरकारी भी बनाई जाती है। इसके बीच में एक बीज होता है जिससे तेल निकलता है। वैद्यक में महुए के फूल को मधुर, शीतल, धातुवर्धक तथा दाह, पित्त और वात का नाशक, हृदय को हितकर और भारी लिखा है। इसके फल को शीतल, शुक्रजनक, धातु और बलवर्धक, वात, पित्त, तृषा, दाह, श्वास, क्षयी आदि को दूर करनेवाला माना है। छाल रक्तपित्तनाशक और व्रणशोधक मानी जाती है। इसके तेल को कफ, पित्त और दाहनाशक और सार को भूत-बाधा-निवारक लिखा है।

पर्या०—मधूक। मधुष्ठील। मधुस्रवा। मधुपुष्प। रोध्रपुष्प। माधव। वानप्रस्थ। मध्वग। तीक्ष्णसार। महाद्रुम।

महुआ²—संज्ञा स्त्री० महुए की बनी शराब। उ०—शोर, हँसी, हुल्लड़, हुड़दंग, धमक रहा धागड़ांग मृदंग। मार पीट बकवास, झड़प में, रंग दिखाती महुआ भंग। यह चमार चौदस का ढंग। ग्राम्या, पृ० ४६।

महुआ दही—संज्ञा पुं० [हिं० महना + दही] वह दही जिसमें से मथकर मक्खन निकाल लिया गया हो। मखनिया दही।

महुआरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० महुआ + बारी] महुए का जंगल।

महुकम⑤—वि० [अ० मुहकम] दे० 'मुहकम'। उ०—जग मरजादा में रहे ते महकम लूटे।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८९६।

महुमास⑤—संज्ञा पुं० [सं० मधुमास] दे० 'मधुमास'। उ०—तम् महुमासहि पढम पक्ख पंचमी कहिअजे।—कीर्ति०, पृ० १६।

महुर⑤—संज्ञा पुं० [अ० मुह्र] दे० 'मोहर–३'। उ०—हरिसिद्ध जाइ कीनौं प्रनाम। दुअ सहस महुर दुज दिन्न दाम।- पृ० रा०, ६१। ९८५।

महुरत⑤—संज्ञा पुं० [सं० मुहूर्त] दे० 'मुहूर्त'। उ०—ले मुहरत चाल्योऊ तिणि ठाई। चिहुँ षंड जोवज्यो भूपति राय।—बी० रासो०, पृ० ७।

महुरि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० महुअरि] दे० 'महुअर'। उ०—तिन मैं परम सुहावनी हो महुरि, बाँसुरी चंग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८३।

महुर्छा—संज्ञा पुं० [सं० महोत्सव प्रा० महुस्सव, महूसव, महोच्छव; मि० पं० महोछा] महोत्सव। उ०—कथा कीरतन मगन महुर्छा करि संतन धीर। कबहु न काज बिगरै नर तेरो सत सत कहै कबीर।—कबीर (शब्द०)।

महुल(पु)—संज्ञा पुं० [अ० महल] दे० 'महल'। उ०—रचि महुल मधुरिति मधुरयं भ्रम छंडि मंडि सु पिथ्थयं पृ० रा०,५६। २२।

महुला[1]†—वि० [हिं० महुआ] [स्त्री० महुली] महुए के रंग का।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय: बैलों, गौओं आदि के संबंध में होता है।

महुला[2]—संज्ञा पुं० वह बैल जिसके शरीर पर लाल और काले रंग के बाल हों।

विशेष—ऐसा बैल निकम्मा समझा जाता है।

महुव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मधूक] दे० 'महुआ' उ०—कोइ अँबिलि कोइ महुव खजूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

महुवरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० महुअर] महुअर नाम का बाजा। तूँबड़ी। उ०—तैं कत तोरयो हार नौसर को। मोती बगरि रहे सब बन में गयो कान को तरको। ए अवगुन जो करत गोकुल में तिलक दिए केसरि को। ढीट गुवाल दही में माते ओढ़न हारि कमरि को। जाइ पुकारैं जसुमति आगे कहत जु मोहन लरिको। सूर श्याम जानी चतुराई जेहि अभ्यास महुवरि को।—सूर (शब्द०)

महुवा—संज्ञा पुं० [सं० मधूक] दे० 'महुआ'।

महूख—संज्ञा पुं० [सं० मधूक] १. महुआ। उ०—(क) छिनक छबीले लाल वह जौ लगि नहिं बतराय। ऊख महूख पियूख की तौ लगि भूख न जाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) ऊख रस केतकु महूख रस मीठो है पियूखहु की पैली थाहे जाको नियराइए।—(शब्द०) (ग) कहाँ ऊख महूख में एतो मिठास पियूख हूँ ना हरिऔध हहै। जितो चारुता कोमलता सुकुमारता माधुरता अधरा में अहै।—हरिऔध (शब्द०)। २. मधु। शहद। उ०—महुवा मिश्री दूध घृत अति सिंगार रस मिष्ट। ऊख, महूख, पियूख अति केशव साँचो इष्ट।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १२५। ३. जेठोमधु। मुलेठी।

महूम†—संज्ञा पुं० [अ० मुहिम्म] युद्ध। चढ़ाई। उ०—दिगविजय काज महूम की, अरि देस देन धूम की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

महूमहू(पु)†—अव्य० [सं० मुहुः मुहुः] बार बार। पुनः पुनः। मुहुर्मुहुः। उ० प्यारे नटनागर के अंतर समै को पाय मोहि को सतावत है बिरहा महू महू।—नट०, पृ० ९२।

महूरत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मुहूर्त] १२ क्षण या २ दंड का समय। दे० 'मुहुर्त'। उ०—लागो मिलतां खान सूँ, एक महूरत बेर।—रा० रू०, पृ० ३२७।

महूरति(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मुहूर्त'। उ०—धरती अंबर ना हता कौन था पंडित पास। कौन महूरति थापिया चाँद सुर आकास।—कबीर (शब्द०)।

महेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० महेन्द्र] १. विष्णु। २. इंद्र। ३. भारतवर्ष के एक पर्वत का नाम जो सात कुलपर्वतों में गिना जाता है। महेंद्राचल।

यौ०—**महेंद्रकदली** = एक प्रकार का केला। **महेंद्रनगरी**, **महेंद्रपुरी** = अमरावती। इंद्र की नगरी। **महेंद्रमंत्री** = बृहस्पति का नाम। **महेंद्रवारुणी**। **महेंद्रवाह** = ऐरावत हाथी।

महेंद्रनगरी—संज्ञा स्त्री० [महेन्द्रनगरी] अमरावती।

महेंद्रव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० महेन्द्र] दे० 'महेंद्र'। उ०—तिन की उपमा कबि चंद करी। मनौ मेघ महेंद्रव बीज झरी।—पृ० रा०, २५। ५३३।

महेंद्रवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० महेन्द्रवारुणी] बड़ी इंद्रायण।

महेंद्राल—संज्ञा स्त्री० [हिं० महेन्द्र + अलि] गुजरात की महेंद्री नामक नदी का नाम।

महेंद्री—संज्ञा स्त्री० [सं० महेन्द्री] एक नदी का नाम जो गुजरात में बहती है। इसे महेंद्राल भी कहते हैं।

महेर[1]‡—संज्ञा पुं० [हिं० मही + एर (प्रत्य०)] दे० 'महेरा'।

महेर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] झगड़ा। बखेड़ा।

मुहा०—किसी बात या काम में महेर डालना = (१) अड़चन डालना। बखेड़ा खड़ा करना। (२) देर लगाना।

महेर[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'महेरी'।

महेरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी का वृक्ष [को०]।

महेरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मही + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० महेर, महेरि, महेरी] एक प्रकार का व्यंजन जो दही में चावल पकाकर बनाया जाता है। महेला। महेरी। महेर।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—सलोना और मीठा। सलोने में हल्दी, राई आदि मसाले डाले जाते हैं और मीठे में गुड़ पड़ता है।

२. एक भोज्य पदार्थ जो खेसारी के आटे को दही में उबालने से बनता है। ३. मही। मठा। उ०—जस घिउ होइ जराइ कै तस जिउ निरमल होइ। महै महेरा दूरि कर भोग करै सुख सोइ।—जायसी (शब्द०)।

महेरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० माष + हिं० एरा] दे० 'महेला'।

महेरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० महेर या मही] महेरा नामक खाद्य पदार्थ। उ०—भोजन भयो भावती मोहन। तातोइ जेइँ जाहु गो गोहन। खीर खाड़ खाँचरी सँवारी। मधुर महेरि सो गोपन प्यारी।—सूर (शब्द०)।

महेरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० महेरा] १. उबाली हुई ज्वार जिसे लोग नमक मिर्च से खाते हैं। †२. मठे में उबाली हुई ज्वार जो मीठी या नमकीन होती है।

महेरी[2]—वि० [हिं० महेर] अड़चन डालनेवाला। बखेड़ा खड़ा करनेवाला।

महेरुह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० महीरुह] दे० 'महीरुह'। उ०—गोहूं खाइ दूर मैं परा। सुख आनंद महेरुह हरा।—इंद्रा०, पृ० ८५।

महेला[1] संज्ञा पुं० [सं० माष] पशुओं को खिलाने का एक पदार्थ।

विशेष—यह चने, उर्द, मोठ आदि को उबालकर और उसमें गुड़, घी आदि डालकर बनाया जाता है। इसके खिलाने से घोड़े, बैल आदि पुष्ट होते हैं और गौएँ भैंसे आदि अधिक दूध देती हैं।

महेला[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री [को०]।

महेलिका— संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महेला'[२] [को०]।

महेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. ईश्वर।

महेशबंधु– संज्ञा पुं० [सं० **महेशबन्धु**] बेल। बिल्व।

महेशसखा—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम [को०]।

महेशान—संज्ञा पुं० [सं० **महा+ईशान**] [स्त्री० **महेशानी**] शिव।

महेशानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

महेशी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **महेश्वरी**] महेश्वरी। पार्वती।

महेशुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महेश्वर**] दे० 'महेश्वर'। उ०—मैं तोहि कैसे बिसरूँ देवा ब्रह्मा विश्नु महेशुर ईशा ते भी बंछै सेवा।—दरिया० बानी, पृ० ५०।

महेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **महेश्वरी**] १. महादेव। शंकर। शिव। २. ईश्वर। परमेश्वर। ३. सफेद मंदार। ४. सोना। स्वर्ण।

महेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

महेषुधि—वि० [सं०] बड़ा धनुर्धारी।

महेष्वास—वि० [सं०] बड़ा धनुर्धारी। श्रेष्ठ योद्धा।

महेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महेश**] दे० 'महेश'। उ०—गई समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।—मानस, १।५५।

महेसिया—संज्ञा पुं० [हिं० **महेश**] एक प्रकार का उत्तम अगहनी धान।

महेसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **महेश**+हिं० **ई** (प्रत्य०)] महेश्वरी। पार्वती। उ०—हिय महेस जौ कहैं महेसी। कित सिर नावहि ए परदेसी।—जायसी (शब्द०)।

महेसुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महेश्वर**] महेश्वर। शिव। २. माहेश्वर नामक शैव संप्रदाय। उ०—कोई सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देवी सती।—जायसी (शब्द०)।

महै(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'मँह'। उ०—नजर महै सबकी पड़ै कोऊ देखै नाहि।—पलटू०, पृ० ४४।

महैकोद्दिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्राद्ध जो मरने के बाद पहले पहल अशौच के अंत में मृत प्राणी के उद्देश्य से किया जाता है।

महैतरेय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐतरेय उपनिषद्।

महैरंड—संज्ञा पुं० [सं० **महा+एरण्ड**] एक प्रकार का बड़ा रेंड़ जिसके बीज भी बड़े होते हैं।

महैला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

महोंड़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मोहड़ा'। उ०—और महोंड़े आगें अस्तो विस्त अभक्षाभक्ष धरचो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३०। २. मुख। मुहँ। उ०—पाछें वा चुगली करनेवारे को महोंड़ो स्याम होइ गयो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १३१।

महोक—संज्ञा पुं० [सं० मधूक, हिं० महोख, महोखा] दे० 'महोखा'।

महोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा बैल।

महोख—संज्ञा पुं० [सं० **मधूक**] दे० 'महोखा'। उ०—(क) हारिल शब्द महोख सुहावा। काग कुराहर करहिं सोआवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कूजत पिक मानो गज माते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते।—तुलसी (शब्द०)।

महोखा—संज्ञा पुं० [सं० **मधूक**, प्रा० **महूक**] एक प्रकार का पक्षी जो कौए के बराबर होता है और भारतवर्ष में, विशेषकर उत्तरी भारत में झाड़ियों और बँसवाड़ियों में मिलता है।

विशेष—इसकी चोंच, पैर और पूँछ काली, आँखें लाल और सिर, गला और डैने खैरे रंग के या लाल होते हैं। यह झाड़ियों के आस पास रहता है और कीड़े मकोड़े खाता है। यह बहुत तेज दौड़ सकता है, पर बहुत दूर तक नहीं उड़ सकता। इसकी बोली बहुत तेज होती है और यह बहुत देर तक लगातार बोलता है।

महोगनी—संज्ञा पुं० [अ०] भारत, मध्य अमेरिका और मैक्सिको आदि में होनेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो सदा हरा रहता है।

विशेष—इसकी लकड़ी कुछ ललाई लिए भूरे रंग की, बहुत ही दृढ़ और टिकाऊ होती है और उसपर वार्निश बहुत खिलती है। यह लकड़ी बहुत महँगी बिकती है और प्रायः मेजें, कुर्सियाँ और सजावट के दूसरे सामान बनाने के काम में आती है।

महोच्छव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महोत्सव**, प्रा० **महोच्छव**] बड़ा उत्सव। महोत्सव। उ०—मरना भला विदेस का जहँ अपना नहिं कोय। जीव जंतु भोजन करैं सहज महोच्छव होय।—कबीर (शब्द०)।

महोच्छो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महोत्सव**, प्रा० **महोच्छव**] दे० 'महोत्सव'। उ०—कियो सो महोच्छो, ज्ञाति विप्रन को न्योतो दियो।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ३९८।

महोछव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **महोत्सव**, प्रा० **महोच्छव**] दे० 'महोत्सव'। उ०—कथा कीरतन मँगल महोछव, कर साधन को भीर।—कबीर श०, भा० २, पृ० १०६।

महोछा—संज्ञा पुं० [सं० **महोत्सव**] १. दे० 'महोच्छव'। २.‡ खत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महात्मा (बाबा लालू जसराय) का पूजन जो श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में होता है।

महोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहती। कटैया।

महोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहती। कटैया।

महोती—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महुआ**] महुए का फल। कर्जेदी। गुलेंदा। कोयँदा।

महोल्का—संज्ञा पुं० [सं०] महोल्का। बड़ी उल्का।

महोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़े आकार का नील कमल। २. सारस पक्षी [को०]।

महोत्संग—संज्ञा पुं० [सं० **महोत्सङ्ग**] सबसे बड़ी संख्या।

महोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा उत्सव। २. कामदेव (को०)।

महोत्साह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो अत्यंत शक्तिशाली वा शक्तिमंत हो। २. असंवाह्य गर्व। अत्यंत गर्व [को०]।

महोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. इंद्र का एक नाम (को०)।

महोदय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **महोदया**] १. आधिपत्य। २. स्वर्ग। ३. महाफल। ४. स्वामी। ५. कान्यकुब्ज देश और उसकी राजधानी। ६. महापुरुष। महात्मा (को०)। ७. मधुमिश्रित खट्टा दूध या दधि (को०)। ८. बड़ों के लिये एक आदरसूचक शब्द। महाशय। महानुभाव।

महोदय[2]—वि० १. भाग्यवान्। गौरवशाली। २. अति समृद्ध। संपत्तिशाली। ३. महानुभाव [को०]।

महोदया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागबला। गँगेरन। गुलशकरी। २. बड़ी या संमान्य महिलाओं के लिये एक आदरसूचक शब्द।

महोदर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नाग का नाम। २. एक राक्षस का नाम। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. शिव। ५. एक रोग। जलोदर।

महोदर[2]—वि० [वि० स्त्री० **महोदर**] जिसका पेट बड़ा हो।

महोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती दुर्गा का एक रूप [को०]।

महोदार—वि० [सं०] १. अत्यंत उदार। २. शक्तिशाली। बलवान [को०]।

महोद्यम—वि० [सं०] अत्यंत उद्यमशील। महोत्साह [को०]।

महोद्रेक—संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रस्थ का एक मान [को०]।

महोन्नत—वि० [सं०] अत्यंत ऊँचा। अत्यंत उन्नत।

महोन्नति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत उच्चता वा श्रेष्ठता।

महोना—संज्ञा पुं० [हिं० **मुँह**] पशुओं के एक रोग का नाम जिसमें उनके मुँह और पैर पक जाते हैं।

महोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा पंडित। विद्वान् अध्यापक [को०]।

महोबा—संज्ञा पुं० [देश०] बुंदेलखंड का एक प्राचीन नगर। उ०—चहुआन महोबै जुद्ध हुअ ग्रेहाँ गिद्ध उठाइयाँ।—पृ० रा०, ६१।१००७।

विशेष—यह हमीरपुर जिले में है और इस नाम की तहसील और परगने का प्रधान नगर है। यहाँ बहुत काल तक चंदेल राजाओं की प्रधान राजधानी थी और इस वंश के मूल पुरुष चंद्रवर्मा की छतरी का चिह्न अब तक रामकुंड के किनारे मिलता है। यहाँ प्राचीन दुर्ग अब तक वर्तमान है। पृथ्वीराज के समय में यहाँ परमाल नामक चंदेल राजा था जिनके यहाँ आल्हा और उदयन या ऊदल नामक दो प्रसिद्ध वीर योद्धा थे। कवि जगनिक के परमाल रासो में चंदेल राजाओं के वंश का और पृथ्वीराज से परमाल के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। लोकप्रचलित आल्हखंड में भी परमाल के सामंत आल्हा ऊदल की युद्धगाथा का वर्णन है। यहाँ का पान बहुत अच्छा होता है।

महोबिया—वि० [हिं० **महोबा+इया** (प्रत्य०)] दे० 'महोबी'।

महोबिहा—वि० [हिं० **महोबा+इहा** (प्रत्य०) दे० 'महोबी'।

महोबी—वि० [हिं० **महोबा+ई** (प्रत्य०)] महोबे का।

महोरग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा साँप। २. तगर का पेड़। ३. जैनियों के एक प्रकार के देवताओं का नाम।

विशेष—यह व्यंतर नामक देवगण के अंतर्गत हैं।

महोरस्क[1]—वि० [सं०] जिसका वक्षस्थल विशाल हो।

महोरस्क[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

महोर्मि—संज्ञा पुं० [सं० **महोर्मिन्**] समुद्र [को०]।

महोलाⓟ†[1]—संज्ञा पुं० [अ० **मुहेल**] १. हीला। बहाना। उ०—बाहर क्या देखराइए अंतर जपिए राम। कहा महोला खलक सो परेउ धनी से काम।—कबीर (शब्द०)। २. धोखा। चकमा। उ०—सती शूर तन ताइया तन मन कीया घान। दिया महोला पीव को तब मरघट करै बखान।—कबीर (शब्द०)।

महोला†ⓟ[2]—संज्ञा पुं० [अ० **महल्ला**, हिं० **मुहल्ला**] समुदाय। संघ। समूह। उ०—(क) सेन के प्रमाण कौन कहा साह बोले। सेनापति कौन मीर देखन महोले।—रा० रू०, पृ० ११०। (ख) सब कूँ बुलाय वैण अकबर साह बोले। मेरी निसाँखातरी है तुमारे महोले।—रा० रू० पृ० ११२।

महोविशीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

महौघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र की बाढ़। तूफान। २. वह जिसका प्रवाह प्रखर एवं विशाल हो (को०)। ३. एक बहुत बड़ी संख्या (को०)।

महौजस्क—वि० [सं०] अति तेजस्वी। बहुत तेजवान्।

महौजा[1]—वि० [सं० **महौजस्**] अति तेजस्वी।

महौजा[2]—संज्ञा पुं० काल के पुत्र एक असुर का नाम।

महौदवाहि—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार एक आचार्य का नाम।

महौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] पापड़ी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है। विशेष दे० 'पापड़ा'।

महौषध—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूम्याहुल्य। भुंजित खर। २. सोंठ। ३. लहसुन। ४. बाराहीकंद। गेठी। ५. वत्सनाभ। बछनाग। ६. पीपल। ७. अतीस।

महौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूब। २. लजालू। ३. संजीवनी। ४. कुछ विशिष्ट ओषधियों का समूह जिनका चूर्ण महास्नान या अभिषेकादि के जल में मिलाया जाता है।

महौषधी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. सफेद भटकटैया। श्वेत कंटकारी। २. ब्राह्मी। ३. कुटकी। ४. अतिबला। ५. हिलमोचिका।

मह्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

मह्योⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महना**] दे० 'मही'। उ०—कोऊ दह्यो कोऊ मह्यो, कोऊ माखन जोरि जोरि भली बिधि सों आछौ अछूतो लाईं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६१।

मांगलगीत—संज्ञा पुं० [सं० माङ्गल्यगीत] वह शुभ गीत जो विवाह आदि मंगल के अवसरों पर गाए जाते हों। मंगलगीत।

मांगलिक[1]—वि० [सं० माङ्गलिक] [वि० स्त्री० मांगलिकी] मंगल प्रकट करनेवाला। शुभ।

मांगलिक[2]—संज्ञा पुं० नाटक का वह पात्र जो मंगलपाठ करता है।

मांगलीक—वि० [सं० माङ्गलिक] दे० 'मांगलिक'।

मुहा०—**मांगलीक उतारना** = बाहर से आए हुए व्यक्ति की मंगल भाव से आरती उतारना। उ०—राई अंगणी राजा पहुँतो जाई। मांगलीक उतारैं हो माई।—बी० रासो, पृ० ६६।

मांगल्य[1]—वि० [सं० माङ्गल्य] शुभ। मंगलकारक।

मांगल्य[2]—संज्ञा पुं० १. मंगल का भाव। मांगलिकता। २. मंगल द्रव्य (को०)।

मांगल्यकाया—संज्ञा स्त्री० [सं० माङ्गल्यकाया] १. दूब। २. हलदी। ३. ऋद्धि। ४. गोरोचन। ५. हर्रे।

मांगल्यकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० माङ्गल्यकुसुमा] शंखपुष्पी।

मांगल्यप्रवरा—संज्ञा स्त्री० [सं० माङ्गल्यप्रवरा] वच।

मांगल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० माङ्गल्या] १. गोरोचन। २. शमी का वृक्ष। ३. जीवंती।

मांगल्यार्हा—संज्ञा स्त्री० [सं० माङ्गल्यार्हा] त्रायमाण लता [को०]।

मांजिष्ठ[1]—वि० [सं० माञ्जिष्ठ] [वि० स्त्री० मांजिष्ठी] १. मजीठ का सा। मजीठ के समान। २. मजीठ के रंग का।

मांजिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० १. लाल रंग। मजीठ रंग (को०)। २. एक प्रकार का मूत्ररोग या प्रमेह जिसमें मजीठ के रंग का लाल पेशाब होता है।

मांडप—वि० [सं० माण्डप] मंडप संबंधी। मंडप का [को०]।

मांडलिक[1]—संज्ञा पुं० [सं० माण्डलिक] १. वह जो किसी मंडल या प्रांत की रक्षा अथवा शासन करता हो। २. शासनकार्य। ३. वह छोटा राजा जो किसी सार्वभौम या चक्रवर्ती राजा के अधीन हो और उसे कर देता हो। उ०—क्या कोई मांडलिक हुआ सहसा विद्रोही।—साकेत, पृ० ४१२।

विशेष—शुक्र नीति के अनुसार मांडलिक नरेश वे कहे जाते हैं जिनके राज्य की वार्षिक आय ४ लाख से १० लाख तक होती है।

मांडलिक[2]—वि० [वि० स्त्री० मांडलिकी] मंडल संबंधी। मंडल के शासन से संबद्ध [को०]।

यौ०—**मांडलिक नृपति** = मंडल का वह राजा जो किसी बड़े राजा के अधीन हो। सामंत। उ०—इससे स्पष्ट है कि परमारवंश का प्रतिष्ठापक उपेंद्र या कृष्णराज, आरंभ में प्रतीहारों या राष्ट्रकूटों का मांडलिक नृपति (सामंत) रहा होगा।—आदि०, पृ० ५३३।

मांडवी—संज्ञा स्त्री० [सं० माण्डवी] राजा जनक के भाई कुशध्वज की कन्या जो भरत को ब्याही थी। उ०—मांडवी चित्तचातक नवांबुद बरन सरन तुलसीदास अभयदाता।—तुलसी (शब्द०)।

मांडव्य—संज्ञा पुं० [सं० माण्डव्य] १. एक प्राचीन ऋषि। उ०—विदुर सु धर्मराइ अवतार। ज्यों भयो कहौं सुनो चितधार। मांडव्य ऋषि जब शूली दयो। तब सो काठ हरचो ह्वै गयो।—सूर (शब्द०)।

विशेष—बाल्यावस्था के किए हुए पाप के अपराध के कारण यमराज ने इनको शूली पर चढ़वा दिया था। इसपर ऋषि ने यमराज को शाप दिया कि तुम शूद्र हो जाओ, जिससे यमराज दासी के गर्भ से पंडु के यहाँ उत्पन्न हुए थे।

२. एक प्राचीन जाति का नाम। ३. एक प्राचीन नगर का नाम।

मांडहा†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप, हिं० मँडवा] दे० 'मंडप—४'। उ०—ए च्यारइ वेद उचरइ चउरी दीसउ मांडहा माँहि।—बी० रासो; पृ० २१।

मांडूक—संज्ञा पुं० [सं० माण्डूक] प्राचीन काल के एक प्रकार के ब्राह्मण जो वैदिक मंडूक शाखा के अंतर्गत होते थे।

मांडूकायनि—संज्ञा पुं० [सं० माण्डूकायनि] एक वैदिक आचार्य का नाम।

मांडूक्य[1]—संज्ञा पुं० [सं० माण्डूक्य] एक उपनिषद् का नाम।

मांडूक्य[2]—वि० मंडूक संबंधी।

मांत्र—वि० [सं० मान्त्र] १. वेदमंत्र संबंधी। वेदमंत्र का। २. तंत्र संबंधी। तांत्रिक [को०]।

मांत्रिक[1]—वि० [सं० मान्त्रिक] मंत्र संबंधी। मांत्र [को०]।

मांत्रिक[2]—संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जो तंत्र मंत्रादि का ज्ञाता हो। २. वह जो वेदमंत्रों का ज्ञाता हो [को०]।

मांथर्य—संज्ञा पुं० [सं० मान्थर्य] १. मंथरता। धीमापन। सुस्ती। २. कमजोरी। शैथिल्य [को०]।

मांद—संज्ञा पुं० [सं० मान्द] १. तालाब का जल। २. ग्रहों की रवि या चंद्र संबंधी नीचोच्च या मंदोच्च गति।

मांदलु†—संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] दे० 'मांदर'। उ०—कबीर सब जग हौं फिरचा मांदलु कंध चढ़ाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६०।

मांदार[1]—वि० [सं० मान्दार] मंदार संबंधी। मंदार का।

मांदार[2]—संज्ञा पुं० मंदार का पेड़ [को०]।

मांदार्य—संज्ञा पुं० [सं० मान्दार्य] वह जो विषयों या रागद्वेष आदि से परे हो गया हो। वीतराग।

मांद्य—संज्ञा पुं० [सं० मान्द्य] १. कमी। न्यूनता। घटी। २. मंद होने की क्रिया या भाव। जैसे, अग्निमांद्य। ३. रोग। बीमारी।

मांधाता—संज्ञा पुं० [सं० मान्धातृ] एक प्राचीन सूर्यवंशी राजा जो युवनाश्व का पुत्र था और जिसकी राजधानी अयोध्या में थी। उ०—कह्यो मांधाता सो जाइ। पुत्री एक देहु मोहि राइ।—सूर (शब्द०)।

विशेष—कहते हैं, राजा युवनाश्व कोई संतान न होने पर भी संसार त्याग करवन में ऋषियों के साथ रहने लगा था। ऋषियों ने उसपर दया करके उसके घर संतान होने के लिये यज्ञ किया

आधी रात के समय जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब ऋषियों ने एक घड़े में अभिमंत्रित जल भरकर वेदी में रख दिया और आप सो गए। रात के समय जब युवनाश्व को बहुत अधिक प्यास लगी, तब उसने उठकर वही जल पी लिया जिसके कारण उसे गर्भ रह गया। समय पाकर उस गर्भ से दाहिनी कोख फाड़कर एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो यही मांधाता था। इंद्र ने इसे अपना अँगूठा चुसाकर पाला था। आगे चलकर वह बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ था और इसने शशविंदु की कन्या विंदुमती के साथ विवाह किया था, जिसके गर्भ से इसे पुरुकुत्स, अंबरीष और मुचुकुंद नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं।

मांस[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों और पशुओं आदि के शरीर के अंतर्गत वह प्रसिद्ध चिकना, मुलायम, लचीला, लाल रंग का पदार्थ जो शरीर का मुख्य अवयव है और जो रेशेदार तथा चरबी मिला हुआ होता है। गोश्त।

विशेष—शरीर का यह अंश हड्डी, चमड़े, नाड़ी, नस और चरबी आदि से भिन्न है। इसका एक अंश कंकाल से लगा हुआ छोटे छोटे टुकड़ों में बँटा रहता है और वह ऐच्छिक कहलाता है, अर्थात् इच्छानुसार उसका संचालन किया जा सकता है। ये टुकड़े आपस में सूत्रों के द्वारा जुड़े रहते हैं और उन सूत्रों के हटाने पर सहज में अलग हो सकते हैं। इन टुकड़ों को मांसपेशी कहते हैं। ये मांसपेशियाँ छोटी, बड़ी, पतली, मोटी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। आशयों, नलियों, मार्गों और हृदय आदि अंगों का मांस पेशियों में विभक्त नहीं होता। इन अंगों में मांस की केवल पतली या मोटी तहें रहती हैं जो आपस में एक दूसरी से बिलकुल मिली हुई होती हैं। ऐसा मांस अनैच्छिक या स्वाधीन कहलाता है, अर्थात् इच्छानुसार उसका संचालन नहीं किया जा सकता। मांस अथवा मांसपेशी मुलायम होने के कारण चाकू आदि से सहज में कट जाती है। शरीर में सभी जगह थोड़ा बहुत मांस रहता है और शरीर के भार में उसका अंश प्रति सैकड़े ४२–४३ के लगभग होता है। शरीर की सब प्रकार की गतियाँ मांस के ही द्वारा होती हैं। मांस आवश्यकता पड़ने पर सिकुड़कर छोटा और मोटा होता है और फिर अपनी पूर्व अवस्था में आ जाता है। सुश्रुत के अनुसार मांसपेशियों की संख्या ५०० तथा आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों के मत से ५१९ है। वैद्यक के अनुसार यह रक्त से उत्पन्न तीसरी धातु है। भावप्रकाश के अनुसार जब शरीर की अग्नि अथवा ताप के द्वारा रक्त का परिपाक होता है और वह वायु के संयोग से घनीभूत होता है, तब वह मांस का रूप धारण करता है। वैद्यक के अनुसार साधारणतः सभी प्रकार का मांस वायुनाशक, उपचयकारक, बलवर्धक, पुष्टिकारक, गुरु, हृदयग्राही और मधुररस होता है।

पर्या०—आमिष। पिशित। पलाल। क्रव्य। पल। आस्रज।

यौ०—मांस का घी = चरबी।

२. कुछ विशिष्ट पशुओं के शरीर का उक्त अंश जो प्रायः खाया जाता है। गोश्त।

विशेष—हमारे यहाँ यह मांस दो प्रकार का माना गया है। जांगल और आनूप। जंघाल, विलस्थ, गुहाशय, पर्णमृग, विष्किर, प्रतुद, प्रसह और ग्राम्य इन आठ प्रकार के जंगली जीवों का मांस जांगल कहलाता है, और वैद्यक के अनुसार मधुर, कषाय, रूक्ष, लघु, बलकारक, शुक्रवर्धक, अग्निदीपक, दोषघ्न और वधिरता, अरुचि, वमि, प्रमेह, मुखरोग, श्लीपद और गलगंड आदि का नाशक माना जाता है। कुलेचर, प्लव, कोशस्थ, पादी और मत्स्य इन पाँच प्रकार के जीवों का मांस आनूप कहलाता है और वैद्यक के अनुसार साधारणतः मधुररस, स्निग्ध, गुरु, अग्नि को मंद करनेवाला, कफकारक तथा मांसपोषक होता है। पक्षियों में से पुरुष जाति अथवा नर का और चौपायों में स्त्री जाति अथवा मादा का मांस अच्छा कहा गया है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न जीवों के मांस के गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं। साधारणतः प्रायः सभी देशों और सभी जातियों में कुछ विशिष्ट पशुओं, पक्षियों और मछलियों आदि का मांस बहुत अधिकता से खाया जाता है। पर भारत के कुछ धार्मिक संप्रदायों के अनुसार मांस खाना बहुत ही निषिद्ध है। पुराणों में इसका खाना पाप माना गया है। कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों और चिकित्सकों आदि का मत है कि मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है और उसके खाने से अनेक प्रकार के घातक तथा असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं।

यौ०—मांसाहारी।

३. मछली का मांस (को०)। ४. फल का गूदावाला भाग (को०)। ५. कीड़ा। कीट (को०)। ६. मांस बेचनेवाली एक संकर जाति (को०)। ७. काल। समय (को०)।

मांसकंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मांसकन्दी**] मांस की स्फीति। सूजन। शोथ [को०]।

मांसकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जो तालू में होता है।

मांसकारी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसकारिन्**] रक्त। लहू।

मांसकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] बवासीर का मसा।

मांसकेशी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसकेशिन्**] वह घोड़ा जिसके पैरों में मांस के गुठले निकलते हों।

मांसक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर [को०]।

मांसखोर—संज्ञा पुं० [सं० **मांस** + फ़ा० **खोर**] मांस खानेवाला। मांसाहारी।

मांसग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० **मांसग्रन्थि**] मांस की गाँठ जो शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में निकल आती है।

मांसच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी या मांसी नाम की लता।

मांसज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मांस से उत्पन्न हो। २. मांस से उत्पन्न शरीर में की चर्बी।

मांसतान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भीषण रोग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इस रोग में गले में सूजन होकर चारों ओर फैल जाती है जिसमें बहुत अधिक पीड़ा होती है। इससे कभी कभी गले की नाड़ी घुटकर बंद हो जाती है और रोगी मर जाता है।

मांसतेज—संज्ञा पुं० [सं० **मांसतेजस्**] चर्बी।

मांसदलन—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहघ्न वृक्ष [को०]।

मांसद्रावी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसद्राविन्**] अम्लबेत।

मांसधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर के चमड़े की सातवीं तह जो स्थूलापर भी कहलाती है।

मांसनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के बाल। रोम [को०]।

मांसप—संज्ञा पुं० [सं०] पिशाच या राक्षस [को०]।

मांसपचन—संज्ञा पुं० [सं०] मांस पकाने का बरतन [को०]।

मांसपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लिंग का रोग जिसमें लिंग का मांस फट जाता है और उसमें पीड़ा होती है।

मांसपिंड—संज्ञा पुं० [सं० **मांसपिण्ड**] १. शरीर। देह। २. मांस का पिंड या लोदा (को०)।

मांसपिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मांसपिण्ड** हिं० + **ई**] शरीर के अंदर होनेवाली मांस की गाँठ।

विशेष—कहते हैं, पुरुषों के शरीर में इस प्रकार की ५०० और स्त्रियों के शरीर में ५२० गाँठें होती हैं।

मांसपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस की टोकरी। २. ढेर का मांस [को०]।

मांसपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी।

मांसपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं और जिसे 'भ्रमरारि' भी कहते हैं।

मांसपेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर के अंदर होनेवाला। मांसपिंड। विशेष दे० 'मांस'। उ०—मांसपेशी अर्थात् मांसबोटी जो है सो बल करती है।—शार्ङ्गधर०, पृ० ५१। २. भावप्रकाश के अनुसार गर्भ की वह अवस्था जो गर्भधारण के सात दिनों के बाद होती है और प्रायः एक सप्ताह तक रहती है।

मांसफल—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

मांसफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भिंडी। २. भंटे का पौधा (को०)।

मांसभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १, वह जो मांस खाता हो। मांसाहारी। २. पुराणानुसार एक दानव का नाम।

मांसभक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसभक्षिन्**] मांस खानेवाला। मांसाहारी। गोश्तखोर।

मांसभेत्ता—वि० [सं० **मांसभेतृ**] मांस काटनेवाला [को०]।

मांसभेदी—वि० [सं० **मांसभेदिन्**] मांसभेत्ता।

मांसभोजी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसभोजिन्**] मांस खानेवाला। मांसाहारी।

मांसमंड—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का झोल या रसा। शोरबा। यखनी।

मांसमासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी।

मांसयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त मांस से उत्पन्न जीव।

मांसरक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी। रोहिणी।

मांसरज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर के अंदर होनेवाले स्नायु जिनसे मांस बँधा रहता है। २. मांस का रसा। शोरबा।

मांसरस—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का रसा। यखनी। शोरबा।

मांसरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी।

मांसरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष।

विशेष—इसकी प्रत्येक डाली में खिरनी के पत्तों के आकार के सात सात पत्ते लगते हैं और इसके फल बहुत छोटे छोटे होते हैं। वैद्यक में इसे उष्ण, त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्धक, सारक और व्रण के लिये हितकारी माना है।

पर्या०—**अतिरुहा। वृत्ता। चर्मकषा। वसा। प्रहारवल्ली। विकसा। वीरवती। अग्निरुहा। कशामांसी। महामांसी। मांसारोहा। रसायनी। सुलोमा। लोमकर्णी। रोहिणी। चंद्रवल्लभा।**

मांसल[1]—वि० [सं०] १. मांस से भरा हुआ। मांसपूर्ण (अंग)। जैसे, चूतड़, जाँघ आदि। उ०—गजहस्तप्राय जानुयुगल पीन मांसल कूर्मपृष्ठाकार श्रोणी गंभीर।—वर्ण०, पृ० ४। २. मोटा ताजा। पुष्ट। ३. भरा या गदराया हुआ। उ०—प्राणों की मर्मर से मुखरित जीवन की मांसल हरियाली।—युगांत, पृ० २। ४. बलवान् मजबूत। दृढ़। ५. रक्ताभ। लाल। उ०—पत्रों में मांसल रंग खिला।—युगांत, पृ० ८।

मांसल[2]—संज्ञा पुं० १. काव्य में गौड़ी रीति का एक गुण। २. उड़द।

मांसलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मांसल होने का भाव। २. स्थूलता और पुष्टि। ३. वली। चर्मसंकोच (को०)।

मांसलफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भिंडी। २. तरबूज। ३. बैंगन। भंटा (को०)।

मांसलिप्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी।

मांसवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की मदिरा जो हिरन आदि के मांस से बनाई जाती है।

मांसविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मांस की बिक्री। मांस बेचना [को०]।

मांसविक्रयी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसविक्रयिन्**] १. वह जो मांस बेचता हो। कसाब। २. वह जो धन के लिये अपनी कन्या या पुत्र बेचता हो।

मांसवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के किसी अंग के मांस का बढ़ जाना। जैसे, घेघा, फीलपाँव आदि।

मांससंवात—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें तालू में कुछ दूषित मांस बढ़ जता है। इसमें पीड़ा नहीं होती।

मांससमुद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चर्बी ।

मांससार—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर के अंतर्गत मेद नामक धातु । २. वह जो हृष्ट पुष्ट हो ।

मांसस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] चर्बी ।

मांसहासा—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा ।

मांसाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मांस खाता हो । २. राक्षस ।

मांसादी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसादिन्**] दे० 'मांसाद' ।

मांसारि—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत ।

मांसार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह से लटकता हुआ मांस का टुकड़ा या लोथड़ा । ललरी [को०] ।

मांसार्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रोग जिसमें लिंग के ऊपर कड़ी फुंसियाँ हो जाती हैं । २. शरीर में मुक्के आदि के आघात से होनेवाली एक प्रकार की सूजन ।

विशेष—इसमें शरीर का वह स्थान जहाँ आघात हुआ रहता है, पत्थर के समान कड़ा हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती । ऐसी सूजन असाध्य समझी जाती है ।

मांसाशन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मांसाशी' ।

मांसाशी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसाशिन्**] १. वह जो मांस खाता हो । मांसाहारी । २. राक्षस ।

मांसाष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ कृष्ण अष्टमी ।

विशेष—प्राचीन काल में इस दिन मांस के बने हुए पदार्थों से श्राद्ध करने का विधान था ।

मांहासारी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसाहारिन्**] मांसभक्षी । मांस भोजन करनेवाला ।

मांसिक—संज्ञा पुं० [सं०] कसाई । मांसविक्रेता ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४६ ।

मांसिका, मांसिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी ।

मांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी । २. काकोली । ३. मांसरोहिणी । ४. चंदन आदि का तेल । ५. इलायची ।

मांसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्गुला । चमगादड़ [को०] ।

मांसोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस का भोजन । २. मांस के साथ पकाया हुआ चावल [को०] ।

मांसोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० **मांसोपजीविन्**] दे० 'मांसिक' ।

मांसौदनिक—वि० [सं०] मांसोदन खाने या प्राप्त करनेवाला । मांस और भात खानेवाले को मांसौदनिक कहते थे ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४६ ।

माँ¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृ** = **माता** या **अम्बा** या **मा** (= **लक्ष्मी** **माता**)] जन्म देनेवाली, माता । जननी । उ०—दोउ भया जेंवत माँ आगे पुनि लै लै दधि खात कन्हाई और जननि पै माँगे ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—**माँ जाई** = सगी बहिन । **माँ जाया** = सगा भाई । सहोदर । **माँ बाप** = (१) माता और पिता । (२) माता और पिता के समान अर्थात् रक्षण और पालन पोषण करनेवाला ।

माँ†²—अव्य० [सं० **मध्य**] में । उ०—(क) इन युग माँ को बड़ सुखरासी । बोले तब रघुनाथ उपासी ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) कहु गुरु द्रोह केर फल का है । तेरी गति सब शास्त्रन माँ है ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) लख चौरासी धार माँ तहाँ दीन जिउ बास । चौदह जम रखवारिया चारि वेद विश्वास ।—कबीर (शब्द०) ।

माँई†—अव्य० [हिं० **माँह**] दे० 'माँह' । उ०—षट मास माँई मिले साँई अचल पाई धाम ए ।—राम० धर्म०, पृ० २५७ ।

माँकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मकड़ी**] १. दे० 'मकड़ी' । २. कमखाब बुननेवालों का एक औजार ।

विशेष—इसमें डेढ़ डेढ़ बालिश्त की पाँच तीलियाँ होती हैं और नीचे तिरछे बल में इतनी ही बड़ी एक और तीली होती है । यह ठाठ सवा गज लंबी एक लकड़ी पर चढ़ा हुआ होता है जो करघे के लग्घे पर रखी जाती है । ३. पतवार के ऊपरी सिरे पर लगी हुई और दोनों ओर निकली हुई वह लकड़ी जिसके दोनों सिरों पर वे रस्सियाँ बँधी होती हैं, जिनकी सहायता से पतवार घुमाते हैं । (लश०) । ४. जहाज में रस्से बाँधने के खूँटे आदि का वह बनाया हुआ ऊपरी भाग जिसमें लकड़ी या लोहा दोनों या चारों ओर इस अभिप्राय से निकला हुआ रहता है कि जिसमें उस खूँटे में बाँधा हुआ रस्सा ऊपर न निकल आवे । (लश०) ।

माँख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मध्य**] मध्य । बीच । उ०—देखि देखि मा री इन माखे । खुली निगाह भई कै आँखे ।—चित्रा०, पृ० २६ ।

माँखण—संज्ञा पुं० [डिं०] मक्खन । नवनीत ।

माँखन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मक्खन' । उ०—होत परसपर पार माँखन के गेंदुक करं ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४ ।

माँखना—क्रि० अ० [सं० **मक्ष**] क्रुद्ध होना । क्रोध करना । गुस्सा करना । दे० 'माखना' । उ०—ठाँवहि ठाँव कुँवर सब माँखे । केइ अब लहि जोगी जिउ राखे ।—पदमावत, पृ० ११२ ।

माँखी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मक्षिका**, प्रा० **मक्खिआ**] दे० 'मक्खी' । उ०—(क) लै चले नागर नगधर नवल तिया को ऐसे । माँखिन आँखिन धूरि धूरि मधुहा मधु जैसे ।—नंद ग्रं०, पृ० २१० । (ख) यों ता श्रीनाथ जी के चरणस्पर्श माँखी हू करत है ।—दो सौ बावन०, भाग १, पृ० ३१ ।

माँग¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० **माँगना**] १. माँगने की क्रिया या भाव । २. बिक्री या खपत आदि के कारण किसी पदार्थ के लिये होनेवाली आवश्यकता या चाह । जैसे,—आजकल बाजार में देशी कपड़ों की माँग बढ़ रही है ।

माँग²—संज्ञा स्त्री० [सं० **मार्ग**, प्रा० **मग्ग**] १. सिर के बालों के बीच की वह रेखा जो बालों को दो ओर विभक्त करके बनाई जाती है । सीमंत ।

विशेष—हिंदू सौभाग्यवती स्त्रियाँ माँग में सिंदूर लगाती हैं और इसे सौभाग्य का चिह्न समझती हैं ।

यौ०—**माँग उजड़ना** = विधवा होना । **माँग चोटी** = स्त्रियों का केशविन्यास । **माँगजली** = विधवा । राँड़ ।

मुहा०—**माँग कोख से सुखी रहना या जुड़ाना**=स्त्रियों का सौभाग्यवती और संतानवती रहना। उ०—आनँद अवनि राजरानी सब माँगहु कोखु जुड़ानी।—तुलसी (शब्द०)। **माँग पट्टी करना** = केशविन्यास करना। बालों में कंघी करना। **माँग पारना या फारना** = केशों को दो ओर करके बीच में माँग निकालना। **माँग बाँधना** = कंघी चोटी करना। (क्व०)।

२. किसी पदार्थ का ऊपरी भाग। सिरा। (क्व०)। ३. सिल का वह ऊपरी भाग जो कुटा हुआ नहीं होता और जिसपर पीसी हुई चीज रखी जाती है। ४. नाव का गावदुमा सिरा। ५. दे० माँगी'।

माँगटीका—संज्ञा पुं० [हिं० **माँग + टीका**] स्त्रियों का एक गहना जो माँग पर पहना जाता है और जिसके बीच में एक प्रकार का टिकड़ा होता है जो माथे पर लटका होने के कारण टीके के समान जान पड़ता है।

माँगरण—संज्ञा पुं० [डिं०] दे० 'माँगन'।

माँगरणगार(पु)—वि० [सं० **मार्गण**, प्रा० **मग्गण**, हिं० माँगना + फ़ा० **गार** (प्रत्य०)] माँगनेवाला। याचक। उ०—माँगणगारा रीझवइ, ल्यावइ साल्ह कुमार।—ढोला०, दू० १०२।

माँगणहार(पु)—संज्ञा पुं० [डिं० **माँगण** + हिं० **हार** (प्रत्य०)] माँगनेवाला। चारण। ढाढ़ी। याचक। उ०—मेल्हि सखी तेड़ाविया मारू माँगणहार।—ढोला०, दू०१०६।

माँगन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० **माँगना**] १. माँगने की क्रिया या भाव। २. याचक। भिक्षुक। भिखमंगा। मंगन। उ०—(क) नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल माँगने टेरे।—तुलसी (शब्द)। (ख) रीति महाराज की निवाजिए जी माँगनो सो दोष दुख दारिद दरिद्र कै कै छोड़िए।—तुलसी (शब्द०)। (ग) रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहिं दानु।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

माँगनहार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **माँगना + हार** (प्रत्य०)] माँगनेवाला। याचक। उ०—गुरु बिन दाता कोइ नहीं जग माँगनहारा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७२।

माँगना—क्रि० स० [सं० **मार्गण** (=**याचना**)] १. किसी से यह कहना कि तुम अमुक पदार्थ मुझे दो। कुछ पाने के लिये प्रार्थना करना या कहना। याचना करना। जैसे,—(क) मैंने उनसे १० रुपए माँगे थे। (ख) तुम अपनी पुस्तक उनसे माँग लो। उ०—(क) सो प्रभु सों सरिता तरिबे कहँ माँगत नाउ करारे ह्वै ठाढ़े।—तुलसी (शब्द०)। (ख) माँगउँ दूसर वर कर जोरी।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी से कोई आकांक्षा पूरी करने के लिये कहना। जैसे,—हम तो ईश्वर से दिन रात यही माँगते हैं कि आप निरोग हों। उ०—माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**माँग जाँचकर**=इधर उधर से माँगकर। लोगों से लेकर। **माँग ताँककर** = दे० 'माँग जाँचकर'। **माँग बुलाना** = किसी के द्वारा किसी को अपने पास बुलवाना।

माँगफूल—संज्ञा पुं० [हिं० **माँग + फूल**] दे० 'माँगटीका'।

माँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मार्ग**? हिं० **माँग**] धुनियों की धुनकी में की वह लकड़ी जो उसकी उस डाँड़ी के ऊपर लगी रहती है जिसपर ताँत चढ़ाते हैं।

माँच—संज्ञा पुं० [देश०] १. पाल में हवा लगने के लिये चलते हुए जहाज का रुख कुछ तिरछा करना। गोस (लश०)। २. पाल के नीचेवाले कोने में बंधा हुआ वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को आगे बढ़ाकर या पीछे हटाकर हवा के रुख पर करते हैं। (लश०)।

माँचना(पु)[१]—क्रि० अ० [हिं० **मचना**] १. आरंभ होना। जारी होना। शुरू होना। उ०—देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रसिद्ध होना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्याम कुंज बिहारी की अटल अटल प्रीति माँची।—काष्ठजिह्वा (शब्द०)।

माँचना[२](पु)—क्रि० स० [हिं०] मानना। उ०—करै प्रेम की टोक रोक एको नहिं माँचत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८७।

माँचा†—संज्ञा पुं० [सं० मञ्च, हिं० मंझा] [स्त्री० **अल्पा० माँची**] १. पलंग। खाट। मंझा। २. खाट की तरह की बुनी हुई छोटी पीढ़ी जिसपर लोग बैठते हैं। ३. मचान।

माँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० **माँचा**] बैलगाड़ियों आदि में बैठने की जगह के आगे लगी हुई वह जालीदार झोली जिसमें माल असबाब रखते हैं।

माँछ†[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मत्स्य**, प्रा० **मच्छ**] मछली। उ०—आए सुगुन सुगुनअइ ताका। दहिउ माँछ रूपइ कर टाका।—जायसी (शब्द०)।

माँछ[२]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'माँच'।

माँछना—क्रि० अ० [सं० मध्य ?] घुसना। धँसना। पैठना। (लश०)।

माँछर†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मत्स्य**] मछली।

माँछलो†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मत्स्य**] मछली।

माँछी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मक्षिका**] दे० 'मक्खी'।

माँज—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दलदली भूमि। २. तराई। कछार। ३. वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। गंगबरार।

माँजना[१]—क्रि०स० [सं० **मञ्जन** या **मार्जन**] १. जोर से मलकर साफ करना। किसी वस्तु से रगड़कर मैल छुड़ाना। जैसे, बरतन माँजना। उ०—माँजत माँजत हार गया है, धागा नहीं निकलता है'। —कबीर श०, भा० पृ० ८१। २. थपुवे के तवे पर पानी देकर उसे ठीक करने के लिये उसके किनारे झुकाना (कुम्हार)। ३. सरेस को पानी में पकाकर उससे तानों के सूत रँगना। ४. सरेस और शीशे की बुकनी आदि लगाकर पतंग की नख के डोर को दृढ़ करना। माँझा देना।

माँजना[२]—क्रि० अ० १. अभ्यास करना। मश्क करना। जैसे, हाथ माँजना। २. किसी गीत या छंद को बार बार आवृत्ति करके पक्का करना।

माँजर(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पंजर या पाँजर**] हड्डियों की ठठरी।

पंजर। उ०—झुर झुर माँजर धन भई बिरह की लागी आग। —जायसी (शब्द०)।

माँजर(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० मार्जार] दे० 'मार्जार'। उ० दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल, बग माँजर सुनहा सही, एता परतख काल।—दादू०, पृ० २५२।

माँजा—संज्ञा पुं० [देश०] पहली वर्षा का फेन जो मछलियों के लिये मादक होता है। उ०—(क) नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तलपत विषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा। —तुलसी (शब्द०)।

माँ जाया—संज्ञा पुं० [हिं० माँ+जाया(=जात)] [स्त्री० माँजाई] माँ से उत्पन्न सगा भाई।

माँजिणउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मज्जन; प्रा० मज्जण, मंजण] दे० 'मज्जन'। उ०—साखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनंत।—ढोला०, पृ० ५३५।

माँझ(पु)†[१]—अव्य० [सं० मध्य] में। भीतर। बीच। अंदर। उ०—(क) अजहि चलौ आई अब साँझ। सुरभी सबै लेहु आगे करि रैनि होइ पुनि बनहीं माँझ।—सूर (शब्द०)। (ख) तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन योधा बद। —तुलसी (शब्द०)। (ग) आपुस माँझ महोदर साँचे। क्यों तुम बीर विरोधिन राँचे।—केशव (शब्द०)। (घ) सेज करि सौतिन मजेज सों निकेत माँझ, पर पति हेत सेज साँझ ते सँवारती।—प्रताप (शब्द०)।

माँझ(पु)†[२]—संज्ञा पुं० १. अंतर। फरक।

मुहा०—**माँझ पड़ना या होना**=बीच पड़ना। अंतर पड़ना। उ०—द्वादश बरष माँझ भयो तब ही पिता सेवा सावधान मन नीको कर आनिए।—प्रियादास (शब्द०)।

२. नदी के बीच में पड़ी हुई रेतीली भूमि।

माँझल(पु)—अव्य० [हिं० माँझ+ल (प्रत्य०)] दे० 'माँझ'। उ०—अरि देखै आराण मैं, तृण मुख माँझल त्यांह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १।

माँझा[१]—संज्ञा पुं० [मध्य] १. नदी के बीच की जमीन। नदी में का टापू। २. एक प्रकार का आभूषण जो पगड़ी पर पहना जाता है। उ०—पैर में लेगर पाग पर माँझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बख्शता हूँ।—राधाकृष्णदास (शब्द०)। ३. एक प्रकार का ढाँचा जो गोड़ई के बीच में रहता है और जो पाई को जमीन पर गिरने से रोकता (जुलाहे)। ४. वृक्ष का तना। ५. वे पीले कपड़े जो कहीं कहीं वर और कन्या को विवाह से दो तीन दिन पहले हलदी चढ़ने पर पहनाए जाते हैं।

माँझा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **माँजना**] पतंग या गुड्डी उड़ाने की डोर या नख पर सरेस और शीशे के चूरे आदि से चढ़ाया जानेवाला कलफ जिससे डोरे या नख में मजबूती आती है। उ०—मिहीन सूत संत जन कातैं माँझा प्रेम भगति का।—कबीर श०, भा०, पृ० ७७।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।

माँझा[३]—संज्ञा पुं० दे० 'मंझा'।

माँझिन, माँझिम†(पु)- वि० [सं० मध्यम, प्रा० मज्झिम; राज० **माँझिम**] दे० 'मध्यम'। उ०—(क) का हसि करि म्हाँ सीख दे खड़िस्याँ माँझिन रात।—ढोला०, दू० २७८। (ख) किणहीं अवगुण कूँझड़ी कुरली माँझिम रत्त।-ढोला०, दू० ५७।

माँ झिल†(पु) क्रि० वि० [सं० मध्यम] बीच का। मध्य का। बीचवाला। उ०—बोला माँझिल तलय तुरंग तेंतीस जू। लावहु मम हित माँगि ग्राम गुरु बीस जू।—विश्राम (शब्द०)।

माँझी[१] संज्ञा पुं० [सं० मध्य, हिं० माँझ या देश०] १. नाव खेनेवाला। केवट। मल्लाह। २. दो व्यक्तियों के बीच में पड़कर मामला तै करा देनेवाला। उ०—सँवारि रकत नैनन भरि चुवा। रोइ हँकारेसि माँझी सुवा।—जायसी (शब्द०)। ३. जोरावर। बलवान्। (डिं०)।

माँझी(पु)[२]—वि० मुख्य। अग्रणी। उ०—सुंदर घर बाहर अजबसाह, एतला आद माँझी अथाह।—रा० रू०, पृ० १८४।

माँट(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मट्टक] मिट्टी का बड़ा बरतन जिसमें अनाज या पानी आदि रखते हैं। मटका। कुंडा। उ०—(क) पुनि कर्मडलु धरयो तहाँ सो बढ़ि गयो कुंभ धरि बहुरि पुनि माँट राख्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) मानो नील माँट महँ बोरे लै यमुना जु पखारे।—सूर (शब्द०)। २. घर का ऊपरी भाग। अटारी।

माँटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिट्टी] दे० 'माटी'। उ०—जौ नियान तन होइहि छारा। माटी पौखि मरै को भारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०८।

माँठ—संज्ञा पुं० [सं० मट्टक] १. मटका। मिट्टी का बड़ा बरतन। २. नील घोलने का मिट्टी का बना बड़ा बरतन।

माँठी(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की फूल धातु की ढली हुई चूड़ियाँ जो पूरब में नीच जाति की स्त्रियाँ हाथ में कलाई से लेकर कोहनी तक पहनती हैं। इसे 'मठिया' भी कहते हैं। २. मट्ठो या मठरी नामक पकवान जो मैदे का बना होता है।

माँड़[१]—संज्ञा पुं० [सं० मण्ड] पकाए हुए चावलों में से निकला हुआ लसदार पानी। भात का पसेव। पीच। पसाव। उ०—चावल रँग माँड मँडै भनसै।—घट०, पृ० ८७।

माँड़[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **माँडना**] १. माड़ने को क्रिया या भाव। २. सँवारी या बनावटी बात। झूठी बात। उ०—पाड्यो कहु कइ परतिष (इ) भाँड़। झूठ कथइ छइ बोलइ छइ माँड।—बी० रासो०, पृ० ४१।

माँड़[३]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का राग।

माँड़ना(पु)†—क्रि० स० [सं० मण्डन] मर्दन करना। मलना। मसलना। मींजना। सानना। गूँधना। जैसे, आटा माँड़ना। उ०—तब पीसै जब पहिले धोए। कापरछान माँड़ भल होए।—जायसी (शब्द०)। २. लगाना। पोतना। लेपन करना। जैसे, मुँह में केसर या गुलाब माँड़ना। उ०—वेद

मंत्र पढ़ि साधि करम विधि यज्ञ करत जेहि लागी जू । ताको मुख माँडत केशरि सों ब्रज युवती रसपागी जू ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७८ । ३. रचना । बनाना । सजाना । †४. लगाना । मारना । जमाना । जैसे, आसन माँड़ना । उ०—स्वामी जी बसत भवना जागन बैठे आसण माँड़ बाली ।—रामानंद०, पृ० १४ । ५. किसी अन्न की बाल में से दाने झाड़ना । उ०—साँचो सो लिखवार कहावै ।... माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै । —सूर (शब्द०) । ६. मचाना । ठानना । जैसे, युद्ध माँड़ना । और मंत्र कुछ उर जनि आनो आजु सुकपि रन माँडहि ।—सूर (शब्द०) । ६. धरना । लगाना । करना । उ० – साप काचली छाँडे बीस ही न छाँडे उदक में बक ध्यान माँडे ।—दक्खिनी०, पृ० ३५ । ७. लेना । उठाना । उ०— जनम जनम अनते नहिं जाँचों फिर नहिं माँड़ो झोली जू । —नंद० ग्रं०, पृ० ३३७ । ८. स्थिर करना । स्थिरतापूर्वक रखना । उ०—कायर सेरी ताकवै सूरा माँड़ै पाँव ।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २६ ।

माँडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मण्डन**] संजाफ । मग्जी । गोट । हाशिया । किनारा । उ०—अँगिया नील माँडनी रानी निरखत नैन चुराई ।—सूर (शब्द०) । (ख) नील कंचुकी माँडनि लाल । भुजनि नवइ आभूषण माल ।—सूर (शब्द०) ।

माँड़हा‡—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डप**, हिं० **माँड़वा**] विवाह का माँड़व । विवाहमंडप । उ०– ए व्यारइ वेद उचरइ, चउरी दीसउ माँड़हा माँहि ।—बी० रासो, पृ० २१ ।

माँडली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मंडली**] बैठक । उ०—खेलाँ मेल्ह्या माँडली । बइस माँहि मोहेउ छइ राइ ।—बी० रासो, पृ० ३ ।

माँड़व—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डप**] विवाह आदि अथवा दूसरे शुभ कृत्यों के लिये छाया हुआ मंडप । उ०- (क) आलेहि बाँस के माँडव मनिगन पुरन हो । मोतिन झालर लागि चहूँ दिसि झूलन हो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मुनिगन कहेउ नृप माँडव छावन गावहिं गीत सुआसिन बाज बधावन ।—तुलसी (शब्द०) ।

माँड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मण्ड**] आँख का एक रोग जिसमें उसके ऊपरी पर्दे के अंदर महीन झिल्ली सी पड़ जाती है ।

विशेष—इस झिल्ली का रंग चावल के माँड़ के समान होता है । यह औषधोपचार या शस्त्रक्रिया से निकाला भी जाता है ।

माँडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डप**] मंडप । मँड़वा ।

माँड़ा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० **माँड़ना** (= गूँधना)] १. एक प्रकार की बहुत पतली रोटी जो मैदे की होती है और घी में पकती है । लुचई । उ०—(क) मुर्दा दोजख में जाय या बिहिश्त में, हमें तो अपने हलुवे माँड़े से काम है । (कहावत) । (ख) काकी भूख गई बयारि भख बिना दूध घृत माँड़े ।—सूर (शब्द०) । २. एक प्रकार की रोटी जो तवे पर थोड़ा घी लगाकर पकाई जाती है । पराँठा । उलटा ।

माँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मण्ड**] १. भात का पसावन । पीच । माँड़ । २. कपड़े या सूत के ऊपर चढ़ाया जानेवाला कलफ जो भिन्न भिन्न कपड़ों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार से तैयार किया जाता है । उ०—सुरति ताना करै, पवन भरनी भरै, माँड़ी प्रेम अँग अंग भीनै ।—पलटू०, पृ० २५ ।

विशेष—यह माँड़ी आटे, मैदे अनेक प्रकार के चावलों तथा कुछ बीजों से तैयार की जाती है और प्रायः लेई के रूप में होती है । कपड़ों में इसकी सहायता से कड़ापन या करारापन लाया जाता है ।

क्रि० प्र०—**देना** ।—**लगाना** ।

माँड़ौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डित** या **मण्डप**] विवाह का मंडप । उ०—माँड़ौ गड़ो रंगमंदिर के आँगन वेद विधाना । ता ऊपर जरकसी रज्जु अरु मणिमय विशद बिताना ।—रघुराज (शब्द०) ।

माँड्यो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डप**] १. आगंतुक लोगों के ठहरने का स्थान । अतिथिशाला । २. विवाहादि के घर में वह स्थान जहाँ संपूर्ण आहूत देवताओं का स्थापन किया जाता है । ३. विवाह का मंडप । मँड़वा । उ०—आए नाथ द्वारिका नीके रच्यो माँड्यो छाय । व्याह केलि बिधि रची सकल सुख सौंज गनी नहिं जाय ।—सूर (शब्द०) ।

माँढा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'माँड़व' । उ०—नयरी नइ माँढे बीचइँ । हस्ती पायक अंत न पार ।—बी० रासो, पृ० १० ।

माँण†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मान**] दे० 'मान' ।

माँणस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मानुष**, प्रा० **माणुस**] दे० 'मानुस' । उ०—दादू सतगुरु पसु मानस करै, माणस थैं सिध सोइ ।— दादू०, पृ० ३ ।

माँत(पु)[1]—वि० [सं० **मत्त**] १. उन्मत्त । मस्त । मत्त । बेसुध । २. दीवाना । पागल ।

माँत[2]—वि० [हिं० **माता** या सं० **मन्द**] १. बेरौनक । उदास । बदरंग । उ०—पड़ा मात गोरख कर चेला । जिय तन छाँड़ि स्वर्ग कहँ खेला ।—जायसी (शब्द०) । २. हारा हुआ । पराजित । मात ।

माँतना(पु)†—क्रि० अ० [सं० **मत्त** + हिं० **ना** (प्रत्य०)] मतवाला होना । उन्मत्त होना । पागल होना ।

माँता(पु)†—वि० [सं० **मत्त**] [वि० स्त्री० **माँती**] मतवाला । उन्मत्त । उ०—(क) आठ पहर अमला रा माँता हेलौ देता डोलौ ।— घनानंद, पृ ४४५ । (ख) औ कलवारि प्रेम मधु माँती ।— जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४६ ।

माँथ†—संज्ञा पुं० [सं० **मस्तक**] माथा । सिर । उ०—रावन चहा सौहँ होइ हेरा उतरि गए दस माँथ ।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २२६ ।

माँथबंधन—संज्ञा पुं० [हिं० **माँथ** + **बंधन**] १. सूत या ऊन की डोरी जिससे स्त्रियाँ सिर के बाल बाँधती हैं । पराँदा । चबकी । चँवरी । २. सिर पर लपेटने या बाँधने का कपड़ा । जैसे, पगड़ी, साफा आदि ।

माँद[1]—वि० [सं० मन्द] बेरौनक। उदास। बदरंग। २. किसी के मुकाबले में फीका। खराब या हलका।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

३. पराजित। हारा हुआ। मात।

माँद[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गोबर का वह ढेर जो पड़ा पड़ा सूख जाता है और जो प्रायः जलाने के काम आता है। इसकी आँच उपलों की आँच के मुकाबले में मंद या धीमी होती है। २. हिंसक जंतुओं के रहने का विवर। बिल। गुफा। चुर। खोह।

माँद[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० माँदगी] बीमारी। रोग। उ०—मावडिया तन मैण रा मिटै कदे नह माँद। बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० २१।

माँदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बीमारी। रोग। २. थकावट।

माँदर, माँदल—संज्ञा पुं० [हिं० मर्दल] मृदंग का एक भेद जिसे मर्दल कहते हैं। उ०—(क) बाजहिं ढोल दुंदु अरु भेरी। माँदर तूर झाँझ चहुँफेरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) कबीर सब जग हौं फिरयो माँदलु कंध चढ़ाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६०।

माँदा[1]—वि० [फा० माँदह्] १. थका हुआ। श्रांत। २. बचा हुआ। बाकी। अवशिष्ट।

माँदा[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० माँदी] रोगी। बीमार। उ०—अब मुझे डर लगता है। मैं माँदी हो जाऊँगी।—पिंजरे०, पृ० ६३।

माँदिनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० उन्मादिनी या मत्तिनी] उन्मादिनी। मदविह्वल। उ०—फूले कँवल अनंत चहूँ दिसि चाँदनी। सुंदर बिरहिनि देखि भई है माँदिनी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ३६४।

माँदी†—संज्ञा स्त्री० [देश० माँद ?] १. विवर। बिल। २. कोष।, मियान। उ०—जब लगि माँदी महँ रहि गोई। तबहीं लहु निरभै सब कोई।—चित्रा०, पृ० १४२।

माँनस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मानुष] दे० 'मानुस'। उ०—भला घराँ रा माँनसाँ नै काँनाँ लागि बिगाड़ै है।—घनानंद, पृ० ३३४।

माँनुछ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] दे० 'मानुस'। उ०—माँनुछ न जानियतु देवगति।—पृ० रा०, १२।२६४।

माँनो(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'मानो'। उ०—नंददास पुहुपन मधि माँनो मधुप पुंज सोवत कलमले।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५३।

माँपना†(पु)[1]—क्रि० अ० [हिं० माँतना] नशे में चूर होना। उन्मत्त होना। उ०—नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहिं खाइ मीन जनु माँपी।—तुलसी (शब्द०)।

माँपना[2]—क्रि० स० [सं० मापन] दे० 'मापना'।

माँम†—वि० [हिं० मामला (=लड़ाई), डिं० ?] युद्ध करनेवाला। उ०—रूके आटा रक्खणा मोटा कामाँ माँम।—रा० रू०, पृ० १३७।

माँमला(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुआमलह्, हिं० मामला] युद्ध। लड़ाई। उ०—मीसण पड़िया माँमला।—रा० रू०, पृ० ४०।

माँयँ—अव्य० [सं० मध्य, हिं० माँझ] में। बीच। मध्य। अंदर। उ०—वरष एक के माँयँ, एकादशी चौबिस परैं। सुनौ सबन के माँयँ, फल समेत वर्णन कए।—विश्राम (शब्द०)।

माँस†[1]—संज्ञा पुं० [सं० मास] महीना। मास। उ०—ठारौ सौ रु पचोतरा पूस माँस सित पच्छ।—सुजान०, पृ० ३७।

माँस(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० मांस] दे० 'मांस'। उ०—असिपत्र विपिन महँ चलहू। खायो माँस सोई फल लहहू।—कबीर सा०, पृ० ४६७।

माँसी[1]—वि० [सं० माष] उर्द के रंग का।

माँसी[2]—संज्ञा पुं० उर्द के रंग के समान एक प्रकार का हरा रंग।

माँसी[3]—संज्ञा स्त्री० [टिं० मौसी] दे० 'मासी' या 'मौसी'।

माँसु, माँसू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मांस] दे० 'मांस'। उ०—जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू। कथा न रकत न नैनन आँसू।—जायसी (शब्द०)।

माँह(पु)—अव्य० [सं० मध्य] में। बीच। अंदर। भीतर।

माँहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० महावट] दे० 'महावट'। उ०—पिय बिनु हिय घन गहबर आवा। नैनन्ह मिलि माँहट बरिसावा।—चित्रा०, पृ० १७३।

माँहा(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'माँह'। उ०—भएउ हुलास नवल रितु माँहाँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४४।

माँहिं(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'माँह'।

माँहिला†(पु)—अव्य० [हिं० माँहिं] मध्य का। भीतरी। उ०—जिम दरिया सतगुर चवै, देख माँहिला भाव।—दरिया०, बानी, पृ० ५।

माँही(पु)†—अव्य० [सं० मध्य] दे० 'माँह'।

माँहैं, माँहैं(पु)—अव्य० [हिं०] 'माँह'। उ०—मायारा आडंबर माँहैं बंदा केम बँधाणो।—रघु० रू०, पृ० १६।

माँहोमाँहि(पु)—अव्य० [हिं० माँह] बीचोबीच। उ०—मिश्रत माँहों माँहि मिल, बाँधै उकत विशेष।—रघु० रू०, पृ० ४८।

मा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। उ०—सिंधु सुता मा इंदिरा विष्णुवल्लभा सोइ।—अनेकार्थ० (शब्द०)। २. माता। ३. ज्ञान। ४. दीप्ति। प्रकाश। ५. माप। (को०)।

मा[2]—सर्व० न। नहीं। मत।

यौ०—मानाथ। माप। मापति = दे० 'माप'। माबर = विष्णु।

माअनी—संज्ञा पुं० [अ०] तात्पर्य। मतलब। अर्थ। उ०—अब मैं कबीर के माअनी अरबी में प्रगट करता हूँ।—कबीर मं०, पृ० ४२०।

माइँ, माइँ(पु)[1]-अव्य० [सं० मध्य, हिं० माँयँ, माँहिं] 'माँह'। उ०—(क) सो ब्रह्म बतायौ गुरु आप माइँ।—रामानंद०, पृ० ८ (ख) पावक देख डरे वह नाहीं हँसत बैठ सरा माईं।—कबीर श०, भा०, १ पृ० ३५। (ग) षट मास माईं मिले साईं अचल पाई धाम ए।—राम० धर्म० पृ० २५७।

माइँ, माइँ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] छोटा पुआ जिससे विवाह में मातृपूजन किया जाता है।

मुहा०—माइँन में थापना = पितरों के समान आदर करना।

उ०—जौ लौ हौ जीवन मर जीवों सदा नाम तुव जपिहौं। दधि ओदन दोना करि देहौं अरु माइँन में थपिहौं।—सूर (शब्द०)।

माइँ, माइँ[३]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पुत्री। लड़की। कन्या।

माइँ, माइँ[४]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मामा**] मामा की स्त्री। मामी।

माइ ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृ**] दे० 'माई'। उ०—(क) तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।—केशव (शब्द०)। (ख) मेरे गुरु को धनुष वह सीता मेरी माइ।—केशव (शब्द०)। २. सखी। उ०—भल भेल माइ हे कुदिवस मेला। चाँद कुमुद दुहु दरसन भेल।—विद्यापति, पृ० २८२।

माइक—संज्ञा पुं० [अं०] ध्वनिविस्तारक यंत्र। अँगरेजी के माइक्रोफोन शब्द का बोलचाल में संक्षिप्त रूप।

माइका[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मातृ+गृह**] स्त्री के लिये उसके माता पिता का घर। नैहर। उ०—(क) और ता माहि सबै सुख री दुख री यहै माइके जान न देत है। पद्माकर (शब्द०)। बैठी हुती तिय माइके मैं ससुरारि को काहू सँदेस सुनायो।—मतिराम (शब्द०)।

माइका[२]—संज्ञा पुं० [अं०] अबरक। अभ्रक।

माइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. खान। २. बारूद की सुरंग।

माइना†—संज्ञा पुं० [अ० **मानी**] अर्थ। अभिप्राय। उ०—दोय हरफ में माइना सबही बेद पुरान।—दरिया० बानी पृ० ४३।

माइनारिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. अल्प संख्या। आधे से कम संख्या। २. वह पार्टी या दल जिसके वोट कम हों।

माइल ⓤ—वि० [अ०] आकर्षित। आसक्त। प्रवृत्त। उ०—मुरली वाले न माइल कीतो दारू दरसन पावों।—घनानंद पृ० ४३२।

माई[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृ**] १. माता। जननी। माँ।

यौ०—माई का लाल=(१) उदार चित्तवाला व्यक्ति। उ०—क्या फिर कोई देवनंदन जैसा माई का लाल न जनमेगा।—अयोध्या (शब्द०)। (२) वीर। शूर। बली। शक्तिवान्। उ०—(क) क्या ऐसा कोई माई का लाल नहीं है जो मुझको इनके हाथों से बचावे।—अयोध्या (शब्द०)। (ख) एक बार एक पंजाबी हाजी को बद्दुओं ने घेर लिया। उसने अपनी कमर से रुपये निकालकर सामने रख दिए और ललकार कर कहा कि कोई माई का लाल हो, तो इसे मेरे सामने से ले जाय।—सरस्वती (शब्द०)।

२. बूढ़ी या बड़ी स्त्री के लिये आदरसूचक शब्द। उ०—(क) सत्य कहौं मोहि जान दे माई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहहि झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सीय स्वयंबरु माई दोऊ भाई आए देखन।—तुलसी (शब्द०)। ३. महामाया। भगवती। देवी। ४. शीतला। चेचक। माता। उ०—हेहुआ के चेहरे पर माई की गोटी के दाग थे।—नई०, पृ०३४।

माई[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल माजू से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः हकीम लोग ओषधि के रूप में करते हैं।

माई लार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] लाटों तथा हाइकोर्ट के जजों को संबोधन करने का शब्द। जैसे,—माई लार्ड, आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अंग्रेजों में आपकी भाँति भारतवर्ष के विषय में शासननीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—बालमुकुंद (शब्द०)।

माउंट पुलिस—संज्ञा स्त्री० [अं० **माउंटेड पुलिस**] घुड़सवार पुलिस।

माउल्लहम—संज्ञा पुं० [अ०] हिकमत में मांस का बना हुआ एक प्रकार का अरक जो बहुत अधिक पुष्टिकारक माना जाता है और जिसका व्यवहार प्रायः जाड़े के दिनों में शरीर का बल बढ़ाने के लिये होता है।

माकंद—संज्ञा पुं० [**माकन्द**] १. आम का वृक्ष। २. दे० 'मानकंद'।

माकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० **माकन्दा**] १. आँवला। २. पीला चंदन। ३. महाभारत काल के एक गाँव का नाम।

विशेष—युधिष्ठिर ने दुर्योधन से जो पाँच गाँव माँगे थे, उनमें से एक यह भी था।

माकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **माकरी**] १. मकर से संबंधित। २. मकर का।

यौ०—माकराकर=समुद्र। मकराकर। **माकरव्यूह**=सेना की मकर के रूप में व्यूहबद्ध स्थिति। **मकरासन**=दे० 'मकरासन'।

माकरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरुआ।

माकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी जो एक पुण्यतिथि मानी जाती है।

माकल—संज्ञा स्त्री० [देश०] इंद्रायन नाम की लता।

माकलि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. इंद्र के सारथी मातलि का एक नाम।

माकुली—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

माकूल[१]—वि० [अ० **माकूल**] १. उचित। वाजिब। ठीक। २. लायक। योग्य। उ०—मुहर्रिर भी आपको बहुत ही माकूल मिल गए हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९४। ३. यथेष्ट। पूरा। ४. अच्छा। बढ़िया। ५. जिसने वादविवाद में प्रतिपक्षी की बात मान ली हो। जो निरुत्तर हो गया हो। ६. सभ्य। शिष्ट (को०)। ७. शुद्ध (को०)।

माकूल—संज्ञा पुं० तर्कशास्त्र। न्याय दर्शन [को०]।

माकूलियत—संज्ञा स्त्री० [अ० **माकूलियत माकूलायत**] १. औचित्य। माकूल होने का भाव। २. शिष्टता। सज्जनता। ३. उत्तमता। अच्छाइ [को०]।

माकूली—वि० [अ० **माकूली**] नैयायिक। न्यायशास्त्र का ज्ञाता [को०]।

माकूस—वि० [अ०] १. उलटा। औंधा। २. विपरीत [को०]।

माक्षिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहद। मधु। २. सोनामक्खी। ३. रूपामक्खी।

माक्षिक[2]—वि०(मधु की) मक्खियों से संबंधित या मक्खियों का ।

माक्षिकज—संज्ञा पुं० [सं०] मोम ।

माक्षिकधातु—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णमाक्षिक । सोनामक्खी [को०] ।

माक्षिकफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नारियल [को०] ।

माक्षिकशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधु से निर्मित मिसरी [को०] ।

माक्षिकांत—संज्ञा पुं० [सं० **माक्षिकान्त**] माधवी नामक मद्य । महुए की शराब ।

माक्षिकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मोम ।

माक्षीक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधु । शहद । २. सोनामक्खी । ३. रूपामक्खी ।

माक्षीक[2]—वि० दे० 'माक्षिक' ।

माख[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **माखी**] यज्ञ संबंधी । यज्ञीय । यज्ञ या मख का [को०] ।

माख(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मक्ष**] १. अप्रसन्नता । नाराजगी । नाखुशी । क्रोध । रिस । उ०—(क) देखेउँ आय जो कछु कपि भाखा । तुम्हरे लाज न रोस न माखा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) लीबे को लाख करै अभिलाष करै कहूँ माख परे कबहूँ हँसि ।—बेनी (शब्द०) । २. अभिमान । घमंड । ३. पछतावा । ४. अपने दोष को ढँकना ।

माखन—संज्ञा पुं० [हिं०] 'मक्खन' । उ०—(क) माखन ते मन कोमल है यह बानि त जानति कौन कठोर है ।—आनंदघन (शब्द०) । (ख) ता खिन ते इन आँखिन ते न कढ़ो वह माखन चाखनहारो ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बातैं ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—**माखनचोर**=श्रीकृष्ण ।

माखना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० **माख से नामिक**] अप्रसन्न होना । नाराज होना । क्रोध करना । उ०—(क) अब जनि कोउ माखइ भट मानी । बीरबिहीन मही मैं जानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) माखे लखन कुटिल भइँ भौहैं । रदपुट फरकत नैन रिसौहैं ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पत्र सुनत रतनावती मुंडन कीन्ह्यौ केश । सुनत माखि मारन चह्यौ रतनावतिहिं नरेश ।—रघुराज (शब्द०) । (घ) कछू न थिरता लहै छनक रीझै छन माखै ।—व्यास (शब्द०) ।

माखनी—वि० [हिं० **माखन+ई**] मक्खन के रंग का । सफेद । उ०—बटन रोज बहु लाल, ताम्र माखनी रंग के कोमल ।—ग्राम्या, पृ० ७६ ।

माखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **माखी**] मक्खी का पुलिंग । नर मक्खी । उ०—वा माखी के माखा नाहीं गरभ रहा बिन पानी ।—घट०, ३५६ ।

माखी[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **माक्षिक**] १. मक्खी । उ०—(क) दूध की माख उजागर बीर सो हाय मैं आँखिन देखत खाई ।—ठाकुर (शब्द०) । (ख) चंदन पास न बैठे माखी ।—जायसी (शब्द०) । (ग) भामिनि भयउ दूध कर माखी ।—तुलसी (शब्द०) । २. सोनामक्खी ।

माखो[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मक्खी**] शहद की मक्खी । (पश्चिम) ।

माखो[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुख ? या देश०**] लोगों में फैलनेवाली चर्चा । जनरव ।

मागध—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन जाति जो मनु के अनुसार वैश्य के वीर्य से क्षत्रिय कन्या के गर्भ से उत्पन्न है। इस जाति के लोग वंशक्रम से विरुदावली का वर्णन करते हैं और प्रायः 'भाट' कहलाते हैं। उ०—(क) मागध बंदी सूत गण बिरद बदहिं मति धीर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मागध बंशावली बखाना ।—रघुराज (शब्द०) । २. जरासंध का एक नाम जो मगध का नरेश था । उ०—मागध मगध देश ते आयो लीन्हें फौज अपार ।—सूर (शब्द०) । ३. जीरा । ४. पिप्पलीमूल ।

मागध[2]—वि० [सं० **मगध**] मगध देश का ।

मागधक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मागध । भाट । २. मगध देश का निवासी ।

मागधपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मगध की पुरानी राजधानी, राजगृह ।

मागधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मगध की राजकुमारी । २. पिप्पली ।

मागधिक—वि० [सं०] मगध देश संबंधी । मगध का ।

मागधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिप्पली । पीपल । २. मगध की राजकुमारी ।

मागधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मगध देश की प्राचीन प्राकृत भाषा । २. जूही । यूथिका । ३. शक्कर । चीनी । ४. छोटी पीपल । पिप्पली । ६. सुफेद जीरा (को०) । ७. एक नदी का नाम । शोण नदी (को०) । ८. मगध की राजकन्या (को०) । ९. मागध जाति की महिला (को०) ।

मागरवाल†—वि० [हिं० **माँगना+वाल** (प्रत्य०)] माँगनेवाला । उ०—मागरवाल जू आविया देसे माल्ह सुजाँण ।—ढोला०, दू० १८४ ।

मागि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मार्ग**, प्रा० **मग्ग, माग**] दे० 'मग' । उ०—उक्कंबी सिर हथ्थड़ा, चाहंती रस लुध्ध । ऊँची चढ़ि चातृंगि जिउँ, मागि निहालइ मुध्ध ।—ढोल०, दू० १६ ।

माघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्यारहवाँ चांद्र मास जो पूस के बाद और फागुन से पहले पड़ता है । उ०—माघ मकर गत रवि जब होई । तीरथपतिहिं आव सब कोई ।—तुलसी (शब्द०) । २. संस्कृत के एक प्रसिद्ध कवि का नाम । ३. उपर्युक्त कवि का बनाया हुआ एक प्रसिद्ध काव्यग्रंथ जिसमें कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध वर्णन किया गया है ।

माघ[2]—संज्ञा पुं० [सं० **माध्य**] कुंद का फूल । उ०—मुसुकान कढ़हिं रद माघ से फाल्गुन सो जोधा महत ।—गोपाल (शब्द०) ।

माघवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा ।

माघी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **माघ+ई**] माघ मास की पूर्णिमा जो मघा नक्षत्र से युक्त होती हैं । कहते हैं कि कलियुग का आरंभ इसी तिथि को हुआ था ।

माघी[2]—वि० माघ का । जैसे, माघी मिर्च ।

माघोन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **माघोनी**] पूर्व दिशा।

माध्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का फूल।

माच(पु)१—संज्ञा पुं० [सं० **मञ्च**] दे० 'मचान'। उ०—जब यदुपति कुल कंसहि मारचो। तिहूँ भुवन भयो सोर पसारचो। तुरत माच तें धरनि गिरायो। ऐसेहि मारत बिलम न लायो।—सूर (शब्द०)।

माच२—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग। रास्ता।

माचना(पु)†—क्रि० स० [हिं० **मचना**] दे० 'मचना'। उ०—(क) इमि संगर माचत भयो मधुबन के सब ओर।—गोपाल (शब्द०)। (ख) द्वादस दिवस चहूँ दिसि माच्यो फागु सकल ब्रज माँझ।—सूर (शब्द०)। (ग) बंदौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।—तुलसी (शब्द०)। (घ) कहै पदमाकर त्यों तिनको अवाइन के, माचि रहे जार सुरलोकन में सोर है।—पद्माकर (शब्द०)।

माचल(पु)१—वि० [हिं० **मचलना**] १. मचलनेवाला। जिद्दी। हठी। उ०—महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहि। परयौ हौं प्रण किए द्वारे लाज प्रण की तोहि।—सूर (शब्द०)। २. मचला।

माचल२—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह। २. रोग। बीमारी। ३. बंदी। कैदी। ४. ग्राह (को०)। ५. चोर।

माचा†—संज्ञा पुं० [सं० **मञ्च**] बैठने की पीढ़ी जो खाट की तरह बुनी होती है। बड़ी मचिया।

माचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मक्खी। २. अमड़े का वृक्ष।

माचिस—संज्ञा पुं० [अं० **मैच**] दियासलाई। दियासलाई की तीली। उ०—इसी तरह सेमल की लकड़ी से माचिस बनाने व विभिन्न प्रकार के खिलौने तैयार करने, बाँस से टोकनियाँ व चटाइयाँ आदि बनाने के कुटीर उद्योग राज्य के हजारों विकेंद्रित ग्रामों में पाए जाते हैं।— शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० ७५।

माची†— संज्ञा स्त्री० [सं० **मञ्च**] १. हल जोतने का जुआ। वह जुआ जो हल जोतते समय बैलों के कंधे पर रखा जाता है। बैलगाड़ी में वह स्थान जहाँ गाड़ीवान बैठता और अपना सामान रखता है। ३. बैठने की वह पीढ़ी जो खाट की तरह बुनी हुई होती है।

माचीक—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार।

माचीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जिसे सुरपर्णा भी कहते हैं।

माछ†—संज्ञा पुं० [सं० **मत्स्य० प्रा० मच्छ**] मछली। उ०—चारा मेलि धरा जस माछू।—जायसी (शब्द०)।

माछर†१—संज्ञा पुं० [हिं० **मच्छर**] दे० 'मच्छड़'।

माछर२—संज्ञा पुं० [सं० **मत्स्य**] दे० 'मछली'। उ०—वह कैलाश इंद्र कर बासू। जहाँ न अन्न न माछर माँसू।—जायसी (शब्द०)।

माछी†१—संज्ञा स्त्री० [सं० **मक्षिका**] १. मक्खी। उ०—काँचो रोटी कुचकुची परती माछी बार। फूहर वही सराहिए परसत टपकै लार। गिरधर (शब्द०)। विशेष दे० 'मछिया'।

माछी‡२—संज्ञा स्त्री० [सं० **मत्स्य**] मछली। (क्व०)।

माजरा—संज्ञा पुं० [अ०] १. हाल। वृत्तांत। २. घटना।

माजल—संज्ञा पुं० [सं०] चास पक्षी [को०]।

माजी—वि० [अ० **माज़ी**] बीता हुआ काल। अतीत समय। भूतकाल। उ०— सुखन सूँ होवे बाज माजी व हाल। गुजिश्त्या का समाज में आवे अहवाल।—दक्खिनी०, पृ० २३६।

माजू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की झाड़ी जो यूनान और फारस आदि देशों में बहुतायत से होती है।

विशेष—इसकी आकृति सरो की सी होती है। इसकी डालियों पर से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो 'माजूफल' कहलाता है और जिसका व्यवहार रंग तथा ओषधि के लिये होता है।

माजून—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. औषध के रूप में काम आनेवाला कोई मीठा अवलेह। २. वह बरफी या अवलेह जिसमें भाँग मिली हो।

यौ०—**माजूनकश**=माजून निकालने की खुर्चनी आदि।

माजूफल—संज्ञा पुं० [फ़ा० माजू + हिं० **फल**] माजू नामक झाड़ी का गोटा या गोंद जो ओषध तथा रँगाई के काम में आता है।

पर्या०—मायाफला। **माईफल**। **सागरगोटा**।

माजूर—वि० [अ० **माजूर**] १. जिसे किसी सेवा या परिश्रम का फल दिया गया हो। प्रतिफलित। २. असमर्थ। लाचार। विवश। उ०—बेचारी आँखों से माजूर हो गई थी।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७०४।

माझ—वि० [सं० **मध्यस्थ ? या माध्यक ?**] १. मुखिया। मुख्य। उ०—(क) अरी ढाहि ढंढौरि माझी कनक्के।—पृ० रा०, ६१।२१७६। (ख) माझी बर मरदान मान मरदा मिलि तोरन।—पृ० रा०, ६१। २०७७। (ग) माझी खिराक मिजाज, बे अदबी सातूं विसन।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६२। २. मध्यस्थ। उ०—सँवरि रकत नैनिहिं भरि चूआ। रोइ हँकारेसि माझा सूआ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६६।

माटंक—संज्ञा पुं० [सं० **माटङ्क**] नमक का बाजार। नमक की हाट [को०]।

माट१—संज्ञा पुं० [हिं० **मटका**] १. मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का बड़ा बरतन जिसमें रँगरेज लोग रंग बनाते हैं। इसे 'मठोर' भी कहते है। २. माठ। मिट्टी का बहुत बड़ा बर्तन, जिसमें किसान लोग अन्न भरते हैं।

मुहा०—**माट बिगड़ जाना**=किसी के स्वभाव का ऐसा बिगड़ जाना कि उसका सुधार असंभव हो।

२. बड़ी मटकी जिसमें दही रखा जाता है। उ०—(क) सिर दधि माखन के माट गावत गीत नए। कर माँझ मृदंग बजाइ सब नँद भवन गए।—सूर (शब्द०)। (ख) एक भूमि ते भाजन बहु बिधि कुंडा करवा हड़िया माट।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७३।

माट[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है ।

माटा—संज्ञा पुं० [हिं० **मटा**] लाल च्यूँटा जिसके झुंड के झुंड पत्तों के झोंझ में आम के पेड़ों पर रहते हैं ।

माटि—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । तनुत्राण [को०] ।

माटीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृत्तिका**, हिं० मिट्टी] १. दे० 'मिट्टी' । २. साल भर का जोताई या उसकी मेहनत । जैसे,—यह बैल चार माटी का चला है । ३. मृत शरीर । शव । लाश । उ०—(क) कहता सुनता देखता, लेता देता प्रान । दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसान ।—दादू (शब्द०) (ख) मरनो भलो बिदेस को जहाँ न अपनो कोय । माटी खायँ जनावरां महा महोच्छव होय ।—कबीर (शब्द०) । ४. शरीर । देह । उ० - काल आइ दिखराई साँटी । उठि जिउ चला छाँड़ि कै माटी —जायसी (शब्द०) । ५. पाँच तत्वों के अंतर्गत पृथ्वी नामक तत्व । उ०—पानी पवन आग अरु माटी । सब की पीठ तोर है साँटी ।—जायसी (शब्द०) । ६. धूल । रज । उ०—(क) गढ़ गिरि फूट भए सब माटी । हस्ति हेरान तहाँ का चाँटी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) महँगे माटी मग हू की मृगमद साथ जू । तुलसी (शब्द०) । (मुहा० के लिये दे० 'मिट्टी') ।

माठ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग । पंथ । सड़क [को०] ।

माठ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा**] एक प्रकार की मिठाई । उ०—भइ जो मिठाई कही न जाई । मुख मेलत खत जाय बिलाई । मतलड़ छाल और मरकोरी । माठ पिराँके और बुँदौरी ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—मैदे की एक मोटी और बड़ी पूरी पकाकर शक्कर के पाग में उसे पाग लेते हैं । इसी को माठ कहते हैं । यही मिठाई जब छोटे आकार में बनाई जाती है, तब उसे 'मठरी' वा 'टिकिया' कहते हैं । मठरी नमकीन भी बनाई जाती है ।

माठ[3]—संज्ञा पुं० [हिं० **मटकी** (सं० मार्त्त)] मिट्टी का पात्र जिसमें कोई तरल पदार्थ भरा जाय । मटकी । उ० - (क) मानो मजीठ की माठ ढरो इक ओर ते चाँदनी बोरत आवत । —शंभु कवि (शब्द०) । (ख) धरत जहाँ ही जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ, मंजुल मजीठ ही की माठ सी धरत जात ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) स्वामिदसा लखि लखन सखा कपि पघिले हैं आँच माठ मानो घिय के ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) टूट कंध सिर परै निरारे । माठ मँजीठ जानु रण ढारे ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—कविता में यह शब्द प्रायः स्त्रीलिंग ही मिलता है ।

माठ[4]—वि० [सं० **मष्ट, प्रा० मट्ठ**] मौन । दे० 'मष्ट' । उ०—(क) रह रह, सुंदरि, माठ करि, हलफल लग्गी काइ ।—ढोला०, दू० ३२१ । (ख) काइ लयंतउ माठि करि परदेशी प्रिय आँण ।—ढोला०, दू० ३४ ।

मुहा० **माठ करना** = दे० 'मष्ट' शब्द का मुहावरा ।

माठर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य के एक पारिपार्श्वक जो यम माने जाते हैं । २. व्यासदेव का नाम । ३. ब्राह्मण । ४. कलाल । ५. एक गोत्र का नाम (को०) ।

माठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मट्ठा' या 'मठा' ।

माठा[2]—संज्ञा पुं० [डिंगल] कृपण । कंजूस ।

माठी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो बंगाल, आसाम और उत्तर प्रदेश में अधिकता से होती है । आजकल यह कपास बहुत निम्न कोटि की मानी जाती है उ०—सूर प्रभु को औसरे अतिही भई अबेर री, बेग चलि सजि शृंगार काढ़ि माटी खग वारो आइकै साज ।—सूर (शब्द०) ।

माठी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच ।

माठी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] फूल नाम की धातु की बनी चूड़ी । मठिया । एक प्रकार का गहना जो हाथों में पहना जाता है ।

माठी[4]—संज्ञा स्त्री० [?] दाख ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४ ।

माठू—संज्ञा पुं० [देश०] १. बंदर । बानर । २. मूर्ख । (पश्चिम) ।

माड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० **माण्ड**] १. ताड़ की जाति का एक पेड़ । २. तौल ।

माड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० मण्ड] दे० 'माँड़' ।

माड़नाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० **मण्ड**] ठानना । मचाना । करना । उ०—(क) निरखि यदुवंश को रहस मन में भयो देखि अनिरुद्ध सों युद्ध माड़्यो ।—सूर (शब्द०) । (ख) मधुसूदन यह बिरह अरु अरि नित माड़त रार । करुनानिधि अब यहि समय अपनो बिरद बिचार ।—रसनिधि (शब्द०) । (ग) ताते कठिन कुठार अब रामहि लों रण माड़ि ।—केशव (शब्द०) । (घ) हौं तुम सों फिर युद्धहिं माड़ौं । क्षत्रिय वंश को बैर लै छाड़ौं ।—केशव (शब्द०) । (ङ) मनोज मख माड़्यौ नाभि कुंड में ।—देव (शब्द०) ।

माड़ना[2]—क्रि० स० [सं० **मण्डन**] १. मंडित करना । भूषित करना । २. धारण करना । पहनना । उ०—सब शोकन छाँड़ौं भूषण माँड़ौं कीजै बिबिध बधाये ।—केशव (शब्द०) । ३. आदर करना । पूजना । उ०—ताते ऋषिराज सबै तुम छाँड़ौ । भूदेव सनाढयन के पद माड़ौं ।—केशव (शब्द०) ।

माड़ना[3]—क्रि० स० [सं० **मर्दन**] १. मर्दन करना । पैर या हाथ से मसलना । मलना । उ० —काउ काजर काउ बदन माड़तो हरषहिं करहिं कलोल ।—सूर (शब्द०) । २. घूमना । फिरना । उ०—डटा वस्तु फिर ताहि न छाड़ै । माखन हित सब के घर माड़ै ।—विश्राम (शब्द०) ।

माड़निⓅ—क्रि० स० [हिं० **माड़ना**] माँड़ने का भाव या स्थिति । उ०—इनकी माड़नि मड़ रही, चहुँ दिस रोकी बाट ।—कबीर श०, भा० २, पृ० १२६ ।

माडल[1]—संज्ञा पुं० [अ० **मॉडल**] १. आदर्श । प्रतिरूप । प्रतिमान । २. आकार । आकृति । नक्शा । ढाँचा । खाका । ३. अनुकरणीय व्यक्ति या वस्तु ।

माड़व[1]—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] दे० 'माड़ौ' वा 'मंडप' ।

माड़व[2]—संज्ञा पुं० [सं० **माडव**] एक वर्णसंकर जाति जो पुराणानुसार लेट पिता और तीवर माता के गर्भ से उत्पन्न है ।

माड़ा† — वि० [सं० मन्द] १. खराब । निकम्मा । २. दुबला । दुर्बल । (पश्चिम) । ३. बीमार । रोगी (पश्चिम)

माडि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रासाद । महल [को०] ।

माडुक, माडुक्कि—संज्ञा पुं० [सं०] नगाड़ा बजानेवाला । ढोल बजानेवाला ।

माड़ौ†—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] १. विवाह का मँडवा । दे० 'मंडप' । उ०—रचि रचि मानिक माड़ौ छावहिं ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०७ । २. धूप और हवा के तीखे झोंके से बचाव के लिये पान के भीटे के ऊपर बाँस, फूस आदि का मंडप । पान का बँगला । विशेष दे० 'पान' । उ०—पानवाड़ी की दीवारें जिनको टट्टी कहते हैं बहुत मोटी बनाई जाती हैं ताकि अंदर हवा न जा सके, लेकिन छत जिसे माड़ौ कहते हैं बहुत हलकी बनती है ।—कृषि०, पृ० १८२ ।

माढ़ाⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० मण्डप] १. अटारी पर का वह चौबारा जिसकी छत गोल मंडप के आकार की हो । २. अटारी पर का चौबारा (चाहे वह किसी बनावट का हो) । उ०—को पलंग पौढ़ै को माढ़े । सोवनहार परा बँद गाढ़े ।—जायसी (शब्द०) ।

माढ़ाⓅ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० महना, मथना] दे० 'मठा' ।

माढ़ीⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ी] दे० 'मढ़ी' । उ०—अँगिया बनी कुचन सो माढ़ी ।—सूर (शब्द०) । २. मंच । मचिया ।

माढी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० माढि, माढी] १. दाँतों का मूल । २. पंखड़ी या पत्ते जो पूरी तरह फैले न हों (को०) । ३. विषाद । विषण्णता (को०) । ४. दरिद्रता । गरीबी । निर्धनता (को०) । ५. क्रोध । कोप । अमर्ष (को०) । ६. वस्त्र का किनारा वा अंचल (को०) ।

माढू†—संज्ञा पुं० [देश०] मनुष्य । उ०—माढू ज्याँरा मारजै, पौहरा जिकाँ पडंत । बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० २३ ।

माणक—संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद ।

माणतुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० माणतुण्डिक] एक प्रकार का जलचर पक्षी ।

माणव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य । आदमी । २. बालक । बच्चा । ३. सोलह लड़ी का हार । ४. छोटा आदमी । क्षुद्र नर । छोकड़ा । (तिरस्कार सूचक) ।

माणवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोलह वर्ष की अवस्थावाला युवक । २. बीस या सोलह लड़ी का हार । ३. विद्यार्थी । बटु । ४. निंदित या नीच आदमी । छोटा आदमी (उपेक्षासूचक) । ५. मूर्ख व्यक्ति । ६. एक छंद । माणवक्रीड़ा ।

माणवक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० माणवक्रीडा] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक पद में आठ वर्ण (एक भगण, एक तगण और दो लघु) होते हैं ।

माणवविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार जादू टोना । जंत्र मंत्र की विद्या ।

माणविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाला । किशोरी । बालिका [को०] ।

माणवीन—वि० [सं०] माणव संबंधी । बालकों का । बच्चों की तरह ।

माणव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का समूह । शिशुसमूह । बच्चों का झुंड या गोल ।

माणस†—संज्ञा पुं० [सं० मानुष; प्रा० माणुस; अप०, राज० माणस] मनुष्य । व्यक्ति । उ०—मालवणी का माणसाँ; आए मिल्या अजाँण ।—ढोला०, दू० १८५ ।

माणिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जौहरी । रत्नों का पारखी [को०] ।

माणिक[2]—संज्ञा पुं० [सं० माणिक्य] दे० 'माणिक्य' । उ० – परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट । किधौं शक्र को छत्र मढ्यौ माणिक मयूख पट ।—केशव (शब्द०) ।

माणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तौल जो आठ पल की होती है ।

माणिक्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल रंग का एक रत्न जो 'लाल' कहलाता है । पद्मराग । चुन्नी । विशेष—दे० 'लाल' । उ०—अनेक राजा गणों के मुकुट माणिक्य से सर्वदा जिनके पदतल लाल रहते हैं, उन महाराज चंद्रगुप्त ने आपके चरणों में दंडवत करके निवेदन किया है ।—मुद्राराक्षस (शब्द०) ।

पर्या०—रविरत्नक । शृंगारी । रंगमाणिक्य । तरुण । रत्ननायक । रत्न । सौगंधिक । लोहितिक । कुरुविंद ।

२. भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का केला ।

माणिक्य—वि० सर्वश्रेष्ठ । शिरोमणि । परम आदरणीय । उ०—नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावती । कटि तट सुपट सुदेश, कल काँची शुभ मंडई ।—केशव (शब्द०) ।

माणिक्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली ।

माणिबंध—संज्ञा पुं० [सं० माणिबन्ध] सेंधा नमक ।

माणिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० माणिमन्थ] सेंधा नमक ।

मातंग—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्ग] १. हाथी । २. श्वपच । चांडाल । उ०—मदमत्त यदपि मातंग संग । अति तदपि पतित पावन तरंग ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—इस उदाहरण में श्लेष से यह शब्द दोनों अर्थों में प्रयुक्त है ।

३. एक ऋषि का नाम ।

विशेष—ये शिबरी के गुरु और मातंगी देवी के उपासक थे । ये मौन रहा करते थे; इसीलिये जिस पर्वत पर ये रहते थे, उसका नाम ऋष्यमूक पड़ गया था ।

४. अश्वत्थ । ५. संवर्तक मेघ का एक नाम । ६. पर्वतवासी किरात । ७. एक नाग का नाम ।

मातंगज—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्गज] हाथी । हस्ती [को०] ।

मातंगदिवाकर—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्गदिवाकर] एक कवि का नाम ।

मातंगनक्र—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्गनक्र] एक प्रकार का बहुत बड़ा कुंभीर (जलजंतु) ।

मातंगमकर—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्गमकर] विशालकाय कुंभीर । मातंगनक्र ।

मातंगलीला—संज्ञा पुं० [सं० मातङ्गलीला] चिकित्सा संबंधी एक ग्रंथ [को०]।

मातंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की एक कन्या।

विशेष—कहते हैं, हाथी इसी से उत्पन्न हुए थे।

२. तांत्रिकों के अनुसार दस महाविद्याओं में से नवीं महाविद्या। ३. वशिष्ठ ऋषि की पत्नी का एक नाम (को०)। ४. श्वपच-कन्या। चांडाल की कन्या (को०)।

मात[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] १. जननी। माता। उ०—तात को न मात को न भ्रात को कहा कियो।—पद्माकर (शब्द०)। २. कोई पूज्य या आदरणीय बड़ी महिला। उ०—को जान मात बिभ्भनी पीर। सौति को साल सालै सरीर।—पृ० रा०, १। ३७५।

मात[२]—संज्ञा स्त्री० [अ०] पराजय। हार। उ०—रविकुल रवि प्रताप के आगे रिपुकुल मानत मात।—राधाकृष्णदास (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। देना।

मात[३]—वि० [अ०] पराजित। उ०—(क) तुव दृग सतरंज बाज मों मेरो बस न बसात। पातसाह मन को करै छबि सह देकर मात।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) देख्यौ बादशाह भाव, कूद परे गहे पाव, देखि करामात मात भए सब लोक हैं।—विश्वनाथ सिंह (शब्द०)। (ग) जासों मातलि मात अरुण गति जाति सदा रुक।—गोपाल (शब्द०)।

मात(पु)—वि० [सं० मत्त] मदमस्त। मतवाला। (क्व०)। उ०—बदन प्रभा मय चंचल लोचन, आनँद उर न समात। मानहुँ भौंह जुवा रथ जोते, ससि नचवत मृग मात।—सूर०, १०। १८०५।

माता—संज्ञा स्त्री० [सं० मात्रा] मात्रा। परिमाण। उ०—आयौ खेजड़ लै असुर मेछ परक्खण मात।—रा० रू०, पृ० ३३०।

मातदिल—वि० [अ० मोऽतदिल] मध्यम प्रकृति का। जो गुण के विचार से न बहुत ठंढा हो और न बहुत गरम।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः ओषधियों या जलवायु आदि के संबंध में होता है।

मातना(पु)—क्रि० अ० [सं० मत्त] मस्त होना। मदमत्त हो जाना। नशे में हो जाना। उ०—(क) जो अँचवत मातहि नृप तेई। नाहिन साधु सभा जिन सेई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पियत जहाँ मधु रसना मातत नैन। झुकत अतनुगति अधरनि कहत बनै न।—रहीम (शब्द०)। (ग) साधू रहै लगाए छाता ताहि देखि नृप अमरष माता।—रघुराज (शब्द०)।

मातबर—वि० [अ० मोतबर] विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। जैसे,—इन्हें रुपए दे दीजिए; ये मातबर आदमी हैं।

मातबरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मातबर होने का भाव। विश्वसनीयता।

मातम—संज्ञा पुं० [अ०] १. मृतक का शोक। वह रोना पीटना आदि जो किसी के मरने पर होता है। उ०—जब बादशाह मर जाता है, तो सारे मुल्क के आदमी सौ दिन तक मातम रखते हैं और कोई काम खुशी का नहीं करते।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

यौ०—मातमपुर्सी।

२. किसी दुःखदायिनी घटना के कारण उत्पन्न शोक।

मातमखाना—संज्ञा पुं० [अ० मातम+फ़ा० खाना] मातम का स्थान। वह घर जिसमें मृत्युशोक हो।

मातमपुरसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मातमपुर्सी] दे० 'मातमपुर्सी'। उ०—मियाँ साहब ने सुनते ही सिर पीटा, रोए गाए, बिछौने से अलग बैठे, सोग माना, लोग भी मातमपुरसी को आए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६७७।

मातमपुर्सी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जिसके यहाँ कोई मर गया हो, उसके यहाँ जाकर उसे ढारस देने का काम। मृतक के संबंधियों को सांत्वना देना।

मातमी—वि० [फ़ा०] १ मातम संबंधी। शोकसूचक। जैसे, मातमी पोशाक, मातको सूरत, मातमी रंग। २. मनहूस। अप्रिय। बुरा। उ०—इसी एक बात से इनके मातमी मत की निःसारता झलक पड़ती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

मातमी लिबास—संज्ञा पुं० [अ०] शोकसूचक पहनावा। काले रंग का कपड़ा।

मातमुख—वि० [डिं०] मूर्ख।

मातरिपुरुप—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो केवल घर में अपनी माता आदि के सामने ही अपनी वीरता प्रकट करता हो; बाहर या औरों के सामने कुछ भी न कर सकता हो।

मातरिश्वा—संज्ञा पुं० [सं० मातरिश्वन्] १. अंतरिक्ष में चलनेवाला, पवन। वायु। हवा। २. एक प्रकार की अग्नि। अग्नि।

मातलि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी या रथ हाँकनेवाले का नाम। उ०—सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—मातलिसारथि = इंद्र। मातलिसुत।

मातलिसूत—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—कौशिक बासव वृत्रहा मघवा मातलिसूत।—नंददास (शब्द०)।

मातली—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वैदिक देवता जो यम और पितरों के साथ उत्पन्न माने गए हैं।

मातहत—संज्ञा पुं० [अ०] किसी की अधीनता में काम करनेवाला। अधीनस्थ कर्मचारी।

मातहती—संज्ञा स्त्री० [अ० मातहत+ई (प्रत्य०)] मातहत या अधीनता में होने का काम या भाव।

माता[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] १. जन्म देनेवाली स्त्री। जननी। उ०—जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।—तुलसी (शब्द०)। २. कोई पूज्य या आदरणीय बड़ी स्त्री। उ०—दै द्रव्य कह्यो माता सिधाव।—पृ० रा०, १।३७६। ३. गौ। ४. भूमि। ५. विभूति। ६. लक्ष्मी। ७. खेती। ८. इंद्रवारुणी। ९. जटामासी। १०. शीतला। चेचक। ११. आखुकर्णी (को०)। १२. जीव (को०)। १३. आकाश (को०)। १४. दुर्गा (को०)। १५. शिव वा स्कंद की मातृकाएँ जिनकी संख्या कुछ लोगों के मतानुसार सात है, कुछ के अनुसार आठ और कुछ लोगों के मत में १६ कही गई है।

माता[2]—वि० १. नाप या माप करनेवाला। २. निर्माणकर्ता। बनानेवाला। ३. ठीक ठीक जानकारी रखनेवाला (को०)।

माता[3]—वि० [सं० मत्त] [स्त्री० **माती**] मदमस्त। मतवाला। उ०—(क) आठ गाँठ कोपीन के साधु न मानै शंक। नाम अमल माता रहै गिनै इंद्र को रंक।—कबीर (शब्द०)। (ख) जोर जगी जमुना जलधार में धाम धँसी जल केलि की माती।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) चली सोनारि सोहाग सोहाती। औ कलवारि प्रेममद माती।—जायसी (शब्द०)।

मातापिता—संज्ञा पुं० [सं० मातृपितृ] माँ बाप।

मातामह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मातामही**] माता का पिता। नाना।

मातामही—संज्ञा पुं० [सं०] नानी।

मातुⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृ**] माता। माँ। जननी। उ०—(क) कबहूँ करताल बजाय कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु धनु, भूरि भाग सिय मातु पितौ री।—तुलसी (शब्द०)।

मातुल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मातुला, मातुलानी**] १. माता का भाई। मामा। उ० कह्यौ मत मातुल विभीषण हू बार बार अंचल पसारि पिय पाँय लै लैं हौं परी।—तुलसी (शब्द०) (ख) मुनि मातुल मुहि तात कहि नित प्रेम बढ़ंत।—पृ० रा०, ६१।५८६। २. धतूरा उ०—द्वै मृणाल मातुल उभै द्वै कदलि खंभ बिन पात।—सूर (शब्द०)। ३. एक प्रकार का धान। ४. एक प्रकार का साँप। ५. मदन वृक्ष। ६. सौर वर्ष (को०)।

यौ०—**मातुलपुत्रक** = (१) ममेरा भाई। मामा का पुत्र। (२) धतूरे का फल।

मातुला, मातुलानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मामा की स्त्री। मामी। २. सन। ३. प्रियंगु। ४. भाँग।

मातुलाहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

मातुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मामा की स्त्री। मामी। २. भाँग।

मातुलुंग—संज्ञा पुं० [सं० मातुलुङ्ग] बिजौरा नीबू।

पर्या०—**मातुलिंग। बीजपूरक। मातुलुंगक।**

मातुलेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मातुलेयी**] मामा का लड़का। ममेरा भाई।

मातृ—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'माता'।

मातृक[1]—वि० [सं०] माता संबंधी।

मातृक[2]—संज्ञा पुं० १. माता का भाई। मामा। २. मातृत्व। माता होने का भाव (को०)।

मातृकच्छिद—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

मातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूध पिलानेवाली दाई। धाय। २. माता। जननी। ३. उपमाता। सौतेली माता। ४. तांत्रिकों की सात देवियाँ—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी और चामुंडा। ५. वर्णमाला की बारहखड़ी। ६. ठोढ़ी पर की आठ विशिष्ट नसें। ८. पिता की माता। दादी। आजी (को०)।

मातृकाकुंड—संज्ञा पुं० [सं० मातृकाकुण्ड] वैद्यक के अनुसार गुदा का एक फोड़ा या व्रण जो बहुत छोटे बच्चों को होता है।

मातृकेशट—संज्ञा पुं० [सं०] मामा।

मातृगंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृगन्धिनी**] १. विमाता। सौतेली माता। २. पिता की उपपत्नी।

मातृगण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मातृका-४'। इनकी संख्या मतांतर से सात, आठ और १६ कही गई है।

मातृगामी—संज्ञा पुं० [सं० **मातृगामिन्**] वह व्यक्ति जो माता के साथ व्यभिचार या गमन करे।

मातृगोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] माता का गोत्र या कुल।

मातृघात, मातृघातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मातृघाती'।

मातृघाती—संज्ञा पुं० [सं० **मातृघातिन्**] [स्त्री० **मातृघातिनी**] मातृहत्या करनेवाला व्यक्ति। माता का हत्यारा (को०)।

मातृचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] मातृगण। मातृका समूह।

मातृतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] हथेली में सबसे छोटी उँगली के नीचे का स्थान।

मातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. माता होने का भाव। संतानवती होना। २. माता का पद।

मातृदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो माता को देवता के सदृश माने। माँ के प्रति देवता की भावना करनेवाला व्यक्ति।

मातृदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक देवी का नाम।

मातृदेश—संज्ञा [सं०] मातृभूमि। जन्मभूमि।

मातृदोष—संज्ञा पुं० [सं०] माता में दोष या हीनता होना। माता का निम्नजातीय होना।

मातृनंदन—संज्ञा पुं० [सं० **मातृनन्दन**] १. कार्तिकेय। २. महाकरंज का पेड़।

मातृनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृनन्दा**] शाक्तों की एक देवी का नाम।

मातृपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] माता का कुल, नाना, मामा आदि।

मातृपालित—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

मातृपितृ—संज्ञा पुं० [सं०] माता और पिता। माँबाप।

यौ०—**मातृपितृहीन** = जिसके माता पिता न हों। बिना माँ बाप का।

मातृपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृपूजन**] विवाह की एक रीति जिसमें विबाह के दिन से एक दो दिन पूर्व छोटे छोटे मीठे पूए बनाकर पितरों का पूजन किया जाता है। इसी को 'मातृपूजा' या 'मातृकापूजन' कहते हैं।

मातृबंधु—संज्ञा पुं० [सं० **मातृबन्धु**] माता के संबंध का कोई आत्मीय।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार माता की बूआ, माता की मौसी और माता के मामा की संतान मातृबंधु कही जाती है।

मातृबांधव – संज्ञा पुं० [सं० मातृबान्धव] दे० 'मातृबंधु'।

मातृभक्त– वि० [सं०] माता का अनुगत। माता का भक्त [को०]।

मातृभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भाषा जो बालक माता की गोद में रहते हुए बोलना सीखता है। माता पिता के बोलने की और सब से पहले सीखी जानेवाली भाषा।

मातृभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मातारूपी धरती। स्वदेश। जन्मभूमि।

मातृमंडल—संज्ञा पुं० [सं० मातृमण्डल] १. दोनों आँखों के बीच का स्थान। २. मातृकागण।

मातृमाता— संज्ञा स्त्री० [सं० मातृमातृ] १. माता की माता। नानी। २. दुर्गा।

मातृमुख वि० [सं०] अनाड़ी। मूर्ख। अज्ञ।

मातृयज्ञ संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो मातृकाओं के उद्देश्य से किया जाता है।

मातृरिष्ट— संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक दोष जो संतान के ऐसे बुरे लग्न में जन्म लेने से होता है जिसके कारण माता पर संकट आवे या उसके प्राण चले जायँ।

मातृवत्सल—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

मातृवध—संज्ञा पुं० [सं०] माता की हत्या करना।

विशेष—यह बौद्धों के अनुसार पाँच महापापों में है और अक्षम्य अपराध होने से इसका फल भोगना ही पड़ता है।

मातृवाहिनी— संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया। वल्गुला। चमगादड़ [को०]।

मातृवियोग—संज्ञा पुं० [सं०] माता का बिछोह वा वियोग।

मातृशासित—वि० [सं०] मूर्ख। मातृमुख।

मातृष्वसा संज्ञा स्त्री० [सं० मातृष्वसृ] माँ की बहन। मासी। मौसी।

मातृष्वसेय– संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मातृष्वसेयी] माता की बहन का लड़का। मौसेरा भाई।

मातृष्वसेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मौसेरी बहन। मौसी की लड़की।

मातृष्वस्रीय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मातृष्वस्रीया] मातृष्वसेय। मौसेरा भाई [को०]।

मातृसपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौतेली माता। विमाता।

मातृस्तन्य—संज्ञा पुं० [सं०] माता का दूध।

मातृहंता—वि० संज्ञा पुं० [सं० मातृहन्तृ] दे० 'मातृघाती'।

मातृहीन—वि० [सं०] माता से रहित। जिसकी माँ गत हो गई हो। बिना माँ का।

मात्र—अव्य० [सं०] केवल। भर। सिर्फ। जैसे, नाममात्र, तिल मात्र। उ० – (क) रहे तुम सत्य कहावत मात्र। अबै सह सत्य करौं सब गात्र।—गोपाल (शब्द०)। (ख) केवल भक्त चारि युग केरे। तिनके जे हैं चरित घनेरे। सोई मात्र कथौं यहि माहीं। कछुक कथा उपयोगिन काहीं।— रघुराज (शब्द०)।

मात्रा – संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिमाण। मिकदार। जैसे,— इसमें पानी की मात्रा अधिक है। २. एक बार खाने योग्य औषध। ३. उतना काल जितना एक ह्रस्व अक्षर का उच्चारण करने में लगता है।

विशेष—छंदशास्त्र में इसे मत्त, मत्ता, कल या कला भी कहते हैं।

४. बारहखड़ी लिखाते समय वह स्वरसूचक रेखा जो अक्षर के ऊपर नीचे या आगे पीछे लगाई जाती है। ५. किसी चीज का कोई निश्चित छोटा भाग। ६. हाथी, घोड़ा आदि। परिच्छद। ७. कान में पहनने का एक आभूषण। ८. इंद्रिय जिसके द्वारा विषयों का अनुभव होता है। ९. शक्ति। १०. इंद्रियों की वृत्ति। इंद्रियवृत्ति (को०)। ११. धन। द्रव्य (को०)। १३. शिलोच्चय। पर्वत (को०)। १४. अवयव। अंग। १५. रूप। सूक्ष्म रूप। १६. संगीत में गीत और वाद्य का समय निरूपित करने के लिये उतना काल जितना एक स्वर के उच्चारण में लगता है।

विशेष—एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे 'ह्रस्व मात्रा' कहते हैं; दो ह्रस्व स्वरों के उच्चारण में जितना समय लगता है; उसे 'दीर्घ मात्रा' कहते हैं; और तीन अथवा उससे अधिक स्वरों के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे 'प्लुत मात्रा' कहते हैं।

मात्राच्युतक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काव्यरचना जिसकी कोई मात्रा हटा देने से दूसरा अर्थ हो जाता है।

मात्राभस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन या रुपए आदि रखने की थैली। मनीबेग।

मात्रालाभ—संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्य की प्राप्ति या उपलब्धि।

मात्रावस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक की एक क्रिया जिसमें रोगी को दस्त कराने के लिये उसकी गुदा में पिचकारी आदि से तेल आदि मिला हुआ कोई तरल पदार्थ भरते हैं।

मात्रावृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जिसमें मात्राओं की गणना की जाय। मात्रिक छंद। जैसे, आर्या।

मात्रासमक—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में गुरु होता है।

विशेष—चौपाई नामक छंद के मत्तसमक, बानवासिका, चित्रा और विश्लोक नामक चार भेद इसी के अंतर्गत हैं।

मात्रास्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] अपने अपने विषय के साथ इंद्रियों का संयोग। इंद्रियवृत्ति [को०]।

मात्रिक – वि० [सं०] १. मात्रा संबंधी। मात्रा का। जैसे, एकमात्रिक। २. मात्राओं के हिसाबवाला। जिसमें मात्राओं की गणना की जाय। जैसे, मात्रिक छंद।

यौ० मात्रिकछंद = दे० 'मात्रावृत्त'।

मात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मातृका–३, ४, ५'।

मात्सर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मात्सरी] मत्सर युक्त।

मात्सरिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मात्सरिकी] दे० 'मात्सर' [को०]।

मात्सर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का भाव। किसी का सुख या उसकी संपदा न देख सकने का स्वभाव। किसी को अच्छी दशा में देखकर जलना। ईर्ष्या। डाह।

मात्स्य[१]—वि० [सं०] मछली संबंधी। मछली का।

यौ०—**मात्स्यन्याय**।

मात्स्य[२]—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

मात्स्य न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] मछलियों का न्याय। एक दृष्टांत-वाक्य। उ०—हाब्स की प्राकृतिक स्थिति मात्स्य न्याय की स्थिति थी।—राजनीतिक०, पृ० ८।

विशेष—जिस प्रकार समुद्र में बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा जाती है उसी प्रकार समाज में जब कोई उच्चवर्गीय या शक्तिशाली जन अपने से निम्न एवं अशक्त का शोषण करता है तब इस दृष्टांतवाक्य का प्रयोग किया जाता है।

मात्स्यिक—संज्ञा पुं० [सं०] मछली मारनेवाला। मछुआ।

माथ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रास्ता। पथ। मार्ग। २. मथना। मथन। मंथन। ३. विध्वंस। नाश। विनाश [को०]।

माथⓅ**†[२]**—संज्ञा पुं० [सं० **मस्त,** (=शिर), **प्रा० मत्थ**] दे० 'माथा'। उ०—मागु माथ अबहीं देहुँ तोही।—मानस, २।

माथनाⓅ—क्रि० स० [सं० **मन्थन**] दे० 'मथना'। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। माथ रंग समुद जस होई।—जायसी (शब्द०)।

माथा[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मस्तक, प्रा० मत्थअ**] १. सिर का ऊपरी भाग। मस्तक।

मुहा०—**माथा कूटना**=दे० 'माथा पीटना'। **माथा घिसना**=नम्रता प्रकट करना। मिन्नत खुशामद करना। **माथा खपाना या खाली करना**=बहुत अधिक समझाना या सोचना। सिर खपाना। मगजपच्ची करना। (किसी के आगे) **माथा झुकाना या नवाना**=बहुत अधिक नम्रता या अधीनता प्रकट करना। **माथा टेकना**=सिर झुकाकर प्रणाम करना। **माथा ठनकना**=पहले से ही किसी दुर्घटना या विपरीत बात होने की आशंका होना। उ०—दूसरे पहर पर आए वहाँ भी सन्नाटा। माथा ठनका कि कुछ दाल में काला है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२३। **माथा धुनना**=दे० 'माथा पीटना'। **माथापच्ची करना**=दे० 'माथा खपाना'। **माथा पीटना**=सिर पर हाथ मारकर बहुत अधिक दुःख या शोक करना। **माथा मारना**=दे० 'माथा खपाना'। **माथा रगड़ना**=दे० 'माथा घिसना'। **माथे चढ़ाना या धरना**=शिरोधार्य करना। सादर स्वीकार करना। उ०—मम आयुस तुम माथे धरौ। छल बल करि मम कारज करौ।—सूर (शब्द०)। **माथे टीका होना**=किसी प्रकार की विशेषता या अधिकता होना। जैसे,—क्या तुम्हारे माथे टीका है जो तुम्हीं को सब चीजें दे दी जायँ? **माथे पड़ना**=उत्तरदायित्व आ पड़ना। ऊपर भार आ पड़ना। जैसे,—वह तो खिसक गए; अब सब काम हमारे माथे आ पड़ा। **माथे पर चढ़ना**=दे० 'सिर पर चढ़ना'। **माथे पर बल पड़ना**=आकृति से क्रोध, दुःख या असंतोष आदि के चिह्न प्रकट होना। शक्ल से नाराजगी जाहिर होना। जैसे,—रुपए की बात सुनते ही उनके माथे पर बल पड़ गए। **माथे भाग होना**=भाग्यवान् होना। तकदीरवर होना। **माथे मढ़ना**=गले बाँधना। गले मढ़ना। जबरदस्ती देना। **माथे मानना**=शिरोधार्य करना। सादर स्वीकार करना। उ०—(क) कह रविसुत मम कारज होई। माथे मानि करब हम सोई।—सबलसिंह (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु के जिय भावै आयुस माथे मानि।—सूर (शब्द०)। **माथे मारना**=बहुत ही उपेक्षा या तिरस्कारपूर्वक किसी को कुछ देना। बहुत तुच्छ भाव से देना। जैसे,—वह रोज तगादा करता है; उसकी किताब उसके माथे मारो। **माथे लेना**=माथे धरना या मानना। अंगीकार करना। उ०—फगुआ कुँवरि कान्ह बहु दीनों। प्रेम प्रीति करि माथे लीनों।—नंद० ग्रं०, पृ० ३९३।

यौ०—**माथापच्ची** या **माथापिट्टन**=बहुत अधिक बकना या समझाना। सिर खपाना। मगजपच्ची करना।

२. वह चित्र आदि जिनमें मुख और मस्तक की आकृति बनी हो। (लश०)। ३. किसी पदार्थ का अगला या ऊपरी भाग। जैसे, नाव का माथा, आलमारी का माथा।

मुहा०—**माथा मारना**=जहाज का वायु के विपरीत इस प्रकार जोर मारकर चलना कि मस्तूल, पाल तथा ऊपरी भागों पर बहुत जोर पड़े।

४. यात्रा। सफर। ५. खेप। (लश०)।

माथा[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

माथुर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **माथुरानी**] १. मथुरा का निवासी। वह जो मथुरा का रहनेवाला हो। २. ब्राह्मणों की एक जाति। चौबे। ३. कायस्थों की एक जाति। ४. वैश्यों की जाति। ५. माथुर प्रांत।

माथुर[२]—वि० मथुरा संबंधी। मथुरा का।

माथे—क्रि० वि० [हिं० **माथा**] १. माथे पर। मस्तक पर। सिर पर। उ०—नागरि गूजरि ठगि लीनो मेरो लाल गोरोचन को तिलक माथे मोहना।—हरिदास (शब्द०)। २. भरोसे। सहारे पर। उ०—सो जनु हमरे माथे काढ़ा। दिन चलि गयउ ब्याज बहु बाढ़ा।—तुलसी (शब्द०)।

माथैⓅ—क्रि० वि० [हिं० **माथा**] दे० 'माथे'।

माद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिमान। शेखी। घमंड। २. हर्ष। प्रसन्नता। ३. मत्तता। मस्ती।

माद[२]— संज्ञा पुं० [देश०] छोटा रस्सा। (लश०)।

माद[३]—संज्ञा पुं० दे० 'माँद'—२'। उ०—आँडग डग से भूमि जल नभ पर फिर जीवन नहीं। दुर्दशा की सिंहनी की माद तू जबतक न कर।—बेला, पृ० ६८।

मादक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मादिका**] नशा उत्पन्न करनेवाला। जिससे नशा हो। नशीला। २. आनंदप्रद। आनंददायक। हर्षप्रद।

मादक[२]—संज्ञा पुं० १. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसके प्रयोग से शत्रु में प्रमाद उत्पन्न होता था। २. वह चीज जिसके खाने से नशा हो। नशा उत्पन्न करनेवाला पदार्थ। जैसे, अफीम, भाँग, शराब आदि। ३. एक प्रकार का हिरन। ४. दात्यूह पक्षी (को०)।

मादकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादक होने का भाव। नशीलापन। उ०—कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय। वह खाए बौरात है यह पाए बौराय।—बिहारी (शब्द०)।

मादगाव—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **माद ए गाव**] गौ। गाय। उ०—नहुम मादगाव एक लागर हकीर। जंगल बीच पीती है बछड़े का शीर।—दक्खिनी०, पृ० ३०२।

मादन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौंग। २. मदन वृक्ष। ३. कामदेव। ४. धतूरा। ५. मतवालापन। मत्तता (को०)।

मादन[२]—वि० दे० 'मादक'।

मादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाँग।

मदनीय—वि० [सं०] मादकता या नशा उत्पन्न करनेवाला। मादक। नशीला।

मादर[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० । मि० सं० **मातृ > मातर**, अं० **मदर**] माँ। माता। जननी।

यौ०—**मादरजन** = सास। श्वश्रू।

मादर[२]—संज्ञा पु० [सं० **मर्दल**] दे० 'मादल'। उ०—तुम्ह पिउ साहस बाँधा मैं पिय माँग सेंदूर। दोउ सँभारे होइ सँग बाजै मादर तूर।—जायसी (शब्द०)।

मादरजाद—वि० [फ़ा० **मादरज़ाद**] १. जन्म का। पैदाइशी। जैसे, मादरजाद अंधा। २. एक माँ से उत्पन्न। सहोदर (भाई)। ३. जैसा माँ के पेट से निकला था, वैसा ही। बिलकुल नंगा। दिगंबर।

यौ०—**मादरजाद नंगा** = एकदम नंगा। पूरी तौर से विवस्त्र।

मादरियापु—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मादर** + हिं० **इया** (प्रत्य०)] दे० 'मादर[१]'। उ०—सासु ननदि मिलि अदल चलाई। मादरिया घर बेटी आई।—कबीर (शब्द०)।

मादरी—वि० [फ़ा०] माता संबंधी। माता का।

यौ०—**मादरी जबान** = मातृभाषा।

मादल—संज्ञा पुं० [सं० मर्दल] पखावज के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मादलियापु‡—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० **मादल** + **इया** (प्रत्य०)] तावीज। उ०—के नाड़े के कंचुए, बाँध्या बेणी बंध। कामण रा राखै कनै, मादलिया मन मंध।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०।

मादा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मादह्**] स्त्री जाति का प्राणी। नर का उलटा। जैसे,—(क) साँड़ की मादा गाय कहलाती है। (ख) इस कबूतर की मादा कहीं खो गई है।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार बहुधा जीव जंतुओं के लिये ही होता है। जैसे, माद ए अस्प = घोड़ी। मादए आहू = हरिणी। मादए खर = गर्दभी। मादए गाव = गौ, आदि।

मादिकपु—वि० [सं० **माद** + **इक**] दे० 'मादक'। उ०—मादिक रूप रसीले सुजान को पान किएँ छिनको न छकै को।—घनानंद, पृ० ४३।

मादिकतापु—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मादिक** + **ता** (प्रत्य०)] दे० 'मादकता'।

मादिन‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मादा** + **इन** (प्रत्य०)] दे० 'मादा'।

मादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मादीन** ?] दे० 'मादा'। उ०—नर को देखि प्रान हरि लेई। मादी देखि बोल नहिं तेही।—घट०, पृ० २४१।

मादीन‡—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'मादा'।

मादु—संज्ञा पुं० [सं०] भाँग। भंग (को०)।

मादूम—वि० [अ० **मा'दूम**] जिसका अस्तित्व न रह गया हो। बरबाद। उ०—खुरशेद परख परतव मादूम हुआ है।—कबीर मं०, पृ० १४१।

मादृक्, मादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मादृक्षी, मादृशी**] मेरे समान। मुझ जैसा। मेरे तुल्य (को०)।

माद्दा—संज्ञा पुं० [अ० **माद्दह्**] १. वह मूल तत्व जिससे कोई पदार्थ बना हो। २. शब्द की व्युत्पत्ति। शब्द का मूल। ३. योग्यता। पात्रता। जैसे,—आपमें यह बात समझने का माद्दा ही नहीं है। ४. विवेक। तमीज (को०)। ५. जड़। मूल। बुनियाद (को०)। ६. बोध। ज्ञान। समझ (को०)। ७. मवाद। पीब।

माद्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा परीक्षित की स्त्री का नाम। २. राजा पांडु की दूसरी पत्नी। माद्री (को०)।

माद्रिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० **माद्रिनन्दन**] दे० 'माद्रिसुत (को०)।

माद्रिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव।

माद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पांडु राजा की द्वितीय पत्नी और नकुल तथा सहदेव की माता जो मद्र के राजा की कन्या थी। राजा पांडु के मरने पर यह उनके साथ सती हुई थी। २. अतिविषा। अतीस।

माद्रीपति—संज्ञा पुं० [सं०] पांडु।

माद्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव।

माधव[१]—वि० [सं०] १. मधु जैसा। शहद के समान। मीठा। २. मधुनिर्मित। ३. बसंत ऋतु संबंधी। बसंती (को०)।

माधव[२]—संज्ञा पुं० १. विष्णु भगवान्। नारायण। २. श्रीकृष्ण। ३. वैशाख मास। उ०—कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८। ४. वसंत ऋतु। ५. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में आठ जगण होते हैं। इसी का दूसरा नाम 'मुक्तहरा' है। ६. एक राग जो भैरव राग के आठ पुत्रों में से एक माना जाता है। ७. एक प्रकार का संकर राग जो मल्लार, बिलावल और नट

नारायण को मिलाकर बनाया गया है। ८. मधूक वृक्ष। महुआ। ९. काला उर्द। १०. इंद्र (को०)। ११. परशुराम (को०)। १२. यादव गण (को०)। १३. सायणाचार्य के भाई का नाम।

विशेष—ये १५वीं शती में थे। ऋग्वेद की टीका इन्होंने और सायण ने संयुक्त रूप में की थी। स्मृति के व्याख्याताओं में इनका स्थान प्रमुख है। इनके पिता का नाम मायण था।

यौ०—**माधवद्रुम** = मधूक। **माधवनिदान** = आयुर्वेद का निदान-विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ। **माधववल्ली** = **माधवी**। **माधवश्री**।

माधवक—संज्ञा पुं० [सं०] महुए या मधु की शराब।

माधवश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वासंतिक या वसंतकालीन शोभा।

माधविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माधवी लता।

माधवी—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसिद्ध लता जिसमें इसी नाम के प्रसिद्ध सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—यह चमेली का एक भेद है। वैद्यक के अनुसार यह कटु तिक्त, कषाय, मधुर, शीतल, लघु और पित्त, खाँसी, व्रण, दाह आदि की नाशक मानी जाती है।

२. ओड़व जाति की एक रागिनी जिसमें गांधार और धैवत वर्जित हैं। ३. सवैया छंद का एक भेद। ४. एक प्रकार की शराब। ५. तुलसी। ६. दुर्गा। ७. माधव की पत्नी। ८. कुटनी। ९. शहद की चीनी। १० मधु की मदिरा। मधुनिर्मित मद्य (को०)।

माधवीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] माधवी नामक सुगंधित फूलों की लता। विशेष—दे० 'माधवी—१'।

माधवेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराही कंद।

माधवोचित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का परिमल या इत्र। (कक्कोल)।

माधवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] खिरनी का पेड़।

माधी—संज्ञा पुं० [देश०] भैरव राग के एक पुत्र का नाम। (संदिग्ध)।

माधुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैत्रेयक नाम की वर्णसंकर जाति। २. महुए की शराब।

माधुकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **माधुकरी**] भौंरे के समान। मधुकर जैसा। भ्रमर के समान। जैसे, माधुकरी वृत्ति।

माधुकरी—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षा का संकलन जो दरवाजे दरवाजे घूमकर किया जाय जैसे भ्रमर मकरंद संचय करता है। २. पाँच विभिन्न स्थानों से माँगी हुई भिक्षा [को०]।

माधुपर्किक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो मधुपर्क देने के समय दिया जाता है।

माधुर—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लिका। चमेली।

माधुरई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **माधुरी**] मधुरता। मिठास। उ०—ए अलि या बलि के अधरानि में आनि मढ़ी कछु माधुरई सी।—पद्माकर (शब्द०)।

माधुरता(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मधुरता**] मीठापन। मिठास। उ०—जिती चारुता कोमलता सुकुमारता माधुरता अधरा में **अहै।—(शब्द०)**।

माधुरिया(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० माधुर्य] दे० 'माधुरी'। उ०—लक्षण को बकसै कछु चाखि सुभाखि कै माधुरिया अधिकाई।—रघुराज (शब्द०)।

माधुरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिठास। २. माधुर्य। शोभा। सुंदरता। उ०—(क) भायप भलि चहुँ बंधु की जल माधुरी सुबास।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रामचंद्र की देखि माधुरी दर्पण देख दिखावै।—सूर (शब्द०)। ३. मद्य। शराब।

माधुरी²—संज्ञा पुं० [सं० **मधुमास**] माधव मास। वैशाख। उ०—गर्ज ओन चल्लै रजं आस पासं। मनौ माधुरी मास फूले पलासं।—पृ० रा०, १।४५८।

माधुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर होने का भाव। मधुरता। २. सुंदरता। लावण्य। ३. मिठाई। मिठास। मीठापन। ४. पांचाली रीति के अंतर्गत काव्य का एक गुण।

विशेष—इसके द्वारा चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है। यह शृंगार, करुण और शांत रस में ही अधिक होता है। ऐसी रचना में प्राय: ट, ठ, ड, ढ और ण नहीं रहते; क्योंकि इनसे माधुर्य का नाश होना माना जाता है। 'उपनागरिका' वृत्ति में यह अधिकता से होता है।

५. सात्विक नायक का एक गुण। बिना किसी प्रकार के शृंगार आदि के ही नायक का सुंदर जान पड़ना। ६. वाक्य में एक से अधिक अर्थों का होना। वाक्य का श्लेष। ६. श्रीकृष्ण के प्रति कांता भाव। मधुरा या रागानुगा भक्ति।

माधुर्यप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह काव्य जिसमें माधुर्य गुण की प्रधानता हो। २. गाने का एक प्रकार। वह गाना जिसमें माधुर्य का अधिक ध्यान रखा जाय और उसके शुद्ध रूप के बिगड़ने की परवा न की जाय।

माधूक¹—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक वर्णसंकर जाति का नाम।

विशेष—इस जाति के लोग मधुर शब्दों में लोगों की प्रशंसा करते हैं, इसीलिये ये 'माधूक' कहलाते हैं। कुछ लोग 'बंदी' को ही 'माधूक' मानते हैं।

माधूक²— वि० मिष्टभाषी। मिठबोला। मृदुभाषी।

माधैया(५)—संज्ञा पुं० [सं० **माधव** + हिं० **ऐया**] दे० 'माधव'। उ०—हार हित मेरा माधैया। देहरी चढ़त परत गिरि गिरि, करपल्लव जो गहत है री मैया।—सूर (शब्द०)।

माधो—संज्ञा पुं० [सं० **माधव**] १. श्रीकृष्ण। उ०—(क) जब माधो होइ जात सकल तनु राधा बिरह दहै।—सूर (शब्द०)। (ख) शीश नाइ कर जोरि कह्यो तब नारद सभा सहेस। तत्क्षण भीम धनंजय माधो धन्य द्विजन को भेस।—सूर (शब्द०)। २. श्रीरामचंद्र। उ०—आधो पल माधो जू के देखे बिन सोई शशि सीता को बदन कहूँ होत दुखदाई है।—केशव (शब्द०)।

माधौ—संज्ञा पुं० [सं० **माधव**] दे० 'माधव'।

माध्यंदिन¹—संज्ञा पुं० [सं० **माध्यन्दिन**] १. दिन का मध्य भाग। मध्याह्न। दोपहर। २. दे० 'माध्यंदिनी'।

माध्यंदिन²—वि० १. मध्य का। बिचला। मध्यम। २. दिन के मध्य का [को०]।

माध्यंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० माध्यन्दिनी] शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा का नाम।

माध्यंदिनीय—संज्ञा पुं० [सं० माध्यन्दिनीय] नारायण। परमेश्वर।

माध्य—वि० [सं०] मध्य का। बीच का।

माध्यम¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माध्यमी] मध्य का। जो मध्य में हो। बीचवाला।

माध्यम²—संज्ञा पुं० वह जिसके द्वारा कोई कार्य संपन्न हो। कार्यसिद्धि का आधार, उपाय या साधन। उ०—यह वह समय है जब संसार की सभी जातियों में आदान प्रदान चल रहा है, मेल मिलाप हो रहा है। साहित्य इसका माध्यम है।—गीतिका (भू०), पृ० ५।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में होने लगा है।

माध्यमक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माध्यमिका] मध्यवर्ती। बीच का [को०]।

माध्यमिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्धों का एक भेद।

विशेष—इस वर्ग के बौद्धों का विश्वास है कि सब पदार्थ शून्य से उत्पन्न होते हैं और अंत में शून्य हो जाते हैं। बीच में जो कुछ प्रतीत होता है, वह केवल उसी समय तक रहता है; पश्चात् सब शून्य हो जाता है। जैसे, 'घट' उत्पत्ति के पूर्व न तो था और न टूटने के पश्चात् ही रहता है। बीच में जो ज्ञान होता है, वह चित्त के पदार्थेतर में जाने से नष्ट हो जाता है। अतः एक शून्य ही तत्व है। इनके मत से सब पदार्थ क्षणिक हैं और समस्त संसार स्वप्न के समान है। जिन लोगों ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है और जिन्होंने नहीं प्राप्त किया है, उन दोनों को ये लोग समान ही मानते हैं।

२. मध्य देश। ३. मध्य देश का निवासी।

माध्यमक²—वि० [वि० स्त्री० माध्यमिकी] दे० 'माध्यमक'। मध्यवर्ती। जैसे, माध्यमिक विद्यालय। माध्यमिक शिक्षा।

माध्यस्थ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो दो मनुष्यों या पक्षों के बीच में पड़कर किसी वाद विवाद आदि का निपटारा करे। पंच। बिचवई। मध्यस्थ। २. दलाल। ३. कुटना। ४. ब्याह करानेवाला ब्राह्मण। बरेखो।

माध्यस्थ²—वि० मध्यस्थ। तटस्थ।

माध्यस्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्यस्थ होने का भाव। मध्यस्थता।

माध्याकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के मध्य भाग का वह आकर्षण जो सदा सब पदार्थों को अपनी ओर खींचता रहता है और जिसके कारण सब पदार्थ गिरकर जमीन पर आ पड़ते हैं।

विशेष—इंगलैंड के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता न्यूटन ने वृक्ष से एक सेब को जमीन पर गिरते हुए देखकर यह सिद्धांत स्थिर किया था कि पृथ्वी के मध्य भाग में एक ऐसी आकर्षण शक्ति है, जिसके द्वारा सब पदार्थ, यदि बीच में कोई चीज बाधक न हो तो, उसकी ओर खिंच आते हैं।

माध्याह्निक¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह कार्य जो ठीक मध्याह्न के समय किया जाता हो। ठीक दोपहर के समय किया जानेवाला कार्य, विशेषतः धार्मिक कृत्य।

माध्याह्निक²—वि० [वि० स्त्री० माध्याह्निकी] दिन के मध्य का। दोपहर या मध्याह्न का [को०]।

माध्व¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैष्णवों के चार मुख्य संप्रदायों में से एक जो मध्वाचार्य का चलाया हुआ है। इस मत के माननेवाले काला तिलक लगाते हैं और प्रतिवर्ष चक्रांकित होते रहते हैं। २. महुए की शराब। ३. मधुरकंटक नाम की मछली।

माध्व²—वि० [वि० स्त्री० माध्वी] मीठा। मधुनिर्मित [को०]।

माध्वक—संज्ञा पुं० [सं०] महुए या मधु की शराब।

माध्विक—संज्ञा पुं० [सं०] शहद इकट्ठा करनेवाला।

माध्वी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मदिरा। शराब। २. वह शराब जो मधु या महुए से बनाई जाती है। ३. मधुरकंटक नाम की मछली। ४. पुराणानुसार एक नदी का नाम। ५. एक प्रकार का खजूर। मधुखर्जूरी (को०)। ६. माधवी नाम की लता। उ०—माध्वी कुंदलता ललित पगनि परति चहुँ भाँति।—अनेकार्थ०, पृ० २०।

माध्वीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महुए की शराब। २. मधु। मकरंद। ३. दाख की शराब। ४. सेम।

माध्वीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।

मध्वीमधुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठी खजूर।

मान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का भार, तौल या नाप आदि। परिमाण। २. वह साधन जिसके द्वारा कोई चीज नापी या तौली जाय। पैमाना। जैसे, गज, ग्राम, सेर आदि। ३. किसी विषय में यह समझना कि हमारे समान कोई नहीं है। अभिमान। अहंकार। गर्व। शेखी।

विशेष—न्याय दर्शन के अनुसार जो गुण अपने में न हो, उसे भ्रम से अपने में समझकर उसके कारण दूसरों से अपने आपको श्रेष्ठ समझना मान कहलाता है।

मुहा०—**मान मथना** = मान भंग करना। गर्व चूर्ण करना। शेखी तोड़ना। उ०—इन जरासंध मदअंभ मम मान मथि बाँधि बिनु काज बल इहाँ आने।—सूर (शब्द०)।

४. प्रतिष्ठा। इज्जत। संमान। उ०—भोजन करत तुष्ट घर उनके राज मान भंग टारत।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—**मान रखना** = इज्जत रखना। प्रतिष्ठा करना। उ०—कमरी थोरे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान।—गिरधर (शब्द०)।

यौ०—**मान महत** = आदर सत्कार। प्रतिष्ठा।

५. साहित्य के अनुसार मन में होनेवाला वह विकार जो अपने प्रिय व्यक्ति का कोई दोष या अपराध करते देखकर होता है। रूठना। उ०—विधि बिध कौ विकरं टरै, नहीं परेहू पान। चितै कितै तैं लै धरयो इतौ इतै तन मान।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—मान बहुधा स्त्रियाँ ही करती हैं। अपने प्रेमी को किसी दूसरी स्त्री की ओर देखते अथवा उससे बातचीत करते देखकर, कोई अभिलषित पदार्थ न मिलने पर अथवा कोई कार्य इच्छानुसार न होने पर ही प्रायः मान किया जाता है। यह लघु, मध्यम और गुरु तीन प्रकार का कहा गया है।

मुहा०—**मान मनाना**=दूसरे का मान दूर करना। रूठे हुए को मनाना। उ०—घरी चारि परम सुजान पिय प्यारी रीझि, मान न मनाश्रो मानिनी को मान देखि रह्यो।—रघुनाथ (शब्द०)। **मान मोरना**=मान का त्याग करना। मान छोड़ देना। उ०—मुख को निहारो जो न मान्यो सो भली करी न केशौराय की सौं तोहिं जो तू मान मोरिहै।—केशव (शब्द०)

६. पुराणानुसार पुष्कर द्वीप के एक पर्वत का नाम। ७. सामर्थ्य। शक्ति। ८. उत्तर दिशा के एक देश का नाम। ९. ग्रह। १०. मंत्र। ११. आत्मसंमान। आत्मगौरव (को०)। १२. प्रमाण। सबूत (को०)। १३. मानक। मानदंड। उ०—उलझन प्राणों की धागों की सुलझन का समझूँ मान तुम्हें।—कामायनी, पृ० ६६। १४. संगीत शास्त्र के अनुसार ताल में का विराम जो सम, विषम, अतीत और अनागत चार प्रकार का होता है।

मानकंद—संज्ञा पुं० [सं० **माणक**] १. एक प्रकार का मीठा कंद।

विशेष—यह कंद बंगाल में बहुत अधिक होता है और प्रायः तरकारी के रूप में या दूसरे अनाजों के साथ खाया जाता है। यह बहुत जल्दी पचता है। इसलिये दुर्बल रोगियों आदि के लिये बहुत लाभदायक होता है। कहीं कहीं अरारोट या सागूदाने की तरह भी इसका व्यवहार होता है। यह मृदु, विरेचक, मूत्रकारक और बवासीर तथा कब्जियत के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

२. एक प्रकार की मिस्री जो सालिब मिस्री के नाम से बाजारों में मिलती है।

मानक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] मानकच्चू। मानकंद।

मानक[२]—संज्ञा पुं० [सं० **माणिक्य**] दे० 'माणिक्य'। उ०—अंमर बरषै धरती निपजै अंद्रि बरषंदाई। गुरू हमारा बानी बरषं चुनि चुनि मानक लेई।—रामानंद०, पृ० १३।

मानक[३]—संज्ञा पुं० वह जिसके आधार पर किसी वस्तु के ठीक बेठीक होने का निर्णय किया जाय। आदर्श, जिसके नमूने पर कोई चीज तैयार की जाय।

मानकच्चू—संज्ञा पुं० [देश०] दे० **'मानकंद'**।

मानकलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईर्ष्या। डाह। मानजनित कलह। २. प्रतिद्वंद्विता। चढ़ा ऊपरी।

मानक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मानक्रीडा**] सूदन के अनुसार एक प्रकार का छंद। जैसे,—बदन सुत चाइकै। भरतपुर जाइकै। थपितु सिरदार कौं। जतत पितरार कौं।—सूदन (शब्द०)।

मानगृह—संज्ञा पुं० [सं०] रूठकर बैठने का स्थान। कोपभवन। उ०—बैठी जाय एकांत भवन में जहाँ मानगृह चार।—सूर (शब्द०)।

मानग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० **मानग्रन्थि**] १. ईर्ष्या से उत्पन्न कोप। २. अपराध। जुर्म।

मानचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्थान का बना हुआ नक्शा। जैसे, एशिया का मानचित्र।

मानज[१]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध।

मानज[२]—वि० मान से उत्पन्न।

मानतरु—संज्ञा पुं० [सं०] खेतपापड़ा।

मानता—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मानना**+**ता** (प्रत्य०)] मनौती। मन्नत।

क्रि० प्र०—**उतारना**।—**चढ़ाना**।—**मानना**।

मानदंड—संज्ञा पुं० [सं० **मानदण्ड**] वह डंडा या लकड़ी जिससे कोई चीज नापी जाय। पैमाना।

मानद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. वह व्यक्ति जो संमान वा आदर दे। प्रतिष्ठा देनेवाला। प्रियतम। उ०—मान मनावत हू करै, मानद को अपमान। दूनो दुख तिन बिनु लहै अभिसंधिता बखान।—केशव० ग्रं०, पृ० ४१। ३. 'आ' अक्षर। (तांत्रिक)।

मानदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की दूसरी कला या लेखा (को०)।

मानद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़।

मानधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका धन मान वा प्रतिष्ठा हो। वह जो बहुत बड़ा अभिमानी हो।

मानधाता—संज्ञा पुं० [सं० **मान्धाता**] दे० 'मांधाता'।

मानधानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

मानन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मानना**] आदर करना। मान करना। संमान (को०)।

मानना[१]—क्रि० अ० [सं०] १. अंगीकार करना। स्वीकार करना। मंजूर करना। जैसे,—(क) हम मानते हैं कि आप उनकी बुराई नहीं कर रहे हैं। (ख) मान न मान, मैं तेरा मेहमान। (कहा०)। २. कल्पना करना। फर्ज करना। समझना। जैसे,—मान लीजिए कि हम लोग वहाँ न जा सके; तो फिर क्या होगा? ३. ध्यान में लाना। समझना। जैसे, बुरा मानना, भला मानना।

संयो० क्रि०—**जाना**।—**लेना**।

४. ठीक मार्ग पर आना। अनुकूल होना। जैसे,—यह लड़का सीधी तरह से नहीं मानेगा।

संयो० क्रि०—**जाना**।

मानना[२]—क्रि० स० १. कोई बात स्वीकार करना। कुछ मंजूर करना। जैसे,—आप किसी का कहना नहीं मानते। २. किसी को पूज्य, आदरणीय या योग्य समझना। किसी के बड़प्पन या लियाकत का कायल होना। आदर करना। जैसे,—(क) उन महात्मा को यहाँ के बहुत लोग मानते हैं। (ख) लड़ाई झगड़ा लगाने में मैं तुम्हें मानता हूँ।

विशेष—कभी कभी कर्ता को छोड़कर उसके गुण या कार्य के

संबंध में भी इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग होता है। जैसे,—उनका गाना बजाना अच्छे अच्छे उस्ताद मानते थे। ३. दक्ष समझना। पारंगत समझना। उस्ताद समझना। ४. धार्मिक दृष्टि से श्रद्धा या विश्वास करना। जैसे,—शिव को माननेवाले शैव कहलाते हैं। ५. देवता आदि की भेंट करने का प्रण करना। चढ़ावा चढ़ाने आदि का दृढ़ संकल्प करना। मन्नत करना। जैसे,—१।) के लड्डू गणेश जी को मानो तो इम्तहान में पास हो जाओगे। ६. ध्यान में लाना। समझना। जैसे,—यह तो किसी को कुछ भी नहीं मानता। ७. स्वीकृत करके अनुकूल कार्य करना। जैसे,—शिवरात्रि किसी ने आज मानी है और किसी ने कल। ८. किसी पर बहुत अनुरक्त होना। किसी के साथ बहुत प्रेम करना (बाजारू)।

माननि, माननी—(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० **मानिनी**] दे० 'मानिनी'। उ०—(क) नंददास प्रभु कहाँ लौं बरनू बेदहु आपुन मुख कह्यौ यह माननि बड़ भाग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७। (ख) मान मति करै माननी पिय सँग करहु बिलास।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६।

माननीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **माननीया**] जो मान करने योग्य हो। पूजनीय। आदरणीय। मान्य।

मानपत्र—संज्ञा पुं० [सं० **मान + पत्र**] दे० 'अभिनंदनपत्र'।

मानपरिखंडन—संज्ञा पुं० [सं० **मानपरिखण्डन**] १. अपमान। तिरस्कार। २. दे० 'मानभंग'।

मानपरेखा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मान + परीक्षा**] आशा। विश्वास। भरोसा।

मानपात—संज्ञा पुं० [हिं० **मान + पात**] दे० 'मानकंद'।

मानभंग—संज्ञा पुं० [सं०] मानहानि। (नायिका के) मान का टूटना।

मानभरी(पु)—वि० स्त्री० [**मान + भरना**] मान से भरी हुई। गुमान से ऐंठी हुई।

मानभाव—संज्ञा पुं० [सं०] चोचला। नखरा।

मानभृत्—वि० [सं०] मानवाला। अभिमानी। गर्वयुक्त [को०]।

मानमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० **मान + मन्दिर**] १. स्त्रियों के रूठकर बैठने का एकांत स्थान। २. वह स्थान जिसमें ग्रहों आदि के वेध करने का यंत्र तथा सामग्री हो। वेधशाला।

मानमनौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मान + मनौती**] १. मानता। मन्नत। मनौती। २. पारस्परिक प्रेम। ३. रूठने और मानने की क्रिया उ०—उसे खिलाने के लिये लोगों को मान मनौती करने की आवश्यकता है।

मानमनौवल—संज्ञा पुं० [हिं० **मान + मनावना**] मनौती। रूठने और मनाने की क्रिया। उ०—रामेश्वर के परिवार का स्नेह, उनके मधुर झगड़े, मानमनौवल, समझौता और अभाव में संतोष, कितना सुंदर! मैं कल्पना करने लगा।—आँधी, पृ० ७।

मानमरोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मान + मरोर**] मन मुटाव। रंजिश। उ०—राधे सुजान इतै चित दै हित में कत कीजतु मानमरोर है।—घनानंद (शब्द०)।

मानमान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] इज्जत। प्रतिष्ठा।

मानमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य के अनुसार रूठे हुए प्रिय को मनाना जो नीचे लिखे छह उपायों के द्वारा बतलाया गया है,—(१) साम, (२) दाम, (३) भेद, (४) प्रणति, (५) उपेक्षा, और (६) प्रसंगविध्वंस।

मानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] नाप और तौल की ठीक ठीक विधि या रीति [को०]।

मानरंध्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मानरन्ध्रा**] जलघड़ी जिसका व्यवहार प्राचीन काल में समय जानने के लिये होता था।

विशेष—इसमें एक छोटा कटोरा होता था जिसके पेंदे में एक छोटा सा छेद होता था। वह कटोरा किसी बड़े जलपात्र में छोड़ दिया जाता था और उस छेद के द्वारा धीरे धीरे कटोरे में पानी भरने लगता था। वह कटोरा ठीक एक दंड या घड़ी में भर जाता था और पानी में डूब जाता था। फिर उसे निकालकर खाली करके उसी प्रकार पानी में छोड़ देते थे और इस प्रकार समय का निरूपण करते थे।

मानरंध्री—संज्ञा स्त्री० [सं० मानरन्ध्री] दे० 'मानरंध्रा'।

मानर‡—संज्ञा पुं० [सं० **मर्दल**, हिं० **मादल**] मादल बाजा। उ०—मानर की मंद आवाज रिंग रिंग ता धिन ता।—मैला०, पृ० १२६।

मानव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनु से उत्पन्न, मनुष्य। आदमी। मनुज। २. बालक। बच्चा (को०)। ३. एक प्रकार के छंद का नाम। १४ मात्राओं के छंदों की संज्ञा। इनके ६१० भेद हैं। ४. मनुकथित एक उपपुराण [को०]। ५. मनुष्य की माप (लंबाई)।

मानव[2]—वि० [वि०स्त्री० **मानवी**] १. मनु का। मनु से संबद्ध। २. मनुष्योचित्त। मानवोचित।

मानवक—संज्ञा पुं० [सं० **मानव**] १. छोटे कद का आदमी। वामन। बौना। २. तुच्छ आदमी।

मानवत्—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मानवती**] वह जो मान करता हो। रूठा हुआ।

मानवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानव होने का भाव। मनुष्यता। मानुषता।

मानवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करै ईरषा सों जु तिय मनभावन सों मान। मानवती तासों कहत, कवि मतिराम सुजान।—मतिराम (शब्द०)।

मानवदेव—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—बलि मिस देखे देवता कर मिस मानवदेव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी (शब्द०)।

मानवधर्मशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति [को०]।

मानवपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेंद्र।

मानवपन—संज्ञा पुं० [सं० **मानव** + हिं० **पन** (प्रत्य०)] दे० मानवता'। उ०—पावक पग धर आवे नूतन। हो पल्लवित नवल मानवपन।—युगांत, पृ० ३।

मानवर्जित—वि० [सं०] निरभिमान। गर्व या मानहीन। नीच। अप्रतिष्ठित।

मानवर्तिक—संज्ञा पुं० [सं० **मानवर्त्तिक**] पुराणानुसार एक प्राचीन देश का नाम जो पूर्व दिशा में था। जैनों के हरिवंश के अनुसार यह देश वर्तमान मानभूमि है।

मानवशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मानव जाति की उत्पत्ति और विकास आदि का विवेचन होता है।

विशेष—इस शास्त्र से यह भी जाना जाता है कि संसार के भिन्न भिन्न भागों में मनुष्यों की कितनी जातियाँ हैं; सृष्टि के अन्यान्य जीवों में मनुष्य का क्या स्थान है; मनुष्यों की सृष्टि कब और कैसे हुई, उसकी सभ्यता का कैसे विकास हुआ, इत्यादि इत्यादि।

मानवाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मानवाः**] मानव। मनुष्य। उ०—सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन। जीवपरा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन।—कबीर सा० सं०, पृ० ६५।

मानवाचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

मानवास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र।

मानवी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। नारी। औरत। २. पुराणानुसार स्वायंभुव मनु की कन्या का नाम।

मानवी[2]—वि० [सं० **मानवीय**] मानव संबंधी। मनुष्य का।

मानवीकरण—वि० [सं० **मानवी + करण**] किसी सूक्ष्म वस्तु में मानवता के गुणधर्म या मानवता का आरोप या स्थापन करना। उ०—'हरिऔध' जी ने पवन द्वारा राधा का संदेश भिजवाने के लिये मानवीकरण का ही प्रयोग किया है।—हिंदी प्रेमा०, पृ० ६४।

मानवीय—वि० [सं०] मानव संबंधी। मानव का।

मानवीयता—संज्ञा स्त्री० [सं० **मानवीय** + हिं० **ता**] दे० 'मानवता'। उ०—मतलब यह कि मानवीयता की व्यापक भूमि पर ही कोई अनुभूति गहरी हो सकती है।—इति०, पृ० ९।

मानवेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० **मानवेन्द्र**] राजा।

मानवेश—संज्ञा पुं० [सं०] मानवेंद्र।

मानव्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मानव'।

मानस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मन। हृदय। उ०—माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे।—तुलसी (शब्द०)। २. मानसरोवर। उ०—रोष महामारी परतोष महतारी दुनी देखिए दुखारी मुनि मानस मरालिके—तुलसी (शब्द०)। ३. कामदेव। ४. संकल्प विकल्प। ५. एक नाग का नाम। ६. शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम। ७. पुष्कर द्वीप के एक पर्वत का नाम। ८. दूत। चर। उ०—(क) मानस पठाए सुधि को लाए साँच आँच लगि करौ साष्टांग बात मानी भाग फले हैं।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) दैके बहु भाँति सों पठाए संग मानस हू आवो पहुँचाइ तब तुम पर रीझिए।—प्रियादास (शब्द०)। ९. गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण। रामचरितमानस। १०. विष्णु का एक रूप (को०)। ११. एक प्रकार का नमक (को०)।

मानस[2]—वि० १. मन से उत्पन्न। मनोभव। २. मन का विचारा हुआ। उ०—कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहिं पापा।—तुलसी (शब्द०)।

मानस[3]—क्रि० वि० मन के द्वारा। उ०—रहै गंडकी सुत मुख बीचा। पुज्यो मानस शिर करि नीचा।—विश्राम (शब्द०)।

मानसⓅ[4]—संज्ञा पुं० [सं० **मानुष**] मनुष्य। आदमी। उ०—कोमल मृणालिका सी मल्लिका की मालिका सी बालिका जु डारी भाउ मानस के पशु है।—केशव (शब्द०)।

यौ०—**मानसदेव**।

मानसकोश—संज्ञा पुं० [सं०] मन रूपी कोश या समझ। उ०—मेरे मानसकोश में दोनों (प्रेमभाव या लोभ) का अर्थ प्रायः एक ही निकलता है।—रस०, पृ० ११३।

मानसचारी—संज्ञा पुं० [सं० **मानसचारिन्**] एक प्रकार का हंस जो मानसरोवर में होता है।

मानसजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० **मानसजन्मन्**] १. मनोभव। कामदेव। २. हंस।

मानसजप—संज्ञा पुं० [सं०] जप का एक प्रकार। वह जप जो मन ही मन किया जाय।

मानसतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मन जो राग द्वेष आदि से नितांत रहित हो गया हो।

मानसदेवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मानुष + देव**] राजा। नरेश।

मानसपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह पुत्र या संतान जिसकी उत्पत्ति इच्छामात्र से ही हुई हो। जैसे,—सनक, सनंदन आदि ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं।

मानसपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा के दो प्रकारों में से एक। वह पूजा जो मन ही मन की जाय और जिसमें अर्घ्य, पाद्य आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता न रहे।

मानसरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मानससर**] दे० 'मानसरोवर'। उ०—दुरे हंस मानसर ताहि मैं कैलासधर, सुधा सरबर सोऊ छोड़ि गयो दुनियै।—भूषण ग्रं०, पृ० ३२।

मानसरोदकⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **मानसर + उदधि**] मानसरोवर के समान सुंदर सरोवर। उ०—मानसरोदक बरनौं काहा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

मानसरोवर—संज्ञा पुं० [सं० **मानस + सरोवर**] हिमालय के उत्तर की एक प्रसिद्ध बड़ी झील।

विशेष—इस झील के विषय में यह प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ने अपनी इच्छा मात्र से ही इसका निर्माण किया था। इस सरोवर का

जल बहुत ही सुंदर, स्वच्छ और गुणकारी है तथा इसके चारों ओर की प्राकृतिक शोभा बहुत ही अद्भुत है। हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषियों ने इसके आस पास की भूमि को स्वर्ग कहा है।

मानसव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि का पालन या व्रत।

मानसशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि मन किस प्रकार कार्य करता है और उसकी वृत्तियाँ किस प्रकार उत्पन्न होती हैं। मनोविज्ञान।

मानसशास्त्री—संज्ञा पुं० [सं०] मानसशास्त्र का पंडित। मनोवैज्ञानिक।

मानससंन्यासी—संज्ञा पुं० [सं०] दसनामी संन्यासियों के अंतर्गत एक प्रकार के संन्यासी।

विशेष—ऐसे संन्यासी मन में सच्चा वैराग्य उत्पन्न होने पर गृहस्थाश्रम का त्याग करके जंगल में जा रहते हैं और वहीं तपस्या करते हैं। ये लोग गैरिक वस्त्र आदि नहीं धारण करते।

मानससर—संज्ञा पुं० [सं०] मानसरोवर। मानस सरोवर।

मानसहंस—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम। इसके प्रत्येक चरण में 'स ज ज भ र' होता है। इसका दूसरा नाम 'मानहंस' या 'रणहंस' है।

मानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

विशेष—कहते हैं, तृणविंदु नामक एक ऋषि इसे मानसरोवर से लाए थे।

मानसालय—संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

मानसिक[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मानसिकी**] १. मन की कल्पना से उत्पन्न। २. मन संबंधी। मन का। जैसे, मानसिक कष्ट; मानसिक चिंता।

मानसिक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मानसी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानस पूजा। वह पूजा जो मन ही मन की जाय। उ०—आभरण नाम हरि साधु सेवा कर्ण फूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइए।—प्रियादास (शब्द०)। २. पुराणानुसार एक विद्या देवी का नाम।

मानसी[२]—वि० मन का। मन से उत्पन्न। उ०—मानसी स्वरूप में अग्रदास जबै करत बयार नाभा मधुर सँभार सों। प्रियादास (शब्द०)।

मानसीगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मानसीगङ्गा**] गोवर्धन पर्वत के पास के एक सरोवर का नाम। उ०—सो एक समै देसाधिपति के डेरा गोवर्द्धन में मानसी गंगा पर भए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४२।

मानसीपूजा—संज्ञा पुं० [सं० **मानसी + पूजा**] दे० 'मानसपूजा'। सोलह घड़ी तथा तीस पल अक्षर चार और मानसी पूजा सोहम् भाव से पूजना।—कबीर मं०, पृ० ३१६।

मानसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. करधनी। २. नापने का फीता।

मानसून—संज्ञा पुं० [**अं० मि० अ० मौसिम**] १ एक प्रकार की वायु जो भारतीय महासागर में अप्रैल से अक्टूबर मास तक बराबर दक्षिणपश्चिम के कोण से चलती है और अक्तूबर से अप्रैल तक उत्तरपूर्व के कोण से चलती है। अप्रैल से अक्टूबर तक जो हवा चलती है; प्रायः उसी के द्वारा भारत में वर्षा भी हुआ करती है।

क्रि० प्र०—**आना**।—**उठना**।—**दबना**।

२. वह वायु जो महादेशों और महाद्वीपों तथा अनेक आस पास के समुद्रों में पड़नेवाले वातावरण संबंधी पारस्परिक अंतर के कारण उत्पन्न होती है और जो प्रायः छह् मास तक एक निश्चित दिशा में और छह् मास तक उसकी विपरीत दिशा में बहती है।

मानसौका—संज्ञा पुं० [सं० **मानसौकस्**] हंस। मानसचारी। मनोनिवासी।

मानहंस—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में स ज ज भ र होते हैं। इसके अन्य नाम 'रणहंस' और 'मानसहंस' भी हैं।

मानहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रतिष्ठा। अनादर। अपमान। बेइज्जती। हतक इज्जत।

मानहुँⓅ—अव्य [हिं०] दे० 'मानों'।

माना[१]—संज्ञा पुं० [**इबरानी**] एक प्रकार का मीठा निर्यास।

विशेष—यह निर्यास इटली और एशिया माइनर आदि देशों के कुछ विशिष्ट वृक्षों में से छेव लगाकर निकाला जाता है; अथवा कभी कभी उन वृक्षों पर कुछ कीड़ों आदि की कई क्रियाओं से उत्पन्न होता है और जो पीछे से कई रासायनिक क्रियाओं से शुद्ध करके ओषधि के रूप में काम में लाया जाता है। भारत के कई प्रकार के बाँसों तथा दूसरे अनेक वृक्षों पर भी यह कभी कभी पाया जाता है। यह रेचक होता है और इसके व्यवहार के उपरांत मनुष्य विशेष निर्बल नहीं होता। देखने में यह पीले रंग का, पारदर्शी और हलका होता है और प्रायः बहुत महँगा मिलता है।

माना†[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मान**] अन्नादि नापने का एक पात्र।

विशेष—इसमें पाव भर अन्न आता है। यह लकड़ी, मिट्टी या धातु का बना होता है। इससे तरल पदार्थ भी नापे जाते हैं।

माना†[३]—क्रि० स० [सं० **मान** अथवा हिं० **मापना**] १. नापना। तौलना। उ०—देखि विवरु सुधि पाय गीध में सबनि अपनो बलु मायो।—तुलसी (शब्द०)। २. जाँचना। परीक्षा करना।

मानाⓅ[४]—क्रि० अ० दे० 'समाना' या 'अमाना'। उ०—(क) इतनो बचन श्रवण सुनि हरष्यो फूल्यो अंग न मात। लै लै चरन रेनु निज प्रभु की रिपु के शोणित न्हात।—सूर (शब्द०)। (ख) माई कहाँ यह माइगी दीपति जो दिन दो यहि भाँति बढ़ेगी।—केशव (शब्द०)।

मानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ०—मदन

मर्दन मयातीत माया रहित मंजु मानाथ पायोज पानी। —तुलसी (शब्द०)।

मानिंद—वि० [फ़ा०] समान। तुल्य। सदृश। जैसे,—वे भी आपके ही मानिंद शरीफ हैं। उ०—क्यों न हम शमें की मानिंद जलें दूर खड़े। जब उदू बायसे गरमी हो तेरी मजलिस के।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८६।

मानि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मान**] संमान। दे० 'मान—३'। उ०—मानि महातम कछू न चाहै, एक दसा सदा निरबाहै।—रामानंद० पृ० ५३।

मानिक[1]—संज्ञा पुं० [सं० **माणिक्य**] एक मणि का नाम।

विशेष—यह लाल रंग का होता है और हीरे को छोड़कर सबसे कड़ा पत्थर है। रासायनिक विश्लेषण द्वारा मानिक में दो भाग अल्यूमिनम और तीन भाग आक्सिजन का पाया जाता है, जिससे रसायनशास्त्रियों के मत से यह कुरंड की जाति का पत्थर प्रतीत होता है। इसमें एक और विशेषता यह भी है कि बहुत अधिक ताप से सुहागे के योग से यह काँच की भाँति गल जाता है और गलने पर इसमें कोई रंग नहीं रह जाता। आजकल के रासायनिकों ने काँच से नकली मानिक बनाया है जो असली मानिक से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है। मानिक पत्थर गहरे लाल रंग से लेकर गुलाबी रंग और नारंगी से लेकर बैंगनी रंग तक के मिलते हैं। मानिक की दो प्रधान जातियाँ हैं—नरम चुन्नी और मानिक। नरम चुन्नी का विश्लेषण करने से मैग्नेशियम, अल्यूमिनम और आक्सिजन मिलते हैं। उसपर यदि मानिक से रगड़ा जाय, तो लकीर पड़ जाती है।

अगस्त जी के मत से मानिक के तीन प्रधान भेद हैं—पद्मराग, कुरुविंद और सौगंधिक। कमल पुष्प के समान रंगवाला **पद्मराग** गाढ़ रक्तवर्ण सा ईषत् नील वर्ण **सौगंधिक** और टेसू के फूल के रंग का **कुरुविंद** कहलाता है। इनमें सिंहल में पद्मराग, कालपुर और आंध्र में कुरुविंद और तुंकर में सौगंधिक उत्पन्न होता है। मतांतर से **नीलगंधिक** नामक एक और जाति का मानिक होता है जो नीलापन लिए रक्तवर्ण या लाखी रंग का माना गया है। इसकी खानें बरमा, स्याम, लंका, मध्य एशिया यूरोप आस्ट्रेलिया आदि अनेक भूभागों में पाई जाती हैं। जिस मानिक में चिह्न नहीं होते और चमक अधिक होती है, वह उत्तम माना जाता है और अधिक मूल्यवान् होता है। वैद्यक में मानिक को मधुर, स्निग्ध और वात-पित्त-नाशक लिखा है।

पर्या०—**पद्मराग। कुरुविंद। शोणरत्न। सौगंधिक। लौहितक। तरुण। शृंगारी। रविरत्नक।**

मानिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आठ पल का एक मान।

मानिकखंभ—संज्ञा पुं० [हिं० **मानिक** + **खंभा**] १. वह खूँटा जो कातर के किनारे गड़ा रहता है और जिसमें धुसे को रस्सी से बाँधकर जाठ के सिरे पर अटकाते हैं। मरखम। २. वह खंभा जो विवाह में मंडप के बीच में गाड़ा जाता है। ३. मालखंभ। मलखम।

मानिकचंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मानिकचंद**] साधारण छोटी सुपारी।

मानिकजोड़—संज्ञा पुं० [हिं० **मानिक** + **जोड़**] एक प्रकार का बड़ा बगुला जिसकी चोंच और टाँगे लंबी होती हैं।

मानिकजोर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मानिकजोड़'।

मानिकदीप—संज्ञा पुं० [सं० **माणिक्य** + **दीप**] एक प्रकार का दीपक। पूजन, मंगल कार्य, विवाह आदि पर आटे या पिसान का सादे ढंग का बना हुआ दीपक जिसमें चार बत्तियाँ रहती हैं जिन्हें प्रज्वलित कर आरती की जाती है। उ०—मानिक दीप बराय बैठि तेहि आसन हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३।

मानिकरेत—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मानिक** + **रेत**] मानिक का चूरा जिससे गहने आदि साफ किए जाते हैं और उनपर चमक लाई जाती है।

मानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मद्य। २. आठ पल या साठ तोले का एक मान।

मानिटर—संज्ञा पुं० [अं०] पाठशाला की कक्षा में वह प्रधान छात्र जो अन्य छात्रों पर कुछ विशिष्ट अधिकार रखता हो।

मानित—वि० [सं०] संमानित। प्रतिष्ठित। आदृत।

मानिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानित्व। संमान। आदर। २. गौरव। ३. अहंकार। गर्व।

मानित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मानिता'।

मानिनी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. मानवती। गर्ववती। अभिमान युक्त। २. मान करनेवाली। रुष्टा।

मानिनी[2]—संज्ञा स्त्री० साहित्य में वह नायिका जो नायक के दोष को देखकर उससे रूठ गई हो। उ०—मान करत बरजत न हौं उलटि दिवावत सौंह। करी रिसौंही जायँगी सहज हँसौंहीं भौंह।—बिहारी (शब्द०)।

मानी[1]—वि० [सं० मानिन्] [वि० स्त्री० **मानिनी**] १. अहंकारी। घमंडी। २. संमानित। गौरवान्वित। ३. मनोयोगी। ४. मान करनेवाला (को०)। ५. माननेवाला। समझनेवाला। जैसे, पंडितमानी, भटमानी। उ०—अब जनि कोउ माखै भटमानी।—मानस, १।२५२।

मानी[2]—संज्ञा पुं० १. सिंह। २. साहित्य में वह नायक जो नायिका से अपमानित होकर रूठ गया हो।

मानी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुंभ। घड़ा। २. प्राचीन काल का एक प्रकार का मानपात्र जिसमें दो अंजुली या आठ पल आता था। ३. चक्की के ऊपर के पाट में लगी हुई वह लकड़ी जिसके छेद में कीली रहती है। जूआ न होने पर यह लकड़ी ऊपर के पाट के छेद में जड़ी रहती है। ४. कुदाल, बसुले आदि का वह छेद जिसमें बेंट लगाई जाती है। ५. किसी चीज में बनाया हुआ छेद जिसमें कुछ जड़ा जाय। ६. अन्न का एक मान जो सोलह सेर का होता है। ७. साधारण छेद।

मानी[4]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अर्थ। मतलब। तात्पर्य। २. तत्व। रहस्य। ३. प्रयोजन। ४. हेतु। कारण।

मानु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मान**] दे० 'मान'। उ०—मानु जनावति

सबनि कौं, मन न मान को ठाट। बाल मनावन कौ लखै लाल तिहारी बाट।—मति० ग्रं०, पृ० ३५१।

मानुखⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **मानुष**] मनुष्य। उ०—मानुख जनम अमोल, अपन सों खोइल हो।—धरम०, पृ० ६४।

मानुछ्छⓟ†—वि० [सं० **मानुष्य**, प्रा० **माणुस्स**] दे० 'मानुष्य'। उ०—मानुछ्छ मंद मति मंद तन, पुब्ब भाव चहुआन सिर।—पृ० रा०, २१५८६।

मानुष[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मानुषी**] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुष[2]—संज्ञा पुं० १. मनुष्य। २. याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार प्रमाण के दो भेदों में से एक। इसके तीन उपभेद हैं— लिखित, भुक्ति और साक्षी।

मानुषक—वि० [सं०] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्य का भाव या धर्म। मनुष्यता। आदमीयत।

मानुषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मानुषता'।

मानुषिक—वि० [सं०] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुषिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य शरीरधारी बुद्ध। जैसे, गौतम बुद्ध आदि।

विशेष—ये ध्यानी बुद्ध से पृथक् होते हैं।

मानुषी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। औरत। २. तीन प्रकार की चिकित्साओं में से एक। मनुष्यों के उपयुक्त चिकित्सा।

विशेष—शेष दो चिकित्साएँ आसुरी और दैवी कहलाती हैं।

मानुषी[2]—वि० मनुष्य संबंधी। मनुष्य का। जैसे, मानुषी वाक्; मानुषी तनु। उ०—दूरि जब लौं जरा रोगरु चलत इंद्री भाई आपनो कल्याण करि ले मानुषी तनु पाई।—सूर (शब्द०)।

मानुषीय—वि० [सं०] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुषोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक पर्वत का नाम जो पुष्कर द्वीप को दो समान भागों में विभक्त करता है।

मानुष्य[1]—वि० [सं०] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुष्य[2]—संज्ञा पुं० १. मानवता। मनुष्यता। २. मानव शरीर। ३. मानव समूह। ४. मनुष्यलोक। मर्त्यलोक [को०]।

मानुष्यक[1]—वि० [सं०] मनुष्य संबंधी। मनुष्य का।

मानुष्यक[2]—संज्ञा पुं० दे० 'मानुष्य'।

मानुस—संज्ञा पुं० [सं० **मानुष**] मनुष्य। आदमी। उ०—का निचिंत रे मानुस अपनी चिंता आछ। लेहु सजग होइ अगमन पुनि पछतासि न पाछ।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—**भलामानुस**। **मानुसहरा**=मनुष्य को हरनेवाला या मानवशून्य। उ०—दीप गभस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुसहरा।—पदमावत, पृ० १०।

माने—संज्ञा पुं० [अ० **मानी**] अर्थ। मतलब। आशय।

मानों—अव्य० [हिं० **मानना**] जैसे। गोया। उ०—(क) मयनमहन पुरदहन गहन जानि आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है। जनक सदसि जहाँ भले भले भूमिपाल कियो बलहीन बल आपनो बढ़ायो है। कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है। तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत टूट्यौ मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीन्हों। मानों तीन लोक की शोभा अधिक उदय सो कीन्हों।—सूर (शब्द०)। (ग) प्रिय पठयो मानों सखि सुजान। जगभूषण को भूषण निधान। निज आई हम को सीख देन। यह किधौं हमारो भरम लेन।—केशव (शब्द०)।

मानोज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] मनोज्ञता। मनोहरता [को०]।

मानोखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

मानौⓟ—अव्य० [हिं० **मानना**] दे० 'मानों'।

मान्य[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मान्या**] १. मानने योग्य। माननीय। २. आदर के योग्य। सम्मान के योग्य। पूजनीय। पूज्य। ३. प्रार्थनीय।

मान्य[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. शिव। महादेव। ३. मैत्रावरुण।

मान्य[3]—संज्ञा पुं० दे० 'मान'।

मान्यकⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० **माणिक्य**] दे० 'मानिक'। उ०—हार गुह्यौ मेरा राम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग।—कबीर ग्रं०, पृ० २१३।

मान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानने का भाव। मान्य होने का भाव। मान्य होना। उ०—आप की मान्यताएँ इतनी रोमांटिक होंगी ऐसा नहीं समझती थी।—नदी०, पृ० ३०। २. स्वीकृति या प्रामाणिकता। जैसे,—संस्कृत विद्यार्थियों को भी प्रतियोगिता परीक्षाओं में संमिलित होने की मान्यता प्राप्त हो गई है।

मान्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] आदर या मान का कारण।

विशेष—मनु जी ने पाँच मान्यस्थान लिखे हैं—वित्त, बंधु, वय, कर्म और विद्या। अर्थात् धन संपत्ति, संबंध, अवस्था, कार्य और योग्यता इन पाँच कारणों से मनुष्य का आदर किया जाता है।

माप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

माप[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मापना**] १. मापने की क्रिया या भाव। नाप।

यौ०—**मापतौल**=जाँच।

२. वह मान जिससे कोई पदार्थ मापा जाय। अहँड़ा। मान। ३. परिमाण।

मापक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मान। माप। अहँड़ा। पैमाना। २. वह जिससे कुछ मापा जाय। मापने की चीज। ३. वह जो मापता हो।

मापक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न मापने का काम करनेवाला। बया।

विशेष—प्राचीन काल में भारत में अन्न तुला से नहीं तौला जाता था। भिन्न भिन्न तौलों के बरतन रहते थे, उन्हीं में अनाज भर भरकर बेचा जाता था। कौटिल्य ने लिखा है कि माप में भेद आने पर २०० पण जुरमाना किया जाता था।

मापत्य—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

मापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नपना। तराजू।

मापना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मापन' [को०]।

मापना[3]—क्रि० स० [सं० मापन] १. किसी पदार्थ के विस्तार, आयत वा वर्गत्व और घनत्व का किसी नियत मान से परिमाण करना। नापना। जैसे,—अंगुल के मान से किसी पटरी को लंबाई और चौड़ाई का मान निकालना कि इसकी लंबाई इतने अंगुल वा चौड़ाई इतने अंगुल है। किसी कोठरी के वर्गत्व का मान करना कि वह इतने वर्ग गज की है। उ०—(क) कहि धौं शुक्र कहा धौं कीजै आपुन भए भिखारा। जै जैकार भयो भुव मापत तीन पैंड भइ सारी।—सूर (शब्द०)। (ख) बावन को पद लोकन मापि ज्यों बावन के बपु माँह सिधायो।—केशव (शब्द०)। (ग) हँसन लगीं सहचरि सबै देखहिं नयन दुराइ। मानों मापति लोयननि कर परसनि फैलाइ।—गुमान (शब्द०)। २. किसी मान वा पैमाने में भरकर द्रव वा चूर्ण वा अन्नादि पदार्थों का नापना। जैसे, दूध मापना, चूना मापना। ३. पदार्थ के परिमाण को जानने के लिये कोई क्रिया करना। नापना।

मापना[3]—क्रि० अ० [सं० मत्त] मतवाला होना। उ०—नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु मापी।—तुलसी (शब्द०)।

माफ—वि० [अ० मुआफ़] जो क्षमा कर दिया गया हो। क्षमित।

मुहा०—**माफ करना** = क्षमा करना। उ०—(क) प्रभु जू मैं ऐसी अमल कमायो। साबिक जमा हुती जो जोरी मीजां कुल तल लायो।..........बड़ो तुम्हार बरामद हू को लिखि कीन्हों है साफ। सूरदास को वह मुहासिबा दस्तक कीजो माफ।—सूर (शब्द०)। (ख) खलनि को योग जहाँ नाज ही में देखियतु माफ करिबेही माहँ होत कर नाशु है।—गुमान (शब्द०)।

माफकत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआफ़िकत] १. अनुकूल होने का भाव। अनुकूलता। २. मेल। मैत्री।

यौ०—**मेल माफकत**।

माफल—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का खट्टा नीबू।

माफिक—वि० [अ० मुआफ़िक] १. अनुकूल। अनुसार।

क्रि० प्र०—**आना**।—**पड़ना**। **होना**।

२. योग्य। मुनासिब।

माफिकत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआफ़िकत] दे० 'माफकत'।

माफी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआफ़ी] १. क्षमा।

मुहा०—**माफी चाहना वा माँगना** = क्षमा माँगना। माफ किए जाने के लिये प्रार्थना करना।

२. वह भूमि जिसका कर सरकार से माफ हो। बाघ।

यौ०—**माफीदार** = माफी की भूमि का मालिक। जिसकी भूमि की मालगुजारी सरकार ने माफ की हो।

३. वह भूमि जो किसी को बिना कर के दी गई हो।

क्रि० प्र०—**देना**।—**पाना**।—**मिलना**।

माबूद—संज्ञा पुं० [अ० मअबूद] ईश्वर। परमात्मा। वह जिसकी उपासना की जाय।—दादू०, पृ० १०८।

माम[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० मामक] १. ममता। अहंकार। उ०—रहहु सँभारे राम बिचारे कहत अहौ जो पुकारे हो। मूँड़ मुड़ाय फूलि कै बैठे मुद्रा पहिर मंजूसा हो। ता ह उपर कछु छार लपेटे भितर भितर घर मूसा हो। गाउँ बसत है गर्व भारती माम काम हंकारा हो। मोहनि जहाँ तहाँ लै जैहै नाही रहे तुम्हारा हो।—कबीर (शब्द०)। २. शक्ति। अधिकार। इख्तियार। उ०—भगी साह सेना तजे अब्ब मामं।—पृ० रा०, ५७।२०८। ३. प्रिय मित्र वा दोस्त (को०)। ४. चाचा। ताऊ। (संबोधन में प्रयुक्त)।

मामक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेरा। हमारा या अपना की बुद्धि। स्व की बुद्धि। २. मातुल। मामा। ३. कृपण। कंजूस [को०]।

मामक[2]—वि० [वि० स्त्री० मामिका] १. मेरा। स्वयं का। २. लालची। स्वार्थी। ३. ममतायुक्त [को०]।

मामकीन—वि० [सं०] मेरा। स्वयं का [को०]।

मामता—संज्ञा स्त्री० [सं० ममता] १. अपनापन। आत्मीयता। २. प्रेम। मुहब्बत। अनुराग।

मामरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

विशेष—यह हिमालय की तराई में रावी नदी से पूर्व की ओर तथा मद्रास और मध्य भारत में होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और चिकनी होती है, जिसपर रोगन करने से बहुत अच्छी चमक आती है। इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी आलमारी आदि आरायशी चीजें बनाई जाती हैं। इसकी छाल ओषधि के काम में आती है और जड़ साँप के काटने की ओषधि है। यह बीजों से उगता है। इसे 'चौरी' और 'रूही' भी कहते हैं।

मामलत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआमिलत] दे० 'मालति'।

मामलति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआमिलत] १. मामिला। व्यवहार की बात। २. विवादास्पद विषय। उ०—वही जो मामलति पहले चुकाई। करो सो जाइ तेरे हाथ भाई।—सूदन (शब्द०)।

मामला—संज्ञा पुं० [अ० मुआमिलह्] १. व्यापार। काम धंधा। उद्यम।

मुहा०—**मामला बनाना** = काम साधना।

२. पारस्परिक व्यवहार। जैसे, लेन देन, क्रय विक्रय इत्यादि।

३. व्यावहारिक, व्यापारिक या विवादास्पद विषय।

मुहा०—**मामला करना** = (१) बातचीत करना। बात पक्की करना। (२) पारस्परिक वैषम्य दूर करके निश्चयपूर्वक कुछ निर्धारण करना। फैसला करना। **मामला बनाना** = काम ठीक करना। बात पक्की करना।

४. पक्की या तै की हुई बात। कौल करार। ५. झगड़ा। विवाद। मुकदमा।

मुहा०—दे० 'मुकदमा' के मुहा०।

६. बात। घटना। उ०—कुँअर को देखते ही बधाई का चारों ओर से शोर मच गया। कुँअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है।—भारतेंदु ग्रं०, भा०, ३, पृ० ८०८। ७. प्रधान विषय। मुख्य बात। ८. सुंदर स्त्री। युवती। (बाजारू)। ९. संभाग। स्त्रीप्रसंग।

मुहा०—**मामला बनाना** = संभोग करना। प्रसंग करना।

मामा[2]—संज्ञा पुं० [अनु० मि० सं० **मातुल**] [स्त्री० **मामी**] माता का भाई। माँ का भाई।

मामा[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. माता। माँ। उ०—आदम आदि सिद्धि नहिं पावा। मामा हौवा कहँ ते आवा।—कबीर (शब्द०)। २. रोटी पकानेवाली स्त्री।

यौ०—**मामागीरी** = दूसरों की रोटी पकाने का काम।

३. बुड्ढी स्त्री। बुढ़िया। ४. नौकरानी। दाई। दासी। लौंड़ी।

मामिला—संज्ञा पुं० [अ० **मुआमिला**] दे० 'मामला'।

मामी—संज्ञा स्त्री० [सं० मा (= निषेधार्थक)] आरोप को ध्यान में न लाना। अपने दोष पर ध्यान न देना।

मुहा०—**मामी पीना** = दोषारोपण को ध्यान में न लाना। मुकर जाना। अपने दोष पर ध्यान न देना। उ०—(क) ऊधो हरि काहे के अंतर्यामी। अजहूँ न आइ मिले यहि औसर अवधि बतावत लामी। कोन्हीं प्रीति पुहुप संडा की अपने काज के कामी। तिनको कौन परेखा कीजै जे हैं गरुड़ के गामी। आई उछरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी। सूर इते पर खुनसनि मरियत ऊधो पीवत मामी।—सूर (शब्द०)। (ख) लाज कि और कहा कहि केशव जे सुनिए गुण ते सब ठाए। मामी पिए इनको मेरी माइ को हे हरि आठहू गाँठ अठाए।—केशव (शब्द०)।

मामी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मामा**] मातुलानी। मामा की स्त्री।

मामी[3]—वि० [सं०] हामी। स्वीकृति। उ०—आँनदघन अघओघ बहावन सुदृष्टि जियावन वेद भरत हैं मामी।—घनानंद, पृ० ४१८।

मामू—संज्ञा स्त्री० [अनु० मि० सं० मातुल] [स्त्री० **ममानी**] माता का भाई। (मुसलमान)।

मामूर—वि० [अ०] आबाद। भरा हुआ। समृद्ध। उ०—हो मुक्ति से मामूर सारी जमीन।—कबीर मं०, पृ० १३१।

मामूल[1]—संज्ञा पुं० [अ०] टेव। लत। उ०—इनका दीवानखाने में बैठकर खाना खाने का मामूल है।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ८५। २. रीति। रिवाज। परिपाटी। ३. वह धन जो किसी को रवाज आदि के कारण मिलता हो। ४. संमोहित या वशीकृत व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसके ऊपर संमोहन किया गया हो (को०)।

मामूल[2]—वि० जिसपर अमल किया जाय। अमल किया हुआ।

मामूली—वि० [अ० **मामूल** + ई] १. नियमित। नियत। २. सामान्य। साधारण।

मायँ(पु)—अव्य० [वि० **मध्य**, प्रा० **मज्झ**] दे० 'माहिं'।

माय(पु)†[1]संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] १. माता। माँ। जननी। उ०—जसुमति माय लाल अपने को शुभ दिन डोल झुलायो।—सूर (शब्द०)। २. किसी बड़ी वा आदरणीय स्त्री के लिये संबोधन का शब्द। उ०—तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी।—तुलसी (शब्द०)।

माय[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **माया**] दे० 'माया'। उ०—(क) ईश माय बिलोकि कै उपजाइयो मन पूत।—केशव (शब्द०)। (ख) मुनि वेष किए किधौं ब्रह्म जीव माय हैं।—तुलसी (शब्द०)।

माय[3]—अव्य० [सं० **मध्य**] दे० 'माहिं'। उ०—पाछे लोक पाल सब जीते सुरपति दियो उठाय। बरुण कुबेर अग्नि यम मारुत स्वबस किए छण माय।—सूर (शब्द०)।

माय[4]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीतांबर। २. असुर।

माय[5]—वि० [सं०] मायावी। माया करनेवाला [को०]।

मायक[1]—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] माया करनेवाला। मायावी। उ०—(क) सायक सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात। झरनौ लखि दुरि जाति जल लखि जलजात लजात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) हंस गति नायक कि गूढ़ गुण गायक कि श्रवण सुहायक कि मायक हैं मय के।—केशव (शब्द०)।

मायका†[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मातृ** + **क**] दे० 'मायका'।

मायका—संज्ञा पुं० [सं० **मातृ** + **का** (प्रत्य०)] नैहर। पीहर। उ० — (क) पठई समुझाय सहेलिन यों कोऊ मायके में मिलतीं न कहा।—दूलह (शब्द०)। (ख) सो जा सखी भरमैं मति री यह खाजा हमारे ही मायके वारो।—दूलह (शब्द०)। (ग) मायके में मन भावन को रति कीरति शंभु गिरा हू न गावति।—शंभु (शब्द०)।

मायण—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का भाष्य करनेवाले सायण और माधव के पिता का नाम। इन्हें मायन भी कहते थे।

मायन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मातृका** + **आनयन**] १. वह दिन वा तिथि जिसमें विवाह में मातृकापूजन और पितृनिमंत्रण होता है। उ०—बाजे बजि आवत नारि जाति गृह मायन हो।—तुलसी (शब्द०)। २. उपर्युक्त दिन का कृत्य। मातृकापूजन या पितृनिमंत्रण आदि कार्य। उ०—अभ्युदयिक करवाय श्राद्ध विधि सब विवाह के चारा। कृत्य तेल मायन करवैहैं ब्याह बिधान अपारा।—रघुराज (शब्द०)।

मायनी(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मायिन्**] दे० 'मायाविनी'। उ०—प्रचंड कोप ताड़का अखंड ओज मायनी। गिरी धरा धड़ाक दै सुरेश शाक दायनी।—रघुराज (शब्द०)।

मायनी[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० **मानी**] अर्थ। मतलब। आशय।

मायल—वि० [अ० माइल, फ़ा०] १. झुका हुआ। रुजू। प्रवृत्त।

उ०—इक तो हायल रहत हौं मायल ह्वै वा चाय। तापर घायल कै गई पायल बाल बजाय।—रामसहाय (शब्द०)। २. मिश्रित। मिला हुआ। जैसे,—सब्जी मायल सफेद रंग का पक्षी देखने में बहुत सुंदर लगता है।

मायव—संज्ञा पुं० [सं०] मायु के गोत्र के लोग।

माया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. द्रव्य। धन। संपत्ति। दौलत। उ०—(क) माया त्यागे क्या भया मान तजा नहिं जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) बड़ माया को दोष यह जो कबहूँ घटि जाय। तौ रहीम मरिबो भलो दुख सहि जियै बलाय।—रहीम (शब्द०)। (ग) जो चाहै माया बहु जोरी करै अनर्थ सो लाख करोरी।—निश्चल (शब्द०)। ३. अविद्या। अज्ञानता। भ्रम। ४. छल। कपट। धोखा। चालबाजी। उ०—(क) सुर माया बस केकई कुसमय कीन्ह कुचाल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) धरि कै कपट भेष भिक्षुक को दसकंधर तहँ आयो। हरि लीन्हों छिन में माया करि अपने रथ बैठायो।—सूर (शब्द०)। (ग) तब रावण मन में कहै करौं एक अब काम। माया को परपंच कै रचौं सु लछमन राम।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। (घ) साहस अनृत चपलता माया।—तुलसी (शब्द०)। ५. सृष्टि की उत्पत्ति का मुख्य कारण। प्रकृति। उ०—(क) माया, ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) माया माहिं नित्य लै पावै। माया हरि पद माहिं समावै।—सूर (शब्द०)। (ग) माया जीव काल के करम के सुभाव के करैया राम वेद कहै ऐसी मन गुनिए।—तुलसी (शब्द०)। ६. ईश्वर की वह कल्पित शक्ति जो उसकी आज्ञा से सब काम करती हुई मानी गई है। उ०—तहँ लखि माया की प्रभुताई। मणि मंदिर सु च सेज सुहाई।—(शब्द०)। ७. इंद्रजाल। जादू। छलमय रचना। उ०—जीति कौ सकै अजय रघुराई। माया ते अस रची न जाई।—तुलसी (शब्द०)। ८. इंद्रवज्रा नामक वर्णवृत्त का एक उपभेद। यह वर्णवृत्त इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से बनता है। इसके दूसरे तथा तीसरे चरण का प्रथम वर्ण लघु होता है। जैसे,—राधा रमा गौरि गिरा सु सीता। इन्है विचारे नित नित्य गीता। कटैं अपारे अघ ओघ मीता। ह्वै है सदा तोर भला सुबीता। ९. एक वर्णवृत्त जिसमें क्रमशः मगण, तगण, यगण, सगण और एक गुरु होता है। जैसे,—लीला ही सों बासव जी में अनुरागौ। तीनौ लेकै पालत नीके सुख पागौ। जो जो चाहो सो तुम वासों सब लीजौ। कीजै मेरी ओर कृपा सो सर भीजौ।—गुमान (शब्द०)। १०. मय दानव की कन्या जो विश्रवा को ब्याही थी और जिससे खर, दूषण, त्रिशिरा और सूर्पनखा पैदा हुए। उ०—माया सुत जन में करि लेखा। खर, दूषण, त्रिशिरा सुपनेखा।—विश्राम (शब्द०)। ११. देवताओं में से किसी की कोई लीला, शक्ति, इच्छा वा प्रेरणा। अ०—(क) रामजी की माया, कहीं धूप कहीं छाया। (कहावत)। (ख) अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया वसंत निरयमऊ।—तुलसी (शब्द०)। (घ) बोले बिहँसि महेश हरि माया बल जानि जिय।—तुलसी (शब्द०)। १२. कोई आदरणीय स्त्री। १३. प्रज्ञा। बुद्धि। अक्ल। १४. शाठ्य। शठता (को०)। १५. दंभ। गर्व (को०)। १६. दुर्गा का एक नाम। १७. बुद्धदेव (गौतम) की माता का नाम।

यौ०—**मायाकार**। **मायाजीवी**।

माया⑤†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **माता**] माता। माँ। जननी। उ०—बिनवै रतनसेन की माया। माथे छात पाट नित पाया।—जायसी (शब्द०)।

माया⑤†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **ममता**] १. किसी को अपना समझने का भाव। उ०—उसपर तुम्हें न हो, पर उसको तुमपर ममता माया है।—साकेत, पृ० ३७०। २. कृपा। दया। अनुग्रह। उ०—(क) भलेहि आय अब माया कीजै। पहुँनाई कहँ आयसु दीजै।—जायसी (शब्द०)। (ख) साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया।—तुलसी (शब्द०)। (ग) डंड एक माया कर मोरे। जोगिनि होउँ चलौ सँग तोरे।—जायसी (शब्द०)।

माया[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मायह्**] १. उपकरण। सामान। २. योग्यता। काबिल होना। ३. पूँजी। धन। दौलत (को०)।

यौ०—**मायादार** = धनी। पूँजीवाला। मालदार।

मायाकार—संज्ञा पुं० [सं०] जादूगर। ऐंद्रजालिक।

मायाकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मायाकार' (को०)।

मायाकृत—वि० [सं०] माया द्वारा किया हुआ। मायारचित। उ०—सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक।—मानस, ७।४१।

मायाक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक तीर्थ का नाम।

मायाचार—संज्ञा पुं० [सं०] मायावी (को०)।

मायाजाल—संज्ञा पुं० [सं०] सांसारिक मोह, माया, घर, गृहस्थी आदि का जंजाल।

मायाजीवी—संज्ञा पुं० [सं० **मायाजीविन्**] जादूगरी से जीविका निर्वाह करनेवाला। जादूगर।

मायातंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **मायातन्त्र**] एक प्रकार का तंत्र।

मायाति—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों की वह नरबलि जो अष्टमी या नवमी को दुर्गा के सामने दी जाती है।

मायाद—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर। मगर।

मायादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता का नाम।

मायाधर—संज्ञा पुं० [सं०] मायावी। मायापटु।

मायापटु—संज्ञा पुं० [सं०] मायावी।

मायापति—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर। परमेश्वर। उ०—मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया।—मानस, २।२१७।

मायापात्र—संज्ञा पुं० [सं० माया (= धन) + **पात्र**] वह जिसके पास बहुत धन हो। धनवान। अमीर।

मायापाश—संज्ञा पुं० [सं०] मायाजाल । माया का फंदा ।

मायापुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम ।

मायाप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. छल का प्रयोग । धूर्तता । २. इंद्रजाल करना । जादू का प्रयोग करना (को०) ।

मायाफल—संज्ञा पुं० [सं०] माजूफल ।

मायामय वि० [सं०] मायायुक्त । उ०—मायामय तेहि कीन्हि रसोई । बिजन बहु गनि सकै न कोई ।—मानस, १।१७३ ।

मायामृग—संज्ञा पुं० [सं०] माया का हिरन । सीता को छलने के लिये मारीच राक्षस का स्वर्णमृग रूप । कपट मृग । उ०—मायामृग पाछे सोइ धावा ।—मानस, ३।२१ ।

मायामोह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार विष्णु के शरीर से निकला हुआ एक कल्पित पुरुष जिसकी सृष्टि असुरों का दमन करने के लिये हुई थी ।

मायायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **मायायन्त्र**] किसी को मोहने की विद्या । संमोहन ।

मायायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] माया की लड़ाई । माया के बल अथवा छल से किया जानेवाला युद्ध [को०] ।

मायारवि—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

मायावचन—संज्ञा पुं० [सं०] कपटपूर्ण कथन । झूठा वचन । छल से भरी बात [को०] ।

मायावत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. मायावी । २. राक्षस । असुर । ३ कंस का एक नाम ।

मायावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री रति का एक नाम ।

मायावाद—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर के अतिरिक्त सृष्टि की समस्त वस्तुओं को अनित्य और असत्य मानने का सिद्धांत जिसके अनुसार यह सारी सृष्टि केवल माया या मिथ्या समझी जाती है । उ०—मेष मायावाद सिंह वादी अतुल धर्म वृख जयति गुणरासि बल्लभ सुअन ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८२७ ।

मायावादी—संज्ञा पुं० [सं० **मायावादिन्**] ईश्वर के सिवा प्रत्येक वस्तु को अनित्य माननेवाला । वह जो मायावाद के अनुसार सारी सृष्टि को माया या भ्रम समझता हो ।

मायावान्—संज्ञा पुं० [सं० **मायावत्**] दे० 'मायावत्' ।

मायाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छल वा कपट करनेवाली स्त्री । ठगिनी ।

मायावी[१]—संज्ञा पुं० [सं० मायाविन्] [स्त्री० मायाविनी] १. बहुत बड़ा चालाक । छलिया । धोखेबाज । फरेबी । २. एक दानव का नाम जो मय का पुत्र था और बालि से लड़ने के लिये किष्किंधा में आया था । वाल्मीकि के अनुसार यह दुंदुभी नामक दैत्य का पुत्र था । उ०—मयसुत मायावी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ।—तुलसी (शब्द०) । ३. परमात्मा । ४. माजूफल (को०) । ५. बिल्ली ।

मायावी[२]—वि० १. छलिया । फरेबी । २. माया या जादू करनेवाला [को०] ।

मायाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] 'ह्रीं' नामक तांत्रिक मंत्र ।

मायासीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार वह कल्पित सीता जिसकी सृष्टि सीताहरण के समय अग्नि के योग से हुई थी । माया द्वारा निर्मित सीता । उ०—पुनि मायासीता कर हरना । श्री रघुबीर बिरह कछु बरना ।—मानस ७।६६ ।

विशेष—कुछ पुराणों तथा रामायणों में यह कथा है कि सीताहरण के समय अग्नि ने वास्तविक सीता को हटाकर उनके स्थान पर माया से एक दूसरी सीता खड़ी कर दी थी ।

मायासुत—संज्ञा पुं० [सं०] माया देवी के पुत्र, बुद्ध ।

मायासृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] मायावादियों के अनुसार दृश्यमान भ्रमात्मक जगत् जो 'नाशमान' है । उ०—यह मायासृष्टि सदैव बंधन में रहती है ।—कबीर मं०, पृ० ३९ ।

मायास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कल्पित अस्त्र जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसका प्रयोग विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र जी को सिखाया था ।

मायिक[१] संज्ञा पुं० [सं०] माजूफल ।

मायिक[२]—वि० [सं०] १. माया से बना हुआ । जो वास्तविक न हो बनावटी । जाली । उ०—कहि जग गति मायिक मुनिनाथा । कहे कछुक परमारथ गाथा ।—तुलसी (शब्द०) । २. मायावी । माया करनेवाला ।

मायी[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मायिन्**] १. माया का अधिष्ठाता, परब्रह्म । ईश्वर । २. माया करनेवाला व्यक्ति । ३. जादूगर । ४. अग्नि (को०) । ५. शिव (को०) । ६. कामदेव (को०) ।

मायी[२]—वि० दे० 'मायिक' ।

मायी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृ**, प्रा **माइ**] दे० 'माई' ।

मायु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पित्त । २. शब्द । ३. वाक्य । ४. सूर्य ।

मायुक—वि० [सं०] शब्द करनेवाला ।

मायुराज—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के एक पुत्र का नाम ।

मायूर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह रथ जो मयूरों से चलता हो । २. मयूर । मोर ।

मायूर[२]—वि० १. मयूर संबंधी । मोर का । २. मयूरप्रिय । मोर को प्रिय (को०) । ३. मयूरपंख का । मोर के पंख से बना हुआ (को०) ।

मायूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जंगली मोरों को पकड़ता हो ।

मायूरा संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर ।

मायूरिक—संज्ञा पुं० [सं०] मायूरक । मोर पकड़नेवाला [को०] ।

मायूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा ।

मायूस—वि० [फ़ा०] निराश । नाउम्मेद । उ०—मायूस नजर से कब किसने दुनिया की सच्चाई देखी ।—मिलन०, पृ० ९६ ।

मायूसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मायूस** + **ई** (प्रत्य०)] निराशा । नाउम्मेदी ।

मायोभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुभ । अच्छा । २. सौभाग्य ।

मार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। उ०—(क) क्रीडत गिलोल जब लाल कर तब मार जानि चापक सुमन।—पृ० रा०, १।७२७। (ख) ऐसौ और न जानिबी जग अनीति कर नार। जामें उपज्यौ सरन सौ ताकौ बेधत मार।—स० सप्तक, पृ० ३६५। २. विघ्न। ३. विष। जहर। ४. धतूरा। ५. मारण। मार डालना। वध (को०)। ६. मृत्यु। मौत। मरण (को०)।

मार²—संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना] १. मारने की क्रिया या भाव। २. आघात। चोट। ३. जिस वस्तु पर मार पड़े। निशाना। ४. मार पीट। ५. कष्ट। पीड़ा। क्लेश। ६. युद्ध। लड़ाई।

यौ०—**मारकाट**। **मारधाड़** = **मारपीट**। **मारपछड़** = लड़ाई झगड़ा या मार पेच। **मारपेच**।

मार³—अव्य० [हिं० मारना] १. अत्यंत। बहुत। उ०—(क) सुनत द्वारावती मार उतसौ भयो···।—सूर (शब्द०)। (ख) सोने की अटारी चित्रसारी मार जारी जैसे घास की अटारी जर गई फिरे बाँस ते।—राम (शब्द०)।

मार⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० माला] माल। उ०—अमल कपोलै आरसी बाहू चंपक मार।—केशव (शब्द०)।

मार⁵—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी की जमीन। करैल मिट्टी की भूमि। मरवा भूमि।

मार⁶—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सर्प। साँप। उ०—कँई मार हुआ है कँई नेवल कँई प्यासा भूका कँई जल।—दक्खिनी पृ० ३२४।

मार्कंड—संज्ञा पुं० [सं० मार्कण्ड] दे० 'मारकंडेय' [को०]।

मारकंडेय—संज्ञा पुं० [सं० मार्कण्डेय] पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। मार्कंडेय।

विशेष—ये अष्ट चिरंजीवियों में से एक माने जाते हैं इनके पिता का नाम मृकंड था। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि ये सदा जीवित रहते हैं और रहेंगे।

मुहा०—**मारकंडेय की आयु होना** = दीर्घजीवी होना। चिरायु होना। (आशीर्वाद)।

मारक¹—वि० [सं०] १. मार डालनेवाला। मृत्युकारक। संहारक। उ०—(क) लै उतारि यातैं नृपति भलो चढ़ायो बान। निरदोषिन मारक नहीं यह तारक दुखियान।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ख) सुकवि मिलन की आस एक अवलंब उधारक। नहिं तो कैसे बचती मार्‍यौ मार सुमारक।—व्यास (शब्द०)। २. किसी के प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला। घात पर प्रतिघात करनेवाला। जैसे,—यह औषध अनेक प्रकार के विषों का मारक है।

मारक²—संज्ञा पुं० १. वध करनेवाला। जल्लाद। २. कामदेव का एक नाम। ३. श्येन पक्षी। बाज। ४. महामारी ५. प्रलयकालीन प्राणिनाश। ६. सिंदूर [को०]।

यौ०—**मारकस्थान** = कुंडली में वे स्थान जिनमें क्रूर ग्रहों की स्थिति से कष्ट एवं मृत्यु होती है।

मारका¹—संज्ञा पुं० [अं० मार्क] १. चिह्न। निशान। २. किसी प्रकार का चिह्न जिससे कोई विशेषता सूचित हो।

मारका²—संज्ञा पुं० [अ०] १. युद्ध। लड़ाई। २. युद्धस्थल। लड़ाई का मैदान (को०)। ३. लड़ाई झगड़ा। हंगामा (को०)। ४. बहुत बड़ी या महत्वपूर्ण घटना।

मुहा०—**मारके की बात या काम** = कोई महत्वपूर्ण या बड़ी बात या काम। **मारका जीतना या सर करना** = मैदान फतह करना। महत्व का काम अपने अनुकूल कर लेना।

मारकाट—संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना + काटना] १. युद्ध। लड़ाई। जंग। २. मारने काटने का काम। ३. मारने काटने का भाव।

मारकायिक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार मार के अनुचर।

मारकीन—संज्ञा स्त्री० [अं० मैनकिन्] एक प्रकार का मोटा कोरा कपड़ा जो प्रायः गरीबों को पहनने के काम में आता है। उ०—मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम। परदेसी जुलहान कै मानहु भए गुलाम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७३५।

मारकेश—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली में पड़नेवाले कुछ विशिष्ट ग्रहों का योग जिसके परिणामस्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अथवा वह मरणासन्न हो जाता है।

मारखोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० मारखोर] एक प्रकार की बकरी वा भेड़ जो काश्मीर और अफगानिस्तान में होती है।

विशेष—यह प्रायः दो तीन हाथ ऊँची होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। इसके सींग जड़ में प्रायः सटे रहते हैं और इसकी दाढ़ी बहुत लंबी और घनी होती है।

मारग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मार्ग] राह। रास्ता। मार्ग। उ०—(क) मारग हुत जो अँधेर असूझा। भा उजेर सब जाना बूझा।—जायसी (शब्द०)। (ख) मारग चलहिं पयादेहि पाएँ। कोतल संग जाहिं डोरियाएँ।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**मारगचीन्हना** = मार्ग पहचानना। उद्देश्यसिद्धि के लिये रास्ता जान लेना। उ०—दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग मारग चीन्हा।—जायसी (शब्द०)। **मारग मारना** = रास्ते में पथिक को लूट लेना। उ०—मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।—तुलसी (शब्द०)। **मारग लगना** = रास्ते लगना। रास्ता लेना। चला जाना। उ०—(क) जोगी होहु तो जुक्ति सों माँगहु। भुगुति लेहु लै मारग लागहु।—जायसी (शब्द०)। (ख) यह सुनि मुनि मारग लगे सुख पायो नरदेव।—केशव (शब्द०)। **मारग लेना** = दे० 'मारग लगना'।

मारगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मार्गण] १. बाण। तीर। उ०—तानेउ चाँप स्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल। राम मारगन

गन चले लहलहात जनु ब्याल।—तुलसी (शब्द०)। २. भिक्षुक। याचक। भिखमंगा।

मारगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मदारी। सँपेरा [को०]।

मारजन—संज्ञा पुं० [सं० मार्जन] दे० 'मार्जन'।

मारजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जनी] दे० 'मार्जनी'।

मारजार—संज्ञा पुं० [सं० मार्जार] दे० 'मार्जार'।

मारजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने कामदेव को जीत लिया हो। २. शिव (को०)। ३. बुद्ध।

मारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार डालना। प्राण लेना। हत्या करना। २. एक कल्पित तांत्रिक प्रयोग जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के मारने के लिये यह प्रयोग किया जाता है, वह मर जाता है। उ०—(क) मारण मोहन बसिकरण उच्चाटन अरु थंभ। आकर्षण बहु भाँति के पढ़ै सदा करि दंभ।—रघुनाथदास (शब्द०)। (ख) सीखौ सबै मिलि धातु कर्मनि द्रव्य बाढ़त जाइ। आकर्षणादि उचाट मारण वशीकरण उपाइ।—केशव (शब्द०)।

मारतंडⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मार्तण्ड] दे० 'मार्तंड'। उ०—मारतंड परचंड महँ फरकत जुग भुजदंड। रघुनंदन दसकंध लखि टंकोरयो कोदंड।—स० सप्तक, पृ० ३६७।

मारतंडमंडल—संज्ञा पुं० [सं० मार्तण्डमण्डल] दे० 'मार्तंडमंडल'।

मारतंडसुत—संज्ञा पुं० [सं० मार्तण्डसुत] दे० 'मार्तंडसुत'।

मारतौल—संज्ञा पुं० [पुर्त० मार्टेलो] एक प्रकार का बड़ा हथौड़ा। उ०—जब मैं परेग को मारतौल से मारता हूँ।—वेलेन्टाइन (शब्द०)।

मारनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मारण] १. मार डालना। उ०—धाय सुवा लै मारन गई। समुझि ज्ञान हिये महँ भई।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'मरण'। उ०—सतगुरु शब्द सहाई। मारन मोहन उचाटन बसिकरन मनहिं माहि पाछिताई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

मारना—क्रि० स० [सं० मारण] १. वध करना। हनन करना। घात करना। प्राण लेना। उ०—(क) जिन वेधत सुख लक्ष लक्ष नृप कुँवर कुँवरमनि। तिन बानन बाराह बाध मारत नहिं सिंहनि।—केशव (शब्द०)। (ख) सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाय चहै जेहि स्वामी।—जायसी (शब्द०)। २. दंड देने के लिये किसी को किसी वस्तु से पीटना या आघात पहुँचाना। जैसे, लात, थप्पड़, मुक्का, लाठी, जूता, तलवार आदि मारना। उ०—(क) एक ठौर देखत भयो वृषभ एक एक गाय। भय बस भागे जात दोउ एक नर मारत जाय।—विश्राम (शब्द०)। (ख) जो न मुदित मन आज्ञा देही। लाग्यौ मारन तुरतै तेहीं।—विश्राम (शब्द०)। ३. जरब लगाना। ठोंकना। उ०—जब मैं परेग को मारतौल से मारता हूँ, तो यह परेग इस लकड़ी में घुस जाती है।—वेलेन्टाइन (शब्द०)। ४. दुःख देना। सताना। जैसे,—मुझे तुम्हारी चिंता मार रही है। उ०—देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अबली हिम मारी।—तुलसी (शब्द०)। ५. कुश्ती या मल्लयुद्ध में विपक्षी को पछाड़ देना। जैसे,—इस पहलवान को मेरे पहलवान ने दो बार मारा है। ६. बंद कर देना। जैसे, किवाड़ा मारना। ७. शस्त्र आदि चलाना। फेंकना। जैसे,—उसने कई तीर मारे। उ०—पारथ बाण चहूँ दिशि मारैं। यूथ यूथ छत्री संहारैं।—सबल सिंह (शब्द०)।

मुहा०—**गोली मारना** = (१) किसी को बंदूक की गोली से मार देना। किसी पर बंदूक चलाना या छोड़ना। (२) जाने देना। त्याग देना। ध्यान न देना। तुच्छ वा अनावश्यक समझना। जैसे,—मारो गोली इस बात में धरा ही क्या है। **बंदूक मारना** = किसी पर बंदूक की गोली छोड़ना। बंदूक दागना। फैर करना। उ०—दुश्मनों ने भी हर तरफ से वहाँ आकर मुकाबिले के वास्ते दीवारें और बुरजें बनाईं जिनमें बंदूकों के मारने के वास्ते जगह रखी।—देवीप्रसाद (शब्द०)।

८. किसी शारीरिक आवेग या मनोविकार आदि को रोकना। ९. नष्ट कर देना। अंत कर देना। न रहने देना। जैसे,—(क) पाले ने फसल मार दी। (ख) तुमने उनका रोजगार मार दिया। (ग) उसने बार बार उपवास करके अपनी भूख मार ली है। (घ) भूख मारने से अरुचि, तंद्रा, दाह और बल का नाश होता है। (ङ) उसने बहुतेरे घर मारे हैं। १०. शिकार करना। अहेर करना। आखेट करना। जैसे, मछली मारना, हिरन मारना। ११. किसी वस्तु को इस प्रकार फेंकना कि वह किसी दूसरी वस्तु से जोर से टकरा जाय। उ०—उसने ढोंके को ऊँचा करके जोर से उस खंभे पर मारा जिससे खंभा हिल उठा। देवकीनंदन (शब्द०)।

मुहा०—**दे मारना** = (१) पटकना। (२) पछाड़ना। **वह मारा** = बस अब कार्य सिद्ध हो गया। विजय प्राप्त हुई। जो चाहते थे सो हो गया। उ०—यह आपकी मेहरबानी है, मैं किस काबिल हूँ। (मन में) वह मारा, अब कहाँ जाती है। आज का शिकार तो बहुत ही नफीस है।—राधाकृष्ण दास (शब्द०)।

१२. गुप्त रखना। छिपाना। दबाना। उ०—(क) रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा। तुलसी (शब्द०)। (ख) खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनहिं नहि बाता।—तुलसी (शब्द०)। १३. चलाना। संचालित करना।

मुहा०—**गाल मारना** = सीटना। बढ़ बढ़कर बातें करना। उ०—(क) मूढ़ मृषा जनि मारेसि गाला। राम बैर होइहि अस हाला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहू को सर सूधो न परै मारत गाल गली गली हाट।—हरिदास (शब्द०)। (ग) मारत गाल कहा इतनो मन मोहन जू अपने मन ऊटे।—रघुनाथ (शब्द०)। **कुछ पढ़कर मारना** = मंत्र से फूँककर कोई चीज किसी पर फेंकना। जैसे, मूँग मारना। साँप पर सरसों मारना। **जादू मारना** = किसी पर जादू का प्रयोग करना। किसी पर मंत्र या तंत्र करना। **डींग मारना** = शेखी बघारना। बड़ी

बड़ी बातें करना जिनका होना असंभव हो। उ०—वाह ऐसा ही था तो चूड़ी पहिर लेते; जवाँमर्दी की डींग क्यों मारते हैं। —देवकीनंदन (शब्द०)। **मंत्र मारना**=जादू करना। मंत्र पढ़कर फूँकना। उ०—गड्डी को एक दिवाल पर फेंक देना और ऐसा मंत्र मारना कि पहिचाना हुआ ही ताश उसमें चिपक जाय, बाकी सब गिर पड़ें।—रामकृष्ण (शब्द०)।

१४. धातु आदि को जलाकर उसका भस्म तैयार करना। जैसे, पारा मारना, सोना मारना। १५. अनुचित रूप से, बिना परिश्रम के अथवा बहुत अधिक प्राप्त करना। (इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रायः माल या रकम आदि शब्दों के ही साथ होता है।) जैसे, माल मारना, किसी का हक मारना। १६. करना। लगाना। जैसे, गोता मारना, चक्कर मारना। १७. विजय प्राप्त करना। जीतना। जैसे, मैदान मारना। १८. ताश या शतरंज आदि खेलों में विपक्षी के पत्ते या गोट आदि को जीतना। १९. जो कुछ देना वाजिब हो, वह न देना। अनुचित रूप से रख लेना। जैसे,—हमारे १००) उसने मार लिए। २०. बल या प्रभाव कम करना। मारक होना। जैसे,—जहर को जहर मारता है। २१. किसी योग्य न रहने देना। निर्जीव सा कर देना। जैसे,—इन्हें तो फजूलखर्ची ने मारा है। २२. डसना। काटना। डंक मारना। जैसे, बीछी मारना। २३. लगाना। देना। जैसे, टाँका मारना। २४. गुदाभंजन करना। पुरुष का पुरुष के साथ संभोग करना। २५. संभोग करना। स्त्रीप्रसंग करना।

विशेष—(क) यह शब्द भिन्न भिन्न संज्ञाओं तथा कुछ विशिष्ट क्रियाओं के साथ मुहावरे के रूप में अनेक प्रकार के अर्थ देता है। जैसे, दम मारना, लकीर मारना, कोर मारना, धार मारना, पीस मारना, सता मारना, आदि। (ख) इसके साथ प्रायः 'डालना' और 'देना' आदि संयोज्य क्रियाएँ आती हैं।

मारपीट—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मारना**+**पीटना**] मारने और पीटने की क्रिया। ऐसी लड़ाई जिसमें आघात किया जाय।

मारपेच—संज्ञा पुं० [हिं० **मारना**+**पेच**] वह युक्ति जो किसी को धोखे में रखकर उसकी हानि करने या उसे नीचा दिखाने के लिये की जाय। धूर्तता। चालबाजी।

मारफत[1]—अव्य० [अ० **मारफ़त**] द्वारा। वसीले से। जरिए से। उ०—(क) सब मागध मारफत यह काज श्रम बिनु आसु।—गोपाल (शब्द०)। (ख) नेपाल में एक अँगरेजी दूत रहता है। उसे रेजीडेंट कहते हैं। उसी की मारफत नेपाल राज्य और हिंदुस्तान की गवर्नमेंट से आवश्यकतानुसार लिखा पढ़ी होती है।—द्विवेदी (शब्द०)।

मारफत[2]—संज्ञा स्त्री० आध्यात्मिक बुद्धि या ज्ञान अथवा आध्यात्मिक रचना। ईश्वरीय ज्ञान।—दादू०, पृ० ११०।

मारव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरु देवता। २. मरुभूमि। जांगल प्रदेश (को०)। ३. राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन देश। उ०—**मरु मारव महिदेव जवासा।—मानस, १।६।**

मारवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक संकर राग जो परज, विभास और गौरी को मिलाकर बनाया जाता है। कुछ लोग इसे भ्रम से श्री राग का पुत्र मानते हैं। २. एक प्रकार का खयाल जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है।

मारवाड़—संज्ञा पुं० [हिं० **मेवाड़**] १. मेवाड़ राज्य। दे० 'मेवाड़'। २. राजपूताने का एक प्रांत जहाँ अब बीकानेर और जोधपुर के राज्य हैं। मेवाड़ के आस पास का प्रांत।

मारवाड़ी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मारवाड़**+**ई**] [स्त्री० **मारवाड़िन**] १. मारवाड़ देश का निवासी। २. मारवाड़ देश की भाषा।

मारवाड़ी[2]—वि० [हिं० **मारवाड़**] मारवाड़ देश का। मारवाड़ देश संबंधी।

मारबीज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मंत्र।

मारा(प)—वि० [हिं० **मारना**] जो मार डाला गया हो। मारा हुआ। निहत। उ०—परखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवहुँ तो जानेसु मारा।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**मारा फिरना, मारा मारा फिरना**=व्यर्थ घूमना फिरना। बुरी दशा में इधर उधर घूमना। उ०—दुक हिर्स हवा को छोड़ मियाँ मत देश विदेश फिर मारा।—नजीर (शब्द०)।

मारात्मक—वि० [सं०] १. हिंसक। २. दुष्ट। ३. प्राणनाशक। सांघातिक। उ०—वह भारत में मजहब के मारात्मक नशे की व्यापकता को समझता था।—पिंजरे०, पृ० १५३।

माराभिभू—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध देव।

मारामार[1]—क्रि० वि० [हिं० **मारना**] अत्यंत शीघ्रता से। बहुत जल्दी। उ०—मैं अयोध्या के राजा का सारथी हूँ। दमयंती का स्वयंवर आज ही सुनके मारामार घोड़ों को यहाँ लाया हूँ।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मारामार[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'मारपीट'।

मारि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मार डालना। बध करना। २. एक व्याधि। मरी (रोग)।

मारि[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मार**] १. लड़ाई। युद्ध। २. मारपीट।

मारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरी (रोग)। महामारी (को०)।

मारिच(प)[1]—स्त्री० पुं० [सं० **मारीच**] दे० 'मारीच'।

मारिच[2]—संज्ञा पुं० [अं० **मार्च**] दे० 'मार्च'।

मारिच[3]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मारिची**] काली मिर्च मिश्रित। काली मिर्च द्वारा निर्मित (को०)।

मारिचिक—वि० [सं०] जिसमें मिर्च मिला हो। मिर्च का। मिर्च-युक्त (को०)।

मारित(प)—वि० [सं०] १. जो मार डाला गया हो। निहत। २. जो भस्म कर दिया गया हो। (वैद्यक)।

मारिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का सूत्रधार। २. नाटक में किसी मान्य या प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिये संबोधन। ३. मरसा नामक साग।

मारिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की माता का नाम।

मारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मारना**] कोई ऐसा संक्रामक रोग जिसके कारण बहुत से लोग एक साथ मरें। मरी। जैसे, हैजा, प्लेग, चेचक इत्यादि। दे० 'मरी'। उ०—ईति भीति ग्रह प्रेत चौरानल व्याधि बाधा समन घोर मारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) संब जदपि अमारी धर तदपि मारी सम परदल धँसत। —गोपाल (शब्द०)।

मारी[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मारिन्**] हत्या करनेवाला। घातक।

मारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंडी। २. माहेश्वरी शक्ति। ३. मरी। (रोग)।

मारीच[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण के अनुसार वह राक्षस जिसने सोने का हिरन बनकर रामचंद्र को धोखा दिया था। २. मिर्च के पौधे। मिर्च की झाड़ी (को०)। ३. बड़ा हाथी। विशाल गज (को०)। ४. कंकोल (को०)।

मारीच[2]—वि० मरीचि संबंधी। मरीचि ऋषि निर्मित (को०)।

मारीचपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सरल वृक्ष।

मारीचवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिर्च का पेड़।

मारीची[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के देवता।

मारीची[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शाक्य मुनि की माता। माया देवी। २. बुद्ध की देवियाँ। ३. एक अप्सरा का नाम (को०)।

मारीच्य—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निश्वाता।

मारीष—संज्ञा पुं० [सं०] मरसा साग।

मारुंग—संज्ञा पुं० [सं० **मारुङ्ग**] कोमलता। मृदुता। मार्दव (को०)।

मारुंड—संज्ञा पुं० [सं० **मारुण्ड**] १. साँप का अंडा। २. गोमय। गोबर (को०)। ३. गोबर से भरा हुआ रास्ता (को०)। ४. रास्ता। मार्ग। पथ (को०)।

मारु(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मार'।

मारुअ†—संज्ञा पुं० [सं०] मरु देश। मारु नाम का देश। मरू धरा देश। उ०—कालि कहल पियाए साझे हिर जाएब मोये मारुअ देस।—विद्यापति, पृ० ११७।

मारुका—संज्ञा स्त्री० [सं० **मारी**] तांत्रिकों की एक देवी। मरी। चंडी मारी।

मारुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। पवन। हवा। २. वायु का अधिपति देवता।

यौ०—**मारुतनंदन**=**मारुतसुत**। वायुपुत्र। **मारुततनय**=हनुमान।

३. विष्णु (को०)। ४. हस्तिशुंड (को०)। ५. स्वाती नक्षत्र (को०)।

मारुतसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। उ०—मारुतसुत मैं कपि हनुमाना।—मानस, ७।५। २. भीम।

मारुतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मारुतसुत'।

मारुतापह—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष।

मारुतायन—संज्ञा पुं० [सं०] गवाक्ष। वातायन। खिड़की (को०)।

मारुताशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। २. साँप। सर्प।

मारुति—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। २. भीम।

मारुती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिमोत्तर दिशा। वायव्य दिशा (को०)।

मारुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम।

मारुध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

मारू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मारना**] १. राग जो युद्ध के समय बजाया और गाया जाता है। उ०—(क) भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।—गुमान (शब्द०)। (ग) मारवणी भगताविया मारू राग निपाइ। दूहा संदेशा तणाँ दीया तियाँ सिखाइ।—ढोला०, दू० १०६। (घ) रण की टंकार गाजे दुंदुभी में मारू बाजे तेरे जीय ऐसो रुद्र मेरी ओर लरैगो।—हनुमान (शब्द०)। २. बहुत बड़ा डंका या नगाड़ा। जंगी धौंसा। उ०—उस काल मारू जो बजाता था, सो तो मेघ सा गाजता था।—लल्लू (शब्द०)।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह श्री राग का पुत्र माना जाता है। इसे 'माँड' और 'माँण' भी कहते हैं। वीर रस का व्यंजक यह राग शृंगार रस का भी प्रवाही है। मारवाड़ में यह राग विशेष लोकप्रिय है।

मारू[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मरुभूमि**] १. मरुदेश के निवासी। मारवाड़ के रहनेवाले। उ०—प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरु धर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि।—बिहारी (शब्द०) २. मरु देश। मारवाड़। उ०—(क) मारू देस उपन्नियाँ सर ज्यउँ पध्धरियाह।—ढोला०, दू० ६६७। (ख) मारू काँमिणि दिखणी धर हरि दीयइ तउ होइ।—ढोला०, दू० ६६८।

मारू[3]—वि० [हिं० **मारना**] १. मारनेवाला। २. हृदयवेधक। कटीला। उ०—काजल लगे हुए मारू नयनों के कटाक्ष अपने सामने तरुणियों को क्या समझते थे।—गदाधरसिंह (शब्द०)।

मारू[4]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का शाहबलूत।

विशेष—यह शिमले और नैनीताल में अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी केवल जलाने और कोयला बनाने के काम में आती है। इसके पत्ते और गोंद चमड़ा रँगने में काम आते हैं।

२. काकरेजी रंग।

मारूजा—संज्ञा पुं० [अ० **मारूजह्**] १. प्रार्थना। निवेदन। २. प्रार्थनापत्र। अर्जी (को०)।

मारूत[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मारना** ?] घोड़ों के पिछले पैरों की एक भौंरी जो मनहूस समझी जाती है।

मारूत[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मारुति**] हनुमान (डिं०)।

मारूफ—वि० [अ० **मारूफ़**] १. प्रसिद्ध। विश्रुत। ख्यात। उ०—जो कि एक मशहूर और मारूफ खानदानी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६०। २. जिसका कर्ता मालूम हो (क्रिया)।

मारे—अव्य० [हिं० **मरना**] वजह से। कारण से। उ०—(क) नैन गए फिर, फेन बहै मुख, चैन रह्यो नहिं मैन के मारे। पद्माकर (शब्द०)। (ख) परंतु आश्रम को छोड़ते हुए दुःख के मारे पाँव आगे नहीं पड़ते।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ग) मेरे नाम से चूल्हे की राख भी रखी रहे, तौ भी लोगों के मारे बचने नहीं पाती।—दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)। (घ) कुँवर कह्यौ वे वृद्ध विचारे। छाँड़ैन धर्म प्यास के मारे।—रघुनाथ-

दास (शब्द०)। (ङ) तिस समय एक बड़ी आँधी चली कि जिसके मारे पृथ्वी डोलने लगी।—लल्लूलाल (शब्द०)।

मार्कंड—संज्ञा पुं० [सं० **मार्कण्ड**] दे० 'मार्कंडेय'।

मार्कंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **मार्कण्डिका**] परवल के आकार का एक छोटा फल जिसकी तरकारी बनती है। ककोड़ा। विशेष दे० 'खेकसा'।

मार्कंडेय—संज्ञा पुं० [सं० **मार्कण्डेय**] मृकंड ऋषि के पुत्र जिनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे अपने तपोबल से सदा जीवित रहते हैं और रहेंगे।

मार्कंडेय पुराण—संज्ञा पुं० [सं० **मार्कण्डेय पुराण**] अट्ठारह मुख्य पुराणों में से एक।

विशेष—इसमें नव सहस्र श्लोक हैं। जैमिनी ऋषि के समक्ष शकुनि को संबोधित कर मार्कंडेय ऋषि ने इसे कहा है। इस प्रकार यह पक्षी और मार्कंडेय ऋषि के संवाद रूप में है। प्रसिद्ध दुर्गा सप्तशती इसी का एक अंश है।

मार्क[1]—संज्ञा पुं० [अं०] १. दे० 'मार्का'। २. जर्मनी में चलनेवाला चाँदी का एक सिक्का।

विशेष—यह प्रायः एक शिलिंग या बारह आने मूल्य के बराबर होता है।

मार्क[2]—संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरैया।

मार्कट—वि० [सं०] मर्कट संबंधी। वानरी।

यौ०—**मार्कट पिपीलिका** = छोटा और काला एक प्रकार की चिउँटा।

मार्कर, मार्कव—संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरैया।

मार्का—संज्ञा पुं० [अं०] कोई अंक वा चिह्न जो किसी विशेष बात का सूचक हो। चिह्न। संकेत। छाप।

मार्केट—संज्ञा पुं० [अं०] बाजार। हाट।

मार्क्विस—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० **मार्शोनेस**] इंगलैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूम्यधिकारियों को वंशपरंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा ड्यूक के बाद है। विशेष दे० 'ड्यूक'।

मार्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रास्ता। पंथ। २. गुदा। ३. कस्तूरी। ४. अगहन का महीना। उ०—हिम ऋतु मार्ग मास सुखमूला। ग्रह तिथि नखत योग अनुकूला।—रघुनाथदास (शब्द०)। ५. मृगशिरा नक्षत्र। ६. विष्णु। ७. लाल अपामार्ग।

मार्ग[2]—वि० [सं०] मृग संबंधी।

मार्गक—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन का महीना।

मार्गण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्वेषण। ढूँढ़ना। २. प्रेम। ३. याचक। भिखमंगा। ४. याचना। निवेदन (को०)। ५. वाण। तीर (को०)। ६. एक संख्या। पाँच की संख्या (को०)।

मार्गणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. याचक। भिक्षुक। २. निवेदक। निवेदन करनेवाला [को०]।

मार्गतोरण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वागत, अभिनंदन आदि के निमित्त मार्ग में बनाया हुआ तोरण।

मार्गद—संज्ञा पुं० [सं०] केवट।

मार्गदर्शक—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० **मार्गदर्शिका**] पथ-प्रदर्शक। रास्ता दिखानेवाला।

मार्गद्रंग—संज्ञा पुं० [सं० **मार्गद्रङ्ग**] रास्ते पर बसा हुआ ग्राम, शहर, कसबा आदि।

मार्गधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योजन का परिमाण। चार कोस।

मार्गधेनुक—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मार्गधेनु'।

मार्गन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मार्गण**] वाण। तीर।

मार्गनिरोधक—संज्ञा पुं० [सं०] चलते रास्ते को खराब करना या रोकना।

विशेष—कौटिल्य के समय में इसके लिये भिन्न भिन्न दंड नियत थे।

मार्गप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मार्गपति'।

मार्गपति—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य का वह कर्मचारी जो मार्गों का निरीक्षण करता हो।

मार्गपरिणायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मार्गदर्शक' [को०]।

मार्गपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] राह का रक्षक स्तंभ जिसकी स्थापना और पूजा एक देवी के रूप में की जाती थी [को०]।

मार्गप्रवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] नया मार्ग या पंथ चलानेवाला। धर्म या आचार का नया ढंग सिखानेवाला। उ०—गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में मार्गप्रवर्तकों के ये नाम गिनाए गए हैं।—इतिहास, पृ० १५।

मार्गबंध—संज्ञा पुं० [सं०] रास्ता रोकने के लिये निर्मित प्राचीर या पत्थर, बल्ले आदि का अवरोध।

मार्गरक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मार्गपति' [को०]

मार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति निषाद पिता और आयोगवी माता से मानी जाती है।

मार्गवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मार्गवती' [को०]।

मार्गवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जो मार्ग चलनेवालों की रक्षा करनेवाली मानी जाती है।

मार्गवेद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषिकुमार का नाम।

मार्गशिर—संज्ञा पुं० [सं०] अगहन का महीना। मार्गशीर्ष।

मार्गशिरस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मार्गशीर्ष'।

मार्गशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अगहन का महीना।

मार्गशोधक—संज्ञा पुं० [पुं०] १. आटविक। २. रास्ता खोजने या समझानेवाला। अग्रणी [को०]।

मार्गसंस्करण—संज्ञा पुं० [सं०] राह का संस्कार। रास्ते की सफाई।

विशेष—शुक्रनीति के अनुसार रास्ते का संस्कार या सफाई प्रतिदिन होनी चाहिए।

मार्गस्थ—वि० [सं०] रास्ता चलता हुआ [को०]।

मार्गहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजमार्ग पर बना हुआ प्रासाद।

मार्गिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथिक। यात्री। २. मृगों को मारनेवाला, व्याध।

मार्गित—वि० [सं०] खोजा हुआ । अन्वेषित [को०] ।

मार्गी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है,—नि, स, रे, ग, म, प, ध । म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि. स ।

मार्गी[2]—संज्ञा पुं० [सं० **मार्गिन**] १. मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति। रास्ता चलनेवाला । बटोही । २. पथप्रदर्शक । अगुआ ।

मार्गीयव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

मार्ग्य—वि० [सं०] १. मार्जनीय । मार्जन के योग्य । २. अन्वेषण योग्य । अन्वेषणीय [को०] ।

मार्च—संज्ञा पुं० [अं०] १. अँगरेजी तीसरा मास जो प्रायः फागुन में पड़ता है । फरवरी के बाद और अप्रैल के पहले पड़नेवाला अँगरेजी महीना । २. गमन । गति । ३. सेना का कूच । सेना का प्रस्थान ।

मार्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार्जन । २. विष्णु । ३. धोबी ।

मार्जक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मार्जिका**] मार्जन या सफाई करनेवाला [को०] ।

मार्जन—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साफ करने का भाव । निर्मल करना । स्वच्छ करना । २. मंत्रों द्वारा शरीर पर जल छिड़कना जो कुशा द्वारा किया जाता है । उ०—फिर इस जल से मैं मार्जन करूँगा ।—भारतेंदु० ग्रं०, भा० १, पृ० २७१ । ३. सफाई । ३. लोध का वृक्ष । ४. लोध । श्वेत और रक्त लोध्र । ५. आतुरों के लिये विहित एक प्रकार का स्नान जिसमें शिर नहीं भिगाते थे अथवा गीले वस्त्र से शरीर पोंछते थे (को०) । ७. नहाना । स्नान करना ।

मार्जना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफाई । मार्जन । २. क्षमा । माफी । ३. मृदंगध्वनि ।

मार्जनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झाड़ू । संमार्जनी । बुहारी । उ०—उड़ती अलकें जटा बनीं, बनने को प्रिय पाद मार्जनी ।—साकेत, पृ० ३२२ । २. संगीत में मध्यम स्वर की चार श्रुतियों में से अंतिम श्रुति । ३. रजकी । धोबिन (को०) ।

मार्जनी[2]—संज्ञा पुं० [सं० मार्जनिन्] अग्नि । अनल [को०] ।

मार्जनीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

मार्जनीय[2]—वि० मार्जन करने योग्य ।

मार्जार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मार्जारी**] १. बिलार । बिल्ली । २. लाल चीता (वृक्ष) । ३. पूतिसाखा ।

मार्जारकंठ—संज्ञा पुं० [सं० मार्जारकण्ठ] मोर ।

मार्जारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोर । २. बिल्ली ।

मार्जारकरण—संज्ञा पुं० [सं०] रति की एक मुद्रा । एक प्रकार का रतिबंध [को०] ।

मार्जारकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामुंडा का एक नाम ।

मार्जारकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामुंडा [को०] ।

मार्जारगंधा—संज्ञा पुं० [सं० मार्जारगन्धा] मुद्गपर्णी ।

मार्जारपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घोड़ा जो बुरे लक्षण-वाला होता है ।

मार्जारलिंगी—संज्ञा पुं० [सं० मार्जारलिङ्गिन्] वह जो बिल्ली के स्वभाववाला हो [को०] ।

मार्जाराक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रत्न ।

मार्जारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कस्तूरी । २. गंध नाकुली । ३. बिल्ली । मादा बिल्ली ।

मार्जारी टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जारी + हिं० टोड़ी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं ।

मार्जारीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल्ली । २. शूद्र । ३. वह जो अपना मार्जन करता हो । कार्यशोधन (को०) ।

मार्जाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मार्जार' ।

मार्जालीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल्ली । २. शूद्र । ३. शिव । ४. एक ऋषि का नाम । ५. दे० 'मार्जारीय' ।

मार्जित[1]—वि० [सं०] स्वच्छ किया हुआ । साफ किया हुआ ।

मार्जित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मार्जिता**] एक प्रकार का प्राचीन खाद्य पदार्थ ।

विशेष—यह दही, चीनी, शहद, घृत और मिर्च आदि को मिलाकर और उसमें कपूर डालकर बनाया जाता था । इसको 'रसाला' भी कहते हैं ।

मार्तंड—संज्ञा पुं० [सं० **मार्त्तण्ड**] १. सूर्य । २. आक या मदार का वृक्ष । ३. सूअर । ४. सोनामक्खी । ५. एक संख्या । १२ की संख्या क्योंकि सूर्य १२ कहे गए हैं (को०) ।

मार्तंडवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मार्त्तण्डवल्लभा**] सूर्य की पत्नी । छाया ।

मार्तिक—वि० [सं०] मृत्तिकानिर्मित । मिट्टी से बना हुआ [को०] ।

यौ०—**मार्तिकशकल**=मिट्टी का टुकड़ा । मृत्तिका पिंड ।

मार्तिक[2]—संज्ञा पुं० १. कसोरा । पुरवा । २. शराब ।

मार्त्तिकावत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार चेदि नामक राज्य का एक प्राचीन नगर । २. उस देश का निवासी ।

मार्त्य[1]—वि० [सं०] नश्वर । मरणशील ।

मार्त्य[2]—संज्ञा पुं० [सं० नश्वरता । अनित्यता । मरणशीलता ।

मार्दंग—संज्ञा पुं० [सं० **मार्दङ्ग**] वह व्यक्ति जो मृदंग बजाता हो । मृदंग बजानेवाला । २. नगर । शहर [को०] ।

मार्दंगिक—वि० [मार्दङ्गिक] मृदंगवादक । मृदंग बजानेवाला ।

मार्दव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अहंकार का त्याग । अभिमान रहित होना । २. दूसरे को दुःखी देखकर दुःखी होना । ३. सरलता । ४. एक प्राचीन संकर जाति । इस जाति के लोग बहुत मृदु स्वभाव के होते थे । ५. मृदुता । कोमलता (को०) ।

मार्दीक—संज्ञा पुं० [सं०] अंगूर की शराब ।

मार्फत—अव्य० [अ० **मार्फ़त**] द्वारा । जरिए से । जैसे,—आपकी मार्फत सब काम हो जायगा ।

मार्बल—संज्ञा पुं० [अं०] संगमरमर।

मार्मिक—वि० [सं०] १. मर्म को जाननेवाला। मर्मज्ञ। २. मर्मस्थान पर प्रभाव डालनेवाला। जिसका प्रभाव मर्म पर पड़े। विशेष प्रभावशाली। जैसे, मार्मिक व्याख्यान। मार्मिक कवित्त। उ०—किसी अर्थपिशाच कृपण को देखिए जिसने केवल अर्थलोभ के वशीभूत होकर क्रोध, दया, श्रद्धा, भक्ति, आत्माभिमान आदि भावों को एकदम दबा दिया है और संसार के मार्मिक पक्ष से मुँह मोड़ लिया है।—रस०, पृ० २४।

मार्मिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मार्मिक होने का भाव। २. किसी वस्तु के मर्म तक पहुँचने का भाव। पूर्ण अभिज्ञता। जैसे,—संगीत के संबंध में आपकी मार्मिकता प्रसिद्ध है।

मार्मिकपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मर्मस्पर्शी अंश। हृदय को प्रभावित करनेवाला भाग। मन को द्रवित करनेवाला अंग। उ०—और संसार के मार्मिक पक्ष से मुँह मोड़ लिया है।—रस०, पृ० २४।

मार्शल—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक बहुत बड़ा अफसर जो प्रधान सेनापति या समरसचिव के अधीन होता है।

मार्शल ला—संज्ञा पुं० [अं०] सैनिक व्यवस्था या शासन। फौजी कानून या हुकूमत।

विशेष—समर, विद्रोह या इसी प्रकार के आपत्काल में साधारण कानून या दंडविधान से काम चलता न देखकर देश का शासनसूत्र सैनिक अधिकारियों के हाथ में दे दिया जाता है और इसकी घोषणा कर दी जाती है। सैनिक अधिकारी इस संकट काल में, विद्रोह आदि दमन करने में, कठोर से कठोर उपायों का अवलंबन करते हैं।

मार्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मारिष'।

मार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] मरसा का साग। मारिष शाक [को०]।

मार्ष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मार्जन। शोधन। २. शरीर में तैल लगाना [को०]।

माल१—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षेत्र। ऊँचा क्षेत्र। ऊँचा भूखंड। २. कपट। ३. बन। जंगल। उ०—चकित चहूँ दिसि चहति, विधुर जनु मृगी माल तैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २७०। ४. हरताल। ५. विष्णु। ६. एक प्राचीन अनार्य जाति। भागवत में इसे म्लेच्छ लिखा है। ७. एक देश का नाम जो बंगाल के पश्चिम वा दक्षिणपश्चिम की ओर है। इसे मेदिनीपुर कहते हैं।

माल२—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल] कुश्ती लड़नेवाला। दे० 'मल्ल'। उ०—(क) कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अति बल गर्जहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) योगी घर मेले सब पाछे। उतरे माल आए रन काछे।—जायसी (शब्द०)। ‡२. राजपथ या सड़क के आस पास की वह भूमि जो कच्चा हो।

माल३—संज्ञा स्त्री० [सं० माला] १. माला। हार। उ०—(क) विनय प्रेम बस भई भवानो। खसी माल मूरति मुसुकानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पहिर लियो छन माँझ असुर बल औरउ नखन बिदारी। रुधिर पान करि आँत माल धरि जय जय शब्द पुकारी।—सूर (शब्द०)। (ग) चंदन चित्रित रंग, सिंधु राज यह जानिए। बहुत बाहिनौ संग मुकुता माल बिसाल उर।—केशव (शब्द०)। (घ) कितने काज चलाइयतु चतुराई की चाल। कहे देत गुन रावरे सब गुन निर्गुन माल।—बिहारी (शब्द०)। २. वह रस्सी वा सूत की डोरी जो चरखे में मूड़ी वा बेलन पर से होकर जाती है और टेकुए को घुमाती है। ‡३. चौड़ा मार्ग। चौड़ी सड़क। ४. पंक्ति। पाँती। उ०—(क) सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल माल मानो लंक लीलिबे को काल रसान पसारी है।—तुलसी (शब्द०)। (ग) धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल माल बिराजहीं। पवन के झकझोर ते झँझरी झरोखे बाजहीं।—केशव (शब्द०)। (घ) गीधन की माल कहुँ जंबुक कराल कहुँ नाचत बैताल लै कपाल जाल जात से।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

माल४—संज्ञा पुं० [अ०] १. संपत्ति। धन। उ०—(क) भली करी उन श्याम बँधाएँ। बरज्यो नहीं कह्यो उन मेरो अति आतुर उठि धाए। अल्प चोर बहु माल लुभाने संगी सबन धराए। निदरि गए तैसो फल पायो अब वे भए पराए।—सूर (शब्द०)। (ख) धाम औ धरा को माल बाल अबला को अरि तजत परान राह चहत परान की।—गुमान (शब्द०)। (ग) माखन चोरी सों अरी परकि रहेउ नँदलाल। चोरन लागै अब लखौ नेहिन को मन माल।—रसनिधि (शब्द०)।

यौ०—**मालखाना। मालगाड़ी। मालगोदाम। मालजामिन, माल मनकूला। माल गैरमनकूला।** मालदार आदि।

मुहा०—**माल उड़ाना** = (१) बहुत रुपया खर्च करना। धन का अपव्यय करना। (२) किसी की संपत्ति को हड़प लेना। दूसरे का माल अनुचित रूप से ले लेना। **माल काटना** = किसी के धन को अनुचित रूप से अधिकार में लाना। माल उड़ाना। **माल चीरना** = पराया धन हड़पना। माल उड़ाना। माल मारना। **माल मारना** = अनुचित रूप से पराए धन पर अधिकार करना। पराया धन हड़पना। दूसरे की संपत्ति दबा बैठना।

२. सामग्री। सामान। असबाब। उ०—(क) कहो तुमहिं हम को का बूझति। लै लै नाम सुनावहु तुम हीं मो सों कहा अरूझति। तुम जानति मैं हूँ कछु जानत जो जो माल तुम्हारे। डारि देहु जा पर जो लागै मारग चलौ हमारे।—सूर (शब्द०) (ख) मिती ज्वार भाटा हू की शीघ्र ही निकारै। लोग कहत हैं भरे माल कूं कूति हु डारै।—श्रीधर (शब्द०)।

मुहा०—**माल काटना** = चलती रेल गाड़ी में से या मालगुदाम आदि में से माल चुराना। **माल टाल** = धन संपत्ति। माल असबाब **माल मता** = माल असबाब। **माल मस्ती** = धन का मद। माल की मस्ती। **माल महकमा** = माल का महकमा या विभाग। राजस्व संबंधी विभाग।

३. क्रय विक्रय का पदार्थ। ४. वह धन जो कर में मिलता है। ५. फसल की उपज। ६. उत्तम और सुस्वादु भोजन।

मुहा०—माल उड़ाना = सुस्वादु और बहुमूल्य भोजन करना।

७. गणित में वर्ग का घात। वर्ग अंक। ८. किसी वस्तु का सार द्रव्य। वह द्रव्य जिससे कोई चीज बनी हो। जैसे,—(क) इस अँगूठी का माल अच्छा है। (ख) इस कड़े का माल खोटा है। (ग) एक बीघे पोस्त से दो सेर अच्छा माल निकलता है। ९. सुंदर स्त्री। युवती। (बाजारू)।

माल[3]—प्रत्य० [फ़ा०] मला दला। मर्दित। जैसे, पामाल = पैरों से मर्दिप या मला दला।

मालकँगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० माल + **कँगनी**] औषध के काम आनेवाली एक लता का नाम।

विशेष—यह लता हिमालय पर्वत पर झेलम नदी से आसाम तक ४००० फुट की ऊँचाई तक, तथा उत्तरीय भारत, बर्मा और लंका में पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ गोल और कुछ कुछ नुकीली होती हैं। यह लता पेड़ों पर फैलती है और उन्हें आच्छादित कर लेती है। चैत के महीने में इसमें घौद के घौद फूल लगते हैं और सारी लता फूलों से लदी हुई दिखाई पड़ती है। फूलों के झड़ जाने पर इसमें नीले नीले फल लगते हैं जो पकने पर पीले रंग के और मटर के बराबर होते हैं और जिनके भीतर से लाल लाल दाने निकलते हैं। इन दानों में तेल का अंश अधिक होता है जिससे इन्हें पेरकर तेल निकाला जाता है। मद्रास में उत्तरीय अरकाट तथा विशाखापटम, दलौरा आदि स्थानों में इसका तेल बहुत अधिक तैयार होता है। यह तेल नारंगी रंग का होता है और औषध में काम आता है। वैद्यक के अनुसार इसका स्वाद चरपरापन लिए कड़ुवा, इसकी प्रकृति रुक्ष और गर्म तथा इसका गुण अग्नि, मेधा स्मृतिवर्धक और वात, कफ तथा दाह का नाशक बतलाया गया है।

पर्या०—**महाज्योतिष्मती। तीक्ष्णा। तेजोवती। कनकप्रभा। सुरलता। अग्निफला। मेघावती। पीता**, इत्यादि।

माल अदालत—संज्ञा स्त्री० [अ० माल + **अदालत**] वह अदालत जिसमें लगान, मालगुजारी आदि के मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मालकँगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मालकँगनी'।

मालक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थल पद्म। २. नीम। ३. गाँव के समीप का वन (को०)। ४. नारियल का बना पात्र (को०)। ५. पर्णशाला। निकुंज। लतामंडप (को०)। ६. माला। माल्य (को०)।

मालक[2]—संज्ञा पुं० [अ० **मालिक**] दे० **'मालिक'**।

मालकगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मालकँगनी'।

मालका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माला।

मालकुंडा—संज्ञा पुं० [हिं० **माल + कुंडा**] वह कुंडा जिसमें नील कड़ाहे में डाले जाने से पहले रखा जाता है।

मालकोश—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जिसे कौशिक राग भी कहते हैं। हनुमत ने इसे छह मुख्य रागों के अंतर्गत माना हैं। उ०—भैरव मालकोश हिंदोल दीपक श्रीराग मेघ सुरहिं ले आऊँ।—अकबरी०, पृ० १०५।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है। इसका स्वरूप वीररस-युक्त, रक्त वर्ण, वीर पुरुषों से आवेष्ठित, हाथ में रक्त वर्ण का दंड लिए और गले में मुंडमाला धारण किए लिखा गया है। कोई कोई इसे नील वस्त्रधारी, श्वेत दंड लिए और गले में मोतियों की माला धारण किए हुए मानते हैं। इसकी ऋतु शरद् और काल रात का पिछला पहर है। कोई कोई शिशिर और वसंत ऋतु को भी इसकी ऋतु बतलाते हैं। हनुमत् के मत से कौशिकी, देवगिरी, दरवारी, सोहनी और नीलांबरी ये पाँच इसकी प्रियाएँ और वागेश्वरी, ककुभा, पर्यंका, शोभनी और खंभाती ये पाँच भार्याएँ तथा माधव, शोभन, सिंधु, मारू, मेवाड़, कुंतल, केलिंग, सोम, बिहार और नीलरंग ये दस पुत्र हैं। परंतु अन्यत्र बागेश्वरी, बहार, शहाना, अताना, छाया और कुमारी नाम की इसकी रागिनियाँ, शंकरी और जयजयवंती सहचरियाँ, केदारा, हम्मीर नट, कामोद, खम्माच और बहार नामक पुत्र और भूपाली, कामिनी, झिंझोटी, कामोदी और विजया नाम की पुत्रबधुएँ मानी गई हैं। कुछ लोग इसे संकर राग मानते हैं और इसकी उत्पत्ति षटसारंग, हिंडोल, बसंत, जयजयवंती और पंचम के योग से बतलाते हैं। रागमाला में इसे पाटल वर्ण, नीलपरिच्छद, यौवनमदमत्त, यष्टिधारी और स्त्री गण से परिवेष्ठित, गले में शत्रुओं के मुंड की माला पहने; हास्य में निरत लिखा है; और चौड़ी, गौरी, गुणकरी, खंभाती और ककुभा नाम की पाँच स्त्रियाँ, मारू, मेवाड़, बड़हंस, प्रबल, चंद्रक, नंद, भ्रमर और खुखर नामक आठ पुत्र बतलाए हैं; और भरत ने गौरी, दयावती, देवदाली, खंभावती और कोकभा नाम की पाँच भार्याएँ और गांधार, शुद्ध, मकर, त्रिजन, सहान, भक्तवल्लभ, मालीगौर और कामदेव नामक आठ पुत्र और धनाश्री, मालश्री, जयश्री, सुधारायो, दुर्गा, गांधारी भीमपलाशी और कामोदी नाम की उनकी भार्याएँ लिखी हैं।

मालकोस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मालकोश'।

मालकौश—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग। दे० 'मालकोश'। उ०—ज्यों मालकौश नव वीणा पर।—अपरा, पृ० १७६।

मालखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० मालखानह्] वह स्थान जहाँ पर माल असबाब जमा होता हो वा रखा जाता हो। भंडार।

मालगाड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० **माल + गाड़ी**] रेल में वह गाड़ी जिसमें केवल माल असबाब भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाता है। ऐसी गाड़ियों में यात्री नहीं जाने पाते।

मालगुजार—संज्ञा पुं० [फ़ा० **माल** + फ़ा० **गुज़ार**] १. मालगुजारी देनेवाला पुरुष। २. मध्यप्रदेश में एक प्रकार के जमींदार जो किसानों से वसूल करके मालगुजारी सरकार को देते थे।

मालगुजारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मालगुज़ार** + ई (प्रत्य०)] १. वह भूमिकर जो जमींदार से सरकार लेती है। २. लगान।

मालगुर्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें

सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कुछ लोग इसे गौरी और सोरठ से बनी हुई संकर रागिनी मानते हैं।

मालगोदाम—संज्ञा पुं० [हिं० **माल** + अं० **गोडाउन** > हिं० **गोदाम**] १. वह स्थान जहाँपर व्यापार का माल रखा जाता है या जमा रहता है। २. रेल के स्टेशनों पर वह स्थान जहाँ मालगाड़ी से भेजा जानेवाला अथवा आया हुआ माल रहता है।

मालचक्रक—संज्ञा पुं० [सं०] पुट्ठे पर का वह जोड़ जो कमर के नीचे जाँघ की हड्डी और कूल्हे में होता है। कूल्हा। चक्का।

मालची(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मालती**] दे० 'मालती'। उ०—(क) कहूँ नागवेली निवेली निवेसं। कहूँ मालची घेरि भौरं सुवेसं। (ख) कहूँ दाड़िमी पिंड षज्जर झुल्ली। कहूँ मालची मल्ल भर भार भल्ली।—पृ० रा०, २।४७१।

मालजातक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधविडाल। गंधमार्जार।

मालजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मालज़ादह्**] रंडी का लड़का। वेश्या का पुत्र।

मालजादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मालज़ादी**] १. वेश्यापुत्री। २. व्यभिचारिणी औरत। ३. एक गाली [को०]।

मालजामिन—संज्ञा पुं० [फा० **मालज़ामिन**] नकद जमानत देने या करनेवाला।

मालटा—संज्ञा स्त्री० [अं० **माल्टा**] एक प्रकार की लाल रंग की नारंगी।

विशेष—देखने में यह बहुत सुंदर और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है। गुजराँवाला और लखनऊ में यह बहुतायत से होती है।

मालत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मालति**] दे० 'मालती'। उ०—है इंद्रावति आप अकेली। कमल चमेली मालत वेली।—इंद्रा०, २७।

मालति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मालती'। उ०—(क) सरद राति मालति सघन फूलि रही बन बास। दीपक माला काम की हरि भय मुक्किय त्रास।—पृ० रा०, २।३६०। (ख) कुसुम माल असि मालति पाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३५।

मालतिमाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मालतिमाला**] मालती के फूलों की माला। उ०—अच्युतचरन तरंगिनी सिव सिर मालतिमाल। हरि न बनायौ सुरसरी कीनो इंदव भाल।

मालतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

मालती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की लता का नाम जिसके फूलों में भीनी मधुर सुगंध होती है। उ०—(क) सोनजर्द बहु फूली सेवती। रूपमंजरी और मालती।—जायसी (शब्द०)। (ख) देखहु धौं प्राणपति निकल अली की गति, मालती सों मिल्यो चाहै लीने साथ आलिनी।—केशव (शब्द०)। (ग) घाम घरीक निवारिए कलित ललित अलि पुंज। जमुना तीर तमाल तरु मिलित मालती कुंज। बिहारी (शब्द०)।

विशेष—यह लता हिमालय और विंध्य पर्वत के जंगलों में अधिकता से होती है। इसकी पत्तियाँ लंबोतरी और नुकीली, ढाई तीन अंगुल चौड़ी और चार पाँच अंगुल लंबी होती हैं। यह युग्मपत्रक लता है और बड़े से बड़े वृक्ष पर भी घटाटोप फैलती है। इसमें फूलों के धौद लगते हैं। बरसात के प्रारंभ में फूलती है। फूल सफेद होता है जिसमें पंखुड़ियाँ होती हैं, जिनके नीचे दो अंगुल का लंबा डंठल होता है। इस फूल में भीनी मधुर सुगंध होती है। फूल झड़ने पर वृक्ष के नीचे फूलों का बिछौना सा बिछ जाता है। जब यह लता फूलती है, तब भौंरे और मधुमक्खियाँ प्रातःकाल उसपर चारों ओर गुंजारती फिरती हैं। यह उद्यानों में भी लगाई जाती है; पर इसके फैलने के लिये बड़े वृक्ष या मंडप आदि की आवश्यकता होती है। यह कवियों की बड़ी पुरानी परिचित पुष्पलता है। कालिदास से लेकर आज तक प्रायः सभी कवियों ने अपनी कविता में इसका वर्णन अवश्य किया है। कितने कोशकारों ने भ्रमवश इसे चमेली भी लिखा है।

२. छह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम। इसके प्रत्येक चरण में दो जगण होते हैं। उ०—जो पय जिय जोर। तजौ सब शोर। सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि। केशव (शब्द०)। ३. बारह अक्षरों की एक वर्णिक वृत्ति का नाम। इसके प्रत्येक चरण में नगण, दो जगण और अंत में रगण होता है। उ०—विपिन विराध बलिष्ठ देखिए। नृपतनया भयभीत लेखिए। तब रघुनाथ बाण कै हयो। निज निर्णवा पंथ को ठयो।—केशव (शब्द०)। ४. सवैया के मत्तगयंद नामक भेद का दूसरा नाम। ५. युवती। ६. चाँदनी। ज्योत्स्ना। ७. रात्रि। रात। ८. पाठा। पाढ़ा। ९. जायफल का पेड़। जाती।

मालतीक्षारक—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

मालतीजात—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

मालती टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मालती** + **टोड़ी**] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

मालतीतीरज—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

मालतीपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातीपत्री। जावित्री।

मालतीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

मालतीमाधव—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यकार भवभूति का एक प्रसिद्ध नाटक।

मालतीमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मालतीपुष्पों की माला। मालती के फूलों का हार। २. एक प्रकार का छंद [को०]।

मालद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक प्रदेश का नाम जिसे ताड़का ने उजाड़ दिया था। २. मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक अनार्य जाति का नाम।

मालदह—संज्ञा पुं० [देश०] १. भागलपुर के पास के एक नगर का नाम जहाँ का आम अच्छा होता है। २. उक्त नगर के आसपास होनेवाला एक प्रकार का बड़ा आम जो प्रायः कलमी होता है।

मालदहा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मालदह'। उ०—तब तक कहीं मालदहा (लँगड़ा) का भी समय न चला जाए।—किन्नर० पृ० ८२।

मालदही—संज्ञा स्त्री० [हिं० मालदह] १. एक प्रकार की नाव जिसमें माझी छप्पर के नीचे बैठकर खेते हैं। २. एक प्रकार का रेशमी डोरिया (कपड़ा) जो पहले मालदह में बनता था और जिसके लहँगे बनाए जाते थे।

मालदा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मालदह'।

मालदार—वि० [फ़ा०] धनवान। धनी। संपन्न।

मालद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० मलयद्वीप] भारतीय महासागर में भारतवर्ष के पश्चिम ओर के एक द्वीपपुंज का नाम। इस द्वीपपुंज में चार छोटे छोटे द्वीप हैं।

मालधनी—संज्ञा पुं० [अ० माल + सं० धनिन्] माल का मालिक। धन का धनी या स्वामी। उ०—पाप पुन्य मिलि करहिं दिवानी, नगरी अदल न होई। दिवस चोर घर मूसन लागे मालधनी गा सोई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ९८।

मालन—संज्ञा स्त्री० [सं० मालिन्] दे० 'मालिन'।

मालपुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मालपूआ'।

मालपूआ—संज्ञा पुं० [हिं० माल + सं० पूप] एक पकवान का नाम।

विशेष—गेहूँ के आटे वा सूजी को शक्कर के रस से गीला घोलते हैं। फिर उसमें चिरौंजी, पिस्ता आदि मिलाकर धीमी आँच पर घी में थोड़ा थोड़ा डालकर सिझाकर छान लेते हैं। कभी कभी पानी की जगह घोलते समय इसमें दूध वा दही भी मिलाते हैं।

मालपूवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मालपूआ'।

मालबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मालाबार] एक प्रकार की ईख जो सूरत में होती है।

मालभंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मालभञ्जिका] प्राचीन काल के एक प्रकार के खेल का नाम। प्राचीन काल की एक क्रीड़ा।

मालभंडारी—संज्ञा पुं० [हिं० माल + भंडारी] जहाज पर का वह कर्मचारी जिसके अधिकार में लदे हुए माल रहते हैं। (लश०)।

मालभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लभूमि] एक प्रदेश का नाम जो नैपाल के पूर्व में है।

मालमंत्री—संज्ञा पुं० [अ० माल + सं० सं० मंत्री] राजस्व विभाग का मंत्री।

मालय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. गरुड के पुत्र का नाम। ३. व्यापारियों का झुंड। ४. पथिकों, यात्रियों के ठहरने की जगह (को०)। ५. चंदन निर्मित अभ्यंजन वा अनुलेप (को०)।

मालय[२]—वि० मलय संबंधी। मलय गिरि संबंधी।

मालव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मालवा देश।

यौ०—मालव गौड़। मालवदेश = मालवा। मालवनृपति। मालवविषय = मालव देश। मालवाधीश, मालवेंद्र = मालव देश का नृपति।

२. एक राग का नाम, जिसे भैरव राग भी कहते हैं।

विशेष—संगीतदामोदर में इसका रूप माला पहने, हरित वस्त्रधारी, कानों में कुंडल धारण किए, संगीतशाला में स्त्रियों के साथ बैठा हुआ लिखा है। इसकी धनाश्री, मालश्री, रामकीरी, सिंधुड़ा, आसावरी और भैरवी नाम को छह रागिनियाँ हैं। कोई कोई इसे षाड़व जाति का और कोई संपूर्ण जाति का राग मानते हैं। षाड़व माननेवाले इसमें 'मध्यम' स्वर वर्जित मानते हैं। यह रात को १६ दंड से २० दंड तक गाया जाता है।

३. मालव देशवासी वा मालव देश में उत्पन्न पुरुष। ४. सफेद लोध।

मालव[२]—वि० मालव देश संबंधी। मालवे का।

मालवक[१]—वि० [सं०] मालवा देश संबंधी। मालवे का।

मालवक[२]—संज्ञा पुं० मालव देश का निवासी।

मालवगौड़—संज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति का एक संकर राग जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता।

विशेष—इसका स्वरग्राम म, ध, नि, स, रि, ग, म, है। इसका उपयोग वीर रस में किया जाता है। कुछ लोग इसे संपूर्ण जाति का मानते हैं और इसके गाने का समय सायंकाल बतलाते हैं।

मालवर—वि० [अ० माल + फ़ा० वर (प्रत्य०)] माल वा धन संपत्ति रखनेवाला। मालदार। मालवाला। उ०—यहाँ के लोग तो बड़े मालवर दिखाई पड़ते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६०।

मालवर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम।

मालवश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्री राग की एक रागिनी का नाम।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसके गाने का समय सायंकाल है। नारद इसे मालव की रागिनी मानते हैं और हनुमत् इसे हिंडोल राग की रागिनी लिखते हैं। हनुमत् इसे ओड़व जाति की मानते हैं और इसके गाने में धैवत और गांधार को वर्जित लिखते हैं। इसे मालश्री और मालसी भी कहते हैं।

मालवा[१]—संज्ञा पुं० [सं० मालव] एक प्राचीन देश का नाम जो अब मध्य भारत में है।

विशेष—इसकी प्रधान नगरी अवंती है जो सप्तमोक्षदायिनी पुरियों में गिनी गई है और जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं। इंदौर, भूपाल, धार, रतलाम, जावरा, राजगढ़, नृसिंहगढ़ और ग्वालियर का राज्य नीमच तक इसी मालवा राज्य की सीमा के अंतर्गत है। यह बहुत प्राचीन देश है और अथर्व वेद की संहिता तक में इसका नाम मिलता है।

२. एक राग का नाम। विशेष दे० 'मालव–२'।

मालवा[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

मालविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

मालविटपी संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीवृक्ष।

मालविभाग—संज्ञा पुं० [अ० माल + सं० विभाग] राजस्व विभाग।

उ०—यूसुफ आदिल शाह के शासन काल में भी माल विभाग में अनेक हिंदू अधिकारी रखे गए थे।—अकबरी०, पृ० २३।

मालवी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्री राग की एक रागिनी का नाम।

विशेष—यह ओड़व जाति की है और हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम नि, सा, ग, म, ध, नि, है। इसमें ऋषभ और पंचम स्वर वर्जित हैं। कोई कोई इसे हिंडोल राग की रागिनी मानते हैं।

२. पाढ़ा नाम की एक लता। विशेष दे० 'पाढ़ा'।

मालवी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मालव+हिं० ई (प्रत्य०) मालव देश की भाषा। उ०—विभिन्न राजस्थानी बोलियाँ तथा मालवी, कोशली या पूर्वी हिंदी, भोजपुरी, इत्यादि।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ७५।

मालवी[3]—वि० दे० 'मालवीय'।

मालवीय—वि० [सं०] मालव देश संबंधी। मालवे का। २. मालव देश का निवासी। मालवे का रहनेवाला।

मालश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मालवश्री'।

मालसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'मालवश्री'। २. एक वृक्ष का नाम। दुर्गपुष्पी (को०)।

मालहायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

मालांक—संज्ञा पुं० [सं० मालाङ्क] भूस्तृण।

माला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंक्ति। अवली। जैसे, पर्वतमाला। २. फूलों का हार। गजरा।

विशेष—मालाएँ प्रायः फूलों, मोतियों, काठ या पत्थर के मनकों, कुछ वृक्षों के बीजों अथवा सोने, चाँदी आदि धातुओं से बने हुए दानों से बनाई जाती हैं। फूल या मनके आदि धागे में गुँथे होते हैं और धागे के दोनों छोर एक साथ किसी बड़े फूल या उसके गुच्छे या दाने में पिरोकर बाँध दिए जाते हैं। मालाएँ प्रायः शोभा के लिये धारण की जाती हैं। भिन्न भिन्न संप्रदायों की मालाएँ भिन्न भिन्न आकार और प्रकार की होती हैं और उनका उपयोग भी भिन्न होता है। हिंदुओं की जप करने की मालाएँ १०८ दानों या मनकों की अथवा इसके आधे, चौथाई या छठे भाग की होती हैं। भिन्न भिन्न संप्रदायों के लोग भिन्न भिन्न पदार्थों की मालाएँ धारण करते हैं। जैसे, वैष्णव तुलसी की, शैव रुद्राक्ष की, शक्ति रक्त चंदन, स्फटिक या रुद्राक्ष की तथा अन्य संप्रदाय के लोग अन्य पदार्थों की मालाएँ धारण करते हैं। वह माला जिसमें अठारह या नौ दाने होते हैं, सुमिरनी कहलाती है।

पर्या०—माल्य। स्रक्। मालिका। गुणिका। गुणंतिका।

मुहा०—माला फेरना = जपना। जप करना। भजन करना।

३. समूह। झुंड। जैसे, मेघमाला। ४. एक नदी का नाम। ५. दूर्वा। दूब। ६. भुइँ आँवला। ७. कतार। श्रेणी। लर (को०)। ८. उपजाति छंद के एक भेद का नाम। इसके प्रथम और द्वितीय चरण में जगण, तगण, जगण और अंत में दो गुरु तथा तीसरे और चौथे चरण में दो तगण, फिर जगण और अंत में दो गुरु होते हैं। ९. काठ की लंबी डोकिया जिसमें बच्चों के लगाने का उबटन और तेल आदि रखा जाता है।

मालाकंट—संज्ञा पुं० [सं० मालाकण्ट] १. अपामार्ग। २. एक गुल्म का नाम।

मालाकंद—संज्ञा पुं० [सं० मालाकन्द] एक प्रकार का कंद।

विशेष—वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, दीपन, गुल्म और गंडमाला रोग को हरनेवाला तथा वात और कफ का नाशक लिखा है।

पर्या०—मालकंद। बलकंद। पंक्ति कंद। त्रिशिखदला। ग्रंथिदला। कंदलता।

मालाकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मालाकार'।

मालाका—संज्ञा संज्ञा [सं०] माला। हार [को०]।

मालाकार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मालाकारी] १. पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति का नाम।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार यह जाति विश्वकर्मा और शूद्रा से उत्पन्न है, पर पराशर पद्धति के अनुसार यह जाति तेलिन और कर्मकार से उत्पन्न कही गई है।

२. माली। उ०—जैसे जल लै बाग का सिंचत मालाकार।—दीन० ग्रं०, पृ० ८९।

मालागिरी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मलयागिरि] एक रंग का नाम।

विशेष—यह रंग टेसू और नासफल से बनाया जाता है। सेर भर टेसू का फूल पानी में आठ दिन तक भिगोया जाता है जिसे दिन में दो बार चलाया जाता है। इसी प्रकार आध सेर नासफल की बुकनी पानी में भिगोई जाती और प्रतिदिन दो बार चलाई जाती है। फिर आठ दिन बाद दोनों के रंग अलग अलग छान लिए जाते और फिर मिला लिए जाते हैं। फिर इसमें डेढ़ माशे हरा रंग मिला दिया जाता है और तब उसमें दो बार कपड़ा रँगा जाता है। सुगंध के लिये इसमें कपूर-कचरी की जड़ भी पीसकर मिलाई जाती है।

मालागिरी[2]—वि० मालागिरी रंग में रँगा हुआ।

मालागुण—संज्ञा पुं० [सं०] गले का हार।

मालागुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का असाध्य रोग जिसे 'लूता' कहते हैं।

मालाग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० मालाग्रन्थि] दे० 'मालादूर्वा' [को०]।

मालातृण—संज्ञा पुं० [सं०] भूस्तृण।

मालादीपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक अलंकार का नाम।

विशेष—इसमें एक धर्म के साथ उत्तरोत्तर धर्मियों का संबंध वर्णित होता है या पूर्वकथित वस्तु को उत्तरोत्तर वस्तु के उत्कर्ष का हेतु बतलाया जाता है। इस अलंकार को कविराज मुरारिदान ने संकर अलंकार माना है और इसे दीपक तथा शृंखलालंकार का समुच्चय कहा है। जैसे,—रस सों काव्य अरु

काव्य सों सोहत बचन महान। वाणी ही सों रसिक जन तिन सों सभा सुजान।

मालादूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब जिसमें बहुत सी गाँठें होती हैं।

विशेष—इसे गंडदूर्वा, ग्रंथिदूर्वा, मालाग्रंथि भी कहते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद मधुर, तिक्त और गुण पित्त तथा कफनाशक माना गया है।

मालाधर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्रह अक्षरों के एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण, जगण फिर सगण और यगण और अंत में एक लघु और फिर गुरु होता है। जैसे,—फिरत हम साथ बंधु तुम्हरीहिं चिंता भरे।

मालाधर[२]—वि० जिसने माला धारण की हो। जो माला पहने हुए हो [को०]।

मालाधार—संज्ञा पुं० [सं०] दिव्यावदान के अनुसार बौद्धों के एक देवता का नाम।

मालाप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम।

मालाफल—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष।

मालामंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **मालमन्त्र**] एक प्रकार का मंत्र।

मालामणि—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष।

मालामनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मालामंत्र'।

मालामाल—वि० [फ़ा०] धनधान्य से पूर्ण। संपन्न।

मालारिष्टा, मालारिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाची या पाटी नाम की लता जिसके पत्तों की गणना सुगंधि द्रव्य में होती है।

मालालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृक्का। असबरग।

मालाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृक्का। असबरग।

मालावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी का नाम जो पंचम, हम्मीर, नट और कामोद के संयोग से बनती है। कुछ लोग इसे मेघ राग की पुत्रवधू भी मानते हैं।

मालिंद्य—संज्ञा पुं० [सं० **मालिन्द्य**] एक प्राचीन पर्वत का नाम।

मालिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. माली। २. एक प्रकार की चिड़िया। ३. रजक। धोबी। ४. रँगरेज (को०)।

मालिक[२]—पुं० [अ०] [स्त्री० **मालिका**] १. ईश्वर। अधिपति। उ०—माया जीव ब्रह्म अनुमाना। मानत ही मालिक बौराना।—कबीर (शब्द०)। २. स्वामी। ३. पति। शौहर।

मालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंक्ति। २. माला। ३. गले में पहनने के एक आभूषण का नाम। ४. पक्के मकान के ऊपर का खंड। रावटी। ५ द्राक्षामद्य। अंगूर की शराब। ६. मद्य। ७. पुत्री। ८. चमेली। चंद्रमल्लिका। ९. अलसी। १०. मालिन। ११. मुरा। १२. राजभवन। प्रासाद (को०)। १३. सतला। सातला।

मालिकाना[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मालिकानह्**] १. वह कर, दस्तूरी या हक जो मालिक अदना या कब्जेदार मालिक तालुकेदार को देता है। २. स्वामी का अधिकार या स्वत्व। मिलकियत। स्वामित्व।

मालिकाना[२]—क्रि० वि० मालिक की भाँति। मालिक की तरह। जैसे, मालिकाना तौर पर।

मालिकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मालिक**+**ई** (प्रत्य०)] १. मालिक होने का भाव। २. मालिक का स्वत्व।

मालित—वि० [सं०] १. जिसे माला या हार पहनाया गया हो। २. जो किसी के द्वारा घिरा वा घेरा गया हो [को०]।

मालिन—संज्ञा स्त्री० [सं० **मालिन्**] १. माली की स्त्री। २. माली का काम करनेवाली स्त्री।

मालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मालिन**+**ई** (प्रत्य०)] १. मालिन। २. चंपा नगरी का एक नाम। ३. स्कंद की सात माताओं में से (जिन्हें मातृकाएँ कहते हैं) एक माता का नाम। ४. गौरी। ५. एक नदी का नाम जो हिमालय पर्वत में है।

विशेष—पुराणानुसार इसी के तट पर मेनका के गर्भ से शकुंतला का जन्म हुआ था।

६. मंदाकिनी। गंगा। ७. कलियारी। करियारी। ८. दुरालभा। जवासा। ९. एक वर्णिक वृत्त का नाम।

विशेष—इसके प्रत्येक पद में १५ अक्षर होते हैं जिनमें पहले छह वर्ण, दसवाँ और तेरहवाँ अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं (न न भ य य)। जैसे,—'अतुलित बलधामं स्वर्णशैलाभदेहं' या 'दसरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै'। इसे कोई कोई मात्रिक भी मानते हैं।

१०. मदिरा नाम की एक वृत्ति का नाम। ११. महाभारत के अनुसार एक राक्षसी का नाम। १२. मार्कंडेय पुराण के अनुसार रौच्य मनु की माता का नाम। १३. विराट के महल में गुप्त वास करते समय द्रौपदी का नाम। १४. विभीषण की माता का नाम। उ०—उनमें पुष्पोत्कटा से रावण, कुंभकर्ण; मालिनी से विभीषण तथा राका से खर और शूर्पणखा हुए।—प्रा० भा० प०, पृ० ८९।

मालिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलीनता। मैलापन। १. अपवित्रता। २. अंधकार। अँधेरा।

मालिमंडन—संज्ञा पुं० [सं० **मालिमण्डन**] पुराणानुसार एक राजा का नाम।

मालियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कीमत। मूल्य। २. संपत्ति। धन। ३. मूल्यवान् पदार्थ। कीमती चीज।

मालिया[१]—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे रस्सों में दी जानेवाली एक प्रकार की गाँठ जिसका व्यवहार जहाज के पाल बाँधने में होता है। (लश०)।

मालिया[२]—संज्ञा पुं० [अ० **मालियह्**] राजस्व। मालगुजारी। लगान [को०]।

मालियाना—अव्य० [अ० **मालियानह्**] राजस्व। लगान।

मालिवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **माल्यवान्**] दे० 'माल्यवान्'।

मालिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] मलने का भाव या क्रिया। मलाई। मर्दन।

माली[१]—संज्ञा पुं० [सं० मालिन्, प्रा० मालिय] [स्त्री० मालिनि, मालिन, मालन, मालिनी] १. बाग को सींचने और पौधों को ठीक स्थान पर लगानेवाला पुरुष। वह जो पौधों को लगाने और उनकी रक्षा करने की विद्या जानता और इसी का व्यवसाय करता हो। उ०—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु। माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।—तुलसी (शब्द०)।

२. एक छोटी जाति का नाम। इस जाति के लोग बागों में फूल फल के वृक्ष लगाते, उनकी कलमें काटते, फूलों को चुनते और उनकी मालाएँ बनाते और फूल तथा माला बेचते हैं। इस जाति के लोग शूद्र वर्ण के अंतर्गत माने जाते हैं। इनके हाथ का छूआ जल ब्राह्मण क्षत्रियादि पीते हैं।

माली[२]—वि० [सं० मालिन्] [स्त्री० मालिनी] १. जो माला धारण किए हो। माला पहने हुए। २. युक्त। परिवृत। मालित (को०)।

माली[३]—संज्ञा पुं० १. वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सुकेश राक्षस का पुत्र जो माल्यवान् और सुमाली का भाई था। २. राजीवगण नामक छंद का दूसरा नाम।

माली[४]—वि० [फ़ा०, अ० माल] माल से सबंध रखनेवाला। आर्थिक। धनसंबंधी। जैसे—आजकल उसकी माली हालत खराब है।

मालीखूलिया—संज्ञा पुं० [यू० मेलांगखोलिया अ० मालनखूलिया, मालीखूलिया, मि० अं० मेलांकोली] एक प्रकार का मानसिक रोग। खब्त। मस्तिष्कविकृति। चित्त का सशंक रहना।

विशेष—इस प्रकार के रोगी प्रायः एकांत में ही रहना चाहते हैं और किसी से अधिक बातचीत नहीं करते।

मालीगौड़—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मालव गौड़'।

मालीद—संज्ञा पुं० [अं० मालिबडेना ?] एक धातु का नाम जो चाँदी की भाँति उज्वल और चमकदार होती है।

विशेष—यह चाँदी से अधिक कड़ी होती है और बहुत ही तेज आँच में गलती है। इसका अटवी भार ९६ होता है। इसका क्रोमियम, टंग्स्टेन और यूरेनियम से रासायनिक संबंध है और उनके सदृश ही इससे अम्लजित् बनता और क्षार के गुणों को धारण करता है। यह सल्फेट के रूप में मिलता है।

मालीदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मालीदह्] १. मलीदा। चूरमा। २. एक प्रकार का ऊनी कपड़ा जो बहुत कोमल और गरम होता है।

विशेष—यह कपड़ा काश्मीर और अमृतसर आदि स्थानों में बनता है। ऊनी चादर को लेकर गरम पानी में खूब मलते हैं जिससे उसके रोएँ बहुत गाढ़े और मुलायम हो जाते हैं। मालीदे की गिनती बढ़िया ऊनी कपड़ों में होती है।

मालु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर जाति। दे० 'माल्ल—१' [को०]।

मालु[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक लता का नाम जो पेड़ों में लिपटती है। २. नारी। स्त्री। औरत।

मालुक संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के मटमैले रंग का राजहंस।

मालुकाच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक। बहेड़ा।

मालुद—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धमतानुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

मालुधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप। २. आठ नागों में से एक नाग का नाम। ३. महापथ।

मालुधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

मालुम(पु)—वि० [अ० मालूम] ज्ञात। मालूम। उ०—रिषि नारि उधार कियो, सठ केवट मीत पुनीत सुकीर्ति लही। निज लोक दियो सेवरी खग को कपि थाप्यो सो मालुम है सबही।—तुलसी (शब्द०)।

मालू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जो बागों में शोभा के लिये लगाई जाती है।

विशेष—प्रायः सारे भारत में यह बेल जंगली दशा में पाई जाती है। साल के जंगलों में यह बहुत अधिकता से होती है। यदि इसे छाँटा या रोका न जाय तो यह बहुत जल्दी बढ़ जाती है और वृक्षों को बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। इसकी शाखाएँ सैकड़ों फुट तक पहुँचती हैं। इसकी छाल से रेशा निकाला जाता है और उससे रस्से आदि बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज औषध में काम आते हैं और बीज भूनकर खाए भी जाते हैं। इसकी पत्तियों के छाते भी बनाए जाते हैं।

मालूक—संज्ञा पुं० [सं०] काली तुलसी। कृष्णा तुलसी।

मालूधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

मालूम[१]—वि० [अ०] १. जाना हुआ। ज्ञात। उ०—मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं मालूम। खुदा का नाम सुना है निशाँ नहीं मालूम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३००। २. प्रकट। प्रसिद्ध। ख्यात।

मालूम[२]—संज्ञा पुं० [अ०] जहाज का अफसर (लश०)।

मालूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़। २. बेल का फल। उ०—मालूर पंग श्री खंड धूप।—पृ० रा०, ६०।७६। २. कपित्थ। कैथ।

मालेय—संज्ञा पुं० [सं०] मालाकार। माली [को०]।

मालेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

मालोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें एक उपमेय के अनेक उपमान होते हैं और प्रत्येक उपमान के भिन्न भिन्न धर्म होते हैं। जैसे,—परम पवित्र है पुनीत पृथ्वी में आज, पन प्रजापालन में जैसे अवधेस को। जाके भुज जुगल विराजै धर्म क्षत्रिन को धारैं भुवि भार फन मंडन ज्यों सेस को। भनत मुरार सब जगत उचार रह्यौ देखौ धन्य भाग यहै मरुधर देस को। अथक समंद सो है तापहर चंद सोहै सुखमा सुरिंद सोहै नंद तखतेस को।—मुरारिदान (शब्द०)।

माल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल। २. माला। ३. वह माला जो सिर पर धारण की जाय।

माल्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दमनक दौना। २. माला।

माल्यजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] मालाकार। माला बनानेवाला। माली।

माल्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़। सनई।

माल्यवंत—संज्ञा पुं० [सं० माल्यवत्>माल्यवान्] एक राक्षस। दे० 'माल्यवान्'। उ०—माल्यवंत अति सचिव सयाना। —मानस, ६।४०।

माल्यवत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'माल्यवान्'।

माल्यवत् —वि० [स्त्री० माल्यवती] जो माला पहने हो।

माल्यवती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

माल्यवती[2]—वि० स्त्री० जो माला पहने हो।

माल्यवान्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—सिद्धांतशिरोमणि में इसे केतुमाल और इलावृत वर्ष के बीच का सीमापर्वत लिखा है और नील पर्वत से निषध पर्वत तक इसका विस्तार कहा है।

२. एक राक्षस जो सुकेश का पुत्र था।

विशेष—यह गंधर्व की कन्या देववती से उत्पन्न हुआ था। इसके भाई का नाम सुमाली था जिसकी कन्या कैकसी से रावण की उत्पत्ति हुई थी।

३. बंबई प्रांत में रत्नगिरि जिले के अंतर्गत एक परगने का नाम।

माल्यवान्[2]—वि० [सं० माल्यवत्] [वि० स्त्री० माल्यवती] जो माला पहने हो।

माल्यवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] मालाकार। माली।

माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास।

माल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णसंकर जाति जो ब्रह्मवैवर्त में लेट पिता और धीवरी माता से उत्पन्न कही गई है। २. दे० 'मल्ल'।

माल्लवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लों की विद्या या कला।

माल्ह[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'माल'।

माल्ह[2]—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल, हिं० माल] दे० 'मल्ल'।

मावड़िया(पु)—संज्ञा पुं० [?] जनखा। मौगा। स्त्रियों के संपर्क में अधिक रहनेवाला। स्त्री स्वभाववाला। उ०—मेछा हुंदा मुलक में जो मावड़ियो जाय। महबूबाँ री मिसल में किल सरदार कहाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १३।

मावत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'महावत'। उ०—दियो पठाय श्याम निज पुर को मावत सह गजराज। आगे चले सभा में पहुँचे जहँ नृप सकल समाज।—सूर (शब्द०)।

मावली[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत की एक पहाड़ी वीर जाति का नाम। इस जाति के लोग शिवाजी की सेना में अधिकता से थे। उ०—सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि दुग्ग पर जात मावली दल सचेत हैं।—भूषण (शब्द०)।

मावली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मयार, मयालु] प्रेमल। स्नेहपूर्ण। उ०—सो पैदा हुई एक दाई भली, मेहरबान होर गुन भरी मावली। —दक्खिनी०, पृ० १६१।

मावस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमावस्या] दे० 'अमावस'। उ०—दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुख दंदु। अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रवि चंदु।—बिहारी र०, दो० ३५७।

मावा[1]—संज्ञा पुं० [सं० मण्ड, हिं० माँड] १. माँड। पीच। २. सत्त। निष्कर्ष।

मुहा०—मावा निकालना = खूब पीटना। कचूमर निकालना।

३. वह दूध जो गेहूँ आदि को भिगोकर वा कच्चा मलकर निचोड़ने से निकलता है। ४. प्रकृति। ५. खोया। ६. अंडे के भीतर का पीला रस। जरदी। ७. चंदन का इत्र जिसे आधार बनाकर फूलों और गंधद्रव्यों का इत्र उतारा जाता है। जमीन। ८. वह गाढ़ा लसदार सुगंधित द्रव्य जिसे तमाकू में डालकर उसे सुगंधित करते हैं। खमीर। ९. मसाला। सामान। १०. हीरे की बुकनी जिससे मलकर सोने चाँदी को चमकाते हैं या उनपर कुंदन या जिला करते हैं।

मावा‡[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता। माँ।

मावा[3]—संज्ञा पुं० [अ०] रक्षास्थल। आश्रय स्थान। [को०]।

मावासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मवास] दे० 'मवासी'।

माश—संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० माष] दे० 'माष'।

माशा[1]—संज्ञा पुं० [सं० माष, जंद० मष. माह; फ़ा० माशह्] आठ रत्ती का एक प्रकार का बाट या मान।

विशेष—इसका व्यवहार सोने, चाँदी, रत्नों और ओषधियों के तौलने में होता है। यह आठ रत्ती के बराबर होता है और एक तोले का बारहवाँ भाग होता है।

माशा[2]—संज्ञा पुं० [सं० महाशय, बँग० मोशाय] १. भला आदमी। सज्जन। शरीफ। (बंगाली)। २. वंग देश का निवासी। बंगाली।

माशाअल्लाह—पद [अ०] एक प्रशंसासूचक पद। बहुत अच्छा है। क्या कहना है।

विशेष—इस पद का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो किसी अच्छी चीज को देखकर उसकी प्रशंसा के लिये; और दूसरे किसी अच्छी चीज का जिक्र करते हुए यह भाव प्रकट करने के लिये कि ईश्वर करे, इसे नजर न लगे।

माशी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० माष (= उड़द)] १. एक रंग जो कालापन लिए हरा होता है।

विशेष—कपड़े पर यह रंग कई पदार्थों में रँगने से आता है जिनमें हड़ का पानी कसीस, हलदी और अनार की छाल प्रधान है। इनमें रँगे जाने के बाद कपड़े को फिटकरी के पानी में डुबाना पड़ता है।

२. जमीन की एक नाप जो २४० वर्ग गज की होती है।

माशी²—वि० उड़द के रंग का। कालापन लिए हरा रंग का। माशी रंग का।

माशूक—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० माशूका] वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। प्रियतम। प्रेमपात्र।

यौ०—माशूके हकीकी = परमात्मा। ईश्वर।

माशूका—संज्ञा स्त्री० [अ० माशूकह्] प्रेमास्पदा। प्रेयसी। प्रेमिका।

माशूकाना—वि० [फ़ा०] नाज नखरे से भरा हुआ। माशूकों जैसा।

माशूकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० माशूकी] माशूक होने का भाव। प्रेमपात्रता। हाव भाव।

यौ०—आशिकी माशूकी।

माष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. उड़द। २. आठ रत्ती के बराबर का बाट या मान। माशा। ३. शरीर के ऊपर काले रंग का उभरा हुआ दाग या दाना। मसा।

माष²—वि० मूर्ख।

माषⓅ³—संज्ञा स्त्री० दे० [हिं०] माख'।

माषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. माशा। (तौल)। २. उड़द।

माषकलाय—संज्ञा पुं० [सं०] उरद।

माषतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का तेल जो अर्धांग, कंप आदि रोगों में उपयोगी माना जाता है।

माषनाⓅ—क्रि० स० [हिं० माख] दे० 'माखना'।

माषपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'माषपर्णी'।

माषपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनमाष। जंगली उड़द।

विशेष—वैद्यक में इसको वृष्य, बलकारक, शीतल और पुष्टिवर्धक माना है।

पर्या०—सिंहपुच्छी। ऋषिप्रोक्ता। कृष्णवृंता। पांडु। लोमपर्णी।

माषबटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़द की बनी हुई बड़ी। दे० 'बड़ी'।

माषभक्तबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की बलि जो दुर्गा, काली आदि को चढ़ाई जाती है। इसमें उड़द, भात, दही आदि कई पदार्थ होते हैं।

माषयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पापड़।

माषरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माँड़। पीच।

माषरावि—संज्ञा पुं० [सं०] लाटचायन सूत्रानुसार एक ऋषि का नाम। ये माषराविन् ऋषि के गोत्र में थे।

माषवर्द्धक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णकार। सुनार।

माषाज्य—संज्ञा पुं० [सं०] घृत के योग से पकाई हुई उरद। एक विशिष्ट भोज्य वस्तु [को०]।

माषाद—संज्ञा पुं० [सं०] कछुआ।

माषाश—संज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोड़ा।

माषाशी—संज्ञा पुं० [सं० माषाशिन्] [स्त्री० माषाशिनी] घोड़ा।

माषीण—संज्ञा पुं० [सं०] उड़द का खेत। माष का खेत।

माष्य—संज्ञा पुं० [सं०] माष बोने योग्य खेत। मशार।

मास्—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. महीना। मास।

मास¹—संज्ञा पुं० [सं०] काल के एक विभाग का नाम जो वर्ष के बारहवें भाग के बराबर होता है। महीना।

विशेष—मास (क) सौर, (ख) चांद्र, (ग) नाक्षत्र या बार्हस्पत्य और (घ) सावन भेद से चार प्रकार का होता है। (क) सौर मास उतने काल को कहते हैं जितने काल तक सूर्य का उदय किसी एक राशि में हो; अर्थात् सूर्य की एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक का समय सौर मास कहलाता है। यह मास प्रायः तीस, इकतीस और कभी कभी उनतीस और बत्तीस दिन का भी होता है। (ख) चांद्र मास चंद्रमा की कला की वृद्धि और ह्रासवाले दो पक्षों का होता है जिन्हें शुक्ल और कृष्ण कहते हैं। यह मास दो प्रकार का होता है—एक मुख्य और दूसरा गौण। जो मास शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होकर अमावस्या को समाप्त होता है, उसे मुख्य चांद्र मास कहते हैं। इसका दूसरा नाम अमांत भी है। गौण चांद्र मास कृष्ण प्रतिपदा से आरंभ होता है और पूर्णिमा को समाप्त होता है इसे पूर्णिमांत भी कहते हैं। दोनों प्रकार के मास अट्ठाइस दिन के और कभी कभी घट बढ़कर उन्तीस, तीस और सत्ताइस दिन के भी होते हैं। (ग) नाक्षत्र मास उतना काल है जितने में चंद्रमा सत्ताइस नक्षत्रों में भ्रमण करता है। यह मास लगभग २७ दिन का होता है और उस दिन से प्रारंभ होता है जिस दिन चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र में प्रवेश करता है; और उस दिन समाप्त होता है, जिस दिन वह रेवती नक्षत्र से निकलता है। (घ) सावन मास का व्यवहार व्यापार आदि व्यावहारिक कामों में होता है और यह तीस दिन का होता है। यह किसी दिन से प्रारंभ होकर तीसवें दिन समाप्त होता है। सौर और चांद्र भेद से इसके भी दो भेद हैं। सौर सावन मास सौर मास की किसी तिथि से और चांद्र सावन मास चांद्र मास की किसी तिथि या दिन से प्रारंभ होकर उसके तीसवें दिन समाप्त होता है। प्रत्येक संवत्सर में बारह सौर और बारह ही चांद्र मास होते हैं; पर सौर वर्ष ३६५ दिनों का और चांद्र वर्ष ३५५ दिनों का होता है, जिससे दोनों में प्रतिवर्ष १० दिन का अंतर पड़ता है। इस वैषम्य को दूर करने के लिये प्रति तीसरे वर्ष बारह के स्थान में तेरह चांद्र मास होते हैं। ऐसे बढ़े हुए मास को अधिमास या मलमास कहते हैं। विशेष दे० 'अधिमास' और 'मलमास'।

वैदिक काल में मास शब्द का व्यवहार चांद्र मास के लिये ही होता था। इसी से संहिताओं और ब्राह्मण में कहीं बारह महीने का संवत्सर और कहीं तेरह महीने का संवत्सर मिलता है।

२. चंद्रमा (को०)। ३. एक संख्या। १२ की संख्या।

मासⓅ²—संज्ञा पुं० [सं० मांस] दे० 'मांस'। उ०—बहक न यहि बहनापरे जब तब बीर बिनास। बचै न बड़ी सबीलहू चील्ह घौंसुआ मास।—बिहारी (शब्द०)।

मासक—संज्ञा पुं० [सं०] महीना। मास। उ०—भेद की बात सुने

तें कछू वह मासक ते मुसकान लगी है ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १७२ ।

मासकालिक—वि० [सं०] महीने भर का । महीने भर रहनेवाला ।

मासचारिक—वि० [सं०] १. जो एक मास तक कर्तव्य हो । एक मास तक करणीय ।

मासजात—वि० [सं० **मास + जात**] जो एक महीने का हो (शिशु) । महीने भर का [को०] ।

मासज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दात्यूह नामक पक्षी । बनमुर्गी । २. एक प्रकार का हिरन ।

मासताला—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा ।

मासदेय—वि० [सं०] जो एक मास में चुकता किया जाय [को०] ।

मासन—संज्ञा पुं० [सं०] सोमराज के बीज ।

मासना[१]†—क्रि० अ० [सं० **मिश्रण**, हिं० **मीसना-मसना**] मिश्रित होना । मिलना । उ०—पंडित बूझि पियो तुम पानी । जा माटी के घर में बैठे तामें सृष्टि समानी । छप्पन कोटि जादो जहँ बिनसे मुनि जन सहज अठासी । परग परग पैगंबर गाड़े ते सरि मारी मासी ।—कबीर (शब्द०) ।

मासना[२]—क्रि० स० मिलाना ।

मासपाक—वि० [सं०] महीने भर में पकने या प्रौढ़ होनेवाला [को०] ।

मासप्रमित—संज्ञा पुं० [सं०] नया चाँद । अमावस के बाद प्रतिपदा का चंद्रमा [को०] ।

मासप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] महीने का प्रारंभ होना ।

मासफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें फलित ज्योतिष के अनुसार महीने भर का शुभाशुभ फल लिखा हो । इसे मासपत्र भी कहते हैं ।

मासभृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर जिसको मासिक वेतन मिलता हो ।

मासमान—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष ।

मासर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार एक प्रकार का पेय पदार्थ जो चावल के माँड़ और अंगूर के उठे हुए रस से बनाया जाता था । इसका प्रयोग यज्ञों में होता था । यह मादक होता था ।

पर्या०—**अचाम** । **निस्राव** ।

२. काँजी । ३. भात का माँड़ ।

मासल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष । वत्सर [को०] ।

मासवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा वा पवई की जाति का एक पक्षी । सषपी ।

मासस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।

मासांत—संज्ञा पुं० [सं० **मासान्त**] १. महीने का अंत । २. अमावस्या । ३. संक्रांति ।

मासा[१]—संज्ञा पुं० [सं० **माष**, हिं० **माशा**] दे० 'माशा' ।

मासा†[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मशक**] मच्छड़ ।

मासाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रह जो मास का स्वामी हो । मासेश ।

मासानुमासिक—वि० [सं०] प्रति मास संबंधी । प्रति मास का ।

मासार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मास के अंत का नक्षत्र जिसके नाम पर महीनों के नाम हैं, जैसे चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख, आदि [को०] ।

मासावधिक—वि० [सं०] १. एक महीने रहनेवाला । २. एक महीने में होनेवाला [को०] ।

मासिक[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **मासिकी**] १. मास संबंधी । महीने का । जैसे, मासिक आय, मासिक कृत्य, मासिक वेतन । २. महीने में एक बार होनेवाला । जैसे, मासिक श्राद्ध । ३. महीने में एक बार निकलनेवाला । जैसे, मासिक पत्र ।

यौ०—**द्विमासिक** । **त्रैमासिक** । **षाण्मासिक** ।

मासिक[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] स्त्रियों को महीने में एक बार होनेवाला रजःस्राव वा रजोधर्म । मासिक धर्म ।

मासिकधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों को प्रतिमास होनेवाला स्राव । स्त्रियों का रजस्वला होना ।

मासी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृष्वसा**, पा० मातुच्छा, प्रा० **माउच्छा**, **माउसिया**, **माउस्सिया**, **माउसी**, **मासिआ**, हि० **मउसी**, **मौसी**, बंग० **मासा**] माँ की बहिन । मौसी । उ०—हम तो निपट अहीर बावरी जोग दीजिए जानन । कहा कथत मासी के आगे जानत नानी नानन ।—सूर (शब्द०) ।

मासीन—वि० [सं०] १. जिसकी अवस्था एक महीने की हो । महीने भर का । एक महीने का । २. माहवार । प्रतिमास होनेवाला (को०) ।

यौ०—**द्विमासीन** । **पंचमासीन** । **षण्मासीन**, इत्यादि ।

मासुरकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] मसुकर्ण के गोत्र में उत्पन्न पुरुष ।

मासुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार चीर फाड़ के एक शस्त्र या औजार का नाम । २. दाढ़ी श्मश्रु (को०) । ३. मौसी । मातृष्वसा (को०) ।

मासूक—संज्ञा पुं० [फ़ा० **माशूक**] दे० 'माशूक' । उ०—मासूक साहब आसिक बंदा ।—पलटू०, भा० २, पृ० १० ।

मासूम—वि० [अ० मासूम] जिसने कोई अपराध या दोष न किया हो । निरपराध । बेगुनाह । जैसे,—मासूम बच्चा ।

मासूर—वि० [सं०] [वि०स्त्री० **मासूरी**] मसूर का बना हुआ वा मसूर के सदृश ।

मासेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इष्टि या यज्ञ जो प्रतिमास हो ।

मास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. स्वामी । मालिक । २. शिक्षक । गुरु । अध्यापक । उस्ताद । ३. किसी विषय में परम प्रवीण । ४. गृहस्वामी । ५. बालकों के लिये व्यवहृत शब्द ।

यौ०—**मास्टर** आव आर्ट्स = साहित्य की एक उपाधि वा डिग्री । एम० ए० । **मास्टर आव् लाज** = विधि वा कानून की उपाधि ।

एल-एल० एम० । मास्टर अव् साइन्स = विज्ञान की एक डिग्री । एम० एस-सी० । मास्टर की = एक विशिष्ट ताली जिससे विभिन्न कुंजियों से खुलनेवाले बहुत से ताले खुल जायँ । मास्टर-पीस = अत्यंत उत्कृष्ट वा कलामय । मास्टरशिप = प्रभुत्व । प्रधानता ।

मास्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं० मास्टर + ई (प्रत्य०)] १. मास्टर का काम । अध्यापकी । २. मास्टर का भाव ।

मास्य—वि० [सं०] महीने भर का । जो एक महीने का हो । मासीन ।

माहँⓅ—अव्य० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] बीच में । उ०—यह शिशुपाल भजैत श्री दीनबंधु ब्रजनाथ कबै मुख देखिहौं । कहि रुक्मिणि मन माहँ सबै सुख लेखिहौं ।—सूर (शब्द०) ।

माह[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मास । महीना । उ० सखि हे हामारि दुखेर नाहि ओर । ए भर बादर माह भादर, शून्य मंदिर मोर । —विद्यापति, पृ० ४७३ । २. चंद्रमा । चाँद । उ०—छिपी थी सो एक माह मद की छबीली । मशाता हो ईदी निगारत दिखाया ।—दक्खिनी०, पृ० ७३ ।

माह[२]—संज्ञा पुं० [सं० माष, प्रा० माह] माष । उड़द ।

माह†[३]—संज्ञा पुं० [सं० माघ, प्रा० माह] माघ नाम का महीना । उ०—(क) गहली गरब न कीजिए समै सुहागहि पाय । जिय की जीवनि जेठ सो माह न छाहँ सुहाय ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) नाचैंगी निकसि शशिबदनी बिहँसि तहाँ को हमैं गनत मही माह में मचति सी ।—देव (शब्द०) ।

माहⓅ[४]—अव्य० [सं० मध्य] दे० 'माहँ' । उ०- सोहत अलक कपोल पर बढ़ छबि सिंधु अथाह । मनौ पारसी हरफ इक लसत आरसी माह ।—प० सप्तक, पृ० ३४६ ।

माह[५]—संज्ञा पुं० [देशी] कुंद का फूल [को०] ।

माहकस्थलक—वि० [सं०] १. माहकस्थली में रहनेवाला । २. माहकस्थली में उत्पन्न । ३. माहकस्थली संबंधी । माहकस्थली का ।

माहकस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम ।

माहकि—संज्ञा पुं० [सं०] महक नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष । २. एक आचार्य का नाम ।

माहजबीं—वि० [फ़ा०] प्रशस्त ललाटयुक्त । चाँद जैसा उज्वल । चाँद सा सुंदर । उ०—किसो माहजबीं माशूक की फुर्कत में बेकरार है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९२ ।

माहतⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० महत्ता] महत्व । महत्ता । बड़ाई ।

माहताब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चंद्रमा । २. दे० 'महताबी' । ३. चाँदनी । चंद्रिका । उ०—बगल में माहताब हो या आफताब, या साकी हो या शराब ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६७ ।

माहताबी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दे० 'महताबी' । २. एक प्रकार का कपड़ा जिसपर सूर्य, चंद्रादि की सुनहरी या रुपहली आकृतियाँ बनी रहती हैं । ३. आँगन में ऊँचा खुला हुआ चबूतरा जिसपर लोग चाँदनी में बैठते हैं । ४. तरबूज । ५. चकोतरा नीबू ।

माहन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण जो अबध्य होता है ।

माहनाⓅ – क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उमाहना' ।

माहनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० माहनामह्] मासिक पत्र ।

माहनीय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण ।

माहर[१]—संज्ञा पुं० [सं० माहिर (= इंद्र)] इंद्रायन । इनारू ।

मुहा०—माहर का फल = जो देखने में सुंदर हो, पर दुर्गुणों से भरा हो ।

माहर[२]—वि० [अ० माहिर] दे० 'माहिर' ।

माहरुख वि० [फ़ा०] चाँद की तरह मुखवाला । चंद्रानन [को०] ।

माहरू—वि० [फ़ा०] दे० 'माहरुख' ।

माहली संज्ञा पुं० [हिं० महल] १. वह पुरुष जो अंतःपुर में आता जाता हो । महली । खोजा । २ सेवक । दास । उ०—तुलसी सुभाइ कहै नहीं किए पच्छपात कौन ईस कियो, कीस भालु खास माहली ।—तुलसी (शब्द०) ।

माहवार[१] क्रि० वि० [फ़ा०] प्रतिमास । महीने महीने ।

माहवार[२]—वि० हर महीने का । मासिक ।

माहवार[३]—संज्ञा पुं० महीने का वेतन ।

माहवारी—वि० [फ़ा०] हर महीने का । मासिक ।

माहवाहⓅ†—वि० [सं० मह + बाहु] बड़े हाथोंवाला । उ०—धूप दान क्रीत राम माहवाह मोटा धरणी ।—रघु० रू०, पृ० २४७ ।

माहवो, माहवौ —अव्य० [सं० मध्य] बीच बीच में । उ०—माहवौ माहवौ मोह्यो आइ ।—दादू०, पृ० ६०१ ।

माहसोⓅ†—वि० [सं० महत्] महान् । बड़ा । उ०—परस, कदमां चली जुगत भवभूम पर, माहसो नदी भव भुगत मेलैं ।—रघु० रू०, पृ० २६० ।

माहाँⓅ†—अव्य [हिं०] दे० 'महँ' । उ०—दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४ ।

माहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय [को०] ।

माहाकुल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहाकुली] उच्च कुलोत्पन्न ऊँचे कुल में उत्पन्न [को०] ।

माहाकुलीन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहाकुलीनी] श्रेष्ठ कुल वा वंश का । माहाकुल [को०] ।

माहाजनिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहाजनिकी] १. महाजनों अर्थात् व्यापारियों के लिये उचित । २. महान् व्यक्तियों के लिये उचित । महाजनोचित [को०] ।

महाजनीन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहाजनीनी] दे० 'माहाजनिक' ।

माहात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. महिमा। गौरव। महत्व। बड़ाई। २. आदर। मान। ३. व्रत अथवा पूजनादि पुण्य उपाय (को०)। ४. पुण्य फलों का वर्णन करनेवाली रचना। जैसे, देवी माहात्म्य (को०)। ५. विशालता। उच्चता। दीर्घाकारिता (को०)।

माहानस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहानसी] १. बहुत बड़े शकट, यान वा रथ से संबंध रखनेवाला। २. भोजनागार संबंधी। रसोईघर का। रसोई विषयक [को०]।

माहानसिक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजनागार का प्रधान अधिकारी।

माहाना—क्रि० वि० [फ़ा० माहानह्] माहवार। मासिक [को०]।

माहाभटⓅ—संज्ञा पुं० [सं० माहा + भट] महाभट। अद्वितीय योद्धा। उ०—दिय बीसल बरदान कुष्ष उपजै माहाभट।—पृ० रा०, १।५८२।

माहाभाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाग्य। श्रेष्ठ भाग्य। अच्छी किस्मत [को०]।

माहायान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'महायान' [को०]।

माहाराजिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहाराजिकी] महाराज के योग्य। शाही [को०]।

माहाराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यपद। राजसत्ता। [को०]।

माहाराष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महाराष्ट्री' [को०]।

माहावतीⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० महावत] दे० 'महावत'। उ०—सुनहु सर्व माहावतिय, सब हस्ती लै आय।—प० रासो, पृ० १२६।

माहाव्रती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाशुपत सिद्धांत वा मत [को०]।

माहिँⓅ†—अव्य० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] १. भीतर। अंदर। उ०—कर कमान सर साँधिके खैंचि जो मारा माहिं। भीतर विधे सो मारि है जीव पै जीवै नाहिं।—कबीर (शब्द०)। २. अधिकरण कारक का चिह्न, में या पर।

माहिँलाⓅ—वि० [सं० मध्य] आभ्यंतर। भीतरी। उ०—जन दरिया सतगुर चवै देख माहिला भाव।—दरिया० बानी, पृ० ३।

माहिक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति।

माहित—संज्ञा पुं० [सं०] महित ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

माहित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक ऋषि का नाम।

माहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] महित ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

माहित्र—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति के अनुसार एक ऋचा का नाम।

माहिन[१]—वि० [सं०] १. आनंदपूर्ण। मोददायक। २. परम आदरणीय। तत्रभवान् [को०]।

माहिन[२]—संज्ञा पुं० राज्यसत्ता। राज्यशक्ति [को०]।

माहियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तत्व। भेद। २. प्रकृति। ३. विवरण।

माहियाना[१]—वि० [फ़ा० माहियानह्] माहवार।

माहियाना[२]—संज्ञा पुं० मासिक वेतन।

माहिर[१]—वि० [अ०] १. ज्ञाता। जानकार। तत्वज्ञ। उ०—सूधी सुधा सी सुभाय भरी पै, खरी रति केलि कलान में माहिर।—जवाहिर (शब्द०)। २. कुशल। निपुण। चतुर (को०)।

माहिर[२]—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

माहिलाⓅ—संज्ञा पुं० [अ० मल्लाह] माँझी। मल्लाह। उ०—कबिरा मन का माहिला अवला बहै असोस। देखत ही दह में पड़ै देइ किसी को दोस।—कबीर (शब्द०)।

माहिष[१]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० माहिषी] १. भैंस का (दूध आदि)। २. भैंस संबंधी।

माहिष[२]—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। जनानखाना। रनिवास [को०]।

माहिषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम। २. इस देश में रहनेवाली एक जाति का नाम। ३. भैंस आदि का पालक (को०)।

माहिषवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला विधारा। कृष्ण वृद्धदारक।

माहिषवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिरहटी।

माहिषस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

माहिषाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा गुग्गुल।

माहिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यभिचारिणी स्त्री का पति। २. भैंस से जीविका निर्वाह करनेवाला व्यक्ति। ३. वह व्यक्ति जो पत्नी के व्यभिचार द्वारा उपार्जित धन से जीविका निर्वाह करता हो (को०)।

माहिषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

माहिषेय—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टाभिषिक्त रानी या पटरानी का पुत्र। युवराज [को०]।

माहिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण देश के एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर का नाम।

विशेष—इसका उल्लेख पुराणों, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में आया है। यह माहिषमंडल नामक जनपद की राजधानी थी। पुराणों में इसे नर्मदा नदी के किनारे लिखा है। सहस्रार्जुन यहीं का रहनेवाला था। महाभारत में माहिष्मती और त्रिपुर का नाम साथ आया है। त्रिपुर को आजकल त्रिपुरी कहते हैं; पर माहिष्मती का अबतक ठीक पता नहीं है। पुरातत्वविद् कनिंघम साहब ने 'माहिषमंडल' के 'मंडल' शब्द को लेकर 'मंडला' नगर को माहिष्मती लिखा है।

माहिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों के अनुसार एक संकर जाति।

विशेष—याज्ञवल्क्य इसे क्षत्रिय पिता और वैश्या माता की औरस संतान मानते हैं। आश्वलायन इसे सुवर्ण नामक जाति से करण जाति की माता में उत्पन्न मानते हैं। सह्याद्रि खंड में इसको यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का वैश्यों के समान अधिकारी कहा है; पर आश्वलायन इसे यज्ञ करने का निषेध करते हैं। इस जाति के लोग अब तक बालि द्वीप में मिलते हैं और अपने को माहिष्य क्षत्रिय कहते हैं। संभवतः ये लोग किसी समय माहिष-मंडल देश के रहनेवाले होंगे।

माहीँⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'माहिं'। में। पर। उ०—बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

माही[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मछली। उ०—माही जल मृग के सु तृन सज्जन हित कर जीव। लुब्धक धीवर दुष्ट नर बिन कारन दुख कीव।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७५।

यौ०—माहीगीर। माहीपुश्त। माहीमरातिब।

माही[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० माहेय] दक्षिण देश की एक नदी का नाम जो खंभात की खाड़ी में गिरती है।

माहीगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मछली पकड़नेवाला। मछुवा।

माहीपुश्त[1]—वि० [फ़ा०] जो मछली की पीठ की तरह बीच में उभरा हुआ और किनारे किनारे ढालुआँ हो।

माहीपुश्त[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कारचोबी का काम जो बीच में उभरा हुआ और इधर उधर ढालुआँ होता है।

माहीमरातिब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राजाओं के आगे हाथी पर चलनेवाले सात झंडे जिनपर अलग अलग मछली, सातों ग्रहों आदि की आकृतियाँ कारचोबी की बनी होती हैं।

विशेष—इस प्रकार के झंडों का आरंभ मुसलमानों के राजत्व काल में हुआ था। (१) सूर्य, (२) पंजा, (३) तुला, (४) अजगर, (५) सूर्यमुखी, (६) मछली और (७) गोले, ये सात शकलें झंडों पर होती हैं।

माहीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'माहियत' [को०]।

माहीलाⓅ†—वि० [सं० मध्य] बिचला। मध्य का। बीच का। उ०—माहीलै कौये जीमणी अंषी कालौ तिल भमर जीसो।—बी० रासो, पृ० ७७।

माहुटⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'महावट'। उ०—नैन चुवहिं जस माहुट नीरू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५६।

माहुर—संज्ञा पुं० [सं० मधुर, प्रा० माहुर (=विष)] विष। जहर। उ०—(क) साँप बीछ को मंत्र है, माहुर झारे जाय। बिकट नारि के पाले परा काटि करेजा खाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—माहुर की गाँठ = (१) भारी विषैली वस्तु। (२) अत्यंत दुष्ट या कुटिल मनुष्य।

माहुल—संज्ञा पुं० [सं०] महुल के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

माहूँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा कीड़ा जो सरसों, राई आदि की फसल पर लगता है।

विशेष—यह कीड़ा राई, सरसों, मूली आदि की फसल में उनके डंठलों पर फूलने के समय या उसके पहले अंडे दे देता है, जिससे फसल नितांत हीन होकर नष्ट हो जाती है। यह काले रंग का परदार भुनगे के आकार का कीड़ा होता है और जाड़े के दिनों में फसल पर लगता है। यदि पानी बरस जाय तो ये कीड़े नष्ट हो जाते हैं। प्रायः अधिक बदली के दिनों में, जब पानी नहीं बरसता, ये कीड़े अंडे देते हैं और फसल के डंठलों पर फूलों के आसपास उत्पन्न हो जाते हैं। इसे माही, माहो आदि भी कहते हैं।

मुहा०—माहूँ लगना = माहूँ का फसल के हरे डंठल पर अंडे देना।

माहू—संज्ञा पुं० [देश०] कनसलाई नाम का बरसाती कीड़ा जो प्रायः कान में घुस जाता है। गिंजाई।

माहूदⓅ—वि० [अ०] जो दिल में नक्श हो। उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ।—कबीर मं०, पृ० १३४।

माहेंद्र[1]—वि० [सं० माहेन्द्र] [वि० स्त्री० माहेंद्री] १. जिसका देवता महेंद्र हो। २. महेंद्र संबंधी। इंद्र संबंधी।

माहेंद्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनियों के एक देवता जो कल्पभव नामक वैमानिक देवगण में है। २. एक अस्त्र का नाम। ३. वार के अनुसार भिन्न भिन्न दंडों में पड़नेवाला एक योग जिसमें यात्रा करने का विधान है।

विशेष—यह योग प्रति वार को क्रमानुसार पंद्रह बार आता है। प्रतिदिन के दंडों में ये चार चार योग भिन्न भिन्न क्रम से आते रहते हैं—माहेंद्र, वरुण, वायु और यम। ये चारों योग सप्ताह के प्रतिदिन इस प्रकार आया करते हैं—

दिन	प्रथम दंड	द्वितीय दंड	तृतीय दंड	चतुर्थ दंड
रवि	वायु	वरुण	यम	माहेंद्र
चंद्र	माहेंद्र	वायु	वरुण	यम
भौम	वरुण	यम	माहेंद्र	वायु
बुध	माहेंद्र	वायु	वरुण	यम
गुरु	वायु	वरुण	यम	माहेंद्र
शुक्र	माहेंद्र	वायु	यम	वरुण
शनि	यम	माहेंद्र	वायु	वरुण

इन चारों योगों में माहेंद्र योग विजयकारक, वरुण धनप्रद, वायु नित्य फिरानेवाला और यम मृत्युदायक कहा जाता है।

४. सुश्रुत के अनुसार एक देवग्रह जिसके आक्रमण करने से ग्रहग्रस्त पुरुष में माहात्म्य, शौर्य, शास्त्रबुद्धिता, भृत्यभरण आदि गुण एकाएक आ जाते हैं। ५. जैनों के अनुसार चौथे स्वर्ग का नाम।

माहेंद्रवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० माहेन्द्रवाणी] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

माहेंद्री—संज्ञा स्त्री० [सं० माहेन्द्री] १. इंद्राणी। २. गाय। ३. इंद्रायन। ४. सात मातृकाओं में से एक। यह स्कंद की अनुचरी है। ५. इंद्र की शक्ति। ६. पूर्व दिशा (को०)।

माहेताबा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिलमची।

माहेय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० माहेयी] मिट्टी का बना हुआ।

माहेय[2]—संज्ञा पुं० १. मूँगा। विद्रुम। २. मंगल ग्रह (को०)। ३. पृथ्वी का पुत्र। नरकासुर (को०)।

माहेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाय। २. माही नदी।

माहेल—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

माहेश—वि० [सं०] महेश संबंधी। महेश का।

माहेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

माहेश्वर[1]—वि० [सं०] महेश्वर संबंधी । महेश्वर का ।

माहेश्वर[2]—संज्ञा पुं० १. एक यज्ञ का नाम । २. एक उपपुराण का नाम । ३. पाणिनि के वे चौदह सूत्र जिनमें स्वर और व्यंजन वर्णों का संग्रह प्रत्याहारार्थ किया गया है ।

विशेष—इसके विषय में लोगों का विश्वास है कि ये सूत्र शिव जी के तांडवनृत्य के समय उनके डमरू से निकले थे । सूत्र ये हैं— अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ।

४. शैव संप्रदाय का एक भेद । ५. एक अस्त्र का नाम । माहेश्वरास्त्र ।

माहेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. एक मातृका का नाम । ३. एक पीठ का नाम । ४. यवतिक्ता । शंखिनी लता (को०) । ५. एक नदी का नाम । ६. वैश्यों की एक जाति ।

माहेहिंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० **माह** ए **हिंद**] १. भारतीय चंद्रमा । भारतेंदु । हिंदुस्तान का चाँद । २. एक संमानपूर्ण खिताब जो हरिश्चंद्र जी को दिया गया था । उ०— यथार्थ खिताब 'माहेहिंद' अर्थात् भारतेंदु पद प्रदान किया ।—प्रेमघन०, भा० २, ६३ ।

माहों†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'माहूँ' ।

मिंगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मँगनी' ।

मिंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मींगी' । उ०—सिंगी की मिंगी करि डारी पारासर के उदर बिदार ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २२ ।

मिंजारी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मार्जारी**] बिल्ली । उ०—मूसै मिंजारी वशि कीनी । नानक गुर मिलि उलटी चीनी ।—प्राण०, पृ० १३६ ।

मिंट[1]—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह स्थान जहाँ सिक्के ढलते हों । टकसाल । २. एक प्रकार का बढ़िया सोना । टकसाली सोना ।

मिंट†[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० **मिनट**] दे० 'मिनट' ।

मिंडवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मेड़**] दे० 'मेंड़' । उ०—इंद्र के बरषत जल भरि भारी । ढूरि फूरि गई सब मिंडवारी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६० ।

मिँड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मींड़ना**] १. मींडने या मींजने की क्रिया या भाव । २. मींडने की मजदूरी । ३. देशी छींट की छपाई में एक क्रिया जो कपड़े को छापने के उपरांत और धोने से पहली होती है ।

विशेष—इसके लिये पानी से भरी एक नाँद में कुछ रेंड़ी का तेल और बकरी की मेंगनी तथा दो एक और मसाले डाले जाते हैं; और उसमें छापा हुआ कपड़ा तीन चार दिन तक भिगोया जाता है । आवश्यकता पड़ने पर यह क्रिया दो तीन बार भी की जाती है । नाँद में से निकालकर कपड़ा धोबी के यहाँ भेजा जाता है । इससे छींट का रंग पक्का और चमकदार हो जाता है । इसे तेल चलाई भी कहते हैं ।

मिंत(५)†—संज्ञा पुं० [सं० **मित्र**] दे० 'मित्र' । उ०—(क) आली औरे मिंत को मेरो मिट्यो मिलाप ।—मतिराम (शब्द०) । (ख) तू हेरे भीतर सौं मिंता । सोई करै जेहि लहै न चिंता ।—जायसी (शब्द०) ।

मिंदर(५)†—संज्ञा पुं० [सं० **मन्दिर**] दे० 'मंदिर' । उ०—त्रुगुटी मिंदर बैठा साधो वहाँ जाय दरसन कीजै ।—रामानंद०, पृ० २८ ।

मिंबर—संज्ञा पुं० [अ० **मेंबर**] दे० 'मेंबर' । उ०—राजा करो, रायबहादुर करो, कौंसिल का मिंबर करो हम तुमको प्रणाम करते हैं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५७ ।

मिंमिण—संज्ञा पुं० [सं० **मिण्मिण**] एक प्रकार का रोग । नकियाकर बोलना । उ०—मिंमिण कहिए गिनगिनाय कर नाक से बोले । यह भी रोग है ।—माधव०, पृ० १४४ ।

मिँहदी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेन्धिका**] दे० 'मेहँदी' ।

मिआद—संज्ञा स्त्री० [अ० **मीआद**] दे० 'मीआद' ।

मिआदी—वि० [हिं०] दे० 'मीआदी' ।

मिआन[1]—वि० [हिं० **मियाना**] दे० 'मियाना[1]' ।

मिआन[2]—संज्ञा पुं० दे० 'मियाना[2]' ।

मिकद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मिकअद**] मलद्वार । गुदा ।

मिकदार—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिक़दार**] परिमाण । मात्रा । मान । जैसे,—यह दवा ज्यादा मिकदार में नहीं खानी चाहिए ।

मिकनातीस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चुंबक पत्थर ।

मिकराज—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिक़राज़, मिक्राज़**] कर्तनी । कतरनी । कैंची [को०] ।

मिकराजा—संज्ञा पुं० [अ० **मिक़राज़ह्**] १. वह तीर जिसके फल में दो गाँसे हों । २. एक प्रकार की मिठाई । ३. कुश्ती का एक दाँव । कैंची ।

मिकाडो—संज्ञा पुं० [जा०] जापान के सम्राट् की उपाधि ।

मिक्सचर—संज्ञा पुं० [अं०] ऐसी तरल औषध जिसमें कई ओषधियाँ मिली हों । मिश्रित औषध । जैसे, क्विनाइन मिक्सचर ।

मिग(५)—संज्ञा पुं० [सं० **मृग**, प्रा० **मिग**] मृग । हिरन ।

मिगस्सर(५)†—संज्ञा पुं० [सं० **मृगशीर्ष**] दे० 'मार्गशीर्ष' । उ०—मास मिगस्सर द्वादशी, इल पुड़ पख अँधियार ।—रा० रू०, पृ० २२८ ।

मिचकना†—क्रि० अ० [हिं० **मिचना**] १. (आँखों का) बार बार खुलना और बंद होना । २. (पलकों का) झपकना या बंद होना ।

मिचकाना†—क्रि० स० [हिं० **मिचना**] १. बार बार (आँखें) खोलना और बंद करना । २. (पलक) झपकाना या बंद करके दबाना । जैसे, आँखें मिचकाना ।

संयो० क्रि०—देना । लेना ।

मिचकी(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिचना**] पलकों की झपकी । पलकों का मिचना । उ०—मधुर मिसमिसी सों मिचकी दै, जाहि हिलावन ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८६५ ।

मिचना—क्रि० अ० [हिं० **मीचना का अक० रूप**] (आँखों का) बंद होना। जैसे,—मारे नींद के आँखें मिची जाती हैं।

मिचराना[1]—क्रि० अ० [**मिचर, चाबने के शब्द से अनु०**] बिना भूख के खाना। इच्छा न होने पर भी भोजन करना।

विशेष—बहुत धीरे धीरे खाने पर विशेषतः बालकों के संबंध में बोलते हैं।

मिचराना†[2]—क्रि० अ० [हिं० **मिचलाना**, दे० 'मिचलाना'। उ०—जाइ मो मैं डारत ही मो चिपचिपावे लगो और जी मिचराइ कै उल्टी आइ गई।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४२।

मिचलाना—क्रि० अ० [हिं० **मथना, मतलाना**] कै आने को होना। उबकाई आना। मतली आना।

मिचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिचलाना**] जी मिचलाने की क्रिया या भाव। कै होने की इच्छा।

मिचवाना—क्रि० स० [हिं० **मीचना का प्रे०रूप**] मीचने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मीचने में प्रवृत्त करना। दूसरे से आँखे बंद कराना।

मिचिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

मिचु†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृत्यु**, प्रा० **मिच्चु**] मृत्यु। मौत।

मिचौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीचना**] १. (आँख) १. मीचने की क्रिया। २. दे० 'आँखमिचौली'। उ०—हुई बहुत दिन खेल मिचौनी।—निशा०, पृ० ६६।

मिचौलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मीचना'।

मिचौली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मींचना**] दे० 'आँखमिचौली'।

मिचौहाँⓅ—वि० [हिं० **मीचना**] आधा मुँदा हुआ। अधमुँदा। उ०—झपकौहें पल देखियतु कहत हँसौहै बैन। अलसौहैं सौ गात कत करत मिचौहैं नैन।—स० सप्तक, पृ० ३८७।

मिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध स्थविर का नाम।

मिछⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **म्लेच्छ**] दे० 'म्लेच्छ'। उ०—कहै दूत प्रथिराज सम मिछ सेना बरजोर। सहर निकसि बाहर भए बंब बज्जि घनघोर।—पृ० रा०, १३।२६।

मिछाⓅ†—वि० [सं० **मृषा**] दे० 'मिथ्या'।

मिजमानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मेज़बान**] महमानदारी। मेजबानी। उ०—रानिय आई मल्हन दे, बहु मिजमानिय कीन।—प० रासो, पृ० ६८।

मिजराब—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिज़राब**] तार का बना हुआ एक प्रकार का छल्ला जिसमें मुड़े तार की एक नोक आगे निकली रहती है और जिससे सितार आदि के तार पर आघात करके बजाते हैं। डंका। कोण। नाखुना।

मिजवानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मेजबानी**] दे० 'मेजबानी'।

मिजाज—संज्ञा पुं० [अ० **मिज़ाज**] १. किसी पदार्थ का वह मूल गुण जो सदा बना रहे। तासीर। २. प्राणी की प्रधान प्रवृत्ति। स्वभाव। प्रकृति। जैसे,—उनका मिजाज बहुत सख्त है; वे बात बात पर बिगड़ जाते हैं। ३. शरीर या मन की दशा। तबीयत। दिल।

यौ०—**मिजाज आली**। **मिजाज शरीफ**। **मिजाज पुरसी**।

मुहा०—**मिजाज खराब होना** = (१) मन में किसी प्रकार की अप्रसन्नता आदि उत्पन्न होना। ग्लानि आदि होना। (२) अस्वस्थता होना। **मिजाज बिगड़ना** = दे० 'मिजाज खराब होना'। **मिजाज बिगाड़ना** = किसी के मन में क्रोध, अभिमान आदि मनोविकार उत्पन्न करना। **मिजाज पाना** = (१) किसी के स्वभाव से परिचित होना। (२) किसी को अनुकूल या प्रसन्न देखना। **मिजाज पूछना** = (१) तबीयत का हाल पूछना। यह पूछना कि आपका शरीर तो अच्छा है। (२) अच्छी तरह खबर लेना। दंड देना। **मिजाज में आना** = ध्यान में आना। समझ में आना। जैसे,—अगर आपके मिजाज में आवे तो आप भी वहाँ चलिए। **मिजाज सीधा होना** = अनुकूल या प्रसन्न होना। तबीयत ठिकाने होना।

४. अभिमान। घमंड। शेखी।

मुहा०—**मिजाज आना** = अभिमान करना। घमंड होना। **मिजाज में आना** = अभिमान करना। घमंड करना। जैसे,—इस वक्त कुछ न पूछो, आप मिजाज में आ गए हैं। **मिजाज मिलना** = घमंड दूर होना। वशवर्ती होना। उ०—चंगुल तर चिचियैहो हो, तब मिलिहैं मिजाज।—पलटू०, भा० ३, पृ० १६। **मिजाज न मिलना** = अभिमान के कारण किसी का अलग रहना। घमंड के कारण बात न करना। जैसे,—आजकल तो आपके मिजाज नहीं मिलते। (**विशेष**—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में होता है।) **मिजाज सातवें आसमान पर होना** = घमंड का बहुत अधिक बढ़ जाना। **मिज़ाज होना** = घमंड में होना। घमंड में आना।

यौ०—**मिजाजदाँ**। **मिजाजदार**। **मिजाजवाला** = मिजाजदार। **मिजाजशनास** = मिजाजदाँ। **मिजाजशनासी** = स्वभाव जानना।

मिजाज आली?—[अ० **मिज़ाज** आली] एक वाक्यांश जिसका व्यवहार किसी का शारीरिक कुशल मंगल पूछने के समय होता है। आप अच्छे तो हैं ?

मिजाजदाँ—वि० [अ० **मिज़ाज** + फ़ा० **दाँ** (प्रत्य०)] मिजाज पहचाननेवाला। स्वभाव से परिचित [को०]।

मिजाजदार—वि० [अ० **मिज़ाज** + फ़ा० **दार** (प्रत्य०)] जिसे बहुत अभिमान हो। घमंडी।

मिजाजपीटा—वि० [अ० **मिज़ाज** + हिं० **पीटना**] [वि० स्त्री० मिजाजपीटी] जिसे बहुत अधिक घमंड हो। अभिमानी। घमंडी। (स्त्री०)।

मिजाजपुरसी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिज़ाज** + फ़ा० **पुरसी**] किसी से यह पूछना कि आपका मिजाज तो अच्छा है। तबीयत का हाल पूछना। शारीरिक कुशल मंगल पूछना।

मिजाज शरीफ?—[अ० **मिज़ाज शरीफ**] एक वाक्यांश जिसका

व्यवहार किसी का शारीरिक कुशल मंगल पूछने के लिये होता है। आप अच्छे तो हैं ? आप सकुशल तो हैं ?

मिजाजी—वि० [अ० मिज़ाज+ई (प्रत्य०)] बहुत अधिक मिजाज करने या रखनेवाला। अभिमानी। घमंडी।

मिजाजो†—वि० स्त्री० [अ० मिज़ाज+ओ (प्रत्य०)] घमंडी। अभिमानो।

मिजालूⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मज्जा] मज्जा। चर्बी। उ०—चांम ही चांम घसंतां गुरदेव दिन दिन छीजे काया। होठ कंठ तालुका सोषी काढ़ि मिजालू खाया।—गोरख०, पृ० १४५।

मिझमाणⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० मेहमान] दे० 'मेहमान'। उ०—मोहन उदमाद्या जी म्हाँरे आया छै मिझमान।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६५।

मिझमानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेहमानी] दे० 'मेहमानी'। उ०—ठानी मिझमानी जब दुर्योधन माधव की, बाजी गजराज निजराने को बने रहे।—राम० धर्म०, पृ० २७१।

मिझोना†—संज्ञा पुं० [सं० मध्य, पु० हिं० माँझ] वह खूँटी जो हल में बेड़े बल में लगी हुई लकड़ी के बीच में रहती है। (बुंदेल०)।

मिटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मटका'।

मिटना—क्रि० अ० [सं० मृष्ट, प्रा० मिठ्ठ] १. किसी अंकित चिह्न आदि का न रह जाना। जैसे,—इस पन्ने के कई अक्षर मिट गए हैं। २. नष्ट हो जाना। न रह जाना। ३. खराब होना। बरबाद होना। जैसे, घर मिटना। ४. रद्द होना। जैसे, बिधाता का लेख मिटना।

संयो० क्रि०—जाना।

मिटाना—क्रि० स० [हिं० मिटना का सक० रूप] १. रेखा, दाग, चिह्न आदि का दूर करना। उ०—कर्म रेख नहि मिटे मिटाई।—कबीर सा०, पृ० ६६०। २. नष्ट करना। न रहने देना। दूर करना। उ०—ताकर तोहि भेद समझाऊँ, मनोकामना सकल मिटाऊँ।—कबीर सा०, पृ० १००६। ३. खराब करना। चौपट करना। बरबाद करना। ४. रद्द करना।

संयो० क्रि०—जाना।—देना।

मिटिया†[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेटा+इया (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा बरतन जिसमें प्रायः दूध आदि रखा जाता है। मटकी।

मिटिया[२]—वि० [हिं० मिट्टी+इया (प्रत्य०)] मिट्टी का।

मिटियाना—क्रि० स० [हिं० मिट्टी+आना (प्रत्य०)] मिट्टी लगाकर साफ करना, रगड़ना या चिकना करना। जैसे, लोटा मिटियाना।

मिटियाफूस—वि० [हिं० मिटिया+फूस] जो कुछ भी दृढ़ न हो। बहुत ही कमजोर।

मिटियामहल—संज्ञा पुं० [हिं० मिटिया+फ़ा० महल] मिट्टी का मकान। झोपड़ी। (व्यंग्य)।

मिटियासाँप—संज्ञा पुं० [हिं० मिटिया+साँप] मटमैले रंग का एक प्रकार का साँप जिसके ऊपर काले रंग की चित्तियाँ होती हैं।

मिटिहाⓅ—वि० [हिं० मिट्टी+हा (प्रत्य०)] मिट्टी का। मिट्टी-वाला। उ०—कची दिवाल मिटिहा मंदिर कंचन कलई लागा। खोदत खाक जाक सब भूलेव पाक भया नहिं कागा।—संत० दरिया, पृ० १२३।

मिट्टनाⓅ क्रि० अ०, स० [हिं० मिटना] दे० 'मिटना'। उ०—(क) यह कह करि द्विजराज चलि फेरि रोकि कहि नारि। म्हाँ कलंक को मिट्टइय उड़पति कहहु विचारि।—पृ० रासो, पृ० १०। २. दे० 'मिटना'। उ०—तिहिं परसि ताप मिट्टत सरीर।—ह० रासो, पृ० १६।

मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्तिका, प्रा० मिट्टिआ] १. पृथ्वी। भूमि। जमीन। जैसे,—जो चीज मिट्टी से बनती है, वह मिट्टी में ही मिल जाती है।

मुहा०—**मिट्टी पकड़ना** = जमीन पर दृढ़तापूर्वक जम जाना।

२. वह भुरभुरा पदार्थ जो पृथ्वी के ठोस विभाग अथवा स्थल में साधारणतः सब जगह पाया जाता है और जो ऊपरी तल की प्रधान वस्तु है। खाक। धूल।

मुहा०—**मिट्टी करना** = नष्ट करना। खराब करना। चौपट करना। जैसे, रुपया मिट्टी करना, इज्जत मिट्टी करना, शरीर मिट्टी करना, कपड़े मिट्टी करना। **मिट्टी के मोल** = बहुत सस्ता। बहुत ही थोड़े मूल्य पर। जैसे—वह मकान तो मिट्टी के मोल बिक रहा है। **मिट्टी डालना** = (१) किसी बात को जाने देना। छोड़ देना। (२) किसी के दोष छिपाना। परदा डालना। (३) एक प्रकार का प्रयोग जिसमें किसी की कोई छोटी मोटी चीज, विशेषतः गहना आदि, खो जाने पर सब लोग एक स्थान पर जाकर थोड़ी थोड़ी मिट्टी डाल आते हैं। इस प्रकार कभी कभी चुरानेवाला भी भयवश अथवा और किसी कारण से चुराई हुई चीज उसी मिट्टी के साथ वहाँ रख आता है, जिससे मालिक को चीज तो मिल जाती है और यह नहीं प्रकट होने पाता कि कौन चोर है। **मिट्टी डलवाना** = चोरी गई हुई चीज का पता लगाने के लिये लोगों से किसी स्थान पर मिट्टी डालने के लिये कहना। विशेष दे० 'मिट्टी डालना'। **मिट्टी देना** = (१) मुसलमानों में किसी के मरने पर सब लोगों का उसकी कब्र में तीन तीन मुट्ठी मिट्टी डालना जो पुण्य कार्य समझा जाता है। (२) कब्र में गाड़ना। (मुसल०)। **मिट्टी पकड़े या छूए सोना होना** = भाग्य का प्रबल होना। सितारा चमकना। साधारण काम में भी विशेष लाभ होना। **मिट्टी में मिलना** = (१) नष्ट होना। चौपट होना। खराब होना। (२) मरना। **मिट्टी में मिलाना** = नष्ट करना। चौपट करना। बरबाद करना **मिट्टी होना** = (१) नष्ट होना। खराब होना। (२) गंदा या मैला कुचैला होना।

यौ०—**मिट्टी का पुतला** = मानव शरीर। **मिट्टी की सूरत** = मानव शरीर। **मिट्टी के माधव** = मूर्ख बेवकूफ। भोंदू। **मिट्टी खराबी** = (१) दुर्दशा। (२) बरबादी। नाश।

३. किसी चीज को जलाकर तैयार की हुई राख। भस्म। जैसे, पारे की मिट्टी। सोने की मिट्टी। ४. कुछ विशेष प्रकार की

अथवा साफ की हुई मिट्टी जो भिन्न भिन्न कामों में आती है। जैसे, मुलतानी मिट्टी, पीली मिट्टी। ५. शरीर। जिस्म। बदन।

मुहा०—किसी की मिट्टी पलीद या बरबाद करना = दुर्दशा करना। खराबी करना। (इस अर्थ में मुहावरा अर्थ सं० ६ के साथ भी लगता है। **मिट्टी खराब करना** = बर्बाद करना। रूप बिगाड़ना। उ०—लोग कजली की मिट्टी खराब कर रहे हैं। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

६. शव। लाश।

मुहा०- मिट्टी उठना = शव को अंत्येष्टि के लिये ले जाना। जनाजा उठना। **मिट्टी ठिकाने लगना** = शव की उचित अंत्येष्टि क्रिया होना। **मिट्टी ठिकाने लगाना** = शव की उचित अंत्येष्टि क्रिया करना।

७. खाने का गोश्त। मांस। कलिया। (क्व०)। ८. शारीरिक गठन। बदन की बनावट। जैसे,—उसकी मिट्टी बहुत अच्छी है; साठ वर्ष का होने पर भी जवान जान पड़ता है।

मुहा०—मिट्टी ढह जाना = शरीर में बुढ़ापे के चिह्न दिखाई देना।

९. चंदन की जमीन जो इत्र में दी जाती है।

मिट्टी का तेल—संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी + का + तेल] एक प्रसिद्ध ज्वलनशील, खनिज, तरल पदार्थ जिसका व्यवहार प्रायः सारे संसार में दीपक आदि जलाने और प्रकाश करने के लिये होता है।

विशेष—यह संसार के भिन्न भिन्न भागों में जमीन के अंदर पाया जाता है। कभी कभी तो जमीन में आपसे आप दरारें पड़ जाती हैं जिनमें से यह तेल निकलने लगता है, और इस प्रकार वहाँ इसके चश्मे बन जाते हैं। पर प्रायः यह जमीन में बड़े बड़े सूराख या छिद्र करके पिचकारी की तरह बड़े बड़े यंत्रों की सहायता से ही निकाला जाता है। कभी कभी यह जमीन के अंदर गैसों के जोर करने के कारण भी अपने आप फूट पड़ता है। कुछ लोग कहते हैं, जमीन के अंदर जो लौह मिश्रित बहुत गरम कारबाइड होता है, उसपर जल पड़ने से यह तैयार होता है, और कुछ लोगों का मत है कि जमीन के अंदर अनेक प्रकार के जीवों के मृतक शरीरों के सड़ने से यह तैयार होता है। एक मत यह भी है कि इसकी उत्पत्ति का संबंध नमक की उत्पत्ति से है क्योंकि अनेक स्थानों में यह नमक की खान के पास ही पाया जाता है। इसी प्रकार इसकी उत्पत्ति के संबंध में और भी अनेक मत हैं। अमेरिका के संयुक्त राज्यों तथा रूस में इसकी खानें बहुत अधिक हैं और इन्हीं दोनों देशों में सबसे अधिक मिट्टी का तेल निकलता है। भारत में इसकी खानें या तो पंजाब और बलोचिस्तान की ओर हैं या आसाम और बरमा की ओर। परंतु पश्चिमी प्रांतों से अभी तक बहुत थोड़ा तेल निकाला जाता है और पूर्वी प्रांतों से अपेक्षाकृत अधिक। इधर गुजरात तथा कच्छ आदि में भी इसकी प्राप्ति हो रही है। अरब देशों में यह रेगिस्तान के नीचे मिला है और समुद्र तल के नीचे भी यह प्राप्त हुआ है। बहुत बढ़िया तेल का रंग सफेद और स्वच्छ जल के समान होता है; पर साधारण तेल का रंग कुछ लाली या नीलापन लिए और घटिया तेल का रंग प्रायः काला होता है। बढ़िया साफ किया हुआ तेल पतला और घटिया तेल गाढ़ा होता है। प्रकाश करने के अतिरिक्त इसका उपयोग छोटे इंजन चलाने, गैस तैयार करने, अनेक प्रकार के तेलों और वारनिशों आदि को गलाने और मोमबत्तियाँ आदि बनाने में होता है। इसमें एक प्रकार की उग्र और अप्रिय गंध होती है। थोड़ी मात्रा में जबान पर लगने या गले के नीचे उतरने पर यह कै लाता है; और अधिक मात्रा में भीषण विष का काम करता है। मोटरों आदि में जो पेट्रोलियम जलाया जाता है, वह भी इसी का एक भेद है।

मिट्टी का फूल—संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी + फूल] मिट्टी या जमीन के ऊपर जम आनेवाला एक प्रकार का छार जिसका व्यवहार कपड़ा धोने और शीशा बनाने में होता है। रेह।

मिट्टी खरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिट्टी + खड़िया] दे० 'खड़िया'।

मिट्ठा†—वि०, संज्ञा पुं० [सं० मिष्ट] दे० 'मीठा'। उ०—देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तं तैसन जंपओं अवहट्ठा।—कीर्ति०, पृ० ६।

मिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मीठा] चुंबन। चूमा। (इस शब्द का व्यवहार स्त्रियाँ प्रायः छोटे बालकों के साथ करती हैं)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मिट्ठू¹—संज्ञा पुं० [हिं० मीठा + ऊ (प्रत्य०)] १. मधुरभाषी। मीठा बोलनेवाला। २. तोता।

मुहा०—अपने मुँह आप मियाँ मिट्ठू बनना = अपनी प्रशंसा आप करना। अपने मुँह से अपनी बड़ाई करना।

मिट्ठू²—वि० १. चुप रहनेवाला। न बोलनेवाला। २. प्रिय बोलनेवाला। मधुरभाषी।

मिट्ठू³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिट्टी'।

मिट्ठा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिट्टी'।

मिठ—वि० [हिं० मीठा] मीठा का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार प्रायः यौगिक बनाने के लिये होता है और जो किसी शब्द के पहले जोड़ा जाता है। जैसे, मिठलोना, मिठबोला।

मिठबोलना—संज्ञा पुं० [हिं० मीठा + बोलना] दे० 'मिठबोला'।

मिठबोला—संज्ञा पुं० [हिं० मीठा + बोलना] १. वह जो मीठी मीठी बातें करता हो। मधुरभाषी। उ०—रामेसरी का घरवाला अच्छा पंडित था, नेकनीयत और मिठबोला।—नई०, पृ० २३ २. वह जो मन में कपट रखकर मीठी मीठी बातें करता हो।

मिठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मठरी'।

मिठलोना—संज्ञा पुं० [हिं० मीठा(= कम) + लोन(= नोन)] वह जिसमें बहुत ही कम नमक हो। थोड़े नमकवाला।

मिठहा—वि० [हिं० मीठा + हा (प्रत्य०)] अधिक मीठा खानेवाला।

मिठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मीठा + आई (प्रत्य०)] १. मीठा होने का

भाव। मिठास। माधुरी। २. कोई खाने की मीठी चीज। जैसे लड्डू, पेड़ा, बरफी, जलेबी आदि।

मुहा०—**मिठाई चढ़ना** = मनोवांछित कार्य पूरा होने पर पहले से संकल्पित मिठाई किसी देवता को अर्पित करना। **मिठाई बाँटना** = मनोवांछित कार्य पूरा होने पर प्रसन्नतास्वरूप मिठाई बाँटना। **अधिक मिठाई में कीड़े पड़ते हैं** = आवश्यकता से अधिक प्रेम होने पर उस प्रेम में बाधाएँ आती हैं। जो प्रेम आवश्यकता से अधिक होता है, वही खराब होता है। **गई नारि जो खाई मिठाई** = यदि स्त्री मिठबोली और उदार स्वभाव की है, तो उसके सतीत्व खो बैठने या हानि उठाने की संभावना रहती है। (लोकोक्ति)।

३. कोई अच्छा पदार्थ या बात।

मिठाना—क्रि० अ० [हिं० **मीठा + आना** (प्रत्य०)] मीठा होना। मधुर होना। उ०—मारचौ मनुहारिन भरी, गारचौ खरी मिठाहिं। वाकौ अति अनखाहटौ, मुसकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी (शब्द०)।

मिठास—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठा + आस** (प्रत्य०)] मीठा होने का भाव। मीठापन। माधुर्य। जैसे,—इसकी मिठास तो बिलकुल मिसरी के समान है।

मिठौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठा + बरी**] पीसे हुए उड़द या चने की बनी हुई बरी।

मिडना(पु)—क्रि० अ० [हिं० **मींड़ना**] १. मला जाना। मसला जाना। उ०—सुमन सेज तें लगि रहे सुंदरि तेरे गात। सुरभित ह्वै मिडि के भए मृदुलनाल जलजात।—शकुंतला, पृ० ५४। २. चिपकना। लग जाना। उ०—घनआनँद ऐंड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डगै।—घनानंद, पृ० १४।

मिड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिड़ाई'।

मिडिल[1]—वि० [अं०] किसी पदार्थ का मध्य। बीच।

मिडिल[2] संज्ञा पुं० शिक्षाक्रम में एक छोटी कक्षा या दरजा जो स्कूल के अंतिम दर्जे इंट्रेंस से छोटा होता था।

विशेष—अब यह नाम प्रचलित नहीं है। मिडिल स्कूलों को अब जूनियर हाई स्कूलों में बदल दिया गया है।

मिडिलची—संज्ञा पुं० [हिं० मिडिल + **ची** (प्रत्य०)] वह जो मिडिल परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ हो। मिडिल पास (उपेक्षा०)।

मिडिल स्कूल—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्कूल या विद्यालय जिसमें केवल मिडिल तक की पढ़ाई होती हो।

मिढुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ी] मढ़ी। कुटी। मढ़िया।

मिण(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मणि'। उ०—सिर राखै मिण, सांमध्रम, रीझै सिंधू राग।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७।

यौ०—**मिणधारी** = मणि को धारण करनेवाला। मुख्य। उ०—मांगलियौ सुंदर मिणधारी।—रा० रू०, पृ० १४०। **मिणियड़** = मनियर। मणिवाला। प्रधान। मुख्य। उ०—मिणियड़ दल मेले धर मंगल—रा० रू०, पृ० ३१४।

मितंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मितङ्गम**] हाथी।

मितंगम[1]—वि० धीरे धीरे चलनेवाला। मंदगामी।

मितंगम[2]—संज्ञा पुं० हाथी [को०]।

मितंपच—वि० [सं० **मितम्पच**] १. नपा तुला पकानेवाला। थोड़ी मात्रा में अन्न पकानेवाला। २. लघु या छोटे आकार का (बर्तन)। ३. मितव्ययी। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

मित[1]—वि० [सं०] १. जो सीमा के अंदर हो। नपातुला। परिमित। २. थोड़ा। कम। जैसे,—मितव्ययी, मितभाषी। ३. फेंका हुआ। क्षिप्त।

मित(पु)—संज्ञा स्त्री० परिमाण। सीमा।

मितऊ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मित्र**] मीत। साजन। प्रियतम। उ०—मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो।—धरम० श०, पृ० १२।

मितद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

मितन्नी—संज्ञा स्त्री० [?] प्रागैतिहासिक आर्य जाति जो मध्य एशिया में थी। उ०—हाल में ही पच्छिम एशिया के बोगजक्वाई नामक स्थान पर मितन्नी लेख मिले हैं जो ई० पू० १४०० के हैं और जिनमें वैदिक देवताओं का उल्लेख है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २७।

मितपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **मीत + पन** (प्रत्य०)] मित्रता। स्नेह। प्रेम। उ०—मोहन लाल कहत राधा सों मेरें तो तुम ही सों मितपन।—छीत०, पृ० ६२।

मितभाषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संयमित होकर बोलना। समझ बूझ के साथ थोड़ा बोलने की क्रिया। उ०—शिष्टता, नम्रता, सरलता, मितभाषिता, अतिथिप्रियता आदि उसके गुणों की ख्याति भारत में ही नहीं, प्रत्युत इंग्लिस्तान आदि सुदूरवर्ती देशों तक फैली हुई है।—राज० इति०, पृ० ११७०।

मितभाषी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मितभाषिन्**] [स्त्री० **मितभाषिणी**] १. वह जो बहुत कम बोलता हो। थोड़ा बोलनेवाला। २. समझ बूझकर बात कहनेवाला।

मितभुक्त—वि० [सं०] दे० 'मितभोजी'।

मितभोजी—वि० [सं० **मितभोजिन्**] कम खानेवाला। अल्प आहार करनेवाला [को०]।

मितमति(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें बहुत कम बुद्धि हो। थोड़ी बुद्धिवाला।

मितराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मित्र** + हिं० **आई** (प्रत्य०)] मित्रता। मिताई। उ०—झूठी बात करे लबराई। तासों हेतु करै मितराई।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

मितविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार माप कर पदार्थ बेचना।

मितलो—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिचलो'। उ०—उसके मन में मितली भी होने लगी।—सुनीता, पृ० ६३।

मितव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] कम खर्च करना। किफायत।

मितव्ययिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कम खर्च करने का भाव। उ०—रूप चयन, अवयव संयोजन, शक्ति व्यंजना इंगित, सूक्ष्म मितव्ययिता करते अद्‌भुत प्रभाव संवर्धन।—अतिमा, पृ० १०३।

मितव्ययी—संज्ञा पुं० [सं० **मितव्ययिन्**] वह जो कम खर्च करता हो। किफायत करनेवाला।

मिताइया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिताई'। उ०—पाहन ह्वै ह्वै सब गए, बिनि भितियन के चित्र। जासो कियो मिताइया, सो धन भया न हित्र।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० २१५।

मिताईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मित्र**, हिं० **मीत+आई** (प्रत्य०)] मित्रता। दोस्ती। उ०—मन मतंग मारि दे तैं, तोरि दे मिताई।—जग० श०, पृ० १२२।

मिताक्षरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याज्ञवल्क्य स्मृति की विज्ञानेश्वर कृत टीका।

मितार्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में तीन प्रकार के दूतों में से एक प्रकार का दूत। वह दूत जो बुद्धिमत्तापूर्वक थोड़ी बातें कहकर अपना काम पूरा करे।

मितार्थ[2]—वि० नपे तुले अर्थवाला। परिमित अर्थवाला [को०]।

मितार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मितार्थ' [को०]।

मिताशन—संज्ञा पुं० [सं०] कम भोजन करना। थोड़ा खाना।

मिताशी—संज्ञा पुं० [सं० **मिताशिन्**] [स्त्री० **मिताशिनी**] वह जो बहुत थोड़ा खाता हो। कम भोजन करनेवाला।

मिताहार[1]—वि० [सं०] परिमित आहार करनेवाला। कम खानेवाला। मितभोजी।

मिताहार[2]—संज्ञा पुं० स्वल्पाहार। कम खाना। अल्पाहार [को०]।

मिताहारी—वि० [सं० **मिताहार+ई** (प्रत्य०)] दे० 'मिताहार'। उ०—हम ऐसे फलाहारी और मिताहारी नहीं हैं।—सुनीता, पृ० ८९।

मिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मान। परिमाण। उ०—गारुड़िय ग्रह्यौ अंमृत मितिय विषम विष्ष मल उत्तरै।—पृ० रा०, ६१। १५५८। २. सीमा। हद। मान मानतिति। उ०—रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्हके मन माहीं।—मानस, १।३३। ३. काल की अवधि। दिया हुआ वक्त।

मुहा०—**मिति पूजना** = आयु के दिन पूरा होना। दे० 'मिती'।

मिती—संज्ञा स्त्री० [सं० **मिति**] १. देशी महीने की तिथि या तारीख। जैसे,—मिती आषाढ़ सुदी ४ सं० १९८१ की चिट्ठी मिली।

मुहा०—**मिती चढ़ाना** = तिथि लिखना। तिथि डालना। **मिती उगना या पूजना** = हुंडी का नियत समय पूरा होना। हुंडी के भुगतान का दिन आना। जैसे,—इस हुंडी की मिती पूजे दो दिन हो गए, पर रुपया नहीं आया।

२. दिन। दिवस। जैसे - उसके यहाँ अभी तीन मिती का व्याज और बाकी है। ३. वह तिथि जब तक का व्याज देना हो। जैसे,—इस हुंडी की मिती में अभी चार दिन बाकी हैं। (महाजन)।

मुहा०—**मिती काटना** = सूद काटना।

मितीकाटा—संज्ञा पुं० [हिं० **मिती+काटना**] १. वह हिसाब जिसके अनुसार सर्राफ लोग हुंडी की मुद्दत तथा व्याज लेते हैं। २. सूद लगाने का वह ढंग जिसमें प्रत्येक रकम का सूद उसकी अलग अलग मिती से जोड़ा जाता है।

मित्तⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मित्र**, प्रा० **मित्त**] दे० 'मित्र'। उ०—पत्र परन औ पत्र सर, बाहन पत्र सुचित्त। पत्र पंख विधि ना दिए, जिन उड़ि मिलते मित्त।—नंद० ग्रं०, पृ० ५०।

मित्तर†—संज्ञा पुं० [सं० **मित्र**] १. वह लड़का जो किसी खेल में और सब लड़कों का प्रधान या अगुआ होता है। २. मित्र। दोस्त।

मित्तीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मिति**] मान। मिति। उ०—कलिकाल किति मित्तिय इतिय।—पृ० रा०, १२।६।

मित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो सब बातों में अपना साथी, सहायक, समर्थक और शुभचिंतक हो। सब प्रकार से अपने अनुरूप रहनेवाला और अपना हित चाहनेवाला। शत्रु या विरोधी का उलटा। बंधु। सखा। सुहृद। दोस्त। २. अतिविषा नाम की लता। अतीस। ३. सूर्य का एक नाम। उ०—अंधकार में मलिन मित्र की धुँधली आभा लीन हुई।—कामायनी, पृ० १४। ४. बारह आदित्यों में से पहले आदित्य का नाम। ५. पुराणानुसार मरुद्‌गण में से पहले मरुत् का नाम। ६. वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम जो ऊर्जा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ७. आर्यों के एक प्राचीन देवता का नाम।

विशेष—ऋक्‌संहिता में लिखा है कि मनु से अदिति को जो आठ पुत्र हुए थे, उनमें से सात को अपने साथ लेकर आदिति देवलोक को चली गई थीं; केवल मार्तंड नामक पुत्र को फेंक दिया था। ये आठ पुत्र मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य या मार्तंड थे। इनमें से पहले सातों की गिनती आदित्यों में होती है परंतु महाभारत और पुराणों में द्वादश आदित्य का वर्णन है, जिनमें से एक मित्र भी हैं, वेदों में मित्र ही सर्वप्रधान आदित्य माने गए हैं, परंतु पुराणों आदि में उनका स्थान गौण है। वेदों में मित्र और वरुण की बहुत अधिक स्तुति की गई है, जिससे जान पड़ता है कि ये दोनों वैदिक ऋषियों के प्रधान देवता थे। वेदों में यह भी लिखा है कि मित्र के द्वारा दिन और वरुण के द्वारा रात होती है। यद्यपि पीछे से मित्र का महत्व घटने लगा था, तथापि पहले किसी समय सभी आर्य मित्र की पूजा करते थे। पारसियों में इनकी पूजा 'मिथ्र' के नाम से होती थी। मित्र की पत्नी 'मित्रा' भी उनकी पूजनीय थी और अग्नि की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती थी। कदाचित् असीरिआवालों की 'माहलेत्ता' तथा

अरबवालों की 'आलिता देवी' भी यही मित्रा थी।

८. भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध प्राचीन राजवंश का नाम जिसका राज्य उदुंबर और पांचाल आदि स्थानों में था।

विशेष—कुछ लोग इसे शुंग वंश की एक शाखा बतलाते हैं, तथा कुछ लोग इस वंशवालों को शाकद्वीपी ब्राह्मण और कुछ शक क्षत्रिय मानते हैं। ईसवी पहली और दूसरी शताब्दी में इसका बहुत जोर था। भानुमित्र, सूर्यमित्र अग्निमित्र, जयमित्र, इंद्रमित्र, आदि इस वंश के प्रधान राजा थे। इनके जो सिक्के पाए गए हैं उनमें से कुछ में शैवों के, कुछ में वैष्णवों के और कुछ में सौरों के चिह्न पाए जाते हैं।

मित्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं० मित्रकर्मन्] मित्रोचित काम। मित्र के योग्य कार्य [को०]।

मित्रकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

मित्रकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मित्रकर्म'।

मित्रघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मित्र की हत्या करनेवाला हो। २. विश्वासघातक। ३. एक राक्षस का नाम।

मित्रघ्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

मित्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मित्र को जानता हो। अपने दोस्त मित्र को जानने पहचानने और उचित समादर करनेवाला व्यक्ति। २. एक राक्षस का नाम जो यज्ञ की सामग्री आदि छीन ले जाया करता था।

मित्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मित्र होने का धर्म या भाव। २. मित्र का धर्म।

मित्रत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. मित्र होने का धर्म या भाव। २. दोस्ती। मित्रता।

मित्रदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम। २. महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम। ३. मित्र नाम के आदित्य। विशेष दे० 'मित्र'।

मित्रद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] मित्र का अनिष्ट करना।

मित्रद्रोही—वि० [सं० मित्रद्रोहिन्] मित्र का द्रोह करनेवाला। मित्र को धोखा देनेवाला। मित्र का अहित करनेवाला।

मित्रपंचक—संज्ञा पुं० [सं० मित्रपञ्चक] वैद्यक के अनुसार घी, शहद, गुंजा, सुहागा और गुग्गुल इन पाँचों का समूह।

मित्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

मित्रप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] विजेता के चारों ओर रहनेवाले मित्र-राष्ट्र या राजा।

मित्रप्रवर—संज्ञा पुं० [सं० मित्र+प्रवर] मित्रों में श्रेष्ठ मित्र। आदरणीय मित्र। उ०—विश्राम के लिये मित्र प्रवर, बैठे थे ज्यों, बैठे पथ पर।—तुलसी०, पृ० २४।

मित्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम। २. श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

मित्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] अनुराधा नक्षत्र का नाम [को०]।

मित्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।

मित्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मित्रता। दोस्ती [को०]।

मित्रभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो दो मित्रों में लड़ाई कराता हो। मित्रों में झगड़ा करानेवाला। २. मित्रता में बाधा पैदा होना। मित्रता भंग होना। ३. यंत्र तंत्र का एक तंत्र।

मित्रयु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मित्र। दोस्त। २. वह व्यक्ति जो लोगों को अपना मित्र बना ले [को०]।

मित्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मित्रों में झगड़ा हो जाना [को०]।

मित्रलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मित्रों को प्राप्त करना। मित्रप्राप्ति। २. हितोपदेश के पहले अध्याय का नाम।

मित्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण की एक कन्या का नाम।

मित्रवत्सल—वि० [सं०] मित्रों के प्रति उदार। अपने मित्रों को चाहने-वाला [को०]।

मित्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब के मुलतान नामक नगर का एक प्राचीन नाम।

मित्रवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

मित्रवान्[1]—वि० [सं० मित्रवत्] [वि० स्त्री० मित्रवती] जिसे मित्र हो। मित्रोंवाला।

मित्रवान्[2]—संज्ञा पुं० १. एक असुर का नाम। २. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम। ३. पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

मित्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

मित्रविंद—संज्ञा पुं० [सं० मित्रविन्द] १. अग्नि। २. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम। ३. पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

मित्रविंदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

मित्रविक्षिप्त—वि० [सं०] मित्र के देश में पड़ी हुई (सेना)।

मित्रविद्—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस।

मित्रविषय—संज्ञा पुं० [सं०] दोस्ती। मित्रता [को०]।

मित्रवैर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मित्र से वैर या द्वेष करता हो।

मित्रसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी।

विशेष—कहते हैं, इसी दिन कश्यप के वीर्य से अदिति के गर्भ से मित्र नामक दिवाकर की उत्पत्ति हुई थी, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

मित्रसह—संज्ञा पुं० [सं०] कल्माषपाद राजा का एक नाम।

मित्रसाहसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार स्वर्ग में रहने-वाली एक देवी का नाम।

मित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम। २. श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। ३. एक बुद्ध का नाम।

मित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मित्र नामक देवता की स्त्री का नाम। विशेष दे० 'मित्र—७'। २. शत्रुघ्न की माता। सुमित्रा। ३. महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम। ४. पराशर के शिष्य मैत्रेयी की माता का नाम।

मित्राई(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० मित्र + हिं० आई (प्रत्य०)] मित्रता। दोस्ती।

मित्राक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] छंद के रूप में बना हुआ तुकांत पद। अमित्राक्षर का उलटा।

मित्रायु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा दिवोदास के एक पुत्र का नाम।

मित्रावरुण—संज्ञा पुं० [सं०] मित्र और वरुण नामक देवता।

मित्रावसु—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वावसु के एक पुत्र का नाम।

मित्री[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दशरथ की पत्नी सुमित्रा जो लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता थी। सुमित्रा।

मित्री(५)[२]—संज्ञा पुं० [सं० मित्र] दे० 'मित्र'। उ०—मात पिता बंधु तिय पुत्र सुवेष।—नट०, पृ० ११७।

मित्रेयु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा दिवोदास के पुत्र का नाम।

मिथः—अव्य [सं० मिथस्] परस्पर। आपस में। अन्योन्य [को०]।

मिथ—संज्ञा पुं० [अं०] पुराणकथा। पुरावृत्त। पौराणिक आख्यान।

मिथन(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिथुन'—२। उ०—गृह कुटंब महि पलचिआ मोह मिथन दुर्गंध।—प्राण०, पृ० २४३।

मिथनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

मिथा(५)†—वि० [सं० मिथ्या] दे० 'मिथ्या'। उ०—मिथा बूज कर चुप यह झूठा जमाना। अरे मन नको रे नको हो दिवाना।—दक्खिनी०, पृ० २५४।

मिथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राजा निमि के पुत्र जनक का एक नाम।

विशेष—कहते हैं, राजा निमि को कोई पुत्र नहीं था। मुनियों को यह भय हुआ कि निमि के मरने के उपरांत कहीं अराजकता न उत्पन्न हो, इसलिये उन लोगों ने निमि के शरीर को अरणी से मथा जिससे जनक की उत्पत्ति हुई। ये मथन से उत्पन्न हुए थे, इसलिये इनका एक नाम मिथि भी था। इन्हें उदावसु नामक एक पुत्र हुआ था।

मिथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

मिथिल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा जनक का एक नाम।

मिथिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वर्तमान तिरहुत का प्राचीन नाम। राजा जनक इसी प्रदेश के राजा थे। उ०—मिथिला नगरी रहत हैं, रच्यो स्वयंवर राय।—कबीर सा०, पृ० ३६। २. इस प्रांत की प्राचीन राजधानी।

यौ०—**मिथिलापति** = राजा जनक।

मिथु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] असत्य। मिथ्या। झूठ।

मिथु[२]—अव्य० १. झूठमूठ। २. यथाक्रम। ३. साथ साथ [को०]।

मिथुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्री और पुरुष का युग्म। मर्द और औरत का जोड़ा। २. संयोग। समागम। ३. मेष आदि राशियों में से तीसरी राशि।

विशेष—इस राशि में मृगशिरा नक्षत्र के अंतिम दो पाद, पूरा आर्द्रा और पुनर्वसु के आरंभिक तीन पाद हैं। इसके अधिष्ठाता देवता गदाधारी पुरुष और वीणाधारिणी स्त्री मानी गई है। इसका दूसरा नाम जितुम है।

४. ज्योतिष में मेष आदि लग्नों में से तीसरा लग्न।

विशेष—कहते हैं, इस लग्न में जन्म लेनेवाला प्रियभाषी, द्विमात्रिक, शत्रुओं का नाश करनेवाला, गुणी, धार्मिक, कार्यकुशल और प्रायः रोगी रहनेवाला होता है, और उसकी मृत्यु मनुष्य, साँप, जहर या पानी आदि के द्वारा होती है।

यौ०—**मिथुनभाव** = (१) जोड़ा बनाना। जोड़ा बनाने का भाव। (२) मैथुन। **मिथुनयमक** = यमक अलंकार का एक भेद। **मिथुनविवाह** = प्रचलित विवाह प्रथा। वह विवाह प्रथा जो आजकल चल रही है। **मिथुनव्रती** = संयोगरत। संयोगस्थ।

मिथुनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मिथुन का भाव या धर्म।

मिथुनी—संज्ञा पुं० [सं० मिथुनिन्] खंजन पक्षी [को०]।

मिथुनीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] जोड़ा बनाना। नर मादा को परस्पर मिलाना [को०]।

मिथुनीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन [को०]।

मिथुनेचर—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवाक [को०]।

मिथ्या—वि० [सं०] १. असत्य। झूठ। २. बेकार। व्यर्थ।

यौ०—**मिथ्याकोप** = बनावटी क्रोध। **मिथ्याग्रह** = निरर्थक हठ। दुराग्रह। **मिथ्याचर्या**। **मिथ्याजल्पित** = झूठा कथन। असत्य भाषण। **मिथ्याज्ञान** = भूल। गलती। भ्रम। **मिथ्यादृष्टि**। **मिथ्यापंडित**। **मिथ्याभाषी** = असत्यवक्ता। झूठ बोलनेवाला। **मिथ्यावचन** = असत्य कथन। झूठी बात। **मिथ्यावाद**। **मिथ्यासाक्षी**।

मिथ्याचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठा या कपटपूर्ण व्यवहार।

मिथ्याचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपटपूर्ण आचरण। २. वह जो कपटपूर्ण आचरण करता हो।

मिथ्यात(५)—संज्ञा पुं० [सं० मिथ्यात्व] झूठापन। असत्यता। उ०—मिथ्यात ममता कुमति कुदया चारि डाँडी आहिं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ९१६।

मिथ्यात्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिथ्या होने का भाव। २. माया। ३. जैनों के अनुसार अठारह दोषों में से एक।

मिथ्यादृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नास्तिकता।

मिथ्याध्यवसिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें कोई एक असंभव या मिथ्या बात निश्चित करके तब कोई दूसरी बात कही जाती है; और इस प्रकार वह दूसरी बात भी मिथ्या ही होती है। जैसे,—जो आँजै नभ कुसुम रस, लखै सो अहि के कान।

मिथ्यानिरसन—संज्ञा पुं० [सं०] शपथपूर्वक किसी सच्ची बात का अस्वीकार करना ।

मिथ्यापंडित—संज्ञा पुं० [सं० **मिथ्यापण्डित**] वह जो कुछ न जानता हो और झूठमूठ पंडित बनता हो ।

मिथ्यापन—संज्ञा पुं० [सं० **मिथ्या** + हिं० **पन** (प्रत्य०)] असत्यता । मिथ्यात्व । उ०—मिथ्या ही बतला देती, मिथ्या का रे मिथ्यापन ।—गुंजन, पृ० १६ ।

मिथ्यापर—वि० [सं० **मिथ्या** + **पर** (प्रत्य०)] मिथ्यापरायण । असत्य का अनुयायी । उ०—मधु मुख, गरलहृदय, निजतारत मिथ्यापर देगा संसार जगह तुम्हें तब ।—अनामिका, पृ० १६६ ।

मिथ्यापवाद—संज्ञा पुं० [सं०] झूठा अभियोग । झूठा दोष । कलंक ।

मिथ्यापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छायापुरुष' ।

मिथ्याप्रतिज्ञ—वि० [सं०] झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला । वचन का पालन न करनेवाला [को०] ।

मिथ्याभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर झूठमूठ अभियोग लगाना । अभ्याख्यान ।

मिथ्याभिशंसन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर झूठमूठ कलंक लगाना ।

मिथ्यामति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भ्रांति । धोखा । २. भूल । गलती ।

मिथ्यायोग—संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार वह कार्य जो रूप, रस या प्रकृति आदि के विरुद्ध हो । जैसे, मल मूत्र आदि का वेग रोकना शरीर का मिथ्यायोग है, कठोर वचन आदि कहना वाणी का मिथ्यायोग है; तीव्र गंध आदि का सूँघना और भीषण शब्द आदि सुनना घ्राण और श्रवण का मिथ्यायोग है । उ०—पुरुष का इष्ट नाशादि सुनना मिथ्यायोग है ।—माधव०, पृ० १२९ ।

मिथ्यावाद—संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या वचन । झूठी बात । झूठ [को०] ।

मिथ्यावादी—संज्ञा पुं० [सं० **मिथ्यावादिन्**] [वि० स्त्री० **मिथ्यावादिनी**] वह जो झूठ बोलता हो । असत्यवादी । झूठा ।

मिथ्याविहार—संज्ञा पुं० [सं०] देह पुरुषार्थ से विशेष कामना करना । शरीर की शक्ति से अधिक कार्य करना ।

मिथ्याव्यय—संज्ञा पुं० [सं० **मिथ्या** + व्यय] अपव्यय । दिखावे के लिये या अनुचित ढंग से खर्च करना । उ०—बारात बुलाकर मिथ्या-व्यय मैं करूँ, नहीं ऐसा सुसमय ।—अनामिका, पृ० १३१ ।

मिथ्याव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी विषय को न जानते हुए भी उसमें दखल देना । अनधिकार चर्चा ।

मिथ्यासाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **मिथ्यासाक्षिन्**] वह जो झूठी गवाही देता हो । झूठा गवाह ।

मिथ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या प्रकृति के विरुद्ध भोजन करना । जैसे, मछली के साथ दूध ।

मिथ्योत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार व्यवहार में चार प्रकार के उत्तरों में से एक प्रकार का उत्तर । अभियुक्त का अपना अपराध छिपाने के लिये झूठ बोलना ।

मिथ्योपचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. झूठी दया या सेवा । २. दिखावे की प्रशंसा । खुशामद । ३. असत्य चिकित्सा । झूठा इलाज [को०] ।

मिधिⓅ—अव्य० [सं० **मध्य**] दे० 'मध्य' । उ०—बस गुन ही गुन निरखत तिहिं मिधि सग्ल प्रकृति कौ प्रेरौ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८९३ ।

मिनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मीन**] मछली । मीन । उ०—मलेछ सोई मिन मास जो खावै । मलेछ सोई जेहि ज्ञान न भावै ।—संत० दरिया, पृ० ६ ।

मिनकना—क्रि० अ० [अनु०] १. धीरे से बोलना । कुछ कहना । २. हूँ हाँ करना । सुगबुगाना । उ०—दरजी खर्राटें ले रहा था मिनका तक नहीं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८८ । ३. भय के साथ बोलना ।

मिनकार†—संज्ञा पुं० [अनु० ?] जिससे मिन् मिन् किया जाय अर्थात् मुख या चोंच । उ०—अधिक तेज काँटे ते वी सख्त बोल । लग्या बोलने तांई मिनकार खोल ।—दक्खिनी०, पृ० ९० ।

मिनकीⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिल्ली । उ०—मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ३९८ ।

मिनखाⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **मनुष्य**] दे० 'मानुष' । उ०—यो मिनखा तन पाइकै भज्यो नहीं भगवान । जन हरिया तब मानखो मिलै नहीं आसान—राम० धर्म०, पृ० ६६ ।

मिनखीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिल्ली । मिनकी । उ०—मावड़ियो बन माँझली सो नहँ जाय सिकार । डोला मिनखी सूँ डरै मूसा ज्यों मुरदार ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १९ ।

मिनट—संज्ञा पुं० [अं०] एक घंटे का साठवाँ भाग । साठ सेकेंड का समय ।

मुहा०— **मिनटों में** = बात की बात में । जैसे,—वह यह काम मिनटों में कर डालेगा । **मिनट भर** = अत्यल्प समय । बहुत थोड़ा समय । जैसे,—वे मिनट भर पहले गए हैं ।

मिनती[१]†—संज्ञा स्त्री० [सं० **विनति**] प्रार्थना । विनती ।

मिनती[२]—संज्ञा पुं० [अनु० **मक्खी के शब्द से**] मक्खी की बोली के समान, धीमा, कुछ नाक से निकला स्वर ।

मिनमिन[१]—क्रि० वि० [सं०] मक्खी की भनभनाहट के रूप में । धीमे दबे हुए स्वर में । कुछ नाक से निकले धीमे स्वर में । जैसे,—वह मिनमिन बोलता है; इसी से उसे सीधा समझते हो ।

मिनमिन[२]—वि० नकियाकर बोलनेवाला । मिनमिन बोलनेवाला ।

मिनमिन—संज्ञा स्त्री० मिनभिन की आवाज । अस्पष्ट ध्वनि ।

मिनमिना—वि० [हिं० **मिनमिन**] १. मिनमिन शब्द करनेवाला । नाक से स्वर निकालकर धीमे बोलनेवाला । २. थोड़ी सी बात पर कुढ़नेवाला । ३. सुस्त । मट्ठर ।

मिनमिनाना—क्रि० अ० [हिं० **मिनमिन**] १. मिन् मिन् शब्द करना । नाक से बोलना । नकियाना । २. कोई काम बहुत धीरे धीरे करना । बहुत सुस्ती से काम करना ।

मिनमिनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मिन्मिन् की ध्वनि या आवाज।

मिनवाल—संज्ञा पुं० [अ०] करघे में का वह बेलन जिसपर बुना हुआ कपड़ा लपेटा जाता है और जो बुननेवाले के ठीक आगे रहता है।

मिनहा—वि० [अ०] जो काट या घटा लिया गया हो। मुजरा किया हुआ। जैसे, - अभी इसमें दो तीन रकमें मिनहा होने को हैं।

मिनहाई†—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिनहा**] कटौती।

मिनाक⑤—संज्ञा पुं० [सं० **मैनाक**] दे० 'मैनाक'। उ०—पूजा पाइ मिनाक पहिं, सुरसा कपि संबादु। मारग अगम सहाय सुभ, होइहि राम प्रसादु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८६।

मिनारा†—संज्ञा पुं० [अ० **मनार**] दे० 'मीनार'।

मिनिट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'मिनट'।

मिनिटबुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा, समिति के अधिवेशनों में संपन्न हुए कार्यों का विस्तृत विवरण लिखा जाता है।

मिनिस्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. मंत्री। सचिव। दीवान। वजीर। २. राजदूत। एलची। ३. धर्मोपदेष्टा। धर्माचार्य। पादरी। (ईसाई)।

मिनिस्ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. मंत्रिमंडल। शासन। हुकूमत। ३. मंत्रित्व। मंत्रिपद। उ०— आज काउंसिल की मिनिस्ट्री पाकर भी शायद उतना आनंद न होता।—मान०, भा० ५, पृ० ११०।

मिन्—प्रत्य० [अ०] से।

मिन्जानिब—क्रि० वि० [अ०] ओर से। तरफ से। (कचहरी०)।

मिन्जुमला—क्रि० वि० [अ०] सब में से। कुल में से।

मिन्नत—संज्ञा स्त्री० [अ०, मि० सं० **विनति**, हिं० **मिनती**] १. प्रार्थना। निवेदन। २. दीनता। दैन्य।

यौ०—**मिन्नत खुशामद** = दीनतापूर्वक की हुई प्रार्थना। **मिन्नत समाजत** = विनय। प्रार्थना। उ०—यों तो मैं विनय की मिन्नत समाजत करूँ, तो वह रियासत से चले जाने पर राजी हो जायँगे।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४७८।

३. एहसान। कृतज्ञता। (क्व०)।

क्रि० प्र०—**उठाना**।—**करना**।

मिन्मिन, मिन्मिल[१]—वि० [सं०] नाक के स्वर में बोलनेवाला। नकियाकर बोलनेवाला।

मिन्मिन, मिन्मिल[२]—संज्ञा पुं० नकियाकर बोलना जो एक रोग है [को०]।

मिमत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

मिमांसा⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **मीमांसा**] दे० 'मीमांसा'। उ०—करम ईसर मिमांसा में वरन ब्राह्मन सुनाते हैं।—तुरसी० श०, पृ० ३४।

मिमियाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिमियाना** + ई (प्रत्य०)] बकरी।

मिमियाना—क्रि० अ० [मिन् मिन् से अनु०] बकरी या भेंड़ का 'मि मि' शब्द करना। भेंड़ या बकरी का बोलना।

मियाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. स्वामी। मालिक। २. पति। खसम। जैसे,—मियाँ के मियाँ गए, बुरे बुरे सपने आए।

यौ०—**मियाँ बीबी**।

३. बड़ों के लिये एक प्रकार का संबोधन। महाशय। (मुसल०)। ४. बच्चों के लिये एक प्रकार का संबोधन। ५. शिक्षक। उस्ताद।

यौ०—**मियाँगरी, मियाँगीरी** = शिक्षक का कार्य। अध्यापन। **मियाँ जी** = शिक्षक।

६. पहाड़ी राजपूतों की एक उपाधि। जैसे, मियाँ रामसिंह। ७. मुसलमान। जैसे,—वे सब मियाँ ठहरे; एक ही में खा पका लेंगे। ८. चर। कासिद। दूत (को०)। ९. कुटना। चुगलखोर (को०)। †१०. गायक। पक्की चीजें गानेवाला। उस्ताद।

मियाँ ठाकुर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मियाँ** + हिं० **ठाकुर**] एक जाति जो अपने को न हिंदू मानती है और न मुसलमान, वरन् उभय मानती है। उ०—ये 'मियाँ ठाकुर' कहलाना पसंद करते हैं। ये मानते हैं कि ये न तो हिंदू हैं और न मुसलमान, बल्कि उभय हैं।—संत० दरिया, पृ० ११।

मियाँ मिट्ठू—संज्ञा पुं० [हिं० **मियाँ मिट्ठू**] १. मीठी बोली बोलनेवाला। मधुरभाषी।

मुहा०—**अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना** = अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना। बिना कुछ समझाए याद कराना।

२. तोता।

मुहा०—**मियाँ मिट्ठू बनाना** = तोते की तरह रटाना। बिना समझाए पढ़ाना।

३. मूर्ख। बेवकूफ।

मुहा०—**मियाँ की जूती मियाँ का सिर** = जिसकी चीज हो, उसका उसी के विरुद्ध व्यवहार करना। बेवकूफ बनाना।

मियान[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **म्यान**] दे० 'म्यान'।

मियान[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य भाग। बीच का हिस्सा।

यौ०—**दरमियान** = मध्य में। बीच में।

मियानतह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मियान** (= मध्य) + हिं० **तह**] वह साधारण कपड़ा जो किसी अच्छे कपड़े के नीचे उसकी रक्षा आदि के लिये दिया जाता है। जैसे, रजाई की मियानतह।

मियानतही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मियातिही**] १. वह बिस्तर जिसके दोनों पल्लों के बीच रुई न हो। २. दे० 'मियानतह'।

मियानबाला—वि० [फ़ा०] सामान्य कद का। साधारण आकार का। न ठिगना, न लंबा [को०]।

मियाना[१]—वि० [फ़ा० **मियानह्**] न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा। मध्यम आकार का।

मियाना[२]—संज्ञा पुं० १. वे खेत जो किसी गाँव के बीच में हों। २. एक प्रकार की पालकी। ३. गाड़ी में आगे की ओर बीच में

लगा हुआ वह बाँस जिसके दोनों ओर घोड़े जोते जाते हैं। बम। बल्ली। ४. वह घोड़ा जो मझोले कद का हो (को०)। ५. वह बड़ा मोती जो हार की लड़ी के बीच में हो (को०)।

यौ०—**मियाना कद** = मझोले आकार का। न लंबा न ठिगना। **मियाना रवी** = मध्यम मार्ग। सरलाचार। **मियाना रौ** = मध्यममार्गी। सरलाचारी।

मियानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मियान** + **ई** (प्रत्य०)] पायजामे में वह कपड़ा जो दोनों पायँचों के बीच में पड़ता है

विशेष—इसे कहीं कहीं रूमाल भी कहते हैं।

मियार†—संज्ञा पुं० [हिं० **मँझार** ?] वह लकड़ी जो कूएँ के ऊपर दो खंभों पर लगी होती है और जिसमें गराड़ी पड़ी रहती है।

मियाल†—संज्ञा पुं० [हिं० **मँझार** ?] दे० 'मियार'।

मियेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशु। २. यज्ञ।

मिरंगा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रवाल। मूँगा।

मिरकी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों को होनेवाली मुँह की एक बीमारी। (अवध)।

मिरखंभ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिरखम'।

मिरखम—संज्ञा पुं० [सं० **मेरुस्तम्भ**, प्रा० **मेरुखंभ**] कोल्हू में वह लकड़ी जो बैठकर हाँकने की जगह खड़े बल में लगी रहती है।

मिरगⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **मृग**] मृग। हरिन।

मिरगचिड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० **मिरग** + **चिड़ा**] एक प्रकार का छोटा पक्षी।

मिरगछाला†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृग** + हिं० **छाल**] दे० 'मृगछाला'।

मिरगनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिरग] दे० 'मृगी'। उ०—पाँच मिरग पच्चीस मिरगनी तिन में तीन चितारे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ३५।

मिरगमदⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मृगमद**] दे० 'मृगमद'। उ०—गौलोचन गोसीस मिरगमद नाभि तें जानौं। भिन्न भिन्न गुन होय नीर एक हि पहिचानौ।—पलटू०, पृ० ६६।

मिरगलाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **मिरग** + **ला** (प्रत्य०)] दे० 'मृग'। उ०—यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गँवार। दादू यहु मन (?) मिरगला, काल अहेड़ी लार।—संतवाणी०, पृ० ८०।

मिरगा†—संज्ञा पुं० [हिं० **मृगा**] दे० 'मृग'। उ०—जैसे मिरगा शब्द सनेही शब्द सुनन को जाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३५।

मिरगानीⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मृग**] मृगचर्म की आसनी। मृगछाला। उ०—कवनु मुंद्रा कवनु मिरगानी।—प्राण०, पृ० ७९।

मिरगारनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मृगारण्य**] जंगली जानवरों का वन। मृगारण्य।

मिरगिया—संज्ञा पुं० [सं० मिरगी + **इया** (प्रत्य०)] वह जिसे मिरगी का रोग हो।

मिरगिसिराⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मृगशिरस्**] दे० 'मृगशिरा'। उ०—तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५४।

मिरगी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृगी**] एक प्रसिद्ध मानसिक रोग। अपस्मार।

विशेष—इस रोग का बीच बीच में दौरा हुआ करता है और इसमें रोगी प्रायः मूर्छित होकर गिर पड़ता है, उसके हाथ पैर ऐंठने लगते हैं और उसके मुँह से झाग निकलने लगता है। कभी कभी रोगी के केवल हाथ पैर ही ऐंठते हैं और उसे मूर्छा नहीं आती। यह रोग वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज भेद से चार प्रकार का कहा गया है। विशेष दे० 'अपस्मार'।

क्रि० प्र०—**आना**।—**होना**।

मिरगुⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **मृग**] दे० 'मृग'।

मिरघ—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

मिरचा—संज्ञा पुं० [स० **मरिच**] लाल मिर्च।

मिरचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिरचा** + **ई** (प्रत्य०)] १. दे० 'मिर्च'। २. दे० 'काला दाना'।

मिरचियागंध—संज्ञा पुं० [हिं० **मिर्च** + **गंध**] रूसा घास।

मिरचो—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिर्च**] छोटी, पर बहुत तेज लाल मिर्च।

मिरजई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मिरजा**] एक प्रकार का बंददार अंगा जो कमर तक और प्रायः पूरी बाँह का होता है।

मिरजा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मिरजा, मीरज़ा**] १. मीर या अमीर का लड़का। मीरजाया। अमीरजादा। २. राजकुमार। कुँवर। ३. मुगलों की एक उपाधि। ४. तैमूर वंश के शाहजादों की उपाधि।

मिरजा[2]—वि० कोमल। नाजुक। (व्यक्ति)।

मिरजाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मिरजा का भाव या पद। २. सरदारी। नेतृत्व। ३. अभिमान। घमंड। ४. दे० 'मिरजई'।

मिरजान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रवाल। मूँगा।

मिरजानी—वि० [फ़ा०] मूँगे का [को०]।

मिरजा मिजाज—वि० [फ़ा० **मिरज़ा** + **मिज़ाज**] नाजुक दिमाग का।

मिरत†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृत्यु**] दे० 'मृत्यु'।

यौ०—**मिरतलोक**Ⓟ = दे० 'मृत्युलोक'। उ०—मिरतलोक से हंसा आए, पुहुप दीप चल जाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६३।

मिरतक†—संज्ञा पुं० [सं० **मृतक**] दे० 'मृतक'। उ०—मिरतक बाँधि कूप में डारे, भाभी सोच मरे।—घट०, पृ० २६५।

मिरथाⓅ†—वि० [सं० **वृथा** (= व्यर्थ)] निरर्थक। बेकार। उ०—बिनु गुरु ज्ञान नाम ना पैहो, मिरथा जनम गँवाई हो।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २४।

मिरदंग—संज्ञा पुं० [सं० **मृदङ्ग**] दे० 'मृदंग'।

मिरदंगी—संज्ञा पुं० [हिं० **मिरदंग** + **ई** (प्रत्य०)] वह जो मृदंग बजाता हो। पखावजी। उ०—बीली नाचे मुस मिरदंगी खरहा ताल बजावै।—संत० दरिया, पृ० १२६।

मिरनाल⑤—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल] दे० 'मृणाल'। उ०—शोभित कर मिरनाल सरोजा।—कबीर सा०, पृ० ६६।

मिरवना⑤†—क्रि० स० [हिं० मिलाना] दे० 'मिलाना'।

मिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्वा। २. मदिरा। शराब।

मिरास—संज्ञा पुं० [अ० मीरास] दे० 'मीरास'। उ० - इन सबों के लिये हिंदी अपने पितृपुरुषों से प्राप्त मिरास या रिक्थ है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ७५।

मिरासी—संज्ञा पुं० [अ० मीरासी] दे० 'मीरासी'।

मिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

मिरिग⑤—संज्ञा पुं० [सं० मृग] दे० 'मृग'। उ०—नैन कँवल जानहुँ धनि फूले। चितवनि मिरिग सोवत जमु भूले।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३६।

मिरिगारन⑤—संज्ञा पुं० [सं० मृगारण्य] जंगल जिनमें पशु रहते हैं। मिरगारन। उ० – मिरिगारन महँ भएउ बसेरा।—जायसी ग्रं०, पृ० ५८।

मिरिच—संज्ञा स्त्री० [सं० मरिच] दे० 'मिर्च'।

मिरिचियाकंदक—संज्ञा पुं० [हिं० मिरिच+गंध] रोहिस घास।

मिरियास, मिरियासि⑤†—संज्ञा स्त्री० [अ० मीरास] किसी के मरने पर उसके उत्तराधिकारी को मिलनेवाली संपत्ति। मीरास। उ०—नाहीं मानस हंस यह नहिं मोतिन की रासि। ये तो संबुक मलिन सर करटन की मिरियासि।—दीन० ग्रं०, पृ० १०१।

मिरोरना⑤—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मरोड़ना'। उ०—ताकै नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै।—पलटू०, पृ० ५१।

मिर्ग⑤—संज्ञा पुं० [सं० मृग] दे० 'मृग'। उ०—मिर्ग की नाभ कस्तूरी।—तुरसी० श०, पृ० ३१।

मिर्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगी] दे० 'मिरगी'।

मिर्च—संज्ञा स्त्री० [सं० मरिच] १. कुछ प्रसिद्ध तिक्त फलों और फलियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत काली मिर्च, लाल मिर्च और उनकी कई जातियाँ हैं। २. इस वर्ग की एक प्रसिद्ध तिक्त फली जिसका व्यवहार प्रायः सारे संसार में व्यंजनों में मसाले के रूप में होता है और जिसे प्रायः लाल मिर्च और कहीं कहीं मिरचा, मरिचा या मिरचाई भी कहते हैं।

विशेष—इस फली का क्षुप मकोय के क्षुप के समान, पर देखने में उससे अधिक झाड़दार होता है, और प्रायः सारे भारत में इसी फली के लिये उसकी खेती की जाती है। इसके पत्ते पीछे की ओर चौड़े और आगे की ओर अनीदार होते हैं। इसके लिये काली चिकनी मिट्टी की अथवा बाँगर मिट्टी की जमीन अच्छी होती है। दुम्मट जमीन में भी यह क्षुप होता है, पर कड़ी और अधिक बालूवाली मिट्टी इसके लिये उपयुक्त नहीं होती। इसकी बोआई असाढ़ से कार्तिक तक होती है। जाड़े में इसमें पहले सफेद रंग के फूल आते हैं तब फलियाँ लगती हैं। ये फलियाँ आकार में छोटी, बड़ी, लंबी, गोल अनेक प्रकार की होती हैं। कहीं कहीं इनका आकार नारंगी के समान गोल और कहीं कहीं गाजर के समान भी होता है पर साधारणतः यह उंगली के बराबर लंबी और उतनी ही मोटी होती है। इन फलियों का रंग हरा, पीला, काला, नारंगी या लाल होता है और ये कई महीनों तक लगातार फलती रहती हैं। प्रायः कच्ची दशा में इनका रंग हरा और पकने पर लाल हो जाता है। मसाले में कच्ची फलियाँ भी काम आती हैं और पकी तथा सुखाई हुई फलियाँ भी। कुछ जाति की फलियाँ बहुत अधिक तिक्त तथा कुछ बहुत कम तिक्त होती हैं। अचार आदि में तो ये फलियाँ और मसालों के साथ डाली ही जाती हैं, पर स्वयं इन फलियों का भी अचार पड़ता है। इसके पत्तों की तरकारी भी बनाई जाती है। इसका स्वाद तिक्त होने के कारण तथा इसके गरम होने के कारण कुछ लोग इसका बहुत कम व्यवहार करते हैं अथवा बिलकुल ही नहीं करते। वैद्यक में यह तिक्त, अग्निदीपक, दाहजनक तथा कफ, अरुचि, विशूचिका, व्रण, आर्द्रता, तंद्रा, मोह, प्रलाप और स्वरभेद आदि को दूर करनेवाली मानी गई है। त्वचा पर इसका रस लगने से जलन होती है; और यदि इसका लेप किया जाय तो तुरंत छाले पड़ जाते हैं। इसके सेवन से हृदय, त्वचा, वृक्क और जननेंद्रिय में अधिक उत्तेजना होती है। पर यदि इसका बहुत अधिक सेवन किया जाय तो बल और वीर्य की हानि होती है। वैद्यक, हिकमत और डाक्टरी सभी में इसका व्यवहार औषधि रूप में होता है।

पर्या०—**कटुबीरा। रक्त मरिच। कुमारिच। तीक्ष्ण। उज्वला। तीव्रशक्ति। अजड़ा।**

मुहा०—**मिर्चा लगना**=असह्य होना। उत्तर मे कही गई बात बहुत बुरी लगना।

२. एक प्रकार का प्रसिद्ध काला छोटा दाना जिसे काली मिर्च या गोल मिर्च भी कहते हैं और जिसका व्यवहार व्यंजनों में मसाले के रूप में होता है।

विशेष—यह दाना एक लता का फल होता है। इस लता की खेती पूर्वभारत में आसाम में, तथा दक्षिणभारत में मलाबार कोचीन, ट्रावनकोर आदि प्रदेशों में अधिकता से होती है। देहरादून और सहारनपुर आदि कुछ स्थानों में भी इसकी बहुत खेती होती है। यह लता प्रायः दूसरे वृक्षों पर चढ़ती और उन्हीं के सहारे फैलती है। यह लता बहुत दृढ़ होती है और इसके पत्ते पीपल के पत्तों के समान और ५–७ इंच लंबे तथा ३–४ इंच चौड़े होते हैं। इसकी लंबी लंबी डंडियों में गुच्छों में फूल और फल लगते हैं। प्रायः वर्षा ऋतु में पान की बेल की तरह इस लता के भी छोटे छोटे टुकड़े करके बड़े बड़े वृक्षों की जड़ों के पास गाड़ दिए जाते हैं जो थोड़े दिनों में लता के रूप में बढ़कर उन वृक्षों पर फैलने लगते है। नारियल, कटहल और आम के वृक्षों पर यह लता बहुत अच्छी तरह फैलती है। तीसरे या चौथे वर्ष इन लताओं में फल लगते हैं और प्रायः बीस वर्ष तक लगते

रहते हैं। कच्ची दशा में ये फल लाल रंग के होते हैं, पर पकने और सूखने पर काले रंग के हो जाते हैं; और प्रायः इसी रूप में बाजारों में मिलते हैं। कभी कभी इन सूखे फलों को पानी में भिगोकर उनका ऊपरी छिलका अलग कर लिया जाता है जिससे अंदर से सफेद या मटमैले रंग के फल निकल आते हैं और जो बाजारों में 'सफेद मिर्च' के नाम से बिकते हैं। इस दशा में उनका तीतापन भी कुछ कम हो जाता है।

भारतवर्ष में इसका व्यवहार और उपज बहुत प्राचीन काल से होती आई है और यहाँ से बहुत अधिक मात्रा में यह विदेश भेजी जाती रही है। वैद्यक में यह कड़वी, चरपरी, हलकी, गरम, रूखी, तीक्ष्ण, अवृष्य, छेदक, शोषक, पित्तकारी, अग्नि-प्रदीपक, रुचिकारी, तथा कफ, वात, श्वास, शूल, कृमि, खाँसी, हृदयरोग और प्रमेह तथा बवासीर का नाश करनेवाली मानी गई है। साधारणतः इसका व्यवहार मसाले के रूप में ही होता है, पर हिकमत और डाक्टरी में यह ओषधि के रूप में भी काम आती है। जिन लोगों को लाल मिर्च अप्रिय या हानिकारक होती है वे प्रायः इसी का व्यवहार करते हैं; क्योंकि यह उससे कम तिक्त भी होती है और उत्तेजक तथा दाहजनक भी कम होती है।

पर्या०—**मरिच। वेणुज। यवनप्रिय। वल्लीज। कोल। कृष्ण। शुद्ध। कोलक। धमपत्तन। ऊषण। वरिष्ट। कटुक। वेणुक। शिरोवृत्त। वार आदि।**

मिर्च[२]—वि० जिसका स्वभाव बहुत ही उग्र, तीव्र या कटु हो। (क्व०)।

मिर्चन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिर्च+**न** (प्रत्य०)] झड़बेरी के फलों का चूर्ण जो नमक मिर्च मिलाकर चाट के रूप में बेचा जाता है।

मिर्चिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिर्च] रोहिस घास।

मिर्तⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **मर्त्य वा मृत्यु**] मृत्युलोक। नरलोक। उ०—सुर्ग मिर्त पाताल कहा, कहा तीन लोक बिस्तार।—दरिया० बानी, पृ० ५।

मिर्तकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मृतक**] दे० 'मृतक'। उ०—(क) मिर्तक परा बैद कह करई।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१८। (ख) तुम तन मिर्तक देखि कैं कियौं बैद कर बेस।—हिं० **क०** का०, पृ० २१९।

मिल—संज्ञा स्त्री० [अं० **मिल्स**] १. कपड़ा बुनने का कारखाना। पुतलीघर। उ०—मिल बनती या भाड़ में जाती।—रंगभूमि, भा०२, पृ० ६२९। २. आटा आदि पीसने, लकड़ी काटने या चीरने तथा चीनी आदि बनाने का कल या कारखाना।

यौ०—**मिल मजदूर**=मिल में काम करनेवाला मजूरा। **मिल मालिक**=मिल या कारखाने का मालिक।

मिलक†—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिल्क**] १. जमीन जायदाद। जमींदारी। मिलकियत। २. जागीर। उ०—ब्रज की भूमि इंद्र ते मानों मदन मिलक करि पाई।—सूर (शब्द०)।

मिलकना†—क्रि० अ० [देश०] दीप का जलना या प्रकाशित होना।

मिलकाना‡[१]—क्रि० स० [हिं० **मिलकना**] दीया जलाना या बालना। दीप जलाना।

मिलकाना[२]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मलकाना' वा 'मुलकाना'। जैसे, आँखें मिलकाना।

मिलकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलक**+**ई** (प्रत्य०)] १. वह जिसके पास जमीन जायदाद हो। जमीदार। २. वह जिसके पास धन संपत्ति हो। दौलतमंद। अमीर।

मिलन—संज्ञा पुं० [सं०] मिलने की क्रिया या भाव। मिलाप। भेंट। समागम। योग। २. मिश्रण। मिलावट। ३. एकत्र होना। इकट्ठा होना।

मिलनसार वि० [हिं० **मिलन**+**सार** (प्रत्य०)] जो सबसे प्रेमपूर्वक मिलता हो। सबसे हेलमेल रखनेवाला। सुशील और सद्व्यवहार रखनेवाला।

मिलनसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलनसार**+**ई** (प्रत्य०)] सबसे प्रेमपूर्वक मिलने का गुण। सबसे हेलमेल रखना। सद्व्यवहार और सुशीलता।

मिलना[१]—क्रि० अ० [सं० **मिलन**] १. एक पदार्थ का दूसरे में पड़ना। संमिलित होना। मिश्रित होना। जैसे, दाल में नमक मिलना। २. दो भिन्न भिन्न पदार्थों का एक होना। बीच में का अंतर मिटना। जैसे,—अब ये दोनों मकान मिलकर एक हो गए हैं। ३. संमिलित होना। समूह या समुदाय के भीतर होना। जैसे;—(क) हमारी किताबें भी इन्हीं में मिल गई हैं। (ख) अब वह भी जात में मिल गए हैं।

यौ०—**मिलाजुला**=(१) संमिलित। (२) मिश्रित।

मुहा०—**मिलीमार**=ऊपर से मिला रहना और भीतर से हानि पहुँचाने की कोशिश करना। उ०—मानो मार की मिली मार कर कुतूहल दिखला रही है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२५।

४. सटना। जुड़ना। चिपकना। ५. आकृति, गुण आदि में समान होना, बिलकुल या बहुत कुछ बराबर होना। जैसे,—(क) इन दोनों पुस्तकों का विषय बहुत कुछ मिलता है। (ख) इन दोनों का स्वभाव बहुत कुछ मिलता है।

यौ०—**मिलता जुलता**=एक सा। समान। तुल्य।

६. भेंट होना। मुलाकात होना। देखादेखी होना। जैसे,—वह मुझसे रोज मिलते हैं।

यौ०—**मिलनातुर**=मिलने के लिये व्यग्र।

७. विरोध या द्वेष दूर होना। मेल मिलाप होना। ८. संभोग करना। मैथुन करना। ९. किसी के पक्ष में हो जाना। जैसे,—अब तो आप भी उधर ही जा मिले। १०. लाभ होना। नफा होना। फायदा होना। जैसे,—इस सौदे में आपको भी कुछ मिलकर ही रहेगा। ११. प्रत्यक्ष होना। सामने आना। पता लगना। जैसे, रास्ता मिलना।

संयो० क्रि०—**जाना**।

१२. बजने से पहले बाजों का सुर या आवाज ठीक होना। जैसे, तबला मिलना, सारंगी मिलना। १३. प्राप्त होना। उपलब्ध होना। जैसे,—यह पुस्तक बाजार में मिलती है। १४. मूल्य पर प्राप्त होना। जैसे,—गेहूँ एक रुपए का सवा सेर मिलता है। १५. मुलाकात करना। भेंटना। १६. आलिंगन करना। छाती से लगाना। गले लगाना। भेंटना। जैसे, राम और भरत का मिलना।

मुहा०—**मिल जुलकर** = एक होकर। संघटित होकर। **मिलना जुलना** = अन्य लोगों से भेंट मुलाकात करना। परस्पर संबंध रखना। **मिल बाँटकर खाना** = समान भाव से किसी वस्तु का उपयोग करना। बराबर हिस्सा लगाकर किसी वस्तु को लेना।

मिलनाⓟ²—क्रि० स० [?] गौ आदि का दूध दुहना।

मिलनिⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलना**] दे० 'मिलन'। उ०—(क) मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की।—मानस, २।२४०। (ख) घुमड़नि मिलनि देखि डर आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० १३२।

मिलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलना** + **ई** (प्रत्य०)] १. विवाह की एक रस्म जो कहीं तो कन्यादान हो चुकने के उपरांत और कहीं उससे पहले होती है। इसमें कन्यापक्ष के लोग वरपक्ष के लोगों से गले मिलते और उन्हें कुछ नकद देते हैं। कहीं कहीं यह रस्म स्त्रियों में भी होती है। २. दे० 'मिलन'।

मिलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० [अश्मंतक वृक्ष। बहेड़े का पेड़।

मिलवनⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलावना**] मिलाने पहुँचाने या झुंड में करने की क्रिया या भाव। उ०—गैया मिलवन मिस उठि भोर। गहगोरी गवनी उहि वोर।—नंद० ग्रं०, पृ० १७२।

मिलवनाⓟ—क्रि० स० [हिं० **मिलाना**] दे० 'मिलाना'। उ०—उन हटकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसकाइ। नैन मिलै मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

मिलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलवाना** + **ई** (प्रत्य०)] १. मिलवाने की क्रिया या भाव। २. वह धन या पुरस्कार जो मिलवाने के बदले में दिया जाय।

मिलवाना—क्रि० स० [हिं० **मिलाना का प्रे० रूप**] १. मिलने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मिलने में प्रवृत्त करना। २. भेंट या परिचय कराना। ३. मेल कराना। ४. संभोग कराना।

मिलाँणⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० **मिलान**] डेरा। शिविर। उ०—अमली समली आरती। जाई बगैरइ दियो मिलान।—बी० रासो, पृ० १२।

मिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलाना** + **ई** (प्रत्य०) १. मिलाने की क्रिया या भाव। २. मिलाने की मजदूरी। ३. विवाह की मिलनी नामक रस्म। विशेष दे० 'मिलनी'। ४. जाति से निकाले हुए आदमी को फिर से जाति में मिलाने का काम।

मिलान—संज्ञा पुं० [हिं० **मिलाना**] १. मिलाने की क्रिया या भाव। २. तुलना। मुकाबला। ३. ठीक होने की जाँच। ४. मेल। भेंट। ५. मिलने का स्थान। डेरा। शिविर। पड़ाव। उ० समाचार वसुदेव जु पाए। सखहि मिलान मिलानहिं आए।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५।

क्रि० प्र०—**करना**।—मिलना।—होना।

मिलाना—क्रि० स० [सं० **मिलन** । हिं० **मिलना का सक० रूप**] १. एक पदार्थ में दूसरा पदार्थ डालना। मिश्रण करना। जैसे, दूध में पानी मिलाना। २. दो भिन्न भिन्न पदार्थों को एक करना। बीच में अंतर न रहने देना। जैसे,—दोनों दीवारें मिला दी गईं। ३. संमिलित करना। एक करना। जैसे,—यह रकम भी उसी में मिला दी गई है।

संयो० क्रि०—**डालना**।—**देना**।

४. सटाना जोड़ना। चिपकाना। ५. दो पदार्थों की तुलना करना। मुकाबिला करना। जैसे,—दोनों कपड़े मिलाकर देख लीजिए। ६. यह देखना कि प्रतिलिपि आदि मूल के अनुसार है या नहीं। ठीक होने की जाँच करना। जैसे,—नकल तो पूरी हो चुकी है पर मिलाना अभी बाकी है।

संयो० क्रि०—**लेना**।

७. भेंट या परिचय कराना। ८. दो व्यक्तियों का विरोध या द्वेष दूर करके उनमें मेल कराना। सुलह या संधि कराना। ९. स्त्री और पुरुष का संयोग कराना। संभोग या संबंध कराना।

संयो० क्रि०—**देना**।

१०. किसी को अपने पक्ष में करना। अपना भेदिया या साथी बनाना। साँटना। जैसे,—हम उन्हें अपनी ओर मिला लेंगे।

संयो० क्रि०—**लेना**।

यौ०—**मिलाना जुलाना**।

११. बजाने से पहले बाजों का सुर या आवाज ठीक करना। जैसे, पखावज मिलाना, सारंगी मिलाना।

मिलाप—संज्ञा पुं० [हिं० **मिलना** + **आप** (प्रत्य०)] १. मिलने की क्रिया या भाव। २. मेल या सद्भाव होना। मित्रता।

यौ०—मेल मिलाप।

३. भेंट। मुलाकात। ४. एक साथ बजनेवाले बाजों का एक सुर में होना। ५. संभोग। संयोग। ६. दे० 'मिलाई'।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर मनुष्यों या प्राणियों के संबंध में होता है, वस्तुओं के मिश्रण के लिये नहीं।

मुहा०—**मिलाप का पुतला** = मेल मिलाप का प्रेमी या समर्थक। उ०—आइए ऐ मिलाप के पुतले। हम पलक पाँवड़े बिछा देंगे।—चुभते०, पृ० ६।

मिलाव—संज्ञा पुं० [हिं० **मिलाना** + **आव** (प्रत्य०)] १. मिलाने की क्रिया या भाव। मिलावट। २. दे० मिलाप'।

मिलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिलाना** + **आवट** (प्रत्य०)] १.

मिलाए जाने का भाव । किसी अच्छी या बढ़िया चीज में किसी घटिया चीज का मेल । खोट । जैसे,—यह सोना ठीक नहीं है; इसमें कुछ मिलावट है ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल वस्तुओं के मिश्रण के लिये होता है प्राणियों के संयोग के लिये नहीं ।

मिलावनो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मिलाना] मिलाने का कार्य । ताल । थपक । उ०—थोंद थलकि बर चाल; मनो मृदंग मिलावनो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४ ।

मलिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मिलिन्द] भौंरा । भ्रमर । उ० - मदरस मत्त मिलिंद गन, गान मुदित गननाथ ।—मतिराम (शब्द०) ।

मिलिंदक—संज्ञा पुं० [सं० मिलिन्दक] एक प्रकार का साँप ।

मिलिक(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० मिल्क] १. जमींदारी । मिलकियत । २. जागीर । उ०—ब्रज की भूमि इंद्र तें मानो मदन मिलिक करि पाई ।—सूर (शब्द०) ।

मिलिटरी[1]—वि० [अं०] १. सेना या सैनिक संबंधी । फौजी । जैसे,—मिलिटरी डिपार्टमेंट । २. युद्ध संबंधी । सामरिक । जंगी । ३. लड़ाका । योद्धा । जैसे,—यह मिलिटरी आदमी है ।

मिलिटरी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] सैन्य दल । पलटन । फौज । जैसे, दंगे के दिनों में नगर में मिलिटरी का पहरा था ।

मिलित—वि० [सं०] मिला हुआ । संगमित । युक्त ।

मिलिशा—संज्ञा स्त्री० [अं०] ऐसे जवानों का दल जिन्हें किसी सीमा या स्थान की रक्षा के लिये शिक्षा दी गई हो और जिनसे समय समय पर रक्षा का काम लिया जाता हो । खड़ी पल्टन । इसका संघटन स्थायी नहीं होता । जैसे, वजीरिस्तान मिलिशा ।

मिलिशिया संज्ञा स्त्री० [अं० मिलिशा] दे० 'मिलिशा' ।

मिलेठी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुलेठी' ।

मिलोना†[1]—क्रि० स० [हिं० √मिल + ओना (प्रत्य०)] १. दे० 'मिलाना' । २. गौ का दूध दूहना ।

मिलोना[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बढ़िया जमीन जिसमें कुछ बालू भी मिली होती है ।

मिलौअल—संज्ञा स्त्री० [हिं० √मिल + औअल (प्रत्य०)] १. परस्पर मिलने की क्रिया या भाव । २. भेंटना । गले लगाना । उ०—किसी से गले मिलौअल, किसी से झुक झुककर आदाब ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४९ ।

मिलौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिलना + औनी (प्रत्य०)] १. मुसलमानों में विवाह की एक रस्म जिसमें बरातियों आदि को कुछ नकद या वस्तुएँ भेंट की जाती हैं । मिलाई । दे० 'मिलनी' । २. किसी अच्छी चीज में कोई खराब चीज मिलाना । ३. दे० 'मिलाई' । ४. मिलने की क्रिया या भाव । मिलावट । ५. मिलाने के बदले में मिला हुआ धन ।

मिल्क—संज्ञा पुं० [अ०] १. जमींदारी । २. जागीर । मुआफी । ३. जमीन की एक प्रकार की मिलकियत या मालिकाना । हक ।

विशेष—यह हक जिसे प्राप्त होता है, वह जमींदार को किसी प्रकार का लगान आदि नहीं देता । इस प्रकार की मिलकियत जमींदारी और काश्तकारी के बीच की होती है और मुरादाबाद आदि कुछ पश्चिमी जिलों में ही पाई जाती है ।

४. धन । संपत्ति । उ०—काम ना आता दिसे ये मुल्कों माल, देव मुझे या रब तूँ मिल्के बेजबाल ।—दक्खिनी०, पृ० १८५ । ५. अधिकार । मिल्कियत ।

मिल्कियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. जमींदारी । २. जागीर । माफी । ३. धनसंपत्ति । जायदाद । ४. वह पदार्थ या धनसंपत्ति जिसपर नियमानुसार अपना स्वामित्व हो सकता हो या अधिकार पहुँच सकता हो । जिसपर मालिकों का सा हक हो । जैसे,—वह सब तो हमारी मिल्कियत ठहरी, हम छोड़ कैसे सकते हैं ।

मिल्की—संज्ञा पुं० [अ०] १. मिल्क का स्वामी या अधिकारी । जमींदार । २. जागीरदार । माफीदार ।

मिल्कीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० मिल्कियत] दे० 'मिल्कियत' ।

मिल्लत[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मिलन + त (प्रत्य०)] १. मेल जोल । घनिष्ठता । मिलाप । जैसे,—उनमें मिल्लत बहुत है ।

मुहा०—मिल्लत का = जिसमें मिलनसारी हो । मिलनसार । जैसे,—वह बहुत मिल्लत का आदमी है ।

३. समूह । मडली । जत्था । (क्व०) ।

मिल्लत[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] मजहब । संप्रदाय । पंथ । मत । जैसे,—हर मिल्लत के आदमी से वह अच्छा व्यवहार करता है । उ०—जर मजहबो मिल्लत मेरा, बंदी हूँ मैं जर की । जर ही मेरा अल्लाह है जर राम है मेरा ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७९१ ।

मिशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जो किसी विशेष कार्य या उद्देश्य से कहीं भेजा जाय । विशिष्ट कार्य के लिये भेजे हुए आदमी या मंडल । २. उद्देश्य । महान् लक्ष्य । ३. वह संस्था, विशेषतः ईसाइयों की संस्था, जो संघटित रूप से ईसाई धर्म के प्रचार का उद्योग और लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करती है । ४. ऐसी संस्था का केंद्र या कार्यालय आदि । ५. राजनीतिक उद्देश्य से भेजा हुआ दूतमंडल ।

मिशनरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह ईसाई पादरी जो किसी मिशन का सदस्य होता है और अनेक स्थानों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये जाता है । २. ईसाइयों का कोई धर्मपुरोहित । पादरी ।

मिशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिशी' ।

मिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी । २. मधुरिका । सोआ । ३. सौंफ । ४. मेथी । ५. दाभ । बड़ी डाभी ।

मिश्की—वि० [फ़ा० मिश्कीं] १. कस्तूरी की सुगंध से पूरित । जैसे, मिश्की काकुलें । २. कस्तूरी की तरह काला या स्याह । उ०—अब वह मिश्की जुल्फों की बनावट ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८ ।

मिश्र[1]—वि० [सं०] १. मिला या मिलाया हुआ। मिश्रित। संयुक्त। जैसे, मिश्र धातु। २. श्रेष्ठ। बड़ा। ३. जिसमें कई भिन्न भिन्न प्रकार की रकमें (जैसे, रुपया, आना, पाई; मन, सेर छटाँक) की संख्या हो। जैसे, मिश्र भाग, मिश्र गुणा। (गणित)।

मिश्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथियों की चार जातियों में से एक जाति। २. संनिपात। ३. रक्त। लहू। ४. मूली। ५. ज्योतिष के अनुसार उग्र आदि सात प्रकार के गणों में से अंतिम या सातवाँ गण जो कृत्तिका और विशाखा नक्षत्र के योग में होता है। ६. सरयूपारीण, कान्यकुब्ज, सारस्वत, मैथिल और शाकद्वीपीय, ब्राह्मणों के एक वर्ग की उपाधि। ७. श्रेष्ठ व्यक्ति। संमानित जन। जैसे, आर्य मिश्र (को०)। ८. ताल (संगीत में) ९. मूल और ब्याज (धन के साथ प्रयुक्त)।

मिश्रक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खारी नमक। २. वैद्यक में एक प्रकार का वंग या राँगा जिसे खुरा राँगा भी कहते हैं। ३. देवताओं का उद्यान। नंदन वन। ४. एक तीर्थ का नाम। ५. जस्ता। ६. मूली।

मिश्रक[2]—वि० १. मिलानेवाला। मिश्रण करनेवाला। २. मूलक।

मिश्रकस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो त्रिफला, दशमूल और दंती की जड़ आदि से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार गुल्म आदि रोगों में होता है।

मिश्रकावण—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का उद्यान। नंदन। इंद्रवन।

मिश्रकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम जो मेनका की सखी थी।

मिश्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो दो भिन्न जातियों के मिश्रण से बना या उत्पन्न हुआ हो। खच्चर।

मिश्रजाति—वि० [सं०] जो दो जातियों के मिश्रण से उत्पन्न हुआ हो। वर्णसंकर। दोगला।

मिश्रण—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० **मिश्रणीय, मिश्रित**] १. दो या अधिक पदार्थों को एक में मिलाने की क्रिया। मेल। मिलावट। २. जोड़ लगाने की क्रिया। जोड़ना (गणित)।

मिश्रणीय—वि० [सं०] जो मिश्रण करने योग्य हो। मिलाने योग्य।

मिश्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिश्रित होने का भाव। मिलने या मिलाने का भाव।

मिश्रधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक में मिलाए हुए कई प्रकार के धान्य।

मिश्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

मिश्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] भंटा।

मिश्रवर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला अगरु। २. गन्ना। पौंढ़ा।

मिश्रवर्ण[2]—वि० मिले जुले रंगों का। अनेक रंगों का [को०]।

मिश्रवर्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भंटा [को०]।

मिश्रव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया।

मिश्रशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर।

मिश्रि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिश्री'। उ०—ताके लिये मेवा मिश्रि डारि कै लडुआ किए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८७।

मिश्रित—वि० [सं०] १. एक में मिलाया हुआ। मिश्रण किया हुआ। २. मिला हुआ।

मिश्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदा आदि सप्त प्रकार की संक्रांतियों में से एक प्रकार की संक्रांति। वह सूर्यसंक्रमण जो कृत्तिका और विशाखा नक्षत्र के समय हो।

मिश्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० मिश्रिन्] १. मिलानेवाला। मिश्रण करनेवाला। २. एक नाग का नाम।

मिश्री[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिसरी'।

मिश्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मिलाने की क्रिया। मिश्रण करना।

मिश्रोतुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] खपरिया। खर्पर। संग बसरी।

मिश्रेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मधुरिका। मोरी। २. एक प्रकार का साग। ३. शतपुष्पा। तालपर्णं।

मिश्रोदन—संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

मिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. छल। कपट। २. बहाना। हीला। मिस। उ०—सीखने सी वह लगी भय मिष भृकुटि संचार।—शकुं०, पृ० ८। ३. ईर्ष्या। डाह। ४. स्पर्धा। होड़। ५. दर्शन। ६. सेचन। सींचना।

मिषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी। २. सोआ। ३. सौंफ। ४. अजमोदा। ५. खस। उशीर।

मिषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोआ। २. सौंफ। ३. जटामासी। बालछड़।

मिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिषि'।

मिष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीठा रस। २. मिष्टान्न। मिठाई (को०)। ३. स्वादिष्ट भोजन (को०)।

मिष्ट[2]—वि० १. मीठा। मधुर। २. सिक्त। तर (को०)। ३. सेंका, भूना या पकाया हुआ।

मिष्टकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टकर्तृ**] मिष्टान्न तैयार करनेवाला, हलवाई [को०]।

मिष्टत(पु)—वि० [सं० **मिष्ट** हिं० + **त** (प्रत्य० स्वार्थि०)] मीठा। मधुर। उ०—चाढ़ कदम्म बुल्ले सुप्रभु मधुरित मिष्टत बानि।—पृ० रा०, २। ३७९।

मिष्टनिंब—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टनिम्ब**] मीठो नीम।

मिष्टनिंबु—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टनिम्बु**] मीठा नीबू। जमीरी नीबू।

मिष्टपाक—संज्ञा पुं० [सं०] मुरब्बा।

मिष्टपाचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत अच्छा भोजन बनाता हो। जिसका बनाया भोजन बहुत स्वादिष्ट होता हो।

मिष्टभाषी—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टभाषिन्**] वह जो मीठा बोलता हो। मधुरभाषी।

मिष्टवाताद—संज्ञा पुं० [सं०] मीठा बादाम।

मिष्टाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मिष्ट**] दे० 'मिठाई'। उ०—मिष्टाइ विवद्द विचित्र। मिष्टाइ रूप पवित्र।—पृ० रा०, ६१।७५६।

मिष्टान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टान्न**] दे० 'मिष्टान्न'। उ०—दस सहस्र संग हेमरा मिष्टान महारे। —प० रासो, पृ० १७६।

मिष्टान्न—संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई।

मिस[1]—संज्ञा पुं० [सं० मिष] १. बहाना। हीला। जैसे,—उन्होंने उपदेश के मिस ही उन्हें बहुत कुछ खरी खोटी कह सुनाई। २. नकल। पाषंड। उ० – भाँड़ पुकारै पीर बस, मिस समुझै सब कोय।—वृंद (शब्द०)।

मिस[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ताँबा।

यौ०—**मिसगर** = ताँबे का काम करनेवाला। तमेरा।

मिस[3]—संज्ञा स्त्री० [अं०] कुँआरी लड़की। कुमारी।

मिस(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० श्मश्रु] दे० 'मस'। उ० - मिस भीने सुमयंक मुख निपट बिराजत नूर। मनौ बीर उर काम के उगे आनि अंकूर।—पृ० रा०, १।७५५।

मिसकाली—संज्ञा पुं० [अ० **मिस्काल** (=**चार माशे की तौल** ?] एक प्रकार का पुराना सिक्का। उ०—बादशाह ने उस बाग के स्वामियों को जो उसके संबंधी थे एक सहस्र सिक्का मिसकाली दिया।—हुमायूँ०, पृ० ६।

मिसकीन—वि० [अ० **मिस्कीन**] १. जिसमें कुछ भी सामर्थ्य या बल न हो। बेचारा। दीन। २. नम्र। विनम्र। खाकसार। उ०—शाह सिकंदर देखकर, बहुत गए मिसकीन।—कबीर मं०, पृ० ११४। ३. गरीब। निर्धन। ४. सीधा सादा।

मिसकीनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिसकीन** + हिं० **ता** (प्रत्य०)] १. दीनता। गरीबी। २. नम्रता। उ०—एही दरबार है गरब तें सरब हानि, लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।—तुलसी (शब्द०)।

मिसकीनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिसकीन होने का भाव। दीन या दरिद्र होने का भाव।

मिसकौट—संज्ञा पुं० [हिं० **मिस्कोट**] गुप्त मंत्रणा। दे० 'मिस्कोट'। उ०—इधर तो यह मिसकौट हो रही थी।—रंगभूमि, भा०२, पृ० ५८६।

मिसटाँन, मिसठाँण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **मिष्टान्न**] दे० 'मिष्टान्न'। उ०—(क) साँपहि पैपान मिसटाँन महा अंमृत कै, उगलत कालकूट ह्वै मै अभिमान कै।—सुंदर० ग्रं० (जी०), पृ० १०४। (ख) अदतारौं घर ऊखरस, नँह कारण मिसठाँण। मन कारण मिसठाँणरो, जठै भूख रस जाण।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८१।

मिसन—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिसना** (=**मिलना**)] ऐसी भूमि जिसकी मिट्टी में बालू भी मिली हो। बालू मिली हुई मिट्टी की जमीन।

मिसना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० **मिश्रण**] मिश्रित होना। मिलना।

मिसना[2]—क्रि० अ० [हिं० **'मीसना' का अक० रूप**] मींजा या मला जाना। मीसा जाना।

मिसमार—वि० [अ० **मिस्मार**] नष्ट। समाप्त। ध्वस्त। उ०—एक साल और निकला था, शहर भर के मकानों को मिसमार कर दिया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५०८।

मिसमुखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मसि** + हिं० **मुख** + **ई** (प्रत्य०)] मसिमुखी। लेखनी। उ० – लेखन रदनी मिसमुखी कंठी कलम कहायो —अनेकार्थ०, पृ० ११२।

मिसर[1] – संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिस्र'।

मिसर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] श्रेष्ठ व्यक्ति। विद्वान्। पंडित। दे० 'मिश्र'। उ०—वेद पढ़ंता ब्राह्मण मारा सेवा करताँ स्वामी। अरथ करंतां मिसर पछाड्या, तूंर फिरै मैमंती।—कबीर ग्रं०, पृ० १५१।

मिसरा—संज्ञा पुं० [अ० **मिसरअ**] कविता, विशेषतः उर्दू या फारसी आदि की कविता का एक चरण। पद।

मुहा०—**मिसरा लगाना** = किसी एक मिसरे में अपनी ओर से रचना करके दूसरा मिसरा जोड़ना।

यौ०—**मिसरा तर** = सुंदर और उपयुक्त मिसरा। **मिसरा तरह**। **मिसरये सानी** = दूसरा मिसरा।

मिसरातरह—संज्ञा पुं० [अ० **मिसरा** + फ़ा० **तरह**] वह दिया हुआ मिसरा जिसके आधार पर उसी तरह की गजल कही जाती है। पूर्ति के लिये दी हुई (उर्दू या फारसी कविता की) समस्या।

मिसरी[1]—संज्ञा पुं० [अ० **मिस्री**] १. मिश्र देश का निवासी। मिश्र नामक राष्ट्र का नागरिक।

मिसरी[2]—संज्ञा स्त्री० १. मिस्र में बोली जानेवाली भाषा। मिस्र देश की भाषा। २. दोबारा बहुत साफ करके कूजे या थाल में जमाई हुई दानेदार या रवेदार चीनी। उ०—कहँ मिसरी कँह ऊँख रस नहीं पियूस समान। कलाकंद कतरा कहा तुव अधरा रस पान।—स० सप्तक, पृ० ३४६।

विशेष – प्रायः यह कूजे या कतरे के रूप में बाजारों में बिकती है। यह वैद्यक में स्निग्ध, धातुवर्धक, मुखप्रिय, बलकारक, दस्तावर, हलकी, तृप्तिकारी, सब प्रकार के रोगों को शांत करनेवाली और रक्तपित्त को दूर करनेवाली मानी गई है।

मुहा०—**मिसरी की डली** = बहुत ही मीठा या मधुर पदार्थ।

मिसरी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की शहद की मक्खी।

मिसरोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मिस्सा** + **रोटी**] १. मिस्से आटे की बनी हुई रोटी। विशेष दे० 'मिस्सा'। २. कंडे आदि पर सेंककर बनाई हुई बाटी। अंगाकड़ी।।

मिसल—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिसिल**] १. सिक्खों के वे अनेक समूह जो अलग अलग नायकों की अधीनता में स्वतंत्र हो गए थे।

विशेष—गुरु नानक के बंदा नामक शिष्य की देखादेखी और भी अनेक सिख सरदारों ने अपने अपने समूह स्थापित कर लिए थे, जिन्हें वे मिसल कहते थे। जैसे, भंगियों की मिसल, रामगढ़िया मिसल, अहलूवालिया मिसल आदि।

२. समूह । झुंड । पंक्ति । श्रेणी । दल । उ०—देखि कुसंग पाँव नहिं दीजै जहाँ न हरि की गल रे । जो ना मोक्ष मुक्ति कूँ चाहै संता बैसि मिसल रे ।—राम० धर्म०, पृ० १४५ । ज — गेर मिसल ठाढ़ों किया, अंतरजामी नाम ।—शिखर, पृ०, ३१० ।

मुहा०—**मिसल बिगाड़ना** = मुकदमे के सिलसिलेवार कागजात इधर उधर कर देना । उ०—क्रोध कोतवाल लोभ नाजर की मिसलत ज्ञान मुद्दई की जिन मिसल बिगारी है ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ । **मिसल बैठाना** = सिलसिला या क्रम ठीक करना । उ०—इस पेचदार बात की मिसल बैठाने के वास्ते मैं अपनी प्यारी मनमोहनी को बुलाता हूँ ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३४ ।

मिसलत, मिसलतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [**अ० मसलहत**] दे० 'मसलहत' । उ०—(क) क्रोध कोतवाल लोभ नाजर की मिसलत ज्ञान मुद्दई की जिन मिसल बिगारी है ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ (ख) करि मिसलति कौं सलि जुरी, सब भर सरस सुदेस । —ह० रासो, पृ० ५० ।

मिसहा—वि० [हिं० **मिस** (=बहाना) + **हा** (प्रत्य०)] बहाना करनेवाला । छल करनेवाला । उ०—मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुँह चूम्यौ ढिग जाइ । हँस्यौ खिसानी गल गह्यौ रही गरैं लपटाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

मिसानाⓅ—क्रि० स० [हिं० **मीसना का प्रे० रूप**] मीसने के लिये दूसरे को प्रेरित करना । मिसवाना । २. हटाना । दूर कराना । उ०—मन का मैल लेइ मिसाय । तब तिरबेनी घाट नहाय ।—जग० बानी, पृ० ११८ ।

मिसाल—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. उपमा । सादृश्य; जैसे,—लोग आँखों की मिसाल बादाम से देते हैं । २. उदाहरण । नमूना । नजीर । जैसे,—यों ही कहने से काम न चलेगा, कोई मिसाल भी दीजिए ।

क्रि० प्र०—**देना** ।

३. कहावत । लोकोक्ति । मसल । ४. चित्र । तसवीर (को०) । ५. परवाना । आदेशपत्र (को०) । ६. स्वप्नलोक जो स्थूल जगत् का ही एक रूप है ।

मिसालन—अव्य० [अ०] मिसाल के तौर पर । उदाहरण-स्वरूप [को०] ।

मिसाली—वि० [अ०] उदाहरणरूप । मिसाल रूप में । नमूने का [को०] ।

मिसि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी । बालछड़ । २. सौंफ । ३. सोआ । ४. अजमोदा । ५. खस ।

मिसिⓅ**²**—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिस' । उ०—संजोगी साधन मिसि अति सचु पायौ ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७३ ।

मिसिमिलⓅ—संज्ञा पुं० [अ० **बिसमिल्लाह**] दे० 'बिसमिल्लाह' । उ०—कतहु बाँग कतहु बेद, कतहु मिसिमिल कतहु छेद । कीर्ति०, पृ० ४२ ।

मिसिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिसरी' ।

मिसिल¹—वि० [अ०] समान । तुल्य । बराबर । दे० 'मिस्ल' ।

मिसिल²—संज्ञा स्त्री० १. किसी एक मुकदमे या विषय से संबंध रखने-वाले कुल कागज पत्रों आदि का समूह । २. किसी पुस्तक के अलग अलग छपे फार्म जो सिलाई आदि के काम के लिये क्रम से लगाकर रखे जाते हैं । ३. दे० 'मिसल' ।

मुहा०—**मिसल उठाना** = पुस्तक के अलग अलग फार्मों को सीने के लिये पहले एक क्रम से लगाना । (दफ्तरी) ।

मिसिली—वि० [हिं० **मिसिल + ई** (प्रत्य०)] १. जिसके संबंध में अदालत में कोई मिसल बन चुकी हो । २. जिसे न्यायालय में दंड मिल चुका हो । सजायाफ्ता ।

मुहा०—**मिसिलचोर या बदमाश** = बहुत बड़ा चोर या बदमाश जिसके अपराध अदालत की मिसिलों तक से प्रमाणित होते हों ।

मिसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **मिसि, मिषि, मिशी**] १. दे० 'मिशी' । २. दे० 'मिसि¹' ।

मिसी²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] स्त्रियों का एक दंतमंजन । दे० 'मिस्सी' [को०] ।

मिसीन†—संज्ञा स्त्री० [अं० **मशीन**] दे० 'मशीन' ।

मिसुⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिस' । उ०—होइहि एहि मिसु दिस्टि मेरावा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३० ।

मिस्कला—संज्ञा पुं० [अ० **मिस्कलह्**] सिकली करनेवालों का वह औजार जिसकी सहायता से वे सिकली करते हैं ।

मिस्काल—संज्ञा पुं० [अ० **मिस्क़ाल**] साढ़े चार मासे की या चार मासे और साढ़े तीन रत्ती की एक तौल । उ०—दूसरी मूर्ति में एक माणिक था जो पानी से भी ज्यादा साफ था और शीशे से भी ज्यादा चमकदार था, तौल में ४५० मिस्काल था ।—हिं० पु० रा०, पृ० ५५० ।

मिस्कीन—संज्ञा पुं० [अ०] १. दीन । बेचारा । उ०—कोई भी मिस्कीन मुसाफिर या मुहताज ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८५ । २. दरिद्र । गरीब । ३. भूखा नंगा । कंगाल । ४. सीधा सादा । सुशील ।

यौ०—**मिस्कीनसूरत** ।

मिस्कीनसूरत—वि० [अ० **मिस्कीन** + फ़ा० **सूरत**] जो देखने में सीधा सादा या दीन, पर वास्तव में दुष्ट या पाजी हो ।

मिस्कीनी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मिस्कीन + ई** (प्रत्य०)] १. दीनता । २. गरीबी । ३. सुशीलता ।

मिस्कीट—संज्ञा पुं० [अं० **मेस** (= **भोज**)] १. भोजन । खाना । २. एक साथ बैठकर खाने पीने वालों का समूह । ३. गुप्त परामर्श ।

मिस्टर—संज्ञा पुं० [**अं०**] महाशय । महोदय ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः अँगरेजों में अथवा अँगरेजी ढंग से रहनेवाले लोगों के नाम के साथ होता है । जैसे, मिस्टर जॉन, मिस्टर गुप्त ।

मिस्तर¹—संज्ञा पुं० [हिं० मिस्तरी ?] १. काठ का वह औजार

जिससे राज लोग छत या पलस्तर आदि पीटते हैं। पिटना। २. वह कल जिससे नील की टिकियाँ बनाई जाती हैं।

मिस्तर[1]—संज्ञा पुं० [अ०] दफ्ती का वह बड़ा टुकड़ा जिसपर समानांतर पर डोरे लपेट या सी लेते हैं और जो लिखने के समय लकीरें सीधी रखने के लिये लिखे जानेवाले कागज के नीचे रख लिया जाता है, अथवा जिसपर रखकर कागज दबा लिया जाता है।

मिस्तर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मेहतर'।

मिस्तरी—संज्ञा पुं० [अं० **मास्टर** (= उस्ताद)] वह जो हाथ का बहुत अच्छा कारीगर हो। चतुर शिल्पकार।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा लोहारों, बढ़इयों, राजगीरों और कल पेंच आदि का काम करनेवालों के लिये ही होता है।

मिस्तरीखाना—संज्ञा पुं० [हिं० **मिस्तरी** + फ़ा० **खाना**] वह स्थान जहाँ लोहार, बढ़ई या कल पेंच आदि का काम जाननेवाले बैठकर काम करते हैं।

मिस्ता†—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह मैदान जिसमें किसी प्रकार की हरियाली न हो। बंजर। २. अनाज दाँने के लिये तैयार की हुई सम भूमि।

मिस्त्री—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मिस्तरी'। उ०—आप अपने मिस्त्री-खाने जाकर मिस्त्री को समझा रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२।

यौ०—**मिस्त्रीखाना** = दे० 'मिस्तरीखाना'।

मिस्मार—वि० [अ०] ध्वस्त। नष्ट। उ०—बहिर घाव दीखै नहीं भीतर भया मिस्मार।—दरिया०, पृ० १०।

मिस्र—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध देश जो अफ्रिका के उत्तर पूर्वी भाग में समुद्र के तट पर है और जो बहुत प्राचीन काल में अपनी सभ्यता और उन्नति के लिये बहुत विख्यात था।

विशेष—इसके उत्तर में भूमध्यसागर, पूर्व में स्वेज की खाड़ी और पश्चिम में सहारा का रेगिस्तान है। दक्षिण में यह नील नदी के उद्गम तक चला गया है। नील नदी में प्रतिवर्ष बहुत बड़ी बाढ़ आती है जिसके कारण उसके आस पास का प्रदेश बहुत अधिक उपजाऊ है। इसके अंतर्गत चौदह प्रांत हैं। इसकी राजनगरी वा राजधानी काहिरा है और इसका सबसे बड़ा बंदरगाह अस्कंदरिया है। इधर बहुत दिनों से यह देश तुर्की के अधीन था और वहीं का राजप्रतिनिधि इसका शासन करता था; पर अब इसे अँगरेजों ने अपने संरक्षण में ले लिया। इस देश के विशुद्ध प्राचीन निवासी अब यहाँ नहीं रह गए हैं और उनकी वर्णसंकर संतान बची हैं, जिसका धर्म प्रायः इस्लाम और भाषा अरबी से उत्पन्न है। किसी समय में इस देश के निवासी उन्नति और सभ्यता की चरम सीमा पर पहुँच गए थे; और यह देश रोम, भारत, चीन आदि का समकक्ष माना जाता था; पर अब इसका पतन हो गया है। कहते हैं कि नूह के पुत्र मिस्र ने अपने नाम पर एक नगर बसाया था, जिसके नाम पर इस देश का नाम पड़ा। बड़े बड़े भवनों और इमारतों के जितने प्राचीन खँडहर इस देश में मिलते हैं, उतने और कहीं नहीं पाए जाते। पिरामिडों के लिये भी यह देश अत्यंत प्रसिद्ध है। अंग्रेजों का संरक्षण और उनकी इजारेदारी कर्नल नासिर के नेतृत्व में समाप्त करने के बाद अब मिस्र एक स्वतंत्र देश है।

मिस्रा—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'मिसरा'।

मिस्री—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'मिसरी'।

मिस्ल—वि० [अ०] समान। तुल्य। बराबर। जैसे,—यह घोड़ा मिस्ल तीर के जाता है।

मिस्सरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मिश्र**] पूज्य। आदरणीय। उ०—पाँधे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्लाँ कोरु। तिनाँ पास न भिटीयै जो सबदे दे चोरु।—संतवाणी०, पृ० ७०।

मिस्सा—संज्ञा पुं० [सं० **मिश्रण**, हिं० **मिसना** (= मिलना) या **मीसना** (= मलना)] १. मूँग, मोठ आदि का भूसा जो भेड़ों और ऊँटों के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। २. कई तरह की दालों आदि को पीसकर तैयार किया हुआ आटा जिसकी रोटी गरीब लोग बनाकर खाया करते हैं। ३. किसी प्रकार की दाल को पीसकर तैयार किया हुआ मोटा आटा जिसकी रोटी बनाकर गरीब लोग खाते हैं।

यौ०—**मिस्सा कुस्सा** = (१) बहुत ही मोटा अनाज या उसका बना खाद्यपदार्थ। (२) मोटा अन्न। कदन्न।

मिस्सी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मिसी** (= ताँबे का)] १. एक प्रकार का प्रसिद्ध मंजन जो माजूफल, लोहचून और तूतिए आदि से तैयार किया जाता है और जिसे सधवा स्त्रियाँ दाँतों में लगाती हैं। इससे दाँत काले हो जाते और सुंदर जान पड़ते हैं। उ०—पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हैगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६०।

क्रि० प्र०—**मलना**।—**लगाना**।

मुहा०—**मिस्सी काजल करना** = स्त्रियों का बनाव सिंगार करना। मिस्सी और काजल आदि लगाना।

यौ०—**मिस्सीदान या मिस्सीदानी** = मिस्सी रखने का पात्र या डिबिया।

२. किसी वेश्या का पहले पहल किसी पुरुष से समागम होना, जिसके उपलक्ष में प्रायः कुछ गाना बजाना और जलसा भी होता है। सिर ढकाई (मुसलमान वेश्या)।

मिहंताना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मेहनताना'। उ०—बहुत अधिक मिहंताना लेकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७५।

मिहँदीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेन्धिका**] दे० 'मेहँदी'। उ०—बिरी अधर, अंजन नयन, मिहँदी पग अरु पानि।—मति० ग्रं०, पृ० ३४६।

मिह—संज्ञा पुं० [सं०] बरसता हुआ बादल। मेह।

मिहचना†—क्रि० स० [हिं० **मीचना**] दे० 'मीचना'। उ०—प्रीतम दृग मिहचत प्रिया पानि परस सुखु पाइ। जानि पिछानि अजान लौं नैकुँ न होति जनाइ।—बिहारी (शब्द०)।

मिहतर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मेहतर'।

मिहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० मिह(=मिहनत)+दार (प्रत्य०)] वह मजदूर जिसे नकद मजदूरी दी जाती हो, अन्न आदि के रूप में न दी जाती हो। (रुहेल०)।

मिहदीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मेन्धिका] दे० 'मेहँदी'। उ०—बदन पर अकसर गहने, भौं मिहदी से रँगते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २४।

मिहनत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'मेहनत'।

मिहनताना—संज्ञा पुं० [अ० **मिहनत**] दे० 'मेहनताना'।

मिहनती—वि० [हिं० **मिहनत + ई**] दे० 'मेहनती'।

मिहना—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेहना**] दे० 'मेहना'।

मिहमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मेहमान**] दे० 'मेहमान'।

मिहमानदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मेहमानदारी**] दे० 'मेहमानदारी'।

मिहमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेहमानी'।

मिहरⓅ[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मिहिर**] सूर्य।

मिहर[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मेहर**] दे० 'मेहर'। उ०—करहा सुणि सुदर कहइ मिहर करउ मों आज।—ढोला०, दू० ३५५।

यौ०—**मिहरनजर**=कृपादृष्टि। उ०—कहर नजर कूँ छाँड़ि के मिहर नजर कूँ कीजै। सत कोटि गोपियों का उग्ता सबाब लीजै।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४१।

मिहरबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मेह्रबाँ**] दे० 'मेहरबान'।

मिहरबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मेहरबानी**] दे० 'मेहरबानी'।

मिहरा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मेहरा'। २. दे० 'महरा'।

मिहराना‡—क्रि० अ० [हिं० **मेह या मेहरा**] कुछ कुछ आर्द या नम होना।

मिहराब—संज्ञा स्त्री० [अ० मिहराब, **मेहराब**] दे० 'मेहराब'। उ०—कुदरती काबे की तू मिहराब में सुन गौर से। आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये।—संत तुरसी, पृ० ५।

मिहरारू†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेहरारू'।

मिहलⓅ—संज्ञा पुं० [अ० **महल**] दे० 'महल'। उ०—पाच पचीसो तीन गुण, एक मिहल में राख।—कबीर सा०, पृ० ८७१।

मिहानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **महना**] दे० 'मथानी'।

मिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आसमान से पड़नेवाली बरफ। पाला। २. ओस। ३. कपूर।

मिहिर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। उ०—करना होगा यह तिमिर पार। देखना सत्य का मिहिर द्वार।—तुलसी०, पृ० २०। २. आक का पौधा। ३. ताँबा। ४. बादल। ५. हवा। ६. चंद्रमा। ७. राजा। ८. दे० 'वराहमिहिर'।

मिहिर[२]—वि० वृद्ध। बुड्ढा।

मिहिरकुल—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मह्रगुल का सं० रूप**] शाकल प्रदेश के प्रसिद्ध हूण राजा तोरमाण (तुरमान शाह) के पुत्र का नाम।

विशेष—इसने गुप्त सम्राटों पर विजय प्राप्त करके मध्य भारत पर अधिकार जमाया था। यह बौद्धों का बहुत बड़ा शत्रु था। एक बार मगध के राजा बालादित्य ने इसे पकड़ लिया था; पर फिर अपनी माता के कहने से छोड़ दिया था। इसने कुछ दिनों तक काश्मीर पर भी शासन किया था। यह ईसवी छठी शताब्दी के मध्य में हुआ था।

मिहिराण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मिहींⓅ—वि० [हिं०] दे० 'महीन'। उ०—जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो, चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरैं।—मतिराम (शब्द०)।

मिही[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. मध्य प्रदेश में होनेवाली एक प्रकार की अरहर जिसके दाने कुछ बड़े होते हैं, और जो कुछ देर में तैयार होती है। २. गंडक नदी का एक प्राचीन नाम। उ०—आजकल जिसे गंडक कहते हैं, उन दोनों उसका नाम मिही था।—वैशाली०, पृ० १।

मिहीⓅ[२]-वि० [हिं० **महीन**] १. झीना। महीन। दे० 'मिहीं'। २. आर्द्र। तर। गीला। उ०-मिही अगौंछनि पोंछ लै फैल्यो काजर नैन। सरद चंद अति मँद यह चाहत समता ऐन।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

मिहीन†—वि० [हिं०] दे० 'महीन'। उ०-कबहु बादले रँग रँग के कतरि मिहीन उड़ावै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१०।

मींगनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मेंगनी'।

मींगी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्‌गा (=दाल)] बीज के अंदर का गूदा। गिरी।

मींचना-क्रि० स० [सं० **मिष** (=झपकना) या **अभ्यंजन**] दे० 'मीचना'। उ०—छिपने पर स्वयं मृदुल कर से, क्यों मेरी आँखें मींच रही।—कामायनी, पृ० ६७।

मींजना†[१]—क्रि स० [हिं० **मींडना**] १. हाथों से मलना। मसलना। जैसे, छाती मींजना, हाथ मींजना। २. मर्दन करना। दलना। रगड़ना।

मींजना[२]†-क्रि० स० [हिं० **मीचना**] मूँदना। बंद करना। (आँखों के लिये)। उ०—दूध माँझ जस घीउ है समुद माँह जस मोति। नैन मीजि जो देखहु चमक उठै तस जोति।—जायसी (शब्द०)।

मींटनाⓅ‡—क्रि० स० [हिं० **मीचना, मीटना**] दे० 'मींचना'। उ०—समाधि लगाइ करि आँखि मींटियतु है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६५७।

मींड़--संज्ञा स्त्री० [सं० **मीड्म्**] संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय मध्य का अंश इस सुंदरता से कहना जिसमें दोनों स्वरों के बीच का संबंध स्पष्ट हो जाय, और यह न जान पड़े कि गानेवाला एक स्वर से कूदकर दूसरे स्वर पर चला आया है। जैसे, 'सा' का उच्चारण करने के उपरांत 'रि' का उच्चारण करते समय पहले कोमल रिषभ का उच्चारण करना। गमक।

विशेष—मींड़ की आवश्यकता किसी स्वर से केवल उसके दूसरे परवर्ती स्वर पर ही जाने में नहीं पड़ती बल्कि किसी एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाने अथवा उतरने में भी पड़ती है। अर्थात् आरोहण और अवरोहण दोनों में उसके लिये स्थान है।

जैसे, 'सा' के उपरांत 'म' का अथवा नि' के उपरांत 'ग' का उच्चारण करने में भी मींड़ का प्रयोग हो सकता और होता है। स्वरों की मूर्छनाओं का उच्चारण मीड़ की सहायता से ही होता है। देशी बाजों में से बीन, रबाब, सरोद, सितार, सारंगी आदि में मींड़ बहुत अच्छी तरह निकाली जाती है, पर पियानो और हारमोनियम आदि अँगरेजी ढंग के बाजों में यह किसी प्रकार निकल ही नहीं सकती। विद्वानों का यह भी मत हैं कि मींड निकालने के लिये स्त्रियों के कंठ की अपेक्षा पुरुषों का कंठ बहुत अधिक उपयुक्त होता है; और इसका कारण यह है कि पुरुषों की स्वरनालिका स्त्रियों की स्वरनालिका की अपेक्षा अधिक लंबी होती है।

मीँडक(पु) – संज्ञा पुं० [हिं० **मेढक**] दे० 'मेढक'। उ०—(क) मन मींडक यूँ मारिये संका सरन निवारि।—दादू०, पृ० १५१। (ख) मान कियोड़ी महल ज्यूँ बुगला ज्यूँ कम बोल। मावड़ियाँ घर मींड़को पुरुखपणारी पोल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २३।

मींडना[१]†—क्रि० स० [हिं० **माँड़ना**] १. हाथों से मलना। मसलना। जैसे, आटा मींडना। २. (आँखें) मलना। बार बार (आँखें) दबाना। उ०—सो वह आँख मींडि मींडि कै फिर फिरि के देखन लाग्यो, जो मोकों यह भ्रम तो नहीं भयो।—दो सौ बावन०, भा०२, पृ० ६।

मींड़ासींगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेंढ़ासींगी।

मींत(पु)—वि० [सं० **मत्त**] दे० 'मत्त'। उ०—मनों मतवार लरैं रस मींत।—पृ० रा०, ६१। ६४०।

मींयाँ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मियाँ**] दे० 'मियाँ'। उ०—मींयाँ मैंढ़ा आव घरि, वाढी बत्ता लोइ।—दादू० पृ० ६३।

मीआद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. किसी कार्य की समाप्ति आदि के लिये नियत समय। अवधि।

क्रि० प्र० - **गुजरना**।—**बढ़ना**।—**बढ़ाना**।—**बीतना**।

२. कारागार के दंड का काल। कैद की अवधि।

मुहा०—**मीआद काटना**=कारागार का दंड भोगना। सजा भुगतना। **मीआद बोलना**=कारावास का दंड देना। कैद की सजा देना।

मीआदी—वि०[हिं० मीआद+ई (प्रत्य०)] १. जिसके लिये कोई समय या अवधि निश्चित हो जैसे, मीआदी हुंडी।

यौ०—**मीआदी बुखार**=एक प्रकार का ज्वर जो दो सप्ताह से लेकर छह् सप्ताह तक चलता है।

२. जो कारागार में रह चुका हो। जो जेलखाने में रहकर सजा भुगत चुका हो। जैसे, मीआदी चोर।

मीआदी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीआदी** + **हुंडी**] वह हुंडी जिसका रुपया तुरंत न देना पड़े, बल्कि एक नियत समय या अवधि पर देना पड़े। वह हुंडी जो मिति पूजने पर भुगताई जाय।

मीच(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृत्यु**, **प्रा० मिच्चु**] मृत्यु। मौत। उ०—मीच गई जर बीच ही बिरहानल की भार।—मतिराम (शब्द०)।

मीचना – क्रि० स० [सं० **मिष** (=झपकना) **या** मिच्छ (=रोकना)] (आँखें) बंद करना। मूँदना।

मीचु(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृत्यु**, **प्रा०** मिच्चु] मृत्यु। मौत।

मीजना—क्रि० स० [सं० **मर्दन**] दे० 'मींजना'।

मीजा†—संज्ञा स्त्री० [अ० मिज़ाज] १. अनुकूलता। २. स्वभाव।

मुहा०—**मीजा पटना या मिलना**=दो व्यक्तियों का परस्पर मेल जोल होना। स्वभाव मिलने के कारण मेल होना।

३. संमति। राय।

क्रि० प्र०—लेना।

मीजान—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तुला। तराजू। २. तुला राशि। ३. कुल संख्याओं का योग। जोड़। (गणित)।

क्रि० प्र०—**देना**।—**लगाना**।

यौ०—**मीजान मिलना**=जमा खर्च का जोड़ बराबर होना।

४. दे० 'मीजा'।

मीटना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मीचना'।

मीटर—संज्ञा पुं० [अ०] वह यंत्र या मशीन जो व्यय किए गए पानी या बिजली आदि की मात्रा बतलाती है।

मीटिंग—संज्ञा स्त्री० [अ०] परामर्श आदि के लिये एक स्थान पर बहुत से लोगों का जमावड़ा। अधिवेशन। सभा।

मीठ(पु) - वि० [सं० **मिष्ट**, **प्रा० मिट्ठ**] प्रिय। रुचिकर। मधुर। दे० 'मीठा-६'। उ०—मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारैं जान।—पलटू०, भा० १, पृ० ६।

मीठम(पु)—वि० [सं० **मिष्ट**+**तम** (प्रत्य०)] दे० 'मीठा—१'। उ०—ऊख गिरी धर ऊपरै, पल खाँडांमय आब। तूंबा मीठम होय तौ, सूबाँ, होय सबाब।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८१।

मीठा[१]—वि० [सं० **मिष्ट**, **प्रा०** **मिट्ठ**] [वि० स्त्री० **मीठी**] १. जो स्वाद में मधुर और प्रिय हो। चीनी या शहद आदि के स्वाद-वाला। 'खट्टा' या 'नमकीन' का उलटा। मधुर। जैसे,—(क) जितना गुड़ डालोगे उतना, मीठा होगा। (ख) यह आम बहुत मीठा है।

मुहा०—**मीठा और कठौता भर**=अच्छा भी और अधिक भी। जो चीज अच्छी होती है वह अधिक मात्रा में नहीं मिलती। उ०—मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु खेम।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८। **मीठा होना**=किसी प्रकार के लाभ या आनंद आदि की प्राप्ति होना। अपने पक्ष में कुछ भलाई होना। जैसे,—हमें ऐसा क्या मीठा है, जो हम नित्य दौड़ दौड़कर तुम्हारे पास आया करें।

२. जिसका स्वाद बहुत अच्छा हो। स्वादिष्ट। जायकेदार। जैसे, मीठा मीठा हप, कड़ुआ कड़ुआ थू। ३. धीमा। सुस्त। जैसे,—यह घोड़ा कुछ मीठा चलता है। ४. जो बहुत अच्छा

न हो। साधारण या मध्यम श्रेणी का। मामूली। ५. जो तीव्र या अधिक न हो। हलका। मद्धिम। मंद। जैसे,—आज सबेरे से पेट में मीठा मीठा दर्द हो रहा है।

यौ०—**मीठा मीठा** = हलका हलका। मंद। जैसे, दर्द।

६. जिसमें पुंस्त्व न हो, या कम हो। नामर्द। नपुंसक। ७. जो गुदाभंजन कराता हो। औंधा। ८. जो बहुत अधिक सुशील हो। किसी का कुछ भी अनिष्ट न करनेवाला। बहुत अधिक सीधा। जैसे,—इतने मीठे न बनो कि कोई चट कर जाय। ९. प्रिय। रुचिकर। जैसे, मीठे वचन, मीठी बात। उ०—वह चाहता है कि हम सबसे मीठे बने रहें।

मीठा[2]—संज्ञा पुं० १. मीठा खाद्यपदार्थ। मिठाई। २. गुड़। ३. हलुआ। ४. एक प्रकार का कपड़ा जो प्रायः मुसलमान लोग पहनते हैं और जिसे शीरींबाफ भी कहते हैं। ५. मीठा तेलिया। बछनाग नामक विष। ६. मीठा नीबू।

मीठा अमृतफल—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + अमृतफल**] मीठा चकोतरा।

मीठा आलू—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + आलू**] शकरकंद।

मीठा इंद्रजौ—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + इंद्रजौ**] कृष्ण कुटज। काली कुड़ा।

मीठा कद्दू—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + कद्दू**] कुम्हड़ा।

मीठा गोखरू—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + गोखरू**] छोटा गोखरू।

मीठा चावल—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + चावल**] वह चावल जो चीनी या गुड़ के शरबत में पकाया गया हो।

मीठा जहर—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + अ० जहर**] वत्सनाभ। बछनाग विष।

मीठा जीरा—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + जीरा**] १. काला जीरा। २. सौंफ।

मीठा ठग—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + ठग**] झूठा और कपटी मित्र। जो ऊपर से मिला रहे, पर धोखा दे।

मीठा तंबाकू—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + तंबाकू**] तंबाकू जो कड़ी न हो। तीखापन दूर करने के लिये जूसी मिली तंबाकू।

मीठा तेल—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + तेल**] १. तिल का तेल। २. पोस्ते के दाने या खसखस का तेल।

मीठा तेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + तेलिया**] बछनाग। वत्सनाभ विष।

मीठा नीबू—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + नीबू**] जमीरी नीबू। चकोतरा।

मीठा नीम—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + नीम**] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में पाया और कहीं कहीं लगाया जाता है।

विशेष—इसमें एक प्रकार की मीठी गंध निकलती है। इसकी छाल पतली और खाकी रंग की होती है और पत्ते बकायन या नीम के पत्तों के समान होते हैं। इसके फल भी नीम के फल के ही समान होते हैं जो कच्चे रहने पर हरे, और पकने पर काले हो जाते हैं। इनमें दो बीज रहते हैं। चैत बैसाख में इसके गुच्छों में छोटे छोटे फूल लगते हैं। इसकी जड़, छाल और पत्तियाँ औषध के रूप में काम आती हैं। वैद्यक में इसे चरपरा, कड़ुआ, कसैला और दाह, बवासीर, शूल आदि का नाशक माना गया है।

मीठा पानी—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + पानी**] नीबू का अँगरेजी सत मिला हुआ पानी जो बाजारों में बंद बोतलों में मिलता है। लेमनेड।

मीठा पोइया—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + पोइया**] घोड़े की वह चाल जो न बहुत तेज हो और न बहुत धीमी।

मीठा प्रमेह—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा** + सं० **प्रमेह**] मधुमेह।

मीठा बरस—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + बरस**] स्त्रियों की अवस्था का अठारहवाँ और कुछ लोगों के विचार से तेरहवाँ बरस जो उनके लिये कठिन समझा जाता है। मीठा साल।

मीठा भात—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा + भात**] दे० 'मीठा चावल'।

मीठा विष—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा** + सं० **विष**] वत्सनाभ। बछनाग।

मीठा साल—संज्ञा पुं० [हिं० **मीठा** + फ़ा० **साल**] दे० 'मीठा बरस'।

मीठी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'मीठा[1]'।

मुहा०—**मीठी को खट्टी मान लेना** = अन्यथा बुद्धि होना। और का और समझ लेना। कुछ का कुछ समझ लेना। उ०—जाति को है अगर जिला रखना। तीन मीठी को मान ले खट्टी।—चुभते०, पृ० ५६।

मीठी खरखोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + खरखोड़ी**] पीली जीवंती। स्वर्ण जीवंती।

मीठी गाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + गाली**] मधुर गाली। वह गाली जो अप्रिय न लगे। जैसे, विवाहादि के अवसर पर गाई हुई गाली।

मीठी छुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + छुरी**] १. वह जो देखने में मित्र, पर वास्तव में शत्रु हो। विश्वासघातक। २. वह जो देखने में सीधा पर वास्तव में दुष्ट हो। कपटी। कुटिल।

मुहा०—**मीठी छुरी चलाना** = विश्वासघात करना कपट करना। उ०—हमारे हित के मूल में मीठी छुरी चलाते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१२।

मीठी तूँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + तूँबी**] कद्दू।

मीठी दियार—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + दियार**] महापीलू वृक्ष।

मीठी नजर—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी** + अ० **नजर**] प्रेम की निगाह। प्रेमभरी नजर।

मीठी नींद—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मीठी + नींद**] सुखभरी नींद। आराम और निश्चिंतता की नींद। उ०—दो घड़ी के मेहमान हैं और

बहुत जल्द ऐसी मीठी नींद सोएँगे कि हश्र (हश्र) तक न जागेंगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७।

मीठी मार—संज्ञा स्त्री० [हिं० मीठी + मार] ऐसी मार जिसकी चोट अंदर हो और जिसका ऊपर से कोई चिह्न न दिखाई दे। भीतरी मार।

मीठी लकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मीठी + लकड़ी] मुलेठी।

मीड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० मींड] दे० 'मींड़'। उ०—भावती मीड़ मरोर दिए घन आनंद सौगुने रंग सों गाजै।—घनानंद, पृ० ४४।

मीडक†—संज्ञा पुं० [हिं० मेढक] [स्त्री० मीडकी] मंडूक। मेढक।

मीड़नाⓅ—क्रि० स० [हिं० माँड़ना (= मींजना) सं० मर्दन] मलना। दे० 'मींडना'। उ०—गजराज इंद्र दिष्षै न तथ्थ। मीडंत मष्षिका जेम हथ्थ।—पृ० रा०, २।३६७।

मीढ़—वि० [सं०] १. पेशाब किया हुआ। मूत्र के मार्ग से निकला या निकाला हुआ। २. मूत्र के समान। मूत्र का सा।

मीढुष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

मीढुष[2]—वि० दयार्द्र। रहमदिल।

मीढुष्टम—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. सूर्य। ३. चोर।

मीढ्वा—संज्ञा पुं० [सं० मीढ्वस्] दे० 'मीढुष्टम' [को०]।

मीत—संज्ञा पुं० [सं० मित्र, प्रा० मित्त] मित्र। दोस्त। उ०—(क) मीत भै माँगा वेगि बिवानू। चला सूर सँवरा अस्थानू।—जायसी (शब्द०)। (ख) हम हीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी। इक हमहीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी।—भारतेंदु (शब्द०)।

मीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। उ०—(क) कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े।—मानस, २।७०। (ख) बिरंच महादेव से मीन बहुतै जहाँ होय परगट कभी जोत मारा।—चरण० बानी, पृ० १३०। २. मेष आदि राशियों में से अंतिम या बारहवीं राशि।

विशेष—इस राशि में पूर्वभाद्रपद नक्षत्र का अंतिम पद और उत्तर भाद्रपद तथा रेवती नक्षत्र हैं। इस राशि की अधिष्ठात्री देवियाँ दो मछलियाँ हैं और यह चरणरहित, कफप्रकृति, जलचारी, निःशब्द, पिंगलवर्ण, स्निग्ध, बहुत संतानवाली और ब्राह्मण वर्ण की मानी गई है। कहते हैं, इस राशि में जो जन्म लेता है, वह क्रोधी, तेज चलनेवाला, अपवित्र और अनेक विवाह करनेवाला होता है।

पर्या०—क्षीट। जलज। सौम्य। अंगन। युग्म। सय। भक्ष्य। गुरुक्षेत्र। दीनात्मक।

३. मेष आदि बारह लग्नों में से अंतिम लग्न।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस लग्न में जन्म लेनेवाला कार्यदक्ष, अल्पभोजी, स्त्री का बहुत कम साथ करनेवाला, चंचल, अनेक प्रकार की बातें करनेवाला, धूर्त, तेजस्वी, बलवान्, विद्वान्, धनवान्, चर्मरोगी, विकृतमुख, पराक्रमी, पवित्रतापूर्वक और शास्त्रानुकूल आचार आदि से रहनेवाला, विनीत, संगीतप्रेमी, कन्या संततिवाला, कीर्तिशाली, विश्वासी और धीर होता है और इसकी मृत्यु मूत्रकृच्छ्र, गुह्य रोग या उपवास आदि से होती है।

मीनक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नयनांजन। एक तरह का सुरमा।

मीनकान्त—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर।

मीनकेत—संज्ञा पुं० [सं० मीनकेतु] दे० 'मीनकेतन'। उ०—तेरी ये बंसी लगै मीनकेत कौ बान।—स० सप्तक, पृ० १८७।

मीनकेतन[1]—वि० [सं०] जिसकी पताका में मीन का चिह्न हो। उ०—हुआ होगा बनना सफल जिसे देखकर मंजु मीनकेतन अनंग का।—लहर, पृ० ८३।

मीनकेतन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मीनकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

मीनगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० मीनगन्धा] मत्स्यगंधा या सत्यवती का एक नाम।

मीनगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मीनगन्धिका] दे० 'मीनगोधिका'। [को०]।

मीनगोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाशय, तालाब या झील आदि।

मीनघाती[1]—संज्ञा पुं० [सं० मीनघातिन्] बगला।

मीनघाती[2]—वि० मछली मारनेवाला।

मीनतिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० विनती] दे० 'विनती'। उ०—पुन सराहिय सुंदरि मीनति जाहीरे।—विद्यापति, पृ० २२०।

मीनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

मीननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ का एक नाम। मछंदरनाथ।

मीननेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़र दूब।

मीनपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] कुटकी नामक ओषधि।

मीनमेख—संज्ञा पुं० [सं० मीन + मेष] सोच विचार। आगापीछा। असमंजस। उ०—(क) मीनमेख भा नारि के लेखे। कस पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे।—जायसी (शब्द०)। (ख) मीनमेख बिनु बात करत तुम कहूँ मिथुन ललचाने।—भारतेंदु० ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६।

मुहा०—मीनमेख निकालना = (१) गुणदोष निकालना। गुणदोष देखना। उ०—तुम उसमें ख्वामख्वाह मीनमेख निकालने लगते हो।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ६३३। (२) सोचविचार या आगापीछा।

मीनरंक—संज्ञा पुं० [सं० मीनरङ्क] जलकौवा। मुरगाबी। मीनरंग।

मीनरंग—संज्ञा पुं० [सं० मीनरङ्ग] १. मछरंग नामक पक्षी जो मछली खाता है। २. जलकौआ।

मीनर—संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष। सहोरा। २. मकर। घड़ियाल (को०)।

मीनहाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मीन + हा (प्रत्य०)] वंशी जिससे मछली पकड़ी जाती है। उ०—बडिस कुबेनी मीनहा मत्स्याधानी नाम।—अनेकार्थ०, पृ० ६२।

मीनांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० मीनाण्डी] एक प्रकार की शक्कर।

मीना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊषा की कन्या का नाम जिसका विवाह कश्यप से हुआ था।

मीना[2]—संज्ञा पुं० [देश०] राजपूताने की एक प्रसिद्ध योद्धा जाति। उ०—च्यारि सहस मीना प्रबल बैठे आइ बलाइ।—पृ० रा०, ७। ७८।

विशेष—इस जाति के लोग बहुत वीर होते हैं और युद्ध में इनकी प्रवृत्ति बहुत होती है। किसी समय ये बहुत बलशाली थे और प्रायः लूटमार करके अपना निर्वाह करते थे। महाराणा प्रताप को अपने युद्धों में इनसे बहुत सहायता मिली थी।

मीना[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. रंग बिरंगा शीशा। २. एक प्रकार का नीले रंग का कीमती पत्थर। ३. कीमिया। ४. सोने, चाँदी आदि पर किया जानेवाला रंग बिरंग का काम।

यौ० मीनाकारी।

५. शराब रखने का कंटर या सुराही। उ०—मीना की ग्रीवा से झर झर गाती हो मदिरा स्वर्णिम स्वर।—मधु०, पृ० ६४।

मीनाकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो चांदी या सोने आदि पर रंगीन काम बनाता हो। मीना करनेवाला।

मीनाकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. सोने या चाँदी पर होनेवाला रंगीन काम। २. किसी काम में निकाली या की हुई बहुत बड़ी बारीकी।

मुहा०—**मीनाकारी छाँटना**=व्यर्थ का छिद्रान्वेषण करना। निरर्थक दोष निकालना। बाल की खाल निकालना।

मीनाक्ष[1]—वि० [सं०] मछली के समान सुंदर आँखोंवाला।

मीनाक्ष[2]—संज्ञा पुं० एक राक्षस का नाम।

मीनाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भगवती दुर्गा का एक नाम। एक एक देवी जिनकी मूर्ति मदुराइ (तमिलनाडु) में है। २. कुबेर की कन्या का नाम। ३. गाड़र दूब। ४. ब्राह्मी बूटी। ५. शक्कर। चीनी।

मीनाबाजार—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीनाबाजार] १. बाजार जिसमें हीरा मोती जैसी कीमती वस्तुएं बिकती हों। २. वह बाजार जिसमें स्त्रियों के उपयोग का ही सारी चीजें हों और जिन्हें वे ही खरीदती बेचती हों। उ०—इस उत्सव में मीनाबाजार भी लगाया जाता था, जहाँ सब अमीर उमरावों की स्त्रियाँ आकर दुकानें लगाती थीं और सौदा भी प्रायः जनाना रखा जाता था।—राज० इति०, पृ० ७६६।

विशेष—अकबर ने एक ऐसे ही बाजार का संचालन किया था।

मीनाम्रीण—संज्ञा पुं० [सं०] खंजरीट पक्षी। ममोला। खंजन।

मीनार—संज्ञा स्त्री० [अ० मनार] १. ईंट, पत्थर आदि की वह चुनाई जो प्रायः गोलाकार चलती है। यह प्रायः किसी प्रकार की स्मृति के रूप में तैयार की जाती है। स्तंभ। लाठ। २. मसजिदों आदि के कोनों पर बहुत ऊँची उठी हुई इसी प्रकार की गोल इमारत जो खंभे के रूप में होती है। ३. वह ऊँचा स्थान जहाँ रोशनी की जाती है।

मीनारा—संज्ञा पुं० [अ० मनारह्, हिं० मीनार] दे० 'मीनार'।

मीनालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

मीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मीन] दे० 'मीन'। उ०—बग मीनी का ध्यान धरि, पसू बिचारे खाइ।—दादू०, पृ० २०७।

मीमांसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो किसी बात की मीमांसा करता हो। मीमांसा या व्याख्या करनेवाला। आलोचक। समीक्षक। उ०—श्रव्य काव्य के मीमांसक वाणी के वैचित्र्य को काव्य का लक्षण मानते थे और दृश्य काव्य के विवेचक रस का।—रस०, पृ० १। २. वह जो मीमांसा शास्त्र का ज्ञाता हो। मीमांसा का पंडित। ३. पूर्व मीमांसा के सूत्रकार जैमिनि ऋषि। ४. कुमारिल भट्ट का एक नाम। ५. भाष्यकार शबरस्वामी का एक नाम। ६. रामानुज का एक नाम। ७. माधवाचार्य का एक नाम।

मीमांसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मीमांसित] किसी प्रश्न की मीमांसा या निर्णय करने का काम।

मीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी तत्व का विचार, निर्णय या विवेचन। अनुमान, तर्क आदि द्वारा यह स्थिर करना कि कोई बात कैसी है। उ०—अश्लीलता की मीमांसा के समय अपने पक्ष को न देखकर दूसरे पक्ष को भी देखना चाहिए।—रस क०, पृ० ४। २. हिंदुओं के छह् दर्शनों में से दो दर्शन जो पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा कहलाते हैं।

विशेष—साधारणतः मीमांसा शब्द से पूर्व मीमांसा का ही ग्रहण होता है; उत्तर मीमांसा 'वेदांत' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है।

३. जैमिनि कृत दर्शन जिसे पूर्व मीमांसा कहते हैं और जिसमें वेद के यज्ञपरक वचनों की व्याख्या बड़े विचार के साथ की गई है।

विशेष—इसके सूत्र जैमिनि के हैं और भाष्य शबर स्वामी का है। मीमांसा पर कुमारिल भट्ट के 'कातंत्रवार्तिक' और 'श्लोकवार्तिक' भी प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य ने भी 'जैमिनीय न्यायमाला विस्तार' नामक एक भाष्य रचा है। मीमांसा शास्त्र में यज्ञों का विस्तृत विवेचन है, इससे इसे 'यज्ञविद्या' भी कहते हैं। बारह अध्यायों में विभक्त होने के कारण यह मीमांसा 'द्वादशलक्षणी' भी कहलाती है।

'न्यायमाला विस्तार' में माधवाचार्य ने मीमांसासूत्रों के विषय में संक्षेप में इस प्रकार बताया है—पहले अध्याय में विधि, अर्थवाद, मंत्र, स्मृति और नामधेय की प्रामाणिकता का विचार है। दूसरे में अपूर्व कर्म और उसके फल का प्रतिपादन तथा विधि और निषेध की प्रक्रिया है; तीसरे में श्रुति लिंग वाक्यादि की प्रमाणता और अप्रमाणता कही गई है; चौथे में नित्य और नैमित्तिक यज्ञ का विचार है; पाँचवें में यज्ञों और श्रुतियों के पूर्वापर संबंध पर विचार किया गया है; छठे में यज्ञों के करने और करानेवालों के अधिकार का निर्णय है; सातवें और आठवें में एक यज्ञ की विधि को दूसरे यज्ञ में करने का वर्णन है; नवें में मंत्रों के प्रयोग का विचार है; दसवें में यज्ञों में कुछ कर्मों के

करने या न करने से होनेवाले दोषों का वर्णन है; ग्यारहवें में तंत्रों का विचार है; और बारहवें में प्रसंग का तथा कोई इच्छा पूर्ण करने के हेतु यज्ञों के करने का विवेचन है। इसी बारहवें अध्याय में शब्द के नित्यानित्य होने के संबंध में भी सूक्ष्म विचार करके शब्द की नित्यता प्रतिपादित की गई है। मीमांसा में प्रत्येक अधिकरण के पाँच भाग हैं—विषय, संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और सिद्धांत। अतः सूत्रों को समझने के के लिये यह जानना आवश्यक होता है कि कोई सूत्र इन पाँचों में से किसका प्रतिपादक है।

इस शास्त्र में वाक्य, प्रकरण, प्रसंग या ग्रंथ का तात्पर्य निकालने लिये बहुत सूक्ष्म नियम और युक्तियाँ दी गई हैं। मीमांसकों का यह श्लोक सामान्यतः तात्पर्यनिर्णय के लिये प्रसिद्ध हैं—

उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्ग तात्पर्यनिर्णये।

अर्थात् किसी ग्रंथ या प्रकरण के तात्पर्यनिर्णय के लिये सात बातों पर ध्यान देना चाहिए—उपक्रम (आरंभ), उपसंहार (अंत), अभ्यास (बार बार कथन), अपूर्वता (नवीनता), फल (ग्रंथ का परिणाम वा लाभ जो बताया गया हो), अर्थवाद (किसी बात को जी में जमाने के लिये दृष्टांत, उपमा, गुणकथन आदि के रूप में जो कुछ कहा जाय और जो मुख्य बात के रूप में न हो), और उपपत्ति (साधक प्रमाणों द्वारा सिद्धि)। मीमांसक ऐसे ही नियमों के द्वारा वेद के वचनों का तात्पर्य निकालते हैं। शब्दार्थों का निर्णय भी विचारपूर्वक किया गया है। जैसे,—यज्ञ के लिये जहाँ 'सहस्र संवत्सर' हो, वहाँ 'संवत्सर' का अर्थ दिवस लेना चाहिए, इत्यादि।

मीमांसाशास्त्र कर्मकांड का प्रतिपादक है; अतः मीमांसक पौरुषेय, अपौरुषेय सभी वाक्यों को कार्यपरक मानते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक वाक्य किसी व्यापार या कर्म का बोधक होता है, जिसका कोई फल होता है। अतः वे किसी बात के संबंध में यह निर्णय करना बहुत आवश्यक मानते हैं कि वह 'विधि-वाक्य' (प्रधान कर्म सूचक) है अथवा केवल अर्थवाद (गौण कथन, जो केवल किसी दूसरी बात को जी में बैठाने, उसके प्रति उत्तेजना उत्पन्न करने, आदि के लिये हो)। जैसे रणक्षेत्र में जाओ, वहाँ स्वर्ग रखा है। इस वाक्य के दो खंड हैं।—'रणक्षेत्र में जाओ' यह तो विधिवाक्य या मुख्य कथन है, और 'वहाँ स्वर्ग रखा है' यह केवल अर्थवाद या गौण बात है।

मीमांसा का तत्वसिद्धांत विलक्षण है। इसकी गणना अनीश्वरवादी दर्शनों में है। आत्मा, ब्रह्म, जगत् आदि का विवेचन इसमें नहीं है। यह केवल वेद वा उसके शब्द की नित्यता का ही प्रतिपादन करता है। इसके अनुसार मंत्र ही सब कुछ हैं। वे ही देवता हैं; देवताओं की अलग कोई सत्ता नहीं। 'भट्ट दीपिका' में स्पष्ट कहा है 'शब्द मात्रं देवता'। मीमांसकों का तर्क यह है कि सब कर्म फल के उद्देश्य से होते हैं। फल की प्राप्ति कर्म द्वारा ही होती है अतः वे कहते हैं कि कर्म और उसके प्रतिपादक वचनों के अतिरिक्त ऊपर से और किसी देवता या ईश्वर को मानने की क्या आवश्यकता है। मीमांसकों और नैयायिकों में बड़ा भारी भेद यह है कि मीमांसक शब्द को नित्य मानते हैं और नैयायिक अनित्य। सांख्य और मीमांसा दोनों अनीश्वरवादी हैं, पर वेद की प्रामाणिकता दोनों मानते हैं। भेद इतना ही है कि सांख्य प्रत्येक कल्प में वेद का नवीन प्रकाशन मानता है और मीमांसक उसे नित्य अर्थात् कल्पांत में भी नष्ट न होनेवाला कहते हैं।

इस शास्त्र का 'पूर्वमीमांसा' नाम इस अभिप्राय से नहीं रखा गया है कि यह उत्तरमीमांसा से पहले बना। 'पूर्व' कहने का तात्पर्य यह है कि कर्मकांड मनुष्य का प्रथम धर्म है ज्ञानकांड का अधिकार उसके उपरांत आता है।

मीमांसाकार—संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि, जिन्होंने मीमांसासूत्र की रचना की है।

मीमांसित—वि० [सं०] जिसकी मीमांसा की जा चुकी हो। जो विचारपूर्वक स्थिर किया जा चुका हो।

मीमांस्य—वि० [सं०] १. जो मीमांसा करने के योग्य हो। २. जिसकी मीमांसा करनी हो।

मीयाँ⊕—संज्ञा पुं० [फ़ा० मियाँ] दे० 'मिया'। उ०—आए तालिब इलमजानि सब मीयाँ जी तव।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

मीयाद—संज्ञा स्त्री० [अ० मीआद] दे० 'मीआद'।

मीयादी—वि० [हिं०] दे० 'मीआदी'।

मीर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. पर्वत का एक भाग। ३. सीमा। हद। ४. जल।

मीर[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सरदार। प्रधान। नेता। उ०—मीर उमराव दिन चार के पाहुना।—पलटू०, भा० १, पृ० १६। २. धार्मिक आचार्य। ३. सैयद जाति की उपाधि। जैसे, मीर सुलतान अली। किसी बड़े सरदार या रईस का पुत्र। ५. ताश या गंजीफे में का सबसे बड़ा पत्ता। ६. वह जो खेल में औरों से पहले जीतकर अपना दाँव खेलकर अलग हो गया हो। (लड़के)। ७. वह जो सबसे पहले कोई काम विशेषतः प्रतियोगिता का काम कर डाले। किसी काम में लगे हुए कई आदमियों में से वह जो सबसे पहले काम कर ले।

मुहा०—**मीर बनना** = प्रधान बनना। प्रमुखता प्राप्त करना। उ०—'हरीचंद' तोहिं पकरि नचाऊँ मीर बनूँ ब्रज बालन में।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३९६। **मीर होना** = पहले जीत जाना या कोई काम कर डालना।

मीरअर्ज—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर+अ० अर्ज़] वह कर्मचारी जो बादशाहों की सेवा में लोगों के निवेदनपत्र आदि उपस्थित करे।

मीरआखुर—संज्ञा पुं० [अ० मीर+फा० आखुर] घुड़साल का निरीक्षक। अस्तबल का दारोगा [को०]।

मीरआतिश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में तोपखाना हो।

मीरकाफिला—संज्ञा पुं० [अ० मीर काफ़िलह्] काफिले का नेता या सरदार।

मीरकारवाँ—'मीरकाफिला'।

मीरजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीरज़ा] १. अमीर या सरदार का लड़का अमीरजादा। २. मुगल शाहजादों की एक उपाधि। ३. सैयद मुसलमानों की एक उपाधि। उ०—'यकरंग' ने तलाश किया है बहुत वले। मजहर सा इस जहाँ में कोई मीरजा नहीं। विशेष—दे० 'मिरजा'।

मीरजाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मीरज़ाई] १. मीरजा होने का भाव। २. मीरजा का पद या उपाधि। ३. सरदारी। अमीरी। ४. अमीरों या शाहजादों का सा ऊँचा दिमाग होना। ५. अभिमान घमंड। शेखी। ६. दे० 'मिरजई'।

मीरफर्श—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीरफ़र्श] वे गोल, ऊँचे और भारी पत्थर जो बड़े बड़े फर्शों या चाँदनियों आदि के कोनों पर इसलिये रखे जाते हैं जिसमें वे हवा से उड़ न जायँ।

मीरबख्शी—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीरबख़्शी] मुसलमानी राजत्व काल का एक प्रधान कर्मचारी जिसका काम वेतन बाँटना होता था।

मीरबहर—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीरबह्र] दे० 'मीरबहरी'।

मीरबहरी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मुसलमानी राजत्वकाल में जलसेना का प्रधान अधिकारी। २. वह प्रधान कर्मचारी जो बंदरगाहों आदि का निरीक्षण करता था।

मीरबार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पुराने मुसलमानी समय का वह अधिकारी जो लोगों को किसी सरदार या बादशाह के सामने उपस्थित होने से पहले उन्हें देखता और तब उपस्थित होने की आज्ञा देता था।

मीरभुचड़ी—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर + देश० भुचड़ी] एक कल्पित पीर जिसे हिजड़े अपना आदि पुरुष और आचार्य मानते हैं और जिसके वंश में वे अपने आप को समझते हैं।

विशष—कहते हैं कि ये स्त्रियों के वेश में रहते, चरखा कातकर अपना निर्वाह करते और छह महीने स्त्री तथा छह महीने पुरुष रहा करते थे। जब हीजड़ों में कोई नया हीजड़ा आकर संमिलित होता है, तब वे उसी के नाम की कड़ाही तलते और उसे पकवान खिलाते हैं। कहते हैं, जो कोई यह पकवान खा लेता है, वह भी हीजड़ों की तरह हाथ पैर मटकाने लगता है।

मीरमंजिल—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर + अ० मंज़िल] वह कर्मचारी जो बादशाहों या लश्कर आदि के पहुँचने से पहले ही मंजिल या पड़ाव पर पहुँचकर वहाँ सब प्रकार की व्यवस्था करे।

मीरमजलिस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सभा या अधिवेशन का प्रधान अधिकारी। सभापति।

मीरमहल्ला—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर + अ० महल्ला] किसी महल्ले का प्रधान या सरदार।

मीरमुंशी—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर + अ० मुंशी] मुंशियों में प्रधान या सरदार। सबसे बड़ा मुंशी।

मीरशिकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह प्रधान कर्मचारी जो अमीरों या बादशाहों के शिकार की व्यवस्था करता है।

मीरसामान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह प्रधान कर्मचारी जो अमीरों या बादशाहों की पाकशाला की व्यवस्था करता है।

मीरहाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० मीर अ० + हज्ज] हाजियों का सरदार या हाजियों के समूह का प्रधान।

मीरास—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह धन संपत्ति जो किसी के मरने पर उसके उत्तराधिकारी को मिले। तरका। बपौती।

मीरासी—संज्ञा पुं० [अ० मीरास] [स्त्री० मीरासिन] एक प्रकार के मुसलमान जो पश्चिम में पाए जाते हैं।

विशेष—ये प्रायः गाने बजाने का काम करते हैं और भाँड़ों की तरह मसखरापन करके लोगों को प्रसन्न करते हैं।

मीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मीर + ई (प्रत्य०)] १. मीर होने का भाव। २. खेल में किसी लड़के का सवप्रथम होना। ३. खेल में लड़कों का अपना दाँव खेलकर खेल से अलग हो जाना।

मील[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन। जंगल। २. निमेष (को०)।

मील[२]—संज्ञा पुं० [अं०] दूरी की एक नाप जो १७६० गज की होती है। इसे साधारण कोस का आधा मानते हैं।

यौ०—**मील के पत्थर** = प्रगति का प्रतीक। यात्रा का एवं मंजिल का सूचक।

मीलक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहित मछली। रोहू।

मीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मीलनीय, मीलित] १. बंद करना। जैसे, नेत्रमीलन। २. संकुचित करना। सिकोड़ना।

मीलित[१]—वि० [सं०] १. बंद किया हुआ। २. सिकोड़ा हुआ।

मीलित[२]—संज्ञा पुं० एक अलंकार जिसमें यह कहा जाता है कि एक होने के कारण दो वस्तुओं (उपमेय और उपमान) में भेद नहीं जान पड़ता, वे एक में मिली जान पड़ती हैं। जैसे,—पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय।

मीवग—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत बड़ी संख्या का नाम। (बौद्ध)।

मीवर[१]—वि० [सं०] १. हिंसक। २. पूज्य।

मीवर[२]—संज्ञा पुं० सेनापति।

मीवा—संज्ञा पुं० [सं० मीवन्] १. पेट में का कीड़ा। २. वायु। हवा। ३. सार। तत्व।

मीशान—संज्ञा पुं० [सं०] महारग्वध वृक्ष। अमलतास।

मुंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० मुङ्गा] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

मुंचनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्च्] दे० 'मोचन'।

मुंचनाⓅ—क्रि० स० [सं० मुञ्च्] मोचना। त्यागना। छोड़ना। मुक्त करना। उ०—त्रपा मुंच मुग्धे अभिराम। अभिसर बलि जहँ सुंदर स्याम।—नंद० ग्रं०, पृ० ११५।

मुंछार[१]—वि० [सं० मूर्छालु] मूर्छित। मूर्छायुक्त। बेहोश।

मुंछार[२]—वि० [हिं० मूँछ + आर (प्रत्य०)] १. मूँछवाला। वीर। मूँछ का गौरव रखनेवाला। २. जिसे मूँछ हो। जैसे, सिंह।

मुंछाला†—वि० [हिं० मूँछ + आल (प्रत्य०)] दे० 'मुंछार'।

मुंज—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्ज] १. मूँज नाम की घास। २. धारा नगरी का राजा जो भोज का चाचा और अपभ्रंश का कवि था।

मुंजक—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्जक] घोड़ों की आँख का एक रोग जो

कीड़ों के कारण नेत्रपटल पर होता है। जब यह बढ़ जाता है, तब 'मुंजजालक' कहलाता है।

मुंजकेतु—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जकेतु**] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

मुंजकेश—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्जकेश] १. शिव। २. विष्णु। ३. महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

मुंजकेशी—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जकेशिन्**] विष्णु।

मुंजग्राम—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जग्राम**] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

मुंजजालक—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जजालक**] घोड़ों की आँख के मुंजक रोग का उस समय का नाम जब वह बहुत बढ़ जाता है।

मुंजपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जपृष्ठ**] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो हिमालय पर्वत में था।

मुंजमणि—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुञ्जमणि**] पुष्पराग मणि। पुखराज।

मुंजमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुञ्जमेखला**] मूँज की बनी हुई वह मेखला जो यज्ञोपवीत के समय पहनी जाती है।

मुंजमेखली—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्जमेखलिन्] १. विष्णु। २. शिव।

मुंजर—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जर**] १. कमल की जड़। २. कमल की नाल। मृणाल।

मुंजलीⓅ—वि० [हिं० मुंज+ली (प्रत्य०)] **मूँज संबंधी**। मूँज की।

मुंजवट—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जवट**] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

मुंजवान्—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जवत्**] १. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की सोमलता। २. महाभारत के अनुसार कैलाश पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम।

मुंजाट, मुंजाटक—पुं० [सं० **मुञ्जाट मुञ्जटक**] एक पौधे का नाम [को०]।

मुंजातक—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जातक**] १. मूँज। २. मुजरा कंद।

मुंजाद्रि—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जाद्रि**] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

मुंजानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गल्था प्रदेश (कंबोज) की एक भाषा। का नाम।

मुंजारन—संज्ञा पुं० [सं० **मुञ्जारण्य**] मूँज वन। उ०—अब सुनि उनइसवौं अध्याइ। स्याम राम मुंजारन जाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६।

मुंजारा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुञ्जारा**] एक प्रकार का कंद। मुजरा कंद।

मुंठिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टि, प्रा० मुट्ठि] १. मुष्टि। मुठ्ठी। मूठी। उ०—सुछुट्टिय घाव करै दिठ मुंठि।—पृ० रा०, ६१।६३६।

मुंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्ड**] १. गरदन के ऊपर का अंग जिसमें केश, मस्तक, आँख, मुँह आदि होते हैं। सिर। २. पुराणानुसार राजा बलि के सेनापति एक दैत्य का नाम। ३. शुंभ के सेनापति एक दैत्य का नाम।

विशेष—यह शुंभ की आज्ञा से भगवती के साथ लड़ा था और उन्हीं के हाथों मारा गया था। इसका भाई चंड था। चंड और मुंड का वध करने के कारण ही भगवती का नाम चामुंडा पड़ा था।

४. राहु ग्रह। ५. मुंडन करनेवाला, हज्जाम। ६. वृक्ष का ठूँठ। ७. कटा हुआ सिर। ८. बोल नामक गंध द्रव्य। ९. एक उपनिषद् का नाम। १०. मुंडित शिर (को०)। ११. एक प्रकार का लौह। मंडूर। १२. गायों का समूह या मंडल।

मुंड[2]—वि० १. मुँड़ा हुआ। मुंडा। बिना बाल का। २. अधम। नीच।

मुंडक—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डक**] १. मस्तक। सिर। २. मूँडनेवाला, हज्जाम। ३. एक उपनिषद् का नाम।

मुंडकर—संज्ञा पुं० [हिं० **मुंड+कर; अं० पोल टैक्स**] प्रत्येक नागरिक पर लगाया हुआ कर। उ०—फ्रेंच भारत के गवर्नर को फ्रांस के उपनिवेश सचिव का तार मिला है जिसमें उन्हें हिदायत की गई है कि नया हुक्म मिलने तक प्रस्तावित मुंडकर का लगाना रोक रखें।—आज (१।१।३९), पृ० ४।

मुंडकरी—संज्ञा स्त्री० [**मूँड+करी** (प्रत्य०)] दे० **'मुँड़करी'**।

मुंडकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डकिट्ट**] मंडूर।

मुंडचणक—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डचणक**] १. चना। २. कलाय (को०)।

मुंडधान्य—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डधान्य**] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शालिधान्य जो मुंडशालि भी कहलाता है। बोरो धान।

मुंडन—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डन**] १. सिर को उस्तरे से मूँड़ने की क्रिया। २. द्विजातियों के १६ संस्कारों में से एक जो बाल्यावस्था में यज्ञोपवीत से पहले होता है जिसमें बालक का सिर मूँड़ा जाता है।

मुंडनक—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डनक**] १. मुंडशालि नामक धान्य। बोरो धान। २. वट का वृक्ष।

मुंडनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुण्डनिका**] मुंडशालि। बोरो धान।

मुंडपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डपृष्ठ**] एक प्राचीन जनपद का नाम।

मुंडफल—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डफल**] नारियल।

मुंडमंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुण्डमण्डली**] अशिक्षित सेना। बिना सीखी हुई फौज।

मुंडमाल—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डमाल**] दे० 'मुंडमाला'।

मुंडमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुण्डमाला**] १. कटे हुए सिरों या खोपड़ियों की माला जो शिव या काली देवी के गले में होती है। २. बंगाल की एक नदी का नाम।

मुंडमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले में खोपड़ियों की माला पहननेवाली, काली।

मुंडमालिनी—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डमालिन्**] मुंड की माला धारण करनेवाले, शिव।

मुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुण्ड (साफ करना)**+हिं० **ली** (प्रत्य०)] दे० 'मुंडी[1]'। काटना। उ०—अँधली आँखिन काजल किया, मुंडली माँग सँवारी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८७३।

मुंडलोह—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डलोह**] मंडूर।

मुंडवेदांग—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डवेदाङ्ग**] महाभारत के अनुसार एक नागासुर का नाम।

मुंडशालि—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डशालि] बोरो धान ।

मुंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुण्ड] [स्त्री० मुंडी] १. वह जिसके सिर के बाल न हों या मूँड़े हुए हों । २. वह जो सिर मुँड़ाकर किसी साधू या जोगी आदि का शिष्य हो गया हो । ३. वह पशु जिसके सींग होने चाहिए, पर न हों । जैसे, मुंडा बैल, मुंडा बकरा । ४. वह जिसके ऊपरी अथवा इधर उधर फैलनेवाले अंग न हों । जैसे, मुंडा पेड़ । ५. एक प्रकार की लिपि जिसमें मात्राएँ आदि नहीं होतीं और जिसका व्यवहार प्रायः कोठीवाल करते हैं । कोठीवाली । ६. एक प्रकार का जूता जिसमें नोक नहीं होती और जो प्रायः सिपाही लोग पहना करते हैं ।

मुंडा[2]—वि० १. मुंडित । २. गंजा । खल्वाट । ३. शृंगहीन । बिना सींग का । ४. जिसमें नोक न हो । बिना नोक का ।

मुंडा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डा] १. गोरखमुंडी । २. वह स्त्री जिसका सिर मुंडित हो ।

मुंडा[4]—संज्ञा [देश०] छोटा नागपुर में रहनेवाली एक असभ्य जंगली जाति ।

मुंडा[5]—संज्ञा पुं० मुंडा जाति की भाषा ।

मुंडाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डाख्या] गोरखमुंडी ।

मुंडायस—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डायस] एक प्रकार का लोहा । मंडूर ।

मुंडासन—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डासन] योग के अनुसार एक प्रकार का आसन ।

मुंडासा†—संज्ञा पुं० [हिं० मुंड (=सिर)+आसा (प्रत्य०)] सिर पर बाँधने का साफा ।

क्रि० प्र०—कसना ।—बाँधना ।

मुंडा हिरन—संज्ञा पुं० [हिं० मुंडा+हिरन] पाठी मृग ।

मुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डिक] प्रत्येक यात्री से लिया जानेवाला कर । मुंडकर । उ०—जिसमें आबू पर जानेवाले यात्रियों आदि से जो 'दाण' (राहदारी, जगात), 'मुंडक' (प्रति यात्री से लिया जानेवाला कर), 'वलावी' (मार्गरक्षा का कर) तथा घोड़े बैल आदि से जो कर लिए जाते थे, उनको माफ करने का उल्लेख है —राज० इति०, पृ० ६३० ।

मुंडित[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डित] लोहा ।

मुंडित[2]—वि० मुँड़ा हुआ । उ०—(क) मुंडित सिर खंडित भुज बीसा । —मानस, ५।११ । (ख) बहुतक मुंडित पूजा राखि ।—चरण० बानी०, पृ० ७७ ।

मुंडितिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डितिका] गोरखमुंडी ।

मुंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डिनी] कस्तूरी मृग ।

मुंडिभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो वाजसनेय संहिता के कई मंत्रों के द्रष्टा या कर्ता कहे जाते हैं ।

मुंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँड़ना+ई (प्रत्य०)] १. वह स्त्री जिसका सिर मुँड़ा हो । २. विधवा । राँड़ । (गाली) । ३. एक प्रकार की बिना नोकवाली जूती ।

मुंडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डी] गोरखमुंडी ।

मुंडी[3]—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डिन] १. वह जिसका मुंडन हुआ हो । मुँडा हुआ । २. नापित । हज्जाम । ३. संन्यासी । मुँड़िया । ४. शिव ।

मुंडी[4]—वि० १. जिसके सिर के बाल मूँड़ दिए गए हों । २. बिना सींग का । सींगरहित ।

मुंडीर—संज्ञा पुं० [सं० मुण्डीर] सूर्य [को०] ।

मुंडीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डरिका] गोरखमुंडी ।

मुंडीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डीरी] गोरखमुंडी ।

मुंडो—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँड़ना+ओ (प्रत्य०)] १. वह स्त्री जिसका सिर मूँड़ा गया हो । २. स्त्रियों की एक प्रकार की गाली जिससे प्रायः विधवा का बोध होता है । राँड़ । उ०—वा मुंडो का मूड मुँड़ाऊँ जो सरबर करै हमारी ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० २६ ।

मुहा०—मुंडो का=(१) एक प्रकार की बाजारी गाली जिसका अर्थ हरामी या वर्णसंकर आदि होता है । (२) विधवा स्त्री के गर्भ से उसके वैधव्य काल में उत्पन्न पुरुष ।

मुंतकिल—वि० [अ० मुंतक़िल] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर गया हुआ या जानेवाला । २. एक जगह से दूसरी जगह पर हटनेवाला या हटाया हुआ ।

मुहा०—मुंतकिल करना=एक के नाम से हटाकर दूसरे के नाम करना । दूसरे को देना । जैसे, जायदाद मुंतकिल करना ।

मुंतखब—वि० [अ० मुंतख़ब] १. इंतखाब किया हुआ । २. छाँटा या चुना हुआ ।

मुंतजिम—संज्ञा पुं० [अ० मुंतज़िम] वह जो इंतजाम करता हो । प्रबंध करनेवाला । व्यवस्था करनेवाला ।

मुंतजिर—वि० [अ० मुंतज़िर] इंतजार करनेवाला । प्रतीक्षा करनेवाला । राह देखनेवाला ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—होना ।

मुंतफी—वि० [अ० मुंतफ़ी] नष्ट होने या बुझनेवाला [को०] ।

मुंतशिर—वि० [अ०] १. अस्त व्यस्त । तितर बितर । बिखरा हुआ । २. चिंतित । उद्विग्न । परेशान ।

मुंतहा—वि० [अ०] पराकाष्ठा को प्राप्त । पारंगत [को०] ।

मुंतही—वि० [अ०] १. पराकाष्ठा या हद को पहुँचनेवाला । २. विद्याओं में पारगामी । विद्वान् [को०] ।

मुंद(ध)†—वि० [सं० मुग्ध, अप० मुंध] दे० 'मुग्ध' ।

मुंदड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० मुद्रा] मुँदरी । मुद्रिका । उ०—देइस हाथ कउ मुंदड़उ, सोवन सिंगी नई कपिला गाई ।—बी० रासो०, २।२५ ।

मुंदर†—संज्ञा पुं० [सं० मुद्रा] दे० 'मुद्रा' या 'मुँदरा' । उ०—है हुजूरि कति दूरि बतावहु । सुंदर बाधहु मुंदर पावहु ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६ ।

मुंदा†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रा] दे० 'मुद्रा' या 'मुँदरा' । उ०—सुरति सिमृति दुइ कन्नी मुंदा परिमिति बाहर खिंथा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२८ ।

मुंदित㉦ वि० [सं० मुद्रित, प्रा० मुद्द (= बंद करना)] मुँदा हुआ। बंद। उ०—अध मुंदित नैनन छवि पावै। मृगछौनहिं मनौ औंघ सी आवै। नंद० ग्रं० पृ० १४६।

मुंद्रां—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रा] दे० 'मुंदरा'। उ०—मुंद्रा स्रवन कंठ जप माला। जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०५।

मुंधं—वि० [सं० मुग्ध; प्रा०, मुध्ध, अप० मुंध] आसक्त। मोहित। लुभाया हुआ। मुग्ध। उ०—दिसि चाहंती सज्जणां नेहालंदी मुंध।—ढोला०, दू २०४।

मुंशियाना—वि० [अ० मुंशी + हिं० इयाना (प्रत्य०) या फ़ा० मुंशियानह्] मुंशियों का सा। मुंशियों की तरह का।

मुंशी—संज्ञा पुं० [अ०] १. लेख या निबंध आदि लिखनेवाला। लेखक। २. लिखापढ़ी का काम या प्रतिलिपि आदि करनेवाला। मुहर्रिर। लेखक। ३. वह जो बहुत सुंदर अक्षर, विशेषतः फारसी आदि के अक्षर, लिखता हो।

मुंशीखाना—संज्ञा पुं० [अ० मुंशी + फ़ा० खाना] वह स्थान जहाँ मुंशी या मुहर्रिर आदि बैठकर काम करते हों। दफ्तर।

मुंशीगिरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुंशी + फ़ा० गिरी (प्रत्य०)] मुंशी का काम या पद।

मुंसरिम—संज्ञा पुं० [अ०] १. प्रबंध या व्यवस्था करनेवाला। इंतजाम करनेवाला। २. कचहरी का वह कर्मचारी जो दफ्तर का प्रधान होता है और जिसके सुपुर्द मिसलें आदि ठीक करना और ठिकाने से रखना होता है।

मुंसरिमी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुंसरिम + ई (प्रत्य०)] मुंसरिम का काम या पद।

मुंसलिक—वि० [अ०] साथ में बाँधा या नत्थी किया हुआ। (कच०)।

मुंसिफ—संज्ञा पुं० [अ० मुसिफ़] १. वह जो न्याय करता हो। इन्साफ करनेवाला। २. दीवानी विभाग का एक न्यायाधीश जो छोटे छोटे मुकदमों का निर्णय करता है और जो सब जज से छोटा होता है।

यौ०—**मुंसिफमिजाज** = जिसके स्वभाव में न्यायशीलता हो। न्यायनिष्ठ। इंसाफपसंद।

मुंसिफाना—वि० [फ़ा० मुंसिफ़ानह्] मुंसिफों जैसा। न्यायपूर्ण। न्यायोचित [को०]।

मुंसिफी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुंसिफ़ + ई (प्रत्य०)] १. न्याय करने का काम। २. मुंसिफ का काम या पद। ३. मुंसिफ की अदालत। मुंसिफ की कचहरी।

मुँगनां—संज्ञा पुं० [हिं० मुनगा] सहिजन। मुनगा।

मुँगरा[१]—संज्ञा पुं० [सं० मुगदर, प्रा० मुग्गर, मोग्गर] [स्त्री० मुँगरी] हथौड़े के आकार का काठ का बना हुआ वह औजार जो किसी प्रकार का आघात करने या किसी चीज के पीटने ठोंकने आदि के काम आता है। जैसे, खूँटा गाड़ने का मुँगरा, घंटा बजाने की मुँगरी, रँगरेजों की मुँगरी आदि। उ०—कहै कबीर नर अजहुँ न जागा। जम को मुँगरा बरसन लागा।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ४३।

मुँगरां[२]—संज्ञा पुं० [हिं० मोगरा] नमकीन बुँदियाँ।

मुँगवनं—संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] मोठ या बनमूँग नाम का कदन्न।

मुँगिया—संज्ञा पुं० [हिं० मूँग + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का धारीदार या चारखानेदार कपड़ा। वि० दे० 'मूँगिया'।

मुँगौछी㉦—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्गपथ्या, प्रा० मुग्गपच्छा > हिं० मुँगौछी; अथवा हिं० मूँग + औंछी (प्रत्य०)] मूँग की बनी हुई बरी। मुँगौरी। उ०—भई मुँगौछी मिरचैं परी।—जायसी (शब्द०)।

मुँगौरा—संज्ञा पुं० [हिं० मूँग + बरा] मूँग के बने हुए बड़े। मूँग का बरा। उ०—कीन्ह मुँगौरा औ बहु बरी।—जायसी (शब्द०)।

मुँगौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँग + बरी] मूँग की बनी हुई बरी।

मुँडकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँड + करी (प्रत्य०)] घुटनों में सिर देकर बैठना या सोना, जो प्रायः बहुत दुःख के समय होता है।

मुहा०—**मुँडकरी मारना** = घुटनों में सिर देकर, बहुत दुःखी होकर बैठना।

मुँड़चिरा—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़ + चीरना ?] एक प्रकार के फकीर।

विशेष—ये फकीर प्रायः अपना सिर आँख या नाक आदि छुरे या नुकीले हथियार से घायल करके भिक्षा माँगते हैं और भिक्षा न मिलने पर अड़कर बैठ जाते हैं और अपने अंगों को और भी अधिक घायल करते हैं। ऐसे फकीर प्रायः मुसलमान ही होते हैं।

२. वह जो लेन देन में बहुत हुज्जत और हठ करे।

मुँड़चिरापन—संज्ञा पुं० [हिं० मुँड़चिरा + पन (प्रत्य०)] लेनदेन आदि में बहुत हुज्जत और हठ।

मुँड़ना—क्रि० स० [अ० मुण्डन] १. मूँड़ा जाना। सिर के बालों की सफाई होना। २. लूटा जाना। लुटना। ३. ठगा जाना। धोखे में आना। ४. हानि उठाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुँड़ला—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़] चरखे का वह भाग जिसपर माल रहती है।

मुँड़वानां—क्रि० स० [हिं० मूँड़] दे० 'मुड़ाना'।

मुँड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँड़ना + आई (प्रत्य०)] १. मूँड़ने या मुँड़ाने की क्रिया अथवा भाव। २. मूँड़ने या मुँड़ाने के बदले में मिला हुआ धन।

मुँड़ाना—क्रि० स० [सं० मुण्डन] दे० 'मुड़ाना'।

मुँड़ावलि㉦—वि० [सं० मुण्ड + अवलि] मुंडमाल। मुंडों की माला। उ०—झरत कुसुम गयनंग, धरत गर ईस मुँडावलि।—पृ० रा०, ६१।१६००।

मुँड़ासा—संज्ञा पुं० [हिं० मुण्ड (= सिर) + आसा (प्रत्य०)] सिर पर बाँधने का साफा। उ०—बैठे हरा मुँड़ासा बाँधे पाँत बाँधकर पर्वत।—हंस०, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।

मुँडासाबंद—संज्ञा पुं० [हिं० मुँड़ासा + बंद (प्रत्य०)] वह जो कपड़े से पगड़ी बनाने का काम करता हो। दस्तारबंद।

मुँडिया†[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँड (=सिर) का स्त्री०] मूँड़। सिर।

मुँडिया—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़ना+इया (प्रत्य०)] वह जो सिर मुँड़ाकर साधू या जोगी आदि का शिष्य हो गया हो। संन्यासी। उ०—जिनके जोग जोग यह ऊधो, ते मुँड़िया बसैं कासी।—सूर (शब्द०)।

मुँडेर—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँडेरा] १. मुँडेरा। २. खेत के चारों ओर सीमा पर अथवा क्यारियों में का उभरा हुआ अंश। मेंड़। डोला।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।

मुँडेरा—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड (=सिर, + एरा (प्रत्य०)] १. दीवार का वह ऊपरी भाग जो सबसे ऊपर की छत के चारों ओर कुछ कुछ उठा हुआ होता है। २. किसी प्रकार का बाँधा हुआ पुश्ता।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।

मुँडेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] छोटी मुँड़ेरी। दे० 'मुँडेर'।

मुँढियां†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोढ़ा + इया (प्रत्य०)] बैठने का छोटा मोढ़ा।

मुँदना—क्रि० अ० [सं० मुद्रण] १. खुली हुई वस्तु का ढक जाना। बंद होना। जैसे, आँख मुँदना। उ०—भोर भए जैसे कुमोदनी मुँदति कंस भय मोहे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१। २. लुप्त होना। छिपना। जैसे, दिन मुँदना; सूर्य मुँदना। ३. छिद्र आदि का पूर्ण होना। छेद, बिल आदि का बंद होना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुँदरा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँदरी] १. एक प्रकार का कुंडल जो जोगी लोग कान में पहनते हैं। २. एक प्रकार का आभूषण जो कान में पहना जाता है।

मुँदरी—संज्ञा संज्ञा [सं० मुद्रा] १. उँगली में पहनने का सादा छल्ला। उ०—नाथ हाथ माथे धरेउ प्रभु मुँदरी मुँह मेलि।—तुलसी० ग्रं०, ३।१। २. अँगूठा। अंगुष्ठ।

मुँह—संज्ञा पुं० [सं० मुख] १. प्राणी का वह अंग जिससे वह बोलता और भोजन करता है। मुखविवर। उ०—कतओक दैत्य मारि मुँह मेलत कतओ उगलि कैल कूड़ा।—विद्यापति, पृ० ७७२।

विशेष—प्रायः सभी प्राणियों का मुँह सिर में होता है और उससे वे खाने का काम लेते हैं। शब्द निकालनेवाले प्राणी उससे बोलने का भी काम लेते हैं। अधिकांश जीवों के मुँह में जीभ, दाँत और जबड़े होते हैं; और उसे खोलने या बंद करने के लिये आगे की ओर ओंठ होते हैं। पक्षियों तथा कुछ और जीवों के मुँह में दाँत नहीं होते। कुछ छोटे छोटे जीव ऐसे भी होते हैं जिनका मुँह पेट या शरीर के किसी और भाग में होता है।

२. मनुष्य का मुखविवर।

मुहा०—मुँह आना = मुँह के अंदर छाले पड़ना और चेहरा सूजना।

विशेष—प्रायः गरमी आदि के रोग में पारा आदि कुछ विशिष्ट औषध खाने से ऐसा होता है।

मुँह का कच्चा = (१) (घोड़ा) जो लगाम का झटका न सह सके (२) जिसको बात का कोई विश्वास न हो। झूठा। (३) जो किसी बात को गुप्त न रख सकता हो। हर एक बात सबसे कह देनेवाला। मुँह का कड़ा = (१) (घोड़ा) जो हाँकनेवाले के इच्छानुसार न चले। लगाम के संकेत को कुछ न समझनेवाला। (२) कड़ा। तेज। (३) उद्दंडतापूर्वक बातें करनेवाला। मुँह किलना = मुँह का कीला या बंद किया जाना। मुँह की बात छीनना = जो बात कोई दूसरा कहना चाहता हो, वही कह देना। मुँह की मक्खी न उड़ा सकना = बहुत अधिक दुर्बल होना। मुँह कीलना = बोलने से रोकना। चुप करना। मुँह खराब करना = (१) जबान का स्वाद बिगड़ना। (२) जबान से गंदी बातें कहना। मुँह खुलना = उद्दंडतापूर्वक बातें करने की आदत पड़ना। जैसे,—आजकल तुम्हारा मुँह बहुत खुल गया है; किसी दिन धोखा खाओगे। मुँह खुलवाना = किसी को उद्दंडतापूर्वक बातें करने के लिये बाध्य करना। मुँह खुश्क होना = दे० 'मुँह सूखना'। मुँह खोलकर रह जाना = कुछ कहते कहते लज्जा या संकोच के कारण चुप हो जाना। सहमकर रह जाना। मुँह खोलना = (१) कहना। बोलना। उ०—आप तुमार बाँध देते हैं और हमने न खोल मुँह पाया।—चोखे०, पृ० ५३। (२) गालियाँ देना। खराब बातें कहना। (किसी को) मुँह चढ़ाना = (१) किसी को बहुत उद्दंड बनाना। बातें करने में धृष्ट करना। शोख करना। जैसे,—आपने इस नौकर को बहुत मुँह चढ़ा रखा है। (२) अपना। पार्श्ववर्ती और प्रिय बनाना। मुँह चलना = (१) भोजन होना। खाया जाना। (२) मुँह से व्यर्थ की बातें या दुर्वचन निकलना। उ०—जब चलाए न बात चल पाई। तब भला किस तरह न मुँह चलता।—चुभते०, पृ० १८। मुँह चलाना = (१) खाना। भोजन करना। (२) बोलना। बकना। (३) गालियाँ देना। दुर्वचन कहना। (४) दाँत से काटना, विशेषतः घोड़े का काटना। मुँह चिढ़ाना = किसी को चिढ़ाने के लिये उसकी आकृति, हावभाव या कथन की बहुत बिगाड़कर नकल करना। मुँह चूमकर छोड़ देना = लज्जित करके छोड़ देना। शरमिंदा करके छोड़ देना। मुँह छूना = [संज्ञा मुँहछुआई] = (१) नाम मात्र के लिये कहना। मन से नहीं, बल्कि ऊपर से कहना। जैसे,—मुँह छूने के लिये वे मुझे भी निमंत्रण दे गए थे। (२) दिखौआ बात करना। मुँह जहर होना = कड़ुआ पदार्थ खाने के कारण मुँह में बहुत अधिक कड़ुआहट होना। मुँह जुठारना या जूठा करना = नाम मात्र के लिये कुछ खाना। मुँह जोड़ना = पास होकर आपस में धीरे धीरे बात करना।

कानाफूसी करना। **मुँह जोहना**=आसरा ताकना। भरोसा देखना। **मुँह डालना**=(१) किसी पशु आदि का खाद्य पदार्थ पर मुँह चलाना। (२) मुरगों का लड़ना या आक्रमण करना। (मुर्गबाज)। **मुँह तक आना**=जबान पर आना। कहा जाना। **मुँह थकना**=बहुत अधिक बोलने के कारण शिथिलता आना। **मुँह थकाना**=बहुत अधिक बोलकर अपने आपको शिथिल करना। **मुँह देना**=किसी पशु आदि का किसी बरतन या खाद्य पदार्थ में मुँह डालना। जैसे,— इस दूध में बिल्ली मुँह दे गई है। **मुँह पकड़ना**=बोलने से रोकना। बोलने न देना। जैसे,—कहो न, कोई तुम्हारा मुँह पकड़ता है। **मुँह पर न रखना**=तनिक भी स्वाद न लेना। जरा भी न खाना। जैसे,—लड़के ने कल से एक दाना भी मुँह पर नहीं रखा। **मुँह पर बात आना**=(१) कुछ कहने को जी चाहना। (२) कुछ कहना। **मुँह पर मोहर करना**=बोलने से रोकना। कहने न देना। चुप कराना। **मुँह पर लाना**=मुँह से कहना। वर्णन करना। जैसे,—अपनी की हुई नेकी मुँह पर नहीं लानी चाहिए। **मुँह पर हाथ रखना**=बोलने से जबरदस्ती रोकना या मना करना। **मुँह पसारकर दौड़ना**=कुछ पाने के लालच में बहुत उत्सुक होकर आगे बढ़ना। **मुँह पसारकर रह जाना**=(१) परम चकित हो जाना। हक्का बक्का हो जाना। (२) लज्जित होकर रह जाना। शरमाकर रह जाना। **मुँह पेट चलना**=कै दस्त होना। हैजा होना। **मुँह फटना**=चूना आदि लगने के कारण मुँह में छोटे छोटे घाव हो जाना। **मुँह फाड़कर कहना**=बेहया बनकर जबान पर लाना। निर्लज्ज होकर कहना। जैसे,—हमने उनसे मुँह फाड़कर कहा भी, पर उन्होंने कुछ ध्यान ही न दिया। **मुँह फैलाना**=(१) दे० 'मुँह बाना'। (२) अधिक लेने की इच्छा या हठ करना। जैसे,—कचहरीवाले तो जरा जरा सी बात पर मुँह फैलाते हैं। **मुँह फोड़कर कहना**=दे० 'मुँह फाड़कर कहना'। **मुँह बंद करना**=चुप कराना। बोलने से रोकना। **मुँह बंद कर लेना**=बिलकुल चुप हो जाना। कुछ न बोलना। **मुँह बंद होना**=चुप होना। जैसे तुम्हारा मुँह कभी बंद नहीं होता। **मुँह बाँधकर बैठना**=चुपचाप बैठना। कुछ न बोलना। **मुँह बाँधना या बाँध देना**=चुप करा देना। बोलने न देना। **मुँह बाना**=(१) मुँह फाड़ना या खोलना। (२) जँभाई लेना। (३) अपनी हीनता सिद्ध होने पर भी हँस पड़ना। (४) बुरी तरह से हँसना। बेहूदेपन से हँसना। **मुँह बिगड़ना**=(१) मुँह का स्वाद खराब होना। जैसे,— तुमने कैसा आम खिला दिया, बिलकुल मुँह बिगड़ गया। (२) किसी बात या काम पर नाराजी व्यक्त करना। (३) उपेक्षा व्यक्त करना। **मुँह बिगाड़ना**=मुँह का स्वाद खराब करना। **मुँह भर आना**=(१) मुँह में पानी भर आना। किसी चीज को लेने के लिये बहुत लालच होना। (२) मितली आना। जी मिचलाना। कै करने को जी चाहना। **मुँह भरके**=(१) मुँह तक। लबालब। (२) जहाँ तक इच्छा हो। जितना जी चाहे। जैसे—(क) जो कुछ माँगना हो, मुँह भरके माँग लो। (ख) उन्होंने मुझे मुँह भरके गालियाँ दीं। (३) पूरी तरह से। भली भाँति। **मुँह भर बोलना**=अच्छी तरह बोलना। जैसे,—वहाँ मुझसे कोई मुँह भर बोला तक नहीं। **मुँह भरना**=(१) रिश्वत देना। घूस देना। (२) खिलाना। भोजन कराना। (३) मुँह बंद करना। बोलने से रोकना। **मुँह मारना**=(१) खाने की चीज में मुँह लगाना। (२) दाँत लगाना। काटना। (३) जल्दी जल्दी भोजन करना। (किसी का) **मुँह मारना**=(१) किसी को बोलने से रोकना। चुप करना। (२) रिश्वत देना। (३) कान काटना। बढ़कर होना। जैसे, यह कपड़ा रेशम का मुँह मारता है। **मुँह मीठा करना**=(१) मिठाई खिलाना। (२) देकर प्रसन्न करना। **मुँह मीठा होना**=(१) खाने को मिठाई मिलना। (२) प्राप्ति होना। लाभ होना। (३) मँगनी होना। (बात) **मुँह में आना**=कहने को जी चाहना। कहने की प्रवृत्ति होना। जैसे,—जो कुछ मुँह में आता है, कह चलते हो। **मुँह में खून या लहू लगना**=चसका पड़ना। चाट पड़ना। जैसे—एक दिन में तुम्हें रुपए क्या मिल गए, तुम्हारे मुँह में खून लग गया। **मुँह में जबान होना**=कहने की सामर्थ्य होना। बोलने की ताकत होना। **मुँह में तिनका लेना**=बहुत अधिक दीनता या अधीनता प्रकट करना। **मुँह में पड़ना**=खाया जाना। खाने के काम आना। **(बात का) मुँह में पड़ना**=बात का मुँह से निकलना या कहा जाना। जैसे,—जो बात तुम्हारे मुँह में पड़ी, वह सारे शहर में फैल जायगी। **मुँह में पानी भर आना**=(१) कोई पदार्थ प्राप्त करने के लिये बहुत लालायित होना। जैसे,—सेब का नाम सुनते ही तुम्हारे मुँह में पानी भर आता है। (२) ईर्ष्या होना। **मुँह में बोलना या बात करना**=इतने धीरे धीरे बोलना कि जल्दी औरों को सुनाई न दे। **मुँह में लगाम देना**=समझ-बूझकर बातें करना। कम और ठीक तरह से बोलना। **मुँह में लगाम न होना**=बोलने के समय सचेत न रहना। जो मुँह में आवे, सो कह देना। **मुँह लगाना**=खाना। चखना। **मुँह सँभालना**=व्यर्थ बकने या गालीगलौज से जबान को रोकना। जबान में लगाम देना। **अपना मुँह सीना**=बोलने से रुकना। मुँह से बात न निकालना। बिलकुल चुप रहना। **मुँह सूखना**=प्यास या रोग आदि के कारण गला खुश्क होना। गले और जबान में काँटे पड़ना। **मुँह से दूध की बू आना**=दे० 'मुँह से दूध टपकना'। **मुँह से दूध टपकना**=बहुत ही अनजान या बालक होना। (परिहास)। जैसे,—आप इन बातों को क्यों जानने लगे; आपके मुँह से तो अभी दूध टपक रहा है। **मुँह से निकालना**=कहना। उच्चारण करना। जैसे,—ऐसी बात मुँह से मत निकाला करो जिससे किसी को दुःख हो। **मुँह से फूटना**=कहना। बोलना। (उपेक्षा या व्यंग)। जैसे,—आखिर तुम भी तो कुछ मुँह से फूटो। **मुँह से फूल झड़ना**=मुँह से बहुत ही सुंदर और प्रिय बातें निकलना। उ०—रंगतें

हित की न जब उनमें रहीं। फूल मुँह से तब झड़े तो क्या झड़े।—चोखे०, पृ० २९। मुँह से बात छीनना, या उचकना = किसी के कहते कहते उसकी बात कह देना। किसी के कहने से पहले ही उसका विचार या भाव प्रकट करना। किसी के मन की बात कह देना। मुँह से बात न निकलना = क्रोध या भय के मारे कुछ बोला न जाना। मुँह से शब्द न निकलना। मुँह से भाप न निकलना = भय आदि के कारण सन्न हो जाना। चूँ तक न करना। मुँह से लार गिरना = दे० 'मुँह से लार टपकना'। मुँह से लार टपकना = कोई चीज प्राप्त करने के लिये अत्यंत लालच होना। पाने के लिये परम उत्सुकता होना। जैसे,—जहाँ तुमने कोई अच्छी पुस्तक देखी, वहाँ तुम्हारे मुँह से लार टपकने लगी। मुँह से लाल उगलना = दे० 'मुँह से फूल झड़ना'।

३. मनुष्य अथवा किसी और जीव के सिर का अगला भाग जिसमें माथा, आँखें, नाक, मुँह, कान, ठोढ़ी और गाल आदि अंग होते हैं। चेहरा।

मुहा०—अपना सा मुँह लेकर रह जाना = लज्जित होकर रह जाना। काम न होने कारण शरमिंदा होना। इतना सा मुँह निकल आना = दे० 'मुँह उतरना'। मुँह अँधेरे = प्रभात के समय। तड़के। (किसी के) मुँह आना = किसी के सामने होकर कोई कठोर वचन कहना। किसी से हुज्जत करना। उ० जो आता है खोजी को देखकर कहकहा लगाता है। कोई मुसकराता है कोई मुँह आता है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १८२। मुँह उजला होना = प्रतिष्ठा रह जाना। बात रह जाना। इज्जत न जाना। मुँह उजाले या मुँह उठे = प्रभात के समय। तड़के। बहुत सवेरे। मुँह उठना = किसी ओर चलने की प्रवृत्ति होना। जैसे,—हमारा क्या, जिधर मुँह उठा, उधर ही चल देंगे। मुँह उठाए चले जाना = बेधड़क चले जाना। बिना रुके हुए चले जाना। मुँह उठाकर कहना = बिना सोचे समझे कहना। जो मुँह में आवे सो कहना। मुँह उठाकर चलना = नीचे को ओर बिना देखे हुए, केवल ऊपर की ओर मुँह करके चलना। अंधाधुंध चलना। मुँह उतरना = (१) दुर्बलता के कारण सुस्त होना। चेहरे पर रौनक न रह जाना। (२) विफलता, हानि या दुःख आदि के कारण उदास होना। विवर्णता होना। चेहरे का तेज जाता रहना। (अपना) मुँह काला करना = (१) व्यभिचार करना। अनुचित संभोग करना। (२) अपनी बदनामी करना। (दूसरे का) मुँह काला करना = उपेक्षा से हटाना। त्यागना। जैसे,—मुँह काला करो, क्यों इसे अपने पास रखे हो? मुँह की खाना = (१) थप्पड़ खाना। तमाचा खाना। (२) बेइज्जत होना। दुर्दशा कराना। (३) मुँहतोड़ उत्तर सुनना। (४) लज्जित होना। शरमिंदा होना। (५) धोखा खाना। चूक जाना। (६) बुरी तरह परास्त होना। उ०—कयामत की सफाई थी। मुँह चढ़ा मुँह की खाई सामने गया और शामत आई।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। मुँह के बल गिरना = (१) ठोकर खाना। धोखा खाना। उ०—इतना भारी भरकम आदमी और जरी से इशारे में तड़ से मुँह के बल गिर गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। (२) बिना सोचे समझे किसी ओर प्रवृत्त होना। कोई वस्तु प्राप्त करने के लिये लपकना। मुँह खोलना = चेहरे पर से घूँघट आदि हटाना। चेहरे के आगे का परदा हटाना। मुँह चढ़ाना = दे० 'मुँह फुलाना'। मुँह चाटना = खुशामद करना। ठकुरसुहाती कहना। लल्लोपत्तो करना। मुँह छिपाना = लज्जा के मारे सामने न होना। मुँह झटक जाना = रोग या दुर्बलता आदि के कारण चेहरा उतर जाना। मुँह झुलसाना = (१) मुँह में आग लगाना। मुँह फूँकना। (स्त्रि० गाली)। २. दाह कर्म करना। मुरदे को जलाना। (उपेक्षा०)। (३) कुछ ले देकर दूर करना। (अपना) मुँह टेढ़ा करना = मुँह फुलाना। अप्रसन्नता या असंतोष प्रकट करना। (दूसरे का) मुँह टेढ़ा करना = दे० 'मुँह तोड़ना'। मुँह ढाँकना = किसी के मरने पर उसके लिये शोक करना या रोना। (मुसल०)। (किसी का) मुँह ताकना = (१) किसी का मुखापेक्षी होना। किसी के मुँह की ओर, कुछ पाने आदि की आशा से देखना। उ०—जो रहे ताकते हमारा मुँह हम उन्हीं की न ताक में बैठे।—चोखे०, पृ० २७। (२) टक लगाकर देखना। (३) विवश होकर देखना। (४) चकित होकर देखना। आश्चर्य से देखना। मुँह ताकना = अकर्मण्य होकर चुपचाप बैठे रहना। जैसे,—सब लोग अपने अपने रुपए ले आए, और आप मुँह ताकते रहे। मुँह तोड़ या तोड़कर जवाब देना = पूरा पूरा जवाब देना। ऐसा जवाब देना कि कोई बोल ही न सके। मुँह थामना = बोलने से रोकना। बोलने न देना। चुप करना या रखना। उ०—पर यदि कोई कहे कि यह सब कुछ नहीं; यह एक सांप्रदायिक सिद्धांत का काव्य के ढंग पर स्वीकार मात्र है; तो हम उसका मुँह नहीं थाम सकते।—चिंता०, भा० २, पृ० ६९। मुँह थुथाना = मुँह को थूथुन की तरह बनाना। मुँह फुलाना। क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट करना। मुँह दिखाना = सामने आना। उ०—इमाम जामिन की दोहाई जिस तरह पीठ दिखाते हो उसी तरह मुँह भी दिखाओ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७०। मुँह देखकर उठना = प्रातःकाल सोकर उठने के समय किसी को सामने पाना। जैसे,—आज न जाने किसका मुँह देखकर उठे थे कि दिन भर भोजन ही न मिला।

विशेष—प्रायः लोग मानते हैं कि प्रातःकाल सोकर उठने के समय शुभ या अशुभ आदमी का मुँह देखने का फल दिन भर मिला करता है।

मुँह देखकर बात करना = खुशामद करना। मुँह देखकर जीना = (किसी के) भरोसे से जीना। (किसी का) आसरा ताकना। उ०—जो हमारा मुँह देखकर जीते हैं, हम उन्हीं को निगल रहे हैं।—चुभते० (दो दो०), पृ० ४। (किसी का) मुँह देखना = (१) सामना करना। किसी के सामने जाना। किसी के साथ देखादेखी या साक्षात्कार करना। (२) चकित होकर देखना। (अपना) मुँह देखना = दर्पण में अपने मुँह

का प्रतिबिंब देखना। (किसी का) मुँह देखकर=(१) किसी के प्रेम में लगकर। किसी के प्रेम के आसरे। जैसे,—पति मर गया, पर बच्चों का मुँह देखकर धीरज धरो। (२) किसी को संतुष्ट या प्रसन्न करने के विचार से। जैसे, तुम तो उनका मुँह देखकर बात करते हो। मुँह धो रखना=किसी पदार्थ की प्राप्ति से निराश हो जाना। आशा न रखना। (व्यंग्य)। जैसे,—आपको यह पुस्तक मिल चुकी; मुँह धो रखिए। **मुँह न देखना**=किसी से बहुत घृणा करना। किसी से देखा-देखी तक न करना। न मिलना जुलना। जैसे,—मैं तो उस दिन से उनका मुँह नहीं देखता। **मुँह न फेरना या मोड़ना**=(१) दृढ़तापूर्वक संमुख ठहरे रहना। पीछे न हटना। (२) विमुख न होना। अस्वीकार न करना। मुँह निकल आना=रोग या दुर्बलता आदि के कारण चेहरे का तेज जाता रहना। चेहरा उतर जाना। **मुँह पर**=सामने। प्रत्यक्ष। रूबरू। जैसे,—(क) तुम तो मुँह पर झूठ बोलते हो। (ख) वह मुँह पर खुशामद करता है और पीठ पीछे गालियाँ देता है। **मुँह पर कहना**=आमने सामने कहना। उ०—बात लगती बेकहों को बेधड़क, हम कहेंगे औ न क्यों मुँह पर कहें।—चुभते०, पृ० १७। **मुँह पर चढ़ना**=लड़ने या प्रतियोगिता करने के लिये सामने आना। मुकाबला करना। **मुँह पर थूकना**=बहुत अधिक अप्रतिष्ठित और लज्जित करना। **मुँह पर नाक न होना**=शरम न होना। लज्जा न होना। निर्लज्ज होना। जैसे,—तुम्हारे मुँह पर नाक तो है ही नहीं, तुमसे कोई क्या बात करे। **मुँह पर पानी फिर जाना**=चेहरे पर तेज आना। प्रसन्नबदन होना। **मुँह पर फेंकना या फेंक मारना**=बहुत अप्रसन्न होकर किसी को कोई चीज देना। मुँह **पर या मुँह से बरसना**=आकृति से प्रकट होना। चेहरे से जाहिर होना। जैसे,—पाजीपन तो तुम्हारे मुँह पर बरस रहा है। **मुँह पर बसंत फूलना या खिलना**=(१) चेहरा पीला पड़ जाना। (२) उदास या भयभीत हो जाना। **मुँह पर मारना**=दे० 'मुँह पर फेंकना'। **मुँह दर मुँह कहना**=मुँह पर कहना। सामने कहना। **मुँह पर मुरदनी फिरना या छाना**=(१) मृत्यु के चिह्न प्रकट होना। अंतिम समय समीप आना। (२) चेहरा पीला पड़ना। (३) भयभीत, लज्जित या उदास होना। **मुँह पर रखना**=किसी के सामने ही कोई बात कह देना। पूरा पूरा उत्तर देना। **मुँह पर हवाई उड़ना या छूटना**=भय या लज्जा आदि के कारण चेहरा पीला पड़ जाना। जैसे,—मुझे देखते ही उनके मुँह पर हवाई उड़ने लगी। (**किसी का**) **मुँह पाना**=प्रवृत्ति को अपने अनुकूल देखना। रुख पाना। **मुँह पीट लेना**=बहुत अधिक क्रोध या दुःख की अवस्था में दोनों हाथों से अपने मुँह पर आघात करना। **मुँह फक होना**=चेहरे का रंग उड़ जाना। विवर्णता होना। भय या आशंका से चेहरा पीला पड़ जाना। **मुँह फिरना या फिर जाना**=(१) मुँह का टेढ़ा, कुरूप या खराब हो जाना। जैसे,—एक थप्पड़ दूँगा, मुँह फिर जायगा। (२) लकवे का रोग हो जाना। (३) सामना करने के योग्य न रह जाना। सामने से हट या भाग जाना। जैसे,—घंटे भर की लड़ाई में ही शत्रु का मुँह फिर गया। **मुँह फुलाना या फुलाकर बैठना**=आकृति से असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट करना। जैसे,—तुम तो जरा सी बात पर मुँह फुलाकर बैठ जाते हो। **मुँह फूँकना**=(१) मुँह में आग लगाना। मुँह झुलसाना। (स्त्रि० गाली) जैसे,—ऐसे नौकर का तो मुँह फूँक देना चाहिए। (२) दाहकर्म करना। मुरदे को जलाना। (उपेक्षा०)। (३) कुछ दे लेकर दूर करना। हटाना। **मुँह फूलना**=अप्रसन्नता या असंतोष होना। नाराजगी होना। जैसे,—मैं कुछ कहूँगा, तो अभी तुम्हारा मुँह फूल जायगा। (किसी का) **मुँह फेरना**=(१) परास्त करना। दबा लेना। (अपना) **मुँह फेरना**=(१) किसी की ओर पीठ करना। (२) उपेक्षा प्रकट करना। (३) किसी ओर से अपना मन हटा लेना। **मुँह बंद कर देना**=कहने पर प्रतिबंध लगा देना। उ०—बंद होगा न देखना सुनना। आप मुँह क्यों न बंद कर देंगे।—चुभते०, पृ० १८। **मुँह बनाना या बन जाना**=ऐसी आकृति होना जिससे असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट हो। जैसे,—मेरी बात सुनते ही उनका मुँह बन गया। **मुँह बनवाना**=किसी कार्य अथवा प्राप्ति के योग्य अपनी आकृति बनवाना। (व्यंग्य), जैसे,—पहले आप अपना मुँह बनवा लीजिए, तब यह कोट माँगिएगा। **मुँह बनाना**=ऐसी आकृति बनाना जिससे असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट हो।

विशेष—इसके साथ संयो० क्रि० लेना या बैठना आदि का भी प्रयोग होता है।

मुँह बिगड़ना=चेहरे की आकृति खराब होना। मुँह बिगाड़ना=चेहरा खराब करना। उ०—हो गए पर बिगाड़ बिगड़े का। मुँह बिगड़ना बिगाड़ना देखा।—चोखे० पृ० ५५। (दूसरे का) **मुँह बिगाड़ना**=असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट करना। **मुँह बुरा बनाना**=असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट करना। **मुँह भर बोलना**=स्नेह से बोलना। उ०—आपका मुँह ताकते ही रह गए। आप तो मुँह भर कभी बोले नहीं।—चोखे०, पृ० ५४। **मुँह में कालिख पुतना या लगना**=बहुत अधिक बदनाम होना। कलंक लगना। **मुँह माँगी मुराद पाना**=इच्छित वस्तु प्राप्त करना। उ०—हुमायूँ बागवाँ दिल ही दिल में हँस रहे थे कि मुँहमाँगी मुराद पाई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १११। **मुँह में छाती देना**=स्तन से दूध पिलाना। उ०—मोह में माती हुई मा के सिवा, कौन मुँह में दे कभी छाती सकी।—चोखे०, पृ० ६। (**अपना**) **मुँह मोड़ना**=किसी ओर से प्रवृत्ति हटा लेना। ध्यान न देना। दे० 'अपना मुँह फेरना'। उ०—सच्चा हितैषी उनसे मुँह मोड़ गया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१। (३) इनकार करना। अस्वीकृत करना। जैसे,—हम कभी किसी बात से मुँह नहीं मोड़ते। **दूसरे का मुँह मोड़ना**=परास्त करना। हराना। जैसे,—थोड़ी ही देर में सैनिकों ने डाकुओं का मुँह मोड़ दिया। (**किसी के**) **मुँह लगना**=(१) किसी के सिर चढ़ना। किसी के सामने बढ़ बढ़-

कर बातें करना। उद्दंड बनना। (२) बातें करना। जवाब सवाल करना। जैसे,—सबके मुँह लगना ठीक नहीं। **मुँह लगाना**=सिर चढ़ाना। उद्दंड बनाना जैसे,—तुमने भी लड़कों को मुँह लगा रखा है। **मुँह लपेटकर पड़ना**=(१) बहुत ही दुःखी होकर पड़ा रहना। उ०—क्यों दुखों की लपेट मे आवे। क्यों पड़े मुँह लपेटकर कोई।—चोखे०, पृ०३०। (२) निरुद्यम होना। आलसी होना। अलसाना। **मुँह लाल करना**=(१) मुँह पर थप्पड़ आदि मारकर उसे सुजा देना। (२) पान तंबाकू से आदर सत्कार करना। **मुँह लाल होना**=मारे क्रोध के चेहरा तमतमाना। आकृति से बहुत अधिक क्रोध प्रकट होना। **मुँह सँभालना**=बातचीत में मर्यादा और शिष्टता का ध्यान रखना। उ०—पाँव तो देख भालकर डाले। मुँह सँभाले सँभालकर बोले।—चोखे०, पृ० ३०। **मुँह सफेद होना**=भय या लज्जा से चेहरे का रंग उड़ जाना। उदासी छा जाना। **मुँह सिकोड़ना**=आकृति से अप्रसन्नता या असंतोष प्रकट करना। नाक भौं चढ़ाना। **(अपना) मुँह सुजाना**=आकृति से असंतोष या अप्रसन्नता प्रकट करना। नाराजी जाहिर करना। **(किसी का) मुँह सुजाना**=थप्पड़ मार मारकर मुँह लाल करना। **मुँह सुर्ख होना**=क्रोध के मारे चेहरा तमतमाना। गुस्से से चेहरा लाल होना। **मुँह सूखना**=भय या लज्जा आदि से चेहरे का तेज जाता रहना।

४. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का विवर जो आकार आदि में मुँह से मिलता जुलता हो। जैसे,—इस बरतन का मुँह बाँधकर रख दो। ५. सूराख। छेद। छिद्र। जैसे,—दो दिन में इस फोड़े में मुँह हो जायगा। ६. मुलाहजा। मुरव्वत। लिहाज। जैसे,—हमें तो खाली तुम्हारा मुँह है; उससे तो हम कभी बात ही नहीं करते।

यौ०—मुँह मुलाहजा।

मुहा०—**मुँह करना**=मुलाहजा करना। ख्याल करना। जैसे,—धनवानों का तो सभी लोग मुँह करते हैं, पर गरीबों को कोई नहीं पूछता। **मुँह देखे का**=जो हार्दिक न हो, केवल ऊपरी या दिखौआ हो। जो केवल सामना होने पर हो। मुलाहजे का। मुरव्वत का। जैसे,—(क) आपका प्रेम तो मुँह देखे का है। (ख) ये सारी बातें मुँह देखे की हैं। **मुँह पर जाना**=किसी का ध्यान करना। लिहाज करना। जैसे,—मैं तुम्हारे मुँह पर जाता हूँ, नहीं तो अभी इसकी गत बनाकर रख देता। **मुँह मुलाहजे का**=जान पहचान का। परिचित। **मुँह रखना**=किसी का लिहाज रखना। ध्यान रखना। जैसे,—आप इतनी दूर से चलकर आए हैं, आपका मुँह रखो।

७. योग्यता। सामर्थ्य। शक्ति। जैसे,—तुम्हारा मुँह नहीं है कि तुम उसके सामने जाओ।

मुहा०—**(अपना) मुँह तो देखो**=पहले यह तो देखो कि इस योग्य हो या नहीं। (व्यंग्य)। **मुँह देखकर बात करना**=किसी के साथ उसकी योग्यता के अनुसार बात करना।

८. साहस। हिम्मत।

मुहा०—**मुँह पड़ना**=साहस होना। हिम्मत होना। जैसे,—उनके सामने कुछ कहने का भी तो मुँह नहीं पड़ता।

९. ऊपरी भाग। उपर की सतह या किनारा।

मुहा०—**मुँह तक आना या भरना**=पूरी तरह से भर जाना। लबालब होना। जैसे—तालाब में पानी मुँह तक आ गया है।

मुँहअँधेरे—क्रि० वि० [हिं०] बहुत सबेरे। तड़के।

मुँहअखरी(५)†—वि० [हिं० मुँह+अक्षर] जो केवल मुँह से कहा जाय, लिखा न जाय। जबानी। शाब्दिक।

मुँहउजाले—क्रि० वि० [हिं०] पौ फटते। बहुत सबेरे।

मुँहकाला—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+काला] १. अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। २. बदनामी। ३. एक प्रकार की गाली। जैसे,—जा तेरा मुँहकाला हो।

मुँहचंग—संज्ञा पुं० [हिं०] एक बाजा। दे० 'मुरचंग'।

मुँहचटौवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+चाटना+औवल (प्रत्य०)] १. चुंबन। चूमाचाटी। २. बकबक। बकवाद।

मुँहचोर—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+चोर] वह जो दूसरों के सामने जाने से मुँह छिपाता हो। लोगों के सामने जाने में संकोच करनेवाला।

मुँहचोरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मुँह चुराने की क्रिया या भाव। मुँहचोर की क्रिया या स्थिति।

मुँहचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मुँहचोर होना।

मुँहछुआई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+छूना+आई (प्रत्य०)] केवल मुँह से छूने के लिये, ऊपरी मन से कुछ कहना।

मुँहछुट—वि० [हिं० मुँह+छूटना] जिसका मुँह ओछी या कटु बातें कहने के लिये खुला रहे। मुँहफट।

मुँहजली—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुंह+जली] [पुं० मुँहजला] स्त्रियों की गाली। जले मुँहवाली। मुँहझौंसी। उ०—यही तुम्हारा दर्शन है। यहाँ इस मुँहजली को लेकर पड़े हो।—आकाश०, पृ० ६८।

मुँहजोर—वि० [हिं० मुँह+जोर] १. वह जो बहुत अधिक बोलता हो। बकवादी। २. दे० 'मुँहफट'। ३. जो जल्दी किसी के वश में न आता हो। तेज। उद्दंड। जैसे, मुहजोर घोड़ा।

मुँहजोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँहजोर+ई (प्रत्य०)] १. मुँहजोर होने की क्रिया या भाव। २. तेजी। उद्दंडता।

मुँहझोंसा, मुँहझौंसा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+झौंसना] [स्त्री० मुँहझोंसी, मुँहझौंसी] स्त्रियों की गाली। मुँहजला। उ०—परंतु यदि उस मुँहझोंसे रोज को पा गई तो तोप, बंदूक या तलवार से सच्चा नाम बतलाए बिना न मानूँगी।—झाँसी०, पृ० ३५०।

मुँहड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह] दे० 'मोहरी'। उ०—यह लंबी मुँहड़ी का पायजामा ?—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

मुँहदिखरावनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+दिखराना] दे० 'मुँह-दिखाई'।

मुँहदिखलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+दिखलाना] दे० 'मुँह दिखाई'।

मुँहदिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+दिखाई] १. नई वधू का मुँह देखने की रस्म। मुँहदेखनी। २. वह धन जो मुँह देखने पर वधू को दिया जाय।

मुँहदेखनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुँहदिखाई'।

मुँहदेखा—वि० [हिं० मुँह+देखा] [स्त्री० मुँहदेखी] १. केवल सामना होने पर होनेवाला (काम या व्यवहार)। जो हार्दिक या आंतरिक न हो। जो किसी को केवल संतुष्ट या प्रसन्न करने के लिये हो। जैसे, मुँहदेखी बात। २. सदा आज्ञा की प्रतीक्षा में रहनेवाला। सदा मुँह ताकता रहनेवाला।

मुँहनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+नाल(=नली)] १. धातु की बनी हुई वह नली जो हुक्के की सटक या नैचा आदि के अगले भाग में लगा देते हैं और जिसे मुँह में लगाकर धूआँ खींचते हैं। २. धातु का वह टुकड़ा जो म्यान के सिरे पर लगा होता है।

मुँहपटा†—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+सं० पट्टा] घोड़े के मुँह पर लगाया जानेवाला एक साज जिसे सिरबंद भी कहते हैं।

मुँहपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+पड़ना] वह जो सब लोगों के मुँह पर हो। प्रसिद्ध। मशहूर। (क्व०)।

मुँहपातरⓅ†—वि० [हिं० मुँह+पातर (=पतला)] मुँह का हलका। किसी सुनी हुई गोप्य बात को दूसरे से कह देनेवाला।

मुँहफट—वि० [हिं० मुँह+फटना] जो अपनी जबान को वश में न रख सके और जो कुछ मुँह में आवे कह दे। ओछी या कटु बात कहने में संकोच न करनेवाला। जिसकी वाणी संयत न हो। बोलने में इस बात का विचार न करनेवाला कि कोई बात किसी को बुरी लगेगी या भली। बदजबान।

मुँहबंद—वि० [हिं० मुँह+बंद] १. जिसका मुँह बंद हो, खुला न हो। जैसे, मुँहबंद बोतल। २. अविकसित। जो खिला न हो ३. कुँआरी। अक्षतयोनि। (बाजारू)।

मुँहबँधा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+बँधना] एक प्रकार के जैन साधु जो प्रायः मुँह पर कपड़ा बाँधे रहते हैं।

मुँहबोला—वि० [हिं० मुँह+बोलना] (संबंधी) जो वास्तविक न हो, केवल मुँह से कहकर बनाया गया हो। वचन द्वारा निरूपित। जैसे, मुँहबोला भाई, मुँहबोली बेटी।

मुँहभर—क्रि० वि० [हिं०] अच्छी तरह। ठीक ढंग से। जैसे, मुँहभर बोलना या बात करना।

मुँहभराई—संज्ञा स्त्री० [मुँह+भरना+आई (प्रत्य०)] १. मुँह भरने की क्रिया या भाव। २. वह धन आदि जो किसी का मुँह बंद करने के लिये, उसे कुछ कहने या करने से रोकने के लिये, दिया जाय। रिश्वत। घूस।

मुँहलगा—वि० [मुँह+लगना] सिरचढ़ा। शोख। ढीठ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुँहमाँगा—वि० [हिं० मुँह+माँगना] अपनी इच्छा के अनुसार। अपने माँगने के अनुसार। इच्छानुकूल। जैसे, मुँहमाँगा वर पाना, मुँहमाँगी मुराद पाना, मुँहमाँगा दाम पाना। उ०—(क) मुँहमाँगी मौत नहीं मिलती। (कहा०)। (ख) शुभे, और क्या कहूँ, मिले मुँहमाँगा तुझको।—साकेत, पृ० ४०९।

मुँहाचहीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह+चाहना] परस्पर की प्रेम-पूर्ण बात। प्रेमी प्रेमिका का एक दूसरे से बोलचाल करना। उ०—मुँहाचही जुवतिन तब कीनी।—सूर० (राधा०), पद १२६७।

मुँहाचुहाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] मुँह देखे की बात। चुभने या लगनेवाली बात। उ०—नृपति बचन यह सबनि सुनायौ। मुँहाचुही सेनापति कीन्ही सकटैं गर्व बढ़ायौ।—सूर०, १०।६१।

मुँहामुँह—क्रि० वि० [हिं० मुँह+मुँह] मुँह तक। अंदर से बिलकुल ऊपर तक। लबालब। भरपूर। जैसे,—(क) गगरा मुँहामुँह तो भरा है, और पानी क्यों डालते हो ? (ख) अब की एक ही वर्षा में तालाब मुँहामुँह भर गया।

मुँहासा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+आसा (प्रत्य०)] मुँह पर के वे दाने या फुंसियाँ जो युवावस्था में निकलती हैं और यौवन का चिह्न मानी जाती हैं। जैसे,—बूढ़े मुँह मुँहासे, लोग देखें तमासे। (कहा०)।

विशेष—मुँहासों के निकलने से चेहरा कुछ भद्दा हो जाता है। इन्हें 'ढाड़सा' भी कहते हैं। ये केवल युवावस्था में ही २० से २५ वर्ष तक प्रकट होते हैं, इसके पूर्व या पर बहुत कम रहते हैं।

मु—संज्ञा पुं० [सं०] १. महेश। २. बंधन। ३. और्ध्वदैहिक चिता। ४. लालमायुक्त भूरा या पिंगल रंग। ५. मुक्ति। मोक्ष [को०]।

मुअज्जन—संज्ञा पुं० [अ० मुअज्जिन] वह जो मसजिद में नमाज के समय अजान देता है। नमाज के लिये सब लोगों का पुकारनेवाला।

मुअज्जम—वि० [अ० मुअज्ज़म] [वि० स्त्री० मुअज्जमा] पूज्य। बुजुर्ग। महान्। श्रेष्ठ। उ०—मुअज्जम इसमें अँगाली हमेहा। बलियाँ सब मिल किये हैं दर बजाका।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

मुअज्जिज—वि० [अ० मुअज्जिज] प्रतिष्ठित। इज्जतदार।

मुअज्जिन—संज्ञा पुं० [अ० मुअज्जिन] दे० 'मुअज्जन'। उ०—बजी न मंदिर में घड़ियाली, चढ़ी न प्रतिमा पर माला; बैठा अपने भवन मुअज्जिन देकर मसजिद में ताला।—मधुशाला, पृ० २०।

मुअत्तल—वि० [अ०] १. जिसके पास काम न हो। खाली। २. जो काम से कुछ समय के लिये, दंडस्वरूप, अलग कर दिया गया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुअत्तली—संज्ञा स्त्री० [अ० मुअत्तल+ई (प्रत्य०)] १. मुअत्तल

होने का भाव । बेकारी । २. काम से कुछ दिन के लिये अलग कर दिया जाना ।

मुअद्द—वि० [अ०] गणित । गिना या शुमार किया हुआ ।

मुअद्दब—वि० [अ०] शिष्ट । अदबवाला । सभ्य [को०] ।

मुअद्दा—वि० [अ०] अदा किया हुआ । शोधित [को०] ।

मुअन्नस—संज्ञा स्त्री० [अ०] (व्याकरण में) स्त्रीलिंग ।

मुअम्मर—वि० [अ०] वयोवृद्ध । बड़ी आयुवाला । बूढ़ा ।

मुअम्मा—संज्ञा पुं० [अ०] १. रहस्य । भेद ।

मुहा०—**मुअम्मा खुलना या हल होना** = रहस्य खुलना । भेद प्रकट होना ।

२. पहेली । उ०—ख्याल के बाहर की बातें भला कोई क्यों कर तोले । ताकत क्या है, मुअम्मा तेरा कोई हल कर जो ले । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६४ । ३. घुमाव फिराव की बात । ऐसी बात जो जल्दी समझ में न आवे ।

मुअल्लक—वि० [अ० मुअल्लक़] अधर में लटका हुआ । उ०—उठा उठाकर ले को यूसुफ मुअल्लक । अपस के हात के ऊपर इमलक । —दक्खिनी०, पृ० ३४२ ।

मुअल्ला—वि० [अ०] १. उत्तुंग । श्रेष्ठ । ऊँचा । आला । २. उच्च-पदस्थ । ऊँचे मरतबेवाला ।

मुअल्लिम—संज्ञा पुं० [अ० मुअल्लिम] [स्त्री० मुअल्लिमा] अध्यापक । शिक्षा देनेवाला । शिक्षक ।

मुआ—वि० [सं० **मृतक**, प्रा० **मुअअ**] [वि० स्त्री० **मुई**] १. मृत । मरा हुआ । गतप्राण । उ०—मुए जिआए भालुकपि, अवध विप्र को पूत । सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७६ । २. निगोड़ा । क्षुद्र । (वस्तु वा व्यक्ति के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त) । उ०—(क) और मुए पहाड़ पर रखा ही क्या है आखिर ?—सैर० पृ० १५ । (ख) खुदा जाने मुइयाँ मर्दों पर क्या जादू कर देती हैं कि बिलकुल उनके बस में हो जाते हैं ।—सैर०, पृ० १४ ।

मुआइना—संज्ञा पुं० [अ० मुआइनह्] दे० 'मुआयना' ।

मुआफ—वि० [अ० मुआफ़] दे० 'माफ' । उ०—जब सरकार आपको मुआफ कर देगी तो मुकदमा कैसे चलाएगी । —गबन, पृ० २८६ ।

मुआफकत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुआफ़क़त] १. मुआफिक या अनुकूल होने का भाव । २. साथ । दोस्ती । मेल जोल । हेल मेल ।

यौ०—मेल मुआफकत ।

मुआफिक—वि० [अ० **मुआफ़िक़**] १. जो विरुद्ध न हो । अनुकूल । २. सदृश । समान । ३. ठीक ठीक । न अधिक, न कम । बराबर । ४. मनोनुकूल । इच्छानुसार ।

मुआफिकत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुआफ़िक़त**] १. अनुरूपता । २. अनुकूलता । ३. मित्रता । दोस्ती ।

यौ०—**मेल मुआफिकत** ।

क्रि० प्र०—**करना** । **रखना** ।

मुआफी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुआफी**] दे० 'माफी' ।

मुआफीनामा—संज्ञा पुं० [अ० **मुआफ़ीनामह्**] माफीनामा । क्षमा-पत्र । उ०—जब सरकार आपको मुआफ कर देगी तो मुकदमा कैसे चलाएगी । आपको तहरीरी मुआफीनामा दिया जायगा ।—गबन, पृ० २८६ ।

मुआमला—संज्ञा पुं० [अ० **मुआमला**] दे० 'मामला' ।

यौ०—**मुआमलादाँ** = मुआमले को समझनेवाला । दूरदर्शी । **मुआमला ना दाँ** = जो मामला न समझे । बेवकूफ । **मुआमला-फहम**, **मुआमलानाल**, **मुआमलासंज** = दे० 'मुआमला दाँ' ।

मुआयना—संज्ञा पुं० [अ० **मुआयना**] देखभाल । पर्यवेक्षण । जाँच पड़ताल । निरीक्षण ।

मुआलिज—संज्ञा पुं० [अ० **मुआलिज**] इलाज करनेवाला । चिकित्सक ।

मुआलिजा—संज्ञा पुं० [अ० **मुआलिजह्**] इलाज । चिकित्सा ।

यौ०—**इलाज मुआलिजा** ।

मुआवजा—संज्ञा पुं० [अ० **मुअावज़ह्**] १. बदला । पलटा । २. वह धन जो किसी कार्य अथवा हानि के बदले में मिले । ३. वह रकम जो जमींदार को उस जमीन के बदले में मिलती है, जो किसी सार्वजनिक काम के लिये कानून की सहायता से ले ली जाती है ।

क्रि० प्र०—**दिलाना** ।—**देना** ।—**पाना** ।—**मिलना** ।

मुआहिदा—संज्ञा पुं० [अ० **मुआहिदा**] पक्की बातचीत । दृढ़ निश्चय । कौल करार ।

मुऐयन—[वि० अ०] नियत । मुकर्रर । निश्चित । उ०—कोई उम्मीद बर नहीं आती । कोई सूरत नजर नहीं आती । मौत का एक दिन मुऐयन है । नींद क्यों रात भर नहीं आती ।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४७२ ।

मुकंद—संज्ञा पुं० [सं० **मुकन्द**] १. कुंदरू । २. प्याज । ३. साठी धान ।

मुकंदक—संज्ञा पुं० [सं० **मुकुन्दक**] प्याज । २. एक प्रकार का साठी धान ।

मुक—संज्ञा पुं० [सं०] गोमय की गंध [को०] ।

मुकट—संज्ञा पुं० [सं० **मुकुट**] दे० 'मुकुट' । उ०—कुंडल मंडित गंड सुदेश । मनिमय मुकट सु घूँघर केश ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७ ।

मुकटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की रेशमी धोती जो प्रायः पूजन या भोजन आदि के समय पहनी जाती है ।

मुकट्ट⑤—संज्ञा पुं० [सं० **मुकुट**] दे० 'मुकुट' । उ०—मुकुट्टयं मयूर चंद्र सीसयं सुलष्षयं ।—पृ० रा०, २।३२८ ।

मुकत⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुक्ता**] दे० 'मुक्ता' । उ०—कंचन माल, मुकत की माल । झिलमिलात छबि छती विसाल ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२ ।

यौ०—मुकतफल = मुक्ताफल । मोती । उ०—फबै सवामरा मुकतफल मैंगल कुंभ मझार ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २४ ।

मुकतई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] मुक्ति । छुटकारा । उ०—तूँ मति मानै मुकतई किएँ कपट चित कोटि । जौ गुनही तौ राखिऐ आँखिनु माँझ अगोटि ।—बिहारी (शब्द०) ।

मुकता[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुक्ता] दे० 'मुक्ता' । ऊ०—कलँगी सड़क सेत गजगाहैं । मालनि जटित मंजु मुकता हैं ।—हम्मीर०, पृ० ३ ।

मुकता[2]—वि० [हिं० अ (प्रत्य०) + मुकना (= समाप्त होना)] [वि० स्त्री० मुकती] जो जल्दी समाप्त न हो । बहुत अधिक । यथेष्ट । जैसे,—उनके पास मुकते कपड़े हैं; कहाँ तक पहनेंगे ।

मुकतालि—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तावली] मोतियों की लड़ी । मुक्तावलि । उ०—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलि तन दुति मुकतालि । छिन छिन खरी त्रिचच्छिनौ लखति छाइ तिनु आलि ।—बिहारी (शब्द०) ।

मुकति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तिका] १. मोती । उ०—अधरन पर बेसर सरस लुरकत लुरक बिसाल । राखन हेत मराल जनु मुकति चुगावति बाल ।—स० सप्तक, पृ० ३८६ ।

मुकति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] छुटकारा । मोक्ष । मुक्ति । उ०—सु आधीन उपरांति मुकति नांहीं ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८० ।

मुकत्तर—वि० [अ० मुकत्तर] १. निथारा या साफ किया हुआ । २. बूँद बूँद करके टपकाया हुआ [को०] ।

मुकत्ता—वि० [अ० मुक़त्तअ] १. काट छाँटकर दुरुस्त किया हुआ । ठीक तरह से बनाया हुआ । जैसे, मुकत्ता दाढ़ी । २. सभ्य । शिष्ट । जैसे, मुकत्ता सूरत ।

मुकदमा—संज्ञा पुं० [अ० मुक़द्दमह्] १. दो पक्षों के बीच का धन, अधिकार आदि से संबंध रखनेवाला कोई झगड़ा अथवा किसी अपराध (जुर्म) का मामला जो निबटारे या विचार के लिये न्यायालय में जाय । व्यवहार या अभियोग । जैसे,—वह वकील जो मुकदमा हाथ में लेता है, वही जीतता है ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खड़ा करना ।—चलना । चलाना ।—जीतना । हारना ।

मुहा० = मुकदमा लड़ना = मुकदमे में अपने पक्ष में प्रयत्न करना ।

२. धन का अधिकार आदि पाने के लिये अथवा किए हुए अपराध पर दंड दिलाने के लिये किसी के विरुद्ध न्यायालय में कार्रवाई । दावा । नालिश ।

क्रि० प्र०—दायर करना ।

यौ०—मुकदमेबाजी ।

३. किसी पुस्तक की प्रस्तावना । भूमिका । प्राक्कथन (को०) ४. काम । कार्य (को०) ।

मुकदमेबाज—संज्ञा पुं० [अ० मुक़दमा + फ़ा० बाज (प्रत्य०)] वह जो प्रायः मुकदमें लड़ा करता हो ।

मुकदमेबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुक़दमा + फ़ा० बाजी] मुकदमा लड़ने का काम ।

मुकद्दम[1]—वि० [अ० मुक़द्दम] १. प्राचीन । पुराना । २. सर्वश्रेष्ठ । ३. जरूरी । आवश्यक ।

क्रि० प्र०—जानना ।—समझना ।

मुकद्दम[2]—संज्ञा पुं० १. मुखिया । नेता । उ०—राजा एक पचीस तिलंगा, पाँच मुकद्दम सो पचरंगा ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ३२ । २. रान का ऊपरी भाग जो कूल्हे से जुड़ा होता है । (कसाई) ।

मुकद्दमा—संज्ञा पुं० [अ० मुक़द्दमह्] दे० 'मुदकमा' ।

मुकद्दर—संज्ञा पुं० [अ० मुक़द्दर] प्रारब्ध । भाग्य । तकदीर ।

मुहा०—मुकद्दर आजमाना = भाग्य की परीक्षा करना । मुकद्दर चमकना = भाग्योदय होना ।

मुकद्दस—[अ० मुक़द्दस] पवित्र । शुचि । पाक ।

यौ० मुकद्दस किताब = ऐसी धर्मपुस्तक जो अपौरुषेय मानी जाती हो । उ०—मुकद्दस कुतुब बेद बानी बयान । जो देखे पढ़े उसको हो सब गयान—कबीर मं०, पृ० ३८६ । मुकद्दस हस्ती = पुनीतात्मा । महात्मा । संत पुरुष ।

मुकना[1]—संज्ञा पुं० [सं० मनाक, हिं० मुकना] दे० 'मकुना' ।

मुकना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० मुक्त] १. मुक्त होना । छूटना । २. खतम होना । चुकना ।

मुकफ्फल—वि० [अ० मुक़फ्फल] यंत्रित । बंद किया हुआ । जैसे, मुकफ्फल दरवाजा, मुकफ्फल संदूक [को०] ।

मुकम्मल—वि० [अ०] १. पूरा किया हुआ । जिसमें कुछ भी करने को बाकी न हो । सब तरह से तैयार । २. पूर्ण । समग्र । पूरा [को०] ।

मुकम्मिल—वि० [अ०] पूर्ण करनेवाला । पूरा करनेवाला । उ०—मोहिउद्दीन है पीर मुकम्मिल अव्वल ।—दक्खिनी०, पृ० ११४ ।

मुकर—संज्ञा पुं० [सं० मुकुर ?] कली । मुकुर । मुकुल । उ०—नरियल ऐनक मुकर लगाई । मन मोड़ै पुनि बास उड़ाई ।—घट०, पृ० २१८ ।

मुकरना[1]—क्रि० अ० [सं० मुक्त (= नहीं) + करना] कोई बात कहकर उससे फिर जाना । कही हुई बात से या किए हुए काम से इनकार करना । नटना । जैसे—उनका तो यही काम है; सदा कहकर मुकर जाते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना । पड़ना ।

मुकरना[2]—संज्ञा पुं० कहकर मुकर जानेवाला । वह व्यक्ति जो कहे और फिर मुकर जाय ।

मुकरना[3]—क्रि० अ० [सं० मुक्त] मुक्त होना । छूटना ।

मुकरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुकरना] मुकरी या कह मुकरी नामक कविता । विशेष दे० 'मुकरी' ।

मुकरबा—संज्ञा पुं० [अ० मुकब्बर] बहुत बड़ी मसजिद या मुकबरे का वह स्थान जहाँ नमाज में तक्बीर कहनेवाला खड़ा होता है। उ०—सुनि बोल मोहि रहो न जाई। देखि मुकरबा रहा भुलाई। कबीर बी० (शिशु०), पृ० १८२।

मुकराना[१]—क्रि० स० [हिं० मुकरना का सक० रूप] १. दूसरे को मुकरने में प्रवृत्त करना। २. दूसरों को झूठा बनाना। (क्व०)।

मुकराना[२]—क्रि० स० [सं० मुक्त] मुक्त कराना। छुड़ाना। उ०—प्रिय जेहि बंदि जोगिनि होई धावौं। हौं बँदि लेउँ पियहि मुकरावौं।—जायसी (शब्द०)।

मुकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुकरना+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार की कविता। कह मुकरी। वह कविता जिसमें प्रारंभिक चरणों में कही हुई बात से मुकरकर उसके अंत में भिन्न अभिप्राय व्यक्त किया जाय। उ०—(क) वा बिन मोको चैन न आवे। वह मेरी तिस आन बुझावे। है वर सब गुन बारह बानी। ऐ सखि साजन ? ना सखि पानी। (ख) आप हिले औ मोहिं हिलावे। वाका हिलना मोको भावे। हिल हिल के वह हुआ निसंखा। ऐ सखि साजन ? ना सखि पंखा। (ग) रात समय मेरे घर आवे। भोर भए वह घर उठ जावे। यह अचरज है सब से न्यारा। ऐ सखि साजन ? ना सखि तारा। (घ) सारि रैन वह मो सँग जागा। भोर भई तब बिछुड़न लागा। वाके बिछुड़त फाटे हिया। ऐ सखि साजन ? ना सखि दिया।

विशेष—यह कविता प्रायः चार चरणों की होती है इसके पहले तीन चरण ऐसे होते हैं; जिनका आशय दो जगह घट सकता है। इनसे प्रत्यक्ष रूप से जिस पदार्थ का आशय निकलता है, चौथे चरण में किसी और पदार्थ का नाम लेकर, उससे इनकार कर दिया जाता है। इस प्रकार मानों कही हुई बात से मुकरते हुए कुछ और ही अभिप्राय प्रकट किया जाता है। अमीर खुसरो ने इस प्रकार की बहुत सी मुकरियाँ कही हैं। इसके अंत में प्रायः 'सखी' या 'सखिया' भी कहते हैं।

मुकर्रम—वि० [अ०] पूज्य। प्रतिष्ठित। सम्मानित [को०]।

मुकर्रर[१]—क्रि० वि० [अ०] दोबारा। फिर से। दूसरी बार।

मुहा०—**मुकर्रर सिकर्रर**=दूसरी और तीसरी बार फिर। कई बार।

मुकर्रर[२]—वि० [अ० मुक़र्रर] जिसका इकरार किया गया हो। जो ठहराया गया हो। तय किया हुआ। निश्चित। जैसे,—इस काम का उनसे सौ रुपया मुकर्रर हुआ है। २. जो तैनात किया गया हो। नियुक्त। जैसे,—किसी आदमी को इस काम पर मुकर्रर कर दो।

मुकर्रर[३]—क्रि० वि० अवश्य ही। निस्संदेह।

मुकर्ररी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुक़र्रर] १. मुकर्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति। २. नियत राजकर। मालगुजारी। ३. नियत वेतन या वृत्ति आदि।

मुकर्रिर—वि० [अ०] भाषण करनेवाला। वक्ता [को०]।

८-२३

मुकल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आरग्वध। अमलतास। २. गुग्गुल।

मुकलना⑤—क्रि० स० [सं० मुञ्च, प्रा० मुक्क] छोड़ना। मुक्त करना। प्रेषित करना। भेजना। उ०—मुक्कले दूत प्रिथिराज तथ्य। सेवा सु पाइ उप्पर जु हथ्थ।—पृ० रा०,१।५६७।

मुकलाई†—संज्ञा स्त्री० [प्रा० मुक्कल] मुक्ति। छुटकारा। उ०—अब की करिहौं बंदगी सुनु रे मन बौरे, जो पइहों मुकलाई।—धरनी०, पृ० ४।

मुकलाना⑤—क्रि० स० [सं० मुक्त या मुकलित] मुक्त करना। खोलना। छोड़ना। बिखराना। उ०—सरवर तीर पदमिनी आई। खोपा छोरि केस मुकलाई।—जायसी (शब्द०)।

मुकलावा—संज्ञा पुं० [देश०] गौना। द्विरागमन। उ०—एक दिवस वह अपना मुकलावा (गौना) लेने को गया।—कबीर, मं०, पृ० १०३।

मुक़व्वी—वि० [अ० मुक़व्वी] ताकत बढ़ानेवाला। बलवर्धक। पुष्टिकारक।

मुकाबला—संज्ञा पुं० [अ० मुक़ाबलह्] १. आमना सामना। २. मुठभेड़। ३. बराबरी। समानता। ४. तुलना। ५. मिलान। ६. प्रतियोगिता। प्रतिद्वंद्विता (को०)। ७. विरोध। लड़ाई।

मुहा०—**मुकाबले पर आना**=विरोध या प्रतिद्वंद्विता करने अथवा लड़ने के लिये सामने आना।

मुकाबिल[१]—क्रि० वि० [अ० मुक़ाबिल] संमुख। आमने सामने। उ०—लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

मुकाबिल[२]—वि० १. सामनेवाला। २. समान। बराबर का। बराबरी करनेवाला।

मुकाबिल[३]—संज्ञा पुं० १. प्रतिद्वंद्वी। २. शत्रु। दुश्मन।

मुकाम—संज्ञा पुं० [अ० मुक़ाम] १. ठहरने का स्थान। टिकान। पड़ाव। २. ठहरने की क्रिया। कूच का उलटा। विराम।

मुहा०—**मुकाम बोलना**=अधिकारी का अपने अधीनस्थ कर्मचारियों या सैनिकों को ठहरने की आज्ञा देना। **मुकाम देना**=किसी के मर जाने पर उसके घर मातमपुरसी करने जाना।

३. रहने का स्थान। घर। ४. अवसर। मौका। ५. सरोद का कोई परदा (संगीत)। ५. सूफी साधना में साधक की अवस्थाएँ या टिकान या पड़ाव। भूमिका। साधक की अवस्थान-भूमि। उ०—इस मार्ग में कई पड़ाव हैं जो मुकामात कहलाते हैं इनमें पहला मुकाम है 'तौबा'।—जायसी ग्रं० (भू०), पृ० १४३।

यौ०—**मुकामे मकसूद**=लक्ष्य स्थान। उद्दिष्ट स्थान। उ०—बस फिर मुकामे मकसूद ढूँढ़ लीजिएगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५२।

मुकियल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिसे नल बाँस या विधुली भी कहते हैं।

मुकियाना—क्रि० स० [हिं० मुक्की+इयाना (प्रत्य०)] १. किसी

के शरीर पर मुक्कियों से बार बार आघात करना जिसमें उसके अंगों की शिथिलता दूर हो। २. आटा गूँधने के उपरांत उसे नरम करने के लिये मुक्कियों से बार बार दबाना। ३. मुक्का लगाना या मारना। घूँसे लगाना।

मुक्रिर—वि० [अ० मुक़िर, मुक़िर्र] १. इकरार करनेवाला। प्रतिज्ञा करनेवाला। २. किसी दस्तावेज या अरजीदावे आदि का लिखानेवाला, जिसके हस्ताक्षर से वह प्रस्तुत हो। (कच०)।

मुकीम—वि० [अ० मुक़ीम] १. कुछ दिनों के लिये कहीं ठहरा हुआ। २. निवासी। रहनेवाला [को०]।

मुकुंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुकुन्टी] प्राचीन काल का एक अस्त्र।

मुकुंद—संज्ञा पुं० [सं० मुकुन्द] १. मुक्ति देनेवाले, विष्णु। २. पुराणानुसार एक प्रकार की निधि। ३. एक प्रकार का रत्न। ४. कुंदरू। ५. पारा। ६. सफेद कनेर। ७. गंभारी नामक वृक्ष। ८. पोई का साग। ९. एक प्रकार का वाद्य। पटह। दुंदुभि (को०)। १०. साठी धान (को०)। ११. संगीत में ताल का एक प्रकार (को०)।

मुकुंदक—संज्ञा पुं० [सं० मुकुन्दक] १. प्याज। २. साठी धान।

मुकुंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मुकुन्दा] भेरी। दुंदुभी [को०]।

मुकुंदु—संज्ञा पुं० [सं० मुकुन्दु] १. कुंदरू। २. सफेद कनेर। ३. पारा। ४. गंभारी। ५. पोई का साग।

मुकु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्ति। मोक्ष। २. छुटकारा। रिहाई।

मुकुट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का प्रसिद्ध शिरोभूषण जो प्रायः राजा आदि धारण किया करते थे।

विशेष—यह प्रायः बीच में ऊँचा और कँगूरेदार होता था और सारे मस्तक के ऊपर एक कान के पास से दूसरे कान के पास तक होता था। यह सोने, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुओं का और कभी कभी रत्नजटित भी होता था। यह माथे पर आगे की ओर रखकर पीछे से बाँध लिया जाता था। इसमें कभी कभी किरीट भी खोंसा जाता था।

पर्या०—**मौलि। कोटीर। शेखर। अवतंस। उत्तंस।**

२. पुराणानुसार एक देश का नाम।

मुकुट[2]—संज्ञा स्त्री० एक मातृगण।

मुकुटी[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुकुटिन्] वह जिसने मुकुट धारण किया हो।

मुकुटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटिका। चुटकी [को०]।

मुकुटेकार्षापण—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का राजकर जो राजा का मुकुट बनवाने के लिये लिया जाता था।

मुकुटेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक शिवलिंग का नाम। २. एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

मुकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

मुकुतⓅ[1]—वि० [सं० मुक्त] दे० 'मुक्त'। उ०—(क) मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना।—मानस, १।१२३। (ख) जाति हीन, अघ जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि।—मानस, ३।१५६।

मुकुत[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तक] मुक्ता। मोती।

मुकुताⓅ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुक्ता'। उ०—मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।—मानस, १।११।

यौ०—मुकुतामाल = मोतियों की माला। उ०—बहुत बाहिनी संग मुकुतामाल विशाल कर। केशव (शब्द०)। **मुकुताहल** = दे० 'मुक्ताफल'। उ०—मुकुताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु।—मानस, २।१२८।

मुकुतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] दे० 'मुक्ति'। उ०—जमगन मुह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।—मानस, १।३१।

मुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख देखने का शीशा।। आईना। दर्पण। उ०—तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई।—मानस, १।१३५। २. बकुल का वृक्ष। मौलसिरी। ३. कुम्हार का वह डंडा जिससे वह चाक चलाता है। ४. मल्लिका। मोतियाँ। ५. कली। मुकुल। ६. बेर का पेड़।

मुकुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। २. शरीर। ३. आत्मा। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का राजकर्मचारी। ५. एक प्रकार का छंद। ६. जमालगोटा। ७. भूमि। पृथ्वी।

मुकुल[2]—संज्ञा पुं० दे० 'गुग्गुल'।

मुकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] दंती वृक्ष।

मुकुलाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो कली की आकृति का होता था।

मुकुलायित—वि० [सं०] दे० 'मुकुलित'।

मुकुलित—वि० [सं०] १. जिसमें कलियाँ आई हों। २. कुछ खिली हुई। (कली)। ३. आधा खुला, आधा बंद। कुछ कुछ खुला ४. झाँकता हुआ। (नेत्र)।

मुकुली—संज्ञा पुं० [सं० मुकुलिन्] वह जिसमें कलियाँ आई हों।

मुकुष्ठ संज्ञा पुं० [सं०] मोठ।

मुकुष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] मोठ।

मुकूलक—संज्ञा पुं० [सं०] दंती वृक्ष। अंडी की जाति का एक वृक्ष। विशेष दे० 'दंती'।

मुकेसⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुक़्क़ैश] दे० 'मुक्कैश'। उ०—सतगन नग पर बसन मुकेस राजै, एक सी प्रकासी गति दोनों चितचोर की।—पजनेस०, पृ० १।

मुक्का—संज्ञा पुं० [सं० मुष्टिका] [स्त्री० अल्पा० मुक्की] हाथ का वह रूप जो उँगलियों और अँगूठे को बंद कर लेने पर होता है और जिससे प्रायः आघात किया जाता है। बँधी मुट्ठी जो मारने के लिये उठाई जाय।

मुहा०—**मुक्का चलाना या मारना** = मुक्के से आघात करना। **मुक्का सा लगना** = हार्दिक कष्ट पहुँचना।

यौ०—मुक्केबाजी।

मुक्काना—क्रि० स० [सं० मुञ्च, प्रा० मुक्क] मुक्त करना। भेजना। छोड़ना। उ०—मुक्काए मतिवंतिनी, नृप कग्गद दै हथ्थ। पूजा मिसि बाला सुभर संमुयान मिलि तथ्थ।—पृ० रा०, २५।२६६।

मुक्काम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० मुक़ाम] दे० 'मुकाम'। उ०—दस कोस जाय मुक्काम कीन। बिच गाम नगर पुर लूट लीन।—पृ० रा०, १।४३७।

मुक्की—संज्ञा पुं० [हिं० मुक्का + ई (प्रत्य०)] १. मुक्का। घूँसा। २. वह लड़ाई जिसमें मुक्कों की मार हो। उ०—मुक्की सु किज्जे मार, तहवीर टुट्टहि भार।—पृ० रासो, पृ० १५२। ३. आटा गूँधने के उपरांत उसे मुट्ठियों से बार बार दबाना जिससे आटा नरम हो जाता है।

क्रि० प्र०—देना। लगाना।

४. हाथ पैर आदि दबाने की क्रिया। मुट्ठियाँ बाँधकर उससे किसी के शरीर पर धीरे धीरे आघात करना, जिससे शरीर की शिथिलता और पीड़ा दूर होती है।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुक्केबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुक्का + बाजी (प्रत्य०)] मुक्कों की लड़ाई। घूसेबाजी। घूँसमघूँसा।

मुक्केश—संज्ञा पुं० [अ० मुक़ैश] १. चाँदी या सोने का एक विशिष्ट रूप में काटा हुआ तार जिसे बादला कहते हैं। २. सुनहले या रुपहले तारों का बना हुआ कपड़ा। ताश। तमामी। जरबफ्त।

मुक्कैशी—वि० [अ० मुक़ैश + ई (प्रत्य०)] १. बादलों का बना हुआ। २. जरी या ताश का बना हुआ।

मुक्कैशी गोखरू—संज्ञा पुं० [हिं० मुक्कैशी + गोखरू] एक प्रकार का महीन गोखरू जो तारों को मोड़कर बनाया जाता है।

मुक्ख(पु)—वि० [सं० मुख] दे० 'मुख'। उ०—तजी बाल क्रीडा जलं त्यागि भग्गी। जहीं ओर दौरो भयौ मुक्ख अग्गी।—ह० रासो०, पृ० ३८।

मुक्खी—संज्ञा पुं० [हिं० मुख + ई (प्रत्य०)] गोले कबूतर से मिलता जुलता एक प्रकार का कबूतर जो प्रायः उन्हीं के साथ मिलकर उड़ता है और अपनी गरदन जरा कसे रहता है। २. वह कबूतर जिसका सारा शरीर तो काला, हरा या लाल हो, पर जिसके सिर और डैनों पर एक या दो सफेद पर हों।

मुक्त[1]—वि० [सं०] १. जिसे मोक्ष प्राप्त हो गया हो। जिसे मुक्ति मिल गई हो। जैसे,—काशी में मरने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। २. जो बंधन से छूट गया हो। जिसका छुटकारा हो गया हो। जैसे,—वह कारागार से मुक्त हो गया है। ३. जो पकड़ या दबाव से इस प्रकार अलग हुआ हो कि दूर जा पड़े। चलने के लिये छूटा हुआ। फेंका हुआ। क्षिप्त। जैसे, बाण का मुक्त होना। ४. बंधन से रहित। बंधन से छूटा हुआ। खुला हुआ।

मुक्त[2]—संज्ञा पुं० १. पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. वह जिसने मुक्ति प्राप्त कर ली हो [को०]।

मुक्त(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० मुक्ता] दे० 'मुक्ता'। उ०—हेम हीर हार मुक्त चीर चारु साजि के।—केशव (शब्द०)।

मुक्तकंचुक—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तकञ्चुक] वह साँप जिसने अभी हाल में केंचुली छोड़ी हो।

मुक्तकंठ—वि० [सं० मुक्तकण्ठ] १. जो जोर से बोलता हो। चिल्लाकर बोलनेवाला। २. जो बोलने में बेधड़क हो। जिससे कहने में आगा पीछा न हो। जैसे,—मुक्तकंठ होकर कोई बात स्वीकार करना।

मुक्तक—संज्ञा सं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो फेंककर मारा जाता था। २. एक प्रकार का काव्य जो एक ही खंड या पद्य में पूरा होता है। वह कविता जिसमें कोई एक कथा या प्रसंग कुछ दूर तक न चले। फुटकर कविता। 'प्रबंध' का उलटा जिसे 'उद्भट' भी कहते हैं। उ०—मुक्तक या उद्भट में जो रस की रस्म अदा की जाती है उसमें ग्रीष्म दशा का समावेश नहीं होता।—रस०, पृ० १८९।

मुक्तक ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जिसकी लिखा पढ़ी न हुई हो। जबानी बातचीत पर दिया हुआ ऋण।

मुक्तकच्छ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध का नाम।

मुक्तकच्छ[2]—वि० जिसकी लाँग या काछ खुली हो [को०]।

मुक्तकुंतला—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तकुन्तला] बिखरे बालोंवाली। जिसके बाल इधर उधर बिखरे हों। उ०—धूलि धूसरित, मुक्तकुंतला किसके चरणों की दासी ?—वीणा, पृ० ११।

मुक्तकेश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मुक्तकेशी] जिसके बाल बँधे या गुँथे न हों [को०]।

मुक्तकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली देवी का एक नाम।

मुक्तचंदन—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तचन्दन] लाल चंदन।

मुक्तचंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्तचन्दा] चिंचा नामक साग। चंचु।

मुक्तचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तचक्षुस्] सिंह। शेर।

मुक्तचेता—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तचेतन्] वह जिसमें मोक्ष प्राप्त करने की बुद्धि आ गई हो।

मुक्तछंद—संज्ञा पुं० [सं० मुक्त + छन्द] छंदःशास्त्र के नियमों के विपरीत छंद। अतुकांत छंद। उ०—तब भी मैं इसी तरह समस्त, कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त लिखता अबाध गति मुक्त छंद।—अनामिका, पृ० १२२।

मुक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्त होने का भाव। मुक्ति। मोक्ष। २. छुटकारा।

मुक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुक्तता' [को०]।

मुक्तद्वार—वि० [सं०] १. जिसका द्वार खुला हो। २. निर्बाध।

मुक्तनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसने अभी हाल में केंचुली छोड़ी हो।

मुक्तपत्राढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश।

मुक्तपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी आत्मा मुक्त हो। वह जिसका मोक्ष हो गया हो।

मुक्तफलाⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] माधवी। उ०—बासंती पुनि पुंडका, मुक्तफला अरु नाऊँ।—नंद ग्रं०, पृ० १०६।

मुक्तबंधन—वि० [सं० **मुक्तबन्धन**] प्रतिबंध या बंधन से मुक्त [को०]।

मुक्तबंधना—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुक्तबन्धना**] १. एक प्रकार का मोतिया। २. वेला।

मुक्तबुद्धि—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें मुक्ति प्राप्त करने के योग्य बुद्धि आ गई हो। मुक्तचेता।

मुक्तमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्तमालⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुक्ता + माला**] मुक्ता की माला। मोतियों की माला। उ०—लिए सु दोय बज्र लाल एक मुक्तमालयं।—हृ० रासो, पृ० ५१।

मुक्तरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रासना।

मुक्तलज्ज—वि० [सं०] १. जिसने लज्जा का परित्याग कर दिया हो। २. निर्लज्ज। बेहया।

मुक्तवर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अदितमंजरी। रुद्रा।

मुक्तवर्षीय—संज्ञा पुं० [सं०] कुप्पा।

मुक्तवसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। २. वह जिसने वस्त्र पहनकर छोड़ दिया हो। नंगा रहनेवाला। ३. जैन यतियों या संन्यासियों का एक भेद।

मुक्तवास—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्तवेणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रौपदी का एक नाम। २. प्रयाग का त्रिवेणी संगम।

मुक्तवेणी[2]—वि० स्त्री० जिसकी वेणी बँधी न हो [को०]।

मुक्तव्यापार—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका संसार के कार्यों या व्यापारों से कोई संबंध न रह गया हो। संसारत्यागी।

मुक्तशैशव—वि० [सं०] युवक। युवा। जो शिशुता की अवस्था को पार कर गया हो [को०]।

मुक्तशृंग—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्तशृङ्ग**] रोहू मछली।

मुक्तसंग—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्तसङ्ग**] १. वह जो विषय वासना से रहित हो गया हो। २. परिव्राजक।

मुक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] केले का पेड़।

मुक्तहस्त—वि० [सं०] [संज्ञा **मुक्तहस्तता**] जो खुले हाथों दान करता हो। बहुत बड़ा दानी।

मुक्तहृदय—वि० [सं०] राग द्वेष के बंधन से छूटा हुआ। स्थितप्रज्ञ। सत्वस्थ। उ०—जब कभी वह अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूटकर अपने आपको बिलकुल भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्तहृदय हो जाता है।—रस०, पृ० ५।

मुक्तांबर—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताम्बर**] दे० 'मुक्तवसन' [को०]।

मुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोती। २. रासना। ३. वेश्या (को०)।

मुक्ताकलाप—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों का हार। मुक्ताहार [को०]।

मुक्ताकेशी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत बढ़िया बैंगन।

मुक्तागार—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्तागुण—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों की लड़ी या माला।

मुक्तागृह—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्तात्मा—वि० [सं० **मुक्तात्मन्**] वह जिसकी आत्मा मुक्त हो। मोक्षप्राप्त। बंधनमुक्त। निरासक्त।

मुक्तानाⓅ†—क्रि० स० [सं० **मुक्त + हिं० आना** (प्रत्य०)] बंधन से छुड़ाना। मुक्त करना। मुक्ति दिलाना। उ०—गुरु है आप करम के माईं। चेला को कैसे मुक्ताई।—घट०, पृ० २५२।

मुक्तापात—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ता + हिं० पात** (= पत्ता)] एक प्रकार की झाड़ी जिसके डंठलों से सीतलपाटी नामक चटाई बनाई जाती हैं।

विशेष—यह झाड़ी पूर्व बंगाल, आसाम और बरमा की नीची तर भूमि में अधिकता से होती है और प्रायः इसकी पनीरी लगाई जाती है।

मुक्तापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पौधा या फूल।

मुक्ताप्रसू—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्ताप्रालंब—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताप्रालम्ब**] मोतियों का हार।

मुक्ताफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोती। २. कपूर। ३. हरफारेवरी। लवनी फल। लवली फल। ४. एक प्रकार का छोटा लिसोड़ा।

मुक्ताभ—वि० [सं०] मोतियों की तरह चमकदार।

मुक्ताभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिपुरमल्लिका। त्रिपुरमाली।

मुक्तामणि—संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

यौ०—**मुक्तामणिसर** = मोतियों का हार।

मुक्तामय—वि० [सं०] मोतियों से युक्त। मोती का। उ०—तुम्हारा मुक्तामय उपहार, हो रहा अश्रुकणों का हार।—झरना, पृ० २२।

मुक्तामाता—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुक्तामातृ**] सीप। शुक्ति।

मुक्तामोदक—संज्ञा पुं० [सं०] मोतीचूर का लड्डू।

मुक्तालता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतियों का कंठा।

मुक्तावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोतियों की लड़ी। मुक्तामाल [को०]।

मुक्तावास—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्ताशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीपी या शुक्ति जिसमें मुक्ता होती है।

मुक्तासन—वि० [सं०] वह जो अपने आसन से उठ खड़ा हो। २. योग प्रक्रिया का एक आसन।

मुक्तास्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] सीप। शुक्ति।

मुक्ताहलⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताफल**] मुक्ताफल। मोती। उ०—सहजहिं जानहु मेंहदी रची। मुक्ताहल लीन्हें जनु घुँघची।—जायसी (शब्द०)।

मुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छुटकारा। २. आजादी। स्वतंत्रता।

३. मोक्ष । ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति । उ०—अन्य रूप की त्यागन जुक्ति । निज स्वरूप की प्रापति मुक्ति ।—नंद० ग्रं०, २१७ ।

मुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जिसमें मुक्ति के संबंध में मीमांसा की गई है ।

मुक्तिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाराणसी । काशी । २. कावेरी नदी के पास का एक प्राचीन तीर्थ जिसका दूसरा नाम वकुलारण्य भी था ।

मुक्तितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्ति देनेवाले, विष्णु । २. दे० 'मुक्तिधाम' ।

मुक्तिधाम—संज्ञा पुं० [सं० मुक्तिधामन्] तीर्थ जहाँ मुक्ति प्राप्त हो । मुक्तिदेनेवाला स्थान ।

मुक्तिपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] मुक्त करने का आदेश । छुटकारे का परवाना ।

मुक्तिप्रद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] हरा मूँग ।

मुक्तिप्रद–वि० मुक्ति देनेवाला ।

मुक्तिफौज—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुक्ति + फ़ौज] ईसाइयों का एक सेवा और धर्म-प्रचार-कार्य करनेवाला संघटन (सालवेशन आर्मी) ।

मुक्तिमंडप—संज्ञा पुं० [सं०] विभिन्न देवस्थानों में स्थित मंडपाकार स्थानविशेष ।

मुक्तिमती संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम ।

मुक्तिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ति पाने का मार्ग या साधन ।

मुक्तिमुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस । सिल्हक ।

मुक्तिलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ति । छुटकारा मिलना ।

मुक्तिसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ति प्राप्त करने की कामना से ईश्वर और आत्मा के स्वरूप का चिंतन करना ।

मुक्तिस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण की समाप्ति, मोक्ष के बाद किया जानेवाला स्नान ।

मुक्ती†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मुक्ति । उ०—ब्राह्मण पूजे, होय न मुक्ती ।—कबीर सा०, पृ० ८१६ ।

मुक्तेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम ।

मुखंडा—संज्ञा पुं० [हिं० मुख + अंडा (प्रत्य०)] झारी आदि टोंटी-दार बरतनों में किया हुआ वह छेद जिसमें टोंटी जड़ी जाती है ।

मुखंपच—संज्ञा पुं० [सं० मुखम्पच] भिक्षुक । याचक । फकीर ।

मुख[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह । आनन । २. घर का द्वार । दरवाजा । ३. नाटक में एक प्रकार की संधि । ४. नाटक का पहला शब्द । ५. किसी पदार्थ का अगला या ऊपरी खुला भाग । ५. शब्द । ७. नाटक । ८. वेद । ९. पक्षी का चोंच । १०. जीरा । ११. आदि । आरंभ । १२. बड़हर । १३. मुरगाबी । १४. किसी वस्तु से पहले पड़नेवाली वस्तु । आगे या पहले आनेवाली वस्तु । जैसे, रजनीमुख = संध्या काल ।

मुख[२]—वि० प्रधान । मुख्य ।

मुहा०–मुख देखकर जीना = (किसी के) सहारे वा भरोसे जीना । (किसी के) आसरे जीना । उ०—सब दिनों मुख देख जीवट का जिए । लात अब कायरपने की क्यों सहें ।—चुभते०, पृ० १३ । मुख पर ताला रहना = मुँह बंद रहना । कुछ न बोलना । उ०—चित फाटो देखे चिरत, सुनियो अपजस मोर । रसिया मुख तालो रहै जाइ वाल्हो जोर ।—बाँकी०, ग्रं०, भा० २, पृ० ११ । मुख सूखना = मुरझा जाना । निराश हो जाना । उ०—वे भला आप सूख जाते क्या । मुख न सूखा जवाब सुखा सुन ।—चुभते०, पृ० १३ ।

मुखकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल के समान मुख [को०] ।

मुखकांति—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखकान्ति] मुख का सौंदर्य । मुख की शोभा [को०] ।

मुखक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत ।

मुखखुर—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत [को०] ।

मुखगंधक—संज्ञा पुं० [सं० मुखगन्धक] प्याज ।

मुखग्र—संज्ञा पुं० [सं० मुखाग्र] दे० 'मुखाग्र' । उ०—हजार कोटी जु होइ रसना एक एक मुखग्र । इडा अरबिन्न जो बसै रसनानि मंडि समग्र ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २० ।

मुखग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] मुखचुंबन [को०] ।

मुखचपल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो बहुत अधिक या बढ़ बढ़-कर बोलता हो । २. वह जो कटु वचन कहता हो ।

मुखचपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुत अधिक या बढ़ बढ़कर बोलना । २. कटु भाषण ।

मुखचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद ।

मुखचपेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कान के अंदर का एक अवयव । २. चाँटा । झापड़ (को०) ।

मुखचालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रारंभिक या परिचयात्मक नृत्य [को०] ।

मुखचित्र—संज्ञा पुं० [सं० मुख + चित्र] किसी पुस्तक के मुखपृष्ठ पर या आरंभ का चित्र ।

मुखचीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जीभ । जिह्वा । २. फौज ।

मुखचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चेहरे पर लगाने का सुगंधित चूर्ण वा बुकनी । मुँह पर लगाने का पाउडर [को०] ।

मुखज[१]—वि० [सं०] मुँह से उत्पन्न ।

मुखज[२]—संज्ञा पुं० १. ब्राह्मण (जो भगवान् के मुख से उत्पन्न माने गए हैं) । २. दाँत (को०) ।

मुखजबाँजीⓅ†—वि० [सं० मुख + फा० जबानी] मुँह जबानी । उ०—जिण बिध मुखजबाँजी भूपत सुते सगली भाँत ।—रघु० रू०, पृ० ८१ ।

मुखड़ा—संज्ञा पुं० [सं० मुख + हिं० ड़ा (प्रत्य०)] मुख । चेहरा । आनन ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः बहुत ही सुंदर मुख के लिये होता है । जैसे, चाँद सा मुखड़ा ।

मुखतार—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार] १. जिसे किसी ने अपना प्रतिनिधि बनाकर कोई काम करने का अधिकार दिया हो।

यौ० मुखतार आम। मुख़्तार खास।

२. एक प्रकार के कानूनी सलाहकार और काम करनेवाले जो वकील से छोटे होते हैं और प्रायः छोटी अदालतों में फौजदारी या माल के मुकदमे लड़ते हैं।

मुखतारआम—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+आम] वह गुमाश्ता या प्रतिनिध जिसे सब प्रकार के काम करने, विशेषतः मुकदमे आदि लड़ने का अधिकार दिया गया हो।

मुखतारकार—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+फ़ा० कार] वह जो किसी काम की देखरेख के लिये नियुक्त किया गया हो।

मुखतारकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुखतार+फ़ा० कार+ई (प्रत्य०)] १ मुखतारकार का काम या पद। २. दे० 'मुखतारी'।

मुखतारखास—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+खास] वह जो किसी विशिष्ट कार्य या मुकदमे के लिये प्रतिनिधि बनाया गया हो।

मुखतारनामा—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+फा० नामह्] १. वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी की ओर से अदालती कार्रवाई करने के लिये मुखतार बनाया जाय। यह दो प्रकार का होता है—मुखतारनामा खास और मुखतारनामा आम। २. वह अधिकारपत्र जिसके अनुसार कोई पेशेवर मुखतार कोई मुकदमा लड़ने के लिये नियुक्त किया जाय।

मुखतारनामा आम—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+फ़ा० नामह्+अ० आम] वह अधिकार पत्र जिसके द्वारा कोई मुखतार आम नियुक्त किया जाय।

मुखतारनामा खास—संज्ञा पुं० [अ० मुख़्तार+फ़ा० नामह्+अ० खास] वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा कोई मुखतारखास नियुक्त किया जाय।

मुखतारी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुख़्तार+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. मुखतार होकर दूसरे के मुकदमे लड़ने का काम। २. मुख्तार का पेशा। प्रतिनिधित्व।

मुखताल—संज्ञा पुं० [हिं० मुख+ताल] किसी गीत का पहला पद। टेक। ध्रुव।

मुखदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] प्याज।

मुखदूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुँह का एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें चेहरे पर छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। मुँहासा।

मुखदूषी—संज्ञा पुं० [सं० मुखदूषिन्] लहसुन।

मुखदोष—संज्ञा पुं० [सं०] जिह्वा का दोष। लोलुपता [को०]।

मुखधौता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भारंगी। भार्गी। २. ब्राह्मणयष्टिका।

मुखनिरीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] आलसी आदमी। सुस्त व्यक्ति। काहिल [को०]।

मुखनिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

मुखन्नस—वि० [अ० मुखन्नस] १. नपुंसक। पुंस्त्वविहीन। २. व्याकरण में नपुंसक लिंग।

मुखपट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह ढकने का वस्त्र। नकाब। २. घूँघट।

मुखपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो मनुष्यों और घोड़ों को होता है और जिसमें उनके मुँह में छोटे छोटे घाव हो जाते हैं।

मुखपान—संज्ञा पुं० [हिं० मुख+पान] पान के आकार का पीतल या किसी और धातु का कटा हुआ वह टुकड़ा जो संदूक या आलमारी आदि में ताली लगाने के स्थान में सुंदरता के लिये जड़ा जाता है और जिसके बीच में ताली लगाने के लिये छेद होता है।

मुखपिंड—संज्ञा पुं० [सं० मुखपिण्ड] १. वह पिंड जो मृत व्यक्ति के उद्देश्य से उसकी अंत्येष्टि क्रिया से पहले दिया जाता है। २. ग्रास। कवल। भोजन (को०)।

मुखपिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखपिडिका] मुँहासा।

मुखपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आभूषण [को०]।

मुखपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह में पानी भरकर फेंकना। कुल्ला। २. मुहँ में कुल्ली के लिये लिया हुआ पानी।

मुखपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पुस्तक, पत्रपत्रिका का आदि वह पृष्ठ जो सबसे पहले रहता है। आवरण पृष्ठ।

मुखप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं०] मुख का प्रक्षालन करना या धोना। मुँह साफ करना।

मुखप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] मुख पर झलकनेवाली प्रसन्नता। प्रसन्न मुद्रा [को०]।

मुखप्रसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे द्रव्य जिनसे मुख का प्रसाधन किया जाय। जैसे, पाउडर तथा अन्य शृंगारप्रसाधन। २. मुख को प्रसाधित या अलंकृत करना [को०]।

मुखप्रसेक—संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार मुँह का एक रोग जो श्लेष्मा के विकार से होता है।

मुखप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो खाने में अच्छा लगे। स्वादिष्ट वस्तु। २. नारंगी। ३. ककड़ी।

मुखफ्फफ[1]—वि० [अ० मुखफ्फ़फ़] जो खफीफ या हलका किया गया हो। जो घटाकर कम किया गया हो।

मुखफ्फफ[2]—संज्ञा पुं० किसी पदार्थ या शब्द आदि का संक्षिप्त रूप। जैसे,—'मीठा' का मुखफ्फफ 'मिठ' या 'घोड़ा' का मुखफ्फफ 'घुड़' होता है।

मुखबंद—संज्ञा पुं० [सं० मुख+हिं० बंद] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनका मुँह बंद हो जाता है और जल्दी नहीं खुलता इसमें उसके मुँह से लार भी बहती है।

मुखबंध—संज्ञा पुं० [सं० मुखबन्ध] किसी ग्रंथ की प्रस्तावना या भूमिका।

मुखबंधन—संज्ञा पुं० [सं० मुखबन्धन] १. मुखबंध। प्रस्तावना। २. आच्छादन। पिधान (को०)।

मुखबिर—संज्ञा पुं० [अ० मुख़बिर] १. खबर देनेवाला। जासूस। गोइंदा। २. वह अपराधी जो अपराध को स्वीकार कर सबूत का या सरकारी गवाह बन जाय और जिसे माफी दे दी जाय।

मुखबिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुखबिर + ई (प्रत्य०)] १. खबर देने का काम। मुखबिर का काम। २. मुखबिर का पद।

मुखभंग—संज्ञा पुं० [सं० मुखभङ्ग] १. मुख पर का आघात या प्रहार। २. मुख की वक्रता। चेहरा टेढ़ा या तिरछा होना। ३. खिलना। विकास। प्रस्फुटन [को०]।

मुखभगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने मुख का योनि जैसा व्यवहार करे। मुख के प्रति योनि जैसा व्यवहार चाहनेवाली औरत [को०]।

मुखभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] तांबूल। पान।

मुखभेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुठभेड़'।

मुखभेद—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह का विकृत या टेढ़ा होना [को०]।

मुखमंडनक—संज्ञा पुं० [सं० मुखमण्डनक] १. तिल का पौधा। २. तिलक का वृक्ष (को०)। ३. मुख का प्रसाधन या भूषण। मुख की शोभा बढ़ानेवाली वस्तु।

मुखमंडल—संज्ञा पुं० [सं० मुखमण्डल] चेहरा।

मुखमंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखमण्डिका] १. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग। २. इस रोग की अधिष्ठात्री देवी।

मुखमंडितिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखमण्डितिका] बालकों का एक प्रकार का रोग।

मुखमधु—वि० [सं०] मधु सदृश मीठे अर्थात् सुंदर मुँह का। सलोनी सूरत का। मीठे अधरवाला।

मुखमसा—संज्ञा पुं० [अ० मुख़मसा (=विकलता या कठिनता)] झगड़ा। झमेला। झंझट। बखेड़ा।

क्रि० प्र०—में पड़ना।

मुखमाधुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार श्लेष्मा के विकार से होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें मुँह मीठा सा बना रहता है।

मुखमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] साँस। श्वास [को०]।

मुखमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुखप्रक्षालन'।

मुखमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सलई का वृक्ष। शल्लकी। २. काला सहिंजन।

मुखम्मस[1]—वि० [अ० मुख़म्मस] जिसमें पाँच कोने या अंग आदि हों।

मुखम्मस[2]—संज्ञा पुं० उर्दू या फारसी की एक प्रकार की कविता जिसमें एक साथ पाँच चरण या पद होते हैं। उदा०—मुखम्मस को पँचकड़ी समझिए।—कविता कौ० (भू०), भा० ४, पृ० २७।

मुखयंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० मुखयन्त्रण] वल्गा। लगाम [को०]।

मुखर[1]—वि० [सं०] १. जो अप्रिय बोलता हो। कटुभाषी। २. बहुत बोलनेवाला। बकवादी। ३. प्रधान। अग्रगण्य।

मुखर[2]—संज्ञा पुं० १. कौआ। २. शंख।

मुखरज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्ववल्गा। लगाम [को०]।

मुखरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुखर वा वाचाल होने का भाव। वाचालता [को०]।

मुखरस—संज्ञा पुं० [सं०] बातचीत वार्तालाप [को०]।

मुखरा—संज्ञा पुं० [हिं० मुख + रा (प्रत्य०)] दे० 'मुखड़ा'। उ०—मुहि चाव सों बारहि बार लख्यो मुख मोरि मनो मुखरा पिय को।—शकुंतला, पृ० ४९।

मुखराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख का वर्ण। चेहरे का रंग। २. चेहरे का आकार प्रकार।

मुखराना—क्रि० अ० [सं० मुखर से नामिक०] मुखर होना। मुख से बोलना। कहना। उ०—एक एक कै बरनहु, वह मालति की बात। सुनउ जीउ सरवन दै, हो पंडित मुखरात।—इंद्रा०, पृ० १०३।

मुखरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम। मुखरी [को०]।

मुखरित—वि० [सं०] गुंजरित। ध्वनित। रवयुक्त। शब्दायमान। उ०—अंधकार के अट्टहास सी, मुखरित सतत चिरतन सत्य।—कामायनी, पृ० १९।

मुखरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम। मोहरी। मुँहड़ी [को०]।

मुखरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुखकांति। उ०—नैनन तें नीर, धीर छूट्यो एक संग छूट्यो सुखरुचि मुखरुचि त्यौंही बिन रंग ही।—भूषण ग्रं०, पृ० १०८।

मुखरोग—संज्ञा पुं० [सं०] ओंठ, मसूड़े, दाँत, जीभ, तालु या गले आदि में होनेवाले रोग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इस प्रकार के रोग सब मिलाकर ६७ प्रकार के माने गए हैं। इनमें ओंठों में होनेवाले ८ प्रकार के, मसूड़ों में होनेवाले १६ प्रकार के, दाँतों में होनेवाले ८ प्रकार के जीभ में होनेवाले ५ प्रकार के, तालु में होनेवाले ९ प्रकार के, कंठ में होनेवाले १८ प्रकार के और सारे मुख में होनेवाले ३ प्रकार के हैं।

मुखलांगल—संज्ञा पुं० [सं० मुखलाङ्गल] सूअर।

मुखलिसी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुख़लिसी] छुटकारा। रिहाई।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुखलूक—संज्ञा पुं० [अ० मुख़लूक] जगत्। दुनियाँ। संसार। खुदाई। उ०—पुरुष ने इसे पहले ज्ञानी कहा। व मुखलूक पर हुक्मोरानी कहा।—कबीर मं०, पृ० ३८६।

मुखलेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मुखरोग। मुँह का चट चट करना। २. वह लेप जो मुँह पर शोभा या सुगंध या विशिष्टता के लिये लगाया जाय।

मुखवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो खाने में अच्छा लगे। स्वादिष्ट। २. अनार का पेड़।

मुखवस्त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुखावरण। कपड़े का एक टुकड़ा जो मुँह पर रखा जाता है। बुरका।

मुखवाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणी या पाढ़ा नाम की लता। अंबष्ठा।

मुखवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह से बम् बम् शब्द करना। (शिवपूजन में)। २. मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला बाजा। जैसे, शंख, शहनाई आदि।

मुखवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंधतृण। २. तरबूज की लता। ३. एला, लौंग आदि मुँह की वायु को सुगंधित करनेवाली चीजें। मुखवासन। ४. श्वास। उ०—जिसकी सुंदर छबि ऊषा है,...मलयानिल मुखवास, जलधिमन,...उस स्वरूप को तू भी अपनी मृदुबाहों में लिपटा ले रमा अंग में प्रेम पराग।—वीणा, पृ०, १२।

मुखवासन—संज्ञा पुं० [सं०] अनेक प्रकार की सुगंधित ओषधियों आदि को मिलाकर बनाया हुआ वह चूर्ण जिससे मुँह की दुर्गंध दूर होती है और उसमें सुवास आती है।

मुखवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

मुखविपुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद।

मुखविलुंठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखविलुण्ठिका] बकरी [को०]।

मुखविष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट या सनकिरवा नाम का कीड़ा।

मुखवैदल—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जिसके काटने से वायुजन्य पीड़ा होती है।

मुखवैरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुहँ की विरसता। मुख की कड़वाहट। मुँह में कड़वापन या कटु स्वाद होना [को०]।

मुखव्यंग—संज्ञा पुं० [सं० मुखव्यंग्ङ्य] मुँह पर पड़नेवाले छोटे छोटे दाग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार अधिक क्रोध या परिश्रम करने के कारण वायु और पित्त के मिल जाने से ये दाग होते हैं। इनसे कोई कष्ट तो नहीं होता, पर मुख की शोभा बिगड़ जाती है।

मुखव्यादान—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह का बाना। जँभाई। जृंभा [को०]।

मुखशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कटु वचन कहता हो। मुखर।

मुखशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलिंद। ड्योढ़ी। देहली। द्वार-प्रकोष्ठ [को०]।

मुखशुद्धि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंजन या दातून आदि की सहायता से मुँह साफ करना। २. भोजन के उपरांत पान, सुपारी आदि खाकर मुहँ शुद्ध करना। ३. वस्तु जिससे मुखशुद्धि की जाय। मुखशुद्धि के उपयोग में आनेवाला द्रव्य (को०)।

मुखशृंग—संज्ञा पुं० [सं० मुखशृङ्ग] गैंडा। खड्ग। गंडक [को०]।

मुखशेष—संज्ञा पुं० [सं०] राहु का एक नाम [को०]।

मुखशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह की सूजन।

मुखशोधन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जिसके खाने से मुँह शुद्ध होता है। २. दालचीनी। ३. तज।

मुखशोधन[२]—वि० चरपरा।

मुखशोधी—संज्ञा पुं० [सं० मुखशोधिन्] १. मुँह को शुद्ध करनेवाला पदार्थ। जँबीरी नीबू।

मुखशोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृषा। प्यास। २. प्यास व गरमी से मुँह सूखना।

मुखश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुख की शोभा। मुखछवि। मुख की कांति [को०]।

मुखसंदंस—संज्ञा पुं० [सं० मुखसन्दंस] सँड़सी। जंबूरी [को०]।

मुखसंभव—संज्ञा पुं० [सं० मुखसम्भव] १. भगवान् के मुख से उत्पन्न, ब्राह्मण। २. पुष्करमूल। पुहकरमूल।

मुखसिंचन मंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मुखसिञ्चन मन्त्र] एक प्रकार का मंत्र जिससे जल फूँककर उस आदमी के मुहँ पर छींटे दिए जाते हैं जिसके पेट में किसी प्रकार का विष उतर जाता है।

मुखसुख—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द के उच्चारण का सौंदर्य। उच्चारण-सौंदर्य। उच्चारण की सरलता [को०]।

मुखसुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ी। २. अधरामृत (को०)।

मुखसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमड़े का वृक्ष। आम्रातक।

मुखस्थ—वि० [सं०] मुख में स्थित। जो जबानी याद हो। कंठस्थ। बरजबान। उ०—मुखस्थ याद करते तथा पढ़ते पढ़ाते चले आए।—कबीर मं०, पृ० २२।

मुखस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. थूक। लार। २. बालकों का एक रोग जिसमें उनके मुँह से बहुत अधिक लार बहती है। कहते हैं, कफ से दूषित स्तन पीने से यह रोग होता है।

मुखहास—संज्ञा पुं० [सं०] मुखशोभा। मुखविकास। प्रसन्न मुखाकृति।

मुखाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुख का आकार। चेहरा [को०]।

मुखागर(पु)—वि० [सं० मुखाग्र] दे० 'मुखाग्र'। उ०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेस उदार।—मानस, ५।५२।

मुखाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जंगल की आग। दावानल। २. संस्कृत एवं प्रतिष्ठापित अग्नि। यज्ञाग्नि। हवनाग्नि (को०)। ३. ब्राह्मण (को०)। ४. एक प्रकार के वैताल जो मुँह से अग्नि फेकते हैं (को०)। ५. मृत व्यक्ति को चिता पर रखकर पहले उसके मुँह में आग लगाने की क्रिया।

मुखाग्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओंठ। २. किसी पदार्थ का अगला भाग।

मुखाग्र[२]—वि० जो जबानी याद हो। कंठस्थ। बरजबान। जैसे,—उसे सारी गीता मुखाग्र है।

मुखातब—वि० [अ० मुखातब] मुखातिब।

मुखातिब—वि० [फ़ा० मुखातिब] १. जिससे बात की जाय। जिससे कुछ कहा जाय। संबोधित। २. बात करनेवाला। संबोधन करनेवाला।

मुहा०—(किसी की तरफ) मुखातिब होना = (१) किसी की ओर घूमकर उससे बातें करना। (२) किसी की बात सुनने के लिये उसकी ओर प्रवृत्त होना।

मुखानिल—संज्ञा पुं० [सं०] साँस। श्वास [को०]।

मुखापेक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों का मुँह ताकनेवाला। दूसरों के सहारे रहनेवाला। दूसरों की कृपा पर रहनेवाला।

मुखापेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरों का मुँह ताकना। दूसरों के आश्रित रहना।

मुखापेक्षी—संज्ञा पुं० [सं० मुखापेक्षिन] वह जो दूसरों का मुँह ताकता हो। दूसरों के सहारे रहनेवाला। दूसरों की कृपादृष्टि के भरोसे रहनेवाला। आश्रित।

मुखामय—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह में होनेवाला रोग। मुखरोग।

मुखामुख(प)—क्रि० वि० [हिं० मुख] आमने सामने। उ०—चव मेछ मुखामुख जोस चढ़ै।—रा० रू०, पृ० ८०।

मुखारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखाकृति या हिं० मुख+आरी (प्रत्य०)] १. किसी से मिलती जुलती आकृति। २. सादृश्य। अनुरूपता। ३. मुख का कार्य। मुखशोधन। दतून कुल्ला करने का कार्य। ४. प्रातः कुछ खाना। खराई मारना।

मुखार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] बनतुलसी का पौधा। बबरी तुलसी।

मुखालिफ—वि० [अ० मुख़ालिफ़] १. जो खिलाफ हो। विरुद्ध पक्ष का। विरोधी। २. शत्रु। दुश्मन। ३. प्रतिद्वंद्वी।

मुखालिफत—वि० [अ० मुख़ालिफ़त] १. विरोध। २. शत्रुता। दुश्मनी।

मुखालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा मीठा कंद जिसे स्थूलकंद, महाकंद या दीर्घकंद भी कहते हैं।

विशेष—वैद्यक में यह मधुर, शीतल, रुचिकारी, वातवर्धक तथा पित्त, शोष, दाह और प्यास को दूर करनेवाला माना गया है।

मुखास्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. थूक। २. लार।

मुखास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

मुखास्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह का चुंबन।

मुखास्रव—संज्ञा पुं० [सं०] मुँह से बहनेवाली थूक या लार।

मुखिक—संज्ञा पुं० [सं०] मोखा नामक वृक्ष।

मुखिया—संज्ञा पुं० [सं० मुख्य+हिं० इया (प्रत्य०)] १. नेता। प्रधान। सरदार। जैसे,—वे अपने गाँव के मुखिया हैं। २. वह जो किसी काम में सब से आगे हो। किसी काम को सब से पहले करनेवाला। अगुआ। ३. वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों का वह कर्मचारी जो मूर्ति का पूजन करता और भोग आदि लगाता है। ऐसा कर्मचारी प्रायः पाकविद्या में निपुण हुआ करता है।

मुखिल—वि० [अ० मुखिल] बाधक। हस्तक्षेप करनेवाला। खलल डालनेवाला [को०]।

मुखीय—संज्ञा [सं०] १. मुख संबंधी। २ मुख्य।

मुखुंडी—संज्ञा पुं० [सं० मुखुण्डी] एव प्रकार का शस्त्र [को०]।

मुखुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम।

मुखेंदु—संज्ञा पुं० [सं० मुखेन्दु] चंद्रमा की तरह सुंदर मुँह। चाँद सा मुखड़ा। सुंदर मुँह [को०]।

मुखोल्का—वि० [सं०] दावाग्नि।

मुख्तलिफ—वि० [अ० मुख्तलिफ़] १. भिन्न। अलग। पृथक्। २. अनेक प्रकार का। तरह तरह का।

मुख्तसर—वि० [अ० मुख्तासर] १. जो थोड़े में हो। संक्षिप्त। २. छोटा। ३. अल्प। थोड़ा।

मुख्तार—संज्ञा पुं० [अ० मुख्तार] दे० 'मुखतार'।

विशेष—इसके यौगिक शब्दों के लिये दे० 'मुखतार' के यौगिक।

मुख्य[1]—वि० [सं०] १. मुखसंबंधी। २. सब में बड़ा। ऊपर या आगे रहनेवाला। ३. प्रधान। श्रेष्ठ।

मुख्य[2]—संज्ञा पुं० १. यज्ञ का पहला कल्प। २. वेद का अध्ययन और अध्यापन। ३. अमांत मास। ४. वह जो मुख्य या प्रधान हो। नेता। अगुआ (को०)।

मुख्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पहला काम। प्रधान कार्य।

मुख्यचांद्र—संज्ञा पुं० [सं० मुख्यचान्द्र] चांद्र मास के दो विभागों में से एक। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक का काल जो 'अमांत चांद्र मास' भी कहलाता है। विशेष–दे० 'मास'।

मुख्यतः—क्रि० वि० [सं० मुख्यतस्] मुख्य रूप से। खास तौर से। प्रधानतः। उ०—बाकी सब छोटी छोटी बातें और कथानक मुख्यतः कवियों की करामात हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५५।

मुख्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुख्य होने का भाव। प्रधानता। श्रेष्ठता।

मुख्यनृप—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्यनृपति। सर्वसत्तासंपन्न राजा [को०]।

मुख्यमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० मुख्य मन्त्रिन्] १. प्रधान मंत्री। २. किसी प्रदेश या प्रांत का विधानसभा में वह मंत्री जो मंत्रिमंडल का प्रधान होता है।

विशेष—स्वतंत्र भारत के आधुनिक संविधान द्वारा समग्र राष्ट्र में प्रधान मंत्री एक रखा गया है। विभिन्न प्रदेशों के मंत्रिमंडल के प्रधान को मुख्य मंत्री कहा जाता है। ये दोनों शब्द क्रमशः अंग्रेजी के प्राइम मिनिस्टर और चीफ मिनिस्टर के अनुवाद हैं। संस्कृत में मुख्य मंत्री का अर्थ मंत्रियों में प्रधान अर्थात् प्रधान मंत्री ही है। पृथ्वीराज रासो में यह शब्द इसी अर्थ म प्रयुक्त हुआ है।

मुख्यसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] स्थावर सृष्टि।

मुख्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द का प्रधान अर्थ। अभिधाजन्य अर्थ [को०]।

मुगट(प)—संज्ञा पुं० [सं० मुकुट] दे० 'मुकुट'। उ०—मोरपंष जट मुगट सिगि संग्राम सुधारै। मोह देह सब रहित मरन दिन अंत बिचारै।—पृ० रा०, ६१।१८२६।

मुगत(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ता] मोती। मुक्ता। उ०—बैजंती

बल मुगत बिसाला, प्रगट हियै माला भरपूर।—रघु० रू०, पृ० २५३।

मुगतिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] दे० 'मुक्ति'। उ०—सुक्रन सुमन फुल्लयो मुगति पक्खी द्रव संगति।—पृ० रा०, ११४।

मुगदर-संज्ञा पुं० [सं० मुद्गर] लकड़ी की एक प्रकार की गावदुमी, लंबी और भारी मुगरी जिसका प्रायः जोड़ा होता है और जिसका उपयोग व्यायाम के लिये किया जाता है। जोड़ी।

विशेष इसमें ऊपर की ओर पकड़ने के लिये पतली मुठिया होती है और नीचे का भाग बहुत मोटा होता है। दोनों हाथों में एक एक मुगदर लिया जाता है और बारी बारी से हर एक मुगदर पीठ के पीछे से घुमाकर सामने लाते और उलटे बल में ऊपर की ओर खड़ा करते हैं। इससे बाहुओं में बहुत बल आता है।

क्रि० प्र०—फेरना। हिलाना।

मुगधⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुग्धा] दे० 'मुग्धा'। उ०—राति दिवस एक सौ काम कामना सु बढ्ढिय। प्रौढ़ मुगध वयवृद्ध सबै थरहरि त्रिय गढ्ढिय।—पृ० रा०, १।४११।

मुगधारीⓟ†—वि० [सं० मुग्ध हिं० री (स्वा० प्रत्य०)] मूढ़। मूर्ख। अज्ञानी। उ०—मूरख ते पंडित करिबो पंडित ते मुगधारी। —कबीर ग्रं०, पृ० ३२०।

मुगना—संज्ञा पुं० [हिं० मुनगा] सहिजन। मुनगा।

मुगन्नी—संज्ञा पुं० [अ० मुग़न्नी] [स्त्री० मुगन्निया] गवैया। कलावंत। गायक [को०]।

मुगरा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मोगरा'। २. [स्त्री० मुगरी] दे० 'मोंगरा' या 'मुँगरा'।

मुगरेला†—संज्ञा पुं० [हिं० मुँगरैला] कलौंजी या मँगरैला नामक दाना, जिसका व्यवहार मसाले में होता है।

मुगल—संज्ञा पुं० [फ़ा मुग़ल] [स्त्री० मुग़लानी] १. मंगोल देश का निवासी। २. तुर्कों का एक श्रेष्ठ वर्ग जो तातार देश का निवासी था।

विशेष—इस वर्ग के लोगों ने इधर कुछ दिनों तक भारत में आकर अपना साम्राज्य स्थापित करके चलाया था। इस वर्ग का पहला सम्राट् बाबर था जिसने सन् १५२६ ई० में भारत पर विजय प्राप्त की थी। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब इसी जाति के और बाबर के वंशज थे। इन लोगों के शासन-काल में साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था परंतु औरंगजेब की मृत्यु (सन् १७०७ ई०) के उपरांत इस साम्राज्य का पतन होने लगा और सन् १८५७ में उसका अंत हो गया।

३. मुसलमानों के चार वर्गों में से एक वर्ग जो शेखों और सैयदों से छोटा तथा पठानों से बड़ा और श्रेष्ठ समझा जाता है।

मुगलई—वि० [फ़ा० मुग़ल+ई (प्रत्य०)] मुगलों का सा। मुगलों की तरह का। जैसे, मुगलई पाजामा, मुगलई टोपी, मुगलई कुरता, मुगलई हड्डी।

मुगलपठान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुग़ल+पठान] एक प्रकार का खेल जो जमीन पर खाने खींचकर सोलह कंकड़ियों से खेला जाता है। गोटी।

मुगलाई[1]—वि० [फ़ा० मुग़लाई] दे० 'मुगलई'।

मुगलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुग़ल+आई (प्रत्य०)] मुगल होने का भाव। मुगलपन।

मुगलानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुग़ल+आनी (प्रत्य०)] १. मुगल जाति की स्त्री। २. कपड़ा सीनेवाली स्त्री। ३. दासी। मजदूरनी (मुसल०)।

मुगलिया वि० [फ़ा० मुग़ल हिं०+हिं० इया (प्रत्य०)] मुगलों का। जैसे, मुगलिया खानदान, मुगलिया सल्तनत। उ०—मराठे शिवाजी के नेतृत्व में संगठित हो मुगलिया राज्य को खुले-आम चुनौती सी देने लगे।—हिं० का० प्र०, पृ० ७।

मुगली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुग़ल+ई (प्रत्य०)] बच्चों को होनेवाला पसली का रोग जिसमें उनके हाथ पैर ऐंठ जाते हैं और वे बेहोश हो जाते हैं।

मुगवन—संज्ञा पुं० [सं० वनमुद्ग] बनमूँग। मोठ।

मुगवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिस्रवा। मयूरवल्ली।

मुगालता—संज्ञा पुं० [अ० मुग़ालतह्] धोखा। छल। झाँसा। भ्रम।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—में डालना।

मुगुध, मुगुधाⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुग्धा] दे० 'मुग्धा'।

मुगूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पपीहा। २. एक प्रकार का हिरन।

मुग्गलⓟ—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुग़ल] दे० 'मुगल'।

मुग्घम[1]—वि० [देश०] (बात) जो बहुत खोलकर या स्पष्ट करके न कही जाय। संकेत रूप में कही हुई (बात)।

मुहा०—मुग्घम रहना = (१) चुप रहना। कुछ न बोलना (व्यक्ति के संबंध में)। (२) किसी का रहस्य प्रकट न होना। भेद न खुलना। परदा ढका रह जाना।

मुग्घम[2]—संज्ञा पुं० दाँव में वह अवस्था जिसमें न हार हो और न जीत। (जुआरी)।

क्रि० प्र०—रहना।

मुग्ध[1]—वि० [सं०] १. मोह या भ्रम में पड़ा हुआ। मूढ़। २. सुंदर। खूबसूरत। ३. नया जीवन। ४. आसक्त। मोहित। लुभाया हुआ। उ०—वाल्मीकि रामायण में यद्यपि बीच बीच में ऐसे विशद वर्णन बहुत कुछ मिलते हैं जिनमें कवि की मुग्ध दृष्टि प्रधानतः मनुष्येतर बाह्य प्रकृति के रूपजाल में फँसी पाई जाती है पर उसका प्रधान विषय लोकचरित्र ही है।—रस०, पृ० ९।

मुग्धकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मुग्धकारी] मोहित करनेवाला।

मुग्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुग्ध का भाव। मूढ़ता। २. सुंदरता। खूबसूरती। ३. मोहित या आसक्त होने का भाव।

मुग्धत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुग्धता' [को०]।

मुग्धबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रांत हो। बेवकूफ।

मुग्धबोध—संज्ञा पुं० [सं०] बोपदेव कृत संस्कृत का व्याकरण [को०]।

मुग्धभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्खता। बुद्धिहीनता। २. भोलापन।

मुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो यौवन को तो प्राप्त हो चुकी हो, पर जिसमें कामचेष्टा न हो।

विशेष—इसके दो भेद होते हैं—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना। इसकी क्रियाएँ और चेष्टाएँ बहुत ही मनोहारिणी होती हैं। इसका कोप बहुत ही मृदु होता है और इसे साज सिंगार का बहुत चाव रहता है।

मुचंगड़—वि० [हिं० मुच्चा+अंगड़ (प्रत्य०)] मोटा और भद्दा। जैसे, मुचंगड़ रोट।

मुचक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] लाख। लाह।

मुचका[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मोच'।

मुचकध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मुचकुन्द] मांधाता का एक पुत्र। उ०—बैर दोष श्रीराम बैर दोषई दुर्योधं। बैर दोष नघुराइ बैर दोषह मुचकंधं।—पृ० रा०, ७।१७।

मुचकुंद—संज्ञा पुं० [सं० मुचकुन्द, मुचुकुन्द] १. एक बड़ा पेड़ जिसके फूल और छाल दवा के काम आते हैं। हरिवल्लभ। दीर्घपुष्प।

विशेष—इसके पत्ते फालसे के पत्तों के आकार के और बड़े बड़े होते हैं। पत्तों में महीन महीन रोईं होती हैं जिससे वे छूने में खुरदरे लगते हैं। फूल में पाँच छह अंगुल लंबे और एक अंगुल के लगभग चौड़े सफेद दल होते हैं। दलों के मध्य से सूत के समान कई केसर निकले होते हैं। दलों के नीचे का कोश भी बहुत लंबा होता है। फूल की सुगंध बहुत ही मीठी और मनोहर होती है। ये फूल सिर के दर्द में बहुत लाभकारी होते हैं। इसके फल कटहल के प्रारंभिक फलों के समान लंबे लंबे और पत्थर की तरह कड़े होते हैं। इसके फूल और छाल औषध के काम में आती है। वैद्यक में यह चरपरा, गरम, कड़ुवा, स्वर को मधुर करनेवाला तथा कफ, खाँसी, त्वचा के विकार, सुजन, सिर का दर्द, त्रिदोष, रक्तपित्त और रुधिर-विकार को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—**छत्रवृक्ष। चित्र। प्रतिविष्णुक। दीर्घपुष्प। बहुपत्र। सुदल। सुपुष्प। हरिवल्लभ। रक्तप्रसव।**

२. मांधाता नरेश का एक पुत्र। दे० 'मुचुकुंद'।

यौ०—**मुचकुंद प्रसादक**=श्रीकृष्ण।

मुचलका—संज्ञा पुं० [सं० तु०] वह प्रतिज्ञापत्र जिसके द्वारा भविष्य में कोई काम, विशेषत: अनुचित काम, न करने अथवा किसी नियत समय पर अदालत में उपस्थित होने की प्रतिज्ञा की जाती है; और कहा जाता है कि यदि मुझसे अमुक अनुचित काम हो जायगा, अथवा मैं अमुक समय पर अमुक अदालत में उपस्थित न होऊँगा, तो मैं इतना आर्थिक दंड दूँगा।

क्रि० प्र०—**लिखना।—लिखाना।—लेना।**

मुचाना(पु)—क्रि० स० [सं० मुच्] छोड़ाना। मुक्त कराना। चलाना। गतिशील करना। उ०—जु दिषै वर भाइ दुलोचन कोर। मुचावत काम कमान के जोर।—पृ० रा०, २१।७५।

मुचिर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाता। दानशील। उदार।

मुचिर[2]—संज्ञा पुं० १. धर्म। २. वायु। ३. देवता।

मुचिलिंग—संज्ञा पुं० [सं० मुचिलिङ्ग] १. मुचकुंद वृक्ष। २. तिलक का पौधा। तिलपुष्पी। ३. एक नाग का नाम। ४. एक पर्वत का नाम।

मुचिलिंद—संज्ञा पुं० [सं० मुचिलिन्द] १. मुचकुंद। २. तिलक। तिलपुष्प।

मुचुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल।

मुचुका[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'मोच'।

मुचुकुंद—संज्ञा पुं० [सं० मुचुकुन्द] १. मुचकुंद वृक्ष। २. भागवत के अनुसार मांधाता के एक पुत्र का नाम।

मुचुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उँगली मटकाना। २. मुट्ठी। ३. सँड़सी।

मुच्चा—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस का बड़ा टुकड़ा। गोश्त का लोथड़ा।

मुच्छ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँछ] दे० 'मूँछ'। उ०—(क) मुह मुहह मुच्छ कर कन्ह तुअ चमर छत्र पहु पंग लिय।—पृ० रा०, ६१।२२७४। (ख) धरचौ परतापसि मुच्छन पाँन।—पृ० रा०, ५।३६। (ग) धरे मुच्छ पर हाथ बहुरि निरखै समसेरै।—हम्मीर०, पृ० २२।

मुच्छा(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँछ] दे० 'मूँछ'। उ०—मुच्छा उमैठत उमड़ि ऐंठत कठिनकर कुहँचान के।—हिम्मत० पृ ११३।

मुच्छा(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्च्छा] दे० 'मूर्च्छा'। उ०—सो पर्यौ धनि मुच्छा सु खाय।—पृ० रा०, १।२७२।

मुछंदर—संज्ञा पुं० [हिं० मुछ+दर (सं० धर)] १. जिसके मूँछें बड़ी बड़ी हों। उ०—व मोटे तन व थुदला थुंदला मू व कुच्ची आँख। व मोटे ओठ मुछंदर की आदम आदम है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६। २. कुरूप और मूर्ख। भद्दा और बेवकूफ। उ०—दौड़े बंदर बने मुछंदर कूदै चढ़े अगासी।—भारतेंदु० ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३। ३. चूहा। (क्व०)।

मुछ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० श्मश्रु, हिं० मूँछ] दे० 'मूँछ'। उ०—तिनै मुछ राजत है मुह पान।—पृ० रा०, ५।३४।

मुछाड़िया—वि० [हिं० मुछ+आड़िया (प्रत्य०)] दे० 'मुछियल'।

मुछियल—वि० [हिं० मूँछ+इयल (प्रत्य०)] जिसकी मूँछें बड़ी बड़ी हों।

मुछैला—वि० [हिं० मूँछ+ऐल (प्रत्य०)] दे० 'मुछियल'।

मुज(पु)[1]—सर्व० [सं० मह्यम् पुं०हिं० मुज्झ, मुज] मैं शब्द का कर्ता और संबंध कारक के अलावा विभक्ति लगने के पूर्व का रूप। दे० 'मुझ'। उ०—मैं इश्क की गली में घायल पड़ा था

तिसपर। जोबन का माता आकार मुज को खैंगल गया है।—कविता कौ० (भू०), भा० ४, पृ० १५।

मुज(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० मुञ्ज (=एक घास), हिं० मूँज] दे० 'मूँज'। उ० मुज को आडबंद बजर कोपीन।—रामानंद०, पृ० ४६।

मुजक्कर—वि० [अ० मुज़क्कर] १. नर। पुरुष। २. (व्याकरण में) पुंलिंग।

मुजक्का—वि० [अ० मुज़क्का] पवित्र। शुद्ध [को०]।

मुजम्मा—संज्ञा पुं० [अ० मुज़म्मह्] चमड़े या रस्सी का वह फेरा जो घोड़े को आगे बढ़ने से रोकने के लिये उसकी गामची या दुमची में पिछाड़ी की रस्सी के साथ लगा रहता है।

क्रि॰ प्र०—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—**मुजम्मा लगाना** = ऐसा काम करना जिससे कोई बात या काम रुक जाय। रोक या आड़ लगाना। **मुजम्मा लेना** = आड़े हाथों लेना। खबर लेना। ठीक करना।

मुजरा—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह जो जारी किया गया हो। २ वह रकम जो किसी रकम में से काट ली गई हो। जैसे,—१०) हमारे निकलते थे, वह हमने उसमें से मुजरा कर लिए।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—लेना।

३. किसी बड़े या धनवान आदि के सामने जाकर उसे सलाम करना। अभिवादन। ४. वेश्या का वह गाना जो बैठकर हो और जिसमें उसका नाच न हो।

क्रि० प्र०—करना।—सुनना।—सुनाना।—होना।

मुजराई—संज्ञा पुं० [हिं० मुजरा + ई (प्रत्य०)] १. वह जो मुजरा या सलाम करता हो। २. वह व्यक्ति जो केवल सलाम करने के लिये वेतन पाता हो। ३. वह जो मरसिया पढ़ता हो। ४. काटने या घटाने की क्रिया। ५. काटी या मुजरा की हुई रकम।

मुजराकंद—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्जर] एक प्रकार का कंद मुंजात।

विशेष—यह कंद उत्तर भारत में होता है और इसे 'मुंजात' भी कहते हैं। वैद्यक में यह अत्यंत स्वादिष्ट, वीर्यवर्धक तथा वात पित्त नाशक माना गया है।

मुजरागाह—संज्ञा पुं० [अ० मुज़रा गाह] दरबार में वह स्थान जहाँ खड़े होकर लोग सलाम या मुजरा करें।

मुजरिम—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसपर कोई जुर्म या अपराध लगाया गया हो। अभियुक्त।

मुजर्रत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुज़र्रत] १. नुकसान। हानि। २. कष्ट। तकलीफ [को०]।

मुजर्रद—वि० [अ० मुज़र्रद] १. जिसके साथ और कोई न हो। अकेला। २. जिसका विवाह न हुआ हो। बिन ब्याहा। ३. जिसने संसार का त्याग कर दिया हो।

मुजर्रब—वि० [अ० मुज़र्रब] तजरुबा किया हुआ। आजमाया हुआ। परीक्षित। जैसे, मुजर्रब दवा, मुजर्रब नुसखा।

मुजल्लद—वि० [अ० मुज़ल्लद] जिसकी जिल्द बँधी हो। जिल्ददार।

मुजस्सम—वि० [अ० मुज़स्सम] दे० 'मुजस्सिम'।

मुजस्समा—संज्ञा पुं० [अ० मुज़स्सअह्] प्रतिमा। मूर्ति। रूपाकृति [को०]।

मुजस्सिम—वि० [अ० मुज़स्सिम] सशरीर। प्रत्यक्ष। जैसे,—लीजिए आपके सामने मुजस्सिम खड़े हैं।

मुजादला—संज्ञा पुं० [अ० मुज़ादलह्] १. लड़ाई। युद्ध। २. मुबाहसा। वाद विवाद [को०]।

मुजाविर—संज्ञा पुं० [अ० मुज़ाविर] १. पड़ोसी। प्रतिवेशी। २. दे० 'मुजावर'।

मुजारिया—वि० [अ०] जो जारी किया या कराया गया हो। (कच०)।

मुजावर—संज्ञा पुं० [अ० मुज़ावर] १. वह मुसलमान जो किसी पीर आदि की दरगाह या रौजे पर रहकर वहाँ की सेवा का कार्य करता हो और चढ़ावा आदि लेता हो। उ०—मुजावर हो याँ बैस चालीस दिन। किसी बाब दिल कूँ ना करले संगन।—दक्खिनी०, पृ० ८६।

मुजाहिद—वि० [अ० मुज़ाहिद] १. कोशिश करनेवाला। प्रयत्नशील। २. विधर्मियों से युद्ध करनेवाला। जिहाद करनेवाला।

मुजाहिम—वि० [अ० मुज़ाहिम] रोक टोक करनेवाला। हस्तक्षेप करनेवाला। उ०—पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुजाहिम न हुआ।—गोदान, पृ० २२६।

मुजिर—वि० [अ० मुज़िर] नुकसान पहुँचानेवाला। हानिकारक।

मुजे—सर्व० [प्रा० मुज्झ, हिं० मुझे] दे० 'मुझे'। उ०—बम्मन कहे नामदेव मुझे पूजना भूदेव, इती बात मुजे देव बहा देव गंगा मों।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

मुझ—सर्व० [प्रा० मुज्झ] मैं का वह रूप जो उसे कर्ता और संबंध कारक को छोड़कर शेष कारकों में, विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। जैसे, मुझको, मुझसे, मुझमें।

मुझे—सर्व [सं० मह्यम्, प्रा० मज्झम] एक पुरुषवाचक सर्वनाम जो उत्तम पुरुष, एकवचन और उभयलिंग है तथा वक्ता या उसके नाम की ओर संकेत करता है। यह 'मैं' का वह रूप है जो उसे कर्म और संप्रदान कारक में प्राप्त होता है। इसमें लगी हुई एकार की मात्रा विभक्ति का चिह्न है, इसलिये इसके आगे कारक चिह्न नहीं लगता। मुझको। जैसे,—(क) (क) मुझे वहाँ गए कई दिन हो गए। (ख) मुझे आज कई पत्र लिखने हैं।

मुझौंसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह + झौंसना + ई (प्रत्य०)] दे० 'मुँहझौंसी'। उ०—उसको माँ सुने में समझाती—अरी मुझौंसी, लड़कपन छोड़।—शराबी, पृ० १२।

मुटकना†—वि० [हिं० मोटा + कना (प्रत्य०)] आकार में छोटा या साधारण, पर सुंदर। जैसे, मुटकना सा बाग।

मुटका—संज्ञा पुं० [देश ?] एक प्रकार का रेशमी वस्त्र जो

अधिकतर बंगाल में बनता है और धोती के स्थान में पहनने के काम में आता है।

मुटकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुलथी नामक अन्न। खुरथी।

मुटमरदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोटा + अ० मर्द + हिं० ई (प्रत्य०)] हरामखोरी। आलसीपन। निष्क्रियता। उ०—यह मुटमरदी है कि अंधा माँगे, और आँखोंवाले मुसंडे बैठे खाएँ। —रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६६।

मुटमुरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भदई धान।

मुटरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोट (= गठरी)] दे० 'गठरी'।

मुटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोटा + ई (प्रत्य०)] १. मोटापन। स्थूलता। २. पुष्टि। ३. अहंकार। घमंड। शेखी। ४. वह बेपरवाही या अभिमान जो भरपूर भोजन मिलने या कुछ धन हो जाने से हो जाय।

मुहा०—मुटाई चढ़ना = बहुत अधिक अभिमान होना। शेखी होना। मुटाई झड़ना = अभिमान चूर्ण होना। शेखी टूटना।

मुटाना—क्रि० अ० [हिं० मोटा + आना (प्रत्य०)] १. मोटा हो जाना। स्थूलांग हो जाना। उ०—प्रभु मैं सेवक निमक हराम। खाइ खाइ के महा मुटैहौं करिहौं कछू न काम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४२। २. शेखीबाज हो जाना। अहंकारी हो जाना। अहंमन्य हो जाना। उ०—हमरे आवत रिस करत अस तुम गए मुटाय।—विश्राम (शब्द०)।

मुटासा—वि० [हिं० मोटा + आसा (प्रत्य०)] वह जो खाने पीने से मजे में हो जाने या कुछ धन कमा लेने से बेपरवा और घमंडी हो गया हो।

मुटिया—संज्ञा पुं० [हिं० मोट (= गठरी) + इया (प्रत्य०)] बोझ ढोनेवाला। मजदूर।

मुट्ठⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मुट्ठी'। उ०—इकै मुठ्ठ जमदाढ़ गहि पान पैनी।—प० रासो, पृ० १७७।

मुट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० मूठ] १. घास, फूस, तृण या डंठल का उतना पूला जितना हाथ की मुट्ठी में आ सके। २. चंगुल भर वस्तु। जितनी एक मुट्ठी में आ सके उतनी वस्तु। जैसे, एक मुट्ठा आटा। ३. समेटा या बँधा हुआ समूह जो मुट्ठी में आ सके। पुलिंदा। जैसे, कागज का मुट्ठा, तार का मुट्ठा। ४. शस्त्र या यंत्र आदि का वह अंश जो उसके प्रयोग के समय मुट्ठी में पकड़ा जाय। बेंट। दस्ता। ५. धुनियों का बेलन के आकार का वह औजार जिससे रुई धुनते समय तांत पर आघात किया जाता है। ६. कपड़े की गद्दी जो प्रायः पहलवान आदि बाहों पर मोटाई दिखलाने या सुंदरता बढ़ाने के लिये बाँधते हैं।

मुट्ठामुट्ठेर—संज्ञा स्त्री० [देश०] युवती स्त्री। (कहार)।

मुट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टिका, प्रा० मुट्ठिआ] १. हाथ की वह मुद्रा जो उँगलियों को मोड़कर हथेली पर दबा लेने से बनती है। बँधी हुई हथेली। २. उतनी वस्तु जितनी उपर्युक्त मुद्रा के समय हाथ में आ सके। जैसे, एक मुट्ठी चावल। ३. कब्जा। पकड़।

मुहा०—मुट्ठी में = कब्जे में। अधिकार में। काबू में। वश में। मुट्ठी गरम करना = रुपया देना। धन देना। मुट्ठी बंद या बँधी होना = घर का भेद किसी को मालूम न होना। रहस्य प्रकट न होना। मुट्ठी भर = थोड़ा। अल्प मात्रा या अल्प संख्या में। उ०—अंग्रेजों के १५० वर्षों के शासनकाल में शिक्षा की दूषित नीति के कारण केवल मुट्ठी भर ही लोग शिक्षित हुए हैं।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जी०), पृ० ३०। मुट्ठी में रखा होना = बहुत समीप होना। पास होना। जैसे,—कपड़े क्या यहाँ मुट्ठी में रखे हैं जो तुम्हें दे दिए जायँ।

४. उपर्युक्त मुद्रा के समय बँधे हुए पंजे की चौड़ाई का मान। बँधी हथेली के बराबर का विस्तार। जैसे,—इसका किनारा मुट्ठी भर ऊँचा होना चाहिए। ५. हाथों से किसी के अंगों को विशेषतः हाथ पैर को पकड़ पकड़कर दबाने की क्रिया जिससे शरीर की थकावट दूर होती है। चंपी।

क्रि० प्र०—भरना।

६. एक प्रकार की छोटी पतली लकड़ी जिसके दोनों सिरे कुछ मोटे और गोल होते हैं और जो छोटे बच्चों को खेलने के लिये दी जाती है। इसे बच्चे प्रायः चूसा करते हैं। चुसनी। ७. घोड़े के सुम और टखने के बीच का भाग। ८. बच्चों का एक खिलौना। दे० 'मुठुकी'।

मुठभेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूठ + भिड़ना] १. टक्कर। भिड़ंत। लड़ाई। २. भेंट। सामना।

मुठिकाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टिका] १. मुट्ठी। उ०—रावण सो भट भयो मुठिका के खाय को।—तुलसी (शब्द०)। २. घूँसा। मुक्का। उ०—मुठिका एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।—तुलसी (शब्द०)।

मुठिया—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टिका] १. छुरी, हँसिया आदि औजारों का वह भाग जो मुट्ठी में पकड़ा जाय। दस्ता। बेंट। २. हाथ में रखी या ली जानेवाली वस्तु का वह भाग जो मुट्ठी में पकड़ा जाता है। जैसे, छड़ी की मुठिया, छाते की मुठिया। ३. धुनियों का वह औजार जिससे वे धुनकी की तांत पर आघात करते हैं।

मुठोⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुट्ठी'। उ०—नीच कहा बिरहा करतो सखी होती कहूँ जु पै मीचु मुठो में।—पद्माकर (शब्द०)।

मुठुकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूठ] काठ का बना हुआ बच्चों का एक खिलौना जिसके दोनों सिरों पर गोलियाँ सी होती हैं और बीच में पकड़ने की मूठ होती है। गोलियों में कंकड़ भरे रहते हैं जिनके कारण हिलाने से वह बजता है। मुट्ठी। उ०—कोउ मुठुकी घुनघुना डुलावैं कोउ करताल बजावैं।—रघुराज (शब्द०)।

मुड़क—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुरकना] दे० 'मुरक'।

मुड़कना—क्रि० अ० [हिं० मुड़ना] दे० 'मुरकना'।

मुड़ना¹—क्रि० अ० [सं० मुरण (= लिपटना, फेरा खाना)] १. छड़ की तरह सीधी गई हुई वस्तु का कहीं से बल खाकर दूसरी

ओर फिरना। दबाव या आघात से चलना या झुक जाना। घुमाव लेना।—जैसे,—(क) छड़ पर दाब पड़ी, इससे वह मुड़ गई। (ख) यह तार तो मुड़ता ही नहीं है; इसे कैसे लपेटें। २. किसी धारदार किनारे या नोक का इस प्रकार झुक जाना कि वह आगे की ओर न रह जाय। जैसे, छुरी की धार या सुई की नोक मुड़ना। ३ लकीर की तरह सीधे न जाकर घूमकर किसी ओर झुकना। वक्र होकर भिन्न दिशा में प्रवृत्त होना। जैसे,—आगे चलकर यह नदी (या सड़क) दक्खिन की ओर मुड़ गई है। ४. चलते चलते सामने से किसी दूसरी ओर फिर जाना। दाएँ अथवा बाएँ घूम जाना। जैसे,—कुछ दूर जाकर दाहिनी ओर मुड़ जाना, तो उसका घर मिल जायगा। ५. घूमकर फिर से पीछे की ओर चल पड़ना। लौटना।

सयो० क्रि०—जाना।

मुड़ना[२]—क्रि० अ० [हिं० मूड़ना] दे० 'मुँड़ना'।

मुड़ला[५]—वि० [सं० मुण्ड] [वि स्त्री० मुंडली] जिसके सिर पर बाल न हों। बिना बालवाला। मुंडा। उ०—कच-खुबिआँ धर काजर कानी नकटी पहरै बेसरि। मुड़ली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि।—सुर (शब्द०)।

मुड़वरिया[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुड़वार+इया (प्रत्य०)] दे० 'मुड़वारी'।

मुड़वाना[१]—क्रि० स० [हिं० मूँड़ना का प्रे० रूप] १. किसी को मूँड़ने में प्रवृत्त करना। उस्तरे से बाल या रोएँ दूर कराना। २. मुँड़वाना'।

मुड़वाना[२]—क्रि० स० [हिं० मूँड़ना का प्रे० रूप] मुड़ने या घूमने में प्रवृत्त करना।

मुड़वारी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्ड+हिं० वारी (प्रत्य०)] १. अटारी की दीवार का सिरा। मुँडेरा। उ०—मुड़वारी रबिमनिनि सँवारी। अनल झार छूटी छबिवारी।—गुमान (शब्द०)। २. लेटे हुए मनुष्य का वह पार्श्व जिधर सिर हो। सिरहाना। ३. वह पार्श्व जिधर किसी पदार्थ का सिरा अथवा ऊपरी भाग हो।

मुड़हर[१]—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़+हर (प्रत्य०)] १. स्त्रियों की साड़ी वा चादर का वह भाग जो ठीक सिर पर रहता है। उ० -मुख पखारि मुड़हर भिजै सीस सजल कर छ्वाइ। —बिहारी (शब्द०)। २. सिर का अगला भाग।

मुड़ाना—क्रि० स० [सं० मुण्डन] सिर के सब बाल बनवाना। मुंडन कराना। मुँडाना।

मुड़िया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० मूड़ना+इया (प्रत्य०)] वह जिसका सिर मुँड़ा हुआ हो। (विशेषत: कोई संन्यासी, साधु या बैरागी आदि)। उ०—यह निर्गुण लै तिनहि सुनावहु जे मुड़िया बसैं काशी।—सूर (शब्द०)। विशेष दे० 'मुँड़िया'।

मुड़िया[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

मुडेरा—संज्ञा पुं० [हिं० मूड+एरा (प्रत्य०)] दे० 'मुँडेरा'।

मुतंगा[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. भूज की मोटी करधनी, जिसे साधु लोग पहिनते हैं। मुजंगा। उ०—मेहर की कफनी औ कुलाह भी मेहर का, मेहर का मुतंगा इस कमर में लगाइए।—मलूक० बानी, पृ० ३०। २. लँगोटी। कौपीन।

मुतंजन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मीठा पुलाव, जिसमें खटाई भी पड़ती है।

मुतअद्दी—वि० [अ०] १. सीमा का अतिक्रमण करनेवाला। २. संक्रामक रोग।

मुतअल्लिक[१]—वि० [अ० मुतअल्लिक़] १. संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। संबद्ध। २. मिला हुआ। संमिलित।

मुतअल्लिक[२]—क्रि० वि० संबंध में। विषय में। जैसे,—उसके मुतअल्लिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

मुतअल्लिम—संज्ञा पुं० [अ०] इल्म सीखनेवाला। छात्र [को०]।

मुतअस्सिब—वि० [अ०] तअस्सुब करनेवाला। धर्म, जाति का पक्षपात करनेवाला। कट्टर। उ०—आप बहुत ही पाक दिल······और मुतअस्सिब खुदापरस्त·········।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६०।

मुतक्का—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़+टेक] १. कोठे के छज्जे या चौक के ऊपर पाटन के किनारे खड़ी की हुई पटिया या नीची दीवार जो गिरने से रोकने के लिये हो। २. खंभा। ३. मीनार। लाट।

मुतगैयर—वि० [अ० मुतग़य्यिर] परिवर्तित। बदला हुआ। उ०—हुआ बदहाल मुतगैयर हमारा खबर लेने को आए आप करतार।—कबीर मं०, पृ० ४८।

मुतदायरा—वि० [अ०] (मुकदमा) जो दायर किया गया हो (कच०)।

मुतफन्नी—वि० [अ० मुतफ़न्नी] बहुत बड़ा धूर्त। धोखेबाज। चालाक।

मुतनफ्फिर—वि० [अ० मुतनफ़्फ़िर] घृणा करनेवाला। भागनेवाला। अलग रहनेवाला। उ०—चुनांचे मैं खुद गौर करता हूँ तो मुझे रणधीर सिंह की तबियत शराब और रंडी से निहायत मुतनफ्फिर मालूम देती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२।

मुतफरकात—संज्ञा स्त्री० [अ० मुतफ़र्रिक़ात] १. भिन्न भिन्न पदार्थ। फुटकर चीजें। २. फुटकर व्यय की मद। ३. जमीन के वे अलग अलग टुकड़े जो किसी एक ही गाँव के अंतगर्त हों।

मुतफर्रिक—वि० [अ० मुतफ़र्रिक़] १. भिन्न भिन्न। अलग अलग। २. विविध। कई प्रकार का।

मुतबन्ना—संज्ञा पुं० [अ०] गोद लिया हुआ पुत्र। २. दत्तक पुत्र।

मुतमादी—वि० [अ०] जिसका नियत समय बीत चुका हो [को०]।

मुतमौवल—वि० [अ०] धनवान्। संपत्तिशाली। अमीर। धनाभिमानी।

मुतरज्जिम—संज्ञा पुं० [अ०] जो अनुवाद करे। तरजुमा करनेवाला। अनुवादक।

मुतलक[1]—क्रि० वि० [अ० मुतलक़] जरा भी। तनिक भी। रत्ती भर भी। उ०—जिसका नित नोन खात मुतलक भी ना डरात। अच्छा वजूद पाय औरत से हारा है।—मलूक० बानी, पृ० २९।

मुतलक[2]—वि० बिलकुल। निरा। निपट।

मुतवज्जह—वि० [अ०] जिसने किसी ओर तवज्जह की हो। जिसने ध्यान दिया हो। प्रवृत्त।

मुतवफ्फा—वि० [अ० मुतवफ़्फ़ा] परलोकवासी। मृत। स्वर्गीय। (कच०)।

मुतवल्ली—संज्ञा पुं० [अ०] किसी नाबालिग और उसकी संपत्ति का रक्षक। किसी बड़ी संपत्ति और उसके अल्पवयस्क अधिकारी का कानूनी संरक्षक। वली।

मुतवस्सित—वि० [अ०] न अधिक न कम। दरमियानी। बीच का। उ०—मुहम्मद मुतवस्सित दरयाव, तीन लोक है उनकी नाव।—दक्खिनी०, पृ० ३०३।

मुतवातिर—क्रि० वि० [अ०] लगातार। निरंतर।

मुतसद्दी—संज्ञा पुं० [अ०] १. लेखक। मुंशी। २. पेशकार। दीवान। ३. जिम्मेदार। उत्तरदायी। ४. इंतजाम करनेवाला। प्रबंधकर्ता। ५. हिसाब रखनेवाला। जमा खर्च लिखनेवाला। ६. मुनीम। गुमाश्ता।

मुतसिरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोती + सं० श्री > हिं० सिरी] कंठ में पहनने की मोतियों की कंठी। उ०—ग्रीव मुतसिरी तोरि कै अँचरा सो बाँध्यो।—सूर (शब्द०)।

मुतहम्मिल—वि० [अ०] बरदाश्त करनेवाला। सहिष्णु। सहनशील।

मुतहैय्यर—वि० [अ० मुतहय्यिर] हैरत में पड़ा हुआ। स्तब्ध। चकित। उ०—ललाइन साहब की आजादी देखते ही साहो जी साहब मुतहैय्यर हो घबड़ाकर यों रेंके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८६३।

मुताबिक[1]—क्रि० वि० [अ० मुताबिक़] अनुसार। बमूजिब।

मुताबिक[2]—वि० अनुकूल।

मुतालबा—संज्ञा पुं० [अ० मुतालबह्] उतना धन जितना पाना वाजिब हो। प्राप्तव्य धन। बाकी रुपया।

मुताला—संज्ञा पुं० [अ० मुतालअह्] १. किसी चीज की पूरी जानकारी के लिये गौर से देखना। समीक्षण। निरीक्षण। २. पाठ को शुरू करने के पूर्व स्वयं पढ़ना ताकि शुद्ध पढ़ा जा सके। पढ़ना। उ०—देखना हर सुबह तुझ रुखसार का। है मुताला मतलए अनवार का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३।

मुतास†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूतना + आस (प्रत्य०)] मूतने की इच्छा। पेशाब करने की ख्वाहिश।

मुताह—संज्ञा पुं० [अ० मुतअ] मुसलमानों में एक प्रकार का अस्थायी विवाह जो 'निकाह' से निकृष्ट समझा जाता है। इस प्रकार का विवाह प्रायः शीया लोगों में होता है।

मुताही—वि० [हिं० मुताह + ई (प्रत्य०)] १. वह जिसके साथ मुताह किया गया हो। २. रखेली। (स्त्री)।

मुति(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] दे० 'मुक्ति'। उ०—जोग मग्ग लब्भिय न षग्ग मग्गह मुति पाइय।—पृ० रा०, १२।५३।

मुति(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ता] मौक्तिक। मोती। उ०—मुख भुवि चंद्र लिलाट असित वर माल माल मुति।—पृ० रा०, २।४२४।

मुति(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति, प्रा० मुत्ति] दे० 'मूर्ति'। उ०—सुंदरि कनक केआ मुति गोरी। दिने दिने चाँद कला सओ बाढ़लि जउवन शोभा तोरी।—विद्यापति, पृ० १७।

मुतिया†—संज्ञा पुं० [हिं० मोती + या] दे० 'मोती'। उ०—मनु नव नील कमल दल तैं भल मुतिया झरहीं।—नंद० ग्रं०, पृ० २०१।

मुतिलाडू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० मोती + लड्डू] मोतीचूर का लड्डू। उ०—मुतिलाडू हैं अति मीठे। वै खात न कबहूँ उबीठे।—सूर (शब्द०)।

मुतेहर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० मोती + हार] कंकण की आकृति का एक प्रकार का आभूषण जो स्त्रियाँ कलाई पर पहनती हैं।

मुत्तफिक—वि० [अ० मुत्तफ़िक़] राय से इत्तफाक करनेवाला। सहमत।

मुत्तला—वि० [अ०] जिसे इत्तिला दी गई हो। सूचित [को०]।

मुत्तसिल[1]—वि० [अ०] निकट। नजदीक। समीप। पास। लगा हुआ।

मुत्तसिल[2]—क्रि० वि० लगातार। निरंतर।

मुत्ती(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० मौक्तिक, प्रा० मोत्तिय] दे० 'मोती' या 'मौक्तिक'। उ०—मुत्ती माल सुरंग घन।—पृ० रा०, १।६७०।

मुत्ती†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूत्र] मूत्र। पेशाब।

मुत्य—संज्ञा पुं० [सं०] मौक्तिक। मोती [को०]।

मुथराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० भोथराना] धार आदि का भोथरा होना। उ०—नैनं कटाछनि ओज मनोज के बानन बीच बिधी मुथराई।—घनानंद, पृ० ११०।

मुथशील—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में इत्थशाल नामक योग [को०]।

मुद—संज्ञा पुं० [सं०] हर्ष। आनंद। प्रसन्नता। उ०—मुद मंगल मय संत समाजू।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—**मुदकंद** = आनंदकंद भगवान् विष्णु। उ०—लंबोदर मुदकंद देव दामोदर बंदौं।—दीन० ग्रं०, पृ० १९३।

मुदगर—संज्ञा पुं० [सं० मुद्गर] १. दे० 'मुद्गर'। २. दे० 'मुगदर'।

मुदब्बिर—वि० [अ०] १. प्रबंधकुशल। व्यवस्था करने में निपुण। दूरदर्शी। ३. बुद्धिमान्। ४. राजनीतिनिपुण। नीतिज्ञ [को०]।

मुदमा⑤†—क्रि० वि० [अ० मुदाम] दे० 'मुदाम'। उ०—सतगुर मेरे सिर पर ठाढा मुदमा आगै चेला।—रामानंद०, पृ० २८।

मुदरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मादक पेय पदार्थ जो अफीम, भाँग, शराब और धतूरे के योग से बनता है और जिसका व्यवहार पश्चिमी पंजाब तथा बलोचिस्तान में होता है।

मुदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रिका] दे० 'मुंदरी'। उ०—हे मुदरी तेरो सुकृत मेरो ही सौ हीन। फल सो जान्यो जात है मैं निरनै करि लीन।—शकुंतला, पृ० ११४।

मुदर्रिस—संज्ञा पुं० [अ०] पाठशाला का शिक्षक। अध्यापक।

मुदर्रिसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मुदर्रिस का काम। पढ़ाने का काम। अध्यापन। २. मुदर्रिस का पद। जैसे,—बड़ी कठिनता से उन्हें म्युनिसिपल स्कूल में मुदर्रिसी मिली है।

मुदव्वर—वि० [अ०] दे० 'मुदौवर' [को०]।

मुदा[1]†—अव्य० [अ० मुद्दआ (= अभिप्राय)] १. तात्पर्य यह कि। २. मगर। लेकिन।

मुदा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हर्ष। आनंद। प्रसन्नता।

मुदाना†—क्रि० स० [हिं० मूँदना का प्रे०रूप] बंद कराना। मुंदवाना। उ०—ले अनाज कोठी बहरावै। खरच लेइ पुन फेरि मुदावै।—कबीर सा०, पृ० २५।

मुदाम—क्रि० वि० [फ़ा०] १. सदा। हमेशा। सदैव। उ०—(क) राम लखन सीता की छबि को सीयराम अभिरामै। उभय दृगंचल भए अचंचल प्रीति पुनीत मुदामै।—रघुराज (शब्द०)। (ख) अहैं हम सत्य धरा सरनाम। करैं रन में पर सत्य मुदाम।—गोपाल (शब्द०)। २. निरंतर। लगातार। अनवरत। †३. ठीक ठीक। हूबहू। (क्व०)।

मुदामी—वि० [फ़ा०] जो सदा होता रहे। सार्वकालिक। उ०—दगी मुकामी फेरी सलामी। बँधी पंचदस जौन मुदामी।—रघुराज (शब्द०)।

मुदावसु—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार प्रजापति के एक पुत्र का नाम।

मुदित[1]—वि० [सं०] हर्षित। आनंदित। प्रसन्न। खुश।

मुदित[2]—संज्ञा पुं० कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन। नायिका का नायक की बाईं ओर लेटकर उसकी दोनों जाँघों के बीच में अपना बायाँ पैर रखना।

मुदिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परकीया के अंतर्गत एक प्रकार की नायिका जो परपुरुष प्रीति संबंधी कामना की आकस्मिक प्राप्ति से प्रसन्न होती है। उ०—परखि प्रेमवश परपुरुष हरषि रही मन मैन। तब लगि झुकि आई घटा अधिक अँधेरी रैन।—पद्माकर (शब्द०)। २. हर्ष। आनंद। ३. योगशास्त्र में समाधि योग्य संस्कार उत्पन्न करनेवाला एक परिकर्म जिसका अभिप्राय है—पुण्यात्माओं को देखकर हर्ष उत्पन्न करना।

विशेष—ये परिकर्म चार कहे गए हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा।

मुदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। उ०—(क) धाराधर जलधर जलद जग जीवन जीमूत। मुदिर बलाहक तड़ितपति परजन जन्न सुपूत।—नंददास (शब्द०)। (ख) कहै मतिराम दीनें दीरघ दुरदवृंद मुदिर से मेदुर मुदित मतवारे हैं।—मतिराम (शब्द०)। २. वह जिसे कामवासना बहुत अधिक हो। कामुक। ३. मेंढक।

मुदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्सना। चाँदनी। चंद्रिका [को०]।

मुदौवर—वि० [अ० मुदव्वर] गोल। गोलाकार। वृत्ताकार। मंडलाकार।

मुद्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूँग नामक अन्न जिससे दाल बनाई जाती है। विशेष दे० 'मूँग'। २. आवरण। ढक्कन। आच्छादन (को०)। ३. एक शस्त्र। दे० 'मुद्गर' (को०)। ४. एक पक्षी। जलवायस। विशेष दे० 'जलकौआ' (को०)।

मुद्गगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मुंगेर और उसके आसपास के प्रांत का प्राचीन नाम।

मुद्गदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुद्गपर्णी। बनमूँग।

मुद्गपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनमूँग। मुगवन।

मुद्गभक्—संज्ञा पुं० [सं० मुद्गभुज्] अश्व। घोड़ा [को०]।

मुद्गभोजी—संज्ञा पुं० [सं० मुद्गभोजिन्] घोड़ा।

मुद्गर—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ का बना हुआ एक प्रकार का गावदुमा दंड। मुगदर। जोड़ी।

विशेष—यह मूठ की ओर पतला और आगे की ओर बहुत भारी होता है। इसे हाथ में लेकर हिलाते हुए पहलवान लोग कई तरह की कसरतें करते हैं। इससे कलाइयों और बाँहों में बल आता है। इसे जोड़ी भी कहते हैं क्योंकि इसकी प्रायः जोड़ी होती है जो दोनों हाथों में लेकर बारी बारी से पीठ के पीछे से घुमाते हुए सामने लाकर तानी जाती है।

क्रि० प्र०—फेरना।—हिलाना।

२. प्राचीन काल का एक अस्त्र जो दंड के आकार का होता था और जिसके सिरे पर बड़ा भारी गोल पत्थर लगा होता था। ३. एक प्रकार की चमेली। मोगरा। ४. एक प्रकार की मछली। ५. कोरक। कली (को०)। ६. हथौड़ा या मुगरा। जैसे, मोहमुद्गर (को०)।

मुद्गरक—संज्ञा पुं० [सं०] मुंगरा। हथौड़ा [को०]।

मुद्गरांक—संज्ञा पुं० [सं० मुद्गराङ्क] मुद्गर (मुंगरे) का चिह्न जो धोबियों के वस्त्र पर पहचान के लिये चंद्रगुप्त के समय में रहता था।

विशेष—यदि धोबी इस प्रकार के चिह्न से रहित वस्त्र पहनकर निकलते थे तो उनपर तीन पण जुर्माना होता था।

मुद्गल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिष नामक तृण। २. एक गोत्रकार मुनि का नाम, जिनकी स्त्री इंद्रसेना थी। ३. एक उपनिषद् का नाम।

मुद्गष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मुगवन। बनमूँग।

मुद्दआ—संज्ञा पुं० [अ०] अभिप्राय। तात्पर्य। मतलब।

मुद्दई—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० मुद्दइया] १. दावा करनेवाला। दावादार। वादी। २.⑤ दुश्मन। बैरी। शत्रु। उ०—मोहन मीत समीत गो लखि तेरो सनमान। अब सु दगा दै तू चल्यो अरे मुद्दई मान।—पद्माकर (शब्द०)।

मुद्दत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अवधि। जैसे,—इस हुंडी की मुद्दत पूरी हो गई है।

मुहा०—मुद्दत काटना = थोक माल का मूल्य अवधि से पहले देने पर अवधि के बाकी दिनों का सूद काटना (कोठीवाल)।

२. बहुत दिन। अरसा। जैसे,—बाद मुद्दत के आज आपकी शक्ल दिखाई दी है।

यौ०—मुद्दत दराज बहुत समय। बहुत दिन। मुद्दतेहयात = जीवनकाल।

मुद्दती—वि० [अ० मुद्दत + ई (प्रत्य०)] वह जिसके साथ कोई मुद्दत लगी हो। वह जिसमें कोई अवधि हो। जैसे, मुद्दती हुंडी।

यौ०—मुद्दती हुंडी = वह हुंडी जिसका रुपया कुछ निश्चित समय पर देना पड़े।

मुद्दा—संज्ञा पुं० [अ० मुद्दआ] गरज। अभिप्राय। उद्देश्य। मंशा। उ०—पलटू मेरी बन पड़ी मुद्दा हुआ तमाम।—पलटू०, पृ० १३।

मुद्दाअलेह—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसके ऊपर कोई दावा किया जाय। वह जिसपर कोई मुकदमा चलाया गया हो। प्रतिवादी।

मुद्दालेह—संज्ञा पुं० [अ० मुद्दाअलेह] दे० 'मुद्दाअलेह'।

मुद्ध(५)†—वि० [सं० मुग्ध, प्रा० मुद्ध, मुध्ध] दे० 'मुग्ध'।

मुद्धा†—संज्ञा पुं० [?] गुल्फ। मोजा। टखना।

मुद्धी—संज्ञा स्त्री० [देश०] रस्सी आदि की खिसकनेवाली गाँठ।

मुद्र—वि० [सं०] आनंददायक। प्रसन्न करनेवाला [को०]।

मुद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी छापेखाने में रहकर छापने का काम करता या देखता हो और छपनेवाली चीजों की छपाई का जिम्मेदार हो। छापनेवाला। मुद्रणकर्ता। जैसे,—'चंद्रोदय' के संपादक और मुद्रक राजविद्रोहात्मक लेख लिखने और छापने के अभियोग पर भारतीय दंडविधान की १२४ 'ए' धारा के अनुसार गिरफ्तार किए गए हैं।

मुद्रकी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रिका] दे० 'मुद्रिका'। उ०—इक इक्क बटुअ मालाति इक्क। मुद्रकी इक्क इन पहुचि किक्क।—पृ० रा०, १४।१२५।

मुद्रण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी चीज पर अक्षर आदि अंकित करना। छपाई। २. ठप्पे आदि की सहायता से अंकित्त करके मुद्रा तैयार करना। ३. ठीक तरह से काम चलाने के लिये नियम आदि बनाना और लगाना। ४. बंद करना। मूँदना।

मुद्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठी।

मुद्रणालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का मुद्रण होता हो। २. छापाखाना। प्रेस।

मुद्रण पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] किसी छपनेवाली चीज का नमूना। प्रूफ [को०]।

मुद्रांक—संज्ञा पुं० [सं० मुद्राङ्क] मुद्रा पर का चिह्न।

मुद्रांकन—संज्ञा पुं० [सं० मुद्राङ्कन] [वि० मुद्रांकित] १. किसी प्रकार की मुद्रा की सहायता से अंकित करने का काम। २. छापने का काम। छपाई।

मुद्रांकित—वि० [सं० मुद्राङ्कित] १. मोहर किया हुआ। जिसपर मुहर लगी हो।

यौ०—मुद्रांकित पत्र = मुहर की हुई चीठी।

२. जिसके शरीर पर विष्णु के आयुध के चिह्न गरम लोहे से दागकर बनाए गए हों। (वैष्णव)।

मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी के नाम की छाप। मोहर। उ०—मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै, आई दिसि दसो जीति सेना रघुनाथ की।—केशव (शब्द०)। २. रुपया, अशरफी आदि। सिक्का। ३. अँगूठी। छाप। छल्ला। उ०—बनचर कौन देश तें आयो। कहँ वे राम कहाँ वे लछिमन क्यों करि मुद्रा पायो।—सूर (शब्द०)। ४. टाइप के छपे हुए अक्षर। ५. गोरखपंथी साधुओं के पहनने का एक कर्णभूषण जो प्रायः काँच वा स्फटिक का होता है। यह कान की लौ के बीच में एक बड़ा छेद करके पहना जाता है। उ०—(क) सृंगी मुद्रा कनक खपर लै करिहौं जोगिन भेस।—सूर (शब्द०)। (ख) भसम लगाऊँ गात, चंदन उतारों तात, कुंडल उतारों मुद्रा कान पहिराय द्यौं।—हनुमान (शब्द०)। ६. हाथ, पाँव, आँख, मुँह, गर्दन आदि की कोई स्थिति। ७. बैठने, लेटने या खड़े होने का कोई ढंग। अंगों की कोई स्थिति। ८. चेहरे का ढंग। मुख की आकृति। मुख की चेष्टा। उ०—मायावती अकेले इस बाग में टहल रही थी और एक ऐसी मुद्रा बनाए हुए थी, जिससे मालूम होता था कि यह किसी बड़े गंभीर विचार में मग्न है। बालकृष्ण (शब्द०)। ९. विष्णु के आयुधों के चिह्न जो प्रायः भक्त लोग अपने शरीर पर तिलक आदि के रूप में अंकित करते हैं या गरम लोहे से दगाते हैं। जैसे, शंख, चक्र, गदा आदि के चिह्न)। छाप। १०. तांत्रिकों के अनुसार कोई भूना हुआ अन्न। ११. तंत्र में उँगलियों आदि की अनेक रूपों की स्थिति जो किसी देवता के पूजन में बनाई जाती है। जैसे, धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा। १२. हठ योग में विशेष अंग-विन्यास। ये मुद्राएँ पाँच होती है। जैसे,—खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी और उनमुनी। १३. अगस्त्य ऋषि की स्त्री, लोपामुद्रा। १४. वह अलंकार जिसमें प्रकृत या प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त रचना में कुछ और भी साभिप्राय नाम निकलते हैं। जैसे,—कत लपटैयत मो गरे सोन जुही निसि सैन। जेहि चंपकबरनी किए गुल अनार रँग नैन।—विहारी (शब्द०)। इस पद्य में प्रकृत अर्थ के अतिक्ति 'मोग रा', 'सोनजुही', 'चंपक' इत्यादि फूलों के नाम भी निकलते हैं। १५. कहीं जाने का आज्ञापत्र या परवाना। परवाना राहदारी।

मुद्राकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्य का वह प्रधान अधिकारी जिसके अधिकार में राजा की मोहर रहती है। २. वह जो किसी

प्रकार की मुद्रा तैयार करता हो। ३. वह जो किसी प्रकार के मुद्रण का काम करता हो।

मुद्राकान्हड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

मुद्राकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मोहर बनाता हो। मुहर बनानेवाला।

मुद्राक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अक्षर जिसका उपयोग किसी प्रकार के मुद्रण के लिये होता हो। २. सीसे के ढले हुए अक्षर जो छापने के काम में आते हैं। टाइप।

मुद्राटोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने में सब कोमल स्वर लगते हैं।

मुद्रातत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके अनुसार किसी देश के पुराने सिक्कों आदि की सहायता से उस देश की ऐतिहासिक बातें जानी जाती हैं।

पर्या०—**मुद्राविज्ञान। मुद्राशास्त्र।**

मुद्राधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुहर रखनेवाला। २. किले का प्रधान अधिकारी [को०]।

मुद्राध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह अधिकारी जो कहीं जाने का परवाना देता है। कहीं वा अन्य राज्य में जाने का परवाना देनेवाला अधिकारी।

मुद्राबल—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

मुद्रामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक के भीतर का वह स्थान जहाँ प्राणवायु चढ़ती है। ब्रह्मरंध्र।

मुद्रायंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] छापने या मुद्रण करने का यंत्र। छापे आदि की कल।

मुद्रारक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुद्राधिप' [को०]।

मुद्राराक्षस—संज्ञा पुं० [सं०] विशाखदत्तरचित संस्कृत का एक प्रसिद्ध नाटक।

मुद्रालिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की लिपियों में एक। छापे के अक्षर [को०]।

मुद्रावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगियों की मुद्रा। उ०—श्रुति ताटंक मेलि मुद्रावलि, अवधि अधार अधारी।—सूर०, १०।३६६३।

मुद्रासंकोच—संज्ञा पुं० [सं० मुद्रा + सङ्कोच] सिक्कों की कमी। मुद्रा की पूर्ति उसकी वास्तविक माँग से कम होना। उ०—जान बूझकर मुद्रासंकोच न भी किया जाय तब भी।—अर्थ (वे०), पृ० ३३८।

मुद्रास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अँगुली का वह स्थान जहाँ अँगूठी या छल्ला आदि धारण किया जाता है।

मुद्रास्फीति—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रा + स्फीति] वास्तविक माँग या जरूरत से अधिक मात्रा में मुद्रा या सिक्का का प्रचलन। उ०—युद्धकाल में मुद्रास्फीति होती है।—अर्थ० (वे०), पृ० ३७३।

मुद्रिक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रिका] दे० 'मुद्रिका'। उ०—कर कंकण केयूर मनोहर दोत मोद मुद्रिक न्यारी।—तुलसी (शब्द०)।

मुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी मुहर। २. अँगूठी। उ०—ठौर पाइ पौन पुत्र डारि मुद्रिका दई।—केशव (शब्द०)। २. कुश की बनी हुई अँगूठी जो देव पितृ कार्य में अनामिका में पहनी जाती है। पवित्री। पैंती। उ०—पहिरि दर्भमुद्रिका सुभूरी। समिध अनेक लीन्ह कर रूरी।—मधुसूदन (शब्द०)। ३. मुद्रा। सिक्का। रुपया। उ०—नरसी पै जब संत सब कहे सकोपित बैन। ठग ठगि लीन्ही मुद्रिका चल्यो मारि तेहि लैन।—रघुराज (शब्द०)।

मुद्रित—वि० [सं०] १. मुद्रण किया हुआ। मुहर किया हुआ। २. अंकित किया हुआ। छपा हुआ। २. मुँदा हुआ। बंद। उ०—(क) नासिका अग्र की ओर दिए अध मुद्रित लोचन कोर समाधित।—देव (शब्द०)। (ख) राजिव दल इंदीवर सतदल कमल कुसेसै जाति। निशि मुद्रित प्रातहिं वे बिगसत बे बिगसत दिन राति।—सूर (शब्द०)। (ग) नील कंज मुद्रित निहार विद्यमान भानु सिंधु मकरंदहि अलिंद पान करिगो।—(शब्द०)। ३. त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ।

मुधरा¹—वि० [सं० मधुर, वर्णव्य० मुधर] दे० 'मधुर'। उ०—नाच गान कर निलजता, रच वप भूखण रास। मार निजारा मोहियो, हंजो मुधरे हास।—बाँकी०, ग्रं० भा० २, पृ० ६।

मुधा¹—क्रि० वि० [सं०] व्यर्थ। वृथा। बेफायदा। उ०—(क) यह सब जागबलक कहि राखा। देवि न होई मुधा मुनि भाषा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता पद बहहू।—तुलसी (शब्द०)।

मुधा²—वि० व्यर्थ का। निष्प्रयोजन। २. असत्। मिथ्या। झूठ। उ०—मुधा भेद जद्यपि कृत माया।—तुलसी (शब्द०)।

मुधा³—संज्ञा पुं० असत्य। मिथ्या। उ०—भूतल माहिं बली शिवराज भो भूषन भाषत शत्रु मुधा को।—भूषण (शब्द०)।

मुनक्का—संज्ञा पुं० [अ०, मि० सं० मृद्वीका] एक प्रकार की बड़ी किशमिश या सूखा हुआ अंगूर जो रेचक होता और प्रायः दवा के काम में आता है। विशेष दे० 'अंगूर'।

मुनगा¹—संज्ञा पुं० [सं० मधुगुञ्जन वा देश०] सहिजन।

मुनब्बतकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुनब्बत + फ़ा० कारी] पत्थरों पर उभरे हुए बेलबूटों का काम।

मुनमुना¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. मैदे का बना हुआ एक प्रकार का पकवान जो रस्सी की तरह बटकर छाना जाता है। २. खसखस की तरह का पर उससे बड़ा एक प्रकार का काला दाना। प्याजी।

विशेष—यह दाना गेहूँ के खेत में उत्पन्न होता है और प्रायः उसके दानों के साथ मिला रहता है। इसके मिले रहने के कारण आटे का रंग कुछ काला पड़ जाता है और स्वाद कुछ कड़वा हो जाता है।

मुनमुना[2]—वि० बहुत छोटा या थोड़ा।

मुनारा—संज्ञा पुं० [सं० मुद्रा] कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जो कुमायूँ आदि पहाड़ी जिलों के निवासी पहनते हैं। यह अधिकतर लोहे का बनता है।

मुनरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रिका] दे० 'मुँदरी'।

मुनहसर—वि० [अ० मुनहसिर] निर्भर। आश्रित। अवलंबित।

मुनाजात—संज्ञा स्त्री० [अ०] ईशप्रार्थना। खुदा की इबादत। उ०—कहाँ इतना सुन के हक सूँ मुनाजात।—दक्खिनी०, पृ० ३१२।

मुनाजिर—वि० [अ० मुनाज़िर] शास्त्रार्थ करनेवाला [को०]।

मुनादी—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बात की वह घोषणा जो कोई मनुष्य डुग्गी या ढोल आदि पीटता हुआ सारे शहर में करता फिरे। ढिंढोरा। डुग्गी।

क्रि० प्र०—करना।—पिटना।—फिरना।—फेरना।—होना।

मुनाफा—संज्ञा पुं० [अ० मुनाफा, मुनाफअह्] किसी व्यापार आदि में प्राप्त वह धन जो मूल धन के अतिरिक्त होता है। लाभ। नफा। फायदा।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—निकलना।—होना।

मुनारा—संज्ञा पुं० [अ० मनारह्] दे० 'मीनार'। उ०—भनै रघुराज नव पल्लवित मल्लिका के अमल अगारा हैं मुनारा हैं दुआरा हैं।—रघुराज (शब्द०)।

मुनाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत सुंदर पहाड़ी पक्षी जिसकी हरी गरदन पर सुंदर कंठा सा दिखाई देता है और जिसके सिर पर कलँगी होती है। इसके पर बहुत अधिक मूल्य पर बिकते हैं।

मुनासिब—वि० [अ०] उचित। योग्य। वाजिब। ठीक। उ०—बिना बुलाए जाना तो किसी तरह मुनासिब नहीं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ७९।

मुनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मनन करे। ईश्वर, धर्म और सत्यासत्य आदि का सूक्ष्म विचार करनेवाला व्यक्ति। मननशील महात्मा। जैसे, अंगिरा, पुलस्त्य, भृगु, कर्दम, पंचशिख आदि। २. तपस्वी। त्यागी।

यौ०—मुनिचीर, मुनिपट = वल्कल। मुनिव्रत = तपस्या।

३. सात की संख्या। उ०—तब प्रभु मुनि शर मारि गिरावा।—(शब्द०)। ४. जिन या बुद्ध। ५. पियाल या पयार का वृक्ष। ६. पलास का वृक्ष। ७. आठ वसुओं के अंतर्गत आप नामक वसु के पुत्र का नाम। ८. क्रौंच द्वीप के एक देश का नाम। ९. द्युतिमान् के सबसे बड़े पुत्र का नाम। १०. कुरु के एक पुत्र का नाम। ११. अगस्त्य ऋषि (को०)। १२. व्यास जी का नाम (को०)। १३. महर्षि पाणिनि (को०)। १४. आम्र वृक्ष (को०)। १५. दौना। दमनक।

मुनि[2]—संज्ञा स्त्री० दक्ष की एक कन्या जो कश्यप की सबसे बड़ी स्त्री थी।

मुनिकन्यका, मुनिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनि की पुत्री।

मुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी का क्षुप।

मुनिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] मुनि का पुत्र। अल्पावस्था का मुनि [को०]।

मुनिखर्जूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की खर्जूरिका [को०]।

मुनिच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] मेथी।

मुनितरु—संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम। पतंग।

मुनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनिधर्म। मुनिव्रत। उ०—प्रभु को निज चाप दे गए, मुनिता ही मुनि आप ले गए।—साकेत, पृ० ३५८।

मुनित्रय—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि [को०]।

मुनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मुनिता'।

मुनिद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्योनाक वृक्ष। २. बक्कम। पतंग।

मुनिधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] तिन्नी का चावल। तिनी।

मुनिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दौना। दमनक।

मुनिपादप—संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम। पतंग।

मुनिपित्तल—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

मुनिपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० मुनिपुङ्गव] मुनियों में श्रेष्ठ [को०]।

मुनिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक। दौना।

मुनिपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुनिपुत्र। दौना। २. खंजन पक्षी।

मुनिपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार का फूल।

मुनिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का धान्य जिसे पक्षिराज भी कहते हैं। २. पिंड खजूर। ३. चिरौंजी का पेड़। ४. पियार।

मुनिबर—संज्ञा पुं० [सं० मुनिवर] मुनिपुंगव। श्रेष्ठ मुनि।

मुनिभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] तिन्नी का चावल। तिन्नी।

मुनिभेषज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगस्त का फूल। २. हड़। हर्रे। ३. लंघन। उपवास।

मुनिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] तिन्नी का चावल। तिनी।

मुनियर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मुनिवर] १. मुनि लोग। २. मुनियों में श्रेष्ठ जन। उ०—तुम्ह बिन राखै कौण बिधाता मुनियर साखी आणैं रे।—दादू० बानी०, पृ० ६२३।

मुनियाँ[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] लाल नामक पक्षी की मादा। उ०—झुंड तें झपटि गहि आनी प्रेम पींजरा में, लाल मुनियाँ ज्यौं गुण लाल गहि तागी है।—देव (शब्द०)।

मुनियाँ[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

मुनिवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुंडरीक वृक्ष। पुंडरिया। २. दौना। ३. मुनियों में श्रेष्ठ।

मुनिवज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मुनिवर्य] मुनिश्रेष्ठ। मुनियों में प्रधान या श्रेष्ठ। उ०—रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी।—मानस, १।४८।

मुनिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार। पियासाल।

मुनिवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के विश्वेदेवा आदि देवताओं के अंतगर्त एक देवता ।

मुनिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम । पतंग ।

मुनिवृत्ति—वि० [सं०] मुनिवत् जीवन व्यतीत करनेवाला [को०] ।

मुनिव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] तप । तपस्या [को०] ।

मुनिशाख—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कुश । सफेद दाभ ।

मुनिसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

मुनिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दौना । दमनक ।

मुनिसुव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक तीर्थंकर का नाम ।

मुनिहत—संज्ञा पुं० [सं०] राजा पुष्यमित्र की एक उपाधि ।

मुनींद्र—संज्ञा पुं० [सं० मुनीन्द्र] १. वह जो मुनियों में इंद्र हो । महान् वा श्रेष्ठ मुनि । २. शिव का एक नाम (को०) । ३. भरत मुनि (को०) । ४. बुद्धदेव का एक नाम । ५. पुराणानुसार एक दानव का नाम ।

मुनी[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुनि] दे० 'मुनि' ।

मुनी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुनियाँ] रायमुनी । रैमुनिया । लाल पक्षी की मादा । उ०—नवल बधू गोकुल की मुनी । परखै लाल खिलारी गुनी ।—घनानंद, पृ० २९२ ।

मुनीब—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मुनीम' ।

मुनीम—संज्ञा पुं० [अ० मुनीब (=नायब रखनेवाला)] १. नायब । मददगार । सहायक । २. साहूकारों का हिसाब किताब लिखनेवाला ।

यौ०—मुनीमखाना=वह स्थान जहाँ किसी कोठी के हिसाब किताब लिखनेवाले मुनीम बैठकर काम करें ।

मुनीर—वि० [अ०] दीप्त । प्रकाशमान । चमकदार । उ०—बदर ए मुनीर बेनजीर सीरो खुसरू में ।—नट०, पृ० ७८ ।

मुनीश, मुनीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुनियों में श्रेष्ठ । २. बुद्धदेव का एक नाम । ३. विष्णु ।

मुनुष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] मानव । मनुष्य । उ०—मुनुष देह उत्तम करी (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१५ ।

मुनौविर—वि० [अ० मुनव्वर] उज्वल । प्रकाशमान । दीप्त ।

मुन्ना—संज्ञा पुं० [देश०] १. छोटों के लिये प्रेमसूचक शब्द । प्रिय । प्यारा । उ०—मुन्ना ! मैंने तो यह कहा था कि इस मिट्टी के मोर को देख ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । २. तारकशी के कारखाने के वे दोनों खूँटे जिनमें जंता लगा रहता है ।

मुन्नूँ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मुन्ना' ।

मुन्यन्न—संज्ञा पुं० [सं०] मुनियों के खाने का अन्न । जैसे तिन्नी का चावल आदि ।

मुन्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

मुन्यालय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

मुफरद—वि० [अ० मुफ़रद] किसी से बिना मिला हुआ । अकेला । तनहा [को०] ।

मुफलिस—वि० [अ० मुफ़लिस] धनहीन । निर्धन । दरिद्र । गरीब ।

मुफलिसी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुफ़लिसी] गरीबी । निर्धनता । दरिद्रता । उ०—मुफलिसी और मिजाज ऐ हातिम । क्या कयामत करे जो दौलत हो ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४४ ।

मुफसिद—संज्ञा पुं० [अ० मुफ़सिद] वह जो फसाद खड़ा करे । झगड़ा या फसाद करनेवाला आदमी ।

मुफस्सल[1]—वि० [अ० मुफ़स्सल] वह जिसकी तफसील की गई हो । ब्योरेवार । विस्तृत ।

मुफस्सल[2]—संज्ञा पुं० किसी केंद्रस्थ नगर के चारों ओर के कुछ दूर के स्थान । जैसे,—मुफस्सल से कई तरह की खबरें आ रही हैं ।

मुफस्सिल—वि० [अ० मुफ़स्सल] सव्याख्या । सविवरण । मुफस्सल । उ०—कहूँगा मैं किस्सा सुनो सब इता । कहूँगा मुफस्सिल कहानी जिता ।—दक्खिनी०, पृ० १९८ ।

मुफीद—वि० [अ० मुफ़ीद] फायदेमंद । लाभकारी । लाभदायक । उ० - मगर ये बात हमारे वास्ते मुफीद है ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२४ ।

मुफ्त—वि० [अ० मुफ़्त] जिसमें कुछ मूल्य न लगे । बिना दाम का । सेंत का ।

यौ०—मुफ्तखोर=वह व्यक्ति जो दूसरों के धन पर सुखभोग करे । मुफ्त का माल खानेवाला ।

मुहा०—मुफ्त में=(१) बिना दाम के । बिना मूल्य दिए या लिए । जैसे,—यह घड़ी मुझे मुफ्त में मिली । (२) व्यर्थ । बेफायदा । निष्प्रयोजन । जैसे,—(क) मुफ्त में उसकी जान गई । (ख) मुफ्त में क्यों हैरान होते हो ।

मुफ्तखोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुफ़्तखोरी] बिना मेहनत किए, दूसरे की कमाई खाना । दूसरों के सिर रहना ।

मुफ्तरी—वि० [अ० मुफ़्तरी] १. धूर्त । मक्कार । शरीर । २. झूठा आरोप करनेवाला । असत्य इल्जाम लगानेवाला [को०] ।

मुफ्ती[1]—संज्ञा सं० [अ० मुफ़्ती] धर्मशास्त्री । फतवा देनेवाला । धर्माचार्य । मुसलमानों का वह धर्मशास्त्रवेत्ता मौलवी जो धार्मिक समस्याओं का समाधान प्रश्नोत्तर रूप में पूछने पर करता है ।

मुफ्ती[2]—वि० [अ० मुफ़्त+ई (प्रत्य०)] जो बिना दाम दिए मिला हो । मुफ्त का ।

मुबतिला—वि० [अ० मुब्तिला] पकड़ा हुआ । फँसा हुआ । ग्रस्त । गृहीत । उ०—आकबत होवेगा क्या मालुम नहीं । दिल हुआ है मुब्तिला दीदार का ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६ ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः रोग, विपत्ति आदि के संबंध में ही होता है । जैसे,—(क) वे कई दिनों से बुखार में मुबतिला हैं । (ख) मैं भी आजकल एक आफत में मुबतिला हो गया हूँ ।

मुबर्रा—वि० [अ० मुबर्रा] १. बरी किया हुआ । मुक्त । २. पवित्र । ३. पृथक् । अलग । ४. निःसंग । विरक्त [को०] ।

मुबलग—वि० [अ० मुब्लग़] १. भेजा हुआ । प्रेषित । २. खरा । जो खोटा न हो [को०] ।

मुबलिग[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. धन की संख्या । रकम । २. मात्रा ।

मुबलिग[2]—वि० दे० भेजनेवाला । २. दे० 'मुबलग' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः रुपए के साथ किया जाता है । जैसे, मुबलिग दस रुपए, जिसका अर्थ होता है भेजनेवाला खरे रुपए भेज रहा है ।

मुबादिला†—संज्ञा पुं० [सं० मुबादलह्, मुबादिलह्] बदला । पलटा । एवज । अदल बदल । आदान प्रदान ।

मुबारक—वि० [अ०] १. जिसके कारण बरकत हो । २. शुभ । मंगलप्रद । मंगलमय । नेक । अच्छा । उ०—आज यह फत्ह का दरबार मुबारक होए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२ । ३. भाग्यशील । खुशकिस्मत (को०) ।

मुबारकबाद—संज्ञा पुं० [अ० मुबारक+फ़ा० बाद] कोई शुभ बात होने पर कहना कि 'मुबारक हो' । बधाई ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

मुबारकबादी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुबारक+फ़ा० बादी] १. 'मुबारक' कहने की क्रिया । बधाई । २. वे गीत आदि जो शुभ अवसरों पर बधाई देने के लिये गाए जाँय ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

मुबारकी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुबारक+ई] दे० 'मुबारकबादी' ।

मुबालिगा—संज्ञा पुं० [अ० मुबालिग़ह्] बहुत बढ़ाकर कही हुई बात । लंबी चौड़ी बात । अत्युक्ति ।

मुबाशरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सहवास । संभोग । रतिक्रीड़ा [को०] ।

मुबाह—वि० [अ०] विहित । जायज [को०] ।

मुबाहिसा—संज्ञा पुं० [अ० मुबाहसह्, मुबाहिसह्] किसी विषय के निर्णय के लिये होनेवाला विवाद । बहस ।

मुब्तला—वि० [अ० मुब्तलह्] १. ग्रस्त । पकड़ा हुआ । २. फँसा हुआ । ३. मुग्ध । आसक्त [को०] ।

मुब्तिला—वि० [अ० मुब्तिलह्] मुसीबत या संकट आदि में फँसा हुआ ।

मुब्बी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उर्वी] पृथ्वी । धरित्री । उ०—नथ्थह मुब्बी बीर बर, बल बंकम घट घाइ ।—पृ० रा०, २५।६०७ ।

मुमकिन—वि० [अ०] जो हो सकता हो । संभव ।

मुमतहिन—संज्ञा पुं० [अ०] इम्तहान लेनेवाला । परीक्षा लेनेवाला । परीक्षक ।

मुमानिअत, मुमानियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] निषेध । प्रतिषेध । मनाही । रोक ।

मुमुक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ति की इच्छा । मोक्ष की अभिलाषा ।

मुमुक्षु[1]—वि० [सं०] मुक्ति पाने का इच्छुक । मोक्ष का अभिलाषी । जो मुक्ति की कामना करता हो ।

मुमुक्षु[2]—संज्ञा पुं० संन्यासी ।

मुमुक्षुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुमुक्षु का भाव या धर्म ।

मुमुख(पु)†—वि० [सं० मुमुक्षु] दे० 'मुमुक्षु ।' उ०—जैसे आदि पुरुष वह कोई । मुमुखन भजत सुन्यौ हम सोई । नंद० ग्रं०, पृ० ३२० ।

मुमुचान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मुक्त हो गया हो । वह जिसका मोक्ष हो गया हो । २. मेघ । बादल ।

मुमुषिषु—संज्ञा पुं० [सं०] मूसनेवाला । चोर । तस्कर [को०] ।

मुमूर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु की अभिलाषा मरने की इच्छा ।

मुमूर्षु—वि० [सं०] जो मरने के समीप हो । जो मर रहा हो, आसन्नमृत्यु । उ०—आकर काल रूप रावण ने उन मुमूर्षु के निकट कहा ।—साकेत, पृ० ३८८ ।

मुयस्सर—वि० [अ०] दे० 'मयस्सर' ।

मुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुरङ्गिका] मूर्वा ।

मुरंडा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुरण्डा] भारत के पश्चिमोत्तर दिशा की एक नगरी [को०] ।

मुरंडा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. भूने हुए गरमागरम गेहूँ में गुड़ मिलाकर बनाया हुआ लड्डू । गुड़धानी । उ०—पुनि संधाने आए बसाँधे । दूध दही के मुरंडा बाँधे ।—जायसी ग्रं०, पृ० १२४ । २. पानी निकालकर पिंडाकार बँधा दही या छेना का मीठा और नमकीन खाद्यपदार्थ । उ०—अउर दही कै मुरंडा बाँधे । औ सँधान बहु भाँतिन साधे ।—जायसी (शब्द०) ।

मुहा०—मुरंडा करना=(१) गठरी सा बना देना । समेटकर लड्डू सा कर देना । (२) भून डालना । (३) बहुत मारना पीटना । (४) मोह लेना । मुग्ध कर लेना । आशिक बना लेना । मुरंडा बाँधना=दही या छेने को पानी निथारने के लिये कपड़े में बाँधकर लटकाना या दबाना ।

मुरंडा[3]—वि० सूखा हुआ । शुष्क ।

मुहा०—मुरंडा होना=(१) सूखकर काँटा हो जाना । जैसे,—चार दिन की मेहनत में मुरंडा हो गए । (२) मुग्ध होना । मोहित होना ।

मुरंदला—संज्ञा स्त्री० [सं० मुरन्दला] नर्मदा नदी का एक नाम ।

मुरंदा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मुरंडा' ।

मुरँड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मुरंडा' ।

मुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेष्टन । वेठन । २. एक दैत्य जिसे विष्णु ने मारा था और जिसे मारने के कारण उनका नाम 'मुरारि' पड़ा । उ०—मधु कैटभ मथन, मुर भौम केशी भिदन, कंस कुल काल अनुसाल हारी ।—सूर (शब्द०) ।

मुर[2]—अव्य० फिर । दोबारा ।

मुरई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मूली' ।

मुरक—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुरकना] मुरकने की क्रिया या भाव ।

मुरकना—क्रि० अ० [हिं० मुड़ना] १. लचककर किसी ओर झुकना । २. फिरना । घूमना । ३. लौटना । वापस होना । फिर जाना । ४. किसी अंग का झटके आदि के कारण किसी

ओर तन जाना। किसी अंग का किसी ओर इस प्रकार मुड़ जाना कि जल्दी सीधा न हो। मोच खाना। जैसे, बाँह मुरकना, कलाई मुरकना। ५. हिचकना। रुकना। उ०—लोचन भरि भरि दोउ माता के कनछेदन देखत जिय मुरकी।—सूर (शब्द०)। ६. विनष्ट होना। चौपट होना। उ०—साहि सुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन कौन पातसाह को न पातसाही मुरकी।—भूषण (शब्द०)।

मुरका†—संज्ञा पुं० [देश०] १. बहुत ऊँचा और बड़े बड़े दाँतोंवाला सुंदर हाथी। २. गड़ेरियों का भोज जो वे अपनी बिरादरी को देते हैं।

मुरकाना—क्रि० स० [हिं० मुरकना का स० रूप] १. फेरना। घुमाना। २. लौटाना। घुमाना। वापस करना। ३. किसी अंग में मोच लाना। ४. नष्ट करना। चौपट करना।

मुरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुरकना (=घूमना)] कान में पहनने की छोटी बाली। उ०—बदन फेरि हँसि हेरि इत करि ललचौहैं नैन। उर उरकी दुरकी लुरक मुर मुरका कर सैन।—स० सप्तक, पृ० ३६६। २. संगीत में आगे पीछे के स्वरों पर होते समय झटके से किसी स्वर पर जाना।

मुरकुल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो हिमालय में होती है और सिक्किम तक पाई जाती है। इसकी शाखाओं में से एक प्रकार का रेशा निकलता है जिससे रस्सियाँ आदि बनाई जाती हैं। इसे 'बेरी' भी कहते हैं।

मुरखाईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ख+हिं० आई (प्रत्य०)] मूर्खता। बेवकूफी। अज्ञता। उ०—बपु करति हर हित सुनि बिहँसि बटु कहत मुरखाई महा।—तुलसी (शब्द०)।

मुरगा[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुर्ग़] [स्त्री० मुरगी] १. एक प्रसिद्ध पालतू पक्षी। कुक्कुट। उ०—ह्वै है नहीं मुरगा जिहि गाँव भट्ट तिहि गाँव का भोर ना ह्वै है।—ठाकुर०, पृ० ३०।

विशेष—यह पक्षी सफेद, पीले और लाल आदि कई रंगों का और खड़ा होने पर प्रायः एक हाथ से कुछ कम ऊँचा होता है। इसके नर के सिर पर एक कलगी होती है। यह अपनी शानदार चाल और प्रभात के समय 'कुकड़ूँ कूँ' बोलने के लिये प्रसिद्ध है। यह प्रायः घरों में पाला जाता है। लोग इसे लड़ाते और इसका मांस भी खाते हैं। इसके बच्चे को चूजा कहते हैं।

२. पक्षी। चिड़िया।

मुहा०—**मुरगा बनाना**=एक प्रकार की यंत्रणा। अपराधी को उकड़ूँ बैठाकर घुटनों के बीच से निकले दोनों हाथों से कान पकड़वाना।

मुरगा†[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुर्वा] दे० 'मूर्वा'।

मुरगाबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुरग़ाबी] मुरगे की जाति का एक पक्षी। जलकुक्कुट। जलमुरगा।

विशेष—यह जल में तैरता और मछलियाँ पकड़कर खाता है। यह पानी के भीतर बहुत देर तक गोता मारकर रह सकता है। इसके पर कोमल होते हैं और नर मादा दोनों प्रायः एक से ही होते हैं।

मुरगाली—संज्ञा स्त्री० [सं० मुरङ्गिका] मूर्वा।

मुरचंग—संज्ञा पुं० [हिं० मुँहचंग] लोहे का बना हुआ मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा जिससे ताल देते हैं। मुँहचंग।

मुहा०—**मुरचंग झाड़ना**=आनंद करना। चैन करना। (व्यंग)।

मुरचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मोरचह्] दे० 'मोरचा'। उ०—कहैं कबीर काया का मुरचा सिकल किए बनि आवै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २६।

मुरची—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा के एक देश का नाम।

मुरछानाⓅ—क्रि० अ० [सं० मुर्च्छन] १. शिथिल होना। २. अचेत होना। बेसुध होना। बेहोश होना। उ०—अधर दसनन भरे कठिन कुच उर लरे परे सुख सेज मन मुरछि दोऊ।—सूर (शब्द०)।

मुरछल—संज्ञा पुं० [हिं० मोर+छड़] दे० 'मोरछल'।

मुरछा—संज्ञा स्त्री० [सं० मुर्च्छा] दे० 'मूर्च्छा'। उ०—सुनत ही हरिदास को मुरछा आइ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १८३।

मुरछानाⓅ†—क्रि० अ० [सं० मुर्च्छा] अचेत होना। मूर्च्छित होना। बेहोश होना। उ०—तात मरन सुनि श्रवण कृपानिधि धरणि परे मुरछाई। मोह मगन लोचन चल धारा बिपति हृदय न समाई।—सूर (शब्द०)।

मुरछावंतⓅ—वि० [सं० मुर्च्छा+वंत (प्रत्य०)] मूर्च्छित। बेहोश। अचेत। उ०—धरम धुरंधर श्री रघुराई। मुरछावंत भए मुनिराई।—मधुसूदन (शब्द०)।

मुरछितⓅ—वि० [सं० मूर्च्छित] दे० 'मूर्च्छित'। उ०—जोगी अकंटक भए पतिगति सुनत रति मुरछित भई।—तुलसी (शब्द०)।

मुरज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृदंग। पखावज। उ०—(क) कोउ मंजु मुरज अमोल ढालन तबल अमल अपार हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) रुज मुरज डफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार।—सूर (शब्द०)। २. एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसमें पद्य के अक्षरों को इस प्रकार रखते हैं कि वे मृदंग की आकृति के बन जायँ। पद्य के अनेक बंधों में से एक का नाम। उ०—खंग कमल कंकन डमरु चंद्र चक्र धनु हार। मुरज, छत्रजुत बंध बहु पर्वत वृक्ष केंवार।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २०३।

मुरजफल—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष।

मुरजित्—संज्ञा पुं० [सं०] मुर नामक राक्षस को जीतनेवाले, श्रीकृष्ण। मुरारि।

मुरजीवा†—संज्ञा पुं० [हिं० मरना+जीना] गोताखोर। दे० 'मरजिया'। उ०—उतने ही मुरजीवा की तरह रत्न और मोती लेकर आवैंगे।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २०५।

मुरझनाⓅ—क्रि० अ० [सं० मूर्च्छन] १. मूर्छित होना। उ०—गंडन सों मिलि ललित गंडमंडल मंडित छबि। कुंडल सों कच

उरझे मुरझे जहँ बड्डे कवि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४ । २. कुम्हला जाना ।

मुरझाना—क्रि० अ० [सं० मूर्च्छन] १. फूल या पत्ती आदि का कुम्हलाना । सूखने पर होना । २. सुस्त हो जाना । उदास होना । उ०—(क) गिरि मुरझाइ दया आइ कछू भाय भरे ढरे प्रभु ओर मति आनँद सों भीनी है ।—प्रियादास (शब्द०) । (ख) सखी कुरंगिके, यह हिम उपचार तो मुख कमल की लता को और भी मुरझा देगा ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । (ग) देव मुरझाइ उरसाल कह्यो दीजै मुरझाइ बात पूछी है छेम की । —देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुरड़†—संज्ञा पुं० [डिं०] गर्व । अभिमान । दर्प । अहंकार ।

मुरड़की†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मरोड़' ।

मुरतंगा—संज्ञा पुं० [देश०] भारत के पूर्वी क्षेत्र में होनेवाला एक प्रकार का ऊँचा पेड़ ।

विशेष—इस पेड़ के हीर की लकड़ी लाल और कड़ी होती है और इससे सजावट के सामने बनाए जाते हैं । यह पेड़ आसाम, बंगाल और चटगाँव में अधिकता से पाया जाता है ।

मुरतⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति] दे० 'मूर्ति' ।

मुरतहिन—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसके पास कोई वस्तु रेहन या गिरों रखी जाय । जिसके पास बंधक रखा जाय । रेहनदार ।

मुरता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली झाड़ जो पूर्वी बंगाल और आसाम में होता है । इससे प्रायः चटाई वा सीतलपाटी बनाई जाती है ।

मुरतिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति] दे० 'मूर्ति' । उ०—नंद महर के आँगन मोहन मुरति बिना देखहुँ न परे कल भूलि काम धाम आछो बदन निहार ।—नंद, ग्रं० पृ० ३५४ ।

मुरती†—संज्ञा पुं० [सं० मूर्ति] शरीर । रूपाकार । आदमी । मूर्ति । उ०—मुजफ्फरपुर जिला का एक 'मुरती' आया है । —मैला०, पृ० ७२ ।

मुरद†—संज्ञा पुं० [फ़ा०, सं० मृतक] दे० 'मुरदा' ।—दादू०, पृ० ५०७ ।

मुरदरⓟ—संज्ञा पुं० [सं०] मुरारि । श्रीकृष्ण । उ०—जिमि मुरदर तकि अच्चुर कंध धरि धुनकर सरच्चुर ।—गोपाल (शब्द०) ।

मुरदा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुरदह्, मुर्दह्, मि० सं० मृतक] १. वह जो मर गया हो । मरा हुआ प्राणी । मृतक । २. ताजिया । ३. मजार । कब्र । उ०—पाथर पूजत हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ।—कबीर सा०, पृ० ८२० ।

मुहा०—**मुरदा उठना** = मर जाना । (गाली) । जैसे,—उसका मुरदा उठे । **मुरदा उठाना** = मृतक को उठाकर जलाने या गाड़ने आदि के लिये ले जाना । अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाना । **मुरदे से शर्त बाँधकर सोना** = बहुत अधिक सोना । **मुरदे का माल** = वह माल जिसका कोई वारिस न हो । **मुरदे की नींद सोना** = बेखबर होकर सोना । खुर्राटे भरना ।

मुरदा²—वि० १. मरा हुआ । मृत्यु को प्राप्त । मृत । २. जो बहुत ही दुर्बल हो । जिसमें कुछ भी दम न हो । ३. मुरझाया हुआ । कुम्हलाया हुआ । जैसे, मुरदा पान ।

यौ०—**मुरदाखोर** = मुरदा खानेवाला । **मुरदादिल** = जिसका मन बहुत ही उचाट और नीरस हो । **मुरदासंग** = दे० 'मुरदासंख' । **मुरदासन** । **मुरदासिंघी** ।

मुरदादिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुरदह् दिली] मन का खिन्न होना । उचाट [को०] ।

मुरदार¹—वि० [फ़ा०] १. अपनी मौत से मरा हुआ । मृत । २. अपवित्र । ३. बेदम । बेजान । जैसे,—हाथ का चमड़ा मुरदार हो गया है । ४. दुबला, कमजोर ।

मुरदार²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जानवर जो अपनी मौत से मरा हो और जिसका मांस खाया न जा सकता हो ।

मुरदारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुरदार + ई (प्रत्य०)] अपनी मौत से मरे हुए जानवर का चमड़ा ।

मुरदासंख—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुरदार संग, मुरदह् संग] एक प्रकार का औषध जो फूँके हुए सीसे और सिंदूर से बनता है ।

मुरदासनⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० मुरदासंख] दे० 'मुरदासंख' । उ०—मिरिच मोचरस मैदा लकरी । मुरदासन मनुसिल मिसमकरी । —सूदन (शब्द०) ।

मुरदासिंघी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुरदासंख' ।

मुरदेस, मुरधर—संज्ञा पुं० [सं० मुरुधरा] मारवाड़ देश का प्राचीन नाम । मुरदेश । मुरधरा । मुरभूमि । उ०—(क) मुरधर देश में बिलौंदा नाम ग्राम एक, तहाँ के निवासी संत दूसरे मुरारिदास ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) मुरधर खंड भूप सब आज्ञाकरी । राम नाम बिस्वास भक्तपद राज ब्रतधारी । —प्रियदास (शब्द०) ।

मुरनाⓟ—क्रि० अ० [हिं० मुड़ना] दे० 'मुड़ना' । उ०—(क) एकते एक रणवीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नेक अति सबल जी के ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुरत सुरत कैसें दुरत मुरत नैन जुरि नीठ । डौंड़ी दै गुन रावरे कहै कनौड़ी दीठ ।—बिहारी (शब्द०) ।

मुरपरैना‡—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़ (=सिर) + पारना (रखना)] फेरी करके सौदा बेचनेवालों का बुकचा । सिर पर रखकर बेचने की वस्तुओं का बोझ । उ०—ऊधो बेगि मधुबन जाहु । हम बिरहिनी नारि हरि बिन कौन करै निबाहु । तहीं दीजै मुरपरैना नफो तुम कछु खाहु । जो नहीं ब्रज में बिकानो नगर नारी साहु । सूर वै सब सुनत लैहैं जिय कहा पछिताहु ।—सूर (शब्द०) ।

मुरब्बा¹—संज्ञा पुं० [अ० मुरब्बह्] चीनी या मिसरी आदि की चाशनी में रक्षित किया हुआ फलों या मेवों आदि का पाक जो उत्तम खाद्य पदार्थों में माना जाता है ।

क्रि० प्र०—**डालना** ।—**पड़ना** ।—**बनाना** ।

मुरब्बा²—संज्ञा पुं० [अ० मुरब्बअ] १. ऐसा चतुष्कोण जिसके चारों

भुज बराबर हों। २. किसी अंक को उसी अंक से गुणन करने से प्राप्त फल। वर्ग।

मुरब्बा—वि० उसी अंक से गुणन द्वारा प्राप्त। वर्गीकृत। जैसे, मुरब्बा गज।

मुरब्बी—संज्ञा पुं० [अ०] १. पालन करनेवाला। २. रक्षक। आश्रयदाता। ३. सहायक। मददगार।

मुरमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु या श्रीकृष्ण। मुरारि।

मुरमुरा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. भुने मक्के या ज्वार की ठुर्री। एक प्रकार का भुना हुआ चावल जो अंदर से पोला होता है। फरवी। लाई।

मुरमुराना—क्रि० अ० [मुरमुर से अनु०] १. ऐंठन खाकर टूट जाना। चूर चूर हो जाना। चुरमुर हो जाना। २. कड़ी या खरी चीज का टूटने पर शब्द करना।

मुररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] मुर नामक दैत्य को मारनेवाले, विष्णु। मुरारि। उ०—सूर मुररिपु रंग रंगे सखि सहित गोपाल।—सूर (शब्द०)।

मुररियां†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुड़ना, मुरना या मरोड़ना] दे० 'मुर्री'। उ०—त्रिभुवननाथ जो भंजन लागे श्याम मुररिया दीना। चाँद सूर्य दुइ गोड़ा कीन्हों माँझ दीप किय तीना।—कबीर (शब्द०)।

मुरल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था। २. एक प्रकार की मछली।

मुरला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्मदा नदी। २. केरल देश की काली नाम की नदी।

मुरलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरली। बंसी। बाँसुरी। उ०—(क) अँखियनि की सुधि भूलि गई। श्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकृत नारि भई।—सूर (शब्द०)। (ख) उर पर पदिक कुसुम बनमाला अंग धुकधुकी बिराजै। चित्रित बाहु पौंचिआँ पौंचैं हाथ मुरलिका छाजै।—सूर (शब्द०)। (ग) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजै। लकुटी हाथ गरे गुंजमाला अधर मुरलिका बाजै।—सूर (शब्द०)।

मुरलिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुरलिका] मुरली। वंशी। उ०—खड़ी एक पग तप कियो सहि बहु भाँति दवागि। ताही पुन्यन मुरलिया रहत स्याम मुख लागि।—सुकवि (शब्द०)।

विशेष—हिंदी में शब्द के अंत में जोड़े हुए आ, वा, या आदि अक्षर कुछ विशिष्टता सूचित करते हैं; जैसे, 'हरवा' का अर्थ होगा—'हारविशेष' इसी प्रकार मुरलिया का अर्थ भी 'मुरली-विशेष' होगा।

मुरली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाँसुरी नाम का प्रसिद्ध बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है। वंशी।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द के साथ 'वाला' या उसका कोई पर्याय लगाने से 'श्रीकृष्ण' का अर्थ निकलता है।

२. एक प्रकार का चावल जो आसाम में होता है।

मुरलीधर—संज्ञा पुं० [सं०] मुरली धारण करनेवाले, श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर ब्रजधर मुरलीधर धरनीधर पीतांबरधर मुकुटधर गोपधर उरगधर शंखधर शारंगधर चक्रधर गदाधर रस धरैं अधर सुधाधर।—सूर (शब्द०)।

मुरलीमनोहर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

मुरलीवाला—संज्ञा पुं० [सं० मुरली+हिं० वाला (प्रत्य०)] १. श्रीकृष्ण। २. वह जिसके पास मुरली हो।

मुरवा¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारों ओर का घेरा। पैर का गिट्टा। उ०—(क) एड़िन चढ़ि गुलुफन चढ़ो मुरवन बचो दवाइ। सो चित चिकने जघन चढ़ि तितहिं परो बिछिलाइ।—रामसहाय (शब्द०)। (ख) लखि प्रभु पाछे पाउँ पसारा। परसि बही मुरवन तक धारा।—विश्राम (शब्द०)। (ग) रह्यो ढीठ ढारस गहै ससहर गयौ न सूर। मुरचो न मन मुरवान चुभि भौ चूरन चपि चूर।—बिहारी (शब्द०)। २. एक प्रकार की कपास जो ३-४ वर्ष तक फलती है।

मुरवा²—संज्ञा पुं० [सं० मयूर] दे० 'मोर'।

मुरवी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मौर्वी] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा। चिल्ला। उ०—बान चढ़ावन को कहा करि मुरवी टंकार। हरत दूर हीं ते बिघन मनहु चाप हुंकार।—शकुंतला, पृ० ४३।

मुरवैरी—संज्ञा पुं० [सं० मुरवैरिन्] श्रीकृष्ण। मुरारी।

मुरव्वत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'मुरौवत'।

मुर्शिद—संज्ञा पुं० [अ०] १. गुरु। पथप्रदर्शक। २. पूज्य। ३. धूर्त। चालाक। वंचक। उस्ताद। (व्यंग्य)।

मुरषंड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मुरखण्डन] मुर दानव का खंडन करनेवाले- विष्णु।

मुरसिद—संज्ञा पुं० [अ० मुर्शिद] दे० 'मुरशिद'। उ०—फल में फूल फूल में फल है, रोसन नबी का नूरा है। पलटूदास नजर नजराना, पाया मुरसिद पूरा है।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८०।

मुरसुत—संज्ञा पुं० [सं०] मुर दैत्य का पुत्र वत्सासुर। उ०—मुरसुत हो प्रमोल सो जाई। गृह वसिष्ठ के देख्या गाई।—गोपाल (शब्द०)।

मुरस्सा—वि० [अ० मुरस्सह्] जड़ा हुआ। जड़ाऊ। जटित। उ०—मुरस्सा के खुश एक पिंजरे में छोड़। रख्या ल्या के सूआ के नजदीक जोड़।—दक्खिनी०, पृ० ८०।

मुरस्साकार—संज्ञा पुं० [अ० मुरस्सह्+फ़ा० कार] गहनों में नग या मणि जड़नेवाला। जड़िया।

मुरस्साकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुरस्सह्+फ़ा० कारी] गहनों में नग आदि जड़ने का काम।

मुरस्सानिगार—संज्ञा पुं० [अ० मुरस्सह्+फा० निगार] खुशखत। सुंदर अक्षर लिखनेवाला।

मुरहाँ—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड+हाँ (प्रत्य०)] मस्तक। सिर।

मुरहा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मुर को मारनेवाले, विष्णु या श्रीकृष्ण।

मुरहा[2]†—वि० [सं० मुल (नक्षत्र)+हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० मुरही] १. (बालक) जो मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ हो, (ऐसा बालक माता पिता के लिये दोषी माना जाता है)। २. जिसके माता पिता मर गए हों। अनाथ। यतीम। ३. नटखट। उपद्रवी। शरारती।

मुरहा[3]†—संज्ञा पुं० [हिं० मुराना] वह जो चलते हुए कोल्हू में गँड़ेरियाँ डालता है।

मुरहारी—संज्ञा पुं० [सं०] मुर दैत्य को मारनेवाले विष्णु या श्रीकृष्ण। उ०—थकें जगत समुझाय सब, निपट पुराण पुकारि। मेरे मन वे चुभि रहे, मधुमर्दन मुरहारि।—केशव (शब्द०)।

मुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जिसे 'एकांगी' या 'मुरामासी' भी कहते हैं। दे० 'एकांगी—३'। २. कथासारित्सागर के अनुसार उस नाइन का नाम जिसके गर्भ से महानंद का पुत्र चंद्रगुप्त उत्पन्न हुआ था।

मुराकबाⓅ—संज्ञा पुं० [अ० मुराक़बह्] समाधि। योग। धारणा। उ०— गुमठ में जब जाय लगा, मुराकबे नजरि में आवता है। —पलटू०, पृ० ५१।

मुराड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] जलती हुई लकड़ी। लुआठा। उ०—हम घर जारा आपना लिया मुराड़ा हाथ। अब घर जारौं तासु का जो चलै हमारे साथ।—कबीर (शब्द०)।

मुराद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अभिलाषा। इच्छा। लालसा। कामना उ०—सब की मिलै मुराद गैब की नौबत बाजी। इक दुनियाँ इक दीन दोऊ को राखै राजी।—पलटू०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—**पूरी करना या होना**।—हासिल होना, आदि।

मुहा०—**मुराद आना**=अभिलाषा पूरी होना। **मुराद पाना**= मनोरथ पूर्ण होना। **मुराद बर आना**=मुराद पाना। **मुराद माँगना**=मनोरथ पूरा होने की प्रार्थना करना। **मुराद मानना**=मन्नत मानना। मनौती करना। **मुरादों के दिन**= युवावस्था। जवानी।

२. अभिप्राय। आशय। मतलब।

क्रि० प्र०—**रखना**।—लेना।

यौ०—**मुराद दावा**=नालिश करने का अभिप्राय। दावा करने का मतलब या उद्देश्य।

मुरादी—संज्ञा पुं० [फा०] वह जो कोई कामना रखता हो। अभिलाषी। आकांक्षी।

मुरानाⓅ[1]—क्रि० स० [अनु० मुरमुर (=चबाने का शब्द)] मुँह में कोई चीज डालकर उसे मुलायम करना। चुभलाना। उ०— सोइ बीरी मुख मेलियो लगे मुरावन सोय। सोइ बीरी को राग मुख प्रगट लख्यो सब कोय।—रघुराज (शब्द०)।

मुराना[2]—क्रि० स० [हिं० मोड़ना] दे० 'मोड़ना'।

मुराफा— संज्ञा पुं० [अ० मुराफ़अ] छोटी अदालत में हार जाने पर बड़ी अदालत में फिर से दावा पेश करना। अपील।

मुरायठा†—संज्ञा पुं० [हिं० मुरेठा] दे० 'मुरेठा'।

मुरार[1]—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल] कमल की जड़। कमलनाल। उ०—छीनी तार मुरार सी तिहि दीनी समुझाय। चोखी चितवनि यार की कटि न कहू कटि जाय।—स० सप्तक, पृ० २४४।

मुरारⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुरारि] दे० 'मुरारि'।

मुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर दैत्य के शत्रु, विष्णु या श्रीकृष्ण। २. डगण के तीसरे भेद (।ऽ।) की संज्ञा। (पिंगल)।

मुरारी—संज्ञा पुं० [सं० मुरारि] दे० 'मुरारि'।

मुरारे—संज्ञा पुं० [सं०] मुरारि का संबोधन। उ० बालसखा की बिपत विहंडन संकट हरन मुरारे।—सूर (शब्द०)।

मुरासा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मुरना, मुरका] तरकी। कर्णफूल। उ० लसै मुरासा तिय स्रवन यौं मुकुतनि दुति पाइ। मानो परस कपोल के रहे स्वेद कन छाइ।—बिहारी (शब्द०)।

मुरासा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मुँडासा'।

मुरिझानाⓅ†—क्रि० अ० [सं० मूर्च्छन] दे० 'मुरझाना'। उ०— मन हरि लीनो स्याम, परी राधे मुरिझाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

मुरिताⓅ—वि० [हिं० मुड़ना ?] विलासयुक्त। चंचल। उ०—जु चलै मुरि मारुत झंकुरिता। सु मनों मुरवेस मुरी मुरिता। —पृ० रा०, २५।६३।

मुरीद—संज्ञा पुं० [अ०] १. शिष्य। चेला। २. वह जो किसी का अनुकरण करता या उसके आज्ञानुसार चलता हो। अनुगामी। अनुयायी। उ०—मम्मा मन मुरीद होइ नहीं आपुवै पीर कहावै। —पलटू०, पृ० ७६।

मुरुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मुर] दे० 'मुर'।

मुरुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] एड़ी के ऊपर का घेरा। पैर का गट्टा। मुरवा। उ०—जो पाँव के मुरुओं में होता है।—नूतनामृतसागर (शब्द०)।

मुरुकुटिया†—वि० [हिं० मरकट+इया (प्रत्य०)] दे० 'मरकट'।

मुरुखⓅ†—वि० [सं० मूर्ख] दे० 'मूर्ख'। उ०—दिसिटिवंत कहँ नीअरे अंध मुरुख कहँ दूरि।—जायसी (शब्द०)।

मुरुखाईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुरुख+आई (प्रत्य०)] मूर्खता। मौर्ख्य।

मुरुछनाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० मूर्च्छन] दे० 'मुरछना'। उ०—परेउ मुरुछि महि लागत सायक —मानस, ६।५८।

मुरुछना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्च्छना] दे० 'मूर्च्छना'।

मुरुछा—संज्ञा पुं० [सं० मूर्च्छा] दे० 'मूर्च्छा'। उ०—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह। मानस, २।४३।

मुरुझनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० मूर्च्छन, हिं० मुरझाना] मूर्च्छित होना। दे० 'मुरझाना'। उ०—साँस भरें उर आते संताप। अरुझे मुरझे करै प्रलाप।—नंद ग्रं०, पृ० १५१।

मुरेठा संज्ञा पुं० [हिं० मूड़ (=सिर) + एठा (प्रत्य०)] १. पगड़ी। मुरायठ। साफा।

क्रि० प्र०—**बाँधना**।

२. दे० 'मुरैठा'।

मुरेर—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुड़ना**] दे० 'मरोड़'।

मुरेरना—क्रि० स० [हिं० **मरोरना**] दे० 'मरोड़ना'।

मुरेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मुँडेरा' २. दे० 'मरोड़'।

मुरैठा—संज्ञा पुं० [हिं० **मुरेठा**] १. दे० 'मुरेठा'। २. नाव की लंबाई में चारों ओर घूमी हुई गोट जो तीन चार इंच मोटे तख्तों से बनाई जाती है और 'गूढ़ा' के ऊपर रहती है।

मुरौअत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुरुव्वत, मुरुव्वत**] दे० 'मुरौवत'। उ०—बेतरह जो मुँह मुरौवत कामले। दे गिरा जो मेल मुँह के बल हमें।—चुभते०, पृ० ६६।

मुरौवत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुरुव्वत, मुरुव्वत**] १. शील। संकोच। लिहाज।

मुहा०—**मुरौवत तोड़ना**=रुखाई का व्यवहार करना। शील के विरुद्ध आचरण करना।

२. भलमनसी। आदमीयत।

क्रि० प्र०—**करना**।—**बरतना**।

मुरौवती—वि० [हिं० **मुरौवत** + ई (प्रत्य०)] संकोची। मुरौवतवाला।

मुर्ग—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़**] दे० 'मुरगा'।

मुर्गकेश—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़** + **केश** (=**चोटी**)] मरसे की जाति का एक पौधा जिसमें मुरगे की चोटी के से गहरे लाल रंग के चौड़े चौड़े फूल लगते हैं। इसे 'जटाधारी' भी कहते हैं।

मुर्गखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़खानह्**] मुरगों के रहने के लिये बनाया हुआ स्थान।

मुर्गबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़बाज़**] वह जो मुरगे लड़ाता हो। मुरगों का खेलाड़ी।

मुर्गबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मुर्ग़बाज़ी**] मुरगे लड़ाने का काम या भाव।

मुर्गमुसल्लम—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़** + अ० **मुसल्लम**] समूचा पकाया हुआ मुरगा। उ०—मुझे तो आप मुर्गमुसल्लम न खिलाइएगा तो मैं भाग खड़ा होऊँगा।—शराबी, पृ० १२।

मुर्गाबी—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्ग़** + **आबी**] दे० 'मुरगाबी'।

मुर्चा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मोरचा'।

मुर्तकिब—वि० [अ०] अपराध करनेवाला। अपराधी। कसूरवार। मुजरिम।

मुर्दनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मुर्दन** (=**मरना**) + **ई** (प्रत्य०)] १. आकृति का वह विकार जो मरने के समय अथवा मृत्यु के कारण होता है। मुख पर प्रकट होनेवाले मृत्यु के चिह्न।

मुहा०—**चेहरे पर मुर्दनी छाना या फिरना**=(१) मुख पर मृत्यु के चिह्न प्रकट होना। (२) बहुत अधिक निराश या उदास होना।

२. शव के साथ उसकी अंत्येष्टि क्रिया के लिये जाना। मुर्दे के साथ उसे गाड़ने या जलाने के स्थान तक जाना। ३. मृतक की अंत्येष्टि क्रिया के लिये जानेवालों का समूह।

क्रि० प्र०—**में जाना**।

मुर्दा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुर्दह्**] दे० 'मुरदा'। उ०—साधो ई मुर्दन कै गाँव।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४२।

मुर्दाली[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मुर्दन** (=**मरना**)] दे० 'मुर्दनी'।

मुर्दावली[२] वि० मृतक के संबंध का। मुरदे का।

मुर्दासिंगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुरदासंग**] दे० 'मुरदासंख'।

मुर्मुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामदेव। २. सूर्य के रथ के घोड़े। ३. भूसी की आग। तुषाग्नि। ४. गोमूत्र का गंध (को०)।

मुर्रा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मरोड़ या मुड़ना**] १. मरोड़फली नाम की ओषधि। इसकी लता जंगलों में होती है। २. पेट में ऐंठन होकर पतला मल निकलना और बार बार दस्त होना। मरोड़। ३. पेट का दर्द।

मुर्रा[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुड़ना**] हिसार और दिल्ली आदि में होनेवाली एक प्रकार की भैंस।

विशेष—इसके सींग छोटे, जड़ के पास पतले और ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। इस जाति की भैंस और भैंसे दोनों बहुत अच्छे समझे जाते हैं।

मुर्रा[३]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'मुरमुरा'।

मुर्रातिसार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मरोड़'।

मुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुड़ना या मरोड़ना**] १. दो डोरों के सिरों को आपस में जोड़ने की एक क्रिया जिसमें गाँठ का प्रयोग नहीं होता, केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ या बट देते हैं। २. कपड़े आदि में लपेटकर डाली हुई ऐंठन या बल। जैसे; धोती की मुर्री।

मुहा०—**मुर्री देना**=(१) कपड़ा फाड़ते समय उसके फटे हुए अंश को बराबर घुमाते या मोड़ते जाना जिसमें कपड़ा बिलकुल सीधा फटे। (बजाज)। (२) धोती को ठहराने के लिये कमर पर कई बल लपेटकर छल्ला सा बनाना।

३. कपड़े आदि को मरोड़कर बटी हुई बत्ती।

यौ०—**मुर्री का नैचा**।

४. चिकन या कशीदे की कढ़ाई का एक प्रकार जिसमें बटे हुए सूत का व्यवहार होता है और जिसका काम उभारदार होता है। ५. एक प्रकार की जंगली लकड़ी।

मुर्री का नैचा—संज्ञा पुं० [हिं० **मुर्री** + **नैचा**] एक प्रकार का नैचा जिसमें कपड़े की मुर्री या बत्ती बनाकर कसकर लपेटते जाते हैं।

विशेष—यह देखने में उल्टी चीन ही की तरह जान पड़ती है, परंतु वस्तुतः बत्ती होती है। इस बनावट का नैचा उतना दृढ़ नहीं होता। जहाँ कपड़ा सड़ता है, वहीं से बत्ती टूटने लगती है और बराबर खुलती ही चली जाती है।

मुर्रीदार—वि० [हिं० **मुर्री** + फ़ा० **दार** (प्रत्य०)] जिसमें मुर्री पड़ी हो। ऐंठनदार।

मुर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] मरूल या गोरचकरा नाम का जंगली पौधा

जिससे प्राचीन काल में प्रत्यंचा की रस्सी बनाई जाती थी। विशेष दे० 'गोरचकरा'।

मुर्वी—वि० [सं०] धनुष की प्रत्यंचा।

मुर्शद—संज्ञा पुं० [अ० **मुर्शिद**] दे० 'मुर्शिद'। उ०—मुर्शद बगैर कामिल कर खूब रह सूँ शामिल। तब होएगा तूँ आमिल नित हसत रह तूँ मीराँ।—दक्खिनी०, पृ० ११२।

मुर्शिद—संज्ञा पुं० [अ०] १. सुमार्ग बतानेवाला। मार्गदर्शक। गुरु। २. श्रेष्ठ। बड़ा। ३. उस्ताद। चतुर। चालाक। होशियार। ४. पाजी। नटखट। धूर्त्त। (व्यंग्य)।

मुल(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० **मुल**] दे० 'मूल'। उ०—लोभे अधिक मूल न मार। जे मुल राखए से बनिजार।—विद्यापति, पृ० २६६।

मुला†²—अव्य० [देश०] १. मगर। लेकिन। पर। (पश्चिम)। २. तात्पर्य यह कि। मतलब यह कि।

मुलक†—संज्ञा पुं० [अ० **मुल्क**] दे० 'मुल्क'। उ०—नव नागरि तन मुलक लहि जोबन आमिल जोर। घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम करी और की और।—बिहारी (शब्द०)।

मुलकट—संज्ञा स्त्री० [देश०] अँगिया का वह भाग जो स्तनों पर पड़ता है। अँगिया की कटोरी।

मुलकना(पु)—क्रि० अ० [सं० **पुलकित** ? या सं० **मुकुलित**] मंद मंद हँसना। पुलकित होना। नेत्रों में हँसी प्रकट करना। मुसकराना। उ०—(क) मुलकत ढोलउ चमकियउ बीजल खिवी क दंत।—ढोला०, दू० ५४२। (ख) सकुचि सरकि पिय निकट तें मुलकि कछुक तन तोरि। कर आँचर की ओट करि जमुहानी मुख मोरि।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—**पुलकना मुलकना**। उ०—कवि देव कछू मुलकै पुलकै उरकै उर प्रेम कलोलनि पै।—देव (शब्द०)।

मुलकित(पु)—वि० [सं० पुलकित ? हिं० **मुलकना**] १. प्रसन्न। पुलकित। प्रफुल्ल। उ०—पर तिय दोष पुरान सुनि हँसि मुरली सुखदानि। कसि करि राखी मिसरहू मुख आई मुसुकानि। मुख आई मुसुकानि मिसरहू कस करि राखी। सर्व दोषहर राम नाम की कीरति भाखी। बातन ही बहराय और की और कथा किय। सुकवि चतुर सब समुझि गय लखि मुलकित पर तिय।—सुकवि (शब्द०)। २. मंद मंद हँसता हुआ। मुस्कराता हुआ। उ०—ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कबूतर लेतु। झलकति दृग मुलकित वदनु तनु पुलकित तिहि हेतु।—बिहारी (शब्द०)।

मुलकी—वि० [अ० **मुल्क**] १. दे० 'मुल्की'। २. देशी। विलायती का उलटा। उ०—पाँति सिंधु मुलकी तुरंगन के कुलकी बिसाल ऐसी पुलकी सुचाल तैसी दुलकी।—गोपाल (शब्द०)।

मुलजिम—वि० [अ० मुलज़िम] जिसके ऊपर किसी प्रकार का इलजाम लगाया गया हो। जिसपर कोई अभियोग हो। अभियुक्त।

मुलतवी—वि० [अ० **मुल्तवी**] जो कुछ समय के लिये रोक दिया गया हो। स्थगित। जैसे,—(क) अब आज वहाँ का जाना मुलतवी रखिए। (ख) जलसा दो दिन के लिये मुलतवी हो गया।

क्रि० प्र०—**करना**।—**रखना**।—**रहना**।—**होना**।

मुलतान—संज्ञा पुं० [सं० **मूलस्थान**] एक प्रसिद्ध नगर जो पश्चिमी पंजाब में है।

मुलतानी¹—वि० [हिं० **मुलतान** (नगर)] मुलतान का। मुलतान संबंधी।

मुलतानी²—संज्ञा स्त्री० १. एक रागिनी जिसमें गांधार और धैवत कोमल, शुद्ध निषाद और तीव्र मध्यम लगता है। इनके अतिरिक्त तीनों स्वर शुद्ध लगते हैं। संगीत शास्त्र में इसे श्रीराग की रागिनी कहा है और हनुमत् के मत से यह दीपक राग की रागिनी है। इसके गाने का समय २१ से २४ दंड तक है। २. एक प्रकार की बहुत कोमल और चिकनी मिट्टी जो मुलतान से आती है।

विशेष—इसका रंग बादामी होता है और यह प्रायः सिर मलने में साबुन की तरह काम में आती है। इससे सोनार लोग सोना भी साफ करते हैं और छीपी लोग इससे अनेक प्रकार के रंगों में अस्तर देते हैं। साधु आदि इससे कपड़ा रँगते हैं।

मुहा०—**मुलतानी करना** = छींट छापने के पहले कपड़े को मुलतानी मिट्टी में रँगना।

मुलना†—संज्ञा पुं० [अ० **मौलाना**] मौलवी। मुल्ला। उ०—बाम्हन ते गदहा भला आन देव ते कुत्ता। मुलना ते मुरगा भला सहर जगावे सुत्ता।—कबीर (शब्द०)।

मुलमची—संज्ञा पुं० [हिं० **मुलम्मा** + **ची** (प्रत्य०)] किसी चीज पर सोने या चाँदी आदि का मुलम्मा करनेवाला। मुलम्मासाज।

मुलमा(पु)—वि० [अ० **मुलम्मा**] दे० 'मुलम्मा'। उ०—रतन परखु नीरा रे। मुलमा नहीं हीरा रे।—दक्खिनी० पृ० ३७।

मुलम्मा¹—वि० [अ०] १. चमकता हुआ। २. जिसपर सोना या चाँदी चढ़ाई गई हो। सोना या चाँदी चढ़ा हुआ।

मुलम्मा²—संज्ञा पुं० १. वह सोना या चाँदी जो पत्तर के रूप में, पारे या बिजली आदि की सहायता से, अथवा और किसी विशेष प्रक्रिया से किसी धातु पर चढ़ाया जाता है। किसी चीज पर चढ़ाई हुई सोने या चाँदी की पतली तह। गिलट। कलई। झोल।

विशेष—साधारणतः मुलम्मा गरम और ठंढा दो प्रकार का होता है। जो मुलम्मा कुछ विशिष्ट क्रियाओं से आग की सहायता से चढ़ाया जाता है, वह गरम कहलाता है; और जो बिजली की बैटरी से अथवा और किसी प्रकार बिना आग की सहायता से चढ़ाया जाता है, वह ठंढा मुलम्मा कहलाता है। ठंढे की अपेक्षा गरम मुलम्मा अधिक स्थायी होता है।

यौ०—**मुलम्मागर**। **मुलम्मासाज**।

२. किसी पदार्थ, विशेषतः धातु आदि को चाँदी या सोने का दिया हुआ रूप।

क्रि० प्र०—**करना**।—**चढ़ना**।—**चढ़ाना**।—होना।

३. वह बाहरी भड़कीला रूप जिसके अंदर कुछ भी न हो। ऊपरी तड़क भड़क।

मुलम्मासाज—संज्ञा पुं० [अ० **मुलम्मा** + फ़ा० **साज़**] किसी धातु पर सोना या चाँदी आदि चढ़ानेवाला। मुलम्मा करनेवाला। मुलमची।

मुलहठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मधुयष्टि**] दे० 'मुलेठी'।

मुलहा†—वि० [सं० **मूल** (= **नक्षत्र**) + **हा** (प्रत्य०)] १. जिसका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ हो। २. उपद्रवी। शरारती। नटखट। उ०—उर में उलहे मुलहै ह्वै उरोज सरोज करैं गुनदासव के।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

मुलाँ—संज्ञा पुं० [अ० **मुल्ला**] मौलवी। मुल्ला। उ०—आठ बाट बकरी गई माँस मुलाँ गए खाय। अजहूँ खाल खटोक कै भिस्त कहाँ ते जाय।—कबीर (शब्द०)।

मुलाकात—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलाक़ात**] १. आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मिलन। २. मेल मिलाप। हेलमेल। रब्तजब्त। ३. प्रसंग। रति क्रीड़ा।

मुलाकाती[1]—संज्ञा पुं० [अ० मुलाक़ात + ई (प्रत्य०)] वह जिससे मुलाकात या जान पहचान हो। परिचित।

मुलाकाती[2]—वि० मुलाकात संबंधी। मिलन संबंधी।

मुलाजिम—संज्ञा पुं० [अ० मुलाज़िम] १. पास रहनेवाला। प्रस्तुत रहनेवाला। उपस्थित रहनेवाला। २. नौकर। चाकर। सेवक। दास।

मुलाजिमत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलाज़िमत**] सेवा। नौकरी। चाकरी। उ०—मैंने उनके पूर्व ही रायपुर छोड़कर रायगढ़ में मुलाजिमत कर ली थी।—शुक्ल अभि० ग्रं०, ६५।

मुलाम†—वि० [अ० **मुलायम**] दे० 'मुलायम'।

मुलायम—वि० [अ०] १. 'सख्त' का उलटा। जो कड़ा न हो। २. नरम। हलका। मंद। धीमा। ढीला। जैसे,—आजकल सोने का बाजार मुलायम है। ३. नाजुक। सुकुमार। ४. जिसमें किसी प्रकार की कठोरता या खिंचाव आदि न हो। जैसे,—(क) उनका मुलायम स्वभाव है। (ख) जरा मुलायम मुलायम तौलो; यह तो अभी पूरा भी नहीं हुआ।

मुहा०—**मुलायम करना** = किसी का क्रोध शांत करना।

यौ०—**मुलायम चारा** = (१) हलका भोजन। (२) वह जो सहज में दूसरों की बातों में आ जाय। (३) वह जो सहज में प्राप्त किया जा सके। (४) कोमल या सुकुमार शरीरवाला।

मुलायमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मुलायम होने का भाव। २. सुकुमारता। ३. नजाकत। कोमलता।

मुलायम रोआँ—संज्ञा पुं० [हिं० **मुलायम** + **रोआँ**] सफेद और लाल रोआँ जो मुलायम होता है। (गड़रिया)।

मुलायमियत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलायमत**] १. मुलायम होने का भाव। नर्मी। २. नजाकत। कोमलता।

मुलायमी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलायम**] दे० 'मुलायमत'।

मुलाहजा—संज्ञा पुं० [अ० **मुलाहज़ह्**] १. निरीक्षण। देखभाल। मुआयना। २. संकोच। लिहाज। रिआयत।

क्रि० प्र०—**करना**।—**रखना**।—**होना**।

मुलुकⓅ—संज्ञा पुं० [अ० **मुल्क**] दे० 'मुल्क'। उ०—जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा।—पलटू०, भा० १, पृ० ३।

मुलेठा—संज्ञा स्त्री० [सं० (**मधुयष्टि**) **मूलयष्टी**, प्रा० **मूलयट्ठी**] घुँघची या गुंजा नाम की लता की जड़ जो औषध के काम में आती है। जेठी मधु। मुलट्ठी।

विशेष—यह खाँसी की बहुत प्रसिद्ध और अच्छी ओषधि मानी जाती है। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, बलकारक, नेत्रों के लिये हितकारी, वीर्यजनक तथा पित्त, वात, सूजन, विष, वमन, तृषा, ग्लानि और क्षय रोग का नाशक माना है। इसका सत्त भी तैयार किया जाता है जो काले रंग का होता है और बाजारों में 'रुब्बुसूस' के नाम से मिलता है। यह साधारण जड़ की अपेक्षा अधिक गुणकारी समझा जाता है।

पर्या०—**यष्टिमधु**। **क्लीतका**। **मधुक**। **यष्टिका**। **मधुस्रवा**। **मधुम**। **मधुवल्ली**। **मधूली**। **मधुररसा**। **अतिरसा**। **मधुरनमा**। **सोमापहा**। **सौम्या**।

मुल्क—संज्ञा पुं० [अ०] १. देश। २. सूबा। प्रांत। प्रदेश। उ०—मुल्क यह तुझको शहरयार मुबारक होए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२। ३. संसार। जगत्।

यौ०—**मुल्कगीरी**। **मुल्कदारी** = शासन। अधिकार। **मुल्करानी** = राज्यशासन। राज्यप्रबंध।

मुल्कगीरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] देश पर अधिकार प्राप्त करना। मुल्क जीतना।

मुल्की—वि० [अ० **मुल्क** + **ई** (प्रत्य०)] १. देश संबंधी। देशी। २. असैनिक। जो सेना संबंधी न हो। ३. शासन या व्यवस्था संबंधी।

मुल्तजी—संज्ञा पुं० [अ०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

मुल्तवी—वि० [अ०] जो रोक दिया गया हो। जिसका समय आगे बढ़ा दिया गया हो। स्थगित। दे० 'मुलतवी'।

मुल्लह[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वह पक्षी जो बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसें। कुट्टा। मुल्ला।

मुल्लह†[2]—वि० [देश०] बहुत अधिक सीधा सादा। बेवकूफ। मूर्ख।

मुल्लनाⓅ—क्रि० स० [सं० **मूल्यन**] मोल करना। उ०—ववहार मुल्लहिं वणिक कीनि आनहि वव्वरा।—कीर्ति०, पृ० २८।

मुल्ला—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का आचार्य वा पुरोहित। मौलवी। उ०—पाँवे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्लाँ कोरु। तिनाँ पास ना भिटीयै, जो सबदे दे चोरु।—संतवाणी०, पृ० ७०। वि० दे० 'मौलवी'।

मुवक्कल—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह जिसे कोई काम सौंपा गया हो। रखवाला। २. वह जो कार्यविशेष पर नियुक्त हो।

मुवक्किल—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो अपने किसी काम के लिये कोई वकील या प्रतिनिधि नियुक्त करे। वकील करनेवाला। वह जो

किसी को मुकदमा आदि लड़ने के लिये अपना वकील नियुक्त करता हो। वकील करने या रखनेवाला।

मुवनाⓟ—क्रि० अ० [सं० मृत, प्रा० मुअ+हिं० ना (प्रत्य०)] मरना। मृत होना। उ०—(क) गइ तजि लहरैं पुरइन पाता। मुवउँ धूप सिर अहा न छाता।—जायसी (शब्द०)। (ख) जैसे पतँग आगि धँसि लीन्ही। एक मुवै दूसर जिउ दीन्ही।—जायसी (शब्द०)। (ग) नारि मुई, घर संपति नासी।—तुलसी (शब्द०)।

मुवहिद—संज्ञा पुं० [अ० मुवह्हिद मुवहिद] वह जो ईश्वर को एक माने। वह जो एकेश्वरवाद को मानता हो। एकेश्वरवादी। उ०—उनके कवित्त और सवैया और बनावटें पूरा यकीन दिलानेवाले उनके मुवहिद होने के हैं।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ५३।

मुवा†—वि० [हिं० मुअना] मृत। मरा हुआ।

मुवानाⓟ‡—क्रि० स० [हिं० मुवना का स० रूप] हत्या करना प्राण लेना। मार डालना। उ०—इक सखी मिलि हँसति पूछति खैंचि कर की ओर। तजि मुवाइ सुभखत नाहीं निरखि उनकी ओर।—सूर (शब्द०)।

मुवाफिक—वि० [अ० मुआफ़िक़] दे० 'माफिक'।

मुशज्जर[1]—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा। बूटेदार कपड़ा।

मुशज्जर[2]—वि० बूटेदार। बेलबूटेवाला। उ०—क्या बकचे ताश मुशज्जर के क्या तख्ते साल दुसालों के। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१०।

मुशटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत ककुनी। श्वेत कंगु [को०]।

मुशफिक—वि० [अ० मुशफ़िक़] १. कृपालु। दयालु। २. मित्र। दोस्त। ३. तरस खानेवाला। दयावान्। रहम दिल।

मुशरब—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ पानी पीया जाय। झरना। २. संप्रदाय। मजहब। ३. ढंग। तौर तरीका [को०]।

मुशरिक—संज्ञा पुं० [अ० मुशरिक़] ईश्वर को छोड़कर दूसरे की भक्ति करनेवाला। उ०—गैर हक के सिजदा किसको कर न को। काफिर मुशरिक जो हो कर मर न को।—दक्खिनी०, पृ० १५३।

मुशल—संज्ञा पुं० [सं०] धान आदि कूटने का डंडा। मूसल।

मुशली[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुशलिन्] मूसल धारण करनेवाले, श्री-बलदेव।

मुशली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोधा। छिपकिली [को०]।

मुशायरा—संज्ञा पुं० [अ० मुशाअरह्] १. बहुत से कवियों, शायरों का एक जगह एकत्र होकर परस्पर अपनी कविता सुनाना। कविगोष्ठी। २. उपस्थित जनसमूह के सामने कवियों द्वारा अपनी कविता सुनाना। कविसंमेलन।

मुशावरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] विचार विनिमय। मंत्रणा। परामर्श। मशविरा [को०]।

मुशाहदा—संज्ञा पुं० [अ० मुशाहदह्] निरीक्षण। देखना। अवलोकन [को०]।

मुशाहरा—संज्ञा पुं० [अ० मुशाहरह्] दरमाहा। मासिक वेतन [को०]।

मुश्क[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कस्तूरी। मृगमद। मृगनाभि। †२. गंध। बू।

मुश्क[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंधे और कोहनी के बीच का भाग। भुजा। बाँह।

मुहा०—**मुश्कें कसना या बाँधना** = (अपराधी आदि की) दोनों भुजाओं को पीठ की ओर करके बाँध देना। (इससे आदमी बेबस हो जाता है।)

मुश्कआहू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कस्तूरीमृग [को०]।

मुश्कदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ओषधि के काम आनेवाला एक प्रकार की लता का बीज।

विशेष—यह इलायची के दाने के समान कुछ चिपटापन लिए होता है और इसके टूटने पर कस्तूरी की सी सुगंध निकलती है। संस्कृत में इसे 'लताकस्तूरी' कहते हैं। वैद्यक में इसे स्वादिष्ट, वीर्यजनक, शीतल, कटु, नेत्रों के लिये हितकारी, कफ, तृषा, मुखरोग और दुर्गंध आदि का नाश करनेवाला माना है।

मुश्कनाफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुश्कनाफह्] कस्तूरी का नाफा जिसके अंदर कस्तूरी रहती है।

मुश्कनाभ—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुश्क+सं० नाभ] वह मृग जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है। कस्तूरीमृग। विशेष दे० 'कस्तूरीमृग'।

मुश्कबार—वि० [फ़ा०] सुगंध वर्षक। बहुत खुशबूदार [को०]।

मुश्क बिलाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुश्क+हिं० बिलाई (= बिल्ली)] एक प्रकार का जंगली बिलाव जिसके अंडकोशों का पसीना बहुत सुगंधित होता है। गंध बिलाव।

विशेष—अरबी में इसे जुबाद और संस्कृत में गंधमार्जार कहते हैं। इसके कान गोल और छोटे होते हैं और रंग भूरा होता है। दुम काली होती है, पर उसपर सफेद छल्ले पड़े रहते हैं। लंबाई प्रायः ४० इंच होती है। यह जंतु राजपूताने और पंजाब के सिवा बाकी सारे हिंदुस्तान में पाया जाता है। यह बिलों में रहता है, शिकारी होता है और पाला भी जा सकता है। यह चूहे, गिलहरी आदि खाकर रहता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। जैसे, भोंडर, लकाटी इत्यादि।

मुश्कबेद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बेत जो बहुत सुगंधित होता है। विशेष दे० 'बेदमुश्क'।

मुश्कमेंहदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मुश्क+मेंहदी] एक प्रकार का छोटा पौधा जो बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है।

मुश्किल[1]—वि० [अ०] १. कठिन। दुष्कर। दुस्साध्य। २. जटिल। पेचीदा (को०)। ३. बारीक। सूक्ष्म (को०)।

मुश्किल[2]—संज्ञा स्त्री० १. कठिनता। दिक्कत। कठिनाई। २. मुसीबत। विपत्ति। संकट।

मुलम्मासाज—संज्ञा पुं० [अ० **मुलम्मा** + फ़ा० **साज़**] किसी धातु पर सोना या चाँदी आदि चढ़ानेवाला। मुलम्मा करनेवाला। मुलमची।

मुलहठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० **मधुयष्टि**] दे० 'मुलेठी'।

मुलहा†—वि० [सं० मूल (= **नक्षत्र**) + हा (प्रत्य०)] १. जिसका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ हो। २. उपद्रवी। शरारती। नटखट। उ०—उर में उलहे मुलहे ह्वै उरोज सरोज करैं गुनदासव के।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

मुलाँ—संज्ञा पुं० [अ० **मुल्ला**] मौलवी। मुल्ला। उ०—आठ बाट बकरी गई माँस मुलाँ गए खाय। अजहूँ खाल खटीक के भिस्त कहाँ ते जाय।—कबीर (शब्द०)।

मुलाकात—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलाक़ात**] १. आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मिलन। २. मेल मिलाप। हेलमेल। रब्तजब्त। ३. प्रसंग। रति क्रीड़ा।

मुलाकाती[1] संज्ञा पुं० [अ० मुलाक़ात + ई (प्रत्य०)] वह जिससे मुलाकात या जान पहचान हो। परिचित।

मुलाकाती[2]—वि० मुलाकात संबंधी। मिलन संबंधी।

मुलाजिम—संज्ञा पुं० [अ० **मुलाज़िम**] १. पास रहनेवाला। प्रस्तुत रहनेवाला। उपस्थित रहनेवाला। २. नौकर। चाकर। सेवक। दास।

मुलाजिमत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलाज़िमत**] सेवा। नौकरी। चाकरी। उ०—मैंने उनके पूर्व ही रायपुर छोड़कर रायगढ़ में मुलाजिमत कर ली थी।—शुक्ल अभि० ग्रं०, ६५।

मुलाम†—वि० [अ० **मुलायम**] दे० 'मुलायम'।

मुलायम—वि० [अ०] १. 'सख्त' का उलटा। जो कड़ा न हो। २. नरम। हलका। मंद। धीमा। ढीला। जैसे,—आजकल सोने का बाजार मुलायम है। ३. नाजुक। सुकुमार। ४. जिसमें किसी प्रकार की कठोरता या खिंचाव आदि न हो। जैसे,—(क) उनका मुलायम स्वभाव है। (ख) जरा मुलायम मुलायम तौलो; यह तो अभी पूरा भी नहीं हुआ।

मुहा०—**मुलायम करना** = किसी का क्रोध शांत करना।

यौ०—**मुलायम चारा** = (१) हलका भोजन। (२) वह जो सहज में दूसरों की बातों में आ जाय। (३) वह जो सहज में प्राप्त किया जा सके। (४) कोमल या सुकुमार शरीरवाला।

मुलायमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मुलायम होने का भाव। २. सुकुमारता। ३. नजाकत। कोमलता।

मुलायम रोआँ—संज्ञा पुं० [हिं० **मुलायम** + **रोआँ**] सफेद और लाल रोआँ जो मुलायम होता है। (गड़रिया)।

मुलायमियत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलायमत**] १. मुलायम होने का भाव। नर्मी। २. नजाकत। कोमलता।

मुलायमी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुलायम**] दे० 'मुलायमत'।

मुलाहजा—संज्ञा पुं० [अ० **मुलाहज़ह्**] १. निरीक्षण। देखभाल। मुआयना। २. संकोच। लिहाज। रिआयत।

क्रि० प्र०—**करना**।—**रखना**।—**होना**।

मुलुकⓅ—संज्ञा पुं० [अ० **मुल्क**] दे० 'मुल्क'। उ०—जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा।—पलटू०, भा० १, पृ० ३।

मुलेठा—संज्ञा स्त्री० [सं० (**मधुयष्टि**) **मूलयष्टी**, प्रा० **मूलयट्ठी**] घुँघची या गुंजा नाम की लता की जड़ जो औषध के काम में आती है। जेठी मधु। मुलट्ठी।

विशेष—यह खाँसी की बहुत प्रसिद्ध और अच्छी ओषधि मानी जाती है। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, बलकारक, नेत्रों के लिये हितकारी, वीर्यजनक तथा पित्त, वात, सूजन, विष, वमन, तृषा, ग्लानि और क्षय रोग का नाशक माना है। इसका सत्त भी तैयार किया जाता है जो काले रंग का होता है और बाजारों में 'रुब्बुसूस' के नाम से मिलता है। यह साधारण जड़ की अपेक्षा अधिक गुणकारी समझा जाता है।

पर्या०—**यष्टिमधु**। **क्लीतक**। **मधुक**। **यष्टिका**। **मधुस्त्रवा**। **मधुम**। **मधुवल्ली**। **मधूली**। **मधुररसा**। **अतिरसा**। **मधुस्नवा**। **सापपद्मा**। **सौम्या**।

मुल्क—संज्ञा पुं० [अ०] १. देश। २. सूबा। प्रांत। प्रदेश। उ०—मुल्क यह तुझको शहरयार मुबारक होए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२। ३. संसार। जगत्।

यौ०—**मुल्कगीरी**। **मुल्कदारी** = शासन। अधिकार। **मुल्करानी** = राज्यशासन। राज्यप्रबंध।

मुल्कगीरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] देश पर अधिकार प्राप्त करना। मुल्क जीतना।

मुल्की—वि० [अ० **मुल्क** + ई (प्रत्य०)] १. देश संबंधी। देशी। २. असैनिक। जो सेना संबंधी न हो। ३. शासन या व्यवस्था संबंधी।

मुल्तजी—संज्ञा पुं० [अ०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

मुल्तवी—वि० [अ०] जो रोक दिया गया हो। जिसका समय आगे बढ़ा दिया गया हो। स्थगित। दे० 'मुलतवी'।

मुल्लह[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वह पक्षी जो बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसें। कुट्टा। मुल्ला।

मुल्लह†[2]—वि० [देश०] बहुत अधिक सीधा सादा। बेवकूफ। मूर्ख।

मुल्लनाⓅ—क्रि० स० [सं० **मूल्यन**] मोल करना। उ०—ववहार मुल्लहि वणिक कीनि आनहि वब्बरा।—कीर्ति०, पृ० २८।

मुल्ला—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का आचार्य वा पुरोहित। मौलवी। उ०—पाँचे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्लाँ कोरु। तिनाँ पास ना भिटीयै, जो सबदे दे चोरु।—संतवाणी०, पृ० ७०। वि० दे० 'मौलवी'।

मुवक्कल—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह जिसे कोई काम सौंपा गया हो। रखवाला। २. वह जो कार्यविशेष पर नियुक्त हो।

मुवक्किल—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो अपने किसी काम के लिये कोई वकील या प्रतिनिधि नियुक्त करे। वकील करनेवाला। वह जो

किसी को मुकदमा आदि लड़ने के लिये अपना वकील नियुक्त करता हो। वकील करने या रखनेवाला।

मुवना(५)—क्रि० अ० [सं० **मृत**, प्रा० **मुअ**+हिं० **ना** (प्रत्य०)] मरना। मृत होना। उ०—(क) गइ तजि लहरैं पुरइन पाता। मुवउँ धूप सिर अहा न छाता।—जायसी (शब्द०)। (ख) जैसे पतँग आगि धँसि लीन्ही। एक मुवै दूसर जिउ दीन्ही। —जायसी (शब्द०)। (ग) नारि मुई, घर संपति नासी। —तुलसी (शब्द०)।

मुवहिद—संज्ञा पुं० [अ० **मुवह्हिद मुवहिद**] वह जो ईश्वर को एक माने। वह जो एकेश्वरवाद को मानता हो। एकेश्वरवादी। उ०—उनके कवित्त और सवैया और बनावटें पूरा यकीन दिलानेवाले उनके मुवहिद होने के हैं।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ५३।

मुवा†—वि० [हिं० **मुअना**] मृत। मरा हुआ।

मुवाना(५)†—क्रि० स० [हिं० **मुवना का स० रूप**] हत्या करना प्राण लेना। मार डालना। उ०—इक सखी मिलि हँसति पूछति खैंचि कर की ओर। तजि मुवाइ सुभखत नाहीं निरखि उनकी ओर।—सूर (शब्द०)।

मुवाफ़िक़—वि० [अ० **मुआफ़िक़**] दे० 'माफिक'।

मुशज्जर[१]—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा। बूटेदार कपड़ा।

मुशज्जर[२]—वि० बूटेदार। बेलबूटेवाला। उ०—क्या बकचे ताश मुशज्जर के क्या तख्ते साल दुसालों के। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१०।

मुशटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत ककुनी। श्वेत कंगु [को०]।

मुशफिक—वि० [अ० **मुशफ़िक़**] १. कृपालु। दयालु। २. मित्र। दोस्त। ३. तरस खानेवाला। दयावान्। रहम दिल।

मुशरब—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ पानी पीया जाय। झरना। २. संप्रदाय। मजहब। ३. ढंग। तौर तरीका [को०]।

मुशरिक—संज्ञा पुं० [अ० **मुशरिक़**] ईश्वर को छोड़कर दूसरे की भक्ति करनेवाला। उ०—गैर हक के सिजदा किसको कर न को। काफिर मुशरिक जो हो कर मर न को।—दक्खिनी०, पृ० १५३।

मुशल—संज्ञा पुं० [सं०] धान आदि कूटने का डंडा। मूसल।

मुशली[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मुशलिन्**] मूसल धारण करनेवाले, श्री-बलदेव।

मुशली[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोधा। छिपकिली [को०]।

मुशायरा—संज्ञा पुं० [अ० **मुशाअरह्**] १. बहुत से कवियों, शायरों का एक जगह एकत्र होकर परस्पर अपनी कविता सुनाना। कविगोष्ठी। २. उपस्थित जनसमूह के सामने कवियों द्वारा अपनी कविता सुनाना। कविसंमेलन।

मुशावरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] विचार विनिमय। मंत्रणा। परामर्श। मशविरा [को०]।

मुशाहदा—संज्ञा पुं० [अ० **मुशाहदह्**] निरीक्षण। देखना। अवलोकन [को०]।

मुशाहरा—संज्ञा पुं० [अ० **मुशाहरह्**] दरमाहा। मासिक वेतन [को०]।

मुश्क[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कस्तूरी। मृगमद। मृगनाभि। †२. गंध। बू।

मुश्क[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंधे और कोहनी के बीच का भाग। भुजा। बाँह।

मुहा०—**मुश्कें कसना या बाँधना** = (अपराधी आदि की) दोनों भुजाओं को पीठ की ओर करके बाँध देना। (इससे आदमी बेबस हो जाता है।)

मुश्कआहू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कस्तूरीमृग [को०]।

मुश्कदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ओषधि के काम आनेवाला एक प्रकार की लता का बीज।

विशेष—यह इलायची के दाने के समान कुछ चिपटापन लिए होता है और इसके टूटने पर कस्तूरी की सी सुगंध निकलती है। संस्कृत में इसे 'लताकस्तूरी' कहते हैं। वैद्यक में इसे स्वादिष्ट, वीर्यजनक, शीतल, कटु, नेत्रों के लिये हितकारी, कफ, तृषा, मुखरोग और दुर्गंध आदि का नाश करनेवाला माना है।

मुश्कनाफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुश्क़नाफ़ह्**] कस्तूरी का नाफा जिसके अंदर कस्तूरी रहती है।

मुश्कनाभ—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुश्क**+सं० **नाभ**] वह मृग जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है। कस्तूरीमृग। विशेष दे० 'कस्तूरीमृग'।

मुश्कवार—वि० [फ़ा०] सुगंध वर्षक। बहुत खुशबूदार [को०]।

मुश्क बिलाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मुश्क**+हिं० **बिलाई** (= बिल्ली)] एक प्रकार का जंगली बिलाव जिसके अंडकोशों का पसीना बहुत सुगंधित होता है। गंध बिलाव।

विशेष—अरबी में इसे जुबाद और संस्कृत में गंधमार्जार कहते हैं। इसके कान गोल और छोटे होते हैं और रंग भूरा होता है। दुम काली होती है, पर उसपर सफेद छल्ले पड़े रहते हैं। लंबाई प्रायः ४० इंच होती है। यह जंतु राजपूताने और पंजाब के सिवा बाकी सारे हिंदुस्तान में पाया जाता है। यह बिलों में रहता है, शिकारी होता है और पाला भी जा सकता है। यह चूहे, गिलहरी आदि खाकर रहता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। जैसे, भोंडर, लकाटी इत्यादि।

मुश्कबेद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बेत जो बहुत सुगंधित होता है। विशेष दे० 'बेदमुश्क'।

मुश्कमेंहदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **मुश्क**+**मेंहदी**] एक प्रकार का छोटा पौधा जो बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है।

मुश्किल[१]—वि० [अ०] १. कठिन। दुष्कर। दुस्साध्य। २. जटिल। पेचीदा (को०)। ३. बारीक। सूक्ष्म (को०)।

मुश्किल[२]—संज्ञा स्त्री० १. कठिनता। दिक्कत। कठिनाई। २. मुसीबत। विपत्ति। संकट।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—में पड़ना।

मुहा०—**मुश्किल आसान होना** = संकट टलना।

मुश्की[1]—वि० [फ़ा० मुश्की] १. कस्तूरी के रंग का। काला। श्याम। २. जिसमें मुश्क मिला हो। जिसमें कस्तूरी पड़ी हो। जैसे, मुश्की जरदा।

मुश्की[2]—संज्ञा पुं० वह घोड़ा जिसका सारा शरीर काला हो।

मुश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मुट्ठी। २. घूँसा। मुक्का (को०)।

यौ०—**एकमुश्त** = एक साथ। एक ही बार। (प्रायः रुपयों के लेन देन के संबंध में ही बोलते हैं।) जैसे,—उसने सब रुपए एकमुश्त दे दिए। **मुश्तबारा** = मुट्ठीभर।

मुश्तजन—वि० [फ़ा० मुश्तज़न] [संज्ञा मुश्तजनी] १. मल्ल। पहलवान। १. हस्तमैथुन करनेवाला।

मुश्तबहा—वि० [अ० मुश्तब्ह] जिसमें किसी प्रकार का शुबहा हो। संदेह के योग्य संदिग्ध। संदेह युक्त।

मुश्तरका—वि० [अ० मुश्तरकह्] जिसमें कई आदमी शरीक हों। जिसमें और लोग भी संमिलित हों। जैसे, मुश्तरका जायदाद।

मुश्तरी—संज्ञा पुं० [अ०] १. क्रेता। खरीददार। २. बृहस्पति ग्रह। उ०—सआदत को गोहर करा मुश्तरी। अधिक बद थे बाजार के जोहरी।—दक्खिनी०, पृ० १३८।

मुश्तहिर—वि० [अ०] जिसका इश्तहार दिया गया हो। जो प्रसिद्ध किया गया हो।

मुश्ताक—वि० [अ० मुश्ताक़] १. इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। २. प्रेमी। आशिक। उ०—पाजेब की भनकार के मुश्ताक हैं हम लोग। क्यों पर्दानशीं पैर हिलाया नहीं जाता? —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२।

मुषⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मुख] आनन। दे० 'मुख'। उ०—देखन दै मेरी बैरन पलकैं। नंदनंदन मुष तें आलि बीच परत मानों बज्र की सलकैं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५२।

मुषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मूषक'।

मुषल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूसल। २. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

मुषली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तालमूलिका। २. छिपकली।

मुषली[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुषलिन्] बलराम।

मुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण आदि गलाने का पात्र या घरिया। मूषा (को०)।

मुषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुराने, मूसने, नष्ट करने या हटा देने की क्रिया या भाव (को०)।

मुषित—वि० [सं०] १. चुराया हुआ। मूसा हुआ। २. ठगा हुआ। वंचित।

यौ०—**मुषितचेता** = बेसुध। चेतनाहीन। **मुषितत्रप** = लज्जारहित। निर्लज्ज। **मुषितस्मृति** = वह जिसकी स्मरण शक्ति समाप्त हो गई हो।

मुषीवन्—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

मुषुरⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुखर] गूँजने का शब्द। गुंजार। उ०—हेम जलज कल कलिन मध्य जनु मधुकर मुषुर सोहाई।—तुलसी (शब्द०)।

मुष्क[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंडकोष। २. मोखा नाम का वृक्ष। ३. चोर। ४. ढेर। राशि।

मुष्क[2]—वि० मांसल।

मुष्कक—संज्ञा पुं० [सं०] मोखा नाम का वृक्ष।

मुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंडकोष। २. पुरुष की मूत्रेंद्रिय। ३. वह जिसका अंडकोष बड़ा हो (को०)।

मुष्कशून्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके अंडकोष निकाल लिए गए हों। बधिया। २. वह जो इस क्रिया के उपरांत अंतःपुर में काम करने के लिये नियुक्त हो।

मुष्कशोथ, मुष्कशोफ—संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोष की सूजन।

मुष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोरी। २. चोरी की संपत्ति। चोरी का धन (को०)।

मुष्ट[2]—वि० मूसा या चुराया हुआ। मुषित (को०)।

मुष्टिंधय—संज्ञा पुं० [सं० मुष्टिन्धय] शिशु। बालक। बच्चा।

मुष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुट्ठी। २. मुक्का। घूँसा। उ०—तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक प्राचीन परिमाण जो किसी के मत से ३ तोले का और किसी के मत से ८ तोले का होता था। ४. चोरी। ५. दुर्भिक्ष। अकाल। ६. ऋषि नामक ओषधि। ७. मोरवा नामक वृक्ष। ८. राज्य का एक नाम। ९. कंस के दरबार का एक मल्ल। मुष्टिक। उ०—कह्यो चाणूर मुष्टि सब मिलिकै जानत हौ सब जी के।—सूर (शब्द०)। १०. छुरे, तलवार आदि की मूँठ। बेंट।

पर्या०—आस्र। चतुर्थिका। प्रकुंच। षोड़शी। बिल्व।

मुष्टि[2]—वि० [सं० मष्ट] चुप। मौन। उ०—संत मिलै कछु कहिए कहिए। मिलै असंत मुष्टि करि रहिए।—कबीर ग्रं०, पृ० १०९।

मुष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कंस के पहलवानों में से एक जिसे बलदेव जी ने मारा था। उ०—तह नृप सुत मल्ल हैं शल तोशल चानूर। मुष्टिक कूट सु पाँच ये समर सूर भरपूर।—गोपाल (शब्द०)। २. मुक्का। घूँसा। उ०—एक बार हनि मुष्टिक मारा। गिरा अवनि करि घोर चिकारा।—विश्राम (शब्द०)। ३. चार अंगुल की नाप। उ०—षट तिल यव त्रै अंगुल होइ। चतुरांगुल कर मुष्टिक सोई।—विश्राम (शब्द०)। ४. मुट्ठी। ५. सुनार। ६. तांत्रिकों के अनुसार एक उपकरण जो बलिदान के योग्य होता है।

यौ०—**मुष्टिकघ्न** = (१) विष्णु का एक नाम। (२) बलराम। **मुष्टिकस्वस्तिक** = नृत्य के समय हाथों की एक विशेष मुद्रा।

मुष्टिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुट्ठी करना या बाँधना (को०)।

मुष्टिकांतक—संज्ञा पुं० [सं० मुष्टिकान्तक] मुष्टिक नामक मल्ल को मारनेवाले, बलदेव।

मुष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्का। घूँसा। उ०—वृक्ष पाषाण

को जब उहाँ नाश भयो मुष्टिका युद्ध दोऊ प्रचारी ।—सूर (शब्द०) । २. मुट्ठी ।

मुष्टिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष का मध्य भाग जो मुट्ठी में पकड़ा जाता है [को०] ।

मुष्टिद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार द्यूत जिसमें मुट्ठी के भीतर की वस्तु का नाम वा उसकी सम विषम संख्या पूछी जाती है ।

मुष्टिपात—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्केबाजी । घूँसेबाजी ।

मुष्टिबंध—संज्ञा पुं० [सं० मुष्टिबन्ध] मुट्ठी बाँधना या मुट्ठी में करना [को०] ।

मुष्टिमेय—वि० [सं०] १. मुट्ठी के बराबर । मुट्ठी भर । २. थोड़ा ।

मुष्टियुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जिसमें केवल मुक्कों से प्रहार किया जाय । घूँसेबाजी ।

मुष्टियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. हठयोग की कुछ क्रियाएँ जो शरीर की रक्षा करने, बल बढ़ाने और रोग दूर करनेवाली मानी जाती हैं । २. किसी बात का कोई छोटा और सहज उपाय ।

मुष्टीमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] परस्पर मुक्का मुक्की । घूँसेबाजी [को०] ।

मुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] सरसों ।

मुसंडा†—वि० [हिं० मुस्टंड या मुस्टंडा] धिंगरा । ठलुआ । जो बिना काम किए हुए बैठे बैठे खाय । उ०—यह मुटमरदी है कि अंधा माँगे, औ आँखोंवाले मुसंडे बैठे खाएँ ।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६६ ।

मुसंबी—संज्ञा पुं० [पुर्त० मोजांबिक] मुसंबी या मुसम्मी नामक एक फल । उ०—ये सब मुसंबियाँ और संतरे केवल तुम्हारे ही लिये मैं लाई हूँ ।—जिप्सी, पृ० ४४२ ।

विशेष—पुर्तगाल के मोजांबिक नामक स्थान से आने के कारण इस फल को, जो एक प्रकार का रसदार मीठा नीबू है, यहाँ उसी के वजन पर मुसंबी या मुसम्मी कहा जाने लगा ।

मुसकⓤ[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] भुजा । बाँह । मुश्क । उ०—बेंदी जराव लिलाट दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई । ब्रह्म भनै रिपु जानि ग्रह्यो रबि की मुसकें जनु राहु चढ़ाई ।—अकबरी०, पृ० ३४६ ।

मुसक[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुश्क] दे० 'मुश्क' ।

मुसकनाⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकाना' । उ०—(क) मुसकत मुसकत स्याम सुहाए ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०८ । (ख) सुत के करम निरखि नँदरानी । मुसकी जनम सुफलता मानी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६ ।

मुसकनिⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुस्कराना] मुस्कराहट । उ०—(क) सकल सुगंध अंग भरि भोरी पिय निरतत मुसकनि मुखमोरी परिरंभन रसरोरी ।—हरिदास (शब्द०) । (ख) अटके नैन माधुरी मुसकनि अमृत बचन स्रवनन को भावत ।—सूर (शब्द०) ।

मुसकनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकान' । उ०—मन मोहन की तुतरी बोलन मुनि मन हरत सुहँस मुसकनियाँ ।—सूर (शब्द०) ।

मुसकराना—क्रि० अ० [सं० स्मय + कृ] ऐसी आकृति बनाना जिससे जान पड़े कि हँसना चाहते हैं । ऐसी कम हँसी जिसमें दाँत न निकले, न शब्द हो । बहुत ही मंद रूप से हँसना । होंठों में हँसना । मृदु हास । मंद हास ।

मुसकराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुसकराना + आहट (प्रत्य०)] मुसकराने की क्रिया या भाव । मधुर या बहुत थोड़ी हँसी । मंद हास ।

मुसका—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी जाली जो पशुओं, विशेषतः बैलों के मुँह पर इसलिये बाँध दी जाती है, जिसमें वे खलिहानों या खेतों में काम करते समय कुछ खा न सकें । जाला ।

मुसकान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' ।

मुसकाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकराना' ।

मुसकानि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' । उ०—कबि मतिराम मुख सुबरन रूप रहि, रूपखानि मुसकानि सोभा सरसाइ कै ।—मति० ग्रं०, पृ० २६१ ।

मुसकिराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकराना' ।

मुसकिराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' ।

मुसकुराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकराना' । उ०—आँखों पर एक जी लुभानेवाली झलक नाचने लगी, पहले सुडौल गोरा गोरा मुखड़ा देख पड़ा, फिर घुँघरारे बार, फिर बड़ी बड़ी आँखें, फिर मीठी मुसकिराहट, फिर ऊँचा चौड़ा माथा ।—ठेठ०, पृ० २६ ।

मुसकुराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' ।

मुसक्यान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' ।

मुसक्याना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकराना' ।

मुसक्यानिⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट' । उ०—ता दिन तैं मन ही मन मैं मतिराम पियै मुसक्यानि सुधा सी ।—मति० ग्रं०, पृ० ३४२ ।

मुसखोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूस (=चूहा) + खोरी (=खाना)] खेत में चूहों की अधिकता होना । मुसहरी ।

मुसजर—संज्ञा पुं० [अ० मुशज्जर] एक प्रकार का छपा कपड़ा । उ०—बादला दार्याई नौरंग साई जरकस काई झिलमिल है । ताफता कलंदर बाफताबंदर मुसजर सुंदर गिलमिल है ।—सूदन (शब्द०) ।

मुसटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूस (सं० मूषिका = चूहा) + टी (प्रत्य०)] चुहिया ।

मुसदी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मिठाई बनाने का साँचा ।

मुसद्दस—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह क्षेत्र जिसमें छह भुज हों । छह् पहलूवाला । २. एक प्रकार का पद्यबंध । उ०—उर्दू में 'हाली' का मुसद्दस बहुत प्रसिद्ध है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २८ ।

विशेष—मुसद्दस छह् मिसरों या तीन शेरों का होता है । इसमें पहले के चार मिसरों के तुक एक समान होते हैं और शेष अंतिम दो मिसरों के तुक अलग होते हैं ।

मुसद्दिका—वि० [अ० मुसद्दिक़ा] परताल किया हुआ । तसदीक किया हुआ । जाँचा हुआ ।

मुसना[1]—क्रि० अ० [सं० मूषण (=चुराना)] लूटा जाना। अपहृत होना। मूसा जाना। चुराया जाना। (धन आदि)।

मुहा०—**घर मुसना**=घर में चोरी होना।

मुसना[2]—क्रि० स० चोरी करना। मूसना। उ०—मुसए गेलिहे धन जागल परिजन लगहि कला ओक चोरा।—विद्यापति पृ० ६४।

मुसना⁽पु⁾†[3]—संज्ञा पुं० [हिं० मुस+ना (प्रत्य०)] मूसा। मूषक। उ०—कार्तिक गनपति दुइ चेगना। एक चढ़े मोर पर एक मुसना।—विद्यापति, पृ० ५७७।

मुसना†—वि० [सं० मूषण] चोरी करने या मूसनेवाला।

मुसन्ना—संज्ञा पुं० [अ०] १. किसी असल कागज की दूसरी नकल जो मिलान आदि के लिये रखी जाती है। २. रसीद आदि का आधा और दूसरा भाग जो रसीद देनेवाले के पास रह जाता है।

मुसन्निफ—संज्ञा पुं० [अ० मुसन्निफ़] [स्त्री० मुसन्निफा] पुस्तक बनानेवाला। ग्रंथकर्ता या रचयिता।

मुसफ्फी—वि० [अ० मुसफ्फ़ी] शोधन करनेवाला। शोधक [को०]।

मुसब्बर—संज्ञा पुं० [अ०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से सुखाया और जमाया हुआ घीकुवाँर का दूध या रस जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। एलुआ।

विशेष—इसका उपयोग अधिकतर रेचन के लिये या चोट आदि लगने पर मालिश और सेंक आदि करने में होता है। यह प्रायः जंजीबार, नेटाल तथा भूमध्यसागर के आसपास के प्रदेशों से आता है। वैद्यक में इसे चरपरा, शीतल, दस्तावर, पारे को शोधनेवाला तथा शूल, कफ, वात, कृमि और गुल्म को दूर करनेवाला माना है।

मुसमर—संज्ञा पुं० [हिं० मुस(=चूहा)+मारना] एक प्रकार की चिड़िया जो खेत में चूहों को पकड़कर खाती है।

मुसमरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० मूस+मारना] १. मुसमर चिड़िया। २. एक नीच जाति जो चूहे खाती है। मुसहर।

मुसमुंद⁽पु⁾[1]—वि० [देश०] ध्वस्त। नष्ट। बरबाद। उ०—पुरद्वार रुक्कि ठाढौ बली सबै दुग्ग मुसमुंद किय।—सूदन (शब्द०)।

मुसमुंद[2]—संज्ञा पुं० नाश। ध्वंस। बरबादी।

मुसमुंध⁽पु⁾†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मुसमुंद'। उ—दिस धुंधरी चक धुंधरी मुसमुंधरी सु वसुंधरी।—सूदन (शब्द०)।

मुसम्मन—वि० [अ०] १. अठपहल। अष्टभुज। २. मोटाताजा। चर्बीदार। स्थूल [को०]।

यौ०—**मुसम्मन बुर्ज**=अठकोन बुर्ज।

मुसम्मर—वि० [अ०] कील या काँटे से जड़ा हुआ। कीलित [को०]।

मुसम्मा—वि० [अ०] [स्त्री० मुसम्मात] जिसका नाम रखा गया हो। नामक। नामी। नामधारी।

मुसम्मात[1]—वि० [अ० मुसम्मा का स्त्री० रूप] मुसम्मा शब्द का स्त्रीलिंग रूप। नाम्नी। नामधारिणी।

मुसम्मात[2]—संज्ञा स्त्री० स्त्री। औरत।

मुसरा†—संज्ञा पुं० [हिं० मूसल] पेड़ की वह जड़ जिसमें एक ही मोटा पिंड धरती के अंदर दूर तक चला जाय और इधर उधर शाखाएँ न हों। जैसे, मूली, सेमल आदि की जड़। 'झगरा' का उलटा।

मुसरिया†[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] काँच की चूड़ियाँ बनाने का साँचा।

मुसरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुस] चूहे का बच्चा। मुसटी।

मुसरिया[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुसर+इया (प्रत्य०)] दे० 'मुसरा'।

मुसल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'मूसल'। ⁽पु⁾२. वह जो मूसल की तरह जड़ हो। मूर्ख। जड़। अज्ञ।

मुसलधार—क्रि० वि० [सं० मुसल+धार] दे० 'मूसलधार'। उ०—भले नाथ नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

मुसलमान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० मुसलमानी] वह जो मुहम्मद साहब के चलाए हुए संप्रदाय में हो। मुहम्मद साहब का पूर्णतः अनुयायी और इस्लाम धर्म को माननेवाला। मुहम्मदी। उ०—हिंदू मैं क्या और है मुसललान मैं और। साहब सबका एक है व्याप रहा सब ठौर।—रसनिधि (शब्द०)।

मुसलमानी[1]—वि० [अ०] मुसलमान संबंधी। मुसलमान का। जैसे, मुसलमानी मजहब।

मुसलमानी[2]—संज्ञा स्त्री० मुसलमानों की एक रस्म जिसमें छोटे बालक की इंद्री पर का चमड़ा काट डाला जाता है। बिना यह रस्म हुए वह पक्का मुसलमान नहीं समझा जाता है। सुन्नत।

मुसलाधार—क्रि० वि० [हिं० मुसलधार] दे० 'मुसलधार'।

मुसलामुसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] परस्पर मूसल का प्रहार। मूसलों की लड़ाई [को०]।

मुसलायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] जिनका आयुध मूसल है—बलराम [को०]।

मुसलिम—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमान। मुहम्मदी।

यौ०—**मुसलिम लीग**=संप्रदायवादी मुसलमानों की एक संस्था। **मुसलिम लीगी**=वह जो मुसलिम लीग का अनुयायी हो।

मुसली[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुसलिन्] दे० १. 'मुशली'। २. शिव का एक नाम (को०)।

मुसली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मुषली, मुसली] १. हल्दी की जाति का एक पौधा।

विशेष—इसकी जड़ें औषध के काम में आती हैं और बहुत पुष्टिकारक मानी जाती हैं। यह पौधा सीड़ की जमीन में उगता है। बिलासपुर जिले में, विशेषतः अमरकंटक पहाड़ पर, यह बहुत होता है।

मुसलीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोधा। छिपकिली [को०]।

मुसलीय—वि० [सं०] दे० 'मुसल्य'।

मुसल्य—वि० [सं०] मूसल के प्रहार से मारने के योग्य। मूसल द्वारा बध्य [को०]।

मुसल्लम[1]—वि० [फ़ा०] जिसके खंड न किए गए हों। साबूत। पूरा। अखंड। जैसे,—यह गाँव मुसल्लम उन्हीं का है। २. माना हुआ। निर्विवाद (को०)।

मुसल्लम[२]—संज्ञा पुं० [अ० मुसल्लिम] दे० 'मुसलमान'। उ०—हिंदू एकादशि चौबिस रोजा मुसल्लम तीस बनाएँ।—कबीर (शब्द०)।

मुसल्लस—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसमें तीन कोने वा त्रिकोण हों। २. उर्दू का एक छंद जिसमें तीन मिसरे समान तुक या वजन के होते हैं। तीन पदों का छंद। त्रिपदी। जैसे,—या तो अफसर मेरा शाहाना बनाया होता। या मेरा ताज गदायाना बनाया होता। वर्ना ऐसा जो बनाया न बनाया होता।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७।

मुसल्लह—वि० [अ०] हथियारबंद। सशस्त्र। शस्त्रसज्जित। उ०—हमारे पास भी राइफलों से मुसल्लह गारदें, फौज, तोपखाने और हवाई जहाज हैं।—फूलो०, पृ० ५०।

मुसल्ला[१]—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० अल्पा० मुसल्ली] १. नमाज पढ़ने की दरी या चटाई। २. ईदगाह। नमाज पढ़ने का स्थान (को०)। ३. एक प्रकार का बरतन जो बड़े दिए के आकार का होता है। यह बीच में उभरा हुआ होता है। इसमें मुहर्रम में चढ़ौआ चढ़ाया जाता है।

मुसल्ला(पु)[२]—संज्ञा पुं० दे० 'मुसलमान'। उदा०—जिस दरगाह मुसल्ला बैठा डारै चादर काजी।—चरण० बानी० पृ० १५८।

मुसवाना—क्रि० स० [हिं० मूसना का प्रेर० रूप] १. लुटवाना। २. चोरी कराना।

मुसव्वर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'मुसव्विर'। उ०—किसी हिंदुस्तानी मुसव्वर की बनाई प्रतिकृति है।—कंकाल, पृ० १२४।

मुसव्विर—संज्ञा पुं० [अ०] १. चित्रकार। तसवीर खींचनेवाला। २. बेलबूटे बनानेवाला।

मुसव्विरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चित्रकारी। २. नक्काशी। बेलबूटे का काम।

मुसहर—संज्ञा पुं० [हिं० मूस (= चूहा) + हर (प्रत्य०)] एक प्रकार की जंगली जाति।

विशेष—इस जाति का व्यवसाय जंगली जड़ी बूटी आदि बेचना है। कहते हैं, इस जाति के लोग प्रायः चूहे तक मारकर खाते हैं, इसी से मुसहर कहलाते हैं। आजकल यह जाति गाँवों और नगरों के आस पास बस गई है और दोने, पत्तल बनाने तथा पालकी आदि उठाने का काम करती है।

मुसहरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुसहर + इन (प्रत्य०)] मुसहर जाति की स्त्री।

मुसहिल[१]—वि० [अ०] (वह दवा) जिससे दस्त आवे। दस्तावर। रेचक।

विशेष—ऐसी दवा प्रायः जुलाब से एक दिन पहले खाई जाती है।

मुसहिल[२]—संज्ञा पुं० जुलाब। रेचन।

मुसाफिर—संज्ञा पुं० [अ० मुसाफ़िर] यात्री। राहगीर। बटोही। पथिक।

मुसाफिरखाना—संज्ञा पुं० [अ० मुसाफ़िर + फ़ा० खाना] १. यात्रियों के, विशेषतः रेल के यात्रियों के ठहरने के लिये बना हुआ स्थान। २. धर्मशाला। सराय।

मुसाफिरत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुसाफ़िरत] १. मुसाफिर होने की दशा। २. मुसाफिरी। प्रवास।

मुसाफिरी[१]—संज्ञा स्त्री० [अ० मुसफ़िरी] १. मुसाफिर होने की दशा। २. यात्रा। प्रवास।

मुसाफिरी[२]—वि० मुसाफिर का। मुसाफिर जैसा। उ०—कब पहना मुसाफिरी बाना ? हमने न अभी तक यह जाना।—अपलक, पृ० ५६।

मुसाल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मातृष्वसा + आलय ?] १. मौसियाना। मौसी का आलय। २. माँ का आलय। ननिहाल। उ०—बरष अट्ठ प्रथिराज गयउ दिल्ली मुसाल थह। राज करे अनगेस सेव मरुधरा करै सह।—पृ० रा०, ७।२५।

मुसाहब—संज्ञा पुं० [अ० मुसाहब] वह जो किसी धनवान या राजा आदि के समीप उसका मन बहलाने अथवा इस प्रकार के और कामों के लिये रहता है। पार्श्ववर्ती। सहवासी। उ०—अकबर शाह के मुसाहब, फारसी और संस्कृत भाषा के महाकवि थे।—अकबरी०, पृ० ४९।

मुसाहबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसाहब का पद या काम।

मुसाहबी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुसाहब + ई (प्रत्य०)] मुसाहब का पद या काम।

मुसाहिब—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'मुसाहब'।

मुसिकाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकाना'। उ०—इहि सुनि नागरि नवल नवेली मुसिकी नैन दुराइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८९।

मुसीका†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मुसका'।

मुसीबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तकलीफ। कष्ट। २. विपत्ति। संकट।

क्रि० प्र०—उठाना।—झेलना।—भोगना।—सहना।

मुहा०—मुसीबत का मारा = विपद्ग्रस्त। अभागा। मुसीबत के दिन = दुर्दिन। कष्ट का समय।

मुसुक‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मुश्क'[२]। उ०—नरकी बाँधै मुसुक बाँधते गउ और बछरा।—पलटू०, भा० १, पृ० ३७।

मुसुकाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'मुसकराना'। उ०—पान खात मुसुकात मृदु को यह केशवदास।—केशव (शब्द०)।

मुसुकानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकान'। उ०—पियत रहत पिय नैन यह, तेरी मृदु मुसुकानि।—मति० ग्रं०, पृ० ४०४।

मुसुकाहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट'।

मुसौवर—संज्ञा पुं० [अ० मुसव्वर] मुसव्विर। चित्रकार। उ०—

मुसौवर खींच ले तसवीर गर तुझमें रसाई हो ।—श्यामा०, पृ० ७३ ।

मुस्कⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० **मुश्क**] कस्तूरी । दे० 'मुश्क'। उ०—है न जटा, ए बार विराजत नील न ग्रीव में मुस्क लगाए। सीस न चंद कला ए 'गुविंद' सु पुस्पप्रभा बिलसे सुखदाए। —पोद्दार अभि०ग्रं०, पृ० ४३५ ।

मुस्किल†—वि० [अ० मुश्किल] दे० 'मुश्किल'। उ०—पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल । काम दहन मन वसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ।—संतवाणी०, पृ० ४६ ।

मुस्की¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट'।

मुस्की²—वि० [फ़ा० **मुश्की**] दे० 'मुश्की'।

मुस्क्यानⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मुसकराहट'।

मुस्टंडा—वि० [सं० पुष्ट] १. मोटा ताजा । हृष्टपुष्ट । पुष्ट भुजदंडवाला । २. बदमाश । गुंडा । लुच्चा । शोहदा ।

मुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मुस्ता**] नागरमोथा । मोथा नाम की घास ।

मुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **मुस्तका**] नागरमोथा । मोथा ।

यौ०—**मुस्तगंधा** । मुस्तकगंधा = नागरमोथा । उ०—मुस्तकगंधा खुदी मृत्तिका है इधर, बने आर्द्र पदचिह्न, गए शूकर जिधर। —साकेत, पृ० १३७ ।

मुस्तकिल—वि० [अ० **मुस्तक़िल**] १. अटल । स्थिर । २. पक्का । मजबूत । दृढ़ । ३. स्थायी रूप से किसी पद वा काम पर नियुक्त (को०) ।

यौ०—**मुस्तकिल मिजाज** = स्थिरचित्त । दृढ़निश्चयी । **मुस्तकिल हकदार** = संपत्ति, विशेषतया भूसंपत्ति का स्थायी अधिकारी ।

मुस्तकीम—वि० [अ० **मुस्तक़ीम**] सरल । ऋजु । ठीक । सीधा । उ०—यकीन जप मैं वई बंदा हूँ कदीम । करनहार हूँ काम फिर, मुस्तकीम ।—दक्खिनी०, पृ० ६१ ।

मुस्तगीस—संज्ञा पुं० [अ० **मुस्तग़ीस**] [स्त्री० **मुस्तग़ीसा**] १. वह जो किसी प्रकार का इस्तगासा या अभियोग उपस्थित करे। फरियादी । २. मुद्दई । दावेदार ।

मुस्ततील—संज्ञा पुं० [अ०] आयत समकोण चतुर्भुज (को०) ।

मुस्तदई—वि० [अ०] आवेदक । प्रार्थी (को०) ।

मुस्तनद—वि० [अ०] जो सनद के तौर पर माना जाय । विश्वास करने के योग्य । प्रामाणिक ।

मुस्तफ़ा—वि० [अ० **मुस्तफ़ा**] १. पवित्र । पुनीत । निर्मल । जिसमें मनुष्यों का कोई दुर्गुण न हो । २. चुना हुआ । श्रेष्ठ (को०) ।

मुस्तफीद—वि० [अ० **मुस्तफ़ीद**] फायदा उठाने या चाहनेवाला ।

मुस्तशना—वि० [अ० **मुस्तसना**] १. अलग किया हुआ । छाँटा हुआ । भिन्न । २. जो अपवाद स्वरूप हो । ३. उससे मुक्त किया हुआ, जिसका पालन औरों के लिये आवश्यक हो । बरी किया हुआ ।

मुस्तहक़—वि० [अ० **मुस्तहक़**] १. हकदार । अधिकारी । २. योग्य । पात्र ।

मुस्तहकिम—वि० [अ० **मुस्तहक्क़ीन**] योग्य । ठीक । वाजिब । उ०—कम्फहम आदमी की राय मुस्तहकिम नहीं होती ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१ ।

मुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास । मोथा ।

मुस्ताद—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली सूअर (जो मोथे की जड़ खाता है) ।

मुस्ताभ—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा (को०) ।

मुस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्का । घूँसा । मुट्ठी (को०) ।

मुस्तैद—वि० [अ० **मुस्तअद, मुस्तइद**] १. जो किसी कार्य के लिये तत्पर हो । संनद्ध । २. चुस्त । चालाक । तेज ।

मुस्तैदी—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुस्तअद + ई** (प्रत्य०) **मुस्तइद्दी**] १. सन्नद्धता । तत्परता । २. फुरती । उत्साह ।

मुस्तौजिर—संज्ञा पुं० [अ०] ठेके पर काम करनेवाला । ठेकेदार (को०) ।

मुस्तौफी—संज्ञा पुं० [अ० **मुस्तौफ़ी**] वह पदाधिकारी जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के हिसाब की जाँच पड़ताल करे । आय-व्यय-परीक्षक । उ०—वासिल बाकी स्याहा मुजलिम सब अधर्म की बाकी । चित्रगुप्त होते मुस्तौफी शरण गहूँ मैं काकी । —सूर (शब्द०) ।

मुस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूसल । २. अश्रु । आँसू (को०) ।

मुहंगा‡—वि० [सं० **महार्घ**; प्रा० **महग्घ**] दे० 'महँगा' । उ०—घरि बइठा ही आभरण, मोल मुहंगा लेसि ।—ढोला०, दू० २२५ ।

मुह—संज्ञा पुं० [**सं० मुख**] दे० 'मुँह' । उ०—(क) पहिल नेवाला खाई जाम मुह भीतर बनही । खण चूप मै रहइ गारी गाडु दे तबही ।—कीर्ति०, पृ० ४२ । (ख) मुह में खाँड़ पेट में विष ऐसे इस पुरुवंशी के फंदे में फँसकर अब मैं निर्लज्ज कहलाई सो ठीक है ।—शकुंतला, पृ० ६१ ।

मुहकम—वि० [अ०] दृढ़ । पक्का । उ०—सूर पाप को गढ़ दृढ़ कीन्हों मुहकम लाइ किंवारे ।—सूर (शब्द०) ।

मुहकमा—संज्ञा पुं० [अ०] सरिश्ता । विभाग । सीगा ।

मुहज्जब—वि० [अ० **मुहज़्ज़ब**] संस्कृत । शिष्ट । नागरिक । शिक्षित । उ०—हिंदुस्तानी जबानों में सबसे ज्यादा शाइस्ता और मुहज्जब जबान ग्वालियरी है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७ ।

मुहतमिम—संज्ञा पुं० [अ०] बंदोबस्त करनेवाला । इंतजाम करनेवाला । निगरानी करनेवाला । प्रबंधक । व्यवस्थापक ।

मुहतरका—संज्ञा पुं० [?] वह कर जो व्यापार, वाणिज्य आदि पर लगाया जाय ।

मुहतरम—वि० [अ० **मुहतरम**] मान्य । प्रतिष्ठित । श्रेष्ठ (को०) ।

मुहताज—वि० [अ० **मुहताज**] १. जिसे किसी ऐसे पदार्थ की बहुत अधिक आवश्यकता हो जो उसके पास बिलकुल न हो । जैसे, दाने दाने को मुहताज । उ०—कौड़ी कौड़ी को करूँ, मैं सबको मुहताज ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७३ । २. दरिद्र । गरीब । कंगाल । निर्धन ।

यौ०—मुहताजखाना = अनाथालय । अन्नसत्र । गरीबों को भोजन आदि देने की जगह ।

३. निर्भर । आश्रित । ४. चाहनेवाला । आकांक्षी । जैसे,—हम तुम्हारे रुपए के मुहताज नहीं ।

मुहताजी—संज्ञा स्त्री० [अ० मुहताज + ई (प्रत्य०)] १. मुहताज होने की क्रिया या भाव । दरिद्रता । गरीबी । ३. परमुखापेक्षी होने का भाव । परवशता ।

मुहद्दिस—संज्ञा पुं० [अ० मुहद्दिस] हदीस (पैगंबर का कथन) का ज्ञाता या जाननेवाला [को०] ।

मुहबनो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फल जो नारंगी की तरह का होता है ।

मुहब्बत—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रीति । प्रेम । प्यार । चाह ।

मुहा०—मुहब्बत उछलना = प्रेम का आवेश होना ।

२. दोस्ती । मित्रता । ३. इश्क । लगन । लौ ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

यौ०—मुहब्बतनामा = (१) प्रेमपत्र । प्रेमी या प्रेमिका का पत्र । (२) मित्र या प्रियजन का पत्र ।

मुहम(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'मुहिम' । उ०—जाय नवोढा सासरे, आँसू नाँख उसास । मावड़िया जावै मुहम, इम बिध हुवे उदास ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६ ।

मुहम्मद—संज्ञा पुं० [अ०] अरब के एक प्रसिद्ध धर्माचार्य जिन्होंने इस्लाम या मुसलमानी धर्म का प्रवर्तन किया था ।

विशेष—इनका जन्म मक्के में सन् ५७० ई० के लगभग और मृत्यु मदीने में सन् ६३२ ई० में हुई थी । इनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम अमीना था । इन्होंने अपने जीवन के आरंभिक काल में ही यहूदियों और ईसाइयों की बहुत सी धार्मिक बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । उसी समय से ये स्वतंत्र रूप से अपना एक धर्म चलाने की चिंता में थे और उसी उद्देश्य से लोगों को कुछ उपदेश भी देने लगे थे । प्रायः ४० वर्ष की अवस्था में इन्होंने यह प्रसिद्ध किया था कि ईश्वर ने मुझे इस संसार में अपना पैगंबर (दूत) बनाकर धर्मप्रचार करने के लिये भेजा है । इसके उपरांत इन्होंने कुरान की रचना की, और उसके संबंध में यह प्रसिद्ध किया कि इसकी सब बातें खुदा अपने फरिश्ते जिब्राईल के द्वारा समय समय पर मुझसे कहलाता रहा है । धीरे धीरे कुछ लोग इनके अनुयायी हो गए । पर बहुत से लोग इनके विरोधी भी थे, जिनसे समय समय पर इन्हें युद्ध करना पड़ता था । यह भी प्रसिद्ध है कि ये एक बार सदेह स्वर्ग गए थे और वहाँ ईश्वर से मिले थे । अरबवालों ने कई बार इनके प्राण लेने की चेष्टा की थी, पर ये किसी न किसी प्रकार बराबर बचते ही गए । ये मूर्तिपूजा के कट्टर बिरोधी और एकेश्वरवाद के प्रचारक थे । अपने आपको ये पैगंबर या ईश्वरीय दूत बतलाते थे । इन्होंने कई विवाह भी किए थे । ये जैसे उदार और कृपालु थे वैसे ही कट्टर और निर्दय भी थे ।

मुहम्मदी—संज्ञा पुं० [अ०] मुहम्मद साहब का अनुयायी । मुसलमान । उ०—इस नवीन विरुद्ध धर्म के अनुयायी होकर कुछ दिनों में उसी दल के परगणित हो कट्टर मुहम्मदी हो गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४० ।

मुहय्या—वि० [अ०] दे० 'मुहैया' ।

मुहर[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोह] [फ़ा० मोहर] दे० 'मोहर' । उ०—तुम कहँ दीन्ह जक्त कौ भारा । तुम्हरी मुहर चलै संसारा ।—कबीर सा०, पृ० १०११ ।

यौ०—मुहरकन = मुहर खोदनेवाला । मुहरबरदार = मुहर रखनेवाला अधिकारी ।

मुहा०—मुहर करना । मुहर लगाना = प्रमाणित कर देना ।

मुहर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुखर, प्रा० मुहर] वाचाल । मुखर । बकवादी । उ०—लोहाना तोंअर अभंग मुहर सब्द सामंत ।—पृ० रा०, ४।१६ ।

मुहर(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० मयूर, हिं० मोर] मोर । उ०—कजा सूँ मुहर यक ऊपर आय कर । बहिश्त के कँगूरे ऊपर जाय कर ।—दक्खिनी०, पृ० ३२८ ।

मुहर मुहर(पु)—अव्य० [सं० मुहुर्मुहुः] बारंबार । बार बार । उ०—निकट निजल घट तजै मुहर मुहर पति दरसी ।—पृ० रा०, ६१।३७० ।

मुहरा[1]—संज्ञा पुं० हिं० मुँह + रा (प्रत्य०)] १. सामने का भाग । आगा । सिरा । सामना ।

मुहा०—मुहरा लेना = मुकाबिला करना । सामने होकर लड़ना ।

२. निशाना । ३. मुँह की आकृति ।

यौ०—चेहरा मुहरा ।

४. शतरंज की कोई गोटी । उ०—घोड़ा दै फरजी बदलावा । जेहि मुहरा रुख चहै सो पावा ।—जायसी (शब्द०) । ५. पच्ची घोटने का शीशा । ६. [स्त्री० मुहरी] घोड़े अथवा सवारी के पशुओं का एक साज जो उसके मुँह पर पहनाया जाता है । उ०—(क) अनुपम सुछबि मुहरो लगाम ललाम दुमची जोव की ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) ऊँमर साल्ह उतारियउ मन खोटइ मनुहारि । पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि ।—ढोला०, दू० ६२६ । ७. शतरंज की गोटियाँ ।

मुहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोहरी] १. दे० 'मोरी' । २. दे० 'मोहरी' ।

मुहर्रम—संज्ञा पुं० [अ०] अरबों वर्ष का पहला महीना । इसी महीने में इमाम हुसेन शहीद हुए थे । मुसलमानों में यह महीना शोक का माना जाता है ।

मुहा०—मुहर्रमी सूरत = रोनी सूरत । मनहूस सूरत । मुहर्रम की पैदाइश होना = मनहूस होना । सदा दुःखी और चिंतित रहना ।

मुहर्रमी—वि० [अ० मुहर्रम + ई (प्रत्य०)] १. मुहर्रम संबंधी । मुहर्रम का । २. शोकव्यंजक । ३. मनहूस । उ०—जिस किसी की प्रकृति में शोक या विषाद ओतप्रोत हो जायगा......तो वह अनेक व्यक्तियों या वस्तुओं से खिन्नता प्राप्त किया करेगा

और रोना, मनहूस या मुहर्रमी कहलाएगा।—रस०, पृ० १८३।

यौ०—मुहर्रमी सूरत = रोनी सूरत। मनहूस सूरत।

मुहर्रिक—वि० [अ०] १. प्रेषक। चालक। २. प्रस्तावक। ३. उत्तेजक। उत्तेजना देनेवाला [को०]।

मुहर्रिर—संज्ञा पुं० [अ०] लेखक। मुंशी। लिपिक क्लर्क। उ०—पाँच मुहर्रिर साथ करि दीने तिनकी बड़ी विपरीत। जिम्मे उनके, माँगै मोंते यह तो बड़ी अनीत।—सूर (शब्द०)।

मुहर्रिरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुहर्रिर का काम। लिखने का काम।

मुहलत—संज्ञा स्त्री० [अ० मोहलत] 'मोहलत'।

मुहलयⓟ—संज्ञा पुं० [देश०] मुहाल। भ्रमर। उ०—कुवलय गज मुहलय मुदित बिंदित बली दरबार।—पृ० रा०, २।४६२।

मुहलीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुसल का स्त्री०] दे० 'मूसल'। उ०—कबीर चावल कारने तुख को को मुहली लाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५२।

मुहलैठी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुयष्टि] दे० 'मुलेठी'।

मुहल्ला—संज्ञा पुं० [अ० मुहल्लह्] दे० 'महल्ला'।

मुहसिन—वि० [अ०] १. एहसान करनेवाला। अनुग्रह करनेवाला। २. सहायक। मददगार।

यौ०—**मुहसिन कुश** = एहसान फरामोश। कृतघ्न। **मुहसिनकुशी** = कृतघ्नता।

मुहसिल[१]—वि० [अ० मुहासिल] तहसील वसूल करनेवाला। उगाहनेवाला।

मुहसिल[२]—संज्ञा पुं० प्यादा। फेरीदार। उ०—मैं न दियो, मन उन लियो, मुहसिल मन पठाय।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहाफिज—वि० [अ० मुहाफ़िज़] हिफाजत करनेवाला। संरक्षक। रखवाला।

मुहाफिजखाना—संज्ञा पुं० [अ० मुहाफ़िज़ + फ़ा० खानह्] कचहरी में वह स्थान जहाँ सब प्रकार की मिसलें आदि रहती हैं।

मुहाफिज दफ्तर—संज्ञा पुं० [अ० मुहाफ़िज़ + दफ्तर] कचहरी का वह अधिकारी जिसके निरीक्षण में मुहाफिजखाना रहता है। (अं० रेकर्ड कीपर)।

मुहाका—वि० [सं० मोहक ? या देश०] मोहित करनेवाला। ठग। लुटेरा। उ०—अठसठ हाट इसे गढ़ माहीं। विचि पंच मुहाके लूट लै जाहीं।—प्राण०, पृ० ३०।

मुहाचहींⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० मुह + चाहना] मुखदर्शन। मुख का देखना। दर्शन। उ०—जान प्यारी सुधि हूँ अपुनपौ बिसरि जाय। माधुरी निधान तेरी नैसिक मुहाचहीं।—घनानंद, पृ० ३७४।

मुहामुहीं—क्रि० वि० [हिं० मुँह] आमने सामने। परस्पर एक दूसरे से। उ०—तब विधवा के गर्भ की वार्ता जहाँ जहाँ लोग मुहाँमुहीं करने लगे।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४७५।

मुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुह + आर (प्रत्य०)] १. ऊँट की नकेल। मुहरी। २. मकान का दरवाजा।

मुहारबा—संज्ञा पुं० [अ० मुहारबह्] युद्ध। परस्पर संग्राम। लड़ाई [को०]।

मुहालⓟ—संज्ञा स्त्री० [देश०] भ्रमर। मधुमक्खी। दे० 'मुहलय'। उ०—महु तजि चलत मुहाल अन्य तरु साष लगन कहुँ। बद्दल बिसद बिसाल चलत बसि पवन गगन महुँ।—पृ० रा०, ७।२३।

मुहाल[१]—वि० [अ०] १. असंभव। नामुमकिन। २. कठिन। दुष्कर। दुःसाध्य। उ०—है मुहाल उनका दाम में आना। दिल है उन सब्ज बुताँ का जर की तरफ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २३।

मुहाल[२]—संज्ञा पुं० १. दे० 'महाल'। २. दे० 'महल्ला'।

मुहाला—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह + आला (प्रत्य०)] पीतल का वह बंद या चूड़ी जो हाथी के दाँत में शोभा के लिये चढ़ाई जाती है। बंगर। बंगड़। उ०—बारन वदन सदंत बिराजहिं हाटक बँधे मुहाले। मनहुँ द्वैज शशि श्याम मेघ मधि उभय नोक छबि माले।—रघुराज (शब्द०)।

मुहावरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] परस्पर वार्ता। आपस में बातचीत करना [को०]।

मुहावरा—संज्ञा पुं० [अ० मुहावरह्] १. लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली या लिखी जानेवाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो। रूढ़ लाक्षणिक प्रयोग। किसी एक भाषा में दिखाई पड़नेवाली असाधारण शब्दयोजना अथवा प्रयोग। जैसे,—'लाठी खाना' मुहावरा है; क्योंकि इसमें 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ में नहीं आया है, लाक्षणिक अर्थ में आया है। लाठी खाने की चीज नहीं है, पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ 'लाठी का प्रहार सहना' लिया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलाना' 'घर करना', 'चमड़ा खींचना', 'चिकनी चुपड़ी बातें' आदि मुहावरे के अंतर्गत हैं। कुछ लोग इसे 'रोजमर्रा' या 'बोलचाल' भी कहते हैं। २. अभ्यास। आदत। जैसे,—आजकल मेरा लिखने का मुहावरा छूट गया है।

क्रि० प्र०—छूटना।—डालना।—पड़ना।

मुहासबा—संज्ञा पुं० [अ० मुहासबह्] दे० 'मुहासिबा' उ०—दिल को करहु फराख फकीरा रहु मुहासबे पाक।—पलटू०, भा० ३, पृ० १०।

मुहासरा—संज्ञा पुं० [अ० मुहासरह्] दे० 'मुहासिरा' [को०]।

मुहासिब—संज्ञा पुं० [अ०] १. हिसाब जाननेवाला। गणितज्ञ। २. पड़ताल करनेवाला। आँकनेवाला। हिसाब लेनेवाला। उ०—सूर आप गुजरान मुहासिब लै जबाब पहुँचावै।—सूर (शब्द०)।

मुहासिबा—संज्ञा पुं० [अ०] १. हिसाब। लेखा। उ०—सूरदास को यह मुहासिबा दस्तक कीजै माफ —सूर (शब्द०)। २. पूछताछ।

मुहासिरा—संज्ञा पुं० [अ०] १. युद्ध आदि के समय किले या शत्रुसेना को चारों ओर घेरने का काम। घेरा। २. घेरा। हदबंदी।

मुहासिल—संज्ञा पुं० [अ०] १. आय। आमदनी। २. लाभ। मुनाफा। नफा। ३. बिक्री आदि से होनेवाली आय।

मुहिं(पु)—सर्व० [हिं० मुझ] दे० 'मोहिं'। उ०—तिनमें इक सिसुपाल, ताहिं मुहिं देत रुकम सठ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५।

मुहिब्ब—संज्ञा पुं० [अ०] प्रेम रखनेवाला। दोस्ती रखनेवाला। दोस्त। मित्र। मोहब्बत रखनेवाला।

मुहिम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कोई कठिन या बड़ा काम। भारी, मारके का या जान जोखों का काम। २. लड़ाई। युद्ध। समर। जंग। ३. फौज की चढ़ाई। आक्रमण। उ० आए तेरे दृगन पै जे मुहीम अखत्यार। कितने मनसूबा गए इन सौं जुरके हार।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहिर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मुहिर[२]—वि० मूर्ख। जड़बुद्धि।

मुहिर(पु)[३]—संज्ञा पुं० [सं० मुदिर, प्रा० मुइर] मेघ। बादल। उ०—मुहिर बलाहक तड़ित पति, कामुक धूमसपूत।—नंद० ग्रं०, पृ० ८८।

मुहिम—संज्ञा स्त्री० [अ० मुहिम, मुहिम्म] 'मुहिम'। उ०—कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम। सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम।—कबीर सा० सं०, पृ० २७।

मुहुः—अव्य० [सं० मुहु !] बार बार। फिर फिर।

यौ०—मुहुर्मुहुः।

मुहुँ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मुँह'।

मुहुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पल। एक क्षण [को०]।

मुहुपुची—संज्ञा स्त्री० [देश०] काले रंग का एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो मूँगफली की फसल को नष्ट कर देता है। खुरल।

विशेष—ये कीड़े रात को अधिक उड़ते हैं। ये पत्तियों पर अंडे देते हैं जिससे पत्तियाँ सुख जाती हैं। ये कीड़े धूप और साफ दिनों में बहुत हानि पहुँचाते हैं। इनसे खेत की फसल काली हो जाती है। पानी बरसने पर ये कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

मुहुर्भुक्—संज्ञा पुं० [सं० मुहुर्भुज्] घोड़ा। अश्व [को०]।

मुहूरत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मुहूर्त] १. दे० 'मुहूर्त'। उ०—ब्रह्म मुहूरति कुअँर कान्ह निज घर आए तब। गोपनि अपनी गोपी अपने ढिग पाई सब।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६। २. सिनेमा की फिल्मों के आरंभ का मुहूर्त।

मुहूर्त—संज्ञा पुं० [सं० मुहूर्त्त] १. काल का एक नाम। दिन रात का तीसवाँ भाग। २. निर्दिष्ट क्षण या काल। समय। जैसे, शुभ मुहूर्त। ३. १२ क्षण का समय (को०)। ४. दो घटी का काल ५. ज्योतिषी (को०)। ६. फलित ज्योतिष के अनुसार गणना करके निकाला हुआ कोई समय जिसपर कोई शुभ काम (यात्रा, विवाह) आदि किया जाय।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—देखना।—दिखलाना।

मुहूर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षण। काल। समय। २. ४८ मिनट का काल [को०]।

मुहैया—वि० [अ०] १. तैयार। तत्पर; प्रस्तुत। २. उपस्थित। मौजूद। ३. उपलब्ध [को०]।

मुह्यमान—वि० [सं०] मूर्छित। जो मोहित हो रहा या हुआ हो। मूर्छायुक्त। मोहयुक्त [को०]।

मूँ†[१]—संज्ञा पुं० [सं० मुख, प्रा० मुँह] दे० 'मुँह'। उ०—जो शारूँ के मूँ ते सुने यो बैन। नसीहत पर उसकी गजब में हो ऐन।—दक्खिनी०, पृ० १०।

मूँ(पु)†[२]—सर्व० [हिं० मुझ का संबंध कारक का रूप] मेरा। मेरी। उ०—करहा देस सुहामणउ, जे मूँ सासरिवाड़ि। आँब सरीखउ आँब गिणि, जालि करीराँ झाड़ि।—ढोला०, दू० ४३२।

मूँग—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० मुद्ग] एक अन्न जिसकी दाल बनती है।

विशेष—मूँग भादों में प्रायः साँवाँ आदि और अन्नों के साथ बोई जाती है और अगहन में कटती है। इसके पौधे की टहनियाँ लता के रूप में इधर उधर फैली होती हैं। एक एक सींके में सेम की तरह तीन तीन पत्तियाँ होती हैं। फूल नीले या बैंगनी होते हैं। फलियाँ ढाई तीन अंगुल की पतली पतली होती हैं और गुच्छों में लगती हैं। फलियों के भीतर ५-६ लंबे गोल दाने होते हैं, जिनके मुँह पर की बिंदी उर्द की तरह स्पष्ट नहीं होती। मूँग के लिये बलुई मिट्टी और थोड़ी वर्षा चाहिए। मूँग कई प्रकार की होती है—हरी, काली, पीली। हरी या पीली मूँग अच्छी समझी जाती है और 'सोना मूँग' कहलाती है। वैद्यक में मूँग रूखी, लघु, धारक, कफघ्न, पित्तनाशक, कुछ वायुवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर और ज्वरनाशक कही गई है। बनमूँग के भी प्रायः यही गुण हैं। मूँग की दाल बहुत हलकी और पथ्य समझी जाती है; इसी से रोगियों को प्रायः दी जाती है। इससे बड़ी, पापड़, लड्डू आदि भी बनते हैं।

पर्या०—सूपश्रेष्ठ। वर्णार्ह। रसोत्तम। भुक्तप्रद। हयानंद। सुफल। वाजिभोजन।

मुहा०—छाती पर मूँग दलना=दे० 'छाती' का मुहा०। मूँग की दाल खानेवाला=पुरुषार्थहीन। निबल। डरपोक।

मूँगफली—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूँग+फली या सं० भूमि+हिं० फली] १. एक प्रकार का क्षुप जिसकी खेती फलों के लिये प्रायः सारे भारत में की जाती है।

विशेष—यह क्षुप तीन चार फुट तक ऊँचा होकर पृथ्वी पर चारों ओर फैल जाता है। इसके डंठल रोएँदार होते हैं और सींकों पर दो दो जोड़े पत्ते होते हैं जो आकार में चकवँड़ के पत्तों के समान अंडाकार, पर कुछ लंबाई लिए होते हैं। सूर्यास्त होने पर इसके पत्तों के जोड़े आपस में मिल जाते हैं और सूर्योदय होने पर फिर अलग हो जाते हैं। इसमें अरहर के फूलों के से चमकीले पीले रंग के २-३ फूल एक साथ और एक जगह लगते हैं। इसकी जड़ में मिट्टी के अंदर फल लगते हैं जिनके ऊपर कड़ा और खुरदुरा छिलका होता है तथा अंदर गोल, कुछ लंबोतरा और पतले लाल छिलकेवाला फल होता

है, जो रूप, रंग तथा स्वाद आदि में बादाम से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है। इसी कारण इसे 'चिनिया बादाम' भी कहते हैं।

फागुन के आरंभ में ही जमीन को अच्छी तरह जोतकर दो दो फुट की दूरी पर छह छह इंच के गड्ढे बनाकर इसके बीज बो देते हैं; और यदि एक सप्ताह में बीज अंकुरित नहीं होता, तो कुछ सिंचाई करते हैं। आश्विन कार्तिक में पीले रंग के फूल लगते हैं जो मटर के फूलों के समान होते हैं। इसके डंठलों की गाँठों में से जो सोरें निकलती हैं, वही जमीन के अंदर जाकर फल बन जाती हैं। इस फल के पक जाने पर मिट्टी खोदकर उन्हें निकाल लेते हैं और धूप में सुखाकर काम में लाते हैं। ये फल या तो साधारणतः यों ही अथवा ऊपरी छिलकों समेत भाड़ में भूनकर खाए जाते हैं। इनसे तेल भी निकाला जाता है जो खाने तथा दूसरे अनेक कामों में आता है। यह तेल जैतून के तेल की तरह का होता है और प्रायः उसके स्थान में काम आता है। वैद्यक में इसका फल मधुर, स्निग्ध, वात तथा कफकारक और कोष्ठ को बद्ध करनेवाला माना जाता है; और किसी के मत से गरम है और मस्तक तथा वीर्य में गरमी उत्पन्न करनेवाला है।

२. इस क्षुप का फल। चिनिया बादाम। विलायती मूँग।

पर्या०—भूचणक। भूशिंबिका।

मूँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप। उ०—चली मूँगरी उच्च ह्वै आसमानै।—हिम्मत०, पृ० ६।

मूँगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मूँग] १. समुद्र में रहनेवाले एक प्रकार के कृमियों के समूहपिंड की लाल ठठरी जिसकी गुरिया बनाकर पहनते हैं। इसकी गिनती रत्नों में की जाती है।

विशेष—समुद्रतल में एक प्रकार के कृमि खोलड़ी की तरह का घर बनाकर एक दूसरे से लगे हुए जमते चले जाते हैं। ये कृमि अचर जीवों में हैं। ज्यों ज्यों इनकी वंशवृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों इनका समूहपिंड थूहर के पेड़ के आकार में बढ़ता चला जाता है। सुमात्रा और जावा के आसपास प्रशांत महासागर में समुद्र के तल में ऐसे समूहपिंड हजारों मील तक खड़े मिलते हैं। इनकी वृद्धि बहुत जल्दी जल्दी होती है। इनके समूह एक दूसरे के ऊपर पटते चले जाते हैं जिससे समुद्र को सतह पर एक खासा टापू निकल आता है। ऐसे टापू प्रशांत महासागर में बहुत से हैं जो 'प्रवालद्वीप' कहलाते हैं। मूँगे की केवल गुरिया ही नहीं बनती; छड़ी, कुरसी आदि बड़ी चीजें भी बनती हैं। आभूषण के रूप में मूँगे का व्यवहार भी मोती के समान बहुत दिनों से है। मोती और मूँगे का नाम प्रायः साथ साथ लिया जाता है। रत्नपरीक्षा की पुस्तकों में मूँगे का भी वर्णन रहता है। साधारणतः मूँगे का दाना जितना ही बड़ा होता है, उतना अधिक उसका मूल्य भी होता है। कवि लोग बहुत पुराने समय से ओठों की उपमा मूँगे से देते आए हैं।

पर्या०—प्रवाल। विद्रुम।

२. एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जो आसाम में होता है।

मूँगा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गन्ना जिसके रस का गुड़ अच्छा होता है।

मूँगिया[1]—वि० [हिं० मूँग + इया (प्रत्य०)] मूँग का सा। मूँग के रंग का। हरे रंग का। उ०—क्या न था काफी बनाने का मुझे पागल, तुम्हारे गर्म होठों पर सुलगता मूँगिया बादल।—ठंडा० पृ० २२।

मूँगिया[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अगौआ रंग जो मूँग का सा हरा होता है। २. एक प्रकार का धारीदार चारखाना।

मूँछ—संज्ञा स्त्री० [सं० श्मश्रु, प्रा० मस्सु > मच्छु > मुच्छ > हिं० मूँछ] ऊपरी ओंठ के ऊपर के बाल जो केवल पुरुषों के उगते हैं। ये बाल पुरुषत्व का विशेष चिह्न माने जाते हैं।

विशेष—'मूँछों पर हाथ फेरना' हिंदुओं में बहुत दिनों से वीरता की अकड़ दिखाने का संकेत माना जाता है। रणक्षेत्र में वीर लोग मूँछों पर ताव देते हुए चढ़ाई करते कहे जाते हैं। किसी कठिन काम में सफलता होने पर भी लोग मूँछों पर ताव देते है। पृथ्वीराज चौहान के चाचा कण्ह या कन्ह के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी आँखों पर दरबार में सदा पट्टी बँधी रहती थी; क्योंकि जिस किसी का हाथ वे मूँछों पर जाते देखते थे, उसका सिर उड़ा देते थे। पृथ्वीराजरासो के एक अध्याय में कन्ह की इसी कथा का विस्तृत वर्णन है।

मुहा०—**मूँछ नीची करना** = हेठा बनना। छोटा हो जाना। बेइज्जत हो जाना। उ०—पर जिस काम के करने से मुझको अपनी मूँछ नीची करनी पड़ेगी, उस काम को मैं जी रहते न कर सकूँगा।—ठेठ०, पृ० ११। **मूँछें उखाड़ना** = कठिन दंड देना। घमंड चूर करना। (गाली)। **मूँछें नीची होना** = (१) लज्जित होना। घमंड टूट जाना। **मूँछें मुड़वाना** = हार मान लेना। पुरुषत्व का दावा त्याग देना। जैसे,—यह बात सच हुई तो मूँछें मुड़वा दूँगा। **मूँछों पर ताव देना** = अभिमान से मूँछ मरोड़ना। वीरता का अकड़ दिखाना। (२) अप्रतिष्ठा होना। बेइज्जती होना। **मूँछों का हाथ फेरना** = दे० 'मूँछों पर ताव देना'। **मूँछों का कूँड़ा करना** = एक मुसलमानी रस्म जो बेटे के मूँछें निकलने पर होती है।

मूँछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बेसन की बनी हुई एक प्रकार की कढ़ी जिसमें बेसन के सेव या पकौड़ियाँ आदि पड़ी होती हैं। सेव या पकौड़ियों की कढ़ी।

मूँज—संज्ञा स्त्री० [सं० मुञ्ज] एक प्रकार का तृण। उ०—जैसे, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी और दरियाई की अँगिया में मूँज की बखिया।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ३७७।

विशेष—इसमें डंठल या टहनियाँ नहीं होतीं; जड़ से बहुत ही पतली (जौ भर से कम चौड़ी) दो दो हाथ लंबी पत्तियाँ चारों ओर निकली रहती हैं। ये पत्तियाँ बहुत घनी निकलती हैं। जिससे पौधा बहुत सा स्थान घेरता है पत्तियों के मध्य में एक सूत्र यहाँ से वहाँ तक रहता है। पौधे के बीचोबीच से

एक सीधा कांड पतली छड़ के रूप में ऊपर निकलता है जिसके सिरे पर मंजरी या घूए के रूप में फूल लगते हैं। सरकंडे से इसमें यह भेद होता है कि इसमें गाँठें नहीं होतीं और छाल बड़ी चमकीली तथा चिकनी होती है। सींक से यह छाल उतारकर बहुत सुंदर सुंदर डलियाँ बुनी जाती हैं। मूँज प्रायः ऊँचे ढालुएँ स्थानों पर बगीचे की बाढ़ों या ऊँची मेंड़ों पर लगाई जाती है। मूँज बहुत पवित्र मानी जाती है। ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के समय वटु को मुंजमेखला (मूँज की करधनी) पहनाने का विधान है।

पर्या०—**मौंजीतृण**। **ब्राह्मण्य**। **तेजनाह्वय**। **वानीरक**। **मुंजनक**। **शीरी**। **दर्भाह्वय**। **दूरमूल**। **दृढमूल**। **वटुप्रज**। **रंजन**। **शत्रुभंग**।

मूँजीलांछन⑤†—वि० [सं० मौञ्जीलाञ्छन] मूँज की मेखला से युक्त। उ०—मूँजीलांछन कृष्नाजिन सहित मुनि यूँ राजै।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १५५।

मूँझा⑤†—वि० [सं० मुग्ध] लीन। सराबोर। तर। उ०—गूझा रस मूँझा दधि न्यारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०।

मूँठी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मुट्ठी**] दे० 'मुट्ठी' 'मुष्टि'। उ०—नाहित काह छार एक मूँठी।—जायसी ग्रं०, पृ० २३२।

मूँड़†—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्ड**] सिर। कपाल। उ०—(क) तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम, नत भेंट पितरन को न मूँड़ हू में बारु है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**मूँड़ चढ़ना** = ढिठाई करना। सिर चढ़ना। **मूँड़ चढ़ाना** = ढीठ करना। निडर कर देना। सिर चढ़ाना। **मूँड़ मारना** = बहुत हैरान होना। बहुत कोशिश करना। उ०—मूँड़ मारि हिय हारि कै हित हहरि अब चरन सरन तकि आयो।—तुलसी (शब्द०)। **मूँड़ मुड़ाना** = (१) संन्यासी होना। (२) बाना बदलना। अन्य रूप स्वीकारना। नारि मुई गृह संपति नासी मूँड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।—मानस, ७।१००। विशेष दे० 'सिर'।

मूँड़कटा—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़ + काटना] दूसरे का सिर काटनेवाला। दूसरे को हानि करनेवाला। धोखा देकर दूसरे को नुकसान पहुँचानेवाला।

मूँड़न—संज्ञा पुं० [सं० **मुण्डन**] मुंडन संस्कार जिसमें बालक के बाल पहले पहल मुँड़ाए जाते हैं। चूड़ाकरण संस्कार।

यौ०—**मूँड़न छेदन** = कर्णवेध और चूड़ाकरण।

मूँड़ना—क्रि० स० [सं० **मुण्डन**] १. सिर के बाल बनाना। हजामत करना। २. धोखा देकर माल उड़ाना। ठगना। जैसे,—उसने १०) तुमसे मूँड़ लिए। ३. भेड़ों के शरीर पर से ऊन कतरना। ४. चेला बनाना। दीक्षित करना। जैसे, चेला मूँड़ना। उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो। मूँड़्यो जिन्हैं मिटायो तिनको जग सो नाम धरायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४९।

मूँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० मुण्ड] १. सिर। २. मूँड के आकार की वस्तु।

मूँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डिका] १. सिर। मस्तक।

मुहा०—**मूँड़ी काटे** = स्त्रियों की बोलचाल में पुरुषों के लिये स्त्रियों की एक गाली। **मूँड़ी मरोड़ना** = (१) गला दबाकर मार डालना। (२) धोखा देकर हानि पहुँचाना।

२. किसी वस्तु का शिरोभाग (जो मूँड़ के आकार का हो)।

मूँड़ीबंध—संज्ञा पुं० [हिं० मूँड़ी + **बंध**] कुश्ती का एक पेंच जिसमें एक पहलवान दूसरे की पीठ पर चढ़कर उसकी बगलों के नीचे से अपने हाथ ले जाकर उसकी गर्दन दबाता है।

मूँदना—क्रि० स० [सं० **मुद्रण**] १. ऊपर से कोई वस्तु डाल या फैलाकर किसी वस्तु को छिपाना। आच्छादित करना। बंद करना। ढाँकना। जैसे, आँख मूँदना। उ०—मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. छेद, द्वार, मुँह आदि पर कोई वस्तु फैला या रखकर उसे बंद करना। खुला न रहने देना। जैसे, नाक कान मूँदना, छेद मूँदना, खिड़की मूँदना, घड़े का मुँह मूँदना। ३. रोकना। अवरोध करना। घेरना। छिपा रखना। उ०—तब सत्याजी कहे, जो इनको इक ठौरे क्यों मूँदि राखे हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२९।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—रखना।

मूँदर⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **मुद्रा, मुद्रिका**] मुँदरी। अँगूठी।

मूँध†—वि० [सं० **मुग्ध**] दे० 'मुग्ध'।

मूँधना⑤—क्रि० स० [हिं०] १. मूँदना। २. मुग्ध करना। उ०—आए अलि ऊधो प्रेम पथ को करन मूँधो रुंधो निज खास वास तजो री घरनि को।—दीन० ग्रं० पृ० ४७।

मूँधा†—वि० [देश० **या** सं० **मूर्धा** ?] उलटा। औंधा। सिर के बल। उ०—बनियाँ मूँधौ ह्वै रह्यौ टूँगै फेरौ हाथ। सुंदर ऐसो भ्रम भयौ मेरे तौ नहि माथ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७७३।

मूँन†⑤—वि० [सं० **मौन**, पु०हिं० **मवन**] दे० 'मौन'। उ०—अंगन अनंग तन में छिपाइ, रहै मूँन मनह तन ज्यौ लुपाई।—पृ० रा०, १५।३५।

मूँसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मूसना'। उ०—जौ लहि चोर सेंध नहि देई। राजा केर न मूँसै पेई।—जायसी ग्रं०, पृ० २६४।

मू[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बाल। सिर के बाल। केश। २. रोम [को०]।

मू†[२]—संज्ञा पुं० [सं० **मुख**, प्रा० **मुह**] मुख। चेहरा। उ०—व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुच्ची आँख, व मोटे ओंठ मुछंदर की आदम आदम है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८९।

मूआ—संज्ञा पुं० [सं० **मृत**, प्रा० मुअ, हिं० **मरना**] मृत। मरा हुआ।

विशेष—इसका प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः गाली के रूप में करती हैं।

मूक[१]—वि० [सं०] १. जिसके मुँह से अलग वर्ण न निकल सकते हों। गूँगा। अवाक्। उ०—मूक होइ बाचालु पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—सुश्रुत ने लिखा है कि गर्भवती को जिस वस्तु के खाने की इच्छा हो, उसके न मिलने से वायु कुपित होता है और गर्भस्थ शिशु कुबड़ा, गूँगा इत्यादि होता है।

२. दीन। विवश। लाचार।

मूक²—संज्ञा पुं० १. दैत्य। दानव। २. तक्षक के एक पुत्र का नाम। ३. गूँगा व्यक्ति (को०)। ४. मत्स्य। मछली (को०)।

मूकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गूँगापन।

मूकनाⓅ—क्रि० स० [सं० मुक्त] १. दूर करना। अलग करना। छोड़ना। त्यागना। उ०—(क) पाल्यो तेरे टूक को परेहू चूक मूकिए न कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब जोर जरा जरि गात गयो मन मानि गलानि कुबानि न मूकि।—तुलसी (शब्द०)। २. बंधन खोलना। बंधन हटाना। ३. बंधन खोलकर मुक्त करना। बंधन से छुड़ाना।

मूकबधिर—वि० [सं०] जो गूँगा और बहरा हो।

मूकभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मौनता। गूँगापन [को०]।

मूकांडज—वि० [सं० मूकाण्डज] (वन, उपवन आदि) जहाँ की रहनेवाली चिड़ियाँ शांत रहती हों [को०]।

मूकांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मूकाम्बिका] १. दुर्गा का एक नाम। २. एक प्राचीन नगर का नाम।

मूका¹—संज्ञा पुं० [सं० मूका = मूषा (= गवाक्ष)] १. किसी दीवार के आर पार बना हुआ छेद। २. छोटा गोल झरोखा। मोखा। उ०—मूका मेलि गहे जु छिन हाथ न छोड़े हाथ।—बिहारी (शब्द०)।

मूका²—संज्ञा पुं० [हिं० मुक्का] बँधी हुई मुट्ठी का प्रहार। घूँसा।

मूकित—वि० [सं०] १. शांत। मौन। २. गूँगा [को०]।

मूकिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूकता। गूँगापन।

मूखनाⓅ—क्रि० स० [सं० मूषण, मुषण] दे० 'मूसना'।

मूचनाⓅ—क्रि० स० [सं० मुञ्चन] दे० 'मोचना'।

मूछ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'देखो 'मूँछ'।

मूजिद—वि० [अ०] ईजाद करनेवाला। आविष्कारक [को०]।

मूजिब—संज्ञा पुं० [अ०] १. कारण। हेतु। २. द्वारा। जरिया। उ०—व्याह आपकी नामवरी के मूजिब करना पड़ेगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २३८।

मूजी—संज्ञा पुं० [अ० मूज़ी] कष्ट पहुँचानेवाला। दुष्ट। दुर्जन। खल। उ०—अगर जर्रे को जर कर तू, बड़े मूजी को सर कर तू।—बेला, पृ० ६५।

मूझⓅ†—सर्व० [सं० मह्यम् प्रा० मुज्झ, हिं० मुझ] दे० 'मुझ'। उ०—आवौ मूझ हजूर, सूर साखेत सज्या सा।—रा० रू०, पृ० २४।

मूझनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० मुह्य, प्रा० मुज्झ] मुग्ध होना। मुरझाना। मोह से युक्त होना। व्यग्र होना। उ०—लाज ते सखि कौं नाहिन बूझै। चिंता करि मनही मन मूझै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५३।

मूठ—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्ट, प्रा० मुट्ठि] १. उँगलियों को मोड़कर बाँधी हुई हथेली। मुष्टि। मुट्ठी। उ०—जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहि मूठ खवावत ही।—शकुंतला पृ० ७५। वि० दे० 'मुट्ठी'।

मुहा०—**मूठ करना** = तीतर, बटेर आदि को मुट्ठी में पकड़कर उनके शरीर में गरमी पहुँचाना जिससे उनमें बल का आना माना जाता है। **मूठ मारना** = (१) कबूतर को मुट्ठी में पकड़ना। (२) हस्तक्रिया करना।

२. किसी औजार या हथियार का वह भाग जो व्यवहार करते समय हाथ में रहता है। मुठिया। दस्ता। कब्जा। जैसे, तलवार की मूठ, छाते की मूठ, कमान की मूठ। उ०—टूटि टाटि गोसा गए, फूटि फाटि मूठ गई, जेवरि न राखो जोर जानत जगत है।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। ३. उतनी वस्तु जितनी मुट्ठी में आ सके। ४. एक प्रकार का जूआ जिसमें मुट्ठी में कौड़ियाँ बंद करके बुझाते हैं। ५. मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू। टोना।

मुहा०—**मूठ चलाना या मारना** = जादू करना। टोना मारना। तंत्र मंत्र का प्रयोग करना। उ०—(क) काहू देवननि मिलि मोटी मूठ मार दी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पीठि दिए ही नेकु मुरि कर घूँघट पट टारि। भरि गुलाल की मूठि सों गई मूठि सी मारि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) कोउ पै कोउ मारै मूठ यथा।—गोपाल (शब्द०)। (घ) अबिर उड़ावैं मूठि मूठि सों चलावैं, सखी देखिए लुनाई नटनागर गोपाल की।—दीनदयाल (शब्द०)। **मूठ लगना** = जादू का असर होना। टोना लगना। मंत्र तंत्र का प्रभाव पड़ना। उ०—डीठि सी डीठि लगी उनको इनको लगी मूठि सी मूठि गुलाल की।—पद्माकर (शब्द०)।

मूठनाⓅ—क्रि० अ० [सं० मुष्ट, प्रा० मुट्ठ] नष्ट होना। मर मिटना। न रह जाना। उ०—दुइ तुरंग दुइ नाव पाँव धरि ते कहि कवन न मूठे।—सूर (शब्द०)।

मूठा—संज्ञा पुं० [हिं० मूठ] घास फूस को रस्सी से बाँधकर बनाए हुए लट्ठे के आकार के लंबे लंबे पूले जो खपरैल की छाजन में लगाए जाते हैं। मुट्ठा।

मूठाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूठ + आली (प्रत्य०)] तलवार। (डिं०)।

मूठिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टि, प्रा० मुट्ठि] १. दे० 'मूठ'। मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई।—तुलसी (शब्द०)। २. मंत्र। तंत्र। जादू टोना। उ०—केचित् मूठि चलावैं काहू। नारसिंह भैरव तुम जाहू।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ९३। ३. दे० 'मुट्ठी'।

मूठीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टि, प्रा० मुट्ठि] दे० 'मुट्ठी'। उ०—और पहिरें नग जरी अँगूठी। जग बिनु जीव जीव ओहि मूठी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९४।

मुहा०—**मूठी खुलना** = दान करना। देना। हाथ खोलकर देना। उ०—हैं तरसते एक मूठी अन्न को। आपकी मूठी नहीं अब भी खुली।—चुभते०, पृ० ४। **मूठी में करना या लेना** = वश में करना। अपने अधिकार में करना। अधीन करना। उ०—हम तुम्हें तो ले न मूठी में सके। मूठियों में अब हमें कर लो तुम्हीं।—चोखे०, पृ० ६०। **मूठी में रहना** = वश में रहना।

उ०—दिन बिताएँ चाव मूठी भर चना। पर किसी की भी न मूठी में रहें।—चुभते०, पृ० १६।

मूड़—संज्ञा पुं० [सं० मुण्ड] दे० 'मूँड़'। उ०—आपन करे हाम मूड़ मुड़यलुँ कामुक प्रेम बढ़ाइ।—विद्यापति, पृ० ५८४।

मुहा०—मूड़ हिलाना = भूत या आसेब आने पर सर हिलाने की क्रिया। अभुआना। हबुआना। उ०—जंतर टोना मूँड़ हिलावन ताकूँ साँच न मानो।—चरण० बानी पृ० १११।

मूड़ना—क्रि० स० [सं० मुण्डन] दे० 'मूँड़ना'।

मूढ़[1]—वि० [सं० मूढ] १. अज्ञान। मूर्ख। जड़बुद्धि। बेवकूफ। अहमक। २. ठक। स्तब्ध। निश्चेष्ट। ३. जिसे आगा पीछा न सूझता हो। ठगमारा।

मूढ़[2]—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक, जिसमें चित्त तमोगुण के कारण तंद्रायुक्त या स्तब्ध रहता है। कहा गया है कि यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। विशेष दे० 'चित्तभूमि'।

मूढ़गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० मूढगर्भ] गर्भ का बिगड़ना जिससे गर्भस्राव आदि होता है। बिगड़ा हुआ गर्भ।

विशेष—सुश्रुत में लिखा है कि रास्ता चलने, सवारी पर चढ़ने, गिरने पड़ने, चोट लगने, उलटा लेटने, मल मूत्र का वेग रोकने, रूखा, कड़ुवा या तीखा भोजन करने, वमन, विरेचन, हिलने-डोलने आदि से गर्भबंधन ढीला हो जाता है और उसकी स्थिति बिगड़ जाती है। इससे पेट, पार्श्व, वस्ति आदि में पीड़ा होती है तथा और भी अनेक उपद्रव होते हैं। मूढ़गर्भ चार प्रकार का होता है—कील, प्रतिखुर, बीजक और परिघ। यदि गर्भ कील की तरह आकर योनि मुख बंद कर दे, तो उसे 'कील' कहते हैं। यदि एक हाथ, एक पैर और माथा बाहर निकले और बाकी देह रुकी रहे, तो उसे 'प्रतिखुर' कहते हैं। यदि एक हाथ और माथा निकले, तो 'बीजक कहलाता है; और यदि भ्रूण डंडे की तरह आकर अड़े; तो वह गर्भ 'परिघ' कहलाता है। इसमें प्रायः शल्यचिकित्सा की जाती है।

मूढ़ग्राह—संज्ञा पुं० [सं० मूढग्राह] खब्त। गलत धारणा [को०]।

मूढ़ग्राही—वि० [सं० मूढग्राहिन्] गलत अर्थ समझकर उसी पर दृढ़ रहनेवाला। दुराग्रही [को०]।

मूढ़चेता—वि० [सं० मूढचेतस्] जिसकी बुद्धि या मति मूढ़ हो। अज्ञ [को०]।

मूढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० मूढता] १. मूर्खता। अज्ञता। बेवकूफी। उ०—ऐसी मूढ़ता या मन की। परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आस करत ओस कन की।—तुलसी (शब्द०)। दे० 'मूढ़त्व'।

मूढ़त्व—संज्ञा पुं० [सं० मूढत्व] १. उलझन। घबराहट। असमंजस। २. अज्ञानता। मूढ़ता। बेवकूफी। ३. मूढ़वात। शरीरस्थ वायु। ४. बतौरी। गिल्टी [को०]।

मूढ़प्रभु—संज्ञा पुं० [सं० मूढप्रभु] महामूढ़। मूर्खराज [को०]।

मूढ़वात—संज्ञा पुं० [सं० मूढवात] किसी कोश में रुकी वा बँधी हुई वायु।

मूढ़वाताहत—वि० [सं० मूढवाताहत] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार तूफान में पड़ा हुआ (जहाज या नाव)।

मूढ़सत्व—वि० [सं० मूढ़सत्व] उन्मत्त [को०]।

मूढ़ा†—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्धा, प्रा० मूड्ढा] एक प्रकार का ऊँचा आसन। मोढ़ा। उ०—मूढ़ा गादी सामंतन को दीने।—पृ० रा०, ५७।१७०।

मूढ़ात्मा—वि० [सं० मूढात्मन्] निर्बोध। मूर्ख। अहमक।

मूढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] लाई। चावल की फरवी। उ०—मलेटरी-वाले जमीन पर कंबल बिछाकर बैठे हैं। मूढ़ी फाँक रहे हैं।—मैला०, पृ० २।

मून[1]—वि० [सं०] निबद्ध। बाँधा हुआ। संयत।

मूत[2]—संज्ञा पुं० [सं० मूत्र] १. वह जल जो शरीर के विषैले पदार्थों को लेकर प्राणियों के उपस्थ मार्ग से निकलता है। पेशाब। विशेष—दे० 'मूत्र'।

मुहा०—मूत निकल पड़ना = डर के मारे बुरी दशा हो जाना। जैसे,—उसे देखोगे तो मूत निकल पड़ेगा। मूत से निकलकर गू में पड़ना = और भी बुरी दशा में जा पड़ना।

२. पुत्र। संतान। (तिरस्कार)।

मूतना—क्रि० अ० [हिं० मूत + ना (प्रत्य०)] शरीर के गंदे जल को उपस्थ मार्ग से निकालना। पेशाब करना। उ०—तिन की आजु समाधि पर, मूतत स्वान सियार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ३४०।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—मूत मारना = डर से मूत देना। मूत देना = डर से घबरा जाना।

मूतरी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंगली कौवा। महताब। महालत।

मूतिव—संज्ञा पुं० [?] आर्यों से इतर एक जाति विशेष जिसका प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है। उ०—पुंड्र, मूतिव, पुलिंद, और शाबर भी अनार्य थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ७६।

मूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के विषैले पदार्थों को लेकर प्राणियों के उपस्थ मार्ग से निकलनेवाला जल। पेशाब। मूत।

विशेष—मूत्र के द्वारा शरीर के अनावश्यक और हानिकारक क्षार, अम्ल या और विषैली वस्तुएँ निकलती रहती हैं, इससे मूत्र का वेग रोकना बहुत हानिकारक होता है। कई प्रकार के प्रमेहों में मूत्र के मार्ग से विषैली वस्तुओं के अतिरिक्त शर्करा तथा शरीर की कुछ धातुएँ भी गल गलकर गिरने लगती हैं। अतः मूत्रपरीक्षा चिकित्साशास्त्र का एक प्रधान अंग पहले भी था और अब भी है। भारतवर्ष में गोमूत्र पवित्र माना गया है और पंचगव्य के अतिरिक्त धातुओं और ओषधियों के शोधने में भी उसका व्यवहार होता है। वैद्यक में गोमूत्र, महिषमूत्र, छागमूत्र, मेषमूत्र, अश्वमूत्र आदि सबके गुणों का विवेचन किया गया है और विविध रोगों में उनका प्रयोग भी कहा गया है। स्वमूत्र

द्वारा चिकित्सा का भी अनेक रोगों में विधान है। मूत्रदोष से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

मूत्रकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें पेशाब बहुत कष्ट से या रुक रुककर थोड़ा थोड़ा होता है।

विशेष—आयुर्वेद के अनुसार यह रोग अधिक व्यायाम करने, तीव्र औषध सेवन करने, बहुत तेज घोड़े पर चढ़ने, बहुत रूखा अन्न खाने, अधिक मद्य सेवन करने तथा अजीर्ण रहने से होता है। मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकार का कहा गया है—वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, शल्यज, पुरीषज, शुक्रज और अश्मरीज। 'वातज' में शिश्न और वस्ति में बहुत पीड़ा होती है और मूत्र थोड़ा थोड़ा आता है। 'पित्तज' में पीला या लाल पेशाब पीड़ा और जलन के साथ उतरता है। 'कफज' में वस्ति और शिश्न में सूजन होती है और पेशाब कुछ झाग लिए होता है। 'सान्निपातिक' में वायु के सब उपद्रव दिखाई देते हैं और यह बहुत कष्टसाध्य होता है। 'शल्यज' मूत्र की नली में काँटे आदि के द्वारा घाव हो जाने से होता है और इसमें वातज के से लक्षण देखे जाते हैं। 'पुरीषज' में मलरोध होता है और वात की पीड़ा के साथ पेशाब भी रुक रुककर आता है। 'शुक्रज' शुक्रदोष से होता है और इसके पेशाब में वीर्य मिला आता है और पीड़ा भी बहुत होती है। 'अश्मरीज' अश्मरी या पथरी होने से होता है और इसमें मूत्र बहुत कष्ट से उतरता है। सुश्रुत के मत से शर्करजन्य मूत्रकृच्छ्र भी कई प्रकार का होता है। शर्करा भी एक प्रकार की अश्मरी ही है।

मूत्रकोश—संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश।

मूत्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राघात रोग का एक भेद। उ०—बस्ति में रहे जो पित्त और वायु वे मूत्र को क्षय करें, और पीड़ा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय कहते हैं।—माधव०, पृ० १७६।

मूत्रग्रंथि—संज्ञा पुं० [सं० मूत्रग्रन्थि] मूत्राघात का एक भेद। उ०—उसमें पथरी के समान पीड़ा हो इस रोग को मूत्रग्रंथि कहते हैं।—माधव०, पृ० १७६।

मूत्रग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का मूत्रसंग रोग जिसमें झाग लिए थोड़ा पेशाब आता है।

मूत्रजठर—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राघात से उत्पन्न एक दोष। उ०—अधोवस्ति का रोध करनेवाले इस रोग को मूत्रजठर कहते हैं।—माधव०, पृ० १७५।

मूत्रदशक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी, भेड़ा, ऊँट, गाय, बकरा, घोड़ा, भैंसा, गदहा, मनुष्य और स्त्री इन दश के मूत्रों का समूह।

मूत्रदोष—संज्ञा पुं० [सं०] पेशाब का रोग। प्रमेह [को०]।

मूत्रनिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मूत्ररोध'।

मूत्रपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूत्र गिरना। २. गंधमार्जार। गंध-बिलाव।

मूत्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रनली [को०]।

मूत्रपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्र की जाँच। परीक्षण द्वारा मूत्र के दोषों को जानना।

मूत्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि से नीचे का हिस्सा। आमाशय [को०]।

मूत्रप्रसेक—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रनली।

मूत्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

मूत्ररोध—संज्ञा पुं० [सं०] एकबारगी पेशाब रुक जाने का रोग।

मूत्रला[1]—वि० [सं०] [वि० पुं० मूत्रल] पेशाब करानेवाली (ओषधि)।

मूत्रला[2]—संज्ञा स्त्री० ककड़ी।

मूत्रवर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] अंडशोथ।

मूत्रवर्धक वि० [सं०] दे० 'मूत्रल'।

मूत्रविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रपरीक्षा पर आयुर्वेद का एक ग्रंथ।

विशेष—आयुर्वेद का यह ग्रंथ जानुकर्ण ऋषि का बनाया हुआ कहा जाता है। इसमें मूत्रपरीक्षा करने की अनेक प्रणालियों का सविस्तर वर्णन है। चरक, सुश्रुत आदि में इस विषय का विशेष विवेचन नहीं है; इससे नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रंथ कहाँ तक प्राचीन है।

मूत्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक मूत्र उत्पन्न होना [को०]।

मूत्रशुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्र के साथ शुक्र निकलना [को०]।

मूत्रशूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रमार्ग में होनेवाला दर्द [को०]।

मूत्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० मूत्रसङ्ग] एक प्रकार का मूत्ररोग जिसमें पेशाब थोड़ा थोड़ा और रक्त के साथ होता है। पेशाब निकलते समय इसमें दर्द भी होता है [को०]।

मूत्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्ररोग जिसमें कि चूर्ण के समान या कई रंगों का पेशाब हो। उ०—जब वह मूत्र···शंख का चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्ण का होय, इस रोग को मूत्रसाद कहते हैं।—माधव०, पृ० १७७।

मूत्राघात—संज्ञा पुं० [सं०] पेशाब बंद होने का रोग। मूत्र का रुक जाना।

विशेष—वैद्यक में यह रोग बारह प्रकार का कहा गया है—(१) वातकुंडली, जिसमें वायु कुपित होकर वस्तिदेश में कुंडली के आकार में टिक जाती है, जिससे पेशाब बंद हो जाता है। (२) वातष्ठीला, जिसमें वायु मूत्र द्वारा या वस्ति देश में गाँठ या गोले के आकार में होकर पेशाब रोकती है। ३) वातवस्ति, जिसमें मूत्र के वेग के साथ ही वस्ति की वायु वस्ति का मुख रोक देती है। (४) मूत्रातीत, जिसमें बार बार पेशाब लगता और थोड़ा थोड़ा होता है। (५) मूत्रजठर, जिसमें मूत्र का प्रवाह रुकने से अधोवायु कुपित होकर नाभि के नीचे पीड़ा उत्पन्न करती है। (६) मूत्रोत्संग, जिसमें उतरा हुआ पेशाब वायु की अधिकता से मूत्र नली या वस्ति में एक बार रुक जाता है और फिर बड़े वेग के साथ कभी कभी रक्त लिए हुए निकलता है। (७) मूत्रक्षय, जिसमें खुश्की के कारण वायु पित्त के योग से दाह होता है और मूत्र सूख जाता है। (८) मूत्रग्रंथि, जिसमें वस्तिमुख के भीतर पथरी की तरह गाँठ सी हो जाती है और पेशाब करने में बहुत कष्ट होता है। (९) मूत्रशुक्र, जिसमें मूत्र के साथ अथवा आगे पीछे शुक्र भी निकलता है। (१०) उष्णवात, जिसमें व्यायाम या अधिक परिश्रम करने, और गरमी

या धूप सहने से पित्त कुपित होकर वस्तिदेश में वायु से आवृत हो जाता है। इसमें दाह होता है और मूत्र हलदी की तरह पीला और कभी कभी रक्त मिला आता है। इसे 'कड़क' कहते हैं। (११) पित्तज मूत्रौकसाद, जिसमें पेशाब कुछ जलन के साथ गाढ़ा गाढ़ा होकर निकलता है और सूखने पर गोरोचन के चूर्ण की तरह हो जाता है; और (१२) कफज मूत्रौकसाद, जिसमें सफेद और लुआबदार पेशाब कष्ट से निकलता है।

मूत्रातीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्ररोग। उ०—मूतते समय धीरे धीरे मूत्र उतरे इस रोग को मूत्रातीत कहते हैं। —माधव०, पृ० १७५।

मूत्रातीसार—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमेह। प्रमेह [को०]।

मूत्राशय—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि के नीचे का वह स्थान जिसमें मूत्र संचित रहता है। मसाना। फुकना।

मूत्रासाद—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रौकसाद नामक मूत्राघात रोग।

मूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सल्लकी वृक्ष। सलई का पेड़।

मूत्रोत्संग—संज्ञा पुं० [सं० मूत्रोत्सङ्ग] दे० 'मूत्रसंग'। उ०—विगुण वायु से उत्पन्न हुई इस व्याधि को मूत्रोत्संग कहते हैं।—माधव०, पृ० १७६।

मूत्रित—वि० [सं०] १. मूत्रसंपर्क के कारण अशुचि या गंदा। २. मूत्र के रूप में निकला हुआ [को०]।

मूदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुद्रिका] दे० 'मुँदरी'। उ०—यह तोपै कैसी बनी अरी मूदरी हाय। उन कोमल अँगुरीन तजि पैठी जल में जाय।—शकुतला, पृ० ११६।

मूना[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. पीतल वा लोहे की अँकुसी जो टेकुए के सिर पर जड़ी रहती है और जिसमें रस्सी या डोरा फँसा रहता है। २. एक झाड़ी जिसके फल बेर के समान सुंदर होते हैं।

मूना†[२]—क्रि० अ० [सं० मृत, प्रा० मुअ + हिं० ना (प्रत्य०)] मरना। दे० 'मुवना'।

मूनिस—संज्ञा पुं० [अ०] मित्र। सहायक। मददगार। उ०—मुझको मारा ये मेरे हाल तगैयुर न कि है। कुछ गुमाँ और ही धड़के से दिले मूनिस के।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८५।

मूनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मौनी] चुप। मौन। उ०—खरो में जू खूनी। रहे क्यों न मूनी।—ह० रासो, पृ० १३६।

मूबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० मूबाफ़] चोटी गूँथने बाँधने का डोरा या फीता। उ०—झूठे पट्टे की है मूबाफ पड़ी चोटी में। देखते ही जिसे आँखों में तरा आती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७९०।

मूर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मूल] १. मूल। जड़। २. जड़ी। ३. मूलधन। असल। उ०—(क) दरस मूर देतो नहीं जौ लौं मीत चुकाय। बिरह ब्याज वाको अरे नितहू बाढ़त जाय।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) कोई चले लाभ सों कोई मूर गँवाय।—जायसी (शब्द०)। (ग) चल्यौ बनिक जिमि मूर गँवाई।—तुलसी (शब्द०)। ४. मूल नामक नक्षत्र। उ०—काहे चंद घटत है काहे सूरज पूर। काहे होई अमावस काहे लागे मूर।—जायसी (शब्द०)। ४. अफ्रीका में रहनेवाली एक जाति।

मूरख(पु)†—वि० [सं० मूर्ख] दे० 'मूर्ख'। उ०—इतनी जउ जानत मन मूरख मानत या हीं धाम।—सूर०, १।७६।

मूरखताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्खता, हिं० मूरखता + ई (प्रत्य०)] मूर्खता। अज्ञता। नासमझी। नादानी। उ०—(क) यौं पछितात कछू पदमाकर कासों कहौं निज मूरखताई।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) त्यौं वे सब बेदना खेद पीड़ा दुखदाई। जिन बखसीसति सदा घमंडहि मूरखताई।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

मूरचा—संज्ञा पुं० [हिं० मोरचा] दे० 'मोरचा'।

मूरछना(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्च्छना] दे० 'मूर्च्छना'। उ०—(क) पंचम नाद निखादहि मे सुर मूरछना गन ग्राम सुभावनि।—देव (शब्द०)। (ख) मूरछना उघटैं उत वे इत मो हिय मूरछना सरसानी।—गुमान (शब्द०)।

मूरछना[२]—संज्ञा स्त्री० दे० 'मूर्छा'।

मूरछना[३]—क्रि० अ० मूर्छित होना। बेहोश होना।

मूरछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्च्छा] दे० 'मूर्छा'। उ०—दिन दिन तनु तनुता गहौ लहौ मूरछा तापु। पिक द्विज ये बोलत न जनु बिरहिनि देत सरापु।—गुमान (शब्द०)।

मूरत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति] दे० 'मूर्ति'। उ०—निसि दिन ध्यावत वा मूरत को आनँदघन सो मीत।—घनानंद, पृ० ५८३।

मूरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति] दे० 'मूर्ति'। उ०—बार बार मृदु मूरति जोही। लागहि तात बयारि न मोही।—मानस, २।६७।

मूरतिवंत(पु)—वि० [सं० मूर्ति + वत् (प्रत्य०)] मूर्तिमान्। देहधारी। सशरीर। उ०—रिषिन गौरि देखि तहँ कैसी। मूरतिवंत तपस्या जैसी।—तुलसी (शब्द०)।

मूरध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्धा] दे० 'मूर्द्धा'। उ०—(क) कीन्हे बाहु ऊरध को मूरध के खोल केश, लेश ना दया को ताको कोनहि को भारा है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) मूरध ऊरधपुंड्र दिए अघ झुंड छीनकर।—गोपाल (शब्द०)।

मूरधा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्द्धा] दे० 'मूर्द्धा'।

मूरा†—संज्ञा पुं० [सं० मूलिका] मूली।

मूरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूल] १. मूल। जड़। २. जड़ी। बूटी। वनस्पति। जैसे, जीवनमूरि। उ०—सूरदास प्रभु बिन क्यौं जीवों जात सजीवन मूरि।—सूर (शब्द०)।

मूरिस—वि० [अ०] १. पूर्वज। वारिस करनेवाला। २. वंशप्रवर्तक। ३. पैदा करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

मूरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० मूल, हिं० मूर + ई (प्रत्य०)] दे० 'मूली'।

मूरुख, मूरुष(पु)—वि० [सं० मूर्ख, हिं० मूरख] दे० 'मूर्ख'। उ०—(क) ता सन आइ कीन छल मूरुख अवगुन गेह।—मानस, ३।१। (ख) दीठिवंत कहँ नीयरे, अंध मूरुखहि दूरि।—जायसी

ग्रं०, पृ० ३। (ग) आपुहिं मूरुख आपुहिं ज्ञानी, सब महँ रह्यो समोई।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

मूर्ख²—वि० [सं०] बेवकूफ। अज्ञ। मूढ़। नादान। नासमझ। लंठ। अपढ़। जाहिल।

यौ०—**मूर्खपंडित**=पठित मूर्ख। पढ़ा लिखा मूर्ख। **मूर्खभ्रातृक**= जिसका भाई मूर्ख हो। **मूर्खमंडल**=मूर्खों की टोली या दल **मूर्खराज**=सैंकड़ों मूर्ख।

मूर्ख³—संज्ञा पुं० १. उर्द। २. बनमूँग। ३. वह जो अपढ़ और जाहिल हो।

मूर्खता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञता। मूढ़ता। नासमझी। बेवकूफी। अज्ञानता।

मूर्खत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नादानी। नासमझी। बेवकूफी। अज्ञता।

मूर्खाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] महामूर्ख। मूर्खों का राजा।

मूर्खिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ख] मूढ़ा स्त्री। बेसमझ औरत। उ०—लै ओदन तिय को दिखरायो। कह्यौ मूर्खिनी कहँ ते आयो।—रघुराज (शब्द०)।

मूर्खिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता। जड़ता। बेवकूफी।

मूर्च्छन—संज्ञा पुं० [सं०] १. संज्ञा लोप होना या करना। बेहोश करना। २. मूर्च्छित करने का मंत्र या प्रयोग। उ०—आजु हौं राज काज करि आऊँ। बेगि सँहारों सकल घोष शिशु जो मुख आयसु पाऊँ। तौ मोहन मूर्च्छन वशीकरन पढ़ि अमित देह बढाऊँ —सूर (शब्द०)। ३. पारे का तीसरा संस्कार जिसमें त्र्युष्ण त्रिफलादि में सात दिन तक भावना दी जाती है। ४. कामदेव का एक बाण।

मूर्च्छना—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने में सातो स्वरों का आरोह अवरोह। उ०—(क) सुर नाद ग्राम नृत्यति सताल। मुख वर्ण विविध आलाप काल। बहु कला जाति मूर्च्छना मानि। बहु भाव गमक गुन चलत जानि। —केशव (शब्द०)। (ख) सुर मूर्च्छना ग्राम लै ताला। गावत कृष्णचरित सब ग्वाला।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—ग्राम के सातवें भाग का नाम मूर्च्छना है। भरत के मत से गाते समय गले को कँपाने से ही मूर्च्छना होती है; और किसी किसी का मत है कि स्वर के सूक्ष्म विराम को ही मूर्च्छना कहते हैं। तीन ग्राम होने के कारण २१ मूर्च्छनाएँ होती हैं जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

षडज ग्राम की	मध्यम ग्राम की	गांधार ग्राम की
ललिता	पंचमा	रौद्री
मध्यमा	मत्सरी	ब्राह्मी
चित्रा	मृदुमध्या	वैष्णवी
रोहिणी	शुद्धा	खेदरी
मतंगजा	अंता	सुरा
सौवीरी	कलावती	नादावती
षड्मध्या	तीव्रा	विशाला

अन्य मत से मूर्च्छनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

उत्तरमुद्रा	सौवीरी	नंदा
रजनी	हरिणाश्वा	विशाला
उत्तरायणी	कपोलनता	सोमपी
शुद्धषड्जा	शुद्धमध्या	विचित्रा
मत्सरीक्रांता	मार्गी	रोहिणी
अश्वक्रांता	पौरवी	सुखा
अभिरुता	मंदाकिनी	अलापी

मूर्च्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राणी की वह अवस्था जिसमें उसे किसी बात का ज्ञान नहीं रहता, वह निश्चेष्ट पड़ा रहता है। संज्ञा का लोप। अचेत होना। बेहोशी। उ०—गइ मूर्च्छा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत कहन अस लागे।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**आना**।—**खाकर गिरना**।—**होना**।

विशेष—आयुर्वेद में मूर्च्छा रोग के ये कारण कहे गए हैं—विरुद्ध वस्तु खा जाना, मलमूत्र का वेग रोकना, अस्त्रशस्त्र से सिर आदि मर्मस्थानों में चोट लगना अथवा सत्व गुण का स्वभावतः कम होना। इन्हीं सब कारणों से वातादि दोष मनोधिष्ठान में प्रविष्ट होकर अथवा जिन नाड़ियों द्वारा इंद्रियों और मन का व्यापार चलता है उनमें अधिष्ठित होकर, तमोगुण की वृद्धि करके मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं।

मूर्च्छा आने के पहले शैथिल्य होता है, जँभाई आती है और कभी कभी सिर या हृदय में पीड़ा भी जान पड़ती है। मूर्च्छा रोग सात प्रकार का कहा गया है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। 'वातज' मूर्च्छा में रोगी को पहले आकाश नीला या काला दिखाई पड़ने लगता है और वह बेहोश हो जाता है, पर थोड़ी ही देर में होश आ जाता है। इसमें कंप और अंग में पीड़ा भी होती है और शरीर भी बहुत दुर्बल और काला हो जाता है। 'पित्तज' मूर्च्छा में बेहोशी के पहले आकाश लाल, पीला या हरा दिखाई पड़ता है और मूर्च्छा छूटते समय आँखें लाल हो जाती हैं, शरीर में गरमी मालूम होती है, प्यास लगती है और शरीर पीला पड़ जाता है। 'श्लेष्मज' मूर्च्छा में रोगी स्वच्छ आकाश को भी बादलों से ढका और अँधेरा देखते देखते बेहोश हो जाता है और बहुत देर में होश में आता है। मूर्च्छा टूटते समय शरीर ढीला और भारी मालूम होता है और पेशाब तथा वमन की इच्छा होती है। 'सन्निपातज' में उपर्युक्त तीनों लक्षण मिले जुले प्रकट होते हैं और मिरगी के रोगी की तरह रोगी जमीन पर अकस्मात् गिर पड़ता है और बहुत देर में होश में आता है। मिरगी और मूर्च्छा में भेद केवल इतना होता है कि इसमें मुँह से फेन नहीं आता और दाँत नहीं बैठते। 'रक्तज' मूर्च्छा में अंग ठक और दृष्टि स्थिर सी हो जाती है और साँस साफ चलती नहीं दिखाई देती। 'मद्यज' मूर्च्छा में रोगी हाथ पैर मारता और अनाप शनाप बकता हुआ भूमि पर गिर पड़ता है। 'विषज' मूर्च्छा में कंप, प्यास और झपकी मालूम होती है तथा जैसा विष हो, उसके अनुसार और भी लक्षण देखे जाते हैं।

मूर्च्छोपगम—संज्ञा पुं० [सं०] बेहोशी दूर होना [को०]।

मूर्च्छाल—वि० [सं०] मूर्च्छित । मूर्च्छायुक्त । संज्ञाहीन [को०] ।

मूर्च्छित, मूर्छित—वि० [सं०] १. जिसे मूर्च्छा आई हो । बेसुध । बेहोश । अचेत । उ०—(क) सुनत गदाधर भट्ट तहाँ ही । मूर्छित गिरत भए महि माहीं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) यह सुन कंस मूर्च्छित हो गिरा । —लल्लूलाल (शब्द०) । २. मारा हुआ (पारे आदि धातुओं के लिये) । ३. दे० 'उच्छ्रित' (को०) । ४. मूढ़ (को०) । ५. वृद्ध । ६. व्याप्त ।

मूर्च्छित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की स्वरलहरी या वायु [को०] ।

मूर्ण—वि० [सं०] बद्ध । बँधा या कसा हुआ [को०] ।

मूर्त्त[1]—वि० [सं०] १. जिसका कुछ रूप या आकार हो । साकार ।

विशेष—नैयायिकों के मत से पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन मूर्त्त पदार्थ हैं इनके गुण रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, स्नेह और वेग हैं ।

२. कठिन । ठोस । ३. मूर्च्छित ।

मूर्त्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्त्त होने का भाव ।

मूर्त्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्त्त होने की क्रिया या भाव । मूर्त्तता ।

मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] अमूर्त को मूर्त रूप देना । अगोचर पदार्थ को गोचर रूप देना । रूपरहित भावनाओं और विचारों को वस्तुरूप में व्यक्त करना । ठोस रूप देना । उ०—तीव्र अंतरदृष्टिवाले कवि अपने सूक्ष्म विचारों का बड़ा ही रमणीय मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण करते हैं ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ६६ ।

मूर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठिनता । ठोसपन । २. शरीर । देह । ३. आकृति । शकल । स्वरूप । सूरत । जैसे,—उस मनुष्य की भयंकर मूर्त्ति देखकर वह डर गया । ४. किसी के रूप या आकृति के सदृश गढ़ी हुई वस्तु । प्रतिमा । विग्रह । जैसे, कृष्ण की मूर्त्ति, देवी की मूर्त्ति ।

मुहा०—मूर्त्ति के समान = ठक । स्तब्ध । निश्चल ।

५. रंग या रेखा द्वारा बनी हुई आकृति । चित्र । तस्वीर । ६. ब्रह्म सावर्णि के एक पुत्र का नाम । ७. व्यक्ति । मनुष्य (विशेषत: साधुसमाज में प्रयुक्त) । उ०—आजकल दो मूर्त्ति निवास करते हैं ।—किन्नर०, पृ० १८ ।

मूर्त्तिकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्त्ति गढ़ने या निर्माण करने की कला । मूर्तिविद्या ।

मूर्त्तिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्त्ति बनानेवाला । २. तसवीर बनानेवाला । मुसौवर ।

मूर्त्तित—वि० [सं०] मूर्त्त । साकार । उ०—मन से प्राणों में, प्राणों से जीवन में कर मूर्त्तित । शोभा आकृति में जन भू का स्वर्ग करो नव निर्मित ।—अतिमा, पृ० ७ ।

मूर्तिधर—वि० [सं०] मूर्ति को धारण करनेवाला । विग्रहवान । उ०—आकाश में शब्द के अनुरणन स्पंद से ही अमूर्त्त मूर्त्तिधर होता है ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ११४ ।

मूर्त्तिप—संज्ञा पुं० [सं०] पुजारी ।

मूर्त्तिपूजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मूर्त्ति या प्रतिमा की पूजा करता हो । मूर्त्ति पूजनेवाला ।

मूर्त्तिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्त्ति में ईश्वर या देवता की भावना करके उसकी पूजा करना ।

मूर्त्तिभंजक—वि० [सं० मूर्त्तिभञ्जक] मूर्तियों को तोड़नेवाला [को०] ।

मूर्त्तिमान्[1]—वि० [सं० मूर्त्तिमत्] [वि० स्त्री० मूर्त्तिमती] १. जो रूप धारण किए हो । शरीरधारी । २. साक्षात् । गोचर । प्रत्यक्ष । ३. ठोस (को०) ।

मूर्त्तिमान्[2]—संज्ञा पुं० शरीर । जिस्म । देह [को०] ।

मूर्त्तिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिमा गढ़ने की कला । २. चित्रकारी ।

मूर्द्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्धन्] मस्तक । सिर ।

मूर्द्धक—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय ।

मूर्द्धकपारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्द्धकर्परी] दे० 'मूर्द्धकर्णी' ।

मूर्द्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या और कोई वस्तु (जैसे टोकरा) जो धूप, पानी आदि से बचने के लिये सिर पर रखा जाय ।

मूर्द्धकर्परी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छतरी । छाता [को०] ।

मूर्द्धखोल—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्ध + हिं० खोल] दे० 'मूर्द्धकर्णी' ।

मूर्द्धज[1]—वि० [सं०] सिर से उत्पन्न होनेवाला ।

मूर्द्धज[2]—संज्ञा पुं० केश । बाल ।

मूर्द्धज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्द्धज्योतिस्] ब्रह्मरंध्र । (योग) ।

मूर्द्धन्य—वि० [सं०] १. मूर्द्धा से संबंध रखनेवाला । मूर्द्धा संबंधी । २. जिसका उच्चारण मूर्द्धा से हो । ३. सिर या मस्तक में स्थित । ४. सर्वोच्च । सर्वश्रेष्ठ ।

मूर्द्धन्य वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वे वर्ण जिनका उच्चारण मूर्द्धा से होता है ।

विशेष—मूर्द्धन्य वर्ण ये हैं,—ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ ण, र और ष ।

मूर्द्धन्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गंधर्व का नाम । २. वामदेव ऋषि जो ऋग्वेद के दशम मंडल के अष्टम सूक्त के द्रष्टा थे ।

मूर्द्धपिंड—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्धपिण्ड] गजकुंभ । हाथी का मस्तक ।

मूर्द्धपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष पुष्प ।

मूर्द्धरस—संज्ञा पुं० [सं०] भात का फेन ।

मूर्द्धवेष्ठन—संज्ञा पुं० [सं०] शिरोवेष्टन । पगड़ी । साफा [को०] ।

मूर्द्धा—संज्ञा पुं० [सं० मूर्द्धन्] १. मस्तक । सिर । २. मुँह के भीतर तालु के और कंठ के बीच का उठा हुआ भाग जहाँ से मूर्द्धन्य वर्ण का उच्चारण होता है ।

मूर्द्धाभिषिक्त—वि० [सं०] १. जिसके सिर पर अभिषेक किया गया हो । २. सबसे श्रेष्ठ । सर्वमान्य (को०) ।

मूर्द्धाभिषिक्त—संज्ञा पुं० १. क्षत्रिय । २. राजा । ३. एक मिश्र जाति जिसकी उत्पत्ति ब्राह्मण से विवाही क्षत्रिय स्त्री के गर्भ से कही गई है । इस जाति की वृत्ति हाथी, घोड़े और रथ की शिक्षा तथा शस्त्रधारण है ।

मूर्द्धाभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर पर अभिषेक या जलसिंचन होना। (जैसा कि राजाओं के गद्दी पर बैठने के समय होता है।)

मूर्ध, मूर्धा—संज्ञा पुं० [सं० **मूर्धन्**] दे० 'मूर्द्ध', 'मूर्द्धा'। (संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'मूर्द्ध' और 'मूर्ध' दोनों रूप होते हैं।)

मूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरोड़फली नाम की लता जो हिमालय के उत्तराखंड को छोड़ भारतवर्ष में और सब जगह होती है।

विशेष—इसमें सात आठ डंठल निकलकर इधर उधर लता की तरह फैलते हैं। फूल छोटे छोटे, हरापन लिए सफेद रंग के होते हैं। इसके रेशे बहुत मजबूत होते हैं जिससे प्राचीन काल में उन्हें बटकर धनुष की डोरी बनाते थे। उपनयन में क्षत्रिय लोग मूर्वा की मेखला धारण करते थे। एक मन पत्तियों से आधा सेर के लगभग सूखा रेशा निकलता है, जिससे कहीं कहीं जाल बुने जाते हैं। त्रिचिनापल्ली में मूर्वा के रेशों से बहुत अच्छा कागज बनता है। ये रेशे रेशम की तरह चमकीले और सफेद होते हैं। मूर्वा की जड़ औषध के काम में भी आती है। वैद्य लोग इसे यक्ष्मा और खाँसी में देते हैं। आयुर्वेद में यह अति तिक्त, कसैली, उष्ण तथा हृद्रोग, कफ, वात, प्रमेह, कुष्ठ और विषमज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—**देवी। मधुरसा। मोरटा। तेजनी। स्रवा। मधुलिका। धनुश्रेणी। गोकर्णी। पीलुकर्णी। स्रुवा। मूर्वी। मधुश्रेणी। सुसंगिका। पृथक्त्वचा।** दिव्यलता। गोपवल्ली। ज्वलिनी।

मूर्विका, मूर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

मूल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों का वह भाग जो पृथ्वी के नीचे रहता है। जड़। उ०—एहि आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।—बिहारी (शब्द०)। २. खाने योग्य मोटी मीठी जड़। कंद। उ०—संवत सहस मूल फल खाए। साक खाइ सत वर्ष गँवाए।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—कंदमूल।

३. आदि। आरंभ। शुरू। उ०—(क) उमा संभु सीतारमन जो मो पर अनुकूल। तौ बरनौं सो होइ फुर अंत मध्य अरु मूल।—विश्राम (शब्द०)। (ख) सेतु मूल सिव सोभिजै केसव परम प्रकास।—केशव (शब्द०)। ४. आदि कारण। उत्पत्ति का हेतु। उ०—करम को मूल तन, तन मूल जीव जग जीवन को मूल अति आनंद ही धरिबो।—पद्माकर (शब्द०)। ५. असल जमा या धन जो किसी व्यवहार या व्यवसाय में लगाया जाय। असल। पूँजी। उ०—और बनिज में नाहीं लाहा, होत मूल में हानि।—सूर (शब्द०)। ६. किसी वस्तु के आरंभ का भाग। शुरू का हिस्सा। जैसे, भुजमूल। ७. नीवँ। बुनियाद। ८. ग्रंथकार का निज का वाक्य या लेख जिसपर टीका आदि की जाय। जैसे,—इस संग्रह में रामायण मूल और टीका दोनों हैं। ९. सत्ताइस नक्षत्रों में से उन्नीसवाँ नक्षत्र।

विशेष—इस नक्षत्र के अधिपति निर्ऋति हैं। इसमें नौ तारे हैं जिनकी आकृति मिलकर सिंह की पूँछ के समान होती है। यह अधोमुख नक्षत्र है। फलित के अनुसार इस नक्षत्र में जन्म लेनेवाला वृद्धावस्था में दरिद्र, शरीर से पीड़ित, कलानुरागी, मातृपितृहंता और आत्मीय लोगों का उपकार करनेवाला होता है।

१०. निकुंज। ११. पास। समीप। १२. सूरन। जिमीकंद। १३. पिप्पलीमूल। १४. पुष्करमूल। १५. किसी वस्तु के नीचे का भाग या तल। पादप्रदेश। जैसे, पर्वतमूल गिरिमूल। १६. दुर्ग। राष्ट्र। १७. किसी देवता का आदिमंत्र या बीज।

मूल[2]—वि० [सं०] मुख्य। प्रधान। खास। उ०—ल्याउ मूल बल बोलि हमारो सोई सैन्य हजूरी। पर चर दौरि बोलि ल्याए द्रुत सैन्य भयंकर भूरी।—रघुराज (शब्द०)।

मूल(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० **मूल्य**, प्रा० **मुल्ल**] दे० 'मूल्य'। उ०—पाज क सए सोना क टका, चंदन क मूल इंधन बिका।—कीर्ति० पृ० ६८।

मूलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूली। उ०—(क) काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जिनके दसन करालक फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे।—तुलसी (शब्द०)। २. चौंतीस प्रकार के स्थावर विषों में से एक प्रकार का विष। ३. मूल स्वरूप।

मूलक[2]—वि० १. उत्पन्न करनेवाला। जनक। जैसे, अनर्थमूलक, भ्रांतिमूलक। २. मूल नक्षत्र में उत्पन्न।

मूलकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शोभांजन। सहिजन का पेड़।

मूलकपोतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली [को०]।

मूलकर्म—संज्ञा पुं० [सं० **मूलकर्मन्**] १. त्रासन, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरण, आदि का वह प्रयोग जो औषधियों के मूल (जड़ी) द्वारा किया जाता है। मूठ। टोना। टोटका।

विशेष—मनु ने इसे उपपातकों में गिना है।

२. प्रधान कर्म।

विशेष—पूजा आदि में कुछ कर्म प्रधान होते हैं और कुछ अंग।

मूलकार—संज्ञा पुं० [सं०] मूल ग्रंथकर्ता [को०]।

मूलकारण—संज्ञा पुं० [सं०] आदिकारण। प्रधान हेतु। उ०—समस्त शब्दों का मूलकारण ध्वनिमय ओंकार है।—गीतिका (भू०), पृ० १।

मूलकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूल ग्रंथ के पद्य। २. मूलधन की एक विशेष प्रकार की वृद्धि। ३. चंडी। ४. भट्ठी।

मूलकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] मिताक्षरा आदि स्मृतियों में वर्णित ग्यारह प्रकार के पर्णकृच्छ्र व्रतों में से एक व्रत जिसमें मूली आदि विशेष जड़ों के क्वाथ या रस को पीकर एक मास व्यतीत करना पड़ता था।

मूलकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] नींबू।

मूलखानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वर्णसंकर जाति जो पेड़ों की जड़ खोदकर जीविका निर्वाह करती थी।

मूलग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं०] असल ग्रंथ जिसका भाषांतर, टीका आदि की गई हो।

मूलच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जड़ से नाश। २. पूर्ण नाश।

मूलच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मूलच्छेद'।

मूलज—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक।

मूलतः—अव्य० [सं० मूलतस्] १. मूल रूप में। २. आदि में। प्रथमतः [को०]।

मूलतत्व—संज्ञा पुं० [सं० मूलतत्त्व] १. आदि बीज। आधारभूत सिद्धांत। २. मूल पदार्थ। ३. निष्कर्ष। सारांश।

मूलत्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य आदि ग्रहों की कुछ विशेष राशियों में स्थिति। ग्रह जब मूलत्रिकोण में रहते हैं, तब मध्यम बल के माने जाते हैं।

विशेष—रवि का मूलत्रिकोण सिंह राशि, चद्र का वृष, मंगल का मेष, बुध का कन्या, बृहस्पति का धनु, शुक्र का तुला और शनि का कुंभ है। मतलब यह कि इन इन राशियों में यदि ये ये ग्रह होंगे, तो मूलत्रिकोण में कहे जायँगे। (फलित ज्योतिष)।

मूलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंस। २. चौरशास्त्र के प्रवर्तक का नाम [को०]।

मूलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूल धन। २. आदिम द्रव्य या भूत जिससे और द्रव्यों या भूतों की उत्पत्ति हुई हो।

मूलद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान द्वार। सिंहद्वार। सदर फाटक।

मूलद्वारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारावती नगरी का प्राचीन अंश जो आजकल की द्वारका से कुछ दूर प्रायः समुद्र के भीतर पड़ता है।

मूलधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह असल धन जो किसी व्यापार में लगाया जाय। पूँजी।

मूलधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] मज्जा।

मूलनिकृंतन—संज्ञा पुं० [सं० मूलनिकृन्तन] जड़ या मूल का उच्छेद करना [को०]।

मूलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंडूकपर्णी नाम की ओषधि।

मूलपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वंश का आदिपुरुष। सबसे पहला पुरखा जिससे वंश चला हो।

मूलपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करमूल।

मूलपोती—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पोय नामक शाक।

मूलप्रकृति संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संसार की बीजशक्ति या वह आदिम सत्ता, संसार जिसका परिणाम या विकास है। आद्या शक्ति। दुर्गा। २. सांख्य में त्रिगुण—सत्व, रज, तम—की साम्य स्थिति। प्रधान। विशेष दे० 'प्रकृति'।

मूलप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री और धन की रक्षा। धन और दारा का रक्षण [को०]।

मूलफलद—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल।

मूलबंध—संज्ञा पुं० [सं० मूलबन्ध] १. हठयोग की एक क्रिया जिसमें सिद्धासन या वज्रासन द्वारा शिश्न और गुदा के मध्यवाले भाग को दबाकर अपान वायु को ऊपर की ओर चढ़ाते हैं। उ०—सोधै मूलबंध दैं राखै आसन सिद्ध करौ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२८। २. तंत्रोपचार पूजन में एक प्रकार का अंगुलिन्यास।

मूलबद्ध—वि० [सं०] जिसने जड़ जमा लिया हो। बद्धमूल। गड़ा हुआ। जमा हुआ। उ०—यह धारणा पूर्वी (एशियाई) जातियों में अब तक मूलबद्ध है।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ७६।

मूलबर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूलोच्छेदन। २. मूल नक्षत्र।

मूलबल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान सेना। मूल सेना [को०]।

मूलभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण का एक नाम [को०]।

मूलभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना अथवा पुश्तैनी नौकर [को०]।

मूलमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मूलमन्त्र] मुख्य साधन। कुंजी। गुर। उ०—सामंजस्य काव्य और जीवन दोनों की सफलता का मूलमंत्र है।—चिंतामणि, भा० १, पृ० ५५।

मूलरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] राजधानी या शासन के केंद्र स्थान की रक्षा।

मूलरस—संज्ञा पुं० [सं०] मोरट लता। मूर्वा।

मूलवचन—संज्ञा पुं० [सं०] मूलग्रंथ वाक्य [को०]।

मूलवर्ती—वि० [सं० मूलवर्तिन्] मूल। प्रधान। उ० परंतु हिंदी साहित्य की नव्यतम भावभूमिका में प्रवेश कर उसके मूलवर्ती तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न अवश्य किया है।—नया०, पृ० १०।

मूलवाप—संज्ञा पुं० [सं०] मूल या जड़ को रोपनेवाला। मूल को लगानेवाला [को०]।

मूलवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] मूलधन।

मूलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वादशाक्षर मंत्र। द्वादशाक्षरी—ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

मूलविभुज—संज्ञा पुं० [सं०] रथ [को०]।

मूलविष—स्त्री० पुं० [सं०] जिसकी जड़ विषैली हो। जैसे, कनेर।

मूलव्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] वध का दंड। मारण।

मूलव्रती—संज्ञा पुं० [सं० मूलव्रतिन्] केवल कंद, मूल खाकर रहनेवाला तपस्वी [को०]।

मूलशाकट—संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें मूली, गाजर आदि मोटी जड़वाले पौधे बोए जायँ।

मूलशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] पुंडरीक वृक्ष।

मूलसर्वास्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक संप्रदाय।

मूलसिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० मूलसिद्धान्त] आधारभूत नियम या सिद्धांत। उ०—उसके मूल सिद्धांत वे ही थे जो श्वेतपत्र के प्रारूप थे।—भारतीय०, पृ० १।

मूलस्थली—संज्ञा पुं० [सं०] थाला। आलबाल। उ०—कहूँ वृक्ष मूलस्थली तोय पीवैं। महामत्त मातंग सीमा न छीवैं।—केशव (शब्द०)।

मूलस्थान—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आदिस्थान। बाप दादा की जगह। पूर्वजों का स्थान। २. प्रधान स्थान। ३. भीत। दीवार। ४.

ईश्वर। ५. मुलतान नगर जहाँ भास्कर तीर्थ था। ६. कौटिल्य के अनुसार राजधानी। शासन का मुख्य केंद्र।

मूलस्थानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरी।

मूलस्थायी संज्ञा पुं० [सं० मूलस्थायिन्] शिव।

मूलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं० मूलस्रोतस्] झरना, नदी आदि की मुख्य धारा या उद्गम स्थान [को०]।

मूलहर[1]—वि० [सं०] समूल उन्मूलन करनेवाला। जड़ से उखाड़ देनेवाला [को०]।

मूलहर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह राजा जो फजूल खर्च करता हो। वह जिसने अपना संपूर्ण धन नष्ट कर दिया हो।

मूला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सतावर। २. मूल नक्षत्र। ३. पृथ्वी। (डिं०)।

मूला[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मौला नाम की बेल जो वृक्षों पर चढ़कर उन्हें बहुत हानि पहुँचाती है। विशेष दे० 'मौला'।

मूलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] योग में माने हुए मानव शरीर के भीतर के छह् चक्रों में से एक चक्र जिसका स्थान गुदा शिश्न के मध्य में है। इसका रंग लाल और देवता गणेश माने गए हैं। इसके दलों की संख्या ४ और अक्षर व, श, ष, तथा स हैं।

मूलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मूली [को०]।

मूलामना—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें वायु के कुपित होने पर हाथ और पैरों में कंपन होता है। उ०—जो वायु पैर, जंघा, उरु और हाथ के मूल में कंपन करे उसको मूलामना रोग कहते हैं।—माधव०, पृ० १४६।

मूलायतन—संज्ञा पुं० [सं०] मूल आयतन। मूल स्थान या गृह।

मूलाबाधक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार राष्ट्रशक्ति के केंद्र को घेरनेवाला।

मूलिक[1]—वि० [सं०] १. मूल संबंधी। मूल का। २. मुख्य। प्रधान।

मूलिक[2]—संज्ञा पुं० कंदमूल खाकर रहनेवाला संन्यासी।

मूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ओषधियों की जड़। जड़ी। उ०—वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानि कै। बलिदान पूजा मूलिका मनि साधि राखी आनि कै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आयो सदन सहित सोवत ही जौ लौ पलक परै न। जिसे कुबेर निसि मिलै मूलिका कीन्हीं विनय सुबेन।—तुलसी (शब्द०)।

मूलिन[1]—वि० [सं०] मूल से उत्पन्न।

मूलिन[2]—संज्ञा पुं० वृक्ष [को०]।

मूलिनीवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार ये सोलह प्रकार के मूल (जड़)—नागदंती, श्वेतवचा, श्यामा, त्रिवृत्, वृद्धदारका, सप्तला, श्वेतापराजिता, मूषकपर्णी, गोडुंबा, ज्योतिष्मती, बिंबी, शणपुष्पी, विषाणिका, अश्वगंधा, द्रवंती और क्षीरिणी।

मूली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मूलक] १. एक पौधा जो अपनी लंबी मुलायम जड़ के लिये बोया जाता है। यह जड़ खाने में मीठी, चर्परी और तीक्ष्ण होती है।

विशेष—मूली साल में दो बार बोई जाती है, इससे प्रायः सब दिन मिलती है। मूली की जड़ नीचे की ओर पतली और ऊपर की ओर मोटी होती जाती है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। साधारणतः मूली एक बालिश्त लंबी और दो ढाई अंगुल मोटी होती है। पर बड़ी मूली हाथ हाथ भर लंबी और चार पाँच अंगुल तक मोटी होती है। नेपाल देश में उत्पन्न होने के कारण इसे नेबाड़ या नेबार भी कहते हैं। यह खाने में मीठी होती है और इसमें कड़ुवापन या चरपराहट नहीं होती। मूली का रंग सफेद होता है; पर लाल रंग की मूली भी अब हिंदुस्तान में बोई जाने लगी है, जिसे बिलायती मूली कहते हैं। इसकी जड़ से सरसों के से लंबे लंबे पत्ते ऊपर की ओर निकलते हैं। बीज छोटे और काले होते हैं। इन बीजों में से एक प्रकार का दुर्गंधयुक्त तेल निकलता है, जिसमें गंधक का बहुत कुछ अंश रहता है। मूली अधिकतर कच्ची या शाक के रूप में पकाकर खाई जाती है। बीज दवा के काम में आते हैं। मूली साधारणतः उत्तेजक, मूत्रकारक और अश्मरीनाशक होती है। मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में इसका सेवन हितकर है।

भावप्रकाश के अनुसार छोटी मूली कटुरस, उष्णवीर्य, रुचिकारक, लघु, पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वरप्रसादक तथा ज्वर, श्वास, नासारोग, कंठरोग और चक्षुरोग को दूर करनेवाली है। बड़ी मूली या नेवाड़ रूखी, उष्णवीर्य, गुरु और त्रिदोषनाशक है।

पर्या०—(छोटी मूली) शालाक। कटुक। मिश्र। बालेय। मरुसंभव। चाणक्यमूलक। मूलकपोतिका।

मुहा०—(किसी को) **मूली गाजर समझना** = अति तुच्छ समझना। नाचीज गिनना।

२. एक प्रकार का बाँस। ३. जड़ी बूटी। मूलिका।

मूली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्येष्ठी। २. मत्स्यपुराण के अनुसार एक नदी का नाम। ३. छोटी छिपकिली (को०)।

मूली[3]—संज्ञा पुं० [सं० मूलिन्] वृक्ष। पेड़ [को०]।

मूलुक्का†—संज्ञा पुं० [अ० मुल्क] दे० 'मुल्क'। उ०—आवंता तुरक्का पाए मुलुक्का, पग्र भरे पथर चूरीआ।—कीर्ति०, पृ० ४६।

मूलेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। नरेश। २. भारतीय लोमशा। जटामांसी [को०]।

मूलोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्याज का मूलधन के बराबर हो जाना।

मूल्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के बदले में मिलनेवाला धन। दाम। कीमत आदि। जैसे,—एक सेर चाय का मूल्य दस रुपए। उ० वास्तव में अर्थ प्रायः सर्वदा द्रव्य के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। और तब उसे मूल्य कहते हैं।—अर्थ० (वै०), पृ० १८। २. वेतन। भृति (को०)। ३. मूल। मूलधन (को०)। ४. लाभ। प्राप्ति। अर्जन। ५. उपयोगिता (को०)।

यौ०—**मूल्यरहित** = (१) बिना मूल्य का। जिसका कुछ मूल्य न हो। निकम्मा (२) व्यर्थ। बेकार। **मूल्यवृद्धि** = बाजार में वस्तुओं का दाम बढ़ जाना। **मूल्यहीन** = दे० 'मूल्यरहित'।

मूल्य[2]—वि० १. प्रतिष्ठा के योग्य। कदर के लायक। २. रोपने या लगाने योग्य (पौधा)। ३. मूल में होनेवाला। जो मूल में हो (को०)। ४. जड़ से उखाड़ने योग्य। (खेत की फसल, जैसे, उर्द, मूँग आदि)।

मूल्यक—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य। धन। दाम। कीमत [को०]।

मूल्यवान्—वि० [सं० मूल्यवत्] जिसका दाम बहुत अधिक हो। बड़े दाम का। कीमती।

मूल्यांकन—संज्ञा पुं० [सं० मूल्याङ्कन] १. किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित या निश्चित करना। २. किसी विशिष्ट क्षेत्र में किसी व्यक्ति अथवा कृति की उपयोगिता एवं महत्व का आकलन करना। उ०—रहीम हिंदी जगत् के ख्यातिप्राप्त कवि हैं, किंतु अभी तक उनकी काव्यगत विचारधारा का मूल्यांकन नहीं हो पाया था।—अकबरी०, पृ० ८।

मूवमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रयत्न या आंदोलन जो किसी उद्देश्य की सिद्धि या अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये एक या अधिक व्यक्ति करते हैं। आंदोलन। जैसे,—स्वदेशी मूवमेंट; नान-कोआपरेशन मूवमेंट।

मूश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुल० सं० मूष (=चूहा)] मूषक। चूहा [को०]।

यौ०—मूशदान = दे० 'चूहादान'।

मूशली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली।

मूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा। २. गोली खिड़की। गवाक्ष (को०)। ३. सोना आदि गलाने की कुल्हिया (को०)।

मूषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा। उ०—खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।—तुलसी (शब्द०)। २. तस्कर। चोर (को०)।

मूषककर्णी संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी नाम की लता। आखुकर्णी।

मूषकवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

मूषकमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रुतश्रेणी नाम की लता।

मूषण—संज्ञा पुं० [सं०] चुराना। मूसना [को०]।

मूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोना आदि गलाने की घरिया। तैजसावर्तिनी। २. देवताड़ वृक्ष। ३. गोखरू का पौधा। ४. चुहिया। मूषिका (को०)। ५. गवाक्ष। झरोखा।

मूषाकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी लता।

मूषातुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] नीला थोथा। तूतिया।

मूषिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा। मूसा। २. सिरस का वृक्ष। शिरीष वृक्ष (को०)। ३. मूसनेवाला। तस्कर। चोर (को०)। ४. महाभारत के अनुसार दक्षिण के एक जनपद का प्राचीन नाम।

मूषिकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में होनेवाला एक प्रकार का तृण।

पर्या०—न्यग्रोधी। चित्रा। उपचित्रा। द्रवंती। सम्बरी। वृषा। वृषपर्णी। आखुपर्णी।

८—२९

मूषिकरथ—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश [को०]।

मूषिकविषाण—संज्ञा पुं० [सं०] चूहे की सींग जैसी अनहोनी वा असंभव बात [को०]।

मूषिकसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र का एक साधन जिसके सिद्ध हो जाने से, कहा जाता है कि, मनुष्य चूहे की बोली समझकर उससे शुभ अशुभ फल कह सकता है।

मूषिकस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वल्मीक। बाँबी [को०]।

मूषिकांक—संज्ञा पुं० [सं० मूषिकाङ्क] गणेश।

मूषिकांचन—संज्ञा पुं० [सं० मूषिकाञ्चन] गणेश।

मूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा चूहा। चुहिया। २. मूसाकानी लता। ३. तैजसावर्तनी। मूषा (को०)। ४. गवाक्ष। खिड़की (को०)।

मूषिकाद—संज्ञा पुं० [सं०] मार्जार। बिडाल [को०]।

मूषिकार—संज्ञा पुं० [सं०] नर चूहा। चूहा [को०]।

मूषिकाराति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मूषिकाद'।

मूषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोना आदि गलाने की घरिया। २. बड़ा चूहा।

मूषीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मूषीका] बड़ा चूहा [को०]।

मूषीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] घरिया में धातु आदि गलाने की क्रिया।

मूष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त व्यभिचार से उत्पन्न पुरुष। वह जिसके बाप का पता न हो। दोगला।

मूस—संज्ञा पुं० [सं० मूष] चूहा। उ०—मूस मारि कै दीन्ह्यो डारि।—हम्मीर०, पृ० १०।

मूसदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मूस + फ़ा० दानी (सं० आधान ?)] चूहा फँसाने का पिंजड़ा। चूहादान।

मूसना—क्रि० स० [सं० मूषण] चुराकर उठा ले जाना। उ०—(क) मूसत पाँच चोर करि दंगा। रहत हितू ह्वै निसि दिन संगा।—रघुनाथदास (शब्द०)। (ख) भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ८११। (ग) सुनितय बिरद रूप रस नागरि लीन्ही पलटि कछू सी। तेरे हेत प्रेम संपति सखि सो संपति केहि मूसी।—सूर (शब्द०)। (घ) दिया मँदिर निसि करै उजेरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—ले जाना।—लेना।

मूसर—संज्ञा पुं० [हिं० मूसर] १. दे० 'मूसल'। उ०—गुन ज्ञान गुमान भँभेरि बड़ी कलपद्रुम काटत मूसर को।—तुलसी (शब्द०)। २. गँवार। अपढ़। असभ्य।

मूसरचंद—संज्ञा पुं० [हिं० मूसर + चंद्र] १. अपढ़। गँवार। असभ्य। जड़। २. हट्टा कट्टा पर निकम्मा। मुसंडा।

मूसल—संज्ञा पुं० [सं० मुशल] १. धान कूटने का औजार जो लंबा, मोटा डंडा सा होता है और जिसके मध्य भाग में पकड़ने के लिये खड्डा सा होता है और छोर पर लोहे की साम जड़ी

रहती है। २. एक अस्त्र जिसे बलराम धारण करते थे। ३. राम वा कृष्ण के पद का एक चिह्न।

मुहा०—मूसल से या मूसलों ढोल बजाना = अत्यंत आनंद मनाना। अत्यधिक प्रसन्नता दिखाना।

मूसलधार—क्रि० वि० [हिं० मूसल + धार] इतनी मोटी धार से, जितना मोटा मूसल होता है। बहुत अधिक वेग से। धारासार। जैसे, मूसलधार पानी बरसना। उ०—उसने आते ही व्रजमंडल को घेर लिया और गरज गरज बड़ी बड़ी बूँदों लगा मूसलधार जल बरसाने।—लल्लू (शब्द०)।

मूसलमानⓅ—संज्ञा पुं० [अ० मुसल्मान] दे० 'मुसलमान'। उ०—सेवा मानत भेदियन हिंदू मूसलमान।—पृ० रा०, ६१।४६६।

मूसला—संज्ञा पुं० [हिं० मूसल] वह जड़ जो मोटी और सीधी कुछ दूर तक जमीन में चली गई हो, जिसमें इधर उधर सूत या शाखाएँ न फूटी हों। झखरा का उलटा।

विशेष—जड़ दो प्रकार की होती है—एक झखरा दूसरी मूसला।

मूसली—संज्ञा पुं० [सं० मूशली] १. हल्दी की जाति का एक पौधा।

विशेष—इसकी जड़ औषध के काम में आती है और पुष्टई मानी जाती है। यह पौधा सीड़ की जमीन में उगता है और नदियों के कछारों में भी पाया जाता है। बिलासपुर जिले में अमरकंटक पहाड़ पर नर्मदा के किनारे यह बहुत मिलता है।

२. खल, इमामदस्ता आदि में किसी वस्तु को कूटने की छोटी मुँगरी या डंडा।

मूसा¹—संज्ञा पुं० [सं० मूषक] चूहा।

मूसा²—स्त्री० पुं० [इबरानी] यहूदी लोगों के एक पैगंबर जिनको खुदा का नूर दिखाई पड़ा था। किताब या पैगंबरी मतों का आदि प्रवर्तक इन्हीं को समझना चाहिए। उ०—यूसुफ नबी को अमर न बारा। जेहि घर माँ मूसे अवतारा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २६२।

मुहा०—मूसा आग लेने गए थे पैगंबरी मिल गई = करने क्या गए और क्या हो गया। मामूली चीज की कामना से जाने पर किसी को बहुत बड़ी वस्तु का मिल जाना। उ०—यजदानी इन्कार तो कर रहे थे, पर छाती फूल जाती थी। मूसा आग लेने गए थे, पैगंबरी मिल गई।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

मूसाई—संज्ञा पुं० [इब० मूसा + ई (प्रत्य०)] मूसा द्वारा प्रवर्तित मत के अनुयायी। यहूदी। उ०—यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्मपुस्तक में आदम खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया पर नर में नारायण की दिव्य कला का दर्शन भारतीय भक्तिमार्ग में ही दिखाई पड़ा।—रस०, पृ० ५५।

मूसाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० मूषाकर्णी] औषध में प्रयुक्त होनेवाली एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत की गीली भूमि में चौमासे में पाई जाती है। चूहाकानी। आखुकर्णी।

विशेष—इस लता की पत्तियाँ आकार में गोल और प्रायः आधा से डेढ़ इंच तक की होती हैं, जो देखने में चूहे के कान के समान, बीच में कमानदार और रोएँदार होती हैं। इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं और इसकी गाँठों में से जड़ निकलकर जमीन में जम जाती है। इसमें बैंगनी या गुलाबी रंग के छोटे छोटे फूल और चने के समान गोल फल लगते हैं जो पहले हरे अथवा बैंगनी रंग के और पकने पर भूरे रंग के हो जाते हैं। ये फल चीरने पर दो दलों में विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक दल में से एक बीज निकलता है। इसके प्रायः सभी अंग औषधि के रूप में काम में आते हैं। विशेषतः चूहे के विष को दूर करने के लिये इसे लगाया और इसका काढ़ा पीया जाता है। वैद्यक में यह चरपरी, कड़वी, कसैली, शीतल, हलकी, दस्तावर, रसायन तथा कफ, पित्त, कृमि, शूल, ज्वर, ग्रंथि, सूजाक, प्रमेह, पांडु, भगंदर और कोढ़ आदि रोगों को दूर करनेवाली मानी जाती है। मूत्ररोग, उदररोग, हृदय-रोग आदि में भी इसका व्यवहार होता है और यह रक्तशोधक भी होती है। यह बड़ी और छोटी दो प्रकार की होती है। इसके अतिरिक्त इसके और भी कई भेद होते हैं, जिनमें से एक भेद के पत्ते गोभी के पत्तों की तरह लंबे और किनारे पर कटावदार होते हैं। एक और भेद क्षुप जाति का होता है, जो एक से चार फुट तक ऊँचा होता है। इसका डंठल पीला होता है, जिसमें से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं। इन सबका व्यवहार पथरी के समान होता है। इसे 'चूहाकानी' भी कहते हैं।

पर्या०—आखुकर्णी। द्रवंती। मूषिकपर्णी। मूषिकाह्वदा। उंदरकर्णी।

मूसीकार—संज्ञा पुं० [अ० मूसीकार] संगीत का अच्छा जानकार। संगीतज्ञ [को०]।

मूसीकी—संज्ञा स्त्री० [अ० मूसीकी] संगीतकला। गानविद्या [को०]।

मूहाँ—संज्ञा पुं० [सं० मुख] दे० 'मुँह'। उ०—देखतेहि काफिर मूह फिरावे।—कबीर सा०, पृ० १५१०।

मृकंडु—संज्ञा पुं० [सं० मृकण्डु] एक मुनि, जिनके पुत्र मार्कंडेय ऋषि थे।

मृगंकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मृगाङ्क ?] हिरण्यकशिपु दानव। उ०—मृगंकस्य ऊरं, नर्षं तोरि तूरं।—पृ० रा०, २।१०।

मृगंमालⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मृगमाला] मृगसमूह। उ०—कहूँ बीन वादित्र बाजंत ऐसी। सुने राग मोहं मृगंमाल बैसी।—ह० रासो०, पृ० ३७।

मृग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मृगी] १. पशुमात्र, विशेषतः वन्य पशु। जंगली जानवर। २. हिरन।

विशेष—मृग नौ प्रकार के कहे गए हैं—मसूरु, रोहित, न्यंकु, संबर, वभ्रुण, रुरु, शश, एण और हरिण। विशेष दे० 'हिरन'।

३. हाथियों की एक जाति जिसकी आँखें कुछ बड़ी होती है और गंडस्थल पर सफेद चिह्न होता है। उ०—च्यारि प्रकार पिष्षि बन वारन। भद्र मंद मृग जाति सधारन।—पृ० रा०, २७।४। ४. मार्गशीर्ष। अगहन का महीना। ५. मृगशिरा नक्षत्र। ६. एक यज्ञ का नाम। ७. मकर राशि। ८. अन्वेषण।

खोज। ९. कस्तूरी का नाफा। १०. ज्योतिष में शुक्र की नौ वीथियों में से आठवीं वीथी जो अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में पड़ती है। ११. पुरुष के चार भेदों में से एक।

विशेष—मृग जाति का पुरुष, मधुरभाषी, बड़ी आँखोंवाला, भीरु, चपल, सुंदर और तेज चलनेवाला होता है। यह चित्रिणी स्त्री के लिये उपयुक्त कहा गया है।

१२. वैष्णवों के तिलक का एक भेद। १३. चंद्रमा का लांछन। चंद्रमा में मृग का चिह्न (को०)।

मृगकानन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्यान। उपवन। २. आखेटोपयोगी पशुओं से भरा हुआ बन [को०]।

मृगकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

मृगगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक औषध। वायविडंग [को०]।

मृगघर्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कस्तूरी का नाफा। २. जवादि नामक गंधद्रव्य।

मृगचर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मृगछाला। हिरन का चमड़ा।

विशेष—यह पवित्र माना जाता है। इसका व्यवहार उपनयन संस्कार में होता है और इसे साधु संन्यासी बिछाते हैं।

मृगचर्या—संज्ञा पुं० [सं०] मृग की तरह का रहन सहन जो एक प्रकार की तपस्या या आत्मनिग्रह है [को०]।

मृगचारी—वि० [सं० मृगचारिन्] मृगचर्या करनेवाला। हिरण की तरह जीवन बितानेवाला [को०]।

मृगचेटक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधबिलाव। मुश्क बिलाव। खट्टास।

मृगछाला—संज्ञा स्त्री० [सं० मृग + हिं० छाला] मृगचर्म।

मृगछौना—संज्ञा स्त्री० [सं० मृग + हिं० छौना] [स्त्री० मृगछौनी] मृगशावक। उ०—प्यारी अंक दुरि रही ऐसें, जैसे केहरि क्रंदन सुनि मृगछौनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७३।

मृगजरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जिसका व्यवहार रक्तपित्त में होता है।

विशेष—शोधा हुआ पारा और मृत्तिका लवण (लोनी) बासे के रस में एक दिन तक घोटने से यह तैयार होता है।

मृगजल—संज्ञा सं० [सं०] मृगतृष्णा। मृगतृष्णा की लहरें। उ०—(क) सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहि सस सीस बिषाना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—**मृगजल स्नान** = मृगजल में नहाना। अनहोनी बात।

मृगजा—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

मृगजालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरनों को फँसाने का जाल।

मृगजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] शिकारी। अहेरी [को०]।

मृगजंभ—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगजृम्भ] खोए या चोरी गए हुए धन की खोज।

मृगटंक—संज्ञा पुं० [सं० मृगटङ्क] चंद्रमा।

मृगणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपहृत धन की खोज। २. खोज। अन्वेषण।

मृगतृषा—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगतृषा] दे० 'मृगतृष्णा'।

मृगतृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल वा जल की लहरों की वह मिथ्या प्रतीति जो कभी कभी ऊसर मैदानों में भी कड़ी धूप पड़ने के समय होती है। मृगमरीचिका।

विशेष—गरमी के दिनों में जब वायु की तहों का घनत्व उष्णता के कारण असमान होता है, तब पृथ्वी के निकट की वायु अधिक उष्ण होकर ऊपर को उठना चाहती है, परंतु ऊपर की तहें उसे उठने नहीं देतीं, इससे उस वायु की लहरें पृथ्वी के समानांतर बहने लगती हैं। यही लहरें दूर से देखने में जल की धारा सी दिखाई देती हैं। मृग इससे प्रायः धोखा खाते हैं, इससे इसे मृगतृष्णा, मृगजल आदि कहते हैं।

मृगतृष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मृगतृष्णा'। उ०—चारो ओर से काट काटकर अपने को अलग करती हुई, और एकाकी बनकर जिधर भागती हुई चली आई हूँ, वहाँ देखती हूँ रेत, रेत, रेत, केवल मृगतृष्णिका।—सुखदा पृ० १३।

मृगतृष्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगतृष्णा] दे० 'मृगतृष्णा'। उ०—मृगतृष्ना सम जग जिय जानी। तुलसी ताहि संत पहिचानी।—तुलसी ग्रं०।

मृगदंशक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

मृगदर्प—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी [को०]।

मृगदाव—संज्ञा पुं० [सं० मृगदाव (= मृगों का वन)] १. वह बन जिसमें बहुत मृग हों। २. काशी के पास 'सारनाथ' नामक स्थान का प्राचीन नाम। (कहा जाता है कि वहाँ वन में मृग स्वच्छंद विचरण किया करते थे)।

मृगद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] शिकारी।

मृगद्विष्—संज्ञा पुं० [सं०] शेर। सिंह [को०]।

मृगदृशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरन जैसी आँखोंवाली स्त्री।

मृगदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] शेर। बाघ [को०]।

मृगधर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

मृगधूम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

मृगधूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल।

मृगधूर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मृगधूर्त' [को०]।

मृगनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरन की आँखोंवाली स्त्री।

मृगनयनि, मृगनयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मृगनयना'। उ०—चंद्रवदनि की सी अलकावलि, लहराती थी लोल शैवलिनि। कोमल चंचल चरणों श्यामल, किसी मृगनयनि की थी दृगकनि।—मधुज्वाल, पृ० १७।

मृगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

विशेष—'मृग' शब्द के आगे पति, नाथ, राज आदि शब्द लगने से सिंहवाचक शब्द बनता है।

मृगनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

मृगनाभिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

मृगनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र से युक्त रात्रि ।
विशेष—अगहन महीने के बीसवें दिन के २० दंड के उपरांत से लेकर संक्रांति तक के काल को मृगनेत्रा कहते हैं, जिसमें श्राद्ध नवान्न आदि वर्जित हैं ।

मृगनैनी—वि० स्त्री० [सं० मृग+नयन] जिसकी आँखें हिरन के समान सुंदर हों । बहुत सुंदर नेत्रोंवाली स्त्री । उ०—वासों मृग अंक कहैं तोसों मृगनैनी सब, वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिए ।—केशव (शब्द०) ।

मृगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह । उ०—कटि मृगपति को चरम चरन मैं घुंघरू धारत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७ । २. मृगशिरा नक्षत्र का स्वामी । चंद्रमा । उ०—मृगनयनी, मृगपति मुखी मृगमद तिलक निलाट ।—ढोला०, दू० ४६६ ।
यौ०—मृगपतिमुखी = चंद्रमुखी ।

मृगपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृग का पैर । २. मृग के खुर का चिह्न या गड्ढा जो जमीन पर पड़ गया हो ।

मृगपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरीमृग ।

मृगपिप्लु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

मृगपोत—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशावक । मृगछौना ।

मृगप्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह । शेर [को०] ।

मृगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूतृण । २. जलकदली ।

मृगबंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगबन्धिनी] हिरन पकड़ने का जाल [को०] ।

मृगबधाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] बहेलिया । व्याध । शिकारी [को०] ।

मृगभक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी । २. इंद्रवारुणी । इंद्रायन ।

मृगभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों की एक जाति । उ०—भद्र और मृगभद्र आदि बहु जे जग जाति विख्याती ।—रघुराज (शब्द०) ।

मृगमंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगमन्दा] कश्यप ऋषि की क्रोधवशा नाम्नी पत्नी से उत्पन्न दस कन्याओं में से एक जिससे ऋक्ष, सृमर और चमर जाति के मृग उत्पन्न हुए थे ।

मृगमंद्र—संज्ञा पुं० [सं० मृगमन्द्र] हाथियों की एक जाति ।

मृगमत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल ।

मृगमद—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी । उ०—मृगनयनी मृगपति मुखी मृगमद तिलक निलाट ।—ढोला०, दू० ४६६ ।
यौ०—मृगमदमय = कस्तूरी से युक्त । उ०—अवलोकने विलोकिए मृगमदमय घनसार ।—केशव (शब्द०) ।

मृगमदवासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी की तरह गंधवाली—कस्तूरी मल्लिका ।

मृगमदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी ।

मृगमरीचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगतृष्णा ।

मृगमातृक—संज्ञा पुं० [सं०] लंबोदर मृग । कस्तूरी मृग ।

मृगमास—संज्ञा पुं० [सं०] मार्गशीर्ष मास । अगहन [को०] ।

मृगमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । उ०—मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिए चंद्र निशाचर पद्धति को ।—केशव (शब्द०) ।

मृगमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मकर राशि ।

मृगमेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी । मुश्क । उ०—(क) सब ओर लिप्यो मृगमेद महा । तम हेत भयो दिग भेद कहा ।—गुमान (शब्द०) । (ख) पुन्यन के जल घोरि घने घनसार मिले मृगमेद दहावत ।—गुमान (शब्द०) । (ग) चोवा मिलै मृगमेद घसै घनसार सों केसरि गारत डोलैं ।—देव (शब्द०) ।

मृगया—संज्ञा पुं० [सं०] शिकार । अहेर । आखेट । उ०—(क) हम छत्री मृगया बन करहीं । तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं । —तुलसी (शब्द०) । (ख) एक दिवस मृगया को निकस्यो कंठ महामणि लाइ ।—सूर (शब्द०) । (ग) भूलि परी मृग को मृग चाहि भई मृगया की मृगी मृगनैनी ।—देव (शब्द०) ।
यौ०—मृगयाक्रीड़न = शिकार खेलने की प्रसन्नता । मृगयाधर्म = शिकार खेलने का नियम । मृगयायान = मित्रों के साथ सदलबल शिकार खेलने जाना । मृगयारस = शिकार खेलने का आनंद । मृगयावन = शिकारगाह । मृगयाव्यसन = आखेट का व्यसन या आदत ।

मृगयु, मृगयू—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा । २. गीदड़ । ३. व्याध ।

मृगयूथ—संज्ञा पुं० [सं०] मृगों का समूह । हिरनों का झुंड [को०] ।

मृगरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेइया नामक पौधा । सहदेवी । महाबला ।

मृगराज—संज्ञा पुं० [सं० मृगराट्, मृगराज्] १. सिंह । २. व्याघ्र (को०) । ३. चंद्रमा (को०) । ४. सिंह राशि या लग्न (को०) ।

मृगराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता ।

मृगरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह । शेर । २. सिंह राशि वा लग्न [को०] ।

मृगरोग—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का एक घातक रोग जिसमें वे जल्दी जल्दी साँस लेते हैं और उनके नथुने सूज आते हैं ।

मृगरोचन—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी । मुश्क । उ०—मैं मृगरोचन और तीर्थ की मिट्टी और दूब मंगल उपचार की सामग्री ले आऊँ ।—शकुंतला, पृ० ६८ ।

मृगरोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला अंगरावा [को०] ।

मृगरोम—संज्ञा पुं० [सं०] ऊन [को०] ।
यौ०—मृगरोमज = ऊन का वस्त्र । ऊनी कपड़ा ।

मृगलच्छन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृगलाञ्छन] दे० 'मृगलांछन' । उ०—मृगपति जित्यो सुलंक सों, मृगलच्छन मृदु हास । मृग मद जित्यो सुनैन सों मृगमद जित्यो सुबास ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४७ ।

मृगलक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं० मृगलक्ष्मन्] दे० 'मृगलांछन' [को०] ।

मृगलांछन—संज्ञा पुं० [सं० मृगलाञ्छन] १. चंद्रमा । २. मृगशिरा ।

मृगला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० मृग+ला (प्रत्य०)] १. दे० 'मृग' । २. मृग के समान चंचल पंच कर्मेंद्रियाँ (लाक्ष०) । उ०—

काया कठिन कमान है, खाँचै बिरला कोइ। मारै पंचौ मृगला दादू सूरा सोइ।—दादू०, पृ० ३८०।

मृगलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा का धब्बा।

मृगलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

मृगलोचना—वि० स्त्री० [सं०] हरिण के समान नेत्रवाली (स्त्री)।

मृगलोचनी—वि० स्त्री० दे० 'मृगलोचना'।

मृगलोमिक—वि० [सं०] ऊन का। ऊर्णानिर्मित। ऊनी।

मृगव—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

मृगवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगी। हरिणी [को०]।

मृगवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु तृण।

मृगवारिⓊ—संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा का जल। उ०—सूते सपने ही सहै संसृत संताप रे। बूड़ो मृगवारि खायो जेवरि के साँप रे।—तुलसी (शब्द०)।

मृगवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। पवन। २. स्वाति नाम का नक्षत्र [को०]।

मृगवीथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मृगवीथी'।

मृगवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्योतिष के अनुसार शुक्र की नौ वीथियों में से एक जिसमें शुक्र ग्रह अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल पर आता है। २. चंद्रमा की वह स्थिति जब वह श्रवण, शतभिषा और पूर्व भाद्रपदा से युक्त होता है (को०)।

मृगव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आखेट। मृगया। २. (धनुर्विद्या) लक्ष्य। निशाना [को०]।

मृगव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिकारी। अहेरी। २. एक नक्षत्र। ३. शिव [को०]।

मृगशाव, मृगशावक—संज्ञा पुं० [सं०] मृगछौना। हिरन का कोमल बच्चा।

यौ०—**मृगशावकनैनी** = मृगछौने की तरह चंचल नेत्रोंवाली।

मृगशिरा—संज्ञा पुं० [सं० मृगशिरस्] सत्ताइस नक्षत्रों में से पाँचवाँ नक्षत्र।

विशेष—इसके अधिपति चंद्रमा हैं और यह आड़ा या तिर्यङ्मुख नक्षत्र है। यह तीन तारों से मिलकर बना हुआ और बिल्ली के पैर के आकार का है। आकाश में यह नक्षत्र कन्या लग्न के बाईस पल बीतने पर उदित होता है। मृगशिरा नक्षत्र के पूर्वार्ध में (अर्थात् ३० दंड के बीच) वृष राशि और अपरार्ध में मिथुन राशि होती है। इस नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य मृगचक्षु, अति बलवान्, सुंदर कपोलवाला, कामुक, साहसी, स्थिरप्रकृति, मित्र पुत्र से युक्त और थोड़ा धनवान् होता है।

मृगशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र। २. अगहन का महीना। मार्गशीर्ष (को०)।

मृगश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] बाघ [को०]।

मृगसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उन्नीस दिन का एक सत्र।

मृगहा—संज्ञा पुं० [मृगहन्] शिकारी [को०]।

मृगांक—संज्ञा पुं० [सं० मृगाङ्क] १. चंद्रमा। उ०—दुजराजा शशधर उदधितनय ससांक मृगांक।—नंद० ग्रं०, पृ० ११६। २. एक रस जो सुवर्ण और रत्नादि से बनता है और क्षय रोग में विशेष उपकारी होता है। विशेष दे० 'मृगांकरस'। उ०—(क) राम की रजाइ ते रसाइनी समीर सूनु उतरि पयोधि पार सोधि के ससांक सो। जातुधान बुट पुट पाक लंक जातरूप रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) किधौं विराट के मुरारि राजरोग जानि जू। निमित्त तासु बैद ज्यौं जरचौ मृगांक ठानि जू।—रघुनाथदास (शब्द०)।

मृगांकरस—संज्ञा पुं० [सं० मृगाङ्करस] एक प्रकार का रसौषध।

विशेष—पारा एक भाग, सोना एक भाग, मोती दो भाग, गंधक दो भाग और सोहागा एक भाग, इन सब चीजों को काँजी में पीसकर नमक के भाँड़े में रखकर चार पहर पकाते हैं। इस रस को चार रत्ती की मात्रा में सेवन करने से राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है। राजमृगांक और महामृगांक रस भी होते हैं, जिनमें द्रव्यों की संख्या अधिक होती है।

मृगांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगाङ्गना] मृगी। हरिणी।

मृगांडजा—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगाण्डजा] कस्तूरी। मुश्क [को०]।

मृगांतक—संज्ञा पुं० [सं० मृगान्तक] चीता [को०]।

मृगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० मृग] हिरन। मृग।

मृगा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई का पौधा।

मृगाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिण के से नेत्रोंवाली स्त्री।

मृगाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] मृगछाला। मृगचर्म [को०]।

मृगाजीव—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वारुणी लता। २. कस्तूरी। ३. व्याध। शिकारी (को०)।

मृगाद, मृगादन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह, चीता, बाघ इत्यादि बनजंतु जो मृगों को खाते हैं।

मृगादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रवारुणी। इंद्रायन। २. सहदेई। ३. ककड़ी।

मृगाधिप, मृगाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

मृगाराति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। २. सिंह (को०)। ३. सिंह राशि (को०)।

मृगारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह। २. कुत्ता। ३. बाघ। चीता। ४. एक वृक्ष। लाल सहिजन। ५. सिंह राशि [को०]।

मृगाविध—संज्ञा पुं० [सं०] व्याध। शिकारी [को०]।

मृगाश—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। उ०—(क) मूषकादि ग्रह में रहैं बहिर मृगाश शकुंतु। गो अश्वादिक जीव बहु जीवहिं सब लघु जंतु।—शंकर दि० वि० (शब्द०)।

मृगाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। मृगाधिप। उ०—दबति द्रौपदी देखि दुशासन। जिमि वन में लखि मृगी मृगाशन।—रघुराज (शब्द०)।

मृगिंद्रⓊ—संज्ञा पुं० [सं० मृगेन्द्र] १. दे० 'मृगेंद्र'। २. सिंह के समान शूर वीर। उ०—गज्जै न लज्ज कोपै मृगिंद्र। उतकिष्ट सूर सिर सहित निंद्र।—पृ० रा०, ६।४६।

मृगित—वि० [सं०] १. अन्वेषित। जिसका पीछा किया गया हो। २. याचित।

मृगिनोⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मृग] हरिणी। उ०—(क) ज्यौं मृगिनी वृक झुंड के बासा। त्यों ये अंधसुतन के बासा।—लल्लूलाल (शब्द०)। (ख) मृग मृगिनी द्रुम बन सारस खग काहू नहीं बतायो री।—सूर (शब्द०)। (ग) बाँसुरी को शब्द सुनिकै बधिक की मृगिनी भई।—सूर (शब्द०)।

मृगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मृग नामक वन्य पशु की मादा। हरिणी। हिरनी। उ०—मनहु मृगी मृग देख दियासे।—तुलसी (शब्द०)। २. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण (ऽ।ऽ) होता है। जैसे,—री प्रिया। मान तू। मान ना। ठान तू। इसे 'प्रिय वृत्त' भी कहते हैं। ३. कश्यप ऋषि की क्रोधवशा नाम्नी पत्नी से उत्पन्न दस कन्याओं में से एक, जिससे मृगों की उत्पत्ति हुई है और जो पुलह ऋषि की पत्नी थी। ४. पीले रंग की एक प्रकार की कौड़ी जिसका पेट सफेद होता है। ५. अपस्मार नामक रोग। मृगी रोग। ६. कस्तूरी।

मृगीदृश्, मृगलोचन संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगी या हिरनी के समान नेत्रवाली स्त्री [को०]।

मृगीपति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

मृगीवंतⓤ—वि० [सं० मृगी + हिं० वंत] अपस्मार का रोगी। मृगी रोग से ग्रस्त। उ०—घनसारहिं दिखि मुरझति ऐसैं। मृगीवत जल दरसैं जैसे।—नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

मृगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० मृगेन्द्र] १. सिंह। २. बाघ। चीता (को०)। ३. सिंह राशि (को०)।

मृगेंद्रचटक—संज्ञा पुं० [सं० मृगेन्द्रचटक] बाज पक्षी।

मृगेंद्राशी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगेन्द्राशी] अडूसा। वासक।

मृगेंद्रासन—संज्ञा पुं० [सं० मृगेन्द्रासन] पत्थर। प्रस्तर [को०]।

मृगेंद्रास्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मृगेक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'मृगीदृश्'। २. श्वेत इंद्रायन। श्वेत इंद्रवारुनी [को०]।

मृगेक्षिणी—वि० स्त्री० [सं० मृग + ईक्षण] हिरन के से नेत्रोंवाली। उ०—मृगेक्षिणे! इनमें खग अज्ञान।—गुंजन, पृ० ४०।

मृगेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्तप्रांत, बंगाल पंजाब तथा दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

विशेष—इसकी आँखें सुनहरी होती हैं। यह डेढ़ हाथ के लगभग लंबी होती है और तौल में नौ या दस सेर होती है।

मृगेश—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

मृगेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चमेली। मोगरा [को०]।

मृगेर्वारु—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेतेंद्रवारुणी। सफेद इंद्रायन।

मृगोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।

मृग्य—वि० [सं०] १. जिसका अन्वेषण या पीछा किया जाय। २. जो निश्चित न हो [को०]।

मृच्छकटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कृत का एक बहुप्रसिद्ध नाटक जिसके रचयिता शूद्रक कहे जाते हैं। २. मिट्टी का रथ।

मृज—संज्ञा पुं० [सं०] मुरज नाम का बाजा।

मृजा संज्ञा पुं० [सं०] मार्जन।

मृजित—वि० [सं०] मार्जित। जिसका मार्जन किया गया हो [को०]।

मृज्य—वि० [सं०] मार्जन के योग्य। मार्जनीय।

मृजादⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्यादा] इज्जत। मान। उ०—सबही मृजाद देखी सुनी जदपि बड़ाई हू सहित।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७१।

मृडंकण—संज्ञा पुं० [सं० मृडङ्कण] बालक। शिशु [को०]।

मृड़—संज्ञा पुं० [सं० मृड] [स्त्री० मृडानी] शिव। महादेव। उ०—मदन मथन मृड़ अंतरजामी। त्राता होहु जगत के स्वामी।—नंद०, ग्रं०, पृ० १५४।

मृडन—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूलता। अनुग्रह। अनुकंपा [को०]।

मृड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० मृडा] दुर्गा। पार्वती। उ०—मृड़ा चंडिका मृडी अंबिका भवा भवानी सोय।—नंददास (शब्द०)।

मृड़ानी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृडानी] दुर्गा। भवानी। पार्वती। उ०—अदेवी नृदेवीन को होहु रानी। करैं सेव बानी मघौनी मृड़ानी।—केशव (शब्द०)।

मृडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

मृडीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरन। २. शिव का एक नाम। ३. मछली (को०)।

मृणाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमल का डंठल जिसमें फूल लगा रहता है। कमलनाल। उ०—(क) तौ शिव धनुष मृणाल कि नाईं। तोरहिं राम गणेश गोसाँईं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आई जु चलि गोपाल घरै ब्रजबाल विशाल मृणाल सी वाहीं।—पद्माकर (शब्द०)। २. कमल की जड़। मुरार। भसींड़। ३. उशीर। खस।

यौ०—मृणालकंठ। मृणालभंग = कमलनाल के तंतु या रेशे का टुकड़ा। मृणालसूत्र = कमलनाल का तंतु।

मृणालकंठ—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल + कण्ठ] एक प्रकार का जलपक्षी।

मृणालिका—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की डंठी। कमलनाल। उ०—भौंरिन ज्यौं भँवत रहत बन बीथिकान हंसिनि ज्यौं मृदुल मृणालिका चहति है।—केशव (शब्द०)।

मृणालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमलिनी। २. वह स्थान जहाँ कमल हों। ३. कमल का समूह।

मृणाली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमल का डंठल। कमलनाल। उ०—(क) धरे एक वेणी मिली मैल सारी। मृणाली मनों पंक सों काढ़ि डारी।—केशव (शब्द०)। (ख) मैलते सहित मानो कंचन की लता लोनी, पंक लपटानी ज्यों मृणाली दरसाई है।—रघुराज (शब्द०)।

मृणाली[2]—संज्ञा पुं० [सं० मृणालिन्] कमलपुष्प । कमल [को०] ।

मृण्मय—वि० [सं०] मृत्तिकानिर्मित । दे० 'मृन्मय' [को०] ।

मृण्मूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी की बनी हुई मूर्ति [को०] ।

मृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मृद्' [को०] ।

मृतंड—संज्ञा पुं० [सं० मृतण्ड] सूर्य । मृतांड [को०] ।

मृतंपुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृतम् (=मृत्यु)+पुर (=लोक)] मर्त्य लोक । मानवलोक । उ०—चलै थान कैलास परी अच्छरी मृतंपुर ।—पृ० रा०, २५।१६३ ।

मृत[1]—वि० [सं०] १. मरा हुआ । मुर्दा । २. मृत तुल्य । मृत सा (को०) । ३. मूर्छित । शोधित । जैसे, पारा (को०) । ४. माँगा हुआ । याचित ।

मृत[2]—संज्ञा पुं० १. मृत्यु । मरण । २. माँगने से मिला हुआ अन्न वा भिक्षा आदि [को०] ।

मृतकंबल—संज्ञा पुं० [सं० मृतकम्बल] वह कपड़ा जिससे मुर्दे को ढँकते हैं । कफन ।

मृतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरा हुआ प्राणी । मुर्दा । २. मरण का अशौच । ३. मरण । मृत्यु । मौत (को०) ।

मृतककर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक पुरुष की शुद्ध गति के लिये किया जानेवाला कृत्य । प्रेतकर्म । जैसे, दाह, षोडशी, दशगात्र इत्यादि । उ०—तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतककर्म विधिवत् सब कीन्हा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मृतकधूम—संज्ञा पुं० [सं०] राख । भस्म । उ०—जम्यो गाड़ भर भर रुधिर ऊपर धूरि उड़ाय । जिमि अँगार रासीन्ह पर मृतक-धूम रह छाय । —तुलसी (शब्द०) ।

मृतकल्प—वि० [सं०] मृतप्राय । मरणासन्न [को०] ।

मृतकांतक—संज्ञा पुं० [सं० मृतकान्तक] शृगाल । गीदड़ ।

मृतगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका गर्भस्थ शिशु (भ्रूण) मर गया हो ।

मृतगृह—संज्ञा पुं० [सं०] श्मसान । कब्र [को०] ।

मृतचेल - संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दे के ऊपर का कपड़ा । कफन । मृत-कंबल । [को०] ।

मृतजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरा हुआ प्राणी । २. तिलक वृक्ष ।

मृतजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] मरे हुए को जिलाना ।

मृतजीवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह विद्या जिससे मुर्दे को जिलाया जाता है । उ०—क्यौं न जिवावै असुरगुरु तम असुरै परभात । संध्यावृत मृत्यजीवनी विद्या कहीं न जात ।—गुमान (शब्द०) । २. दुधिया घास । दुग्धिका ।

मृतदार—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसकी स्त्री मर गई हो । रडुँआ ।

मृतधर्मा - वि० [सं० मृतधर्मन्] नष्ट हो जानेवाला । नश्वर ।

मृतनंदन—संज्ञा पुं० [सं० मृतनन्दन] वास्तुविद्या में एक प्रकार का बड़ा कक्ष या कमरा जिसमें ५८ खंभे हों [को०] ।

मृतनिर्यातक—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दों को श्मसान पहुँचाने का पेशा करनेवाला । मडाफेका (बँगला) ।

मृतप—संज्ञा पुं० [सं०] एक निम्न जाति [को०] ।

विशेष—इस जाति के लोग मुर्दों की रखवाली करते हैं, श्मसान तक उन्हें पहुँचाते हैं और मरे हुए प्राणियों के कपड़े इकट्ठा करते हैं ।

मृतप्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बच्चे मर गए हों ।

मृतभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधवा । राँड़ [को०] ।

मृतमंडल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृत+मण्डल] मृत्युलोक । उ०—मृतमंडल कोउ थिर नहीं आवा सो चलि जाय ।—जग० श०, पृ० १३० ।

मृतमंडा(पु) – संज्ञा पुं० [सं० मृताण्ड=(सूर्य)] मार्तंड । सूर्य । उ०—भुई उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा । खंड खंड धरती बरम्हंडा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ५ ।

मृतमत्त—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल । गीदड़ [को०] ।

मृतमातृक—वि० [सं०] जिसकी माता मर चुकी हो [को०] ।

मृतवत्सा—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री०) जिसकी संतति मर मर जाती हो । जैसे मृतवत्सा स्त्री, मृतवत्सा गौ ।

मृतसंजीवनरस—संज्ञा पुं० [सं० मृतसञ्जीवन रस] एक रसौषध जिसका व्यवहार ज्वर में होता है ।

मृतसंजीवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृतकसञ्जीवनी] १. एक बूटी जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसके खिलाने से मुर्दा भी जी उठता है । उ०—मृतसंजीवनि औषधी अरु करनी सधान । अरु विशल्य करनी सुखद ल्यावहु द्रुत हनुमान ।—रघुराज (शब्द०) । २. मृत को जीवित करने की विद्या । ३. ज्वर का एक औषध जो सुरा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

मृतसंजीवनी सुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० मृतसञ्जीवनी सुरा] एक वाजीकरण औषध ।

मृतसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] मृत व्यक्ति का दाह संस्कार । अंत्येष्टि [को०] ।

मृतसूत—संज्ञा पुं० [सं०] रससिंदूर ।

मृतसूतक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मृतसूतिका] १. वह जिसे मृत संतान उत्पन्न हुई हो । २. भस्म किया हुआ पारा ।

मृतस्नात—वि० [सं०] १. जिसने किसी सजाति या बंधु के मरने पर उसके उद्देश्य से स्नान किया हो । २ वह मुरदा जिसे दाह के पूर्व स्नान कराया गया हो ।

मृतस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी भाई बंधु के मरने पर किया जानेवाला स्नान । २. मृतक का स्नान ।

मृतहार—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा ढोने या ले जानेवाला । मृतनिर्यातक मृतहारी [को०] ।

मृतहारी—संज्ञा पुं० [सं० मृतहारिन् दे० 'मृतहार' [को०] ।

मृतांग—संज्ञा पुं० [सं० मृताङ्ग] मृत शरीर । शव । लाश [को०] ।

मृतांड—संज्ञा पुं० [सं० मृतारड] सूर्य [को०]।

मृतांडा—स्त्री० [सं० मृताराडा] वह स्त्री जिसका बच्चा मर गया हो या मर जाता हो [को०]।

मृतानⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० मृत ?] मुर्दा। भूत प्रेत। कब्र। उ०—काहू बुतान को पूजत है पशु, काहू मृतान को पूजन धायौ।—घट०, पृ० ३३६।

मृतामद—संज्ञा पुं० [सं०] तुत्थ। तूतिया।

मृतालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अरहर। २. गोपीचंदन।

मृताशन—वि० [सं०] ९० से १०० वर्ष की अवस्था का [को०]।

मृताशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच (अपवित्रता) जो किसी आत्मीय, संबंधी, गुरु, पड़ोसी आदि के मरने पर लगता है और जिसमें शुद्ध होने तक ब्रह्मचर्य के साथ देवकर्म तथा गृहकर्म से अलग रहना पड़ता है।

मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरण। मृत्यु।

यौ०—मृतिरेखा = मृत्युसूचक रेखा।

मृतिकाⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्तिका] मिट्टी। खाक। उ०—कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठशिला पहिचानत।—तुलसी (शब्द०)।

मृतु†—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्यु] मृत्यु। मौत। उ०—जब आवै मृतु अंध, जीव कहँ जाई पराई।—घरम० श०, पृ० ७८।

मृत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कुलाल। कुम्हार [को०]।

मृत्कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी की कला। उ०—आसव पान संबंधी एक दृश्य मृत्कला में आया है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३०४।

मृत्कांस्य—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पात्र या बरतन [को०]।

मृत्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूकीट। घुर्घुरिया [को०]।

मृत्ताल, मृत्तालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आढकी' [को०]।

मृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिट्टी। खाक। उ०—जथा हट तंतु घट मृत्तिका सर्प स्रग दारु करि कनक कटकांगदादी।—तुलसी (शब्द०)। २. अरहर।

मृत्तिकालवण—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का लोना या नोना। (पुराने घरों की मिट्टी की दीवारों पर सीड़ होने से एक प्रकार का नमक लग जाता है।)

मृत्तिकावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा के किनारे की एक प्राचीन नगरी। (महाभारत)।

मृत्पच—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार। कुलाल।

मृत्पट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पटरा। उ०—मृत्पट्टकों में अनेक ऐसे दृश्य हैं जिनको निश्चित रूप से पहचानना कठिन है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३०३।

मृत्पात्र—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का बरतन।

मृत्पिंड—संज्ञा पुं० [सं० मृत्पिण्ड] मिट्टी का लोंदा या ढेला।

यौ०—मृत्पिंडबुद्धि = मूर्ख।

मृत्यⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु] दे० 'मृत्यु'। उ०—क्यौ न जाइ जीवत घरह, कहा करौगे मृत्य।—पृ० रा०, २५।७५६।

यौ०—मृत्यलोक = मृत्युलोक। उ०—मृत्यलोक कब भोग तजि स्वर्ग लोक मन लाय।—प० रासो, पृ० ८१।

मृत्युंजय—संज्ञा पुं० [सं० मृत्युञ्जय] १. वह जिसने मृत्यु को जीत लिया हो। २. शिव का एक रूप। ३. शिव का एक मंत्र जिसके विधिपूर्वक जपने से अकालमृत्यु टल जाती है।

मृत्युंजयरस—संज्ञा पुं० [सं० मृत्युञ्जयरस] ज्वर के लिये उपयोगी एक रसौषध।

विशेष—पारा एक माशा, गंधक दो माशे, सोहागा चार माशे, विष आठ माशे, धतूरे का बीज सोलह माशे तथा सोंठ, मिर्च और पीपल दस दस माशे सात सात रत्ती, इन सबको धतूरे की जड़ के रस में पीसकर माशे माशे भर की गोलियाँ बना लें, और जैसा ज्वर हो, उसके अनुसार अनुपान के साथ सेवन करे।

मृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर से जीवात्मा का वियोग। प्राण छूटना। मरण। मौत। २. यमराज। ३. ग्यारह रुद्रों में से एक। ४. विष्णु। ५. ब्रह्मा। ६. माया। ७. कलि। ८. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का आठवाँ स्थान। ९. कामदेव। १०. एक साममंत्र। ११. बौद्ध देवता पद्मपाणि के एक अनुचर। १२. संसार (को०)।

मृत्युकर[1]—वि० [सं०] मरणकारक।

मृत्युकर[2]—संज्ञा पुं० किसी की मृत्यु होने पर उसकी संपत्ति के ऊपर लगनेवाला कर [को०]।

मृत्युकाल—संज्ञा पुं० [सं०] मौत का क्षण [को०]।

मृत्युतूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो दाहक्रिया या अंत्येष्टि क्रिया के समय बजाया जाता है [को०]।

मृत्युदूत—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु की खबर लानेवाला [को०]।

मृत्युनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

मृत्युपा—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मृत्युपाश—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु या यम का फंदा [को०]।

मृत्युपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईख। गन्ना। २. केला। ३. बाँस (को०)।

मृत्युप्राय—वि० [सं०] जो मरना ही चाहता हो। जो मरने ही वाला हो। आसन्न मृत्यु। उ०—एक ओर पथ के कृष्णकाय, कंकालशेष नर मृत्युप्राय।—अपरा, पृ० १४९।

मृत्युफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. केला। २. महाकाल नाम की लता।

मृत्युफला, मृत्युफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला [को०]।

मृत्युबंधु—संज्ञा पुं० [सं० मृत्युबन्धु] यम।

मृत्युबाज—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

मृत्युभीत—वि० [सं०] मौत से डरनेवाला [को०]।

मृत्युभत्य—संज्ञा पुं० [सं०] रोग [को०]।

मृत्युयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों का मृत्युकारक योग [को०]।

मृत्युराज—सं० पुं० [सं०] मृत्यु के देवता—यम [को०]।

मृत्युरूपी—संज्ञा पुं० [सं० मृत्युरूपिन्] १. यमदूत। २. वर्णमाला का 'श' अक्षर।

मृत्युलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमलोक। २. मर्त्यलोक।

मृत्युवंचन—संज्ञा पुं० [सं० मृत्युवञ्चन] १. शिव का एक नाम। २. काला कौश्रा [को०]।

मृत्युवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की रक्षा में युद्ध में मरणोपरांत मिलनेवाली सहायता। उ०—चंदेल लेख में 'मृत्युवृत्ति' नामक शब्द मिलता है, जिसका तात्पर्य यह था कि मुसलमानों से युद्ध करने में मरे व्यक्ति के परिवार को राजा की ओर से, उसकी बहादुरी के स्मरण में मासिक धन (वृत्ति) मिलता था।—पूर्व० म० भ०, पृ० १०५।

मृत्युसूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] केकड़े की मादा (जो अंडे देते ही मर जाती है)।

मृत्स—वि० [सं०] चिपचिपा।

मृत्सा—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] दे० 'मृत्स्ना'।

मृत्स्न—संज्ञा पुं० [सं०] धूल [को०]।

मृत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूमि। मिट्टी। २. अच्छी भूमि या मिट्टी। ३. एक प्रकार की सुवासित मिट्टी। ४. स्फटिक मिट्टी की पट्टी। ५. छेनी। टाँकी [को०]।

मृथाⓅ†—क्रि० वि० १. दे० 'वृथा'। २. दे० 'मृषा'।

मृद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्तिका। मिट्टी।

विशेष—इस शब्द का अधिकतर व्यवहार समस्त पद बनाने में होता है।

मृदंकुर—संज्ञा पुं० [सं० मृदङ्कुर] हारीत पक्षी [को०]।

मृदंग—संज्ञा पुं० [सं० मृदङ्ग] १. एक प्रकार का बाजा जो ढोलक से कुछ लंबा होता है। तबले की तरह इसके दोनों मुँहड़े चमड़े से मढ़े जाते हैं। इसका ढाँचा पक्की मिट्टी का होता है, इससे यह मृदंग कहलाता है। उ०—(क) बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहू बीन गहा कर काहू नाद मृदंग। सब दिन अनंद बधावा रहस कूद इक संग।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—मृदंगकेतु = धर्मराज युधिष्ठिर। मृदंगफल। मृदंगफलिनी। मृदंगवादक = मृदंग बजानेवाला।

२. बाँस। ३. निनाद। ध्वनि (को०)।

मृदंगफल—संज्ञा पुं० [सं० मृदङ्गफल] कटहल। पनस।

मृदंगफलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृदंगफलिनी] तरोई। तोरई।

मृदंगी[1]—वि० [सं० मृदङ्ग + ई (प्रत्य०)] मृदंग बजानेवाला या बजाने का पेशा करनेवाला। उ०—कहाँ हैं रबाबी मृदंगी सितारी। कहाँ हैं गवैए कहाँ नृत्यकारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०२।

मृदंगी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मृदङ्गी] तरोई। तोरई।

मृदव—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक की भाषा में गुण के साथ दोष के वैषम्य का प्रदर्शन (नाट्यशास्त्र)।

मृदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्तिका। मिट्टी।

मृदाकर—संज्ञा पुं० [सं०] व्रज।

मृदित—वि० [सं०] मर्दित [को०]।

मृदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अच्छी मिट्टी। २. गोपीचंदन।

मृदु[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मृद्वी] १. जो छूने में कड़ा न हो। कोमल। मुलायम। नरम। २. जो सुनने में कर्कश या अप्रिय न हो। जैसे, मृदु वचन। ३. सुकुमार। नाजुक। ४ जो तीव्र या वेगयुक्त न हो। धीमा। मंद। जैसे, मृदु स्वर, मृदु गति।

मृदु[2]—संज्ञा स्त्री० १. घृतकुमारी। घीकुआँर। २. सफेद जातिपुष्प। जूही नामक फूल का पौधा।

मृदुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० मृदुकण्टक] कटसरैया।

मृदुकाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मृद्वीका] दाख। अंगूर। उ०—स्वादी मृदुका मधुरसा काल मेखला होइ। अनेकार्थ०, पृ० ३७।

मृदुकृष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु [को०]।

मृदुकोष्ठ—वि० [सं०] जिसे हलके जुलाब या विरेचन से दस्त आ जाय [को०]।

मृदुखुर—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों के खुर का एक रोग।

मृदुगण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों का एक गण जिसमें चित्रा, अनुराधा मृगशिरा और रेवती, ये चार नक्षत्र हैं।

मृदुगमन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मृदुगमना] मंदगामी। धीमी चालवाला।

मृदुगमना—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसी। हंसिनी [को०]।

मृदुचर्मी—संज्ञा पुं० [सं० मृदुचर्मिन्] भोजपत्र।

मृदुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजपत्र का पेड़। २. पीलू वृक्ष। ३. लाल लजालू।

मृदुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोमलता। मुलायमियत। २. धीमापन। मंदता।

मृदुतीक्ष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका और विशाखा नक्षत्र।

मृदुताल—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीताल का वृक्ष [को०]।

मृदुत्वक्—संज्ञा पुं० [सं० मृदुत्वच्] भोजपत्र।

मृदुदर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कुश।

मृदुन्नक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।

मृदुपवक—संज्ञा पुं० [सं०] बेंत। नरकुल [को०]।

मृदुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष। सिरिस।

मृदुफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधु नारिकेल। नारियल। २. विकंकत का वृक्ष।

मृदुभाषी—वि० [सं० मृदुभाषिन्] [वि० स्त्री० मृदुभाषिणी] मधुर या मीठा बोलनेवाला।

मृदुरोमक—संज्ञा पुं० [सं०] खरगोश। शशक [को०]।

मृदुरोमा—संज्ञा पुं० [सं० मृदुरोमन्] खरगोश [को०]।

मृदुल[1]—[सं०] १. कोमल। मुलायम। नरम। उ०—सुमन सेज ते लगि रहे सुंदरि तेरे गात। सुरभित ह्वै मिडि कै भए मृदुल नाल जलजात।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। २. कोमलहृदय। दयामय। कृपालु। उ०—मृदुल चित अजित कृत गरलपान।—तुलसी (शब्द०)। ३. नाजुक। सुकुमार। उ०—मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।—तुलसी (शब्द०)।

मृदुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। २. अंजीर।

मृदुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० मृदुल + हिं० आई (प्रत्य०)] मार्दव। मृदुता। कोमलता।

मृदुसूर्य—वि० पुं० [सं०] जिस दिन सूर्य तीक्ष्णता से न चमकता हो [को०]।

मृदुस्पर्श—वि० [सं०] जो छूने में मुलायम हो।

मृदुहृदय—वि० [सं०] कोमलहृदय। दयावान।

मृदूत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] नीलोत्पल। नील पद्म [को०]।

मृद्वी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. मृदु। कोमल। २. कोमलांगी।

मृद्वी[2]—संज्ञा स्त्री० कपिल द्राक्षा। सफेद अंगूर।

मृद्वीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपिल द्राक्षा। सफेद अंगूर। २. अंगूर की शराब। द्राक्षासव।

मृद्वीकासव—संज्ञा पुं० [सं०] द्राक्षासव। अंगूर की शराब।

मृध—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई। उ०—आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संग, समीक।—नंद० ग्रं०, पृ० ९७।

मृनाल—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल] दे० 'मृणाल'।

मृन्मय—वि० [सं०] मिट्टी का बना हुआ।

मृन्मरु—संज्ञा पुं० [सं०] पाषाण। प्रस्तर [को०]।

मृन्मात्र—वि० [सं०] केवल मिट्टी का। उ०—मर्त्य हूम, केवल त्वर मृन्मात्र।—मधुज्वाल, पृ० ३४।

मृन्मान—संज्ञा पुं० [सं०] कुआँ। कूप।

मृषा[1]—अव्य० [सं०] झूठमूठ। व्यर्थ। उ०—मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई।—मानस, ५।५६।

मृषा[2]—वि० असत्य। झूठ।

मृषाज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] झूठ वा असत्य ज्ञान। अज्ञान [को०]।

मृषात्व—संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्यात्व। असत्यता। झूठपन।

मृषाध्यायी—संज्ञा पुं० [सं० मृषाध्यायिन्] एक प्रकार का सारस [को०]।

मृषाभाषी—वि० [सं० मृषाभाषिन्] झूठ बोलनेवाला। असत्यवक्ता।

मृषार्थक—वि० [सं०] असंभव। झूठा। जैसे, मृषार्थक वचन [को०]।

मृषालक—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

विशेष—आम्र के वृक्ष में थोड़े ही दिन मंजरियों का अलंकार रहता है, इसी से इसका यह नाम रखा गया है।

मृषावाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. झूठ बोलना। २. झूठी बात। असत्य वचन।

मृषावादी—वि० [सं० मृषावादिन्] [वि० स्त्री० मृषावादिनी] असत्यवादी। झूठा। मिथ्याभाषी।

मृष्ट[1]—वि० [सं०] शोधित।

मृष्ट[2]—संज्ञा पुं० मिर्च।

मृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिशुद्धि। शोधन।

मेंठ—संज्ञा पुं० [सं० मेण्ठ] हस्तिपक। हाथी रखनेवाला [को०]।

मेंड—संज्ञा पुं० [सं० मेण्ड] दे० 'मेंठ'।

मेंढ, मेंढक—संज्ञा पुं० [सं० मेण्ढ, मेण्ढक] मेढ़ा। मेष [को०]।

मेंढ़्र—संज्ञा पुं० [सं० मेण्ढ्र] दे० 'मेढ़्र' [को०]।

मेंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० मेन्धिका] दे० 'मेहँदी'।

मेंधी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेन्धी] दे० 'मेहँदी'।

मेंबर—संज्ञा पुं० [अं० मेम्बर] किसी सभा, समाज या गोष्ठी में संमिलित व्यक्ति। सभासद। सदस्य। जैसे, काउंसिल का मेंबर।

मेंबरी—संज्ञा स्त्री० [अं० मेम्बर + हि० ई (प्रत्य०)] मेंबर का पद। सदस्यता।

में[1]—अव्य० [सं० मध्ये, प्रा० मज्झे, मज्झि, पु० हिं० महँ, माँहि] अधिकरण कारक का चिह्न जो किसी शब्द के आगे लगकर उसके भीतर, उसके बीच या उसके चारों ओर होना सूचित करता है। आधार या अवस्थान सूचक शब्द। जैसे,—वह घर में बैठा है। घड़े में पानी है। वह चार दिन में आवेगा। पैर में मोजा या जूता पहनना।

में[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] बकरी के बोलने का शब्द।

में†[3]—सर्व० [सं० स्मिन्, प्रा० म्मि, अप० महँ] दे० 'मैं'। उ०—(क) तो में ढोटा नंद को, (जो) पाँइन परि परि देंइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९५। (ख) अपनी मति अनुसार श्री गीता पदार्थ बोधिनी बचनिका भाषा में ने करी है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५२०।

मेंगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मींगी ?] ऐसे पशुओं की विष्ठा जो छोटी छोटी गोलियों के आकार में होती है। लेंड़ी। जैसे, बकरी की मेंगनी, ऊँट की मेंगनी।

मेंड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ का अनु० या सं० मण्डल] १. ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर के रूप में चली गई हो। २. दो खेतों के बीच को कुछ ऊँची उठी हुई सँकरी जमीन जिसपर लोग आते जाते हैं। डाँड़। पगडंडी।

यौ०—डाँड़मेंड़ = कूल। किनारा। वार पार। उ०—पवनहुँ ते मन चाँड़, मन ते आसु उतावला। कतहूँ मेंड़ न डाँड़, मुहमद बहु विस्तार सो।—जायसी (शब्द०)।

मेंड़की—संज्ञा स्त्री० [सं० मेढकी] दे० 'मेढ़की'। उ०—महातम जानै नहीं मेंड़की गंगा बीच। पलटू सबद लगै नहीं कतनौ रहै नगीच।—पलटू०, भा० ३, पृ० १००।

मेंडरा†—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] १. घेरकर बनाया हुआ कोई गोल चक्कर। २. एँडुआ। गेंडुरी।

मँडराना[१]—क्रि० अ० [सं० मण्डल] दे० 'मँडराना'। उ०—राजपंखि तेहि पर मेंडराहीं। सहस कोस तिन्ह कै परछाहीं।—जायसी (शब्द०)।

मँड़राना[२]—क्रि० स० घेरकर गोल चक्कर बनाना। मेंडरा बनाना।

मँड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँची जगह। महल। प्रासाद। उ०—ऊँची मेंड़ी कौन काज की ब्रज बसिबौ भलौ छाज कौ। छीत०, पृ० ८०।

मँढ़क—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूक] [स्त्री० मेंढ़की] दे० 'मेढ़क'।

मँह—संज्ञा पुं० [सं० मेघ, प्रा० मेह] वर्षा। झड़ी।

मँहदी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेन्धिका] दे० 'मेहँदी।

मेउ†—संज्ञा पुं० [सं० मेघ, प्रा० मेह] मेघ। बादल। उ०—नँनद भवज दोऊ भेंटऐ रे जैसे साँमन कौ ए मेउ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३३।

मेक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] अज। छाग। बकरी।

मेक†[२]—संज्ञा पुं० [सं० एक, देश०] दे० 'एक'। उ०—मेक सपत संमत्त मैं, पैतीसै जसराज। गौ हरिधाम जिहान तज, हिंदुसथान जिहाज। रा० रू०, पृ० १७।

मेकदार†—संज्ञा पुं० [अ० मिक़दार] परिमाण। मात्रा। अंदाज।

मेकल—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत का एक भाग जो रीवा राज्य के अंतर्गत है और जिसमें अमरकटक है। इसी पर्वत से नर्मदा नदी निकली है।

विशेष—यह मेखला के आकार का है, इसी से इसे मेखल भी कहते हैं।

मेकलकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी।

मेकलसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी। उ०—मेकल सुता गोदावरि धन्या।—मानस, ।

मेकलाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] मेकल पर्वत।

यौ०—**मेकलाद्रिजा** = नर्मदा नदी।

मेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र।

विशेष—यह चम्मच या करछी के आकार का और चार अंगुल चौड़ा तथा आगे की ओर निकला हुआ होता है।

मेख[१]—संज्ञा पुं० [सं० मेष] दे० 'मेष'।

मेख[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेख] जमीन में गाड़ने के लिये एक ओर नुकीली गढ़ी हुई लकड़ा। खूँटा। खूँटी। उ०—उन्हें यों हतज्ञान सा देख, ठोकती सी छाती पर मेख।—साकेत०, पृ० ४८। २. कील। कँटिया।

क्रि० प्र०—**उखाड़ना**।—**गाड़ना**।—**ठोंकना**।—**मारना**।

मुहा०—**मेख ठोंकना** = (१) हाथ पैर में कील ठोंककर कहीं स्थिर कर देना। बहुत कठोर दंड देना। (इस प्रकार का दंड पहले प्रचलित था)। (२) हराना। दबाना। जेर करना। **तोप के मुँह में मेख ठोंकना** = तोप का मुँह बंद करके उसे निकम्मा कर देना। **मेख मारना** = (१) कील ठोंककर चलना या हिलना बंद कर देना। (२) कोई ऐसी बात बोल देना जिससे किसी का होता हुआ काम न हो। भाँजी मारना। (३) चलते हुए काम में रुकावट डालना।

२. कील। काँटा। ३. लकड़ी की फट्टी जो किसी छेद में बैठाई हुई वस्तु को ढीली होने से रोकने के लिये इधर उधर पेसी जाय। पच्चड़। ४. घोड़े का लँगड़ापन जो नाल जड़ते समय किसी कील के ऊपर ठुक जाने से होता है।

मेखड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला] बाँस की वह फट्टी जिसे डले या झाबे के मुँह पर गोल घेरा बनाकर बाँध देते हैं।

मेखल[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला] १. करधनी। किंकिणी। उ०—कटि मेखल बर हारग्रीव दइ रुचिर बाहु भूषन पहिराए।—तुलसी (शब्द०)। २. वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तु के मध्य भाग में उसे चारो ओर से घेरे हो। वि० दे० 'मेखला'।

मेखल[२]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मेकल' [को०]।

मेखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तु के मध्य भाग में उसे चारो ओर से घेरे हुए पड़ी हो। २. सिकड़ी या माला के आकार का एक गहना जो कमर को घेरकर पहना जाता है। करधनी। तागड़ी। किंकिणी।

पर्या०—**सप्तकी**। **कांची**। **रशना**। **रसना**। **कक्षा**। कलाप।

३. कमर में लपेटकर पहनने का सूत या डोरी। करधनी। जैसे, मुंजमेखला। ४. कोई मंडलाकार वस्तु। गोल घेरा। मंडल। मँडरा। ५. पेटी या कमरबंद जिसमें तलवार बाँधी जाती है। ६. तलवार की मूठ (को०)। ७. डंडे मूसल आदि के छोर पर या औजारों के मूठ पर लगा हुआ लोहे आदि का घेरदार बंद। सामी। साम। ७. पर्वत का मध्यभाग। ९. नर्मदा नदी। १०. पृश्निपर्णी। ११. होमकुंड के ऊपर चारों ओर बना हुआ मिट्टी का घेरा। १२. यज्ञवेष्टन सूत्र। १३. कपड़े का टुकड़ा जो साधु लोग गले में डाले रहते हैं। कफनी। अलफी। १४. घोड़े का तंग। जीन कसने का तस्मा (को०)।

मेखलापद—संज्ञा पुं० [सं०] श्रोणि। नितंब। चूतड़ [को०]।

मेखलाल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

मेखलित—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेखलायुक्त। चारों ओर से मेखला की तरह घेरनेवाला। उ०—साथ ही इन सबके केंद्रीय मेरु को मेखलित करनेवाला इलावृत्त भी एक स्वतंत्र वर्ष बन गया है।—संपूर्णा० अभि ग्रं०, पृ० १७०।

मेखली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला या मेखलित] १. एक प्रकार का पहनावा जिसे गले में डालने से पेट और पीठ ढँकी रहती है और दोनों हाथ खुले रहते हैं। यह देखने में तिकोना होता है और ऊपर चौड़ा तथा नुकीला होता है। इसे देवमूर्तियों को रामलीला, रासलीला आदि में पहनाते हैं। २. करधनी। कटिबंध। उ०—कबहुँक अपर खिरनही भावत कबहुँ मेखली उदर समानी।—सूर (शब्द०)।

मेखली[२]—संज्ञा पुं० [सं० मेखलिन्] १. शिव। २. बटु। ब्रह्मचारी।

मेखली[३]—वि० मेखला धारण करनेवाला [को०]।

मेखवाँ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेख + हिं० वा (प्रत्य०)] मेख। खूँटा।
विशेष—सवारी लेकर चलते वक्त जब रास्ते में आगे खूँटा मिलता तब है, उससे बचने के लिये अगला कहार यह शब्द बोलता है।

मेखी—वि० [फ़ा० मेखी] जिसमें मेख से छेद किया गया हो।
यौ०—**मेखी** रुपया = वह रुपया जिसमें छेद करके चाँदी निकाल ली गई हो और सीसा भर दिया गया हो।

मेग—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेग। तुल० सं० मेघ] मेघ। बादल। घटा। उ०—होर शोर भी भाँत भाँत का था। बहु भाँत जो मेग साँत का था।—दक्खिनी०, पृ० १६६।

मेगजीन—संज्ञा पुं० [अं० मेगज़ीन] १. वह स्थान जहाँ सेना के लिये बारूद रखी जाती है। बारूदखाना। २. सामयिक पत्र, विशेषत: मासिकपत्र जिसमें लेख छपते हैं।

मेगनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मेंगनी'।

मेगरा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेग + राज० रा (प्रत्य०)] घटा। मेघ। बादल। उ०—खुशी का मेगरा वाँ बरसता।—दक्खिनी०, पृ० २७३।

मेघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में घनीभूत जलवाष्प जिससे वर्षा होती है। बादल। उ०—कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ उड़ाहि।—तुलसी (शब्द०)। २. संगीत में छह् रागों में से एक।
विशेष—हनुमत् के मत से यह राग ब्रह्मा के मस्तक से उत्पन्न है और किसी के मत से आकाश से इसकी उत्पत्ति है। यह ओड़व जाति का राग है; और इसमें ध नि सा रे ग, ये पाँच स्वर लगते हैं। हनुमत् के मत से इसका सरगम इस प्रकार है—ध नि सा रे ग म प ध। वर्षाकाल में रात के पिछले पहर इसे गाना चाहिए। इसकी स्त्रियाँ या रागिनियाँ हनुमत् के मत से मल्लारी, सोरठी, सारंगी वा हंसिका और मधुमाधवी हैं। अन्य मत से ये रागिनियाँ हैं—मल्लारी, देशी, सोरठ, नाटिका, तरुणी और कादंबिनी। इसके पुत्र—मल्लार, गौर, कर्णाट, जलधर, मालाहक, तैलंग, कमल, कुसुम, मेघनाट, सामंत, लूम, भूपति, नाट और बंगाल हैं।
३. मुस्तक। मोथा। ४. तंडुलीय शाक। ५. राक्षस। ६. आधिक्य। बहुलता।

मेघकफ—संज्ञा पुं० [सं०] ओला। करका। वर्षोपल।

मेघकर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंदानुचर मातृभेद।

मेघकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु।

मेघगर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] बादल की गरज।
विशेष—मेघगर्जन के समय वेदाध्ययन निषिद्ध है। उपनयन के दिन यदि बादल गरजे, तो उपनयन टाल देना चाहिए।

मेघचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० मेघचिन्तक] चातक [को०]।

मेघज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा मोती। २. मेघजन्य वस्तु [को०]।

मेघजाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघसमूह। घनघटा। २. अभ्रक। अबरक [को०]।

मेघजीवक, मेघजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] चातक।

मेघज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० मेघज्योतिस्] वज्राग्नि। बिजली।

मेघडंबर—संज्ञा पुं० [सं० मेघडम्बर] १. मेघगर्जन। २. बड़ा चंदोवा। बड़ा शामियाना। दल बादल। ३. एक प्रकार का छत्र। उ०—छत्र मेघडंबर सिरधारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी।—मानस, ६।१३।

मेघडंबर रस—संज्ञा पुं० [सं० मेघडम्बर रस] एक रसौषध जो श्वास और हिचकी के रोग में दी जाती है।
विशेष—बराबर बराबर पारे और गंधक की कजली चौलाई के रस में पाँच दिन खरल करके मजबूत घरिया में रखकर 'बालुका यंत्र' से एक दिन भर की आँच देने से यह बनता है। इसकी मात्रा ६ रत्ती है।

मेघदीप—संज्ञा पुं० [सं०] बिजली [को०]।

मेघदुंदुभि—संज्ञा पुं० [सं० मेघदुन्दुभि] १. मेघगर्जन। २. एक राक्षस का नाम।

मेघदूत—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि कालिदासप्रणीत एक खंडकाव्य।
विशेष—इसमें कर्तव्यच्युति के कारण स्वामी के शाप से प्रिया-वियुक्त एक विरही यक्ष ने मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास संदेश भेजा है।

मेघद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। अंतरिक्ष।

मेघधनु—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

मेघनाट—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

मेघनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

मेघनाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ का गर्जन। बिजली की कड़क। २. वरुण। ३. रावण का पुत्र इंद्रजित् जो लक्ष्मण के हाथ से मारा गया था। ४. पलाश का पेड़। ५. हरिवंश के अनुसार एक दानव। ६. मयूर। मोर। ७. बिडाल। बिल्ली।
यौ०—**मेघनादजित्** = लक्ष्मण जिन्होंने मेघनाद को मारा था। **मेघनादबध** = माइकेल मधुसूदन दत्त द्वारा रचित बँगला भाषा का प्रसिद्ध महाकाव्य। **मेघनादानुलासक, मेघनादानुलासी** = मयूर। मोर।

मेघनादमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौलाई की जड़।

मेघनाद रस—संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जो ज्वर में दी जाती है।
विशेष—एक एक तोला रूपा, काँसा और ताँबा तितराज की जड़ के काढ़े में डालकर छह बार गजपुट पाक करने से यह बनता है। इसकी मात्रा पान के साथ दो रत्ती है।

मेघनामा—संज्ञा पुं० [सं० मेघनामन्] एक प्रकार की घास। मुस्तक [को०]।

मेघनिर्घोष—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों का गरजना।

मेघनीलक—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश वृक्ष।

मेघपटल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल की घटा।

मेघपति—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों का राजा या स्वामी, इंद्र।

मेघपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का घोड़ा। २. श्रीकृष्ण के रथ के चार घोड़ों में से एक। उ०—शैब्य, बलाहक, मेघपुष्प सुग्रीव बाजीरथ।—गोपाल (शब्द०)। ३. वर्षा का जल। ४. बकरे का सींग। ५. मोथा मुस्तक।

मेघपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जल। २. बेंत। ३. ओला।

मेघप्रसर, मेघप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] जल [को०]।

मेघपृष्ठि संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच द्वीप के एक खंड का नाम।

मेघफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ के वर्ण द्वारा वर्ष के शुभाशुभ फल का निर्णय। २. विकंकत वृक्ष।

मेघभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वज्र। बिजली।

मेघमंडल—संज्ञा पुं० [सं० मेघमण्डल] १. मेघसमूह। २. आकाश।

मेघमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग और उसकी पत्नी मल्लारी के योग से बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

मेघमाल[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों की घटा। उ०—माली मेघमाल बनपाल विकराल भटु नीके सब काल सींचैं सुधासार नीर के।—तुलसी (शब्द०)।

मेघमाल[२]—संज्ञा पुं० १. रंभा (रमा ?) के गर्भ से उत्पन्न कल्कि के पुत्र का नाम। (कल्किपुराण)। २. प्लक्ष द्वीप का एक पर्वत। ३. एक राक्षस का नाम।

मेघमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की घटा। कादंबिनी। २. स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।

मेघमाली—संज्ञा पुं० [सं० मेघमालिन्] १. स्कंद का एक अनुचर। २. एक असुर।

मेघमूर्ति[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

मेघमूर्ति[२]—वि० बादलों से घिरा या ढका हुआ।

मेघमेदुर—वि० [सं०] मेघ के कारण चिकना। बादलों से स्निग्ध।

मेघमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जामुन का फल या वृक्ष [को०]।

मेघयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूँआँ। २. कुहरा।

मेघरव—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन।

मेघराज—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करावर्तक आदि मेघों के नायक इंद्र।

मेघराव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०]।

मेघरेखा, मेघलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों की कतार। मेघ पंक्ति [को०]।

मेघवर्ण[१]—वि० [सं०] श्याम वर्ण का। बादल के समान रंगवाला।

मेघवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा।

मेघवर्त, मेघवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रलय काल के मेघों में से एक का नाम। उ०—सुनि मेघवर्तक साजि सैन लै आए। जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक जलद संग लाए।—सुर। (शब्द०)। २. संवर्त।

मेघवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० मेघवर्त्मन्] बादलों का पथ। मेघपथ। आकाश।

मेघवह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] मेघज्योति। वज्र की अग्नि। विद्युत् [को०]।

मेघवाई⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेघ + वाई (प्रत्य०)] बादल की घटा। उ०—चली सैन्य कछु बरनि न जाई। मनहुँ उठी पूरब मेघवाई।—रघुराज (शब्द०)।

मेघवान्—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक पर्वत। (बृहत्संहिता)।

मेघवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. शिव (को०)। ३. एक बौद्ध राजा का नाम।

मेघविस्फूर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ गरजन। मेघ का गड़गड़ाना। २. एक छंद। दे० 'मेघविस्फूर्जिता' [को०]।

मेघविस्फूर्जिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, टगण, रगण, और एक गुरु होता है।

मेघवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० मेघवेश्मन्] आकाश [को०]।

मेघव्रती—संज्ञा पुं० [सं० मेघव्रतिन्] चातक।

मेघश्याम—वि० [सं०] बादलों का सा काला (राम और श्रीकृष्ण)।

मेघसंघात—संज्ञा पुं० [सं० मेघसङ्घात] बादलों का जमावड़ा।

मेघसार—संज्ञा पुं० [सं०] चीन कर्पूर। चीनिया कपूर [को०]।

मेघसुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर [को०]।

मेघस्तनित—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

यौ० – **मेघस्तनितोद्भव** = विकंकत वृक्ष।

मेघस्वन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों का शब्द। मेघों का गर्जन।

मेघस्वन[२]—वि० बादल की तरह गरजनेवाला।

मेघस्वनांकुर—संज्ञा पुं० [सं० मेघस्वनाङ्कुर] वैदूर्य मणि। बिल्लौर।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि बादल के गरजने पर वैदूर्य मणि की उत्पत्ति होती है।

मेघस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

मेघांत—संज्ञा पुं० [सं० मेघान्त] वर्षा का अंत। शरद्काल [को०]।

मेघा†—संज्ञा पुं० [सं० मेघ (= बादल के आने पर जो दिखाई दे)] मेढक। मंडूक।

मेघागम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल। २. धारा कदंब।

मेघाच्छन्न—वि० [सं०] बादलों से ढका हुआ।

मेघाच्छादित—वि० [सं०] बादलों से ढका हुआ। बादलों से छाया हुआ।

मेघाटोप—संज्ञा पुं० [सं० मेघ + आटोप] घटाटोप।

मेघाडंबर—संज्ञा पुं० [सं० मेघ + आडम्बर] १. मेघगर्जन। बादल की गरज। २. बादल का फैलाव। बादलों का घटाटोप। उ०—ना मैं मेघाडंबर भीजौं। शीत काल जल मैं नहिं छीजौं—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३०५।

मेघाडंमर⑤—संज्ञा पुं० [सं० मेघ + डम्बर] एक प्रकार का छत्र।

मेघडंबर। उ०—मेघाडंमर सिर छत्र ठयो। देश मालगिर चालियो राई।—बी० रासो, पृ० १३।

मेघानंद—संज्ञा पुं० [सं० मेघानन्द] १. मोर। मयूर। २. बलाका। बगला।

मेघारि—संज्ञा पुं० [सं० मेघ+अरि] मेघ का शत्रु, वायु [को०]।

मेघावरिⓅ‡—संज्ञा स्त्री० [सं० मेघावलि] बादलों की घटा। मेघपंक्ति। उ०—केश मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहिं दसन बीजु कै नाईं।—जायसी (शब्द०)।

मेघास्थि—संज्ञा पुं० [सं०] ओला।

मेघोदय—संज्ञा पुं० [सं०] बादल घिरना। घटा का उठना।

यौ०—**मेघोदयकाल**=वर्षा ऋतु। बरसात।

मेघौना†—संज्ञा पुं० [सं० मेघवर्ण] मेघवर्ण या रंगवाला कपड़ा। दे० 'मेघौना'।

मेच†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मञ्च] १. पर्यंक। पलंग। २. बेंत की बुनी हुई खाट।

मेच‡[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेज़] दे० 'मेज'।

मेच[3]—संज्ञा पुं० [देश०] आसाम की एक पहाड़ी जाति।

मेचक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। अँधेरा। २. नीलांजन। सुरमा। ३. मोर की चंद्रिका। ४. धूआँ। धूम। ५. मेघ। ६. शोभांजन। सहिंजन। ७. पीतशाल। पियासाल। ८. काला नमक। ९. बिच्छू की एक छोटी जाति।

मेचक[2]—वि० श्यामल। काला। स्याह। उ०—चीकने मेचक रुचिर, सुकुंचित मुंचित केस।—घनानंद, पृ० २६६।

यौ०—**मेचकगल**=मोर। मयूर। **मेचकापगा**=यमुना नदी।

मेचकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालापन। श्यामलता।

मेचकताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मेचकता+ई (प्रत्य०)] दे० 'मेचकता'। उ०—कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।—मानस, ६।१२।

मेचकित—वि० [सं०] गहरे नीले रंगवाला [को०]।

मेचटिक—संज्ञा पुं० [सं०] खराब तेल की महक या गंध [को०]।

मेछ—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छ, प्रा० मिच्छ, मेच्छ] अनार्य। म्लेच्छ। विदेशी। उ०—(क) जल थलति थलति करि जल प्रमांन। उनरयौ मेछ जनु मध्य भांन।—पृ० रा०, १९।८४। (ख) कै भंजौ मेछान दल, कै रंजों सुरसान।—पृ० रा०, १२।११९।

मेज[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी घास जो हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है और जिसे घोड़े और चौपाए बड़े चाव से खाते हैं।

मेज[2]—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०>फ़ा० मेज़] लंबी चौड़ी और ऊँची चौकी जो बैठे हुए आदमी के सामने उसपर रखकर खाना खाने, या लिखने पढ़ने और कोई काम करने के लिये रखी जाती है। २. दावत का सामान। भोजन की सामग्री।

मेजपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेज़पोश] चौकी या मेज पर बिछानेवाला कपड़ा।

मेजबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेज़बान] भोजन कराने या आतिथ्य करनेवाला। मेहमानदार। 'मेहमान' का उलटा। उ०—१७ मई को रामपुर और अपने मेजबान से बिदाई ले ली।—किन्नर०, पृ० २८।

मेजबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेज़बानी] १. मेजबान का भाव या धर्म। २. वे खाद्य पदार्थ जो बरात आने पर पहले पहल कन्या पक्ष से बरातियों के लिये भेजे जाते हैं। ३. भोज। दावत (को०)।

मेजर—संज्ञा पुं० [अं०] फौज का एक अफसर। कप्तान से ऊँचा और लेफ्टिनेंट कर्नल से नीचे का अफसर।

मेजर जनरल—संज्ञा पुं० [अं०] फौज का एक अफसर जिसका दर्जा लेफ्टिनेंट जनरल के बाद ही है।

मेजा†—संज्ञा पुं० [देश० सं० मंडूक, हिं० मेढक, पू० हिं० मेजुका] मेढक। मंडूक। उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जानु कुवाँ कर मेजा।—जायसी (शब्द०)।

मेजारिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुसंख्या। आधे से अधिक पक्ष। अधिकांश। जैसे, मेजारिटी रिपोर्ट।

मेजुक—संज्ञा पुं० [देश०] मेजा। मेढक।

मेट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेदी किया हुआ मकान जिसमें कई खंड वा मरातिब हों [को०]।

मेट[2]—संज्ञा पुं० [अं०] १. मजदूरों का अफसर या सरदार। टंडैल। जमादार। २. जहाज का एक कर्मचारी जिसका काम जहाज के अफसर की सहायता करना है। ३. संगी। साथी। जैसे, क्लास मेट।

मेटकⓅ†—संज्ञा पुं० [देशी √मिट, मेट, हिं० मेटना+सं० क (प्रत्य०)] नाशक। मिटानेवाला। उ०—देव जू का न हिये हुलसा तुलसी बन में कुलसीउ को मेटक।—देव (शब्द०)।

मेटनहार, मेटनहाराⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० मेटना+हार (प्रत्य०)] मिटानेवाला। दूर करनेवाला। हटानेवाला। उ०—बिधि कर लिखा को मेटनहारा।—तुलसी (शब्द०)।

मेटना†—क्रि० स० [सं० मृष्ट (=साफ किया हुआ), प्रा० मिट्ट+हिं० ना (प्रत्य०) अथवा देशी √मिट्ट, मेट+हिं० ना (प्रत्य०)] १. घिसकर साफ करना। मिटाना। २. दूर करना। न रहने देना। ३. नष्ट करना। उ०—तिण वेला तारण तरण गिरधारी गोपाल। मिलियौ उर भ्रम मेटवा, हिंदू ध्रम रखवाल।—रा० रू०, पृ० ७०। दे० 'मिटाना'।

मेटर्निटी हास्पिटल—संज्ञा पुं० [अं०] प्रसवशाला। प्रसूति अस्पताल। उ०—मैंने प्रस्ताव रखा कि उसे कार पर बिठाकर किसी अच्छे मेटर्निटी हास्पिटल में पहुँचा दूँ।—जिप्सी, पृ० ४६०।

मेटा[1]—वि० [सं० मृष्ट, हिं० मिटाना] मेटक। मिटानेवाला। उ०—धनमद अंध नंद को बेटा। सो भयौ हमरे मख को मेटा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०७।

मेटा†²—संज्ञा पुं० [हिं०, सं० मृद्भाण्ड] भाँडा। मिट्टी का बना भाँडा या बर्तन।

मेटिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्कांस्य, हिं० मटका] घड़े से छोटा मिट्टी का बर्तन जिसमें दूध, दही आदि रखते हैं। मटकी।

मेटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मेटिया'।

मेटीरियलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] भौतिकवादी।

मेटुकियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मटकी'। उ०—भर्म मेटुकिया सिर के ऊपर सो मेटुकी पटकी।—कबीर श० भा०, ३, पृ० ७।

मेटुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मटकी'।

मेटुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी। आमला।

मेटुवा†—वि० [हिं० मेटना] किए हुए उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न।

मेठ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथीवान। फीलवान। २. मेष। मेढ़ा (को०)।

मेठ†²—संज्ञा पुं० [अं० मेट] दे० 'मेट'।

मेड़—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल या मिति (= इयत्ता, सीमा) या मृद्बन्ध या मृद्दण्ड] १. मिट्टी डालकर बनाया हुआ खेत या जमीन का घेरा। २. दो खेतों के बीच में हद या सीमा के रूप में बना हुआ रास्ता। उ०—धन संपत्ति सर्बस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सों एड़ टलें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २३८।

क्रि० प्र०—**डालना**।—**बाँधना**।

यौ०—**मेड़बंदी**।

३. ऊँची लहर या तरंग। (लश०)।

क्रि० प्र०—**पड़ना**।

मेडक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूक] दे० 'मेढक'।

मेड़बंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेड़ + फ़ा० बंद, या हिं० बँधना] १. मिट्टी डालकर बनाया हुआ घेरा। २. इस प्रकार घेरा बनाने की क्रिया। हदबंदी।

मेडर†—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल] चक्कर। मंडल। घेरा। उ०—एक कहा रजनीपति आही। मेडर अबहिं न छेंका ताही।—इंद्रा०, पृ० १२७।

मेड़रा—संज्ञा पुं० [सं० मण्डल, हिं० मँड़रा] [स्त्री० अल्पा० मेड़री] १. किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा। २. किसी वस्तु का मंडलाकार ढाँचा। जैसे, छलनी या खँजरी का मेड़रा।

मेड़राना†—क्रि० अ० [सं० मण्डल] दे० 'मँड़राना'।

मेड़री—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेड़रा] १. किसी गोल या मंडलाकार वस्तु का उभरा हुआ किनारा। २. मंडलाकार वस्तु का ढाँचा। ३. चक्की के चारो ओर का वह स्थान जहाँ आटा पिसकर गिरता है।

मेडल—संज्ञा पुं० [अं०] चाँदी सोने आदि की वह विशेष प्रकार की मुद्रा जो कोई अच्छा या बड़ा काम करने अथवा विशेष निपुणता दिखाने पर किसी को दी जाय और जिसपर देनेवाले का नाम खुदा हो, तथा जिस बात के लिये वह दी गई हो उसका भी उल्लेख हो। तमगा। पदक। उ०—जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५७५।

मेडिकल—वि० [अं०] पाश्चात्य औषध और चिकित्सा से संबंध रखनेवाला। डाक्टरी संबंधी। जैसे, मेडिकल कालेज, मेडिकल डिपार्टमेंट।

मेड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डप, हिं० मढ़ी] मढ़ी। मंडप। छोटा घर। उ०—कहा चुनावै मेड़िया, चूना माटी लाय। मीच चुनैगी पापिनी, दौरि कै लैगी खाय।—कबीर (शब्द०)।

मेडिसिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. दवा। औषध। जैसे,—डाक्टर ने बहुत तेज मेडिसिन दे दी है। २. चिकित्सा विज्ञान।

मेड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डप या मढ़ी] प्रासाद वा मकान की ऊपरी मंजिल। अट्टालिका। दे० 'मेंड़ी'। उ०—ऊन मियउ उत्तर दिसइं मेड़ी ऊपर मेह। ते बिरहिणि किम जीवसे, ज्याँरा दूर सनेह।—ढोला०, दू० ४२।

मेढक—संज्ञा पुं० [सं० मण्डूक] एक जल-स्थल-चारी जंतु जो तीन चार अंगुल से लेकर एक बालिश्त तक लंबा होता है। यह पानी में तैरता है और जमीन पर कूद कूदकर चलता है। इसके चार पैर होते हैं जिनमें जालीदार पंजे होते हैं। यह फेफड़ों से साँस लेता है, मछलियों की तरह गलफड़ों से नहीं।

पर्या०—**मंडूक**। दर्दुर।

विशेष—विकासक्रम में यह जलचारी और स्थलचारी जंतुओं के बीच का माना जाता है। मछलियों से ही क्रमशः विकास परंपरानुसार जल-स्थल-चारी जंतुओं की उत्पत्ति हुई है, जिनमें सबसे अधिक ध्यान देने योग्य मेढक है। रीढ़वाले जंतुओं में जो उन्नत कोटि के हैं, वे फेफड़ों से साँस लेते हैं। पर जिनका ढाँचा सादा है और जिन्हें जल ही में रहना पड़ता है, वे गलफड़ों से साँस लेते हैं। मछली के ढाँचे से उन्नति करके मेढक का ढाँचा बना है, इसका आभास मेढक की वृद्धि को देखने से मिलता है। अंडे के फूटने पर मेढक का डिंभकीट मछली के रूप में आता है, जल ही में रहता है, गलफड़ों से साँस लेता है और घासपात खाता है। उसे लंबी पूँछ होती है, पैर नहीं होते। कहीं कहीं उसे 'छुछमछली' भी कहते हैं। धीरे धीरे कायाकल्प करता हुआ वह उभयचारी जंतु का रूप प्राप्त करता है और जालीदार पंजों से युक्त पैरवाला, फैफड़े से साँस लेनेवाला और कीड़े पतिंगे खानेवाला मेढक हो जाता है।

मेढकी—संज्ञा स्त्री० [सं० मण्डूकी] मंडूकी। मेढक की मादा।

मुहा०—**मेढकी को जुकाम होना** = छोटे आदमी में बड़ों की बराबरी करने का हौसला होना।

मेढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० मेढ्र, मेण्ढ, मेण्ढक] [स्त्री० भेंड़] सींगवाला एक चौपाया जो लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा और घने रोयों से ढका होता है। मेष।

विशेष—इनका रोयाँ बहुत मुलायम होता है और ऊन कहलाता है। इनका माथा और सींग बहुत मजबूत होते हैं। ये आपस में बड़े बेग से लड़ते हैं, इससे बहुत से शौकीन इन्हें लड़ाने के

लिये पालते हैं। मादा भेंड़ जितनी ही सीधी होती है, उतने ही मेढ़े क्रोधी होते हैं। मेढ़े की एक जाति ऐसी होती है जिसकी पूँछ में चरबी का इतना अधिक संचय होता है कि वह चक्की के पाट की तरह फैलकर चौड़ी हो जाती है। ऐसा मेढ़ा 'दुंबा' कहलाता है। विशेष दे० 'भेड़'।

मेढासिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेढ़शृङ्गी**] औषध के रूप में प्रयुक्त एक झाड़ीदार लता।

विशेष—यह लता मध्यप्रदेश और दक्षिण के जंगलों में तथा बंबई के आसपास बहुत होती है। इसकी जड़ औषध के काम आती है और सर्प का विष दूर करने के लिये प्रसिद्ध है। इसकी पत्तियाँ चबाने से जीभ देर तक सुन्न रहती है। वैद्यक में यह तिक्त, वातवर्धक, श्वास और कासवर्धक, पाक में रूक्ष, कटु तथा व्रण, श्लेष्मा और आँख के दर्द को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके फल दीपन तथा कास, कृमि, व्रण, विष और कुष्ठ को दूर करनेवाले कहे जाते हैं।

मेढिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ी] दे० 'मढी'।

मेढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० **वेणी**] १. तीन लड़ियों में गूथी हुई चोटी। उ०—लटकन चारु, भृकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेश सुभाए।—तुलसी। (शब्द०)। २. घोड़ों के माथे पर की एक भौंरी।

मेढ़्—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिश्न। लिंग। २. मेढ़ा।

यौ०—**मेढ़्ज**=शिव का एक नाम। **मेढ़्शृंगी**=दे० 'मेढ़ासिंगी'।

मेथि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'जुआठा'। २. दे० 'मेधि' [को०]।

मेथि²—संज्ञा स्त्री० दे० 'मेथी' [को०]।

मेथिका, मेथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

मेथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसाले और औषध में काम आनेवाला। एक बहुप्रसिद्ध छोटा पौधा और उसका फल।

विशेष—भारतवर्ष में इसका पौधा प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ कुछ गोल होती हैं और साग की तरह खाई जाती हैं। इसकी फलियों के दाने मसाले और औषध के काम में आते हैं और देखने में कुछ चौखूँटे होते हैं। इसकी फसल जाड़े में तैयार होती है। वैद्यक में इसका गुण कटु, उष्ण, अरुचिनाशक, दीप्तिकारक, वातघ्न तथा रक्तपित्त प्रकोपन माना गया है।

पर्या०—दीपनी। बहुमूत्रिका। गंधबीजा। ज्योति। गंधफला। वल्लरी। चंद्रिका। मंथा। मिश्रपुष्पा। कैरवी। बहुपर्णी। पीतबीजा।

मेथौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मेथी**+**बरी**] मेथी का साग मिलाकर बनाई हुई उर्द की पीठी की बरी।

मेद—संज्ञा पुं० [सं० **मेदस्**, **मेद**] १. शरीर के अंदर की वसा नामक धातु। चरबी।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार मेद मांस से उत्पन्न धातु है जिससे अस्थि बनती है। भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रंथों में लिखा है कि जब शरीर के अंदर की स्वाभाविक अग्नि से मांस का परिपाक होता है, तब मेद बनता है। इसके इकट्ठा होने का स्थान उदर कहा गया है।

२. मोटाई या चरबी बढ़ने का रोग। ३. कस्तूरी। उ०—(क) रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ गौरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहि केशव मेद जवादि सों माँजि इते पर आँजे में अंजन दै।—केशव (शब्द०)। ४. नीलम की एक छाया।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)। ५. एक अंत्यज जाति जिसकी उत्पत्ति मनुस्मृति में वैदेहिक पुरुष और निषाद स्त्री से कही गई है।

मेदज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुग्गुल [को०]।

मेदनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेदिनी** ?] यात्रियों का वह दल या गोल जो झंडा लेकर किसी तीर्थस्थान या देवस्थान को जाता है।

मेदपाट—संज्ञा पुं० [सं०] मेवाड़। उ०—शत्रुराजाओं के आयुष्यरूपी पवन का पान करने के लिये चलती हुई कृष्णसर्प जैसी तलवार के अभियान के कारण मेदपाट (मेवाड़) के राजा जयतल (जैत्रसिंह) ने हमारे साथ मेल न किया।—राज० इति०, पृ० ४६०।

मेदपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] दुंबा मेढ़ा।

मेदसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्टवर्ग की एक ओषधि। विशेष दे० 'मेदा'।

मेदस्वी—वि० [सं० **मेदस्विन्**] १. स्थूल। मोटा। अधिक चरबीवाला। २. ताकतवर [को०]।

मेदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर और राजयक्ष्मा में अत्यंत उपकारी अष्टवर्ग में एक प्रसिद्ध ओषधि।

विशेष—कहते हैं, इसकी जड़ अदरक की तरह पर बहुत सफेद होती है और नाखून गड़ाने से उसमें से मेद के समान दूध निकलता है। वैद्यक में यह मधुर, शीतल तथा पित्त, दाह, खाँसी, ज्वर और राजयक्ष्मा को दूर करनेवाली कही गई है। यह मोरंग की ओर पाई जाती है।

मेदा—संज्ञा पुं० [अ०] पाकाशय। पेट। कोठा। जैसे, मेदे की शिकायत।

मुहा०—**मेदा कड़ा होना**=आँतों की क्रिया इस प्रकार की होना कि जल्दी दस्त न हो।

मेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। धरती।

विशेष—पुराणों में मधुकैटभ के मेद से पृथ्वी की उत्पत्ति कही गई है, इसी से पृथिवी का यह नाम पड़ा है।

२. मेदा। ३. स्थान। जगह (को०)। ४. एक संस्कृत कोश का नाम (को०)।

यौ०—**मेदिनीज**=मंगलग्रह। **मेदिनीद्रव**=धूलि। **मेदिनीधर**=शैल। पर्वत। **मेदिनीपति**=राजा।

मेदुर—वि० [सं०] १. चिकना। स्निग्ध। २. मोटा। स्थूल (को०)। ३. भरा हुआ। आच्छन्न (को०)।

मेदोज—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी। अस्थि।

मेदोधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर की तीसरी कला या झिल्ली जिसमें मेद या चरबी रहती है ।

मेदोर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेदयुक्त गाँठ या गिल्टी जिसमें पीड़ा हो । २. ओठ का एक रोग ।

मेदोवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चरबी का बढ़ना । मोटाई । २. अंडवृद्धि ।

मेद्य—वि० [सं०] १. मोटा । २. निविड़ । गाढ़ा । ठोस [को०] ।

मेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ । २. हवि । यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु । ४. मांस का शोरबा या रसा (को०) । ५. रस । सार । नियसि (को०) ।

मेधज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

मेधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंतःकरण की वह शक्ति जिससे जानी, देखी, सुनी या पढ़ी हुई बातें मन में बराबर बनी रहती हैं, भूलती नहीं । बात को स्मरण रखने की मानसिक शक्ति । धारणावाली बुद्धि । २. दक्ष प्रजापति की एक कन्या । ३. षोडश मातृकाओं में से एक, जिसका पूजन नांदीमुख श्राद्ध में होता है । ४. छप्पय छंद का एक भेद । ५. शक्ति । ताकत । बल (को०) । ६. सरस्वती का एक रूप (को०) ।

यौ०—**मेधाकर** = बुद्धि बढ़ानेवाला । **मेधाजित्** । **मेधारुद्र** ।

मेधाजित्—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन मुनि ।

मेधातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाम जो बहुत से लोगों का है । १. कारावंश में उत्पन्न एक ऋषि जो ऋग्वेद के प्रथम मंडल के १२-३३ सूक्तों के द्रष्टा थे । २. कण्व मुनि के पिता । (महाभारत) । ३. भट्ट वीरस्वामी के पुत्र जो मनुसंहिता के प्रसिद्ध भाष्यकार हैं । ४. प्रियव्रत के पुत्र और शाकद्वीप के अधिपति । (भागवत) । ५. कर्दम प्रजापति के पुत्र ।

मेधारुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कालिदास [को०] ।

मेधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती लता ।

मेधावान्—वि० [मेधावत्] [वि० स्त्री० मेधावती] जिसकी स्मरणशक्ति तीव्र हो । धारणाशक्तिवाला ।

मेधाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की पत्नी का नाम [को०] ।

मेधावी[1]—वि० [सं० मेधाविन्] [वि० स्त्री० मेधाविनी] १. मेधाशक्तिवाला । जिसकी धारणाशक्ति तीव्र हो । २. बुद्धिमान् । चतुर । ३. पंडित । विद्वान् ।

मेधावी[2]—संज्ञा पुं० १. शुक पक्षी । सुग्रा । तोता । २. मद्य । शराब । ३. कश्यप के एक पुत्र । ४. च्यवन के एक पुत्र । उ०—च्यवन पुत्र मेधावी नामा । करैं तपस्या विपिन अकामा ।—विश्राम (शब्द०) ।

मेधि—संज्ञा पुं० [सं०] उस स्थान पर गड़ा हुआ खंभा जहाँ खेत से लाकर फसल फैलाई जाती है । दाँनेवाले बैल इसी खंभे में बँधे हुए चारों ओर घूमकर पैरों से डंठलों के दाने झाड़ते हैं ।

मेधिर—वि० [सं०] तत्पर बुद्धिवाला । मेधावी । बुद्धिमान् ।

मेधिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत मेधावी [को०] ।

मेध्य[1]—वि० [सं०] १. बुद्धि बढ़ानेवाला । मेधाजनक । २. पवित्र । शुचि । ३. यज्ञ संबंधी । यज्ञ के योग्य ।

मेध्य[2]—संज्ञा पुं० १. खैर । कत्था । २. जौ । ३. बकरा ।

मेध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, मंडूकी आदि बुद्धिवर्धक बूटियाँ । २. गोरोचन । ३. एक रक्तवाहिनी नस [को०] ।

मेनका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की एक अप्सरा ।

विशेष—यह अप्सरा इंद्र की आज्ञा से विश्वामित्र का तप भंग करने के लिये गई थी और विश्वामित्र के संयोग से इसे शकुंतला नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी ।

२. उमा या पार्वती की माता जो हिमवान् की पत्नी थी ।

मेनकात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शकुंतला । २. पार्वती । दुर्गा ।

मेनकाहित—संज्ञा पुं० [सं०] रासक नामक नाटक का एक भेद ।

मेना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पितरों की मानसी कन्या मेनका । २. हिमवान् की स्त्री । मेनका । ३. स्त्री । ४. वृषणश्व की मानसी कन्या (ऋग्वेद) । ५. वाक् ।

मेना[2]—क्रि० स० [हिं० मोयन] पकवान आदि में मोयन देना । मोयन डालना । उ०—लुचुई पोइ पोइ घिउ मेई । पाछे छानि खाँड़ रस भेई ।—जायसी (शब्द०) ।

मेनाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल्ली । २. बकरी । ३. मोर ।

मेनाधव—संज्ञा पुं० [हिं०] हिमालय ।

मेमंत(पु)—वि० [सं० मदमत्त, हिं० मैमंत] मदमत्त । मतवाला । उ०—मेमंति दंति घन बज्जि सार ।—पृ० रा०, ६१।६०३ ।

मेम—संज्ञा स्त्री० [अं० मैडम का संक्षिप्त रूप] १. योरोप या अमेरिका आदि की विवाहिता स्त्री । २. ताश का एक पत्ता जिसे बीबी या रानी कहते हैं । यह पत्ता बादशाह से छोटा और गुलाम से बड़ा माना जाता है ।

मेमना—संज्ञा पुं० [अनु० में में] १. भेड़ का बच्चा । २. घोड़े की एक जाति । उ०—कोइ काबुल कँबोज कोइ कच्छी । बोत मेमना मुंजी लच्छी ।—विश्राम (शब्द०) ।

मेमो—संज्ञा पुं० [अं०] मेमोरैंडम का संक्षिप्त रूप ।

मेमार—संज्ञा पुं० [अं०] भवन निर्माण करनेवाला शिल्पी । इमारत बनानेवाला । थवई । राजगीर ।

मेमोरियल—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह प्रार्थनापत्र जो किसी बड़े अधिकारी के पास विचारार्थ भेजा जाय । आवेदनपत्र । उ०—जिस नगर में श्रीमान् लेफ्टिनेंट गवर्नर बहादुर जायँ वहीं उनको नागरी के प्रचारार्थ मेमोरियल दिए जायँ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५७ । २. स्मारकचिह्न । यादगार ।

मेमोरैंडम—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह पत्र जिसमें कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखी गई हो । याददाश्त । स्मरणपत्रक । २. वक्तव्य । अभिमत ।

मेमोरेंडम आफ ऐसोसिएशन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी ज्वाइंट स्टाक कंपनी या संमिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की उद्देश्यपत्रिका जिसमें उस कंपनी का नाम और उद्देश्य आदि लिखे होते हैं और अंत में हिस्सेदारों के हस्ताक्षर होते हैं। सरकार में इसकी रजिस्ट्री हो जाने पर कंपनी का कानूनी अस्तित्व हो जाता है। उद्देश्यपत्रिका।

मेय—वि० [सं०] १. जिसकी नाप जोख हो सके। जिसका परिमाण या विस्तार ठीक बताया जा सके। २. जो नापा जोखा जानेवाला हो।

मेयना†—क्रि० स० [सं० मेदन हिं० मेयन(=मोयन)] पकवान आदि में मोयन डालना। मोयन देना।

मेयर—संज्ञा पुं० [अं०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का प्रधान। जैसे, कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर।

विशेष—इंगलैंड में म्युनिसिपैलटियों के प्रधान मेयर कहलाते हैं। ये अपने नगरों की म्युनिसिपैलटियों के प्रधान होने के सिवा वहाँ के प्रधान मैजिस्ट्रेट भी होते हैं। लंडन तथा और कई नगरों की म्युनिसिपैलटियों के प्रधान लार्ड मेयर कहलाते हैं। हिंदुस्तान में कारपोरेशन के प्रधान मेयर कहलाते हैं। इनका केवल म्युनिसिपल प्रबंध से ही संबंध है। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय सन् १७२६ ई० में भारत में, कलकत्ता, बंबई और मद्रास में, विचारकार्य के लिये मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे। यह ऐतिहासिक तथ्य है परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतवर्ष के अन्य बड़े नगरों में भी कारपोरेशन या महापालिकाएँ बनाई गई हैं। उन सबके प्रधान को मेयर या अध्यक्ष कहते हैं। इनका निर्वाचन कार्पोरेशन के सभासदों द्वारा किया जाता है।

मेयान†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मियान] दे० 'म्यान'। उ०—कहाँ म्यान का पयान, कहाँ मेयान का मुसकला।—रामानंद०, पृ० ३२।

मेये—संज्ञा स्त्री० [सं० बँग०] कन्या। बेटी। पुत्री। उ०—पंजाबी मेये तो बेश सुंदरी।—भस्मावृत, पृ० ७२।

मेरⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० मेल] दे० 'मेल'। उ०—(क) एहि सो कृष्ण बलराज जस कीन्ह चहै छर बाँध। मन विचार हम आवही मेरहि दीज न काँध।—जायसी। (शब्द०)। (ख) गएउ हेराइ जो ओहि भा मेरा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६२। (ग) अपने अपने मेरनि मानो उनि होरी हरख लगाई।—सूर (शब्द०)।

मेरⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० मेरु] दे० 'मेरु'। उ०—सुंदर हय हींसे जहाँ गय गाजे चहुँ फेर। काइर भागै सटक दे सूर अडिग ज्यौं मेर।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३६।

यौ०—**मेरडंड**=दे० 'मेरुदंड'। उ०—थिर मन मेरडंड चढ़ तारी।—घट०, पृ० ३१।

मेर†[3]—संज्ञा पुं० [देश०] पर्वतीय जातिविशेष। एक लड़ाकू पर्वतवासी जाति। उ०—जहँ पब्बय घाटो हुतौ मीना मेर मवास।—पृ० रा०, ७।७६।

मेरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे विष्णु ने मारा था।

मेरठी—संज्ञा पुं० [हिं० मेरठ नगर से] गन्ने की एक जाति जो मेरठ की ओर होती है।

मेरवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेरवना] मिलाने की क्रिया या भाव। मिलान।

मेरवना—क्रि० स० [सं० मेलन] १. दो या कई वस्तुओं को एक में करना। मिश्रित करना। मिलाना। उ०—ते मेरए धरि धूरि सुजोधन जे चलते वह छत्र की छाहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. दो या कई व्यक्तियों को एक साथ करना। संयोग करना। मिलाप करना उ०—(क) चतुरवेद हौं पंडित हीरामन मोहि नाऊँ। पद्मावत सौ मेरवौ सेव करौ तेहि ठाउँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) है मोहि आस मिलैकै जौ मेरव करतार। जायसी (शब्द०)। (ग) औ बिनती पँडितन सन भजा। टूट सँवारहु, मेरवहु सजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

मेरवनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेरवना] दे० 'मेरवन'। उ०—सुंदर श्यामल अंग बसन पीत सुरंग कटि निषंग परिकर मेरवनि।—तुलसी (शब्द०)।

मेरा[1]—सर्व० [हिं० मैं + रा (प्रा० केरिओ, हिं० केरा)], [स्त्री० मेरी] 'मैं' के संबंधकारक का रूप। मुझसे संबंध रखनेवाला। मदीय। मम। जैसे,—यह घोड़ा मेरा है। उ०—मेरहुँ जेट्ठ गरिट्ठ अछ मंति विअक्खन भाए।—कीर्ति०, पृ० २०।

मेराⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० मेला] दे० 'मेला'। उ०—यह संसार सुवन जस मेरा। अंत न आपन को केहि केरा।—जायसी (शब्द०)।

मेराउ†—संज्ञा पुं० [हिं० मेर (=मेल)] दे० 'मेराव'। उ०—धनि ओहि जीव दीन्ह बिधि भाऊ। दहुँ का सउँ लेइ करइ मेराऊ।—जायसी (शब्द०)।

मेराज—संज्ञा स्त्री० [अं० मेराज] सीढ़ी। ऊपर चढ़ने का साधन। उ०—रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा। तीसो रोजा रहै अंदर में सात टिकावा।—पलटू०, पृ० ४३।

मेरानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'मिलाना'। उ०—(क) सो बसीठ सरजा लेइ आवा। बादसाह कहँ आनि मेरावा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कपूर लाइची मेरिया वामें पूजा यही हमारा। जग० बानी, पृ० १।

मेराव—संज्ञा पुं० [हिं० मेर (=मेल)] मेल। मिलाप। समागम। उ०—पदुमावति पुनि पूजइ आवा। होइहि ओहि मिसु दिस्ट मेरावा।—जायसी (शब्द०)।

मेरी[1]—सर्व० [हिं०] 'मेरा' का स्त्री० रूप।

मेरी[2]—संज्ञा स्त्री० अहंकार। उ०—मेरी मिटी मुक्ता भया पाया ब्रह्म बिस्वास। मेरे दूजा कोउ नहीं एक तुम्हारी आस।—कबीर (शब्द०)।

मेरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा गया है। विशेष दे० 'सुमेरु'।

पर्या०—**हेमाद्रि। रत्नसानु। सुरालय।**

२. जपमाला के बीच का बड़ा दाना जो और सब दानों के ऊपर होता है। इसी से जप का आरंभ और इसी पर उसकी समाप्ति होती है। सुमेरु। (जप करते समय 'मेरु' का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।) उ०—कबिरा माला काठ की बहुत जतन

का फेर। माला फेरौ साँस की जामे गाँठि न मेरु।—कबीर (शब्द०)। ३. एक विशेष ढाँचे का देवमंदिर।

विशेष—वृहत्संहिता के अनुसार यह षट्कोण होता है और इसमें १२ भूमिकाएँ या खंड होते हैं। अंदर अनेक प्रकार के गवाक्ष (मोखे) और चारों दिशाओं में द्वार होते हैं। इसका विस्तार ३२ हाथ और ऊँचाई ६४ हाथ होनी चाहिए।

४. वीणा का एक अंग। ५. पिंगल या छंदशास्त्र की एक गणना जिससे यह पता लगता है कि कितने कितने लघु गुरु के कितने छंद हो सकते हैं। ६. करमाला में अंगुलि का पर्व या पोर (को०)। ७. हार का मध्यवर्ती रत्न (को०)।

मेरुआ—संज्ञा पुं० [सं० मेरु+हिं० आ (प्रत्य०)] खेत बराबर करने के पाटे का छोर पर का भाग जिसमें रस्सियाँ बँधी होती हैं।

मेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईशान कोण में स्थित एक देश। (वृहत्संहिता)। २. यज्ञधूम। धूना।

मेरुकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

मेरुदंड—संज्ञा पुं० [सं० मेरुदण्ड] १. पीठ के बीच की हड्डी। रीढ़। २. पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के बीच गई हुई सीधी कल्पित रेखा।

मेरुदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेरु की कन्या और नाभि की पत्नी जो विष्णु के अवतार ऋषभदेव की माता थी।

मेरुधामा—संज्ञा पुं० [सं० मेरुधामन्] शिव। महादेव।

मेरुपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. स्वर्ग।

मेरुभूत—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति का नाम।

मेरुभूतसिंधु—संज्ञा पुं० [सं०] पल्लव देश का दूसरा नाम।

मेरुयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० मेरुयन्त्र] १. चरखा। २. बीजगणित में एक प्रकार का चक्र।

मेरुशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेरु की चोटी। २. हठयोग में माने हुए मस्तक के छह चक्रों में से सबसे ऊपर का चक्र।

विशेष—इसका स्थान ब्रह्मरंध्र, रंग अवर्णनीय और देवता चिन्मय शक्ति है। इसके दलों की संख्या १०० और दलों का अक्षर ओंकार है। इसे सहस्रार भी कहते हैं।

मेरुश्रीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

मेरुसावर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारहवें मनु का नाम।

मेरे—सर्व० [हिं० मेरा] १. मेरा का बहुवचन। जैसे,—ये आम मेरे हैं। २. मेरा का वह रूप जो उसे संबंधवान् शब्द के आगे विभक्ति लगने के कारण प्राप्त होता है। जैसे,—मेरे घर पर आना।

मेल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो या अधिक वस्तुओं या व्यक्तियों के इकट्ठा होने का व्यापार अथवा भाव। मिलने की क्रिया या भाव। संयोग। समागम। मिलाप। मिलान। उ०—दरिया सुमिरन नाम का, देखत भूली खेल। धनसून हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल।—दरिया० बानी, पृ० ८।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—रखना।—होना। जैसे,—(क) इधर से यह चला, उधर से वह चला, बीच में दोनों का मेल हो गया। (ख) इसी स्टेशन पर दोनों गाड़ियों का मेल होता है।

यौ०—मेलमिलाप।

२. एक साथ प्रीतिपूर्वक रहने का भाव। अनबन का न रहना। एकता। सुलह। जैसे—दोनों भाइयों में बड़ा मेल है।

यौ०—मेलजोल।

मुहा०—मेल करना=विरोध दूर करना और परस्पर हित संबंध स्थापित करना। सुलह करना। संधि करना। **मेल होना**= झगड़ा मिटना। सुलह होना।

३. पारस्परिक घनिष्ठ व्यवहार। मैत्री। मित्रता। दोस्ती। प्रीति-संबंध। जैसे,—उसने अब मेरे शत्रुओं से मेल किया है।

मुहा०—मेल बढ़ाना=घनिष्ठ व्यवहार करना। अधिक परिचय और साथ करना। मैत्री करना। जैसे,—बहुत मेल मत बढ़ाओ, नहीं तो धोखा खाओगे।

४. अनुकूलता। अनुरूपता। उपयुक्तता। संगति। सामंजस्य। मुआफिकत।

मुहा०—मेल खाना=(१) साथ का ठीक होना। संगति का उपयुक्त होना। साथ निभना। जैसे,—हमारा उनका मेल नहीं खा सकता। (२) वस्तुओं की एक साथ स्थिति का अच्छा या ठीक होना। दो चीजों का जोड़ ठीक बैठना। जैसे,—इसका रंग कपड़े के रंग के साथ मेल नहीं खाता है। **मेल बैठना**= दे० 'मेल खाना'। **मेल मिलाना**=दे० 'मेल बैठना'।

५. जोड़। टक्कर। बराबरी। समता। जैसे,—इसके मेल की चीज का मिलना तो कठिन है। ६. ढंग। प्रकार। चाल। तरह। जैसे,—इसकी दुकान पर कई तरह की चीजें हैं। ७. दो वस्तुओं का एक में होना। मिश्रण। मिलावट। जैसे,—हरा रंग नीले और पीले रंगों के मेल से बनता है।

मेल[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वे सब चिट्ठियाँ और पार्सल आदि जो डाक से भेजी जायँ। डाक का थैला। डाकगाड़ी।

यौ०—मेलट्रेन।

मेलट्रेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बहुत तेज चलनेवाली गाड़ी जो केवल बड़े बड़े स्टेशनों पर ही ठहरती हैं, छोटे छोटे स्टेशनों पर नहीं ठहरती और जिसके द्वारा दूर की डाक भेजी जाती है।

मेलवान—संज्ञा पुं० [अं०] रेल का वह डिब्बा जिसमें डाक भेजी जाय।

मेलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. संग। सहवास। २. मेला। ३. समूह। जमावड़ा। ४. मिलन। समागम। ५. वर और कन्या की राशि, नक्षत्र आदि का विवाह के लिये किया जानेवाला मिलान।

मेलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक साथ होना। इकट्ठा होना। मिलन। २. जमावड़ा। ३. मिलाने की क्रिया या भाव।

मेलना(५)†[1]—क्रि० स० [हिं० मेल+ना (प्रत्य०)] १. मिलाना। २. डालना। रखना। उ०—जे कर कनक कचोरा भरि भरि

मेलत तेल फुलेल ।—सूर (शब्द०) । ३. धारण कराना । पहनाना । उ०—सिय जयमाल राम उर मेली ।—तुलसी (शब्द०) । ४. रमाना । लगाना । उ०—छाँड़ा नगर मेलि कै धूरी ।—जायसी ग्रं०, पृ० ५६ । ५. भेजना । उ०—नृप मेले आया नगर, दोड़ बधाईदार । कहीं विगत विध विध करे आनँद भरे अपार ।—रघु० रू०, पृ० ९२ ।

मेलना[2]—क्रि० अ० इकट्ठा होना । एकत्र होना । जुटना । उ०—बलसागर लछमन सहित कपिसागर रनधीर । जससागर रघुनाथ जू मेले सागर तीर ।—(शब्द०) ।

मेलमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जिसकी स्वरलिपि इस प्रकार है—स स स रे म प ध स स ध प म ग रे स ।

मेलांधु—संज्ञा पुं० [सं० मेलान्धु] दवात ।

मेला[1]—संज्ञा पुं० [सं० मेलक] १. बहुत से लोगों का जमावड़ा । भीड़ भाड़ । २. देवदर्शन, उत्सव, खेल, तमाशे आदि के लिये बहुत से लोगों का जमावड़ा । जैसे, माघमेला, हरिहरक्षेत्र का मेला ।

यौ०—मेला ठेला । मेला तमाशा ।

मुहा०—मेला भरना = किसी खेल तमाशे या उत्सव में काफी भीड़-भाड़ एकट्ठी होना । मेला लगना = जमाव होना । भीड़ लगना ।

मेला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुत से लोगों का जमावड़ा । २. मिलन । समागम । मिलाप । ३. स्याही । रोशनाई । ४. अंजन । ५. महानीली ।

मेलाठेला—संज्ञा पुं० [हिं० मेला + ठेला (= धक्का)] भीड़ भाड़ और धक्का । जमावड़ा । जैसे,—मेले ठेले में स्त्रियों का जाना ठीक नहीं ।

मेलानंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० मेलानन्दा] दवात ।

मेलान(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] मंजिल । पड़ाव । टिकान । डेरा । उ०—सागरतीर मेलान पुनि करिहैं रघुकुल नाह । —केशव (शब्द०) ।

मेलाना[1]—क्रि० स० [हिं० मेल] १. मेलना का प्रेरणार्थ रूप । रेहन या गिरवी रखी हुई वस्तु को रुपया देकर छुड़ाना ।

मेलायप संज्ञा पुं० [सं०] १. मिलाने, इकट्ठा करनेवाला । २. ग्रहों का संयोग । ३. भीड़ । जमाव ।

मेलापन—संज्ञा पुं० [सं०] मिलना । संयोग । समागम ।

मेली[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मेल] वह जिससे मेल जोल हो । वह जिससे घनिष्ट परिचय हो । मुलाकाती । संगी । साथी ।

मेली[2]—वि० हेल मेल रखनेवाला । जल्दी हिल मिल जानेवाला । जिसकी प्रवृत्ति लोगों को मित्र बनाने की हो । यारबाश । जैसे,—वह बड़ा मेली आदमी है ।

मेल्टिंग केट्ल—संज्ञा पुं० [अं०] सरेस गलाने की देगची ।

विशेष—यह एक ढकनेदार दोहरा बर्तन होता है । नीचे के बर्तन में पानी भरकर उसके अंदर दूसरा बर्तन रखकर उसमें सरेस भर देते हैं और ढककर आँच पर चढ़ा देते हैं । पानी की भाप से सरेस गल जाता है । गल जाने पर उसे रोलर मोल्ड में ढाल देते हैं जिससे वह जम जाता है और स्याही देने का बेलन तैयार होकर निकल आता है । (छापाखाना) ।

मेल्हना[1]—क्रि० स० [प्रा० मेल्ल, गुज० मेलवुं = (छोड़ना, रखना] १. छोड़ना । रखना । डालना । उ०—पग पलका की सुधि नहीं सार सबद क्या होइ । कर मुख माहैं मेल्हतां, दादू लखै न कोइ ।—दादू० बानी, पृ० ३९० । २. गड़ा रहना । पड़ा रहना । उ०—मेल्ही रही सूम की थाती । सुंदर दी आगै कौं थाती ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५८ ।

मेल्हना[2] संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसका सिक्का खड़ा रहता है ।

मेल्हना[3]—क्रि० अ० १. क्लेश या पीड़ा से बार बार इस करवट से उस करवट होना । छटपटाना । बेचैन होना । २. कोई काम करने में आनाकानी करके समय बिताना ।

मेव—संज्ञा पुं० [देश०] राजपूताने की ओर बसनेवाली एक लुटेरी जाति । मेवाती । उ०—छवि बन में दौरन लगे जब तें तव दृग मेव । तब ते कढ़े सनेहिया मन छन लै कै छेव ।—रसनिधि (शब्द०) ।

विशेष—मेव पहले हिंदू थे और मेवात में बसते थे । पर मुसलमानी बादशाहत के जमाने में ये मुसलमान हो गए । अब ये लोग लूट-पाट प्राय: छोड़ते जा रहे हैं ।

मेवक[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेवह्] मेवा । उ०—भूखो नैन रूप को चाहत मिलनि सकल रस मेवक ।—भीखा श०, पृ० ८६ ।

मेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] निर्गुंडी । सँभालू ।

मेवा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेवह्] १. खाने का फल । २. किसमिस, बादाम, अखरोट आदि सुखाए हुए बढ़िया फल । उ०—बिबिध मधु मेवा भोग रचाय ।—घनानंद, पृ० ५६१ ।

मेवा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] सूरत के गन्ने की एक जाति जिसे 'खजुरिया' भी कहते हैं ।

मेवाटी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेवा + बाटी] एक पकवान जिसके अंदर मेवे भरे रहते हैं । उ०—फूटि जाय फन फनीराज को समोसा सम फटि जाय कच्छप की पीठ हू मेवाटी सी ।—गोपाल (शब्द०) ।

मेवाड़—संज्ञा पुं० [देश०] १. राजपूताने का एक प्रांत जिसकी प्राचीन राजधानी चित्तौर थी और आजकल उदयपुर है । २. एक राग जो मालकोस राग का पुत्र माना जाता है ।

मेवाड़ी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मेवाड़ + ई (प्रत्य०)] मेवाड़ प्रदेश का निवासी ।

मेवाड़ी[2]—वि० मेवाड़ में होनेवाला । मेवाड़ से संबंध रखनेवाला । मेवाड़ का ।

मेवात—संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने और सिंध के बीच के प्रदेश का पुराना नाम । यहाँ मेव नाम की जाति का निवास था, जो हिंदू थे । उ०—मेवात धनी आए महेस । मोहिल्ल दुनांपुर दिए पेस ।—पृ० रा०, १। ४२२ ।

मेवाती—संज्ञा पुं० [हिं० मेवात+ई (प्रत्य०)] मेवात का रहनेवाला ।

मेवादार—वि० [फ़ा० मेवह्‌दार] फलदार । फलयुक्त ।

मेवाफ़रोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेवह्‌ + फ़रोश] फल या मेवे बेचनेवाला ।

मेवासाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० मवासा] १. किला । गढ़ । २. रक्षा का स्थान । ३. घर । उ०—कबीर हरि की गति का मन में बहुत हुलास । मेवासा भाँजै नहीं होन चहै निज दास । —कबीर (शब्द०) ।

मेवासी—संज्ञा पुं० [हिं० मेवासा] १. घर में रहनेवाला । घर का मालिक । उ०—मन मेवासी मूड़िए केशहि मूड़े काहि । जो कुछ किया सो मन किया केशाँ किया कछु नाहि ।—कबीर (शब्द०) । २. किले में रहनेवाला । संरक्षित और प्रबल । उ०—कबिरा मन मेवासी भया बस करि सकै न कोय । सनकादिक रिषि सारखे तिनके गया विगोय ।—कबीर (शब्द०) ।

मेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़ । २. बारह राशियों में से एक जिसके अंतर्गत अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र का प्रथम पाद पड़ता है ।

विशेष—इस राशि पर सूर्य वैशाख में रहते हैं । राशियों की गणना में इसका नाम सबसे पहले पड़ता है । इसकी आकृति मेष के समान मानी गई है । यह राशि सूर्य का उच्च स्थान है । इसमें जबतक सूर्य रहते हैं, तबतक बहुत प्रबल रहते हैं । उच्चांश काल वैशाख में प्रथम दस दिन तक रहता है । इसके उपरांत सूर्य उच्चांशच्युत होने लगते हैं ।

३. एक लग्न जो सूर्य के मेष राशि में रहने पर माना जाता है । जैसे,—यदि किसी का जन्म सूर्य के मेष राशि में रहने पर होगा, तो कहा जाएगा कि उसका जन्म मेष लग्न में हुआ ।

मुहा०—मेष करनाⓅ = मीन मेष करना । आगा पीछा करना । संकल्प विकल्प करना । उ०—कियो अक्रूर भोजन दुहुन संग लै, नर नारी ब्रज लोग सबै देखै । मनो आए संग, देखि ऐसे रंग, मनहि मन परस्पर करत मेषै ।—सूर (शब्द०) ।

४. एक ओषधि । ५. जीवशाक । सुसना ।

मेषकंबल—संज्ञा पुं० [सं० मेषकम्बल] मेष के रोएँ का कंबल । ऊनी कंबल [को०] ।

मेषकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़ नाम का पौधा । चक्रमर्द [को०] ।

मेषग—वि० [सं०] मेष राशि में गया हुआ । उ०—माधव मेषग भानु मैं हे मधुसत्रु मुरारि । प्रात न्हान फल दीजिए नाथ पाप निरुवारि । —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६० ।

मेषपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गड़रिया ।

मेषपालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मेषपालक' [को०] ।

मेषपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी ।

मेषमास—संज्ञा पुं० [सं०] वैशाख मास [को०] ।

मेषरⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला] दे० 'मेखला' । उ०—रवंत कट्टि मेषरं, चकोर साव से सुरं ।—पृ० रा०, ६१।७७० ।

मेषलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द । चकवँड़ ।

मेषवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी ।

मेषविषाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी ।

मेषवृषण—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम । उ०—मेषवृषण अस नाम शक्र को ह्वैहै सब संसारा । अवृषण मेष देव पितरन को दैहै तोहि अपारा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मेषशृंग—संज्ञा पुं० [सं० मेषशृङ्ग] सिंगिया नामक स्थावर विष ।

मेषशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेषशृङ्गी] मेढ़ासिंगी ।

मेषसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० मेषसङ्क्रान्ति] मेष राशि पर सूर्य के आने का योग वा काल ।

विशेष—इसी दिन से सौर मास के वैशाख का आरंभ होता है । इस दिन हिंदू लोग सत्तू दान करते हैं, इससे इसे 'सतुआ संक्रांति' भी कहते हैं ।

मेषांड—संज्ञा पुं० [सं० मेषाण्ड] इंद्र ।

मेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुजराती इलायची । २. चमड़े का एक भेद जो लाल भेड़ की खाल से बनता है ।

मेषालु—संज्ञा पुं० [सं०] बर्बरी । बनतुलसी । बबुई ।

मेषिका, मेषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भेड़ । स्त्री मेष । २. तिनिश वृक्ष । ३. जटामासी ।

मेषूरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मेसूरण' [को०] ।

मेस—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर विद्यार्थियों के लिये भोजन का प्रबंध किया जाय । छात्रावास से संबद्ध भोजनालय जहाँ विद्यार्थी मूल्य देकर भोजन करते हैं । २. फौजी अफसरों, सैनिकों आदि का संयुक्त भोजनालय ।

मेसूरण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दशम लग्न जो कर्मस्थान कहा जाता है ।

मेस्मराइज़र—संज्ञा पुं० [अं० मेज्मराइज़र] वह जो किसी को अपनी इच्छाशक्ति से अचेत कर देता है । मेस्मरिज्म करनेवाला । संमोहित करनेवाला । संमोहक ।

मेस्मरिज़्म—संज्ञा पुं० [अं० मेज्मरिज्म] (मेज्मर नामक जर्मन डाक्टर का निकाला हुआ) वह सिद्धांत जिससे कि मनुष्य किसी गुप्त शक्ति या केवल इच्छाशक्ति से दूसरे की इच्छाशक्ति को प्रभावान्वित या वशीभूत कर सकता है । वह विद्या या शक्ति जिससे कोई मनुष्य अचेत कर वश में किया और अपने इच्छानुसार परिचालित किया जा सके, अर्थात् उससे जो कुछ कहलाया जाय, वह कहे या जो कुछ पूछा जाय, उसका उत्तर दे । संमोहिनी विद्या । संमोहन ।

विशेष—जिसपर मेस्मरिज्म किया जाता है, वह अचेत सा हो जाता है, और उस अवस्था में उससे जो कुछ कहलाना होता है, वह कहता है या जो कुछ पूछा जाता है, उसका उत्तर देता है ।

मेहँदी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेन्धी, मेन्धिका] पत्ती झाड़नेवाली एक झाड़ी जो बलोचिस्तान के जंगलों में आपसे आप होती है और सारे हिंदुस्तान में लगाई जाती है ।

विशेष—इसमें मंजरी के रूप में सफेद फूल लगते हैं जिनमें भीनी भीनी सुगंध होती है। फल गोल मिर्च की तरह के होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। इसकी पत्ती को पीसकर चढ़ाने से लाल रंग आता है, इसी से स्त्रियाँ इसे हाथ पैर में लगाती हैं। बगीचे आदि के किनारे पर भी लोग शोभा के लिये एक पंक्ति में इसकी टट्टी लगाते हैं।

पर्या०—नखरंज। कोकदंता। रागगर्भा। मेंधिका। नखरंजनी।

मुहा०—**क्या पैर में मेहँदी लगी है ?** = क्या पैर काम में नहीं ला सकते जो उठकर नहीं आते ? **मेहँदी रचना** = मेहँदी का अच्छा रंग आना। जैसे,—उसके पैर में मेहँदी खूब रचती है। **मेहँदी बाँधना** = मेहँदी की पत्तियाँ पीसकर लगाना। **मेहँदी रचना** = मेहँदी लगाना। **मेहँदी लगाना** = मेहँदी की पत्तियाँ पीसकर हथेली या तलुए में लगाना।

मेह३—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्राव। मूत्र। २. प्रमेह रोग। ३. मेष। मेढ़ा। ४. अज। छाग। बकरा (को०)।

मेह४—संज्ञा पुं० [मेघ, प्रा० मेह] १. मेघ। बादल। २. वर्षा। झड़ी। मेंह। उ०—छाई पियराई और बिथा हियराई जानै, जके थके बैन नैन निदरत मेह कों। —घनानंद, पृ० ७७।

क्रि० प्र०—**आना**।—**पड़ना**।—**बरसना**।

मेह५—वि० [फ़ा० मिह, मेह] बड़ा। बुजुर्ग। सरदार [को०]।

मेहघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हल्दी [को०]।

मेहतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेहतर, तुल० सं० महत्तर] १. बुजुर्ग। सबसे बड़ा। जैसे, सरदार, शाहजादा, मालिक, हाकिम, अमीर आदि। २. [स्त्री० मेहतरानी] नीच मुसलमान जाति जो झाड़ू देने, गंदगी उठाने आदि का काम करती है। मुसलमान भंगी। हलालखोर।

मेहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिश्न। लिंग। २. मूत्र। मूत। ३. मूतना (को०)। ४. मुष्क वृक्ष। मोरवा (को०)।

मेहनत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिहनत। श्रम। प्रयास। कष्ट। तकलीफ।

यौ०—**मेहनत मजदूरी**, मेहनत मजूरी = शारीरिक श्रम का काम।

मुहा०—**मेहनत ठिकाने लगना** = श्रम का सफल होना। परिश्रम सफल होना।

क्रि० प्र०—**करना**।—**पड़ना**।—**लेना**।—**होना**।

मेहनतकश—वि० [अ०] मेहनत करनेवाला। परिश्रमी। उ०—है इतनी सी चाह हमारी पूरी कर मेरे ईश्वर। एकाकी हूँ मेहनतकश हूँ, और किराए का है घर।—मिट्टी०, पृ० ८७।

मेहनताना—संज्ञा पुं० [अ० मेहनत + फ़ा० आना] किसी काम की मजदूरी। परिश्रम का मूल्य। जैसे, वकील का मेहनताना।

मेहनती—वि० [अ० मेहनत + ई (प्रत्य०)] मेहनत करनेवाला। परिश्रमी।

मेहना—संज्ञा स्त्री० [सं०] महिला। स्त्री।

मेहमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मेहमाँ, मेहमान] अतिथि। पाहुना।

यौ०—**मेहमानखाना** = अतिथिशाला। **मेहमानदार** = आतिथ्य करनेवाला। मेजबान। **मेहमाननवाज** = (१) मेहमानों की खातिर करनेवाला। (२) खिलाने पिलाने का शौकीन। **मेहमाननवाजी** = अतिथिसत्कार।

मेहमानदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आतिथ्य। अतिथिसत्कार। पहुनाई।

मेहमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेहमान + ई (प्रत्य०)] १. आतिथ्य। सत्कार। पहुनाई। उ०—मेहमानी करि हरहु स्रम कहा मुदित रिषिराज।—मानस, २।

मुहा०—**मेहमानी करना** = खूब गत बनाना। मारना पीटना। दंड देना। (व्यंग्य)। उ०—नंद महरि की कानि करति हौं नतरु करति मेहमानी।—सूर (शब्द०)।

†२. मेहमान बनकर रहने का भाव। जैसे,—वह मेहमानी करने गए हैं।

मेहर१†—संज्ञा स्त्री० [सं० मेहना या देश०] पत्नी। बीवी। स्त्री।

मेहर२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मेह्र] मेहरबानी। कृपा। अनुग्रह। दया। उ०—नेक नजर मेहर मीरा बंदा मैं तेरा। दादू दरबार तेरे, खूब साहिब येरा।—दादू० बानी, पृ० ६०४।

मेहरबाँ—वि० [फ़ा० मेह्रबाँ] दे० 'मेहरबान'। उ०—गिराया है जमीं होकर छुड़ाया आसमाँ होकर। निकाला दुश्मने जाँ, औ बुलाया मेहरबाँ होकर।—बेला, पृ० ६२।

मेहरबान—वि० [फ़ा० मेह्र + बान] कृपालु। दयालु। अनुग्रह करनेवाला।

विशेष—बड़ों के संबोधन के लिये अथवा किसी के प्रति आदर दिखलाने के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

मेहरबानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'मेहरबानी'।

मेहरबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दया। कृपा। अनुग्रह।

क्रि० प्र०—**करना**।—**दिखलाना**।—**होना**।

मेहरा१—संज्ञा पुं० [हिं० मेहरी] १. स्त्रियों की सी चेष्टावाला। स्त्री प्रकृतिवाला। जनखा। २. स्त्रियों में रहनेवाला। ३. जुलाहों की चरखी का घेरा।

मेहरा२—संज्ञा पुं० [मेहरचंद (मूलपुरुष)] खत्रियों की एक जाति।

मेहराⓊ—संज्ञा पुं० [सं० मेघ, प्रा० मेह + हिं० रा (प्रत्य०)] दे० 'मेह'। उ०—उघरे उघारे अब बरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा।—घनानंद, पृ० ३३९।

मेहराब—संज्ञा स्त्री० [अ०] द्वार के ऊपर अर्धमंडलाकार बनाया हुआ भाग। दरवाजे के ऊपर का गोल किया हुआ हिस्सा।

विशेष—मेहराब बनाने की रीति प्राचीन हिंदू शिल्प में प्रचलित न थी। विदेशियों, विशेषतः मुसलमानों के द्वारा ही, इस देश में इसका प्रचार हुआ है।

मेहराबदार—वि० [अ० मेहराब + फ़ा० दार] ऊपर की ओर गोल कटा हुआ (दरवाजा)।

मेहरारू†—संज्ञा स्त्री० [सं० मेहना अथवा महिला + रू] औरत। स्त्री। महिला।

मेहरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मेहर + इया (प्रत्य०)] दे० 'मेहरी'।

मेहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेहना**] १. स्त्री। औरत। २. पत्नी। जोरू। उ०—मेहरिन्ह सेंदुर मेला, चंदन खेवरा देह।—जायसी (शब्द०)।

मेहल--संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ८००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ पाँच छह अंगुल लंबी होती हैं और पुरानी होने पर काली हो जाती हैं। जाड़े में इसके फल पकते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी की छड़ियाँ और हुक्के की निगालियाँ बनती हैं और पत्तियाँ पशुओं के लिये चारे के काम में आती हैं।

मेहाउरⓅ, **मेहावर**Ⓟ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'महावर'।

मेहीं‡—वि० [हिं० **महीन, मिहीन**>मेहीं] महीन। बारीक।

यौ०—मेहीं मेहीं = महीन महीन। अत्यंत बारीक। उ०—मेहीं मेहीं बुकवा पिसावो तो पिय के लगावो हो।—धरम०, पृ० ४८।

मेहुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मेघ**] दे० 'मेह'।

मैंद—संज्ञा पुं० [सं० **मैन्द**] एक दानव का नाम जिसे कृष्ण ने मारा था [को०]।

यौ०—**मैंदहा** = श्रीकृष्ण का एक नाम।

मैं[१]—सर्व० [सं० **मया**] सर्वनाम उत्तम पुरुष में कर्ता का रूप। स्वयं। खुद।

मैं[२]—अव्य० [सं० **मय**] दे० 'में'।

मैंⓅ†[३]—अव्य० [सं० **मध्ये**, पु० हिं० **महिं**] अधिकरण कारक का चिह्न। दे० 'में'। उ०—बिहरत बृंदा बिपिन मैं गोपिन संग गोपाल। बिक्रम हुदै सदा बसौ इहि छबि सों नंदलाल।—स० सप्तक, पृ० ३४३।

मैंड़†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मेंड़'। उ०—नंददास प्रभुनिधि न रुकति री वा बारू की मैंड़।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

मैंडक†—संज्ञा पुं० [सं० **मण्डूक**] दे० 'मेढक'। उ०—तुम्हारी मैंडक की सी टर टर उसके कान तक न पहुँचे इसी में तुम्हारे लिये अच्छा है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०८।

मैंडाⓅ—सर्व० [पंजा०] दे० 'मेरा'। उ०—नंद महर दा कुंवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है।—घनानंद, पृ० १७७।

मैंढल—संज्ञा पुं० [हिं० **मैनफल**] मैनफल। मदनफल।

मैंहलⓅ‡—संज्ञा पुं० [अ० **महल**] उ०—भगति करण करो आरंभ, मैंहल उठै जब थरि होइ थंभा।—रामानंद०, पृ० ५३।

मैⓅ[१]—अव्य० [सं० **मय**] दे० 'मय'। उ०—श्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो राशि महातम तारक मै।—तुलसी (शब्द०)।

मै[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मदिरा। शराब। उ०—कर्ज की पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हाँ। रंग लाएगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७७।

यौ०—**मैकदा** = दे० 'मैखाना'। मैकश। **मैकशी** = दे० 'मैपरस्ती'। **मैखाना**। **मैपरस्त** = शराबखोर। शराबी। **मैपरस्ती** = शराबखोरी। मदिरापान की लत।

मै[३]—अव्य० [अ०] साथ। सहित। जैसे, मैसरोसामान, मैखर्च आदि।

मैकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] शराब पीनेवाला। मद्यप।

मैखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मैखानह्**] शराब पीने का स्थान। मधुशाला। उ०—पै हमने तो सीधा ताका उस साकी का मैखाना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५६३।

मैका†—संज्ञा पुं० [सं० **मातृक**] दे० 'मायका'। उ०—(क) नेवते गइलि ननँदिया मैके सासु। दुलहिनि तोरि खबरिया आवै आँसु।—रहीम (शब्द०)। (ख) तेरे मैके ते हम आए। तुम ढिग जननी जनक पठाए।—रघुराज (शब्द०)।

मैगनेट—संज्ञा पुं० [अं०] चुंबक पत्थर।

मैगनाकार्टा—संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें राजा की ओर से प्रजाजनों को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात हो। शाही फरमान। (अंग्रेजों ने वैयक्तिक और राजनीतिक स्वाधीनता का यह अधिकारपत्र बादशाह जान से सन् १२१५ ई० में प्राप्त किया था।)

मैगल[१]—संज्ञा पुं० [सं० **मदकल**] मत्त हाथी। मस्त हाथी। उ०—(क) माधव जू मन सब ही बिधि पोच। अति उनमत्त निरंकुश मैंगल चितारहित असोच।—सूर (शब्द०)। (ख) ऐंड़ति अड़ति पैंड़ मध्य मत्त मैंगल सी, खाय करि द्वै बल सी लचति लचाक लंक।—भुवनेश (शब्द०)। (ग) भक्ति द्वार है साँकरा राई दसवें भाय। मन तो मैंगल ह्वै रह्यौ कैसे होय समाय।—कबीर (शब्द०)।

मैगल[२]—वि० मत्त। मस्त। (हाथी के लिये)।

मैच[१]—संज्ञा पुं० [अं० **मैच**] १. किसी प्रकार के गेंद के खेल की अथवा इसी प्रकार के और किसी खेल की बाजी। २. उपयुक्त जोड़ा।

मैच[२]—संज्ञा स्त्री० दियासलाई। माचिस।

यौ०—**मैचबाक्स** = दियासलाई की डिबिया।

मैजलⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० **मंज़िल**] १. उतनी दूरी जितना कोई पुरुष एक दिन भर चलकर तै करे। मंजिल। २. सफर। यात्रा। उ०—ग्रीष्म ऋतु पुनि मैजल भारी। पद झलकत झलका जनु बारी।—विश्राम (शब्द०)।

मैजिक—संज्ञा पुं० [अं०] वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय। जादू का खेल।

मैजिक लालटेन संज्ञा स्त्री० [अं० मैजिक लैंटर्न] एक प्रकार की लालटेन जिसके आगे शीशे पर बने हुए चित्र इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनकी परछाईं सामने के कपड़े पर पड़ती है, और वे चित्र दर्शकों को उस परदे पर दिखाई देते हैं।

मैटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. कागज पर लिखा हुआ कोई विषय जो 'कंपोज' करने के लिये दिया जाय। वह लिखी हुई कापी जो 'कंपोज' करने के लिये दी जाय। जैसे,—पहले फर्मे के लिये एक कालम का मैटर और चाहिए (कंपोजीटर)। २. कंपोज किए हुए टाइप या अक्षर जो छपने के लिये तैयार हों।

जैसे,—प्रेस पर फर्मा कसते हुए एक पेज का मैटर टूट गया। (कंपोजीटर)।

मैटिनी—संज्ञा स्त्री० [अं०] अपराह्नकालीन नाट्याभिनय। उ०—एक रोज भाल साहब की साली के साथ मैटिनी (दोपहर) में सिनेमा भी हो आई।—भस्मावृत०, पृ० ३६।

मैडम—संज्ञा स्त्री० [अं०] विवाहिता तथा वृद्धा स्त्री के नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। श्रीमती। महाशया। जैसे, मैडम ब्लैडवैस्की।

मैड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मठिका या मण्डपिका, प्रा० मढी] मड़ई। मड़ैया। छोटा मकान। मढ़ी। उ०—मैड़ी महल बावड़ी छाजा। छाड़ि गए सब भूपति राजा।—कबीर ग्रं०, पृ० १२०।

मैत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुराधा नक्षत्र। २. सूर्यलोक। ३. मलद्वार। गुदा। ४. ब्राह्मण। ५. सूर्योदय के समय के उपरांत उससे तीसरा मुहूर्त। ६. प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति ७. मित्र का भाव। मित्रता। दोस्ती। ८. वेद की एक शाखा। ९. बंगाली ब्राह्मणों का एक अल्ल (को०)।

मैत्र[2]—वि० मित्र संबंधी। मित्र का।

मैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मित्रता। दोस्ती। २. बौद्ध मंदिर का पुजारी (को०)।

मैत्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] अनुराधा नक्षत्र।

मैत्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रेत।

मैत्राक्षज्योतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक योनि जिसमें अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होनेवाला वैश्य जाता है।

मैत्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृह्यसूत्र के प्रणेता एक प्राचीन ऋषि। २. मैत्र नामक वैदिक शाखा।

मैत्रायणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

मैत्रावरुण, मैत्रावरुणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोलह ऋत्विजों में से पाँचवाँ ऋत्विज। २. मित्र और वरुण के पुत्र, अगस्त्य।

विशेष—कहते हैं, उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण दोनों देवताओं का वीर्य एक जगह स्खलित हो गया था। उसी वीर्य से अगस्त्य और वशिष्ठ इन दो ऋषियों का जन्म हुआ था।

मैत्रि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य जिनके नाम पर मैत्र्युपनिषद् की रचना हुई है।

मैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो व्यक्तियों के बीच का मित्र भाव। मित्रता। दोस्ती।

मैत्रीबल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

विशेष—मैत्री मुदिता आदि योग के चार साधन कर्म हैं, जो बुद्ध को प्राप्त हो गए थे, इसीलिये उनका यह नाम पड़ा।

मैत्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बुद्ध का नाम जो अभी होनेवाले हैं। २. भागवत के अनुसार एक ऋषि का नाम जो पराशर के शिष्य थे और जिनसे विष्णुपुराण कहा गया था। ३. सूर्य। ४. प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जो वैदेह पिता और अयोगव माता से उत्पन्न कही गई है। इसका काम दिन रात की घड़ियों को पुकारकर बताना था।

मैत्रेयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मित्र के साथ युद्ध। मित्रों या दोस्तों के बीच की लड़ाई [को०]।

मैत्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. याज्ञवल्क्य की स्त्री का नाम जो ब्रह्मवादिनी और बड़ी पंडिता थीं। २. अहल्या का नाम।

मैत्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] मित्रता। दोस्ती।

मैथिल[1]—वि० [सं०] १. मिथिला देश का। २. मिथिला संबंधी।

मैथिल[2]—संज्ञा पुं० १. मिथिला देश का निवासी। २. राजा जनक का एक नाम।

मैथिललिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथिला देश या प्रांत की लिपि।

विशेष—मिथिला (तिरहुत) देश के ब्राह्मणों की लिपि, जिसमें संस्कृत ग्रंथ लिखे जाते हैं, 'मैथिल' कहलाती है। यह लिपि वस्तुतः बँगला का किंचित् परिवर्तित रूप ही है और इसका बँगला के साथ वैसा ही संबंध है जैसा कि कैथी का नागरी से है।—भा० प्रा० लि०, पृ० १३१।

मैथिली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिथिला देश के राजा की कन्या, जानकी। सीता। २. मिथिला की भाषा।

मैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्री के साथ पुरुष का समागम। संभोग। रतिक्रीड़ा। २. विवाह संस्कार (को०)। ३. अग्न्याधान (को०)।

यौ०—**मैथुनगमन** = संभोग। रतिक्रीड़ा। **मैथुनज्वर** = कामज्वर। **मैथुनवैराग्य** = रति या संभोग से विरत हो जाना। इंद्रियनिग्रह।

मैथुनिक—वि० [सं०] १. मैथुन से संबंध रखनेवाला। २. स्त्री और पुरुष अथवा दोनों के आपसी व्यवहार या संपर्क से संबंध रखनेवाला [को०]।

मैथुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैवाहिक संबंध [को०]।

मैथुनीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। रतिक्रिया।

मैथुन्य—संज्ञा पुं० [सं०] गांधर्व विवाह।

मैदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मैदह्] बहुत महीन आटा। उ०—नेह मौन छबि मधुरता मैदा रूप मिलाय। बेंचत हलवाई मदन हलुआ सरस बनाय।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—**मैदे की लोई** = अत्यंत कोमल। मुलायम। (उदर)।

मैदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. धरती का वह लंबा चौड़ा विभाग जो समतल हो और जिसमें पहाड़ी या घाटी आदि न हो। दूर तक फैली हुई सपाट भूमि। उ०—जब कढ़ी कोशल नगर तें मैदान माहिं बरात। तब भयो देवन भोर मानहु सिंधु द्वितिय देखात।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—**मैदान छोड़ना या करना** = (१) किसी काम के लिये बीच में कुछ जगह खाली छोड़ना। (२) **मैदान जाना** = शौचादि के लिये जाना। (विशेषतः बस्ती के बाहर)।

२. वह लंबी चौड़ी भूमि जिसमें कोई खेल खेला जाय अथवा इसी

प्रकार का और कोई प्रतियोगिता या प्रतिद्वंद्विता का काम हो। उ० – (क) चहुँ दिसि आव अलोपत भानू। अब यह गोय यही मैदानू।—जायसी (शब्द०)। (ख) श्री मनमोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन में रच्यौ रुचिर मैदान।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—मैदान में आना = मुकाबले पर आना। प्रतियोगिता या प्रतिद्वंद्विता के लिये सामने आना। उ०—अग्ग आउ मैदान ज्वान मरदुन मुष जोरहि।—पृ० रा०, ६४।१४०। **मैदान में उतरना** = कुश्ती के लिये अखाड़े में आना। कार्यक्षेत्र में आना। **मैदान साफ होना** = मार्ग में कोई बाधा आदि न होना। **मैदान मारना** = प्रतियोगिता में जीतना। खेल, बाजी आदि में जीतना।

३. वह स्थान जहाँ लड़ाई हो। युद्धक्षेत्र। रणक्षेत्र।

मुहा०—**मैदान करना** = लड़ना। युद्ध करना। उ०—जेहि पर चढ़ि करि मैं मैदाना। जीतहुँ सकल बीर बलवाना।—विश्राम (शब्द०)। **मैदान छोड़ना** = लड़ाई के स्थान से हट जाना। **मैदान बदना** = लड़ने या बलपरीक्षा के लिये दिन, स्थान नियत करना। **मैदान मारना** = विजय प्राप्त करना। **मैदान हाथ रखना** = लड़ाई में विजयी होना। जीतना। **मैदान होना** = युद्ध होना।

४. किसी पदार्थ का विस्तार। ५. रत्न आदि का विस्तार। जवाहिर की लंबाई चौड़ाई। (जौहरी)।

मैदानबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मैदान + बाज़ी] लड़ाई। युद्ध। उ०—हम दोनों की जिंदगी के आखिरी साल मैदानबाजी में गुजरे और आज उसका यह अंजाम हुआ।—काया०, पृ० ३३४।

मैदानी—वि० [फ़ा०] १. मैदान से संबंधित। मैदान का। उ०—ज्यों मैदानी रूख अकेला डोलिए रे।—कबीर श०, पृ० १२६। २. समतल।

मैदानेजंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० मैदान + ए + जंग] लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। रणभूमि। उ०—जानिब औरत को मैदानेजंग छोड़।—कुकुर०, पृ० ४।

मैदा लकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेदा + हिं० लकड़ी] एक प्रकार की जड़ी जो औषध के काम में आती है।

विशेष—यह सफेद रंग की और बहुत मुलायम होती है। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, भारी, धातुवर्धक, और पित्त, दाह, ज्वर तथा खाँसी आदि को दूर करनेवाली माना है।

मैन[1]—संज्ञा पुं० [सं० मदन, प्रा० मयण, मइण] १. कामदेव। मदन। उ०—(क) जा सँग जागे हौ निसा जासे लागे नैन। जा पग गहि मांत मैन भै मैन बिबस सों मैन।—रामसहाय (शब्द०)। (ख) मैन फिरंगी की मनौं छूटन लागी तोप।—ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० १६। २. मोम। उ०—(क) मैन के दशन कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई।— तुलसी (शब्द०) (ख) मैन बलित नव बसन सुदेश। भिदत नहीं जल ज्यौं उपदेश।—केशव (शब्द०)। (ग) श्याम रँग रँगे रँगीले नैन। धोए छुटत नहीं यह कैसेहु मिलैं पिघिल ह्वै मैन।—सूर (शब्द०)। ३. राल में मिलाया हुआ मोम जिससे पीतल या ताँबे की मूर्ति बनानेवाले पहले उसका नमूना बनाते हैं और तब उस नमूने पर से उसका साँचा तैयार करते हैं।

मैन[2]—संज्ञा पुं० [अं०] मनुष्य। पुरुष। जैसे, पुलिस मैन। मशीन मैन।

मैन आफ वार—संज्ञा पुं० [अं०] लड़ाऊ जहाज। युद्धपोत। लड़ाकू जहाज।

मैनका—संज्ञा स्त्री० [सं० मेनका] दे० 'मेनका'। उ०—मैन कामिनी के मैनका हू के न रूप रीझै, मैं न काहू के सिखाएँ आनों मन मान री।—मति० ग्रं०, पृ० २९३।

मैनकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मदन, प्रा० मयण + हिं० मैन + कामिनी] कामदेव की स्त्री। रति। उ०—मैन कामिनी के मैनकाहू के न रूप रीझै, मैं न काहू के सिखाए आनों मन मान री।—मतिराम (शब्द०)।

मैनडेट—संज्ञा पुं० [अं०] आदेश। हुक्म। जैसे,—कांग्रेस से ऐसा करने का मैनडेट मिला है।

मैनडेटरी—वि० [अं०] जिसमें आदेश हो। आदेशात्मक। जैसे—कांग्रेस का वह प्रस्ताव मैनडेटरी है।

मैनफर†—संज्ञा पुं० [सं० मदनफल] दे० 'मैनफल'।

मैनफल—संज्ञा पुं० [सं० मदनफल, प्रा० मयणफल] मझोले आकार का एक प्रकार का झाड़दार और कँटीला वृक्ष।

विशेष—इस वृक्ष की छाल खाकी रंग की, लकड़ी सफेद अथवा हलके रंग की, पत्ते एक से दो इंच तक लंबे और अंडाकार तथा देखने में चिड़चिड़े के पत्तों के समान, फूल पीलापन लिए सफेद रंग के पाँच पंखड़ियोंवाले और दो या तीन एक साथ होते हैं। इसमें अखरोट की तरह के एक प्रकार के फल लगते हैं जो पकने पर कुछ पीलापन लिए सफेद रंग के होते हैं। इसकी छाल और फल का व्यवहार औषधि के रूप में होता है।

२. इस वृक्ष का फल जिसमें दो दल होते हैं और जिसके बीज बिहीदाने के समान चिपटे होते हैं।

विशेष—इस फल का गूदा पीलापन लिए लाल रंग का और स्वाद कड़ुवा होता है। इस फल को प्रायः मछुवे लोग पीसकर पानी में डाल देते हैं, जिससे सब मछलियाँ एकत्र होकर एक ही जगह पर आ जाती हैं और तब वे उन्हें सहज में पकड़ लेते हैं। यदि ये फल वर्षा ऋतु में अन्न की राशि में रख दिए जाँय, तो उसमें कीड़े नहीं लगते। वमन कराने के लिये मैनफल बहुत अच्छा समझा जाता है। वैद्यक में इसे मधुर, कड़ुवा, हलका, गरम, वमनकारक, रूखा, भेदक, चरपरा, तथा विद्रधि, जुकाम, घाव, कफ, आनाह, सूजन, त्वचारोग, विषविकार, बवासीर और ज्वर का नाशक माना है।

मैनमयⓟ—वि० [सं० मदन, हिं० **मैन + मय**] कामातुर। कामेच्छा से युक्त। उ०—नैन सुख दैन, मन मैनमय लेखियो ।—केशव (शब्द०)।

मैनर†—संज्ञा पुं० [हिं० **मैनफर**] दे० 'मैनफल'।

मैनशिल—संज्ञा पुं० [सं० **मनःशिला**] दे० 'मैनसिल'।

मैनसिल—संज्ञा पुं० [सं० **मनःशिला**] एक प्रकार की धातु जो मिट्टी की तरह पीली होती है और जो नेपाल के पहाड़ों में बहुतायत से होती है।

विशेष—वैद्यक में इसे शोधकर अनेक प्रकार के रोगों पर काम में लाते हैं और इसे गुरु, वर्णकर, सारक, उष्णवीर्य, कटु, तिक्त, स्निग्ध और विष, श्वास, कुष्ठ, ज्वर, पांडु, कफ तथा रक्तदोष-नाशक मानते हैं।

पर्या०—**मनोज्ञा**। **नागजिह्वा**। **नैपाली**। **शिला**। **कल्याणिका**। **रोगशिला**। **गोला**। **दिव्यौषधी**। **कुनटी**। **मनोगुप्ता**।

मैनस्क्रिप्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक या कागज जो हाथ या कलम से लिखा हुआ हो, छपा हुआ न हो। हस्तलिखित प्रति। पांडुलिपि। मूल हस्तलेख। हस्तलेख।

मैना[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मदना**, प्रा० **मयणा**] काले रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी जिसकी चोंच पीली या नारंगी रंग की होती है और जो सिखाने से मनुष्य की सी बोली बोलने लगती है। यह इसी बोली के लिये प्रसिद्ध है। मदनशलाका। सारिका। सारी।

मैना[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मेनका**] पार्वती जी की माता, मेनका।

मैना[३]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक जाति जो राजपूताने में पाई जाती है और 'मीना' कहलाती है। उ०—(क) कुच उतंग गिरिवर गह्यौ मैना मैन मवास ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) सुकवि गुलाब कहै अधिक उपाधिकारी मैना मारि मारि करे अखिल अभूत काज ।—गुलाब (शब्द०)।

मैनाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो हिमालय का पुत्र माना जाता है। कहते हैं, इंद्र से डरकर यह पर्वत समुद्र में जा छिपा था; इस कारण यह अब तक सपक्ष है। लंका जाते समय समुद्र की आज्ञा से इसने हनुमान जी को आश्रय देना चाहा था। उ०—सिंधु बचन सुनि कान तुरत उठ्यो मैनाक तब ।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—**हिरण्यनाभ**। **सुनाभ**। **हिमवत् सुत**।

२. हिमालय की एक ऊँची चोटी का नाम। ३. एक दानव।

मैनाकस्वसा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मैनाकस्वसृ**] पार्वती [को०]।

मैनाल—संज्ञा पुं० [सं०] मछुवा [को०]।

मैनावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसका प्रत्येक चरण चार तगण का होता है।

मैनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मैनाल [को०]।

मैनिफेस्टो—संज्ञा पुं० [अं०] किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार का किसी सार्वजनिक विषय, नीति अथवा कार्य पर अभिमत वक्तव्य या घोषणा। वक्तव्य। जैसे,—देश के कितने ही प्रमुख नेताओं ने एक मैनिफेस्टो निकाला है; जिसमें सरकार की वर्तमान दमन नीति की निंदा की गई है, और लोगों से कहा गया है कि वे इसके विरुद्ध जोरों का आंदोलन करें।

मैनेजर—संज्ञा पुं० [अं०] प्रबंधक। व्यवस्थापक। उ०—मैनेजर और बड़े साहब को सलूट देते हैं।—फूलो०, पृ० २४।

मैमंतⓟ†—वि० [सं० **मदमत्त**] १. मदोन्मत्त। मतवाला। उ०—कुंभ लसत दोउ गज मैमंत ।—(शब्द०)। २. अहंकारी। अभिमानी। उ०—(क) बारि बैस गई प्रीति न जानी। तरुन भई मैमंत भुलानी।—जायसी (शब्द०)। (ख) अरी ग्वारि मैमंत बचन बोलत जो अनेरो ।—सूर (शब्द०)।

मैमत[१]—वि० [सं० मदमत्त] दे० 'मैमंत'।

मैमतⓟ[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० **ममत्व**] ममता।

मैया—संज्ञा स्त्री० [सं० **मातृका**, प्रा० **मातृआ**, **माइआ**] माता। माँ। उ०—कहन लागे मोहन मैया मैया ।—सूर (शब्द०)।

मैयार†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मटियार**] एक प्रकार की मटियार जमीन जो बहुत खराब होती है।

मैयार[२]—संज्ञा पुं० [अ०] पाठ्यक्रम। कोर्स।

मैर†[१]—संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों की एक जाति।

मैर[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मृदर**, प्रा० **मिअर** (= क्षणिक)] साँप के विष की लहर। उ०—तोहिं बजे बिष जाइ चढ़ि आइ जात मन मैर। बंसी तेरे बैर को घर घर सुनियत चैर।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) खेलि कै फागु भली बिधि सों तन सों दृग देखिए मैर मढ़ी सो।—(शब्द०)।

मैरा—संज्ञा पुं० [सं० **मयर**, प्रा० **मयड़**] खेतों में वह छाया हुआ मचान जिसपर बैठकर किसान लोग अपने खेतों की रक्षा करते हैं।

मैरीन[१]—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह सैनिक जो लड़ाऊ जहाज पर काम करता हो। २. किसी देश या राष्ट्र की समस्त नौसेना। नौसेना। जलसेना। जैसे, रायल मैरीन। ३. किसी देश के समस्त जहाज।

मैरीन[२]—वि० समुद्र संबंधी। जल संबंधी। नौसेना संबंधी। जैसे, मैरीन कोर्ट।

मैरेय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मदिरा। शराब। २. गुड़ और धौ के फूल की बनी हुई एक प्रकार की प्राचीन काल की मदिरा। ३. एक में मिला हुआ आसव और मद्य जिसमें ऊपर से शहद भी मिला दिया गया हो।

मैलंद—संज्ञा पुं० [सं० **मैलिन्द**, प्रा० **मैलंद**] भ्रमर। भौंरा।

मैल†[१]—वि० [सं० **मलिन**, प्रा० **मइल**] मलिन। मैला। विशेष दे० 'मैला'।

मैल[२]—संज्ञा पुं० १. गर्द, धूल, किट्ट आदि जिसके पड़ने या जमने से किसी वस्तु की शोभा या चमक दमक नष्ट हो जाती है। मलिन करनेवाली वस्तु। मल। गंदगी। जैसे,—(क) घड़ी के पुरजों

में बहुत मैल जम गई है। (ख) आँख या कान आदि में मैल न जमने देनी चाहिए।

यौ०—**मैलखोरा**।

मुहा०—**हाथ की मैल** = तुच्छ वस्तु, जिसे जब चाहे तब प्राप्त कर लें। जैसे,—रुपया पैसा हाथ की मैल है।

२. दोष। विकार। जैसे—मन मैल मिटे, तन तेज बढ़े, करे भंग अंग को मोटा। (गीत)।

मुहा०—**मन में मैल रखना** = मन में किसी प्रकार का दुर्भाव या वैमनस्य आदि रखना।

मैल³—संज्ञा पुं० [देश०] फीलवानों का एक संकेत जिसका व्यवहार हाथी को चलाने में होता है।

मैलखोरा¹—वि० [हिं० **मैल** + फ़ा० **खोर** (= **खानेवाला**)] (रंग आदि) जिसपर जमी हुई मैल जल्दी दिखाई न दे। मैल को छिपा लेनेवाला (रंग)। जैसे—काला या खाकी रंग मैलखोरा होता है।

मैलखोरा²—संज्ञा पुं० १. वह वस्त्र जो शरीर की मैल से शेष कपड़ों की रक्षा करने के लिये अंदर पहना जाय। जैसे गंजी, कमीज आदि। २. काठी या जीन के नीचे रखा जानेवाला नमदा। ३. साबुन।

मैला¹—वि० [सं० **मलिन**, प्रा० **मइल**] १. जिसपर मैल जमी हो। जिसपर गर्द, धूल या कीट आदि हो। जिसकी चमक दमक मारी गई हो। मलिन। अस्वच्छ। साफ का उलटा।

यौ०—**मैला कुचैला**।

२. विकारयुक्त। सदोष। दूषित। ३. गंदा। दुर्गंधयुक्त।

मैला²—संज्ञा पुं० [सं० **मल**] गलीज। गू। विष्ठा। २. कूड़ाकर्कट। ३. दे० मैल¹।

मैलाकुचैला—वि० [हिं० **मैला** + सं० **कुचैल** (= **गंदा वस्त्र**)] १. जो बहुत मैले कपड़े पहने हुए हो। २. बहुत मैला। गंदा।

मैलापन—संज्ञा पुं० [हिं० **मैला** + **पन** (प्रत्य०)] मैला होने का भाव। मलिनता। गंदापन।

मैलेयक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हीन वा साधारण रत्न [को०]।

मैवार†—वि० [देश० **मै** + **वार**] मद वा अहंकार से युक्त। घमंडी। उ०—देवा आहव आँगमे, माहव का मैवार।—रा० रू०, पृ० १३७।

मैवास—संज्ञा पुं० [हिं० **मवासा**] दे० '**मवासा**'। उ०—गए पर्वत बंक मैवास भारं।—ह० रासो, पृ० ६८।

मैशिनरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. किसी यंत्र या कल के पुर्जे। २. यंत्र। कल। मशीन।

मैहमाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० **महिमन्**] दे० 'महिमा'। उ०—साह कसौटी के नाह मेरे जाँन तहीं की मैहमाँ ओ मन में रहे जावै।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५६।

मैहर†¹—संज्ञा पुं० हिं० **महो** (= **मट्ठा**)] वह तलछट जो घी वा मक्खन को गरम करने पर नीचे बैठ जाती है। घी वा मक्खन तपाने से निकला हुआ मट्ठा।

मैहर²—संज्ञा पुं० [सं० **मातृगृह**] दे० '**नैहर**'।

मैहर³—संज्ञा स्त्री० विवाह के अवसर पर किया जानेवाला मातृका-पूजन आदि कृत्य।

मैहर⁴—संज्ञा पुं० मध्यप्रदेश में रीवाँ राज्यांतर्गत एक प्रसिद्ध स्थान।

विशेष—यहाँ भगवती दुर्गा की एक अतिप्राचीन और प्रसिद्ध मूर्ति है। लोग दूर दूर से उसका दर्शन करने आते हैं। चंदेलों की यह कुलदेवी भी कही गई हैं। राजा परमाल के प्रमुख सामंत वीर आल्हा और उदल इनके उपासक थे। आज भी यह कहा जाता है कि अमर आल्हा भगवती का रात्रि को पूजन करता है।

मैहल(पु), **मैहैल**‡—संज्ञा पुं० [अ० **महल**] महल। आवास। उ०—(क) रची मन्न मैहल्ल भोजन्न कज्जी।—पृ० रा०, २।२४३। (ख) रंग मैहैल संकेत युगल करि, टहलन करों सहेली।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८६।

मों¹—अव्य० [सं० **स्मिन्**] दे० 'में'। उ०—तनपोषक नारि नरा सिगरे। परनिंदक ते जग मों बगरे।—तुलसी (शब्द०)।

मों²—सर्व० [सं० **मह्यम्**] खड़ी बोली के 'मुझ' के समान व्रज और अवधी में 'मैं' का वह रूप जो उसे कर्ताकारक के अतिरिक्त और किसी कारक का चिह्न लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, मयु मोंको, मोंपै, इत्यादि। उ०—(क) साहिब की आग्या है मोंऊँ। —रामानंद०, पृ० २६। (ख) काँपी भौंह पुहुप पर देखे। जनु ससि गहन तैस मोंहि लेखे।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

मोंगरा—संज्ञा पुं० [सं० **मुद्गर**] [स्त्री० **मोंगरी**] काठ का बना हुआ एक प्रकार का हथौड़ा जिससे मेख इत्यादि ठोंकी जाती है।

मोंगरा²—संज्ञा पुं० १. दे० 'मोगरा'। २. दे० 'मुँगरा'।

मोंगला—संज्ञा पुं० [देश०] मध्यम श्रेणी का और साधारणतः बाजार में मिलनेवाला केसर। वि० दे० 'केसर'।

मोंच‡—संज्ञा पुं० [हिं० **मोछ**] दे० 'मूँछ'। उ०—देखिए इश्को मोंच का रेख आ रहा है।—मैला० पृ० १३०।

मोंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० **श्मश्रु**] दे० 'मूँछ'। उ०—इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान् मोंछों पर ताव देते चले जा सकते हैं।—बालमुकुंद गुप्त (शब्द०)।

मोंडीकाटा‡—वि० [हिं० **मूड़ी** + **काटना**] स्त्रियों द्वारा पुरुषों के लिये प्रयुक्त एक गाली। उ०—मुए तलपट की सब सुनकर भलाई, मोंडीकाटे को मैं लिखने बुलाई।—दक्खिनी, पृ० २५१।

मोंढा—संज्ञा पुं० [सं० **मूर्द्धा**, **मूड्ढा** (= आधार)] १. बाँस, सरकंडे या बेंत का बना हुआ एक प्रकार का ऊँचा गोलाकार आसन जो प्रायः तिपाई से मिलता जुलता होता है। २. बाहु के जोड़ के पास का बना हुआ घेरा। कंधा।

यौ०—**सीना मोंढ़ा** = छाती और कंधा।

मो(पु)—सर्व [सं० **मम**] १. मेरा। उ०—मो संपति यदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी (शब्द०)। २. अवधी और

व्रजभाषा मे 'मैं' का वह रूप जो उसे कर्ताकारक के अतिरिक्त और किसी कारक का चिह्न लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, मोकों, मोसों, इत्यादि ।

मोअज्जिज—वि० [अ० मुअज्जिज़] प्रतिष्ठित । इज्जतदार । उ०—मोअज्जिज हुए खाक खाकी हुए ।—कबीर मं०, पृ० १३० ।

मोई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोना] घी में सना हुआ आटा जो छींट की छपाई के लिये काला रंग बनाने में कसीस और धौ के फूलों के काढ़े में डाला जाता है।

मोई[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जड़ी जो मारवाड़ देश में होती है। कहीं कहीं इसे 'ग्वालिया' भी कहते हैं।

मोक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुल [को०]।

मोक[2]†—संज्ञा पुं० [सं० मोक्ष, प्रा० मोक्ख] मुक्ति । छूटना । उ०—ताकहँ कहा मोक हम जाना। जो शरीर के रूप भुलाना। —इंद्रा०, पृ० १५६ ।

मोकदमा†—संज्ञा पुं० [अ० मुक़दमह्] दे० 'मुकदमा' ।

मोकना†—क्रि० स० [सं० मुक्त, हिं० मुकना] १. छोड़ना । परित्याग करना । उ०—कंपित स्वास त्रास अति मोकति ज्यों मृग केहरि कोर।—सूर (शब्द०)। २. क्षिप्त करना । फेंकना । उ०—ठाढ़यौ तहाँ एक बाले बिलोक्यौ । रोक्यो नहीं जोर नाराच मोक्यौ ।—केशव (शब्द०) ।

मोकल—वि० [सं० मुक्त, हिं० मुकना] छूटा हुआ । जो बँधा न हो । आजाद । स्वच्छंद । उ०—(क) जोबन जरब महा रूप के गरब गति मदन के मद मदमोकल मतंग की ।—मतिराम (शब्द)। (ख) गोकुल में मोकल फिरै गली गली गज प्रेम । ऊधो ह्याँ ते जाउ लै तुम अपनो सब नेम ।—रसनिधि (शब्द०)।

मोकलना(पु)†—क्रि० स० [सं० मुक्त, हिं० मुकना] छोड़ना । भेजना । उ०—चिहुं दिसि मौता मोकल्या, पंड पंड रा आविया राई । बी० रासो, पृ० १० ।

मोकला[1]†—वि० [सं० मुक्त, हिं० मोकल] १. अधिक चौड़ा । कुशादा । २. खुला हुआ । छुटा हुआ । स्वच्छंद । उ०—कबिरा सोई सूरमा जिन पाँचो राखे चूर । जिनके पाँचो मोकले तिनसूँ साहेब दूर ।—कबीर (शब्द०) ।

मोकला[2]†—संज्ञा पुं० अधिकता । बहुतायत । ज्यादती । जैसे,—वहाँ तो पशुओं के लिये चारे पानी का बड़ा मोकला है।

मोका[1]—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास, मध्य भारत और कुमायूँ के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का वृक्ष । गेठा ।

विशेष—इस वृक्ष के पत्ते प्रतिवर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए भूरे रंग की होती है और आरायशी सामान बनाने के काम आती है। खरादने पर इसकी लकड़ी बहुत चिकनी निकलती है और इसके ऊपर रंग और रोगन अधिक खिलता है। इसकी लकड़ी न तो फटती है, न टेढ़ी होती है। यह वृक्ष वर्षा ऋतु में बीजों से उगता है। इसे गेठा भी कहते हैं ।

मोका[2]†—संज्ञा पुं० १. दे० 'मोखा' । २. दे० 'मौका' ।

मोकाम†—संज्ञा पुं० [फ़ा० मुक़ाम] दे० 'मुकाम'। उ०—दरगाह में पीर मोकाम सदा, एक संग रहो छोड़ो दिल दोई ।—कबीर० रे०, पृ० ४१ ।

मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार के बंधन से छूट जाना । मोचन । छुटकारा । २. शास्त्रों और पुराणों के अनुसार जीव का जन्म और मरण के बंधन से छूट जाना । आवागमन से रहित हो जाना । मुक्ति । नजात ।

विशेष—हमारे यहाँ दर्शनों में कहा गया है कि जीव अज्ञान के कारण ही बार बार जन्म लेता और मरता है। इस जन्ममरण के बंधन से छूट जाने का ही नाम मोक्ष है। जब मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है, तब फिर उसे इस संसार में आकर जन्म लेने की आवश्यकता नहीं होती। शास्त्रकारों ने जीवन के चार उद्देश्य बतलाए हैं—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। इनमें से मोक्ष परम अभीष्ट अथवा परम पुरुषार्थ कहा गया है। मोक्ष की प्राप्ति का उपाय आत्मतत्व या ब्रह्मतत्व का साक्षात् करना बतलाया गया है। न्यायदर्शन के अनुसार दुःख का आत्यंतिक नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। सांख्य के मत से तीनों प्रकार के तापों का समूल नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। वेदांत में पूर्ण आत्मज्ञान द्वारा मायासंबंध से रहित होकर अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप का बोध प्राप्त करना मोक्ष है। तात्पर्य यह है कि सब प्रकार के सुख दुःख और मोह आदि का छूट जाना ही मोक्ष है। मोक्ष की कल्पना स्वर्ग नरक आदि की कल्पना से पीछे की और उसकी अपेक्षा विशेष संस्कृत तथा परिमार्जित है। स्वर्ग की कल्पना में यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने किए हुए पुण्य वा शुभ कर्म का फल भोगने के उपरांत फिर इस संसार में आकर जन्म ले; इससे उसे फिर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे। पर मोक्ष की कल्पना में यह बात नहीं है। मोक्ष मिल जाने पर जीव सदा के लिये सब प्रकार के बंधनों और कष्टों आदि से छूट जाता है।

३. मृत्यु । मौत । ४. पतन । गिरना । ५. पाँडर का वृक्ष । ६. छोड़ना । फेकना । जैसे, बाणमोक्ष (को०) । ७. ढीला या बंधनमुक्त करना । जैसे, बेणीमोक्ष, नीवीमोक्ष (को०)। ८. नीचे गिराना या बहाना । जैसे, बाष्पमोक्ष, अश्रुमोक्ष (को०)।

मोक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोखा नामक वृक्ष । २. मोक्ष करने या देनेवाला । वह जो मोक्ष करता हो ।

मोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मोक्षणीय मोक्षित, मोक्ष्य] १. मोक्ष देने की क्रिया । २. छोड़ना । मुक्त करना । ३. क्षेपण (को०)। ४. गिराना (को०)।

मोक्षद—वि० संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष देनेवाला । मोक्षदाता ।

मोक्षदा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अगहन सुदी एकादशी तिथि ।

मोक्षदा[2]—वि० स्त्री० मोक्ष देनेवाली ।

मोक्षदात्री—वि० स्त्री० [सं०] मोक्ष देनेवाली ।

मोक्षदायिनी—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'मोक्षदात्री' [को०]।

मोक्षदेव—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी यात्री ह्वेनसांग का भारतीय नाम [को०]।

मोक्षद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. काशी तीर्थ।

मोक्षधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत शांतिपर्व का एक अंश [को०]।

मोक्षपति—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। इसमें १६ गुरु, ३२ लघु, और ६४ द्रुत मात्राएँ होती हैं।

मोक्षपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांची पुरी का एक नाम [को०]।

मोक्षविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत शास्त्र।

मोक्षशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] आध्यात्मविद्या।

मोक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार वह लोक जहाँ जैन धर्मावलंबी साधु पुरुष मोक्ष का सुख भोगते हैं। स्वर्ग। उ०—ज्यौं घटनाश भए घट ब्योम सुलीन भयौ पुनि है नभ माँहीं। त्यौं मुनि मुक्ति जहाँ बपु छाड़त सुंदर मोक्षशिला कहुँ काँहीं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६३२।

मोक्षसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] जिससे मोक्ष प्राप्त हो। मोक्ष का उपाय वा साधन [को०]।

मोक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मोक्षदा'।

मोक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० मोक्षिन्] १. मोक्ष पाने का इच्छुक। २. मुक्त [को०]।

मोक्ष्य—वि० [सं०] जो मोक्ष के योग्य हो। मोक्ष का अधिकारी।

मोख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मोक्ष, प्रा० मोक्ख] १. दे० 'मोक्ष'। मुक्ति। उ०—(क) मोहू दीजै मोख ज्यौं अनेक अधमन दियो।—बिहारी (शब्द०)। २. छुटकारा। बंधनमुक्ति। उ०—रानी धर्म सार पुनि साजा। बंदि मोख जेहि पावहि राजा।—जायसी (शब्द०)।

मोखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुख] दीवार आदि में बना हुआ छेद जिसके द्वारा धूआँ निकलता है और प्रकाश तथा वायु आती है। छोटी खिड़की। झरोखा। उ०—(क) मोखा और झरोखा लखि लखि दृग दोउ बरसत।—व्यास (शब्द०)। (ख) जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगंध आय रही है।—लल्लूलाल (शब्द०)।

मोखा[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुष्क] एक वृक्ष। दे० मुष्क'।

मोगरा—संज्ञा पुं० [सं० मुद्गर] १. एक प्रकार का बहुत बढ़िया और बड़ा बेला का पुष्प। उ०—मंजुल मौलसिरी मोगरा मधुमालती कै गजरा गुहि राखै।—(शब्द०)। २. दे० 'मोंगरा'।

मोगल—संज्ञा पुं० [तु० मुग़ल, फ़ा० मुग़ल] दे० 'मुगल'।

मोगली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो गुजरात में अधिकता से पाया जाता है और जिसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

मोगली[2]—वि० [फ़ा० मुग़ल] मुगल संबंधी। मुगलों का। उ०—काबुल गए पिया मोर आए बोलैं मोगली बानो। आब आब कहते मरि गइलैं, खटिया तर है पानी।

मोगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की एक जाति का नाम। उ०—सरदारों को चाहिए कि वे चोरों, डकैतों, थोरियों, बावरियों, मोगियों और बागियों को आश्रय न दें।—राज० इति०, पृ० १०६५।

मोघ[1]—वि० [सं०] निष्फल। व्यर्थ। चूकनेवाला। उ०—पै यह वैष्णव धनु कौ सायक। कबहुँ न मोघ होन के लायक।—रघुराज (शब्द०)।

मोघ[2]—संज्ञा पुं० घेरा। बाड़। बाड़ा [को०]।

मोघकर्मा—वि० [सं० मोघकर्मन्] निरर्थक काम में लगा हुआ [को०]।

मोघपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंध्या स्त्री [को०]।

मोघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाटल का फूल। २. विडंग [को०]।

मोघिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह मोटी, मजबूत और अधिक चौड़ी नरिया जो खपरैली छाजन में बँड़ेरे पर मँगरा बाँधने में काम आती है।

मोघोली—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीर। परकोटा।

मोघ्य—संज्ञा पुं० [सं०] विफलता। अकृतकार्यता। नाकामयाबी।

मोच[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेमल का पेड़। २. केला। ३. पाडर का पेड़। ४. शोभांजन वृक्ष (को०)।

मोच[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के किसी अंग के जोड़ की नस का अपने स्थान से इधर उधर खिसक जाना। चोट या आघात आदि के कारण जोड़ पर की नस का अपने स्थान से हट जाना (इसमें वह स्थान सूज जाता है और उसमें बहुत पीड़ा होती है) जैसे,—उनके पाँव में मोच आ गई है।

मोचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छुड़ानेवाला। २. सेमल का पेड़। ३. केला। ४. मुक्ति। मोक्ष (को०)। ५. विषय वासना से मुक्त सन्यासी। ६. एक प्रकार का उपानह (को०)।

मोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंधन आदि से छुड़ाना। छुटकारा देना। मुक्त करना। २. रिहा करना। बंधन आदि खोलना। छुड़ाना। ३. दूर करना। हटाना। जैसे, संकटमोचन, पापमोचन, पिशाचमोचन। ४. रहित करना। ले लेना। जैसे, वस्त्रमोचन।

मोचना[1]—क्रि० स० [सं० मोचन] १. छोड़ना। २. गिराना। बहाना। उ०—(क) सोच मति करै मति मोच आँसू बिभीषण, कहै रघुनाथ मातमष भेषि रंका को।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) सरसीरुह लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय पै ह्वै।—तुलसी (शब्द०)। ३. छुड़ाना। मुक्त करना। उ०—अब तिनके बंधन मोचहिगे।—सूर (शब्द०)।

मोचना[2]—संज्ञा पुं० [सं० मोचन] [स्त्री० मोचनी] १. लोहारों का वह औजार जिससे वे लोहे के छोटे छोटे टुकड़े उठाते हैं। २. हज्जामों का वह औजार जिससे वे बाल उखाड़ते हैं।

मोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। भटकटैया [को०]।

मोचयिता—वि० [सं० मोचयितृ] मोचन करनेवाला। छुटकारा दिलानेवाला [को०]।

मोचरस—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल वृक्ष का गोंद। सेमर का गोंद।

मोचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केला। २. सेमल वृक्ष (को०)। ३. नीली वा नील का पौधा (को०)। ४. सहिजन। शोभांजन (को०)।

मोचाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. केला। २. केले की पेड़ी के बीच का कोमल भाग। केले का गाभ। ३. चंदन (को०)। ४. कृष्ण जीरक। काला जीरा (को०)।

मोचिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो उपानह बनाता हो। मोची (को०)।

मोचिनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोची की स्त्री। उ०—मोचिनि बदन सँकोचिनि हीरा माँगन हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

मोचिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई का पौधा।

मोची[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुञ्चक या फा० मोज (=जूता) + ई (प्रत्य०) (=चमड़ा) छुड़ाना] चमड़े का काम बनानेवाला। वह जो जूते आदि बनाने का व्यवसाय करता हो।

मोची[2]—वि० [सं० मोचिन्] [वि० स्त्री० मोचिनी] १. छुड़ानेवाला। २. दूर करनेवाला।

मोची[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचिका शाक (को०)।

मोच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मोक्ष] दे० 'मोक्ष'।

मोछ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मूछ'।

मोछ(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० मोक्ष] दे० 'मोक्ष'। उ०—खाहि पेट भरि सोवहीं जानहि अठात न मोछ।—भीखा० श०, पृ० ६४।

मोज(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० मौज] दे० 'मौज'। उ०—रोगग्रस्त होने से अंत समय मुख से प्रसंगवश वा जैसे मोज आई, कह डाली।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १२५।

मोजड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अप०, देशी] उपानह। जूती। पादत्राणिका। उ०—(क) खूटइ जीन न मोजड़ी कड़या नहीं केकाँण। साजनियाँ सालइ नहीं सालइ आही ठाँण।—ढोला०, दू० ३७५। (ख) छुट तिहि बेर मतंग पेल देखन कौं धायौ, एक मोजरी मद्धि पनग फन आनि लुकायौ।—पृ० रा०, १।५०६।

मोजरा†—संज्ञा पुं० [अ० मुजरा] दे० 'मुजरा'। उ०—लेत मोजरा सबहिं को जहँ लौं जीव जहान।—धरनी० बानी, पृ० ५६।

मोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मोज़ह्] १. पैरों में पहनने का एक प्रकार का बुना हुआ कपड़ा जिससे पैर के तलवे से लेकर पिंडली या घुटने तक ढक जाते हैं। पायताबा। जुर्राब। २. पैर में पिंडली के नीचे का वह भाग जो गिट्टे के आस पास और उसके कुछ ऊपर होता है। ३. कुश्ती का एक पेंच। इसमें जब खिलाड़ी अपने विपक्षी की पीठ पर होता है, तब एक हाथ उसके पेट के नीचे से ले जाकर उसकी बगल में जमाता है और दूसरे हाथ से उसका मोजा या पिंडली के नीचे का भाग पकड़कर उसे उलट देता है।

मोजा[2]—संज्ञा पुं० [देशी०] उपानह। जूता। उ०—फिरि राय आय हेंबर चढ्यो पहरत मोजे पग डस्यौ। भवितव्य बात आघात गति इतनी कहि राजन हस्यौ।—पृ० रा०, १।५०६।

मोट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मोट (=गट्ठर) हिं० मोटरी] गठरी। मोटरी। उ०—(क) जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी।—सूर (शब्द०)। (ख) नट न सीस साबित भई लुटी सुखन की मोट। चुप करिए चारी करति सारी परी सरोट।—बिहारी (शब्द०)। (ग) नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल, चोट बिनु मोट पाय भयो न निहाल को।—तुलसी (शब्द०)।

मोट[2]—संज्ञा पुं० चमड़े का बड़ा थैला जिसके द्वारा खेत सींचने के लिये कुएँ से पानी निकाला जाता है। चरसा। पुर। उ०—संगति छोड़ि करै असरारा। उबहे मोट नरक की धारा।—कबीर (शब्द०)।

मोट(पु)†[3]—वि० [हिं० मोटा] १. जो बारीक न हो। मोटा। २. कम मोल का। साधारण। उ०—भूमि सयन पट मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना।—तुलसी (शब्द०)। वि० दे० 'मोटा'।

यौ०—**मोट भर** = गठरी भर। बहुत ज्यादा। उ०—ताकै कहा गँवार मोट भर बाँध सिताबी।—पलटू०, पृ० १४।

मोटक—संज्ञा पुं० [सं०] पितृतर्पण में व्यवहृत दुहरा किया हुआ कुशद्वय जिसके मूल और अग्रभाग एक ओर रहते हैं। यह त्रिकुश से भिन्न होता है और पितृतर्पण में ही प्रयुक्त है।

मोटकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

मोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। हवा। २. मलना, रगड़ना या पीसना।

मोटनक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण दो जगण और अंत में एक एक लघु गुरु कुल मिलाकर ११ अक्षर होते हैं। जैसे,—आए दशरत्थ बरात सजे। दिग्पाल गयंदन देखि लजे। चाप्यो दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरन कौन गने।—केशव (शब्द०)।

मोटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक विशेष प्रकार की कल या यंत्र जिससे किसी दूसरे यंत्र आदि का संचालन किया जाता है। चलानेवाला यंत्र। २. एक प्रकार की प्रसिद्ध छोटी गाड़ी जो इस प्रकार के यंत्र की सहायता से चलती है। मोटरकार।

विशेष—इस गाड़ी में तेल आदि की सहायता से चलनेवाला एक इंजिन लगा रहता है जिसका संबंध उसके पहियों से होता है। जब यह इंजिन चलाया जाता है तब उसकी सहायता से गाड़ी चलने लगती है। यह गाड़ी प्रायः सवारी और बोझ ढोने अथवा खींचने के काम में आती है।

यौ०—**मोटर कार** = छोटी मोटर गाड़ी। मोटर। हवागाड़ी। उ० एक मोटर कार द्वार पर आकर रुकी।—गबन, पृ० ११। **मोटर गाड़ी** = मोटरकार। **मोटर ड्राइवर** = मोटर गाड़ी चलानेवाला। **मोटर बोट** = मोटर इंजन से चलनेवाली नाव। **मोटर साइकिल** = मोटर यंत्र से चलनेवाली साइकिल।

मोटरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मोट (बौद्ध), तैलंग मूटा (= गठरी)] गठरी। उ०—(क) आश्रम बरन कलि बिबस, बिकल भए,

निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।--तुलसी (शब्द०)। (ख) अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतारि।--कबीर (शब्द०)।

मोटा[२]—वि० [सं० मुष्ट (= मोटा ताजा आदमी) या हिं० मोट] [वि० स्त्री० मोटी] १. जिसके शरीर में आवश्यकता से अधिक मांस हो। जिसका शरीर चरबी आदि के कारण बहुत फूल गया हो। दुबला का उलटा। स्थूल शरीरवाला। जैसे, मोटा आदमी, मोटा बंदर। (पु)† २. श्रेष्ठ। बरिष्ठ। उ०—अग्रज अनुज सहोदर जोरी, गौर श्याम गूँथै सिर चोटा। नंददास बलि बलि इहि मूरति लीला ललित सबहि बिधि मोटा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४१।

यौ०—मोटा ताजा या मोटा झोटा = (१) स्थूल शरीरवाला। (२) जिसकी एक ओर की सतह दूसरी ओर की सतह से अधिक दूरी पर हो। पतला का उलटा। दबीज। दलदार। गाढ़ा। जैसे, मोटा कागज, मोटा कपड़ा, मोटा तख्ता। ३. जिसका घेरा या मान आदि साधारण से अधिक हो। जैसे, मोटा डंडा, मोटा छड़, मोटी कलम।

मुहा०—मोटा असामी = जिसके पास अधिक धन हो। अमीर। मोटा भाग = सौभाग्य। खुशकिस्मती। उ०—सहज संतोषहि पाइए दादू मोटे भाग।—दादू (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु मुदित जसोदा भाग बड़े करमन की मोटी।—सूर (शब्द०)।

४. जो खूब चूर्ण न हुआ हो। जिसके कण खूब महीन न हो गए हों। दरदरा। जैसे,—यह आटा मोटा है। ५. बढ़िया या सूक्ष्म का उलटा। निम्न कोटि का। घटिया। खराब। जैसे, मोटा अनाज, मोटा कपड़ा, मोटी अकल। उ०—भूमि सयन पट मोट पुराना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अंग अंग भरी है, पूरण ज्ञान न बुद्धि की मोटी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—मोटा झोटा = घटिया। खराब। मोटी बात = साधारण बात। मामूली बात। मोटे हिसाब से = अंदाज से। अटकल से। बिल्कुल ठीक ठीक नहीं। मोटे तौर पर = बहुत सूक्ष्म विचार के अनुसार नहीं। स्थूल रूप से।

६. जो देखने में भला न जान पड़े। भद्दा। बेडौल। उ०—हरि कर राजत माखन रोटी। मनु बारिज ससि बैर जानि कै गह्यौ सुधा ससुधौटी। मेली सजि मुख अंबुज भीतर उपजी उपमा मोटी। मनु बराह भूधर सह पुहुमी धरी दसन की कोटी।—सूर०, १०।१६४।

मुहा०—मोटी चुनाई = बिना गढ़े हुए बेडौल पत्थरों की जोड़ाई। मोटी भूल = भद्दी या भारी भूल।

७. साधारण से अधिक। भारी या कठिन। जैसे, मोटी मार, मोटी हानि, मोटा खर्च। उ०—(क) बंदौं खल मल रूप जे काम भक्त अघ खानि। पर दुख सोई सुख जिन्हैं पर सुख मोटी हानि।—विश्राम (शब्द०)। (ख) दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय। बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय।—कबीर (शब्द०)। (ग) नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोऊ, काहू देवननि मिलि मोटी मूठ मार दी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—मोटा दिखाई देना = आँख की ज्योति में कमी होना। कम दिखाई देना। केवल मोटी चीजें दिखाई देना।

८. घमंडी। अहंकारी। अभिमानी। उ०—मोटो दसकंध सो न दूबरो बिभीषण सो बूझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता।—तुलसी (शब्द०)।

मोटा[२]—संज्ञा पुं० मरवाँ जमीन। मार।

मोटा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० मोट] बोझ। गट्ठड़।

मोटा[४]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बला। बरियारा नाम का क्षुप। विशेष दे० 'बरियारा' [को०]।

मोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोटा + ई (प्रत्य०)] १. मोटे होने का भाव। स्थूलता। पीवरता। २. शरारत। पाजीपन। बदमाशी। उ०—डगर डगर में चलहु कन्हाई समुझि न लागै बहुत मोटाई।—रघुनाथदास (शब्द०)।

मुहा०—मोटाई उतरना = शेखी किरकिरी होना। दुरुस्त होना। पाजीपन छूटना। मोटाई चढ़ना = पाजी, बदमाश या घमंडी होना। मोटाई झाड़ना = (१) शरारत दूर होना। बदमाशी छूटना। (२) घमंड न रह जाना। ऐंठ निकल जाना।

मोटाना[१]—क्रि० अ० [हिं० मोटा + आना (प्रत्य०)] १. मोटा होना। स्थूलकाय हो जाना। २. अहंकारी हो जाना। अभिमानी होना। ३. धनवान् हो जाना।

मोटाना[२]—क्रि० स० दूसरे को मोटा करना। दूसरे को मोटे होने में सहायता देना।

मोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० मोटा + पन (प्रत्य०)] मोटाई। स्थूलता।

मोटापा—संज्ञा पुं० [हिं० मोटा + पा (प्रत्य०)] मोटे होने का भाव मोटापन। मोटाई।

मोटिया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० मोटा + इया (प्रत्य०)] मोटा और खुरखुरा देशी कपड़ा। गाढ़ा। गजी। खद्दड़। सल्लम। जैसे,—वे मोटिया पहिनना ही अधिक पसंद करते हैं।

मोटिया[२]—संज्ञा पुं० [हिं० मोट (= बोझ) + इया (प्रत्य०)] बोझ ढोनेवाला कुली। मजदूर। उ०—मोटियों को भाड़े के कपड़े पहनाकर तिलंगा बनाते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मोट्टायित—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक हाव जिसमें नायिका अपने आंतरिक प्रेम को कटु भाषण आदि द्वारा छिपाने की चेष्टा करने पर भी छिपा नहीं सकती।

विशेष—केशवदास ने लिखा है कि स्तंभ, रोमांच आदि सात्विक भावों को बुद्धिबल से रोकने को 'मोट्टायित' हाव कहते हैं।

मोठ—संज्ञा स्त्री० [सं० मकुष्ठ, प्रा० मउट्ठ] मूँग की तरह का एक प्रकार का मोटा अन्न, जो बनमूँग भी कहा जाता है। मोट। मुगानी। मोथी। बनमूँग।

विशेष—यह प्रायः सारे भारत में होता है। इसकी बोआई ग्रीष्म

ऋतु के अंत या वर्षा के आरंभ में और कटाई खरीफ की फसल के साथ जाड़े के आरंभ में होती है। यह बहुत ही साधारण कोटि की भूमि में भी बहुत अच्छी तरह होता है। और प्रायः बाजरे के साथ बोया जाता है। अधिक वर्षा से यह खराब हो जाता है। इसकी फलियों में जो दाने निकलते हैं, उनकी दाल बनती है। यह दाल साधारण दालों की भाँति खाई जाती है, और मंदाग्नि अथवा ज्वर में पथ्य की भाँति भी दी जाती है। वैद्यक में इसे गरम, कसैली, मधुर, शीतल, मलरोधक, पथ्य, रुचिकारी, हलकी, बादी, कृमिजनक, तथा रक्तपित्त, कफ, बाव, गुदकील, वायुगोले, ज्वर, दाह और क्षयरोग की नाशक माना है। इसकी जड़ मादक और विषैली होती है।

मोठस—वि० [सं० √मृष>मष्ट (=जाने देना)] मौन। चुप। उ०—मोठस कै रघुनाथ रहौ बिनु मोठस कीन्हे ते जीवे को भै है।—रघुनाथ (शब्द०)।

मोड़[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुड़ना] १. रास्ते आदि घूम जाने का स्थान। एक ओर फिर जाने का स्थान। वह स्थान जहाँ से किसी ओर को मुड़ा जाय। उ०—आज बड़े लाट अमुक मोड़ पर वेष बदले एक गरीब काले आदमी से बातें कर रहे थे।—बालमुकुंद गुप्त (शब्द०)। २. घुमाव या मुड़ने की क्रिया। ३. घुमाव या मुड़ने का भाव। ४. कुछ दूर तक गई हुई वस्तु में वह स्थान जहाँ से वह कोना या घुमाव डालती हुई दूसरी ओर फिरी हो।

मोड़Ⓟ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुकुट, प्रा० मउर, हिं० मोड़] मौर। उ०—पाई कंकण सिर बंधीयो मोड़। प्रथम पयाड़उँ दूरग चितोड़। रासो, पृ० १२।

मोड़तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० मोड़+अनु० तोड़] मार्गों में पड़नेवाला घुमाव फिराव। चक्कर।

मोड़ना—क्रि० स० [हिं० मुड़ना का प्रेर० रूप०] १. फेरना। लौटाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—मुख मोड़ना, मुहँ मोड़ना=(१) किसी काम के करने में आनाकानी करना। आगा पीछा करना। रुकना। (२) विमुख होना। पराङ्मुख होना। उ०—खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

२. किसी फैली हुई सतह का कुछ अंश समेटकर एक तह के ऊपर दूसरी तह करना। जैसे,—(क) चादर का कोना मोड़ दो। (ख) कागज किनारे पर मोड़ दो। ३. किसी छड़ की सी सीधी वस्तु का कुछ अंश दूसरी ओर फेरना। ४. दिशा परिवर्तन करना। दिशा बदलना। ५. धार मुथरी करना। कुंठित करना। जैसे, धार मोड़ना।

मोड़ना तोड़ना—क्रि० स० [हिं० मोड़ना+तोड़ना] नष्ट भ्रष्ट करना। काम लायक न रहने देना। नष्ट करना। मसलना। उ०—अब तो मोड़ तोड़ तुम डारा, राम राम कहीं भूठ पसारा।—घट०, पृ० २२७।

मोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० मुण्ड, मि० पं० मुंडा (=लड़का)] [स्त्री० मोड़ी] लड़का। बालक।

मोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुड़ना या देश०] १. घसीट वा शीघ्र लिखने की लिपि। २. दक्षिण भारत की एक लिपि जिसमें प्रायः मराठी भाषा लिखी जाती है।

विशेष—इस लिपि की उत्पत्ति के विषय में कुछ लोगों का कहना है कि हेमाद्रि पंडित ने इसको लंका से लाकर महाराष्ट्र देश में प्रचलित किया। किंतु शिवाजी के पहले इसके प्रचार का कोई पता नहीं चलता। शिवाजी द्वारा राजकीय लिपि के रूप में स्वीकृत नागरी लिपि को त्वरा के साथ लिखने योग्य बनाने के विचार से शिवाजी के 'चिटनिस' (मंत्री, सरिश्तेदार) बालाजी अवाजी ने इसके अक्षरों को मोड़ (तोड़ मरोड़) कर एक नई लिपि तैयार की। जिसे 'मोड़ो' कहते हैं (दे० भा० प्रा० लि०, पृ० १३१—१३२)।

मोड़ोⓅ—क्रि० वि० [देश०। सं० मन्दम् ?] देर से। विलंब से। उ०—ढोला, मोड़ो आवियउ, गइ बालापण वेस।—ढोला०, दू० ४४३।

मोढा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'मोंढ़ा'। मुँडेरा। बरामदा। छज्जा। बारजा। उ०—इसपर भी मोढ़े पर बैठनेवाली और गलियों में मारी मारी फिरनेवाली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुँह लगती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७७।

मोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूखा फल। २. कुंभीर। मगर। ३. मक्खी। ४. बाँस या सींक का बना हुआ ढक्कनदार टोकरा। झाबा। पिटारा। मोना।

मोत†—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्यु] दे० 'मौत'। उ०—तेगा तीन माथा में सजोरी सी बताई। जैसो श्याम षांजी फतैपुर कै मोत पाई।—शिखर०, पृ० ७१।

मोतदिल—वि० [अ० मातदिल] १. जो न बहुत गरम और न बहुत सर्द हो। शीत और उष्णता आदि के विचार से मध्यम अवस्था का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः ओषधि या जलवायु आदि के लिये होता है।

२. मध्यम। दरमियानो (को०)। ३. जिसमें कोई बात अवश्यकता से कम वा अधिक न हो। संतुलित (को०)।

मोतबर—वि० [अ०] १. विश्वास करने योग्य। जिसपर विश्वास किया जा सके। ३. जिसपर विश्वास किया जाता हो। विश्वासपात्र।

मोतबिर—वि० [अ० मोतबर] दे० 'मोतबर'। उ०—उस वक्त उसका कोई मोतबिर आदमी उसके खयाल बमूजिब अपनी खास गर्ज बिना उसकी राय से मिलती हुई बात कहे तो उस बात का सुननेवाले के दिल में पूरा असर होता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१।

मोतबरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मोतबर+ई (प्रत्य०)] विश्वासपात्रता। विश्वसनीयता।

मोतमद—वि० [अ० मोतमद] भरोसे का। विश्वासपात्र।

मोताद—संज्ञा पुं० [अ० मोताद] पूरी मात्रा। पूरी खुराक (को०)।

मोति—संज्ञा पुं० [सं० मौक्तिक] दे० 'मोती'। उ०—नैनन ढरहिं

मोति और मूँगा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २०४।

मोतियदाम—संज्ञा पुं० [सं० **मौक्तिकदाम**, प्रा० **मोतियदाम**] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं। जैसे,—भजौ रघुनाथ धरे धनु हाथ। विराजत कंठ सु मोतियदाम।

मोतिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती + इया** (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का बेला जिसकी कली मोती के समान गोल होती है। २. एक प्रकार का सलमा जिसके दाने गोल होते हैं और जो जरदोजी के काम में किनारे किनारे टाँका जाता है। ३. रूसा नाम की घास, जब तक वह थोड़ी अवस्था की और नीलापन लिए रहती है। ४. एक चिड़िया जिसका रंग मोती का सा होता है।

मोतिया[2]—वि० १. हलका गुलाबी, वा पीले और गुलाबी रंग के मेल का (रंग)। २. छोटे गोल दानों का वा छोटी गोल कड़ियों का। जैसे, मोतिया सिकड़ी। ३. मोती संबंधी। मोती का।

मोतियाबिंद—संज्ञा पुं० [हिं० **मोतिया** + सं० **बिन्दु**] आँख का एक रोग जिसमें उसके एक परदे में गोल झिल्ली सी पड़ जाती है, जिसके कारण आँख से दिखाई नहीं पड़ता।

मोती[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मौक्तिक**, प्रा० **मोत्तिअ**] १. एक प्रसिद्ध बहुमूल्य रत्न जो छिछले समुद्रों में अथवा रेतीले तटों के पास सीपी में से निकलता है।

विशेष—समुद्र में अनेक प्रकार के ऐसे छोटे छोटे जीव होते हैं, जो अपने ऊपर एक प्रकार का आवरण बनाकर रहते हैं। इस आवरण को प्रायः सीप और उन जीवों को सीपी कहते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि बालू का कण या कोई बहुत छोटा जीव सीप में प्रवेश कर जाता है, जिसके कारण सीपी के शरीर में एक प्रकार का प्रदाह उत्पन्न होने लगता है। उस प्रदाह को शांत करने के लिये सीपी अनेक प्रयत्न करती है पर जब उसे सफलता नहीं होती, तब वह अपने शरीर में से एक प्रकार का सफेद, चिकना और लसीला पदार्थ निकालकर बालू के उस कण अथवा जीव को चारों ओर से ढकने लगती है, जो अंत में मोती का रूप धारण कर लेता है। तात्पर्य यह कि मोती की सृष्टि किसी स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार नहीं होती, बल्कि अस्वाभाविक रूप में होती है; और इसीलिये बहुत दिनों तक लोग यह समझते थे कि मोती की उत्पत्ति सीपी में किसी प्रकार का रोग होने से होती है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में यह माना जाता था कि स्वाती की वर्षा के समय सीपी मुँह खोलकर समुद्र के ऊपर आ जाया करती है; और जब स्वाती की बूँद उसमें पड़ती है, तब मोती उत्पन्न होता है।

साधारण मोती सुडौल और गोल होता है, पर कुछ मोती लंबोतरे; टेढ़े मेढ़े या बेडौल होते हैं। मोती का रंग मटमैला, धूमिल, काला या कुछ हरापन अथवा नीलापन लिए हुए होता है; पर साफ करने पर वह खूब सफेद हो जाता है और उसमें एक विशेष प्रकार की 'आब' या चमक आ जाती है। मोती जितना बड़ा या सुडौल होता है उसका मूल्य भी उतना ही अधिक होता है। यों तो मोती संसार के अनेक भागों में पाए जाते हैं; पर लंका, फारस की खाड़ी तथा आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के मोती बहुत अच्छे समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त पनामा के पीले मोती तथा कैलिफोर्निया की खाड़ी के काले और भूरे मोती भी बहुत अच्छे होते हैं। मोती प्रायः तौल के हिसाब से बिकते हैं, पर अन्यान्य रत्नों की भाँति मोती की दर भी उसके भार की वृद्धि के अनुसार बहुत बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ यदि एक चौ के मोती का दाम ५०) होगा, तो उसी प्रकार के दो चौ के मोती का दाम २००) और पाँच चौ के मोती दाम १२५०) या इससे भी अधिक हो जाएगा।

भारतवर्ष में मोती का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से चला आता है। धनवान् लोग इसकी प्रायः मालाएँ बनवाते हैं, और इन्हें अँगूठियों तथा दूसरे आभूषणों में जड़वाते हैं। इसका व्यवहार वैद्यक में औषध रूप में भी होता है; और प्रायः वैद्य लोग इसका भस्म तैयार करते हैं। वैद्यक में मोती को शीतवीर्य शुक्रवर्धक, आँखों के लिये हितकारी और शरीर को पुष्ट करनेवाला माना है। हमारे यहाँ प्राचीन ग्रंथों में यह भी कहा गया है कि सीपी और शंख आदि के अतिरिक्त हाथी, साँप, मछली, मेढक, सूअर, बाँस और बादल तक में मोती होते हैं; और इनको प्राप्त करनेवाला बहुत सौभाग्यशाली कहा गया है। इन सब मोतियों के अलग अलग गुण भी बतलाए गए हैं; पर ऐसे मोती कभी किसी के देखने में नहीं आते।

मुहा०—**मोती गरजना** = मोती में बाल पड़ जाना। **मोती चटकना** या कड़क जाना। **मोती ढलकाना** = रोना (व्यंग्य)। **मोती पिरोना** = (१) बहुत ही सुंदर और प्रिय भाषण करना। (२) बहुत ही सुंदर और स्पष्ट अक्षर लिखना। (३) रोना (व्यंग्य)। (४) कोई बारीक काम करना। **मोती बींधना** = (१) मोती को पिरोए जाने के योग्य बनाने के लिये उसके बीच में छेद करना। (२) कुमारी का कौमार्य भंग करना। योनि का क्षत करना। (बाजारू)। **मोती रोलना** = बिना परिश्रम अथवा थोड़े परिश्रम से बहुत अधिक धन कमाना या प्राप्त करना। **मोतियों के मोल पड़ना** = बहुत मँहगा पड़ना। उ०—किंतु यह फल बकरियों और खच्चरों पर लादकर रेल तक पहुँचाने में मोती के मोल पड़ेंगे, उन्हें कौन खरीदेगा।—किन्नर०, पृ० ११। **मोतियों से माँग भरना** = माँग में मोती पिरोना। **मोतियों से मुँह भरना** = प्रसन्न होकर किसी को बहुत अधिक धन संपत्ति देना।

पर्या०—मौक्तिक। शौक्तिक। मुक्ता। मुक्ताफल।

२. कसेरों का एक औजार जिससे वे नक्काशी करते समय मोती की सी आकृति बनाते हैं।

मोती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मौक्तिकी**] बाली जिसमें बड़े बड़े मोती पड़े रहते हैं। उ०—छोटी छोटी मोती कान छोटे कठुला त्यों कंठ छोटे से बिजायठ कटक दुति मोटे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

मोतीचूर—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती + चूर**] १. मोती की तरह छोटी बुँदियों का लड्डू।

यौ०—मोतीचूर आँख = गोल छोटी उभरी हुई चमकदार आँख। (जैसी कबूतर की होती है)।

२. एक प्रकार का धान जिसकी फसल अगहन में तैयार होती है। ३. कुश्ती का एक पेंच जिसमें प्रतिद्वंद्वी के बाएँ पैर को अपने दाहिने पैर में फँसाकर और हाथ से उसका गला लपेटकर उसे चित्त कर देते हैं।

मोतीज्वर—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती** + सं० **ज्वर**] चेचक निकलने के पहले आनेवाला ज्वर।

मोतीझरा, मोतीझिरा—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती** + **झिरा** (=ज्वर)] छोटी शीतला का रोग। मोतिया माता निकलने का रोग। मंथर ज्वर। मोतीमाती।

मोतीफल—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताफल**] दे० 'मुक्ताफल'। उ०—कोऊ मोतीफल कोऊ वास रस पय पान, कोऊ पौन पीवत भरत पेट भार कौं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४२६।

मोतीबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोतिया** + **बेल**] बेले का वह भेद जिसे मोतिया कहते हैं। मोतिया बेला। उ०—मोतीबेल कैसे फूल मोतिन के भूपन सुचीर गुलचाँदनी सी चंपक की डारी सी।—देव (शब्द०)।

मोतीभात—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती** + **भात**] एक विशेष प्रकार का भात। उ०—परस्यो ओदन बिविध प्रकारा। मोतीभात सुनाम उचारा। केसरि भात नाम ससिभातू। कनकभात पुनि बिमल बिभातू।—रघुराज (शब्द०)।

मोतीलाडू—संज्ञा पुं० [हिं० **मोती** + **लड्डू**] मोतीचूर का लड्डू। उ०—दूनी बहुत पकावन साधे। मोतीलाडू खेरौरा बाँधे।—जायसी (शब्द०)।

मोतीसिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोती** + सं० **श्री**] मोतियों की कंठी। मोतियों की माला। उ०—तोरि मोतीसिरी गुप्त करि धर्‍यौ कहूँ एहि मिस सकुचि रही मुख न बोलै।—सूर (शब्द०)।

मोतीहार—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताफल**, प्रा० **मुत्ताहल** > **मोताहल**] दे० 'मुक्ताफल'। उ०—सउ सहसे एकोतरे सिरि मोतीहरि सुद्ध। नदी निवासउ उत्तरइ आँगू एक अविध। ढोला०, दू० ३३०।

मोत्याहल—संज्ञा पुं० [सं० **मुक्ताफल**] मुक्ति रूपी फल। मुक्ति। उ०—अवधू अहूँठ परबत मंझार, बेलडी माड्यौ बिस्तार। बेली फूल, बेलो फल. बेली अछे मोत्याहल।—गोरख०, पृ० ११८।

मोथरा—वि० [हिं० **भुथरा**] जिसकी धार तेज न हो। कुंठित। गोठिल। कुंद। उ०—भयो अबहुँ नहि मोथरो मोर उदंड कुठार। उपज्यो अमरष दून अब करौं सकुल संहार।—रघुराज (शब्द०)।

मोथा—संज्ञा पुं० [सं० **मुस्तक**, प्रा० **मुत्थअ**] १. नागरमोथा नामक घास। मुस्ता। उ०—शूकर वृंद डहर में जाई। खोद निडर मोथा जर खाई।—शकुंतला, पृ० ३३। २. उपर्युक्त नागरमोथा घास की जड़ जो ओषधि की भाँति प्रयुक्त होती है। उ०—मोथा नीब चिरायत बासा। पीतपापरा पित कहँ नासा।—इंद्रा०, पृ० १५१।

विशेष—यह तृण जलाशयों में होता है। इसकी पत्तियाँ कुश की पत्तियों की तरह लंबी लंबी और गहरे हरे रंग की होती हैं। इसकी जड़ें बहुत मोटी होती हैं, जिन्हें सूअर खोदकर खाते हैं।

मोद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **मोदी**] १. आनंद। हर्ष। प्रसन्नता। खुशी। २. पाँच भगण, एक मगण, एक सगण, और एक गुरु वर्ण का एक वर्णवृत्त। जैसे,—भे सर में सिगरे गुण अर्जुन जाहिर भूपालौहु लजाने। ज्यौंहि स्वयंबर में मछरी दइ बेध सभा सो द्रौपदी आने। ३. सुगंध। महक। खुशबू।

मोदक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लड्डू। (मिठाई)। २. औषध आदि का बना हुआ लड्डू। जैसे,—मदनानंद मोदक। ३. गुड़। ४. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार भगण होते हैं। जैसे,—(क) भा चहु पार जु भौ निधि रावन। तो गहु राम पदै नित पावन। आय वरै प्रभु लै चरनोदक। भूख लगे न भाखै मन मोदक।—छंदप्रभाकर (शब्द०)। (ख) काहू कहूँ शर आसर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय। रावण के वह कान परचो जब। छोड़ि स्वयंबर जात भयो तब।—केशव (शब्द०)। ५. एक वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से मानी जाती है।

मोदक[2]—[वि०स्त्री० **मोदका, मोदकी**] मोद या आनंद देनेवाला। आनंददायक।

मोदककार—संज्ञा पुं० [सं०] हलवाई।

मोदकर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

मोदकर[2]—वि० आनंददायक। मोदजनक।

मोदकवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] मोदक जिन्हें प्रिय है, गणेश [को०]।

मोदकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिठाई [को०]।

मोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गदा। उ०—शिखरी त्यौं मोदकी गदा युग दीपति भरी सदाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) श्री लव वीर उदंड पुनि गदा मोदकी मारि। बीर बिभीषण असुर कँह दियो भूमि पै डारि।—रघुराज (शब्द०)। २. मूर्वा।

मोदन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **मोदनीय, मोदित**] १. मुदित करना। प्रसन्न करना। २. सुगंधि फैलाना। महकाना। ३. मोम (को०)। ४. आनंद। मोद। हर्ष (को०)।

मोदना[1]—क्रि० अ० [सं० **मोदन**] १. प्रसन्न होना। खुश होना। आनंदित होना। २. सुगंधि फैलना। महकना। उ०—फूल फूल तरु फूल बढ़ावत। मोदत महा मोद उपजावत।—केशव (शब्द०)।

मोदना—क्रि० स० प्रसन्न करना। खुश करना। उ०—तुलसी सरिस अजान मान रिस पुरो हियरा। तऊ गोंद लेइ पोंछि चूमि मुख मोदत जियरा।—सुधाकर (शब्द०)।

मोदमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जामुन। जंबूफल [को०]।

मोदयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **मोदयन्तिका**] एक प्रकार की चमेली की लता और उसका फूल [को०]।

मोदयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० **मोदयन्ती**] दे० 'मोदयंतिका' [को०]।

मोदवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० **मोदवती**] वनमल्लिका । जंगली चमेली ।

मोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अजमोदा । बन अजवाइन । २. सेमल का वृक्ष ।

मोदाक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वृक्ष का नाम ।

मोदाकर वि० [सं० **मोद + आकर**] हर्षजनक । आनंदपूर्ण । आनंद मोद की खान। उ०—मोदाकर गोदावरी बिपिन सुखद सब काल ।—तुलसी ग्रं०, भा०, २ पृ० ७६ ।

मोदाकी—संज्ञा पुं० [सं० **मोदाकिन्**] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

मोदाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

मोदाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा । बन अजवाइन ।

मोदाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] मुँगेर के पास के एक पर्वत का पौराणिक नाम ।

मोदित[1]—संज्ञा **पुं०** [सं०] आनंद । हर्ष । प्रसन्नता [को०]।

मोदित[2]—वि० हर्षित । आनंदित । प्रसन्न । उ०—गंध मंद मोदित पुर, नंदन आनंद गमन ।—बेला, पृ० ७२ ।

मोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अजमोदा । २. जूही । ३. कस्तूरी । ४. मदिरा । ५. चमेली ।

मोदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मोदक** (= **लड्डू बनानेवाला**) अथवा अ० **मद्द्**य (= **जिंस, रसद**)] १. आटा, दाल, चावल आदि बेचनेवाला बनिया । भोजन सामग्री देनेवाला बनिया । परचूनिया । उ०—(क) माया मेरे राम की मोदी सब संसार। जाकी चीठी ऊतरी सोई खरचनहार । —कबीर (शब्द०)। (ख) मदन के मोद भरी जोबन प्रमोद भरी मोदी की बहू की द्युत देखे दिन दूनी सी। चूनरी सुरंग अंग ईंगुर के रंग देव बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी सी ।—देव (शब्द०)। (ग) है अन्नपूरणा मोदी । दे सबै अहारै सोदी ।—विश्राम (शब्द०)। २. वह जिसका काम नौकरों को भरती करना हो।

मोदी[2]—वि० [सं० **मोदिन्**][वि० स्त्री० **मोदिनी**] मोद करनेवाला। आनदी [को०]।

मोदीखाना—संज्ञा पुं० [हिं० **मोदी** + फ़ा० **खानह्**] अन्नादि रखने का घर । भंडार । गोदाम ।

मोधक—संज्ञा पुं० [सं० **मोदक** (= **एक वर्णसंकर जाति**)] मछली पकड़नेवाला । धीवर । मछुआ । उ०—एक मीन के भक्ष कियो तब हरि रखवारी कीन्हो । सोई मत्स्य पकरि मोधुक ने जाय असुर को दीन्हों । —सूर (शब्द०)।

मोधू†—वि० [सं० **मुग्ध**, प्रा० **मुद्ध मुध्ध**] बेवकूफ । मूर्ख । भोंदू । उ०—विदूषक–मित्र यों मोधू बनकर बैठने से क्या होगा ? कुछ उपाय करना चाहिए ।—बालमुकुंद गुप्त (शब्द०)।

मोन[1]—संज्ञा पुं० [सं० **मोण**] दे० 'मोना[2]'। उ०—मानहुँ रतन मोन दुइ मूँदे ।—जायसी (शब्द०)।

मोन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मौन'। उ०—चित्र दिषात सु चित्रनी मोन बिलग्गिय बाह ।—पृ० रा०, ५७।८३ ।

मोनशेनयर—संज्ञा पुं० [फ्रें०] फ्रांस में प्रिंस, पादरी तथा प्रतिष्ठित लोगों के नाम के आगे लगनेवाला संमानसूचक शब्द । श्रीमान् ।

मोनस—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

मोनाⓤ†[1]—क्रि० स० [हिं० **मोयन**] भिगोना । तर करना । उ०—(क) कह्यौ राम तँह भरत सों काके बालक दोइ। मोर चरित गावत मधुर सुर संयुत रस मोइ ।—विश्राम (शब्द)। (ख) नेह मोइ रस रेसमहिं गाँठ दई हित जोर। चाहत हैं गुरुजन तिन्हें अनख नखन सों छोर ।—रसनिधि (शब्द०)। (ग) तुलसी मुदित मातु सुत गति लखि बिथकी है ग्वालि मैन मन मोए ।—तुलसी (शब्द०)।

मोना†[2] संज्ञा पुं० [सं० मोण] बाँस, मूँज आदि का ढक्कनदार डला । झाबा । पिटारा ।

मोनाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का महोख पक्षी जो शिमले के आस पास बहुत पाया जाता है । इसे 'नील मोर' भी कहते हैं।

मोनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोना + इया** (प्रत्य०)] बाँस या मूँज की बनी हुई पिटारी । छोटा मोना ।

मोनीⓤ—वि० [सं० **मौनी**] दे० 'मौनी'। उ०—मोनी मन का मारै मानु ।—प्राण०, पृ० ९३ ।

मोनोग्राम—संज्ञा पुं० [अं०] दो या तीन अक्षरों के संयोग से बना हुआ किसी नाम का संक्षिप्त रूप ।

मोनोटाइप मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] कंपोज करनेवाली एक प्रकार की मशीन जिसमें एक एक अक्षर ढलता और कंपोज होता चलता है ।

मोनोप्लेन—संज्ञा पुं० [अं०] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद । एक पंखवाला वायुयान ।

मोपला—संज्ञा पुं० [देश०] मुसलमानों की एक जाति जो मदरास में पाई जाती है ।

मोम—संज्ञा पुं० [फ़ा० मोम] १. वह चिकना और नरम पदार्थ जिससे शहद की मक्खियाँ अपना छत्ता बनाती हैं। मधुमक्खी के छत्ते का उपकरण ।

विशेष—मोम प्रायः पीले रंग का होता है और इसमें से शहद की सी गंध आती है । साफ करने पर इसका रंग सफेद हो जाता है । यह बहुत थोड़ी गरमी से गल या पिघल जाता है; और कोमल होने के कारण थोड़े से दबाव द्वारा भी, गीली मिट्टी या आटे आदि की भाँति, अनेक रूपों में परिवर्तित किया जा सकता है । इसकी बत्तियाँ बनाई जाती हैं, जो बहुत ही हलकी और ठंढी रोशनी देती हैं। औषधि के रूप में इसका व्यवहार होता है और यह मरहमों आदि में डाला जाता है । खिलौने और ठप्पे आदि बनाने में भी इसका व्यवहार होता है ।

यौ०—**मोम की नाक** = (१) जिसको संमति बहुत जल्दी बदल जाती हो । अस्थिरमति । (२) वह जो जरा सी बात में

मिजाज बदले। मोम की मरियम=बहुत ही कोमल और सुकुमार स्त्री।

मुहा०—मोम करना या मोम बनाना=द्रवीभूत कर लेना। दयार्द्र कर लेना। मोम होना=दयार्द्र हो जाना। पिघल जाना। कठोरता छोड़ देना।

२. रूप, रंग और गुण आदि में इसी से मिलता जुलता वह पदार्थ जो मधुमक्खी की जाति के तथा कुछ और प्रकार के कीड़े पराग आदि से एकत्र करते हैं अथवा जो वृक्षों पर लाख आदि के रूप में पाया जाता है। ३. मिट्टी के तेल में से, एक विशेष रासायनिक क्रिया के द्वारा, निकाला हुआ इसी प्रकार का एक पदार्थ। जमा हुआ मिट्टी का तेल।

विशेष—अंतिम दोनों प्रकार के मोमों का व्यवहार भी प्रायः पहले प्रकार के मोम के समान ही होता है।

मोमजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० मोम+जामह्] वह कपड़ा जिसपर मोम का रोगन चढ़ाया गया हो। तिरपाल।

विशेष—ऐसे कपड़े पर पड़ा हुआ पानी आर पार नहीं होता।

मोमदिल—वि० [फ़ा० मोम+दिल] दूसरों के दुःख से शीघ्र द्रवित होनेवाला। बहुत कोमल हृदयवाला।

मोमना†—वि० [हिं० मोम+ना (प्रत्य०)] मोम का सा। बहुत ही कोमल।

मोमबत्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मोम+हिं० बत्ती] मोम वा ऐसे ही किसी और जलानेवाले पदार्थ की बनी हुई बत्ती।

विशेष—इस प्रकार की बत्ती के बीच में एक मोटा डोरा होता है और उसपर मोम चढ़ा रहता है। जब वह डोरा जलाया जाता है, तब चारों ओर से मोम गल गलकर जलने लगता है। जिससे प्रकाश होता है। प्राचीन काल में फारस आदि देशों में उत्सवों आदि पर इसका बहुत अधिक व्यवहार होता था।

मोमम्भरⓊ—वि० [देश०] वजनदार। भारवाला। प्रतिष्ठावाला। उ०—छिप्पत कबहुँ न मोमम्भर तिन। रंकति न छिपै वित परषन षिन।—पृ० रा०, ६१।८६।

मोमिन—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० मोमिना] १. धर्मनिष्ठ मुसलमान। उ०—मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२। २. जुलाहों की एक जाति। ३. एक उर्दू कवि का नाम।

मोमिया—संज्ञा स्त्री० [अं० मम्मी, फ़ा० मोमिया ?] मसाला लगाकर सुरक्षित रखी हुई लाश। सड़ने से बचाने के लिये सुगंधित मसाला के लेप द्वारा सुरक्षित पुरातन शव।

मोमियाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मोमियायी] १. कृत्रिम शिलाजतु। पत्थर से बननेवाला शिलाजतु। नकली शिलाजीत। उ०—वहाँ एक किस्म का पत्थर होता है। उसको पानी में उबालकर मोमियाई बनाते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मुहा०—मोमियाई निकालना=(१) किसी से कठिन परिश्रम लेना। किसी को खूब मारना पीटना।

विशेष—कुछ लोगों का विश्वास है कि मोमियाई मनुष्य के शरीर को आँच से तपाकर निकाली हुई चिकनाई से तैयार की जाती है; इसी से ये मुहावरे बने हैं।

२. काले रंग की एक चिकनी दवा जो मोम की तरह मुलायम होती है। यह दवा घाव भरने के लिये प्रसिद्ध है।

मोमी—वि० [फ़ा०] १. मोम का बना हुआ। जैसे, मोमी मोती, मोमी पुतला। २. मोम का सा।

मोमी मोती—संज्ञा पुं० [फ़ा० मोमी+सं० मौक्तिक] मोम से बना मोती। एक प्रकार का नकली मोती। उ०—चमकीले और बड़े बड़े मोमी मोतियों से सजे बाल खूब ही मजा दे रहे थे।—शराबी, पृ० २६।

मोयन—संज्ञा पुं० [हिं० मैन (=मोम)] माँड़े हुए आटे में घी या चिकना देना जिसमें उससे बनी वस्तु खसखसी और मुलायम हो।

यौ०—मोयनदार=जैसे, मोयनदार कचौरी।

मोयना†—संज्ञा सं० [हिं० मुअना] दे० 'मरना'। उ०—जिए लग तो जोरू बचे प्यार करते। मोये पर तो मुर्दा क कर जी में डरते।—दक्खिनी०, पृ० २५३।

मोयुम—संज्ञा पुं० [देश०] एक लता जो आसाम, सिक्किम और भूटान में बहुतायत से उत्पन्न होती हैं।

विशेष—इस लता से अत्यंत चमकीला रंग तैयार किया जाता है, जिससे कपड़े रँगे जाते हैं।

मोरंग—संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल देश का पूर्वी भाग जो कौशिकी नदी के पूर्व पड़ता है।

विशेष—संस्कृत ग्रंथों में इसी भाग को 'किरात देश' कहा गया है। इस देश में जंगल और पहाड़ियाँ बहुत हैं। इस देश का कुछ भाग जिला पुरनिया (बंगाल) में भी पड़ता है।

मोर¹—संज्ञा पुं० [सं० मयूर, प्रा० मोर] [स्त्री० मोरनी] १. एक अत्यंत सुंदर बड़ा पक्षी। मयूर। बर्हो। उ०—भादव मास बरिस घनघोर। सभ दिस कुहकए दादुल मोर।—विद्यापति, पृ० १३१।

विशेष—यह पक्षी प्रायः चार फुट लंबा होता है और इसकी लंबी गर्दन और छाती का रंग बहुत ही गहरा और चमकीला नीला होता है। नर के सिर पर बहुत ही सुंदर कलगी या चोटी होती है। पंख छोटे तथा पूँछ लंबी और अत्यंत सुंदर होती है। नर जिस समय प्रसन्न होता है, उस समय अपनी पूँछ के पर खड़े करके मंडलाकार फैला देता है, जिससे वह बहुत ही सुंदर जान पड़ता है। पूँछ के परों पर बहुत सुंदर गोल दाग या चित्तियाँ होती हैं, जिनका रंग नीला होता है और जिनपर सुंदर सुनहरा मंडल होता है। इन्हें चंद्रिका' कहते हैं। मोर सब पक्षियों से सुंदर पक्षी है। अनेक चटकीले रंगों का जैसा सुंदर मेल इसमें होता है, वैसा और किसी पक्षी में नहीं होता। प्राचीन यूनानी और रोमन इसे बहुत पवित्र मानते थे। राजपूताने में अब तक कोई इसकी हत्या नहीं करता। इसका स्वभाव है कि बादलों की गरज सुनते ही यह कुकता है। संस्कृत में इसका एक नाम भुजंगभुक् है। कहते हैं,

यह साँप को खा जाता है। मादा का रंग फीका होता है और वह देखने में वैसी सुंदर नहीं होती।

पर्या०—नीलकंठ। केकी। बरही। शिखी। शिखंडी। कलापी। शिवसुतवाहन। भुजंगभुक्। अहिभक्षी।

२. नीलम की आभा, जो मोर के पर के समान होती है। उ०—मोर, विष्णु, नभ, कमल, अलि, कोकिल, कलरव, मेह। फूल सिरस, अरसी, अवनि ग्यारह छाया एह।—रत्नपरीक्षा। (शब्द०)।

मोर(पु)†[2]—सर्व० सं० **मम**] [स्त्री० **मोरी**] दे० 'मेरा'। उ०—(क) मोर हृदय सत कुलिस समाना।—मानस, २।१६६। (ख) खुले सुभाग्य मोरयं, लह्यौ दरस्स तोरयं।—ह० रासो, पृ० १३।

मोर[3]—संज्ञा स्त्री० [डिं०] सेना की अगली पंक्ति।

मोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोहा। २. गाय का ब्याने के सात दिन बाद का दूध [को०]।

मोरचंग—संज्ञा पुं० [हिं० **मुँहचंग**] दे० 'मुरचंग'।

मोरचंदा(पु)—संज्ञा पुं० [**मयूरचन्द्रक**] दे० 'मोरचंद्रिका'। उ०—गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं।···मोरचंदा चारु सिर मंजु गुंजापुंज धरे, बनि बनधातु तन ओढ़े पीत पट हैं।—तुलसी (शब्द०)।

मोरचंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोर + चन्द्रिका**] मोर पंख के छोर की वह बूटी जो चंद्राकार होती है। उ०—मोरचंद्रिका श्याम सिर चढ़ि कत करत गुमान।—बिहारी (शब्द०)।

मोरचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मोरचह**] १. लोहे की ऊपरी सतह पर चढ़ आनेवाली लाल या पीली रंग की बुकनी की सी तह। जंग।

विशेष—लोहे पर जमनेवाली यह तह वायु और नमी के योग से रासायनिक विकार होने से उत्पन्न होती है। यह लाल बुकनी वास्तव में विकारप्राप्त लोहा ही है।

२. दर्पण पर जमी हुई मैल। उ०—(क) जब लग हिय दरपन रहै कपट मोरचा छाइ। तब लग सुंदर मीत मुख कैसे दृगन दिखाइ।- रसनिधि (शब्द०)। (ख) पहिर न भूषन कनक के कहि आवत एहि हेत। दरपन के से मोरचा देह दिखाई देत।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—प्राचीन काल में दर्पण लोहे को माँजते माँजते चमकदार बनाए जाते थे, इसी से दर्पण के साथ 'मोरचा' शब्द का प्रयोग चला आ रहा। 'दर्पण' के लिये फारसी का 'आईना' शब्द वास्तव में 'आहना' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'लोहे का' होता है।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

मुहा०—**मोरचा खाना** = मोरचा लगाने से खराब होना।

मोरचा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मोरचाल**] १. वह गड्ढा जो गढ़ के चारों ओर रक्षा के लिये खोद दिया जाता है। २. वह सेना जो गढ़ के अंदर रहकर शत्रु से लड़ती है। ३. वह स्थान जहाँ से सेना, गढ़ या नगर आदि की रक्षा की जाती है। वह स्थान जहाँ खड़े होकर शत्रुसेना से लड़ाई की जाती है।

मुहा०—**मोरचाबंदी करना** = गढ़ के चारों ओर गड्ढा खोदकर या टीले बनाकर यथास्थान सेना नियुक्त करना। **मोरचा जीतना** = शत्रु के मोरचे पर अधिकार कर लेना। **मोरचा बाँधना** = दे० 'मोरचाबंदी करना'। उ०—बढ़ि बढ़ि बाँधे मोरचे, लाग देखि नियराइ।—हम्मीर०, पृ० २७। **मोरचा मारना** = दे० 'मोरचा जीतना'। **मोरचा लेना**=युद्ध करना।

मोरछड़—संज्ञा पुं० दे० [हिं० **मोर + छड़**] दे० 'मोरछल'।

मोरछल—संज्ञा पुं० [हिं० **मोर + छड़**] मोर की पूँछ के परों को इकट्ठा बाँधकर बनाया हुआ लंबा चँवर जो प्रायः देवताओं और राजाओं आदि के मस्तक के पास डुलाया जाता है। उ०—(क) अगल बगल बहु मनुज मोरछल चँवर डोलावत।—गोपाल (शब्द०)। (ख) चारु चौंर चहुँ ओर चलावैं मोरछलान डोलाई।—रघुराज (शब्द०)।

मोरछली[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **मौलिश्री**] 'मौलसिरी'। उ०—छड़, खिरैटी, आँवले कुट और मोरछली की छाल, इनको जल के साथ महीन पीसकर लेप करो तो बाल बढ़ेंगे।—प्रतापसिंह (शब्द०)।

मोरछली[2]—संज्ञा पुं० [हिं० मोरछल + ई (प्रत्य०)] मोरछल हिलानेवाला।

मोरछाँह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **मोरछल**] दे० 'मोरछल'। उ०—का बरनउँ अस ऊँच तुषारा। दुइ बेरें पहुँचै असवारा। बाँधे मोरछाँह सिर सारहिं। भाजहिं पूँछ चँवर जनु ढारहिं।—जायसी (शब्द०)।

मोरजुटना—संज्ञा पुं० [हिं० **मोर + जुटना**] एक प्रकार का आभूषण।

विशेष—यह आभूषण सोने का बनता और रत्नजटित होता है। इसके बीच का भाग गोल बेंदे के समान होता है और दोनों ओर मोर बने रहते हैं। यह बेंदे के स्थान पर माथे पर पहना जाता है।

मोरट—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊख की जड़। २. अंकोल वा अंकोट का फूल। ३. प्रसव से सातवीं रात के बाद का दूध। ४. एक प्रकार की लता जिसे कर्णपुष्प भी कहते हैं।

विशेष—वैद्यक में इसे मधुर कषाय, वृष्य, बलवर्धक और पित्त, दाह तथा ज्वर के लिये नाशक माना है।

मोरटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'मोरटक'। २. सफेद खैर।

मोरटा—संज्ञा स्त्री०] सं०] १. दूर्वा। दूब। २. मूर्वा (को०)।

मोठ—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा मट्ठा [को०]।

मोरत†—संज्ञा पुं० [हिं० **महूरत**] दे० 'मुहूर्त'। उ०—षोडस प्रकार के दान बेदोक्त करवाए। पंचांग सुध सोध मोरत बतलाए।—रघु० रू०, पृ० २३६।

मोरध्वज—संज्ञा पुं० [सं० **मयूरध्वज**] एक पौराणिक राजा का नाम जो बहुत प्रसिद्ध भक्त था।

विशेष—इसकी परीक्षा के लिये श्रीकृष्ण और अर्जुन इसके यहाँ गए

थे। श्रीकृष्ण की बात मानकर यह राजा अपना जीवित शरीर आरे से चिरवाने के लिये तैयार हुआ था।

मोरदार—वि० [हिं० मोड़+दार (प्रत्य०)] १. भोथरा। २. घुमावदार। उ०—उरज बुरज दै मवासी छत्र रासी मनों, पीय मन चंचल बनी के नीके मोरदार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७३।

मोरनⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोड़ना] मोड़ने की क्रिया या भाव। मोड़ना।

मोरन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० मोरट] बिलोया हुआ दही जिसमें मिठाई और कुछ सुगंधित वस्तुएँ (इलायची, लौंग इत्यादि) डाली गई हों। शिखरन। उ०—पुनि सँधान आने बहु साँधी। दूध दही को मोरन बाँधी।—जायसी (शब्द०)।

मोरनाⓅ[1]—क्रि० स० [हिं० मोड़ना] दे० 'मोड़ना'। उ०—(क) फिर फिर सुंदर ग्रीवा मोरत। देखत रथ पाछे जो घोरत। लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ख) चारि चारि चित चितवति मुँह मोरि मोरि काहे तें हँसति हिय हरष बढ़ायो है।—केशव (शब्द०)। (ग) कर आँचर को ओट करि जमुहानी मुख मोरि।—बिहारी। (शब्द०)। (घ) नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंहँ।—बिहारी (शब्द०)।

मोरना[2]—क्रि० स० [हिं० मोरन] दही को मथकर मक्खन निकालना। (बुंदेलखंड)। उ०—डीठडोर नै मोर दिय छिरक रूपरस तोय। मथि मा घट प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय।—रसनिधि (शब्द०)।

मोरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोर का स्त्री० रूप] १. मोर पक्षी की मादा। उ०—चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत, हस हंसिनी समेत सारिका सबै पढ़ैं।—केशव (शब्द०)। २. मोर के आकार का अथवा और किसी प्रकार का एक छोटा टिकड़ा जो नथ में पिरोया जाता है और प्रायः होंठों के ऊपर लटकता रहता है।

मोरपंख—संज्ञा पुं० [हिं० मोर+पंख (=पर)] मोर का पर जो देखने में बहुत सुंदर होता है, और जिसका व्यवहार अनेक अवसरों पर प्रायः शोभा या शृंगार के लिये अथवा कभी कभी औषध के रूप मे होता है। उ०—मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छा बीच बिच कुसुम कली के।—मानस, १।२३३।

मोरपंखी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोरपंख+ई (प्रत्य०)] १. वह नाव जिसका एक सिरा मोर के पर की तरह बना और रँगा हुआ हो। २. मलखंभ की एक कसरत जो बहुत फुरती से की जाती है और जिसमें पैरों को पीछे की ओर से ऊपर उठाकर मोर के पंख की सी आकृति बनाई जाती है।

मोरपंखी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का बहुत सुंदर, गहरा और चमकीला नीला रंग जो मोर के पर से मिलता जुलता होता है।

मोरपंखी[3]—वि० मोर के पंख के रंग का। गहरा चमकीला नीला।

मोरपखाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० मोरपंख] १. मोर का पर। मोरपंख। २. मोरपंख की कलगी जो प्रायः श्रीकृष्ण जी मुकुट या चीर में खोंसा करते थे। उ०—(क) बाँसुरि कुंडल मोरपखा मधुरी मुसकानि भरी मुख है ये।—बेनी (शब्द०)। (ख) पीत पटी लकुटी पदमाकर मोरपखा लै कहूँ गति नाखा। पद्माकर (शब्द०)। (ग) क्यों करि धौं मुरली मनि कुंडल मोरपखा बनमाल बिसारैं। ते धनि जे ब्रजराज लखे गृहकाज करैं अरु लाज सँभारैं।—मतिराम (शब्द०)।

मोरपच्छⓅ—संज्ञा पुं० [सं० मयूरपक्ष] मोर का पंख।

यौ०—**मोरपच्छधर**=मोर का पंख धारण करनेवाले, कृष्ण। उ०—मोरपच्छधर पच्छ धरि, ब्रजनिधि मैं अनुरागि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०।

मोरपाँव—संज्ञा पुं० [हिं० मोर+पाँव] जंगी जहाजों के बावर्चीखाने की मेज पर खड़ा जड़ा हुआ लोहे का छड़ जिसमें मांस के बड़े बड़े टुकड़े लटकाए रहते हैं। (लश०)।

मोरमुकुट—संज्ञा पुं० [हिं० मोर+मुकुट] मोर के पंखों का बना हुआ मुकुट जो प्रायः श्रीकृष्ण जी पहना करते थे। उ०—मोर मुकुट की चंद्रिकन यौं राजत नँदनंद। मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सत चंद।—बिहारी (शब्द०)।

मोरवाⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० मयूर, हिं० मोर+वा (प्रत्य०)] १. दे० 'मोर'। उ०—कूक मोरवान को करेजा टूक टूक करै, लागति है हूक सुनि धुनि धुरवान को।—दीनदयाल (शब्द०)। २. मुष्क का वृक्ष। मोखा।

मोरवा—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जो नाव की किलवारी में बाँधी जाती है और जिससे पतवार का काम लेते हैं।

मोरशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० मयूर+शिखा] एक जड़ी जिसकी पत्तियाँ ठीक मोर की कलगी के आकार की होती है।

विशेष—यह जड़ी बहुधा पुरानी दीवारों पर उगती है। इसकी सूखी पत्तियों पर पानी छिड़क देने से वे पत्तियाँ फिर तुरंत हरी हो जाती हैं। वैद्यक में इसे पित्त, कफ, अतिसार और बालग्रह दोषनिवारिणी माना गया है।

मोरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] अकीक नामक रत्न का एक भेद जो प्रायः दक्षिण भारत में होता है और जिसे 'बाबाघोड़ी' भी कहते हैं।

मोराⓅ†[2]—वि० [सं० मम] [वि० स्त्री० मोरी] दे० 'मेरा'। उ०—हमे हसि हेरला थोरा रे। सफल भेल सखि कौतुक मोरा रे।—विद्यापति, पृ० १८२।

यौ०—**मोरे लेखे**=मेरे हिसाब से। मेरे विचार से। मेरे अनुमान से। उ०—एकहि मँदिर बसि पिया न पुछए हसि, मोरे लेखे समुदक पार।—विद्यापति, पृ० ११८।

मोराद†—संज्ञा स्त्री० [अ० मुराद] दे० 'मुराद'। उ०—वह नूर नबी तहकीक करै, तब आदि मोराद का पाइए जो।—कबीर० रे०, पृ० ४०।

मोरानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० मोड़ना का प्रे० रूप] १. चारों ओर घुमाना। फिराना। उ०—आरति करि पुनि नरियल तबहीं मोराइए। पुरुष को भोग लगाइ सखा मिलि खाइए।—कबीर

(शब्द०)। २. रस पेरने के समय ऊख की अँगारी को कोल्हू में दबाना।

मोरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दरवाजा। गुप्त या बगल का दरवाजा [को०]।

मोरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोरना**] कोल्हू में कातर की दूसरी शाखा जो बाँस की होती है।

मोरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोहरी**] १. किसी वस्तु के निकलने का तंग द्वार। २. नाली जिसमें से पानी, विशेषतः गंदा और मैला पानी बहता हो। पनाली। उ०—ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच। घर के जाने मर गए आप नशे के बीच।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८३।

मुहा०—**मोरी छुटना**=दस्त आना। पेट चलना। **मोरी पर जाना**=पेशाब करने जाना। (स्त्रियाँ)। ३. दे० 'मोहरी'।

मोरीⓅ†²—संज्ञा स्त्री० [सं० **मयूरी**, हिं० **मोर**+ई (प्रत्य०)] मोर पक्षी की मादा। मयूरी। उ०—मोरी सी घन गरज सुनि तू ठाढ़ी अकुलात।—सीताराम (शब्द०)।

मोरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति जो 'चौहान' जाति के अंतर्गत है। उ०—जादौं रु बदेला मल्हवास। मोरी बड़गूजर आइ पास।—पृ० रा०, १।४२४।

मोर्चा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मोरचा**] दे० 'मोरचा'।

मोल—संज्ञा पुं० [सं० **मूल्य**, प्रा० **मुल्ल**] १. वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बेचनेवाले को दिया जाय। कीमत। दाम। मूल्य।

क्रि० प्र०—**करना**।—**चुकाना**।—**ठहरना**।—**देना**।—**लेना**।

यौ०—**अनमोल**।

२. दुकानदार की ओर से वस्तु का मूल्य कुछ बढ़ाकर कहा जाना। जैसे,—मोल मत करो, ठीक ठीक दाम कहो।

यौ०—मोलचाल=(१) अधिक मूल्य। (२) किसी चीज का दाम घटा बढ़ाकर तै करना।

मुहा०—**मोल करना**=(१) किसी पदार्थ का उचित से अधिक मूल्य कहना। (२) मूल्य घटा बढ़ाकर तै करना।

मोलना†—संज्ञा पुं० [अ० **मौलाना**] मौलवी। मुल्ला। उ०—(क) बेद किताब पढ़ैं वे खुतबा वे मोलना वे पाँड़े।—कबीर (शब्द०)। (ख) पंडित बेद पुराण पढ़ैं औ मोलना पढ़ै कोराना।—कबीर (शब्द०)।

मोलवी†—संज्ञा पुं० [अ० **मौलवी**] वह विद्वान् मुसलमान जो अपने धर्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो। मौलवी। उ०—रहे मोलबी साहेब जहँ के अतिसय सज्जन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

मोलसिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मौलसिरी'। उ०—तहँ मोलसिरी सोहैं गँभीर।—ह० रासो, पृ० ६२।

मोलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मोल**+**आई** (प्रत्य०)] १. मोल पूछने या तै करने की क्रिया। मूल्य कहना वा ठीक करना।

मोलाना†—क्रि० स० [हिं० **मोल**] मोलभाव करना। कीमत तै करना। उ०—नंददास पिय प्यारी की छबि पर त्रिभुवन की शोभा वारौं बिनु मोले।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

मोलिया‡—वि० [देश०] मुड़ने या लचकनेवाला। नाजुक। कोमल। निर्बल। मुलायम। उ० मावडिया अंग मोलिया, नाजुक अंग निराट।—बाँकी० ग्रं० भा० २, पृ० १३।

मोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] साँचा।

मोवना¹—क्रि० स० [हिं० **मोयन**] दे० 'मोना'।

मोवनाⓅ†²—क्रि० स० [हिं० **मोड़ना**, **मोरना**] दे० 'मोरना'। उ०—भृकुटी चाप चंचल मुख मोवहि।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६५।

मोशिये—संज्ञा पुं० [फ़्रं० तुल० **मोनशेयर**] [**संक्षिप्त रूप मोन्स**, एम०, तुल० **बँग० मोशाय**] [**हिं० संक्षिप्त रूप मो०**] फ्रांस में नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द। महाशय। साहब। जैसे, मोशिये व्रायंद।

मोप¹—संज्ञा पुं० [सं० **मोक्ष**] दे० 'मोक्ष'।

मोष²—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोरी। २. लूटना। लूट। ३. बध। हत्या। ४. दंड देना।

मोषक—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

मोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लूटना। २. चोरी करना। ३. छोड़ना। ४. बध करना। ५. वह जो चोरी करता या डाका डालता हो।

मोषनाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **मोषण वा मोचण**] समाप्त करना। लूटना। खत्म करना। सोख लेना। सुखाना। उ०—काल अगिनि तीन भवन प्रवानी। उलटंत पवनां मोषंत पानी।—गोरख०, पृ० २४६।

मोषयिता—संज्ञा पुं० [सं० **मोषयितृ**] चोरी करनेवाला। लूट करनेवाला [को०]।

मोषा—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। लूट। डकैती [को०]।

मोसनाⓅ†¹—क्रि० स० [सं० **मोषण**] मारना। नष्ट करना। उ०—मुरगी कौं मोसता है बकरी को रोसता है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४०४।

मोसना†²—क्रि० अ० मसूसना। उ०—सखि अस अद्भुत रूप निहारै। मोसति मन कोसति करतारै।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४।

मोसर‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अवसर'। उ०—अबके मोसर ज्ञान बिचारो, राम राम मुख गाती।—संतवाणी०, भाग २, पृ० ६८।

मोसील†—संज्ञा पुं० [अ० **मुहासिल**, **मुहस्सिल**] वसूल करनेवाला। दे० 'मुहसिल'। उ०—पाँच मोसील मिलि लगे घर घर महै मारि औ पीटि के रोज माँगैं।—पलटू०, भा० २, पृ० ३६।

मोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ का कुछ समझ लेनेवाली बुद्धि। अज्ञान। भ्रम। भ्रांति। उ०—तुलसिदास प्रभु मोह जनित भ्रम भेदबुद्धि कब बिसरावहिंगे।-तुलसी (शब्द०)। २. शरीर और सांसारिक पदार्थों को अपना या सत्य समझने की बुद्धि जो दुःखदायिनी मानी जाती है। ३. प्रेम। मुहब्बत। प्यार। उ०—(क) साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काशीराम कहै रघुवंशिन की रीति यहै जसों कीजै मोह तासों लोह कैसे गहिऐ।—काशीराम (शब्द०)। (ग) मोह सों तजि मोह दृग

चले लागि उहि गैल । —बिहारी (शब्द०) । (घ) रह्यौ मोह मिलनो रह्यौ यौं कहि गहें मरोर । —बिहारी (शब्द०) । ४. साहित्य में ३३ संचारी भावों में से एक भाव । भय, दुःख, घबराहट, अत्यंत चिंता आदि से उत्पन्न चित्त की विकलता । ५. दुःख । कष्ट । ६. मूर्छा । बेहोशी । गश । उ०—गिरयौ हंस भू में भयो मोह भारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

मोहक—वि० [सं०] १. मोह उत्पन्न करनेवाला । जिसके कारण मोह हो । २. मन को आकृष्ट करनेवाला । लुभानेवाला ।

मोहकम—वि० [अ० मुहकम] बड़ा । भारी । उ०—मोहकम मार पड़ी गुरजन की तब कछु ज्वाब न आया ।—मलूक०, पृ० २५ ।

मोहकलिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोह का दृढ़ पाश । माया का जाल । २. मादक पेय । मदिरा (को०) ।

मोहकार—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+कैड़ा या कार (प्रत्य०)] पीतल या ताँबे के घड़े का गला समेत मुहँड़ा । (ठठेरा) ।

मोहठा—संज्ञा पुं० [सं०] दश अक्षरों का वह वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन रगण और एक गुरु होता है । इसे 'बाला' भी कहते हैं । जैसे,—रोरि रंगा दियो कौन बाला । मैं न जानौं कहै नंदलाला । श्याम की मात बोली रिसाई । गोपि कोई करी है ढिठाई ।—छंद०, पृ० १५६ ।

मोहड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह+ड़ा (प्रत्य०)] १. किसी पात्र का मुँह या खुला भाग । २. किसी पदार्थ का अगला या ऊपरी भाग ।

मुहा०—**मोहड़ा लगाना** = अन्न से भरे हुए बोरे दुकान पर रखकर उसका मुँह खोल देना । (अन्न के व्यापारी) । **मोहड़ा मारना** = किसी काम को सबसे पहले कर डालना ।

३. मुँह । मुख ।

मोहड़ा[2]—संज्ञा पुं० दे० 'मोहरा' ।

मोहताज—वि० [अ० मुह्ताज] १. धनहीन । निर्धन । गरीब । २. जिसे किसी बात की अपेक्षा हो । जैसे,—वह आपकी मदद के मोहताज नहीं हैं ।

मोहताजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोहताज+ई (प्रत्य०)] मोहताज होने की क्रिया या भाव । गरीबी ।

मोहन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोह लेनेवाला व्यक्ति । जिसे देखकर जी लुभा जाय । उ०— लखि मोहन जो मन रहै तो मन राखौ मान ।—बिहारी (शब्द०) । २. श्रीकृष्ण । उ०—मोहन तेरे नाम को कढ़ो वा दिना छोर । ब्रजवासिन को मोह कै चलो मधुपुरी ओर ।—रसनिधि (शब्द०) । ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण और एक जगण होता है । जैसे,—जन राजवंत । जग योगवंत । तिनको उदोत । केहिं भाँति होत ।—केशव (शब्द०) । ४. एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी को बेहोश या मूर्छित करते हैं । उ०—मारन मोहन बसकरन उच्चाटन अस्थंभ । आकर्षन सब भाँति के पढ़ै सदा करि दंभ । —(शब्द०) । ५. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे शत्रु मूर्छित किया जाता था । उ०—बर विद्याधर अस्त्र नाम नंदन जो ऐसो । मोहन, स्वापन, समन, सौम्य, कर्षन पुनि तैसो ।—पद्माकर (शब्द) । ६, कोल्हू की कोठी अर्थात् वह स्थान जहाँ दबने के लिये ऊख के गँड़े डाले जाते हैं । इसे 'कुंडी' और 'घगरा' भी कहते हैं । ७. कामदेव के पाँच बाणों में एक बाण का नाम । ८. धतूरे का पौधा । ९. शिव का एक नाम (को०) । १०. विष्णु की नौ शक्तियों में एक शक्ति (को०) । ११. संभोग । रति । मैथुन (को०) । १२. बारह मात्राओं का एक ताल जिसमें सात आघात और पाँच खाली रहते हैं । इसका

\+ १ ० २ ०
मृदंग का बोल यह है—धा धा ता गे तेरे कता
३ ० ४ ५ ० ६ ० +
कता गदि घेने नाग् देत् तेरे केरे । धा ।

मोहन[2]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० मोहिनी] मोह उत्पन्न करनेवाला । उ०—सब भाँति मनोहर मोहन रूप अनूप हैं भूप के बालक द्वै । तुलसी (शब्द०) ।

मोहनक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास [को०] ।

मोहनभोग—संज्ञा पुं० [हिं० मोहन+भोग] १. एक प्रकार का हलुआ । २. एक प्रकार का केला (फल) । ३. एक प्रकार का आम ।

मोहनमाल, मोहनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोने की गुरियों या दानों की बनी हुई माला । उ०—(क) मोहनलाल के मोहन को यह पैन्हति मोहनमाल अकेली ।—देव (शब्द०) । (ख) मोहनमाल बिसाल हिए पर सोहत नील सुपीत पिछौरी । —दीनदयाल गिरि (शब्द०) ।

मोहना[1]—क्रि० अ० [सं० मोहन] १. किसी पर आशिक या अनुरक्त होना । मोहित होना । रीझना । उ०—(क) सुंदर वपु अति श्यामल सोहै । देखत सुर नर को मन मोहै ।—केशव (शब्द०) । (ख) देखत रूप सकल सुर मोहै ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) चारयो दल दूलह चारु बने । मोहे सुर औरन कौन गने । —केशव (शब्द०) । २. मूर्छित होना । बेहोश हो जाना । उ०—अष्टम सर्ग महा समर कुश लव भरतहिं साथ । जुग बंधुन कर मोहिबो भरत नास तिन हाथ ।—शिरमौर (शब्द०) ।

मोहना[2]—क्रि० स० [सं० मोहन] १. अपने ऊपर अनुरक्त करना । मुग्ध करना । मोहित करना । लुभा लेना । उ०—(क) पंडित अति सिगरी पुरी मनहु गिरा गति गूढ़ । सिंह नियुत जनु चंडिका मोहति मूढ़ अमूढ़ ।—केशव (शब्द०) । (ख) बैठे जराय जरे पलका पर रामसिया सबको मन मोहैं ।—केशव (शब्द०) । (ग) अहो भले लतिका तरु सोहैं । कलिन कोंपलन सों मन मोहैं ।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०) । २. भ्रम में डाल देना । संदेह पैदा कर देना । धोखा देना । उ०—(क) तुम आदि मध्य अवसान एक । जग मोहत हो वपु धरि अनेक । —केशव (शब्द०) । (ख) अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ।—तुलसी (शब्द०) ।

मोहना[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तृण । २. एक प्रकार की चमेली ।

मोहनि⑤ —वि० [सं० **मोहनी**] दे० 'मोहिनी'। उ०—(क) मोहनि मूरति श्याम की यौं घट रही समाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जब हरि रंगनि भरे मोहनि मूरति साँवरे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३९५।

मोहनास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र। कहते हैं, इसके प्रभाव से शत्रु मूर्छित हो जाता था।

मोहनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोह की निद्रा। अज्ञान में पड़ा रहना [को०]।

मोहनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोह की निशा। दे० 'मोहरात्रि'।

मोहनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैशाख सुदी एकादशी। २. एक लंबा सूत सा कीड़ा जो हल्दी के खेतों में पाया जाता है। इसे पाकर तांत्रिक लोग वशीकरण यंत्र बनाते हैं। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सगण, भगण, तगण, यगण और सगण होते हैं। दे० 'मोहिनी'-६। ४. भगवान् का वह स्त्री-रूप जो उन्होंने समुद्रमंथन के उपरांत अमृत बाँटते समय धारण किया था। ५. एक प्रकार की मिठाई। ६. वशीकरण का मंत्र। लुभाने का प्रभाव। उ०—(क) जिन निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस सकल नर नारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) निरखि लखन राम जाने रितु पति काम मोहि मानो मदन मोहनी मूँड नाई है।—(शब्द०)।

मुहा०—**मोहनी डालना वा लाना** = ऐसा प्रभाव डालना कि कोई एकदम मोहित हो जाय। माया के वश करना। जादू करना। उ०—नागरि मन गई अरुझाइ। अति विरह तनु भई व्याकुल घर न नेकु सुहाइ। श्याम सुंदर मदनमोहन मोहनी सी लाइ।—सूर (शब्द०)। **मोहनी लगना** = जादू लगने के कारण मोहित होना। मोहित होना। लुभाना। उ०—आजु गई हौं नंदभवन में कहा कहौं ग्रह चैनु री। बोलि लई नव बधू जानि कै खेलत जहाँ कंधाई री। मुख देखत मोहनी सी लागत रूप न बरन्यो जाई री।—सूर (शब्द०)।

७. माया। ८. पोई का साग।

मोहनी[२]—वि० स्त्री० [सं०] मोहित करनेवाली। चित्त को लुभानेवाली। अत्यंत सुंदरी।

मोहनीय—वि० [सं०] मोहित करने के योग्य। मोह लेने के योग्य।

मोहपास—संज्ञा पुं० [सं० **मोहपाश**] मोह का जाल। माया का बंधन।

मोहफिल—संज्ञा स्त्री० [अ० **महफ़िल**] दे० 'महफिल'।

मोहब्बत—संज्ञा स्त्री० [अ० **मुहब्बत**] दे० 'मुहब्बत'। उ०—हमको अपना आप दे, इश्क मोहब्बत दर्द। सेज सुहाग सुख प्रेम रस मिलि खेलैं ला पर्द।—दादू (शब्द०)।

मोहभंग—संज्ञा पुं० [सं० **मोहभंग**] भ्रांतिनिवारण। अज्ञान का नाश होना।

मोहमंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मोह में डालनेवाला मंत्र।

मोहर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. किसी ऐसी वस्तु पर लिखा हुआ नाम, पता या चिह्न आदि जिसे कागज वा कपड़े पर छाप सकें। अक्षर, चिह्न आदि दबाकर अंकित करने का ठप्पा। उ०—इस मोहर की अँगूठी से आपको विश्वास हो जाएगा। (अँगूठी देता है)।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना**।—छापना।—**देना**।—**लगाना**।

२. उपर्युक्त वस्तु की छाप जो कागज वा कपड़े आदि पर ली गई हो। स्याही लगे हुए ठप्पे को दबाने से बने हुए चिह्न या अक्षर। उ०—मोहर में अपना नाम वा चिह्न होता है जिसमें पत्र पर लगी हुई मोहर देखते ही उस पत्र के पढ़ने के प्रथम परिज्ञान हो जाता है कि यह पत्र अमुक का है।—मुरारिदान (शब्द०)। ३. स्वर्णमुद्रा। अशरफी। उ० —(क) करि प्रणाम मोहर बहु दीन्हो। दिओ असीस यतीश न लीन्हों।—रघुराज (शब्द०)। (ख) जो कुजाति नहिं मानै बाता। गगरा खोदि दिखायौ ताता। गाड़े बीच अजिर के माहीं। मोहर भरे नृप मानत नाहीं।—रघुनाथदास (शब्द०)।

मोहरा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० **मुँह + रा** (प्रत्य०)] [स्त्री० **मोहरी**] १. किसी बर्तन का मुँह या खुला भाग। २. किसी पदार्थ का ऊपरी या अगला भाग। ३. एक प्रकार की जाली जो बैल, गाय, भैंस इत्यादि का मुँह कसकर गिराँव के साथ बाँधने के लिये होती है। यह मुँह पर बाँधकर कस दी जाती है, जिससे पशु खाने पीने की चीजों पर मुँह नहीं चला सकता। ४. सेना की अगली पंक्ति जो आक्रमण करने और शत्रु को हटाने के लिये तैयार हो। ५. फौज की चढ़ाई का रुख। सेना की गति। उ०—मही के महीपन को मोरयौ कैसे मोहरा।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—**मोहरा लेना** = (१) सेना का मुकाबला करना। (२) भिड़ जाना। प्रतिद्वंद्विता करना।

६. कोई छेद वा द्वार जिससे कोई वस्तु बाहर निकले। ७. चोली आदि की तनी या बंद। उ०—कंचुकी सूही कसे मोहरा अति फैलि चली तिगुनी परभासी। मानिक के भुजबंद चुरी माठी कंचन कंकन ओप प्रकासी।—गुमान (शब्द०)।

मोहरा[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मोहर**] १. शतरंज की कोई गोटी। २. मिट्टी का साँचा जिसमें कड़ा, पछुआ इत्यादि ढालते हैं। ३. रेशमी वस्त्र घोटने का घोटना जो प्रायः बिल्लौर का बनता है। ४. सिगिया विष। ५. सोने, चाँदी पर नक्काशी करनेवालों का वह औजार जिससे रगड़कर नक्काशी को चमकाते हैं। दुआली। ६. जहरमोहरा। उ०—बड़े भाग से सतगुरु मिलिगे घोरि पियाए जस मोहरा। कहै कबीर सुनो भाइ साधो गया साध नहिं बहुरा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८।

मोहरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है। दैनंदिन प्रलय। २. जन्माष्टमी की रात्रि। भाद्रपद कृष्णा अष्टमी।

मोहराना—संज्ञा पुं० [फ़ा० **मुहर + आना** (प्रत्य०)] वह धन जो

किसी कर्मचारी को मोहर करने के लिये दिया जाय। मोहर करने की उजरत।

मोहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोहरा + ई (प्रत्य०)] १. बरतन आदि का छोटा या खुला भाग। २. पाजामे का वह भाग जिसमें टाँगें रहती हैं। ३. दे० 'मोरी'।

मोहर्रिर—संज्ञा पुं० [अ० मुहर्रिर] वह जो किसी के कागज आदि लिखने का काम करता हो। लेखक। मुंशी।

मोहलत—संज्ञा स्त्री० [अ० मुहलत] १. फुरसत। अवकाश। छुट्टी।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—मिलना।—लेना।

२. किसी काम को पूरा करने के लिये मिला हुआ या निश्चित समय। अवधि। जैसे,—चार दिन की मोहलत और दी जाती है। इस बीच में रुपया इकट्ठा करके दे दो।

मोहल्ला—संज्ञा पुं० [अ० महल्लह्] दे० 'महल्ला'।

मोहबतⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० मुहब्बत] दे० 'मोहब्बत' या 'मोह'। उ०—हंसा आन बैठा तीरे। निश दिन चुगैं मोहबत हीरे।—रामानंद०, पृ० १०।

मोहशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] मोह उत्पन्न करनेवाला शास्त्र या ग्रंथ [को०]।

मोहार†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० मुँह + आर (प्रत्य०)] १. द्वार। दरवाजा। उ०—ठाढ़ि मोहारे धन सुसुकै, मन पछताइल हो।—धरम०, पृ० ६४। २. मुँहड़ा। अगला भाग। उ०—रूप को कूप बखानत हैं कवि कोऊ तलाब सुधा ही के संग को। कोऊ तुफंग मोहार कहै दहला कलपद्रुम भाषत अंग को।—शंभु (शब्द०)।

मोहार[2]—संज्ञा पुं० [सं० मधुकर, प्रा० महुअर] १. मधुमक्खी की एक जाति जो सबसे बड़ी होती है। सारंग। २. मधु का छत्ता। ३. भौंरा। भ्रमर।

मोहारनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० मुँह + सं० पारायण (प्रत्य०)] पाठशाला के बालकों का एक साथ खड़े होकर पहाड़े पढ़ना।

मोहाल—संज्ञा पुं० [अ० महाल] पूरा गाँव वा उसका एक भाग अथवा कई गाँवों का एक समूह जिसका बंदोबस्त किसी नंबरदार के साथ एक बार किया गया हो। व्यवहार में 'मोहाल' पूरा माना जाता है और इसी विचार से उसकी पट्टी वा हिस्सा बनाया जाता है।

मोहाल[2]—संज्ञा पुं० [हिं० मोहार] १. मधुमक्खी की एक जाति। मोहार। २. मधुमक्खी का छत्ता।

मोहाल[3]—वि० [अ० मुहाल] मुश्किल। कठिन। दे० 'मुहाल'। उ०—इतनी मान्यताओं के बाद आदमी का जीना मोहाल हो जाता है।—काले०, पृ० ७०।

मोहावरितⓅ—वि० [सं० मोहावृत] मोह से आच्छादित। उ०—जैसी मोहावरित ब्रज में तामसी रात आई। वैसे ही वे लसित उसमें कौमुदी के समा थी।—प्रिय०, पृ० २६८।

मोहासिब—संज्ञा पुं० [अ० मुहासिबह्] हिसाब किताब। पूछ ताछ। उ०—मोहासिब करि अस्थिर मनुवाँ मूल मंत्र अवराधी।—धरनी० श०, पृ० ४।

मोँहिँⓅ **मौँहिँ**Ⓟ—सर्व० [हिं० मोहिं] दे० 'मोहिं'।

मोहिँ—सर्व० पुं० [सं० मह्यम्, प्रा० मय्ह, मज्झ] ब्रजभाषा और अवधी के उत्तम पुरुष 'मैं' का वह रूप जो पहले सब कारकों में आता था। पर पीछे कर्म और संप्रदान में भी आने लगा। मुझको। मुझे। उ०—(क) मरूँ पर माँगों नहीं अपने तन के काज। परमारथ के कारनै मोहिं न आवै लाज।—सूर (शब्द०)। (ख) नैना कह्यो न मानै मेरो। हारि मानि कै रही मौन ह्वै निकट सुनत नहिं टेरो। ऐसे भए मनो नहिं मेरे जबहि श्याम मुख हेरो। मैं पछताति जबहिं सुधि आवति ज्यो दीन्हों मोहिं डेरो।—सूर (शब्द०)।

मोहित—वि० [सं०] मोह या भ्रम में पड़ा हुआ। मुग्ध। २. मोहा हुआ। आसक्त।

मोहिनी[1]—वि० स्त्री० [सं०] मोहनेवाली।

मोहिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. त्रिपुरमाली नामक फूल। वटपत्रा। बेला। २. विष्णु के एक अवतार का नाम।

विशेष—भागवत के अनुसार विष्णु ने यह अवतार उस समय लिया था, जब देवताओं और दैत्यों ने मिलकर रत्नों को निकालने के लिये समुद्र मथा था और अमृत के निकलने पर दोनों उसके लिये परस्पर झगड़ रहे थे। उस समय भगवान् ने मोहिनी अवतार धारण किया था और उन्हें देखते ही असुर मोहित होकर बोले थे कि अच्छा आओ, हम दोनों दलों के लोग बैठ जाँय और मोहिनी अपने हाथ से हम लोगों को अमृत बाँट दे। दोनो दलों के लोग पंक्ति बाँधकर बैठ गए और मोहिनी रूप विष्णु ने अमृत बाँटने के बहाने से देवताओं को अमृत और असुरों को सुरा पिला दी।

३. माया। जादू। टोना। उ०—देवो ने ऐसी मोहिनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुध नहीं थी।—लल्लू (शब्द०)। ४. वैशाख शुक्ल एकादशी का नाम। ५. एक अप्सरा का नाम (को०)। ६. एक अर्धसम वृत्त का नाम जिसके पहले और तीसरे चरणों में बारह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सात मात्राएँ होती है; और प्रत्येक चरण के अंत में एक सगण अवश्य होता है। उ०—शंभु भक्तजनत्राता भवदुख हरैं। मनवांछित फलदाता मुनि हिय बरैं।—छंद०, पृ० ७६। ७. पंद्रह अक्षरों के वर्णिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सगण, भगण, तगण, यगण, और सगण होते हैं। उ०—शुभ तो ये सखि री आदिहुँ जो चित्त धरी। नर औ नारि पढ़ैं भारत के एक घरी।—छंद०, पृ० २०८।

मोही[1]—वि० [सं० मोहिन्] [वि० स्त्री० मोहिनी] मोहित करनेवाला।

मोही[2]—वि० [हिं० मोह + ई (प्रत्य०)] १. मोह करनेवाला। प्रेम करनेवाला। २. लोभी। लालची। ३. भ्रम या अविद्या में पड़ा हुआ। अज्ञानी।

मोहेला—संज्ञा पुं० [अ० महल] एक प्रकार का चलता गाना।

मोहेली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो हिमालय और सिंध की नदियों में मिलती है।

मोहोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार का नाम जो केशवदास के अनुसार उपमा का एक भेद है; पर और आचार्य जिसे 'भ्रांति' अलंकार कहते हैं। विशेष दे० 'भ्रांति'।

मौंगीⓤ†—वि० स्त्री० [सं० **मौन**] मौन। चुप। उ०—सुनि खग कहत अब मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।—तुलसी (शब्द०)।

मोहौर‡—संज्ञा पुं० [हिं० **मोहर**] स्वर्णमुद्रा। अशरफी। मोहर। उ०—सो एक एक मोहौर और एक एक पाग दै उनको बिदा करे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०६।

मौंज—वि० [सं० **मौञ्ज**] [वि० स्त्री० **मौञ्जी**] मूँज का बना हुआ।

मौंजकायन—संज्ञा पुं० [सं० **मौञ्जकायन**] मुंजक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

मौंजवान—वि० [सं० **मौञ्जवत्**] १. मुंजवान् नामक पर्वत में उत्पन्न। २. मुंजवान नामक पर्वत संबंधी।

मौंजिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **मौञ्जिबन्धन**] यज्ञोपवीत संस्कार। व्रतबंध। जनेऊ।

मौंजी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **मौञ्जी**] मूँज की बनी हुई मेखला।

यौ०—**मौंजिबंधन**।

मौंजी[२]—वि० [सं० **मौञ्जिन्**] १. जो मूँज की मेखला धारण किए हुए हो। जो मूँज की मेखला पहने हो। २. दे० 'मौंजीय'।

मौंजीपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० **मौञ्जीपत्रा**] वल्यजा।

मौंजीय—वि० [सं० **मौञ्जीय**] मूँज का बना हुआ।

मौंड़ाⓤ†[१]—संज्ञा पुं० [सं० **माणवक**] [स्त्री० **मौंड़ी**] लड़का। उ०—(क) मैया बहुत बुरो बलदाऊ। कहन लगे बन बड़ो तमासो सब मौंड़ा मिलि आऊ।—सूर (शब्द०)। (ख) बाट ही गोरस बेचरी आज तू मायके मूंड चढ़ै मति मौंड़ी।—रसखानि। (शब्द०)।

मौंड़ा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **मुह**+ड़ा] दे० 'मोहड़ा'।

मौआसा†—संज्ञा पुं० [सं० **मवास**] दे० 'मवास'। उ०—रैयत एक पाँच ठकुराई, दस दिसि है मौआसा। रजो तमो गुन खरे सिपाही करहिं भवन में बासा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ९८।

मौका—संज्ञा पुं० [अ० **मौक़ा**] १. वह स्थान जहाँ कोई घटना घटित हो। घटनास्थल। वारदात की जगह। उ०—बार्नस साहब ने मौके पर जाकर, अच्छी तरह तहकीकात की।—द्विवेदी (शब्द०)। २. देश। स्थान। जगह। जैसे,—मकान का मौका अच्छा नहीं है। ३. अवसर। समय। उ०—तब से बंबई जाने का हमें मौका ही न आया।—द्विवेदी (शब्द०)।

मुहा०—**मौका देना**=अवकाश देना। समय देना। **मौका देखना या ताकना**=दाँव में रहना। उपयुक्त अवसर की ताक में रहना। **मौका पाना**=(१) अवकाश पाना। फुरसत पाना। (२) उपयुक्त समय या अवसर पाना। **मौका पाना, मौका मिलना, या मौका हाथ लगना**=(१) अवकाश मिलना। समय या अवसर मिलना। (२) घात मिलना। दाँव पाना। **मौके पर**=उपयुक्त अवसर पर। आवश्यकता के समय। **मौके से**=ठीक समय पर। उचित अवसर पर।

मौकुल, मौकुलि—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ।

मौकूफ—वि० [अ० **मौकूफ़**] १. रोका हुआ। बंद किया हुआ। स्थगित किया हुआ। उ०—(क) सरकार ने अब इस सती होने की बुरी रस्म को मौकूफ कर दिया है।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) एक भुनगा पास न पावेगा मौकूफ हुआ जब अन्न औ जल—नजीर (शब्द०)। २. काम करने से रोका गया। नौकरी से अलग किया गया। बरखास्त। उ०—सन् १९१० ई० में बादशाह ने मुसलमान मुगलों को, जो नौकर हो गए थे, यक-कलम मौकूफ कर दिया।—शिवप्रसाद (शब्द०)। ३. रद्द किया गया। ४. अधिष्ठित। मुनहसर। अवलंबित। आश्रित। निर्भर। उ०—(क) दुःख और सुख तबीअत पर मौकूफ है।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) भा सस्ता हो या महँगा नहीं मौकूफ गल्ले पर। य सब खिरमन उसी के हैं खुदा है जिसके पल्ले पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २५।

क्रि० प्र०—**रहना**।—होना।

मौकूफी—संज्ञा [अ० **मौकूफ़**+ई] १. मौकूफ होने की क्रिया या भाव। २. प्रतिबंध। रुकावट। ३. काम से अलग किया जाना। बरखास्तगी।

मौक्तिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

मौक्तिक[२]—वि० मुक्ति के लिये प्रयत्नशील।

मौक्तिकतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० **मौक्तिकतण्डुल**] सफेद मक्का। बड़ी ज्वार।

मौक्तिकदाम—संज्ञा पुं० [सं०] बारह अक्षरों का एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दूसरा, पाँचवाँ, आठवाँ, और ग्यारहवाँ वर्ण गुरु और शेष लघु होते हैं; अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं। उ०—दुख्यो हिय केतिक देखत भूप। करयो तब तापर रोष अनूप। वियोगिनि के उर भेदत रोजु। करै तुमको निज बाण मनोजु।—गुमान (शब्द०)। २. मोतियों की लड़ी।

मौक्तिकप्रसवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ताशुक्ति। सीपी जिसमें से मोती निकलती है [को०]।

मौक्तिकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्यारह अक्षरों की एक वर्णिक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण का पहला, चौथा, पाँचवाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं तथा पाँचवें और छठे वर्ण पर यति होती है। इसे 'अनुकूला' भी कहते हैं। उ०—भीति न गंगा जग तुव दाया। सेवत तोहीं मन बच काया। नासहु बेगी मम भवशूला। हौ तुम माता जग अनुकूला।—छंद०, पृ० १६३।

मौक्तिकावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोती की माला।

मौक्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूकता। मौनता।

मौद्ग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम गान।

मौख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मुख से होनेवाला पाप। जैसे, अभक्ष्य-भोजन और अपशब्दों का उच्चारण आदि।

मौख[2]—वि० १. मुखसंबंधी। २. अलिखित। वाचिक। उक्त [को०]।

मौख[3]—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मसाला। उ०—मौख मुनक्का मृत मुलतानी। मेथी मालवंगनी सानी।—सूदन (शब्द०)।

मौखर—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक या बढ़ बढ़कर बातें करना। मुखरता। मुँहजोरी।

मौखरी—संज्ञा पुं० [सं०] भारत के एक प्राचीन राजवंश का नाम जिसका शासन काल ईसवी पाँचवीं शताब्दी के अंत से लगभग आठवीं शताब्दी तक था।

विशेष—इस वंश का राज्य पूर्व में मगध तक, दक्षिण में मध्य प्रांत और आंध्र तक; उत्तर में नेपाल तक तथा पश्चिम में थानेश्वर और मालवे तक था। इसकी राजधानी कन्नौज थी, परंतु बीच में उसपर बैस वंशी राजा हर्ष ने अधिकार कर लिया था। इस वंश के लोग अपने आप को भद्रराज अश्वपति के वंशज मानते थे। इस वंश के बहुत प्राचीन होने के कई प्रमाण मिले हैं; पर इनका पुराना इतिहास अभी तक नहीं मिला है। हरिवर्मा, ईश्वरवर्मा, शर्ववर्मा, ग्रहवर्मा, यशोवर्मा, आदि इस वंश के प्रसिद्ध राजा थे।

मौखर्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक या बढ़ बढ़कर बोलना। मुखरता। वाचालता। प्रगल्भता।

मौखिक—वि० [सं०] १. मुख संबंधी। मुख का। २. जबानी। जैसे,—आप कुछ देते तो हैं नहीं, केवल मौखिक बातें करते हैं।

मौख्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्यता। श्रेष्ठता। महत्ता। प्राधान्य [को०]।

मौगा†—वि० [सं० **मुग्ध**] [वि० स्त्री० **मौगी**] १. मूर्ख। दुर्बुद्धि। २. जनखा। हिजड़ा। मेहरा।

मौगी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **मौगा**; मि० बंगव मागी (=स्त्री)] स्त्री। औरत।

मौग्ध्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुग्धता [को०]।

मौघ्य—संज्ञा पुं० [सं०] मोघता। व्यर्थता। निरर्थकता [को०]।

मौच—संज्ञा पुं० [सं० तुल० फ़ा० मौज़ (=केला)] केले का फल।

मौज—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लहर। तरंग। हिलोर।

क्रि० प्र०—**आना**।—**उठना**।

मुहा०—**मौज मारना** = लहराना। बहना। जैसे,—दरिया मौजें मार रहा है। **मौज खाना** = लहर मारना। हिलोरा लेना। (लश०)। **लंबी मौज** = दूर तक का बहाव। (लश०)।

२. मन की उमंग। उछंग। जोश। उ०—(क) साहब के दरबार में कमी काहु की नाहिं। बंदा मौज न पावही चूक चाकरी माँहिं।—कबीर। (शब्द०)। (ख) कहा कमी जाके राम धनी। मनसा नाथ मनोरथ पूरण सुख निधान जाकी मौज धनी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—**किसी की मौज आना या किसी का मौज में आना** = उमंग में भरना। अचानक किसी काम के लिये उत्तेजना होना। धुन होना। **मौज उठना** = मन में उमंग उठना। **किसी की मौज पाना** = मरजी जानना। इच्छा से अवगत होना।

३. धुन। ४. सुख। आनंद। मजा। उ०—(क) कबिरा हरि की भक्ति कर तजु बिषया रस चौज। बार बार नहिं पाइए मानुष जनम की मौज।—कबीर (शब्द०)। (ख) सोचु परचो मन राधिका कछु कहन न आवै। कछु हरषै कछु दुख करै मन मौज बढ़ावै।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना**।—**उड़ाना**।—**मारना**।—**मिलना**।—**लेना**।

५. प्रभूति। विभव। विभूति। उ०—रहति न रन जयसाहि मुख लखि लाखन की फौज। जाचि निराखर हू चलै लै लाखन की मौज।—बिहारी (शब्द०)।

मौजा—संज्ञा पुं० [अ० मौज़ा] १. गाँव। ग्राम। २. स्थान। जगह (को०)।

मौजावारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रथा जिसके अनुसार फसल की स्थिति देखकर मालगुजारी निश्चित की जाती थी। उ०—मराठा काल में मौजावारी प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ६।

मौजिब†—संज्ञा पुं० [अ० मूजिब] कारण। रहस्य। सबब। उ०—मौजिब कोई न जान कभी जिसका आज तक।—कबीर मं०, पृ० १६५।

मौजी—वि० [हिं० मौज + ई (प्रत्य०)] १. मनमाना काम करनेवाला। जो जी में आवे, वही करनेवाला। २. सदा प्रसन्न रहनेवाला। आनंदी। ३. मन में कभी कुछ और कभी कुछ विचार करनेवाला।

मौजूँ—वि० [अ० मौजूँ] १. जो किसी स्थान पर ठीक बैठता या मालूम होता है। उपयुक्त। उचित। मुनासिब। २. तुला हुआ। संतुलित। ३. छंद के नियम गण, मात्रा आदि से शुद्ध (पद्य)।

मौजूद—वि० [अ०] १. उपस्थित। हाजिर। विद्यमान। रहता हुआ। उ०—जहाँ हम लोग गए थे, वहाँ शांतिपुर का हमारा नायब गुमाश्ता मौजूद था।—सरस्वती (शब्द०)। २. प्रस्तुत। तैयार। कटिबद्ध। जैसे,—आपका काम करने को मैं मौजूद हूँ।

विशेष—इसका प्रयोग विशेष्य के आदि में इस रूप में नहीं होता; और यदि होता भी है, तो होना क्रिया का रूप लुप्त रहता है। जैसे,—वहाँ पर मौजूद सिपाही ने उसे बहुत रोका।

मुहा०—**मौजूद रहना** = (१) उपस्थित रहना। पास रहना। सामने रहना। (२) ठहरे रहना। जैसे,—मौजूद रहो; अभी उत्तर मिलेगा।

मौजूदगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामने रहने का भाव। उपस्थिति। विद्यमानता।

मौजूदा—वि० [अ० मौजूदह्] वर्तमान काल का। जो इस समय मौजूद हो। प्रस्तुत। उ०—चूँकि उर्दू की एक बेनजीर तारीख (आबे हयात) मुल्क में मौजूद है; लेहाजा किताब का जियादह हिस्सा संस्कृत, हिंदी और मौजूदा हिंदी के जिक्रे खैर से मामूर होगा।—जमाना (शब्द०)।

मौजूदात—संज्ञा स्त्री० [अ० मौजूदा का बहु व०] संसार की सभी चीजें। सृष्टि। चराचर जगत्।

मौठ⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० मकुष्ठ, प्रा० मउट्ठ] दे० 'मोठ'। उ०—बहु गोधूम चनक तंदुल अति। राहर ज्वार मसूर लेहु रति। मूँग मौठ बटुरा बहु ल्यावहु। राजमाष अरु माष मँगावहु।—प० रासो, पृ० १७।

मौडा⑤—संज्ञा पुं० [सं० माणवक] दे० 'मौडा'।

मौत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मरने का भाव। मरण। मृत्यु। विशेष दे० 'मृत्यु'। उ०—अरे कंस! जिसे तू पहुँचाने चला है, तिसका आठवाँ लड़का तेरा काल उपजेगा। उसके हाथ तेरी मौत है।—लल्लू (शब्द०)। २. वह देवता जो मनुष्यों या प्राणियों के प्राण निकालता है। मृत्यु। उ०—बिरह तेज तन में तपै अंग सबै अकुलाय। घट सूना जिव पीव में, मौति ढूँढ़ि फिर जाय।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—**मौत आना** = मरने को होना। **मौत का पसीना आना** = आसन्नमरण होना। मरने के लक्षण दिखाई देना। **मौत का सिर पर खेलना** = (१) मरने को होना। मरने पर होना। (२) दुर्दिन आने को होना। आपत्ति काल समीप होना। (३) प्राण जाने का भय होना। जान जोखों होना। **मौत का तमाचा** = मृत्यु का स्मरण दिलानेवाला कार्य या घटना। **अपनी मौत मरना** = स्वाभाविक ढंग से मरना। प्राकृतिक नियम के अनुसार मरना। **मौत बुलाना** = ऐसा काम करना जिससे मौत निश्चित हो।

३. मरने का समय। काल। मौत की घड़ी। मृत्युकाल।

मुहा०—**मौत माँगना** = कष्ट, कठिनाइयों से ऊबकर मौत मनाना। **मौत के दिन पूरे होना** = किसी प्रकार आयु बिताना। कठिनता से कालक्षेप करना। ऐसे दुःख में दिन बिताना जिसमें बहुत दिन जीना असंभव हो

४. अत्यंत कष्ट। आपत्ति। जैसे,—वहाँ जाना तो हमारे लिये मौत है।

मौताज†—संज्ञा पुं० [अ० मुहताज] दे० 'मुहताज'। उ०—जभी दाने दाने को मौताज हो।—गोदान, पृ० १८३।

मौताद—संज्ञा स्त्री० [अ०] मात्रा। उ०—चंग जो होता वैद की दिए दवा मौताद। क्यों नहिं सिर के दरद में सिर देता फिरहाद।—रसनिधि (शब्द०)।

मौती⑤†—संज्ञा पुं० [सं० मौक्तिक] दे० 'मोती'। उ०—नासिका कौ मौती देखि उड़गन सकुचाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७०।

मौदक—वि० [सं०] १. मिठाई संबंधी। २. (भाव) मिठाई के क्रय विक्रय का ? [को०]।

मौदकिक—संज्ञा पुं० [सं०] हलवाई [को०]।

मौद्गल—संज्ञा पुं० [सं०] मुद्गल ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष। मौद्गल्य।

मौद्गलि—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ [को०]।

मौद्गल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुद्गल ऋषि के पुत्र का नाम। ये एक गोत्रकार ऋषि थे। २. मुद्गल ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

मौद्गल्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का नाम।

मौद्गीन—संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें मूँग उत्पन्न होता हो।

मौन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. न बोलने की क्रिया या भाव। चुप रहना। चुप्पी। उ०—संपति अरु बिपति को मिलि चलैं प्रभु तहाँ जहाँ नहिं होइ सुमिरन तिहारो। करत दंडवत मैं तुमहिं करुणाकरन कृपा करि ओर मेरे निहारो। सुनत यह बचन हरि करयो अब मौन करि कृपा तोहिं पर बीर धारी। संपति अरु विपति को भय न होइहै तिसैं सुनैं जो यह कथा चित्त धारी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।

मुहा०—**मौन गहना या ग्रहण करना** = चुप रहना। चुप्पी साधना। न बोलना। उ०—(क) देखत ही जेहि मौन गही अरु मौन तजे कटु बोल उचारे।—केशव (शब्द०)। (ख) मौन गहौं मन मारि रहौं निज पीतम की कहौं कौन कहानी।—व्यंग्यार्थ (शब्द०)। **मौन खोलना** = चुप रहने के उपरांत बोलना। उ०—खिनक मौन बाँध खिन खोला। गहेसि जीभ मुख जाइ न बोला।—जायसी (शब्द०)। **मौन तजना** = चुप्पी छोड़ना। बोलने लगना। उ०—देखत ही जेहिं मौन गही अरु मौन तजे कटु बोल उचारे।—केशव (शब्द०)। **मौन धरना या धारण करना** = न बोलना। चुप होना। मौन होना। उ०—जँह बैठी वृषभानु नंदिनी तँह आए धारे मौन। पड़े पायँ हरि चरण परसि कर छिन अपराव सलौन।—सूर (शब्द०)। **मौन बाँधना** = चुप्पी साधना। चुप हो जाना। उ०—जो बोले सो मानिक मूँगा। नाहिं तो मौन बाँधु होइ गूँगा।—जायसी (शब्द०)। **मौन लेना या साधना** = मौन धारण करना। चुप होना। न बोलना। उ०—जिय में न क्रोध करु जाहि अब केहू ठौर नगर जरावे जिन साध्यो हम मौन हैं।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। **मौन संभारना** = मौन साधना। चुप होना।

२. मुनियों का व्रत। मुनिव्रत। ३. फागुन महीने का पहला पक्ष। ४. उदासीनता। खिन्नता। अप्रफुल्लता (को०)।

मौन[2]—वि० [सं० मौनी] जो न बोले। चुप। मौनी। उ०—(क) हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नहिं त मौन रहब दिन राती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इतनी सुनत नैन भरि आए प्रेम नंद के लालहि। सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहि।—सूर (शब्द०)।

मौन⑤‡[3]—संज्ञा पुं० [सं० मौण] १. बरतन। पात्र। उ०—काढ़ो कोरे कोपर हो अरु काढ़ो घी को मौन। जाति पाँति पहिराय कै सब समदि छतीसो पौन।—सूर (शब्द०)। २. डब्बा। उ०—मानहुँ रतन मौन दुइ मूँदे।—जायसी (शब्द०)। ३. मूँज आदि का बना टोकरा या पिटारा।

मौनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मौन होने या रहने का भाव। चुप होना। चुप्पी।

मौनभंग—संज्ञा पुं० [सं० मौनभङ्ग] मौन तोड़ना। चुप्पी त्याग कर बोलना।

मौनमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुप्पी। मौन भाव [को०]।

मौनव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] मौन धारण करने का व्रत। चुप रहने का व्रत।

मौना—संज्ञा पुं० [सं० मौण] [स्त्री० अल्पा० मौनी] १. घी या तेल आदि रखने का एक विशेष प्रकार का बरतन। २. काँस और मूँजे से बुनकर बनाया हुआ टोकरा जिसमें अन्न आदि रखा जाता है। ३. सींक या काँस और मूँज का तंग मुँह का ढक्कनदार टोकरा। पिटारी। ४. मधुमक्खी। उ०—जाड़े से हड्डी बजती, सरकार हुआ बूढा तन। मौना के छत्ते करते फूटे कानों में भन भन।—ग्रतिमा, पृ० १६।

मौनी[1]—वि० [सं० मौनिन्] चुप रहनेवाला। न बोलनेवाला। मौन धारण करनेवाला।

मौनी[2]—संज्ञा पुं० मुनि। वनवासी। तपस्वी।

मौनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० मौना] कटोरे के आकार की टोकरी जो प्रायः काँस और मूँज से बुनकर बनाई जाती है।

मौनी अमावस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ की अमावस्या।

मौनेय—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों और अप्सराओं आदि का एक मातृक गोत्र।

विशेष—इन जातियों में माता का गोत्र प्रधान होता है; क्योंकि इनके पिता अनिश्चित होते हैं।

मौर[1]—संज्ञा पुं० [सं० मुकुट, पा० मउड़] [स्त्री० अल्पा० मौरी] १. एक प्रकार का शिरोभूषण जो ताड़पत्र या खुखड़ी आदि का बनाया जाता है। विवाह में वर इसे अपने सिर पर पहनता है। उ०—(क) अवधू बोत तुरावल राता। नाचै बाजन बाज बराता। मौर के माथे दूलह दीन्हों, अकथा जोरि कहाता। मड़ये के चारन समधो दीन्हों पुत्र बिआहल माता।—कबीर (शब्द०)। (ख) सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुतामनि गाथे।—तुलसी (शब्द०)। (ग) रामचंद्र सीता सहित शोभत हैं तेहि ठौर। सुवरणमय मणिमय खचित शुभ सुंदर सिर मौर।—केशव (शब्द०)।

मुहा०—**मौर बाँधना** = विवाह के समय सिर पर मौर पहनना। उ०—पाँवरि तजहु देहु पग, पैरन बाँक तुखार। बाँध मौर औ छत्र सिर बेगि होहु असवार।—जायसी (शब्द०)।

२. शिरोमणि। प्रधान। सरदार। उ०—(क) जो तुम राजा आप कहावत वृंदाबन की ठौर। लूट लूट दधि खात सबन को सब चोरन के मौर।—सूर (शब्द०)। (ख) साधू मेरे सब बड़े अपनी अपनी ठौर। शब्द बिबेकी पारखी वह माथे का मौर।—कबीर (शब्द०)।

मौर[2]—संज्ञा पुं० [सं० मुकुल, प्रा० मउल] छोटे छोटे फूलों या कलियों से गुथी हुई लंबी लंबी लटोंवाला घौद। मंजरी। बौर। जैसे,—आम का मौर। पयार का मौर। अशोक का मौर। उ०—(क) नंद महर घर के पिछवाड़े राधा आइ बतानी हो। मनों अंब दल मौर देखि कै कुहकि कोकिला बानी हो।—सूर (शब्द०)। (ख) चलत सुन्यो परदेश को हियरो रह्यो न ठौर। लै मालिन मीतहिं दियो नव रसाल को मौर।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—**मौर बँधना**=मौर निकलना। मंजरी लगना।

मौर[3]—संज्ञा पुं० [सं० मौलि (=सिर)] गरदन का पिछला भाग जो सिर के नीचे पड़ता है। गरदन। उ०—(क) भौंह उँचै आँचरु उलटि मौर मोरि मुँह मोरि।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मोर उँचै घूटेन नै नारि सरोवर न्हाइ।—बिहारी (शब्द०)।

मौरजिक—संज्ञा पुं० [सं०] मुरज निर्माण करनेवाला शिल्पी। मुरज वाद्य बनानेवाला।

मौरना—क्रि० स० [हिं० मौर+ना (प्रत्य०)] वृक्षों पर मंजरी लगना। आम आदि के पेड़ों पर बौर लगना। उ०—(क) काटे आँब न मौरिया फाटे जुरे न कान। गोरख पद परसे बिना कहौ कौन की सान।—कबीर (शब्द०)। (ख) शिशिर होत पतझार, आँब कटाहर एक से। राह बसंत निहार, जग जाने मौरत प्रगट।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। (ग) बिलोके तहाँ आँब के साखि मौरे। चहूँधा भ्रमैं हुंकरैं भौंर बौरे। लगे पौन के झोंक डारैं झुकावैं। बिचारे वियोगीन को ज्यों डरावैं।—गुमान (शब्द०)।

मौरसिरी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० मौलि+श्री] दे० 'मौलसिरी'। उ०—(क) जुही नसत तासों कहूँ प्रीति निबारी जाय। मौरसिरी दिन दिन चढ़ै सदा सुहागि लताहि।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) मौरसिरी ही को पैन्हि कै हार भई सब के सिर मौर सिरी तू।—देव (शब्द०)।

मौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मौर+ई (प्रत्य०)] १. छोटा मौर जो विवाह में बधू के सिर बाँधा जाता है। उ०—मौर लसै उत मौरी इतै उपमा इकहू नहिं जातु लही है। केसरी बागो बनो दोउ के इत चंद्रिका चारु उतै कुलही है।—भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० ७७७।

मौरूसी—वि० [अ०] बाप दादा के समय से चला आया हुआ। पैतृक। जैसे,—यह बीमारी तो उनके खानदान में मौरूसी है।

यौ०—**मौरूसी काश्तकार** = वह काश्तकार जिसकी काश्त पर उसके उत्तराधिकारी को भी वही हक प्राप्त हो। **मौरूसी जायदाद** = पैतृक परंपरा से प्राप्त जमीन। जैसे,—यह मौरूसी जायदाद है; इसमें सब का हक है।

मौर्ख्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्खता । बेवकूफी ।

मौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों के एक वंश का नाम ।

विशेष—सम्राट् चंद्रगुप्त और अशोक इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। पुराणों में मौर्यों को वर्णसंकर लिखा है और मौर्य वंश का मूलपुरुष 'चंद्रगुप्त' माना गया है। पुराणों के अनुसार चंद्रगुप्त का जन्म मुरा नामक शूद्रा से हुआ था और वह चाणक्य की सहायता से नंदों का नाश कर पाटलिपुत्र का सम्राट् हुआ था। (विशेष दे० चंद्रगुप्त।) पर बौद्ध ग्रंथों में 'चंद्रगुप्त' को 'मोरिय' वंश का लिखा है और उसे शुद्ध क्षत्रिय माना है। मौर्य वंश के शुद्ध क्षत्रिय होने की पुष्टि दिव्यावदान में अशोक के मुँह से कहलाए हुए 'देव अहं क्षत्रियः कथं पलांडुं परिभक्षयामि' से भी होता है, जिसमें अशोक कहता है—'देव, मैं क्षत्रिय हूँ; मैं प्याज कैसे खाऊँ।' 'मुरा' शब्द में 'ण्य' प्रत्यय लगाने से मौर्य' शब्द बहुत खींच खाँच से बनता है; पर पालि भाषा में 'मोरिया' शब्द आया है, जिसकी सिद्धि पालि व्याकरण के अनुसार 'मोर' शब्द से, जो 'मयूर' का पालि रूप है, की गई है। यह समझकर जैनियों ने चंद्रगुप्त की माता को नंद के मयूर-पालकों के सरदार की कन्या लिखा है। बुद्धघोष के विनयपिटक की अत्मकथा की टीका और महावंश की टीका में चंद्रगुप्त को मोरिय नगर के राजा की रानी का पुत्र लिखा है। यह मोरिय नगर हिंदूकुश और चित्राल के मध्य उज्जानक (सं० उद्यान) देश में था।

महापरिनिर्वाण सूत्र में लिखा है कि जिस समय महात्मा गौतम बुद्ध का कुशीनगर में निर्वाण हुआ था और मल्लराज ने उनकी अंत्येष्टि के अनंतर उनके भस्म और अस्थि को कुशीनगर में चैत्य बनाकर प्रतिष्ठित करना चाहा था, उस समय कपिलवस्तु, राजगृह आदि के राजाओं ने महात्मा बुद्धदेव के धातु को बाँटकर अपने अपने भाग को अपने अपने देश में चैत्य बनाकर रखने के उद्देश्य से कुशीनगर पर चढ़ाई की थी, जिससे महान् उपद्रव की संभावना देख महात्मा द्रोण ने महात्मा बुद्धदेव के धातु को विभक्त कर प्रत्येक को कुछ कुछ भाग देकर झगड़ा शांत किया था। उन राजाओं में, जिन्हें महात्मा बुद्धदेव की चिता के भस्म का भाग दिया गया था, पिप्पलीकानन के मोरिया राजा का भी उल्लेख महापरिनिर्वाण सूत्र में है। इससे विदित होता है कि महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल में पिप्पलीकानन में मोरिय क्षत्रियों का निवास था। इससे मोरिय राजवंश की सत्ता का पता चंद्रगुप्त से बहुत पहले तक चलता है। ये मोरिय लोग शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि वंश के क्षत्रियों के संबधी थे। जान पड़ता है, ये लोग काबुल के प्रदेशों के रहनेवाले क्षत्रिय थे; और जब पारसी आर्यों ने भारतीय आर्यों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया, तब ये लोग भागकर नेपाल की तराई में चले आए और वहाँ के लोगों को अपने अधिकार में करके इन्होंने छोटे छोटे अनेक राज्य स्थापित किए। इनके आचार आदि पर पारसी आर्यों और मध्य एशिया की अन्य जातियों का प्रभाव पड़ा था; इसलिये मनु जी ने उन्हें व्रात्य क्षत्रिय लिखा है।—

झल्लोमल्लश्च राजन्याद् व्रात्यात्लिच्छिविरेवच ।
नटश्चकरणश्चैव खसोद्रविड एव च ।

संभव है, बौद्ध हो जाने के कारण ही संस्कारच्युत होने पर इन जातियों को व्रात्यज लिखा गया हो; और इसीलिये पुराणों में चंद्रगुप्त मौर्य के वंश के लिये भी 'वृषल' या वर्णसंकर लिखा गया हो। महावंश के टीकाकार और दिव्यावदान के टीकाकारों का कथन है कि चंद्रगुप्त मोरिय नगर के राजा का पुत्र था। जब मोरिय के राजा का ध्वंस हुआ, तब उसकी गर्भवती रानी अपने भाई के साथ बड़ी कठिनता से भागकर पुष्पपुर चली आई और वहीं चंद्रगुप्त का जन्म हुआ। यह चंद्रगुप्त गौएँ चराया करता था। इसे होनहार देख चाणक्य-जी अपने आश्रम पर लाए और उपनयन कर अपने साथ तक्षशिला ले गए। जब सिकंदर ने पंजाब पर आक्रमण किया, तब तक्षशिला के ध्वंस होने पर चंद्रगुप्त आचार्य चाणक्य के साथ सिकंदर के शिविर में था। बील साहब का कथन है कि मोरिय नगर उज्जानक प्रदेश में था, जो हिंदूकुश और चित्राल के मध्य में था।

इन सब बातों को देखते हुए जान पड़ता है, जिस प्रकार निस्विश से लिच्छवि, शक से शाक्य आदि राजवंशों के नाम पड़े, उसी प्रकार मोरिय नगर के प्रथम अधिवासी होने के कारण मौर्य राजवंश का भी नाम रखा गया; और आचार व्यवहार की विभिन्नता से पुराणों में उसे 'वृषल' आदि लिखा गया। पारस की सीमा पर रहने के कारण उनके आचार व्यवहार और रहन सहन पर पारसियों का प्रभाव पड़ा था; और चंद्रगुप्त तथा अशोक के समय के गृहों और राजप्रासादों का भी निर्माण पारस के भवनों के ढंग पर ही किया गया था। चंद्रगुप्त के अनंतर अशोक मौर्य वंश का सबसे प्रसिद्ध सम्राट् हुआ। मौर्य साम्राज्य का ध्वंस शुंगों ने किया। पर विक्रम की आठवीं शताब्दी तक इधर उधर मौर्यों के छोटे छोटे राज्यों का पता लगता है। ऐसा प्रसिद्ध है, और जैन ग्रंथों में भी लिखा है कि चित्तौड़ का गढ़ मौर्य या मोरी राजा चित्रांग ने बनवाया था।

मौर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की प्रत्यंचा। कमान की डोरी। ज्या। २. मूर्वा घास की बनी मेखला जिसे क्षत्रियों को धारण करने का विधान है [को०]।

मौल[1]—वि० [सं०] १. मूल से संबंध रखनेवाला। २. मौरूसी। पैतृक। ३. परंपरागत। परंपराप्राप्त (को०)।

मौल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल के एक प्रकार के मंत्री। २. बड़ा जमींदार। तालुकेदार। भूस्वामी।

विशेष मनु ने लिखा है कि ग्राम के सीमा संबंधी विवाद को सामंत और यदि सामंत न हों तो मौल निपटावे।

मौलबल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े जमींदारों की अथवा उनके द्वारा एकत्र की हुई सेना।

मौलवी—संज्ञा पुं० [अ०] १. अरबी भाषा का पंडित। २. मुसल-

मान धर्म का आचार्य, जो अरबी, फारसी आदि भाषाओं का ज्ञाता हो। ३. धर्मनिष्ठ मुसलमान।

मौलवीगिरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मौलवी + गिरी] मौलवी का काम। अध्यापन [को०]।

मौलसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मौलि + श्री] एक प्रकार का बड़ा सदाबहार पेड़। उ०—पहिरत ही गोरे गरे यों दौरी दुति लाल। मनौ परसि पुलकित भई मौलसिरी की माल।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष इसकी लकड़ी अंदर से लाल और चिकनी होती है जिससे मेज, कुर्सी आदि बनाई जाती है। यह दरवाजे और सँगहे बनाने के भी काम आती है। इसके फूल मुकुट के आकार के, तारे की भाँति छोटे छोटे होते हैं और उनसे इत्र बनाया जाता है। इसके फल पकने पर खाने योग्य होते हैं और बीजों से तेल निकलता है। इसकी छाल ओषधियों में काम आती है। इसका पेड़ बीजों से उत्पन्न होता है और सब देशों में लगाया जा सकता है। पश्चिमी घाट और कनारा में यह जंगलों में स्वच्छंद रूप से उगता है। यह पेड़ बहुत दिनों में बढ़ता है। यह बरसात में फूलता और शरद् ऋतु में फलता है। इसके फूल सफेद, कटावदार और छोटे छोटे बहुत ही कोमल और मीठी सुगंधवाले होते हैं।

पर्या०—बकुल। केसर। सीधगंध। मुकुल। मधुपुष्प। सुरभि। शारदिक। करक। चिरपुष्प।

मौला[1]—संज्ञा पुं० [देश०] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ एक बालिश्त तक लंबी होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें आध इंच लंबे फूल लगते हैं। इसके तने से एक प्रकार का लाल रंग का गोंद निकलता है। यह बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे बहुत हानि पहुँचाती है। मूला। मल्हा बेल।

मौला[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १. स्वामी। मालिक। २. ईश्वर। परमेश्वर। ३. दासता से मुक्त दास [को०]।

मौलाना—संज्ञा पुं० [अ० मौलाना] १. अरबी भाषा का बहुत बड़ा विद्वान्। २. बड़ा मौलवी। २. विद्वान्।

मौलि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का सबसे ऊँचा भाग। चोटी। सिरा। चूड़ा। २. मस्तक। सिर। ३. किरीट। ४. जूड़ा। जटाजूट। ५. अशोक का पेड़। ६. मुख्य वा प्रधान व्यक्ति। सरदार।

मौलि[2]—संज्ञा स्त्री० पृथिवी। भूमि। जमीन।

यौ०—**मौलिपृष्ठ** = मुकुट। **मौलिबंध** = मुकुट। राजमुकुट। किरीट। **मौलिमणि** = मुकुट में जड़ा हुआ रत्न। श्रेष्ठ मणि। शिरोमणि। **मौलिमुकुट** = मुकुट। **मौलिरत्न** = दे० 'मौलिमणि'।

मौलिक—वि० [सं०] १. मूल संबंधी। २. मुख्य। प्रधान। ३. जो किसी की छाया, या अनुवाद न हो। ४. छोटा। निम्न (को०)।

मौलिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मौलिक होने का भाव [को०]।

मौलिमनि(पु)—वि० [सं० मौलिमणि] शिरोमणि। प्रधान। उ०—मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ८३।

मौली[1]—वि० [सं० मौलिन्] जिसके सिर पर मौलि या मुकुट हो। मुकुटधारी।

मौली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मौलि'।

मौलूद—संज्ञा पुं० [अ०] १. नवजात शिशु। जन्म प्राप्त शिशु। २. मुहम्मद साहब के जन्म का उत्सव। उ०—काशी में व्यास गद्दी सी लगाकर मौलूद की कथा की भाँति।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६५।

यौ०—**मौलूदख्वाँ** = मौलूद की कथा कहनेवाला। **मौलूद-शरीफ** = ( ) मुहम्मद साहब की जन्मकथा। (२) वह मजलिस जिसमें मुहम्मद साहब की जन्मकथा कही जाय।

मौलेयक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न या हीरा (कौटि०)।

मौल्य—संज्ञा सं० [सं०] मूल्य।

मौषल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के एक पर्व का नाम।

मौषल[2]—वि० [सं०] १. मुषल संबंधी। २. मूसल के आकार का।

मौषिकपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक आचार्य का नाम।

मौष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घूँसे की मार। घूँसाघूँसी। मुक्कामुक्की।

मौष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोरी। ठगी। २. चोर। ठग। बटमार। धूर्त।

मौसम—संज्ञा पुं० [अ० मौसिम] दे० 'मौसिम'।

मौसर(पु)†—वि० [अ० मुयस्सर (= प्राप्त)] १. जो सुगमता से मिल सके। सुप्राप्य।

मुहा०—**मौसर आना** = मिल सकना। उ०—समय की चूक हूक सालति प्रबीनन को मौसर न आवै बनै औसर जबाब को।—बलबीर (शब्द०)।

२. उपलब्ध। प्राप्त। उ०—(क) औसर के मौसर भए मत दे करतें खोइ। जोबन औसर भावतो बार बार नहिं होइ।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) बार बार नहिं होत है औसर मौसर बार। सौ सिर देबै को अरे जौ फिर हूजै त्यार।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**आना**।—**करना**।—**होना**।

मौसल—वि० [सं०] मूसल संबंधी। मूसल का।

मौसली‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० मौलसिरी] दे० 'मौलसिरी'।

मौसा—संज्ञा पुं० [हिं० मौसी का पुं०] [स्त्री० मौसी] माता की बहन का पति। मौसिया या माँसी का पति।

मौसिम—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० मौसिमी] १. उपयुक्त समय। अनुकूल काल। २. ऋतु।

मौसिमी—वि० [अ०] १. समयोपयोगी। काल के अनुकूल। २. ऋतु संबंधी। ऋतु का। जैसे, मौसिमी फल, मौसिमी मिठाई।

मौसिमी बुखार—संज्ञा पुं० [अ० मौसिमी + फा० बुखार] चैत या भादों कुआर में होनेवाला ज्वर।

मौसिया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० मौसा+इया] दे० 'मौसा'।

मौसिया[२]—वि० संबंध में मौसी या मौसा के स्थान का। मौसी के द्वारा संबंध रखनेवाला। जैसे, मौसिया सास, मौसिया ससुर। दे० 'मौसेरा'। जैसे, चोर चोर मौसिया भाई। (कहावत)।

मौसियाउत—वि० [हिं० मौसी+आउत (प्रत्य०)] मौसेरा।

मौसियायत†—वि० [हिं० मौसी] दे० 'मौसियाउत'।

मौसी—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृष्वसा, प्रा० माउस्सिमा] [वि० मौसेरा, मौसियाउत] माता की बहिन। मासी। उ०—मातु मौसी बहिन हूँ तें सासु तें अधिकाइ। करहि तापस तीय तनया सीय हित चित लाइ।—तुलसी (शब्द०)।

मौसूफ़—वि० [अ० मौसूफ़] [स्त्री० मौसूफ़ा] १. जिसकी प्रशंसा की जाय। प्रशंसित। २. पूर्वोक्त। जिसका जिक्र चल रहा हो। ३. जिस शब्द के साथ कोई विशेषण हो। विशेष्य [को०]।

मौसूम—वि० [अ०] [वि० मौसूमह्] नाम रखा हुआ। हुआ। नामधारी।

मौसूल—वि० [अ०] [वि० स्त्री० मौसूलह्] प्राप्त। लब्ध। हासिल।

मौसेरा—वि० [हिं० मौसी+एरा (प्रत्य०)] मौसी के द्वारा संबद्ध। मौसी के संबंध का। जैसे, मौसेरा भाई, मौसेरी बहन, मौसेरा ससुर, मौसेरी सास, इत्यादि। उ०—जब देवसरूप बैठ गए, उनके मौसेरे ससुर नंदकुमार अपनी ठौर से उठे और देखकर कहने लगे।—अधखिला फूल (शब्द०)।

मौहर†—संज्ञा पुं० [सं० मधुकर, प्रा० महुअर] दे० 'महुअर'। उ०—जलतरंग मुरली किंकिन मौहर उपंग मंडल स्वर तितिन।—कबीर सा०, पृ० २४९।

मौहरु†—संज्ञा पुं० [सं० मुकुट] मुकुट। मौर। उ०—रघबर की निकरौसी कीनीं मौहरु राँम पै बँधवाँमें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३६।

मौहूर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] मुहूर्त बतलानेवाला। ज्योतिषी।

मौहूर्तिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुहूर्त बतलानेवाला। ज्योतिषी। २. दक्ष की मुहूर्ता नामक कन्या से उत्पन्न एक देवगण।

मौहूर्तिक[२]—वि० मुहूर्त से उत्पन्न। मुहूर्तोद्भव।

म्नात—वि० [सं०] जिसे दो बार किया गया हो। १. दुहराया हुआ। २. पढ़ा हुआ। सीखा हुआ [को०]।

म्यंतⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० मित्र] दे० 'मीत'। उ०—काल सहाणौं यौं खड़ा, जागि पियारे म्यंत। रांम सनेही बाहिरा तूं क्यूं सोवै नच्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

म्याउँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'म्याँव'।

मुहा०—**म्याऊँ म्याऊँ करना**='म्यावँ म्यावँ करना'। उ०—बिल्ली अपना, हिस्सा या तो म्याउँ म्याउँ करके माँगती है या चोरी से ले जाती है।—रस०, पृ० ११२।

म्याँवँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बिल्ली की बोली।

मुहा०—**म्याँवँ म्याँवँ करना**=भयभीत होकर धीमी आवाज में बोलना। डर के मारे बोल बंद हो जाना।

म्यान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मियान] १. कोष जिसमें तलवार, कटार आदि के फल रखे जाते हैं। तलवार, कटार आदि का फल रखने का स्थान। उ०—चाखा चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान। दोय खंग इक म्यान में देखा सुना न कान।—कबीर (शब्द०)। (ख) जब माल इकट्ठा करते थे, अब तन का अपने ढेर करो। गढ़ टूटा लश्कर भाग चुका अब म्यान में तुम शमसेर करो।—नजीर (शब्द०)। २. अन्नमय कोश। शरीर। उ०—(क) कबिरा सूता क्या करै, उठि न भजै भगवान। जम धरि जब ले जायँगे पड़ा रहैगा म्यान।—कबीर (शब्द०)। (ख) चंचल मनुवाँ चेत रे सोवै कहा अजान। जब धर जब ले जायगा पड़ा रहेगा म्यान।—कबीर (शब्द०)।

म्यानाⓅ—क्रि० स० [हिं० म्यान] म्यान में डालना। म्यान में रखना। उ०—(क) अस कहि अपनी काढ़ि कृपानी। म्यान्यौ ताहि विशेषि बखानी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) तासु तेजु सहि सक्यो न राना। खड्ग तुरंत म्यान महँ म्याना।—रघुराज (शब्द०)।

म्याना[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० मियानह्] दे० 'मियाना'।

म्याना[३]—वि० मध्य का। बीच का। मझोला।

म्यानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मियानी] पाजामे की काट में एक टुकड़े का नाम जो दोनों पल्लों को जोड़ते समय रानों के बीच में जोड़ा जाता है।

म्युजियम—संज्ञा पुं० [अ० म्युज़ियम] वह स्थान जहाँ देश तथा विदेश के अनेक प्रकार के अद्भुत और विलक्षण पदार्थ संगृहीत हों। अद्भुत पदार्थों का संग्रहालय। अजायबघर।

म्युनिसिपल—वि० [अं०] नगरपालिका या म्युनिसिपैल्टी संबंधी। उ०—१५० रुपये सालाना आय पर म्युनिसिपल टैक्स देनेवाले व्यक्ति।—भारतीय०, पृ० २०।

म्युनिसिपैलिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'म्युनिसिपैल्टी' उ०—म्युनिसिपैलिटी के कार्य निर्वाह का बोझ एक आदमी के सिर नहीं है उसमें बहुत से मेंबर होते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २२०।

म्युनिसिपैल्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी नगर के नागरिकों की वह प्रतिनिधि सभा जिसे उस नगर के स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा अन्यान्य आंतरिक प्रबंधों का स्वतंत्र रूप से नियमानुसार अधिकार हो।

विशेष—प्रायः सभी बड़े नगरों में वहाँ की सफाई, रोशनी, सड़कों और मकानों आदि की व्यवस्था तथा इसी प्रकार के और अनेक कार्यों के लिये म्युनिसिपैलिटी का संघटन होता है। इसके सदस्यों का चुनाव प्रायः प्रति तीसरे वर्ष कुछ विशिष्ट योग्यतावाले नागरिकों के द्वारा हुआ करता है।

म्यों—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बिल्ली की बोली।

मुहा०—**म्यों म्यों करना** = दे० 'म्याँवँ म्याँवँ करना'। उ०—मेरी देह छुटत जम पठए जितक दूत घर मों। लै लै सब हथियार आपुने सान धराए त्यों। तिनके दारुन दरस देखि कै पतित करत म्यों म्यों।—सूर (शब्द०)। दे० 'म्याँव'।

म्योंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गुण्डी] एक सदाबहार झाड़ का नाम। सिंदुवार। निर्गुंडी।

विशेष—इस झाड़ में केसरिया रंग के छोटे छोटे फूलों की मंजरियाँ लगती हैं। इसकी डालियों में आमने सामने पत्तियाँ होती हैं, जिनके बीच से दूसरी शाखाएँ निकलती हैं। इसकी पत्तियों के बीच एक सींक होती है जिसके सिरे पर एक और दोनों ओर दो दो पत्तियाँ होती हैं, जो कुल मिलकर पाँच पाँच होती हैं। यह झाड़ बनों में होता है और बागों के किनारे बाढ़ पर भी लगाया जाता है। वैद्यक में म्योंड़ी उष्ण और रुक्ष मानी गई है और इसका स्वाद कटु तथा तिक्त लिखा गया है। यह खाँसी, कफ, सूजन और अफरा को दूर करती है। इसका प्रयोग वात रोग में भी होता है और इसकी पत्तियों की भाप बवासीर की पीड़ा को दूर करती है।

पर्या०—नीलिका। नील निर्गुंडी। सिंहक। सिंदवार। निर्गुंडी।

म्रक्ष, म्रक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपने दोषों को छिपाना। मक्कारी। २. तेल लगाना। ३. मसलना। मीजना।

म्रगंमद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृगमद] कस्तूरी। मृगमद। उ०—कालिंदी न्हावहि न नयन अंजै न म्रगंमद। कुचा अग्र परसै न नील दल कवल तोरि सद।—पृ० रा०, २।३४६।

म्रग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृग] [स्त्री० म्रगी] मृग। हिरन। उ०—म्रगी जान अहै धरै बध्ध धाई।—पृ० रा०, ६१।२२३३।

म्रगतिह्न(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० मृगतृष्णा, प्रा० म्रगतिण्हा] दे० 'मृगतृषा', 'मृगतृष्णा'। उ०—नव बधू सजत भूषन सँवारि, ससि बढ़ी किरन अति तेज तार। म्रगतिह्न भई उर मुत्तिमाल, भुल्लै चकोर ससि नैन चाल।—पृ० रा०, २।३४६।

म्रगमास†—संज्ञा पुं० [सं० मृगमास] दे० 'मार्गशीर्ष'। उ०—नव उच्छव नर नार नवल श्रृंगार बसन्ने। गीता मैं म्रगमास कह्यौ मम रूप किसन्ने।—रा० रू०, पृ० ३७७।

म्रग्ग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मृग, प्रा० म्रग्ग] [स्त्री० म्रग्गी] दे० 'मृग'। उ०—तिने देषि असमान म्रग्गी ठठुक्की। मनो मेनिका नृत्य तें ताल चुक्की।—पृ० रा०, १।४३०।

म्रजाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० मर्याद] दे० 'मर्यादा'। उ०—पुष्टि म्रजाद, भजन सुख सीमा निजजन पोषन भरन भजौं।—नंद० ग्रं० पृ० ३२५।

म्रदिमा—संज्ञा पुं० [सं० म्रदिमन्] १. मृदुता। कोमलता। २. नम्रता। आजिजी।

म्रदिष्ट—वि० [सं०] अति मृदु। अत्यंत कोमल।

म्रदु(पु)—वि० [सं० मृदु] दे० 'मृदु'। उ०—सुंदर भाल विसाल, अलक सम माल अनोपम। हित प्रकाश म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम।—रा० रू०, पृ० २।

म्रद्दना(पु)—क्रि० स० [सं० मर्दन] दे० 'मर्दना'। उ०—परे पंच वीरं, म्रद्दे लष्ष भीरं।—पृ० रा०, ६१।१६८३।

म्रनाल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल] दे० 'मृणाल'। उ०—मनों चंच हंसी म्रनाल ति षग्गी।—पृ० रा०, ५५।१४८।

म्रातन—संज्ञा पुं० [सं०] कैवर्ती मुस्तक। केवटी मोथा।

म्रितक—संज्ञा पुं० [सं० मृतक] दे० 'मृतक'। उ० म्रितक होय काल को डसे, उलट बाँमी सर्प को षाइ।—रामानंद०, पृ० ३४।

म्रिथा(पु)†—क्रि० वि० [सं० मृषा] दे० 'मृथा'। उ०—यह म्रिथा मत नहि होय। सब भर्मजात वियोग।—संत० दरिया, पृ० १०।

म्रिनाल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० मृणाल] दे० 'मृणाल'। उ०—डटि अंत दंतन तीर। म्रिनाल मनु कढि नीर।—पृ० रा०, ६१। १७१३।

म्रियमाण—वि० [सं०] मरता हुआ। मरा हुआ सा। मृतप्राय। अवसन्न। उ०—खिल उठे पुण्य पद्म म्रियमाण; विश्व का हो सदैव कल्याण।—सागरिका, पृ० ७६।

म्लात—वि० [सं०] मुरझाया हुआ। म्लान [को०]।

म्लान¹—वि० [सं०] मलिन। कुम्हलाया हुआ। २. दुर्बल। कमजोर। ३. मैला। मलिन।

म्लान—संज्ञा स्त्री० दे० 'म्लानि'।

यौ०—**म्लानमना** = उदास। खिन्न। **म्लानव्रीड** = निर्लज्ज। बेशर्म। लज्जाहीन।

म्लानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. म्लान होने का भाव। मलिनता। २. ग्लानि।

म्लानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मलिनता। कांतिक्षय। २. छाया। मलिनता। उ०—या कि विधु में ज्यों मही की म्लानि, दूर भी बिंबित हुई गृह ग्लानि।—साकेत, पृ० १६६। २. ग्लानि। शोक।

म्लायी—वि० [सं० म्लायिन्] १. म्लान। म्लानियुक्त। २. दुखी।

म्लिष्ट—वि० [सं०] १. जो साफ न हो। अस्पष्ट। जैसे, म्लिष्ट वाणी। २. अव्यक्त वाणी बोलनेवाला। जो स्पष्ट न बोलता हो।

म्लेच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों की वे जातियाँ जिनमें वर्णाश्रम धर्म न हो। इस शब्द का अर्थ है—अस्पष्टभाषी अथवा ऐसी भाषा बोलनेवाला जिनमें वर्णों का व्यक्त उच्चारण न होता हो।

विशेष—प्राचीन ग्रंथों में म्लेच्छ शब्द का प्रयोग उन जातियों के लिये होता था, जिनकी भाषा के उच्चारण की शैली आर्यों की शैलो से विलक्षण होती थी। ये जातियाँ प्रायः ऐसी थीं जिनका आर्यों के साथ संपर्क था; इसीलिये म्लेच्छ देश भी भारत के अंतर्गत माना गया है और म्लेच्छों को वर्णाश्रमधर्म से रहित यज्ञ करनेवाला लिखा है। महाभारत के आदिपर्व मे म्लेच्छों की उत्पत्ति, विश्वामित्र से छीनकर ले जाते समय वशिष्ठ की धेनु नंदिनी के अंग प्रत्यंग से लिखी गई है और पह्लव, द्रविड, शक, यवन, शबर, पौंड्र

किरात, यवन, सिंहल, बर्बर, खस आदि म्लेच्छ माने गए हैं। पुराणों में म्लेच्छों की उत्पत्ति में मतभेद है। विष्णुपुराण में लिखा है कि सगर ने हैहयवंशियों को पराजित कर उन्हें धर्मच्युत कर दिया था और वही लोग शक, यवन, कांबोज, पारद, और पह्लव नामक म्लेच्छ जाति के हो गए। मत्स्यपुराण में राजा वेणु के शरीरमंथन से म्लेच्छ जाति की उत्पत्ति लिखी गई है। बृहत्संहिता में हिमालय और विंध्यगिरि तथा विनशन और प्रयाग के मध्य के पवित्र देश के अतिरिक्त अयन्त्र को म्लेच्छ देश लिखा है। बृहत्पाराशर में चातुर्वर्ण्य और अंतराल वर्णों के अतिरिक्त वर्णाचारहीन को म्लेच्छ लिखा है; और प्रायश्चित्ततत्व में गोमांसभक्षी, विरुद्धभाषी और सर्वाचारविहीन ही म्लेच्छ कहे गए हैं।

२. ताम्र। ताँबा धातु (को०)। ३. अनार्य भाषा वा कथन (को०)। ४. हिंगु। हींग।

म्लेच्छ[2]—वि० १. नीच। २. जो सदा पाप कर्म करता हो। पापरत।

यौ०—**म्लेच्छकंद**। **म्लेच्छजाति** = अनार्य या असंस्कृत जाति। **म्लेच्छदेश** = चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से रहित अनार्य देश। **म्लेच्छ भाषा** = विदेशी भाषा। अनार्य भाषा। **म्लेच्छभोजन**। **म्लेच्छ मंडल** = म्लेच्छ देश। **म्लेच्छमुख**। **म्लेच्छवाक्** = म्लेच्छभाषा।

म्लेच्छकंद—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छकन्द] लहसुन।

म्लेच्छभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. यावक। बोरो। २. गेहूँ।

म्लेच्छमुख—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

म्लेच्छाक्रांत—संज्ञा पुं० [सं० म्लेच्छ + आक्रान्त] म्लेच्छों द्वारा आक्रांत। म्लेच्छों द्वारा विजित। उ०—म्लेच्छाक्रांत देश छोड़कर राजधानी में चला आया था।—स्कंद०, पृ० १८।

म्लेच्छाश—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ। म्लेच्छभोजन (को०)।

म्लेच्छित—संज्ञा पुं० [सं०] १. म्लेच्छ भाषा। अनार्य भाषा। २. अपभाषा। व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध भाषा (को०)।

म्हाँ†—सर्व० [सं० अस्मत्, अहम्, प्रा० अम्हे, राज० म्हे, म्हा] मुझ। दे० 'म्हा'। उ०—(क) राँणी राजानूँ कहइ, ओ म्हाँ नातरउ कीध।—ढोला०, दू० ६। (ख) म्हाँ सी थाँके घड़ी टहलनी भँवर कमलफुल बास लुभावै।—घनानंद, पृ० ३३४।

म्हा(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'मुझ'। उ०—दास तुलसी सभय वदत मयनंदिनी मंदमति कंत सुनु मंत म्हा को।—तुलसी (शब्द०)।

म्हारा(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'हमारा'।

य

य—हिंदी वर्णमाला का २६वाँ अक्षर। इसका उच्चारणस्थान तालु है। यह स्पर्श वर्ण और ऊष्म वर्ण के बीच का वर्ण है; इसलिये इसे अंतःस्थ वर्ण कहते हैं। इसके उच्चारण में कुछ आभ्यंतर प्रयत्न के अतिरिक्त संवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न भी होते हैं। यह अल्पप्राण है।

यंत, यंता—संज्ञा पुं० [सं० यन्तृ] १. सारथी। (डिं०)। २. महावत। हाथीवान (को०)। ३. निर्देशक। नियंत्रणकर्ता। शासक (को०)।

यंति—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्ति] दमन।

यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. तांत्रिकों के अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकार से बने हुए आकार या कोष्ठक आदि, जिनमें कुछ अंक या अक्षर आदि लिखे रहते हैं और जिनके अनेक प्रकार के फल माने जाते हैं। तांत्रिक लोग इनमें देवताओं का अधिष्ठान मानते हैं। लोग इन्हें हाथ या गले में पहनते भी हैं। जंतर।

यौ०—**यंत्रचेष्टित** = बाजीगरी। यंत्रमंत्र। **यंत्रमंत्र** = जादू, टोना या टोटका आदि।

२. विशेष प्रकार से बना हुआ उपकरण; जो किसी विशेष कार्य के लिये प्रस्तुत किया जाय। औजार। जैसे,—(क) वैद्यक में तेल और आसव आदि तैयार करने के अनेक प्रकार के यंत्र होते हैं। (ख) प्राचीन काल में भी अनेक ऐसे यंत्र बनते थे, जिनसे दूर से ही शत्रुओं पर प्रहार किया जाता था। ३. किसी खास काम के लिये बनाई हुई कल या औजार। जैसे,—आजकल संसार में सैकड़ों प्रकार के यंत्र प्रचलित है, जिनकी सहायता से सैकड़ों हजारों आदमियों का काम एक या दो आदमी कर लेते हैं। ४. बंदूक। ५. बाजा। वाद्य। ६. बाजों के द्वारा होनेवाला संगीत। वाद्यसंगीत। ७. वीणा। बीन। ८. ताला। एक प्रकार का बरतन। १०. नियंत्रण।

यौ०—**यंत्रकरंडिका**। **यंत्रकर्मकृत्** = कलाकार। कारीगर। **यंत्रकोविद** = मिस्त्री। मशीन के काम में दक्ष। **यंत्रगोल**। **यंत्रतक्षा** = यंत्र बनानेवाला। **यंत्रतोरण** = तोरण जो यंत्र वा मशीन से घूमता हो। **यंत्रदृढ** = अर्गला वा ताला से बंद। **यंत्रपुत्रक**। **यंत्रप्रवाह** = कृत्रिम झरना या सोता। **यंत्रमार्ग**। **यंत्रमुक्त** = एक शस्त्र। **यंत्रविधि**। **यंत्रशर** = यंत्रचालित बाण।

यंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रक] १. सुश्रुत के अनुसार कपड़े का वह बंधन जो घाव आदि पर बाँधा जाता है। पट्टी। २. वह शिल्पकार जो यंत्र आदि की सहायता से चीजें तैयार करता हो। ३. वह जो वशीकरण करता हो। वश में कर लेनेवाला।

यंत्रकरंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रकरण्डिका] बाजीगरों की पेटी जिसके द्वारा वे अनेक प्रकार के खेल करते हैं।

यंत्रगोल—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रगोल] १. एक प्रकार की मटर। २. तोप का गोला (को०)।

यंत्रगृह—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रगृह] १. वह स्थान जहाँ यंत्र की सहायता से किसी प्रकार का कर्म होता हो अथवा कोई चीज तैयार की जाती हो। २. वेधशाला। ३. वह स्थान जिसमें प्राचीन काल में अपराधियों आदि को रखकर अनेक प्रकार की यंत्रणा दी जाती थी।

यंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रण**] १. रक्षा करना। २. बाँधना। ३. नियम में रखना। नियम के अनुसार चलाना। नियंत्रण।

यंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रणा**] १. क्लेश। यातना। तकलीफ। २. दर्द। वेदना। पीड़ा।

यंत्रणी—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रणी**] पत्नी की छोटी बहन। छोटी साली [को०]।

यंत्रधारागृह—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रधारागृह**] फुहारे से युक्त घर। स्नानगृह [को०]।

यंत्रनाल—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रनाल**] वह नल जिसके द्वारा कुएँ आदि से जल निकाला जाता है।

यंत्रपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रपुत्रक**] [स्त्री० **यन्त्रपुत्रिका**] यंत्र से चलने या हिलने डोलनेवाला पुतला। यंत्रचालित खिलौना।

यंत्रपेषणी—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रपेषणी**] चक्की।

यंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रमन्त्र] जादू। टोना। टोटका।

यंत्रमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रमातृका**] चौंसठ कलाओं में से एक कला, जिसमें अनेक प्रकार के यंत्र या कलें आदि बनाना और उससे काम लेना संमिलित है।

यंत्रमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रमार्ग**] नहर। जलप्रणाली [को०]।

यंत्रराज—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रराज**] ज्योतिष में एक यंत्र जिससे ग्रहों और तारों की गति जानी जाती है।

यंत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रविद्या**] कलों के चलाने और बनाने की विद्या।

यंत्रविधि—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रविधि**] शल्य-क्रिया-प्रयुक्त अस्त्रों के निर्माण का विज्ञान। शल्य अस्त्रों का विज्ञान [को०]।

यंत्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रशाला**] १. वेधशाला। २. वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के यंत्रादि हों।

यंत्रसद्म—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रसद्म**] तेल की मिल [को०]।

यंत्रसूत्र—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रसूत्र**] वह सूत्र जिसकी सहायता से कठपुतली नचाई जाती है।

यंत्रापीड़—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रापीड**] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसके कारण शरीर में बहुत अधिक पीड़ा होती है और रोगी का लहू पीले रंग का हो जाता है।

यंत्रालय—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रालय**] १. वह स्थान जहाँ कल या यंत्रादि हों। २. छापाखाना। प्रेस।

यंत्राश—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्राश**] एक राग जो हनुमत के मत से हिंडोल राग का पुत्र है।

यंत्रिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रिका**] स्त्री की छोटी बहन। छोटी साली।

यंत्रिका[2]—संज्ञा स्त्री० छोटा ताला।

यंत्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० **यन्त्रिणी**] दे० 'यंत्रिका', 'यंत्रिणी'।

यंत्रित—वि० [सं० **यन्त्रित**] १. जो यंत्र आदि की सहायता से बाँधा या बंद कर दिया हो। रोका या बंद किया हुआ। २. ताला लगा हुआ। ताले में बंद।

यंत्री—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रिन्**] १. यंत्र मंत्र करनेवाला। तांत्रिक। २. बाजा बजानेवाला। उ०—सूरदास स्वामी के चलिबे ज्यों यंत्री बिनु यंत्र सकात।—सूर (शब्द०)। ३. नियत्रण करने या बाँधनेवाला।

यंत्रोपल—संज्ञा पुं० [सं० **यन्त्रोपल**] चक्की। चक्की का पत्थर [को०]।

यंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्र] स्वामी। (डिं०)।

य—संज्ञा पुं० [सं०] १. यश। २. योग। ३. यान। सवारी। ४. संयम। ५. छंद शास्त्र में यगण का संक्षिप्त रूप। दे० 'यगण'। ६. यव। जौ। ७. यम। ८. त्याग। ९. प्रकाश।

यक—वि० [फ़ा०] दे० 'एक'।

विशेष—इस शब्द से बननेवाले यौगिक शब्दों के लिये देखिए 'एक' शब्द से बने यौगिक शब्द।

यकअंगी[1]—वि० [हिं० एक+अंगी] १. एक अंगवाला। २. एक (पत्नी या पति) के साथ रहनेवाला (या वाली)। उ०—बहुरंगी जित तितहिं सुख यकअंगी कर अंत। जिमि गणिका निधरक रहति दहति सती बिनु कंत।—विश्राम (शब्द०)। ३. एक ही के आश्रित। एक ही पर रहनेवाला। एकनिष्ठ। ४. दे० 'एकांगी'।

यकअंगी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'एकांगी'।

यककलम—क्रि० वि० [फ़ा० **यकक़लम**] १. एक ही बार कलम चलाकर। एक ही बार लिखकर। २. एक बारगी। एकाएक। जैसे,—वह यहाँ से यककलम बरखास्त कर दिया गया।

यकजा—वि० [फ़ा०] संमिलित। जुमला। इकट्ठा [को०]।

यकतरफा—वि० [फ़ा०] एकपक्षीय। एक ओर का। दे० 'एकतरफा'।

यकता—वि० [फ़ा०] जो अपनी विद्या या विषय में एक ही हो। जिसके मुकाबले का और कोई न हो। अद्वितीय।

यकताई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एकता या अद्वितीय होने का भाव। अद्वितीयता।

यकतार(पु)[1]—वि० [हिं० **एक+तार**] एक सा। यक सा। समरस।

यकतार[2]—वि० [फ़ा०] किंचित्। ईषत् [को०]।

यकपरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **एक+पर+आ** (प्रत्य०)] एक प्रकार का कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद होता है; केवल डैनों पर दो एक काली चित्तियाँ होती हैं।

यकफर्दी, यकफसली—वि० [फ़ा०] जिसमें एक फसल हो। एकफर्दा [को०]।

यकवग्गा—वि० [फ़ा०] जो एक ही लगाम को मानता हो। एक तरफ ही चलनेवाला। एकबगा।

यकबयक—क्रि० वि० [फ़ा०] एकबारगी। यकायक। एक दम से।

यकबारगी—क्रि० वि० [फ़ा०] यकबयक। अचानक। एकाएक। सहसा। दे० 'एकबारगी'।

यकरोजा—वि० [फ़ा० **यकरोज़ह्**] एकदिवसीय। एक दिन का [को०]।

यकलाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दे० 'इकलाई'। २. नकाब। ३. चोगा [को०]।

यकलोही—वि० [फ़ा० यक+हिं० लोहा+ई] एक ही लोहे की बनी हुई। बिना जोड़ की (कड़ाही आदि)।

यकसाँ—वि० [फ़ा०] एक समान। एक सा। बराबर।

यकसू-वि० [फ़ा०] १. एक ओर। एक तरफ। २. निश्चित। बेफिक्र। ३. एकाग्रचित्त। ४. फारिग [को०]।

यकायक—क्रि० वि० [फ़ा०] एकाएक। अचानक। एकबारगी। सहसा।

यकार—संज्ञा पुं० [सं०] य का वर्ण। य अक्षर।

यकीन—संज्ञा पुं० [अ० **यक़ीन**] प्रतीति। विश्वास। एतबार।

यकीनन्—क्रि० वि० [अ० **यक़ीनन्**] अवश्य। निःसंदेह। बेशक। जरूर।

यकीनी—वि० [फ़ा० **यक़ीनी**] विश्वसनीय। असंदिग्ध [को०]।

यकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट में दाहिनी ओर की एक थैली जिसमें पाचनरस रहता है और जिसकी क्रिया से भोजन पचता है; अर्थात् उसमें वह विकार उत्पन्न होता है, जिससे शरीर की धातुएँ बनती हैं। जिगर। कालखंड। २. वह रोग जिसमें यह अंग दूषित होकर बढ़ जाता है। वर्म जिगर। ३. पक्वाशय।

यकोला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मझोला पेड़ जिसके पत्ते प्रतिवर्ष शिशिर ऋतु में झड़ जाते हैं।

विशेष—इसकी लकड़ी अंदर से सफेद और बड़ी मजबूत होती है तथा संदूक, आरायशी सामान आदि बनाने के काम आती है। इसे मसूरी भी कहते हैं।

यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की देवयोनि। एक प्रकार के देवता जो कुबेर के सेवक और उसकी निधियों के रक्षक माने जाते हैं। उ०—यक्ष प्रबल बाढ़े भुवमंडल तिन मान्यो निज भ्रात। जिनके काज अंस हरि प्रगटे ध्रुव जगत विख्यात।—सूर (शब्द०)।

विशेष—पुराणानुसार यक्ष लोग प्रचेता की संतान माने जाते हैं। कहते हैं, इनकी आकृति विकराल होती है, पेट फूला हुआ और कंधे बहुत भारी होते हैं तथा हाथ पैर घोर काले रंग के होते हैं।

२. कुबेर। यक्षराज।

यक्षकर्दम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अंगलेप जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोल मिलाकर बनाया जाता है। कहते हैं, यक्षों को यह अंगलेप बहुत प्रिय है। उ०—आजु आदित्य जल पवन पावन प्रबल चंद आनंदमय ताप जग को हरौ। गान किन्नर करहु, नृत्य गंधर्वकुल, यज्ञ विधि लक्ष उर यक्षकर्दम धरौ।—केशव (शब्द०)।

यक्षग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का कल्पित ग्रह।

विशेष—कहते हैं, जब इस ग्रह का आक्रमण होता है, तब आदमी पागल हो जाता है।

यक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजन करना। यजन। २. भक्षण करना। खाना।

यक्षतरु—संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष। बड़ का पेड़। यक्षावास।

विशेष—कहते हैं, वट का वृक्ष यक्षों को बहुत प्रिय होता है और उसी पर वे रहा करते हैं।

यक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यक्ष का भाव या धर्म। यक्षपन।

यक्षत्व—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष का भाव या धर्म।

यक्षधूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधारण धूप जो प्रायः देवताओं आदि के आगे जलाया जाता है। २. सरल वृक्ष का निर्यास। ताड़पीन का तेल।

यक्षनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यक्षों के स्वामी, कुबेर। २. जैनों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के अर्हत् के चौथे अनुचर का नाम।

यक्षप—संज्ञा पुं० [सं०] यक्षपति। कुबेर।

यक्षपति—संज्ञा पुं० [सं०] यक्षों के स्वामी, कुबेर। उ०—मृत्यु कुबेर यक्षपति कहियत जहँ शंकर को धाम।—सूर (शब्द०)।

यक्षपुर—संज्ञा पुं० [सं०] अलकापुरी। उ०—प्रजापती कहँ पूजहिं जोई। तिन कर बास यक्षपुर होई।—विश्राम (शब्द०)।

यक्षरस—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों से तैयार की हुई शराब। मध्वासव।

यक्षराज—संज्ञा पुं० [सं०] यक्षों का राजा, कुबेर।

यक्षरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की पूर्णिमा जो यक्षों की रात मानी जाती है।

यक्षलोक—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक जिसमें यक्षों का निवास माना जाता है।

यक्षवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत धनवान् हो, पर अपने धन में से कुछ भी व्यय न करता हो।

यक्षस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

यक्षांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० **यक्षाङ्गी**] एक प्राचीन नदी का नाम।

यक्षाधिप, यक्षाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] यक्षों के स्वामी, कुबेर।

यक्षामलक—संज्ञा पुं० [सं०] पिंड खजूर।

यक्षावास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वट का वृक्ष जिसपर यक्षों का निवास माना जाता है। २. गूलर का वृक्ष।

यक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यक्ष की पत्नी। २. कुबेर की पत्नी। ३. दुर्गा की एक अनुचरी का नाम।

यक्षी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यक्षराज कुबेर की स्त्री। २. यक्ष की स्त्री। यक्षिणी।

यक्षी²—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष+ई (प्रत्य०)] वह जो यक्ष की उपासना करता हो, अथवा उसे साधता हो। उ०—प्रजापती कहँ पूजहिं जोई। तिन कर बास यक्षपुर होई। भूतो भूतहिं यक्षो यक्षन। प्रेती प्रेतन रक्षी रक्षन।—गिरधर (शब्द०)।

यक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ करता हो। २. एक प्राचीन जनपद का वैदिक नाम, जो वक्षु भी कहलाता था और इसी नाम की नदी के आस पास था। आक्सस नदी के आस पास का प्रदेश। बदखशाँ। ३. इस जनपद का निवासी।

यक्षेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० यक्षेन्द्र] यक्षों के स्वामी, कुबेर।

यक्षेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] यक्षों के स्वामी, कुबेर।

यक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यक्ष्मा'।

यक्ष्मग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय या यक्ष्मा नामक रोग।

यक्ष्मघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। अंगूर।

यक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष्मन्] क्षयी नामक रोग। तपेदिक। विशेष दे० 'क्षयी'।

यक्ष्मी—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष्मिन्] वह जिसे यक्ष्मा रोग हुआ हो यक्ष्मा रोग का रोगी। तपेदिक का बीमार।

यखनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० यख्नी] १. तरकारी आदि का रसा। शोरबा। झोल। २. उबले हुए मांस का रसा। ३. वह मांस जो केवल लहसुन, प्याज, धनिया और नमक डालकर उबाल लिया जाय।

यगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में आठ गणों में से एक। यह एक लघु और दो गुरु मात्राओं का होता है (।ऽऽ)। इसका संक्षिप्त रूप 'य' है। जैसे, कमाना, चलाना।

विशेष—इसका देवता जल माना गया है और यह सुखदायक कहा गया है।

यगाना[1]—वि० [फ़ा० यगानह्] १. जो बेगाना न हो। एक वंश का। अपना। आत्मीय। नातेदार। उ०—बेगानः हैं सारे यगानः पार कहाँ है।—कबीर मं०, पृ० ३२३। २. अकेला। फर्द। ३. अनुपम। अद्वितीय। एकता।

यगाना[2]—संज्ञा पुं० १. भाई बंद। २. परम मित्र।

यगूर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी का रंग अंदर से काला निकलता है।

विशेष—यह सिलहट की पूर्वी और दक्षिण पूर्वी पहाड़ियों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से कई तरह की सजावट की और बहुमूल्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इसे आग में जलाने से बहुत उत्तम गंध निकलती है। इसे सेसी भी कहते है।

यग्य(५)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ'।

यच्छ(५)‡—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष'।

यच्छिनी(५)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी] दे० 'यक्षिणी'।

यजंत—संज्ञा पुं० [सं० यजन्त] यज्ञ करनेवाला। यज्ञकर्ता।

यज—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ। याग। २. अग्नि [को०]।

यजत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋत्विक्। २. शिव (को०)। ३. चंद्रमा (को०)। ४. एक वैदिक ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के एक मंत्र के द्रष्टा थे।

यजत[2]—वि० १. पवित्र। २. पूज्य। पूजनीय [को०]।

यजति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञ'।

यजत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निहोत्री। २. वह जो यज्ञ करता हो।

यजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदविधि के अनुसार होता और ऋत्विक् आदि के द्वारा काम्य और नैमित्तिक कर्मों का विधिपूर्वक अनुष्ठान करना। यज्ञ करना (यह ब्राह्मणों के षट्कर्मों में एक माना गया है)। २. वह स्थान जहाँ यज्ञ होता हो।

यजनकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० यजनकर्तृ] यज्ञ या हवन करनेवाला।

यजमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ करता हो। दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणों से यज्ञ, पूजन आदि धार्मिक कृत्य करानेवाला व्रती। यष्टा। २. वह जो ब्राह्मणों को दान देता हो। ३. महादेव की आठ प्रकार की मूर्तियों में से एक प्रकार की मूर्ति। ४. परिवार का प्रधान व्यक्ति वा जाति का मुखिया (को०)।

यजमानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० यजमान'।

यजमानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यजमान का भाव या धर्म।

यजमानलोक—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक जिसमें यज्ञ करके मरनेवालों का निवास माना जाता है।

यजमानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यजमान+ई (प्रत्य०)] १. यजमान का भाव या धर्म। २. यजमान के प्रति पुरोहित की वृत्ति। ३. वह स्थान जहाँ किसी विशेष पुरोहित के यजमान रहते हों।

यजाक—वि० [सं०] १. उदार। दानी। २. पूजा करनेवाला। अर्चक। पूजक [को०]।

यजि—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञकर्ता। यज्ञ करनेवाला। २. यज्ञ। ३. यज्ञ करने की क्रिया वा भाव [को०]।

यजी—संज्ञा पुं० [सं० यजिन्] १. वह जो यज्ञ करता हो। यज्ञ करनेवाला। २. अर्चन पूजन करनेवाला।

यजु—संज्ञा पुं० [सं० यजुस्] दे० 'यजुर्वेद'।

यजुरा(५)—संज्ञा पुं० [सं० यजुस्] दे० 'यजुर्वेद'। उ०—रिग, यजुर, साम, अथर्वनिक वेद ध्वनि स्तोत्र पौराण, इतिहास मिलि उच्चरत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५।

यजुर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यजुर्वेद का ज्ञाता हो। यजुर्वेद जाननेवाला।

यजुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] भारतीय आर्यों के चार प्रसिद्ध वेदों में से एक वेद।

विशेष—इसमें विशेषतः यज्ञकर्म का विस्तृत विवरण है और इसी लिये यह वेदत्रयी में भित्तिस्वरूप माना जाता है। यज्ञों में अध्वर्यु जिन गद्य मंत्रों का पाठ करता था, वे 'यजु' कहलाते थे। इस वेद में उन्हीं मंत्रों का संग्रह है, इसलिये इसे यजुर्वेद कहते हैं। इसके दो मुख्य भेद हैं—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयी। कृष्ण यजुर्वेद में यज्ञों का जितना पूर्ण और विस्तृत वर्णन है, उतना और संहिताओं में नहीं है। इन दोनों की भी बहुत सी शाखाएँ हैं, जिनमें थोड़ा बहुत पाठभेद है। अब तक यजुर्वेद की जो संहिताएँ मिली हैं, उनके नाम इस

प्रकार हैं—काठक, कपिस्थल-कठ, मैत्रायणी और तैत्तिरीय। ये चारों कृष्ण यजुर्वेद की हैं। शुक्ल या वाजसनेयी की काण्व और माध्यंदिनी दो शाखाएँ हैं। पतंजलि के मत से यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं; पर चरणव्यूह में केवल ८६ शाखाएँ दी हैं; और वायुपुराण में २३ शाखाएँ गिनाई गई हैं। इसके संहिता भाग में ब्राह्मण और ब्राह्मण भाग में संहिता भी मिलती है। इस वेद में अनेक ऐसे विधिमंत्र भी हैं, जिनका अर्थ बहुत थोड़ा या कुछ भी नहीं ज्ञात होता। कुछ प्रार्थनाएँ भी ऐसी हैं, जो बिलकुल अर्थरहित जान पड़ती हैं। इसके कुछ मंत्र ऐसे हैं, जिनसे सूचित होता है कि उस समय लोगों में ब्रह्मज्ञान की बहुत कम चर्चा थी। इसमें देवताओं के नामों के साथ बहुत से विशेषण भी मिलते हैं, जिससे जान पड़ता है कि भक्ति की ओर भी लोगों की कुछ कुछ प्रवृत्ति हो चली थी। पुराणानुसार इस वेद के अधिपति शुक्र और वक्ता वैशंपायन माने जाते हैं। विशेष दे० 'वेद'।

यजुर्वेदी—संज्ञा पुं० [सं० यजुर्वेदिन्] १. वह जो यजुर्वेद का ज्ञाता हो। २. वह ब्राह्मण जो यजुर्वेद के अनुसार सब कृत्य करता हो।

यजुर्वेदीय—संज्ञा पुं० [सं० यजुर्वेदिन्] दे० 'यजुर्वेदी'।

यजुश्रुति—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद।

यजुष्पति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यजुष्पात्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र।

यजुष्य—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी। यज्ञ का।

यजूदर, यजूवर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन भारतीय आर्यों का एक प्रसिद्ध वैदिक कृत्य जिसमें प्रायः हवन और पूजन हुआ करता था। मख। याग।

विशेष—प्राचीन भारतीय आर्यों में यह प्रथा थी कि जब उनके यहाँ जन्म, विवाह या इसी प्रकार का और कोई समारंभ होता था, अथवा जब वे किसी मृतक की अंत्येष्टि क्रिया या पितरों का श्राद्ध आदि करते थे, तब ऋग्वेद के कुछ सूक्तों और अथर्ववेद के मंत्रों के द्वारा अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ करते थे और आशीर्वाद आदि देते थे। इसी प्रकार पशुओं का पालन करनेवाले अपने पशुओं की वृद्धि के लिये तथा किसान लोग अपनी उपज बढ़ाने के लिये अनेक प्रकार के समारंभ करके स्तुति आदि करते थे। इन अवसरों पर अनेक प्रकार के हवन आदि भी होते थे, जिन्हें उन दिनों 'गृह्यकर्म' कहते थे। इन्हीं ने आगे चलकर विकसित होकर यज्ञों का रूप प्राप्त किया। पहले इन यज्ञों में घर का मालिक या यज्ञकर्ता, यजमान होने के अतिरिक्त यज्ञपुरोहित भी हुआ करता था; और प्रायः अपनी सहायता के लिये एक आचार्य, जो 'ब्राह्मण' कहलाता था, रख लिया करता था। इन यज्ञों की आहुति घर के यज्ञकुंड में ही होती थी। इसके अतिरिक्त कुछ धनवान् या राजा ऐसे भी होते थे, जो बड़े बड़े यज्ञ किया करते थे। जैसे,—युद्ध के देवता इंद्र को प्रसन्न करने के लिये सोमयाग किया जाता था। धीरे धीरे इन यज्ञों के लिये अनेक प्रकार के नियम आदि बनने लगे; और पीछे से उन्हीं नियमों के अनुसार भिन्न भिन्न यज्ञों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार की यज्ञभूमियाँ और उनमें पवित्र अग्नि स्थापित करने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञकुंड बनने लगे। ऐसे यज्ञों में प्रायः चार मुख्य ऋत्विज् हुआ करते थे, जिनकी अधीनता में और भी अनेक ऋत्विज् काम करते थे। आगे चलकर जब यज्ञ करनेवाले यजमान का काम केवल दक्षिणा बाँटना ही रह गया, तब यज्ञ संबंधी अनेक कृत्य करने के लिये और लोगों की नियुक्ति होने लगी। मुख्य चार ऋत्विजों में पहला 'होता' कहलाता था और वह देवताओं की प्रार्थना करके उन्हें यज्ञ में आने के लिये आह्वान करता था। दूसरा ऋत्विज् 'उद्गाता' यज्ञकुंड में सोम की आहुति देने के समय सामगान करता था। तीसरा ऋत्विज् 'अध्वर्यु' या यज्ञ करनेवाला होता था; और वह स्वयं अपने मुँह से गद्य मंत्र पढ़ता तथा अपने हाथ से यज्ञ के सब कृत्य करता था। चौथे ऋत्विज् 'ब्रह्मा' अथवा महापुरोहित को सब प्रकार के विघ्नों से यज्ञ की रक्षा करनी पड़ती थी; और इसके लिये उसे यज्ञकुंड की दक्षिण दिशा में स्थान दिया जाता था; क्योंकि वही यम की दिशा मानी जाती थी और उसी ओर से असुर लोग आया करते थे। इसे इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता था कि कोई किसी मंत्र का अशुद्ध उच्चारण न करे। इसी लिये 'ब्रह्मा' का तीनों वेदों का ज्ञाता होना भी आवश्यक था। जब यज्ञों का प्रचार बहुत बढ़ गया, तब उनके संबंध में अनेक स्वतंत्र शास्त्र भी बन गए; और वे शास्त्र 'ब्राह्मण' तथा 'श्रौत सूत्र' कहलाए। इसी कारण लोग यज्ञों को 'श्रौतकर्म' भी कहने लगे। इसी के अनुसार यज्ञ अपने मूल गृह्यकर्म से अलग हो गए, जो केवल स्मरण के आधार पर होते थे। फिर इन गृह्यकर्मों के प्रतिपादक ग्रंथों को 'स्मृति' कहने लगे। प्रायः सभी वेदों का अधिकांश इन्हीं यज्ञसंबंधी बातों से भरा पड़ा है। (दे० 'वेद')। पहले तो सभी लोग यज्ञ किया करते थे, पर जब धीरे धीरे यज्ञों का प्रचार घटने लगा, तब अध्वर्यु और होता ही यज्ञ के सब काम करने लगे। पीछे भिन्न भिन्न ऋषियों के नाम पर भिन्न भिन्न नामोंवाले यज्ञ प्रचलित हुए, जिससे ब्राह्मणों का महत्व भी बढ़ने लगा। इन यज्ञों में अनेक प्रकार के पशुओं की बलि भी होती थी, जिससे कुछ लोग असंतुष्ट होने लगे; और भागवत आदि नए संप्रदाय स्थापित हुए, जिनके कारण यज्ञों का प्रचार धीरे धीरे बंद हो गया। यज्ञ अनेक प्रकार के होते थे। जैसे,—सोमयाग, अश्वमेध यज्ञ, राजसूज (राजसूय) यज्ञ, ऋतुयाज, अग्निष्टोम, अतिरात्र, महाव्रत, दशरात्र, दशपूर्णमास, पवित्रेष्टि, पुत्रकामेष्टि, चातुर्मास्य सौत्रामणि, दशपेय, पुरुषमेध, आदि, आदि।

आर्यों की ईरानी शाखा में भी यज्ञ प्रचलित रहे और 'यश्न' कहलाते थे। इस 'यश्न' से ही फारसी का 'जश्न' शब्द बना

है। यह यज्ञ वास्तव में एक प्रकार के पुण्योत्सव थे। अब भी विवाह, यज्ञोपवीत आदि उत्सवों को कहीं कहीं यज्ञ कहते हैं।

पर्या०—सव। अध्वर। सप्ततंतु। ऋतु। इष्टि। वितान। मन्यु। आहव। सवन। हव। अभिषव। होम। हवन। मह।

२. विष्णु। ३. अग्नि का एक नाम (को०)।

यज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ। २. वह जो यज्ञ करता हो।

यज्ञकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ करनेवाला। याजक। यजमान।

यज्ञकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का काम।

यज्ञकर्मा—वि० [सं० यज्ञकर्मन्] यज्ञ का काम करनेवाला [को०]।

यज्ञकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञकाम—वि० [सं०] यज्ञ करने की कामनावाला [को०]।

यज्ञकारी—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकारिन्] वह जो यज्ञ करता हो। यज्ञ करनेवाला।

यज्ञकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञादि के लिये शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट समय। २. पौर्णमासी।

यज्ञकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का वह खूँटा जिसमें यज्ञ के लिये बलि दिया जानेवाला पशु बाँधा जाता था। यूपकाष्ठ।

यज्ञकुंड—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुण्ड] हवन करने की वेदी या कुंड।

यज्ञकृत्[1]—वि० [सं०] यज्ञ करनेवाला।

यज्ञकृत्[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. यज्ञ करनेवाला पुरोहित [को०]।

यज्ञकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञ की क्रियाओं का ज्ञाता हो। २. एक राक्षस का नाम।

यज्ञकोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ से द्वेष करता हो। २. रावण के दल का एक राक्षस जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है।

यज्ञक्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ का काम। २. कर्मकांड।

यज्ञगम्य—वि० [सं०] (विष्णु) जिनकी प्राप्ति यज्ञ से संभव हो।

यज्ञगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

यज्ञगुह्य—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण का एक नाम [को०]।

यज्ञघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ विध्वंस करता हो। २. राक्षस।

यज्ञज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यज्ञों के विधान आदि जानता हो।

यज्ञतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञतन्त्र] यज्ञ का विस्तार [को०]।

यज्ञतुरंग—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञतुरङ्ग] यज्ञ का घोड़ा [को०]।

यज्ञत्राता—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञत्रातृ] १. वह जो यज्ञ की रक्षा करता हो। २. विष्णु।

यज्ञदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ के लिये ब्राह्मणों को दिया जानेवाला धन। यज्ञशुल्क [को०]।

यज्ञदत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो यज्ञ के प्रसाद स्वरूप प्राप्त हुआ हो।

यज्ञद्रव्य—संज्ञा पुं० [वि०] यज्ञ की सामग्री।

यज्ञद्रुह्—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञद्रुह्] राक्षस।

यज्ञधर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञधूम—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का धुआँ।

यज्ञनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

यज्ञपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. वह जो यज्ञ करता हो, यजमान।

यज्ञपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ की स्त्री, दक्षिणा। २. पुराणानुसार यज्ञ करनेवाले माथुर ब्रह्मणों की वे स्त्रियाँ जो अपने पतियों के मना करने पर भी श्रीकृष्ण के लिये भोजन लेकर वन में गई थीं।

यज्ञपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो नर्मदा के उत्तरपश्चिम में है।

यज्ञपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पशु जिसका यज्ञ में बलिदान किया जाय। २. घोड़ा। ३. बकरा।

यज्ञपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में काम आनेवाले काठ के बने हुए बरतन।

यज्ञपार्श्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिनका उल्लेख पराशर स्मृति में है।

यज्ञपाल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का संरक्षक। यज्ञ की रक्षा करनेवाला।

यज्ञपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। उ०—यज्ञपुरुष प्रसन्न जब भए। निकसि कुंड से दरशन दए।—सूर (शब्द०)।

यज्ञफलद—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का फल देनेवाले, विष्णु।

यज्ञबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि का एक नाम। २. पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक राजा का नाम।

यज्ञभाड—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञभाण्ड] दे० 'यज्ञपात्र'।

यज्ञभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपात्र।

यज्ञभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ यज्ञ होता हो। यज्ञक्षेत्र।

यज्ञभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] कुश।

यज्ञभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञभोक्तृ] विष्णु।

यज्ञमंडप—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञमण्डप] यज्ञ करने के लिये बनाया हुआ मंडप।

यज्ञमंडल—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञमण्डल] वह स्थान जो यज्ञ करने के लिये घेरा गया हो।

यज्ञमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञमन्दिर] यज्ञशाला।

यज्ञमय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] महायज्ञ। बड़ा यज्ञ।

यज्ञमुख—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का आरंभ।

यज्ञयूप—संज्ञा पुं० [सं०] वह खंभा जिसमें यज्ञ का बलिपशु बाँधा जाता था। यूपकाष्ठ।

यज्ञयोग—संज्ञा पुं० [सं०] उदुंबर वृक्ष। गूलर का पेड़।

यज्ञयोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर का पेड़।

यज्ञरस—संज्ञा पुं० [सं०] सोम।

यज्ञराज—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञराज] चंद्रमा।

यज्ञरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

यज्ञरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] सोम। यज्ञरस।

यज्ञलिंग—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञलिङ्ग] श्रीकृष्ण का नाम।

यज्ञवराह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विशेष—कहते हैं, विष्णु ने वराह का रूप धारण करने के उपरांत जब अपना शरीर छोड़ा, तब भिन्न भिन्न अंगों से यज्ञ की सामग्री बन गई। इसी से उनका यह नाम पड़ा।

यज्ञवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का विस्तार करनेवाला।

यज्ञवल्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता थे।

यज्ञवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

यज्ञवाट—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के निमित्त घेरा हुआ तथा सुरक्षित स्थान [को०]।

यज्ञवाराह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञवराह'।

यज्ञवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ करनेवाला। २. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

यज्ञवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ करनेवाला। २. ब्राह्मण। ३. विष्णु। ४. शिव।

यज्ञवाही—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञवाहिन्] यज्ञ का सब काम करनेवाला।

यज्ञविभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में त्रुटि वा असफलता [को०]।

यज्ञविभ्रष्ट—वि० [सं०] यज्ञ में असफल होनेवाला [को०]।

यज्ञवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ का पेड़। २. विकंकत।

यज्ञवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञार्थ निर्मित वेदिका।

यज्ञव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने यज्ञ रूपी व्रत लिया हो अथवा जो यज्ञ करता हो। यज्ञ करनेवाला।

यज्ञशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. खर राक्षस का एक सेनापति जिसे रामचंद्र ने मारा था।

यज्ञशरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञमंडप'।

यज्ञशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ करने का स्थान। यज्ञमंडप।

यज्ञशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें यज्ञों और उनके कृत्यों आदि का विवेचन हो। मीमांसा। यज्ञशेष।

यज्ञशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का बचा हुआ अंश। यज्ञ का अवशेष [को०]।

यज्ञशील—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ करता हो। २. ब्राह्मण।

यज्ञशंकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञवराह'।

यज्ञशेष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञशिष्ट'।

यज्ञश्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

यज्ञसंभार—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञसम्भार] यज्ञ की सामग्री। यज्ञ में काम आनेवाली सामग्री [को०]।

यज्ञसंस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ यज्ञमंडप बनाया जाय। यज्ञभूमि। यज्ञस्थान।

यज्ञसदन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ करने का स्थान या मंडप। यज्ञशाला।

यज्ञसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो यज्ञ की रक्षा करता हो। २. विष्णु।

यज्ञसार—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर का वृक्ष।

यज्ञसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की परिसमाप्ति [को०]।

यज्ञसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत। जनेऊ।

यज्ञसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. एक दानव का नाम। ३. द्रुपद नरेश का नाम।

यज्ञस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञस्तम्भ] वह खंभा जिसमें यज्ञ का पशु बाँधा जाता है। यूप।

यज्ञस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञमंडप।

यज्ञस्थाणु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञस्तंभ'।

यज्ञस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञशाला।

यज्ञहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञहोता—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञहोतृ] १. यज्ञ में देवताओं का आवाहन करनेवाला। २. भागवत के अनुसार उत्तम मनु के एक पुत्र का नाम।

यज्ञांग—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञाङ्ग] १. विष्णु। २. गूलर का पेड़। ३. खैर का पेड़। ४. कृष्णसार नामक मृग (को०)।

यज्ञांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० यज्ञाङ्गा] सोमलता।

यज्ञागार—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या मंडप जहाँ यज्ञ होता हो। यज्ञशाला।

यज्ञात्मा—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञात्मन्] विष्णु।

यज्ञाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के स्वामी, विष्णु। यज्ञपुरुष।

यज्ञारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. राक्षस।

यज्ञाशन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

यज्ञिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुत्र जो यज्ञ के प्रसाद स्वरूप मिला हो। २. पलाश का पेड़।

यज्ञिय[1]—वि० [सं०] १. यज्ञ संबंधी। यज्ञोपयुक्त। २. पवित्र।

यज्ञिय[2]—संज्ञा पुं० १. ईश्वर। देवता। २. गूलर का वृक्ष। ३. यज्ञ की सामग्री। ४. तीसरा युग। द्वापर [को०]।

यज्ञीय[1]—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी। यज्ञ का।

यज्ञीय[2]—संज्ञा पुं० गूलर का पेड़।

यज्ञेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यज्ञेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिस नाम की घास।

यज्ञोपवीत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनेऊ। यज्ञसूत्र। २. हिंदुओं में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का एक संस्कार। व्रतबंध। उपनयन। जनेऊ।

विशेष—यह संस्कार प्राचीन काल में उस समय होता था, जब बालक को विद्या पढ़ाने के लिये गुरु के पास ले जाते थे। इस संस्कार के उपरांत बालक को स्नातक होने तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना पड़ता था और भिक्षावृत्ति से अपना तथा अपने गुरु का निर्वाह करना पड़ता था। अन्यान्य संस्कारों की भाँति यह संस्कार भी आजकल नाममात्र के लिये रह गया है। इसमें कुछ विशिष्ट धार्मिक कृत्य करके बालक के गले में जनेऊ पहना दिया जाता है। ब्राह्मण बालक के लिये आठवें वर्ष, क्षत्रिय बालक के लिये ग्यारहवें वर्ष और वैश्य बालक के लिये बारहवें वर्ष यह संस्कार करने का विधान है।

यज्य[१]—वि० [सं०] यजन करने योग्य।

यज्य[२]—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० यज्या] १. स्तुति। आराधन। अर्चन। २. यज्ञ [को०]।

यज्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेदी ब्राह्मण। २. यजमान। श्रद्धालु भक्त।

यज्वा—संज्ञा पुं० [सं० **यज्वन्**] यज्ञ करनेवाला।

यौ०—यज्वापति = (१) विष्णु। (२) चंद्रमा।

यडर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

यतः—क्रि० वि० [सं० **यतस्**] इसलिये कि। चूँकि। क्योंकि [को०]।

यत—वि० [सं०] १. नियंत्रित। नियमित। पाबंद। २. दमन किया हुआ। शासित। ३. प्रतिबद्ध। रोका हुआ।

यतन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **यतनीय**] उद्योग वा उपाय करना। यत्न करना। कोशिश करना।

यतनीय—वि० [सं०] यत्न करने के योग्य। कोशिश करने लायक।

यतमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. यत्न करता हुआ। कोशिश में लगा हुआ। २. अनुचित विषयों का त्याग और उचित विषयों में मंद प्रवृत्ति के निमित्त यत्न करनेवाला।

यतव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत संयम से रहता हो।

यतात्मा—वि० [सं० **यतात्मन्**] आत्मनिग्रही। संयमी [को०]।

यताहार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **यताहारी**] संगत आहार। अल्पाहार।

यताहारी—वि० [सं० **यताहारिन्**] नियत एवं संयत आहार करनेवाला। अल्पाहारी।

यति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो और जो संसार से विरक्त होकर मोक्ष प्राप्त करने का उद्योग करता हो। संन्यासी। त्यागी। योगी। २. भागवत के अनुसार ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। ३. महाभारत के अनुसार नहुष के एक पुत्र का नाम। ४. ब्रह्मचारी। ५. विष्णु (को०)। ६. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम (को०)। छप्पय के ६६वें भेद का नाम जिसमें ५ गुरु और १४२ लघु मात्राएँ अथवा किसी किसी के मत से ५ गुरु और १३६ लघु मात्राएँ होती हैं।

यति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छंदों के चरणों में वह स्थान जहाँ पढ़ते समय, उनकी लय ठीक रखने के लिये, थोड़ा सा विश्राम होता है। विरति। विश्राम। राविम। २. दे० 'यती'।

यतिचांद्रायण—संज्ञा पुं० [सं० **यतिचान्द्रायण**] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत जिसका विधान यतियों के लिये है।

यतित—वि० [सं०] जिसके लिये चेष्टा की गई हो। चेष्टित [को०]।

यतित्व—संज्ञा पुं० [सं०] यति का धर्म, भाव या कर्म।

यतिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास।

यतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संन्यासिनी। २. विधवा।

यतिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षापात्र। खप्पर।

यतिभंग—संज्ञा पुं० [सं० **यतिभङ्ग**] काव्य का वह दोष जिसमें यति अपने उचित स्थान पर न पड़कर कुछ आगे या पीछे पड़ती है और जिसके कारण पढ़ने में छंद की लय बिगड़ जाती है।

यतिभ्रष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह छंद जिसमें यति अपने उपयुक्त स्थान पर न पड़कर कुछ आगे या पीछे पड़ी हो। यतिभंग दोष से युक्त छंद।

यतिमैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधु संन्यासी का सा गुप्त मैथुन। २. खंजनरति [को०]।

यतिसांतपन—संज्ञा पुं० [सं० **यतिसान्तपन**] एक व्रत जिसमें तीन दिन केवल पंचगव्य और कुशजल पीकर रहना पड़ता है।

विशेष—शंखस्मृति के मत से तो यह व्रत तीन दिन का है; परंतु जाबाल के मत से सात दिन का है। गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत, कुश का जल इनमें से एक एक का प्रति दिन एक बार पीकर रात दिन उपवास करना पड़ता है। इसी का नाम सांतपनकृच्छ्र या यतिसांतपन है।

यती[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोक। रुकावट। २. छंदों में विराम का स्थान। यति। ३. मनोराग। मनोविकार। ४. विधवा स्त्री। ५. शालक राग का एक भेद। ६. मृदंग का एक प्रबंध। ७. संधि।

यती[२]—संज्ञा पुं० [सं० यतिन्] [स्त्री० **यतिनी**] १. यति। संन्यासी २. जितेंद्रिय। ३. जैनमतानुसार श्वेतांबर जैन साधु।

यतीम—संज्ञा पुं० [अ०] १. मातृ-पितृ-विहीन। जिसके माता पिता न हों। अनाथ। २. कोई अनुपम और अद्वितीय रत्न। ३. वह बड़ा मोती, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह सीप में एक ही निकलता है।

यतीमखाना—संज्ञा पुं० [अ० **यतीम** + फ़ा० **खानह्**] वह स्थान जहाँ माता-पिता-हीन बालक रखे जाते हैं। अनाथालय।

यतुका, यतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चकवँड़ का पौधा। चक्रमर्द।

यतेंद्रिय—वि० [सं० **यतेन्द्रिय**] इंद्रियनिग्रही। संयतात्मा। इंद्रियों का नियमन करनेवाला। संयमी [को०]।

यत्—सर्व [सं०] जो।

यत्किंचित्—क्रि० वि० [सं० **यत्किञ्चित्**] थोड़ा सा। स्वल्प। जरा सा। बहुत कम। कुछ।

यत्त—वि० [सं०] यतित । चेष्टित । यत्न में लगा हुआ । सतर्क [को०] ।

यत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. नैयायिकों के अनुसार रूप आदि २४ गुणों के अंतर्गत एक गुण जो तीन प्रकार का होता है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि । २. उद्योग । प्रयत्न । कोशिश । ३. उपाय । तदबीर । उ०—पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हों नाना रस दहि काढ़ै । तापर रचना रची बिधाता बहु बिधि यत्नन बाढ़ै ।—सूर (शब्द०) । ४. रक्षा का आयोजन । हिफाजत । जैसे,—इस वस्तु को बड़े यत्न से रखना । ५. रोगशांति का उपाय । चिकित्सा । उपचार ।

यत्नवान्—वि० [सं० **यत्नवत्**] [वि० स्त्री० **यत्नवती**] यत्न में लगा हुआ । यत्न करनेवाला ।

यत्र[1]—क्रि० वि० [सं०] जिस जगह । जहाँ ।

यत्र[2]—संज्ञा पुं० [सं० **सत्र**] सामान्य यज्ञ ।

यत्रतत्र—क्रि० वि० [सं०] १. जहाँ तहाँ । इधर उधर । कुछ यहाँ, कुछ वहाँ । २. जगह जगह । कई स्थानों में ।

यत्रु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाती के ऊपर और गले के नीचे की मंडलाकार हड्डी । हँसली ।

यथांश—वि० [सं०] आनुपातिक । उचित अनुपात में [को०] ।

यथा—अव्य० [सं०] जिस प्रकार । जैसे । ज्यों ।

यौ०—**यथाकथित** = जैसा कहा जा चुका हो । यथोक्त । **यथाकर्तव्य** = जैसा करना उचित हो । कर्तव्य के अनुसार । **यथाकर्म** = कार्यों के अनुसार । भाग्यानुसार । **यथाकल्प** = नियम या विधि के अनुसार । **यथाकाम** = मनोनुकूल । इच्छानुसार । **यथाकार** = मनमाने ढंग का । जैसा तैसा । **यथाकाल** = ठीक या उचित समय पर । **यथाकृत** । **यथाक्रम** । **यथागुण** = गुण के अनुसार । गुण के अनुरूप । **यथाज्ञान** = अपने ज्ञान वा समझ के अनुसार । **यथातथ** । **यथातृप्ति** = संतुष्टि के अनुकूल । जी भरकर । **यथादर्शन** = जैसा देखा गया । **यथादिक् यथादिश** = समस्त दिशाओं में । **यथापण्य** । **यथापूर्व** । **यथाप्रार्थित** = प्रार्थना के अनुकूल ।

यथाकामी—संज्ञा पुं० [सं० **यथाकामिन्**] अपनी इच्छा के अनुसार काम करनेवाला । स्वेच्छाचारी ।

यथाकामवध—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति को यह घोषित करके छोड़ देना कि इसे जो चाहे, मार डाले ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो राजकर्मचारी चार बार चोरी या गाँठ कतरने के अपराध में पकड़े जाते थे, उनको यह दंड दिया जाता था ।

यथाकारी—संज्ञा पुं० [सं० **यथाकारिन्**] मनमाना काम करनेवाला । स्वेच्छाचारी ।

यथाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] उचित समय । ठीक समय ।

यथाकृत—वि० [सं०] जैसा तै हुआ हो (कार्य) । नियम या रिवाज के अनुसार किया गया [को०] ।

यथाक्रम—क्रि० वि० [सं०] तरतीबवार । क्रमशः । क्रमानुसार ।

यथाख्यात—वि० [सं०] जैसा पहले कहा गया हो [को०] ।

यथाख्यात चरित—संज्ञा पुं० [सं०] सब कषायों (काम, क्रोधादि पातकों) का जिन साधुओं ने क्षय किया हो, उनका चरित्र । (जैन) ।

यथागत—वि० [सं०] मूर्ख । लंठ [को०] ।

यथाचार—वि० [सं०] १. चलन या रिवाज के अनुसार । २. आचरण के अनुसार [को०] ।

यथाजात—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ख । बेवकूफ । नीच ।

यथाज्येष्ठ—क्रि० वि० [सं०] पद या वरीयता के क्रमानुसार ।

यथातथ, यथातथ्य—वि० [सं०] जैसे का तैसा । ज्यों का त्यों । हूबहू । जैसा हो, वैसा ही । सचमुच । सत्यतः ।

यथाधिकार—वि० [सं०] आधिकारिक रूप से । अधिकार के अनुरूप । [को०] ।

यथाधीत—वि० [सं०] अध्ययन के अनुसार । पाठ के अनुसार [को०] ।

यथानियम—अव्य० [सं०] नियमानुसार । कायदे के मुताबिक । बाकायदा ।

यथानिर्दिष्ट—वि० [सं०] पूर्वकथित । पूर्वविवृत । पूर्वनिर्धारित (नियमादि) ।

यथानुभूत—वि० [सं०] १. अनुभव के अनुसार । २. पूर्व अनुभव द्वारा [को०] ।

यथानुरूप—वि० [सं०] एक दम मिलता हुआ [को०] ।

यथान्याय—अव्य० [सं०] न्याय के अनुसार । जो कुछ न्याय हो, वैसा । यथोचित ।

यथापण्य—अव्य० [सं०] बाजार की दर के अनुसार [को०] ।

यथापूर्व—अव्य [सं०] १. जैसा पहले था, वैसा ही । पहले की नाईं । पूर्ववत् । २. ज्यों का त्यों ।

यथाप्रदिष्ट—अव्य० [सं०] उचित । उपयुक्त [को०] ।

यथाप्रयोग—अव्य० [सं०] प्रथा या व्यवहार के अनुसार [को०] ।

यथाप्राण—अव्य० [सं०] शक्ति के अनुसार [को०] ।

यथाबल—अव्य० [सं०] १. सामर्थ्य के अनुसार । २. सेना की शक्ति या संख्या के अनुसार [को०] ।

यथाबुद्धि—अव्य० [सं०] दे० 'यथामति' ।

यथाभाग—अव्य० [सं०] १. भाग के अनुसार जितना चाहिए, उतना । हिस्से के मुताबिक । २. यथोचित ।

यथाभिप्रेत—वि० [सं०] जैसा चाहा या इच्छा किया गया हो । इच्छानुकूल [को०] ।

यथाभिमत, यथाभिरुचि, यथाभिलषित—वि० [सं०] दे० 'यथाभिप्रेत' [को०] ।

यथामति—अव्य० [सं०] बुद्धि के अनुसार । समझ के मुताबिक ।

यथायोग्य—अव्य० [सं०] जैसा चाहिए, वैसा । उपयुक्त । यथोचित । मुनासिब ।

यथारंभ—वि० [सं०] आरंभ के अनुसार । यथाक्रम [को०] ।

यथारथⓟ—अव्य० [सं० **यथार्थ**] दे० 'यथार्थ'।

यथारुचि—अव्य० [सं०] १. रुचि के अनुसार। पसंद के मुताबिक। इच्छानुसार। मरजी के मुताबिक।

यथार्थ—अव्य० [सं०] १. ठीक। वाजिब। जैसे,—आपका कहना यथार्थ है। २. जैसा ठीक होना चाहिए, वैसा। ज्यों का त्यों। जैसे का तैसा।

यथार्थतः—क्रि० वि० [सं०] १. सचमुच। सत्यतः। २. उचित रूप से। सही अर्थ में [को०]।

यथार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यथार्थ का भाव। सचाई। सत्यता। सच्चापन।

यथार्ह—वि० [सं०] १. योग्यता या पात्रता के अनुसार। २. उचित। न्याय्य। ३. मनपसंद [को०]।

यथालब्ध[1]—वि० [सं०] जितना प्राप्त हो, उसी के अनुसार। जो कुछ मिले, उसी के मुताबिक।

यथालब्ध—संज्ञा स्त्री० जैनियों के अनुसार, जो कुछ मिल जाय उसी से संतुष्ट रहने की वृत्ति।

यथालाभ—वि० [सं०] जो कुछ मिले, उसी के अनुसार। जो प्राप्त हो, उसी पर निर्भर। उ०—यथालाभ संतोष सदा परगुन नहिं दोष कहौंगो।—तुलसी (शब्द०)।

यथावकाश—वि० [सं०] १. अवसर के अनुकूल। २. स्थान के अनुकूल। ३. उचित स्थान पर [को०]।

यथावत्—अव्य० [सं०] १. ज्यों का त्यों। जैसा था, वैसा ही। जैसे का तैसा। २. जैसा चाहिए, वैसा। पूर्ण रीति से। अच्छी तरह। जैसे, यथावत् सत्कार करना।

यथावस्थित—अव्य० [सं०] १. जैसा था, वैसा ही। २. सत्य। ठीक। ३. स्थिर। अचल।

यथाविधि—अव्य० [सं०] विधि के अनुसार। विधिपूर्वक। विधिवत्।

यथाविहित—अव्य० [सं०] जैसा विधान हो, वैसा ही। विधि के अनुसार।

यथाशक्ति—अव्य० [सं०] सामर्थ्य के अनुसार। जितना हो सके। भरसक।

यथाशक्य—अव्य० [सं०] जहाँ तक हो सके। जहाँ तक संभव हो। जहाँ तक मुमकिन हो। सामर्थ्य भर। भरसक।

यथाशास्त्र—अव्य० [सं०] शास्त्र के अनुसार। शास्त्र के अनुकूल। जैसा शास्त्रों में वर्णित है वैसा।

यथाश्रम—वि० [सं०] १. आश्रम जीवन के अनुसार। २. परिश्रम के अनुसार।

यथासंभव—अव्य० [सं० **यथासम्भव**] जहाँ तक हो सके। जितना हो सके। जितना मुमकिन हो।

यथासमय—अव्य० [सं०] १. ठीक समय पर। ठीक वक्त पर। नियत समय पर। २. समय के अनुसार। जैसा समय हो, वैसा।

यथासाध्य—अव्य० [सं०] जहाँ तक हो सके। जितना किया जा सके। यथाशक्ति।

यथास्थान—अव्य० [सं०] ठीक जगह पर। अपने स्थान पर। उचित स्थान पर।

यथेच्छ—अव्य० [सं०] जितना या जैसा जी में आवे, उतना या वैसा। इच्छा के अनुसार। मनमाना।

यथेच्छाचार—संज्ञा पुं० [सं०] जो जी में आवे वही करना, और उचित अनुचित का ध्यान न करना। स्वेच्छाचार। मनमाना काम करना।

यथेच्छाचारी—संज्ञा पुं० [सं० **यथेच्छाचारिन्**] १. मनमाना आचार करनेवाला। यथेच्छाचार करनेवाला। जो कुछ जी में आवे वही करनेवाला। मनमौजी।

यथेच्छित—क्रि० [सं०] इच्छानुसार। मनमाना। मनचाहा।

यथेप्सित—वि० [सं०] दे० 'यथेच्छित' [को०]।

यथेष्ट—वि० [सं०] जितना इष्ट हो। जितना चाहिए, उतना। काफी। पूरा। जैसे—(क) वे वहाँ से यथेष्ट धन ले आए। (ख) इस विषय में यथेष्ट कहा जा चुका है।

यथेष्टाचरण—संज्ञा पुं० [सं०] मनमाना काम करना। इच्छानुसार व्यवहार करना। स्वेच्छाचार।

यथेष्टाचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यथेष्टाचरण'।

यथेष्टाचारी—संज्ञा पुं० [सं० **यथेष्टाचारिन्**] अपने मन के अनुसार व्यवहार करनेवाला। मनमाना काम करनेवाला।

यथोक्त—अव्य० [सं०] जैसा कहा गया हो। कहे हुए अनुसार।

यथोक्तकारी—वि० [सं० यथोक्तकारिन्] १. शास्त्रों में जो कुछ कहा गया हो वही करनेवाला। २. आज्ञाकारी।

यथोद्गमन—संज्ञा पुं० [सं०] अवरोही। अनुपात में उतार का क्रम [को०]।

यथोचित—वि० [सं०] जैसा चाहिए वैसा। मुनासिब। ठीक। जैसे—उसे यथोचित दंड मिलना चाहिए।

यथोत्साह—अव्य [सं०] दे० 'यथाशक्ति'।

यथोद्देश—अव्य [सं०] निर्दिष्ट ढंग से [को०]।

यथोपदिष्ट—वि० [सं०] जैसा निर्दिष्ट किया गया हो, वैसा [को०]।

यथोपपत्ति—वि० [सं०] जैसा उचित हो, वैसा [को०]।

यथोपपन्न—वि० [सं०] समय पर जैसा कुछ घटित हो गया हो। स्वाभाविक [को०]।

यथोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यथा शब्द द्वारा अभिव्यक्त उपमा। (छंदःशास्त्र)।

यथोपयोग—वि० [सं०] उपयोग के अनुसार। आवश्यकतानुसार।

यदपिⓟ—अव्य० [सं० **यदि**+**अपि**] दे० 'यद्यपि'। उ०—जागृत था सौंदर्य यदपि वह सोती थी सुकुमारी। रूप चंद्रिका में उज्वल थी आज निशा की नारी।—कामायनी, पृ० १२५।

यदा—अव्य० [सं०] जिस समय। १. जिस वक्त। जब। २. जहाँ।

यदाकदा—अव्य० [सं०] जब तब। कभी कभी।

यदि—अव्य० [सं०] अगर। जो।

विशेष—इस अव्यय का उपयोग वाक्य के आरंभ में संशय अथवा किसी बात की अपेक्षा सूचित करने के लिये होता है। जैसे,—(क) यदि वे न आए तो ? (ख) यदि आप कहें तो मैं दे दूँ।

यदिच यदिचेत्—अव्य० [सं०] यद्यपि। अगरचे।

यदीय—वि० [सं०] जिसका [को०]।

यदु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ययाति राजा का बड़ा पुत्र जो देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—(क) महाभारत में लिखा है कि ययाति के शाप के कारण इनका राज्य नष्ट हो गया था; पर पीछे से इंद्र की कृपा से इन्हें फिर राज्य मिला था। शाप का कारण यह था कि ययाति ने वृद्ध होने पर इनसे कहा था कि तुम मेरा पाप और वृद्धावस्था ले लो, जिससे मैं फिर युवक हो जाऊँ। पर इसे इन्होंने स्वीकृत नहीं किया था। श्रीकृष्णचंद्र इन्हीं के वंश में हुए थे।

(ख) इस शब्द के साथ पति या राजा आदि का वाचक शब्द लगाने से श्रीकृष्ण का अर्थ होता है। जैसे,—यदुपति, यदुराज।

२. पुराणानुसार हर्यश्व राजा के पुत्र का नाम।

यदुकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यदुवंश'।

यदुध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक ऋषि का नाम।

यदुनंदन—संज्ञा पुं० [सं० यदुनन्दन] यदुकुल को आनंद देनेवाले, श्रीकृष्णचंद्र। १. कृष्ण चैतन्य के एक साथी भक्त।

यदुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] यदुवंश के स्वामी, श्रीकृष्ण।

यदुपति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

यदुभूप—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

यदुराईⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यदु + हिं० राई (=राजा)] श्रीकृष्ण।

यदुराज, यदुराट्—संज्ञा पुं० [सं०] यदुकुल के राजा श्रीकृष्ण।

यदुवंश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा यदु का कुल। यदु का खानदान।

यदुवंशमणि—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

यदुवंशी—संज्ञा पुं० [सं० यदुवंशिन्] यदुकुल में उत्पन्न। यदुकुल के लोग। यादव।

यदुवर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

यदुवीर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

यदूत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

यदृच्छया—क्रि० वि० [सं०] १. अकस्मात्। अचानक। २. इत्तफाक से। दैवसंयोग से। ३. मनमाने तौर पर। मन की मौज के अनुसार। बिना किसी नियम या कारण के।

यदृच्छयाभिज्ञ—संज्ञा [सं०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में एक। वह साक्षी जो घटना के समय आपसे आप या अकस्मात् आ गया हो।

यदृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवल इच्छा के अनुसार व्यवहार। स्वेच्छाचरण। मनमानापन। २. आकस्मिक। संयोग। इत्तफाक।

यद्यपि—अव्य० [सं०] अगरचे। हरचंद। बावजूद कि। उ०—यद्यपि ईंधन जरि गए अरिगण केशवदास। तदपि प्रतापानलन को पल पल बढ़त प्रकास।—केशव (शब्द०)।

यद्वातद्वा—अव्य० [सं०] कभी कभी।

यभन—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। रति। संभोग [को०]।

यम—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक साथ उत्पन्न बच्चों का जोड़ा। यमज। २. भारतीय आर्यों के एक प्रसिद्ध देवता जो दक्षिण दिशा के दिक्पाल कहे जाते हैं और आजकल मृत्यु के देवता माने जाते हैं।

विशेष—वैदिक काल में यम और यमी दोनों देवता, ऋषि और मंत्रकर्ता माने जाते थे और 'यम' को लोग 'मृत्यु' से भिन्न मानते थे। पर पीछे से यम ही प्राणियों को मारनेवाले अथवा इस शरीर में से प्राण निकालनेवाले माने जाने लगे। वैदिक काल में यज्ञों में यम की भी पूजा होती थी और उन्हें हवि दिया जाता था। उन दिनों वे मृत पितरों के अधिपति तथा मरनेवाले लोगों को आश्रय देनेवाले माने जाते थे। तब से अब तक इनका एक अलग लोक माना जाता है, जो 'यमलोक' कहलाता है। हिंदुओं का विश्वास है कि मनुष्य मरने पर सब से पहले यमलोक में जाता है और वहाँ यमराज के सामने उपस्थित किया जाता है। वही उसके शुभ और अशुभ कृत्यों का विचार करके उसे स्वर्ग या नरक में भेजते हैं। ये धर्मपूर्वक विचार करते हैं, इसीलिये धर्मराज भी कहलाते हैं। यह भी माना जाता है कि मृत्यु के समय यम के दूत ही आत्मा को लेने के लिये आते हैं। स्मृतियों में चौदह यमों के नाम आए हैं, जो इस प्रकार हैं—यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, उदुंबर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त। तर्पण में इनमें से प्रत्येक के नाम तीन तीन अंजलि जल दिया जाता है। मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि जब विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा ने अपने पति सूर्य को देखकर भय से आँखें बंद कर लीं, तब सूर्य ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया कि जाओ, तुम्हें जो पुत्र होगा, वह लोगों का संयमन करनेवाला (उनके प्राण लेनेवाला) होगा। जब इसपर संज्ञा ने उनकी ओर चंचल दृष्टि से देखा, तब फिर उन्होंने कहा कि तुम्हें जो कन्या होगी, वह इसी प्रकार चंचलतापूर्वक नदी के रूप में बहा करेगी। पुत्र तो यही यम हुए और कन्या यमी हुई, जो बाद में यमुना के नाम से प्रसिद्ध हुई। कहा जाता है कि यमी और यम दोनों यमज थे। यम का वाहन भैंसा माना जाता है।

पर्या०—**पितृपति। कृतांत। शमन। काल। दंडधर। श्राद्धदेव। धर्म। जीवितेश। महिषध्वज। महिषवाहन। शीर्णपाद। हरि। कर्मकर।**

३. मन, इंद्रिय आदि को वश या रोक में रखना। निग्रह। ४. चित्त को धर्म में स्थिर रखनेवाले कर्मों का साधन।

विशेष—मनु के अनुसार शरीरसाधन के साथ साथ इनका पालन नित्य कर्तव्य है। मनु ने अहिंसा, सत्यवचन, ब्रह्मचर्य, अकल्कता और अस्तेय ये पाँच यम कहे हैं। पर पारस्कर गृह्यसूत्र में तथा और भी दो एक ग्रंथों में इनकी संख्या दस कही गई है और नाम इस प्रकार दिए गए हैं—ब्रह्मचर्य, दया, क्षांति, ध्यान,

सत्य, अकल्कता, अहिंसा, अस्तेय, माधुर्य और यम। 'यम' योग के आठ अंगों में से पहला अंग है। विशेष दे० 'योग'।

५. कौआ। ६. शनि। ७. विष्णु। ८. वायु। ९. यमज। जोड़े। १०. दो की संख्या। ११. वायु। (जैन)।

यमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का शब्दालंकार या अनुप्रास जिसमें एक ही शब्द कई बार आता है; पर हर बार उसके अर्थ भिन्न भिन्न होते हैं। उ०—कनक कनक तें सौगुनो मादकता अधिकाइ। यहाँ एक कनक का अर्थ सोना और दूसरे का धतूरा है। २. एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और दो लघु मात्राएँ होती हैं। ३. सेना का एक प्रकार का व्यूह या जमाव। ४. वे दो बालक जो एक साथ ही उत्पन्न हुए हों। यमज। जोड़े। ५. संयम।

यमकात, यमकातर—संज्ञा पुं० [सं० यम+हिं० कातर] १. यम का छुरा या खाँड़ा। २. एक प्रकार की तलवार। उ०—(क) जनु यमकात करहिं सब भवाँ। जिउ लेइ जनहुँ स्वर्ग अपसवाँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) होय हनुमत यमकातर धाऊँ। आज स्वामि संकर सिर नाऊँ।—जायसी (शब्द०)।

यमकालिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० यमकालिन्दी] सूर्य की पत्नी संज्ञा जो यम और कालिंदी की माता थी [को०]।

यमकीट—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुवा।

यमघंट—संज्ञा पुं० [सं० यमघण्ट] १. एक दुष्ट योग जो रविवार के दिन मघा या पूर्वाफाल्गुनी, सोमवार के दिन पुष्य या श्लेषा, मंगलवार को ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी या अश्विनी, बुधवार को हस्त या आर्द्रा, बृहस्पति को पूर्वाषाढ़, रेवती या उत्तराभाद्रपद, शुक्र को स्वाति या रोहिणी, और शनिवार को शतभिषा या श्रवण नक्षत्र होने पर होता है। इस योग में शुभ कार्य वर्जित है। २. दीपावली का दूसरा दिन। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा।

यमचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज का शस्त्र।

यमज—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गर्भ से एक ही समय में और एक साथ उत्पन्न होनेवाली दो संतानें। एक साथ जन्म लेनेवाले दो बच्चों का जोड़ा। जौआँ। २. ऐसा घोड़ा जिसका एक ओर का अंग हीन और दुर्बल हो और दूसरी ओर का वही अंग ठीक हो। यह दोष माना जाता है। ३. अश्विनीकुमार।

यमजयी—वि० [सं०] यम पर विजय पानेवाला [को०]।

यमजात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यमज'।

यमजातना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमयातना] दे० 'यमयातना'।

यमजित्—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु को जीतनेवाले, मृत्युंजय।

यमतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] यम की प्रसन्नता के लिये किया जानेवाला यज्ञ [को०]।

यमत्व—संज्ञा पुं० [सं०] यम का भाव या धर्म।

यमदंड—संज्ञा पुं० [सं० यमदण्ड] यमराज का डंडा। कालदंड।

यमदंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार आश्विन, कार्तिक और अगहन के लगभग का कुछ विशिष्ट काल, जिसमें रोग और मृत्यु आदि का विशेष भय रहता है और जिसमें अल्प भोजन तथा विशेष संयम आदि का विधान है। कुछ लोगों के मत से यह समय कार्तिक के अंतिम आठ दिनों और अगहन के आरंभिक आठ दिनों का है; और कुछ लोगों के मत से आश्विन के अंतिम आठ दिन और पूरा कार्तिक मास इसके अंतर्गत है।

यमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे। विशेष दे० 'जमदग्नि'।

यमदुतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० यमद्वितीया] दे० 'यमद्वितीया'।

यमदूत, यमदूतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम के दूत। २. कौआ।

यमदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

यमदेवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरणी नक्षत्र, जिसके देवता यम माने जाते हैं।

यमद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] सेमर का पेड़। शाल्मलि वृक्ष।

विशेष—इसका यह नाम इसलिये है कि इसमें फूल तो बड़े सुंदर देख पड़ते हैं, परंतु उनसे कोई खाने लायक फल नहीं उत्पन्न होता।

यमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम का दरवाजा। मृत्यु। मौत। २. मृत्यु का सामीप्य [को०]।

यमद्वितीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ला द्वितीया। भाईदूज।

विशेष—कहते हैं, इस दिन यमराज ने अपनी बहन यमुना के यहाँ भोजन किया था। इसीलिये इस दिन बहन के यहाँ भोजन करना और उसे कुछ देना मंगलकारक और आयुवर्धक माना जाता है।

यमधार—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी तलवार या कटारी आदि जिसके दोनों ओर धार हो। जमदाढ़।

यमन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिबंध या निरोध करना। नियम से बाँधना। २. बंधन। बाँधना। ३. विराम देना। ठहराना। ४. रोकना। बंद करना। ५. यमराज।

यमन[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'यवन'।

यमनकल्यान—संज्ञा पुं० [अ० यमन+सं० कल्याण] दे० 'एमन'।

यमनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] भरणी नक्षत्र, जिसके देवता यम माने जाते हैं।

यमनाह(५)—संज्ञा पुं० [सं० यमनाथ, प्रा० जमनाह] यमों के स्वामी धर्मराज। उ०—कह नारद हम कीजै काहा। जेहि ते मानि जाइ यमनाहा।—विश्राम (शब्द०)।

यमनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनिका] दे० 'यवनिका'।

यमनी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का बहुमूल्य पत्थर (लाल या याकूत) जिसकी गणना रत्नों में होती है। यह पत्थर अरब के यमन प्रदेश से आता है।

यमनी—वि० १. यमन का निवासी। २. यमन संबंधी। ३. यमन का [को०]।

यमपुर—संज्ञा पुं० [सं०] यम के रहने का स्थान, जिसके विषय में यह माना जाता है कि मरने पर यम के दूत प्रेतात्मा को पहले यहाँ ले जाते हैं और तब उसे धर्मपुर में पहुँचाते हैं। यमलोक।

मुहा०—**यमपुर पहुँचाना** = मार डालना। प्राण ले लेना।

यमपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमलोक। यमपुर।

यमपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमराज। २. यम के दूत।

यमप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्र के दक्षिण में था।

विशेष—कहते हैं, यहाँ के निवासी यम के उपासक थे। शंकराचार्य ने वहाँ जाकर वहाँ के निवासियों को शैव बनाया था।

यमप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष। बड़ का पेड़।

यमभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

यमयन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

यमया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिषशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का नक्षत्रयोग।

यमयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यम के दूतों द्वारा दी हुई पीड़ा। २. नरक की पीड़ा। ३. मृत्यु के समय की पीड़ा।

यमरथ—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा।

यमराज—संज्ञा पुं० [सं०] यमों के राजा धर्मराज, जो मरने के पीछे प्राणी के कर्मों का विचार करके उसे दंड या उत्तम फल देते हैं। धर्मराज।

यमराज्य, यमराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] यमलोक।

यमल—संज्ञा पुं० [सं०] १. युग्म। जोड़ा। २. दो लड़के जो एक साथ ही पैदा हुए हों। यमज।

यमलच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार।

यमलपत्रक—संज्ञा सं० [सं०] १. कनेर। २. अश्मंतक वृक्ष।

यमलसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गौ जिसके दो बच्चे एक साथ उत्पन्न हुए हों।

यमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का हिक्का या हिचकी का रोग, जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर दो दो हिचकियाँ एक साथ आती हैं और सिर तथा गरदन काँपने लगती है। २. एक प्राचीन नदी का नाम। ३. तांत्रिकों की एक देवी।

यमलार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] गोकुल के दो अर्जुन वृक्ष जो पुराणानुसार कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे।

विशेष—ये दोनों एक बार मद्य पीकर मत्त हो रहे थे और नंगे होकर नदी में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। इसी पर नारद ऋषि ने इन्हें शाप दिया, जिससे ये पेड़ हो गए थे। श्रीकृष्ण ने उस समय इनका उद्धार किया था, जब वे यशोदा द्वारा ऊखल में बाँधे गए थे।

यमली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक में मिली हुई दो चीजें। जोड़ी। २. स्त्रियों का घाघरा और चोली।

यमलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह लोक जहाँ मरने के उपरांत मनुष्य जाते हैं। यमपुरी।

मुहा०—**यमलोक भेजना या पहुँचाना** = मार डालना। प्राण लेना।

२. नरक।

यमवाहन—संज्ञा [पुं०] सं० भैंसा।

यमव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का धर्म जिसके अनुसार उसे यमराज की भाँति निष्पक्ष होकर सबको दंड देना चाहिए। राजा का दंडनियम।

यमसदन—संज्ञा पुं० [सं०] यमपुर।

यमसू[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

यमसू[2]—वि० स्त्री० जिसके एक ही गर्भ से एक साथ दो संतानें हों।

यमसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा घर जिसके पश्चिम उत्तर दिशा में शाला हो।

यमस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

यमहंता—संज्ञा पुं० [सं० यमहन्तृ] काल का नाश करनेवाला।

यमांतक—संज्ञा पुं० [सं० यमान्तक] शिव।

यमातिरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ४९ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

यमादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक रूप।

यमानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवायन।

यमानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवायन।

यमानुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की छोटी बहन, यमुना।

यमारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यमालय—संज्ञा पुं० [सं०] यम का घर, यमपुर।

यमिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

यमी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यम की बहन, जो पीछे यमुना नदी होकर बही। यमुना नदी।

यमी[2]—संज्ञा पुं० [सं० यमिन्] संयम करनेवाला मनुष्य। संयमी।

यमुंड—संज्ञा पुं० [सं० यमुण्ड] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

यमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. यम की बहन यमी, जो सूर्य के वीर्य से संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी और जो संज्ञा को सूर्य द्वारा मिले हुए शाप के कारण पीछे से नदी हो गई थी। ३. उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध बड़ी नदी जो हिमालय के यमुनोत्तरी नामक स्थान से निकलकर प्रयाग में गंगा में मिलती है यह ८६० मील लंबी है और दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि नगर इसके किनारे बसे हुए हैं। हिंदू इसे बहुत पवित्र नदी और यम की बहन यमी का स्वरूप मानते हैं।

यमुनाभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण के भाई बलराम जिन्होंने अपने हल से यमुना के दो भाग किए थे।

यमुनोत्तरी—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में गढ़वाल के पास का एक पर्वत जिससे यमुना नदी निकली है।

यमेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घड़ियाल या बड़ी झाँझ जो प्राचीन काल में एक घड़ी पूरी होने पर बजाई जाती थी।

यमेश—संज्ञा पुं० [सं०] भरणी नक्षत्र।

यमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

ययाति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा नहुष के पुत्र जो चंद्रवंश के पाँचवें राजा थे और जिनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के साथ हुआ था।

विशेष—इनको देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नाम के दो तथा शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अणु और पुरु नाम के तीन पुत्र हुए थे। विशेष दे० 'देवयानी'। इनमें से यदु से यादव वंश और पुरु से पौरव वंश का आरंभ हुआ। शर्मिष्ठा इन्हें विवाह के दहेज में मिली थी। शुक्राचार्य ने इन्हें यह कह दिया था कि शर्मिष्ठा के साथ संभोग न करना। पर जब शर्मिष्ठा ने ऋतुमती होने पर इनसे ऋतुरक्षा की प्रार्थना की, तब इन्होंने उसके साथ संभोग किया और उसे संतान हुई। इसपर शुक्राचार्य ने इन्हें शाप दिया कि तुम्हें शीघ्र बुढ़ापा आ जायगा। जब इन्होंने शुक्राचार्य को सभोग का कारण बतलाया, तब उन्होंने कहा कि यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा ले लेगा, तो तुम फिर ज्यों के त्यों हो जाओगे। इन्होंने एक एक करके अपने चारों पुत्रों से कहा कि तुम हमारा बुढ़ापा लेकर अपना यौवन हमें दे दो, पर किसी ने स्वीकार नहीं किया। अंत में पुरु ने इनका बुढ़ापा आप ले लिया और अपनी जवानी इन्हें दे दी। पुनः यौवन प्राप्त करके इन्होंने एक सहस्र वर्ष तक विषयसुख भोगा। अंत में पुरु को अपना राज्य देकर आप वन में जाकर तपस्या करने लगे और अंत में स्वर्ग चले गए। स्वर्ग पहुँचने पर भी एक बार यह इंद्र के शाप से वहाँ से च्युत हुए थे; क्योंकि इन्होंने इंद्र से कहा था कि जैसी तपस्या मैंने की है, वैसी और किसी ने नहीं की। जब ये स्वर्ग से च्युत हो रहे थे, तब मार्ग में इन्हें अष्टक ऋषियों ने रोककर फिर से स्वर्ग भेजा था। इसका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है।

ययातिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

ययावर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यायावर'।

ययि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वमेध यज्ञ के उपयुक्त अश्व। २. मेघ। बादल। दे० 'ययी' [को०]।

ययी—संज्ञा पुं० [सं० ययिन्] १. शिव। २. घोड़ा। ३. मार्ग। पथ। रास्ता। दे० 'ययि'।

ययु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा। २. घोड़ा।

यरकान—संज्ञा पुं० [अ० यरक़ान] एक रोग जिसमें शरीर, विशेषतः आँखें पीली हो जाती हैं। कमल रोग। पीलिया [को०]।

यल(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० इला] पृथिवी। धरती [को०]।

यलधीश, यलनाथ—संज्ञा पुं० [सं० इला + अधीश] राजा (डिं०)।

यला—संज्ञा स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी। (डिं०)।

यलाइंद—संज्ञा पुं० [सं० इला + इन्द्र] राजा। (डिं०)।

यलापत—संज्ञा पुं० [सं० इला + पति] राजा। (डिं०)।

यव—संज्ञा पुं० [सं०] १. जौ नामक अन्न। विशेष दे० 'जौ'। २. एक जौ या १२ सरसों की तौल का एक मान। ३. लंबाई की एक नाप जो एक इंच की एक तिहाई होती है। ४. सामुद्रिक के अनुसार जौ के आकार की एक प्रकार की रेखा जो उँगली में होती है और जो बहुत शुभ मानी जाती है। कहते हैं, यदि यह रेखा अँगूठे में हो, तो उसका फल और भी शुभ होता है। इस रेखा का रामचंद्र के दाहिने पैर के अँगूठे में होना माना जाता है। ५. वेग। तेजी। ६. वह वस्तु जो दोनों ओर उन्नतोदर हो।

यवकंटक—संज्ञा पुं० [सं० यवकण्टक] खेतपापड़ा।

यवक—संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

यवकलश—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ।

यवक्य—वि० [सं०] यव बोने के उपयुक्त (खेत)। जिसमें जौ बोया हो [को०]।

यवक्रीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो भरद्वाज के पुत्र थे।

यवक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

यवक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] जौ के पौधों को जलाकर निकाला हुआ खार। विशेष दे० 'जवाखार'।

यवचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला चतुर्थी।

यवज—संज्ञा पुं० [सं०] १. यवक्षार। २. गेहूँ का पौधा। ३. अजवायन।

यवतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी नाम की लता।

यवदोष—संज्ञा पुं० [सं०] जौ के आकार की एक रेखा, जो रत्नों में पड़ जाती है और जिससे वह रत्न कुछ दूषित हो जाता है।

यवद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान जावा द्वीप का प्राचीन नाम।

यवन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० यवनी] १. वेग। तेजी। २. तेज घोड़ा। ३. यूनान देश का निवासी। यूनानी।

विशेष—यूनान देश में 'आयोनिया' नामक प्रांत या द्वीप है, जिसका लगाव पहले पूर्वीय देशों से बहुत अधिक था। उसी के आधार पर भारतवासी उस देश के निवासियों को, और तदुपरांत भारत में यूनानियों के आने पर उन्हें भी 'यवन' कहते थे। पीछे से इस शब्द का अर्थ और भी विस्तृत हो गया और रोमन, पारसी आदि प्रायः सभी विदेशियों, विशेषतः पश्चिम से आनेवाले विदेशियों को लोग 'यवन' ही कहने लगे; और इस शब्द का प्रयोग प्रायः 'म्लेच्छ' के अर्थ में होने लगा। परंतु महाभारत काल में यवन और म्लेच्छ ये दोनों भिन्न भिन्न जातियाँ मानी जाती थीं। पुराणों के अनुसार अन्यान्य म्लेच्छ जातियों (पारद, पह्लव आदि) के समान यवनों की उत्पत्ति भी वसिष्ठ और विश्वामित्र के झगड़े के समय वसिष्ठ की गाय के शरीर से हुई थी। गाय के 'योनि' देश से यवन उत्पन्न हुए थे।

४. मुसलमान। उ०—भूषण यों अवनी यवनी कहैं कोऊ कहै सरजा सो हहारे। तू सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतार न मारु हमारे।—भूषण (शब्द०)। ५, कालयवन नामक म्लेच्छ राजा जो कृष्ण से कई बार लड़ा था।

यवनद्विष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल। गुगुल [को०]।

यवनप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

यवनाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] यवन जाति का एक ज्योतिषाचार्य, जिसका उल्लेख बराहमिहिर आदि ने किया है। विद्वानों का अनुमान है कि यह संभवत: 'टालेमी' था।

यवनानी[1] - वि० [सं०] यवन देश संबंधी। यूनान का। यूनानी।

यवनानी[2]—संज्ञा स्त्री० १. यूनान की भाषा। २. यूनान की लिपि।

विशेष—कात्यायन ने यवनानी लिपि का उल्लेख किया है।

यवनारि–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण, जिनकी कालयवन से कई लड़ाइयाँ हुई थीं।

यवनाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआर का पौधा। २. इस पौधे से उत्पन्न अन्न के दाने। जुआर। ३. जौ के डंठल जो सूखने पर चौपायों को खिलाए जाते हैं।

यवनालज—संज्ञा पुं० [सं०] यवक्षार। जवाखार।

यवनाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला देश के एक प्राचीन राजा का नाम जो बहुलाश्व का पिता था।

यवनिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. कनात। २. नाटक का परदा।

विशेष—प्राचीन काल में नाटक के परदे संभवत: यवन देश से आए हुए कपड़े से बनते थे; इसीलिये इनको यवनिका कहते थे। आधुनिक अनेक पंडितों के शोधानुसार शुद्ध संस्कृत शब्द 'जवनिका' है। 'राजशेखर' की 'कर्पूरमंजरी' में प्रयुक्त 'जवनिकांतर' के संस्कृतीकरण की भ्रांति से 'यवनिका' शब्द बना और चल पड़ा। इसका यवन शब्द से संबंध नहीं मानते।

यवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यवन की या यवन जाति की स्त्री।

यवनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीसा। २. मिर्च। ३. लहसुन। ४. नीम। ५. प्याज। ६. शलजम। ७. गाजर।

यवनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली खजूर।

यवफल संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्रजौ। २. कुटज। ३. प्याज। ४. जटामासी। ५. बाँस। ६. प्लक्ष वृक्ष। पाकड़ का पेड़।

यवबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० **यवबिन्दु**] वह हीरा जिसमें बिंदु सहित यवरेखा हो। कहते हैं ऐसा हीरा पहनने से देश छूट जाता है।

यवमंड—संज्ञा पुं० [सं० **यवमण्ड**] जौ का माँड़ जो नए ज्वर के रोगी को पथ्य के रूप में दिया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह लघु, ग्राहक और शूल तथा त्रिदोष का नाश करनेवाला है।

यवमंथ—संज्ञा पुं० [सं० **यवमन्थ**] जौ का सत्तू।

यवमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके विषम चरणों में रगण, जगण, जगण होते और सम चरणों में जगण, रगण और एक गुरु होता है। जैसे,—त्यागि दे सबै जु है, असत्य काम। सुधार जन्म आपनो, न भूल राम।

यवमद्य संज्ञा पुं० [सं०] जौ का बनाया हुआ मद्य। जौ की शराब।

यवमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चांद्रायण व्रत। २. पाँच दिनों में समाप्त होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। ३. एक प्रकार का नगाड़ा (को०)। ४. एक नाप (को०)।

यवलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस, सुश्रुत के अनुसार, मधुर, लघु, शीतल और कसैला होता है।

यवलास—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार।

यववर्णाभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

यवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो वैद्यक के अनुसार मधुर, रूखा, शीतवीर्य और मलभेदक माना जाता है।

यवशूक—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार।

यवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्राद्ध जो वैशाख के शुक्ल पक्ष में कुछ विशिष्ट दिनों और योगों में और विषुव संक्रांति अथवा तृतीया के दिन होता है और जिसमें केवल जौ के आटे का व्यवहार होता है।

यवस—संज्ञा पुं० [सं०] भूसा।

यवसुर—संज्ञा पुं० [सं०] जौ की शराब।

यवागू—संज्ञा पुं० [सं०] जौ या चावल का वह माँड़ जो सड़ाकर कुछ खट्टा कर दिया गया हो; अर्थात् जिसमें कुछ खमीर आ गया हो। माँड़ की काँजी।

विशेष—इसका व्यवहार वैद्यक में पथ्य के लिये होता है; और यह ग्राहक, बलकारक तथा वातनाशक माना जाता है।

यवाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] जौ का भूसा।

यवाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. यवक्षार। २. अजवायन।

यवान—वि० [सं०] वेगवान्। तेज। क्षिप्र।

यवानिका, यवानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवायन।

यवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] यव, जो पकाया गया हो [को०]।

यवाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] जौ की काँजी जो वैद्यक में वात और श्लेष्मानाशक, रक्तवर्धक, भेदक तथा रक्तदोषनाशक मानी जाती है।

यवाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा जो जौ की फसल को हानि पहुँचाता है।

यवास, यवासक, यवासा—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा नामक काँटेदार क्षुप। वि० दे० 'जवासा'।

यवाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] यवक्षार। यवनालज [को०]।

यविष्ठ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा भाई। २. अग्नि। ३. ऋग्वेद के एक मंत्र के द्रष्टा ऋषि का नाम जिन्हें अग्नियविष्ठ भी कहते हैं।

यविष्ठ[2]—वि० [सं०] सब से छोटा। कनिष्ठ।

यवीनर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार अजमीढ़ के एक पुत्र का नाम। २. भागवत के अनुसार द्विमीढ़ के एक पुत्र का नाम।

यवीयान्[1]—वि० [सं० **यवीयस्**] [वि० स्त्री० **यवीयसी**] १. सब से छोटा। लघुतम। कनिष्ठतम। २. हीन। निम्न।

यवीयान्[2]—संज्ञा पुं० १. छोटा भाई। सबसे छोटा भाई। २. शूद्र [को०]।

यवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] यवक्षार। जवाखार।

यव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मास। महीना। २. यव का खेत। यवक्य क्षेत्र [को०]।

यव्यावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैदिक काल की एक नदी। २. वैदिक काल की एक नगरी।

यशःपटह—संज्ञा पुं० [सं०] कीर्ति का धौंसा। यश की दुंदुभी [को०]।

यशःशेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु। मौत। २. वह जिसका यश ही बचा हो, मृत व्यक्ति [को०]।

यश—संज्ञा पुं० [सं० **यशस्**] १. अच्छा काम करने से होनेवाला नाम। नेकनामी। कीर्ति। सुख्याति। उ०—(क) यश अपयश देखत नहीं देखत श्यामल गात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) रखहु मुनि जन यश लीजै।—केशव (शब्द०)। (ग) हा पुत्र लक्ष्मण छुड़ावहु बेगि मोहीं। मार्तंडवंश यश की सब लाज तोहीं।—केशव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**पाना**।—**मिलना**।

मुहा०—**यश कमाना या लूटना** = यश वा कीर्ति प्राप्त करना। नाम हासिल करना।

२. बड़ाई। प्रशंसा। महिमा।

मुहा०—**यश गाना** = (१) प्रशंसा करना। (२) कृतज्ञ होना। एहसान मानना। **यश मानना** = कृतज्ञ होना। निहोरा मानना। एहसान मानना।

यशद—संज्ञा पुं० [सं०] एक धातु। जस्ता। दस्ता [को०]।

यशब, यशम—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पत्थर जो हरा सा होता है।

विशेष—यह चीन और लंका में बहुत होता है। इस पत्थर की 'नार्दली' बनती है, जिसे लोग छाती पर पहनते हैं। कलेजे, मेदे और दिमाग की बीमारियों को दूर करने का इस पत्थर में विलक्षण प्रभाव माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि जिसके पास यह पत्थर होता है, उसपर बिजली का कुछ प्रभाव नहीं होता। इसे 'संगे यशब' भी कहते हैं।

यशस्कर—वि० [सं०] कीर्ति बढ़ानेवाला।

यशस्काम—वि० [सं०] १. यश का इच्छुक। २. महत्वाकांक्षी [को०]।

यशस्य—वि० [सं०] १. यशकारी। यशस्कर। कीर्तिकारी। २. प्रसिद्ध। श्रेष्ठ [को०]।

यशस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती नामक पौधा [को०]।

यशस्वान्—वि० [सं० **यशस्वत्**] [वि० स्त्री० **यशस्वती**] यशस्वी। कीर्तिमान।

यशस्विनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बनकपास। २. महा ज्योतिष्मती। ३. गंगा नदी।

यशस्विनी[2]—वि० स्त्री० जिसे यश प्राप्त हो। कीर्तिमती।

यशस्वी—वि० [सं० **यशस्विन्**] [वि० स्त्री० **यशस्विनी**] जिसका खूब यश हो। कीर्तिमान।

यशी—वि० [सं० **यश + ई** (प्रत्य०)] यशस्वी। कीर्तिमान्। उ०—ये जो पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं, सो महाबली यशी होंगे।—लल्लू० (शब्द०)।

यशील(५)†—वि० [सं० **यश + ईल** (प्रत्य०)] कीर्तिमान्। यशस्वी। उ०—अंबर चित्र विचित्र बिराजत आयो सुशील यशील सभा में।—रघुराज (शब्द०)।

यशुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० **यशोवती**] दे० 'यशोदा'।

यशोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। पारद। २. वह जो कीर्तिप्रद हो (को०)।

यशोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नंद की स्त्री जिन्होंने श्रीकृष्ण को पाला था। विशेष दे० 'नंद'। २. दिलीप की माता का नाम। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक जगण और दो गुरु वर्ण होते हैं। जैसे, जपौ गुपाला। सुभोर काला। कहै यशोदा। लहै प्रमोदा।

यशोधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम। २. उत्सर्पिणी के एक अर्हत् का नाम। (जैन)। ३. कर्म अथवा सावन मास का पाँचवाँ दिन।

यशोधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौतम बुद्ध की पत्नी और राहुल की माता का नाम। २. कर्म अथवा सावन मास की चौथी रात।

यशोधरेय—संज्ञा पुं० [सं०] यशोधरा का पुत्र, राहुल।

यशोभृत्—वि० [सं०] यशी। प्रसिद्ध। ख्यात [को०]।

यशोमति, यशोमती—संज्ञा स्त्री० [सं० **यशोवती**] दे० 'यशोदा'।

यशोमत्य—संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेयपुराण के अनुसार एक जाति का नाम।

यशोमाधव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

यशोहर—वि० [सं०] कीर्ति का अपहरण करनेवाला [को०]।

यष्टव्य—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य [को०]।

यष्टा—वि० पुं० [सं० **यष्टृ**] यज्ञकर्ता। यजन करनेवाला [को०]।

यष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाठी। छड़ी। लकड़ी। २. पताका का डंडा। ध्वज। ३. टहनी। शाखा। डाल। ४. जेठी मधु। मुलेठी। ५. ताँत। ६. गले में पहनने का एक प्रकार का मोतियों का हार। ७. लता। बेल। ८. बाहु। बाहँ। ९. ऊख। इक्षु (को०)।

यष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतर पक्षी। २. डंडा। ३. मजीठ।

यष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथ में रखने की छड़ी। लकड़ी। लाठी। २. जेठी मधु। मुलेठी। ३. बावली। वापी। ४. गले में पहनने का हार। यष्टी।

यष्टिकाभरण—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार जल को ठंढा करने का उपाय।

यष्टिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] यष्टिधारी। दंड धारण करनेवाला [को०]।

यष्टिप्राण—वि० [सं०] जिसका यष्टि ही आधार हो। क्षीण शरीर। अतीव दुर्बल [को०]।

यष्टिमधु—संज्ञा पुं० [सं०] जेठी मधु। मुलेठी।

यष्टियंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **यष्टियन्त्र**] वह धूपघड़ी जिसमें एक छड़ी सीधी खड़ी गाड़ दी जाती है और उसकी छाया से समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

यष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का हार। मोतियों की ऐसी माला जिसमें बीच बीच में मणि भी हो। २. मुलेठी।

यस्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

यह—सर्व० [सं० **यः** (पुं०) **या एषः**] निकट की वस्तु का निर्देश करनेवाला एक सर्वनाम, जिसका प्रयोग वक्ता और श्रोता को छोड़कर और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों आदि के लिये होता है। जैसे,—(क) यह कई दिनों से बीमार है। (ख) यह तो अभी चला जायगा।

विशेष—(क) जब इसमें विभक्ति लगती है, तब 'यह' का रूप खड़ी बोली में 'इस' (बहुव० इन) और ब्रजभाषा में 'या' हो जाता है। जैसे, इसको, (इनको) याकों। (ख) पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों की भाँति इसका प्रयोग प्रायः विशेषण के समान होता है। जब 'यह' अकेला रहता है, तब तो सर्वनाम होता है; और जब इसके साथ कोई संज्ञा आती है, तब यह विशेषण हो जाता है। जैसे,—'यह बाहर जायगा' में यह सर्वनाम है; और 'यह लड़का पाजी है' में 'यह' विशेषण है।

यहाँ—क्रि० वि० [सं० **इह**] इस स्थान में। इस जगह पर।

यहि—सर्व०, वि० [हिं० **यह**] १. 'यह' का वह रूप जो पुरानी हिंदी में उसे कोई विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, यहि कों, यहि तें। २. 'ए' का विभक्तियुक्त रूप, जिसका व्यवहार पीछे कर्म और संप्रदान में ही प्रायः होने लगा। इसको।

यही—अव्य० [हिं० **यह + ही** (प्रत्य०)] निश्चित रूप से यह। यह ही। उ०—यही गोप यह ग्वाल इहै सुख, यह लीला कहुँ तजत न साथ।—सूर (शब्द०)।

यहूद—संज्ञा पुं० [इब्रानी] वह देश जहाँ हजरत ईसा पैदा हुए थे और जहाँ के निवासी यहूदी कहलाते हैं। यह देश एशिया की पश्चिमी सीमा पर है।

यहूदी—संज्ञा पुं० [हिं० **यहूद**] [स्त्री० यहूदिन] १. यहूद देश का निवासी। २. आर्य जाति से भिन्न शामी जाति के अंतर्गत एक जाति।

यहूयहू—संज्ञा पुं० [देश०] कबूतर की एक जाति।

यांचा—संज्ञा स्त्री० [सं० **याञ्चा**] दे० 'याँचा'।

यांत्रिक—वि० [सं० **यान्त्रिक**] [वि० स्त्री० **यान्त्रिकी**] १. यंत्र संबंधी। मशीन वा औजार संबंधी। २. यंत्र द्वारा निर्मित। यंत्र द्वारा उत्पादित। ३. कृत्रिम। बनावटी। नकली।

यांत्रिकी—संज्ञा स्त्री० [सं० **यान्त्रिकी**] यंत्र विद्या। इंजीनियरी।

याँ—क्रि० वि० [हिं०] 'यहाँ'। उ०—(क) याँ नम्र भाव ही से जाना मेरे मन भाया है।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)। (ख) फड़कता है क्यों हाथ दहना। याँ तपोवन में क्या होगा लहना।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)।

याँचना(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **याञ्चा**] दे० 'याचना'।

याँचना[२]—क्रि० स० दे० 'याचना'।

याँचा—संज्ञा स्त्री० [सं० **याञ्चा**] माँगने की क्रिया। प्रार्थनापूर्वक माँगना।

या[१]—अव्य० [फ़ा०] विकल्पसूचक शब्द। अथवा। वा। उ०—आप रहा है सीस नवाय। या प्रवाह ने दिया झुकाय।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)।

या[२]—सर्व० वि० [हिं०] 'यह' का वह रूप जो उसे ब्रज भाषा में कारक चिह्न लगने के पहले प्राप्त होता है। उ०—(क) या चौदहें प्रकास में ह्वैहै लंका दाह।—केशव (शब्द०)। (ख) चलौ लाल या बाग में लखौ अपूरब केलि।—मतिराम (शब्द०)।

या[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योनि। २. गति। चाल। ३. रथ। गाड़ी। ४. अवरोध। रोक। वारण। ५. ध्यान। ६. प्राप्ति। लाभ।

याक[१]—संज्ञा पुं० [तिब्बती **ग्याक**, सं० **गावक**] हिमालय पर होनेवाला जंगली बैल जिसकी पूँछ का चँवर बनता है।

याका[२]—वि० [हिं० **एक**, फ़ा० **यक**] दे० 'एक'। उ०—(क) कोऊ याकौ बात न समुझै चाहै बीसन दाँय कहन।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)। (ख) डाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै, बिनु दाँतन मुँह अस पोपलान।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)।

याकूत—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का लाल रंग का बहुमूल्य पत्थर। लाल।

याग—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ। उ०—योग याग व्रत दान जो कीजै।—केशव (शब्द०)।

यागसंतान—संज्ञा पुं० [सं० **यागसन्तान**] इंद्र के पुत्र जयंत का एक नाम।

याचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो माँगता हो। माँगनेवाला। उ०—(क) चातक ज्यौं कातिक के मेघ तें निराश होत, याचक त्यों तजत आस कृपण के दान की।—हृदयराम (शब्द०)। (ख) जनि याँचै ब्रजपति उदार अति याचक फिरि न कहावै।—केशव (शब्द०)। २. भिखमंगा।

यौ०—**याचकवृत्ति**।

याचकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीख माँगने का काम [को०]।

याचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'याचना' [को०]।

याचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षुक। २. निवेदक। वह जो विवाह के लिये कन्या की याचना करे [को०]।

याचना[१]—क्रि० स० [सं० **याचन**] प्राप्त करने के लिये विनती करना। प्रार्थना करना। माँगना।

याचना[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] माँगने की क्रिया।

याचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० √याच्] किसी निर्वाचन या निर्णय के विरुद्ध न्यायालय से की हुई प्रार्थना। (अं० पिटीशन)।

याचित—वि० [सं०] माँगा हुआ । प्रार्थित [को०] ।

याचितक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी से कुछ दिन के लिये माँगी हुई वस्तु । मँगनी की चीज ।

विशेष—याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि माँगे हुए पदार्थ को जो न लौटावे, उसपर १२ पण जुरमाना किया जाय ।

याचिता—संज्ञा पुं० [सं० याचितृ] १. भिक्षुक । २. आवेदक । निवेदक । ३. पाणिग्रहार्थी । विवाहार्थी [को०] ।

याचिष्णु—वि० [सं०] १. भीख माँगने का इच्छुक । २. भीख माँगने का अभ्यस्त [को०] ।

याचिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भीख माँगने की इच्छा । २. भीख माँगने की प्रकृति [को०] ।

याच्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना । माँगना ।

याच्य—वि० [सं०] याचना करने के योग्य । माँगने के योग्य ।

याच्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रार्थनीयता [को०] ।

याज्—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ करानेवाला । याजक ।

याज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न । अनाज । २. पका हुआ चावल (को०) । ३. यज्ञ करानेवाला (को०) । ४. एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

याजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ करानेवाला । २. राजा का हाथी । ३. मस्त हाथी ।

याजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की क्रिया ।

याजयिता—सं० पुं० [सं० याजयितृ] यज्ञकर्ता का स्थानापन्न पुरोहित [को०] ।

याजि—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ करनेवाला ।

याजी—संज्ञा पुं० [सं० याजिन्] यज्ञ करनेवाला ।

याजुष[१]—वि० [सं०] [स्त्री० याजुषी] यजुर्वेद संबंधी ।

याजुष[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेदानुयायी । २. तीतर नाम का पक्षी [को०] ।

याजुषीअनुष्टुप्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें सब मिलाकर आठ वर्ण होते हैं ।

याजुषीउष्णिक्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें सात वर्ण होते हैं ।

याजुषीगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें छह् वर्ण होते हैं ।

याजुषीजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें बारह वर्ण होते हैं ।

याजुषीत्रिष्टुप्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें ग्यारह वर्ण होते हैं ।

याजुषीपंक्ति—संज्ञा पुं० [सं० याजुषी पङ्क्ति] एक वैदिक छंद जिसमें दस वर्ण होते हैं ।

याजुषीबृहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसमें नौ वर्ण होते हैं ।

याज्ञ—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी । यज्ञ का ।

याज्ञतूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

याज्ञदत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

याज्ञवल्क्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध ऋषि जो वैशंपायन के शिष्य थे ।

विशेष—कहते हैं, एक बार वैशंपायन ने किसी कारण से अप्रसन्न होकर इनसे कहा कि तुम मेरे शिष्य होने के योग्य नहीं हो; अतः जो कुछ तुमने मुझसे पढ़ा है, वह सब लौटा दो । इस पर याज्ञवल्क्य ने अपनी सारी पढ़ी हुई विद्या उगल दी, जिसे वैशंपायन के दूसरे शिष्यों ने तीतर बनकर चुग लिया । इसीलिये उनकी शाखाओं का नाम तैत्तिरीय हुआ । याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु का स्थान छोड़कर सूर्य की उपासना की और सूर्य के वर से वे शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयी संहिता के आचार्य हुए । इनका दूसरा नाम वाजसनेय भी था ।

२. एक ऋषि जो राजा जनक के दरबार में रहते थे और जो योगीश्वर याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध हैं । मैत्रेयी और गार्गी इन्हीं की पत्नियाँ थीं । ३. योगीश्वर याज्ञवल्क्य के वंशधर एक स्मृतिकार । मनुस्मृति के उपरांत इन्हीं की स्मृति का महत्व है; और उसका दायभाग आज तक प्रमाण माना जाता है ।

याज्ञसेन—संज्ञा पुं० [सं०] शिखंडी का एक नाम जो द्रौपदी का भाई था [को०] ।

याज्ञसेनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी का एक नाम ।

याज्ञिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ करने या करानेवाला । २. गुजराती आदि ब्राह्मणों की एक जाति । ३. कुश (को०) । ४. पीपल, खैर, पलाश आदि अनेक वृक्षों का नाम (को०) । ५. यजमान (को०) ।

याज्ञिय—वि० [सं०] १. यज्ञ संबंधी । २. यज्ञ के योग्य ।

याज्य—वि० [सं०] १. यज्ञ कराने योग्य । २. जो यज्ञ में दिया या चढ़ाया जानेवाला हो । ३. (दक्षिणा) जो यज्ञ कराने से प्राप्त हो ।

याज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. यज्ञसंबंधी सूक्त अथवा मंत्र [को०] ।

यातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिशोध । बदला । २. पारितोषिक । इनाम ।

यातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुत अधिक कष्ट । तकलीफ । पीड़ा । उ०—कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिए ।—केशव (शब्द०) । २. दंड की वह पीड़ा जो यमलोक में भोगनी पड़ती है ।

यातव्य—वि० [सं०] १. (ऐसा शत्रु) जो पास होने के कारण चढ़ाई के योग्य हो । २. जिसपर चढ़ाई की जानेवाली हो ।

याता[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० यातृ] पति के भाई की स्त्री । जेठानी वा देवरानी । उ०—सास ननँद यातान कों आई नीठि सुवाय ।

अब आली घर गवन की सुधि आए सुधि जाय।—मतिराम (शब्द०)।

याता[२]—संज्ञा पुं० १. जानेवाला। २. रथ चलानेवाला। सारथी। ३. मार डालनेवाला। हत्या करनेवाला।

यातायात—संज्ञा पुं० [सं०] गमनागमन। आना जाना। आमदरफ्त।

यातिक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रिक। यात्रा करनेवाला [को०]।

यातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जानेवाला। २. रास्ता चलनेवाला। पथिक। ३. राक्षस। ४. काल। ५. वायु। हवा। ६. यातना। कष्ट। ७. हिंसा। ८. अस्त्र।

यातुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल।

यातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। उ०—पक्षिराज यक्षराज प्रेतराज यातुधान। देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—केशव (शब्द०)।

यातुनारी—सं० स्त्री० [सं०] भूतनी। पिशाची। राक्षसी [को०]।

यात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक संप्रदाय।

यात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया। सफर। २. प्रयाण। प्रस्थान। ३. दर्शनार्थ देवस्थानों को जाना। तीर्थाटन। ४. उत्सव। ५. निर्वाह। व्यवहार। ६. बंग देश में प्रचलित एक प्रकार का अभिनय, जिसमें नाचना और गाना भी रहता है। यह प्राय रासलीला के ढग का होता है। ७. यात्रा करनेवालों का दल वा समूह (को०)। ८. मार्ग। राह (को०)। ९. समय बिताना। कालक्षेप करना (को०)। १. युद्ध यात्रा। चढ़ाई (कौटि०)।

यात्रावाल—संज्ञा पुं० [सं० यात्रा+हिं० वाल (प्रत्य०)] वह ब्राह्मण या पंडा जो तीर्थाटन करनेवालों को देवदर्शन कराता हो।

यात्रिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यात्रा का प्रयोजन। कहीं जाने का अभिप्राय या उद्देश्य। २. वह जो जीवन धारण करने के लिये उपयुक्त हो। ३. यात्री। पथिक। ४. तीर्थों की यात्रा करनेवाला। तीर्थयात्री (को०)। ५. उत्सव। मेला (को०)। ६. यात्रा की सामग्री। सफर का सामान।

यात्रिक[२]—वि० १. यात्रा संबंधी। यात्रा का। २. जो बहुत दिनों से चला आता हो। रीति के अनुसार। प्रथानुकूल।

यात्री—संज्ञा पुं० [सं० यात्रिन्] १. एक स्थान से दूसरे स्थान को जानेवाला। यात्रा करनेवाला। मुसाफिर। २. देवदर्शन या तीर्थाटन के लिये जानेवाला।

याथातथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] यथातथ्य होने का भाव। यथार्थता। ठीकपन।

याथार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] यथार्थ होने का भाव। यथार्थता।

यादःपति—संज्ञा पुं० [सं० यादस् (=जल)+पति] १. समुद्र। २. वरुण।

याद[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्मरण शक्ति। स्मृति। जैसे,—आपकी याद की मैं प्रशंसा करता हूँ। २. स्मरण करने की क्रिया। जैसे —मैं अभी आपको याद ही कर रहा था।

क्रि० प्र०—करना।—दिलाना।—पड़ना।—रखना।—रहना।—होना।

याद[२]—संज्ञा पुं० [सं० यादस्] १. मछली, मगर आदि जलजंतु। २. पानी (को०)। ३. नदी (को०)। ४. शुक्र। वीर्य (को०)। ५. मनोरथ (को०)।

यादगार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] २. वह पदार्थ जो किसी की स्मृति के रूप में हो। स्मृतिचिह्न। स्मारक। २. संतति। संतान। पुत्र। बेटा (को०)।

यादगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह पदार्थ जो किसी की स्मृति में हो। स्मृतिचिह्न। २. दे० 'यादगार'।

याददाश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्मरण शक्ति। स्मृति। जैसे,—आपकी याददाश्त बहुत अच्छी है। २. किसी घटना के स्मरणार्थ लिखा हुआ लेख। स्मरण रखने के लिये लिखी हुई कोई बात।

यादसपति—संज्ञा पुं० [सं० यादासम्पति] वरुण। यादःपति।

यादसांनाथ—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्नाथ] दे० 'यादसांपति'।

यादव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० यादवी] १. यदु के वंशज। यदुवंशी, यदुवंशी क्षत्रिय। ३. अहीर जाति का व्यक्ति। ४. श्रीकृष्ण।

यादव[२]—वि० यदुसंबंधी।

यादवकोश—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक कोश का नाम जिसे वैजयंती कोश भी कहते हैं।

यादवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

यादवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यदुकुल की स्त्री। २. दुर्गा। ३. कुंती का एक नाम (को०)।

यादु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। २. कोई तरल पदार्थ।

यादृक्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० यादृशी] दे० 'यादृश' [को०]।

यादृच्छिक—वि० [सं०] [वि० यादृच्छिकी] १. अपनी इच्छानुकूल करनेवाला। स्वेच्छाचारी। २. अप्रत्याशित। आकस्मिक। ३. स्वतंत्र।

यादृच्छिक आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरवी रखी हुई वह चीज जो बिना ऋण चुकाए न लौटाई जा सके।

यादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० यादृशी] जिस प्रकार का। जैसा।

यादोनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यादःपति' [को०]।

याद्व—वि० [सं०] १. यदुवंशी। २. यदु संबंधी।

यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी, रथ आदि सवारी। वाहन। २. विमान। आकाशयान। ३. शत्रु पर चढ़ाई करना, जो राजाओं के छह गुणों में से एक कहा गया है। ४. गति। गमन। ५. पथ। मार्ग। रास्ता [को०]।

यौ०—**यानकर**=यान बनानेवाला। बढ़ई। **यानपात्र**=पोत। जहाज। **यानपात्रक, यानपात्रिका**=छोटा यान। छोटा पोत। छोटी नौका। **यानभंग**=प्रवहण या पोत का टूट जाना।

पोतभंग। **यानमुख**=पोत का अगला भाग। गेलही। **यानयात्रा**=समुद्र यात्रा (बौद्ध)।

यानक—संज्ञा पुं० [सं०] यान। वाहन। सवारी [को०]।

यानो, याने—अव्य० [अ०] तात्पर्य यह कि। मतलब यह कि। अर्थात्।

यापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **यापित, याप्य**] १. चलाना। वर्तन। २. व्यतीत करना। बिताना। जैसे, कालयापन। ३. निरसन। निबटाना। ४. परित्याग। छोड़ना। हटाना। ५. मिटाना।

यापना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चलाना। हाँकना। २. कालक्षेप। दिन काटना। ३. वह धन जो किसी को जीविकानिर्वाह के लिये दिया जाय। ४. व्यवहार। बर्ताव।

यापनीय—वि० [सं०] यापन करने के योग्य। याप्य।

यापित—वि० [सं०] १. बिताया या व्यतीत किया हुआ। जैसे,—समय, काल। २. हटाया या दूर किया हुआ [को०]।

याप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा।

याप्य[1]—वि० [सं०] १. निंदनीय। निंदित। २. यापन करने के योग्य। यापनीय। क्षेपणीय। ३. छिपाने के योग्य। गोपनीय। आवरणीय। ४. रक्षा करने के योग्य। रक्षणीय।

याप्य[2]—संज्ञा पुं० वैद्यक के अनुसार वह रोग जो साध्य न हो, पर चिकित्सा से प्राणघातक न होने पावे। ऐसा रोग जो अच्छा तो न हो, पर संयम द्वारा जिसका रोगी बहुत दिनों तक चला चले।

याफ्ता—वि० [फ़ा० **याफ्तह्**] पाया हुआ। जिसे मिला हो। (समासांत में प्रयुक्त) जैसे, खिताबयाफ्ता, सजायाफ्ता।

याबू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जो डील डौल में बहुत बड़ा न हो। टट्टू।

याभ—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन।

याम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन घंटे का समय। पहर। २. एक प्रकार के देवगण। इनका जन्म मार्कंडेय पुराण के अनुसार स्वायंभुव मनु के समय यज्ञ और दक्षिणा से हुआ था। ये संख्या में बारह हैं। ३. काल। समय। ४. नियंत्रण। संयम। रोक (को०)। ५. जाने का साधन, गाड़ी आदि (को०)। ६. गमन। जाना। ७. पथ। मार्ग (को०)। ८. प्रगति [को०]।

याम[2]—वि० [वि० स्त्री० **यामी**] यम संबंधी।

याम[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० **यामि**] रात। उ०—दोऊ राजत श्यामा श्याम। ब्रज युवती मंडली विराजत देखति सुरगन बाम। धन्य धन्य वृंदाबन को सुख सुरपुर कौने काम। धनि वृष-भानु सुता धनि मोहन धनि गोपिन को काम। इनकी को दासी सरि ह्वै है धन्य शरद की याम। कैसेहु सूर जनम ब्रज पावै यह सुख नहिं तिहुं धाम।—सूर (शब्द०)।

यामक—संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्वसु नक्षत्र।

यामकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुलवधू। कुल स्त्री। २. लड़के की स्त्री। पुत्रवधू। ३. बहिन। भगिनी।

यामघोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा। २. वह घंटा या घड़ियाल जिसे समय सूचित करने के लिये बजाते हैं (को०)।

यामघोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घंटा जो बीच बीच में समय की सूचना देने के लिये बजता हो। घड़ियाल।

यामनादी—संज्ञा पुं० [सं० **यमनादिन्**] मुर्गा। कुक्कुट [को०]।

यामनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय बतलानेवाली घड़ी।

यामनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

यामपाल—संज्ञा पुं० [सं०] समय निरीक्षण करनेवाला।

यामभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पटमंडप या खेमा [को०]।

यामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे दो लड़के जो एक साथ उत्पन्न हुए हों। यमज संतान। जोड़ा। २. एक प्रकार का तंत्र ग्रंथ।

विशेष—इन तंत्र ग्रंथों में सृष्टि, ज्योतिष, आख्यान, नित्यकृत्य, क्रमसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद और युगधर्म का वर्णन होता है। ये ग्रंथ संख्या में छह हैं—आदि यामल, ब्रह्म यामल, विष्णु यामल, रुद्र यामल, गणेश यामल और आदित्य यामल।

यामवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। निशा।

यामाता—संज्ञा पुं० [सं० **यामातृ**] दे० 'जामाता'।

यामायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो यम के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

यामार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पहर का आधा भाग।

यामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवधू। कुलस्त्री। २. बहिन। भगिनी। ३. यामिनी। रात। ४. अग्निपुराण के अनुसार धर्म की एक पत्नी का नाम। इससे नागवीथी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी। ५. पुत्री। कन्या। ६. पुत्रवधू। ७. दक्षिण दिशा। ८. यमयातना (को०)। ९. भरणी नामक नक्षत्र (को०)।

यामिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहरेदार। पहरुआ। चौकीदार। २. समय निरीक्षक। घड़ियाली (को०)।

यामिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। रात्रि। २. हरिद्रा। हलदी (को०)।

यामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जामित्र'।

यामित्रवेध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जामित्रवेध'।

यामिन, यामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **यामिनी**] दे० 'यामिनी'।

यामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २. हलदी। ३. कश्यप की एक स्त्री का नाम।

यौ०—यामिनीनाथ, यामिनीपति=चंद्रमा।

यामिनीचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। निशाचर। २. गुग्गुल। ३. उल्लू पक्षी।

यामीर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

यामीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

यामुंदायनि—संज्ञा पुं० [सं० **यामुन्दायनि**] यामुंद ऋषि के गोत्र में उत्पन्न अपत्य।

यामुन[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **यामुनी**] यमुना नदी संबंधी। जैसे, यामुन जल।

यामुन²—संज्ञा पुं० १. यमुना के किनारे बसनेवाले मनुष्य । २. एक पर्वत का नाम । ३. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ४. सुरमा । अंजन । ५. बृहत्संहिता के अनुसार एक जनपद का नाम । यह जनपद कृत्तिका, रोहिणी और मृगशीर्ष के अधिकार में माना जाता है । ६. एक वैष्णव आचार्य का नाम । यामुनाचार्य । यामुन मुनि ।

विशेष—ये दक्षिण के रंगक्षेत्र के रहनेवाले थे और रामानुजाचार्य के पूर्व हुए थे । ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे । इनके रचे हुए आगम प्रामाण्य सिद्धित्रय, भगवद्गीता की टीका, भगवद्-गीता संग्रह और आत्ममंदिर स्तोत्र आदि ग्रंथ अबतक मिलते हैं । कुछ लोग इन्हें रामानुजाचार्य का गुरु बतलाते हैं ।

यामुनेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा ।

यामेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहन का लड़का । भानजा । २. धर्म की पत्नी यामी के पुत्र का नाम ।

याम्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन । २. शिव । ३. विष्णु । ४. अगस्त्य मुनि । ५. यमदूत । ६. भरणी नक्षत्र (को०) ।

याम्य²—वि० १. यम संबंधी । यम का । २. दक्षिण का । दक्षिणीय ।

याम्यदिग्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तमालपत्री ।

याम्यद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़ । शाल्मलिवृक्ष ।

याम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. भरणी नक्षत्र ।

याम्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणायन ।

याम्योत्तर दिगंश—संज्ञा पुं० [सं०] लंबांश । दिगंश । (भूगोल, खगोल)

याम्योत्तर रेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कल्पित रेखा जो किसी स्थान से आरंभ होकर सुमेरु और कुमेरु से होती हुई भूगोल के चारों ओर मानी गई हो ।

विशेष—पहले भारतीय ज्योतिषी यह रेखा उज्जयिनी या लंका से गई हुई मानते थे । पर अब लोग योरप और अमेरिका आदि के भिन्न भिन्न नगरों से गई हुई मानते हैं । आजकल बहुधा इस रेखा का केंद्र इंगलैंड का ग्रीनिच नगर माना जाता है ।

यायावर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वमेध का घोड़ा । २. जरत्कारु मुनि । ३. मुनियों के एक गण का नाम । जरत्कारु जी इसी गण में थे । ४. एक स्थान पर न रहनेवाला साधु । सदा इधर उधर घूमता रहनेवाला संन्यासी । ५. यांचा । याचना । ६. वह ब्राह्मण जिसके यहाँ गार्हपत्य अग्नि बराबर रहती हो । साग्नि ब्राह्मण ।

यायावर²—वि० सदा इधर उधर घूमनेवाला । सदा यहाँ वहाँ यात्रा करनेवाला । घुमंतू । जिसका कोई नियत स्थान न हो [को०] ।

यायी—वि० [सं० यायिन्] [स्त्री० यायिनी] जानेवाला । जो जा रहा हो । गमनशील ।

यार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मित्र । दोस्त । उ०—(क) बाँका परदा खोलि के सनमुख लै दीदार । बास सनेही लाइयाँ आदि अंत का यार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) रह्यौ रुक्यौ क्यों हू सुचलि आधिक राति पधारि । हरतु ताप सब द्यौस को उर लगि यार बयारि ।—बिहारी (शब्द०) । २. किसी स्त्री से अनुचित संबंध रखनेवाला पुरुष । उपपति । जार । ३. सहायक । साथी । हिमायती (को०) ।

यारकंद—संज्ञा पुं० [तु० यार कंद (नगर)] एक प्रकार का बेलबूटा जो कालीन में बनाया जाता है ।

यारबाश—वि० [फ़ा०] चार दोस्तों में रहकर आनंदपूर्वक समय बितानेवाला । रसिक ।

याराना—संज्ञा पुं० [फ़ा० यारानह्] १. यार होने का भाव । मित्रता । मैत्री । २. स्त्री और पुरुष का अनुचित संबंध या प्रेम भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—गठना ।—रखना ।—होना ।

याराना—वि० मित्र का सा । मित्रता का । जैसे, याराना बर्ताव ।

यारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मैत्री । मित्रता । उ०—यारि फेरि के आय पै जरति न मोरे अंग । रूप रोसनी पै झपै नेही नैन पतंग ।—रसनिधि (शब्द०) । २. स्त्री और पुरुष का अनुचित प्रेम या संबंध ।

क्रि० प्र०—गाँठना ।—जोड़ना ।

यार्कायन—संज्ञा पुं० [सं०] यर्क ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष या अपत्य ।

याल—संज्ञा स्त्री० [तु०] घोड़े की गर्दन के ऊपर के लंबे बाल । अयाल । बाग ।

याव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जौ का सत्तू । २. लाख । ३. महावर ।

याव²—वि० १. यव से बनाया हुआ । जौ का । २. यव संबंधी । यव का ।

यावक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जौ । २. यव या जौ का सत्तू । ३. वह वस्तु जो जौ से बनाई गई हो । ४. कुल्माष । बोरो धान । ५. साठी धान । ६. उड़द । माष । ७. लाख । ८. महावर ।

यावत्¹—वि० [सं०] १. जितना ।

विशेष—यह तावत् के साथ और उससे पहले आता है ।

२. सब । कुल ।

यावत्²—क्रि वि० १. जब तक । २. जहाँ तक ।

यावन¹—संज्ञा पुं० [सं०] लोबान ।

यावन²—वि० [वि० स्त्री० यावनी] यवन संबंधी । यवन का । जैसे, यावनी भाषा । यावनी सेना ।

यावनक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल अंडी । रक्त एरंड ।

यावनकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस ।

यावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] जुआर । मक्का ।

यावनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्के से बनाई हुई चीनी। ज्वार की शक्कर।

यावनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] करंकशालि नाम की ईख। रसाल।

यावनी[2]—वि० स्त्री० यवन संबंधी। जैसे, यावनी भाषा।

यावर—वि० [फ़ा०] सहायक। मददगार।

यावरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] यावर का भाव या धर्म। मित्रता। मैत्री।

यावशूक—संज्ञा पुं० [सं०] यवक्षार। जवाखार।

यावस—संज्ञा पुं० [सं०] १. घास, डंठल आदि का पूला। जूरा। जौरा। २. भूसा। न्यार [को०]।

यावसिक—संज्ञा पुं० [सं०] घसियारा। घास काटनेवाला [को०]।

यावा[1]—संज्ञा पुं० [सं० यावन्] १. अश्वारोही। घुड़सवार। २. उपप्लवी। आक्रामक [को०]।

यावा[2]—संज्ञा स्त्री० [तु० यावह्] १. अनर्गल। बेहूदा। २. अप्राप्य [को०]।

यावास—संज्ञा पुं० [सं०] यवास से बनाया हुआ मद्य। जवासे की शराब।

याविक—संज्ञा पुं० [सं०] मक्का नामक अन्न।

याविहोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ विशेष [को०]।

यावी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शंखिनी। २. यवतिक्ता नाम की लता।

याष्टीक—संज्ञा पुं० [सं०] लाठी बाँधनेवाला योद्धा। लठबंध। लठैत।

यास—संज्ञा पुं० [सं०] लाल धमासा।

यासमन, यासमीन, यासमून—संज्ञा स्त्री० [अ०] चमेली। नवमल्लिका।

यासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोयल। २. मैना।

यासु—सर्व० [सं० यस्य] दे० 'जासु'।

यास्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. यस्क ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष। २. वैदिक 'निरुक्त' नाम से प्रसिद्ध वेद संबंधी निर्वचनपरक ग्रंथ के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम। निघटु के टीकाकार।

यास्कायनि—संज्ञा पुं० [सं०] यास्क के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

याहि(पु)—सर्व० [हिं० या + हि] इसको। इसे। उ०—जो यह मेरो बैरी कहियत ताको नाम पढ़ायो। देहु गिराय याहि पर्वत तें तुरत गतजीव करायो।—सूर (शब्द०)।

यियक्षमाण, यियक्षु—वि० [सं०] यज्ञ करने का अभिलाषी [को०]।

यियप्सु—वि० [सं०] भोग का इच्छुक। भोगी [को०]।

यियासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाने की इच्छा [को०]।

यीशु—संज्ञा पुं० [लै० ईसुस, हिं० जेशुआ, जाशुआ; अं० जेसस; तुल० सं० ईश] ईसामसीह।

युंजान—संज्ञा पुं० [सं० युञ्जान] १. सारथी। २. विप्र। ३. दो प्रकार के योगियों में से वह योगी जो अभ्यास कर रहा हो, पर मुक्त न हुआ हो। कहते हैं कि ऐसा योगी समाधि लगाकर सब बातें जान लेता है।

युंजानक—संज्ञा पुं० [सं० युञ्जानक] युंजान नामक योगी। दे० 'युंजान'।

युक्त[1]—वि० [सं०] १. एक साथ किया हुआ। जुड़ा हुआ। किसी के साथ मिला हुआ। २. मिलित। संमिलित। ३. नियुक्त। मुकर्रर। ४. आसक्त। ५. सहित। संयुक्त। साथ। ६. संपन्न। पूर्ण। ७. उचित। ठीक। वाजिब। संगत। मुनासिब।

यौ०—युक्तकर्म = किसी कार्य के लिये नियुक्त। युक्तचेता = योगाभ्यासी। योगयुक्त। युक्तचेष्ट = उचित व्यवहार करनेवाला। शिष्ट। युक्तदंड = न्यायपूर्ण या उचित दंड देनेवाला। युक्तमना = दत्तचित। सावधान मन से। युक्तरथ। युक्तरसा। युक्तरूप।

युक्त[2]—संज्ञा पुं० १. वह योगी जिसने योग का अभ्यास कर लिया हो।

विशेष—ऐसे योगी को, जो ज्ञानविज्ञान से परितृप्त, कूटस्थ, जितेंद्रिय हो और जो मिट्टी और सोने को तुल्य जानता हो, युक्त कहा गया है।

२. रैवत मनु के पुत्र का नाम। ३. चार हाथ का एक मान।

युक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] जोड़ा। युग्म [को०]।

युक्तमना—वि० [सं० युक्तमनस्] सावधान। दत्तचित्त।

युक्तरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक औषधयोग जिसका प्रयोग वस्तिकरण में होता है। भावप्रकाश में रेंड़ की जड़ के क्वाथ, मधु, तेल, सेंधा नमक, बच और पिप्पली के योग को युक्तरथ कहा है।

युक्तरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंधरास्ना। गंधनाकुली। नाकुली कंद। २. रास्ना। रासन।

युक्तरूप—वि० [सं०] उचित। उपयुक्त। योग्य [को०]।

युक्तवादी—वि० [सं० युक्तवादिन्] उचितवक्ता। ठीक बात कहनेवाला।

युक्तश्रेयसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंध रास्ना। नाकुली कंद।

युक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एलापर्णी। २. एक वृत्त का नाम जिसमें दो नगण और एक मगण होता है।

युक्ताक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] संयुक्ताक्षर। संयुक्त वर्ण।

युक्तायस्—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक अस्त्र का नाम जो लोहे का होता था।

युक्तार्थ—वि० [सं०] ज्ञानी।

युक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपाय। ढंग। तरकीब। २. कौशल। चातुरी। ३. चाल। रीति। प्रथा। ४. न्याय। नीति। ५. अनुमान। अंदाजा। ६. उपपत्ति। हेतु। कारण। ७. तर्क। ऊहा। ८. उचित विचार। ठीक तर्क। जैसे, युक्तियुक्त बात। ९. योग। मिलन। १०. एक अलंकार का नाम, जिसमें अपने मर्म को छिपाने के लिये दूसरे को किसी क्रिया या युक्ति द्वारा वंचित करने का वर्णन होता है। जैसे,—लिखत रही पिय चित्र तहँ आवत लखि सखि आन। चतुर तिया तेहि कर लिखे फूलन के धनुबान। ११. केशव के अनुसार उक्ति का एक भेद जिसे स्वभावोक्ति भी कहते हैं।

युक्तिकर—वि० [सं०] जो तर्क के अनुसार ठीक हो। उचित विचारपूर्ण। युक्तिसंगत। युक्तियुक्त।

युक्तितः—क्रि० वि० [सं०] १. चतुराई के साथ। दक्षता के साथ। २. उचित रूप से।

युक्तिपूर्ण—वि० [सं०] दे० 'युक्तिकर'।

युक्तिमान्—वि० [सं० युक्तिमत्] १. कुशल। प्रबुद्ध। २. तर्कित। विचारित। प्रमाणित। ३. मिलित [को०]।

युक्तियुक्त—वि० [सं०] उपयुक्त तर्क के अनुकूल। युक्तिसंगत। ठीक। वाजिब। जैसे,—आपकी सभी बातें बहुत ही युक्तियुक्त होती हैं।

युक्तिसंगत—वि० [सं० युक्ति सङ्गत] दे० 'युक्तियुक्त'।

युगंधर—संज्ञा पुं० [सं० युगन्धर] १. कूबर। हरस। २. गाड़ी का बम। ३. एक पर्वत का नाम। ४. हरिवंश के अनुसार वृष्णि के पुत्र और सात्यकि के पौत्र का नाम। ५. अस्त्र के प्रयोग का एक मंत्र। योगंधर (को०)। ६. वह जो युग या जुआ को धारण करे (को०)।

युग¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एकत्र दो वस्तुएँ। जोड़ा। युग्म। २. जुआ। जुआठा। ३. ऋद्धि और वृद्धि नामक दो ओषधियाँ। ४. पुरुष। पुश्त। पीढ़ी। ५. पाँसे के खेल की वे गोल गोल गोटियाँ, जो बिसात पर चली जाती हैं। ६. पाँसे के खेल की वे दो गोटियाँ जो किसी प्रकार एक घर में साथ आ बैठती हैं। ७. पाँच वर्ष का वह काल जिसमें बृहस्पति एक राशि में स्थित रहता है। ८. समय। काल। जैसे, पूर्व युग। ९. पुराणानुसार काल का एक दीर्घ परिमाण। ये संख्या में चार माने गए हैं, जिनके नाम सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग हैं। दे० 'सत्ययुग' आदि। १०. चार की संख्या का वाचक शब्द (कहीं कहीं यह १२ का भी अर्थ देता है)। ११. चार हस्त की एक माप (को०)।

मुहा०—युग युग = बहुत दिनों तक। अनंत काल तक। जैसे, युग युग जीओ।

यौ०—युगकीलक। युगक्षय = युग का अंत या समाप्ति। युगचर्म। युगचेतना = युग में होनेवाला जागरण या युगविशेष की प्रवृत्ति। युगधर्म = समय के अनुसार चाल या व्यवहार। युगपत्र। युगपत्रिका। युगपुरुष। युगमानव। युगप्रतीक, आदि।

युग²—वि० जो गिनती में दो हो।

युगकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी या खूँटा जो बम और जुए के मिले छेदों में डाला जाता है। सैल। सैला।

युगचर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ या जुआठ में लगनेवाला चमड़ा [को०]।

युगति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] 'युक्ति'।

युगनद्ध—वि० [सं०] १. नर और नारी दोनों के रूपों से समन्वित। स्त्रीपुरुषमय। २. स्त्री पुरुष के सहवास की मुद्राओंवाला (चित्र या मूर्ति जो वज्रयानी बौद्धों में प्रचलित था)। स्त्री पुरुष के आलिंगनबद्ध जोड़ेवाला। उ०—शक्तियों सहित देवताओं के 'युगनद्ध' स्वरूप की भावना चली और उनकी नग्न मूर्तियाँ सहवास की अनेक अश्लील मुद्राओं में बनने लगीं, जो कहीं कहीं अब भी मिलती हैं।—इतिहास, पृ० ११।

युगप—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

युगपत्—अव्य० [सं०] एक ही समय में। एक ही क्षण में। साथ साथ। जैसे,—मन की दो क्रियाएँ युगपत् नहीं हो सकतीं।

युगपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोविदार। कचनार। २. वह वृक्ष जिसमें दो दो पत्तियाँ आमने सामने निकलती हों। युग्मपर्ण। युग्मपत्र। ३. पहाड़ी आबनूस।

युगपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

युगपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० युग + पुरुष] समाज या राष्ट्र को जीर्ण करनेवाली मान्यताओं को समाप्त या संस्कृत करके नवीन मान्यताओं को स्थापित करनेवाला महापुरुष। नए युग का निर्माण करनेवाला पुरुष।

युगप्रतीक—संज्ञा पुं० [सं० युग + प्रतीक] युग का प्रतिनिधि। युगपुरुष।

युगबाहु—वि० [सं०] जिसके हाथ बहुत लंबे हों। दीर्घबाहु।

युगम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युग्म] दे० 'युग्म'।

युगल—संज्ञा पुं० [सं०] वे जो एक साथ दो हों। युग्म। जोड़ा। जैसे, युगल छवि।

युगलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कुलक (पद्य) जिसमें दो श्लोकों या पद्यों का एक साथ मिलकर अन्वय हो। २. युग्म। जोड़ा (को०)।

युगलाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़।

युगांत—संज्ञा पुं० [सं० युगान्त] १. प्रलय। २. युग का अंतिम समय।

युगांतक—संज्ञा पुं० [सं० युगान्तक] १. प्रलयकाल। २. प्रलय।

युगांतर—संज्ञा पुं० [सं० युगान्तर] १. दूसरा युग। २. दूसरा समय और जमाना।

मुहा०—युगांतर उपस्थित करना = समय पलट देना। किसी पुरानी प्रथा को हटाकर उसके स्थान पर नई प्रथा (या उसका समय) लाना।

युगांशक¹—संज्ञा पुं० [सं०] वत्सर। वर्ष।

युगांशक²—वि० युग का विभाजक।

युगाक्षिगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० युगाक्षिगन्धा] विधारा।

युगाद्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सृष्टि का प्रारंभ। २. चार युगों में प्रथम, सत्य युग।

युगादि²—वि० युग के आरंभ का। पुराना।

युगादि³—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'युगाद्या'।

युगादिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

युगाद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिससे युग का आरंभ हुआ हो।

विशेष—संवत्सर में ऐसी तिथियाँ चार हैं, जिनमें से प्रत्येक से एक युग का आरंभ माना जाता है। ये श्रेष्ठ और शुभ मानी जाती हैं, और इस प्रकार हैं—(१) वैशाख शुक्ल तृतीया, सत्ययुग के आरंभ की तिथि; (२) कार्तिक शुक्ल नवमी, त्रेतायुग के आरंभ की तिथि; (३) भाद्रकृष्ण त्रयोदशी द्वापर के आरंभ की तिथि; और (४) पूस की अमावस्या, कलियुग के आरंभ की तिथि।

युगाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रजापति का नाम। २. शिव [को०]।

युगावतार—वि० [सं०] युग का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष। अवतारी महापुरुष।

युगेश—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के साठ वर्ष के राशिचक्र में गति के अनुसार पाँच पाँच वर्ष के युगों के अधिपति।

विशेष—यह चक्र उस समय से प्रारंभ होता है, जब बृहस्पति माघ मास में धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथमांश में उदय होता है। बृहस्पति के साठ वर्ष के काल में पाँच पाँच वर्ष के बारह युग होते हैं, जिनके अधिपति विष्णु, सुरेज्य, बलभित्, अग्नि, त्वष्टा, उत्तर प्रोष्ठपद, पितृगण, विश्व, सोम शक्रानिल, अश्वि और भग हैं। प्रत्येक युग के पाँच वर्षों के युग क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर कहलाते हैं।

युगोरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] सेना के संनिवेश का एक भेद।

युग्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोड़ा। युग। २. अन्योन्याश्रित दो वस्तुएँ या बातें। द्वंद्व। ३. मिथुन राशि। ४. कुलक का एक भेद जिसे युगलक भी कहते हैं। दे० 'युगलक'।

युग्मकंटका—संज्ञा स्त्री० [सं० युग्मकण्टका] बेर।

युग्मक—संज्ञा पुं० [सं०] १. युगलक। २. युग्म। जोड़ा।

युग्मज—संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ उत्पन्न दो बच्चे। यमल। यमज।

युग्मधर्मा—वि० [सं० युग्मधर्मन्] १. जो स्वभावतः मिलता हो। मिलनशील। २. मिथुनधर्मा।

युग्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कचनार का पेड़। २. भोजपत्र का पेड़। ३. सतिवन। छतिवन। छितवन। आछी। ४. वह पेड़ जिसकी शाखा में दो दो पत्ते एक साथ होते हों। युग्मपर्ण।

युग्मपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल कचनार। २. सतिवन। छतिवन। ३. दे० 'युग्मपत्र'।

युग्मपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली।

युग्मफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली।

युग्मफलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुधिया। दुद्धी। गुदनी।

युग्मविपुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्ति का नाम [को०]।

युग्मशुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली पर पड़े हुए सफेद धब्बे [को०]।

युग्मांजन—संज्ञा पुं० [सं० युग्माञ्जन] स्रोतांजन और सौवीरांजन इन दोनों का समूह।

युग्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गाड़ी जिसमें दो घोड़े या बैल जोते जाते हों। जोड़ी। २. वे दो पशु जो एक साथ गाड़ी में जोते जाते हों। जोड़ी।

युग्य²—वि० १. जो जोता जाने योग्य हो। २. जो जोता जानेवाला हो। ३. खींचा हुआ। वहन किया हुआ (रथ आदि)। जैसे, अश्वयुग्य रथ = घोड़े द्वारा खींचा हुआ रथ (को०)।

युग्यवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोड़ी हाँकनेवाला। २. गाड़ीवान। सारथी।

युज्य¹—वि० [सं०] १. मिला हुआ। संयुक्त। २. मिलाने योग्य। ३. उचित। उपयुक्त। ठीक (को०)।

युज्य²—संज्ञा पुं० १. संयोग। मिलाप। २. एक प्रकार का साम। ३. बंधुबांधव। सगोत्र। बिरादर (को०)।

युत¹—वि० [सं०] १. युक्त। सहित। २. जो अलग न हो। मिला हुआ। मिलित। ३. अलग किया हुआ (को०)।

युत²—संज्ञा पुं० चार हाथ की एक नाप।

युतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. संशय। संदेह। २. युग। जोड़ा। ३. अंचल। दामन। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का वस्त्र जो पहनने के काम में आता था। ५. सूप के दोनों ओर के किनारे जो ऊपर उठे हुए होते हैं और पीछे के उठे हुए भाग से जोड़कर बाँधे रहते हैं। ६. मैत्रीकरण। ७. संश्रय।

युतवेध—संज्ञा पुं० [सं०] एक योग का नाम।

विशेष—यह योग उस समय होता है, जब चंद्रमा पापग्रह से सातवें स्थान में होता है या पापग्रह के साथ होता है। ऐसे योग के समय विवाहादि शुभ कर्मों का फलित ज्योतिष में निषेध है।

युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योग। मिलन। मिलाप। २. रस्सी, जिससे घोड़े या बैल गाड़ी में बाँधे जाते हैं। ३. जोती। नाधा, जिससे जुआठा और हरिस को एक में बाँधते हैं।

युद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई। संग्राम। रण।

विशेष—प्राचीन काल में युद्ध के लिये रथ, हाथी, घोड़े और पदाति ये चार सेना के प्रधान अंग थे और इसी कारण सेना को चतुरंगिणी कहते थे। इन चारों के संख्याभेद के कारण पत्ति, गुल्म, गण आदि अनेक भेद और उनके संनिवेशभेद से शूची, श्येन, मकरादि अनेक व्यूह थे। सैनिकों को शिक्षा संकेतध्वनियों से दी जाती थी, जिसे सुनकर सैनिकगण संमीलन, प्रसरण प्रभ्रमण, आकुंचन, यान, प्रयाण, अपयान आदि अनेक चेष्टाएँ करते थे। संग्राम के दो भेद थे—एक द्वंद्व और दूसरा निर्द्वंद्व। जिस संग्राम में कृत्रिम या अकृत्रिम दुर्ग में रहकर शत्रु से युद्ध करते थे, उसे 'द्वंद्व युद्ध' कहते थे। पर जब दुर्ग से बाहर होकर आमने सामने खुले मैदान में लड़ते थे, तब उसे 'निर्द्वंद्व युद्ध' कहते थे। निर्द्वंद्व युद्ध में समदेश में रथयुद्ध, विषमदेश में हस्तियुद्ध, मरुभूमि में अश्वयुद्ध, पर्वतादि में पत्तियुद्ध और जल में नौकायुद्ध किया जाता था। युद्ध के सामान्य नियम ये थे—(१) युद्ध उस अवस्था में किया जाता था, जब युद्ध से जीने की आशा और न युद्ध करने में नाश ध्रुव हो। (२) राजा और युद्धशास्त्र के मर्मज्ञ पंडितों को युद्धक्षेत्र में नहीं जाने देते थे। उनसे यथासमय युद्धनीति का केवल परामर्श और मंत्र लिया जाता था। (३) रथहीन, अश्वहीन, गजहीन और शस्त्रहीन पर प्रहार नहीं होता था। (४) बाल, वृद्ध, नपुंसक और अव्याहत पर तथा शांति की पताका उठानेवाले के ऊपर शस्त्रास्त्र नहीं चलाया जाता था। (५) भयभीत, शरणप्राप्त, युद्ध से विमुख और विगत पर भी आघात नहीं किया जाता था। (६) संग्राम में मारनेवाले को ब्रह्महत्यादि दोष नहीं लगते थे। (७) लड़ाई से भागनेवाला बड़ा पातकी

माना जाता था। ऐसे पातकी की शुद्धि तब तक नहीं होती थी, जबतक कि वह फिर युद्ध में जाकर शूरता न दिखलावे।

क्रि० प्र०—छिड़ना।—छेड़ना।—ठनना।—मचना।—मचाना।

मुहा०—युद्ध माँडना = लड़ाई ठानना। उ०—कुँअर तन श्याम मानों काम है दूसरो, सपन में लखि ऊखा लुभाई। मित्ररेखा सकल जगत के नृपन को, छिनिक में मुरति तक लिखि देखाई। निरखि यदुवंश का रहस मन में भयो, देखि अनिरुद्ध युद्ध माँड्यो। सूर प्रभु ठटी ज्यों भयो चाहै सो त्यों फाँसि करि कुँअर अनिरुद्ध बाँध्यो।—सूर (शब्द०)।

यौ०—युद्धकारी = लड़ाकू। युद्धकाल = लड़ाई का समय। युद्धक्षेत्र = लड़ाई का मैदान। युद्धगांधर्व = युद्ध का गीत। मारू राग। युद्धतंत्र = सैन्यविज्ञान। युद्धध्वनि = लड़ाई का शोर-गुल। युद्धपोत = लड़ाई के काम आनेवाला जहाज। युद्धभू, युद्धभूमि = लड़ाई का मैदान। युद्धमार्ग = लड़ाई की चाल। युद्धविद्या = युद्धशास्त्र। युद्ध का विज्ञान। युद्धशास्त्र = वह शास्त्र जिसमें युद्ध के सिद्धांत हैं।

युद्धक—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध करनेवाला। योद्धा। २. युद्ध। ३. युद्ध के काम आनेवाला विमान आदि।

युद्धप्राप्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो संग्राम में पकड़ा गया हो।

विशेष—यह दास के बारह भेदों में से एक है और ध्वजाहृत भी कहलाता है।

युद्धमय—वि० [सं०] १. युद्धसंबंधी। २. रणप्रिय। युद्धप्रिय।

युद्धमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० युद्धमंत्रिन्] युद्धविभाग या युद्धकार्य का संचालक मंत्री [को०]।

युद्धमुष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

युद्धरंग—संज्ञा पुं० [सं० युद्धरङ्ग] १. कार्तिकेय। स्कंद। २. युद्ध-स्थल। रणभूमि। लड़ाई का मैदान।

युद्धवीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. योद्धा। २. वीर रस वह आलंबन जिसमें युद्ध की वीरता हो। ३. वीर रस का एक भेद।

युद्धशाली—वि० [सं० युद्धशालिन्] ओजस्वी। वीर [को०]।

युद्धसार—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

युद्धाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दूसरों को युद्धविद्या की शिक्षा देता हो। युद्ध सिखलानेवाला।

युद्धाजि—संज्ञा पुं० [सं०] अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न एक ऋषि का नाम।

युद्धावसान—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाईबंदी। युद्धविराम [को०]।

युद्धावहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में छीना या लूटा हुआ माल [को०]।

युद्धोन्मत्त[1]—वि० [सं०] १. युद्ध में लीन। लड़ाका। २. जो युद्ध के लिये उतावला हो रहा हो।

युद्धोन्मत्त[2]—संज्ञा पुं० रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम। इसका दूसरा नाम महोदर था। वह रावण का भाई था और इसे नील नामक बानर ने मारा था।

युद्धोपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में काम आनेवाली सामग्री।

युध्—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

युधांश्रौष्ठि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

युधाजि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'युद्धाजि'।

युधाजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. केकयराज के पुत्र का नाम। यह भरत का मामा था। २. कृष्ण के एक पुत्र का नाम। ३. क्रोष्टु नामक राजा के पुत्र का नाम।

युधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षत्रिय। २. रिपु। शत्रु। दुश्मन।

युधामन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जो महाभारत युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था।

युधासार—संज्ञा पुं० [सं०] नंद राजा का एक नाम।

युधिक—वि० [सं०] योद्धा।

युधिष्ठिर—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच पांडवों में सबसे बड़े का नाम जो कुंती से उत्पन्न धर्म के पुत्र थे और पांडु के क्षेत्रज पुत्र थे।

विशेष—ये सत्यवादी और धर्मपरायण थे; पर इन्हें जुए की लत थी, जिसके कारण यह अपना राज्य, भाइयों और स्वयं अपने आपको जूए में हार गए थे। महाभारत के संग्राम के अनंतर ये हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठे थे। महाभारत के अनुसार अपनी धर्मपरायणता के कारण ये हिमालय होकर सदेह स्वर्ग गए थे। ये आजन्म सत्य का पालन करते रहे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में कृष्ण ने इनसे यह असत्य बात कहलानी चाही कि 'अश्वत्थामा मारा गया'। इस कथन से द्रोण की मृत्यु निश्चित थी। इन्होंने बहुत आगा पीछा किया; पर अंत में इन्हें इतना कहना पड़ा—'अश्वत्थामा मारा गया, न जाने हाथी या मनुष्य'। यह पिछला वाक्य इन्होंने कुछ धीरे से कहा था। इनके जीवन भर में सत्य के अपलाप का केवल यही एक उदाहरण मिलता है।

युध्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. संग्राम। युद्ध। २. धनुष। ३. बाण। ४. अस्त्र शस्त्र। ५. योद्धा। ६. शरभ।

युध्य—वि० [सं०] जिसके साथ युद्ध किया जा सके।

युनिवर्सिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'यूनिवर्सिटी'।

युपित—वि० [सं०] १. हटाया हुआ। अपवारित। निवारित। २. दुःखित। सताया हुआ। ३. नष्ट किया हुआ। उच्छेदित [को०]।

युयु—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

युयुक्खुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा बाघ।

युयुक्षमान—वि० [सं०] मिलन या संयोग चाहनेवाला। २. ईश्वर में लीन होने की कामना रखनेवाला।

युयुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युद्ध करने की इच्छा। लड़ने की इच्छा। २. शत्रुता। विरोध।

युयुत्सु[1]—वि० [सं०] लड़ने की इच्छा रखनेवाला। जो लड़ना चाहता हो।

युयुत्सु[2]—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

युयुधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. क्षत्रिय। ३. योद्धा। ४. सात्यकी का एक नाम, जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़े थे।

युरेशियन—संज्ञा [अं० युरोप+एशिया] वह जिसके माता पिता में से कोई एक युरोप का और दूसरा एशिया का, विशेषतः भारतवर्ष का निवासी हो।

युरोप—संज्ञा पुं० [अं०] पूर्वी गोलार्ध के तीन महाद्वीपों में से सब से छोटा महाद्वीप।

विशेष—यह महाद्वीप एशिया के पश्चिम में काकेशस और यूराल पर्वतों के उस पार से आरंभ होता है। इसके उत्तर में आर्कटिक समुद्र, पश्चिम में एटलांटिक महासागर, दक्षिण में भूमध्य सागर और कृष्ण सागर तथा पूर्व में काकेशस और यूराल पर्वत पड़ता है। यह महाप्रदेश प्रायः २४००मील चौड़ा और ३४०० मील लंबा है। एक प्रकार से यह एशिया का अंश और बहुत बड़ा प्रायद्वीप ही है। फ्रांस, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया, पुर्तगाल, स्पेन, इटली, यूनान आदि इसके प्रसिद्ध देश हैं।

युरोपियन[1]—वि० [अं०] युरोप का। युरोप संबंधी। जैसे, युरोपियन सभ्यता, युरोपियन साहित्य।

युरोपियन[2]—संज्ञा पुं० युरोप महाद्वीप के किसी देश का निवासी।

युवक—संज्ञा पुं० [सं०] सोलह वर्ष से लेकर पचीस या तीस या पैंतीस वर्ष तक की अवस्थावाला मनुष्य। जवान। युवा।

युवगंड—संज्ञा पुं० [सं० युवगण्ड] मुहाँसा।

युवति, युवती[1]—वि० स्त्री० [सं०] प्राप्त यौवना। जवान (स्त्री)।

युवति, युवती[2]—संज्ञा स्त्री० १. जवान स्त्री। २. प्रियंगु। ३. सोनजुही। ४. हलदी। ५. कन्या राशि (को०)।

युवतीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णयूथिका। सोनजुही।

युवनाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक सूर्यवंशी राजा का नाम जो प्रसेनजित् का पुत्र था। प्रसिद्ध मांधाता इसी का पुत्र था। २. रामायण के अनुसार धुंधुमार के पुत्र का नाम।

युवन्य—वि० [सं०] जवान।

युवराई⑤[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० युवराज] युवराज का पद।

युवराई[2]—संज्ञा पुं० दे० 'युवराज'।

युवराज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० युवराज्ञी] १. राजा का वह राजकुमार जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी हो। राजा का वह सबसे बड़ा लड़का जिसे आगे चलकर राज्य मिलनेवाला हो। २. एक भावी बुद्ध का नाम (को०)।

युवराजत्व—संज्ञा पुं० [सं०] युवराज का भाव या धर्म। यौवराज्य।

युवराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० युवराज+ई (प्रत्य०)] युवराज का पद। यौवराज्य। उ०—जिनहिं देखि दशरथ नृप राजी। देन विचारत है युवराजी।—पद्माकर (शब्द०)।

युवा—वि० [सं० युवन्] [वि० स्त्री० युवती] जिसकी अवस्था सोलह से लेकर पैंतिस वर्ष के अंदर हो। जवान। यौवनावस्था प्राप्त।

युवान, युवानक—वि० [सं०] जवान। युवक। तरुण (को०)।

युवानपिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहाँसा।

यूँ†—अव्य० [सं० एवमेव] दे० 'यों'।

यू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकी हुई दाल का पानी। जूस।

यूक—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ नामक कीड़े जो बाल या कपड़ों में पड़ जाते हैं। ढील। चीलर।

यूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का परिमाण जो एक यव का आठवाँ भाग और एक लिक्षा का अठगुना होता है। २. जूँ नाम का कीड़ा जो सिर के बालों में होता है। विशेष दे० 'जूँ'। ३. खटमल। ४. अजवायन। ५. गूलर।

यूगंधर—संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब के एक प्राचीन नगर का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। आजकल इसे 'धुरंधर' कहते हैं।

यूत—संज्ञा पुं० [सं० यूति] मिश्रण। मिलावट। मेल। उ०—बिचि बिचि प्रीति रहसि रस रीति की राग रागिनी के यूत बाढ़े।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

यूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिलाने की क्रिया। मिश्रण। मेल।

यूथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ही जाति या वर्ग के अनेक जीवों का समूह। झुंड। गरोह। जैसे, गजयूथ। २. दल। सेना। फौज।

यूथक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यूथ' (को०)।

यूथग—संज्ञा पुं० [सं०] चाक्षुष मन्वंतर के एक प्रकार के देवता।

यूथचारी—वि० [सं० यूथचारिन्] झुंड में चलनेवाला। जैसे बंदर, मृग आदि।

यूथनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. यूथ का स्वामी। सरदार। २. सेनापति। सेनाध्यक्ष। दलपति।

यूथप—संज्ञा पुं० [सं०] १. सरदार। २. सेनापति। ३. जंगली हाथियों का सरदार।

यूथपति—संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक। सेनापति।

यूथपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यूथपति'।

यूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही नाम का फूल और उसका पौधा। उ०—सित अरु पीत यूथिका बेनी गूँथी विविध बनाय। रच्यो भाल निज तिलक मनोहर अंजन नयन सुहाय।—सूर (शब्द०)।

यूथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही का पौधा या फूल। यूथिका।

यूनक—संज्ञा पुं० [?] गरी की खली।

यूनाइटेड—वि० [अं०] मिला हुआ। संयुक्त। जैसे, यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका), यूनाइटेड प्राविंसेज् (संयुक्तदेश आगरा व अवध)।

यूनाइटेड किंगडम—संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड, स्काटलैंड और आयरलैंड के संयुक्त राज्य।

यूनाइटेड स्टेट्स—संज्ञा पुं० [अं०] अनेक छोटे छोटे राज्यों का एक बड़ा संयुक्त राज्य। जैसे,—यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका।

यूनान—संज्ञा पुं० [ग्रीक आयोनिया] एशिया के सब से अधिक पास पड़नेवाला यूरोप का एक प्रदेश।

विशेष—प्राचीन काल में यह प्रदेश अपनी सभ्यता, शिल्पकला,

साहित्य, दर्शन इत्यादि के लिये जगत् में प्रसिद्ध था। आयोनिया द्वीप इसी देश के अंतर्गत था, जिसके निवासियों का आना जाना एशिया के शाम, फारस आदि देशों में बहुत था; इसी से सारे देश को ही यूनान कहने लगे थे। भारतीयों का यवन शब्द यूनान देशवासियों का ही सूचक है। सिकंदर इसी देश का बादशाह था।

यूनानी[1]—वि० [फ़ा० **यूनान+ई** (प्रत्य०)] यूनान देश संबंधी। यूनान का।

यूनानी[2]—संज्ञा स्त्री० १. यूनान देश की भाषा। २. यूनान देश का निवासी। ३. यूनान देश की चिकित्साप्रणाली। हकीमी।

विशेष—फारस के प्राचीन बादशाह अपने यहाँ यूनान के चिकित्सक रखते थे, जिससे वहाँ की चिकित्साप्रणाली का प्रचार एशिया के पश्चिमी भाग में हुआ। इस प्रणाली में क्रमशः देशी चिकित्सा भी मिलती गई। आजकल जिसे यूनानी चिकित्सा कहते हैं, वह मिली जुली है। खलीफा लोगों के समय में भारतवर्ष से भी अनेक वैद्य बगदाद गए थे, जिससे बहुत से भारतीय प्रयोग भी वहाँ की चिकित्सा में शामिल हुए।

यूनियन—संज्ञा पुं० [अं०] संघ। सभा। समाज। मंडल। जैसे,—लेबर यूनियन। ट्रेड्स यूनियन।

यूनियन जैक—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'यूनियन फ्लैग'।

यूनियन फ्लैग—संज्ञा पुं० [अं०] ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्यों की राष्ट्रीय पताका।

यूनिवर्सिटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह संस्था जो लोगों को सब प्रकार की उच्च कोटि की शिक्षाएँ देती, उनकी परीक्षाएँ लेती और उन्हें उपाधियाँ आदि प्रदान करती है। विश्वविद्यालय।

विशेष—ऐसी संस्था या तो राजकीय हुआ करती है अथवा राज्य की आज्ञा से स्थापित होती है; और उसकी परीक्षाओं तथा उपाधियों आदि का सब जगह समान रूप से मान होता है।

यूनीफार्म—संज्ञा पुं० [अं०] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या नौकरों के लिये नियत हो। वरदी। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहीं थे, वहाँ सबेरे से आ डटे थे।

यूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में वह खंभा जिसमें बलि का पशु बाँधा जाता है। २. वह स्तंभ जो किसी विजय अथवा कीर्ति आदि की स्मृति में बनाया गया हो।

यूपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'यूप'। २. काष्ठविशेष, बाँस अथवा खदिर जिससे यूप बनता था।

यूपकटक—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे या लकड़ी का कड़ा या छल्ला जो यूप के सिरे पर अथवा नीचे होता था।

यूपकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] यूप का वह भाग जो घृत से अभिषिक्त किया जाता था।

यूपकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा भूरिश्रवा का एक नाम।

यूपकेशि—संज्ञा पुं० [सं० **यूपकेशिन्**] एक राक्षस का नाम [को०]।

यूपद्रु, यूपद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का वृक्ष।

यूपद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] यूप पर लपेटने का वस्त्र [को०]।

पर्या०—**यूपवेष्टन। यूपहस्ति।**

यूपध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

यूपलक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

यूपांग—संज्ञा पुं० [सं० **यूपाङ्ग**] यूप का कोई अंश वा अंग।

यूपा†—संज्ञा पुं० [सं० **द्यूत**] जूआ। द्यूतकर्म। उ०—यहै मनोरथ जीतब यूपा। कहूँ कहेउ यह भेद न भूपा।—सबलसिंह (शब्द०)।

यूपाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रावण की सेना का एक मुख्य नायक जिसको हनुमान् ने प्रमदावन उजाड़ने के समय मारा था।

यूपाहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कृत्य जो यज्ञ में यूप गाड़ने के समय किया जाता है।

यूपोच्चार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वे मंत्र जो यज्ञादि में यूप की प्रतिष्ठा के समय कहे जायँ [को०]।

यूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] पलास।

यूरप—संज्ञा पुं० [अं० **यूरोप**] दे० 'यूरोप'।

यूराल—संज्ञा पुं० [?] १. एक बहुत बड़ा पहाड़ जो एशिया और युरोप के बीच में है। २. इस पर्वत से निकलनेवाली एक नदी का नाम।

यूरेनस—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक ग्रीक देवता। २. एक ग्रह जिसका हर्शेल ने पता लगाया था [को०]।

यूरेनियम—संज्ञा पुं० [अं०] किरण धातु। राल आदि में प्राप्त होनेवाला एक धवल धातुतत्व [को०]।

यूरोप—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'युरोप'।

यूरोपियन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'युरोपियन'।

यूरोपीय—वि० [अं० **यूरोप+ईय** (प्रत्य०)] युरोप संबंधी। युरोप का।

यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहतूत का वृक्ष। २. जूस। दाल आदि का पानी। झोल [को०]।

यूहⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **यूथ**] १. समूह। झुंड। २. सैन्य। सेना।

ये[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'।

ये[2]—सर्व० [हिं० यह] 'यह' का बहुवचन। यह सब।

येईⓅ†—सर्व० [हिं० यह+ई (प्रत्य०)] यही।

येऊⓅ†—सर्व० [हिं० ये+ऊ (प्रत्य०)] यह भी।

येतोⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'एतो'।

येन[1]—क्रि० वि० [सं० यत] जिसके द्वारा या जिससे।

यौ०—**येन केन प्रकारेण**=जिस किसी प्रकार। जैसे तैसे।

येन[2]—संज्ञा पुं० [जापानी] जापान का सिक्का। जापान का प्रचलित सिक्का।

येमन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना। भक्षण [को०]।

येह†—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'।

येहूⓅ†—अव्य० [हिं० **यह+हू**] यह भी।

यौं—अव्य० [सं० **एवमेव,** प्रा० **एमेअ,** अप० **एमि**] इस तरह पर।

इस प्रकार से। इस भाँति। ऐसे। जैसे,—वह यों नहीं मानेगा।

योंही—अव्य० [हिं० यों+ही (प्रत्य०)] १. इसी प्रकार से। ऐसे ही। इसी तरह से। २. बिना काम। व्यर्थ ही। जैसे,—आप तो योंही किताबें उलटा करते हैं। ३. बिना विशेष प्रयोजन या उद्देश्य के। केवल मन की प्रवृत्ति से। जैसे,—मैं उधर योंही चला गया; उससे मिलने नहीं गया था।

यो†—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'।

योक्तव्य—वि० [सं०] १. संयोजित करने के योग्य। जोड़ने के योग्य। २. नियुक्त करने योग्य [को०]।

योक्ता संज्ञा पुं० [सं० योक्तृ] १. जोड़नेवाला। संयोजित करनेवाला। बाँधनेवाला। २. गाड़ीवान। सारथी। कोचवान। ३. उत्तेजित करनेवाला। उभाड़नेवाला [को०]।

योक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. डोरी। रस्सी। लगाम। २. पशु को गाड़ी में बाँधने या जोतने का रस्सा। ३. हल के जुए में लगी डोरी जिससे बैल जोड़ा जाता है। ४. मथानी की डोरी। नेती [को०]।

योगंधर—संज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] १. प्राचीन काल का एक मंत्र जो अस्त्र शस्त्र आदि के शोधन के लिये पढ़ा जाता था। २. पीतल।

योग—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो अथवा अधिक पदार्थों का एक में मिलना। संयोग। मिलान। मेल। २. उपाय। तरकीब। ३. ध्यान। ४. संगति। ५. प्रेम। ६. छल। धोखा। दगाबाजी। जैसे, योगविक्रय। ७. प्रयोग। ८. औषध। दवा। ९. धन। दौलत। १०. नैयायिक। ११. लाभ। फायदा। १२. वह जो किसी के साथ विश्वासघात करे। दगाबाज। १३. कोई शुभ काल। अच्छा समय या अवसर। १४. चर। दूत। १५. छकड़ा। बैलगाड़ी। १६. नाम। १७. कौशल। चतुराई। होशियारी। १८. नाव आदि सवारी। १९. परिणाम। नतीजा। २०. नियम। कायदा। २१. उपयुक्तता। २२. साम, दाम, दंड और भेद ये चारों उपाय। २३. वह उपाय जिसके द्वारा किसी को अपने वश में किया जाय। वशीकरण। २४. सूत्र। २५. संबंध। २६. सद्भाव। २७. धन और संपत्ति प्राप्त करना तथा बढ़ाना। २८. मेल मिलाप। २९. तप और ध्यान। वैराग्य। ३०. गणित में दो या अधिक राशियों का जोड़। ३१. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १२,८ के विश्राम से २० मात्राएँ और अंत में यगण होता। ३२. ठिकाना। सुभीता। जुगाड़। तारघात। उ०—नहिं लग्यो भोजन योग नहीं कहुँ मिल्यो निवसन ठौर।—रघुराज (शब्द०)। ३३. फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट काल या अवसर जो सूर्य और चंद्रमा के कुछ विशिष्ट स्थानों में आने के कारण होते हैं और जिनकी संख्या २७ है। इनके नाम इस प्रकार हैं—विष्कंभ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगंड, सुकर्मा, धृति, शूल, गंड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, असृक, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्र, ब्रह्म, इंद्र, और वैधृति। इनमें से कुछ योग ऐसे हैं, जो शुभ कार्यों के लिये वर्जित हैं और कुछ ऐसे हैं जिनमें शुभ कार्य करने का विधान है। ३४. फलित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट तिथियों, वारों और नक्षत्रों आदि का एक साथ या किसी निश्चित नियम के अनुसार पड़ना। जैसे, अमृत योग, सिद्धि योग। ३५. वह उपाय जिसके द्वारा जीवात्मा जाकर परमात्मा में मिल जाता है। मुक्ति या मोक्ष का उपाय। ३६. दर्शनकार पतंजलि के अनुसार चित की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना। मन को इधर उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तु में स्थिर रखना। ३७. शत्रु के लिये की जानेवाली यंत्र, मंत्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति। ३८. छह दर्शनों में से एक जिसमें चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान है।

विशेष—योग दर्शनकार पतंजलि ने आत्मा और जगत् के संबंध में सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन और समर्थन किया है। उन्होंने भी वही पचीस तत्व माने हैं, जो सांख्यकार ने माने हैं। इनमें विशेषता यही है कि इन्होंने कपिल की अपेक्षा एक और छब्बीसवाँ तत्व 'पुरुषविशेष' या ईश्वर भी माना है, जिससे सांख्य के अनीश्वरवाद से ये बच गए हैं। पतंजलि का योगदर्शन समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागों में विभक्त है। **समाधिपाद** में यह बतलाया गया है कि योग के उद्देश्य और लक्षण क्या हैं और उसका साधन किस प्रकार होता है। **साधनपाद** में क्लेश, कर्मविपाक और कर्मफल आदि का विवेचन है। **विभूतिपाद** में यह बतलाया गया है कि योग के अंग क्या हैं, उसका परिणाम क्या होता है और उसके द्वारा अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों की किस प्रकार प्राप्ति होती है। **कैवल्यपाद** में कैवल्य या मोक्ष का विवेचन किया गया है। संक्षेप में योग दर्शन का मत यह है कि मनुष्य को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच प्रकार के क्लेश होते हैं; और उसे कर्म के फलों के अनुसार जन्म लेकर आयु व्यतीत करनी पड़ती है तथा भोग भोगना पड़ता है। पतंजलि ने इन सबसे बचने और मोक्ष प्राप्त करने का उपाय योग बतलाया है; और कहा है कि क्रमशः योग के अंगों का साधन करते हुए मनुष्य सिद्ध हो जाता है और अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ईश्वर के संबंध में पतंजलि का मत है कि वह नित्यमुक्त, एक, अद्वितीय और तीनों कालों से अतीत है और देवताओं तथा ऋषियों आदि को उसी से ज्ञान प्राप्त होता है। योगवाले संसार को दुःखमय और हेय मानते हैं। पुरुष या जीवात्मा के मोक्ष के लिये वे योग को ही एकमात्र उपाय मानते हैं। पतंजलि ने चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ मानी हैं, जिनका नाम उन्होंने चित्तभूमि रखा है; और कहा है कि आरंभ की तीन चित्तभूमियों में योग नहीं हो सकता, केवल अंतिम दो में हो सकता है। इन दो भूमियों में संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात ये दो प्रकार के योग हो सकते हैं। जिस अवस्था में ध्येय का रूप

प्रत्यक्ष रहता हो, उसे संप्रज्ञात कहते हैं। यह योग पाँच प्रकार के क्लेशों का नाश करनेवाला है। असंप्रज्ञात उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें किसी प्रकार की वृत्ति का उदय नहीं होता; अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता, संस्कारमात्र बच रहता है। यही योग की चरम भूमि मानी जाती है और इसकी सिद्धि हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है। योगसाधन का उपाय यह बतलाया गया है कि पहले किसी स्थूल विषय का आधार लेकर, उसके उपरांत किसी सूक्ष्म वस्तु को लेकर और अंत में सब विषयों का परित्याग करके चलना चाहिए और अपना चित्त स्थिर करना चाहिए। चित्त की वृत्तियों को रोकने के जो उपाय बतलाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—अभ्यास और वैराग्य, ईश्वर का प्रणिधान, प्राणायाम और समाधि, विषयों से विरक्ति आदि। यह भी कहा गया है कि जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनमें अनेक प्रकार की विलक्षण शक्तियाँ आ जाती हैं जिन्हें विभूति या सिद्धि कहते हैं। विशेष दे० 'सिद्धि'। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योग के अंग कहे गए हैं, और योगसिद्धि के लिये इन आठों अंगों का साधन आवश्यक और अनिवार्य कहा गया है। इनमें से प्रत्येक के अंतर्गत कई बातें हैं। कहा गया है जो व्यक्ति योग के ये आठो अंग सिद्ध कर लेता है, वह सब प्रकार के क्लेशों से छूट जाता है, अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है और अंत में कैवल्य (मुक्ति) का भागी होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टितत्व आदि के संबंध में योग का भी प्राय: वही मत है जो सांख्य का है, इससे सांख्य को ज्ञानयोग और योग को कर्मयोग भी कहते हैं। पतंजलि के सूत्रों पर सबसे प्राचीन भाष्य वेदव्यास जी का है। उसपर वाचस्पति का वार्तिक है। विज्ञानभिक्षु का 'योगसारसंग्रह' भी योग का एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। सूत्रों पर भोजराज की भी एक वृत्ति है। पीछे से योगशास्त्र में तंत्र का बहुत सा मेल मिला और 'कायव्यूह' का बहुत विस्तार किया गया, जिसके अनुसार शरीर के अंदर अनेक प्रकार के चक्र आदि कल्पित किए गए। क्रियाओं का भी अधिक विस्तार हुआ और हठयोग की एक अलग शाखा निकली; जिसमें नेती, धोती, वस्ती आदि षट्कर्म तथा नाड़ीशोधन आदि का वर्णन किया गया। शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, घेरंडसंहिता आदि हठयोग के ग्रंथ हैं। हठयोग के बड़े भारी आचार्य मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं।

योगकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'योगपट्ट' [को०]।

योगकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कन्या, वसुदेव जिसे ले जाकर देवकी के पास रख आए थे और जिसे कंस ने मार डाला था। योगमाया।

योगकुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० योगकुण्डलिनी] एक उपनिषद् का नाम। (यह प्राचीन उपनिषदों में नहीं है।)

योगक्षेम—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो वस्तु अपने पास न हो, उसे प्राप्त करना, और जो मिल चुकी हो, उसकी रक्षा करना। नया पदार्थ प्राप्त करना और मिले हुए पदार्थ की रक्षा करना।

विशेष—भिन्न भिन्न आचार्यों ने इस शब्द से भिन्न भिन्न अभिप्राय लिए हैं। किसी के मत से योग से अभिप्राय शरीर का है और क्षेम से उसकी रक्षा का, और किसी के मत से योग का अर्थ है धन आदि प्राप्त करना और क्षेम से उसकी रक्षा करना।

२. जीवननिर्वाह। गुजारा। ३. कुशल मंगल। खैरियत। उ०—जब तक कोई अपनी पृथक् सत्ता की भावना को ऊपर किए इस क्षेत्र के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योगक्षेम, हानि-लाभ, सुखदु:ख आदि को संबद्ध करके देखता रहता है तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है।—रस०, पृ० ५। ४. दूसरे के धन या जायदाद की रक्षा। ५. लाभ। मुनाफा। ६. ऐसी वस्तु जिसका उत्तराधिकारियों में विभाग न हो। ७. राष्ट्र की सुव्यवस्था। मुल्क का अच्छा इंतजाम।

योगगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूल दशा। आरंभिक स्थिति। २. संयोग की अवस्था। पारस्परिक संयोग [को०]।

योगगामी—वि० [सं० योगगामिन्] योगबल से (वायु या आकाश में) गमन करनेवाला [को०]।

योगचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० योगचक्षुस्] ब्राह्मण।

योगचर—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान्।

योगचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जादू की बुकनी। वह बुकनी जिसमें जादू का प्रभाव हो [को०]।

योगज—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगसाधन की वह अवस्था जिसमें योगी में अलौकिक वस्तुओं को प्रत्यक्ष कर दिखलाने की शक्ति आ जाती है।

विशेष—युक्त और युंजान दोनों इसी के भेद हैं। यह नैयायिकों के अलौकिक संनिकर्ष के तीन विभागों में से एक है। शेष दो विभाग सामान्य लक्षण और ज्ञान लक्षण हैं।

२. अगर लकड़ी। अगरु।

योगजफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक या फल जो दो अंकों को जोड़ने से प्राप्त हो। जोड़। योग। (गणित)।

योगतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम, जो प्राचीन दस उपनिषदों में नहीं है।

योगतल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'योगनिद्रा'।

योगतारा—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी नक्षत्र में का प्रधान तारा। २. एक दूसरे से मिले हुए तारे।

योगत्व—संज्ञा पुं० [सं०] योग का भाव।

योगदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र। विशेष दे० 'योग'।

योगदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी काम में साथ देना। हाथ बँटाना। २. कपट से किया हुआ दान। ३. योग की दीक्षा।

योगधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० योगधर्मिन्] योगी।

योगधारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगसाधन में निष्ठता [को०]।

योगधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मपुत्र की एक सहायक नदी का नाम।

योगनंद—संज्ञा पुं० [सं०] मगध के राजा नौ नंदों में से एक नंद का नाम। विशेष दे० 'नंद'।

योगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. दत्तात्रेय (को०)।

योगनाविक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

योगनाविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'योगनाविक'।

योगनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागने और सोने के बीच की स्थिति (को०)। २. युग के अंत में होनेवाली विष्णु की निद्रा जो, दुर्गा मानी जाती है। ३. प्रलय और उत्पत्ति के बीच ब्रह्मा की चिरनिद्रा। ४. रणभूमि में वीरों की मृत्यु। ५. योग की समाधि। ६. दुर्गा का एक नाम (को०)।

योगनिद्रालु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु, जो प्रलय के समय योगनिद्रा लेते हैं।

योगनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। २. विष्णु।

योगपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक पहनावा जो पीठ पर से जाकर कमर में बाँधा जाता था और जिससे घुटनों तक का अंग ढका रहता था। साधुओं का अँचला।

विशेष—शास्त्रों का विधान है कि जिसके बड़े भाई और पिता जीवित हों उसे ऐसा वस्त्र नहीं पहनना चाहिए।

योगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव।

योगपत्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगमाता। पीवरी।

योगपथ—संज्ञा पुं० [सं०] योग में प्रवृत्ति करानेवाला मार्ग [को०]।

योगपदक—संज्ञा पुं० [सं०] पूजन आदि के समय पहनने का चार अंगुल चौड़ा एक प्रकार का उत्तरीय वस्त्र।

विशेष—यह बाघ के चमड़े, हिरन के चमड़े अथवा सूत का बना हुआ होता था और यज्ञसूत्र की भाँति पहना जाता था।

योगपाद—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह कृत्य जिससे अभिमत की प्राप्ति हो।

योगपारंग—संज्ञा पुं० [सं० **योगपारङ्ग**] १. शिव। २. पूर्ण योगी।

योगपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का योगासन।

योगपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार वह साधा हुआ व्यक्ति जिससे मतलब सिद्ध किया जा सके। मतलब निकालने के लिये साधा हुआ आदमी।

योगफल—संज्ञा पुं० [सं०] दो या अधिक संख्याओं को जोड़ने से प्राप्त संख्या।

योगबल—संज्ञा पुं० [सं०] वह शक्ति जो योग की साधना से प्राप्त हो। तपोबल।

योगभ्रष्ट—वि० [सं०] जिसकी योग की साधना चित्तविक्षेप आदि के कारण पूरी न हुई हो। जो योगमार्ग से च्युत हो गया हो।

योगमय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

योगमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० **योगमातृ**] १. दुर्गा। २. पीवरी।

योगमाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भगवती, जो विष्णु की माया है। २. वह कन्या जो यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी और जिसे कंस ने मार डाला था। कहते हैं, यह स्वयं भगवती थी। विशेष दे० 'कृष्ण'। उ०—देखी परी योगमाया वसुदेव गोद करि लीन्हीं हो।—सूर (शब्द०)।

योगमूर्तिधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. एक प्रकार के पितृ।

योगयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योग के लिये की जानेवाली यात्रा। वह यात्रा जिसमें परमात्मा से मिलन हो [को०]। २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह योग जो यात्रा के लिये उपयुक्त हो।

योगयुक्त—वि० [सं०] योग में स्थित। योगस्थ।

योगयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० **योग + युक्ति**] १. योग में अनुराग। समाधिस्थ होना (को०)। २. योग करने की विधि। उ०—कबीर साहब ने सब योगयुक्ति सिखलाया।—कबीर मं०, पृ० ७५।

योगयोगी—संज्ञा पुं० [सं० **योगयोगिन्**] वह योगी जो योगासन पर बैठा हो।

योगरंग—संज्ञा पुं० [सं० **योगरङ्ग**] नारंगी।

योगरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह साधन जिससे योग की प्राप्ति हो।

योगराजगुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] कई द्रव्यों के योग से बनी हुई एक प्रसिद्ध औषध जिसमें गुग्गुल (गूगल) प्रधान है। यह औषध गठिया, वात रोग और लकवे के लिये अत्यंत उपकारी है।

योगरूढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० **योगरूढि**] दो शब्दों के योग से बना हुआ वह शब्द जो अपना सामान्य अर्थ छोड़कर कोई विशेष अर्थ बतावे। जैसे, त्रिशूलपाणि, चंद्रभाल, पंचशर इत्यादि।

योगरोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रजाल करनेवालों का एक प्रकार का लेप।

विशेष—कहते हैं, शरीर में यह लेप लगा लेने से आदमी अदृश्य हो जाता है।

योगवाणी—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के एक तीर्थ का नाम।

योगवान्—संज्ञा पुं० [सं० **योगवत्**] [स्त्री० **योगवती**] योगी। योगसंपन्न। योगयुक्त।

योगवाशिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांतशास्त्र का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जो वशिष्ठ जी का बनाया कहा जाता है।

विशेष—इसमें वशिष्ठ जी ने रामचंद्र को वेदांत का उपदेश किया है। इसमें वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण ये छह प्रकरण हैं। इसे लोग वाल्मीकि रामायण का उत्तरखंड मानते हैं और वशिष्ठ रामायण भी कहते हैं।

योगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय।

योगवाही[१]—संज्ञा पुं० [सं० **योगवाहिन्**] भिन्न गुणों की दो या कई ओषधियों को एक में मिलाने योग्य करनेवाली ओषधि या द्रव्य। योग का माध्यम।

योगवाही[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पारा । २. मधु । शहद (को०) । ३. सज्जीखार ।

योगविक्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] धोखे या बेईमानी के साथ बिक्री । घालमेल का सौदा ।

योगविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगशास्त्र का ज्ञाता । २. महादेव । ३. ओषधियों को मिलाकर औषध बनानेवाला । ४. बाजीगर ।

योगविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में एक दूसरे से संयुक्त शब्दों का पृथक्करण (विशेषतः सूत्रों के शब्दों का) ।

योगवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की वह शुभ वृत्ति जो योग के द्वारा प्राप्त होती है ।

योगशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के द्वारा प्राप्त होनेवाली शक्ति । तपोबल ।

योगशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] वह यौगिक शब्द जो योगरूढ़ि न हो, बल्कि धातु के अर्थ (सामान्य अर्थ) का बोधक हो ।

योगशरीरी—संज्ञा पुं० [सं० योगशरीरिन्] योगी ।

योगशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] पतंजलि ऋषि का बनाया हुआ योग-साधन पर एक बड़ा ग्रंथ जिसमें चित्तवृत्ति को रोकने के उपाय बतलाए गए हैं । यह छह दर्शनों में से एक दर्शन है । दे० 'योग' ।

योगशास्त्री—संज्ञा पुं० [सं० योगशास्त्रिन्] योगशास्त्र का ज्ञाता ।

योगशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जिसे योगशिखा भी कहते हैं ।

योगसत्य—संज्ञा पुं० [सं०] किसी का वह नाम जो उसे किसी प्रकार के योग के कारण प्राप्त हो । जैसे;—दंड के योग से प्राप्त होनेवाला नाम 'दंडी' ।

योगसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मा का सूक्ष्म तत्व (ब्रह्मतत्व) में विलयन । २. योग का चरमफल । विशेष दे० 'समाधि' ।

योगसार—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपाय या साधन जिससे मनुष्य सदा के लिये रोग से मुक्त हो जाय ।

योगसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] यौगिक क्रियाओं की साधना । सूक्ष्म का ध्यान ।

विशेष—वैद्यक में ऋतुचर्या के अंतर्गत ऐसे उपायों का वर्णन है । भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न निषिद्ध पदार्थों का त्याग और संयम आदि इसके अंतर्गत हैं ।

योगसिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने योग की सिद्धि प्राप्त कर ली हो । योगी ।

योगसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में सफलता ।

यागसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] महर्षि पतंजलि के बनाए हुए योग संबंधी सूत्रों का संग्रह । विशेष दे० 'योग' ।

योगसेवा—संज्ञा पुं० [सं०] शून्य की उपासना । सूक्ष्म का ध्यान । योग की साधना [को०] ।

योगस्थ—क्रि० [सं०] योग में स्थित । योगयुक्त ।

योगांग—संज्ञा पुं० [सं० योगाङ्ग] पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग जो इस प्रकार हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । इन्हीं के पूर्ण साधन से मनुष्य योगी होता है ।

योगांजन—संज्ञा पुं० [सं० योगाञ्जन] १. आँखों का एक प्रकार का अंजन या प्रलेप जिसके लगाने से आँखों का रोग दूर होता है । २. वह अंजन जिसे लगाने से पृथ्वी के अंदर की छिपी हुई वस्तुएँ भी दिखाई पड़ें । सिद्धांजन ।

योगांत—संज्ञा पुं० [सं० योगान्त] मंगल ग्रह की कक्षा के सातवें भाग का एक अंश । (ज्योतिष) ।

योगांतराय—संज्ञा पुं० [सं० योगान्तराय] योग में विघ्न डालनेवाली आलस्य आदि दस बातें ।

योगांता—संज्ञा स्त्री० [सं० योगान्ता] मूल, पूर्वषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों से होती हुई बुध की गति जो आठ दिन तक रहती है ।

योगांबर—संज्ञा पुं० [सं० योगाम्बर] बौद्धों के एक देवता का नाम ।

योगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता की एक सखी का नाम ।

योगाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वह आकर्षण शक्ति जिसके कारण परमाणु मिले रहते हैं और अलग नहीं होते ।

योगागम—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र ।

योगाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग का आचरण । २. बौद्धों का एक संप्रदाय ।

विशेष—इस संप्रदाय का मत है कि पदार्थ (बाह्य) जो दिखाई पड़ते हैं, वे शून्य हैं । वे केवल अंदर ज्ञान में भासते हैं, बाहर कुछ नहीं हैं । जैसे, 'घट' का ज्ञान भीतर आत्मा में है, तभी बाहर भासता है, और लोग कहते हैं कि यह घट है । यदि यह ज्ञान अंदर न हो, तो बाहर किसी वस्तु का बोध न हो । अतः सब पदार्थ अंदर ज्ञान में भासते हैं और बाह्य शून्य है । इनका यह भी मत है कि जो कुछ है, वह सब दुःख स्वरूप है, क्योंकि प्राप्ति में संतोष नहीं होता, इच्छा बनी रहती है ।

योगात्मा—संज्ञा पुं० [सं० योगात्मन्] योगी ।

योगानुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र ।

योगापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संस्कार जो प्रचलित प्रथाओं अथवा आचारव्यवहार आदि के कारण उत्पन्न हो ।

योगाभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार योग के आठ अंगों का अनुष्ठान । योग का साधन । उ०—बदरिकाश्रम रहे पुनि जाई । योग अभ्यास (योगाभ्यास) समाधि लगाई ।—सूर (शब्द०) ।

योगाभ्यासी—संज्ञा पुं० [सं० योगाभ्यासिन्] योग की साधना करनेवाला, योगी ।

यागारंग—संज्ञा पुं० [सं० योगारङ्ग] नारंगी ।

योगाराधन—संज्ञा पुं० [सं०] योग का अभ्यास करना । योगसाधन ।

योगारूढ़—संज्ञा पुं० [सं० योगारूढ] वह योगी जिसने इंद्रियसुख

आदि की ओर से अपना चित्त हटा लिया हो। वह जिसने चित्तवृत्तियों का निरोध कर लिया हो। योगी।

योगासन—संज्ञा पुं० [सं०] योगसाधन के आसन, अर्थात् बैठने के ढंग।

योगित—वि० [सं०] १. जो इंद्रजाल या मंत्र आदि की सहायता से अपने अधीन कर लिया गया हो अथवा पागल बना दिया गया हो। २. जिसपर इंद्रजाल या मंत्र आदि का प्रयोग किया गया हो।

योगिता—संज्ञा पुं० [सं०] योगी का भाव या धर्म।

योगित्व—संज्ञा पुं० [सं०] योगी का भाव या धर्म।

योगिदंड—संज्ञा पुं० [सं० योगिदण्ड] बेंत।

योगिनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] थोड़ी सी नींद। झपकी।

योगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रणपिशाचिनी। २. एक लोक का नाम। ३. आषाढ़ कृष्णा एकादशी। ४. योगयुक्ता नारी। योगाभ्यासिनी। तपस्विनी। ५. आवर्ण देवता। ये असंख्य हैं जिनमें से चौंसठ मुख्य हैं। ६. आठ विशिष्ट देवियाँ जिनके नाम इस प्रकार हैं।—(१) शैलपुत्री, (२) चंद्रघंटा, (३) स्कंदमाता, (४) कालरात्रि, (५) चंडिका (६) कूष्मांडी (७) कात्यायनी और (८) महागौरी। ७. ज्योतिष शास्त्रानुसार ये आठ देवियाँ—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, नारायणी, वाराही, इंद्राणी, चामुंडा, और महालक्ष्मी। ८. तिथिविशेष में दिग्विशेषावस्थित योगिनी। ९. तत्काल योगिनी। १०. काली की एक सहचरी का नाम। ११. देवी। योगमाया।

योगिनीचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तांत्रिकों का वह चक्र जिसमें वे योगिनियों का साधन करते हैं। २. ज्योतिषी का वह चक्र जिससे वह इस बात का पता लगाता है कि योगिनी किस दिशा में हैं।

योगिया—संज्ञा पुं० [सं० योगी+हिं० इया (प्रत्य०)] १. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें गांधार के अतिरिक्त सब कोमल स्वर लगते हैं।

विशेष—इसके गाने का समय प्रातःकाल १ दंड से ५ दड तक है। यह करुण रस का राग है। कुछ लोग इसे भैरव राग की रागिनी भी मानते हैं।

२. अस्त्रज्ञानी। दे० 'योगी'।

योगिराज—संज्ञा पुं० [सं०] योगियो में श्रेष्ठ। वहुत बड़ा योगी।

योगींद्र—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] बहुत बड़ा योगी।

योगी—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्] १. वह जो भले बुरे और सुख दुःख आदि सबको समान समझता हो। वह जिसमें न तो किसी के प्रति अनुराग हो और न विराग। आत्मज्ञानी। २. वह व्यक्ति जिसने योग सिद्ध कर लिया हो। वह जिसने योगाभ्यास करके सिद्धि प्राप्त कर ली हो।

विशेष—योगदर्शन में अवस्था के भेद से योगी चार प्रकार के कहे गए हैं—(१) प्रथमकल्पित, जिन्होंने अभी योगाभ्यास का केवल आरंभ किया हो और जिनका ज्ञान अभी तक दृढ़ न हुआ हो; (२) मधुभूमिक, जो भूतों और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहते हों, (३) प्रज्ञाज्योति, जिन्होंने इंद्रियों को भली-भाँति अपने वश में कर लिया हो और (४) अतिक्रांतभावनीय, जिन्होंने सब सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों और जिनका केवल चित्तलय बाकी रह गया हो।

३. महादेव। शिव। ४. विष्णु (को०)। ५. याज्ञवल्क्य ऋषि (को०)। ६. अर्जुन (को०)। ७. एक मिश्र जाति (को०)।

योगीकुंड—संज्ञा पुं० [सं० योगिकुण्ड] हिमालय के एक तीर्थ का नाम।

योगीनाथ—संज्ञा पुं० [सं० योगिनाथ] महादेव। शंकर।

योगीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों के स्वामी। २. बहुत बड़ा योगी। ३. याज्ञवल्क्य का एक नाम, जिन्हें योगी याज्ञवल्क्य भी कहते हैं।

योगीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों में श्रेष्ठ। २. याज्ञवल्क्य मुनि का एक नाम। ३. महादेव।

योगीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

योगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० योगेन्द्र] १. बहुत बड़ा योगी। २. वैद्यक में एक प्रकार का रस।

विशेष—यह रससिंदूर से बनाया जाता है और इसमें सोना, कांती लोहा, अभ्रक, मोती और बंग आदि पड़ते हैं। यह प्रमेह, मूर्छा, यक्ष्मा, पक्षाघात, उन्माद और भगंदर आदि के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

योगेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत बड़ा योगी। २. योगी याज्ञवल्क्य का एक नाम।

योगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीकृष्ण। परमेश्वर। २. शिव। ३. देवहोत्र के एक पुत्र का नाम। ४. याज्ञवल्क्य ऋषि (को०)। ५. बहुत बड़ा योगी। योगीश्वर। सिद्ध।

विशेष—पुराणों में नौ बहुत बड़े योगी अथवा योगेश्वर माने गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) कवि (शुक्राचार्य), (२) हरि (नारायण ऋषि), (३) अंतरिक्ष, (४) प्रबुद्ध, (५) पिप्पलायन, (६) आविर्होत्र, (७) द्रुमिल (दुरमिल), (८) चमस और (९) करभाजन।

५. एक तीर्थ का नाम।

योगेश्वरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] योगेश्वर का भाव या धर्म।

योगेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. शाक्तों की एक देवी का नाम जो दुर्गा का एक विशेष रूप है। ३. कर्कोटकी। ककोड़ा।

योगेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीसा (धातु)। २. टिन [को०]।

योगोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उपनिषद् का नाम। २. कौटिल्य के अनुसार छल, कपट तथा गुप्त रीति से शत्रु को मारने की युक्ति।

योग्य¹—वि० [सं०] १. किसी काम में लगाए जाने के उपयुक्त। ठीक (पात्र)। काबिल। लायक। अधिकारी। जैसे,—वह इस काम के योग्य नहीं है। २. शील, गुण, शक्ति, विद्या आदि से युक्त। श्रेष्ठ। अच्छा। जैसे,—वे बड़े योग्य आदमी हैं। ३. युक्ति भिड़ानेवाला। उपाय लगानेवाला। उपायी। ४. उचित।

मुनासिब । ठीक । जैसे,—यह बात उनके योग्य ही है । ५. जोतने लायक । ६. जोड़ने लायक । ७. दर्शनीय । सुंदर । ८. आदरणीय । माननीय ।

योग्य[४]—संज्ञा पुं० १. पुष्य नक्षत्र । २. ऋद्धि नामक ओषधि । ३. रथ । शकट । गाड़ी । ४. चंदन ।

योग्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षमता । लायकी । २. बड़ाई । ३. बुद्धिमानी । लियाकत । विद्वत्ता । ४. सामर्थ्य । ५. अनुकूलता । मुनासिबत । मुताबिकत । ६. औकात । ७. गुण । ८. इज्जत । ९. उपयुक्तता । १०. स्वाभाविक चुनाव । ११. तात्पर्यबोध के लिये वाक्य के तीन गुणों में से एक । शब्दों के अर्थसबध की संगति या संभवनीयता । जैसे,—'वह पानी में जल गया' इस वाक्य में यद्यपि अर्थसंबंध है, पर वह अर्थ संभव नहीं, इससे यह वाक्य योग्यता के अभाव से ठीक वाक्य न हुआ ।

योग्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग्य होने का भाव । योग्यता । २. लायक या काबिल होने का भाव । प्रवीणता ।

योग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोई काम करने का अभ्यास । मश्क । २. सुश्रुत के अनुसार शस्त्रक्रिया या चीरफाड़ करने का अभ्यास । ३. जवान स्त्री । युवती ।

योजक[१]—वि० [सं०] मिलानेवाला । जोड़नेवाला ।

योजक[२]—संज्ञा पुं० पृथ्वी का वह पतला भाग जो दो बड़े विभागों को मिलाता हो । भूडमरूमध्य ।

योजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमात्मा । २. योग । ३. एक में मिलाने की क्रिया या भाव । संयोग । मिलान । मेल । योग । ४. दूरी की एक नाप जो किसी के मत से दो कोस की, किसी के मत से चार कोस की और किसी के मत से आठ कोस की होती है । (यहाँ एक कोस से अभिप्राय ४,००० हाथ से है । जैनियों के अनुसार एक योजन १०,००० कोस का होता है ।

योजनगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० योजनगन्धा] १. कस्तूरी । २. सीता । ३. व्यास की माता और शांतनु की भार्या सत्यवती का नाम । विशेष दे० 'व्यास' ।

योजनगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० योजनगन्धिका] दे० 'योजनगंधा' ।

योजनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

योजनवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

योजना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम में लगाने की क्रिया या भाव । नियुक्त करने की क्रिया । नियुक्ति । २. प्रयोग । व्यवहार । इस्तमाल । ३. जोड़ । मिलान । मेल । मिलाप । ४. बनावट । रचना । ५. घटना । ६. स्थिति । स्थिरता । ७. व्यवस्था । आयोजन । जैसे,—उन्होंने इसकी सब योजना कर दी है । ८. किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन । भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार । स्कीम । जैसे,—म्युनिसिपैलिटी की नगरसुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर ली ।

योजनीय—वि० [सं०] १. जो मिलाने अथवा योजना करने के योग्य हो । २. जिसे मिलाना या जोड़ना हो ।

योजन्य—वि० [सं०] योजन संबंधी । योजन का ।

योजित—वि० [सं०] १. जिसकी योजना की गई हो । २. जोड़ा हुआ । ३. नियम से बद्ध किया हुआ । नियमित । ४. रचा हुआ । बनाया हुआ । रचित । घटित ।

योज्य[१]—वि० [सं०] १. जोड़ने के लायक । मिलाने के योग्य । २. व्यवहार करने के योग्य ।

योज्य[२]—संज्ञा पुं० वे संख्याएँ जो जोड़ी जाती हैं । जोड़ी जानेवाली संख्याएँ । (गणित) ।

योत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह बंधन जो जुए को बैल की गरदन में जोड़ता है । जोत ।

योद्धव्य—वि० [सं०] जिससे युद्ध करना हो या जिसके साथ युद्ध किया जा सके ।

योद्धा—संज्ञा पुं० [सं० योद्धृ] वह जो युद्ध करता हो । भट । लड़ाका । सिपाही ।

योध—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा । सिपाही । वीर ।

योधक—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा । सिपाही ।

योधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध की सामग्री । लड़ाई का सामान जैसे, अस्त्र शस्त्र आदि । २. युद्ध । रण । लड़ाई ।

योधा—संज्ञा पुं० [सं० योद्धृ] दे० 'योद्धा' ।

योधिवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जंगल का नाम ।

योधी—संज्ञा पुं० [सं० योधिन्] योद्धा । वीर ।

योधेय—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा । सिपाही ।

योध्य—वि० [सं०] जिसके साथ युद्ध किया जा सके । युद्ध करने के योग्य ।

योनल—संज्ञा पुं० [सं०] यवनाल । ज्वार । मक्का या जोन्हरी ।

योनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकर । खानि । २. वह जिससे कोई वस्तु उत्पन्न हो । उत्पादक कारण । ३. उत्पत्ति स्थान । जहाँ से कोई वस्तु पैदा हो । उद्गम । ४. जल । पानी । ५. कुशद्वीप की एक नदी का नाम । ६. स्त्रियों की जननेंद्रिय । भग । ७. प्राणियों के विभाग, जातियाँ या वर्ग ।

विशेष—पुराणानुसार इनकी संख्या चौरासी लाख है । कुछ लोगों के मत से अंडज, स्वेदज, उद्भिज, और जरायुज सब इक्कीस लाख हैं, और कहीं कहीं इनकी संख्या इस प्रकार लिखी है—

जलजंतु	...	...	...	नौ लाख
स्थावर	...	...	...	बीस लाख
कृमि	...	...	...	ग्यारह लाख
पक्षी	...	...	...	दस लाख
पशु	...	...	...	तीस लाख
मनुष्य	...	...	...	चार लाख
				कुल चौरासी लाख

यह भी कहा गया है कि जीव को अपने कर्मों का फल भोगने के लिये इन सब योनियों में भ्रमण करना पड़ता है । मनुष्य योनि इन सबमें श्रेष्ठ और दुर्लभ मानी गई है ।

८. देह । शरीर । ९. गर्भ । १०. जन्म । उत्पत्ति । ११. गर्भाशय । १२. अंतःकरण ।

योनिकंद—संज्ञा पुं० [सं० योनिकन्द] योनि का एक रोग जिसमें उसके अंदर एक प्रकार की गाँठ हो जाती है और उसमें से रक्त या मवाद निकलता है।

योनिज¹—वि० [सं०] जिसकी उत्पत्ति योनि से हुई हो। योनि से उत्पन्न।

योनिज²—संज्ञा पुं० वह जीव जिसकी उत्पत्ति योनि से हुई हो।

विशेष—ऐसे जीव दो प्रकार के होते हैं—जरायुज और अंडज। जो जीव गर्भ से पूरा शरीर धारण करके योनि के बाहर निकलते हैं, वे जरायुज कहलाते हैं, और जो अंडे से उत्पन्न होते हैं, वे अंडज कहलाते हैं।

योनिदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र।

योनिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] उपदंश रोग। गरमी। आतशक।

योनिफूल—संज्ञा पुं० [सं० योनि + हिं० फूल] योनि के अंदर की वह गाँठ जिसके ऊपर एक छेद होता है। इसी छेद में से होकर वीर्य गर्भाशय में प्रवेश करता है।

योनिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] योनि का एक रोग जिसमें गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है।

योनिमुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बार बार जन्म लेने से मुक्त हो गया हो। वह जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया हो।

योनिमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक मुद्रा जिसमें वे पूजन के समय उँगलियों से प्रायः योनि का सा आकार बनाते हैं।

योनियंत्र—संज्ञा पुं० [सं० योनियन्त्र] कामाख्या, गया आदि कुछ विशिष्ट तीर्थ स्थानों में बना हुआ एक प्रकार का बहुत ही संकीर्ण मार्ग, जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि जो इस मार्ग से होकर निकल जाता है, उसका मोक्ष हो जाता है।

योनिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० योनिरञ्जन] ऋतुस्राव। रजोधर्म [को०]।

योनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक देश का प्राचीन नाम जिसमें क्षत्रियों का निवास था।

योनिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] योनि का एक रोग जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

योनिशूलघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतपुष्पा।

योनिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० योनिसङ्कर] वह जिसके पिता और माता दोनों भिन्न जातियों के हों। वर्णसंकर।

योनिसंकोचन—संज्ञा पुं० [सं० योनिसङ्कोचन] १. योनि को फैलाने और सिकोड़ने की क्रिया। २. योनि के मुख को सिकोड़ने या तंग करने की औषध।

विशेष—यह क्रिया अथवा इसका उपाय प्रायः संभोगसुख के लिये किया जाता है।

योनिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० योनिसम्भव] वह जो योनि से उत्पन्न हुआ हो। योनिज।

योनिसंवरण—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्रियों का एक प्रकार का रोग, जिसमें योनि का मार्ग सिकुड़ जाता है, गर्भाशय का द्वार रुक जाता है और गर्भ का मुँह बंद हो जाने से साँस रुककर बच्चा मर जाता है। इस रोग में गर्भिणी के भी मर जाने की आशंका रहती है।

योनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि।

योन्यर्श—संज्ञा पुं० [सं० योन्यर्शस्] योनि का एक रोग जिसमें उसके अंदर गाँठ सी हो जाती है। योनिकंद।

योम—संज्ञा पुं० [अ० यौम] १. दिन। रोज। २. तिथि। तारीख।

योरोप—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'युरोप'।

योरोपियन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'युरोपियन'।

योषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जो सती और पतिव्रता न हो। दुश्चरित्रा स्त्री। २. युवा लड़की। नवयुवती।

योषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री। औरत।

योषित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री।

योषित्प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

योषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। औरत [को०]।

योषिद्ग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] मृत व्यक्ति की स्त्री को रखनेवाला वा ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

यौं(पु)¹—अव्य० [सं० एवमेव] दे० 'यों'। उ०—पहिरत ही गोरे गरे यौं दौरी दुति लाल। मनौ परसि पुलकित भई मौलसिरी की माल।—बिहारी (शब्द०)।

यौ(पु)²—सर्व० [हिं० यह] यह। उ०—ऐपी एक आप कहि राजा सों यौ बात कही, लैके जावौ बाग स्वामी नेकु देखौं प्रीति को।—प्रियादास (शब्द०)।

यौक्ताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

यौक्तिक¹—वि० [सं०] जो युक्ति के अनुसार ठीक हो। युक्तियुक्त। बाजिब। उचित। ठीक।

यौक्तिक²—संज्ञा पुं० विनोद या क्रीड़ा का साथी। नर्म सखा।

यौगंधर—संज्ञा पुं० [सं० यौगन्धर] अस्त्रों के निष्फल करने का एक प्रकार का अस्त्र।

यौगंधरायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो युगंधर के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। २. राजा उदयन के एक मंत्री का नाम।

यौग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो योगदर्शन के मत के अनुसार चलता हो।

यौगक—वि० [सं०] योग संबंधी। योग का।

यौगिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिला हुआ। २. प्रकृति और प्रत्यय के योग से बना हुआ शब्द। व्युत्पन्न शब्द। ३. दो शब्दों से मिलकर बना हुआ शब्द। ४. अट्ठाइस मात्राओं के छंदों की संज्ञा।

यौजनिक—वि० [सं०] जो एक योजन तक जाता हो। एक योजन तक जानेवाला।

यौतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यौतुक'।

यौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह धन आदि जो विवाह के समय वर और कन्या को मिलता हो। दाइजा। जहेज। दहेज।

विशेष—ऐसे धन पर सदा वधू का ही अधिकार रहता है, घर के और लोगों का उसपर कोई अधिकार नहीं होता। यह स्त्रीधन माना जाता है।

२. अन्नप्राशन आदि संस्कारों के समय जिसका संस्कार होता है उसको मिलनेवाला धन।

यौथिक—वि० [सं०] १. यूथ संबंधी। समूह का। २. जो यूथ में रहता हो। झुंड बाँधकर रहनेवाला।

यौथिक[२]—संज्ञा पुं० साथी। मित्र [को०]।

यौध—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा। सिपाही।

यौधेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. योद्धा। २. एक प्राचीन देश का नाम। ३. प्राचीन काल की एक योद्धा जाति।

विशेष—यह जाति उत्तरपश्चिम भारत में रहती थी और इसका उल्लेख पाणिनि ने किया है। बौद्ध काल में इस जाति का बहुत जोर और आदर था। इस जाति के राजाओं के अनेक सिक्के भी पाए गए हैं। पुराणानुसार यह जाति युधिष्ठिर के वंशजों से उत्पन्न हुई थी।

४. युधिष्ठिर का पुत्र जो राजा शैव्य का दौहित्र था।

यौन[१]—वि० [सं०] १. योनि संबंधी। योनि का। २. वैवाहिक। जैसे, यौन संबंध।

यौ०—**यौनवृत्ति** = काम या कामुकता की वृत्ति।

यौन[२]—संज्ञा पुं० १. योनि (को०)। २. विवाह संबंध (को०)। ३. उत्तरापथ की एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। कदाचित् ये लोग यवन जाति के थे।

यौनानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० यौनानुबन्ध] खून का संबंध [को०]।

यौवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्रियों का समूह। २. लास्य नृत्य का दूसरा भेद। वह नृत्य जिसमें बहुत सी नटियाँ मिलकर नाचती हों।

यौवतेय—संज्ञा पुं० [सं०] युवती का लड़का। युवती का पुत्र [को०]।

यौवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवस्था का वह मध्य भाग जो बाल्यावस्था के उपरांत आरंभ होता है और जिसकी समाप्ति पर वृद्धावस्था आती है।

विशेष—इस अवस्था के अच्छी तरह आ चुकने पर प्रायः शारीरिक बाढ़ रुक जाती है और शरीर बलवान तथा हृष्ट हो जाता है। साधारणतः यह अवस्था १६ वर्ष से लेकर ६० वर्ष तक मानी जाती है।

२. युवा होने का भाव। तारुण्य। जवानी। ३. दे० 'जोबन'। ४. युवतियों का दल।

यौवनकंटक—संज्ञा पुं० [सं० **यौवनकण्टक**] मुँहासा, जो युवावस्था में होता है।

यौवनक—सं० पुं० [सं०] यौवनि। जवानी।

यौवनपिड़का—संज्ञा पुं० [सं० **यौवनपिडका**] मुँहासा।

यौवलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लावण्य। नमक। २. स्त्रियों की छाती। स्तन। कुच।

यौवनस्थ—वि० [सं०] १. युवा। तरुण। जवान। २. विवाह के योग्य। ३. स्वस्थ। तेजस्वी।

यौवनरूढा—वि० [सं० **यौवनाधिरूढा**] युवती। जवान (स्त्री)।

यौवनाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] मांधाता राजा का एक नाम। विशेष दे० 'मांधाता'।

यौवनिक—वि० [सं०] यौवन संबंधी। यौवन का।

यौवनोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

यौवनोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] कामोन्माद। जवानी की उमंग [को०]।

यौवराजिक—वि० [सं०] युवराज संबंधी। युवराज का।

यौवराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. युवराज होने का भाव। २. युवराज का पद।

यौवराज्याभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] वह अभिषेक और उसके संबंध का कृत्य तथा उत्सव आदि जो किसी के युवराज बनाए जाने के समय हो। युवराज के अभिषेक का कृत्य।

यौषिण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारीत्व। २. नारी की भावभंगिमा या मुखमुद्रा [को०]।

र

र—हिंदी वर्णमाला का सत्ताईसवाँ व्यंजन वर्ण जिसका उच्चारण जीभ के अगले भाग को मूर्धा के साथ कुछ स्पर्श कराने से होता है। यह स्पर्श वर्ण और ऊष्म वर्ण के मध्य का वर्ण है। इसका उच्चारण स्वर और व्यंजन का मध्यवर्ती है; इसलिये इसे अंतस्थ वर्ण कहते हैं। इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष नामक प्रयत्न होते हैं।

रंक[१]—वि० [सं० रङ्क] [वि० स्त्री० **रंकिणी**] १. धनहीन। गरीब। दरिद्र। कंगाल। उ०—(क) बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।—सूर (शब्द०)। (ख) ऊँचे नीचे बीच के धनिक रंक राजा राय हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है।—तुलसी (शब्द०)। २. कृपण। कंजूस। ३. सुस्त। काहिल। आलसी।

रंक[२] संज्ञा पुं० १. कृपण व्यक्ति। २. सुस्त वा काहिल आदमी। ३. निर्धन व्यक्ति।

रंकता—संज्ञा स्त्री० [सं० **रङ्क**+हिं० **ता** (प्रत्य०)] निर्धनता। गरीबी। कंगाली। उ०—रंकता देख जिसकी रंकता लजाती राजसी ठाठ से उसकी अरथी जाती।—सूत०, पृ० ८७।

रंकिनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० रङ्किणी] निर्धनवती। दरिद्रा। जिसके पास कुछ न हो। उ०—होकर भी बहु चित्र अंकिनी आप रंकिनी आशा है।—साकेत, पृ० ३६९।

रंकु—संज्ञा पुं० [सं० रङ्कु] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ पर सफेद चित्तियाँ होती हैं।

रंग—संज्ञा पुं० [सं० रङ्ग, फ़ा० रंग] १. राँगा नामक धातु। २. नृत्य गीत आदि। नाचना गाना।

यौ०—**नाच रंग**। जैसे,—वहाँ आजकल खूब नाच रंग हो रहा है।

३. वह स्थान जहाँ नृत्य या अभिनय होता हो। नाचने गाने, नाटक करने आदि के लिये बनाया हुआ स्थान।

यौ०—**रंगमंच**। **रंगभूमि**। **रंगद्वार**। **रंगदेवता**। रंगस्थल आदि।

४. युद्धस्थल। रणक्षेत्र। लड़ाई का मैदान। ५. खदिरसार। ६. किसी दृश्य पदार्थ का वह गुण जो उसके आकार से भिन्न होता है और जिसका अनुभव केवल आँखों से ही होता है। वर्ण।

विशेष—जब किसी पदार्थ पर पहले पहल हमारी दृष्टि जाती है, तब प्रायः हमें दो ही बातों का ज्ञान होता है। एक तो उसके आकार का और दूसरा उसके रंग का। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि रंग वास्तव में प्रकाश की किरणों में ही होता है; और वस्तुओं के भिन्न भिन्न रासायनिक गुणों के कारण ही हमारी आँखों को उनका अनुभव वस्तुओं में होता है। जब किसी वस्तु पर प्रकाश पड़ता है, तब उस प्रकाश के तीन भाग होते हैं। पहला भाग तो परावर्तित हो जाता है; दूसरा वर्तित हो जाता है; और तीसरा उस वस्तु के द्वारा सोख लिया जाता है। परंतु सब वस्तुओं में ये गुण समान रूप में नहीं होते; किसी में कम और किसी में अधिक होते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं, जिनमें से प्रकाश परावर्तित होता ही नहीं, या तो वर्तित होता है या सोख लिया जाता है; जैसे, शुद्ध जल। ऐसे पदार्थ प्रायः बिना रंग के दिखाई देते हैं। जिन पदार्थों पर पड़नेवाला सारा प्रकाश परावर्तित हो जाता है, वे श्वेत दिखाई पड़ते हैं। और जो पदार्थ अपने ऊपर पड़नेवाला समस्त प्रकाश सोख लेते हैं, वे काले होते या दिखाई देते हैं।

प्रकाश का विश्लेषण करने से उसमें अनेक रंगों की किरणें मिलती हैं, जिनमें ये सात रंग मुख्य हैं—बैंगनी, नील, श्याम या आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। जब ये सातों रंग मिलकर एक हो जाते हैं, तब हम उसे सफेद कहते हैं; और जब इन सातों में से एक भी रंग नहीं रहता, तब हम उसे काला कहते हैं। अब यदि किसी ऐसे पदार्थ पर श्वेत प्रकाश पड़े, जिसमें लाल किरणों को छोड़कर और सब रंगों की किरणों को सोख लेने की शक्ति हो, तो स्वभावतः प्रकाश का केवल लाल ही अंश उसपर बच रहेगा; और उस दशा में हम उस पदार्थ को लाल रंग का कहेंगे। अर्थात् प्रत्येक वस्तु हमें उसी रंग की देख पड़ती है, जिस रंग का वह न तो सोख सकती है और न वर्तित करती है, बल्कि जिसे वह परावर्तित करती है। कुछ रंग ऐसे भी होते हैं, जिनके मिलने से सफेद रंग बनता है। ऐसे रंग एक दूसरे के परिपूरक कहलाते हैं। जैसे—यदि हरितपीत रंग के प्रकाश के साथ ही लाल रंग का प्रकाश भी पहुँचने लगे, तो उस दशा में हमें सफेद रंग दिखाई पड़ेगा। इसलिये लाल और हरितपीत दोनों एक दूसरे के परिपूरक रंग हैं। प्रायः दो रंगों के मिलने से एक नया तीसरा रंग भी पैदा हो जाता है; जैसे—लाल और पीले के मिलने से नारंगी रंग बनता है। परंतु ये सब बातें केवल प्रकाश की किरणों के संबंध में हैं; बाजार में मिलनेवाली बुकनियों के संबंध में नहीं हैं। दो प्रकार की बुकनियों को एक साथ मिलाने से जो परिणाम होगा, वह दो रंगों की प्रकाश-किरणों को मिलाने के परिणाम से कभी कभी बिलकुल भिन्न होगा। इसका कारण यह है कि जब हम दो प्रकार की बुकनियों को एक में मिलाते हैं, उस समय हम वास्तव में एक रंग में दूसरा रंग जोड़ते नहीं हैं, बल्कि एक रंग में से दूसरा रंग घटाते हैं। जिस रंग की किरण को एक बुकनी परावर्तित करती है, उसे दूसरी बुकनी सोख लेती है। इसी लिये बुकनियों के संबंध में जो नियम हैं, वे प्रकाश की किरणों के संबंध के नियम से भिन्न हैं।

७. कुछ विशिष्ट रासायनिक क्रियाओं से बनाया हुआ वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी चीज को रँगने या रंगीन बनाने के लिये होता है। वह चीज जिसके द्वारा कोई चीज रँगी जाय या जिससे किसी चीज पर रंग चढ़ाया जाय।

विशेष—बाजारों में प्रायः अनेक प्रकार के कार्यों के लिये अनेक रूपों में बने बनाए रंग मिलते हैं, जिनका व्यवहार चीजों को रँगने या चित्रित करने के लिये होता है। जैसे, कपड़े रँगने का रंग, लकड़ी पर चढ़ाने का रंग, तसवीर बनाने का रंग आदि।

क्रि० प्र०—**करना**।—**चढ़ना**।—**चढ़ाना**।—**पोतना**।—**होना**।

यौ०—**रंगबिरंग**, **रंगबिरंगा** = जिसमें अनेक प्रकार के रंग हों। तरह तरह के रंगोंवाला। उ०—रंगबिरंग एक पच्छी बना। छोटा चोंच और काटे घना। (पहेली)।

मुहा०—**रंग आना या चढ़ना** = रंग अच्छी तरह लग जाना या प्रकट होना। **रंग उड़ना या उतरना** = धूप या जल आदि के संसर्ग से रंग का बिगड़ जाना या फीका पड़ जाना। **रंग खेलना** = होली के दिनों में पानी में रंग घोलकर एक दूसरे पर डालना। **रंग डालना या फेंकना** = (होली में) पानी में रंग घोलकर किसी पर डालना। **रंग निखरना** = रंग का शोख या चटकीला होना।

यौ०—**रंगदार**।

८. शरीर का ऊपरी वर्ण। बदन और चेहरे की रंगत। वर्ण।

मुहा०—(**चेहरे का**) **रंग उड़ना या उतरना** = भय या लज्जा से चेहरे की रौनक का जाता रहना। चेहरा पीला पड़ना। कांतिहीन होना। **रंग निकलना** = दे० 'रंग निखरना'। **रंग निखरना** = चेहरे के रंग का साफ होना। चेहरा साफ और चमकदार होना। चेहरे पर रौनक आना। **रंग फक होना** = दे० 'रंग उड़ना'। **रंग बदलना** = (१) लाल पीला होना। खफा

होना। क्रुद्ध होना। नाराज होना। जैसे,—आप तो नाहक हम पर रंग बदल रहे हैं। (२) रूप परिवर्तित करना।

९. यौवन। जवानी। युवावस्था।

क्रि० प्र०—आना।—चढ़ना।—होना।

मुहा०—**रंग चूना**=युवावस्था का पूर्ण विकास होना। यौवन उमड़ना। **रंग टपकना**=दे० 'रंग चूना'।

१०. शोभा। सौंदर्य। रौनक। छवि।

क्रि० प्र०—आना।—उतरना।—चढ़ना।—दिखाना।—होना।

मुहा०—**रंग पकड़ना**=रौनक या बहार पर आना। **रंग पर आना**=दे० 'रंग पकड़ना'। **रंग फीका पड़ना या होना**=रौनक कम हो जाना। शोभा का घट जाना। **रंग बरसना**=अत्यंत शोभा होना। खूब रौनक होना। उ०—सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। **रंग है**=शाबाश। वाह वा क्या बात है।

११. प्रभाव। असर।

मुहा०—**रंग चढ़ना**=प्रभाव पड़ना। असर पड़ना। जैसे,—इस लड़के पर भी अब नया रंग चढ़ रहा है। **रंग जमना**=प्रभाव पड़ना। असर पड़ना।

१२. दूसरे के हृदय पर पड़नेवाली शक्ति, गुण या महत्व का प्रभाव। धाक। रोब।

मुहा०—**रंग जमना**=धाक जमना। अनुकूल स्थिति उत्पन्न होना। उ०—दोनों ने समझा कि रंग जैसा चाहिए, वैसा जम गया।—अयोध्या० (शब्द०)। **रंग उखड़ना**=धाक न रहना। स्थिति प्रतिकूल होना। दूसरों पर महत्व आदि का प्रभाव न रह जाना। जैसे,—पहले यहाँ उसे बहुत आमदनी थी; पर अब रंग उखड़ गया। **रंग जमाना**=प्रभाव डालना। धाक बाँधना। **रंग फीका रहना**=पूरा पूरा प्रभाव न पड़ना। **रंग बँधना**=रोब जमना। धाक बँधना। **रंग बाँधना**=(१) अपना महत्व दूसरे के हृदय में स्थापित करना। रोब गाँठना। धाक जमाना। उ०—भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कहीं तख्त मिल जाय, तो रंग बाँध दूँ।—राधाकृष्णदास (शब्द०)। (२) झूठा आडंबर रचना। ढोंग रचना। **रंग बिगड़ना**=रोब जाता रहना। प्रभाव नष्ट या कम हो जाना। **रंग बिगाड़ना**=(१) प्रभाव नष्ट करना। महत्व घटाना। (२) शेखी किरकिरी करना। **रंग लाना**=अपना प्रभाव या गुण दिखलाना।

१३. क्रीड़ा। कौतुक। खेल। आनंद। उत्सव। उ०—(क) दिन में सब लोग राग, रंग, नृत्य, दान, भोजन, पान इत्यादि में नियुक्त थे। (ख) बर जंग रंग करिबे चह्यौ मर्नाहि सुढंग उमंग में।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—रंगरलियाँ=आमोद प्रमोद। मौज। चैन।

क्रि० प्र०—करना।—मनाना।

मुहा०—**रंग रलना**=आमोद प्रमोद करना। क्रीड़ा या भोग विलास करना। उ०—भाव ही कह्यौ मन भाव दृढ़ राखिबो दे सुख तुमहिं संग रंग रलिहैं।—सूर (शब्द०)। **रंग में भंग पड़ना**=आमोद प्रमोद के बीच कोई दुःख की बात आ पड़ना। हँसी और आनंद में विघ्न पड़ना।

१४. युद्ध। लड़ाई। समर।

मुहा०—**रंग मचाना**=रण में खूब युद्ध करना। उ०—चढ़ि देहि समर उत्तर परन उत्तर द्वार मचाय रंग।—गोपाल (शब्द०)।

१५. मन की उमंग वा तरंग। मन का वेग या स्वच्छंद प्रवृत्ति। मौज। उ०—(क) रत्नजटित किंकिणि पग नूपुर अपने रंग बजावहु।—सूर (शब्द०)। (ख) अपने अपने रंग में सब रँगे हैं, जिसने जो सिद्धांत कर लिया है, वही उसके जी में गड़ रहा है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ग) चढ़े रंग सफजंग के हिंदू तुरुक अमान। उमड़ि उमड़ि दुहुँ दिसि लगे कौतन लोहौ खान।—लाल (शब्द०)।

मुहा०—(किसी के) **रंग में ढलना**=किसी के कहने या विचार के अनुसार कार्य करने लगना। किसी के प्रभाव में आना। उ०—तुरत मन सुख मानि लीन्हों नारि तेहि रंग ढरी।—सूर (शब्द०)।

१६. आनंद। मजा। उ०—(क) बहुत झूरिया लागे संग। दाम न खरचैं लूटै रंग।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) खान पान सनमान राग रंग मर्नाहि न भावैं।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) मोकों व्याकुल छाँडिकै आपुन करैं जु रंग।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का और इसके मुहावरों का प्रयोग प्रायः नशे के संबंध में भी होता है।

मुहा०—**रंग आना**=मजा मिलना। आनंद मिलना। **रंग उखड़ना**=बने हुए आनंद का अचानक घटना या नष्ट हो जाना। **रंग जमना**=आनंद का पूर्णता पर आना। खूब मजा होना। **रंग मचाना**=धूम मचाना। उ०—असवारी में रंग मचावै। मन के संग तुरंग नचावै।—लाल (शब्द०)। **रंग में भंग करना**=पूर्ण आनंद के समय उसमें विघ्न उपस्थित करना। बना बनाया मजा बिगड़ना। **रंग रचाना**=उत्सव करना। जलसा करना। **रंग रहना**=आनंद रहना। प्रसन्नता रहना। मजा रहना।

१७. दशा। हालत। उ०—कबहुँ नहिं यहि भाँति देख्यो, आज को सो रंग।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—**रंग लाना**=दशा उपस्थित करना। हालत करना। जैसे—तुम्हारी ही शरारत यह सब रंग लाई है।

१८. अद्भुत व्यापार। कांड। दृश्य। जैसे,—यह सब रंग उन्हीं की कृपा का फल है।

१९. प्रसन्नता। कृपा। दया। मेहरबानी। उ०—हम चाकर कलि-

राज के वृथा करत हौ दोष। ताकी मरजी को तकै करत रंग औ रोष।—गुमान (शब्द०)। २०. प्रेम। अनुराग। उ०—(क) जब हम रँगी श्याम के रंगा। तब लिखि पठवा ज्ञान प्रसंगा।—रघुनाथदास (शब्द०)। (ख) देखु जरनि जड़ नारि की जरत प्रेम के रंग। चिता न चित फीको भयो रची जु पिय के रंग।—सूर (शब्द०)। (ग) ऐसे भए तो कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रंग न राते।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**रंग देना** = किसी को अपने प्रेमपाश में फँसाने के लिये उसके प्रति प्रेम प्रकट करना। (बाजारू)। **रंग (में) भींजना** = अनुराग में सराबोर होना। उ०—गोरिन के रँग भींजिगो साँवरो साँवरे के रँग भींजी सु गोरी।—पद्माकर (शब्द०)।

२१. ढंग। ढब। चाल। तर्ज। उ०—(क) राजभवनाभ्यंतर तो यह उपकरण था और बाहर नभमंडल का और ही रंग दिखलाई देता था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)। (ख) जो तुम राजी हो इस रंग। तो खेलो फाग हमारे संग।—लल्लूलाल (शब्द०)। (ग) त्यों पदमाकर यों मग में रंग देखत हो कब की रुख राखे।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—**कुरंग** = बुरा ढब या ढंग। बुरा लक्षण। उ०—सुनु जानकी कुरंगनैनी होय न कुरंग यह बड़ोई कुरंग है।—हृदयराम (शब्द०)। **रंग ढंग** = (१) दशा। हालत। (२) चाल ढाल। तौर तरीका। उ०—हमारा प्रधान शासक न विक्रम के रंग ढंग का है न हारूँ या अकबर के। उसका रंग ही निराला है।—बालमुकुंद (शब्द०)। (३) व्यवहार। बरताव। जैसे—आजकल उसके रंग ढंग अच्छे नहीं दिखाई देते। ४. ऐसी बात जिससे किसी दूसरी बात का अनुमान हो। लक्षण। जैसे,—आसमान के रंग ढंग से तो मालूम होता है कि आज पानी बरसेगा।

मुहा०Ⓤ—**रंग काछना** = चाल चलना। ढंग अख्तियार करना। उ०—सूर श्याम जितने रंग काछत युवती जन मन के गोऊ हैं।—सूर (शब्द०)। **(किसी को अपने) रंग में रँगना** = किसी को अपने ही विचारों का बना लेना। अपना सा कर लेना।

२२. भाँति। प्रकार। तरह। उ०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल। प्रगटत निरगुन निकट रहि चंग रंग भूपाल।—बिहारी (शब्द०)। २३. चौपड़ की गोटियों के, खेल के काम के लिये किए हुए, दो कृत्रिम विभागों में से एक।

विशेष—चौपड़ की कुल गोटियाँ १६ होती हैं, जो चार रंगों में विभक्त होती हैं। इनमें से विशिष्ट दो रंग की आठ गोटियाँ 'रंग' और शेष दो रंगों की आठ गोटियाँ 'बदरंग' कहलाती हैं।

मुहा०—**रंग जमना** = चौपड़ में रंग की गोटी का किसी अच्छे और उपयुक्त घर में जा बैठना, जिसके कारण खेलाड़ी की जीत अधिक निश्चित हो जाती है। **रंग मारना** = बाजी जीतना। विजय पाना। उ०—(क) यह होंठ जो कि पोपले यारों हैं हमारे। इन होठों ने बोसों के बड़े रंग हैं मारे।—नजीर (शब्द०)। (ख) इश्कबाजी के लिये हमने बिछाई चौसर। पासा गिरते ही गोया रंग हमारा मारा।—(शब्द०)।

रंगई†—संज्ञा पुं० [हिं० रंग + ई (प्रत्य०)] धोबियों के अंतर्गत एक जाति जो केवल छपे हुए कपड़े धोने का काम करती है।

रंगकार—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गकार**] रंग आदि का काम करनेवाला। रंगसाज। रँगरेज [को०]।

रंगकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गकाष्ठ**] पतंग नाम की लकड़ी। बक्कम।

रंगक्षार—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गक्षार**] टंकरण। सोहागा [को०]।

रंगक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गक्षेत्र**] १. अभिनय करने का स्थान। रंगस्थल। नाट्यभूमि। २. किसी उत्सव आदि के लिये सजाया हुआ स्थान।

रंगगृह—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गगृह**] १. रंगभूमि। नाट्यस्थल। २. क्रीडागृह। ३. केलिमंदिर।

रंगचर—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गचर**] १. नाटक में अभिनय करनेवाला। नट। २. असियुद्ध करनेवाला योद्धा। तलवारबाज (को०)।

रंगज—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गज**] सिंदूर।

रंगजननी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रङ्गजननी**] लाक्षा। लाख।

रंगजीवक—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गजीवक**] १. चित्रकार। मुसव्वर। २. वह जो अभिनय करता हो। नट।

रंगजीविक—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गजीविक**] दे० 'रंगकार' [को०]।

रंगड़ाⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं० रंग + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'रंग'। उ०—तेरे प्रेम की माती रे, रंगड़ै राती रे।—दादू०, पृ० ५०४।

रंगण—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गण**] नर्तन। नाचना। नाच करना [को०]।

रंगत—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग + **त** (प्रत्य०)] १. रंग का भाव। जैसे,—इसकी रंगत कुछ काली पड़ गई है। २. मजा। आनंद। जैसे,—जब आप वहाँ पहुँचेंगे, तभी रंगत आवेगी।

क्रि० प्र०—**खिलाना**।—**खुलना**।—**जमना**।

मुहा० **रंगत आना** = मजा होना। आनंद होना।

३. हालत। दशा। अवस्था। जैसे, आजकल उनकी रंगत अच्छी नहीं है।

रंगतरा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की बड़ी और मीठी नारंगी संगतरा।

रंगद—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्गद**] १. सोहागा। २. खदिरसार।

रंगदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **रङ्गदलिका**] नागवल्ली लता। नागबेल।

रंगदा—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गदा] फिटकिरी।

रंगदायक—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गदायक] कंकुष्ठ नाम की पहाड़ी मिट्टी।

रंगदृढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गदृढा] फिटकरी, जिससे रंग पक्का होता है।

रंगदेवता—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गदेवता] वह कल्पित देवता जो रंगभूमि के अधिष्ठाता माने जाते हैं।

रंगद्वार—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गद्वार] १. रंगमंच का प्रवेशद्वार। २. नाटक की भूमिका या प्रस्तावना [को०]।

रंगन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मझोला वृक्ष।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती हैं और इमारत के काम आती है। बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में यह पेड़ बहुतायत से होता है। इसे 'कोटा गंधल' भी कहते हैं।

रंगना[1]—क्रि० स० [हिं० रंग + ना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु पर रंग चढ़ाना। रंग में डुबाकर अथवा रंग चढ़ाकर किसी चीज को रंगीन करना। जैसे, कपड़ा रंगना। किवाड़े रंगना।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।

२. किसी को अपने प्रेम में फँसाना। ३. अपने कार्यसाधन के अनुकूल करने के लिये बातचीत का प्रभाव डालना। अपने अनुकूल करना। अपना सा बनाना।

रंगना[2]—क्रि० अ० किसी के प्रेम में लिप्त होना। किसी पर आसक्त होना। उ०—जनम तासु को सुफल जो रंगे राम के रंग।—रघुनाथदास (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

रंगनिवास(प)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रंगमहल'। उ०—राखी रंगनिवास मैं, तैं जगमाल जुआँण।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७२।

रंगपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गपत्री] नीली वृक्ष।

रंगपीठ—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गपीठ] नृत्यशाला। नाचघर [को०]।

रंगपुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंगपुर (=बंगाल का एक नगर)] एक प्रकार की छोटी नाव जिसके दोनों ओर की गलही एक सी होती है।

रंगपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गपुष्पी] नीली वृक्ष।

रंगप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गप्रवेश] अभिनय करने के लिये किसी पात्र का रंगभूमि में आना।

रंगबदल—संज्ञा पुं० [हिं० रँग + बदलना] हल्दी। (साधू)।

रंगबरंग—वि० [हिं० रंग + बिरंग (अनु०)] १. कई रंगों का। २. भाँति भाँति के। तरह तरह के। अनेक प्रकार के। जैसे,—(क) उनके पास रंग बिरंग कपड़े हैं। (ख) माँ टेनी और बाप कुलंग। उनके बच्चे रंग बिरंग।

रंगबिरंगा—वि० [हिं० रंग बिरंग] १. अनेक रंगों का। कई रंगों का। चित्रित। २. तरह तरह का। अनेक प्रकार का।

रंगबीज—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गबीज] रजत। चाँदी [को०]।

रंगभरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० रंग + भरना] १. छत, किवाड़े, दीवार इत्यादि पर रंगों से चित्रकारी करनेवाला। २. रंग करनेवाला। रंगसाज।

रंगभवन—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गभवन] आमोद प्रमोद या भोगविलास करने का स्थान। रंगमहल।

रंगभीनी(प)—वि० [सं० रङ्ग + हिं० भींनना] प्रेममयी। रस में सराबोर। प्रेमासक्त। उ०—साँवरे प्रीतम संग राजत रंगभीनी भामिनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६४।

रंगभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गभूति] आश्विन की पूर्णिमा। कोजागर पूर्णिमा।

विशेष—कहते हैं, जो लोग इस रात को जागते रहते हैं, उन्हें लक्ष्मी आकर धन देती हैं।

रंगभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गभूमि] १. वह स्थान जहाँ कोई जलसा हो। उत्सव मनाने का स्थान। उ०—(क) रंगभूमि आए दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई।—तुलसी (शब्द) (ख) एहैं रंगभूमि चलि जबहीं। मल्ल युद्ध करि मारब तबहीं।—रघुनाथदास (शब्द०)। २. खेल, कूद वा तमाशे आदि का स्थान। क्रीड़ास्थल। उ०—रंगभूमि रमणीक मधुपुरी बारि चढ़ाइ कहो दह कीजो।—सूर (शब्द०)। ३. नाटक खेलने का स्थान। नाट्यशाला। रंगस्थल। ४. वह स्थान जहाँ कुश्ती होती हो। अखाड़ा। ५. रणभूमि। रणक्षेत्र।

रंगमंगल—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गमङ्गल] रंगमंच की पूजा या अनुष्ठान [को०]।

रंगमंडप—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गमण्डप] रंगभूमि। रंगस्थल।

रंगमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० रङ्ग + मन्दिर] दे० 'रंगमहल'। उ०—उस निस्पंद रंगमंदिर के व्योम में क्षीण गंध निरवलंब।—लहर, पृ० ८२।

रंगमध्य—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गमध्य] रंगमंच। रंगस्थल।

रंगमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गमल्ली] वीणा। बीन।

रंगमहल—संज्ञा पुं० [हिं० रंग + अ० महल] भोगविलास करने का स्थान। आमोद प्रमोद करने का भवन। उ०—बैठी रंगमहल में राजति। प्यारी फेरि अभूषण साजति।—सूर (शब्द०)।

रंगमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गमातृ] १. कुटनी कुट्टनी। २. लाख। लाक्षा।

रंगमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गमातृका] लाक्षा। लाख।

रंगमार—संज्ञा पुं० [हिं० रंग + मारना] ताश का एक खेल।

विशेष—ताश का यह खेल दो, तीन अथवा चार आदमियों में खेला जाता है। इसमें एक एक करके सब खेलनेवालों को

बराबर बराबर पत्ते बाँट दिए जाते हैं और तब खेल होता है। इसमें जिस रंग का जो पत्ता चला जाता है, उसी रंग के उससे बड़े पत्ते से वह जीता जाता है। यह ताश का सबसे सीधा खेल है।

रंगरली—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+रलना] दे० 'रँगरली'।

रंगरस—संज्ञा पुं० [हिं० रंग+रस] आमोद प्रमोद। आनंद मंगल।

रंगरसिया—संज्ञा पुं० [हिं० रंग+रसिया] भोगविलास करनेवाला व्यक्ति। विलासी पुरुष।

रंगराज—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गराज] संगीत दामोदर के अनुसार ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद।

रंगरेली‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रँगरली'।

रंगलता—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गलता] आवर्तकी लता। मरोड़फली।

रंगलासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० रंगलासिनी] शेफालिका।

रंगवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [रङ्गवल्लिका] रंगवल्ली। नागवल्ली।

रंगविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गविद्या] नृत्य और अभिनय आदि रंगमंच संबंधी कला या हुनर [को०]।

रंगविद्याधर—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गविद्याधर] १. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। इसमें दो खाली और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। २. वह जो अभिनय करता हो। रंगविद्या में कुशल। नट। ३. वह जो नाचने में कुशल हो।

रंगवीज—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गवीज] चाँदी।

रंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० रंगशाला] नाटक खेलने का स्थान। नाट्यशाला। रंगस्थल।

रंगसंगर—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गसङ्गर] रंगमंच पर होनेवाली प्रतिद्वंद्विता। अभिनय, नृत्य आदि की प्रतिस्पर्धा [को०]।

रंगसाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० रंगसाज़ (सं० रङ्ग+फ़ा० साज)] १. मेज, कुरसी, किवाड़, दीवार इत्यादि पर रंग चढ़ानेवाला। वह जो चीजों पर रंग चढ़ाता हो। २. उपकरणों से रंग तैयार करनेवाला। रंग बनानेवाला।

रंगसाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रंगसाज़ी] रंगसाज का काम। रँगने का काम।

रंगांगण—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गाङ्गण] रंगस्थल। नाट्यशाला।

रंगांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गाङ्गा] फिटकिरी।

रंगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+आई (प्रत्य०)] दे० 'रँगाई'।

रंगाचंगाⓅ—वि० [हिं० रंगा+प्रा० चंगा] बना ठना। सजा बजा। उ०—केचित् दीसै रंगा चंगा। पाट पटंबर वोढ़हिं अंगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६३।

रंगाजीव—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गाजीविन्] वह जिसकी जीविका रँगाई से चलती हो। रंगसाज या रँगरेज।

रंगाना—क्रि० स० [हिं० रंगना का प्रेर० रूप] दे० 'रँगाना'।

रंगाभरण—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गाभरण] ताल के साठ भेदों में से एक भेद।

रंगारंगⓅ—वि० [फ़ा०] चित्र विचित्र। रंग बिरंगा। तरह तरह का। उ०—यह रंगारंग विभाग भाँति भांति के काव्यों से भरा हुआ है।—सुंदर० ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० ७७।

रंगार—संज्ञा पुं० [देश०] १. वैश्यों की एक जाति का नाम। २. राजपूतों की एक जाति। इस जाति के लोग मेवाड़ और मालवे में रहते हैं। ३. मध्य तथा दक्षिण भारत में रहनेवाली एक जाति। इस जाति के लोग अपने आपको ब्राह्मणों के अंतर्गत बतलाते और खेतीबारी करते हैं।

रंगारि—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गारि] करवीर। कनेर।

रंगालय—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गालय] वह स्थान जहाँ पर नाटक, कुश्ती या इसी प्रकार का और कोई खेल तमाशा हो। रंगभूमि।

रंगावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+आवट (प्रत्य०)] रँगाई।

रंगावतरण—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गावतरण] रंगमंच पर आना। २. नट की उक्ति या वचन [को०]।

रंगावतारक—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गावतारक] १. रँगरेज। २. अभिनय करनेवाला। नट।

रंगावतारी—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गावतारिन्] अभिनय करनेवाला। नट।

रंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गिणी] दे० 'रंगी[१]'।

रंगी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रङ्गिणी] १. शतमूली। २. कैवर्तिका नाम की लता। विशेष दे० 'कैवर्तिका'।

रंगी[२]—वि० [सं० रङ्गिन्] [वि० स्त्री० रङ्गिणी] १. आनंदी। मौजी। विनोदशील। २. रंगवाला। रंगयुक्त। जैसे, बहुरंगी (को०)। ३. रँगनेवाला (को०)। ४. अभिनेता। रंगमंच पर अभिनय करनेवाला (को०)।

रंगीन—वि० [फ़ा०] १. जिसपर कोई रंग चढ़ा हो। रँगा हुआ। रंगदार। २. विलासप्रिय। आमोदप्रिय। जैसे, रंगीन तबीयत, रंगीन आदमी। ३. जिसमें कुछ अनोखापन हो। चमत्कारपूर्ण। मजेदार। जैसे, रंगीन इबारत, रंगीन बातचीत।

रंगीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रंगीन होने का भाव। २. सजावट। बनाव सिंगार। ३. बाँकापन। ४. रसिकता। रंगीलापन।

रंगीरेटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो दारजिलिंग में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत बनाने के काम में आती है। इससे मेज, कुरसी आदि भी बनाई जाती है।

रंगोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० रङ्गोपजीविन्] वह जो रंगशाला में अभिनय करके अपनी जीविका का निर्वाह करता हो। नट।

रंचⓅ—वि० [सं० न्यञ्च, प्र० रांच] थोड़ा। अल्प। तनिक। उ०—(क) बंचन मेरो कियो सजनी यह रंच न प्यारे दया

मन कीन्ही ।—सुंदर (शब्द०) । (ख) प्रदुमन लरे सत्तदस दो दिन रंच हार नहिं माने ।—सूर (शब्द०) । (ग) रंच न साधु सुधैं सुख की बिन राधिकैं आधिक लाच न डाटे । —केशव (शब्द०) ।

रंचकⓊ—वि० [सं० न्यञ्च, प्रा० णांच] थोड़ा । अल्प । रंच । उ०—(क) संग लिए बिधु बैनी बधू रति हूँ जेहि रंचक रूप दियो है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हिय अंचक रीति रची जब रंचक लाइ लई उर नाह तहीं ।—केशव (शब्द०) ।

रंज¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० **रंजीदा**] १. दुःख । खेद । २. शोक । ३. पीड़ा । कष्ट । दर्द (को०) ।

क्रि० प्र०—**उठाना** ।—**करना** ।—**झेलना** ।—**देना** ।—पहुँचना । —**पहुँचाना** ।—**सहना** ।

रंज²—वि० रंजीदा । नाराज । दुखी ।

रंजक¹—संज्ञा पुं० [सं० रञ्जक] १. रंगसाज । २. रँगरेज । ३. हिंगुल । **ईंगुर** । ४. सुश्रुत के अनुसार पेट की एक अग्नि ।

विशेष—यह पित्त के अंतर्गत मानी जाती है । कहते हैं कि यह यकृत और प्लीहा के बीच में रहती है; और भोजन से जो रस उत्पन्न होता है उसे रंजित करती है । ५. भिलावाँ । ६. मेंहदी । ७. लाल चंदन (को०) ।

रंजक²—वि० १. रँगनेवाला । जो रँगे । २. आनंदकारक । प्रसन्न करनेवाला । जैसे, मनोरंजक ।

रंजक³—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रंचक** (=अल्प), फ़ा० ?] १. वह थोड़ी सी बारूद जो बत्ती लगाने के वास्ते बंदूक की प्याली पर रखी जाती है । उ०—कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की ।—भूषण (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—**देना** ।—**भरना** ।

मुहा०—**रंजक उड़ाना**=(१) बंदूक या तोप की प्याली में बत्ती लगाने के लिये बारूद रखकर जलाना । (२) पादना । (बाजारू) । **रंजक चाट जाना**=तोप या बंदूक की प्याली में रखी हुई बारूद का यों ही जलकर रह जाना और उससे गोला या गोली न छूटना । **रंजक पिलाना**=तोप या बंदूक की प्याली में रंजक रखना ।

२. गाँजे, तमाखू या सुलफे का दम । (बाजारू) ।

मुहा०—**रंजक देना**=गाँजे आदि का दम लगाना ।

३. वह बात जो किसी को भड़काने या उत्तेजित करने के लिये कही जाय । ४. कोई तीखा या चटपटा चूर्ण ।

रंजकदानी—संज्ञा पुं० [हिं० **रंजक** + फ़ा० **दानी**] रंजक रखनेवाला । बंदूक की नली में बारूद जलानेवाला । उ०—रंजकदानी, सिंगरा, तूलि, पलीत दानी ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३ ।

रंजन¹—संज्ञा पुं० [सं० **रञ्जन**] १. रँगने की क्रिया । २. चित्त को प्रसन्न करने की क्रिया । ३. पित्त । सफरा । ४. रक्त चंदन । लाल चंदन । ५. छप्पय छंद के पचासवें भेद का नाम । ६. वे पदार्थ जिनसे रंग बनते हैं । जैसे, हल्दी, नील, लाल चंदन, कुसुम, मजीठ इत्यादि । ७. मूँज । ८. सोना । ९. जायफल । १०. कमीला वृक्ष ।

रंजन²—वि० [वि० स्त्री० **रंजनी**] १ रँगनेवाला । २.आनंद देनेवाला । रंजक [को०] ।

रंजनक—संज्ञा पुं० [सं० **रञ्जनक**] कटहल ।

रंजनकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रञ्जनकेशी**] नीली वृक्ष ।

रंजनाⓊ—क्रि० स० [सं० **रञ्जन**] १. प्रसन्न करना । आनंदित करना । २. भजना । स्मरण करना । उ०—आदि निरंजन नाम ताहि रंजै सब कोऊ ।—सूर (शब्द०) । ३. रँगना । उ०—यों सब के तन आनन में झलकी अरुणोदय की अरुनाई । अंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई ।—केशव (शब्द०) ।

रंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रञ्जनी**] १. संगीत में ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से दूसरी श्रुति । २. नीली वृक्ष । ३. मजीठी । ४. हलदी । ५. पर्पटी । ६. नागवल्ली । ७. जतुका या पहाड़ी नाम की लता ।

रंजनीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० **रञ्जनीपुष्प**] एक प्रकार का करंज या कंजा । पूतिकरंज ।

रंजनीय—वि० [सं० **रञ्जनीय**] १. जो रँगने के योग्य हो । २. जो चित्त प्रसन्न कर सके । आनंद दे सकनेवाला ।

रंजा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे उलबी भी कहते हैं ।

रंजित—वि० [सं० **रञ्जित**] १. जिसपर रंग चढ़ा हो या लगा हो । रँगा हुआ । उ०—रंजित अंजन कंज बिलोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ।—तुलसी (शब्द०) । २. आनंदित । प्रसन्न । ३. प्रेम में पड़ा हुआ । अनुरक्त ।

रंजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रंज होने का भाव । २. मनमुटाव । अनबन । ३. वैमनस्य । शत्रुता ।

रंजीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० रजस् ?] १. रज । धूल । गर्द । २. दे० 'रजक³' । उ०—रंजी शास्तर ज्ञान की, अंग रही लपटाय । सतगुर एकहि शब्द से दीन्ही तुरत उड़ाय ।—दरिया० बानी, पृ० १ ।

रंजीदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रंजीदा होने का भाव । २. अनबन । रंजिश ।

रंजीदा—वि० [फ़ा० **रंजीदह्**] १. जिसे रंज हो । दुःखित । २. नाराज । अप्रसन्न । असंतुष्ट ।

रंजूर—वि० [फ़ा०] रोगी । कष्टवाला । दुःखी । गमगीन । उ०—हाजिर बदिले बेदिल रंजूर के आगे ।—कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

रंजूरी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. रोग । आमय । व्याधि । २. कष्ट । पीड़ा । दुःख [को०] ।

रंड¹—वि० [सं० **रण्ड**] १. धूर्त । चालाक । २. विकल । बेचैन । ३. विच्छिन्नांग (को०) ।

रंड²—संज्ञा पुं० १. बिना पुत्र पैदा किए मर जानेवाला व्यक्ति । २. वह वृक्ष जिसमें फल फूल न लगते हों । ३. धूर्त व्यक्ति (को०) ।

रंडक—संज्ञा पुं० [सं० रण्डक] वह पेड़ जिसमें फल न आते हों।

रंडा[1]—वि० [सं० रण्डा] राँड़। विधवा। बेवा।

रंडा[2]—संज्ञा स्त्री० १. विधवा महिला। २. एक छंद या वृत्ति। ३. रंडी। वेश्या। ४. मूषिकपर्णी [को०]।

रंडापा—संज्ञा पुं० [हिं० राँड+आपा (प्रत्य०)] विधवा की दशा। वैधव्य। बेवापन।

रंडाश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० रण्डाश्रमिन्] वह जो ४८ वर्ष की अवस्था के उपरांत रँडुआ हुआ हो। जिसकी स्त्री ४८ वर्ष की उम्र के बाद मृत हो।

रंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० रण्डा] धन लेकर नाचने, गाने और संभोग करनेवाली स्त्री। वेश्या। कसबी।

यौ०—रंडीबाज। रंडीबाजी। रंडीमुंडी।

मुहा०—रंडी रखना=किसी रंडी को संभोग आदि के लिये अपने पास रखना।

रंडीबाज—संज्ञा पुं० [हिं० रंडी+फ़ा० बाज़] वह जो रंडियों से संभोग करता हो। वेश्यागामी।

रंडीबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंडी+बाज़ी] रंडी के साथ गमन करना। वेश्यागमन।

रंतव्य—वि० [सं० रन्तव्य] १. जिसके साथ रति की जा सके। रमण के योग्य। २. क्रीड़ा योग्य। आनंद योग्य।

रंतव्य[2]—संज्ञा पुं० आनंद। क्रीड़ा। विलास [को०]।

रंता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रन्ता] गौ। गाय [को०]।

रंताⓅ†[2]—वि० [सं० रन्तृ] १. रमण करनेवाला। २. अनुरक्त। लगा हुआ। उ०—मुनि मानस रंता जगत नियंता आदि न अंत न जाहि।—केशव (शब्द०)।

रंति—संज्ञा स्त्री० [सं० रन्ति] १. केलि। क्रीड़ा। २. विराम।

रंतिदेव—संज्ञा पुं० [सं० रन्तिदेव] १. पुराणानुसार एक बड़े दानी राजा जिन्होंने बहुत अधिक यज्ञ किए थे।

विशेष—एक बार सब कुछ दे डालने पर इन्हें ४८ दिनों तक पीने को जल भी न मिला। उनचासवें दिन ये कुछ खाने पीने का आयोजन कर रहे थे कि क्रम से एक ब्राह्मण, एक शूद्र और कुत्ते के लिये हुए एक अतिथि आ पहुँचे। सब सामान उन्हीं के आतिथ्य में समाप्त हो गया, केवल जल बच रहा। उसे पीने के लिये ज्यों ही इन्होंने हाथ उठाया कि एक प्यासा चांडाल आ गया और पीने के लिये जल माँगने लगा। राजा ने वह जल भी दे दिया। अंत में भगवान् ने प्रसन्न होकर इन्हें मोक्ष दिया।

२. विष्णु। ३. कुत्ता।

रंतिनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० रन्तिनदी] चंबल नदी।

रंतु—संज्ञा स्त्री० [सं० रन्तु] १. सड़क। २. नदी।

रंद—संज्ञा पुं० [सं० रन्ध्र] १. बड़ी इमारतों की दीवारों के वे छेद जो रोशनी और हवा आने के लिये रखे जाते हैं। रौशनदान। २. किले की दीवारों का वह मोखा जिसमें से बाहर की ओर बंदूक वा तोप चलाई जाती है। मार। उ०—क्या रेनी खंदक रंद बड़ा क्या कोट कँगूरा अनमोला। क्या बुर्ज रहकला तोप किला क्या शीशा दारू और गोला।—नजीर (शब्द०)।

रंदना—क्रि० स० [हिं० रन्दा+ना (प्रत्य०)] रंदे से छीलकर लकड़ी की सतह चिकनी करना। रंदा फेरना या चलाना।

रंदा—संज्ञा पुं० [सं० रदन (=काटना, चीरना)] बढ़ई का एक औजार जिससे वह लकड़ी की सतह छीलकर बराबर और चिकनी करता है।

विशेष—इस औजार में एक चौपहल लंबी और चिकनी सतहवाली लकड़ी के बीच में एक छोटा लंबा छेद होता है, जिसमें एक तेज धारवाला फल जड़ा रहता है। इसे हाथ में लेकर किसी लकड़ी पर बार बार रगड़ने या चलाने से उसके ऊपर से उभरी हुई सतह उतरने लगती है और थोड़ी देर में लकड़ी की सतह चिकनी हो जाती है।

रंधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रन्ध्र] दे० 'रंध्र'। उ०—दसवें द्वार रंध करु वंदा। जहाँ काम नित करै अनंदा।—संत० दरिया, पृ० ३६।

रंधक—संज्ञा पुं० [सं० रन्धक] १. रसोई बनानेवाला। रसोइया। २. नष्ट करनेवाला। नाशक।

रंधन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] १. रसोई बनाने की क्रिया। पाक करना। राँधना। २. नष्ट करना।

रंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० रन्धि] दे० 'रंधन' [को०]।

रंधित—वि० [सं० रन्धित] १. पकाया हुआ। राँधा हुआ। २. नष्ट।

रंध्र—संज्ञा पुं० [सं० रन्ध्र] १. छेद। सूराख।

यौ०—ब्रह्मरंध्र। रंध्रबभ्रु=मूषक। चूहा। रंध्रवंश=पोला बाँस।

२. योनि। भग। ३. नौ की संख्या (को०)। ३. दोष। छिद्र।

यौ०—रंध्रगुप्ति=दोष या छिद्र छिपाना। कमजोरी छिपाना। रंध्रप्रहारी=किसी की कमजोरी पर प्रहार करनेवाला।

रंध्रागत—संज्ञा पुं० [सं० रन्ध्रागत] घोड़ों के गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

रंबा—संज्ञा पुं० [हिं० रम्भा] १. दे० 'रंभा'। २. जुलाहों का लोहे का एक औजार जो लगभग एक गज लंबा होता है।

विशेष—यह जमीन में गाड़ दिया जाता है और इसमें तानी की रस्सी बाँधी जाती है।

रंभ—संज्ञा पुं० [सं० रम्भ] १. बाँस। २. एक प्रकार का बाण। ३. पुराणानुसार महिषासुर के पिता का नाम।

विशेष—इसने महादेव से वर पाकर महिषासुर को पुत्र रूप में प्राप्त किया था। यह भी कहा जाता है कि यही दूसरे जन्म में रक्तबीज हुआ था।

४. भारी शब्द। कलकल। हलचल। उ०—माथे रंभ समुद जस होई।—जायसी (शब्द०)। ५. धूर। धूलि (को०)। ६. छड़ी। दंड। डंडा (को०)। ७. सहारा। आसरा (को०)। ८. एक वानर का नाम (को०)। ९. कदली। केला।

रंभन—संज्ञा पुं० [सं० रम्भण] आलिंगन। परिरंभण।

रंभा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रम्भा] १. केला। २. गौरी। ३. गौ का

रँभाना या चिल्लाना । ४. उत्तर दिशा । ५. वेश्या । ६. पुराणानुसार स्वर्ग की एक प्रसिद्ध अप्सरा । ७. चावल की एक किस्म (को०) ।

रंभा४— संज्ञा पुं० [सं० रंभा] लोहे का वह मोटा भारी डंडा जिसकी सहायता से पेशराज आदि दीवारों में छेद करते या इसी प्रकार के और काम करते हैं ।

रंभा तृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं० **रम्भा तृतीया**] ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया ।
विशेष—पुराणानुसार इस तिथि को व्रत करने का विधान है ।

रंभापति— संज्ञा पुं० [सं० **रम्भापति**] इंद्र ।

रंभाफल—संज्ञा पुं० [सं० **रम्भाफल**] केला ।

रंभित—वि० [सं० **रम्भित**] १. शब्द किया हुआ । बोलाया हुआ । २. बजाया हुआ ।

रंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रम्भिनी**] एक रागिनी जो भैरव राग की पुत्रवधू मानी जाती है ।

रंभी—संज्ञा पुं० [सं० **रम्भिन्**] १. वह जो हाथ में बेंत या दंड लिए हो । २. बुड्ढा आदमी । वृद्ध । ३. द्वारपाल । दरवान ।

रंभोरु, रंभोरू—वि० [सं० **रम्भोरु, रम्भोरू**] १. (स्त्री) जिसकी केले के खंभे के समान सुडौल, चिकनी और उतार चढ़ाववाली जाँघें हों । २. सुंदर । खूबसूरत ।

रंह—संज्ञा पुं० [सं० **रंहस्**] १. वेग । गति । तेजी । २. उग्रता । चंडता । तीक्ष्णता (को०) । ३. उत्कट लालसा (को०) । ४. शिव का एक नाम (को०) । ५. विष्णु का एक नाम (को०) ।

रंहण-- संज्ञा पुं० [सं०] तेजी से जाना । तीव्र गति वा गमन [को०] ।

रंहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गति । वेग । चाल । २. रथ का वेग [को०] ।

रंहि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलप्रवाह । सोता । २. प्रवाह । धारा । ३. पीछा करने की क्रिया । पीछा करना । दौड़ाना । ४. शीघ्रता । तेजी [को०] ।

रँगⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **रङ्ग**, रंग, फ़ा० रंग] दे० 'रंग' । उ०—त्यौं पदमाकर यों मृग में रँग देखत हौ कबकी रुख राखे । —पद्माकर (शब्द०) ।

रँगधरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] रंगसाज । चितेरा । चित्रकार । उ०—पुहमीपति दुइ रतन बटोरा । सामुंद्रिक औ रँगधर जोरा ।—चित्रा०, पृ० १८५ ।

रँगनाⓅ—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं० **रंग+ना**] दे० 'रंगना' । उ०—(क) लाज गड़ी मुख खोलै न बोलै कियो रघुनाथ उपाय दुनी को । कोटि रँगै नहिं एक लगै जिमि सूम के आगे सयान गुनी को ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) संतन के उपदेश तें रँग्यो कछुक हरि रंग ।—रघुराज (शब्द०) ।

रँगमगनाⓅ—क्रि० अ० [सं० **रङ्ग+मग्न**] रँगना । पगना । रंजित होना । रागयुक्त होना । उ०—सोहत श्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगभगे संगनि ।—रस०, पृ० १३६ ।

रँगरली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रंग+रलना**] आमोद प्रमोद । आनंद । क्रीड़ा । चैन । मौज । उ०—कुढंग कोप तजि रँगीरली करति जुवति जग जोई । पावस बात न गूढ़ यह बूढ़नि हूँ रँग होई ।—बिहारी (शब्द०) ।
मुहा०—**रँगरलियाँ मचाना या करना** = आनंद मंगल और आमोद प्रमोद करना । उ०—(क) तुम्हारे यही दिन हँसने बोलने और रँगरलियाँ करने के हैं ।—अयोध्या (शब्द०) । (ख) तमाम शहर में हर सू मची है रँगरलियाँ । गुलाल अबीर से गुलजार है सभी गलियाँ ।—नजीर (शब्द०) ।

रँगरसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रंग+रस] दे० 'रंगरस । उ०—सुघराई के गरब भरी जानति सब रँगरस ।—व्यास (शब्द०) ।

रँगरसिया†—संज्ञा पुं० [हिं० रंगरस+इया (प्रत्य०)] विलासी व्यक्ति । रंगरसिया ।

रँगराता—वि० [सं० **रङ्ग+रत**] [वि० स्त्री० रँगराती] १. भोग विलास में लगा हुआ । ऐश आराम में मस्त । २. प्रेमयुक्त । अनुरागपूर्ण । उ०—रँगराती रातैं हियैं प्रियतम लिखी बनाइ । पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

रँगरूट—संज्ञा पुं० [अं० **रिक्रूट**] १. सेना या पुलिस आदि में नया भर्ती होनेवाला सिपाही । २. किसी काम में पहले पहल हाथ डालनेवाला आदमी । वह आदमी जो कोई काम सीखने लगा हो । जिसने कोई नया काम करना शुरू किया हो । वह जिसे कार्य का अनुभव न हो । जैसे,—वह अभी व्याख्यान देना क्या जाने, बिलकुल रँगरूट है ।

रँगरेज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० **रँगरेजिन**] कपड़े रँगनेवाला । वह जो कपड़े रँगने का काम करता हो ।

रँगरेली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रंगरली' । उ०—भैंसन देहु करन रँगरेली । सींग पखारि कुंड विच केली ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

रँगरैनी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+रैनी (=जुगनू)] एक प्रकार की लाल रंग की चुनरी ।

रँगवा—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग ।

रँगवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रँगाई' ।

रँगवाना—क्रि० स० [हिं० **रँगना का प्रेर० रूप**] रँगने का काम दूसरे से करना । दूसरे को रँगने में प्रवृत्त करना ।

रँगवालⓅसंज्ञा पुं० [फ़ा रंग+हिं० **वाल** (प्रत्य०)] दे० 'रँगरेज' । उ०—सीसगर दरजी तंबोली रँगवाल ग्वाल । बाढई संगतरास तेली धोबी धुनिआ ।—अर्ध०, पृ० ४ ।

रँगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+**आई** (प्रत्य०)] १. रँगने का काम । रँगने की क्रिया । २. रँगने का भाव । जैसे,—इसकी रँगाई बहुत अच्छी हुई है । ३. रँगने की मजदूरी ।

रँगाना—क्रि० स० [हिं० **रँगना का प्रेर० रूप**] रँगने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को रँगने में प्रवृत्त करना ।

रँगावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग+**आवट** (प्रत्य०)] रँगने का भाव । रँगाई ।

रँगा सियार—संज्ञा पुं० [हिं०] ढोंगी व्यक्ति। छद्मवेश में रहनेवाला आदमी।

विशेष—इस शब्द के पीछे एक कहानी है। घूमते घामते कोई सियार रात को बस्ती में आ निकला। वहाँ वह धोखे से नील की नाँद में गिर पड़ा। सर्वांग उसका नीला हो गया। सियार बहुत चालाक था। उसने अपने बदले हुए रंग का फायदा उठाया। जंगल में जाकर उसने अपने को देवताओं द्वारा नियुक्त सब जानवरों का राजा घोषित कर दिया। कुछ दिनों बाद भेद खुलने पर उसकी बड़ी दुर्गति हुई।

रँगिया†—संज्ञा पुं० [हिं० **रँग + इया** (प्रत्य०)] १. कपड़े रँगनेवाला। रँगरेज। २. रंगसाज।

रँगिलीⓊ—वि० स्त्री० [हिं० **रँगीली**] दे० 'रँगीला'। उ०—डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन देखि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३८०।

रँगीला—वि० [हिं० **रंग + ईला** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **रँगीली**] १. आनंदी। मौजी। रसिया। रसिक। उ०—श्याम रँग रँगे रँगीले नैन।—सूर (शब्द०)। २. सुंदर। खूबसूरत। जैसे,—रँगीला जवान। उ०—कहै पदमाकर एते पै यो रँगीलो रूप देखे बिन देखे कहौ कैसे धीर धारिए।—पद्माकर (शब्द०)। ३. प्रेमी। अनुरागी।

रँगीली टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रँगीली + टोड़ी** (एक रागिनी)] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह टोड़ी रागिनी का एक भेद है।

रँगैया†—संज्ञा पुं० [हिं० **रंग + ऐया** (प्रत्य०)] रँगनेवाला।

रँडपुराⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रँड़ापा'। उ०—कबहुँ न चढ़ै रँडपुरा जानै सब कोई। अजर अमर अबिनासिया ताको नास न होई।—मलूक०, पृ० ३।

रँडरोना—संज्ञा पुं० [हिं०] राँड़ का रोना। (पति न होने से जिसका कोई प्रभाव नहीं होता।) राँड की तरह रोना। अरण्यरोदन। उ०—बगैर उसके वस्ल के सब रँड़रोना है यह हँसी नहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५७०।

रँडापा—संज्ञा पुं० [हिं० **राँड़ + आपा** (प्रत्य०)] रँडापा। वैधव्य। बेवापन।

मुहा०—**रँडापा खेना या बिताना** = किसी प्रकार वैधव्य जीवन व्यतीत करना।

रँडुआ, रँड़ुआ—संज्ञा पुं० [हिं० **राँड़ + उआ** (प्रत्य०)] वह पुरुष जिसकी स्त्री मर गई हो।

रँडोरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० **राँड + ओरा** (प्रत्य०)] [स्त्री० **रँडोरी**] वह पुरुष जिसकी स्त्री मर गई हो। रँडुवा।

रँभाना¹—क्रि० अ० [सं० **रम्भण**] गाय का बोलना। गाय का शब्द करना। उ०—बाजत वेणु विषाण सबै अपने रँग गावत। मुरली धुनि गौ रँभि चलत पग धूरि उड़ावत।—सूर (शब्द०)।

रँभाना²—क्रि० स० गौ से रँभण कराना। गौ को शब्द करने में प्रवृत्त करना।

रँहचटा—संज्ञा पुं० [सं० **रंहस्** अथवा हिं० **रहस + चाट**] मनोरथ-सिद्धि की लालसा। लालच। चस्का। उ०—(क) ज्यौं ज्यौं आवत निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल। झमकि झमकि टहलैं करै लगी रँहचटे बाल।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कन दैबो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि। रूप रँहचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि।—बिहारी (शब्द०)।

र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पावक। अग्नि। २. कामाग्नि। ३. सितार का एक बोल। ४. जलना। झुलसना। ५. आँच। ताप। गरमी। ६. सोना। स्वर्ण (को०)। ७. वर्ण (को०)। ८. चालीस की संख्या (को०)। ९. छंदशास्त्र में एक गण। रगण जो मध्यलघु होता है (को०)।

र²—वि० तीक्ष्ण। प्रखर।

रअय्यत—संज्ञा स्त्री० [अ० **रअय्यत**] १. प्रजा। रिआया। २. काश्तकार। ३. सेवक। मुलाजिम। नौकर (को०)।

रइअत—संज्ञा स्त्री० [अ० **रअय्यत**] दे० 'रअय्यत'।

रइकौⓊ†—क्रि० वि० [हिं० **रची + कौ** (प्रत्य०) या **रंचक**] जरा भी। तनिक भी। कुछ भी। उ०—ऐसी अनहोन लाज मानति कह्यो न देव होन कहूँ पाप रइकौ सी होन पाउरी।—देव (शब्द०)।

रइनिⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **रजनी**, प्रा० **रयणी**] रात। रात्रि निशि। उ०—(क) रइनि रेनु होइ रबिहि गरासा। मानुस पंखि लेहिं फिरि बासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जहवाँ जात रइनियाँ तहँवाँ जाहु। जोरि नयन निरलजवा कत मुसुकाहु।—रहिमन (शब्द०)।

रइबारीⓊ—संज्ञा पुं० [देश० या गुज० **रबारो** (= एक घुमक्कड़ जाति)] एक जाति जो ढोरों को चराने और रखने का काम करता है। उ०—रइबारी ढोलउ कहइ, करहउ आछउ एक।—ढोला०, दू० ३०६।

रइयतⓊ—संज्ञा स्त्री० [अ० **रअ़य्यत**] दे० 'रअय्यत'। उ०—आयो भरथ अवध अभग, मंडे पावडो उतमंग। रइयत कीध अत उछरंग, इम आवास जाय उमंग।—रघु० रू०, पृ० १२२।

रई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **रय** (= हिलाना)] दही मथने की लकड़ी। मथनी। खैलर। उ०—बासुकी नेति अरु मंदराचल रई कमठ मैं आपनी पीठ धार्‌यो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**चलना**।—**चलाना**।—**फेरना**।

रई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रवा**] १. गेहूँ का मोटा आटा। दरदरा आटा। २. सूजी। ३. चूर्ण मात्र। उ०—चूरी करिहै रई।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

रई³—वि० स्त्री० [हिं० **रयना, रचना** > सं० **रञ्जन**] १. डूबी हुई। पगी हुई। (क) उरहन दैन चली जसुमति को मनमोहन के रूप रई।—सूर (शब्द०)। (ख) माधो राधा के रँग राचे राधा माधो रंग रई।—सूर (शब्द०)। २. अनुरक्त। उ०—(क)

कहत परस्पर आपुस में सब कहाँ रहीं हम काहि रई।—सूर (शब्द०)। (ख) स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि तें अधिक, परलोक फीकी, मति लोक रंग रई।—तुलसी (शब्द०)। ३. युक्त। सहित। संयुक्त। उ०—(क) बीस बिसे बलवंत हुते जो हुती दृग केशव रूप रई जू।—केशव (शब्द०)। (ख) करिए युत भूषण रूप रई। मिथिलेश सुता इक स्पर्श मई।—केशव (शब्द०)। ४. मिली हुई।

रईस—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० **रईसाना**] १. वह जिसके पास रियासत या इलाका हो। तअल्लुकेदार। भूस्वामी। सरदार। २. प्रतिष्ठित और धनवान पुरुष। बड़ा आदमी। अमीर। धनी। जैसे,—उसकी दावत में शहर के बड़े बड़े रईस आए थे।

यौ०—**रईसुल बहर**=नौसेनापति। **रईसजादा**। **रईसजादी**।

रईसी—संज्ञा स्त्री० [अ० **रईस**+**ई**] अमीरी। धनाढ्यता। ऐश्वर्य-संपन्नता।

रउताईⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० **रावत**+**आई** (प्रत्य०)] मालिक होने का भाव। प्रभुत्व। स्वामित्व। उ०—धनि सो खेल खेल सह पेमा। रउताई अउ कूसल खेमा।—जायसी (शब्द०)।

रउरे†—सर्व० [हिं० **राव, रावल**] मध्यम पुरुष के लिये आदरसूचक शब्द। आप। जनाब। उ०—विप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोह सब रउरिहि नाईं।—तुलसी (शब्द०)।

रऐयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा। रिआया।

रकछ†—संज्ञा पुं० [हिं० **रिकवँच**] पत्तों की पकौड़ी। पतौड़। उ०—पान कतरि छौंके रकछ डारि मिर्च औ आदि। एक खंड जो खावै पावै सहस सवादि।—जायसी (शब्द०)।

रकत[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **रक्त**] लहू। खून। रुधिर।

रकत[२]—वि० लाल। सुर्ख।

रकतकंद—संज्ञा पुं० [सं० **रक्तकन्द**] १. मूँगा। प्रवाल। विद्रुम (डिं०)। २. राजपलांडु। रक्तालु। रतालु।

रकतांकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **रक्ताङ्क**] १. विद्रुम। प्रवाल। मूँगा। (डिं०)। २. कुंकुम। केसर। ३. रक्तचंदन। लाल चंदन।

रकती[१]—वि० [हिं० **रकत**+**ई** (प्रत्य०)] सुर्खी लाल। जो खून की तरह लाल हो। उ०—उसे पूरी आशा हो गई, उनकी बड़ी बड़ी रकती आँखें देखकर कि, अब उसकी गरदन बिना नपे न बचेगी।—शराबी, पृ० ६१।

रकती[२]—संज्ञा स्त्री० आँखों में जमा हुआ खून या उसकी लाली।

रकबा—संज्ञा पुं० [अ० **रक़बह्**] वह गुणनफल जो किसी क्षेत्र की लंबाई और चौड़ाई को गुणा करने से प्राप्त हो। क्षेत्रफल।

रकबाहा†—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों का एक भेद। उ०—कर रकबाहे किलबाकी कुही काबिल के, खुरासानो खंजरीट खंजन खलक के।—सूदन (शब्द०)।

रकमंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रुक्म**] एक प्रकार का पौधा।

रकम—संज्ञा स्त्री० [अ० **रक़म**] १. लिखने की क्रिया या भाव। २. छाप। मोहर। ३. रुपया या बीघा बिस्वा आदि लिखने के फारसी के विशिष्ट अंक जो साधारण संख्यासूचक अंकों से भिन्न होते हैं। ४. नियत संख्या का धन। संपत्ति। दौलत। ५. गहना। जेवर। ६. धनवान। मालदार। ७. चलता पुरजा। चालाक। धूर्त। ८. नवयौवना और सुंदरी स्त्री। (बाजारू)। ९. लगान की दर। १०. प्रकार। तरह। भाँति। ११. एक प्रकार का कसीदा किया कपड़ा जो धारीदार होता है।

यौ०—**रकम पताई**=माल मत्ता। जमा पूँजी। **रकम सायर, रकम सिवाय**=लगान के अतिरिक्त मिलनेवाली आमदनी।

रकमी[१]—संज्ञा पुं० [अ० **रक़मी**] वह किसान जिसके साथ कोई खास रिआयत की जाय।

रकमी[२]—वि० १. लिखा हुआ। लिखित। २. रेखांकित चिह्नित। निशान किया हुआ [को०]।

रकाक—संज्ञा पुं० [अ० **रक़ाक़**] पटपर नरम भूमि। चौरस और मुलायम मिट्टीवाली जमीन।

रकान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. तौर तरीका। २. वल्गा। लगाम।

रकाब—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. घोड़ों की काठी का पावदान जिसपर पैर रखकर सवार होते हैं और बैठने में जिससे सहारा लेते हैं। घोड़ों की जीन का पावदान। (यह लोहे का एक घेरा होता है, जो जीन में दोनों ओर रस्सी या तस्में से लटका रहता है।)

मुहा०—**रकाब पर पैर रखना, रकाब मे पाँव रहना**=जाने के लिये उद्यत होना। चलने के लिये बिलकुल तैयार होना। जैसे,—(क) आप तो पहले से ही रकाब पर पैर रखे हुए हैं। (ख) आप जब आते है, तब रकाब पर पैर रखे आते हैं।

२. रकाबी। तश्तरी।

रकाबत—संज्ञा स्त्री० [अ० **रक़ाबत**] एक नायिका के दो प्रेमियों की परस्पर प्रतिद्वंद्विता। एक नायक को चाहनेवाली दो नायिकाओं का परस्पर डाह [को०]।

रकाबदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मुरब्बा, मिठाई आदि बनानेवाला। हलवाई। २. रकाबियों में खाना चुनने और लगानेवाला। खानसामाँ। ३. बादशाहों के साथ खाना लेकर चलनेवाला सेवक। खासा बरदार। ४. रकाब पकड़कर घोड़े पर सवार करानेवाला। नौकर। साईस।

रकाबा—संज्ञा सं० [फा०] बड़ी थाली। परात। तश्तरी।

रकाबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की छिछली छोटी थाली, जिसकी दीवार बहुत कम ऊँची अथवा बाहर की ओर मुड़ी हुई होती है। तश्तरी।

रकार—संज्ञा पुं० [सं०] रवर्ण का बोधक अक्षर। र।

रकीक[१]—वि० [अ० **रक़ीक़**] १. पानी की तरह पतला। तरल। द्रव। २. कोमल। मुलायम। नरम।

रकीक[२]—वि० [अ०] अधम। तुच्छ। कमीना [को०]।

रकीब—संज्ञा पुं० [अ० रक़ीब] [संज्ञा स्त्री० **रकीबा**] वह प्रतियोगी

जो किसी प्रेमिका के संबंध में प्रतियोग करता हो। प्रेमिका का दूसरा प्रेमी। सपत्न।

रकेबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रकाबी, रिक़ाबी] दे० 'रकाबी'।

रक्क़ास—संज्ञा पुं० [अ० रक़्क़ास] [स्त्री० रक्क़ासा] तांडव नृत्य (पुरुष नृत्य) करनेवाला। नर्तक। नाचनेवाला व्यक्ति [को०]।

रक्खना—क्रि० स० [सं० रक्षण, प्रा० रक्खण, हिं० रखना] दे० 'रखना'।

रक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो प्रायः लाल रंग का होता और शरीर की नसों आदि में से होकर बहा करता है। लहू। रुधिर। खून।

विशेष—साधारणतः रक्त से ही हमारे शरीर का पोषण और रक्षण होता है। यह हृदय द्वारा परिचालित होता और सदा सारे शरीर में चक्कर लगाया करता है। शरीर के अंगों में पोषक द्रव्य रक्त के द्वारा ही पहुँचता है; और जब रक्त कहीं से चलता है, तब उस स्थान के दूषित या परित्यक्त अंश को भी अपने साथ ले लेता है। इस प्रकार इसमें जो दूषित अंश या विष आ जाता है, वह फुफ्फुस की क्रिया से नष्ट हो जाता है; और फुफ्फुस में आने के उपरांत रक्त फिर शुद्ध हो जाता है। हृदय से जो साफ रक्त चलता है, वह लाल होता है। पर फिर जब शरीर के अंगों से वही रक्त फुफ्फुस की ओर चलता है, तब वह काला हो जाता है। रक्त जल से कुछ भारी होता है, स्वाद में कुछ नमकीन होता है और पारदर्शी नहीं होता। साधारणतः इसका तापमान १००° फहरन हाइट होता है; पर रोगों में यह वार घट या बढ़ जाता है। इसमें दो भाग होते हैं—एक तो तरल जिसे 'रक्तवारि' कह सकते हैं, और दूसरे रक्तकण जो उक्त 'रक्तवारि' में तैरते रहते हैं। ये कण दो प्रकार के होते हैं—श्वेत और लाल। ये कण वास्तव में सजीव अणुपिंड हैं। शरीर से बाहर निकलने पर अथवा मृत्यु के उपरांत शरीर के अंदर रहकर भी रक्त बिलकुल जम जाता है। प्रायः सारे शरीर का $\frac{१}{२०}$ वाँ भाग रक्त होता है। पशुओं का रक्त प्रायः चीनी आदि साफ करने और खाद तैयार करने के काम में आता है। हमारे यहाँ के वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह शरीर की सात मुख्य धातुओं में से एक है और यह स्निग्ध, गुरु, चलनशील और मधुर रस कहा गया है।

पर्या०—**रुधिर। लोहित। अस्र। क्षतज। शोणित। रोहित। रंगक। कीलाल। अंगज। स्वज। शरण। लोह। चर्मज।**

मुहा०—के लिये दे० 'खून' के मुहावरे।

२. कुंकुम। केसर। ३. ताँबा। ४. पुराना और पका हुआ आँवला। ५. कमल। ६. सिंदूर। ७. हिंगुल। शिंगरफ। ईंगुर। ८. पतंग की लकड़ी। ९. लाल चंदन। कुचंदन। १०. लाल रंग। ११. कुसुंभ। १२. नदीतट पर होनेवाला एक प्रकार का बेत। हिज्जल। १३. बंधूक। गुलदुपहरिया। १४. एक प्रकार की मछली। १५. एक प्रकार का जहरीला मेंढक। १६. एक प्रकार का बिच्छू। १७. शिव का एक नाम (को०)। १८. मंगल ग्रह (को०)।

रक्त[2]—वि० [सं०] १. चाह या प्रेम में लीन। अनुरक्त। २. रँगा हुआ। ३. लाल। सुर्ख। ४. विहारमग्न। ऐयाश। विलासी। ५. साफ किया हुआ। शोधित। शुद्ध।

रक्त आमातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें लहू के दस्त आते हैं।

रक्तकंगु—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकङ्गु] साल का वृक्ष जिससे राल निकलती है।

रक्तकंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तकण्टा] विकंकत वृक्ष।

रक्तकंठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकण्ठ] १. कोयल। २. भाँटा। भंटा। बैंगन। उ०—रक्तकंठ तांबूल निवारे। पदाभ्यंग बसवाहन द्वारे।—विश्राम (शब्द०)।

रक्तकंठ[2]—वि० १. जिसका कंठ लाल रंग का हो। २. जिसकी आवाज मीठी हो (को०)।

रक्तकंठी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० रक्तकण्ठिन्] दे० 'रक्तकंठ' [को०]।

रक्तकंद—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकन्द] १. विद्रुम। मूँगा। २. प्याज। ३. रतालू।

रक्तकंदल—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकन्दल] मूँगा। विद्रुम।

रक्तकंबल—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकम्बल] नीलोफर। कूँई।

रक्तक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुलदुपहरिया का पौधा या फूल। बंधूक। २. लाल सहिंजन का वृक्ष। ३. लाल अंडी का वृक्ष। लाल रेंड। ४. लाल कपड़ा। ५. खून। रुधिर। रक्त (को०)। ६. लाल रंग का घोड़ा। ७. केसर। कुंकुम।

रक्तक[2]—वि० १. लाल रंग का। २. प्रेम करनेवाला। अनुरागी। ३. विनोदी। मसखरा।

रक्तकदंब—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकदम्ब] एक प्रकार का कदंब का वृक्ष जिसके फूल बहुत लाल रंग के होते हैं।

रक्तकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंपा केला।

रक्तकमल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का कमल।

विशेष—वैद्यक में यह कटु, तिक्त, मधुर, शीतल, रक्तदोषनाशक, बलकारक और पित्त, कफ तथा वात को शमन करनेवाला माना गया है।

रक्तकरवीर—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का कनेर।

विशेष वैद्यक में यह कड़ुआ, तीक्ष्ण विशोधन और व्रण, कंडु, कुष्ठ तथा विष का नाशक माना गया है।

रक्तकांचन—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकाञ्चन] कचनार का वृक्ष। कचनाल।
पर्या०—**विदल। चमरिक। कांचनाल। ताम्रपुष्प। कुदार।**

रक्तकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तकान्ता] लाल रंग की पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

रक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी आँवला।

रक्तकाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें फेफड़े से मुँह के रास्ते खून निकलता है।

विशेष—यह रोग प्रायः बहुत जोर से गाने, अधिक बंसी बजाने या खाँसी आदि रहने की दशा में तथा ऊँचे पर्वतों पर चढ़ने आदि से हो जाता है।

रक्तकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग की लकड़ी।

रक्तकुंडल—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकुण्डल] दे० 'रक्तकुमुद'।

रक्तकुमुद—संज्ञा संज्ञा पुं० [सं०] कूँई। नीलोफर।

रक्तकुरंडक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तकुरुण्डक] लाल कटसरैया।

रक्तकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] विसर्प नामक रोग, जिसमें सारे शरीर में बहुत जलन होती है, कभी कभी सारा शरीर लाल रंग का हो जाता है और कुष्ठ की भाँति गलने भी लगता है।

रक्तकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. कचनार। २. आक। मदार। ३. धामिन का पेड़। ४. पारिभद्र या फरहद का पेड़।

रक्तकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनार का पेड़।

रक्तकृमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

रक्तकेशर, रक्तकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारिभद्रक वृक्ष। फरहद का पेड़।

रक्तकेशी—वि० [सं० रक्तकेशिन्] जिसके बाल लाल रंग के हों। तामड़े रंग के बालोंवाला।

रक्तकैरव—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कुमुद।

रक्तकोकनद—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

रक्तक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] लहू बहना। रक्तस्राव।

रक्तक्षयशोषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यक्ष्मा रोग जो किसी कारण-वश शरीर का रक्त कम हो जाने से उत्पन्न हो।

रक्तखदिर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर का वृक्ष जिसके फूल लाल रंग के होते हैं। रक्तसार।

रक्तखांडव, रक्तखाड़व—संज्ञा पुं० [सं० रक्तखाण्डव, रक्तखाडर्व] एक प्रकार का खजूर का वृक्ष।

रक्तगंधक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तगन्धक] बोल नामक गंधद्रव्य।

रक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तगन्धा] अश्वगंधा। असगंध।

रक्तगतज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो रोगी के रक्त में समा गया हो।

विशेष—इसमें रोगी खून थूकता है, अंड बंड बकता है, छटपटाता है और उसे बहुत अधिक दाह तथा तृष्णा होती है।

रक्तगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेंहदी का पेड़।

रक्तगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का एक रोग जिसमें उनके गर्भाशय में रक्त की एक गाँठ बँध जाती है।

विशेष—यह रोग ऋतु काल में अनुचित आहार विहार करने अथवा समय से पहले गर्भ गिर जाने से होता है। कभी कभी यह प्रसव के उपरांत भी होता है। इसमें गर्भाशय में बहुत दाह और पीड़ा होती है। जब यह रोग गर्भ न रहने की दशा में होता है, तब कभी कभी इसके कारण गर्भ रहने का भी धोखा होता है।

रक्तगैरिक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण गैरिक। गेरू।

रक्तग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तग्रन्थि] १. लाल लज्जावंती। २. वह रोग जिसमें शरीर में लहू की गाँठें बँध जायँ।

रक्तग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कबूतर। २. राक्षस।

रक्तघ्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक वृक्ष।

रक्तघ्न[2]—वि० जिससे रक्त का नाश हो।

रक्तघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब। गंडदूर्वा।

रक्तचंचु—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तचञ्चु] शुक। तोता।

रक्तचंदन—संज्ञा पुं० [सं० रक्तचन्दन] लाल रंग का चंदन। विशेष दे० 'चंदन'।

पर्या०—तिलपर्ण। पत्रांक। रंजन। कुचंदन। ताम्रवृक्ष। लाल-चंदन। देवीचंदन।

रक्तचित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का चित्रक या चीता वृक्ष।

रक्तचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेंदुर। सिंदूर। २. कमीला।

रक्तच्छर्दि—संज्ञा स्त्री० [सं०] खून की कै होना। रक्त का वमन।

रक्तजंतुक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तजन्तुक] सीसा।

रक्तज—वि० [सं०] १. जो रक्त से उत्पन्न हो। लहू से उत्पन्न होने-वाला। २. रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला (रोग)।

रक्तजकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृमिरोग जो रक्तविकार के कारण उत्पन्न होता है।

रक्तजपा—संज्ञा पुं० [सं०] अड़हुल। जवा। देवीफूल।

रक्तजिह्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शेर। सिंह।

रक्तजिह्व[2]—वि० जिसकी जीभ लाल रंग की हो।

रक्तजूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार। जोन्हरी। लाल जोन्हरी।

रक्ततर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण गैरिक। गेरू।

रक्तता—संज्ञा पुं० [सं०] लालिमा। लाली। सुर्खी। ललाई।

रक्ततुंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० रक्ततुण्ड] शुक। तोता।

रक्ततुंड[2]—वि० जिसका मुँह लाल रंग का हो।

रक्ततुंडक—संज्ञा पुं० [सं० रक्ततुण्डक] सीसा।

रक्ततृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल रंग का तृण।

रक्ततृणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमूत्रिका नामक तृण।

रक्ततेजस्—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

रक्तदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तदन्तिका] दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने राक्षसों को (शुंभ और निशुंभ को) खाने के समय धारण किया था। चंडिका।

रक्तदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तदन्ती] दे० 'रक्तदंतिका'।

रक्तदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नलिका नाम का गंधद्रव्य।

रक्तदिग्ध—वि० [सं० रक्त + दिग्ध] रक्तसिक्त। खून से भींगा हुआ। रक्तमय। उ०—रक्तदिग्ध धरणी में रूप की विजय में।—लहर, पृ० ८४।

रक्तदूषण—वि० [सं०] जिससे रक्त दूषित हो। खून को खराब करनेवाला।

रक्तदृग¹—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तदृक्] १. कोयल। कोकिल। २. एक प्रकार का कपोत।

रक्तदृग²—वि० लाल आँखोंवाला। जिसकी आँखें लाल हों।

रक्तद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बीजासन वृक्ष।

रक्तधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार मांस के भीतर की दूसरी कला या झिल्ली जो रक्त को धारण किए रहती है।

रक्तधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेरू। २. ताँबा।

रक्तनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कबूतर। २. चकोर।

रक्तनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तनाडी] दाँतों की जड़ में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

रक्तनाल—संज्ञा पुं० [सं०] जीवशाक। सुसना।

रक्तनासिक—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

रक्तनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का बीजासन वृक्ष।

रक्तनील—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तनेत्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सारस पक्षी। २. कबूतर। ३. चकोर।

रक्तनेत्र²—वि० जिसकी आँखें लाल हों।

रक्तप¹—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

रक्तप²—वि० रक्त पीनेवाला।

रक्तपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

रक्तपट—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग के कपड़े पहननेवाला, श्रमण।

रक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पिंडालु।

रक्तपात्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल गदहपूरना। २. नाकुली।

रक्तपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू। लज्जावंती।

रक्तपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। रक्तोत्पल (को०)।

रक्तपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लाल गदहपूरना।

रक्तपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक का वृक्ष।

रक्तपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जोंक। २. डाकिनी।

रक्तशाका—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] वृहती नाम की लता।

रक्तपाणि—वि० [सं० रक्त + पाणि] खूनी या खून में सने हुए हाथवाला। जिसके हाथ रक्त बहाने या हिंसा करने के अभ्यस्त हों। उ०—वहाँ विद्याव्यसनियों की नहीं रक्तपाणि राक्षसों का बोलबाला है।—किन्नर०, पृ० ९०।

रक्तपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. लहू का गिरना या बहना। रक्तस्राव। २. ऐसा लड़ाई झगड़ा जिसमें लोग जख्मी हों। खून खराबी। ३. ऐसा प्रहार जिससे किसी का रक्त बहे।

रक्तपाता—संज्ञा पुं० [सं०] जोंक।

रक्तपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बरगद। २. तोता। ३. युद्ध का रथ। लड़ाई का रथ (को०)। ४. हाथी (को०)।

रक्तपायी¹—वि० [सं० रक्तपायिन्] [वि० स्त्री० रक्तपायिनी] रक्तपान करनेवाला। खून पीनेवाला।

रक्तपायी²—संज्ञा पुं० मत्कुण। खटमल।

रक्तपारद—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। शिगरफ। ईंगुर।

रक्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल पत्थर। २. गेरू।

रक्तपिंड—संज्ञा पुं० [सं० रक्तपिण्ड] १. जवा का फूल। २. लाल रंग की पुड़िया (को०)। ३. नाक से खून बहना। नकसीर (को०)।

रक्तपिंडक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तपिण्डक] १. रतालू। २. जवा का फूल। अड़हुल।

रक्तपिंडालु—संज्ञा पुं० [सं० रक्तपिण्डालु] रतालू।

रक्तपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रोग जिसमें मुँह, नाक, गुदा, योनि आदि इंद्रियों से रक्त गिरता है।

विशेष—यह रोग धूप में अधिक रहने, बहुत व्यायाम करने, तीक्ष्ण पदार्थ खाने और बहुत अधिक मैथुन करने के कारण होता है। यह रोग स्त्रियों के रजोधर्म ठीक न होने के कारण भी हो जाता है। यह रोग पित्त के कुपित होने से होता है।

२. नाक से लहू बहना। नकसीर।

रक्तपित्तहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतघ्नी नाम की दूब।

रक्तपित्ती—संज्ञा पुं० [सं० रक्तपित्तिन्] वह जिसे रक्तपित्त रोग हो।

रक्तपुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रेंगनेवाला कीड़ा।

रक्तपुनर्नवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग की पुनर्नवा या गदहपूर्ना। वैद्यक में इसे तिक्त, सारक और रक्तप्रदर, पांडु तथा पित्त आदि का नाशक माना है।

पर्या०—क्रूरा। मंडलपत्रिका। रक्तकांता। वर्षकेतु। लोहिता। रक्तपत्रिका। वैशाखी। पुष्पिका। विषघ्नी। सारिणी। वर्षाभव। भौम। पुनर्भव। नव। नव्य।

रक्तपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. करवीर। कनेर। २. अनार का पेड़। ३. बंधूक का पेड़। गुलदुपहरिया। ४. पुन्नाग। ५. अड़हुल। जवा का फूल (को०)।

रक्तपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश का पेड़। २. सेमल का पेड़। शाल्मलि।

रक्तपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शाल्मली वृक्ष। सेमल। २. पुनर्नवा। ३. सिंदूरी। ४. चंपा केला। ५. नागदौन।

रक्तपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाल पुनर्नवा। २. लजालू। लाजवंती।

रक्तपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवा। अड़हुल। २. नागदौन। ३. धौ। ४. आवर्तकी नाम की लता। ५. पाँडर।

रक्तपूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग की पूतिका। लाल पोई।

विशेष—वैद्यक में यह स्निग्ध और मूत्रवर्धक मानी गई है। बच्चों के कई रोगों में और सुजाक में इसका साग गुणकारी माना गया है। शास्त्र में इसका साग खाने का निषेध है।

रक्तपूय—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

रक्तपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

रक्तपूर्ण—वि० [सं० रक्त + पूर्ण] रक्त से भरा हुआ। रक्ताक्त।

रक्तप्रतिस्याय—संज्ञा पुं० [सं० रक्तप्रतिश्याय] प्रतिश्याय या जुकाम का एक भेद। बिगड़ा हुआ जुकाम।

विशेष—इसमें नाक से खून जाता है, आँखें लाल हो जाती हैं, छाती में पीड़ा होती है और मुँह तथा साँस से बहुत दुर्गंध आती है।

रक्तप्रदर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदर रोग का वह भेद जिसमें स्त्रियों की योनि से रक्त बहता है। विशेष दे० 'प्रदर'।

रक्तप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें दुर्गंधियुक्त गरम, खारा और खून के रग का पेशाब होता है।

रक्तप्रवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो।

रक्तप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल कनेर। २. मुचकुंद वृक्ष।

रक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाल्मलि। सेमल। २. वट का वृक्ष। बड़ का पेड़।

रक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुँदरू। तुण्टी। बिंबी। २. स्वर्णवल्ली।

रक्तफूल—संज्ञा पुं० [हिं० रक्त + हिं० फूल] १. जवा पुष्प। अड़हुल का फूल। २. पलास का वृक्ष।

रक्तफेनज—संज्ञा पुं० [सं०] फुफ्फुस। फेफड़ा।

रक्तभव—संज्ञा पुं० [सं०] मांस। गोश्त।

रक्तभाव—वि० [सं०] १. लाल रंग का। २. अनुरक्त भाववाला। प्रणयी। प्रेम करनेवाला [को०]।

रक्तमंजर—संज्ञा पुं० [सं० रक्तमञ्जर] १. बेंत की लता। २. नीम का पेड़।

रक्तमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तमञ्जरी] लाल कनेर।

रक्तमंडल—संज्ञा पुं० [सं० रक्तमण्डल] १. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप। २. लाल कमल। ३. एक प्रकार का जहरीला पशु।

रक्तमंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तमण्डलिका] लाल लज्जावंती या लजालू।

रक्तमत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो रक्त पीकर तृप्त हो। जैसे, खटमल, जोंक आदि। २. राक्षस। रक्तस (को०)।

रक्तमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लाल रंग की मछली।

विशेष—यह बहुत बड़ी नहीं होती। वैद्यक में इसका माँस शीतल, रुचिकारक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक और त्रिदोष का नाशक माना गया है।

रक्तमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग के सिरवाला सारस पक्षी।

रक्तमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार वह रस नामक धातु जिसकी उत्पत्ति पेट में पचे हुए भोजन से होती है और जिससे रक्त बनता है। २. तंत्र के अनुसार एक प्रकार का रोग।

रक्तमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहू। मछली। २. यष्टिक धान्य।

रक्तमूर्द्धा—संज्ञा पुं० [सं० रक्तमूर्द्धन्] सारस।

रक्तमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] देवसर्षप नाम की सरसों का पेड़।

रक्तमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू।

रक्तमेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रक्तप्रमेह'।

रक्तमोक्ष, रक्तमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार, शरीर का खून खराब हो जाने पर उसे बाहर निकालने की क्रिया। फस्द।

रक्तमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का खून निकलना। शीर। फस्द।

रक्तयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

रक्तरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तरङ्गा] मेहँदी।

रक्तरज—संज्ञा पुं० [सं० रक्तरजस्] सिंदूर।

रक्तरस—संज्ञा पुं० [सं०] बिजैसार। रक्तासन।

रक्तरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।

रक्तराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जिसे सर्षपिका भी कहते हैं। २. आँख का एक रोग (को०)।

रक्तरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर। २. पुन्नाग। ३. क्रुद्ध व्यक्ति (को०)। ४. पलाश की कली (को०)।

रक्तरैवतक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खजूर का पेड़।

रक्तरोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो रक्त के दूषित होने से होता है। जैसे, कुष्ठ आदि।

रक्तला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काकतुंडी। कौवाठोंठी। २. गुंजा करजनी। घुँघची। रत्ती।

रक्तलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

रक्तवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका या चेचक का रोग। शीतला।

रक्तवरटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतला रोग। चेचक।

रक्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनार, ढाक, लाख, हलदी, दारुहलदी, कुसुम के फूल, मजीठ और दुपहरिया के फूल, इन सबका समूह (ये सब रँगने के काम में आते हैं)।

रक्तवर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीरबहूटी नामक कीड़ा। २. लहसुनिया नग। गोमेद। ३. मूँगा। ४. कंपिल्लक। कमीला। ५. लाल रँग (को०)। ६. सोना। स्वर्ण (को०)।

रक्तवर्ण[2]—वि० लाल रंगवाला [को०]।

रक्तवर्त्तक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बटेर।

रक्तवर्त्मा—संज्ञा पुं० [सं० रक्तवर्त्मन्] मुरगा।

रक्तवर्द्धन[1]—वि० [सं०] रक्त बढ़ानेवाला। रक्तवर्धक।

रक्तवर्द्धन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन।

रक्तवर्षाभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल पुनर्नवा।

रक्तवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. दंडोत्पल नाम का पौधा। ३. नलिका। पगारी। ४. एक प्रकार की लता जिसे पित्ती कहते हैं।

रक्तवसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. संन्यासी। २. वह ब्राह्मण जो संन्यास-आश्रमी हो गया हो (को०)।

रक्तवात—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसे वातरक्त भी कहते हैं। विशेष दे० 'वातरक्त'।

रक्तवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० रक्तवालुका] सिंदूर।

रक्तवासा—संज्ञा पुं० [सं० रक्तवसस्] दे० 'रक्तवसन' [को०]।

रक्तविंदु—संज्ञा पुं० [सं० रक्तबिन्दु] १. रुधिर की बूँद। २. रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ा। ३. रत्नों में दिखाई पड़नेवाला लाल दाग या धब्बा जो एक दोष माना जाता है। जैसे, यदि हीरे में यह दोष हो, तो कहते हैं कि उसे पहननेवाले की स्त्री मर जाती है।

रक्तविकार—संज्ञा पुं० [सं०] खून की खराबी। रक्तदोष।

रक्तविद्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त के प्रकोप से होनेवाली एक प्रकार की विद्रधि या फोड़ा जिसमें किसी अंग में सूजन होती है, और काले रंग की फुंसियाँ हो जाती हैं।

रक्तविस्फोटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में गुंजा के समान लाल लाल फफोले पड़ जाते हैं।

रक्तबीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल बीजोंवाला दाड़िम। अनार। बीदाना। २. रीठा। ३. एक राक्षस का नाम जो शुंभ और निशुंभ का सेनापति था।

विशेष—देवी भागवत में लिखा है कि युद्ध के समय इसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरती थीं, उतने ही नए राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। इसलिये चंडिका ने इसका रक्त पीकर इसे मार डाला था। यह भी कहा गया है कि महिषासुर का पिता रंग दानव ही मरकर फिर रक्तबीज के रूप में उत्पन्न हुआ था।

रक्तबीजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरदी नाम का एक कँटीला पेड़।

रक्तबीजा—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूरपुष्पी। सिंदूरिया।

रक्तवृंतक—संज्ञा पुं० [रक्तवृन्तक] पुनर्नवा। गदहपूरना।

रक्तवृंता—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तवृन्ता] शेफालिका। निर्गुंडी।

रक्तवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश से रक्त या लाल रंग के पानी की वृष्टि होना।

विशेष—यह अशुभसूचक है। कहते हैं, ऐसी वृष्टि होने से देश में युद्ध, महामारी आदि अनेक अनिष्ट होते हैं।

रक्तव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वह फोड़ा जिसमें से मवाद न निकलकर केवल रक्त ही बहता हो।

रक्तशमन—संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।

रक्तशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल रंग का चावल या शालि जिसे दाऊदखानी कहते हैं।

रक्तशालुक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल की जड़। भसींड।

रक्तशाल्मलि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूलवाला सेमल।

रक्तशासन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

रक्तशिग्रु—संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिजन।

रक्तशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंधा बिरोजा। २. सारस।

रक्तशृंग—संज्ञा पुं० [सं० रक्तशृङ्ग] हिमालय की एक चोटी का नाम।

रक्तशृंगिक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तशृङ्गिक] विष। जहर।

रक्तशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग।

रक्तश्वेत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तष्ठीवि, रक्तष्ठीवी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत ही घातक सन्निपात।

विशेष—यह रोग असाध्य माना जाता है। इस सन्निपात में रोगी के मुँह से लहू जाता है, साँस और पेट फूलता है, जीभ में चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमें से लहू निकलता है।

रक्तसंकोच—संज्ञा पुं० [सं० रक्तसङ्कोच] कुसुम का फूल।

रक्तसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

रक्तसंदंशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तसन्दशिका] जलौका। जोंक [को०]।

रक्तसंदशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तसन्दशिका] जोंक।

रक्तसंध्यक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तसन्ध्यक] लाल कमल [को०]।

रक्तसंबंध—संज्ञा पुं० [सं० रक्तसम्बन्ध] कुल का संबंध। रक्तजनित ऐक्य संबंध।

रक्तसंवरण—संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा।

रक्तसर्षप—संज्ञा पुं० [सं०] लाल सरसों।

रक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चंदन। २. पतंग। ३. अमलवेत। ४. खैर। ५. बाराही कंद। ६. रक्तबीजासन।

रक्तस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० रक्तस्तम्भन] बहते हुए रक्त को रोकने की क्रिया।

रक्तस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर के किसी अंग से रक्त का बहना या निकलना। खून जाना या गिरना। २. घोड़ों का एक रोग जिसमें उनकी आँखों में से रक्त या लाल रंग का पानी बहता है।

रक्तहंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी (संगीत)।

रक्तहर—संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ।

रक्तांक—संज्ञा पुं० [सं० रक्ताङ्क] मूँगा।

रक्तांग[1]—वि० [सं० रक्ताङ्ग] लाल अंगोंवाला। जिसके शरीर का वर्ण लाल हो। लाल रंग का।

रक्तांग२—संज्ञा पुं० [सं० रक्ताङ्ग] १. मंगल ग्रह। २. कमीला। ३. मूँगा। ४. खटमल। ५. केसर। ६. लाल चंदन।

रक्तांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्ताङ्गी] १. मजीठ। २. जीवंती। ३. कुटकी।

रक्तांड—संज्ञा पुं० [सं० रक्ताण्ड] घोड़ों के अंडकोष में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

रक्तांबर—संज्ञा सं० [सं० रक्ताम्बर] १. संन्यासी, जो गेरुआ वस्त्र पहनता है। २. लाल रंग का कपड़ा, विशेषतः रेशमी कपड़ा।

रक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संगीत में पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति का नाम। २. गुंजा। घुँघची। ३. लाख। ४. मजीठा। ५. ऊँटकटरा। ६. एक प्रकार की सेम। ७. लक्ष्मणा नामक कंद। ८. वच। ९. एक प्रकार की मकड़ी। १०. कान के पास की एक शिरा या नस का नाम। ११. जैनों के अनुसार ऐरावत खंड की एक नदी का नाम। १२. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम (को०)। १३. वह स्त्री जो किसी पर अनुरक्त हो। अनुरक्ता स्त्री।

रक्ताकार—संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।

रक्ताक्त१—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

रक्ताक्त२—वि० १. रक्त लगा हुआ। २. लाल रंग में रँगा हुआ।

रक्ताक्ष१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकोर। २. सारस। ३. कबूतर। ४. भैंसा। ५. साठ संवत्सरों में से अट्ठावनवें संवत्सर का नाम।

रक्ताक्ष२—वि० १. लाल आँखोंवाला। २. डरावना। भयानक (को०]।

रक्तातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिसार जिसमें लहू के दस्त आते हैं।

विशेष—इसमें रोगी को प्यास, दाह और मूर्च्छा होती है और गुदा पकी हुई जान पड़ती है।

रक्ताधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किन्नरी।

रक्ताधार—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा। त्वक्।

रक्ताधिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० रक्ताधिमन्थ] एक प्रकार का अधिमंथ रोग जो रक्तविकार से होता है।

रक्तापह—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य।

रक्ताभ१—संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी।

रक्ताभ२—वि० [सं०] लाल आभावाला। लाल रंग का। लालिमायुक्त। उ०—हो गया सांध्य नभ का रक्ताभ दिगंत फलक।—अपरा, पृ० ६५।

रक्ताभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल जवा।

रक्ताभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० रक्ताभिष्यन्द] भावप्रकाश के अनुसार आँखों का एक रोग।

विशेष—इस रोग में आँखें बहुत अधिक लाल हो जाती हैं, उनमें से लाल रंग का पानी निकलता है और आँखों के आगे लाल रेखाएँ दिखाई देती हैं।

रक्ताभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] लाल अभ्रक।

रक्ताम्लान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं।

विशेष—वैद्यक में इसे कटु, उष्ण और वात, ज्वर, शूल, कास तथा श्वास आदि का नाशक माना है।

रक्तारि—संज्ञा पुं० [सं०] महाराष्ट्री नाम का क्षुप।

रक्तार्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में पकने और बहनेवाली गाँठें निकल आती हैं। इसमें शरीर का रंग पीला पड़ जाता है। २. शुक्रदोष के कारण उत्पन्न होनेवाला एक रोग जिसमें लिंग पर काले फोड़े और उनके साथ लाल फुंसियाँ निकल आती हैं।

रक्तार्म—संज्ञा पुं० [सं० रक्तार्मन्] एक प्रकार का रोग जिसमें आँख की कौड़ी पर मांस इकट्ठा होकर लाल कमल के रंग का कोमल मंडल बन जाता है।

रक्तार्श—संज्ञा पुं० [सं० रक्तार्शस्] बवासीर रोग का वह भेद जिसमें उसके मसों में से खून भी निकलता है। खूनी बवासीर। विशेष दे० 'बवासीर'।

रक्तालता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

रक्तालु—संज्ञा पुं० [सं०] रतालू नामक कंद।

रक्तावरोधक—वि० [सं०] बहते हुए खून को रोकनेवाला।

रक्तावसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का खून निकलवाना। फस्द।

रक्ताशय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के सात आशयों में से चौथा, जिसमें रक्त का रहना माना जाता है। वे कोठे जिनमें रक्त रहता है। जैसे, फेफड़ा, हृदय, यकृत् आदि।

रक्ताशोक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल अशोक का वृक्ष।

रक्ताश्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।

रक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुराग। प्रेम। २. एक परिमाण जो आठ सरसों के बराबर होता है।

रक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुँघची। रत्ती। २. आठ सरसों के बराबर एक परिमाण। रत्ती।

रक्तिम—वि० [सं०] ललाई लिए। सुर्खी मायल।

रक्तिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लाली। सुर्खी।

रक्तेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का ऊख।

रक्तोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल कमल। २. शाल्मलि। सेमल।

रक्तोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहू मछली। २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तोपदंश—संज्ञा पुं० [सं०] लहू के विकार से उत्पन्न गरमी वा आतशक का रोग।

रक्तोपल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेरू नामक लाल मिट्टी। २. लाल नामक रत्न।

रक्ष१—संज्ञा पुं० [सं० रक्षः] १. रक्षक। रखवाला। उ०—तोरत फूल रक्ष रह तहाँ।—सबल (शब्द०)। २. रक्षा। हिफाजत। रखवाली। ३. लाख। लाह। ४. छप्पय के साठवें भेद का

नाम जिसमें ११ गुरु और १३० लघु मात्राएँ अथवा ११ गुरु और १२६ लघु मात्राएँ होती हैं।

रक्ष²—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस्] राक्षस। उ०—रक्ष यक्ष दानव देवन सों, अभय होहि सब जागा। —रघुराज (शब्द०)।

रक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा करनेवाला। बचानेवाला। हिफाजत करनेवाला। २. पहरेदार। ३. पालन करनेवाला।

यौ०—**रक्षक दल**=रक्षा करनेवालों का दल। सिपाहियों का जत्था। **रक्षक पोत**=जल की यात्रा में संकट से रक्षा करनेवाला जहाज।

रक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा करना। हिफाजत करना। रखवाली। २. पालने की क्रिया। पालन पोषण। ३. रक्षक। रखवाला। ४. विष्णु का एक नाम (को०)।

रक्षणकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० रक्षणकर्तृ] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

रक्षणारक—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ रोग।

रक्षणि, रक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता।

रक्षणीय—वि० [सं०] जिसकी रक्षा करना उचित हो। रक्षा करने योग्य।

रक्षनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रक्षण] दे० 'रक्षण'।

रक्षनाⓅ—क्रि० स० [सं० रक्षण] रक्षा करना। हिफ़ाजत रखना। सँभालना। बचाना।

रक्षपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रक्षा करता हो। रक्षक।

रक्षमाण—वि० [सं० रक्ष्यमाण] दे० 'रक्ष्यमाण'।

रक्षस—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस्] असुर। दैत्य। निशाचर।

रक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आपत्ति, कष्ट या नाश आदि से बचाना। अनिष्ट से बचाने की क्रिया। रक्षण। बचाव।

यौ०—**रक्षाबंधन**। **रक्षासमिति**।

२. वह यंत्र या सूत्र आदि जो प्रायः बालकों को भूत प्रेत, रोग या नजर आदि से बचाने के लिये बाँधा जाता है। ३. गोद। ४. भस्म। राख। ५. लाक्षा। लाख (को०)।

रक्षाइदⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रक्ष+आइद (प्रत्य०)] राक्षसपन।

रक्षागृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ प्रसूता प्रसव करे। सूतिकागृह। जच्चाखाना। २. युद्ध के समय बमबारी से राह चलतों को बचने के लिये निर्मित भूगर्भस्थ आश्रयस्थान। ३. विश्रामस्थान या कक्ष (को०)।

रक्षातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] नियम भंग करना। कायदा कानून तोड़ना। (को०)।

रक्षादल—संज्ञा पुं० [सं०] नागरिकों का वह संघटन, जो पुलिस के सहायक रूप में रक्षा का कार्य करता है। होमगार्ड।

रक्षाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का किसी नगर का वह अधिकारी जिसका काम उस नगर की रक्षा तथा शासन करना होता था।

रक्षापति—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का वह कर्मचारी जिसका काम नगरनिवासियों की रक्षा करना होता था।

रक्षापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजपत्र। २. सफेद सरसों।

रक्षापाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रहरी। संतरी (को०)।

रक्षापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदार। संतरी।

रक्षापेक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहरेदार। संतरी। २. अंतःपुर में पहरा देनेवाला संतरी। ३. अभिनय करनेवाला। नट।

रक्षाप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार वह दीपक जो भूत प्रेत आदि की बाधा से रक्षा करने के लिये जलाया जाता है।

रक्षाबंधन—संज्ञा पुं० [सं० रक्षा+बन्धन] हिंदुओं का एक त्योहार जो श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को होता है। सलोनो।

विशेष—इस दिन बहनें अपने भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के दाहिने हाथ की कलाई पर अनेक प्रकार के गंडे, जिन्हें राखी कहते हैं, बाँधते हैं।

रक्षाभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूषण या जंतर जिसमें किसी प्रकार का कवच आदि हो और जो भूतप्रेत या रोग आदि की बाधा से रक्षित रहने के लिये पहना जाय।

रक्षामंगल—संज्ञा पुं० [सं० रक्षामङ्गल] वह अनुष्ठान या धार्मिक क्रिया आदि जो भूतप्रेत आदि की बाधा से रक्षित रहने के लिये की जाय।

रक्षामणि—संज्ञा पुं० [सं०] वह मणि या रत्न आदि जो किसी ग्रह के प्रकोप से रक्षित रहने के लिये पहना जाय।

रक्षारत्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रक्षामणि'।

रक्षि, रक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बचानेवाला। रक्षक। २. पहरेदार। संतरी।

रक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्षा। हिफाजत। २. वह स्त्री जो रक्षा के लिये नियुक्त हो। अभिभाविका।

रक्षित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रक्षिता] १. जिसकी रक्षा की गई हो। रक्षा किया हुआ। हिफाजत किया हुआ। जैसे,—मैं आपकी पुस्तक बहुत ही रक्षित रखूँगा। २. प्रतिपालन। पाला पोसा। ३. रखा हुआ।

रक्षिता¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्षा। हिफाजत। २. एक अप्सरा का नाम।

रक्षिता²—संज्ञा पुं० [सं० रक्षितृ] १. रक्षा करनेवाला। २. प्रहरी। पहरुआ।

रक्षिता³—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्षित] बिना विवाह किए पत्नी की तरह रखी हुई स्त्री। रखेली। सुरैतिन।

रक्षी¹—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस्+ई (प्रत्य०)] राक्षसों के उपासक। राक्षस पूजनेवाले। उ०—भूती भूतन यक्षी यक्षन। प्रेती प्रेतन रक्षी रक्षन।—गिरधर (शब्द०)।

रक्षी²—संज्ञा पुं० [सं० रक्षिन्] १. रक्षा करनेवाला। रक्षक। २. पहरेदार। चौकीदार।

रक्षोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग। २. भिलावें का पेड़। ३. सफेद सरसों। ४. रखकर खट्टा किया हुआ चावल का पानी या माँड़।

रक्षोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वचा। बच।

रक्ष्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य। रक्षणीय।

रक्ष्यमाण—वि० [सं०] १. जिसकी रक्षा की जा सके। २. जिसकी रक्षा की जा रही हो।

रक्स—संज्ञा पुं॰ [अ॰ रक़्स] १. उद्धत नृत्य। मर्द का नाच। तांडव। २. लास्य। स्त्री का नाच। ३. नृत्य। नर्तन [को॰]।

रक्साँ—वि॰ [फ़ा॰ रक़्साँ] नृत्यरत। नाचता हुआ [को॰]।

रक्से ताऊस—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ रक़्से ताऊस] १. एक प्रकार का नाच, जिसमें पेशवाज के दो कोने दोनों हाथों से पकड़कर कमर तक उठा लिए जाते हैं, जिससे नाचनेवाले की आकृति मोर की सी बन जाती है। २. एक प्रकार का नाच जिसमें घुटनों के बल होकर इतनी तेजी से घूमते हैं कि काछनी या पेशवाज का घेरा फैलकर चक्कर खाने लगता है।

रख[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रखना] १. चरी की भूमि। चरौना। चरागाह। २. रक्षित जंगल। दे॰ 'रखा'।

रख(पु)[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रक्ष, प्रा॰ रक्ख] रक्षा। बचाव। जैसे, रखपाल = रक्षपाल।

रखटी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की ईख जिसके रस से गुड़ बनाया जाता है। लखड़ा।

रखड़ा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दे॰ 'रखटी'।

रखड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रख (= राखी) + ड़ी (प्रत्य॰)] राखी। रक्षाबंधन। उ॰—भाई कहते थे, रखड़ी (राखी) के बाद जाना।—अभिशप्त, पृ॰ ६६।

रखत(पु)—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ रख़्त] असबाब। सामान। उपकरण।

यौ॰—**रखत बखत** = रख़्तवख़्त। **रखत वखत**।

रखना—क्रि॰ स॰ [सं॰ रक्षण, प्रा॰ रक्खण] १. किसी वस्तु पर या किसी वस्तु के अंदर दूसरी वस्तु स्थित करना। ठहराना। टिकाना। धरना। जैसे, टेबुल पर किताब रखना; थाली में मिठाई रखना; हाथ पर रुपए रखना; बरतन में अनाज रखना; दाँव पर रुपया रखना; गाड़ी पर असबाब रखना।

संयो॰ क्रि॰—**देना**।—**लेना**।

२. रक्षा करना। हिफाजत करना। बचाना। जैसे,—तुम आप तो अपनी चीज रखते नहीं; दूसरों को चोर बनाते हो। उ॰—जाको राखे साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय। बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय।—कबीर (शब्द॰)।

यौ॰—**रख रखाव** = किसी वस्तु की देखरेख और रक्षा। हिफाजत करने की क्रिया।

३. निर्वाह या पालन करना। बिगड़ने न देना। वृथा या नष्ट न होने देना। जैसे,—किसी की इज्जत रखना; किसी की बात रखना।

संयो॰ क्रि॰—**लेना**।

४. एकत्र करना। संग्रह करना। जोड़ना। संचित करना। जैसे, कमा कमाकर रुपए रखना; ढूँढ़ ढूँढ़कर तसवीरें रखना।

संयो॰ क्रि॰—**चलना**।—**जाना**।—**देना**।—**लेना**।

५. सुपुर्द करना। सौंपना। ६. रेहन करना। बंधक में देना। जैसे,—घर के जेवर रखकर उन्हें कर्ज दिया था। ७. अपने अधिकार में लेना। अपने हाथ में करना। जैसे,—अभी यह रुपया हम रखते हैं। जब तुम्हें जरूरत हो, तब ले लेना।

संयो॰ क्रि॰—**लेना**।

मुहा॰—**रख लेना** = किसी की चीज उसे वापस न देना। दबा लेना। जैसे,—आपने मेरे लिये जो चीजें उनके पास भेजी थीं, वे सब उन्होंने रख लीं।

८. पालन पोषण, मनोविनोद या व्यवहार आदि के लिये अपने अधिकार में करना। अपनी अधीनता में लेना। जैसे,—गौ रखना; घोड़ा रखना; रंडी रखना; पहलवान रखना। ९. नियुक्त करना। तैनात करना। मुकर्रर करना। जैसे,—आपके काम के लिये मैंने अपने चार आदमी वहाँ रख दिए हैं। १०. सकुशल जाने न देना। पकड़ या रोक लेना। जैसे,—दो डाकुओं को तो गाँववालों ने रखा। ११. आघात करना। चोट पहुँचाना। जड़ना। जैसे,—मुक्का रखना; थप्पड़ रखना। १२. स्थगित करना। मुलतवी करना। दूसरे समय के लिये टालना। जैसे,—यह बातचीत कल पर रखो। १३. उपस्थित न करना। सामने न लाना। जैसे,—यह सब झगड़ा अलग रखो। १४. व्यवहार करना। धारण करना। जैसे,—आप सदा बढ़िया छड़ी रखते हैं। १५. किसी पर आरोप करना। जिम्मे लगाना। मढ़ना। जैसे,—तुम सदा सब कसूर मुझपर ही रखते हो।

मुहा॰—**हाथ रखना** = ऐसी बात कहना जिससे कोई दबे, चिढ़े या एहसान माने। (**किसी पर**) **रखकर कहना** = किसी को सुनाने या चिढ़ाने के उद्देश्य से किसी दूसरे पर आरोपित करके कोई बात कहना। लक्ष्य बनाकर कहना।

१६. ऋणी होना। कर्जदार होना। जैसे,—(क) हम क्या उनका कुछ रखते हैं, जो उनसे दबें! (ख) वे कभी किसी का एक पैसा नहीं रखते। १७. मन में अनुभव या धारण करना। जैसे, आशा रखना; विश्वास रखना। १८. निवास कराना। डेरा कराना। ठहराना। जैसे—हमने उन लोगों को धर्मशाला में रख दिया है। १९. स्त्री (या पुरुष) से संबंध करना। उपपत्नी (या उपपति) बनाना। जैसे,—उसने एक औरत रख ली है। २०. संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू)। २१. गर्भ धारण कराना। जैसे, पेट रखना। २२. पक्षियों आदि का अंडे देना। जैसे,—आपकी मुर्गी साल में कितने अंडे रखती है? २३. अपने पास पड़ा रहने देना। बचाना। जैसे,—खा पीकर महीने में क्या रखते हो?

संयो॰ क्रि॰—**छोड़ना**।

मुहा॰—**रखकर कहना** = किसी बात का कुछ अंश बचाकर या छिपाकर शेष अंश कहना।

विशेष—संयुक्त क्रिया के रूप में इस शब्द का व्यवहार जिस क्रिया के आगे होता है, उससे सूचित होता है कि वह क्रिया किसी दूसरी क्रिया के पहले पूर्ण हो गई है या हो जानी चाहिए। जैसे,—'मैंने उससे पहले ही कह रखा था कि तुम्हारे आने पर रुपया दे दे।' मुहावरे के रूप में भी यह क्रिया दूसरी क्रियाओं के साथ लगती है।

रखनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + ई (प्रत्य०)] वह स्त्री जिसमे विवाह संबंध न हुआ हो और जो यों ही घर में रख ली गई हो। रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखेली। सुरैतिन।

क्रि० प्र०—रखना।

रखपाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रक्षपाल] दे० 'रक्षपाल'। उ०—पहिरी माला मंत्र की पाई कुल श्रीमाल। थाप्यो गोत विहोलिया बीहोला रखपाल।—अर्ध०, पृ० २।

रखया(पु)[1]—वि० स्त्री० [सं० रक्षा] रक्षा करनेवाली।

रखया(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० रिक्ता] रिक्ता तिथि। दे० 'रिक्ता'। उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया। चौथ चतुर्दसि नौमी रखया।—जायसी (शब्द०)।

रखला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रहकला'।

रखवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० रखना या रखाना] १. खेतों की रखवाली। चौकीदारी। २. रखवाली की मजदूरी। चौकीदारी की मजदूरी। ३. चौकीदार का टिकस। ४. रखवाली करने की क्रिया या भाव। ५. रखने की क्रिया या ढंग। ६. रखने की मजदूरी।

रखवाना—क्रि० स० [हिं० रखना का प्रेर० रूप] १. रखने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरे को रखने में प्रवृत्त करना। २. दे० 'रखाना'।

रखवार—संज्ञा पुं० [हिं० रखना + वार (प्रत्य०)] १. रक्षा करनेवाला। रखवार। २. चौकीदार। पहरेदार।

रखवारा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० रखवार] दे० 'रखवार'। उ०—खेत कएल रखवारे लुटल ठाकुर सेवा मोर।—विद्यापति, पृ० ६१४।

रखवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + वारी (प्रत्य०)] दे० 'रखवाली'।

रखवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रखवाला'। उ०—तुम ही हुए रखवाल तो उसका कौन न होगा ?—अर्चना, पृ० ४६।

रखवाला—संज्ञा पुं० [हिं० रखना + वाला (प्रत्य०)] १. रक्षा करनेवाला। रक्षक। २. चौकीदार। पहरेदार।

रखवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं रखना + वाली (प्रत्य०)] १. रक्षा करने की क्रिया। हिफाजत। २. रक्षा करने का भाव।

रखशी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मद्य जिसे नैपाली आदि पहाड़ी पीते हैं।

रखा[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना] १. पशुओं के चरने के लिये बचाई हुई भूमि। चरी। चरौना। २. सर्वसाधारण के उपयोग के लिये वर्जित जंगल या चरागाह जहाँ से लकड़ी, घास आदि काटने की मनाही हो।

रखा†[2]—वि० [सं० रक्षक, प्रा० रक्खअ] रक्षा या हिफाजत करनेवाला। चौकीदार। पहरुआ। जैसे, बनरखा = बन का रक्षक।

रखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + आई (प्रत्य०)] १. रक्षा करने की क्रिया। हिफाजत। रखवाली। २. रक्षा करने का भाव। ३. वह धन जो रक्षा करने के बदले में दिया जाय।

रखान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना] चराई की भूमि। चरी।

रखाना[1]—क्रि० स० [हिं० रखना का प्रेर० रूप] रखने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरों को रखने में प्रवृत्त करना। रखवाना।

रखाना[2]—क्रि० अ० रखवाली करना। रक्षा करना। नष्ट होने से बचाना।

रखाना(पु)[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० रखनह्] छिद्र। छेद। सूराख। उ०—(क) असमान के बीच रखाना है इक, उस हुजेर में बैठो। पलटू०, भा० ३, पृ० ९२। (ख) सब्दै सब्द मिलावै जोगी खुलिगा गगन रखाना।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८६।

रखार†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पाटा जिसका व्यवहार बंबई प्रांत में जुता हुआ खेत बराबर करने के लिये होता है।

रखिया(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० रखना + इया (प्रत्य०)] १. रक्षक। २. रखनेवाला। उ०—रीझै रिझवारि इंदुबदनी उदार सुर रूख की सी डार डोलै रंग रखियन मैं।—देव (शब्द०)।

रखिया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० राखी (= रक्षा)] गाँव के समीप का वह पेड़ जो पूजनार्थ रक्षित रहता है।

रखियाना—संज्ञा पुं० [हिं० राखी + इयाना (प्रत्य०)] १. राख से बरतनों आदि का माँजना। २. पकाए हुए खैर (कत्थे) को कपड़े में लपेटकर राख के अंदर इस अभिप्राय से रखना कि उसका पानी सूख जाय और कसाव निकल जाय (तँबोली)।

रखी†—संज्ञा पुं० [सं० ऋषि, पुं०हिं० रिखि] ऋषि। मुनि। (डिं०)।

रखीराज—संज्ञा पुं० [सं० ऋषिराज] नारद ऋषि। (डिं०)।

रखीसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऋषीश्वर] श्रेष्ठ ऋषि, नारद आदि।

रखेड़िया†—संज्ञा पुं० [हिं० राख + एड़िया (प्रत्य०)] वह जो शरीर में केवल राख पोतकर साधु बना फिरे। ढोंगी साधु।

रखेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + एल (प्रत्य०)] दे० 'रखेली'।

रखेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + एली (प्रत्य०)] बिना विवाह किए ही घर में रखी हुई स्त्री। रखनी। सुरैतिन। उपपत्नी।

रखैया†—संज्ञा पुं० [हिं० रखना + ऐया (प्रत्य०)] १. रखनेवाला। २. रक्षा करनेवाला।

रखैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'रखेल', 'रखेली'।

रखौंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राखी (= रक्षा) + औड़ी (स्वा० प्रत्य०)] रक्षासूत्र। राखी। विशेष दे० 'राखी'।

रखौत, रखौना†—संज्ञा पुं० [हिं० रखना] पशुओं के चरने के लिये छोड़ी हुई जमीन। चरी।

रखौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राखी] दे० 'राखी'।

रख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० रख्त] १. असबाब। सामान। २. पोशाक। वस्त्र। लिबास। उ०—कोइ ताज खरीदे हँस हँसकर कोई रख्त खड़ा बनवाता।—राम० धर्म०, पृ० ६१।

यौ०—रख्त बख्त = साज सामान।

रख्श—संज्ञा पुं० [फ़ा० रख्श] १. घोड़ा। अश्व। २. प्रभा। चमक। कांति। किरण [को०]।

रख्शाँ—वि० [फ़ा० रख्शाँ] प्रदीप्त। चमकता हुआ [को०]।

रगंड—संज्ञा पुं० [डिं०] हाथी का कपोल।

रग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. शरीर में की नस या नाड़ी। उ०—जीए रूह रूहन्न में, जीए रूह रगन्न। जीए जो रउ सूरमाँ, ठंढउ चंद्र बसन्न।—दादू (शब्द०)।

मुहा०—**रग उतरना**=(१) क्रोध उतरना। (२) हठ दूर होना। (३) आँत उतरना। **रग खड़ी होना**=शरीर की किसी रग का फूल जाना। **रग चढ़ना**=(१) क्रोध आना। गुस्सा आना। (२) हठ के वश होना। **रग दबना**=दबाव मानना। किसी के प्रभाव या अधिकार में होना। जैसे,—तुम्हारी रग उन्हीं से दबती है। **रग पहिचानना या पाना**=रहस्य जानना। असल बात जान लेना। **रग फड़कना**=किसी आनेवाली आपत्ति की पहले से ही आशंका होना। माथा ठनकना। **रग रग फड़कना**=शरीर में बहुत अधिक उत्साह या आवेश के लक्षण प्रकट होना। **रग रग में**=सारे शरीर में। जैसे,—पाजीपन तो तुम्हारी रग रग में भरा है।

यौ०—रग पट्ठा। रग रेशा।

२. पत्तों में दिखाई पड़नेवाली नसें।

रगड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़ना] १. रगड़ने की क्रिया या भाव। घर्षण। २. वह हलका चिह्न जो साधारण घर्षण से उत्पन्न हो जाय।

क्रि० प्र०—खाना।—लगना।

३. (कहारों की परिभाषा में) धक्का। ४. हुज्जत। झगड़ा। तकरार। ५. भारी श्रम। गहरी मेहनत।

मुहा०—**रगड़ डालना**=अधिक मेहनत लेना। भारी श्रम कराना। **रगड़ पड़ना**=अधिक परिश्रम उठाना या पड़ना। जैसे,—उसे बहुत रगड़ पड़ी; इससे थक गया।

रगड़ना—क्रि० स० [सं० घर्षण या अनु०] १. किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ पर रखकर दबाते हुए बार बार इधर उधर चलाना। घर्षण करना। घिसना। जैसे,—चंदन रगड़ना।

विशेष—यह क्रिया प्रायः किसी पदार्थ का कुछ अंश घिसने, उसे पीसने अथवा उसका तल बराबर करने के लिये होती है।

२. पीसना। जैसे, मसाला रगड़ना, भाँग रगड़ना। ३. अभ्यास आदि के लिये बार बार कोई काम करना। ४. किसी काम को जल्दी जल्दी और बहुत परिश्रमपूर्वक करना। जैसे—इस काम को तो हम चार दिन में रगड़ डालेंगे। ५. तंग करना। दिक करना। परेशान करना। ६. स्त्री के साथ संभोग करना। (बाजारू)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

रगड़ना[२]—क्रि० अ० बहुत मेहनत करना। अत्यंत श्रम करना। जैसे,—अभी यहीं पड़े रगड़ रहे हैं।

रगड़वाना—क्रि० स० [हिं० रगड़ना का प्रे० रूप] रगड़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को रगड़ने में प्रवृत्त करना।

८-४२

रगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० रगड़ना] १. रगड़ने की क्रिया या भाव। घर्षण। रगड़। २. निरंतर अथवा अत्यंत परिश्रम। बहुत अधिक उद्योग। ३. वह झगड़ा जो बराबर होता रहे और जिसका जल्दी अंत न हो। जैसे यह झगड़ा नहीं, रगड़ा है।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

यौ० रगड़ा झगड़ा=लड़ाई झगड़ा। बखेड़ा।

रगड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़ना+आन (प्रत्य०)] रगड़ने की क्रिया या भाव। रगड़ा।

मुहा०—**रगड़ान देना**=रगड़ना। घिसना।

रगड़ी†—वि० [हिं० रगड़ा+ई (प्रत्य०)] रगड़ा करनेवाला। लड़ाई झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। जैसे,—मोरी एक न माने, कान्हा बड़ो रगड़ी। (गीत)।

रगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में एक गण या तीन वर्णों का समूह जिसका पहला वर्ण गुरु, दूसरा लघु और तीसरा फिर गुरु होता है (ऽ।ऽ)। यह साधारणतः 'र' से सूचित किया जाता है। इसके देवता अग्नि माने गए हैं। जैसे, कामना। मामला। राम को।

रगतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रक्त]। रुधिर। लहू। (डिं०)।

रगत्रⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० रक्त] दे० 'रक्त'। उ०—सालुले विदल कंदल ससत्र। रँग सेल खगे न मिटै रगत्र।—रा० रू०, पृ० ७३।

रगदⓅ—सं० पुं० [सं० रक्त] रक्त। रुधिर।

रगदना—क्रि० स० [हिं० रगेदना] दे० 'रगेदना'।

रगदलⓅ—वि० [डिं०] कुबड़ा।

रगपट्ठा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रग+पट्ठा] १. शरीर के भीतरी भिन्न भिन्न अंग।

मुहा०—**रग पट्ठे से परिचित या वाकिफ होना**=स्वभाव और व्यवहार आदि से परिचित होना। अच्छी तरह जानना। खूब पहचानना।

२. किसी विषय की भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगबत—संज्ञा स्त्री० [अ० रग़बत] १. चाह। इच्छा। २. प्रवृत्ति। रुचि।

मुहा०—**रगबत आना**=चाह होना। मन चलना। **रगबत दिलाना**=प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित करना। बढ़ावा देना। **रगबत की आँखों से देखना**=पसंद करना।

रगमगनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] १. भिनना। घुलना। २. अनुरंजित होना। उ०—तीर्थ सबै देखे सुने, कोऊ नहिं या तूल। ब्रजअवनी रगमगि रही, कृष्न चरन अनुकूल।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४२।

रगरⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़] १. दे० 'रगड़'। २. हठ। जिद। अड़। टेक। उ०—जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तु रहउँ कुमारी।—मानस, १।८१।

रगरा†—संज्ञा पुं० [हिं० रगड़ा] दे० 'रगड़ा'।

रगरेशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रग+रेशा] १. पत्तियों की नसें। २. शरीर के अंदर का प्रत्येक अंग।

मुहा०—रग रेशे में = सारे शरीर में। अंग अंग में। रग रेशे से परिचित या वाकिफ होना = स्वभाव और व्यवहार आदि से परिचित होना। अच्छी तरह जानना। खूब पहचानना।

३. किसी विषय की भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० रगना का प्रे० रूप] चुप कराना। शांत कराना। उ०—कुँवर कहूँ रोदन अति करहीं नहीं रगा रगवावै।—रघुराज (शब्द०)।

रगा†—संज्ञा पुं० [देश०] मोर।

रगाना†[1]—क्रि० अ० [देश०] चुप होना। शांत होना।

रगाना[2]—क्रि० स० चुप कराना। शांत करना।

रगी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का मोटा अन्न जो मैसूर में होता है। २. दे० 'रग्गी'।

रगी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० रग+ई (प्रत्य०)] दे० 'रंगीला'।

रगीला—संज्ञा पुं० [हिं० रग (=जिद)+ईला (प्रत्य०) [स्त्री० रगीली] १. हठी। जिद्दी। दुराग्रही। २. पाजी। दुष्ट।

रगद—संज्ञा स्त्री० [हिं० रगेदना] १. दौड़ाने या भगाने की क्रिया। २. पक्षियों आदि की संभोग की प्रवृत्ति या अवसर। जोड़ा खाने का मौका।

रगेदना—वि० [सं० खेट, हिं० खेदना] भगाना। खदेड़ना। निकालना। दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

रग्गा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जो दक्षिण के पहाड़ों में होता है। रगी।

रग्गा†[2]—संज्ञा स्त्री० अधिक वर्षा के उपरांत होनेवाली धूप, जो खेती के लिये लाभदायक होती है।

रग्गी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'रग्गा[1]'।

रघु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवंशी राजा दिलीप के पुत्र का नाम जो उनकी पत्नी सुदक्षिणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—ये अयोध्या के बहुत प्रतापी राजा और श्री रामचंद्र के परदादा थे। जब ये छोटे थे, तभी इनके पिता ने अश्वमेध यज्ञ किया था और यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार इन्हें सौंपा था। जब उस घोड़े को इंद्र ने पकड़ा, तब इन्होंने इंद्र को युद्ध में पराजित करके वह घोड़ा छुड़ाया था। सिंहासन पर बैठने के उपरांत इन्होंने विश्वजित् नामक यज्ञ किया था और उसमें समग्र कोष दान कर दिया था। महाराज अज इन्हीं के पुत्र थे। प्रसिद्ध रघुवंश के मूल पुरुष यही थे।

२. रघु के वंश में उत्पन्न कोई व्यक्ति।

रघु[2]—वि० १. शीघ्रगति। द्रुतगति। शीघ्रगामी। २. चपल। ३. चंचल। लोल। ४. उत्सुक। आतुर। व्यग्र। अधीर [को०]।

रघुकुल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा रघु का वंश।

विशेष—इस शब्द में चंद्र, मणि, नाथ, पति, वर, वीर, आदि और उनके वाचक शब्द लगने से श्रीरामचंद्र का बोध होता है। जैसे,—रघुकुलचंद्र, रघुकुलमणि, रघुनाथ, रघुपति, रघुवर, रघुवीर इत्यादि।

रघुनंद—संज्ञा पुं० [सं० रघुनन्द] श्रीरामचंद्र।

रघुनंदन—संज्ञा पुं० [सं० रघुनन्दन] श्रीरामचंद्र।

रघुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

रघुनायक—संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुलस्वामी, श्रीरामचंद्र।

रघुपति—संज्ञा पुं० [सं०] रघुवंश के स्वामी, श्रीरामचंद्र।

रघुराई(पु)—संज्ञा सं० [सं० रघुराज, प्रा० रघुराइ] श्रीरामचंद्र।

रघुराज—संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल के राजा, श्रीरामचंद्र।

रघुराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रघुराज] रघुवंश के राजा। श्रीरामचंद्र।

रघुरैया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० रघुराय] दे० 'रघुराय'।

रघुवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाराज रघु का वंश या खानदान जिसमें रामचंद्र जी उत्पन्न हुए थे। उ०—तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा।—तुलसी (शब्द०)। २. महाकवि कालिदास का रचा हुआ एक प्रसिद्ध महाकाव्य जिसमें महाराज दिलीप के समय से लेकर अग्निवंश तक का विवरण दिया हुआ है।

यौ०—रघुवंश-वनज-वन-भानु = रघुवंश रूपी कमल वन के सूर्य, श्री रामचंद्र। उ०—जय रघुवंश-वनज-वन-भानू।—मानस १।

रघुवंशकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

रघुवंशी—संज्ञा पुं० [सं० रघुवंशिन्] १. वह जो रघु के वंश में उत्पन्न हुआ हो। २. क्षत्रियों के अंतर्गत एक जाति।

विशेष—इस जाति के लोग महाराज रघु और रामचंद्र के वंश में उत्पन्न माने जाते हैं।

रघुवर—संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुलश्रेष्ठ, श्रीरामचंद्र।

रघुवीर—संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल में वीर, रामचंद्र जी।

रघूत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल में श्रेष्ठ वा उत्तम, श्रीरामचंद्र।

रघूद्वह—संज्ञा पुं० [सं०] रघुवंशियों में श्रेष्ठ, श्रीरामचंद्र।

रघ्रती—संज्ञा पुं० [डिं०] संतोष। सब्र।

रचक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रचना करनेवाला। रचयिता। उ०—पालक संहारक रचक भक्षक रक्षक अपार। सब ही सबको होत है को जानै कै बार।—केशव (शब्द०)।

रचक[2]—वि० [सं० न्यञ्चक] दे० 'रंचक'।

रचना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रचने या बनाने की क्रिया या भाव। बनावट। निर्माण। उ०—(क) गढ़रचना बरुनी अलक चितवन भौंह कमान।—बिहारी (शब्द०)। (ख) चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें।—लल्लूलाल (शब्द०)। २. बनाने का ढंग या कौशल। ३. बनाई हुई वस्तु। रची हुई चीज। सृजित पदार्थ। निर्मित वस्तु। उ० (क) अद्भुत रचना बिधि रची यामें नहीं विवाद। बिना जीभ के लेत हग रूप सलोनो स्वाद।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) तब श्रीकृष्ण चंद्र जी ने सबको मोहित कर जो वैकुंठ की रचना रची थी, सो उठा ली।—लल्लूलाल (शब्द०)। ४. फूलों से माला या गुच्छे आदि बनाना। ५. बाल गूँथना। केश विन्यास। ६. स्थापित करना।

७. उद्यम। कार्य। ८. वह गद्य या पद्य जिसमें कोई विशेष चमत्कार हो। उ०—बचननि की रचनानि सों जो साधे निज काज।—पद्माकर (शब्द०)। ९. पुराणानुसार विश्वकर्मा की स्त्री का नाम।

रचना[2]—क्रि० स० [सं० रचन] १. हाथों से बनाकर तैयार करना। बनाना। सिरजना। निर्माण करना। उ०—(क) तपबल रचइ प्रपंच बिधाता। तप बल विष्णु सकल जग त्राता।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इहाँ हिमालय रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना।—तुलसी (शब्द०)। २. विधान करना। निश्चित करना। उ०—अस बिचारि सोचहु मति माता। सो न टरै जो रचइ विधाता।—तुलसी (शब्द०)। ३. ग्रंथ आदि लिखना। उ०—गुनी और रिझवार ये दोउ प्रसिद्ध ह्वै जात। एक ग्रंथ के रचन सों दोगुन जस सरसात।—(शब्द०)। ४. उत्पन्न करना। पैदा करना। ५. अनुष्ठान करना। ठानना। उ०—(क) रति विपरीत रची दंपति गुपुत अति मेरे जान मनि भय मनमथ नेज तें।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) तब एकविंशति बार मैं बिन छत्र की पृथ्वी रची।—केशव (शब्द०)। (ग) सखि पान खवावत ही केहि कारन कोप पिया पर नारि रच्यौ।—केशव (शब्द०)। ६. आडंबर खड़ा करना। युक्ति या तदबीर लगाना। आयोजन करना। जैसे, आडंबर रचना; उपाय रचना; जाल रचना। उ०—(क) रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)। ७. काल्पनिक सृष्टि करना। कल्पना करना। उ०—कबहुँ धनु रचि पसरु चरावैं। कबहुँ भूप बनि नीति सिखावैं।—रघुनाथ (शब्द०)। ८. शृंगार करना। सँवारना। सजाना। कारीगरी करना। उ०—भूषण बसन आदि सब रचि रचि माता लाड़ लड़ावै।—सूर (शब्द०)। ९. तरतीब या क्रम से रखना। उ०—चहूँघा बेदी के विधिवत रची हैं अगिनि ये। बिछीं दर्भा नेरे अरु प्रजुल सोहैं समिद लै।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

मुहा०—(पु) रचि पचि = परिश्रमपूर्वक। दक्षतापूर्ण ढंग से। उ०—(क) रचिपचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रचि पचि कीयो ऐ सिंगार, पाटी तौ पारी चाखे माम का।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३२। रचि रचि (पु) = बहुत होशियारी और कारीगरी के साथ (कोई काम करना)। बहुत कौशलपूर्वक।

रचना[3]—क्रि० स० [सं० रञ्जन] रँगना। रंजित करना। उ०—(क) मार्ग को झरोखे तक लाख के रंग में रच दिया।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ख) रोचन रोरी रची मेहँदी नृप संभु कहैं मुकता सम पोत है।—शंभु (शब्द०)।

रचना[4]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] १. अनुरक्त होना। उ०—(क) पर नारि से रचे हैं पिय।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) जो अपने पिय रूप रची कवि राम तिन्हैं रबि की छवि थोरी।—हृदयराम (शब्द०)। (ग) मोहि तोहि मेहँदी कहूँ कैसे बनै बनाइ। जिन चरनन सों मैं रची तहाँ रची तू जाइ।—रसनिधि (शब्द०)। (घ) चिता न चित फाको भयौ रची जु पिय के रंग।—सूर (शब्द०)। २. रंग चढ़ना। रँगा जाना। रंजित होना। जैसे,—(क) तुम्हारे मुँह में पान खूब रचता है। (ख) उसके हाथ में मेहँदी खूब रचती है। उ०—(क) गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।—गुमान (शब्द०)। (ख) जावक रचित अँगुरियन मृदुल सुढारी हो।—तुलसी (शब्द०)।

रचनात्मक—वि० [सं० रचना + आत्मक] वह कार्य जो निर्माण में सहायक हो। जैसे—रचनात्मक साहित्य, रचनात्मक शिक्षा आदि।

रचयिता—संज्ञा पुं० [सं० रचयितृ] रचनेवाला। बनानेवाला। जैसे,—आपही इस ग्रंथ के रचयिता हैं।

रचवाना—क्रि० स० [हिं० रचना का प्रेर० रूप] १. रचना के काम में दूसरे को प्रवृत्त कराना। रचना कराना। तैयार कराना। बनवाना। २. मेहँदी या महावर लगवाना।

रचाना (पु)[1]—क्रि० स० [सं० रचन] १. आयोजन करना। अनुष्ठान करना या कराना। बनाना जैसे,—ब्याह रचाना। उ०—इत पांडव मिलि यज्ञ रचायो।—लल्लूलाल (शब्द०)। २. दे० 'रचवाना'।

रचाना[2]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] मेहँदी, महावर आदि से हाथ पैर रँगाना।

रचित—वि० [सं०] १. बनाया हुआ। रचा हुआ। २. सुघटित (को०)। ३. विभूषित। सज्जित (को०)। ४. ग्रथित (को०)।

रचौं—वि० [हिं० रंच] थोड़ा। अल्प।

रच्छ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० रक्ष] दे० 'रक्ष'।

रच्छक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० रक्षक] दे० 'रक्षक'।

रच्छन (पु) संज्ञा पुं० [सं० रक्षण] दे० 'रक्षण'।

रच्छपार (पु)—वि० [सं० रक्षपाल] रक्षा और पालन करनेवाला। रक्षक। पालक। उ०—गिरि के धरमहार, गँवर के रच्छ पार गहर न लाइए।—गंग० ग्रं०, पृ० ६।

रच्छस (पु)—संज्ञा पुं० [सं० राक्षस] दे० 'राक्षस'।

रच्छा (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्षा] दे० 'रक्षा'।

रच्छाकर (पु)—वि० [सं० रक्षा + हिं० करना] रक्षा करनेवाला। रक्षक। उ०—पुरजन सुत नृप भोज भूमि सुर जन रच्छाकर।—मति० ग्रं०, पृ० ४१४।

रच्छित—वि० [सं० रक्षित] दे० 'रक्षित'।

रछपाल (पु)—वि० [सं० रक्षपाल] रक्षा और पालन करनेवाला। रक्षपाल। उ०—अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन के रछपाल।—कबीर श०, पृ० ९१।

रछस (पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस = राक्षस] दे० 'राक्षस'। उ०—जबरदूत मेले समुझावो रछस अजू समजे तो रावण।—रघु० रू०, पृ० १७८।

रजंपुत्त (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० राजपूत] दे० 'राजपूत'। उ०—रजंपुत्त पंचास झुझ्झे अमोरं। बजै जीत कै नद्द नीसान घोरं।—पृ० रा०, २०,६६।

रज—संज्ञा पुं० [सं० रजस्] १. वह रक्त जो स्त्रियों और स्तनपायी जाति के मादा प्राणियों के योनिमार्ग से प्रतिमास निकलता

है और प्रायः तीन या चार दिनों तक बराबर निकलता रहता है। आर्तव। कुसुम। ऋतु।

विशेष—रज युवावस्था का सूचक होता है और गरम देशों में स्त्रियों के बारहवें या तेरहवें वर्ष तथा ठंढे देशों में सोलहवें या अठारहवें वर्ष निकलने लगता है और प्रायः पचास या पचपन वर्ष की अवस्था तक निकलता रहता है। जब स्त्री गर्भ धारण कर लेती है, तब यह रज निकलना बंद हो जाता है; और प्रसव के उपरांत फिर निकलने लगता है। हमारे यहाँ शास्त्रों में कहा है कि जबतक स्त्री रजस्वला न होने लगे, तबतक उसे कोई धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं होता; और जिन दिनों स्त्री को रजस्राव होता हो, उन दिनों वह अपवित्र या अशुचि समझी जाती है। रजस्राव हो चुकने पर जब स्त्री स्नान करती है, तब वह गर्भधारण के लिये विशेष उपयुक्त हो जाती है।

२. सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से दूसरा गुण।

विशेष—यह चंचल, प्रवृत्त करनेवाला; दुःखजनक और काम, क्रोध, लोभ आदि को उत्पन्न करनेवाला माना गया है। सत्व तथा तम दोनों गुणों को यही संचालित करता है और इसी के द्वारा मनुष्य में सब प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा उत्पन्न होती है। विशेष दे० 'गुण'।

३. आकाश। ४. पाप। ५. जल। पानी। उ०—रज राजस, आकाश रज, रज युवती में होय। रज धूली, रज पाप, कहि रज जल निर्मल धोय।—नंददास (शब्द०)। ६. प्राचीन समय का एक प्रकार का बाजा, जिसपर चमड़ा मढ़ा जाता था। ७. जोता हुआ खेत। ८. बादल। ९. भाप। १०. फूलों का पराग। उ०—हेमकमल रज मिलि पियराए।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। ११. आठ परमाणुओं का एक मान या तौल। १२. भुवन। लोक। १३. पुराणानुसार एक ऋषि का नाम जो वशिष्ठ के पुत्र माने जाते हैं। ४. खेत पापड़ा। १५. स्कंद की एक सेना का नाम।

रज²—संज्ञा स्त्री० १. धूल। गर्द। उ०—(क) गमन चढ़े रज पवन प्रसंगा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अति शुभ वीथी रज परिहरे।—केशव (शब्द०)। (ग) रज राजस न छुआइए नेह चीकने चित्त।—बिहारी (शब्द०)। २. रात। ३. ज्योति। प्रकाश।

रज³—संज्ञा पुं० [सं० रजत] चाँदी। उ०—(क) पुनि ताम्र के हैं कोटि धर श्रुति कोटि रज के स्वच्छ हैं। तहँ पाँच कोटि परवान के गृह दारु के नव लच्छ हैं।—विश्राम (शब्द०)। (ख) भाजन मणि हाटक रज केरे। अति विचित्र बहु भाँति घनेरे।—विश्राम (शब्द०)।

रज⁴—संज्ञा पुं० [सं० रजक] रजक। धोबी। उ०—(क) शिवनिंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मारग में एक रज संहारयो सबहि बसन हरि लीन्हें।—सूर (शब्द०)।

रज⁵—संज्ञा पुं० [फा० रज़] अंगूर [को०]।

रज⁶—वि० [फ़ा० रज़] रँगनेवाला [को०]।

रज⁷(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रजस्] शूरता। वीरता। रजपूती। उ०—राजे भाखो राज छोड़ि, राजपूत, रौती छोड़ि राउत रनाई छोड़ि राना जू।—गंग ग्रं०, पृ० ९३।

रजई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा + ई (प्रत्य०)] राजत्व। राजापन। उ०—राजा है रजई दिखरावत। ग्वाल बाल दुंदुभी बजावत।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५।

रजक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रजकी] १. कपड़ा धोनेवाला। धोबी। २. सुग्गा। शुक (को०)।

रजक(पु)²—संज्ञा पुं० [अरिड़क] १. अन्न। भोजन। २. रोजी। जीविका। उ०—देखतड़ा दुःख दूर ह्वै पाय रजक सुख पूर।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ११।

रजकण—संज्ञा पुं० [सं० रजः + कण, धूलिकण।

रजकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रजक की स्त्री। धोबिन। २. रजोधर्म के समय तीसरे दिन स्त्री की संज्ञा [को०]।

रजगार—संज्ञा पुं० [देश०] फफरा। कूट्ट। कोट्ट। दे० 'कूट्ट'।

रजगुण—संज्ञा पुं० [सं० रजोगुण] प्रकृति का वह गुण जिससे काम वा भोग विलास की इच्छा पैदा होती है। रजोगुण। विशेष दे० 'रज'। उ०—बख्तर बिसाल आयस रचित उपमा नहिं कहि जात है। रनहित लपेट तम गुनहि तनु मनु रजगुन सरसात है।—गोपाल (शब्द०)।

रजतंत—संज्ञा स्त्री० [सं० राजतत्व] शूरता। वीरता। उ०—शिव सरजा सों जंग जुरि चंदावत रजवंत। राव अमर गो अमरपुर समर रही रजतंत।—भूषण (शब्द०)।

रजत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चाँदी। रूपा। उ०—रजत सीप महँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।—तुलसी (शब्द०)। २. सोना। ३. हाथी दाँत। ४. हार। ५. रक्त। लहू। ६. पुराणानुसार शाकद्वीप के अस्ताचल पर्वत का नाम।

रजत²—वि० १. सफेद। शुक्ल। २. लाल। सुर्ख। ३. चाँदी के रंग का। चाँदी का बना हुआ (को०)।

यौ०—रजतकुंभ = चाँदी का घड़ा। रजतपात्र, रजतभाजन = चाँदी का बरतन।

रजतकूट—संज्ञा पुं० [सं०] मलय पर्वत की एक चोटी का नाम।

रजतजयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रजत + जयन्ती] किसी संस्था के जीवनकाल के २५वें वर्ष मनाया जानेवाला उत्सव।

रजतद्युति¹—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान।

रजतद्युति²—वि० रजत के समान दीप्त वा चमकीला।

रजतनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक यक्ष का नाम।

रजतनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के एक वंशधर का नाम।

रजतपट—संज्ञा पुं० [सं० रजत + पट] वह सफेद पर्दा जिसपर चलचित्र प्रदर्शित किए जाते हैं।

रजतप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

रजतवाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

रजताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रजत + आई (प्रत्य०)] सफेदी।

श्वेतता। उ०—तेज सों ताके ललाई भरे रज में मिली ग्रासु सबै रजताई।—गिरधर (शब्द०)।

रजताकर—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी की खान [को०]।

रजताचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाँदी का बनाया हुग्रा वह कृत्रिम पर्वत जिसका दान करना पुराणानुसार बहुत पुण्य का कार्य समझा जाता है। यह नवाँ महादान है। २. कैलास पर्वत।

रजताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

रजतोपम—संज्ञा पुं० [सं०] रूपामाखी।

रजधानी—संज्ञा स्त्री० [सं० राजधानी] दे० राजधानी'। उ०—राजा रामु ग्रवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी।—मानस, १।२५। २. राज्य। उ०—रामचंद्र दसरथ सुत ताकी जनकसुता पटरानी। कहँ तात के, पंचबटी वन छाँड़ि चले रजधानी। सूर०, १०।१६६।

रजन[१]—संज्ञा स्त्री० [ग्रं० रेज़िन] एक प्रकार का गोंद। राल। विशेष दे० 'राल'।

रजन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। २. रँगने की क्रिया। ३. कुसुंभ। महारजन [को०]।

रजना[१]—क्रि० ग्र० [सं० रञ्जन] रँगा जाना। रंग में डुबाया जाना। उ०—(क) प्रेम भरी पुर भूप सुता गुण रूप रजी रजपूतिनि राजै।—देव (शब्द०)। (ख) मानत नहीं लोक मरजादा हरि के रंग मजी। सूर श्याम को मिलि चूनो हरदी ज्यौं रंग रजी।—सूर (शब्द०)।

रजना[२]—क्रि० स० रँग में डुबाना। रँगना।

रजना[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० रञ्जन] संगीत की एक मूर्च्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—नि, स, रे, ग, म, प ध। नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि। स, रे, ग, म, प, ध, नि।

रजनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रजनी' [को०]।

रजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। रात्रि। निशा। उ०—(क) मंगल ही जु करी रजनी बिधि याही ते मंगली नाम धर्यो है।—केशव (शब्द०)। (ख) है रजनी रज में रुचि केती, कहा रुचि रोचक रंक रसाल में।—द्विजदेव (शब्द०)। ३. जतुका लता। पहाड़ी। ४. नीली। नील। ५. दारुहलदी। ६. पुराणानुसार शाल्मली द्वीप की एक नदी का नाम। ७. लाख। लाह। ८. दुर्गा का एक नाम (को०)।

रजनीकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। उ०—संतत दुखद सखी रजनीकर। स्वारथ रत तब ग्रबहुँ एक रस मोकों कबहुँ न भयो तापहर।—तुलसी (शब्द०)। २. कर्पूर। कपूर (को०)।

रजनीचर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. चद्रमा। ३. चोर (को०)। ४. रात का पहरेदार (को०)।

रजनीचर[२]—वि० जो रात के समय चलता या घूमता फिरता हो।

रजनीजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रोस। २. पाला [को०]।

रजनीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

रजनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

रजनीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] संध्या। सायंकाल। शाम का वक्त। उ०—(क) बहुरि भोग धरि रजनीमुख में। सैनारती करै भरि सुख में।—गिरधर (शब्द०)। (ख) प्रविश्यौ पवन तनय रजनीमुख लंक निशंक ग्रकेला।—रघुराज (शब्द०)। (ग) दिन उठि जात वेनु बन चारन गोप सखन के संग। बासर गत रजनीमुख ग्रावत करत नैन गति पंग।—सूर (शब्द०)। (घ) रजनीमुख ग्रावत गुन गावत नारद तुंबुर माउँ।—सूर (शब्द०)।

रजनीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

रजनीश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। रजनीपति। उ०—कुटिल हरि-नख हिए हरि के हरष निरखति नारि। ईश जनु रजनीश राख्यौ भालहूँ ते उतारि।—सूर (शब्द०)।

रजनीस—संज्ञा पुं० [सं० रजनीश] चंद्रमा। उ०—तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे सूने परे सून से मनो मिटाए ग्राँक के।—तुलसी (शब्द०)।

रजनीहंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफाली। हरसिंगार [को०]।

रजपूत†—संज्ञा पुं० [सं० राजपुत्र] [स्त्री० रजपूतिन] १. दे० 'राजपूत'। उ०—धूत कहौ ग्रवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. वीर पुरुष। योद्धा। उ०—ग्रंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर ग्राई।—केशव (शब्द०)।

रजपूती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजपूत + ई (प्रत्य०)] १. क्षत्रिय होने का भाव। क्षत्रियत्व। उ०—राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की, धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।—भूषण ग्रं० पृ० ६७। २. वीरता। शूरता। बहादुरी।

रजबल—संज्ञा पुं० [हिं० राजा ग्रथवा राज्य + बल] राज्य का बल। सुख संपत्ति। राज्यत्व। उ०—जब हम हिरदे प्रीत बिचारी। रजबल छाँड़ी के भए भिखारी।—दक्खिनी०, पृ० २३।

रजबली—संज्ञा पुं० [सं० राज + बली] राजा। (डिं०)।

रजबहा—संज्ञा पुं० [सं० राज, राजा (= बड़ा) + हिं० बहना] किसी बड़ी नदी या नहर से निकाला हुग्रा बड़ा नाला जिससे ग्रौर भी छोटे छोटे ग्रनेक नाले निकलते हैं।

रजलबाह—संज्ञा पुं० [जलवाह] मेघ। बादल। (डिं०)।

रजवंती—वि० [सं० रजोवती] वह स्त्री जिसका रजस्राव हो रहा हो। रजस्वला।

रजवट—संज्ञा स्त्री० [सं० राज + वट (प्रत्य०)] १. क्षत्रियत्व। २. वीरता। शूरता। (डिं०)।

रजवती—वि० [सं० रजोवती] दे० 'रजवंती'।

रजवाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० राज्य + बाड़ा] १. राज्य। देशी रियासत। जैसे,—वे कई रजवाड़ों में माल बेचने जाते हैं। २. राजा। जैसे,—ग्राजकल यहाँ कई रजवाड़े ग्राए हुए हैं।

रजवार‡—संज्ञा पुं० [सं० राजद्वार] १. राजा का दरबार। २. राजद्वार। उ०—पुनि बाँधे रजवार तुरंगा। का

बरनउँ जस उनके रंगा ।—जायसी (शब्द०)।

रजस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रज'।

रजसानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. चित्त। मन। हृदय (को०)।

रजस्वल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रज वा रजोगुण से भरा हो। २. महिष। भैंसा (को०)।

रजस्वला—वि० [सं०] १. जिसका रज प्रवाहित होता हो। रजवती। ऋतुमती। उ०—रजस्वला तिय गर्भयुत होई। तासों रमण करै जो कोई।—रघुनाथ (शब्द०)। २. विवाह के योग्य (लड़की)।

रजा—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा] १. मरजी। इच्छा। उ०—(क) नेह पंथ में भाव ते धरिए पाइ सँभार। साबित होइ मन आपने मीत रजा अख्त्यार।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।—नजीर (शब्द०)। २. रुखसत। छुट्टी। ३. अनुमति। आज्ञा। हुक्म। उ०—और कीजै वही आपकी जो रजा।—सूदन (शब्द०)। ४. स्वीकृति।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

रजाइⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा] १. आज्ञा। हुक्म। उ०—(क) पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम रामदूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ सतानंद ल्याये सिय सिविका चढ़ाइ कै।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० 'रजा'।

रजाइसⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा+हिं० आइस (प्रत्य०)] आज्ञा। हुक्म।

रजाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रजक (=कपड़ा ? या देश०)] एक प्रकार का जाड़े का ओढ़ना जिसका कपड़ा दोहरा होता है और जिसमें रूई भरी होती है। लिहाफ।

रजाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा+आई (प्रत्य०)] राजा होने का भाव। राजापन।

रजाई[3]—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा] आज्ञा। हुक्म। उ०—चले सीस धरि राम रजाई।—तुलसी (शब्द०)।

रजाकार—संज्ञा पुं० [अ० रज़ा+कार] १. स्वयंसेवक। २. स्वतंत्रतापूर्व भारत में स्थापित एक राष्ट्रविरोधी मुस्लिम राजनीतिक दल।

रजाना—क्रि० स० [सं० राज्य] १. राज्यसुख का भोग करना। उ०—रूठ रही मन सों कह्यौ भूपति आनंद आज न याहि रुठाऊँ। माँगु कह्यौ बनबास दे रामहिं हौं अपने सुत राज रजाऊँ।—हृदयराम (शब्द०)। २. बहुत अधिक सुख देना। बहुत अच्छी तरह से रखना। जैसे,—वे अपने सभी संबंधियों को राज रजा रहे हैं।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'राज' या 'राज्य' शब्द के साथ ही होता है, अलग नहीं।

रजामंद—वि० [फ़ा० रज़ामंद] जो किसी बात पर राजी हो गया हो। सहमत। जैसे,—अगर आप इस बात में रजामंद हों, तो यही सही।

रजामंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रज़ामंदी] राजी या सहमत होने का भाव। सहमति। स्वीकृति। जैसे,—जो काम होगा, वह आपकी रजामंदी से होगा।

रजायⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा] १. आज्ञा। हुक्म। उ०—(क) चोरन उर करि शुद्ध अति जाहु सु दियो रजाय।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कोपि दसकंध तब प्रलय पयोद बोल्यो, रावन रजाय धाय आए यूथ जोरि कै।—तुलसी (शब्द०)। २. मरजी। इच्छा।

रजायसⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० राजा अथवा अ० रज़ा+आयसु] आज्ञा। हुक्म। उ०—भयो रजायस मारहु सूआ। सूर न आउ चाँद जहँ ऊआ।—जायसी (शब्द०)।

रजायसुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० राजा वा अ० रज़ा+हिं० आयस] दे० 'रजायस'। उ०—अब तो सूर शरण ताकि आया, सोइ रजायसु दीजै। जेहिं तें रहैं शत्रु प्रण मेरो वहै मतो कछु कीजै।—सूर (शब्द०)। (ग) जबै जमराज रजायसु ते तोहिं लै चलिहैं भट बाँधि गटैया।—तुलसी (शब्द०)।

रजिया[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. अनाज नापने की एक माप जो प्रायः डेढ़ सेर का होता है। २. काठ का वह बरतन जो इस मान का होता है।

रजिया[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ीअह्] १. दूध शरीक बहन। दूध बहन। २. रजिया बेगम, जो गुलामवंश के दूसरे बादशाह अल्तमश की लड़की थी।

रजियाउरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० राजपुर वा राजा+गृह] राजधानी। उ०—बार मोर रजियाउर रता। सो लै चला सुवा परबता। जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३३।

रजिष्ट्रार—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'रजिस्ट्रार'।

रजिस्टर—संज्ञा [अ०] अँगरेजी ढंग की बही या किताब आदि जिसमें किसी मद का आय व्यय अथवा किसी विषय का विस्तृत विवरण, सिलसिलेवार या खानेवार, लिखा जाता हो।

रजिस्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. किसी लिखित प्रतिज्ञापत्र को कानून के अनुसार सरकारी रजिस्टरों में दर्ज कराने का काम।

विशेष—प्रायः सभी देशों में यह नियम है कि बैनामे, दस्तावेज तथा इसी प्रकार के और सब कागज पत्र लिखे जाने के उपरांत सरकारी रजिस्टरों में दर्ज करा लिए जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि उस कागज में लिखी हुई सब बातें बिलकुल पक्की हो जाती हैं; और यदि कोई पक्ष उन बातों के विपरीत कोई काम करता है, तो वह न्यायालय से दंड का भागी होता है। यदि मूल कागज किसी प्रकार खो जाय, तो उसके बदले में आवश्यकता पड़ने पर रजिस्टरीवाली नकल से भी काम चल जाता है।

२. चिट्ठी, पारसल आदि डाक से भेजने के समय डाकखाने के रजिस्टर में उसे दर्ज कराने का काम, जिसके लिये कुछ अलग फीस या दाम देना पड़ता है।

विशेष—इस प्रकार की रजिस्टरी से यह लाभ होता है कि

रजिस्टरी कराई हुई चीज खोने नहीं पाती; और यदि खो जाय, तो डाकखाना उसके लिये जिम्मेदार होता है। यदि पानेवाला किसी समय उस चिट्ठी या पारसल आदि के पाने से इन्कार करे, तो उसके विरुद्ध डाकखाने से रजिस्टरी का प्रमाण भी दिया जा सकता है।

३. ऊपर कही विधि से भेजा हुआ पत्र आदि।

यौ०—रजिस्टरी शुदा = रजिस्टर्ड। पंजीकृत। पंजीबद्ध।

रजिस्टर्ड—वि० [अं०] जिसकी लिखा पढ़ी पक्की हो। रजिस्टर में लिखा हुआ। जिसकी रजिस्ट्री कराई गई हो।

रजिस्ट्रार—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों की कानून के मुताबिक रजिस्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। २. वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्वविद्यालय में मंत्री का काम करता हो। जैसे—हिंदू विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार।

रजिस्ट्रेशन—संज्ञा पुं० [अं०] रजिस्टर में दर्ज होना।

रजीडंट—संज्ञा पुं० [अं० रेज़िडेंट] दे० 'रेजिडेंट'।

रजील—वि० [अ० रज़ील] १. छोटी जाति का। नीच। जैसे, रजील कौम। २. पाजी। कमीना। शोहदा।

रजुⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] दे० 'रज्जु'। उ०—(क) सोभा रजु मंदरु सिंगारू।—मानस, १।२४७। (ख) जसुमति रिस करि करि रजु करषै। – सूर०, १०।३४२।

रजोकुलⓅ—संज्ञा पुं० [सं० राजकुल] राजवंश। राजघराना। उ०—राजति राज रजोकुल में अति भाग सुहागिनी राजदुलारी।—(शब्द०)।

रजोगुण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति का वह स्वभाव जिससे जीवधारियों में भोग विलास तथा दिखावे की रुचि उत्पन्न होती है। रजगुण। राजस।

विशेष—यह सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक है जो चंचल और भोग विलास आदि में प्रवृत्त करानेवाला कहा गया है। विशेष दे० 'गुण'।

रजोगोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

रजोदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का मासिक धर्म। ऋतुस्राव। रजस्वला होना।

रजोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का मासिक धर्म।

रजोबल—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा [को०]।

रजोभक—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी बात से रोकनेवाला। निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला (स्मृति)।

रजोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

रजोरस—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

रजोहर—संज्ञा पुं० [सं०] रजक। धोबी [को०]।

रज्जाकⓅ—संज्ञा पुं० [अ० रज़्ज़ाक] रिज्क या रोजी देनेवाला। ईश्वर। उ०—यह सब आलम तेरा तूँ रज्जाक सभों केरा।—दक्खिनी०, पृ० ५२।

रज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रस्सी। जेवरी। २. घोड़े की लगाम की डोरी। बागडोर। ३. स्त्रियों के सिर की चोटी। वेणी। ४. जैनियों के अनुसार समस्त विश्व की ऊँचाई का १४ वाँ भाग। राजू।

रज्जुकंठ—संज्ञा पुं० [सं० रज्जुकण्ठ] एक प्राचीन आचार्य का नाम।

रज्जुदालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जलचर पक्षी जिसका मांस खाने का शास्त्रकारों ने निषेध किया है।

रज्जुबाल—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक प्रकार का पक्षी। रज्जुदालक।

रज्म—संज्ञा पुं० [अ० रज़्म] संग्राम। रण। जंग। युद्ध [को०]।

रझना—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन या रञ्जन] रँगरेजों का वह पात्र जिसमें वे रँगे हुए कपड़े में का रंग निचोड़ते हैं।

रटंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना + अंत (प्रत्य०)] रटने की क्रिया का भाव। रटाई।

रटंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रटन्ती] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी जो एक पुण्य तिथि समझी जाती है।

विशेष—इस दिन सूर्योदय के समय स्नान एवं तर्पण करने का बहुत माहात्म्य कहा गया है। बृहन्नीलतंत्र और कालिकापुराण आदि के अनुसार इस दिन तांत्रिक लोग भगवती तारा और मुंडमालिनी कालिका का पूजन करते हैं।

रट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना] किसी शब्द का बार बार उच्चारण करने की क्रिया। जैसे,—तुमने तो 'लाओ', 'लाओ' की रट लगा दी है। उ०—(क) राम राम रटु बिकल भुआलू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) केशव वे तुहि तोहि रटैं रट तोहिं इतै उनही की लगी है। – केशव (शब्द०)। (ग) जैसी रट तोहिं लागी माधव की राधे ऐसी, राधे राधे राधे रट माधवै लगी रहै।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचाना। लगना।—लगाना।

रटन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना] रटने की क्रिया या भाव। रट।

रटनⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कहना। बोलना।

रटनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना] रटने की क्रिया। रट। रटन। उ०—चातकु रटनि घटें घटि जाई।—मानस, २।२०४। (ख) तव कटु रटनि करौं नहिं काना। – मानस, ६।२४।

रटना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी शब्द को बार बार कहना। उ०—(क) जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।—केशव (शब्द०)। (ख) असगुन होहिं नगर पैसारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।—तुलसी (शब्द०)। २. जबानी याद करने के लिये बार बार उच्चारण करना। जैसे,—इन शब्दों का अर्थ रट डालो।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

३. बार बार शब्द करना। बजना। उ०—कटि तट रटति चारु किंकिनि रव अनुपम बरनि न जाई।—तुलसी (शब्द०)।

रठ†—वि० [?] रूखा। शुष्क। उ०—मेरी कही मान लीजे आजु मान माँगे दीजे चित हित कीजै तत तीजै रोस रठु है।—रघुनाथ (शब्द०)।

रठकठⓅ—वि० [देश० **रठ** (=शुष्क)+हिं० **काठ**] उकठे काठ की तरह। जड़। शुष्क। उ०—सो सठ रठकठ मति का हीना। साधु सँगति नहिं चीन्हें बिहीना।—संत० दरिया, पृ० ३८।

रड़नाⓅ†—क्रि० अ० [सं० रटन, हिं० **रटना**] चिल्लाना। चीखना। उ०—दोउ ओर उमग्गैं समर सु रड्डैं बढ़ि बढ़ि तंडैं नख खंडैं।—ह० रासो, पृ० १३४।

रढ़नाⓅ—क्रि० स० [हिं० **रट**] १. दे० 'रटना'। उ०—जब पाहन भे बनवाहन से उतरे बनरा जै राम रढ़ैं।—तुलसी (शब्द०)। २. बहकाना। फुसलाना। उ०—पुनि पीवत ही कच टकटोरत झूठहिं जननि रढ़ै। सूर निरखि मुख हँसति जसोदा सो सुख उर न कढ़ै।—सूर०, १०।१७४।

रढ़िया†—संज्ञा स्त्री० [देश० **या राढ़** (देश) ?] एक प्रकार की देशी कपास जो साधारण कोटि की होती है।

रण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लड़ाई। युद्ध। जंग।

यौ०—**रणकर्म** =युद्ध। लड़ाई। संग्राम। **रणकामी** =युद्धेप्सु। युद्ध का इच्छुक। **रणकारी** =युद्ध करनेवाला। **रणक्षिति, रणक्षोणी** = दे० 'रणक्षेत्र'। **रणक्षेत्र**। **रणधीर**। **रणभूमि**। **रणस्थल**।

२. रमण। ३. शब्द। ४. गति। ५. दुंबा नामक भेड़ा जिसकी दुम मोटी और भारी होती है।

रणक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ युद्ध हो। लड़ाई का मैदान।

रणखेतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रणक्षेत्र] दे० 'रणक्षेत्र'।

रणगोचर—वि० [सं०] युद्धसंलग्न। संग्राम में लगा हुआ [को०]।

रणछोड़—संज्ञा पुं० [सं० रण+हिं० **छोड़ना**] श्री कृष्ण का एक नाम।

विशेष—जरासंध की चढ़ाई के समय श्रीकृष्ण रणभूमि त्याग कर द्वारका की ओर चले गए थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

रणतूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का बाजा। मारू बाजा [को०]।

रणत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. झनझनाहट। २. गूँज [को०]।

रणदुंदुभी—संज्ञा पुं० [सं० रण+दुन्दुभि] दे० 'रणतूर्य'।

रणन—क्रि० अ० [सं०] शब्द करना। बजना।

रणपंडित—संज्ञा पुं० [सं० **रणपण्डित**] १. योद्धा। वीर। २. युद्ध में कुशल व्यक्ति [को०]।

रणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. बाजपक्षी। ३. खस।

रणभू, रणभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ युद्ध हो। लड़ाई का मैदान।

रणमंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०**रण+मण्डन**] पृथ्वी। (डिं०)।

रणमद—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध का नशा। रणोन्माद।

रणमत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। २. वह जो युद्ध में मत्त हो।

रणमार्ग कोविद—वि० [सं०] युद्ध की कला में प्रवीण [को०]।

रणमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. लड़ाई का अगला मोरचा। २. सेना का अग्रभाग [को०]।

रणमुष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] कुचिला।

रणरंक—संज्ञा पुं० [सं० रणाङ्क] हाथी के बाहरी दोनों दाँतों के बीच का भाग।

रणरंग—संज्ञा पुं० [सं० रणरङ्ग] १. लड़ाई का उत्साह। उ०—कुंभकरण दुर्मद रणरंगा।—तुलसी (शब्द०)। २. युद्ध। लड़ाई। ३. युद्धक्षेत्र।

रणरंताⓅ—वि० [सं० **रण+रत**] युद्ध में अनुरक्त। युद्ध में लगा हुआ। उ०—मुनिगण प्रतिपालक रिपुकुल घालक बालक ते रणरंता।—केशव (शब्द०)।

रणरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यग्रता। घबराहट। व्याकुलता। २. खेद। पछतावा। रंज। ३. मच्छड़। मशक (को०)।

रणरणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव का एक नाम। २. प्रबल कामना। उत्कंठा। ३. व्यग्रता। घबराहट। ४. प्रेम। प्रीति (को०)।

रणरसिक—वि० [सं०] युद्धप्रेमी [को०]।

रणलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध की देवी जो विजय करानेवाली मानी जाती है। विजयलक्ष्मी।

रणवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का बाजा। रणतूर्य।

रणवासⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रनिवास**] दे० 'रनिवास'। उ०—निठुर वचन मुख तैं जु कहि। तनि रणवास रिसाय।—ह० रासो, पृ० १२०।

रणवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] सैनिक। योद्धा।

रणशिक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध करने की शिक्षा [को०]।

रणशूर—संज्ञा पुं० [सं०] युद्धवीर। योद्धा [को०]।

रणशौंड—वि० [सं० **रणशौण्ड**] युद्धकुशल। संग्राम करने में दक्ष [को०]।

रणसंकुल—संज्ञा पुं० [सं० **रणसङ्कुल**] घमासान लड़ाई। घनघोर संग्राम। भयंकर युद्ध [को०]।

रणसज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० रण+हिं० सज्जा] युद्ध की तैयारी [को०]।

रणसहाय—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई में मददगार, मित्र [को०]।

रणसिंघा—संज्ञा पुं० [सं० **रण**+हिं० **सिंघा**] तुरही। नरसिंघा।

रणसिंहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रणसिंघा'। उ०—रणसिंहों का जो शब्द होता था, सो अति ही सुहावना लगता था।—लल्लूलाल (शब्द०)।

रणस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० **रणस्तम्भ**] वह स्तंभ जो किसी रण में विजय प्राप्त करने के स्मारक में बनवाया जाता है। विजय का स्मारक।

रणस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का मैदान। रणभूमि।

रणस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० रणस्वामिन्] १. शिव। महादेव। २. युद्ध का प्रधान संचालक या सेनापति।

रणहंस—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, भगण और रगण होते हैं। इसको 'मनहंस', 'मानहंस' और 'मानसहंस' भी कहते हैं।

रणांग—संज्ञा पुं० [सं० रणाङ्ग] हथियार। शस्त्रास्त्र [को०]।

रणांगण—संज्ञा पुं० [सं० रणाङ्गण] लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र।

रणांतकृत—संज्ञा पुं० [सं० रणान्तकृत्] विष्णु [को०]।

रणाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] सेनामुख। लड़ाई का अग्रिम मोरचा।

रणाजिर—संज्ञा पुं० [सं०] युद्धक्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

रणि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रैन] रात्रि। रात। (डिं०)।

रणित—संज्ञा पुं० [सं०] झनझनाहट। रणत्कार [को०]।

रणेचर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रणेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. विष्णु।

रणेस्वच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कट। मुर्गा [को०]।

रणोत्कट[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। २. एक दैत्य का नाम।

रणोत्कट[२]—वि० जो रण में संमिलित होने या रण ठानने के लिये उन्मत्त हो रहा हो।

रणोत्साह—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध संबंधी उत्साह। युद्धोत्साह [को०]।

रत[१]—संज्ञा पुं० [पुं०] १. मैथुन। प्रसंग। उ०—प्रिया को है बिंबाधर मृदुल ज्यों पल्लव नयो। लियो धीरें धीरें रहसि रस मैंने रत समें।—लक्ष्मण (शब्द०)। २. योनि। ३. लिंग। ४. प्रेम। प्रीति।

रत[२]—वि० १. प्रेम में पड़ा हुआ। अनुरक्त। आसक्त। २. (कार्य आदि में) लगा हुआ। लिप्त। लीन। तत्पर।

रत(५)[३]—संज्ञा पुं० [सं० रक्त, प्रा० रत्त] रक्त। खून। लहू। (डिं०)।

रत(५)[४]—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु'। उ०—आवी सब रत आँमली त्रिया करइ सिणगार।—ढोला०, दू० ३०३।

रतकील—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। २. पुरुष की जननेंद्रिय। लिंग [को०]।

रतकूजित—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग के समय की जानेवाली अस्फुट ध्वनि। कामुकतापूर्ण कुंथन। संभोग या प्रसंगकालीन सीत्कार। [को०]।

रतगिर—संज्ञा स्त्री० [हिं० रत्ती] गुंजा। घुंघची।

रतगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] पति। खसम। शौहर।

रतगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रतिगृह' [को०]।

रतजगा—संज्ञा पुं० [हिं० रात+जागना] १. किसी उत्सव या विहार आदि के लिये सारी रात जागकर बिता देना। २. वह आनंदोत्सव जो रात भर होता रहे। ३. एक त्योहार जो पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार आदि में भाद्रपद कृष्ण द्वितीया की रात को होता है। इसमें प्रायः स्त्रियाँ रात भर कजली आदि गाया करती हैं।

रतज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। काक [को०]।

रतताली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटनी।

रतताली[२]—संज्ञा पुं० [सं० रततालिन्] विषयी। कामाचारी। लंपट [को०]।

रतन—संज्ञा पुं० [सं० रत्न] दे० 'रत्न'।

रतनजोत—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्न+ज्योति] १. एक प्रकार की मणि। २. एक प्रकार का बहुत छोटा क्षुप जो कश्मीर और कुमाऊँ में अधिकता से होता है।

विशेष—इसके डंठल प्रायः डेढ़ बालिश्त तक लंबे होते हैं, जिनमें काहू के पत्तों के से, प्रायः चार अंगुल तक लंबे और कुछ अनीदार पत्ते और छोटे छोटे फूलों तथा फलों के गुच्छे लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंग की होती है, जिससे लाल रंग निकाला जाता है और तेल आदि रंगे जाते हैं। वैद्यक में यह गरम, रुक्ष, पित्तज, त्रिदोषनाशक तथा जीर्णज्वर, प्लीहा, शोथ आदि को दूर करनेवाली कही गई है। इसके कई भेद होते हैं, जिनमें से एक के डंठल और पत्ते अपेक्षाकृत बड़े होते हैं; और एक छत्ते के आकार की होती है जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। वैद्यक के अनुसार इन सबके गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं; और इनका व्यवहार औषध रूप में होता है।

३. वृहद्दंती। बड़ी दंती। वि० दे० 'दंती'।

रतनपटोरा(५)—संज्ञा पुं० [हिं० रतन+पटोरा] रत्न जड़े हुए वस्त्र। जड़ाऊ वस्त्र। उ०—रतन पटोरा डारि पाँवड़ा सन्मुख जाऊँ हो।—धरम०, पृ० ५४।

रतनपुरुष—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो दिल्ली, आगरा, बुंदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम में आती हैं।

रतनाकर(५)—संज्ञा पुं० [सं० रत्नाकर] १. दे० 'रत्नाकर'। २. दे० 'रतनजोत'।

रतनागर(५)—संज्ञा पुं० [सं० रत्नाकर] समुद्र। उ०—जनमि जगत जसु प्रगटिहु मातु पिताकर। तीयरतन तुम उपजिहु भव रतनागर।—तुलसी (शब्द०)।

रतनगरभ—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्नगर्भा] पृथ्वी। भूमि। (डिं०)।

रतनार—वि० [हिं०] दे० 'रतनारा'।

रतनारा—वि० [सं० रक्त, प्रा० रत्त, रत+नाल (= पीला सुरमा) अथवा सं० रत्न (= मानिक) + हिं० आर (प्रत्य०)] कुछ लाल। सुर्खी लिए हुए। उ०—दुलरी कंठ नयन रतनारे मो मन चितै हरौरी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर आँखों के लिये ही होता है ।

रतनाराच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रतनारीच' [को०] ।

रतनारी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० रतनार + ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का धान । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर ढेला जीरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

रतनारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्त (= रत + नार)] लाली । लालिमा । सुर्खी ।

रतनारी[3]—वि० दे० 'रतनारा' ।

रतनारीच—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव । मदन । २. कुत्ता । श्वान । ३. आवारा । लंपट । बदचलन । ४. रतकूजित । संभोगानंदजन्य सीत्कार (को०) ।

रतनालिया—वि० [हिं० रतनारा + इया (प्रत्य०)] दे० 'रतनारा' । उ०—आँखड़िया रतनालिया चेला करैं प्रताल । मैं तोहिं बूझौं माछली तूं क्यों बंधी जाल ।—कबीर (शब्द०) ।

रतनावली—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्नावली] दे० 'रत्नावली' ।

रतनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी । ममोला ।

रतबंध—संज्ञा पुं० [सं० रतबन्ध] दे० 'रतिबंध' ।

रतमानस—वि० [सं०] खुशदिल । प्रसन्नचित्त [को०] ।

रतमुहाँ[1]—वि० [हिं० रत (= लाल) + मुँह] [वि० स्त्री० रतमुहीं] लाल मुँहवाला । उ०—रायमुनी तुम्ह औ रतमुहीं । अलिमुख लाग भई फुल जुही ।—जायसी (शब्द०) ।

रतमुहाँ[2]—संज्ञा पुं० बंदर ।

रतवाँस—संज्ञा पुं० [हिं० रात + वाँस (प्रत्य०)] हाथियों और घोड़ों का वह चारा जो उन्हें रात के समय दिया जाता है ।

रतवा—संज्ञा पुं० [देश०] खर नाम की घास जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है ।

रतवाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहले दिन कोल्हू चलने पर उसका रस लोगों में बाँटने की प्रथा ।

रतवाह—संज्ञा पुं० [हिं० रात + वाह ?] रात की लड़ाई । रात्रि को होनेवाला युद्ध ।

रतव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

रतशायी—संज्ञा पुं० [सं० रतशायिन्] कुत्ता ।

रतहिंडक—संज्ञा पुं० [सं० रतहिण्डक] १. वह जो स्त्रियों को चुराता हो । २. लंपट । आवारा । बदचलन ।

रतांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० रताञ्जली] रक्तचंदन । लाल चंदन ।

रतांदुक—संज्ञा पुं० [सं० रतान्दुक] कुत्ता ।

रता—संज्ञा स्त्री० [देश०] भुकड़ी, जो अनेक वस्तुओं पर प्रायः बरसात के दिनों में या सीड़ की जगह में लग जाती है ।

रताना[1]—क्रि० अ० [सं० रत + हिं० आना (प्रत्य०)] रत होना । उ०—कीधौ श्याम हटकि हैं राख्यौ कीधौं आपु रतान्यौ ।—सूर (शब्द०) ।

रताना[2]—क्रि० स० किसी को अपनी ओर रत करना ।

रतामर्द[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता [को०] ।

रतायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।

रतार्थी—वि० [सं० रतार्थिन्] [वि० स्त्री० रतार्थिनी] संभोग चाहनेवाला । कामुक [को०] ।

रतालू—संज्ञा पुं० [सं० रक्तालु] १. पिंडालू नामक कंद जिसका व्यवहार तरकारी बनाने में होता है । २. वाराहीकंद । गेंठी ।

रति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामदेव की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की कन्या मानी जाती है । विशेष दे० 'कामदेव' । उ०—राधा हरि केरी प्रीति सब तें अधिक जानि रति रतिनाथ हूँ देखो रति थोरी सी ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—कहते हैं, दक्ष ने अपने शरीर के पसीने से इसे उत्पन्न करके कामदेव को अर्पित किया था । यह संसार की सबसे अधिक रूपवती, सौंदर्य की साक्षात् मूर्ति मानी जाती है । इसे देखकर सभी देवताओं के मन में अनुराग उत्पन्न हुआ था; इसलिये इनका नाम रति पड़ा था । जिस समय शिव जी ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया था; उस समय इसने बहुत अधिक विलाप करके शिव जी से यह वरदान प्राप्त किया था कि अब से कामदेव बिना शरीर के या अनंग होकर सदा बना रहेगा । यह भी माना जाता है कि यह सदा कामदेव के साथ रहती है ।

२. कामक्रीड़ा । संभोग । मैथुन । उ०—(क) रति जय लिखिबे की लेखनी सुरेख किधौं मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं ।—केशव (शब्द०) । (ख) लाज गरब आरस उमग भरे नैन मुसकात । राति रमी रति देत कहि औरै प्रभा प्रभात ।—बिहारी (शब्द०) । ३. प्रीति । प्रेम । अनुराग । मुहब्बत ।

क्रि० प्र०—करना ।—जोड़ना ।—लगाना ।—होना ।

४. शोभा । छबि । उ०—चोटी में लपेटी एक मणि ही सुकाढ़ि दीन्ही दीजो राम हाथ जो बढ़ैया तेरी रति को ।—हृदयराम (शब्द०) । ५. सौभाग्य । खुशकिस्मती । ६. साहित्य में शृंगार रस का स्थायी भाव । नायक नायिका की परस्पर प्रीति या प्रेम । ७. वह कर्म जिसका उदय होने से किसी रमणीक वस्तु से मन प्रसन्न होता है । (जैन) । ८. गुप्त भेद । रहस्य । ९. चंद्रमा की छठी कला (को०) ।

रति[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रत्ती' ।

रति[3]—क्रि० वि० दे० 'रती' । उ०—कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न । कहा करौ जो जाहिं ये लगैं लगौहैं नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

रति[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रात] रात । रात्रि । रैन । उ०—सही रँगीले रति जगे जगी पगी सुख चैन । अलसौहैं सौहैं किए कहैं हँसौहैं नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—केवल समस्त पदों में ही इस शब्द का इस रूप में व्यवहार होता है । जैसे, रतिवाह ।

रतिकंत—संज्ञा पुं० [सं० रतिकान्त] दे० 'रतिकांत' । उ०—नव

रसाल के पौन लगि डोलत डारन मौर। जनु बसंत रतिकंत पर झुकि झुकि ढारत चौर।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

रतिक(पु)†—क्रि० वि० [हिं० रत्ती+क (प्रत्य०)] रत्ती भर। बहुत थोड़ा। जरा सा। उ०—नेरे चलि आय छलि मेरे मुख पंकज को परसै निसंक नहिं संक करै रतिको।—दीनदयाल (शब्द०)।

रतिकर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामी। २. एक प्रकार की समाधि।

रतिकर²—वि० १. जिससे आनंद की वृद्धि हो। २. जिससे प्रेम की वृद्धि हो।

रतिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० रतिकर्मन्] संभोग। मैथुन [को०]।

रतिकलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैथुन। संभोग। विलास। २. रतिकालीन मान मनौव्वल।

रतिकांत—संज्ञा पुं० [सं० रतिकान्त] कामदेव।

रतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से अंतिम श्रुति। (संगीत)।

रतिकुहर—संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

रतिकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोगविलास। संभोग। रतिक्रीड़ा।

रतिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैथुन। संभोग।

रतिक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० रतिक्रीडा] दे० 'रतिकेलि'।

रतिखेद—संज्ञा पुं० [सं०] संभोगजनित अवसाद या क्लांति [को०]।

रतिगर†—क्रि० वि० [हिं० रात+गर ?] प्रातःकाल। बड़े तड़के। सबेरे।

रतिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. योनि। भग। २. वेश्यालय। चकलाखाना (को०)। ३. रतिभवन। केलिगृह (को०)।

रतिज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो रतिक्रिया में चतुर हो। २. वह जो किसी स्त्री के मन में अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करने में निपुण हो।

रतितस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्त्रियों को अपने साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त करता हो।

रतिताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद।

रतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन। उ०—रघुनाथ ऐसो भेस धरे प्रानप्यारो आयो प्रात कहूँ बसि राति दीन्हे रतिदान को।—रघुनाथ (शब्द०)।

रतिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. एक चंद्रवंशीय राजा का नाम जो सांकृति के पुत्र थे। ३. कुत्ता। श्वान।

रतिधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूसरे अस्त्रों का नाश होता हो।

रतिनाग—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध।

रतिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—(क) न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहे दुरावति है सजनी रतिनायक सायक एही कहे हैं।—मन्नालाल (शब्द०)।

रतिनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रतिनाथ] कामदेव।

रतिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक सगण (।।।, ।।।, ।।ऽ) होता है। जैसे,—न निसि घर तजि घरी। कबहुँ जग कुल नारी। धरति पद पर धरा। सुमतियुत रतिवरा।

रतिपाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रतिपाशक'।

रतिपाशक—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध जिसे रतिनाग भी कहते हैं।

रतिप्रिय¹—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिप्रिय²—वि० जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो।

रतिप्रिया¹—वि० [सं०] (स्त्री) जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो।

रतिप्रिया²—संज्ञा स्त्री० १. तांत्रिकों के अनुसार शक्ति की एक मूर्ति का नाम। २. दाक्षायिणी का एक नाम।

रतिप्रीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका रति में प्रेम हो। मैथुन से प्रसन्न होनेवाली स्त्री। कामिनी।

रतिफल—वि० [सं०] जिससे रति में आनंद मिले। जिससे रति की जा सके। कामोत्तेजक। (औषधि आदि)।

रतिबंध—संज्ञा पुं० [सं० रतिबन्ध] मैथुन या संभोग करने का ढंग या प्रकार, जिसे आसन भी कहते हैं।

रतिबाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रात्रि+वाह] रात की लड़ाई रात्रियुद्ध। उ०—त्रर बारह रघुवंस राम रतिबाह उचारिय।—पृ० रा०, ६६।७८३।

रतिबंधु—संज्ञा पुं० [सं० रतिबन्धु] १. प्रेमी। २. पति [को०]।

रतिभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. योनि। भग। २. वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलकर रतिक्रीड़ा करते हों। ३. वेश्यागार (को०)।

रतिभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. नायक नायिका का परस्पर प्रेम। दांपत्य भाव। (यह श्रृंगार रस का स्थायी भाव है)। २. प्रीति। प्रेम। मुहब्बत। स्नेह।

रतिभौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रतिभवन] १. रतिक्रीड़ा करने का स्थान। उ०—सपनहू न लख्यो निसि में रतिभौन ते गौन कहूँ निज पी को।—पद्माकर (शब्द०)। २. दे० 'रतिभवन'।

रतिमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० रतिमन्दिर] १. योनि। भग। २. मैथुन गृह। वेश्यालय (को०)। ३. दे० 'रतिभवन'। उ०—रतिमंदिर के मान पुंजनि में प्रतिबिंबनि आपने हेरो करै।—मन्नालाल (शब्द०)।

रतिमदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

रतिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध या आसन।

रतियाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० रति (=प्रीति)+आना (प्रत्य०)] प्रीति करना। रत होना। प्रेम करना। अनुरक्त होना।

उ०—राम नाम अनुराग हीं जो रतियातो। स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतियातो।—तुलसी (शब्द०)।

रतिरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. मैथुन। उ०—करै और सों रतिरमण इक धन ही के हेत। गणिका ताहि लखात नाहिं पै कवि सुमति निकेत।—पद्माकर (शब्द०)।

रतिरस—संज्ञा पुं० [सं०] संभोगजन्य आनंद। मैथुन का आनंद विदग्धानंद। [को०]।

रतिराइⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रतिराज, प्रा० रति+राइ] कामदेव।

रतिराज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिलंपट—वि० [सं० रतिलम्पट] कामुक। कामी [को०]।

रतिलक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। प्रसंग [को०]।

रतिलीला—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

रतिलोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

रतिवंतⓅ—वि० [सं० रति+हिं० वंत (प्रत्य०)] सुंदर। खूबसूरत। उ०—कोदंडग्राही सुभट को, को कुमार रतिवंत। को कहिए शशि ते दुखी कोमल मन को संत।—केशव (शब्द०)।

रतिवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. वह भेंट जो किसी स्त्री को उससे रति करने के अभिप्राय से दी जाय।

रतिवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिससे कामशक्ति बढ़ती हो। २. वैद्यक में एक प्रकार का मोदक जो गोखरू, असगंध, शतमूली, तालमूली और जेठी मधु आदि के योग से बनता है और पुष्टिकारक माना जाता है।

रतिवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेम। प्रीति। मुहब्बत।

रतिवाहⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० रात्रि, हिं० रात+वाह] रात्रियुद्ध। रात की लड़ाई। रात्रिसंग्राम। उ०—म्हें गामी गुज्जर गल्हियाँ हंकाई हंसाइयाँ। रतिवाह देहु सुरतान दल रखि राजन लगि पाइयाँ।—पृ० रा०, ६६।४८७।

रतिवाही—संज्ञा पुं० [सं० रतिवाहिन्] एक प्रकार का राग जिसका गान समय रात को १६ दंड से २० दंड तक है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

रतिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामशक्ति। संभोग की क्षमता [को०]।

रतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रति की क्रियाओं का विवेचन हो। कोकशास्त्र। कामशास्त्र।

रतिशूर—संज्ञा पुं० [सं०] संभोगक्षम व्यक्ति। संभोग में अत्यधिक समर्थ व्यक्ति [को०]।

रतिसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। प्रसंग [को०]।

रतिसंहित—वि० [सं०] प्रणययुक्त। प्रीति युक्त। प्रणय की अधिकता से युक्त [को०]।

रतिसत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृक्का। असबरग।

रतिसमर—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन।

रतिसर्वस्व—संज्ञा पुं० [सं०] रतिजन्य उत्कृष्टतम आनंद।

रतिसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की मूत्रेंद्रिय। लिंग। शिश्न।

रतिसुंदर—संज्ञा पुं० [सं० रतिसुन्दर] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध।

रतीⓅ†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रति] १. कामदेव की पत्नी। रति। उ०—बात की बानी माँह भाव सो भवानी माँह केशोदास रति में रती की ज्योति जानबी।—केशव (शब्द०)। २. सौंदर्य। शोभा। उ०—कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरण की प्रगट पतिव्रत की सौगुनी रती भई।—पद्माकर (शब्द०)। ३. मैथुन। संभोग। उ०—दर्भ धरे तनया कर साथ विदर्भ पती। अर्पन तू करिहै जबहीं तब होय रती।—गोपाल। ४. दे० 'रति'। ५. तेज। कांति। उ०—बेद लोक सब साखी काहू की रती न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।—तुलसी (शब्द०)।

रतीⓅ†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रत्ती] १. घुँघची। गुंजा। २. ढाई जौ या आठ चावल का मान। वि० दे० 'रत्ती।

रती[3]—वि० थोड़ा। कम। अल्प।

रती[4]—क्रि० वि० जरा सा। रत्ती भर। किंचित्। उ०—नाम प्रताप हंस पर छाजै। हंसहिं भार रती नहिं लागै।—कबीर (शब्द०)।

रतीकⓅ—क्रि० वि० [हिं० रतिक] जरा सा भी। रत्ती भर भी। तिल भर भी।

रतीश—संज्ञा पुं० [सं०] रति के देवता। कामदेव [को०]।

रतुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो बरसात के दिनों या ठंढी जगहों में अधिकता से होती है।

रतू[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्युलोक की नदी। दिव्य नदी। २. सत्य कथन। तथ्यपूर्ण उक्ति [को०]।

रतू[2]—वि० [सं०] सत्यवक्ता। ऋतवक्ता [को०]।

रतूनी—संज्ञा पुं० [देश०] पेड़ी की ईख या गन्ना, जो एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़ से निकलता है।

रतोपलⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० रक्तोत्पल] लाल कमल। उ०—कहि कंकण नेक भए दृग शीतल संपत देख रतोपल को।—हृदयराम (शब्द०)।

रतोपल[2]—संज्ञा पुं० [सं० रक्तोपल] १. लाल सुरमा। २. लाल खड़िया। ३. गेरू। गैरिक।

रतौंधी—संज्ञा स्त्री० [सं० रात्र्यन्धता ? वा हिं० रात+औंधी (= अंधता)] एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को सध्या होने के उपरांत, अर्थात् रात के समय, बिलकुल दिखाई नहीं देता। उ०—पौरिए रतौंधी आवै सखो सबै सोय रहीं जागत न कोऊ परदेस मेरो बर है।—प्रतापनारायण (शब्द०)।

रतौंहाँⓅ—वि० [हिं० रत+औंहाँ (प्रत्य०)] रक्तिम। लालिमायुक्त। रागयुक्त। जैसे, रतौंहें नैन।

रत्तⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रक्त, प्रा० रत्त] दे० 'रक्त'।

रत्तक—संज्ञा पुं० [सं० रक्तक, प्रा० रत्त] ग्वालियर में होनेवाला एक प्रकार का पत्थर जो कुछ लाल रंग का होता है।

रत्ती[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तिका,प्रा० रत्तिआ] १. एक प्रकार का बहुत छोटा मान, जिसका व्यवहार सोने या ओषधियों आदि के तौलने में होता है। यह आठ चावल या ढाई जौ के बराबर होता है और प्रायः घुँघची के दाने से तौला जाता है। यह एक माशे का आठवाँ भाग होता है। २. वह बाट जो तौल में इतने मान का हो। ३. घुँघची का दाना। गुंजा।

रत्ती(पु)[२]—वि० बहुत थोड़ा। किंचित्।

मुहा०—**रत्तीभर**=बहुत थोड़ा सा। जरा सा।

रत्ती(पु)[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० रति] शोभा। छवि। उ०—बत्ती बटि कसी पाग कत्ती सिर टेढ़ी लसै बढ़ी मुख रत्ती जैसे पत्ती जदुपति के।—गोपाल (शब्द०)।

रत्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] लकड़ी या बाँस का वह ढाँचा या संदूक आदि जिसमें शव को रखकर अंतिम संस्कार के लिये ले जाते हैं। टिकठी। विमान। अरथी।

रत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ विशिष्ट छोटे, चमकीले, बहुमूल्य पदार्थ, विशेषतः खनिज पदार्थ या पत्थर, जिनका व्यवहार आभूषणों आदि में जड़ने के लिये होता है। मणि। जवाहिर। नगीना। जैसे,—हीरा, लाल, पन्ना, मानिक, मोती आदि।

विशेष—हमारे यहाँ हीरा, पन्ना, पुखराज, मानिक, नीलम, गोमेद, लहसुनियाँ, मोती, और मूँगा ये नौरत्न माने गए हैं। कहीं इनकी संख्या पाँच और कहीं चौदह भी कहीं गई है। जैसे, पंचरत्न, नवरत्न, समुद्रमंथनोद्भूत चतुर्दश रत्न। इसके अतिरिक्त पुराणों आदि में भी अनेक रत्न गिनाए गए है, जिनमें से कुछ वास्तविक और कुछ कल्पित हैं। जैसे,—गंधशस्य, सूर्यकांत, चंद्रकात, स्फटिक, ज्योतिरस, राजपट्ट, शंख, सीसा, भुजंग, उत्पल आदि। रत्न धारण करना हमारे यहाँ बहुत पुण्यजनक कहा गया है। ग्रहों आदि का उत्पात होने पर रत्न पहनने और दान करने का विधान है। वैद्यक में इन रत्नों से भी भस्म बनाई जाती है, और अलग अलग रत्नों की भस्म का अलग अलग गुण माना जाता है।

२. माणिक्य। मानिक। लाल।

विशेष—कविता में कभी कभी रत्न शब्द से मानिक का ही ग्रहण होता है।

३. वह जो अपने वर्ग या जाति में सबसे उत्तम हो। सर्वश्रेष्ठ। जैसे, नररत्न, ग्रंथरत्न आदि। ४. जैनों के अनुसार सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। ५. पानी। जल (को०)। ६. अयस्कांत चुंबक (को०)।

रत्नकंदल—संज्ञा पुं० [सं० रत्नकन्दल] प्रवाल। मूँगा।

रत्नकर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।

रत्नकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का कान में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना।

रत्नकार—संज्ञा पुं० [सं० रत्न] जौहरी। रत्नों का पारखी।

रत्नकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

रत्नकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० रत्नकुम्भ] रत्नों से निर्मित घड़ा [को०]।

रत्नकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पर्वत का नाम। २. एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बुद्ध का नाम। २. एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नखचित—वि० [सं०] जो रत्ननिर्मित हो। रत्नजटित। जिसमें रत्न जड़े हों [को०]।

रत्नगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर का एक नाम। २. समुद्र। ३. एक बुद्ध का नाम।

रत्नगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। भूमि। वसुंधरा।

रत्नगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिहार के एक पहाड़ का प्राचीन नाम, जिस पर मगध देश की पुरानी राजधानी राजगृह बसी हुई थी। २. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो अभ्रक, सोने, ताँबे, गंधक और लोहे आदि से तैयार किया जाता है और जो ज्वर के लिये बहुत उपकारी माना गया है।

रत्नगृह—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध स्तूप की वह बीच की कोठरी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

रत्नचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० रत्नचंद्र] १. एक देवता जो रत्नों के अधिष्ठाता माने जाते हैं। २. एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नचूड़—संज्ञा पुं० [सं० रत्नचूड] एक बोधिसत्व।

रत्नच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] रत्नों की चमक दमक [को०]।

रत्नतल्प—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नखचित शय्या। वह पलंग जिसमें रत्न जड़े हों [को०]।

रत्नत्रय—संज्ञा सं० [सं०] १. जैनों के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र, इन तीनों का समूह जो मनुष्य को उत्कृष्ट बनाने का साधन समझा जाता है। २. बौद्धों के अनुसार बुद्ध, धर्म तथा संघ, (को०)।

रत्नदर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ाऊ आईना [को०]।

रत्नदामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रत्नों की माला। २. गर्गसंहिता के अनुसार सीता की माता और राजा जनक की स्त्री का नाम।

रत्नदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक कल्पित रत्न का नाम। कहते हैं, पाताल में इसी के प्रकाश से उजाला रहता है। २. रत्न का दीपक।

रत्नद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।

रत्नद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक द्वीप का नाम। २. रत्नों का द्वीप। प्रवाल द्वीप।

रत्नधर—संज्ञा पुं० [सं०] धनवान्। अमीर।

रत्नधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

रत्नधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

रत्नधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रत्नों की बनाई हुई वह गाय जो दान की जाती है।

विशेष—इस दान की गणना महादानों में की जाती है और इस प्रकार का दान करनेवाला गोलोक का अधिकारी समझा जाता है।

रत्नध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रत्ननख—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृपाण या छुरी या कटार जिसकी मूठ में रत्न जड़े हों [को०]।

रत्ननाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रत्ननायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खंजन पक्षी। ममोला। २. समुद्र। ३. मेरु पर्वत। ४. विष्णु।

रत्ननिधि—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य। लाल [को०]।

रत्नपंचक—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्नपञ्चक] पाँच प्रकार के रत्नों का समुच्चय जिसमें सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त और मूँगा आते हैं।

रत्नपरीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रत्नों को परखना जानता हो। जौहरी।

रत्नपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत का एक नाम।

रत्नपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नपारखी⑤—संज्ञा पुं० [हिं० रत्न + पारखी] रत्नों को पहचाननेवाला। जौहरी।

रत्नपारायण—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नों से परिपूरित स्थान। रत्नों की खान [को०]।

रत्नपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

रत्नप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा रत्न जो दीपक के समान प्रकाशमान हो।

रत्नप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवता।

रत्नप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. जैनों के अनुसार एक नरक का नाम।

रत्नबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रत्नमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा बलि की कन्या।

विशेष—वामन भगवान् को देखकर इसके मन में यह कामना हुई थी कि ऐसे बालक को मैं दूध पिलाऊँ। इसीलिये यह कृष्णावतार में पूतना हुई थी।

२. मणियों की माला या हार।

रत्नमाली—संज्ञा पुं० [सं० रत्नमालिन्] पुराणानुसार एक प्रकार के देवता।

रत्नमुकट—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र। हीरा [को०]।

रत्नराज—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०]।

रत्नराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हीरा जवाहरातों का ढेर। २. सागर। समुद्र [को०]।

रत्नवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। भूमि। २. राजा वीरकेतु की कन्या का नाम।

रत्नवर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।

रत्नवर्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्पक विमान [को०]।

रत्नशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रत्नों के रखने का स्थान। २. जड़ाऊ महल, जिसकी दीवारों में रत्न जड़े हों।

रत्नषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म ऋतु की एक छठ जिस दिन व्रत रहते हैं [को०]।

रत्नसंभव—संज्ञा पुं० [सं० रत्नसम्भव] १. एक ध्यानी बुद्ध का नाम। २. एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नसागर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का वह भाग जहाँ से प्रायः रत्न निकलते हों।

रत्नसानु—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत का एक नाम।

रत्नसू, रत्नसूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

रत्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

रत्नांक—संज्ञा पुं० [सं० रत्नाङ्क] विष्णु [को०]।

रत्नांग—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नकंदल। प्रवाल [को०]।

रत्नाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. मणियों के निकलने का स्थान। खान। ३. रत्नों का समूह। उ०—रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाशकर अंबर विलास कुबलय हित मानिए। —केशव (शब्द०)। ४. वाल्मीकि मुनि का पहले का नाम। ५. भगवान् बुद्ध का एक नाम। ६. एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नागिरि—संज्ञा पुं० [सं० रत्नगिरि] दे० 'रत्नगिरि'।

रत्नाचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रत्नों का वह ढेर जो पहाड़ के रूप में लगाकर दान किया जाता है और जिसका दान करने से दाता स्वर्ग का अधिकारी समझा जाता है।

रत्नाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

रत्नाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

रत्नाभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वह आभूषण या गहना जिसमें रत्न जड़े हों। जड़ाऊ गहना।

रत्नावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मणियों की श्रेणी या माला। २. एक रागिनी जो शास्त्रों में दीपक राग की पुत्रवधू कही गई है। ३. एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत अर्थ निकलने के अतिरिक्त ठीक क्रम से कुछ और वस्तुसमूह के नाम भी निकलते हैं। जैसे,—आदित सोम कहो कबहूँ, कबहूँ कहौ मंगल औ बुध होत। ४. एक प्रकार का हार। मोतियों का हार। ५. श्रीहर्ष रचित एक नाटिका।

रत्नोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक देवी का नाम।

रत्नोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक देवी का नाम।

रत्यंग—संज्ञा पुं० [सं० रत्यङ्ग] योनि । भग [को०] ।

रथंकर—संज्ञा पुं० [सं० रथङ्कर] १. एक कल्प का नाम । २. एक प्रकार का साम । ३. एक प्रकार की अग्नि ।

रथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल की एक प्रकार की सवारी जिसमें चार या दो पहिए हुआ करते थे और जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा, विहार आदि के लिये हुआ करता था । शतांग । स्यंदन । गाड़ी । बहल । २. शरीर, जो आत्मा की सवारी माना जाता है । ३. चरण । पैर । ४. तिनिस का पेड़ । ५. विहार करने का स्थान । क्रीड़ास्थल । ६. शतरंज का वह मोहरा जिसे आजकल ऊँट कहते हैं । उ०—राजा कील देइ शह माँगा । शह देइ चाह भरे रथ खाँगा ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—जब चतुरंग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर ऊँट हो गया ।

७. बेत । वेतस् (को०) । ८. आनंद (को०) । ९. हिस्सा । भाग । अंग (को०) । १०. वीर । रथी (को०) ।

रथकट्या, रथकड्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रथों का जमादार [को०] ।

रथकल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का वह अधिकारी जिसकी अधीनता में राजाओं के रथ आदि रहते थे । २. प्राचीन काल के धनवानों का वह प्रधान अधिकारी जो उनके घर आदि सजाता है और उनके पहनने के वस्त्र आदि रखता है ।

रथकार, रथकारक—संज्ञा पुं० [सं०] रथ बनानेवाला । खाती । बढ़ई । २. एक जाति जिसकी उत्पत्ति माहिष्य (क्षत्री से वैश्या से उत्पन्न) पिता और करिणी (वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न) माता से मानी गई है । इसमें जनेऊ आदि संस्कार होते हैं ।

रथकुटुंब——संज्ञा पुं० [सं० रथकुटुम्ब] दे० 'रथकुटुंबिक' ।

रथकुटुंबिक—संज्ञा पुं० [सं० रथकुटुम्बिक] वह जो रथ चलाता हो । रथवान । सारथी ।

रथकुटुंबी—संज्ञा पुं० [सं० रथकुटुम्बिन्] दे० 'रथकुटुंबिक' ।

रथक्रांत—संज्ञा पुं० [सं० रथक्रान्त] संगीत में एक प्रकार का ताल ।

रथक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं० रथक्रान्ता] एक प्राचीन जनपद का नाम ।

रथगर्भक—संज्ञा पुं० [सं०] रथ के आकार की वह सवारी जिसे मनुष्य कंधे पर उठाकर ले चलते हों । जैसे, पालकी, नालकी आदि ।

रथगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ के किनारे लगा हुआ लकड़ी या लोहे का वह ढाँचा जो शस्त्र आदि से रक्षा के लिये होता था ।

रथचरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवाक । चकवा । २. रथ का चक्का (को०) । ३. विष्णु का चक्र । सुदर्शन चक्र (को०) । ४. लाल कलहंस (को०) । ६. रथ द्वारा यात्रा करना ।

रथचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ से यात्रा करना । रथ से यात्रा करने का अभ्यास करना [को०] ।

रथचर्यासंचार—संज्ञा पुं० [सं० रथचर्यासञ्चार] रथों के चलने की पक्की सड़क ।

विशेष—यह खजूर की लकड़ी या पत्थर की बनाई जाती थी । चंद्रगुप्त के समय में इसका विशेष रूप से प्रचार था ।

रथचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

रथज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ । काक [को०] ।

रथद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिनिश का पेड़ । २. बेंत ।

रथनीड़—संज्ञा पुं० [सं० रथनीड] रथ के भीतर बैठने की जगह [को०] ।

रथपति—संज्ञा पुं० [सं०] रथ का नायक । रथी ।

रथपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिनिश का पेड़ । २. बेंत ।

रथपाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रथचरण' ।

रथपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० रथपुङ्गव] उत्कृष्ट योद्धा [को०] ।

रथप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम ।

रथबंध—संज्ञा पुं० [सं० रथबन्ध] १. रथ के उपकरण । घोड़े का साज सामान । २. वीरों का संघटन [को०] ।

रथमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] रथयात्रा नामक उत्सव । विशेष दे० 'रथयात्रा' ।

रथमुख—संज्ञा पुं० [सं०] रथ का अग्रभाग वा अगला हिस्सा [को०] ।

रथयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक पर्व या उत्सव जो आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को होता है ।

विशेष—इसमें लोग प्रायः जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राजी की मूर्तियाँ रथ पर चढ़ाकर निकालते हैं । यह उत्सव बहुत प्राचीन काल से होता है; और पुरी में बहुत धूमधाम से होता है । बौद्ध और जैन लोगों में भी रथयात्रा का उत्सव होता है, जिसमें जिन या बुद्ध की सवारी निकाली जाती है ।

रथयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] रथ पर सवार होकर किया जानेवाला संग्राम ।

रथयोजक—संज्ञा पुं० [सं०] रथ जोतने या सज्जित करनेवाला व्यक्ति । सारथि [को०] ।

रथवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० रथवर्त्मन्] राजपथ । मुख्य सड़क । राजमार्ग [को०] ।

रथवान्—संज्ञा पुं० [सं०] रथ हाँकनेवाला । सारथी ।

रथवाह—संज्ञा पुं० [सं० रथवाह] १. रथ चलानेवाला । सारथी । २. घोड़ा । उ०—राज तुरगम बरनौ काहा । आने छोरि इंद्र रथवाहा ।—जायसी (शब्द०) ।

रथवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] रथ में का वह चौकोर ऊपरी ढाँचा जो पहियों के ऊपर जड़ा होता है ।

रथवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रथवर्त्म' ।

रथशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रथ रखे जाते हों । गाड़ीखाना । अस्तबल

रथशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] रथ हाँकने की कला [को०] ।

रथशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रथशास्त्र' ।

रथसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी।

विशेष—कहते हैं, सूर्य इसी दिन रथ पर सवार होते हैं; इसी लिये इसका यह नाम पड़ा है।

रथसूत—संज्ञा पुं० [सं०] रथ हाँकनेवाला। सारथी।

रथांग—संज्ञा पुं० [सं० रथाङ्ग] १. रथ का पहिया। उ०—पारथ की कानि गनि भीषम महारथ कीं, मानि जब बिरथ रथांग धरि धाए हैं।—रत्नाकर, भाग १, पृ०। २. चक्र नामक अस्त्र। ३. चक्रवाक पक्षी। चकवा। उ०—पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर।—मानस, २।८३।

रथांगधर—संज्ञा पुं० [सं० रथाङ्गधर] १. श्रीकृष्ण। २. विष्णु।

रथांगपाणि—संज्ञा पुं० [सं० रथाङ्गपाणि] विष्णु।

रथांगवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० रथाङ्गवर्तिन्] चक्रवर्ती सम्राट्।

रथांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० रथाङ्गी] ऋद्धि नामक ओषधि।

रथाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रथ का पहिया या धुरा। २. प्राचीन काल का एक परिमाण जो एक सौ चार अंगुल का होता था। ३. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

रथाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा योद्धा हो।

रथाभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेंत।

रथावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम।

रथिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो रथ पर सवार हो। रथी। २. तिनिश का पेड़।

रथी[1]—संज्ञा पुं० [सं० रथिन्] १. वह जो रथ पर चढ़कर चलता हो। २. रथ पर चढ़कर लड़नेवाला। रथवाला योद्धा।

यौ०—महारथी। अतिरथी।

३. एक हजार योद्धाओं से अकेला युद्ध करनेवाला योद्धा। उ०—पूरण प्रकृति सात धीर हैं विख्यात रथी महारथी अतिरथी रणसाजि के।—रघुराज (शब्द०)। ४. क्षत्रिय जाति का मनुष्य (को०)। ५. सारथी (को०)।

रथी[2]—वि० रथ पर सवार। रथ पर चढ़ा हुआ। उ०—रावन रथी विरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।—तुलसी (शब्द०)।

रथी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] वह ढाँचा जिसपर मुरदों को रखकर अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाते हैं। अरथी। टिकठी। ताबूत।

रथोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] रथयात्रा नामक उत्सव।

रथोद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्यारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसका पहला, तीसरा, सातवाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ वर्ण गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में र, न, र, ल, ग (ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।ऽ) होता है। उ०—रानि ! री लगत राम को पता। हाय ना कहहि नाहि आरता। धन्य जो लहत भाग शुद्धता। धूरि हू अति शुची रथोद्धता।—छंदः-प्रभाकर (शब्द०)।

रथोरग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

रथोष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

रथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घोड़ा जो रथ में जोता जाता हो। २. वह जो रथ चलाता हो। ३. चक्र। चाका। पहिया।

रथ्या—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] १. रथों का समूह। २. रथ का मार्ग या लकीर। ३. रास्ता। सड़क। ४. चौक। आँगन। ५. नाली। नाबदान। उ०—कहाँ देवसरि कलुष बिनासी। कहँ रथ्या जल अति मल रासी।—द्विज (शब्द०)। ६. सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

रद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दंत। दाँत। उ०—अधर अरुन रद सुंदर नासा।—मानस, १।१४७।

रद[2]—वि० [अ०] १. नष्ट। खराब। रद्दी। २. तुच्छ या निरर्थक। ३. फीका। मात। उ०—सोहत धोती सेत में कनक बसन तन बाल। सारद बारद बीजुरी भा रद कीजत लाल।—बिहारी (शब्द०)।

रदच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ। ओष्ठ।

रदछद(पु)[1]—संज्ञा पुं० [रदच्छद] ओठ। ओष्ठ। उ०—लोचन लोल कपोल ललित अति नासिक को मुक्ता रदछद पर।—सूर (शब्द०)।

रदछद(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० रदक्षत] रति आदि के समय दाँतों के लगने का चिह्न। उ०—पट की ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुबेख। हद रदछद छबि देखियत सद रदछद की रेख।—बिहारी (शब्द०)।

रददान—संज्ञा पुं० [सं० रद + दान] (रति के समय) दाँतों से ऐसा दबाव कि चिह्न पड़ जाय।

विशेष—यह सात प्रकार की बाह्य रतियों में से एक है। उ०—आलिंगन चुंबन परस मर्दन नख रददान। अधरपान सो जानिए बहिरति सात सुजान।—केशव (शब्द०)।

रदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशन। दाँत। दंत।

रदनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। अधर। होंठ।

रदनी—वि० [सं० रदनिन्] दाँतवाला। उ०—चिबुक मध्य मेचक रुचि राजत बिंदु कुंद रदनी।—तुलसी (शब्द०)।

रदनी[2]—संज्ञा पुं० हाथी।

रदपट—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। ओंठ। अधर। उ०—माखे लखन कुटिल भईं भौहैं। रदपट फरकत नयन रिसौहैं।—तुलसी (शब्द०)।

रदबदल—क्रि० वि० [फ़ा० रद + बदल] परिवर्तन। उलट पलट। हेर फेर। अदल बदल।

रदी—संज्ञा पुं० [सं० रदिन्] हाथी। गज।

रदीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० रदीफ़] १. वह व्यक्ति जो घोड़े पर सवार के पीछे बैठता है। २. वह शब्द जो गजलों आदि में प्रत्येक काफिए या अंत्यानुप्रास के बाद बार बार आता है। जैसे,—'मुझको गले लगा के यह उनका सवाल था। क्यों जी इसी के वास्ते इतना मलाल था। इसमें सवाल तो काफिया है; और गजल भर में इसी का अनुप्रास मिलाया जायगा; पर 'था'

रदीफ है और यह प्रत्येक युग्म पद अथवा शेर के अंत में रहेगा। ३. पीछे की ओर रहनेवाली सेना।

रदीफवार—क्रि० वि० [अ० रदीफ़+फ़ा० वार] वर्णमाला के क्रम से। अक्षरक्रम से।

रद्द[१]—वि० [अ०] १. जो काट या छाँट दिया गया हो। २. जो तोड़ या बदल दिया गया हो।

यौ०—रद्दबदल=परिवर्तन। फेरफार।

३. जो खराब या निकम्मा हो गया हो।

रद्द[२]—संज्ञा स्त्री० कै। वमन।

रद्दा[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. दीवार की पूरी लंबाई में एक बार रखी हुई एक ईंट की जोड़ाई। ईंटों की बेड़े बल की एक पंक्ति जो दीवार पर चुनी जाती है। २. मिट्टी की दीवार उठाने में उतना अंश, जितना चारों ओर एक बार में उठाया जाता है और जो कुछ समय तक सूखने के लिये छोड़ दिया जाता है। इसकी ऊँचाई प्रायः एक हाथ हुआ करती है।

क्रि० प्र०—उठाना। - रखना।—होना।

३. थाली में मिठाइयों का चुनाव, जो स्तरों के रूप में नीचे ऊपर होता है। ४. नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं की एक तह या खंड।

क्रि० प्र०—चुनना।

५. कुश्ती में अपने प्रतिपक्षी को नीचे लाकर उसकी गरदन पर कुहनी और कलाई के बीच की हड्डी से रगड़ते हुए आघात करना। (पहलवान)।

क्रि० प्र०—जमाना। देना। लगाना।

६. चमड़े की मोहरी जो भालुओं के मुँह पर बाँधी जाती है। (कलंदर)।

रद्दी[१]—वि० [फ़ा० रद] जो बिलकुल खराब हो गया हो। काम में न आने योग्य। निकम्मा। निष्प्रयोजन। बेकार।

रद्दी[२]—संज्ञा स्त्री० वे कागज आदि जो काम के न होने के कारण फेंक दिए गए हों। जैसे,—यह किताब मैं रद्दी के ढेर में से निकाल लाया हूँ।

रद्दीखाना—संज्ञा [हिं० रद्दी+फ़ा० खानह्] वह स्थान जहाँ खराब और निकम्मी चीजें रखी वा फेंकी जायँ।

रधार†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ओढ़ने का दोहरा वस्त्र। दोहर।

रधेरा जाल—संज्ञा पुं० [सं० रन्ध्र (=छेद)+हिं० एरा (प्रत्य०)+जाल] मछली फँसाने के लिये छोटे छेदों का जाल।

रन⑤[१]—संज्ञा पुं० [सं० रण] युद्ध। लड़ाई। संग्राम। उ०—रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई।—मानस, ३।१३।

रन⑤[२]—संज्ञा पुं० [सं० अरण्य, प्रा० रन्न] जंगल। वन। उ०—बरुनि बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढाँख।—जायसी (शब्द०)।

रन[३]—संज्ञा पुं० [अं०] १. झील। ताल। २. समुद्र का छोटा खंड। जैसे, कच्छ का रन। ३. क्रिकेट के बल्लेबाज का एक विकेट से दूसरे विकेट तक की दौड़। दौड़ान।

रनकना⑤†—क्रि० अ० [देश०; या सं० रणन (=शब्द करना)] घुँघरू आदि का मंद मंद शब्द होना।

रनछोर—संज्ञा पुं० [हिं० रन+छोड़ना] दे० 'रणछोड़'।

रनजीता⑤—वि० [सं० रणजित्] रण जीतनेवाला। विजय प्राप्त करनेवाला। उ०—नवो अंग के साधते उपजै प्रेम अनूप। रनजीता यौं जानिए सब धर्मन का भूप।—चरण० बानी।

रनधीर⑤—वि० [सं० रणधीर] रणक्षेत्र में धैर्य धारण करनेवाला। धीर योद्धा। उ०—महाबीर रनधीर तिहिं, जानत सकल जहान।—हम्मीर०, पृ० १।

रनना⑤—क्रि० अ० [सं० रणन (=शब्द करना)] बजना। शब्द करना। शब्द होना। झनकार होना। उ०—नयन दहनवत् रनत समद तन लखत अपर जम।—गोपाल (शब्द०)।

रनबंका⑤—वि० [सं० रण+हिं० बाँका] शूरवीर। बहादुर।

रनबरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़ जो नेपाल के जंगलों में पाई जाती है।

रनबाँकुरा—संज्ञा पुं० [सं० रण+हिं० बंकट, वंक, बाँका] शूर वीर। योद्धा। उ०—(क) जीति को सक संग्राम, दसरथ के रनबाँकुरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रनबाँकुरा बालिसुत बंका।—मानस, ६।१८।

रनलंपिका—संज्ञा स्त्री० [डिं०] गाय। गौ।

रनवादी⑤—संज्ञा पुं० [सं० रण+वादी] शूर। लड़ाका। योद्धा। उ०—मात न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंह रनवादी।—जायसी (शब्द०)।

रनवास—संज्ञा पुं० [हिं० रानी+वास] १. रानियों के रहने का महल। अंतःपुर। २. जनानखाना।

रनवासन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की फली।

रनसेर⑤—सं० पुं० [हिं० रन+सीर] युद्धभूमि। लड़ाई का मैदान।—उ०—खैंचि समसेर तव पैठु रनसेर में।—पलटू० पृ० १४।

रनित⑤—वि० [सं० रणित] बजता हुआ। झनकार करता हुआ। उ०—रनित भृंग घंटावली झरित दान मधु नीर। मंद मंद आवत चल्यो कुंजरु कुंज समीरु।—बिहारी र०, दो० ३८८।

रनिवास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रनवास'। उ०—सब रनिवास विथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ।—मानस, २।२८३।

रनी⑤—संज्ञा पुं० [सं० रण+ई (प्रत्य०)] वीर। योद्धा। रण करनेवाला। उ०—कलुष कलंक कलेस कोस भयो जो पदु पाय रावन रनी। सोइ पदु पाय विभीषन भो भवभूषन दलि दूषन अनी।—तुलसी (शब्द०)।

रनेत—संज्ञा पुं० [सं० रण+हिं० एत (प्रत्य०)] भाला। (डिं०)।

रपट[१]—संज्ञा स्त्री० [अ० रब्त] अभ्यास। आदत। टेव।

क्रि प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।—होना।

रपट[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रपटना**] १. रपटने की क्रिया या भाव। फिसलाहट। २. दौड़। ३. उतार, जिसपर से उतरते समय पैर न जम सकता हो। ढाल।

रपट[3]—संज्ञा स्त्री० [अं० **रिपोर्ट**] सूचना। इत्तला। उ०—आप केवल इतनी ही कृपा करें कि मेरे घड़ी जाने की रपट कोतवाली में लिखाते जायँ।—परीक्षागुरु (शब्द०)।

रपटन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फिसलन। बिछलन।

रपटनाⓅ†[1]—क्रि० अ० [सं० **रफन** (=**सरकना**), मि० फ़ा० **रफ़्तन्**] १. नीचे या आगे की ओर फिसलना। जम न सकने के कारण किसी ओर सरकना। जैसे,—गीली मिट्टी में पैर रपटना। उ०—(क) बाहाँ जोरी निकसे कुंज ते रीझ रीझि कहैं बात। कुंडल झलमलात झलकत बिवि गात, चकाचौंध सी लागति मेरे इन नैननि आली रपटत पग नहिं ठहरात। राधा-मोहन बने घन चपला ज्यों चमकि मेरी पूतरीन में समात। सूरदास प्रभु के वै वचन सुनहु मधुर मधु अब मोहिं भूली पाँच औ सात।—सूर (शब्द०)। (ख) दै पिचकी भजी भीजी तहाँ पर पीछे गुपाल गुलाल उलीचैं। एक ही संग यहाँ रपटे सखि ये भए ऊपर वे भईं नीचे।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) हौं अलि आजु गई तरके वाँ महेस जू कालिंदी नीर के कारन। ज्यों पग एक बढ़ायो चहौं रपट्यो पग दूसरो लागी पुकारन।—महेश (शब्द०)। २. शीघ्रता से और बिना ठहरे हुए चलना। बहुत जल्दी जल्दी चलना। झपटना। उ०—(क) प्रबल पावक बढ़्यौ जहाँ काढ़्यौ तहाँ डाढ़्यौ रपटि लपट भरे भवन—भँडारहीं। तुलसी (शब्द०)। (ख) रपटत मृगन सरन मारे। हरित बसन सुंदर तनु धारे।—रघुराज (शब्द०)। (ग) अनेक अग्ग बाहहीं कितेक मार छाँहहीं। किते परे कराहहीं हुँकार सौं रपट्टहीं।—सूदन (शब्द०)।

रपटना[2]—क्रि० स० १. किसी काम को शीघ्रता से करना। कोई काम चटपट पूरा करना। जैसे,—थोड़ा सा काम और रह गया है; दो दिन में रपट डालेंगे।

संयो क्रि०—डालना।—देना।

२. मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू)।

रपटाना—क्रि० स० [हिं० **रपटना**] १. फिसलाना। सरकाना। २. चटपट पूरा करना। ३. रपटने का काम दूसरे से कराना।

रपटीला—वि० [हिं० रपट+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **रपटीली**] फिसलनवाली। पैर न टिक सकनेवाली। उ०—ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ११।

रपट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं० **रपटना**] १. फिसलने की क्रिया। फिसलाव।

मुहा०—रपट्टा मारना=फिसलना।

२. दौड़ धूप। झपट्टा।

मुहा०—रपट्टा लगाना या मारना=दौड़ना। झपटना। लपकना।

३. झपट्टा। चपेट। उ०—अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ कै न भाजतो, तौ उनके रपट्टा में कब की आय जाती।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

रपाती—संज्ञा स्त्री० [सं० √रफ् (=**वध करना या चोट पहुँचाना**)] तलवार। (डिं०)।

रपुर—संज्ञा पुं० [सं० **हरिपुर**] स्वर्ग। (डिं०)।

रपोट—संज्ञा स्त्री० [अं० **रिपोर्ट**] दे० 'रपट'। उ०—उन्होंने कहा, कहीं इतनी भी लकड़ी तो पकड़ाई होती। रपोट करनेवाला कौन है? हमने कौन सी खता की?—काले०, पृ० ४०।

रफ—वि० [अं०] १. जो साफ और ठीक न हुआ हो; बल्कि किया जाने को हो। नमूने के तौर पर बना हुआ। २. जो चिकना न हो। खुरदुरा।

रफतⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **रफ्तह्**] गति। मुक्ति। उ०—कह गुलाल हरिनाम रफत तब पाइया।—गुलाल०, पृ० ६०।

रफते रफते—क्रि० वि० [फ़ा० रफ़्तह्] दे० 'रफ्ता रफ्ता'।

रफल[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० राइफल] विलायती ढंग की एक प्रकार की बंदूक।

विशेष—यह दो तरह की होती है। एक तो टोपीदार जिसमें बारूद उसके मुँह की ओर से भरी जाती है; और टोपी चढाकर घोड़े से दागी जाती है। दूसरी ब्रिजलोटन कहलाती है और इसमें बीच में से कारतूस भरा जाता है।

रफल[2]—संज्ञा पुं० [अं० **रैपर**] जाड़े में ओढ़ने की मोटी चादर जो प्रायः ऊनी होती है। गरम चादर।

रफा—वि० [अ० रफ़अ] १. दूर किया हुआ। मिटाया हुआ। समाप्त या पूरा किया हुआ। उ०—पर इस जरूरत को रफा करने के लिये कभी कभी ऐसे पुरुष भी अपनी कमर कस बैठते हैं, जो इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं।—द्विवेदी (शब्द०)। २. निवृत्त। शांत। निवारित। दबाया हुआ। जैसे,—झगड़ा रफा करना। उ०—एक औरउ है नफा हम सफा कीन बिचार। रफा संगहि होय सब महिपाल को रन प्यार।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—रफा दफा।

रफा दफा—वि० [अ० रफ़अ] १. मिटाया हुआ। दूर किया हुआ। २. शांत। निवृत्त। जैसे,—मामला रफा दफा करना, झगड़ा रफा दफा करना।

रफीअ—वि० [अ० रफ़ीअ] उत्तुंग। ऊँचा। बुलंद। उच्च [को०]।

रफीक—संज्ञा पुं० [अ० रफ़ीक़] [स्त्री० रफीका] मित्र। सखा। सहचर [को०]।

रफीदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रफ़ीदह्] १. वह गद्दी जिसके ऊपर जीन कसा जाता है। २. वह गद्दी जिसे लगाकर नानबाई तंदूर में रोटी चिपकाते हैं। कानूक। ३. कथरी या गद्दीनुमा सिले पुराने वस्त्र। ४. गोल पगड़ी।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग विशेषतः अवज्ञा या अनादर प्रकट करने के लिये ही होता है।

रफू—संज्ञा पुं० [अ० रफ़ू] फटे हुए कपड़े के छेद में तागे भरकर उसे बराबर करना।

क्रि० प्र०—**करना**।—**बनाना**।—**होना**।

मुहा०—**रफू करना**=कही हुई दो असंबद्ध या विपरीत बातों में सामंजस्य स्थापित करना। बात बनाना।

रफूगर-संज्ञा पुं० [फ़ा० रफ़ूगर] रफू करने का व्यवसाय करनेवाला। रफू बनानेवाला।

रफूगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रफ़ूगरी] रफू करने का काम। रफूगरों का काम।

रफूचक्कर—वि० [अ० रफ़ू+हिं० चक्कर] चंपत। गायब।

मुहा०—**रफूचक्कर बनना या होना**=भाग जाना। चलता बनना। गायब हो जाना। जैसे;—वह देखते देखते रफूचक्कर हो गया।

रफ्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रफ़्तह् का समासगत रूप] प्रस्थान। जाना। गमन। रवानगी [को०]।

रफ्तनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रफ़्तनी] १. जाने की क्रिया या भाव। २. माल का बाहर भेजा जाना। माल की निकासी।

रफ्तार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रफ़्तार] चलने का ढंग या भाव। चाल। गति।

रफ्ता रफ्ता—क्रि० वि० [फ़ा० रफ़्तह् रफ़्तह्] धीरे धीरे। क्रम क्रम से। उ०—अवल मुझे बड़गुजरै ताखत करना जानि। रफते रगते और भी रहे मुखालिक मान।—सूदन (शब्द०)।

रब—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर। उ० -(क) पीरा पैगंबर दिगंबरा देखाई देत, सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।—भूषण (शब्द०)। (ख) अरुन अन्यारे जे भरे अति ही मदन मजेज। देखे तुव दृग वार बे रब सुकराना भेज।—रसनिधि (शब्द०)।

रबकनाⓅ—क्रि० अ० [फ़ा० रौ ?] उत्साहित होना। उमंग में होना। जोश में आना। उ०—(क) रबकि कै रंचक बदन पसारयौ। पकरि कै चंचु फारि ही डारयौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०। (ख) रबयकि चलो भभकत भई, सबतन आगि दिपाइ।—ब्रज० ग्रं० पृ० ४७।

रबड़[१]—संज्ञा पुं० [अं० रबर] १. एक प्रसिद्ध लचीला पदार्थ जिसका व्यवहार गेंद, फीता, पट्टी, बेलन आदि बहुत से पदार्थ बनाने में होता है।

विशेष—यह एक प्रकार के वृक्ष के ऐसे दूध से बनता है, जो पेड़ से निकलने पर जम जाता है। यह चिमड़ा और लचीला होता है। इसमें रासायनिक अंश कार्बन और हाइड्रोजन के होते हैं। यह २४८° की आँच पाकर पिघल जाता है और ६००° की आँच में भाप के रूप में उड़ने लगता है। आग पाने से यह भक से जलने लगता है। इसकी लौ चमकीली होती है और इसमें से धूआँ अधिक निकलता है। जब इसमें गंधक का फूल (बारीक चूर्ण) या उड़ाई हुई गंधक मिलाकर इसे धीमी आँच में पिघलाकर २५०° से लेकर ३००° की भाप में सिद्ध करते हैं, तब इससे अनेक प्रकार की चीजें जैसे,—खिलौने, बटन, कंघी आदि बनाई जाती हैं, जो देखने में सींग या हड्डी की जान पड़ती हैं। इसपर सब प्रकार के रंग भी चढ़ाए जाते हैं। रबड़ अफ्रीका, अमेरिका और एशिया के प्रदेशों में भिन्न भिन्न विशेष पेड़ों के दूध से बनाया जाता है और वहाँ इससे अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थ बनाए जाते हैं। अब इसे रासायनिक ढंग से कृत्रिम भी बनाया जाता है।

२. एक वृक्ष का नाम जो वट वर्ग के अंतर्गत है।

विशेष—यह भारतवर्ष में आसाम, लखीमपुर आदि हिमालय के आस पास के प्रदेशों तथा बरमा आदि में होता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी बड़ी होती हैं तथा इसका पेड़ ऊँचा और दीर्घाकार होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है। इसी के दूध से उपर्युक्त लचीला पदार्थ बनता है।

रबड़[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़] १. व्यर्थ का श्रम। फजूल हैरानी। २. गहरा श्रम। रगड़।

क्रि० प्र०—**खाना**।—**पड़ना**।

३. तै करने के लिये अधिक दूरी। घुमाव। चक्कर। फेर। जैसे,—उधर से जाने में बड़ी रबड़ पड़ेगी।

रबड़ना[१]—क्रि० स० [हिं० रपटना या सं० वर्त्तन, प्रा० वट्टन] १. घुमाना। चलाना। २. किसी तरल पदार्थ में कोई वस्तु (करछी आदि) डालकर चारों ओर फेरना। फेंटना।

रबड़ना[२]—क्रि० अ० घूमना। फिरना।

रबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रबड़ना] औंटाकर गाढ़ा और लच्छेदार किया हुआ दूध जिसमें चीनी भी मिलाई जाती है। बसौंधी।

रबदा—संज्ञा पुं० [हिं० रबड़ना] १. वह श्रम जो कहीं बार बार गमनागमन या पदसंचालन से होता है। २. कीचड़। कर्दम।

मुहा०—**रबदा पड़ना**=खूब पानी बरसना। वृष्टि होना। उ०—जेहि चलते रबदे पड़ा धरती होइ बिहार। सो सावज घामै जरै पंडित करौ विचार।—कबीर (शब्द०)।

रबर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'रबड़'।

रबरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रबड़ी] दे० 'रबड़ी'।

रबाना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा डफ जिसमें मंजीरे भी लगे होते हैं और जिसे प्रायः कहार आदि बजाते हैं।

रबानी—वि० [देश० रबाना+ई] रबाना नामक डफ बजानेवाला। उ०—कहाँ हैं रबानी मृदंगी सितारी। कहाँ हैं गवैये कहाँ नृत्यकारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०२।

रबाब—संज्ञा पुं० [अ०] सारंगी की तरह का एक प्रकार का तंत्रवाद्य जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते हैं। उ०—(क) सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त। और न कोई सुनि सकै कै साईं कै चित्त।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुंडली यंत्र। सुरसर मंडल जल तरंग मिलि करत मोहनी मंत्र।—सूर (शब्द०)। (ग) अरे बजावत कौन ढिग छित रबाब के तार। जुरो जात है आइ कै बिरहिन को दरबार।—रसनिधि (शब्द०)।

रबाबिया—संज्ञा पुं० [हिं० रबाब+इया (प्रत्य०)] वह जो रबाब बजाता हो। रबाब बजानेवाला।

रबाबीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० रबाब] दे० 'रबाब'। उ०—फील रबाबी बलदु पखावज कौआ ताल बजावै।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०७।

रबी—संज्ञा स्त्री० [अ० रबीअ़] १. वसंत ऋतु। २. वह फसल जो वसंत ऋतु में काटी जाती है। जैसे,—गेहूँ, चना, मटर आदि। उ०—जहाँ जायँ कदम शरीफ। न रहे रबी, न रहे खरीफ। (कहावत)।

रबील-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो पंद्रह सोलह अंगुल लंबा होता है।

विशेष—इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफेद, चोंच काली और पैर खाकी रंग के होते हैं। यह हिमालय के किनारे गढ़वाल से आसाम तक पाया जाता है। यह झाड़ियों में घोंसला बनाता और अप्रैल से जून तक दो से पाँच तक अंडे देता है।

रब्त—संज्ञा पुं० [अ०] १. अभ्यास। मश्क। मुहावरा। रपट।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

२. संबंध। मेल।

यौ०—रब्त जब्त=मेल जोल। घनिष्ठता। जैसे,- उनसे कुछ रब्त जब्त पैदा करो, तो तुम्हारा काम हो जायगा।

रब्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रब्धा] आरब्ध। आरंभ किया हुआ। शुरू किया हुआ।

रब्ब—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'रब'।

रब्बा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० अराबा] १. वह गाड़ी जिसपर तोप लादी जाती है। तोपखाने की गाड़ी। २. वह गाड़ी या रथ जिसे बैल खींचते हैं।

रब्बाब—संज्ञा पुं० [अ० रबाब] दे० 'रबाब'।

रभⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रभस्] दे० 'रभस'। उ०—सहसा, सत्वर रभ, तुरा, तुरभ बेग के साज।—नंद० ग्रं०, पृ० १०७।

रभस[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। २. हर्ष। ३. प्रोत्साहन। ४. उत्सुकता। औत्सुक्य। ५. पूर्वापर या कारण कार्य का विचार। ६. संभ्रम। ७. पछतावा। रंज। ८. बाल्मीकि रामायण के अनुसार अस्त्रों का एक संहार, अर्थात् शत्रु के चलाए हुए अस्त्र निष्फल करने की विधि जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को सिखलाई थी। ९. रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम। १०. विष। जहर (को०)। ११. कोप। क्रोध (को०)।

रभस[२]—वि० १. वेगवाला। २. प्रबल। तीव्र। मजबूत। दृढ़। ३. प्रसन्न। आनंदपूर्ण [को०]।

रभू—संज्ञा पुं० [सं०] दूत। चर [को०]।

रभेणक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राक्षस का नाम।

विशेष—कहते हैं, यह राक्षस साँप के रूप में रहता था।

रम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. लाल अशोक। ३. प्रेमी। ४. पति। ५. आनंद। हर्ष (को०)।

रम[२]—वि० १ प्रिय। २. सुंदर। ३. आनंददायक। हर्षोत्पादक। ४. जिससे मन प्रसन्न हो।

रम[३]—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की विलायती शराब जो जौ से बनाई जाती है।

रमक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेमपात्र। प्रिय। कांत। प्रेमी। २. उपपति। जार।

रमक[२]—वि० विनोदशील। आनंदवाला [को०]।

रमक[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रमना] १. झूले की पेंग। २. तरंग। झकोरा। उ०—खेलत फाग भरी अनुराग सुहाग सनी सुख की रमकैं। —(शब्द०)।

रमक[४]—संज्ञा स्त्री० [अ० रमक] १. थोड़ी सी साँस जो मरते समय निकलने को शेष रह गई हो। अंतिम श्वास। २. हलका प्रभाव। ३. स्वल्प भाग। बहुत थोड़ा अंश। ४. नशे का थोड़ा असर जैसे,—जरा सी रमक मालूम हो रही है।

रमक[५]—वि० जरा सा। बहुत थोड़ा।

रमकजरा—संज्ञा पुं० [हिं० राम+काजल] एक प्रकार का धान।

विशेष—यह भादों में पकता है। पकने पर काले रंग का होता है और मोटा धान माना जाता है। नैपाल की तराई में यह अधिकता से होता है। बगरी या बक्की से इसके चावल कुछ लंबे होते हैं और कूटने पर सफेद रंग के निकलते हैं।

रमकना—क्रि० अ० [हिं० रमना] १. हिंडोले पर झूलना। हिंडोले पर पेंग मारना। उ०—कबहुँक निकट देखि वर्षा ऋतु झूलत सुरँग हिंडोरे। रमकत झमकत जनकसुता संग हाव भाव चित चोरे।—सूर (शब्द०)। २. झूमते हुए चलना। इतराते हुए चलना।

रमक्कनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० रमकना] झूमते हुए या मस्ती से चलना। उत्साह वा जोश में भरकर आगे बढ़ना। उ०—लय खग्ग रमक्किय प्रेत दिस।—पृ० रा०, १।५३०।

रमचकरा†—संज्ञा पुं० [हिं० राम+चक्र] बेसन की मोटी रोटी।

रमचा†—संज्ञा पुं० [हिं० चमचा] छोटी करछी। चमचा।

रमजान—संज्ञा पुं० [अ० रमज़ान] एक अरबी महीने का नाम। इस महीने में मुसलमान रोजा रहते हैं।

रमजानी—वि० [अ० रमज़ान+हिं० ई (प्रत्य०)] रमजान मास का। रमजान के महीने से संबद्ध [को०]।

रमझोल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रमझोला'।

रमझोला—संज्ञा पुं० [डिं०] पैर में पहनने के घुँघुरू। नूपुर।

रमठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग। २. एक प्राचीन देश का नाम। ३. इस देश का निवासी।

रमठध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग। हिंगु [को०]।

रमण¹—संज्ञा पुं० [सं०] आनंदोत्पादक क्रिया। विलास। क्रीड़ा। केलि। २. मैथुन। ३. गमन। घूमना। विचरना। ४. पति। ५. कामदेव। ६. जघन। ७. गधा। ८. अंडकोश। ९. सूर्य का अरुण नामक सारथी। १०. एक वन का नाम। ११. एक वर्णिक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में तीन अक्षर होते हैं; जिनमें दो लघु और एक गुरु होता है। जैसे,—दुख क्यों। टर हैं। हरि जू। हरि हैं। १२. परवल की जड़ (को०)।

रमण²—वि० [स्त्री० रमणी] १. मनोहर। सुंदर। २. जिसके मिलने से आनंद उत्पन्न हो। प्रिय। ३, रमनेवाला।

रमणक—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष या खंड का नाम। इसे रम्यक भी कहते हैं। विशेष दे० 'रम्यक'। २. वीतहोत्र के पुत्र का नाम।

रमणगमना—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार की नायिका जो यह समझकर दुःखी होती है कि संकेत स्थान पर नायक आया होगा, और मैं वहाँ उपस्थित न थी। जैसे,—छरी सपल्लव लालकर लखि तमाल की हाल। कुँभिलानी उर साल धरि फूल माल ज्यों बाल।—विहारी (शब्द०)।

रमणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक शक्ति का नाम जो रामतीर्थ में है। २. पत्नी (को०)। ३. सुंदरी स्त्री (को०)।

रमणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारी। स्त्री। २. सुंदर स्त्री। ३. वाला या सुगंधबाला नामक गंधद्रव्य। ४. पत्नी (को०)।

रमणीक—वि० [सं० रमणीय] सुंदर। मनोहर। उ०—अति रमणीक कदब छाँह रुचि परम सुहाई। राजत मोहन मध्य अवलि बालक की पाई।—सूर (शब्द०)।

रमणीय—वि० [सं०] सुंदर। रुचिर। मनोहर। रम्य।

रमणीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुंदरता। २. साहित्यदर्पण के अनुसार वह माधुर्य जो सब अवस्थाओं में बना रहे या क्षण क्षण में नवीन रूप धारण किया करे।

रमण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री। औरत [को०]।

रमता—वि० [हिं० रमना (=घूमना फिरना)] एक जगह जमकर न रहनेवाला। घूमता फिरता। जैसे,—रमता जोगी बहता पानी इनका कहीं ठिकाना नाहिं।

रमति—संज्ञा पुं० [सं०] १. नायक। २. स्वर्ग। ३. कौवा। ४. काल। ५. कामदेव।

रमद—संज्ञा पुं० [अ०] आँख की एक बीमारी। आँखों का लाल हो जाना और उससे पानी गिरने का रोग [को०]।

रमदीं—संज्ञा पुं० [हिं० राम+सं० आद्य] एक प्रकार का जड़हन धान जो अगहन के महीने में पकता है। इसका चावल सालों तक रह सकता है।

रमन⑤—संज्ञा पुं० वि० [सं० रमण] दे० 'रमण'

रमनक—संज्ञा पुं० [सं० रमणक] दे० 'रमणक'।

रमनता⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० रमण+ता (प्रत्य०)] दे० 'रमणीयता'। उ०—दुति लावन्य रूप मधुराई। कांति रमनता सुंदरताई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४।

रमनसोरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे कँवलसोरा भी कहते हैं।

रमना¹—क्रि० अ० [सं० रमण] १. भोग विलास या सुखप्राप्ति के लिये कहीं रहना या ठहरना। मन लगने के कारण कहीं रहना। उ०—(क) रमि रैन सबै अनतै बितई सो कियो इत आवन भोर ही को।—केशव (शब्द०)। २. भोग विलास या रतिक्रीड़ा करना। उ०—(क) अविवरण अरु अंग घटि अंत्यज जनि की नारि। तजि विधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक विचारि।—केशव (शब्द०)। (ख) राति कहूँ रमि आयो घरै उर मानै नहीं अपराध किए को।—पद्माकर (शब्द०)। ३. आनंद करना। चैन करना। मजा उड़ाना। उ०—चहुँ भाग बाग तड़ाग। अब देखिए बड़ भाग। फल फूल सों संयुक्त। अलि यों रमैं जनु मुक्त।—केशव (शब्द०)। ४. चारों ओर भरपूर होकर रहना। व्याप्त होना। भानना। उ०—(क) आध्यात्मिक होइ आत्मा रमत या सों यह बलराम पुनि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) पाइ पूरण रूप को रमि भूमि केशवदास।—केशव (शब्द०)। (ग) मैं सिरजौं मैं मारहूँ मैं जारौं मैं खाउँ। जलथल मैं ही रमि रह्यौ मोर निरंजन नाउँ।—कबीर (शब्द०)। ५. अनुरक्त होना। लग जाना। उ०—महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुणधाम। जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।—तुलसी (शब्द०)। ६. किसी के आस पास फिरना। घूमना। उ०—(क) कोई परं भँवर जल माँहाँ। फिरत रमहि कोइ देइ न बाँहाँ।—जायसी (शब्द)। (ख) लसत केतकि के कुल फूल सों। रमत भौंर भरे रसमूल सों।—गुमान (शब्द०)। ७. चलता होना। चल देना। गायब हो जाना। उ०—झाल उठी झोली जली खपरा फूटम फूट। जोगी था सो रम गया, आसन रही भभूत।—कबीर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—जाना।

८. आनंदपूर्वक इधर उधर फिरना। बिहार करना। मनमाना घूमना। विचरना। उ०—(क) जे पद पद्म रमत बृंदाबन अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे।—सूर (शब्द०)। (ख) गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस रासि। लहाछह अति गतिन की सबन लखे सब पास।—बिहारी (शब्द०)।

रमना²—संज्ञा पुं० [सं० आराम या रमण] १. वह हरा भरा स्थान जहाँ पशु चरने के लिये छोड़ दिए जाते हैं। चरागाह। उ०—इत जमना रमना उतै बीच जहानाबाद। तामें बसन को करौ करौ न बाद विवाद।—रसनिधि (शब्द०)। २. वह सुरक्षित स्थान या घेरा, जहाँ पशु शिकार के लिये या पालने के लिये छोड़ दिए जाते हैं और जहाँ वे स्वच्छंदतापूर्वक रहते हैं। ३. घेरा। हाता। ४. बाग। ५. कोई सुंदर और रमणीक स्थान।

रमनी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० रमणी] दे० 'रमणी'। उ०—नव रमनी रमि राजं।—पृ० रा०, ६१।२५५२।

रमनीकⓅ—वि० [सं० रमणीय, हिं० रमणीक] दे० 'रमणीक'। उ०—रमनीक ठाम वाचिष्ठ राज, तह बसहि देवदेवह विराज। —पृ० रा०, १।१८१।

रमनीयⓅ—वि० [सं० रमणीय] दे० 'रमणीय'। उ०—महा कमनीय रमनीय रमनीय हू रमावै नर मन ह्वै कै रूप रज रेई कै।—देव (शब्द०)।

रमरमी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम राम] दे० 'राम राम'। उ०—भाई मेरे, सगु भैयँन कूँ रमरमी, भैया कू सात सलाँम।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६७३।

रमल—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का फलित ज्योतिष जिसमें पासे फेंककर उसके बिंदुओं के अनुसार शुभाशुभ फल का अनुमान किया जाता है।

विशेष—यह शास्त्र पहले अरबी भाषा में था और मुसलमानों के साथ साथ भारतवर्ष में आया था। संस्कृत में भी पंडितों ने रमल विषयक अनेक ग्रंथ रचे हैं।

रमसरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो ईख के खेत में अपने आप उत्पन्न होता है। इसे रउता भी कहते हैं।

रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. पत्नी। स्त्री (को०)। ३. सौभाग्य (को०)। ४. संपत्ति। धन दौलत (को०)। ५. श्री। शोभा (को०)। ६. कार्तिक कृष्ण एकादशी (को०)।

विशेष—इस शब्द में कांत, पति, रमण आदि अथवा इनके वाची शब्द लगाने से विष्णु का अर्थ होता है। जैसे,—रमाकांत, रमापति, रमारमण।

रमाकांत—संज्ञा पुं० [सं० रमाकान्त] विष्णु।

रमाधव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमानरेशⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० रमा + नरेश (=पति)] विष्णु। उ०—जय जय करत सकल सुर नर मुनि जल में कियो प्रवेश। जाय पताल बाट गहि लीन्ही धरणी रमानरेश।—सूर (शब्द०)।

रमाना—क्रि० स० [हिं० रमना का सक० रूप] १. अनुरंजित करना। अनुरक्त बनाना। मोहित करना। लुभाना। उ०—(क) अति पतिहिं रमावै चित्त प्रभावै सौतिन प्रेम बढ़ावै।—केशव (शब्द०)। (ख) गोरस मथत नाद इक उपजत किंकिन धुनि मुनि श्रवण रमावति। सूर श्याम अँचरा धरि ठाढ़े काम कसौटी करि देखरावति।—सूर (शब्द०)। २. अपने मनोनुकूल बनाना। उ०—जैसे माया मन रमै तैसे राम रमाय। तारा मंडल छाड़ि कै जहँ केशव तहँ जाय।—कबीर (शब्द०)। ३. ठहराना। रोक रखना। ४. संयुक्त करना। लगाना। जोड़ना।

मुहा०—**रास रमाना** = रास जोड़ना। रास रचाना। उ०—जाकी महिमा कहत न आवै। सो गोपिन सँग रास रमावै।—सूर (शब्द०)। **विभूति वा भभूत रमाना** = शरीर में भभूत लगाना। भभूत पोतना। उ०—अँसुअन की सेली गल में लगत सुहाई। तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। **मन रमाना** = दुखी या चिंतित मन को किसी प्रकार प्रसन्न करना। मन बहलाना।

रमानिवास—संज्ञा पुं० [हिं० रमा + निवास] लक्ष्मीपति, विष्णु। उ०—सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी। मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।—तुलसी (शब्द०)।

रमारमण—संज्ञा पुं० [सं०] रमापति। लक्ष्मीपति। विष्णु।

रमारमनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रमारमण] दे० 'रमारमण'। उ०—रमारमन पद बंदि बहोरी।—मानस, २।२७२।

रमाली—संज्ञा संज्ञा पुं० [फ़ा० रूमाली] एक प्रकार का बारीक और स्वादिष्ट चावल जो करनाल में होता है।

रमावीज—संज्ञा पुं० [सं०] एक तांत्रिक मंत्र जिसे लक्ष्मीवीज भी कहते हैं। श्रीं।

रमावेष—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीवास चंदन जिससे ताड़पीन नामक तेल निकलता है।

रमास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रवाँस'।

रमितⓅ—वि० [हिं० रमना] लुभाया हुआ। मुग्ध। उ०—आवैं सुरतिय करि शृंगारा। रमित रहै नृप करैं बिहारा।—सबल (शब्द०)।

रमी—संज्ञा स्त्री० [मलाय०] एक प्रकार की घास जो सुमात्रा आदि द्वीपों में होती है।

विशेष—यह रीहा के समान कागज और रस्सी आदि बनाने के काम में आती है। सुमात्रा वाले इसे 'कलुई' कहते हैं। पहले इसे कुछ लोग भ्रमवश रीहा ही समझते थे।

रमूज—संज्ञा स्त्री० [अं० रम्ज़ का बहुव० रमूज़] १. कटाक्ष। २. सैन। इशारा। ३. पहेली। गूढ़ार्थ वाक्य। ४. श्लेष। ५. गुप्त बात। रहस्य। उ०—यों कहि मौन भए अज नंदन कैकय राज रमूज सी पाई।—हनुमान (शब्द०)।

रमेश—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमैती—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. किसानों की एक रीति जिसमें एक कृषक आवश्यकता पड़ने पर दूसरे कृषक के खेत में काम करता है और उसके बदले में वह भी उसके खेत में काम कर देता है।

विशेष—इसमें मजदूरी बच जाती है और काम के बदले में दूसरों के खेतों में काम कर देना होता है। इसे पूर्व में 'पैंठ' और अवध के उत्तरीय भागों में 'हूँड़' कहते हैं।

२. वह नफरी या काम का दिन जो इस प्रकार कार्य करने में लगे।

क्रि० प्र०—**करना**।—**देना**।—**लगाना**।

रमैनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रामायण] कबीरदास के बीजक का एक भाग जिसमें दोहे और चौपाइयाँ हैं।

रमैयाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० राम + ऐया (प्रत्य०)] १. राम।

उ०—वहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहेब राखै रमैया।—तुलसी (शब्द०)। २. ईश्वर। उ०—रमैया की दुलहिन लूटी बजार।

रम्माल—संज्ञा पुं० [अ०] रमल फेंकनेवाला। पासा फेंककर फलित कहनेवाला।

रम्य[१]—वि० [सं०] [स्त्री० रम्या] १. मनोहर। सुंदर। २. मनोरम। रमणीय। उ०—परम रम्य उत्तम यह धरनी।—मानस, ६।२।

रम्य[२]—संज्ञा पुं० १. चंपा का पेड़। २. बक का पेड़। अगस्त। ३. परवल की जड़। ४. वीर्य। ५. अग्निध्र के एक पुत्र का नाम। ६. वायु के सात भेदों में एक जो घंटे में चार से सात कोस तक चलती है।

रम्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में से एक। यह मेरु के दक्षिण और श्वेत पर्वत के उत्तर वायव्य कोण में माना गया है।

विशेष—कहते हैं, यहाँ वट की जाति का एक वृक्ष होता है, जिसे खाकर यहाँ के लोग कई दिन तक रह सकते हैं। इसे रोहित भी कहते हैं।

२. महानिंब। बकायन। ३. परवल की जड़ (को०)।

रम्यक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकायन।

रम्यग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक गाँव का नाम।

रम्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़।

रम्यफल—संज्ञा पुं० [सं०] कुचिला।

रम्यश्री—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रम्यसानु—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के शिखर पर की समतल भूमि। प्रस्थ।

रम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २. गंगा नदी। ३. स्थल पद्मिनी। ४. महेंद्रवारुणी। इंद्रायन। ५. लक्ष्मणा कंद। ६. मेरु की कन्या का नाम जो रम्य से ब्याही थी। ७. धैवत स्वर की तीन श्रुतियों में से अंतिम श्रुति का नाम। ८. एक रागिनी का नाम।

रम्याक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

रम्यामली—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुईं आँवला।

रम्र संज्ञा पुं० [सं०] १. पिशंग वर्ण। कपिल वर्ण। २. सौंदर्य। शोभा [को०]।

रम्हाना—क्रि० अ० [सं० रम्भण] गाय का बोलना। रँभाना। उ०—(क) तौ लगि गाय रम्हाय उठी कवि देव बधूनि मथ्यो दधि को घट।—देव (शब्द०) (ख) धौरिहूँ कोरिये आइ गई सु रम्हाइ के धाइ के लागी चुखावन।—देव (शब्द०)।

रयⓅ[१]—संज्ञा पुं० [सं० रज] रज। धूल। गर्द। उ०—ठाकुर विराजैं जहाँ खेलैं सुत औरन के डारैं ईंट खोवा रयो प्रभु पर खीजियो।—प्रियादास (शब्द०)।

रय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। तेजी। उ०—यहु जानत है के सब गुण रथ के यासों रहत चुपाइ।—गुमान (शब्द०)। २. प्रवाह। नदी की धारा। ३. ऐल के छह पुत्रों में से चौथे पुत्र का नाम। ४. उत्साह (को०)।

रयणपत—संज्ञा पुं० [सं० रजनीपति] चंद्रमा। (डिं०)।

रयनⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी] दे० 'रयनि'।

रयनाⓅ†[१]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] १. रंग से भिगोना। तराबोर करना। उ०—भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकल लोक एक रंग रये।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी के प्रेम में मग्न होना। अनुरक्त होना। ३. संयुक्त होना। मिलना। उ०—(क) करिए युत भूषण रूप रयी। मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी।—केशव (शब्द०)। (ख) ओंठ रचि रेख सविशेष शुभ श्री रये।—केशव (शब्द०)।

रयनाⓅ[२]—क्रि० अ० [सं० रव] उच्चारित करना। रव करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)।

रयनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी, प्रा० रयणी] रात्रि। निशा। रात।

रयासत—संज्ञा स्त्री० [अ० रियासत] दे० 'रियासत'।

रयि—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। २. वैभव। संपत्ति। ३. भोजन। भोजन के पदार्थ [को०]।

रयिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर का एक नाम। २. अग्नि। ३. एक प्रकार का साम। ४. ब्राह्मण (को०)।

रय्यत, रय्यतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० रअय्यत] प्रजा। रिआया। रैयत। उ०—सुनि शत्रु मित्र की नृप चरित्र की रय्यति रावत बात।—केशव (शब्द०)।

ररंकार—संज्ञा पुं० [सं० रकार] रकार की ध्वनि। उ०—रग रग बोलै राम जी रोम रोम ररंकार।—कबीर (शब्द०)।

ररⓅ†[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ररना] रटना। रट। उ०—(क) धन सारस होइ रर मुई आप सु मेटहिं पंख।—जायसी (शब्द०)। (ख) झरिया सार तिहिं पर अपार मुख मारु मारु रर।—सूदन (शब्द०)।

रर†[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दीवार जो एक पर एक यों ही बड़े बड़े पत्थर रखकर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने, गारे आदि से न जोड़े गए हों। (बुंदेल०)।

ररक†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ररकने का भाव। कसक। साल। टीस।

ररकना†—क्रि० अ० [अनु०] कसकना। किरकिराना। सालना। पीड़ा देना। टीसना। उ०—सपने कि सौति करचौ सोवत कि जागत ही जानी न परति रोम रोम ररकत है।—देव (शब्द०)।

ररनाⓅ[१]—क्रि० अ० [हिं० रलना वा सं० ललन] दे० 'रलना'। उ०—जीवन अधार प्यारे आँखिन में आय छाय हाय हाय अंग अंग संग रंग ररे हौ।—घनानंद, पृ० १३७।

ररना†[२]—क्रि० अ० [सं० रटन, प्रा० रडन] लगातार एक ही बात कहना। बार बार कहना। रटना। उ०—(क) पिय पिय

चातक जों ररी मरै सेवात पियास।—जायसी (शब्द०)। (ख) हरि हरि हौं हा हा ररौ हरे हरे हरि रारि।—केशव (शब्द०)। (ग) बदन उघारत ही मदन सुयोधन ही द्रौपदी ज्यों नाउँ मुख तेरोई ररति है।—केशव (शब्द०)।

रराट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रराटी] ललाट [को०]।

ररिहाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० ररना + हा (प्रत्य०)] १. ररनेवाला। २. रटुवा या रुरुग्रा नामक पक्षी जो उल्लू की जाति का है। ३. बार बार गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। माँगने की धुन लगानेवाला। भारी मंगन। उ०—द्वारे हौं भोर ही को ग्राजु। रटत ररिहा ग्रारि ग्रौर न कौरही तें काजु।—तुलसी (शब्द०)।

ररी[1]—वि० [हिं० रार (=झगड़ा)] रार करनेवाला। झगड़ालू।

ररी[2]—वि० [हिं० ररना] १. बहुत गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। भारी मंगन। २. ग्रधम। नीच। उ०—काम पड़ने पर ग्रपने एक भाई को कह डालें कि तुम नीच हो, जाति में हेठे हो, ररी हो, षटकुल में नहीं हो।—बालकृष्ण भट्ट (शब्द०)।

रलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

रलनाⓅ—क्रि० ग्र० [सं० ललन (=लुब्ध होना)] एक में मिलना। सम्मिलित होना। उ०—(क) माल लसै धवली गर मैं कर दीन दयाल रली मुरली है।—दीनदयाल (शब्द०)। (ख) चली पीठ दै दृष्टि फिरावति ग्रंग ग्रानंद रली।—सूर (शब्द०)। (ग) कुंज ते कुंज रली रस पुंज मैं गुंजति डोलति भौरी भई हैं।—सुंदर (शब्द०)।

यौ०—रलना मिलना = घुलना मिलना। मिलना जुलना। एक हो जाना।

रलानाⓅ—क्रि० स० [हिं० रलना का सक० रूप] एक में मिलाना। संमिलित करना।

रली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ललन (=केलि, क्रीड़ा)] १. बिहार। क्रीड़ा। उ०—खरी पातरी कान की कौन बहाऊँ बानि। ग्राक कली न रली करै ग्रली ग्रली जिय जानि।—बिहारी (शब्द०)। २. ग्रानंद। प्रसन्नता। उ०—विविधि कियो ब्याह बिधि वसुदेव मन उपजी रली।—सूर (शब्द०)।

यौ०—रँगरली। रंगरलियाँ।

रली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चेना नामक ग्रन्न।

रल्लⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० रेला] रेला। हल्ला। उ०—(क) दल दक्खिनी करि रल्ल। मिलि गए लै भुज भल्ल।—सूदन (शब्द०)। (ख) धरि धरि ग्रायुध हथ्थ गथ्थ के गथ्थ उछल्लिय। दै दै दिग्घ निसान करत ग्रापुस मैं रल्लिय।—सूदन (शब्द०)।

रल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मृग। २. ऊनी कंबल। ऊर्णावस्त्र (को०)। ३. बरौनी। पक्ष्म (को०)।

रव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुंजार। ध्वनि। नाद। उ०—(क) कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कलहंस पिक सुक सरक रव करि गान नार्चाहं ग्रपसरा।—तुलसी (शब्द०)। २. ग्रावाज। शब्द। ३. शोर। गुल।

रवⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० रवि] सूर्य। उ०—पावते मरम तौ न ग्रावते जनक धाम जानहौं रूप देख बरहै रव के।—हृदयराम (शब्द०)।

रव[3]—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज की चाल या गति। रूम। (लश०)।

रवक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] रेंड़ नामक वृक्ष।

रवक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे मोती जो एक धरण (परिमाण) में ३० चढ़ते हों। २. तीस मोतियों का लच्छा जो तौल में बत्तीस रत्ती का हो।

रवकना—क्रि० ग्र० [हिं० रमना (=चलना)] १. जल्दी से ग्रागे बढ़ना। दौड़ना। लपकना। उ०—(क) सेमर खजूर जाय पूर रही शूर मग ताही के तुरंग तहाँ देख रवकत हैं।—हृदयराम (शब्द०)। (ख) नैन मीन सरवर ग्रानन मैं चंचल करत विहार। मानो कर्णफूल चारा को रवकत बारंबार।—सूर (शब्द०)। (ग) लीने बसन देखि ऊँचे द्रुम रवकि चढ़नि बलबीर की।—सूर (शब्द०)। (घ) परम सनेह बढ़ावत मातनि रवकि रवकि हरि बैठत गोद।—सूर (शब्द०)। २. उमगना। उछलना। उ०—यह ग्रति प्रबल स्याम ग्रति कोमल रवकि रवकि उर परते।—सूर (शब्द०)।

रवण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँसा नामक धातु। २. रव। शब्द। ३. कोयल। ४. ऊँट। ५. विदूषक या भाँड़।

रवण[2]—वि० १. शब्द करता हुग्रा। २. गरम। तप्त। ३. ग्रस्थिर। चंचल।

रवण—वि० [संज्ञा पुं० (सं० रमण)] दे० 'रमन'।

रवणरेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० रमण + रेती] गोकुल के समीप यमुना किनारे की रेतीली भूमि, जहाँ श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ खेला करते थे।

रवताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं रावत + ग्राई (प्रत्य०)] १. राजा या रावत होने का भाव। २. प्रभुत्व। स्वामित्व। उ०—घन सों खेल खेल सह पेमा। रवताई ग्रौ कूसल खेमा।—जायसी (शब्द०)।

रवथ—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

रवनⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० रमण] पति। स्वामी। उ०—पिय निठुर बचन कहे कारन कवन। जानत हौ सबके मन को गति मृदु चित परम कृपाल रवन।—तुलसी (शब्द०)।

रवन[2]—वि० रमण करनेवाला। क्रीड़ा करनेवाला। उ०—(क) राग रवन भाजन भवन शोभन श्रवण पवित्र।—केशव (शब्द०)। (ख) मन मन मनहुँ मिलिंद, रहत पास तव चरन के। करहु कृपा गोविंद, राधारवन कृपायतन।—गोपाल (शब्द०)।

रवना[1]—क्रि० ग्र० [सं० रमण] क्रीड़ा करना। रमण करना। उ०—जैसी रवै जयश्री करवालहिं। ज्यों ग्रलिनी जलजात रसालहिं।—केशव (शब्द०)।

रवना[2]—क्रि० ग्र० [हिं० रव (=शब्द०)] शब्द करना। बोलना।

रवना†[3]—संज्ञा पुं० [सं० रावण] दे० रावण। उ०—बहुतहिं ग्रसगढ़ कीन्हेस जोबना। ग्रंत भई लंकापति रवना।—जायसी (शब्द०)।

रवनि, रवनीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० रमणी] १. स्त्री। भार्या। पत्नी। उ०—(क) राज रवनि गावत हरि को यश। रुदन करत सुत को समुझावति राखति श्रवणनि प्याइ सुधारस। —सूर (शब्द०)। (ख) गर्भस्रवहि अवनी रवनि सुनि कुठार गति घोर। परसु अछत देखउँ जियत बैरी भूप किशोर। —तुलसी (शब्द०)। २. रमणी। सुंदरी।

रवन्ना[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० रवाना] १. वह नौकर जो स्त्रियों के काम काज करने वा सौदा सुलफ लाने को ड्योढ़ी पर रहता है। (मुसल०)। २. वह कागज जिसपर रवाना किए हुए माल का ब्योरा होता है। ३. चुंगी आदि की वह रसीद या इसी प्रकार का कोई प्रमाणपत्र जो किसी जानेवाली चीज के साथ रहता है। राहदारी का परवाना।

रवन्ना[२]—वि० [फ़ा० **रवानह्**] दे० 'रवाना'।

रवाँ—वि० [फ़ा०] बहता हुआ। प्रवाहित। २. जारी। चलता हुआ। ३. मश्क किया हुआ। घोटा हुआ। अभ्यस्त। ४. पैना। तेज। चोखा। (शस्त्र आदि)। ५. दे० 'रवाना'।

रवाँस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बोड़ा या लोबिया जिसकी तरकारी बनती है।

रवा[१]—संज्ञा पुं० [सं० रज, प्रा० **रअ** (=धूल)] १. किसी चीज का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। दाना। रेजा। जैसे,—चाँदी का रवा; मिस्री का रवा।

मुहा०—**रवा भर**=बहुत थोड़ा। जरा सा।

२. सूजी। ३. बारूद का दाना। ४. घुघरुओं में शब्द करने के लिये डालने के छर्रे।

रवा[२]—वि० [फ़ा०] १. उचित। ठीक। वाजिब। २. प्रचलित। चलनसार।

रवाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह बात या कार्य जो किसी वंश, समाज या नगर आदि में बहुत दिनों से बराबर होता चला आया हो। परिपाटी। चाल। प्रथा। रस्म। चलन। रीति।

क्रि० प्र०—**चलना**।—**पाना**।—**होना**।

मुहा०—**रवाज देना**=प्रचलित करना। जारी करना। **रवाज पकड़ना**=धीरे धीरे प्रचार पा जाना। प्रचलित होना। जारी होना।

रवादक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धन को हजम कर लिया हो।

रवादार[१]—वि० [फ़ा० **रवा+दार** (प्रत्य०)] १. संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। २. शुभचिंतक। हितैषी।

रवादार[२]—वि० [हिं० **रवा**+फ़ा० **दार**] जिसमें कण या दाने हों। दानेदार। रवेवाला।

रवानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रवाना होने की क्रिया या भाव। प्रस्थान। चाला।

रवाना—वि० [फ़ा० **रवानह्**] १. जिसने कहीं से प्रस्थान किया हो। जो कहीं से चल पड़ा हो। जो बिदा या रुखसत हुआ हो। प्रस्थित। २. भेजा हुआ।

रवानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रवाँ होने का भाव। बहाव। प्रवाह। २. तीक्ष्णता। धार। तेजी (को०)। ३. बिदाई। रुखसती। (क्व०)।

रवाब संज्ञा पुं० [अ० **रबाब**] दे० 'रबाब'।

रवाबिया[१]—संज्ञा पुं० [देश०] लाल बलुआ पत्थर।

रवाबिया[२]—संज्ञा पुं० [अ० **रबाबिया**] दे० 'रबाबिया'।

रवायत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कहानी। किस्सा। २. कहावत।

रवारवी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **रवा**+अनु० **रवी**] १. जल्दी। शीघ्रता। २. भागाभाग। दौड़ादौड़।

रवासन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके बीज और पत्ते औषधि के रूप में काम में आते हैं।

रवि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार का पेड़। आक। ३. अग्नि। उ०—बोले रवि नृप हवि यह लीजै। यथायोग्य निज रानिन दीजै।—विश्राम (शब्द०)। ४. नायक सरदार। ५. लाल अशोक का वृक्ष। ६. पुराणानुसार एक आदित्य का नाम। ७. एक पर्वत का नाम। ८. महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम। ६. बारह की संख्या (को०)।

रविकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण।

रविकांतमणि—संज्ञा पुं० [सं० **रविकान्तमणि**] सूर्यकांत नामक मणि। विशेष दे० 'सूर्यकांत'।

रविकुल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंश।

विशेष—इस शब्द के अंत में रवि, मणि आदि शब्द लगने से उसका अर्थ 'रामचंद्र' होता है। जैसे,—रविकुल रवि, रविकुल मणि।

रविग्रह, रविग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यग्रहण [को०]।

रविग्रावा—संज्ञा पुं० [सं० **रविग्रावन्**] सूर्यकांत मणि [को०]।

रविचंचल—संज्ञा पुं० [सं० रविचञ्चल] लोलार्क नामक तीर्थस्थल जो काशी में है। उ०—रविचंचल अरु ब्रह्मद्रव बीच सुबास बिचारि तुलसीदास आसन करे अवनिसुता उर धारि।—सुधाकर (शब्द०)।

रविचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का मंडल। २. सूर्य के रथ का पहिया। ३. फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जो मनुष्य के शरीर के आकार का होता है और जिसमें यथास्थान नक्षत्र आदि रखकर बालक के जीवन की शुभ और अशुभ बातें जानी जाती हैं।

रविज—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर, जिनकी उत्पत्ति रवि या सूर्य से मानी जाती है। दे० 'रवितनय'।

रविजकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु या पुच्छल तारे जिनकी उत्पत्ति सूर्य से मानी गई है।

विशेष—कहते हैं, इनका आकार प्रायः हार के समान और वर्ण सोने के समान होता है और ये पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई देते हैं।

रविजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना। कालिंदी।

रविजात—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण।

रविजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० रविजेन्द्र] जैनों के एक आचार्य का नाम।

रवितनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमराज। २. सावर्णि मनु। ३. वैवस्वत मनु। ४. शनैश्चर। ५. सुग्रीव। ६. कर्ण। ७. अश्विनीकुमार। ८. बाली का एक नाम (को०)।

रवितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या, यमुना। उ०—(क) गए श्याम रवितनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी।—सूर (शब्द०)। (ख) जमुना जल बिहरत नंदनंदन संग मिली सुकुमारि। सूर धन्य धरनी वृंदाबन रवितनया सुखकारि।—सूर (शब्द०)।

रवितनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

रवितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रविदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार। एतवार।

रविध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। दिवस [को०]।

रविनंद, विनंदन—संज्ञा पुं० [सं० रविनन्द, रविनन्दन] १. कर्ण। उ०—गुरुहि नाइ सिर भेंटि पुनि अति हित द्रोण कुमार। मग महँ मिलि रविनंदनहिं जात भए आगार।—सबल (शब्द०)। २. सुग्रीव। उ०—रविनंदन जब मिले राम को अरु भेंटें हनुमान। अपनी बात कही उन हरि सों बालि बड़ो बलवान।—सूर (शब्द०)। ३. सावर्णि मनु। ४. वैवस्वत मनु। ५. शनि। ६. यम। उ०—काहे को सोच करे रसखानि कहा करिहै रविनंद विचारो। ७. अश्विनीकुमार।

रविनंदिनि(पु), रविनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [रविनन्दिनी] यमुना। उ०—विधि निषेधमय कलिमल हरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी।—तुलसी (शब्द०)।

रविनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्म। कमल। २. दुपहरिया का फूल। बंधुजीव। बंधूक (को०)।

रविनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

रविपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रविनंदन'।

रविपूत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रवि+हिं० पूत] दे० 'रविनंदन'।

रविप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल कमल। २. ताँबा। ३. लाल कनेर। ४. मदार। आक। ५. लकुच या लकुट नामक फल या उसका वृक्ष।

रविप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार देवी की एक मूर्ति।

रविबिंब—संज्ञा पुं० [सं० रविबिम्ब] १. सूर्य का मंडल। २. माणिक्य। मानिक।

रविमंडल—संज्ञा पुं० [सं० रविमण्डल] वह लाल मंडल या गोला जो सूर्य के चारों ओर दिखाई देता है। रविबिंब। उ०—(क) जयति वात संजात जयति रविमंडल ग्रासक।—विश्राम (शब्द०)। (ख) रविमंडल जनु जाल काटि विधि धरे नखत गन।—गिरधर (शब्द०)।

रविमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

रविरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत नामक मणि।

रविरत्नक—[सं०] माणिक्य। मानिक।

रविलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव (को०)।

रविलौह—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

रविवंश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकुल।

रविवंशी—संज्ञा पुं० [सं० रविवंशिन्] सूर्यकुल में उत्पन्न। सूर्यवंशी।

रविवाण—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाण जिसके चलाने से सूर्य का सा प्रकाश उत्पन्न हो। उ०—खग शायक पिप्पील प्रमाणा। अंधकार औरहु रविवाणा।—सबल (शब्द०)।

रविवार—संज्ञा पुं० [सं०] सप्ताह के सात दिनों या वारों में से एक जो सूर्य का वार माना जाता है और जो शनिवार के बाद तथा सोमवार के पहले पड़ता है। आदित्यवार। एतवार। उ०—फागुन बदि चौदस शुभ दिन औ रविवार सुहायो।—सूर (शब्द०)।

रविवासर—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार। एतवार।

रविश—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. गति। चाल। २. तौर। तरीका। ढंग। ३. क्यारियों के बीच में चलने के लिये बना हुआ छोटा मार्ग।

क्रि० प्र०—कटना।—काटना।

रविसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० रविसङ्क्रान्ति] सूर्य का एक राशि में से दूसरी राशि में जाना। सूर्यसंक्रमण। विशेष दे० 'संक्रांति'।

रविसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

रविसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के सारथि। अरुण। २. अरुणोदय। उषःकाल (को०)।

रविसुंदर—संज्ञा पुं० [सं० रविसुन्दर] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो भगंदर के लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

रविसुअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रविसूनु] १. सूर्य के पुत्र, अश्विनीकुमार। उ०—किधौं रविसुअन मदन ऋतुपति किधौं हरिहर वेष बनाए।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० 'रविनंदन'।

रविसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रविनंदन'।

रविसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रविनंदन'।

रवीषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रवैया†—संज्ञा पुं० [फ़ा० रविश या रवाँ+ऐया (प्रत्य०)] १. चलन। चाल चलन। २. तौर तरीका। ढंग।

यौ०—रंग रवैया = रंग ढंग। तौर तरीका।

रशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जीभ। २. रस्सी। ३. करधनी। तागड़ी। ४. लगाम। वल्गा (को०)।

रशनाकलाप—संज्ञा पुं० [सं०] धागे आदि की बनी हुई एक प्रकार की करधनी जो प्राचीन काल में स्त्रियाँ कमर में पहनती थीं।

रशनागुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रशनाकलाप'।

रशनोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसनोपमा नामक अलंकार। विशेष दे० 'रसनोपमा'।

रश्क—संज्ञा पुं० [फा०] १. किसी दूसरे को अच्छी दशा में देखकर होनेवाली जलन या कुढ़न। ईर्ष्या। डाह। २. लज्जा। शरम। (क्व०)।

रश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। २. पलक के रोएँ। बरौनी। ३. घोड़े की लगाम। बाग। ४. रज्जु। रस्सी (को०)। ५. चाबुक। अंकुश (को०)। ६. नापने की रस्सी (को०)।

रश्मिकलाप—संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों का वह हार जिसमें ६४ या ५४ लड़ियाँ हों।

रश्मिकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम। २. वह केतु या पुच्छल तारा जो कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होकर उदित हो। कहते हैं, इसकी चोटी में धूआँ रहता है और इसका फल सातवें केतु के समान होता है।

रश्मिक्रीड़—संज्ञा पुं० [सं० रश्मिक्रीड] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।

रश्मिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] सारथी [को०]।

रश्मिपति—संज्ञा पुं० [सं०] एक क्षुप। आदित्यपत्र [को०]।

रश्मिप्रभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

रश्मिमाली—संज्ञा पुं० [सं० रश्मिमालिन्] सूर्य [को०]।

रश्मिमुच—संज्ञा पुं० [सं० रश्मिमुच्] सूर्य [को०]।

रस—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अनुभव जो मुँह में डाले हुए पदार्थों का रसना या जीभ के द्वारा होता है। खाने की चीज का स्वाद। रसनेंद्रिय का संवेदन या ज्ञान।

विशेष- हमारे यहाँ वैद्यक में मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय ये छह रस माने गए हैं और इनकी उत्पत्ति भूमि, आकाश, वायु और अग्नि आदि के संयोग से जल में मानी गई है। जैसे—पृथ्वी और जल के गुण की अधिकता से मधुर रस, पृथ्वी और अग्नि के गुण की अधिकता से अम्ल रस, जल और अग्नि के गुण की अधिकता से तिक्त रस और पृथ्वी तथा वायु की अधिकता से कषाय रस उत्पन्न होता है। इन छहों रसों के मिश्रण से और छत्तीस प्रकार के रस उत्पन्न होते हैं। जैसे,—मधुराम्ल, मधुरतिक्त, अम्ललवण, अम्लकटु, लवणकटु, लवणतिक्त, कटुतिक्त, तिक्तकषाय आदि। भिन्न भिन्न रसों के भिन्न भिन्न गुण कहे गए हैं। जैसे,—मधुर रस के सेवन से रक्त, मांस, मेद, अस्थि और शुक्र आदि की वृद्धि होती हैं; अम्ल रस जारक और पाचक माना गया है; लवण रस पाचक और संशोधक माना गया है; कटु रस पाचक, रेचक, अग्निदीपक और संशोधक माना गया है; तिक्त रस रुचिकर और दीप्तिवर्धक माना गया है; और कषाय रस संग्राहक और मल, मूत्र तथा श्लेष्मा आदि को रोकनेवाला माना गया है। न्याय दर्शन के अनुसार रस नित्य और अनित्य दो प्रकार का होता है। परमाणु रूप रस नित्य और रसना द्वारा गृहीत होनेवाला रस अनित्य कहा गया है।

२. छह की संख्या। ३. वैद्यक के अनुसार शरीर के अंदर की सात धातुओं में से पहली धातु।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार मनुष्य जो पदार्थ खाता है, उससे पहले द्रव स्वरूप एक सूक्ष्म सार बनता है, जो रस कहलाता है। इसका स्थान हृदय कहा गया है, जहाँ से यह धमनियों द्वारा सारे शरीर में फैलता है। यही रस तेज के साथ मिलकर पहले रक्त का रूप धारण करता है और तब उससे मांस, मेद, अस्थि, शुक्र आदि शेष धातुएँ बनती हैं। यदि यह रस किसी प्रकार अम्ल या कटु हो जाता है, तो शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। इसके दूषित होने से अरुचि, ज्वर, शरीर का भारीपन, कृशता, शिथिलता, दृष्टिहीनता आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं।

पर्या०—रसिका। स्वेदमाता। चर्माम्भ। चर्मसार। रक्तसार।

४. किसी पदार्थ का सार। तत्व। ५. साहित्य में वह आनंदात्मक चित्तवृत्ति या अनुभव जो विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त किसी स्थायी भाव के व्यंजित होने से उत्पन्न होता है। मन में उत्पन्न होनेवाला वह भाव या आनंद जो काव्य पढ़ने अथवा अभिनय देखने से उत्पन्न होता है।

विशेष—हमारे यहाँ आचार्यों में इस विषय में बहुत मतभेद है कि रस किसमें तथा कैसे अभिव्यक्त होता है। कुछ लोगों का मत है कि स्थायी भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से उन लोगों में होती है, जिनके कार्यों का अभिनय किया जाता है (जैसे,—राम, कृष्ण, हरिश्चंद्र आदि), और गौण रूप से अभिनय करनेवाले नटों में होती है। अतः इन्हीं में ये लोग रस की स्थिति मानते हैं। ऐसे आचार्यों का मत है कि अभिनय देखनेवालों या काव्य पढ़नेवालों के साथ रस का कोई संबंध नहीं है। इसके विपरीत अधिक लोगों का यह मत है कि अभिनय देखनेवालों तथा काव्य पढ़नेवालों में ही रस की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे लोगों का कथन है कि मनुष्य के अंतःकरण में भाव पहले से ही विद्यमान रहते हैं; और काव्य पढ़ने अथवा नाटक देखने के समय वही भाव उद्दीप्त होकर रस का रूप धारण कर लेते हैं। और यही मत ठीक माना जाता है। तात्पर्य यह कि पाठकों या दर्शकों को काव्यों अथवा अभिनयों से जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है, साहित्य शास्त्र के अनुसार वही रस कहलाता है।

हमारे यहाँ रति, हास, शोक, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन नौ स्थायी भावों के अनुसार नौ रस माने गए हैं; जिनके नाम इस प्रकार हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। दृश्य काव्य के आचार्य शांत को रस नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह तो मन की स्वाभाविक भावशून्य अवस्था है। निर्वेद मन का कोई विकार नहीं है। अतः वे रसों की संख्या आठ ही मानते हैं। और

कुछ लोग इन नौ रसों के सिवा एक और दसवाँ रस 'वात्सल्य' भी मानते हैं।

६. नौ की संख्या। ७. सुख का अनुभव। आनंद। मजा। उ०—(क) यह जानिए बर दीन। पितु ब्रह्म के रसलीन।—केशव (शब्द०)। (ख) जेहि किए जीव निकाय बस रस हीन दिन दिन अति नई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) औंठ खंडिए कौ अर्यो मुख सुवास रस मत्त। स्याम रूप नँदलाल अलि नहिं अलि अलि उन्मत्त।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—रस भीजना या भींनना=(१) किसी पदार्थ का ऐसा समय आना जब उसके द्वारा आनंद उत्पन्न हो। मजे का वक्त आना। (२) तरुणाई प्रकट होना। यौवन का आरंभ या संचार होना। उ०—ह्याँ इनके रस भीजत त्यों दृग ह्वाँ उनके मसि भीजत आवैं।—पद्माकर (शब्द०)।

८. प्रेम। प्रीति। मुहब्बत।

यौ०—रस रंग=(१) प्रेम के द्वारा उत्पन्न होनेवाला आनंद। मुहब्बत का मजा। (२) प्रेमक्रीड़ा। केलि। रस रीति=प्रेम के व्यवहार। मुहब्बत का बरताव। उ०—(क) प्रीति को वधिक रसरीति को अधिक नीति निपुन विवेक है निदेस देसकाल को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इष्ट मिलै और मन मिलै मिलै सकल रस रीति।—कबीर (शब्द०)। रस की रीति=रसरीति। उ०—और को जानै रस की रीति। कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति। चतुरानन तन निमिष न चितवत इती राज की नीति।—सूर (शब्द०)।

९. कामक्रीड़ा। केलि। बिहार। उ०—दलित कपोल रद दलित अधर रुचि रसना रसनि रस रस में रिसाति है।—केशव (शब्द०)। १०. उमंग। जोश। वेग। उ०—(क) आजानबाहु परकाज रत स्वामिभक्त रस रंग नय।—गुमान (शब्द०) (ख) जय कारन प्रन किए करत रस रत ललकारन। स्याम अनुज बल धाम बने सँग सुभट हजारन।—गोपाल (शब्द०)। ११. गुण। सिफत। उ०—(क) सम रस समर सकोच बस बिबस न ठिकु ठहराय। फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तिहूँ देवन की द्युति सी दरसै गति सोषै त्रिदोषन के रस की।—केशव (शब्द०)। १२. किसी विषय का आनंद। उ०—जो जो जेहि जेहि रस मगन, तहँ सो मुदित मन मानि।—तुलसी (शब्द०)। १३. कोई तरल या द्रव पदार्थ। १४. जल। पानी। १५. वनस्पतियों या फलों आदि में का वह जलीय अंश जो उन्हें कूटने, दबाने या निचोड़ने आदि से निकलता है। जैसे,—ऊख का रस, आम का रस, तुलसी का रस, अदरक का रस। १६. शोरबा। जूस। रसा। १७. वह पानी जिसमें मीठा या चीनी घुली हुई हो। शरबत। १८. वृक्ष का निर्यास। जैसे,—गोंद, दूध, मद आदि। १९. लासा। लुआब। २०. घोड़ों और हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैरों में से जहरीला पानी बहता है। २१. वीर्य। २२. राग। २३. विष। जहर। २४. पारा। २५. हिंगुल। शिंगरफ। २६. वैद्यक में धातुओं को फूँककर तैयार किया हुआ भस्म, जिसका व्यवहार औषध के रूप में होता है। जैसे,—रससिंदूर। २९. पहले खिंचाव का शोरा जो बहुत तेज और अच्छा होता है। ३०. आनंदस्वरूप ब्रह्म। (उपनिषद्)। ३१. केशव के अनुसार रगण और सगण। उ०—मगन नगन को मित्र गनि यगन भगन को दास। उदासीन जत जानिए रस रिपु केशव दास।—केशव (शब्द०)। ३२. बोल नामक गंधद्रव्य। ३३. एक प्रकार की भेड़ जो गिलगित्त (गिलगिट) से उत्तर और पामीर में पाई जाती है। ३४. भाँति। तरह। प्रकार। रूप। उ०—एक ही रस दुनी न हरष सोक साँसति सहति।—तुलसी (शब्द०)। ३५. मन की तरंग। मौज। इच्छा। उ०—तिनका बयारि के बस। ज्यौं भावै त्यौं उड़ाइ लै जाइ अपने रस।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३६. सोना (को०)। ३७. दूध। जैसे—गोरस (को०)।

रसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिटकिरी। २. खपरिया। संगे बसरी। ३. मांस का रसा। शोरबा (को०)।

रसककार वेल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] पतला खपरिया। संगे बसरी।

रसक दर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] दलदार मोटा खपरिया या संगे बसरी।

रसकपूर—संज्ञा पुं० [सं० **रसकर्पूर**] सफेद रंग की एक प्रकार की प्रसिद्ध उपधातु जिसका व्यवहार औषध में होता है।

विशेष—यह प्रायः ईंगुर के समान होता है; इसीलिये इसे कुछ लोग सफेद शिंगरफ भी कहते हैं। एक और प्रकार का रसकपूर होता है, जो वास्तव में पारे की सफेद भस्म होती है। इसका व्यवहार प्रायः यूनानी चिकित्सा में होता है और यह खुजली, उपदंश आदि में उपयोगी माना जाता है।

रसकर्म—संज्ञा पुं० [सं० **रसकर्मन्**] पारे की सहायता से रस आदि तैयार करने की क्रिया। (वैद्यक)।

रसका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र कुष्ट रोग।

रसकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुशद्वीप की एक नदी का नाम।

रसकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिहार। क्रीड़ा। २. हँसी। ठट्ठा। दिल्लगी। मजाक।

रसकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

रसकेसरी—संज्ञा पुं० [सं० **रसकेशरिन्**] एक प्रकार की रसौषध जो पारे, गंधक और लौंग आदि के मेल से तैयार की जाती है, और अरुचि, अग्निमांद्य, आमवात, विसूचिका, आदि रोगों में उपयोगी मानी जाती है (वैद्यक)।

रसकोरा—संज्ञा पुं० [हिं० रस+कौर] रसगुल्ला नाम की मिठाई। उ०—हरिवल्लभ अरु रमा विलासे। रसकोरे बोरे रस खासे।—रघुराज (शब्द०)।

रसखर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] खपरिया। संगबसरी।

रसखान²—वि० [हिं०] रसयुक्त। रसवाला। प्रेमी। उ०—क्या बताऊँ क्यों नहीं आए सजन रसखान ? रे कवि लिख विरह के गान।—श्वासि, पृ० ५।

रसखान³—संज्ञा पुं० [हिं० रस + खान] एक भक्त कवि जो गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य और उनके २५२ मुख्य शिष्यों में थे। इनका समय संवत् १६४० से १६८५ मान्य है।

रसखीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + खीर] चीनी के शर्बत अथवा ऊख के रस में पकाए हुए चावल। मीठा भात।

रसगंध—संज्ञा पुं० [सं० रसगन्ध] दे० 'रसगंधक'।

रसगंधक—संज्ञा पुं० [सं० रसगन्धक] १. गंधक। २. बोल नामक गंध द्रव्य। ३. रसौत। रसांजन। ४. हिंगुल। शिगरफ। ईंगुर।

रसगत ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर की रसधातु में समाया हुआ ज्वर।

विशेष—कहते हैं कि ज्वर अधिक दिनों का हो जाने से शरीर के रस तक में पहुँच जाता है और उससे ग्लानि, वमन और अरुचि आदि होती है।

रसगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसौत। रसांजन। २. शिगरफ। हिंगुल। ईंगुर।

रसगुनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० रस + गुणी] काव्य या संगीत शास्त्र का ज्ञाता। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामाँ को मेरु सरस भयौ और रसगुनी परे फीके—हरिदास (शब्द०)।

रसगुल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० रस + गोला] एक प्रकार की छेने की मिठाई जो गुलाब जामुन के समान गोल होती है और शीरे में पगी हुई होती है।

रसग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ।

रसघन¹—संज्ञा पुं० [सं०] आनंदघन, श्रीकृष्ण चंद्र।

रसघन²—वि० जो बहुत अधिक स्वादिष्ट हो।

रसघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

रसछन्ना†—संज्ञा पुं० [हिं० रस + छन्ना (=छानने की चीज)] [स्त्री० अल्पा० रसछन्नी] ऊख का रस छानने की चलनी।

रसज—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़। २. रसौत। रसांजन। ३. शराब की तलछट। सुराबीज।

रसजात—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत। रसांजन।

रसज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रसज्ञा] १. वह जो रस का ज्ञाता हो। रस जाननेवाला। २. काव्यमर्मज्ञ। साहित्य के मर्म का जानकार। ३. रसायनी। ४. निपुण। कुशल। जानकार।

रसज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसज्ञ होने का भाव।

रसज्ञा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा। २. जीभ।

रसज्ञा²—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'रसज्ञ'।

रसज्येष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर या मीठा रस। २. शृंगार रस जो साहित्य में नौ रसों में प्रधान है।

रसडली—संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + डली] एक प्रकार का गन्ना जिसका रंग पीलापन लिए हरा होता है और जो प्रायः बीजापुर और उसके आस पास बहुत होता है। रसवली।

रसड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रसरी] दे० 'रसरी'। उ०—प्रेम रसड़ी बाँधी गले। खैंचे चले उधर चले।—दक्खिनी०, पृ० १००।

रसणा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० रसना] दे० 'रसना'। उ०—दान सदा वितसारं देवैं, नित रसणा लेवैं हरिनाम।—रघु० रू०, पृ० २४।

रसतन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच तन्मात्राओं या महत्तत्वों में से चौथे तत्व जल की तन्मात्रा। (सांख्य)। विशेष दे० 'तन्मात्र'।

रसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस का भाव या धर्म। रसत्व।

रसतालेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस।

विशेष—इसका व्यवहार कुष्ठ रोग में होता है। यह शंख, करंज, हलदी, भिलावा, चाकुआर, गदहपूरना, गंधक, पारे और बिडंग आदि के योग से बनाया जाता है।

रसतेज—संज्ञा पुं० [सं० रसतेजस्] रक्त। लहू। खून।

रसत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] दूध, दही, घी, तेल, मीठा पकवान आदि स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना, जो एक प्रकार का नियम या आचार माना जाता है। (जैन)।

रसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] रस का भाव या धर्म। रसता।

रसद¹—वि० [सं०] १. आनंददायक। सुखद। उ०—(क) रसद बिहारी वंदे वल्लभा राधिका निस दिन रंग रँगी।—स्वा० हरिदास (शब्द०)। (ख) रसद श्री हरिदास बिहारी अंग अंग मिलत अतन उदोत करत सुरति आरभटी।—हरिदास (शब्द०) २. स्वादिष्ट। मजेदार। जायकेदार।

रसद²—संज्ञा पुं० चिकित्सा करनेवाला। इलाज करनेवाला व्यक्ति।

रसद³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह जो बँटने पर हिस्से के अनुसार मिले। बाँट। बखरा।

मुहा०—**हिस्सा रसद** = बँटने पर अपने अपने हिस्से के अनुसार लाभ।

२. कच्चा अनाज जो पकाया न गया हो। भोजन बनाने के लिये अन्न आदि। गल्ला। ३. सेना का वह खाद्य पदार्थ जो उसके साथ रहता है।

रसदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निर्गुंडी। सँभालू। सिंधुआर।

रसदार—वि० [हिं० रस + दार (प्रत्य०)] १. जिसमें किसी प्रकार का रस हो। रसवाला। जैसे,—रसदार आम, रसदार नींबू। २. स्वादिष्ठ। मजेदार। ३. झोलदार। शोरबेदार। रसवाला।

रसदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौंढ़ा। गन्ना।

रसद्रावी—संज्ञा पुं० [सं० रसद्राविन्] मीठा जँबीरी। नीबू।

रसधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. शरीर की सात धातुओं में से रस नामक धातु। विशेष दे० 'रस'।

रसधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार गुड़ आदि की बनाई हुई वह गौ जो दान की जाती है ।

रसन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वाद लेना । चखना । २. ध्वनि । ३. जीभ । जबान । ४. कफ का एक नाम ।

रसन[2]—वि० पसीना लानेवाला (औषध आदि) ।

रसन[3]—संज्ञा पुं० [सं० रशना या अं० लासन] रस्सा । (लश०) ।

रसना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिह्वा । जीभ । जबान ।

यौ०—**रसनामल** = जीभ की मैल । **रसनामूल** = जीभ का मूल भाग । **रसनारद** = दे० 'रसनारव' । **रसनालिह** = श्वान । कुत्ता ।

मुहा०—**रसना खोलना** = बोलना आरंभ करना । उ०—हीरामन रसना रस खोला । दै असीस करि अस्तुति बोला ।—जायसी (शब्द०) । **रसना तालू (तारू) से लगाना** = बोलना बंद करना । चुप होना । उ०—रसना तारू सो नहि लावत पीवै पीव पुकारत ।—सूर (शब्द०) ।

२. न्याय के अनुसार रस या स्वाद, जिसका अनुभव रसना या जीभ से किया जाता है । ३. रास्ना या नागदौनी नाम की ओषधि । ४. गंधभद्रा नाम की लता । ५. करधनी । मेखला । ६. रस्सी । रज्जु । ७. लगाम । ८. चंद्रहार ।

रसना[2]—क्रि० अ० [हिं० रस + ना (प्रत्य०)] १. धीरे धीरे बहना या टपकना । जैसे,—छत में से पानी रसना । २. गीला होकर या पानी से भरकर धीरे धीरे जल या और कोई द्रव पदार्थ छोड़ना या टपकाना । जैसे,—चंद्रकांत मणि चंद्रमा को देखकर रसने लगती है ।

मुहा०—**रस रस या रसे रसे** = धीरे धीरे । आहिस्ते आहिस्ते । शनैः शनैः । उ०—(क) रस रस सूख सरित सर पानी । ममता ज्ञान करहिं जिमि ज्ञानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) चंचलता अपनी तजिकै रस ही रस सों रस सुंदर पीजियो ।—परताप (शब्द०) ।

३. रस में मग्न होना । रस से पूर्ण होना । प्रफुल्लित होना । उ०—सूर प्रभु नागरी हँसति मन मन रसति बसत मन श्याम बड़े भागे ।—सूर (शब्द०) । ४. तन्मय होना । परिपूर्ण होना । उ०—(क) चंपकली दल हूँ ते भली पद अँगुलि बाल की रूप रसे हैं ।—केशव (शब्द०) । (ख) बाँक विभूषण प्रेम ते जहाँ होहिं विपरीत । दर्शन रस तन मन रसत गनि विभ्रम के गीत ।—केशव (शब्द०) । ५. रसपान करना । रस लेना । उ०—शिवपूजन हित कनक के कुसुम रसत अलिजाल । मयन नृपति जग जीत की बजी मनौ करनाल ।—गुमान (शब्द०) । ६. प्रेम में अनुरक्त होना । मुहब्बत में पड़ना । उ०—(क) किन सँग रसलू किन सँग बसलू किन संग रचलू धमार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) तब गोपी रस रसीं राम किरपा द्विजराजो ।—सुधाकर (शब्द०) ।

रसनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पारा ।

रसनापद—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब । चूतड़ ।

रसनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन । रसौत ।

रसनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. पारद । पारा ।

रसनारव—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी, जिन्हें बोलने के लिये केवल जीभ ही होती है, दाँत नहीं होते ।

रसनिⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० रसन] स्वाद । चाट । उ०—जवनि रसनि लागी तुमहीं काँ तौनिउ रसनि मिटावहु ।—जग० बानी, पृ० २३ ।

रसनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] शाल का वृक्ष ।

रसनीय—वि० [सं०] १. स्वाद लेने योग्य । चखने लायक । २. स्वादिष्ठ । मजेदार ।

रसनेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० रसनेन्द्रिय] रसना, जिससे स्वाद या रस लिया जाता है । जीभ ।

रसनेत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

रसनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ऊख । गन्ना ।

रसनोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की उपमा जिसमें उपमाओं की एक शृंखला बँधी होती है और पहले कहा हुआ उपमेय आगे चलकर उपमान होता जाता है । यह 'उपमा' और 'एकावली' को मिलाकर बनाया गया है । इसे गमनोपमा भी कहते हैं । जैसे;—बंस सम बखत, बखत सम ऊँचो मन, मन सम कर, कर सम करी दान के ।

रसपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । उ०—राजपति रामापति रमापति राधापति रसपति रासपति रसापति रामपति ।—केशव (शब्द०) । २. पृथ्वीपति । राजा । ३. पारा । ४. रसराज । शृंगार रस । ५. धरती । पृथ्वी ।

रस परित्याग—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार दूध, दही, चीनी नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ बिल्कुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना ।

रसपर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे को शोधकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार संग्रहणी, बवासीर, ज्वर, गुल्म, जलोदर आदि में होता है ।

रसपाकज—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ । २. चीनी ।

रसपाचक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनानेवाला । रसोइया ।

रसपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की दवा जो गंधक, पारे और नमक से बनाई जाती ।

रसपूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मालकँगनी । २. शतावर ।

रसप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० रसप्रबन्ध] १. नाटक । २. वह कविता या काव्य जिसमें एक ही विषय बहुत से परस्पर संबद्ध पद्यों में कहा गया हो । प्रबंध काव्य ।

रसफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का वृक्ष । २. आँवला ।

रसबंधकर—संज्ञा पुं० [सं० रसबन्धकर] सोम लता ।

रसबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **रसबन्धन**] शरीर के अंतर्गत नाड़ी के एक अंश का नाम। (वैद्यक)।

रसबत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० रस + हिं० बत्ती] एक प्रकार का पलीता जिसका व्यवहार पुराने ढंग की तोपें और बंदूकें चलाने में होता था।

रसबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रसभरी'।

रसबेदⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रस + वेद] कामशास्त्र। उ०—मदनांकुस रसबेद मत, षट अंगुल परिमान। इह परकीरति जो पुरुष, सोई ससा बखान।—चित्रा०, पृ० २१३।

रसभरी—संज्ञा स्त्री० [अं० रैस्पबेरी] एक प्रकार का स्वादिष्ठ फल।

विशेष—पकने पर इसका रंग पीलापन लिए लाल हो जाता है। यह जाड़े के अंत में प्रायः बाजारों में मिलता है।

रसभव—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। खून। लहू।

रसभस्म—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म किया हुआ पारा। पारे का भस्म।

रसभीना—वि० [हिं० **रस + भीनना**] [वि० स्त्री० **रसभीनी**] १. आनंद में मग्न। २. आर्द्र। तर। गीला। उ०—शोभा सर लीन कुवलय रसभीन नलिन नवीन किधौं नैन बहु रंग हैं।—केशव (शब्द०)। ३. मादकता से पूर्ण। मस्ती देनेवाला। मस्त करनेवाला। रस से सराबोर करनेवाला।

रसभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे से तैयार की जाती है। २. साहित्य शास्त्र में रसों का भेदोपभेद। उ०—भावभेद रसभेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।—मानस, १।६।

रसभेदी—संज्ञा पुं० [सं० **रसभेदिन्**] वह पका हुआ फल जो रस आदि की अधिकता से फट जाय और जिसमें से रस बहने लगे।

रसमंडूर—संज्ञा पुं० [सं० **रसमण्डूर**] वैद्यक में एक प्रकार की रसौषध जो हड़ के योग से गंधक और मंडूर से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार शूल रोग में होता है।

रसम—संज्ञा स्त्री० [अ० **रस्म**] दे० 'रस्म'।

यौ०—रसमरिवाज।

रसमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में पारे को भस्म करने या मारने की क्रिया।

रसमल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से निकलनेवाला किसी प्रकार का मल। जैसे—विष्ठा, मूत्र, पसीना, थूक आदि।

रसमसाⓅ—वि० [हिं० **रस + मस** (अनु०)] [वि० स्त्री० **रसमसी**] १. रंग से मस्त। आनंदमग्न। अनुरक्त। उ०—खेलत अति रसमसे लाल रँग भीने हो। अतिरस केलि विशाल लाल रँगभीने हो।—सूर (शब्द०)। २. तर। गीला। उ०—दलदल जो हो रही है हरेक जा पै रसमसी। सर मर मिटा है मर्द तो औरत कहीं फँसी।—नजीर (शब्द०)। ३. पसीने से भरा। श्रांत।

रसमसानाⓅ—क्रि० अ० [हिं० **रसमस**] रंग वा आनंद में मग्न होना। रस बरसना।

रसमाणिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो हरताल से बनाई जाती है और जो कुष्ठ आदि रोगों में उपकारी मानी जाती है।

रसमाताⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **रसमातृका**] जीभ। रसना। जबान। (डिं०)।

रसमाता[2]—वि० [सं० **रसमत्त**] आनंद वा मद के कारण मत्त।

रसमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ। जबान।

रसमारण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वह क्रिया जिससे पारा मारा या शुद्ध किया जाता है।

रसमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिलारस नामक सुगंधित द्रव्य।

रसमि—संज्ञा स्त्री० [सं० **रश्मि**] १. किरण। उ०—तो जू मान तजहुगी भामिनि रवि की रसमि काम फल फीको। कीजे कहा समय बिनु सुंदरि भोजन पीछे अँचवन घी को।—सूर (शब्द०)। २. आभा। प्रकाश। चमक। उ०—बसन सपेद स्वच्छ पेन्हे आभूषण सब हीरन को मोतिन को रसमि अछेव को।—रघुनाथ (शब्द०)।

रसमुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + मुंडी ?] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

रसमैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो ऐसे रसों का मिलना जिनके मिलने से स्वाद में वृद्धि हो। दो रसों का उपयुक्त मेल। जैसे,—कड़ुआ और तीता; तीता और नमकीन; नमकीन और खट्टा आदि। २. साहित्य में रसों का उपयुक्त मेल।

रसयोग—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का औषध।

रसरस—क्रि० वि० [हिं० रसना] धीरे धीरे। शनैः शनैः। उ०—रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।—मानस, ४।१६।

रसरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री०, अल्पा० **रसरी**] दे० 'रस्सा'।

रसराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारद। पारा। उ०—रावन सो रसराज सुभट रस रहित लंक खल दलतो।—तुलसी (शब्द०)। २. रसों का राजा, श्रृंगार रस। उ०—जनु विधुमुख छबि अमिय को रच्छक रख्यो रसराज।—तुलसी (शब्द०)। ३. वैद्यक में एक प्रकार की औषधि जो ताँबे के भस्म, गंधक और पारे को मिलाकर बनाई जाती है और जिसका व्यवहार तिल्ली और बरवट आदि में होता है। ४. रसांजन। रसौत।

रसरायⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **रसराज**] श्रृंगार रस। दे० 'रसराज'।

रसरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० **रसना**, प्रा० **रसणा**] रस्सी। डोरी।

रसल—वि० [सं० **रस** + ल (प्रत्य०)] जिसमें रस हो। रसवाला उ०—विमल रसल रसखानि मिलि भई सकल रसखानि। सोई नव रसखानि को चित चातक रसखानि।—रसखान। (शब्द०)।

रसलह—संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

रसवंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० **रसवत्**] रसिया। प्रेमी। रसज्ञ। उ०—(क) रसवंत कबित्तन को रस ज्यौं अखरान के ऊपर ह्वै

झलकै ।--मन्नालाल (शब्द०) । (ख) सुजा के दिवान भगवंत रसवंत भए वृंदावनवासिनि की सेवा ऐसी करी है । --नाभादास (शब्द०) ।

रसवंत[2]—वि० जिसमें रस हो । रसभरा । रसीला ।

रसवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० **रसवती**] रसौत । रसांजन । उ०—रूमी रतनजोति रसवंती । रारे रंगमाटी रुदवंती —सूदन (शब्द०) ।

रसवट—संज्ञा पुं० [हिं० **रसना** (=पानी आना)] वह मसाला जो नाव के छेदों में इसलिये भरा जाता है कि उनमें से पानी अंदर न आवे । रसवर ।

रसवत्[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **रसवती**] १. जिसमें रस हो । रसवाला । २. स्वादिष्ट (को०) । ३. क्लिन्न (को०) । ४. आकर्षक । मोहक । (को०) । ५. प्रेमभाव पूर्ण । प्रेमपूर्ण (को०) । ६. रसिक । परिहासक (को०) ।

रसवत्[2]—संज्ञा पुं० वह काव्यालंकार जिसमें एक रस किसी दूसरे रस अथवा भाव का अंग होकर आवे । जैसे,—युद्ध में पड़े हुए वीर पति के लिये इस विलाप में—'हाँ, यह वही हाथ है जो प्रेम से आलिंगन करता था ।' यहाँ श्रृंगार केवल करुण रस का अंग है ।

रसवत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'रसौत' । २. दे० 'दारुहल्दी' ।

रसवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । २. रसोईघर । ३. अशन । आहार (को०) ।

रसवती[2]— वि० रसीली । रसपूर्ण । रसभरी ।

रसवत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रसयुक्त होने का भाव या धर्म । रसीलापन । २. मिठास । माधुर्य । ३. सुंदरता । खूबसूरती ।

रसवर—संज्ञा पुं० [हिं० **रसना** (=चूना, टपकना)] दे० 'रसवट' ।

रसवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार अनार का फूल, ढाक का फूल, कुसुम का फूल, लाख, हलदी, मजीठ आदि कुछ विशिष्ट द्रव्य जिनसे रंग निकलता है ।

रसवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० **रस+वल्ली**] एक प्रकार का गन्ना, जिसे रसडली भी कहते हैं । दे० 'रसडली' ।

रसवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रस+वाई** (प्रत्य०)] पहले पहल ऊख पेरने के समय होनेवाली कुछ विशिष्ट रीतियाँ या व्यवहार ।

रसवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस की बात । प्रेम या आनंद की बातचीत । रसिकता की बातचीत । उ०—(क) करति हौ परिहास हमसों तजौ यह रसवाद ।—सूर (शब्द०) । (ख) केशव औरनि सार सरासरि सो रसवाद सबै हमसों ।—केशव (शब्द०) । २. मनोरंजन के लिये कहासुनी । छेड़छाड़ । झगड़ा । उ०—तुमहीं मिलि रसवाद बढ़ायो । उरहन दै दै मूंड़ पिरायो ।—सूर (शब्द०) । ३. बकवाद । उ०—सोवन दीजै न दीजै हमैं दुख योंही कहा रसवाद बढ़ायो ।—मतिराम (शब्द०) ।

रसवान्—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसमें ऐसा गुण या शक्ति हो कि जब उस पदार्थ के कण रसना से संयुक्त हों, उस समय किसी प्रतिबंधक हेतु के न रहने से विशेष प्रकार का अनुभव हो ।

रसवास—संज्ञा पुं० [सं०] ढगण के पहले भेद (।ऽ) की संज्ञा ।

रसवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार खाए हुए भोजन से बने सार पदार्थ को फैलानेवाली नाड़ी ।

रसविक्रयी—संज्ञा पुं० [सं० **रसविक्रयिन्**] वह जो मदिरा बेचता हो । शराब बेचनेवाला ।

रसविरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार कुछ रसों का ठीक मेल न होना । जैसे,—तीते और मीठे में, नमकीन और मीठे में, कडुए और मीठे में रसविरोध है । २. साहित्य में एक ही पद्य में दो प्रतिकूल रसों की स्थिति । जैसे,—श्रृंगार और रौद्र की, हास्य और भयानक की, श्रृंगार और वीभत्स की ।

रसवेधक—संज्ञा पुं० [सं०] सोना ।

रसशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

विशेष—यह अभ्रक, ताँबे, लोहे, मैनसिल, पारे, गंधक, सोहागे, जवाखार, हड़, और बहेड़े आदि के योग से बनता है और उपदंश आदि रोगों के लिये उपकारी माना जाता है ।

रसशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसायन शास्त्र । २. साहित्य में श्रृंगार, वीर आदि नव रसों पर विवेचनात्मक ग्रंथ ।

रसशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रस जो पारे और अफीम के योग से बनता है और जो उपदंश आदि रोगों के लिये उपकारी माना जाता है ।

रसशोधन—संज्ञा सं० [सं०] १. पारे को शुद्ध करने की क्रिया । २. सुहागा ।

रससंभव—संज्ञा पुं० [सं० **रससम्भव**] रक्त । लहू । खून ।

रससंरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पारे को शुद्ध करना, मूर्छित करना, बाँधना और भस्म करना ये चारों क्रियाएँ ।

रससंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] पारे के मूर्च्छन, बंधन, मारण आदि अठारह प्रकार के संस्कार । (वैद्यक) ।

रससागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक ।

विशेष—कहते हैं कि यह प्लक्ष द्वीप में है और ऊख के रस से भरा है ।

रससाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में रोगी की चिकित्सा करने के पहले यह देखना कि शरीर में कौन सा रस अधिक और कौन सा कम है ।

रससार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधु । शहद । २. जहर । (डिं०) ।

रससिंदूर—संज्ञा पुं० [सं० **रससिन्दूर**] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे और गंधक के योग से बनता है । इसे 'हरगौरी रस' भी कहते हैं ।

रससिद्ध—वि० [सं०] १. रसाभिव्यक्ति करने में कुशल वा निष्णात। २. रस सिद्ध करने में कुशल [को०]।

रसस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ। हिंगुल। ईंगुर।

रसस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत। अमलबेद।

रसांगक—संज्ञा पुं० [सं० रसाङ्गक] धूप। सरल का वृक्ष। श्रीवेष्ठ।

रसांजन—संज्ञा पुं० [सं० रसाञ्जन] रसौत। रसवत।

रसाँ—वि० [फ़ा०] पहुँचानेवाला। देनेवाला। जैसे, रोजीरसाँ, चिट्ठीरसाँ [को०]।

रसा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। जमीन। २. रासना। ३. पाठा। पाढ़ा। ४. शल्लकी। सलई। ५. कँगनी नाम का मोटा अन्न। ६. दाख। द्राक्षा। अंगूर। ७. मेदा। ८. शिलारस। लोहबान। ९. आम। १०. काकोली। ११. नदी। १२. रसातल। १३. जीभ। रसना। जबान।

रसा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० रस] तरकारी आदि का झोल। शोरबा।

यौ०—**रसेदार**=जिसमें रसा या शोरबा हो। शोरबेदार।

रसा[3]—वि० [फ़ा०] पहुँचनेवाला। जिसकी किसी जगह पहुँच हो [को०]।

रसाइन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रसायन'।

रसाइनीⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० रसायन+ई (प्रत्य०)] १. रसायन विद्या का जाननेवाला। २. रसायन बनानेवाला। कीमियागर।

रसाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पहुँचने की क्रिया या भाव। पहुँच। जैसे,—आपकी रसाई बहुत दूर दूर तक है।

रसाखन—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा।

रसाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसौत।

रसाग्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. रसांजन। रसौत।

रसाज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने पर भी उसके रस का अनुभव न करना। जैसे,—खट्टा या मीठा पदार्थ खाकर भी उसकी खटास या मिठास का अनुभव न करना। (वैद्यक)।

रसाढ्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा। आम्रातक।

रसाढ्य[2]—वि० रसपूर्ण। रसार्द्र।

रसाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।

रसातल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से छठा लोक।

विशेष—संज्ञा पुं० [सं०] कहते हैं, इसकी भूमि पथरीली है और इसमें दैत्य, दानव तथा पणि या पाणि नाम के असुर, इंद्र के डर से, निवास करते हैं। विशेष दे० 'पाताल'।

मुहा०—**रसातल में पहुँचाना**=मटियामेट कर देना। मिट्टी में मिला देना। बरबाद कर देना।

रसात्मक—वि० [सं०] १. सरस। रसयुक्त। २. सुंदर। खूबसूरत। ३. सुस्वादु। जायकेदार। ४. तरल। पानीदार। जलवाला। ५. अमृततुल्य। अमृतमय [को०]।

रसात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं० रसात्मक+ता (प्रत्य०)] रसमयता। रसपूर्णता। रसयुक्त होने का भाव। उ०—यदि किसी उक्ति में रसात्मकता और चमत्कार दोनों हों तो प्रधानता का विचार करके सूक्ति या काव्य का निर्णय हो सकता है।—रस०, पृ० ३७।

रसादार—वि० [हिं० रसा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें झोल या शोरबा हो। शोरबेदार। (प्रायः तरकारी आदि के संबंध में बोलते हैं।)

रसाधार—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

रसाधिक—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

रसाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

रसाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक राजकर्मचारी जो मादक द्रव्यों की जाँच पड़ताल और उनकी बिक्री आदि की व्यवस्था करता था।

रसानाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० रस] आनंदयुक्त होना। आनंद प्राप्त करना। रसयुक्त वा अनुकूल होना। उ०—भूखे अघाने रिसाने रसाने हितू अहितूनि सों स्वच्छ मने हैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३५।

रसानाⓅ[2]—क्रि० स० आनंद देना। आनंदित करना।

रसाना[3]—क्रि० अ० [हिं० रसना] स्रवित होना। चूना।

रसाना[4]—क्रि० स० दूर करना। टपकाना। बहाना। उ०—रिस रसाइ सरसाइ रस बतिया कहत बनाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २६।

रसापति—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीपति। राजा।

रसापायी—संज्ञा पुं० [सं० रसापायिन्] १. वह जो जीभ से पानी पीता हो। २. कुत्ता। श्वान।

रसापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। अलि [को०]।

रसाभास—संज्ञा पुं० [सं०] १. साहित्य में किसी रस की ऐसे स्थान में अवतारणा करना जो उचित या उपयुक्त न हो। किसी रस का अनुचित विषय में अथवा अनुपयुक्त स्थान पर वर्णन। जैसे,—गुरु पर किए हुए क्रोध या गुरुपत्नी से किए हुए प्रेम को लेकर यदि रौद्र या श्रृंगार रस का वर्णन हो, तो वह विभाव, अनुभाव आदि सामग्रियों से पूर्ण होने पर भी अनौचित्य के कारण रसाभास ही होगा। २. एक प्रकार का अलंकार जिसमें उक्त ढंग का वर्णन होता है।

रसामग्न—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य।

रसामृत—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस।

विशेष—यह पारे गंधक, शिलाजीत, चंदन, गुडुच, धनिया, इंद्रजौ, मुलेठी आदि के प्रयोग से बनाया जाता है और रक्तपित्त तथा ज्वर आदि में उपकारी माना जाता है।

रसाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अम्लवेतस्। अमलवेद। २. चुक या चुक्र नाम की खटाई। ३. विषांविल। वृक्षाम्ल।

रसाम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास।

रसाम्ला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पलाशी नाम की लता।

रसायक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की घास।

रसायन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तक्र। मठा। २. कटि। कमर। ३. विष। जहर। ४. वैद्यक के अनुसार वह औषध जो जरा और व्याधि का नाश करनेवाली हो। वह दवा जिसके खाने से आदमी बुड्ढा या बीमार न हो।

विशेष—ऐसी औषधों से शरीर का बल, आँखों की ज्योति और वीर्य आदि बढ़ता है। इनके खाने का विधान युवावस्था के आरंभ और अंत में है। कुछ प्रसिद्ध रसायनों के नाम इस प्रकार हैं—विड़ंग रसायन, ब्राह्मी रसायन, हरीतकी रसायन, नागबला रसायन, आमलक रसायन आदि। प्रत्येक रसायन में कोई एक मुख्य ओषधि होती है; और उसके साथ दूसरी अनेक ओषधियाँ मिली हुई होती हैं।

५. गरुड़। ६. बायविडंग। ७. विडंग पदार्थों के तत्वों का ज्ञान। विशेष दे॰ 'रसायन शास्त्र'। ८. वह कल्पित योग जिसके द्वारा ताँबे से सोना बनना माना जाता है। ९. धातु विद्या, जिसमें धातुओं को भस्म करने या एक धातु को दूसरी धातु में बदल देने आदि की क्रिया का वर्णन रहता है।

रसायनज्ञ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रसायन क्रिया का जाननेवाला। वह जो रसायन विद्या जानता हो।

रसायनफला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] हर्रे। हड़। हरीतकी।

रसायनवर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] लहसुन।

रसायनवरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. कंगनी। २. काकजंघा।

रसायनविज्ञान—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **रसायन + विज्ञान**] दे॰ 'रसायन'।

रसायन शास्त्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन हो कि पदार्थों में कौन कौन से तत्व होते हैं और उन तत्वों के परमाणुओं में परिवर्तन होने पर पदार्थों में किस प्रकार का परिवर्तन होता है।

विशेष—इस शास्त्र का मुख्य सिद्धांत यह है कि संसार के सब पदार्थ कुछ मूल द्रव्यों के परमाणुओं से बने हैं। वैज्ञानिकों ने ९४ मूल द्रव्य या मूलभूत माने हैं, जिनमें से धातुएँ (जैसे,—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, राँगा, पारा आदि) हैं; कुछ दूसरे खनिज (जैसे,—गंधक, संखिया, सुरमा आदि) हैं और कुछ वायव्य द्रव्य (जैसे,—आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि) हैं। इस शास्त्र के अनुसार यही ९४ मूल द्रव्य सब पदार्थों के मूल उपादान हैं, जिनके परमाणुओं के योग से संसार के सब पदार्थ बने हैं। प्रत्येक मूल द्रव्य में एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं; और जब किसी एक प्रकार के परमाणुओं के साथ किसी दूसरे प्रकार के परमाणु मिल जाते हैं, तब उनसे एक नया और तीसरा ही द्रव्य तैयार हो जाता है। जो शास्त्र हमें यह बतलाता है कि कौन चीज किन तत्वों से बनी है और उन तत्वों में परिवर्तन होने का क्या परिणाम होता है, वही रसायन शास्त्र कहलाता है।

रसायनश्रेष्ठ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पारा।

रसायनिक—वि॰ [सं॰ **रासायनिक**] दे॰ 'रासायनिक'।

रसायनी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. वह औषध जो बुढ़ापे को रोकती या दूर करती हो। २. गुडुच। ३. मकोय। काकमाचा। ४. महाकरंज। ५. अमृत संजीवनी। गोरखदुद्धी। ६. मांस-रोहिणी। ७. मजीठ। ८. कनफोड़ा नाम की लता। ९. कौंछ। १०. सफेद निसोथ। ११. शंखपुष्पी। शंखाहुली। १२. कंद गिलोय। १३. नाड़ी।

रसायनी[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **रसायन**] रसाइनी। रसायन शास्त्र का जाननेवाला। उ॰—राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु, उतरि पयोधिपार सोधि सरवाक सों।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ १४९।

रसार(पु)—संज्ञा पुं॰, वि॰ [सं॰ रसाल] दे॰ 'रसाल'।

रसाल[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. आम। २. ऊख। गन्ना। ३. कटहल। ४. कुंदुर तृण। ५. गोधूम। गेहूँ। ६. अम्लबेत। ७. शिलारस। लोबान। ८. बोल नामक गंधद्रव्य। ९. एक प्रकार का मूसा (को॰)।

रसाल[2]—वि॰ [वि॰ स्त्री॰ **रसाला**] १. मधुर। मीठा। २. रसीला। ३. सुंदर। मनोहर। ४. स्वादिष्ठ। ५. मार्जित। शुद्ध। ६. रसिया। रसिक। उ॰—तासों मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल।—मतिराम (शब्द॰)।

रसाल[3]—संज्ञा पुं॰ [अ॰ **इरसाल**] कर। राजस्व। खिराज। उ॰—श्रीनगर नैपाल जुमिला के छितिपाल भेजत रसाल चौंर गढ़ कुही बाज की।—भूषण (शब्द॰)। दे॰ 'रिसाल'।

रसालय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. आम का पेड़। २. वह स्थान जहाँ आमोद प्रमोद किया जाय। ३. वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के रस आदि बनते हों। रसशाला।

रसालशर्करा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गन्ने या ऊख के रस से बनाई हुई चीनी।

रसालस—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ **रसाल**] कौतुक। उ॰—समुझहिं सुमति रसाल रसालस रमा रमन के। हरि प्रेरित वह आप आप नाचत बन बन के।—तुलसी सुधाकर (शब्द॰)।

रसालसा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पौंढ़ा। गन्ना। २. गेहूँ। ३. कुंदुर नाम की घास। ४. शिरा। धमनी (को॰)।

रसाला[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. दही का बना हुआ शरबत। सिखरन। श्रीखंड। २. दही मिला हुआ सत्तू। ३. प्राचीन काल की एक प्रकार की चटनी, जो दही, घी, मिर्च, शहद आदि को मिलाकर बनाई जाती थी। ४. दूब। ५. बिदारीकंद। ६. दाख। ७. पौंढ़ा। ८. जीभ।

रसाला[2]—संज्ञा पुं॰ [अ॰ रिसालह्] दे॰ 'रिसाला'।

रसाला[3]—वि॰ [सं॰ रसाल] रसपूर्ण। मधुर। उ॰—लगे कहन हरि कथा रसाला।—मानस, १।६०।

रसालाम्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बढ़िया कलमी आम।

रसालिका[1]—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ **रसालक**] १. मधुर। मृदु। २. सरस। उ॰—उर लसी सुतुलसी मालिका। हुलसी सुमति रसालिका।—गिरधर (शब्द॰)।

रसालिका[२]—संज्ञा स्त्री॰ १. छोटा आम। अँबिया। २. सतला। सातला।

रसालिया†—वि॰ [हिं॰ रसाल+इया] १. रसिक। रसमर्मी। रसभरा। २. दे॰ 'चूतिया' (लाक्ष॰)।

रसालिहा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पिठवन।

रसाली[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रसालिन्] १. पौंढ़ा। गन्ना। २. चना।

रसाली[२]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पौंढ़ा। गन्ना।

रसालेक्षु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पौंढ़ा। गन्ना।

रसावर, रसावल—संज्ञा सं॰ [हिं॰ रसियाउर] दे॰ 'रसौर'। उ॰—जीवन सुरति बटोरि प्रभु नाम रसावर। निरमल करु द्विजराज जीवनहि एहि तनु डाबर।—तुलसी सुधाकर (शब्द॰)।

रसाव—संज्ञा सं॰ [हिं॰ रसना] १. खेत को जोतकर और पाटे से बराबर करके कई दिनों तक यों ही छोड़ देना। २. रसने की क्रिया या भाव।

रसावला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] एक मात्रिक छंद जिसमें दो रगण होता हैं और दस मात्राएँ (ऽ।ऽऽ।ऽ) होती हैं। जैसे—(क) रोस राजं भरी। चित्र कोटे सुरी। हृथ्थं बथ्थं जुरी। जुट्टि सोहै षुरी।—पृ॰ रा॰, २४।७७। (ख) रार काहे करो। धीर राधे धरो। देवि मोहा तजौ। कंज देहा सजौ।—छंद॰, पृ॰ १३४।

विशेष—इसे जोहा, विजोहा, विज्जोहा, विमोहा आदि भी कहते हैं।

रसावा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रस+आवा (प्रत्य॰)] ऊख का कच्चा रस रखने का मिट्टी का बर्तन।

रसावेष्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गंधाबिरोजा।

रसाश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मद्य पीने की क्रिया। शराब पीना।

रसाशी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रसाशिन्] वह जो मद्य पीता हो। शराबी।

रसाश्वासा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पलाशी नाम की लता।

रसाष्टक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पारा, ईंगुर, कांतिसार लोहा, सोनामक्खी, रूपामक्खी, वैक्रांत मणि और शंख इन आठ महारसों का समूह।

रसास्वादी[१]—वि॰ [सं॰ रसास्वादिन्] [वि॰ स्त्री॰ रसास्वादिनी] १. रस चखनेवाला। स्वाद लेनेवाला। २. आनंद या मजा लेनेवाला।

रसास्वादी[२]—संज्ञा पुं॰ भौंरा। भ्रमर।

रसाह्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गंधाबिरोजा।

रसाह्वा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. सतावर। २. रास्ना।

रसिआउर†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रस+चाउर (=चावल)] १. ऊख के रस या गुड़ के शर्बत में पका हुआ चावल। २. एक प्रकार का गीत जो विवाह की एक रीति में गाया जाता है। जब नई बहू ब्याह कर आती है, तब वह ऊख के रस या गुड़ के शर्बत में चावल पकाकर अपने पति तथा ससुराल के लोगों को परोसकर खिलाती है। उस समय स्त्रियाँ जा गीत गाती हैं, उसे भी 'रसिआउर' कहते हैं। उ॰—गावहिं रसिआउर सब नारी। बजैं मृदंग बीर। तमहारी।—रघुराज (शब्द॰)।

रसिआवर, रसिआवल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रसिआउर] दे॰ 'रसिआउर'।

रसिक[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ रसिका; हिं॰ स्त्री॰ रसिकिनी] १. वह जो रस या स्वाद लेता हो। रस लेनेवाला। २. वह जिसे रस संबंधी बातों में विशेष आनंद आता हो। काव्यमर्मज्ञ। सहृदय। ३. क्रीड़ा आदि का प्रेमी। आनंदी। रसिया। उ॰—सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि तुमरी लीला को कहै गाइ।—सूर॰, १०।२९८। ४. वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। मर्मज्ञ। ५. प्रेमी। भक्त। भावुक। सहृदय। ६. सारस पक्षी। ७. घोड़ा। ८. हाथी। ९. एक प्रकार का छंद।

रसिक[२]—वि॰ १. रस लेनेवाला। सहृदय। २. आनंदी। ३. प्रेमी। ४. मर्मज्ञ [को॰]।

रसिकईⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ रसिक+हिं॰ ई (प्रत्य॰)] दे॰ 'रसिकता'। उ॰ रसिक रसिकई जानि परी। नैननि तैं अब न्यारैं हूजै तबहीं तैं अति रिसनि भरी।—सूर॰, १०।२५४१।

रसिकता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. रसिक होने का भाव या धर्म। २. परिहास। हँसी। ठट्ठा।

रसिकत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रसिक होने का भाव या धर्म। रसिकई। रसिकता [को॰]।

रसिकविहारी—संज्ञा पुं॰ [सं॰] श्रीकृष्ण का एक नाम।

रसिकसिरोमनिⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रसिक+शिरोमणि] रसिकों में सिरमौर, श्रीकृष्ण।

रसिका[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. दही का शरबत। सिखरन। २. ईख का रस। ३. जीभ। जबान। ४. शरीर में की धातु। रस। ५. मैना पक्षी। ६. करधनी। तागड़ी (को॰)।

रसिका[२]—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'रसिक[२]'।

रसिकाईⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'रसिकता'।

रसिकानाⓅ—क्रि॰ अ॰ [सं॰ रसिक+आना (प्रत्य॰)] आनंद वा मस्ती से भरा होना। रसिया होना। रसीला होना। उ॰—होरी में का बरजोरी करोगे क्यों इतने इतराए। रूप गरब फागुन मदमाते ताहू पै अति रसिकाए।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ३७८।

रसिकिनीⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ रसिक+हिं॰ इनी] रसिक का स्त्रीलिंग। रसिका। दे॰ 'रसिक—३'। उ॰—सूरदास रास रसिक बिनु रास रसिकिनी बिरह विकल करि भई हैं मगन।—सूर (शब्द॰)।

रसिकेश्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] श्रीकृष्ण का एक नाम।

रसित[१]—वि॰ [सं॰] १. ध्वनि करता हुआ। बोलता हुआ। बजता हुआ। २. बहता हुआ। रसता हुआ। थोड़ा थोड़ा टपकता हुआ। ३. रसयुक्त। ४. जिसके ऊपर मुलम्मा चढ़ा हो।

रसित[२]—संज्ञा पुं॰ १. ध्वनि। शब्द। उ॰—लषि नव नील पयोद

रसित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ।—तुलसी (शब्द०) । २. अंगूर को शराब । द्राक्षासव ।

रसिया—संज्ञा पुं० [सं० **रसिक**, या **रस** + **इया** (हिं० प्रत्य०)] १. रस लेनेवाला । रसिक । २. एक प्रकार का गाना जो फागुन के मौसिम में ब्रज और बुंदेलखंड आदि में गाया जाता है ।

रसियाव—संज्ञा पुं० [हिं० **रस** + **इयाव** (प्रत्य०)] रसिआउर । गन्ने के रस में पका हुआ चावल । बखीर ।

रसि रसिⓟ—क्रि० वि० [हिं० **रस रस**] दे० 'रस रस' । उ०—रसि रसि संचे ब्रह्म कियारी ।—प्राण०, पृ० ४ ।

रसी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जो बिहार और संयुक्त प्रांत में बनती है ।

रसीⓟ‡[2]—संज्ञा [हिं० **रस** + **ई** (प्रत्य०)] दे० 'रसिक' ।

रसीⓟ[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रस्सी**] दे० 'रस्सी' । उ०—गिरधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तोरै आसु कर्म रूप रसी है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१ ।

रसी[4]—वि० [सं० **रसिन्**] [वि० स्त्री० **रसिनी**] १. रसयुक्त । रसदार । २. रागान्वित । अनुरक्त । सहृदय । ३. सरस । स्वादु । रुचिकर [को०] ।

रसीद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० । अं० **रिसीट**] १. किसी चीज के पहुँचने या प्राप्त होने की क्रिया । प्राप्ति । पहुँच । जैसे,—पारसल भेजा है; उसकी रसीद की इत्तला दीजिएगा ।

मुहा०—**रसीद करना** = (१) लगाना (थप्पड़, मुक्का आदि) । जड़ना । मारना । जैसे,—थप्पड़ रसीद करूँगा, सीधा हो जाएगा । २. प्रविष्ट करना । घुसेड़ना । (बाजारू) ।

२. वह जिसपर ब्योरेवार यह लिखा हो कि अमुक वस्तु या द्रव्य अमुक व्यक्ति से अमुक कार्य के लिये अमुक समय पर आया । किसी चीज के पहुँचने या मिलने के प्रमाण रूप में लिखा हुआ पत्र । प्राप्ति का प्रमाणपत्र ।

विशेष—प्राय: जब किसी को कोई चीज या धन ऋण के रूप में, ऋण चुकाने के लिये अथवा और किसी मामले के संबंध में दिया जाता है, तब पानेवाला एक प्रमाणपत्र लिखकर देनेवाले को देता है, जिसमें यदि पानेवाला कभी उस चीज या धन की प्राप्ति से इनकार करे, तो उसके विरुद्ध प्रमाण के रूप में वही रसीद उपस्थित की जाय ।

मुहा०—**रसीद काटना** = किसी को रसीद लिखकर देना ।

क्रि० प्र०—**देना** ।—**पाना** ।—**लिखना** ।—**लिखाना**, आदि ।

३. पता । खबर । (क्व०) । जैसे,—तुम तो किसी बात की रसीद ही नहीं देते ।

रसीदा—वि० [फ़ा० **रसीदह्**] पहुँचा हुआ ।

रसील—वि० [हिं० **रसीला**] दे० 'रसीला' । उ०—मन रसील के सुधा स्वरूपा । आमय पीन हीन रस भूपा ।—रघुराज (शब्द०) ।

रसीला—वि० [हिं० **रस** + **ईला** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **रसीली**] १. रस में भरा हुआ । रसयुक्त । २. स्वादिष्ट । मजेदार । ३. रस लेनेवाला । आनंद लेनेवाला । ४. भोग विलास का प्रेमी । व्यसनी । ५. बाँका । छबीला । सुंदर ।

रसीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० **रसीला** + **पन** (प्रत्य०)] रसीला होने का भाव या धर्म ।

रसुन—संज्ञा पुं० [सं० **रसोन**] लहसुन । लशुन ।

रसूख—संज्ञा पुं० [अ० **रुसूख**] १. प्रवेश । पहुँच । रसाई । २. दक्षता । कुशलता । ३. प्रेमव्यवहार । मेलजोल । उ०—रामलाल, शंकर खत्री और हमारे अपने लाला जी का उनसे रसूख था ।—अभिशप्त, पृ० १०२ ।

रसूम—संज्ञा पुं० [अ०] १. रस्म का बहुवचन । २. नियम । कानून । ३. वह धन जो किसी को किसी प्रचलित प्रथा के अनुसार दिया जाता हो । नेग । लाग । ४. वह धन जो राज्य को कोई काम करने के बदले में राजकीय नियमों के अनुसार दिया जाता हो ।

यौ०—**रसूम अदालत** ।

५. वह धन जो जमींदार को किसानों की ओर से नजराने या भेंट आदि के रूप में दिया जाता है ।

रसूमअदालत—संज्ञा पुं० [अ०] वह धन जो अदालत में कोई मुकदमा आदि दायर करने के समय कानून के अनुसार सहकारी व्यय के रूप में दिया जाता है । कोर्ट फीस । स्टांप ।

विशेष—भिन्न भिन्न कामों या मुकदमों की मालियत के लिये धन की संख्या कानून के द्वारा निर्धारित होती है; और मुकदमा दायर करनेवाले को उतने धन का सहकारी कागज या स्टांप खरीदना पड़ता है तथा उसी कागज पर अपना दावा दायर करना होता है । बैनामा या दानपत्र आदि लिखने के लिये भी इसी प्रकार रसूम अदालत लगता है ।

रसूल—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो अपने आपको ईश्वर का दूत कहता हो और सर्वसाधारण में माना जाता हो । पैगंबर । जैसे,—मुहम्मद साहब खुदा के रसूल थे ।

रसूली[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **रसूल** + **ई** (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का गेहूँ । २. एक प्रकार का जौ । ३. एक प्रकार की काली मिट्टी ।

रसूली[2]—वि० रसूल संबंधी । रसूल का ।

रसेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० **रसेन्द्र**] १. पारद । पारा । २. राजमाष । लोबिया । ३. एक प्रकार की रसौषध जो जीरा, धनियाँ, पीपल, शहद, त्रिकुट और रससिंदूर के योग से बनती है । ४. चिंतामणि । स्पर्शमणि । पारस पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोने में परिवर्तित हो जाता है ।

यौ०—**रसेंद्रवेधज**, **रसेंद्रसंजात** = दे० 'रसेंद्रवेधक' ।

रसेंद्रवेधक—संज्ञा पुं० [सं० **रसेन्द्रवेधक**] सोना ।

रसेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा । २. एक दर्शन का नाम जो छह दर्शनों में नहीं है ।

विशेष—इस दर्शन में पारे को शिव का वीर्य और गंधक को पार्वती का रज माना है । इनके १८ संस्कार लिखे हैं और इनके

उपयोग से व्याधिनाश, जीवनदान और खेचरत्वादि माना है। इनके दर्शन और स्पर्श में महापुण्य बतलाया है और कहा गया है कि शरीर का आरोग्य होना परमावश्यक है; क्योंकि शरीर के बिना पुरुषार्थ नहीं हो सकता; और पुरुषार्थ के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है।

३. एक रसौषध जो पारे, गंधक, हरताल और सोने आदि के योग से तैयार होती है।

रसेसⓤ[१]—संज्ञा पुं० [सं० **रसेश**] १. रसिक शिरोमणि, श्रीकृष्ण। २. नमक। लवण। उ०—रुचिर रूप जल सों रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई।—तुलसी (शब्द०)।

रसेसⓤ[२]- संज्ञा पुं० [सं० **रसेश्वर, रसेश**] पारा।

रसोइया—संज्ञा पुं० [हिं० **रसोई + इया** (प्रत्य०)] रसोई बनानेवाला। भोजन बनानेवाला। रसोईदार। सूपकार।

रसोई, रसोईं—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रस + ओई** (प्रत्य०)] १. पका हुआ खाद्य पदार्थ। बना हुआ भोजन।

यौ०—**कच्ची रसोई** = दाल, भात, रोटी आदि भोजन जो घी या दूध में नहीं पकते और जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी दूसरे के हाथ की बनी हुई नहीं खाते। सखरी। **पक्की रसोई** = पूरी, पकवान, खीर आदि घी या दूध में पकी चीजें जो चौके के बाहर और अन्य द्विजों के हाथ की भी खाई जा सकती हैं। निखरी।

मुहा०—**रसोई चढ़ना** = भोजन पकना। खाना बनना। **रसोई तपना** = भोजन पकाना। खाना बनाना। उ०—(क) जो पुरुषापथ ते कहूँ संपति मिलति रहीम। पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम।—रहीम (शब्द०)। उ०—कह गिरधर कविराय आपकी तपै रसोई।—गिरिधर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना**। जीमना।—**पकाना**।—**बनाना**, आदि।

२. वह स्थान जहाँ भोजन बनता हो। चौका। पाकशाला। उ०—जसुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि इक छींकी।—सूर (शब्द०)।

रसोईखाना—संज्ञा पुं० [हिं० **रसोई** + फा० **खानह्**] 'रसोईघर'।

रसोईघर—संज्ञा पुं० [हिं० **रसोई + घर**] वह स्थान जहाँ भोजन पकाया जाता हो। खाना बनाने की जगह। पाकशाला। चौका।

रसोईदार—संज्ञा पुं० [हिं० **रसोई** + फ़ा० **दार** (प्रत्य०)] [स्त्री० रसोईदारिन] वह जो रसोई बनाने के काम पर नियुक्त हो। भोजन-बनानेवाला। रसोइया।

रसोईदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रसोईदार + **ई** (प्रत्य०)] १. रसोई करने का काम। भोजन बनाने का काम। २. रसोईदार का पद।

रसोईबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० रसोई + फ़ा० **बरदार**] भोजन ले जानेवाला। भोजनवाहक।

रसोतⓤ[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **रसवत्ता**] रसमयता। रस उक्तता।

रसोत[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रसौत'।

रसोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध। २. दुग्ध। २. पारा। पारद। ३. मुद्ग। मूँग (को०)।

रसोदर- संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। शिंगरफ।

रसोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिंगरफ। ईंगुर। एक औषध। २. रसौत। ३. मुक्ता। मोती (को०)।

रसोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत।

रसोन—संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

रसोपल—संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

रसोयँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रसोई**] रसोई। भोजन। उ०—आयसु अस राज घर बेगहि करा रसोय।—जायसी (शब्द०)।

रसौंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० रसौत] दे० 'रसौत'।

रसौत—संज्ञा स्त्री० [सं० **रसोद्भूत**] एक प्रकार का प्रसिद्ध औषध।

विशेष—यह दारुहल्दी की जड़ और लकड़ी को पानी में औटाकर, और उसमें से निकले हुए रस को गाढ़ा करके तैयार की जाती है। इसके लिये पहले दारुहल्दी का काढ़ा तैयार करते हैं तब उसमें उसके बराबर ही गौ या बकरी का दूध डालकर दोनों को पकाकर बहुत गाढ़ा अवलेह तैयार करते हैं। यही अवलेह जमकर बाजारों में रसौत के नाम से बिकता है। रसौत कालापन लिए भूरे रंग की होती है और पानी में सहज में घुल जाती है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है और इसमें से एक विलक्षण गंध निकलती है, जो अफीम की गंध से कुछ मिलती जुलती होती है। इसका व्यवहार प्रायः आँखों पर लगाने और घावों का विकार दूर करने में होता है। वैद्यक में यह चरपरी, गरम, रसायन, कड़वी, शीतल, तीक्ष्ण, शुक्रजनक, नेत्रों के लिये अत्यंत हितकारी तथा कफ, विष, रक्तपित्त, वमन, हिचकी, श्वास और मुखरोग का दूर करनेवाली मानी गई।

पर्या०—**रसगर्भ। तार्क्ष्यशैल। रसोद्भूत। रसाग्रज। कृतक। बालभैषज्य। रसराज। अग्निसार। रसनाभि।**

रसौता—संज्ञा पुं० [सं० **रसौती**] दे० 'रसौती'।

रसौती—संज्ञा स्त्री० [देश०] धान की वह बोआई जिसमें खेत जोतकर वर्षा होने से पहले ही बीज डाल दिया जाता है।

रसौर—संज्ञा पुं० [हिं० **रस + और < आवर** (प्रत्य०)] रसिआउर। ऊख के रस में पके हुए चावल।

रसौल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत कँटीली लता। एला।

बिशेष—यह खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है और दक्षिण भारत, बंगाल, तथा बरमा में भी पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फलती है इसकी पत्तियाँ और कलियाँ ओषधि रूप में भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खट्टी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है।

रसौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रोग जिसमें आँख के ऊपर भँवों के पास बड़ी गिलटी निकल आती है।

रसौहाँ⑤†—वि० [रस + औहाँ (प्रत्य०)] रसीला। रसयुक्त। रसपूर्ण। उ०—भौंहैं करि सूधी विहसौंहैं कै कपोल नैंक सौंहैं करि लोचन रसौहैं नंदलाल सौं।—मति० ग्रं०, पृ० ३५२।

रस्तगार—वि० [फ़ा०] बंधनमुक्त। रिहा। उ०—आगो अगर जमीं पे यहाँ भी वहीं बहार। दुख सुख में बंद सारे नहीं कोई रस्तगार।—कबीर मं०, पृ० २२३।

रस्तगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मुक्ति। छुटकारा। रिहाई। उ०—रस्तगारी की राह न पाया था।—कबीर मं०, पृ० ३७४।

रस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० रास्तह्] दे० 'रास्ता'।

रस्तोगी—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

रस्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्व। २. द्रव्य। वस्तु। पदार्थ [को०]।

रस्ना—संज्ञा स्त्री० [अ०, या सं० रसना,] जिह्वा। जीभ [को०]।

रस्म—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मेलजोल। बरताव।

यौ०—राह रस्म = मेलजोल। व्यवहार। घनिष्ठता।

२. रिवाज। परिपाटी। चाल। प्रथा। ३. संस्कार (को०)।

रस्मि⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० रश्मि] दे० 'रश्मि'।

रस्मी—वि० [अ० रस्म + ई] रस्म रिवाज संबंधी। रीति वा चलन के अनुसार।

रस्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्त। खून। लहू। २. शरीर में का मांस। ३. एक प्रकार का नमकीन खाद्य (को०)।

रस्य[२]—वि० रसपूर्ण। सुस्वादु। मधुर।

रस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रास्ना। २. पाठा। पाढ़ी।

रस्सा—संज्ञा पुं० [सं० रश्मि प्रा० रस्सी, हि० रस्सी से पुं० रूप रस्सा] [स्त्री०, अल्पा० रस्सी] १. बहुत मोटी रस्सी जो कई मोटे तागों को एक में बटकर बनाई जाती है।

विशेष—आजकल प्रायः जहाजों आदि के लिये तथा और बड़े बड़े कामों के लिये लोहे के तारों के भी रस्से बनने लगे हैं।

२. जमीन की एक नाप जो ७५ हाथ लंबी और ७५ हाथ चौड़ी होती है। इसी को बीघा कहते हैं। ३. घोड़ों के पैर की एक बीमारी।

रस्सी—संज्ञा स्त्री० [हि० रस्सा] १. रूई सन या इसी प्रकार के और रेशों के सूतों या डोरों को एक में बटकर बनाया हुआ लंबा खंड जिसका व्यवहार चीजों को बाँधने, कूएँ से पानी खींचने आदि में होता है। डोरी। गुण। रज्जु। २. एक प्रकार की सज्जी।

रस्सीबाट—संज्ञा पुं० [हि० रस्सी + बटना] रस्सी बटनेवाला। डोरी बनानेवाला।

रहँकला—संज्ञा पुं० [हि० रथ + कल] १. एक प्रकार की हलकी गाड़ी। २. तोप लादने की गाड़ी। उ०—बान रहँकला तोप जंजालैं। सहसनि सुतरनाल हथनालैं।—लाल (शब्द०)। ३. रहँकले पर लदी हुई छोटी तोप। तिमि घरनाल और करनालैं सुतुरनाल जंजालैं। गुरगुराब रहँकले भले तहँ लागे विपुल बयालैं।—रघुराज (शब्द०)।

रहँचटा⑤—संज्ञा पुं० [हि० रस + चाट वा रँहचटा] प्रीति की चाह। मनोरथसिद्धि की अभिलाषा। चसका। लिप्सा। दे० 'रँहचटा'। उ०—बनक मढ़े कोठे चढ़े छैल छबीले स्याम। खरी चौहटे में अरी चढ़ी रहँचटे बाम।—रामसहाय (शब्द०)।

रहँट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] कूएँ से पानी निकालने का एक प्रकार का यंत्र। उ०—बिरह बिषम बिष बेलि बढ़ी उर तेइ सुख सकल सुभाय दहे री। सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नैन नित रहत नहे री।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसमें कूएँ के ऊपर एक ढाँचा रहता है। जिसमें बीचों बीच पहिए के आकार का एक गोल चरखा लगा होता है, जो कुएँ के ठीक बीच में रहता है। इस चरखे पर घड़ों आदि की एक बहुत लंबी माला, जिसे 'माल' कहते हैं, टँगी रहती है। यह माला नीचे कूएँ के पानी तक लटकती रहती है और इसमें बहुत सी हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ बँधी रहती हैं। जब बैलों के चक्कर देने से चरखा घूमता है, तब जल से भरी हुई हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ ऊपर आकर उलटती हैं, जिससे उनका पानी एक नाली के द्वारा खेतों में चला जाता है, और खाली हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ नीचे कूएँ के पानी में चली जाती और फिर भरकर ऊपर आती हैं। इस प्रकार थोड़े परिश्रम से अधिक पानी निकलता है। पश्चिम में इसकी बहुत चाल है।

रहँटा—संज्ञा पुं० [हि० रहँट] सूत कातने का चर्खा। उ०—कहै कबीर सूत भल काता। रहँटा न होय, मुक्ति को दाता।—कबीर (शब्द०)।

रहँटी†—संज्ञा स्त्री० [हि० रहँटा] १. कपास ओटने की चरखी। २. २. रुपया उधार देने का एक ढंग, जिसमें प्रति मास कुछ रुपया वसूल किया जाता है। इसे संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में हुंडी कहते हैं।

रहँट्ट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] दे० 'रहँट'। उ०—लागी घरी रहँट्ट की सींचहिं अमृत बेलि।—(शब्द०)।

रह[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० राह] मार्ग। रास्ता। राह। राह का लघु रूप। जैसे,—रहजनी, रहनुमा आदि।

रह⑤[२]—संज्ञा पुं० [सं० रथ, प्रा० रह] दे० 'रथ'।

रहकला⑤—संज्ञा पुं० [हि० रहँकला] दे० 'रहँकला'। उ०—गुरज सपीलन तोप धरि और रहकला बान। सहर कोट के रद्द कह, लघु सुत कीन्ह पयान।—प० रासो, पृ० १३७।

रहचटा—संज्ञा पुं० [हि० रँहचटा] दे० 'रँहचटा'।

रहचह⑤—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का बोलना। चहचहाहट। उ०—सारौं सुआ सो रहचह करहीं। कुरहि परेवा औ करबरहीं।—जायसी (शब्द०)।

रहजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० रहज़न] डाकू। बटमार [को०]।

रहजनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रहज़नी] डाकू का कार्य। डकैती। बटमारी [को०]।

रहठा—संज्ञा पुं० [हि० रहर + काठ] अरहर के पौधे के सूखे डंठल। कड़िया।

रहठानि⑤—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० रह (=रहन, रहना)+सं० स्थान, प्रा० ठाण] रहने का स्थान। उ०—होनि सों मढ़चौ पै अनहोनि जाके बीच भरी, जामें चलि जाइबे बनाई रहठानि है।—घनानंद, पृ० १२७।

रहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] १. रहने की क्रिया या भाव।

यौ०—**रहन गहन**=दे० 'रहन सहन'। उ०—रहन गहन उनहूँ नहि पाई। अरथ सुनै सब जग अरुझाई।—कबीर मं०, पृ० ४७०। **रहन सहन**=चाल ढाल। तौर तरीका।

२. रहने का ढंग। व्यवहार। आचार। उ०—जाकी रहनि कहनि अनमिल, सखि, कहत समुझि अति थोरे।—सूर (शब्द०)।

रहन सहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना+सहना] जीवन निर्वाह का ढंग। गुजर बसर का तरीका। तौर। चाल ढाल।

रहना—क्रि० अ० [सं० राज (=विराजना, सुशोभित होना), पुं० हिं० राजना] १. स्थित होना। अवस्थान करना। ठहरना। जैसे,—अगर कोई यहाँ रहे, तो मैं वहाँ से हो आऊँ। २. स्थान न छोड़ना। प्रस्थान न करना। न जाना। रुकना। थमना।

मुहा०—**रह चलना या जाना**=प्रस्थान करने का विचार छोड़ देना। रुक जाना। ठहर जाना। उ०—रहि चलिए सुंदर रघुनायक। जो सुत तात बचन पालन रत जननिउ तात मानिबे लायक।—तुलसी (शब्द०)।

३. बिना किसी परिवर्तन या गति के एक ही स्थिति में अवस्थान करना। उ०—नीके है छींके छुए ऐसे ही रह नारि।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—**रहने देना**=(१) जिस अवस्था में हो, उसी में छोड़ देना। हस्तक्षेप न करना। (२) जाने देना। कुछ ध्यान न देना। **रहा जाना**=शांति या स्थिरतापूर्वक अवस्थान करने में समर्थ होना। संतुष्ट होना। उ०—(क) वृषभ उदर व्रत रहा न जाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) अब तो चपला से न रहा गया, वह केतकी का झोंटा पकड़ने को दौड़ी।—देवकीनंदन (शब्द०)। (ग) पिता को आते देख राजकुमार से न रहा गया। वे तुरंत आगे बढ़े और निकट पहुँचकर सादर प्रणाम किया।—देवकीनंदन (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में अधिकतर प्रयोग 'नहीं' के साथ होता है।

४. निवास करना। बसना। जैसे,—आप कई पीढ़ियों से कलकत्ते में रहते हैं। ५. कुछ दिनों के लिये ठहरना या टिकना। अस्थायी रूप से निवास करना। उ०—एहि नैहर रहना दिन चारी।—जायसी (शब्द०)। ६. किसी काम में ठहरना। कोई काम करना बंद करना। थमना। उ०—रहो रहो, मेरे लिये क्यों परिश्रम करती हो।—लक्ष्मण (शब्द०)। ७. चलना बंद करना। रुकना। उ०—हाँ, डर ही से तो सिमट समट चलता है रह रहकर।—प्रतापनारायण (शब्द०)। ८. विद्यमान होना। उपस्थित होना। जैसे,—हमारे रहते कोई ऐसा नहीं कर सकता।

मुहा०—**किसी के रहते**=किसी की विद्यमानता में। मौजूदगी में।

९. चुपचाप समय बिताना। कुछ न करना। उ०—(क) स्याही बारन तें गई मन तें भई न दूर। समुझि चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) धरम बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट तिय स्रुति अस कहई।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**रह जाना**=(१) कुछ कार्रवाई न करना। जैसे,—तुम्हारे ख्याल से हम रह गए, नहीं तो एक चपत देते। (२) सफल न होना। लाभ न उठा सकना। जैसे,—सब पा गए, तुम रह गए।

१०. नौकरी करना। काम काज करना। उ०—उसने जवाब दिया—मैं मालिन हूँ; यह नहीं कह सकती कि किसके यहाँ रहती हूँ और ये फूल के गहने किसके वास्ते लिए जाती हूँ।—देवकीनंदन (शब्द०)। ११. स्थित होना। स्थापित होना। जैसे,—दूसरे ही महीने उसे पेट रहा। १२. समागम करना। मैथुन करना। १३. जीवित रहना। जीना। उ०—रहते कौन अधार दुसह दुर्ग पिय बिरह भौ। कर न राखते त्यार ध्यान जखीरा नैन जो।—रसनिधि (शब्द०)। १४. रखेली के रूप में रहना। किसी की रखेली होकर दिन बिताना। १५. बचना। छूट जाना। अवशिष्ट होना। उ०—(क) कीन्हेसि जियन सदा सब चहा। कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) और जो बातें भगमानी से कहने को रह गई थीं, उनको भी उसी भाँति धीरे धीरे उसने उससे कहा।—अयोध्या (शब्द०)।

यौ०—**रहा सहा**=बचा बचाया। अवशिष्ट। थोड़ा जो बाकी था। जैसे,—तुम्हारे चले जाने से उनका रहा सहा उत्साह भी जाता रहा।

मुहा०—(**अंग आदि का**) **रह जाना**=थक जाना। शिथिल हो जाना। जैसे,—(क) लिखते लिखते हाथ रह गया। (ख) चलते चलते पैर रह गए। **रह जाना**=(१) पीछे छूट जाना। जैसे,—मेरी छड़ी वहीं रह गई है। (२) अवशिष्ट होना। खर्च या व्यवहार से बचना। जैसे,—मेरे पास यही पुस्तक रह गई है।

विशेष—अवस्थानसूचक इस क्रिया का प्रयोग बहुत व्यापक है। प्रधान क्रिया के अतिरिक्त यह और क्रियाओं के साथ संयुक्त होकर भी आती है। जैसे,—आ रहा है; जा रहते हैं।

रहना—संज्ञा पुं० शेर, बाघ आदि के रहने का स्थान। वन का वह विभाग जहाँ शेर, चीते आदि के रहने की माँदें हों। इसे 'रमना' भी कहते हैं।

रहनि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] १. आचरण। चाल ढाल। रहन। उ०—सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रेम। प्रीति। लगन। उ०—जौ पै रहनि राम सों नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर सम जाय जियत जग माही।—तुलसी (शब्द०)।

रहनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहनि] दे० 'रहनि'।

यौ०—रहनी गहनी = दे० 'रहन के साथ यौ० में'। उ०—रहनी गहनी विधि सहित जाके आठो आँग।—अष्टांग०, पृ० ५७।

रहनुमा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पथप्रदर्शक। मार्गदर्शक। २. नेता। अगुवा।

रहनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] राह दिखाने का काम। पथप्रदर्शन।

रहपट†—संज्ञा पुं० [?] झापड़। थप्पड़। उ०—ग्राम पच्छ नव कंचन मई। रहप्ट एक जु ताकौ दई।—नंद० ग्रं०, पृ० २८३।

रहबर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मार्ग दिखानेवाला व्यक्ति। पथप्रदर्शक। उ०—रहबर मिलैं तौ पहुँचै जाई। जिन्हि देखा सो देहि देखाई।—संत० दरिया, पृ० ३१।

रहबरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पथप्रदर्शक का कार्य। मार्गदर्शन।

रहम[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. करुणा। दया। २. अनुकंपा। अनुग्रह।

यौ०—रहम दिल = दयालु। कृपालु।

रहम—संज्ञा पुं० [अ० रह्म] गर्भाशय।

रहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] कृपा। दया। मेहरबानी।

रहमान[1]—क्रि० [अ०] बड़ा दयालु।

रहमान[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा का एक नाम। (मुसल०)।

रहर, रहरि, रहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अरहर] दे० 'अरहर'।

रहरू†—संज्ञा स्त्री० [प०हिं० रिढ़ना (= घसिटना)] छोटी देहाती गाड़ी, जिसमें किसान लोग पाँस या खाद ढोते हैं।

रहरूढ़भाव—संज्ञा पुं० [सं० रहरूढभाव] १. संसार के झगड़ों को छोड़कर एकांत स्थान में निवास करना। २. वह जो इस प्रकार संसार को छोड़कर एकांत में निवास करता हो।

रहरेठा†—संज्ञा पुं० [हिं० अरहर] अरहर के सूखे डंठल। कड़िया। रहठा।

रहल—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक विशेष प्रकार की छोटी चौकी जिसपर पढ़ने के समय पुस्तक रखी जाती है। उ०—रघुनाथ भावते को पानदान भरि धर्‌यो, धरी पोथी आय त्याय कोक की रहल मैं।—रघुनाथ (शब्द०)।

विशेष—इसमें दो छोटी छोटी पटरियाँ बीच में दूसरी को काटती हुई लगी रहती हैं और इच्छानुसार खोली या बंद की जा सकती हैं। खुलने पर इनका आकार × हो जाता है।

रहलूⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहरू] दे० 'रहरू'।

रहवाल[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रहवार] घोड़े की एक चाल।

रहवाल[2]—वि० [हिं० रहना + वाल (प्रत्य०)] रहनेवाला। निवास करनेवाला।

रहस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुप्त भेद। छिपी बात। २. आनंदमय लीला। क्रीड़ा। खेल। ३. आनंद। सुख। ४. योग, तंत्र या और किसी संप्रदाय की गुप्त बात। गूढ़ तत्व। मर्म। ५. एकांतता। एकांत स्थान। ६. सत्य (को०)। ७. शीघ्रता। द्रुतता (को०)।

रहस[1]—संज्ञा पुं० [सं० रहस् (= क्रीड़ा)] आनंद। आमोद प्रमोद। उ०—(क) मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइस जौं मिलै बिछूना।—जायसी (शब्द०)। (ख) जुवति जूथ रनिवास रहस बस यहि बिधि। देखि देखि सियराम सकल मंगल निधि।—तुलसी (शब्द०)।

रहस[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. स्वर्ग।

रहसना—क्रि० अ० [हिं० रहस + ना (प्रत्य०)] आनंदित होना। प्रसन्न होना। उ०—(क) एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवास।—तुलसी (शब्द०)। (ख) एहि बिधि रहसत दंपति हेतु हिए नहि थोरे।—सूर (शब्द०)। (ग) रहसत आय पपीहा मिला।—जायसी (शब्द०)।

रहसबधाव—संज्ञा पुं० [हिं० रहस + बधाई] विवाह की एक रीति जिसमें नवविवाहिता वधू को वर अपने साथ जनवासे में लाता है। वहाँ सब गुरुजन उस समय वधू का मुख देखते हैं और उसे वस्त्र, भूषणादि उपहार देते हैं।

रहसाना—क्रि० अ० [हिं० रहस + ना (प्रत्य०)] आनंदित होना। रहसना। उ०—भोग करत बिहसैं रहसाई।—जायसी (शब्द०)।

रहसिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रहस्] गुप्त स्थान। एकांत स्थान। उ०—सुनि बल मोहन बैठ रहसि में कीन्हों कछू विचार।—सूर (शब्द०)।

रहसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। पुंश्चली। बदचलन औरत।

रहस्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बात जो सबको बतलाई न जा सकती हो। गुप्त भेद। गोप्य विषय। २. भीतर की छिपी हुई बात। मर्म या भेद की बात। ३. वह जिसका तत्व सहज में या सब की समझ में न आ सके। उ०—यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुन गाना।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खुलना।

४. एकांत में घटित वृत्त, घटना या वार्ता। ५. हँसी ठट्ठा। मजाक। ६. एक उपनिषद् (को०)।

रहस्य[2]—वि० १. सबको न बताने योग्य। गोपनीय। २. जो एकांत में हुआ हो। जो छिपाकर हुआ हो।

रहस्यत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय की तीन कोटियाँ जिन्हें ईश्वर, चित् और अचित् कहते हैं।

रहस्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] अव्यक्त के प्रति आत्मनिवेदन का वाद या सिद्धांत।

रहस्यवादी—वि० [रहस्यवादिन्] १. रहस्यवाद को माननेवाला। २. रहस्यवाद से संबंधित या युक्त।

रहस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम। २. रास्ना। ३. पाठा। पाढ़ीं।

रहाइश—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] १. दे० 'रहाई'। २. गुंजाइश। समाई।

रहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] १. रहने की क्रिया या भाव। २. कल। चैन। आराम। उ०—सीस ते पूँछि लौं गात गर्‌यो पै डसे बिन ताहि परै न रहाई।—(शब्द०)।

रहाऊ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] गीत का पहला पद। टेक। स्थायी।
विशेष—यह शब्द अधिकतर पंजाब में बोला जाता है।

रहाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो किसी प्रकार की सलाह देता हो। २. मंत्री। अमात्य। ३. प्रेतात्मा।

रहानाⓅ—क्रि० अ० [हिं० रहना] १. होना। उ०—(क) भोजन मोर कपोत रहायो। ताको तै क्यों गोद छिपायो।—विश्राम (शब्द०)। (ख) मंदिर तिनकर जहाँ रहावा। तेहि द्रुम तरे बधिक जब आवा।—विश्राम (शब्द०)। २. रहना। उ०—नीम करुवापन ना तजै जल में सदा रहाय।—कबीर (शब्द०)।

रहावन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना + आवन (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ गाँव भर के सब पशु एकत्र होकर खड़े हों। रहुनिया। उ०—कान्ह कुँवर सब सखन संग मिलि ठाढ़े जुरे रहावन। देखी तौ लौं कुँवरि लाडिली अरु सखियन की आवन।—हंसराज (शब्द०)।

रहासहा—वि० [हिं० रहना+अनु० सहा] [वि० स्त्री० रहीसही] बचा-खुचा। बचा बचाया। जो थोड़ा सा बच रहा हो। उ०—(क) हिंदुओं का दिल रहासहा और भी टूट गया।—शिव-प्रसाद (शब्द०)। (ख) उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत रहीसही हैसियत भी खो दे।—बालमुकुंद गुप्त (शब्द०)।

रहित—वि० [सं०] बिना। बगैर। हीन। जैसे,—(क) आपकी बातें प्रायः अर्थरहित हुआ करती हैं। (ख) वे इन सब दोषों से रहित हैं। (ग) पुरुषार्थ रहित होकर जीवन नहीं बिताना चाहिए।

रहिला—संज्ञा पुं० [देश०] चना। उ०—रहिमन रहिला की भली जो परसै मन लाय। परसत मन मैला करै ऊ मैदा बहि जाय।—रहिमन (शब्द०)।

रहीम[१]—वि० [अ०] रहम करनेवाला। कृपालु। दयालु।

रहीम[२]—संज्ञा पुं० [अ०] १. अब्दुल रहीम खाँ खानखानाँ का उपनाम जो वे अपनी कविता में रखते थे। २. ईश्वर का एक नाम। (मुसलमान)।

रहुनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना+इया (प्रत्य०)] दे० 'रहावन'।

रहुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० रहना] किसी दूसरे के यहाँ केवल रोटियों पर रहनेवाला मनुष्य। टुकड़हा। रोटीतोड़। उ०—कह गिरधर कविराय कहत साहेब से रहुवा। तुम नीचे फल बेलि वृच्छ हम ऊँचे महुवा।—गिरधर (शब्द०)।

रहूगण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगिरस् गोत्र के अंतर्गत एक शाखा या गण। गौतम ऋषि इसी वंश के थे। २. इस वंश का मनुष्य।

रांकव—संज्ञा पुं० [सं० राङ्कव] १. मृगों के रोएँ से बना हुआ कपड़ा आदि। २. पशम। नरम ऊन।

रांडीर—संज्ञा पुं० [सं० राण्डीर] राँड की औलाद। एक गाली [को०]।

राँक—वि० [सं० रङ्क] दे० 'रंक'। उ०—राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाँचक जोरो।—तुलसी (शब्द०)।

राँकण†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंक] एक प्रकार की भूमि जिसमें बहुत कम अन्न पैदा होता है। ऐसी भूमि बहुधा कँकरीली और ऊँची नीची हुआ करती है।

राँग[१]—संज्ञा पुं० [सं० रङ्ग हिं० राँगा] दे० 'राँगा'।

राँग[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रंग] किसी फूल पत्ती आदि को पीसकर निकाला हुआ रस। स्वरस। जैसे—नेम का राँग। तुलसी का राँग।

राँगड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल जो पंजाब में पैदा होता है।

राँगा—संज्ञा पुं० [सं० रङ्ग] एक प्रसिद्ध धातु। त्रपु।
विशेष—यह बहुत नरम और रंग में सफेद होती है। यह पीट-कर पत्तर के रूप में की जा सकती है। यह प्रायः कई दूसरे पदार्थों के साथ पहाड़ों की दरारों तथा नदियों के किनारे पाई जाती है। यह भारत में केवल बरमा में मिलती है; और मलाया प्रायद्वीप तथा आस्ट्रेलिया आदि में बहुत मिलती है। यह बहुत साधारण आँच पाकर भी गल जाती है; इसीलिये इसका व्यवहार प्रायः फूल और भरत आदि मिश्रित धातुएँ बनाने में होता है। ताँबे के बरतनों पर इसी धातु से कलई की जाती है जिससे इसे कलई भी कहते हैं। वैद्यक में इसे कटु, तिक्त, शीतल, कषाय, लवण रस और मेह, कृमि, पांडु तथा दाह आदि का नाशक, कांतिवर्धक और रसायन माना है। इसे शोधकर और भस्म बनाकर अनेक प्रकार के रोगों में देते हैं।
पर्या०—रंग। वंग। त्रपु। नाग। त्रपुष। मधुर। हिम। पूतिगंध। कुरुप्य। स्वर्णज। कुरुपत्री। तमर। नागजीवन। चक्र। स्ववेत।

राँचⓅ†—अव्य० [हिं० रंच] दे० 'रंच'। उ०—झूठ बोल थिर रहै न राँचा। पंडित सोई वेद मत साँचा।—जायसी (शब्द०)।

राँचनाⓅ†[१]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] १. अनुरक्त होना। प्रेम करना। चाहना। उ०—(क) मन काँचै नाँचै वृथा साँचै राँचै राम।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मन जाहि राँचो मिलहि सो बर सहज सुंदर साँवरो।—तुलसी (शब्द०)। २. रंग पकड़ना।

राँचनाⓅ[२]—क्रि० स० [सं० रञ्जन] रंग चढ़ाना। रँगना। उ०—जो मजीठ औटै बहु आँचा। सो रंग जनम न डोलै राँचा।—जायसी (शब्द०)।

राँजना†[1]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] (आँख में) काजल लगाना ।

राँजना[2]—क्रि० स० रंजित करना । रँगना ।

राँजना[3]—क्रि० स० [हिं० राँगा] फूटे हुए बरतन को राँगे से जोड़ना । राँगे से टाँका लगाना ।

राँटा†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] टिटिहरी चिड़िया । टिट्टिभ । उ०—झिल्ली ते रसीली जीली राँटे हू की रट लीली, स्यार तें सवाई भूतभावनी ते आगरी ।—केशव (शब्द०) ।

राँटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० रहँटा] दे० 'रहँटा' ।

राँटा[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चोरों की सांकेतिक भाषा ।

राँड़—वि० स्त्री० [सं० रण्डा] १. जिसका पति मर गया हो और पुनर्विवाह न हुआ हो । विधवा । बेवा । २. रंडी । वेश्या । कसबी । (क्व०) ।

क्रि० प्र०— करना ।—रखना ।

राँढ़— संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल जो बंगाल में अधिकता से होता है ।

राँढ़ना†—क्रि० स० [सं० रुदन] विलाप करना । रोना । उ०—कोई औगुन मन बसा चित तें धरा उतार । दादू पति बिन सुंदरी राँढ़ै घर घर बार ।—दादू (शब्द०) ।

राँध—संज्ञा पुं० [सं० परान्त (=दूसरी ओर)] १. निकट । पास । समीप । उ०—(क) अनु रानी हौं रहतेउ राँधा । कैसे रहउँ बचा कर बाँधा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) एहि डर राँध न बैठों मकु साँवरि होइ जाउँ ।—जायसी (शब्द०) । २. पड़ोस । पार्श्व । बगल ।

यौ०—राँधपड़ोस, राँधपड़ोसी ।

राँधना—क्रि० स० [सं० रन्धन] (भोजन आदि) पकाना । पाक करना । जैसे,—दाल राँधना, चावल राँधना । उ०—बिबिध मृगन कर आमिष राँधा ।—तुलसी (शब्द०) ।

राँधपड़ोस†—संज्ञा पुं० [हिं० राँध (=पास)+पड़ोस] आसपास । पड़ोस । पार्श्व का स्थान । प्रतिवेश ।

राँपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पतली खुरपी के आकार का मोचियों का एक औजार जिससे वे चमड़ा तराशते, काटते और साफ करते हैं । रापी ।

राँभना—क्रि० अ० [सं० रम्भण] (गाय का) बोलना या चिल्लाना । बँबाना । उ०—(क) तब पृथ्वी दुख पाय घबराय गाय रूप बनाय राँभती राँभती देवलोक मे गई ।—लल्लू (शब्द०) । (ख) तमचुर खगरोर सुनहु बोलत बनराई । राँभति गो खरिकन में बछरा हित धाई ।—सूर (शब्द०) ।

राआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राआ] दे० 'राजा' ।

राइ—संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राया] छोटा राजा । राय । सरदार । उ०—(क) पउरिहि पउरि सिंह गढ़ि काढ़े । डरपहिं राइ देखि तिन्ह ठाढ़े ।—जायसी (शब्द०) ।

राइता—संज्ञा पुं० [हिं० रायता] दे० 'रायता' ।

राइफल—संज्ञा स्त्री० [अं०] घोड़ेदार बंदूक । बड़ी बंदूक ।

राइरंगा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'रामदाना' ।

राई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० राजिका, प्रा० राईआ] १. एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों । २. बहुत थोड़ी मात्रा या परिमाण ।

मुहा०—राई भर = बहुत थोड़ा । राई रत्ती करके = छोटी से छोटी रकम या तौल के हिसाब से । राई नोन उतारना = नजर लगे हुए बच्चे पर उतारा करके राई और नमक को आग में डालना, जिससे नजर के प्रभाव का दूर होना माना जाता है । राई ते पर्वत करना = थोड़ी बात को बहुत बढ़ा देना । उ०—अविगति गति जानी न परै । राई ते पर्वत करि डारै राई मेरु करै ।—सूर (शब्द०) । राई काई करना = टुकड़े टुकड़े कर डालना । राई काई होना = टुकड़े टुकड़े होना । उ०—अर्जुन ने ऐसे पवन बाण मारे कि बादल राई काई हो यों उड़ गए, जैसे रूई के पहल पवन के झोंक से ।—लल्लू (शब्द०) । तेरी आँखों में राई नोन = ईश्वर करे, तेरी बुरी डीठ मुझे न लगे । राई से पर्वत करना = छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । राई लोन उतारना=दे० 'राई नोन उतारना' । उ०—(क) हिरण्याक्ष अरु हिरनकशिपु भट आदिक जेइ संहारयो । ताहि प्रेत बाधा वारन हित राई लोन उतारयो ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) कबहुँ अंग भूषण बनवावति राई लोन उतारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) यशुमति माय धाय उर लीन्हों राई लोन उतारो ।—सूर (शब्द०) ।

राई(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० राई] राजा होने का भाव । राजापन । राजसी ।

राई(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० राजा] १. राजा । २. वह जो सबसे श्रेष्ठ हो । उ०—सुनु मुनि राई, जग सुखदाई । कहि अब सोई, जेहि यश होई ।—केशव (शब्द०) ।

राउंड—वि० [अं०] गोल । वर्तुल । चक्राकार ।

राउंड—संज्ञा पुं० १. वर्तुलाकार वस्तु । वृत्त । वलय । घेरा । २. चक्र । चक्कर । दौर । फेरा । बारी [को०] ।

राउंड टेबुल कान्फरेंस—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सभा या संमेलन जिसमें एक गोल मेज के चारों ओर राजपक्ष तथा देश के भिन्न भिन्न मतों और दलों के लोग बिना किसी भेदभाव के एक साथ बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें । गोलमेज कान्फरेंस ।

राउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राय, राव] राजा । नरेश । उ०—राउ तृषित नहिं सो पहिचाना । देखि सुवेष महामुनि जाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

राउत†—संज्ञा पुं० [सं० राज+पुत्र प्रा० राअउत] १. राजवंश का कोई व्यक्ति । २. क्षत्रिय । ३. वीर पुरुष । बहादुर । उ०—राढ़ऊ राउत होत फिरि कै जूझै ।—तुलसी (शब्द०) ।

राउर(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० राज+पुर प्रा० राय, राअ+उर] राजाओं के महल का अंतःपुर । रनवास । जनानखाना ।

उ०—(क) जब राउर में रघुनाथ गए। बहुधा अवलोकत शोभ भए।—केशव (शब्द०)। (ख) भयो कुलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर।—तुलसी (शब्द०)। (ग) गे सुमंत तब राउर माहीं।—तुलसी (शब्द०)।

राउर†[२]—वि० [हिं०] श्रीमान का। आपका। उ०—(क) जो राउर आयसु मैं पाउँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सब कर हित रुख राउर राखे।—तुलसी (शब्द०)।

राउल⑤†—संज्ञा पुं० [सं० **राजकुल**] १. राजकुल में उत्पन्न पुरुष। २. राजा।

राकस⑤†—संज्ञा पुं० [सं० **राक्षस**] [स्त्री० **राकसिन, राकसिनि**] राक्षस। उ०—राकस बंस हमें हतने सब। काज कहा तिनसों हमसे अब।—केशव (शब्द०)। (ख) राजैं कहा रे राकस जानि बूझि बौरासि।—जायसी (शब्द०)।

राकसगद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० **राकस+गद्दा**] कदंब नाम की बेल और उसकी जड़ जो पंजाब, सिंध, गुजरात और लंका में पाई जाती है।

विशेष—इसकी जड़ ओषधि के काम में आती है। इसके खाने से दस्त और कै होती है। गर्मी के रोगी को इसका रस पिलाया जाता है और गठिया के रोगी की गाँठ पर इसका लेप चढ़ाया जाता है।

राकसताल—संज्ञा पुं० [हिं० **राकस+ताल**] तिब्बत में कैलास के उत्तर ओर की एक झील का नाम, जिसे रावणह्रद और मानतलाई भी कहते हैं।

राकसपत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० **राकस** (=राक्षस)+हिं० पत्ता] जंगली कुँवार जिसे काँटल और बबूर भी कहते हैं।

राकसिन, राकसिनि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राकस+इन, **इनि** (प्रत्य०)] राक्षसी। निशाचरी। उ०—खायो हुतो तुलसी कुरोग राँड राकसिनि, केसरीकिसोर राखे बीर बरियाई है।—तुलसी (शब्द०)।

राका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूर्णिमा की रात। २. पूर्णमासी। ३. खुजली का रोग। २. वह स्त्री जिसको पहले पहल रजोदर्शन हुआ हो। ५. चंद्रमा। (डिं०)। ६. खर और सूर्पणखा की माता का नाम। ७. एक नदी (को०)।

राकाचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० **राकाचन्द्र**] दे० **'राकापति'** [को०]।

राकापति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—राकापति षोडस उअहि तारा गन समुदाइ।—मानस, ७।७८।

राकारमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'राकापति' [को०]।

राकेश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

राक्षस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **राक्षसी**] १. निशाचर। दैत्य। असुर। २. कुबेर के धनकोश के रक्षक। ३. कोई दुष्ट प्राणी। ४. साठ संवत्सरों में से उनचासवाँ संवत्। ५. वैद्यक में एक रस जो पारे और गंधक के योग से बनता है।

विशेष—यह रस पेट की बादी दूर करता और भूख बढ़ाता है।

६. एक प्रकार का विवाह जिसमें कन्या के लिये युद्ध करना पड़ता है।

यौ०—**राक्षस** विवाह=विवाह का एक प्रकार जिसमें युद्ध में कन्या का हरण करके विवाह करते हैं। जैसे,—कृष्ण रुक्मिणी और पृथ्वीराज संयोगिता का विवाह।

७. ज्योतिष में एक योग का नाम (को०)। ८. तीसवाँ मुहूर्त (को०)। ९. राजा नंद का एक अमात्य ब्राह्मण जो कूटनीति का बहुत बड़ा ज्ञाता था।

राक्षसघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र का नाम।

राक्षसपति—संज्ञा पुं० [सं० **राक्षस+पति**] रावण। उ०—सिगरे नरनायक, असुर विनायक राक्षसपति हिय हारि गए।—केशव (शब्द०)।

राक्षसेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० **राक्षसेन्द्र**] रावण [को०]।

राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाक्षा। (अव्युत्पन्न प्रयोग)।

राख—संज्ञा स्त्री० [सं० **रक्षा? या** सं० **क्षार>खार** (वर्णव्यत्यय **से**,>**राख**] किसी बिलकुल जले हुए पदार्थ का अवशेष। भस्म। खाक। जैसे, कोयले की राख।

राखडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का आभूषण [को०]।

राखना⑤†—क्रि० स० [सं० **रक्षण**] १. रक्षा करना। बचाना। उ०—जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहै कोइ।—कबीर (शब्द०)। २. मानना। पालन करना। पालना। उ०—जो हठ राखै धरम की तेहि राखै करतार।—(शब्द०)। ३. पेड़ या फसल को जानवरों या चिड़ियों के खाने या लोगों के लेने से बचाना। रखवाली करना। उ०—खेत खरी राखे खरी खरे उरोजन बाल।—बिहारी (शब्द०)। ४. छिपाना। कपट करना। उ०—कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खग ही की भाखा।—तुलसी (शब्द०)। ५. रोक रखना। जाने न देना। ठहराना। उ०—जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।—तुलसी (शब्द०)। ६. आरोप करना। बताना। उ०—तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा।—तुलसी (शब्द०)। ७. दे० 'रखना'।

राखी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **रक्षा**] वह मंगलसूत्र जो कुछ विशिष्ट अवसरों पर, विशेषतः श्रावणी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मण या और लोग अपने यजमानों अथवा आत्मीयों के दाहिने हाथ की कलाई पर बाँधते हैं। रक्षाबंधन का डोरा। रक्षा।

राखी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **राख**+ई (प्रत्य०)] दे० 'राख'।

राग—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी इष्ट वस्तु या सुख आदि को प्राप्त करने की इच्छा। प्रिय या अभिमत वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा। प्रिय या सुखद वस्तु की ओर आकर्षण या प्रवृत्ति। सांसारिक सुखों की चाह।

विशेष—पतंजलि ने इसे पाँच प्रकार के क्लेशों में से एक प्रकार का क्लेश माना है। उनके मत से जो व्यक्ति सुख भोगता है, उसकी प्रवृत्ति और अधिक सुख प्राप्त करने की ओर होती है;

और इसी प्रवृत्ति का नाम उन्होंने राग रखा है। इसका मूल अविद्या और परिणाम क्लेश है।

२. क्लेश। कष्ट। पीड़ा। तकलीफ। ३. मत्सर। ईर्ष्या। द्वेष। ४. अनुराग। प्रेम। प्रीति। उ०—जो जन जगत जहाज है, जाके राग न द्वेष।— तुलसी (शब्द०)। ५. चंदन, कपूर, कस्तूरी आदि से बना हुआ अंग में लगाने का सुगंधित लेप। अंगराग। उ०—कौन करै होरी कोई गोरी समुझावै कहा, नागरी को राग लाग्यो विष सो बिराग सों। कहर सी केसर कपूर लाग्यो काल सम गाज सों गुलाब लाग्यो अरगजा राग सों। —पद्माकर (शब्द०)। ६. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १३ अक्षर (र, ज, र, ज और ग) होते हैं। ७. रंग, विशेषतः लाल रंग। जैसे,—लाख आदि का। ८. मन प्रसन्न करने की क्रिया। रंजन। ९. राजा। १०. सूर्य। ११. चंद्रमा। १२. पैर में लगाने का अलता। १३. संगीत में षड्ज आदि स्वरों, उनके वर्णों और अंगों से युक्त वह ध्वनि जो किसी विशिष्ट ताल में बैठाई हुई हो और जो मनोरंजन के लिये गाई जाती हो। किसी खास धुन में बैठाए हुए स्वर जिनके उच्चारण से गान होता हो।

विशेष—संगीत शास्त्र के भारतीय आचार्यों ने छह राग माने हैं; परंतु इन रागों के नामों के संबंध में बहुत मतभेद है। भरत और हनुमत के मत से ये छह राग इस प्रकार हैं—भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। सोमेश्वर और ब्रह्मा के मत से इन छह रागों के नाम इस प्रकार हैं—श्री, वसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नटनारायण। नारद-संहिता का मत है कि मालव, मल्लार, श्री, वसंत, हिंडोल और कर्णाट ये छह राग हैं। परंतु आजकल प्रायः ब्रह्मा और सोमेश्वर का मत ही अधिक प्रचलित है। स्वरभेद से राग तीन प्रकार के कहे गए हैं—(१) संपूर्ण, जिसमें सातो स्वर लगते हों; (२) षाड़व, जिसमें केवल छह स्वर लगते हों और कोई एक स्वर वर्जित हो; और (३) ओड़व, जिसमें केवल पाँच स्वर लगते हों और दो स्वर वर्जित हों। मतंग के मत से रागों के ये तीन भेद हैं—(१) शुद्ध, जो शास्त्रीय नियम तथा विधान के अनुसार हो और जिसमें किसी दूसरे राग की छाया न हो; (२) सालंक या छायालग, जिसमें किसी दूसरे राग की छाया भी दिखाई देती हो, अथवा जो दो रागों के योग से बना हो; और (३) संकीर्ण, जो कई रागों के योग से बना हो। संकीर्ण को 'संकर राग' भी कहते हैं। ऊपर जिन छह रागों के नाम बतलाए गए हैं, उनमें से प्रत्येक राग का एक निश्चित सरगम या स्वरक्रम है; उसका एक विशिष्ट स्वरूप माना गया है; उसके लिये एक विशिष्ट ऋतु, समय और पहर आदि निश्चित हैं; उसके लिये कुछ रस नियत हैं; तथा अनेक ऐसी बातें भी कही गई हैं; जिनमें से अधिकांश केवल कल्पित ही हैं। जैसे, माना गया है कि अमुक राग का अमुक द्वीप या वर्ष पर अधिकार है, उसका अधिपति अमुक ग्रह है, आदि। इसके अतिरिक्त भरत और हनुमत के मत से प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदि के मत से छह छह रागिनियाँ हैं। इस अंतिम मत के अनुसार प्रत्येक राग के आठ आठ पुत्र तथा आठ आठ पुत्रवधुएँ भी हैं (विशेष दे० 'रागिनी'-४)। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो राग और रागिनी में कोई अंतर नहीं है। जो कुछ अंतर है, वह केवल कल्पित है। हाँ, रागों में रागिनियों की अपेक्षा कुछ विशेषता और प्रधानता अवश्य होती है और रागनियाँ उनकी छाया से युक्त जान पड़ती हैं। अतः हम रागनियों को रागों के अवांतर भेद कह सकते हैं। इसके सिवा और भी बहुत से राग हैं, जो कई रागों की छाया पर अथवा मेल से बनते हैं और 'संकर राग' कहलाते हैं। शुद्ध रागों की उत्पत्ति के संबंध में लोगों का विश्वास है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण की बंशी के सात छेदों में से सात स्वर निकले हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण जी की १६०८ गोपिकाओं के गाने से १६०८ प्रकार के राग उत्पन्न हुए थे; और उन्हीं में से बचते बचते अंत में केवल छह राग और उनकी ३० या ३६ रागिनियाँ रह गईं। कुछ लोगों का यह भी मत है कि महादेव जी के पाँच मुखों से पाँच राग (श्री, बसंत, भैरव, पंचम और मेघ) निकले हैं और पार्वती के मुख से छठा नटनारायण राग निकला है।

मुहा०—**अपना राग अलापना** = अपनी ही बात कहना। अपना ही विचार प्रकट करना, दूसरे की बातों पर ध्यान न देना।

रागखांडव—संज्ञा पुं० [सं० रागखाण्डव] दे० 'रागषाड़व'।

रागखाडव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खाद्यपदार्थ। दे० 'रागषाड़व'।

रागचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. खैर का पेड़। ३. लाख। लाह (को०)। ४. अबीर। गुलाल (को०)।

रागच्छन्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. रामचंद्र।

रागदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक। सित मणि [को०]।

रागदालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूर [को०]।

रागद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] रँगने का सामान। रंग [को०]।

रागदृश्—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य। लाल [को०]।

रागना(पु)[१]—क्रि० अ० [सं० राग + हिं० ना (प्रत्य०)] १. अनुराग करना। अनुरक्त होना। २. रँग जाना। रंजित होना। ३. निमग्न हो जाना। उ०—सोमक स्याम करन रस रागि। —गोपाल (शब्द०)।

रागना[२]—क्रि० स० [सं० राग] गाना। अलापना। उ०—(क) या अनुराग की फाग लखो जहँ रागती राग किशोर किशोरी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) पैंधी लंबित सतलरी पुही प्रेम रँग ताग। मनो विपंची काम की रागति पंचम राग।—गुमान (शब्द०)। (ग) गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यो राग मलार।—बिहारी (शब्द०)।

रागपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुमूल्य पत्थर [को०]।

रागपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बंधुजीव नामक पुष्प या उसका पौधा। गुलदुपहरिया।

रागपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा।

रागप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रागपुष्प' [को०]।

रागभजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

रागयुज्—संज्ञा पुं० [सं०] मानिक। माणिक्य [को०]।

रागरज्जु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रागलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री, रति।

रागलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रेखा। रंग की लकीर।

रागविवाद—संज्ञा पुं० [सं०] गाली गलौज।

रागषाड़व—संज्ञा पुं० [सं० रागषाडव] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो अनार और दाख से बनता था। २. आम का मुरब्बा।

रागसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

रागांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० रागाङ्गी] मजीठ।

रागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मडुआ या मकरा नाम का कदन्न [को०]।

रागात्मक—वि० [सं०] प्रेम उत्पन्न करने या बढ़ानेवाला [को०]।

रागान्वित—वि० [सं०] १. रागयुक्त। जिसे राग या प्रेम हो। २. जिसे क्रोध हो।

रागारु—सं० [सं०] जो किसी को कुछ देने की आशा बँधाकर भी न दे।

रागाशनि—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

रागिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विदग्धा स्त्री। २. मैना की बड़ी कन्या का नाम। ३. जयश्री नाम की लक्ष्मी। ४. संगीत में किसी राग की पत्नी या स्त्री। दे० 'राग'।

विशेष—हनुमत और भरत के मत से प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदि के मत से छह छह रागिनियाँ हैं। परंतु साधारणतः लोक में छह रागों की छत्तीस रागिनियाँ ही मानी जाती हैं। इस अंतिम मत के अनुसार प्रत्येक राग की रागिनियाँ इस प्रकार हैं।

श्रीराग की भार्याएँ या रागिनियाँ—मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी। वसंत राग की रागिनियाँ—देशी, देवगिरि, वैराटी, टौरिका, ललिता और हिंडोल। **पंचम राग** की रागिनियाँ—विभास, भूपाली, कर्णाटी, पठहंसिका, मालवी, और पटमंजरी। **भैरव राग** की रागिनियाँ—भैरवी, बंगाली, सैंधवी, रामकेली, गुर्जरी और गुणकली। **मेघ राग** की रागिनियाँ—मल्लारी, सोरटी, सावेरी, कौशिकी, गांधारी और हरश्रृंगार। **नटनारायण** राग की रागिनियाँ—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगा और हम्मीरी। अन्य मत से रागों की रागिनियाँ इस प्रकार हैं। भैरव—मध्यमादि (मधुमाधवी), भैरवी, बगाली, वरारी और सैंधवी। मालकोस—टोड़ी, खंबावती, गौरी, गुणकरी और ककुभा। हिंडोल—बिलावती, रामकली, देसाख, पटमंजरी और ललित। दीपक—केदारी, करणाटी, देसी टौड़ी, कामोदी और नट। श्री—वसंत, मालवी, मालश्री, असावरी और धनाश्री। मेघ—गौड़मल्लारी, देसकार, भूपाली, गुर्जरी और श्रीरंक। कुछ लोगों के मत से रागिनियों के उक्त नामों में मतभेद भी है। इन छत्तीस रागिनियों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों रागिनियाँ हैं, जो प्रायः कई रागों और रागिनियों के मेल से बनती हैं और जिन्हें संकर रागिनी कहते हैं।

रागी[1]—संज्ञा पुं० [सं० रागिनी] [स्त्री० रागिन्] १. अनुरागी। प्रेमी। २. मडुवा या मकरा नामक कदन्न। ३. छह मात्रा-वाले छंदों का नाम। ४. अशोक वृक्ष।

रागी[2]—वि० १. रंगा हुआ। २. लाल। सुर्ख। उ०—सुआई जहाँ देखिए वक्र रागी।—केशव (शब्द०)। ३. विषय वासना में फँसा हुआ। विषयासक्त। विरागी का उलटा। उ०—पयपावनि बन भूमि भलि सैल, सुहावन पीठि। रागिहि सीठि विसेषि थलु, विषय विरागहि मीठि।—तुलसी (शब्द०)। ४. रंजन करनेवाला। रँगनेवाला।

रागी(पु)‡[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० राज्ञी] राजा की पत्नी। रानी। उ०—तौ लग संग विभीषण के कर राज इहाँ गढ़ ह्वै पट रागी।—राम (शब्द०)।

राघव—संज्ञा पुं० [सं०] १. रघु के वंश में उत्पन्न व्यक्ति। २. श्री रामचंद्र। ३. दशरथ। ४. अज। ५. समुद्र में रहनेवाली एक प्रकार की बहुत बड़ी मछली।

राचना(पु)[1]—क्रि० स० [हिं० रचना] रचना। बनाना। उ०—(क) वे चूनै जग राचिया साईं नूर निनार। तब आखिर के बखत में किसका करूँ दिदार।—कबीर (शब्द०)। (ख) कोटि इंद्र छिन ही में राचै छिन में करै बिनास। सूर रच्यो उनहीं को सुरपति मैं भूलो तेहि आस।—सूर (शब्द०)। (ग) धनि धनि सूरदास के स्वामी अदभुत राच्यो रास। —सूर (शब्द०)। (घ) विशद विहंगन की वाणी राग राचती सी नाचती तरग ऐन आनंद बधाई सी।—पद्माकर (शब्द०)।

राचना(पु)[2]—क्रि० अ० रचा जाना। बनना।

राचना(पु)[3]—क्रि० अ० [सं० रञ्जन] १. रँगा जाना। रंग पकड़ना। रंजित होना। उ०—प्रेम मानि कछु सुधि न रही अँग रहे श्याम रँग राची।—सूर (शब्द०)। (ख) तो रस राच्यो आन बस, कह्यो कुटिल मति कूर। जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि खजूर।—बिहारी (शब्द०)। (ग) राची भूमि हरित हरित तृण जालन सों बिच खात त्यों फुहारन सो छहरात। देव स्वामी—(शब्द०)। २. अनुरक्त होना। प्रेम करना। उ०—(क) पर नारी के राचने सूधो नरकै जाय। यम ताको छाँड़े नहीं कोटिन करै उपाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) बिरंचि मन बहुरि राच्यो आइ। टूटी जुरै बहुत जतननि करि तऊ दोष नहिं जाइ।—सूर (शब्द०)। (ग) बहकि बड़ाई आपनी कत राचत मति भूल। बिन मधु मधुकर के हिए गड़ै न गुड़हर फूल।—बिहारी (शब्द०)। ३. लीन होना। मग्न होना। डूबना। उ०—(क) जग जहदा में राचिया झूठे कुल की लाज। तन छीजै कुल बिनसिहै रटै न राम जहाज। —कबीर (शब्द०)। (ख) कछु कुल धर्म न जानई वाके रूप

सकल जग राच्यो। बिनु देखे बिनु ही सुने ठगत न कोऊ बाच्यो।—सूर (शब्द०)। ४. प्रसन्न होना। उ०—(क) जय जय तिहुँ पुर जयमाल राम उर बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रमान मान नाचहीं। अमान मान राचहीं। समान मान पावहीं। बिमान मान धावहीं।—केशव (शब्द०)। ५. शोभा देना। भला जान पड़ना। उ०—आँच न चद्रकला बिच राचत साँच न चोरिन के चरसा में।—मतिराम (शब्द०)। ६. प्रभावान्वित होना। सोच में या चिंता में पड़ना। उ०—शीत उष्ण सुख दुख नहिं मानै हानि भए कछु सोच न राचै। जाइ समाइ सूर वा निधि में बहुरि न उलटि जगत में नाचै।—सूर (शब्द०)।

राछ—संज्ञा पुं० [सं० रक्ष] १. कारीगरों का औजार। उ०—क्या गुरु कोई घर का राछ है कि भला मिलो चाहै बुरा, परंतु प्राणी को अवश्य बना ही छोड़ना चाहिए।—श्रद्धाराम (शब्द०)। २. लकड़ी के अंदर का पक्का अंश। हीर। ३. जुलाहों के करघे में एक औजार जिससे ताने का तागा ऊपर नीचे उठता और गिरता है। कंघी।

विशेष—यह दो नरसलों का होता है जिसके बीच में ऊपर नीचे तागे बँधे होते हैं और जिनके बीच से ताने के तागे एक एक करके निकाले जाते हैं।

४. बरात। जलूस।

क्रि० प्र०—निकालना।—फिराना।

मुहा०—**राछ घुमाना** = विवाह में वर को पालकी पर चढ़ाकर किसी जलाशय या कूएँ की परिक्रमा कराना।

५. चक्की के बीच का खूँटा जिसके चारों ओर ऊपर का पाट फिरता है। ६. लोहार का बड़ा हथौड़ा।

राछछ‡—संज्ञा पुं० [सं० राचस, हिं० राछस] दे० राक्षस'।

राछबँधिया—संज्ञा पुं० [हिं० राछ + बाँधना] वह जुलाहा या आदमी जो राछ बाँधने का काम करता हो।

राछस(५)†—संज्ञा पुं० [सं० राक्षस] दे० 'राक्षस'।

राज[1]—संज्ञा पुं० [सं० राज्य] १. देश का अधिकार या प्रबंध। प्रजा-पालन की व्यवस्था। हुकूमत। राज्य। शासन। उ०—(क) सुख सोवैं जो राज याके सब। दुख पैहैं सो सकल प्रजा अब।—सूर (शब्द०)। (ख) खान बलि अली अकबर अद्भुत राज, रावरो है अचल सुयश भीजियतु है।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—**राज करना** = हुकूमत करना। प्रजापालन की व्यवस्था करना। उ०—मोहिं चलो बन सग लिएँ। पुत्र तुम्हें हम देखि जिएँ। अवधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरत्थ करै।—केशव (शब्द०)। **राज काज** = राज्य का प्रबंध। राज्य का काम। उ०—(क) राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग को है बेद बुधि विद्या वाय विवस बलकहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राज काज कछु मन नहिं धरै। चक्र सुदर्शन रक्षा करै।—सूर (शब्द०)। **राज देना** = किसी को किसी देश के शासन का भार देना। किसी को कहीं का शासक बनाना। राज सिंहासन पर बैठाना। राज्य का अधिकार देना। उ०—दीन्हें मारि असुर हरि ने तब देवन दीन्हों राज। एकन को फगुआ इंद्रासन इक पताल को साज।—सूर (शब्द०)। **राज पर बैठना** = राज सिंहासन पर बैठना। राज्याधिकार पाना। उ०—जब से बैठे राज, राजा दशरथ भूमि में। सुख सोयो सुरराज, ता दिन ते सुरलोक में।—केशव (शब्द०)। **राज भूँजना** = राज्य का भोग करना। शासन करना। बहुत सुख भोगना। उ०—राजु कि भूँजब भरत पुर नृप कि जिइहि बिनु राम।—मानस, २।४६। **राज रजना** = (१) राज्य करना। (२) राजाओं का सा सुख भोगना। बहुत सुख से रहना। **राज रजाना** = बहुत सुख देना।

यौ० = **राजपाट** = (१) राजसिंहासन। (२) शासन। उ०—सिर पर धरि न चलोगे कोऊ अनेक जतन करि माया जोरी। राज-पाट सिंहासन बैठे नील पदम है सो कहै थोरी।—(शब्द०)।

२. उतना भूमिमान जितना एक राजा द्वारा शासित होता हो। एक राजा द्वारा शासित देश। जनपद। राज्य। उ०—ऋषि राज तज्यों धन धान्य तज्यों सब। नारि तज्यों सुत सोच तज्यों तब।—केशव (शब्द०)। ३. पूरा अधिकार। खूब चलती। जैसे,—आजकल बाजर भर में आपका राज है। ४. अधिकार काल। समय। जैसे,—पिताजी के राज में सारा सुख भोग लिया। ५. देश। जनपद। उ०—एक राज महँ प्रगट जहँ द्वै प्रभु केशवदास। तहाँ बसत है रैनि दिन मूरतिवंत विनाश।—केशव (शब्द०)।

राज[2]—संज्ञा पुं० [सं० राज् वा राजः] १. राजा। २. कोई श्रेष्ठ वस्तु। किसी वर्ग की सर्वश्रेष्ठ वस्तु। ३. वह कारीगर जो ईंटों से दीवार आदि चुनता और मकान बनाता है। थवई। राजगीर।

राज[3]—वि० श्रेष्ठ। सर्वोच्च। जैसे, मणिराज, ग्रहराज आदि।

राज[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० राज़] रहस्य। भेद। गुप्त बात।

राजक[1]—वि० [सं०] दीप्तिकारक। चमकनेवाला।

राजक[2]—संज्ञा पुं० १. राजा। २. काला अगर।

राजकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इतिहास। तवारीख।

राजकदंब—संज्ञा पुं० [सं० राजकदम्ब] एक प्रकार का कदंब जिसके फल बड़े और स्वादिष्ट होते हैं।

राजकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा की पुत्री। २. केवड़े का फूल।

राजकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो प्रजा से राजा लेता है। राजा को मिलनेवाला महसूल। खिराज।

राजकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. न्यायालय। अदालत। २. राजनीति। जैसे,—राजकरण की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के अंदर हुआ करती हैं; और जब तक वे कार्य में परिणत नहीं होतीं, तब तक वे बड़े यत्न से दबा रखी जाती हैं।—श्रीकृष्ण सदेश (शब्द०)।

राजककर्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

राजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़।

राजकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० राजकर्तृ] जो पुरुष दूसरे को राजसिंहासन पर बैठाता है। किसी को राजगद्दी पर यथेच्छ बैठाने और उतारने की शक्ति रखनेवाला पुरुष।

राजकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की सोलह कलाओं में से एक कला का नाम।

राजकलि—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट राजा। क्रूर शासक [को०]।

राजकल्प—वि० [सं०] दे० 'राजदेशीय'।

राजकशेरु—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रमोथा। नागरमोथा।

राजकीय—वि० [सं०] राजा या राज्य से संबंध रखनेवाला। राज्य संबंधी। जैसे,—राजकीय घोषणा।

राजकुँअर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० राजकुमार] [स्त्री० राजकुँअरि, राजकुँआरी] राजकुमार। उ०—लख्यो सुभद्रा यह संन्यासी। राजकुँअर कियो भेस उदासी।—सूर (शब्द०)।

राजकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजकुमारी] राजा का पुत्र।

राजकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं का खानदान। राजवंश। उ०—मृगराज राजकुल कलस कहँ बालक वृद्ध न जानिए।—केशव (शब्द०)। २. राजसभा। राजदरबार। ३. न्यायसभा। न्यायालय (को०)। ४. राजमहल। प्रासाद। सौध। राजसदन (को०)। ५. राजा का सेवक। शाही नौकर (को०)। ६. स्वामी। मालिक (को०)।

राजकुलक—देश० पुं० [सं०] परवल की लता।

राजकुष्मांड—संज्ञा पुं० [सं० राजकुष्माण्ड] बैंगन।

राजकोल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा बेर।

राजकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

राजकोषातक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजकोषातकी] एक प्रकार का नेनुआ जो बहुत बड़ा होता है। घीया। तरोई।

राजक्रोशक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा को गाली देने या कोसनेवाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने इसके लिये जीभ उखाड़ने का दंड लिखा है।

राजक्षवक—संज्ञा पुं० [सं०] राई।

राजखर्जुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

राजगद्दी—संज्ञा [हिं० राज+गद्दी] १. राजसिंहासन। राजा के बैठने का आसन। २. राज्याभिषेक। राज्यारोहण। ३. राज्याधिकार। उ०—राजा ययाति प्रसन्न हो बोला कि तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी।—लल्लू (शब्द०)।

राजगवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय की जाति का एक पशु।

राजगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगध देश के एक पर्वत का नाम। २. बथुआ। ३. दे० 'राजगृह'।

राजगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा+गी (प्रत्य०)] राजा का पद।

राजगीर—संज्ञा पुं० [सं० राज+गृह] मकान बनानेवाला कारीगर। राज। थवई।

राजगीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजगीर+ई (प्रत्य०)] राजगीर का कार्य वा पद।

राजगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजप्रासाद। राजा का महल। २. एक प्राचीन स्थान का नाम जो बिहार में पटने के पास है।

विशेष—इसे प्राचीन काल में गिरिव्रज कहते थे। महाभारत के अनुसार यहाँ मगध की राजधानी थी, जिसे कुश के पुत्र वसु ने शोण और गंगा के संगम पर पाँच पहाड़ियों के बीच में बसाया था। महाभारत के समय में यह जरासंध की राजधानी थी। महाभारत में उन पाँच पर्वतों का नाम वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक लिखा है। वायुपुराण में इन्हीं पाँचों का नाम वैभार, गिरिव्रज, रत्नकूट, रत्नाचल और विपुल लिखा है। श्रेणिक ने विपुलगिर के उत्तर, जिसे महाभारत के समय चैत्यक कहते थे, सरस्वती नामक एक छोटी सी नदी के पूर्व में नवीन राजगृह बसाया था। इसी को अब राजगिरि कहते हैं। यह श्रेणिक महावीर तीर्थंकर के काल में था और उनका प्रधान भक्त था। महात्मा बुद्ध के समय में यही बिंबसार की राजधानी थी। इन पहाड़ों पर अपने अपने समय में महावीर और गौतम बुद्ध ने निवास और उपदेश किया था तथा बौद्धों का प्रथम संघ यहीं पर संघटित हुआ था, और यहीं पर महाकाश्यप ने त्रिपिटक का प्रथम संग्रह किया था। यहाँ बौद्धों और जैनियों के अनेक मंदिर, स्तूप और चैत्यादि हैं। प्राचीन नगर के भग्नावशेष इसमें अब तक देखे जाते हैं। यहाँ अनेक प्राचीन अभिलेख भी मिले हैं। यह स्थान बौद्धों, जैनों और हिंदुओं का प्रधान तीर्थस्थान है।

राजगोपालाचारी—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल (सन् १९४८-५०)।

राजग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

राजघ[1]—वि० [सं०] राजा को मारनेवाला। राजा की हत्या करनेवाला।

राजघ[2]—वि० तीक्ष्ण। तेज।

राजचंपक—संज्ञा पुं० [सं० राजचम्पक] पुन्नाग का फूल। सुलताना चंपा।

राजचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र, चमर, आदि राजा के चिह्न। २. राजमुद्रा। राज्यचिह्न [को०]।

राजचिह्नक—संज्ञा पुं० [सं०] शिश्न। उपस्थ।

राजचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० राजचूडामणि] ताल के साठ भेदों में से एक। (संगीत)।

राजजंबू—संज्ञा पुं० [सं० राजजम्बू] १. बड़ा जामुन। फरेंदा। २. पिंड खजूर।

राजजक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं० राजजक्ष्मन्] राजयक्ष्मा रोग। विशेष दे० 'क्षय' [को०]।

राजजामुन—संज्ञा पुं० [सं० राजा+हिं० जामुन] जामुन की जाति का एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। पियामान। डूठी।

विशेष—इसकी छाल पीलापन लिए भूरे रंग की और खुरदुरी होती है। यह गरमी में फूलता और बरसात में फलता है। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है।

राजजीरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जीरा।

राजत[1]—वि० [सं०] रजत का बना हुआ। चाँदी का।

राजत[2]—संज्ञा पुं० रजत। चाँदी।

राजतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० राजतरङ्गिणी] कल्हण कृत काश्मीर का एक प्रसिद्ध इतिहास का ग्रंथ जो संस्कृत में है और जिसमें पीछे कई पंडितों ने वृत्तांत बढ़ाए। इसकी रचना अब तक होती जाती है।

राजतरु—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकार का वृक्ष। कनियारी। २. आरग्वध। अमलतास।

राजतरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कुब्जक या सफेद गुलाब जिसका फूल सेवती से बड़ा होता है। बड़ी सेवती।

विशेष—इसकी लता टट्टियों पर चढ़ाई जाती है। फूलों की गंध मंद और मीठी होती है। वैद्यक में इसे कफकारक, हृद्य और चाक्षुष्य माना है और इसका स्वाद कसैला लिखा गया है।

पर्या०—महासहा। वर्णपुष्प। अम्लान। अम्लातक। सुवर्ण पुष्प।

राजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा होने का भाव। २. राजा का पद।

राजताल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

राजतिमिश—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

राजतिलक—संज्ञा पुं० [हिं० राज+तिलक] १, राजसिंहासन पर किसी नए राजा के बैठने की रीति। राज्याभिषेक। उ०—नृपति युधिष्ठिर राजतिलक दै मारि दुष्ट की भीर। द्रोण कर्ण अरु शल्य मुक्त करि मेटी जग की पीर।—सूर (शब्द०)। २. नए राजा के गद्दी पर बैठने का उत्सव।

राजतेमिष—संज्ञा पुं० [सं०] राजतिमिश। तरबूज।

राजत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का भाव वा कर्म। २. राजा का पद।

राजदंड—संज्ञा पुं० [सं० राजदण्ड] १. राजशासन। २. वह दंड जिसका विधान राजा के शासन के अनुसार हो। वह दंड जो राजा की आज्ञा के अनुसार दिया जाय।

राजदंत—संज्ञा पुं० [सं० राजदन्त] दाँतों की पंक्ति के बीच का वह दाँत जो और दाँतों से बड़ा और चौड़ा होता है। चौका।

विशेष—ऐसे दाँत ऊपर और नीचे की पंक्तियों के बीच में होते हैं। कोई कोई ऊपर की पंक्ति में सामने के दो बड़े दाँतों को भी राजदंत मानते हैं; पर अन्य लोग दोनों पंक्तियों में बीच के दो दो दाँतों को राजदंत कहते हैं।

राजदूत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो एक राज्य की ओर से किसी अन्य राज्य में संधि या विग्रह संबंधी अथवा अन्य नैतिक कार्य संपादन करने के लिये या किसी प्रकार का संदेसा देकर भेजा जाता है।

विशेष—चाणक्य का मत है कि मेधावी, वाक्‌पटु, धीर, परचित्तोपलक्षक तथा यथोक्तवादी पुरुष को राजदूत नियत करना चाहिए। प्राचीन काल में आवश्यकता पड़ने पर ही राजदूत एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजे जाते थे; पर पश्चिमी देशों में यह प्रथा है कि मित्र राज्यों में राजाओं के राजदूत परस्पर एक दूसरे के यहाँ रहा करते है और उन्हीं के द्वारा सारा कार्य संपादित होता है। दो राज्यों के बीच युद्ध छिड़ने पर दोनों एक दूसरे के यहाँ से अपने अपने राजदूत बुला लेते हैं।

राजदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब जिसकी पत्तियाँ, कांड आदि स्थूल और बड़े होते हैं।

राजदृषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाँता। चक्की।

राजदेशीय—वि० [सं०] राजा से कुछ ही कम। राजा के तुल्य। राजकल्प।

राजद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध। अमलतास।

राजद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या राज्य के प्रति किया हुआ द्रोह। वह कृत्य जिससे राजा या राज्य के नाश या अनिष्ट की संभावना हो। बगावत। जैसे,—प्रजा या सेना को राजा या राज्य से लड़ने के लिये भड़काना।

राजद्रोही—वि० [सं० राजद्रोहिन्] राजद्रोह करनेवाला। बागी।

राजद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का द्वार। राजा की ड्योढ़ी। २. विचारालय। न्यायालय।

राजद्वारिक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का द्वारपाल। प्रतिहार [को०]।

राजधरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजधर्म] राजा का कर्तव्य या धर्म। राजधर्म। उ०—राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माह मनोरथ गोई।—मानस, २।३१५।

राजधत्तूरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का धतूरा जिसके फूल कई आवरण के होते हैं। २. कनक धतूरा।

राजधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का कर्तव्य या धर्म। जैसे,—प्रजा का पालन, शत्रु से देश की रक्षा, लूटपाट या उपद्रव आदि का निवारण। २. महाभारत के शांतिपर्व के एक अंश का नाम जिसमें राजा के कर्तव्यों का वर्णन है।

राजधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० राजधर्म्मन्] महाभारत के अनुसार काश्यप के एक पुत्र का नाम जो सारसों का राजा था।

राजधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह प्रधान नगर जहाँ किसी देश का राजा या शासक रहता हो। किसी प्रदेश का वह नगर जहाँ उस देश के शासन का केंद्र हो। जैसे—भारत की राजधानी दिल्ली, रूस की राजधानी मास्को, इंगलैंड की राजधानी लंदन।

पर्या०—राजधान। राजधानक। राजधानिका, आदि।

राजधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसे श्यामा धान भी कहते हैं। साँवा धान।

राजधुर्, राजधुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य का भार। शासन की जिम्मेदारी [को०]।

राजधुस्तूरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का धतूरा जिसके फूल बड़े और कई आवरण के होते हैं।

पर्या०—राजधूर्त। महाशठ। निस्त्रैण पुष्पक। भ्रांत। राजस्वर्ण।

२. कनक धतूरा। पीला धतूरा जो सोने की तरह दिपता है।

राजनय—संज्ञा पुं० [सं०] राजनीति।

राजनाⓟ—क्रि० अ० [सं० राजन (=शोभित होना)] १. विराजना। उपस्थित होना। रहना। उ०—(क) कान्हो केलि बहुत बल मोहन भुव को भार उतारेउ। प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति बेद पुरान उचारेउ।—सूर (शब्द०)। (ख) मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा शील तेज की खानी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पुरुजित अरु पुरुमित्र महीप। राज्यो रन रथ जोरि समीप।—गोपाल (शब्द०)। २. शोभित होना। सोहना। उ०—(क) आय जगदीश्वर ह्वै जग में विराजमान, हौं हू तो कवीश्वर ह्वै राजत रहत हौं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) बहु राजत है गजराज बड़े। नभ आडत बिद्ध मनो उमड़े।—गुमान (शब्द०)। (ग) वा दिन भाजे मुखन की, तुम नासी मुसुकाइ। ते राजे यह सुनि उठी, सुमना सी बिकसाइ।—शृं० स० (शब्द०)।

राजनामा—संज्ञा पुं० [सं० राजनामन्] पटोल। परवल।

राजनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नीति जिसका अवलंबन कर राजा अपने राज्य की रक्षा और शासन दृढ़ करता है।

विशेष—इसके प्रधान दो भेद हैं—एक तंत्र और दूसरा आवाय। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्य में सुप्रबंध और शांति स्थापित की जाय, तंत्र नीति कहलाती है; और जिसके द्वारा परराष्ट्रों से संबंध दृढ़ किया जाय, वह आवाय कहलाती है। स्वराज्य में प्रजा का समाचार और उनकी गति का पता देने के लिये राजा को चर से काम लेना पड़ता है; और परराष्ट्रों में स्वराष्ट्र के स्वत्व, वाणिज्य व्यापारादि की रक्षा तथा उनकी गतियों का पता देने के लिये दूत रहते हैं। इन दूतों और चरों से राजा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र की गति, चेष्टा आदि का पता लगाकर अपनी शक्ति और स्वत्व की समुचित रक्षा करता है। प्राचीन ग्रंथों में आवाय के छह मुख्य भेद किए गए हैं; जिनको षड्गुण भी कहते हैं। उनके नाम ये हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय। ये षड्नीति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। राजनीति के चार और अंग कहे गए हैं—साम, दान, दंड और भेद।

राजनीतिक—वि० [सं०] राजनीति संबंधी। जैसे,—राजनीतिक आंदोलन, राजनीतिक सभा।

राजनील—संज्ञा पुं० [सं०] मरकत मणि। पन्ना।

राजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षत्रिय। २. अग्नि। ३. खिरनी का पेड़। ४. राजा।

राजन्यबंधु—संज्ञा पुं० [राजन्यबन्धु] क्षत्रिय।

राजन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजकुल की महिला [को०]।

राजपंखीⓟ—संज्ञा पुं० [सं० राज+हिं० पंखी] राजहंस। उ०—पाँचवँ नग सो तहाँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी (शब्द०)।

राजपंथⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'राजपथ'। उ०—सुनु ऊधो! निर्गुन कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो?—सूर (शब्द०)।

राजपटोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पटोल या परवल।

विशेष—इसके फल बड़े होते हैं। फागुन चैत के महीनों में इसकी डालियाँ काटकर खेतों में दो दो हाथ की दूरी पर पंक्तियों में नाली खोदकर लगाई जाती हैं और उनमें पानी दिया जाता है। यह वैसाख जेठ से फूलने लगता है और इसकी फसल वर्षा ऋतु के मध्य तक रहती है। फल देखने में लंबे, बड़े और खाने में कुछ कम स्वादिष्ट होते हैं। इसे प्रति वर्ष खेतों में लगाने की आवश्यकता होती है। बिहार प्रांत में इसकी खेती अधिक होती है। इसे पूरबी या पटने का (पटनहिया) परवल भी कहते हैं।

राजपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुंबक पत्थर। २. एक साधारण रत्न (को०)।

राजपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चातक पक्षी।

राजपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का राजा। सम्राट्।

राजपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा की स्त्री। रानी। २. पीतल नाम की एक प्रसिद्ध धातु।

राजपथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह चौड़ा मार्ग जिसपर हाथी, घोड़े, रथ आदि सुगमता से चल सकते हों। राजमार्ग। बड़ी सड़क।

राजपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजपथ। २. राजनीति।

राजपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी नाम की लता।

राजपलांडु—संज्ञा पुं० [सं० राजपलाण्डु] लाल प्याज। विशेष दे० 'प्याज'।

राजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिससे राजा या राज्य की रक्षा हो। जैसे,—सेना आदि। २. दे० 'राज्यपाल'। गवर्नर।

राजपिंड—संज्ञा पुं० [सं० राजपिण्ड] राज्य द्वारा प्राप्त होनेवाला गुजारा [को०]।

राजपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] महापीलु नाम का वृक्ष।

राजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का पुत्र। राजकुमार। २. एक वर्णसंकर जाति का नाम। पुराणों में इस जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और कर्ण माता से लिखी है। ३. बड़े आम का एक भेद। ४. बुध ग्रह। ५. राजपूत क्षत्रिय (को०)। ६. राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष—गुप्तों के समय में यह पद घुड़सवारों के नायक को दिया जाता था। हिंदी का 'रावत' या 'राउत' शब्द इसी से बना है।

राजपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजपुत्रिका] १. राजकुमार। २. दे० 'राजपुत्र'।

राजपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह (स्त्री) जिसका पुत्र राजा हो। राजा की माता। राजमाता।

राजपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या। २. सफेद जुही। ३. शरारि नामक पक्षी। ४. पीतल।

राजपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कड़वा कद्दू। कटुतुंबी। २. रेणुका। ३. जाती। जूही का फूल। ४. छछूंदर। ५. मालती। ६. राजकन्या। ७. एक धातु। पीतल (को०)।

राजपुर—संज्ञा पुं० [सं०] राजधानी [को०]।

राजपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य का कोई अफसर या कार्यकर्ता। राजकर्मचारी।

राजपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागकेसर का पेड़। २. कनकचंपा।

राजपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वनमल्लिका। २. जाती पुष्प। ३. करुणी का फूल जो कोंकण में होता है।

राजपूग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूग वा सुपारी का वृक्ष [को०]।

राजपूजित—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जिनका सत्कार राज्य की ओर से होता हो और जो जीविका आदि के लिये प्रजावर्ग के आश्रित न हों। २. वह जो राजा द्वारा समादृत हो (को०)।

राजपूज्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

राजपूत—संज्ञा पुं० [सं० राजपुत्र] १. दे० 'राजपुत्र'। २. राजपूताने में रहनेवाले क्षत्रियों के कुछ विशिष्ट वंश जो सब मिलाकर एक बड़ी जाति के रूप में माने जाते हैं।

विशेष—'राजपूत' शब्द वास्तव में 'राजपुत्र' शब्द का अपभ्रंश है और इस देश में मुसलमानों के आने के पश्चात् प्रचलित हुआ है। प्राचीन काल में राजकुमार अथवा राजवंश के लोग 'राजपुत्र' कहलाते थे, इसीलिये क्षत्रिय वर्ग के सब लोगों को मुसलमान लोग राजपूत कहने लगे थे। अब यह शब्द राजपूताने में रहनेवाले क्षत्रियों की एक जाति का ही सूचक हो गया है। पहले कुछ पाश्चात्य विद्वान् कहा करते थे कि 'राजपूत' लोग शक आदि विदेशी जातियों की संतान हैं और वे क्षत्रिय तथा आर्य नहीं हैं। परंतु अब यह बात प्रमाणित हो गई है कि राजपूत लोग क्षत्रिय तथा आर्य हैं। यह ठीक है कि कुछ जंगली जातियों के समान हूण आदि कुछ विदेशी जातियाँ भी राजपूतों में मिल गई हैं। रही शकों की बात, सो वे भी आर्य ही थे, यद्यपि भारत के बाहर बसते थे। उनका मेल ईरानी आर्यों के साथ अधिक था। चौहान, सोलंकी, प्रतिहार, परमार, सिसोदिया आदि राजपूतों के प्रसिद्ध कुल हैं। ये लोग प्राचीन काल से बहुत ही वीर, योद्धा, देशभक्त तथा स्वामिभक्त होते आए हैं।

राजपूताना—संज्ञा पुं० [हिं० राजपूत] राजस्थान नामक प्रदेश जो भारत के पश्चिम में और पंजाब के दक्षिणी भाग में है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि राज्य इसी के अंतर्गत हैं।

राजप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपुरुष। राजा का अमात्य।

राजप्रमुख—संज्ञा पुं० [सं० राज + प्रमुख] राज्यसंघ का प्रधान।

राजप्रासाद—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का महल। राजमहल।

राजप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजपलांडु। २. करुणी का फूल जो कोंकण में उत्पन्न होता है।

राजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'राजप्रिय'। २. एक प्रकार का धान जो लाल रंग का होता है और जिसका चावल सफेद तथा स्वादिष्ट होता है। तिलवासिनी।

राजप्रेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या राज्य का नौकर। राजकर्मचारी।

राजफंद—संज्ञा पुं० [सं० राज + फंदा] शासन का भार। राज्य का सुख। राज्य का बंधन। राज्यभार। उ०—देखो कलि मंद मैं भरथरी औ गोपीचंद छाँड़ि राजफंद बनि जोगी बन जात भे।—दीन० ग्रं०, पृ० १७२।

राजफणिज्झक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नारंगी।

राजफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परवल। २. बड़ा आम। ३. खिरनी।

राजफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजजंबू। जामुन।

राजफल्गु—संज्ञा पुं० [सं०] काकोदुंबर। कठूमर। कठगूलर।

राजबंदी—संज्ञा पुं० [हिं०] राजनीतिक बंदी। वह बंदी जो राजद्रोह आदि के अपराध में पकड़ा गया हो।

राजबदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैवंदी या पेउंदी बैर। २. रक्तामलक। लाल आँवला। ३. लवण। नमक।

राजबरनⓅ—वि० [हिं० राज + वर्ण] राजा के समान तेजस्वी। राजा की कांतिवाला। उ०—राजबरन औ लंबी देहा।—कबीर सा०, पृ० १६०६।

राजबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

राजबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० राजवाटिका] १. राजा की वाटिका वा उद्यान। २. राजभवन। राजमहल।

राजबाहा—संज्ञा पुं० [हिं० राज + बहना] प्रधान या बड़ी नहर जिससे अनेक छोटी छोटी नहरें खेतों के लिये निकाली जाती हैं।

राजबीजी—संज्ञा पुं० [सं० राजबीजीन्] दे० राजवीजी'।

राजभंडार—संज्ञा पुं० [सं० राजभण्डार] राज्य या राजा का खजाना। राजकोश।

राजभक्त—वि० [सं०] जिसमें राजा या राज्य के प्रति भक्ति हो। राजा का भक्त।

राजभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा या राज्य के प्रति भक्ति या प्रेम।

राजभट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी। गोभंडीर। पकरीट। हायुत्री।

राजभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फरहद का पेड़। पारिद्रक। २. नीम। निंब। ३. कुड़ा। कुष्ठ। ४. कुंदरू। ५. सफेद आक।

राजभवन संज्ञा पुं० [सं०] १. राजप्रासाद। राजा का महल। २. राजधानी में राज्य का वह भवन जहाँ राज्यपाल या उपराज्यपाल रहते हैं।

राजभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं० राज+भाषा] वह भाषा जो सरकारी काम काज तथा न्यायालयों के लिये स्वीकृत हो। राष्ट्रभाषा।

राजभूय—संज्ञा पुं० [सं०] राजत्व। राज्य।

राजभृत—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सैनिक वा वेतनभोगी भृत्य।

राजभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजसेवक या राजमंत्री। २. सरकारी अथवा जनता का प्रशासक [को०]।

राजभोग-संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में होता है। उ०—राजभोग औ रानी काजर। भाँति भाँति के सीझे चावर।—जायसी (शब्द०)। २. राजा का भोजन। राजकीय भोजन (को०)। ३. एक प्रकार का आम।

राजभोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जावित्री। २. पयार। चिरौंजी। ३. एक प्रकार का धान। राजभोग।

राजमंडल संज्ञा पुं० [सं० राजमण्डल] ऐसे राजाओं का राज्य जो किसी राज्य के आस पास हो। किसी राज्य के आस पास या चारों ओर के राज्य।

विशेष—नीतिशास्त्र में बारह प्रकार के राजमंडल माने गए हैं—अरि, मित्र, उदासीन, विजिगीषु, पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, विजिगीषु का पुरःसर और पश्चाद्वर्ती, पार्ष्णिग्रहसार, आक्रंदसार, अरिसम, मित्रसम और मध्यम।

राजमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० राजमण्डूक] एक प्रकार का मेढ़क जो बहुत बड़ा होता है।

पर्या—महामंडूक। पीताभ। वर्षाघोष। महोरव।

राजमंत्रधर—संज्ञा पुं० [सं० राजमन्त्रधर] दे० 'राजमंत्री' [को०]।

राजमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० राजमन्त्रिन्] राजा का मंत्री। अमात्य। सचिव [को०]।

राजमँदिर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजमन्दिर] राजमहल। प्रासाद। उ०—तेहि पर ससि जो कचपचिन्ह भरा। राजमँदिर सोनै नग जरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २९९।

राजमराल—संज्ञा पुं० [सं०] राजहंस।

राजमहल—संज्ञा पुं० [हिं० राजा+महल] १. राजा का महल। राजप्रासाद। २. एक पर्वत का नाम जो बंगाल में संथाल परगने के पास है।

विशेष—यह पर्वतमाला समुद्र से दो हजार फुट ऊँची है। यहाँ मुगल साम्राज्य काल के बने अनेक प्रासाद, मसजिदें, भवन आदि विद्यमान हैं।

राजमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटरानी। प्रधान रानी [को०]।

राजमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० राजमातृ] वह स्त्री जिसका पुत्र राजा हो। राजा की माता। उ०—मझली माँ ने क्या समझा था कि मैं राजमाता हूँगी।—पंचवटी, पृ० ७।

राजमात्र—वि० [सं०] जो नाम मात्र का राजा हो।

राजमान—वि० [सं०] दीप्त। चमकता हुआ। शोभित [को०]।

राजमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] राजपथ। चौड़ी सड़क।

राजमाष—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा उरद जो नीले या काले रंग का होता है।

विशेष—वैद्यक में इसे रुचिकर, रुक्ष, लघु, वातकारक और बल तथा शुक्र बढ़ानेवाला लिखा है। विशेष दे० 'उरद'।

पर्या०—नीलमाष। नृपमाष।

राजमाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें माष बोया जाता हो। मसार।

राजमुद्ग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूँग। यह सुनहले रंग का होता है और खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है।

राजमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा की मुहर। सरकारी मुहर। २. राजा के नाम से अंकित वह अँगूठी जिसे राजा धारण करता हो।

राजमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] राजर्षि।

राजमृगांक—संज्ञा पुं० [सं० राजमृगाङ्क] एक मिश्र रस का नाम जो यक्ष्मा रोग में दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—सोने को उतनी ही चाँदी, और उससे दूने मैनशिल, गंधक, हरताल तथा तिगुने रससिंदूर के साथ मिलाकर एक कौड़ी में भर देते हैं। फिर बकरी के दूध में सुहागा पीसकर उससे कौड़ी का मुँह बंद कर देते हैं। फिर उसे मिट्टी के बरतन में भरकर गजपुट से फूंक देते हैं। ठंढा होने पर उसे निकालकर पीस डालते हैं। कुछ लोग चाँदी की जगह ताँबा और रससिंदूर की जगह चौगुना पारा डालकर भी यह रस बनाते हैं। यह रस चार रत्ती की मात्रा में खाया जाता है। इसका अनुपान घी, मधु या पीपल और मिर्च है।

राजयक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं० राजयक्ष्मन्] क्षयी। यक्ष्मा। क्षय रोग। तपेदिक। विशेष दे० 'क्षय'।

राजयक्ष्मी—वि० [सं० राजयक्ष्मिन्] जिसे राजयक्ष्मा रोग हुआ हो। क्षय रोग से पीड़ित।

राजयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालकी। २. वह सवारी जो राजा के लिये हो। ३. राजा की सवारी का निकलना। राजा का जलूस।

राजयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्राचीन योग जिसका उपदेश पतंजलि ने योगशास्त्र में किया है।

विशेष—इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक अष्टांग का यथाक्रम अभ्यास किया जाता है। इसे अष्टांग योग भी कहते हैं। विशेष दे० 'योग'।

२. फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रहों का ऐसा योग जिसके जन्मकुंडली में पड़ने से मनुष्य राजा या राजा के तुल्य होता है।

विशेष—यवनाचार्य के मत से पापग्रहों का जन्मसमय स्वस्थानभागी होकर सुच्च होना राजयोग है। पर जीवशर्मा का मत है कि मंगल, शनि, सूर्य और बृहस्पति में से किसी तीन ग्रहों का अपने स्थान में सुच्च पड़ना राजयोग है।

राजयोग्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन।

राजयोग्य[२]—वि० राजा के योग्य वा उपयुक्त।

राजरंग—संज्ञा पुं० [सं० राजरङ्ग] चाँदी। रजत।

राजरथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का रथ।

राजराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं का राजा। अधिराज। २. कुबेर। ३. चंद्रमा।

राजराजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजराजेश्वरी] १. राजाओं का राजा। अधिराज। २. एक रसौषध का नाम जिसका प्रयोग दाद, कुष्ठ आदि रोगों में होता है।

विशेष—पारे, गंधक और हरताल के साथ ताँबे को मिलाकर भँगरैया के रस में एक दिन खरल करके उसमें त्रिफला, गुडुच, बकुची सम भाग मिलाकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाई जाती हैं और दो तोले मधु या घी के साथ खाई जाती हैं।

राजराजेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दस महाविद्याओं में से एक का नाम। भुवनेश्वरी। २. राजराजेश्वर की पत्नी। महाराज्ञी।

राजरीति—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा। कसकुट।

राजरोग—संज्ञा पुं० [हिं० राज + रोग] १. वह रोग जो असाध्य हो। जैसे,—यक्ष्मा, श्वास इत्यादि। २. राजयक्ष्मा। क्षय रोग।

राजर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋषि जो राजवंश या क्षत्रिय कुल का हो। क्षत्रिय ऋषि। जैसे,—राजर्षि विश्वामित्र।

विशेष—ऋषि सात प्रकार के कहे गए हैं—देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, परमर्षि, राजर्षि, कांडर्षि और श्रुतर्षि। इनमें से अंतिम दो वेद के द्रष्टा हैं।

राजल—संज्ञा पुं० [हिं० राजा + ल (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान जो अगहन में पककर काटने योग्य होता है।

राजलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] सामुद्रिक के अनुसार वे चिह्न या लक्षण जिनके होने से मनुष्य राजा होता है।

राजलक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं० राजलक्ष्मन्] १. राजाओं के चिह्न। राजचिह्न। २. युधिष्ठिर। ३. वह मनुष्य जिसमें सामुद्रिक के अनुसार राजाओं के लक्षण हों। राजलक्षण से युक्त पुरुष।

राजलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजश्री। राजवैभव। २. राजा की शक्ति वा शोभा।

राजवंत—वि० [सं० राज + वंत (प्रत्य०)] राजकर्म से संयुक्त। उ०—जन राजवंत, जग योगवंत। तिनको उदोत, केहि भाँति होत।—केशव (शब्द०)।

राजवंश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का कुल। राजकुल।

राजवंश्य—वि० [सं०] राजा के वंश में उत्पन्न। जो राजकुल में उत्पन्न हुआ हो।

राजवर्चस—संज्ञा पुं० [सं० राजवर्चस्] १. राजशक्ति। २. राजपद।

राजवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] अनेक रंग का कपड़ा। वह वस्त्र जिसमें कई रंग हों।

राजवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रसिद्ध कीमती पत्थर।

राजवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० राजवर्त्मन्] बड़ी और चौड़ी सड़क। राजमार्ग। राजपथ।

राजवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधप्रसारिणी। गंधपसार। प्रसारिणी।

राजवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. खिरनी। २. बड़ा आम। ३. बड़ा बेर। पेउँदी बेर। ४. पियार। चिरौंजी (को०)। ५. एक मिश्र रसौषध जो शूल, गुल्म, ग्रहणी, अतीसार आदि में दी जाती है।

राजवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले का पेड़।

राजवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा का महल। राजभवन।

राजवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राज + द्वार] राजद्वार। उ०—माँगत राजवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी (शब्द०)।

राजवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मद्य।

विशेष—अर्कप्रकाश के अनुसार यह सोंठ, पीपल, पिपलामूलक, अजवायन और काली मिर्च को उनकी तौल से तिगुने अम्लवर्ग और चौगुने मधुजातीय और इक्षुजातीय रसों में मिलाकर खींचा जाता है।

राजवाह—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

राजवाह्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा की सवारी का हाथी। हस्ती।

राजवि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ।

राजविजय—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग।

राजविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजनीति।

पर्या०—राजनय, नृपनय, राजशास्त्र, आदि।

राजविद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] बगावत। राजविप्लव। विशेष दे० 'राजद्रोह'।

राजविद्रोही—संज्ञा पुं० [सं० राजविद्रोहिन्] वह जो राजा या राज्य के प्रति विद्रोह करे। बागी।

राजविनोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक ताल का नाम। (संगीत)।

राजवी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजवीजी] दे० 'राजवीजी'। उ०—नल राजा आदर दियउ, जउ राजवियाँ लोग।—ढोला०, पृ० ३।

राजवीजी—वि० [सं०] राजवंशी।

राजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजमार्ग। राजपथ। चौड़ी सड़क।

राजवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आरग्वध का वृक्ष। उरगा का पेड़। अमलतास। २. पयार का पेड़। ३. लंका का भद्रचूड़ नामक वृक्ष। ४. श्योनाक वृक्ष। सोनापाढ़ा।

राजवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का चिकित्सक। राज्य का प्रधान चिकित्सक। २. वह वैद्य जो चिकित्सा में कुशल हो।

राजशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'राजसत्ता'।

राजशण—संज्ञा पुं० [सं०] पटसन।

राजशफर—संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

राजशब्दोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० राजशब्दोपजीविन्] वह जो राजा के अधिकार और कर्तव्यों से रहित होते हुए भी राजा कहा जाता हो।

राजशब्दोपजीवीगण—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छिवि, वज्जिक, मद्रक, कुरुपांचाल आदि गण राजशब्दोपजीवी हैं।

राजशाक—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुक शाक। बथुआ।

राजशाकनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजशाक। वास्तूक। बथुआ।

राजशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जड़हन धान जिसे राजभोग्य या रायभोग भी कहते हैं। इसका चावल बहुत महीन और सुगंधित होता है।

राजशिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० राजशिम्बी] एक प्रकार की सेम।

विशेष—यह चौड़ी और गूदेदार होती है तथा खाने में स्वादिष्ट होती है। इसे घीया सेम भी कहते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक काली और दूसरी सफेद। इसमें और सामान्य सेम में यह भेद है कि यह उससे अधिक चौड़ी होती है और लंबाई में बहुत नहीं बढ़ती।

राजशुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तोता जो लाल रंग का होता है। इसे नूरी कहते हैं।

पर्या०—प्राज्ञ। शतपत्र। नृपप्रिय।

राजशुकज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

राजशृंग—संज्ञा पुं० [सं० राजशृंग] राजकीय छत्र। राजछत्र। २. मद्गुर मत्स्य। माँगुर मछली [को०]।

राजश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजलक्ष्मी। राजवैभव। राजा का ऐश्वर्य। राजा की शोभा।

राजसंसद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजसभा। २. वह धर्माधिकरण जिसमें राजा स्वयं उपस्थित हो। स्वयं राजा का दरबार।

राजस[1]—वि० [सं०] [स्त्री० राजसी] रजोगुण से उत्पन्न। रजोगुणोद्भव। रजोगुणी। जैसे,—राजस यज्ञ, राजस दान, राजस बुद्धि आदि। विशेष दे० 'गुण'।

राजस—संज्ञा पुं० १. आवेश। क्रोध। उ०—जो चाहै चटक न घटै मैलौ होइ न मित्त। रज राजसु न छुवाइयै नेक चीकनौं चित्त।—बिहारी र०, दो० ३९६। २. मद। घमंड। गर्व।

राजसत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजशक्ति। २. वह सत्ता जो किसी देश या जाति के भरण पोषण, वर्धन और रक्षण के लिये स्थापित की जाती है।

राजसफर—संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

राजसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा की सभा। दरबार। २. वह सभा जिसमें अनेक राजा बैठे हों। राजाओं की सभा ३. राज्यसभा। राज्यपरिषद्। (अं० कौंसिल आफ् स्टेट्स)।

राजसमाज—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं का दरबार या समाज। राजमंडली। २. राजा लोग। उ०—राजसमाज कुसाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है।—तुलसी (शब्द०)।

राजसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा साँप।

पर्या०—भुजंगभोजी।

राजसर्षप—संज्ञा पुं० [पुं०] राई।

राजसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० राजसाक्षिन्] वह अपराधी जो इकबाली गवाह बन गया हो। (अं० एप्रूवर)।

राजसायुज्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजत्व।

राजसारस—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

राजसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] वह नरेश जो राजाओं में श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ राजा [को०]।

राजसिंहासन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा के बैठने का सिंहासन। राजगद्दी।

राजसिक—वि० [सं०] रजोगुण से उत्पन्न। राजस।

राजसिरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० राजश्री] राजश्री। राजलक्ष्मी। उ०—केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति बेलि बई है। दान कृपान विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है। अंग छ सातक आठक सों भव तीनहुँ लोक मे सिद्ध भई है। वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योग भई है।—केशव (शब्द०)। (ख) लाल मखमीन रची मुड़वारी। राजसिरी जावक अनुहारी। फैलि रहीं किरणें अति तासू। केशरि फूलि रही सविलासू।—गुमान (शब्द०)।

राजसी[1]—वि० [हिं० राजा] राजा के योग्य, बहुमूल्य या भड़कीला। राजाओं की सी शानवाला। जैसे,—उनका ठाट बाट सदा राजसी रहता है।

राजसी[2]—वि० स्त्री० [सं०] जिसमें रजोगुण की प्रधानता हो। रजोगुणमयी। जैसे, राजसी प्रकृति।

राजसी[3]—संज्ञा स्त्री० दुर्गा।

राजसूय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक यज्ञ का नाम।

विशेष—इस यज्ञ के करने का अधिकार केवल ऐसे राजा को होता है, जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो। यह यज्ञ करने से राजा सम्राट् पद का अधिकारी होता है। यह यज्ञ बहुत दिनों तक होता है और इसे अनेक यज्ञों और कृत्यों की समष्टि कहना ठीक है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इष्टि, पशु, सोम और दार्वी होम इसके प्रधान अंग हैं। इसका प्रारंभ पवित्र नामक सोमयाग से होता है और सौत्रामणी से इसकी समाप्ति होती है। इसके बीच में दस संसृप, अभिषेचनीय, मरुत्वती, दिग्विजय, बृहस्पतिसवन, बृहद्विधान, द्यूत क्रीड़ा आदि अनेक कृत्य होते हैं। इसमें

ऋत्विज् लोग एक ऊँचे मंच पर व्याघ्रचर्म बिछाकर और उसपर सिंहासन रखकर राजा को अभिषेक कराकर बैठाते हैं और चारो ओर से उसे घेरकर प्रशस्ति सुनाते हैं। फिर राजा उन्हें दक्षिणा देकर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करता है; और उसके लौटने पर फिर उसे मंच पर बैठाकर प्रशस्तिगान होता है। तदनंतर सभा में द्यूतक्रीड़ा होती है; और अंत को सौत्रमणी याग के बाद कृत्य समाप्त होता है। प्राचीन काल में केवल बड़े बड़े राजा ही यह यज्ञ करते थे।

२. एक प्रकार का कमल (को०)। ३. एक पहाड़ (को०)।

राजसूयिक—वि० [सं०] राजसूय यज्ञ संबंधी।

राजसूयी—संज्ञा पुं० [सं० राजसूयिन्] राजसूय यज्ञ करनेवाला। पुरोहित।

राजसूयेष्टिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजसूय यज्ञ।

राजस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० राजस्कन्ध] घोड़ा।

राजस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० राजस्तम्ब] [वि० राजस्तंबायन, राजस्तंबि] एक ऋषि का नाम।

राजस्थलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम।

राजस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

राजस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताना। विशेष दे० 'राजपूताना'।

राजस्थानिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उच्च राजकीय पद। २. उस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति। वाइसराय। हाकिम।

विशेष—गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था। यह पद बहुत ही उच्च होता था। इसका स्थान राजा के बाद और प्रधान अमात्य के ऊपर था। प्रायः इस पद पर युवराज या राजवंश के लोग ही नियुक्त होते थे।

राजस्थानीय—संज्ञा पुं० [सं० राजस्थानिक] दे० 'राजस्थानिक'।

राजस्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमि आदि का वह कर जो राजा को दिया जाय। राजधन। २. किसी राजा या राज्य को वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम्स ड्यूटी आदि करों से होती हो। आमदेमुल्क। मालगुजारी।

यौ०—राजस्वमंत्री = भूमि आदि के करों से संबध रखनेवाले विभाग का मंत्री।

राजस्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] राजधुस्तूरक। राजधतूरा।

राजस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० राजस्वामिन्] विष्णु।

राजहंस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजहंसी] १. एक प्रकार का हंस जिसे सोना पक्षी भी कहते हैं।

विशेष—यह प्रायः झुंड बाँधकर उड़ता है और झीलों के किनारे रहता है। इसके अनेक भेद हैं। इसके रंग श्वेत तथा पैर और चोंच लाल रंग की होती है। यह अगहन पूस में उत्तरीय भारत में उत्तर के ठंढे प्रदेशों से आता है।

२. एक संकर राग का नाम जो मालव, श्रीराग और मनोहर राग के मेल से बनता है।

राजहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रासाद।

राजहस्ती—संज्ञा पुं० [सं० राजहस्तिन्] १. राजा की सवारी का हाथी। २. सुंदर और श्रेष्ठ हाथी [को०]।

राजहार—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो यज्ञों में सोमरस लाता है।

राजहासक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'राजहासांक' [को०]।

राजहासांक—संज्ञा पुं० [सं० राजहासाङ्क] एक प्रकार की मछली जिसे कतला कहते हैं।

राजांगण—संज्ञा पुं० [सं० राजाङ्गण] १. राजकीय न्यायालय। २. राजप्रासाद का आँगन [को०]।

राजा—संज्ञा पुं० [सं० राजन्] [स्त्री० राज्ञी, हिं० रानी] १. किसी देश, जाति या जत्थे का प्रधान शासक जो उस देश, जाति या जत्थे को नियम से चलाता, उनमें शांति रखता तथा उसकी और उसके स्वत्वों की, दूसरों के आक्रमण से, रक्षा करता है। बादशाह। अधिराज। प्रभु।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि पहले मनुष्यों में न तो कोई शासक था और न दंडकर्ता। सब लोग धर्मपूर्वक मिल जुलकर रहते थे और आपस में एक दूसरे की रक्षा करते थे। इस प्रकार उन्हें न तो किसी शासन की आवश्यकता होती थी और न शासक की। पर यह सुव्यवस्था बहुत दिनों तक न रह सकी। लोगों के चित्त में विकार उत्पन्न हो गया, जिससे वे कर्तव्यपालन में शिथिल हो गए। उनमें सहानुभूति न रही और लोभ, मोह आदि कुवासनाओं ने उन्हें घेर लिया। सब लोग विषय वासना में ग्रस्त हो गए और वैदिक कर्मकांड का लोप हो गया। इससे स्वर्ग में देवता घबराए और दौड़े हुए ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हें आश्वासन दिया और मनुष्यों की शासनव्यवस्था के लिये एक लाख अध्यायों का एक बृहद् ग्रंथ बनाया। देवता लोग उस ग्रंथ को लेकर विष्णु के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि आप किसी ऐसे पुरुष को आज्ञा दीजिए, जो मनुष्यों को इस शास्त्रानुसार चलावे। विष्णु भगवान् ने उस शास्त्र के अनुसार शासन करने के लिये राजा की सृष्टि की। किसी किसी पुराण के अनुसार वैवस्वत मनु और किसी के अनुसार कर्दम-जी के पुत्र अंग मनुष्यों के पहले राजा हुए। पूर्व काल में मनुष्यों की इतनी अधिकता न थी और न उनकी इतनी घनी बस्तियाँ थीं। एक कुल में उत्पन्न लोगों की संख्या बढ़ते बढ़ते बहुत से जत्थे बन गए थे, जो अपने कुल के सबसे श्रेष्ठ या वृद्ध के शासन में रहते थे। वह शासक प्रजापति कहलाता था और शेष लोग प्रजा अर्थात् पुत्र। वेदों में भरत, जमदग्नि, कुशिक आदि जातियों के नाम आए हैं, जिनके पृथक् पृथक् प्रजापति थे। इनमें से अनेक जातियाँ पंजाब आदि प्रांतों में बस गईं और कृषि कर्म करने लगीं। पहले तो उनमें पृथक् पृथक् प्रजापति थे; पर धीरे धीरे जनसंख्या बढ़ती गई और अनेक देश उनसे भर गए। ऐसे आर्यों को शालीन कहा है। फिर उनमें प्रजापतियों से काम न चला और भिन्न भिन्न देशों में शांति स्थापित करने और दूसरे देशों के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिये प्रजापति से अधिक शक्तिमान्

एक शासक की नियुक्ति की आवश्यकता पड़ी। पहले पहल यह प्रथा भरत जाति में चली थी; इसीलिये राजसूय यज्ञ में 'भो: भारता: अयं व: सर्वेषां राजा'। कहकर राजा को राजसिंहासन पर बैठाया जाता था। पहले यह राजा प्रजाओं के द्वारा प्रतिष्ठित होता था; और प्रजा का अहित करने पर लोग उसे पदच्युत भी कर देते थे। वेणु आदि राजाओं का पदच्युत होना इसका उदाहरण है। जब उन शालीनों में वर्णव्यवस्था स्थापित हो गई, तब राजा का पद पैतृक हो गया और उसकी शक्ति सर्वोपरि मानी गई। मनु ने राजा को अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्र, यम, कुबेर, वरुण और महेंद्र या इंद्र की मात्रा या अंश से उत्पन्न लिखा है और उसे चार वर्णों का शासक कहा है। ज्यों ज्यों प्रजाओं की शक्ति धीमी पड़ने लगी, त्यों त्यों राजा का अधिकार सर्वोपरि होता गया और अंत में वह देश या राज्य का एकाधिपति स्वामी हो गया। दूसरे वर्ग के आर्यों में, जो इधर उधर जत्थे या गण बाँधकर चलते फिरते रहते थे और जिन्हें व्रात्य या यायावर कहते थे, प्रजापति की प्रथा बनी रही और यही प्रजापति गणनाथ बन गया। ऐसे आर्यों में न तो वर्ण की ही व्यवस्था थी और न उनमें राजा का एकाधिपत्य ही हुआ। उनमें प्रजापति राजा तो कहलाने लगा, पर वह सारा काम गण की संमति से करता था। ऐसे व्रात्य आर्य कोशल, मिथिला, और विहार आदि प्रांतों से आकर बसे थे और उपनिषद् या ब्रह्मविद्या के अभ्यासी थे। मिथिला के राजा जनक इन्हीं यायावर आर्यों में थे और वहाँ के व्याध भी ब्रह्मज्ञान के उपदेष्टा थे। इनसे लिच्छवि लोगों में गण की प्रथा महात्मा बुद्धदेव के काल तक प्रचलित थी, इसका पता त्रिपिटक से चलता है।

पर्या०—नृपति। पार्थिव। भूप। महीक्षित्। भूभृत। पार्थ। नाभि। नाराज। महींद्र। नरेंद्र। दंडधर। स्कंध। भूभुज्। प्रभु। अर्थपति।

विशेष— बहुत से शब्दों के साथ समस्त होकर यह शब्द आकार की बड़ाई या श्रेष्ठता सूचित करता है। जैसे,—राजदंत, राजमाष, राजशुक, राजशालि, इत्यादि।

२. अधिपति। स्वामी। मालिक। ३. एक उपाधि जिसे अंग्रेजी सरकार बड़े रईसों, जमींदारों या अपने कृपापात्रों को प्रदान करती थी। जैसे,—राजा राममोहन राय, राजा शिवप्रसाद। ४. धनवान् वा समृद्धिशाली पुरुष। ५. प्रेमपात्र। प्रिय व्यक्ति। (बाजारू)।

राजाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा का कोप।

राजाज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा की आज्ञा।

राजातन—संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। पयार।

राजात्यवर्त्तक—संज्ञा पुं० [सं०] लाजवर्द पत्थर। राजावर्त।

राजादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीरिका। खिरनी। २. पयार। चिरौंजी। ३. टेसू।

राजादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरिणी। खिरनी।

राजाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पर्वत का नाम। २. एक प्रकार का अदरक। बड़ा अदरक। बवादा।

राजाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० राजाधिकारिन्] १. वह जो न्यायालय में बैठकर न्याय करता हो। विचारपति। २. सरकारी अधिकारी।

राजाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'राजाधिकारी' [को०]।

राजाधिदेय—संज्ञा पुं० [सं०] संविधानानुसार राजा या शासक को व्यक्तिगत खर्च के लिये सरकारी खजाने से दी जानेवाली निश्चित रकम। (अं० 'प्रिवी पर्स')।

राजाधिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] सूर जाति का एक क्षत्रिय वीर।

राजाधिदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूरसेन की एक कन्या का नाम।

राजाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का राजा। शाहंशाह। बड़ा बादशाह।

राजाधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजधानी। २. वह नगर जहाँ राजा का प्रासाद हो।

राजाध्वा—संज्ञा पुं० [सं० राजाध्वन्] राजपथ। राजमार्ग। चौड़ी सड़क।

राजानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा राजा। सामंत राजा। २. एक संमानित उपाधि जो प्रायः उच्च कोटि के अध्येताओं और कवियों को दी जाती थी। जैसे, राजानक रुय्यक (को०)।

राजान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का अन्न। २. एक प्रकार का शालि धान जो आंध्र देश में उत्पन्न होता है।

पर्या०—राजार्ह। नृपान्न। दीर्घशूकक। राजधान्य। राजेष्ट। दीर्घकूरक।

राजाभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का अपनी प्रजा पर दबाव डालकर उसकी इच्छा न रहने पर भी उसे कोई काम करने के लिये बाध्य करना। राजा का प्रजा से जबरदस्ती कोई काम कराना।

राजाभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'राज्याभिषेक' [को०]।

राजाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम जो सामान्य आमों से बड़ा होता है और जिसमें गूदा अधिक और गुठली छोटी होती है।

विशेष—इसके पेड़ों से कलम उतारी जाती है, जो छोटी होने पर भी अच्छे और बड़े फल देती है। इसके फल पकने पर मीठे होते हैं और सामान्य आमों की अपेक्षा उनमें रेशा कम होता है। बंबई, लँगड़ा, मालदह, सफेदा आदि इसी जाति के आम हैं। वैद्यक में इसे पित्तवर्धक और पकने पर बलवीर्यप्रद माना है।

पर्या०—राजफल। स्मराम्र। कोकिलोत्सव। कालेष्टा। नृपवल्लभ।

राजाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेतस्। अमलबेद।

राजार्क—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत मदार। सफेद फूल का आक।

राजार्ह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगरु। अगर। २. कपूर। कर्पूर।

३. जंबू वृक्ष। जामुन का पेड़। ४. एक प्रकार का चावल। दे० 'राजान्न' (को०)।

राजार्ह[२]—वि० राजा के योग्य।

राजार्हण—संज्ञा पुं० [सं०] १. संभ्रमसूचक उपहार। भारी उपहार। २. राजा का दान।

राजालावु, राजालाबू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लौआ या कद्दू जो आकार में बड़ा और खाने में मीठा होता है।

राजालुक—संज्ञा पुं० [सं०] मूली।

राजावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] लाजवर्द नामक रत्न।

विशेष—यह उपरत्न माना गया है। वैद्यक में इसे मधुर, स्निग्ध और पित्तनाशक कहा है।

राजाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का आश्रय।

राजाश्रित—वि० [सं०] राजाश्रय में रहनेवाला। जैसे, राजाश्रित कवि।

राजासंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० राजासन्दी] काठ की चौकी या पीढ़ा जिसपर यज्ञों में सोम रखा जाता था।

राजासन—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं के बैठने का आसन। सिंहासन। तख्त।

राजाहि—संज्ञा पुं० [सं०] दोमुँहा साँप।

राजिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजेन्द्र] दे० 'राजेंद्र'। उ०—भीमराज राजिंद राइ राइन उच्चारन। अति अचंभ बलरूप द्रुग्गपति सेव सधारन।—पृ० रा०, १२।८।

राजि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंक्ति। अवली। कतार। २. रेखा। लकीर। ३. राई। ४. अलिजिह्वा। शुंडिका (को०)। ५. क्षेत्र। भूमि। स्थान। विषय (को०)।

राजि[२]—संज्ञा पुं० ऐल के पौत्र और आयु के एक पुत्र का नाम।

राजिक(पु)—वि० [अ० राजिक़] अन्नदाता। पालन पोषण करनेवाला। उ०—दादू राजिक रिजक लिए खड़ा, देवै हाथों हाथ।—दादू०, पृ० ३४०।

राजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केदार। क्यारी। २. राई। ३. राजि। पंक्ति। ४. रेखा। लकीर। ५. लाल सरसों। ६. मडुआ। ७. कृष्णोदुंबर। कठगूलर। कठूमर। ८. एक परिमाण। ९. एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें सरसों के बराबर छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं। यह रोग अधिक धूप लगने और गर्मी के कारण हो जाता है।

राजिकाचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसके ऊपर सरसों की तरह छोटी छोटी बुंदकियाँ होती हैं।

राजित—वि० [सं०] १. जो शोभा दे रहा हो। फबता हुआ। शोभित। २. विराजा हुआ। मौजूद। उपस्थित।

राजिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीना ककड़ी।

राजिमान्—संज्ञा पुं० [सं० राजिमत्] एक प्रकार का साँप।

राजिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसके ऊपर सीधी रेखाएँ होती हैं। (संभवतः डुंडुभ, डेड़हा)।

राजिलफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का खरबूजा या ककड़ी।

राजिव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राजीव] कमल। उ०—राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक।—तुलसी (शब्द०)।

राजी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंक्ति। श्रेणी। २. राई। ३. लाल सरसों। दे० 'राजि'।

राजी[२]—वि० [अ० राज़ी] १. कोई कही हुई बात मानने को तैयार। अनुकूल। संमत। उ०—अब इतराजी जत करै, मुझ नित राजी राख। जब रस ज्यों चाहै लियो सुरँग हिये अभिलाख।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना**।—**रखना**।—**होना**।

२. नीरोग। चंगा। ३. खुश। प्रसन्न। उ०—ताजी ताजी गतिन ये तब तैं सीखे नैन। गाहक मन राजी करैं बाजी तेरे नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**रखना**।

४. सुखी। सुखयुक्त।

यौ०—**राजी खुशी**=सही सलामती। कुशल आनंद।

राजी[३]†—संज्ञा स्त्री० रजामंदी। अनुकूलता। उ०—हम सब प्रजा चलहिं नृप राजी। यथा सूत प्रेरित रथ बाजी।—गोपाल (शब्द०)।

राजीनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० राज़ीनामह्] १. वह लेख जिसके द्वारा अभियोगी और अभियुक्त, या वादी और प्रतिवादी परस्पर एकमत या अनुकूल होकर अभियोग या वाद को न्यायालय से उठा लें अथवा एक मत हो जायँ और तदनुसार ही न्यायालय को व्यवस्था देने के लिये उससे प्रार्थना करें। २. स्वीकारपत्र।

राजीफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

राजीव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रैया मछली। २. एक प्रकार का मृग जिसकी पीठ पर धारियाँ होती हैं। ३. हाथी। ४. सारस पक्षी की एक जाति। ५. नीलपद्म। नीलकमल। ६. कमल। जैसे,—राजीव लोचन।

राजीव[२]—वि० जिसपर धारियाँ हों। धारीदार।

राजीवगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में अठारह मात्राएँ होती हैं और नौ नौ मात्राओं पर विराम पड़ता है (नौ नौ राजीवगण कल धारए।—छंद०, पृ० ४७)। इसमें तुकांत में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है। इसे माली भी कहते हैं।

राजीविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का कमल। कमलिनी। २. राजीविनी का समूह (को०)।

राजुक—संज्ञा पुं० [सं०] मौर्य काल का एक राजकर्मचारी, जो एक प्रांत का प्रबंध करता था।

राजुदल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

राजू(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] दे० 'रज्जु'।

राजू[२]†—संज्ञा पुं० [हिं० राजा] प्रेमपात्र या प्रिय व्यक्ति।

राजेंद्र[१]—संज्ञा पुं० [सं० राजेन्द्र] १. राजाओं का राजा। बादशाह। २. राजगिरि नामक पर्वत। राजाद्रि।

राजेंद्र[२]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राजेन्द्र + प्रसाद] स्वतंत्र गणतंत्र भारतवर्ष के प्रथम राष्ट्रपति। (ई॰ १९५०–१९६२)।

राजेय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पटोल। परवल।

राजेश्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ राजेश्वरी] राजाओं का राजा। राजेंद्र। महाराज।

राजेष्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. राजान्न नामक धान। २. राजभोग्य। ३. लाल प्याज।

राजेष्टा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. केला। २. पिंडखजूर।

राजेसुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राजेश्वर] दे॰ 'राजेश्वर'। उ॰—इंद्रराज राजेसुर महा। सौहैं रिसि किछु जाइ न कहा।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ ३०४।

राजोपकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजाओं के लक्षण या उनके साथ रहनेवाला सामान। राजचिह्न। जैसे,—झंडा, निशान, नौबत आदि।

राजोपजीवी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राजोपजीविन्] १. राजकर्मचारी। राज्य का नौकर। २. वह पुरुष जिसकी जीविका राजा की सेवा करने से चलती हो।

राजोपसेवी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राजोपसेविन्] राजा का सेवक।

राज्ञी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. रानी। राजमहिषी। २. मत्स्यपुराण के अनुसार सूर्य की पत्नी का नाम। संज्ञा। ३. काँसा। ४. नील का वृक्ष। नीली।

राज्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. राजा का काम। शासन।

क्रि॰ प्र॰—करना।—देना।—पाना।—होना।

विशेष—शास्त्रों में राजा, अमात्य, दुर्ग, राष्ट्र, कोष, दंड या बल और सुहृत् ये सातों राज्य की प्रकृतियाँ मानी गई हैं।

२. वह देश जिसमें एक राजा का अधिकार और शासन हो। बादशाहत। जैसे,—नैपाल का राज्य। काबुल का राज्य।

विशेष—कहीं कहीं एक लाख गाँवों के समूह को भी राज्य कहा है।

पर्या॰—मंडल। जनपद। देश। विषय। राष्ट्र।

राज्यकर्ता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्यकर्तृ] १. शासक। राज्याधिकारी। २. नृपति। राजा [को॰]।

राज्यक्ता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] रायता।

राज्यच्युत—वि॰ [सं॰] जो राजसिंहासन से उतार या हटा दिया गया हो। राज्यभ्रष्ट।

राज्यच्युति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राजा का राजसिंहासन से उतार दिया जाना।

राज्यतंत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्यतन्त्र] राज्य की शासनप्रणाली।

राज्यद्रव्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह उपकरण जिसकी आवश्यकता राज्याभिषेक में पड़ती है। राजतिलक की सामग्री।

राज्यधर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] राज्यपालन। शासन।

राज्यधुरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राज्यशासन।

८–४९

राज्यपरिषद्—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] प्रदेशों या राज्यों से चुने हुए प्रतिनिधियों की वह उच्च परिषद् जो निम्न सदन (लोकसभा) के निर्णयों पर पुनः विचार करती है।

राज्यपाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्य + पाल] राज्य का शासक। गवर्नर।

राज्यप्रद—वि॰ [सं॰] राज्य देनेवाला। जिससे राज्य मिलता हो।

राज्यभंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्यभङ्ग] राज्य का नाश। राज्य का ध्वंस।

राज्यभाषा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'राजभाषा', 'राष्ट्रभाषा'।

राज्यलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. राजश्री। २. विजयगौरव। विजयकीर्ति।

राज्यलोभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बहुत बड़ा लोभ। उच्च आशा। उच्चाकांक्षा।

राज्यव्यवस्था—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह नियम या व्यवस्था जिसके अनुसार प्रजा के शासन का विधान किया जाता हो। राज्यनियम। नीति। कानून।

राज्यस्थायी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्यस्थायिन्] राजा। शासक।

राज्यांग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्याङ्ग] राज्य के साधक अंग जिन्हें प्रकृति भी कहते हैं। शास्त्रों में प्रधान प्रकृतियाँ सात मानी गई हैं। यथा—राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और सुहृत्।

राज्याभिषिक्त—वि॰ [सं॰] जिसका राज्याभिषेक हुआ हो।

राज्याभिषेक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. राजसिंहासन पर बैठने के समय या राजसूय यज्ञ में राजा का अभिषेक, जो वेद के मंत्रों द्वारा पवित्र तीर्थों के जल और ओषधियों से कराया जाता है। २. किसी नए राजा का राजसिंहासन पर बैठना या बैठाया जाना। राजगद्दी पर बैठने की रीति। राज्यारोहण।

राज्यारोहण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राज्य + आरोहण] दे॰ 'राज्याभिषेक'। उ॰—फिर राज्यारोहण करो, राम, हृदयासन में हो जन मंगल।—युगपथ, पृ॰ १३०।

राज्योपकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजचिह्न।

राट्, राट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राट् राज्] १. राजा। बादशाह। २. श्रेष्ठ व्यक्ति। सरदार। ३. किसी बात में सबसे बड़ा पुरुष। जैसे धूर्तराट्।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों के अंत में होता है।

राट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ राट्] दे॰ 'राट्'। उ॰—सोहै भटराट विराट प्रभु परन विमुख रन मुख करत।—गोपाल (शब्द॰)।

राटपाट†—वि॰ [सं॰ रट > राट + हिं॰ (अनु॰) पाट] बरबाद। नष्ट भ्रष्ट। उ॰—पड़ झाट थाट छल राट पाट दिल्लीय जले दल वले दाट।—रा॰ रू॰, पृ॰ ७४।

राटि[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] लड़ाई। युद्ध [को॰]।

राटि[२]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का पक्षी । आड़ी । रेखनी चिरई ।

राटुल—संज्ञा पुं० [अ० रतल (=एक तौल)] वह बड़ा तराजू जो लट्ठा गाड़कर लटकाया जाता है और जिसमें लोहा, लकड़ी इत्यादि मनों की तौल से तौली जाती है ।

राठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्र] १. राज्य । २. राजा ।

राठवर—संज्ञा पुं० [हिं० राठौर] दे० 'राठौर' ।

राठौर—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रकूट] १. दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध राजवंश । २. राजपूतों की एक उपजाति ।

राड़—वि० [सं० राटि, प्रा० राडि] १. दुष्ट । जड़ । उ०—(क) लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़ । गज गुन, मोल, अहार, बल महिमा जान की राड़ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १३४ । २. नीच । निकम्मा । उ० (क) कागा करँक ढँढोरिया मूठिक रहिया हाड़ । जिस पिंजर बिरहा बसै माँस कहा रे राड़ ।—कबीर (शब्द०) । (ग) बिष्ठा का चौका दिया हाँड़ी सीझै हाड़, छूति बचावै चाम की तिनहू का गुरु राड़ ।—कबीर (शब्द०) । (घ) रावन राड़ के हाड़ गढैंगे ।—तुलसी (शब्द०) । ३. कायर । भगोड़ा ।

यौ०—राड़ रोर ।

राड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] सरसों । सर्षप ।

राढ़[१]—वि० [हिं० राड़] दे० 'राड़' । उ०—तुलसी तेरी भलाई अजहू बूझै । राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६ ।

यौ०—राढ़ रोर । उ०—ऐसेउ साहब की सेवा सों होत चोर रे । आपनी ना बूझि ना कहे को राढ़ रोर रे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४९६ ।

राढ़[२]†—संज्ञा स्त्री० [सं० राटि (=लड़ाई)] रार । झगड़ा । उ०—उन्हीं के किए सब धंधा गंदा हुआ । वह देतीं तो यह राढ़ क्यों बढ़ती ।—दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०) ।

राढ़ा[१]—संज्ञा पुं० [सं० राढ़ि] वंग देश के उत्तर भाग का पुराना नाम ।

राढ़ा[२]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की कपास ।

राढ़ा[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० राढा] १. कांति । दीप्ति । २. शोभा । छवि ।

राढ़ा[४]—वि० [सं० राटि] १. झगड़ालू । जिद्दी । २. नासमझ । मूर्ख ।

राढ़ि—संज्ञा पुं० [सं० राढि] वंग देश के उत्तरी भाग का नाम । उ०—खेलत जीत्यो जिन राढ़ि देश ।—कर्पूरमंजरी (शब्द०) ।

राढ़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मोटी घास । २. एक प्रकार का आम ।

राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्ता । दल । २. मोरपंख । मोर की पूँछ [को०] ।

राणा—संज्ञा पुं० [सं० राट् या राजानः, प्रा०राआणो, हिं० राणा या राज्ञी='राणी' का पुल्लिंगीकृत राणा] [स्त्री० राणी] राजा ।

विशेष- इस शब्द का प्रयोग राजपूताने की उदयपुर आदि कुछ विशेष रियासतों के राजाओं के लिये होता है । नेपाल के सरदार भी राणा कहलाते हैं ।

राणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम । वल्गा [को०] ।

रातंग—संज्ञा पुं० [डिं०] गीध । गिद्ध ।

रातंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रातन्ती] पौष शुक्ल चतुर्दशी को होनेवाला एक त्यौहार [को०] ।

रात[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] समय का वह भाग जिसमें सूर्य का प्रकाश हम तक नहीं पहुँचता । संध्या से प्रातःकाल तक का समय । दिन का उलटा ।

पर्या०—रजनी । निशा । शर्वरी । निशि । विभावरी ।

मुहा०—रात दिन=सर्वदा । सदा । हमेशा ।

यौ०—रातराजा=उल्लू । रातरानी=एक पौधा और उसका फूल जो रात में फूलता है । रजनीगंधा ।

रात[२]—वि० [सं०] प्रदत्त । दिया हुआ [को०] ।

रात(पु)[३]—वि० [सं० रक्त] लाल । रक्त वर्ण का । उ०—कँवल चरन अति रात बिसेखे । रहहिं पाट पर पुहुमि न देखे ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १९९ ।

रातड़ी, रातरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] रात । उ०—राम सनेही कारने रोय रोय रातड़ियाँ ।—कबीर (शब्द०) ।

रातना(पु)—क्रि० अ० [सं० रक्त, प्रा० रत्त+हिं० ना (प्रत्य०)] १. लाल रंग से रँग जाना । लाल हो जाना । २. रँग जाना । रंगीन होना । उ०—रँग राते बहु चीर अमोला ।—जायसी (शब्द०) । ३. अनुरक्त होना । आशिक होना । उ०—(क) जाहि जो भजै सो ताहि रातै । कोउ कछु कहै सब निरस बातैं ।—सूर (शब्द०) । (ख) रँग राती राते हिये प्रीतम लिखी बनाय । पाती काती बिरह की छाती रही लगाय ।—बिहारी (शब्द०) । (ग) जिन कर मन इन सन नहिं राता । तिन जग बंचित किए बिधाता । तुलसी (शब्द०) ।

राता(पु)—[सं० रक्त, प्रा० रत्त] [वि० स्त्री० राती] १. लाल । सुर्ख । उ०—(क) बन बाटनि पिक बटपरा तकि बिरहिन मन मैन ।—कुहौ कुहौ कहि कहि उठै करि करि राते नैन ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) भृकुटी कुटिल नैन रिस राते ।—तुलसी (शब्द०) । २. रँगा हुआ ।

राति(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रात] दे० 'रात' । उ०—रातिहिं घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाहिं न बरनी ।—मानस, २।२२०

राति[२]—वि० [सं०] १. उदार । २. संनद्ध । तैयार [को०] ।

राति[३]—संज्ञा पुं० १. मित्र । अराति का विलोम । २. उपहार । उपायन । ३. धन । संपत्ति [को०] ।

रातिचर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० राति+सं० चर] निशिचर । राक्षस उ०—मारे रन रातिचर रावन सकुल दल अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९७ ।

रातिब—संज्ञा पुं० [अ०] १. पशुओं का दैनिक भोजन । २. हाथियों आदि का खाना ।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पाना।—मिलना।

रातुल[१]—संज्ञा पुं० [अ० रतल] दे० 'राटुल'।

रातुल[२]—वि० [सं० रक्तालु, प्रा० रत्तालु] सुर्ख रंग का। लाल। उ०—उर मोतिन की माला री पहिरे रातुल चीर, वारे कन्हैया।—सूर (शब्द०)।

रातैल—संज्ञा पुं० [हिं० राता + ऐल (प्रत्य०)] लाल रंग का एक छोटा कीड़ा जो ज्वार को हानि पहुँचाता है।

रात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान। ज्ञानोपदेश। २. रात। रात्रि [को०]।

रात्रक[१]—वि० [सं०] १. रात्रि संबंधी। २. रात भर का [को०]।

रात्रक[२]—संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जो किसी वेश्या के घर में एक वर्ष बिताए। २. पाँच रात्रि का समय। पंचरात्र [को०]।

रात्रिंचर—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिञ्चर] [स्त्री० रात्रिंचरी] १. दे० 'रात्रिचर'।

रात्रिंदिव, रात्रिंदिवा—क्रि० वि० [सं० रात्रिन्दिव, रात्रिन्दिवा] रात दिन। अनवरत। लगातार [को०]।

रात्रिंमन्य—वि० [सं० रात्रिम्मन्य] (दिन) जो बादलों के घिरने वा अंधकार से रात सा प्रतीत हो [को०]।

रात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उतना समय जितने समय तक सूर्य का प्रकाश न देख पड़े। संध्या से लेकर प्रातःकाल तक का समय। सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय। रात। निशा।

यौ०—रात्रिंदिव, रात्रिंदिवा = (१) रातदिन। सदा।

२. हलदी। ३. पुराणानुसार क्रौंच द्वीप की एक नदी का नाम।

रात्रिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बिच्छू।

रात्रिक[२]—वि० रात का। रात्रि का। जैसे, पंचरात्रिक उत्सव (समासांत में)।

रात्रिकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कपूर।

रात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रजनी [को०]।

रात्रिचर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। निश्चर। २. चोर। तस्कर। लुटेरा (को०)। ३. प्रहरी। रात्रि को पहरा देनेवाला। रक्षक (को०)। ४. उल्लू। उलूक (को०)।

रात्रिचर[२]—वि० रात के समय विचरनेवाला।

रात्रिचारी—संज्ञा पुं० वि० [सं० रात्रिचारिन्] दे० 'रात्रिचर'।

रात्रिज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र, तारे आदि।

रात्रिजल—संज्ञा पुं० [सं०] ओस [को०]।

रात्रिजागर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। २. रात्रि में जागरण या पहरा देना (को०)।

रात्रिजागरद—संज्ञा पुं० [सं०] मच्छड़ [को०]।

रात्रितिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ल पक्ष की रात।

रात्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि में होनेवाला अपराध। जैसे,—चोरी (कौटि०)।

रात्रिद्विष—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिद्विष्] सूर्य।

रात्रिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

रात्रिनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

रात्रिपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. रात में खिलनेवाला पुष्प। कुमुद। कुईं (को०)।

रात्रिबल—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

रात्रिभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार छठी प्रतिमा जो रात्रि के समय किसी प्रकार का भोजन आदि नहीं ग्रहण करती।

रात्रिभुजंग—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिभुजङ्ग] चंद्रमा [को०]।

रात्रिमट—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. रात को लूटने या चोरी करनेवाला चोर।

रात्रिमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कपूर (को०)

रात्रियोग—संज्ञा पुं० [सं०] सायंकाल। संध्या।

रात्रिराग—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

रात्रिवास—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिवासस्] १. अंधकार। अँधेरा। २. रात के समय पहनने का वस्त्र।

रात्रिविगम्—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। तड़का।

रात्रिविश्लेषगामी—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिविश्लेषगामिन्] चक्रवाक। चकवा पक्षी।

रात्रिवेद—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुरगा।

रात्रिवेदी—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिवेदिन्] दे० 'रात्रिवेद' [को०]।

रात्रिसाम—संज्ञा पुं० [रात्रिसामन्] एक प्रकार का साम।

रात्रिसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम। २. दुर्गा सप्तशती का एक सूक्त।

रात्रिहास—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद। कुईं।

रात्रिहिंडक—संज्ञा पुं० [सं० रात्रिहिण्डक] १. राजाओं के अंतःपुर का पहरेदार। २. रात्रि में घूम घूमकर पहरा देनेवाला (को०)।

रात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २. हलदी।

रात्र्यंध—संज्ञा पुं० [सं० रात्र्यन्ध] १. जिसे रात को न दिखाई देता हो। जिसे रतौंधी का रोग हो। २. वे पक्षी और पशु जिन्हें रात को न दिखाई पड़ता हो। जैसे,—कौआ, बंदर।

रात्र्यट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर। २. निशाचर [को०]।

राथकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रथकार ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हो।

राद—संज्ञा पुं० [अ०] बिजली की कड़क [को०]।

राद्ध—वि० [सं०] १. पका हुआ। राँधा हुआ। २. सिद्ध। ठीक किया हुआ। ३. पूरा किया हुआ।

राद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० राद्धान्त] सिद्धांत। उसूल।

राद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध होने का भाव। सफलता। सिद्धि।

राध[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैशाख मास। २. धन। संपत्ति। ३. अनुग्रह (को०)। ४. अभ्युदय (को०)।

राध[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीब। मवाद।

राधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधने की क्रिया। साधना। २.

मिलना। प्राप्ति। ३. संतोष। तुष्टि। ४. वह वस्तु जिससे कोई कार्य किया जाय। साधन।

राधनाⓟ[1]—क्रि० स० [सं० आराधना] १. आराधना करना। पूजा करना। उ०—साधो कहा करि साधन ते जौ पै राधो नहीं पति पारबती को।—तुलसी (शब्द०)। २. सिद्ध करना। पूरा करना। ३. काम निकालना। साधना।

राधना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरा। वाणी [को०]।

राधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। उपासना। आराधना [को०]।

राधरंक—संज्ञा पुं० [सं० राधरङ्क] १. हल। २. हलकी वर्षा। ३. ओला। बनौरी [को०]।

राधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैशाख की पूर्णिमा। २. प्रीति। अनुराग। प्रेम। ३. धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ की पत्नी का नाम।

विशेष—इसने कर्ण को पुत्रवत् पाला था। इसी कारण से कर्ण का एक नाम 'राधेय' भी था।

४. वृषभानु गोप की कन्या और श्रीकृष्ण की प्रेयसी।

विशेष—श्रीमद्भागवत में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। पर ब्रह्मवैवर्त, देवीभागवत, आदि में राधा का वर्णन मिलता है। इन पुराणों में राधा के जन्म और जीवन के संबंध में भिन्न भिन्न कथाएँ दी गई हैं। कहीं लिखा है कि ये श्रीकृष्ण के बाएँ अंग से उत्पन्न हुई थीं और कहीं गोलोकधाम के रासमंडल में इनका जन्म लिखा है। यह भी कहा जाता है कि ये जन्म लेते ही पूर्ण वयस्का हो गई थीं। श्रीकृष्ण के साथ इनका विवाह नहीं हुआ था यद्यपि गर्गसंहिता आदि कुछ इधर के ग्रंथों में विवाह की कथा भी रख दी गई है। सब जगह श्रीकृष्ण के साथ इनकी मूर्ति और नाम रहता है। इनके नाम के साथ ईश या स्वामीवाचक शब्द लगने से श्रीकृष्ण का बोध होता है।

५. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, तगण, मगण यगण और एक गुरु सब मिलकर १३ अक्षर होते हैं। जैसे,—कृष्ण राधा कृष्ण कृष्ण राधा राधा गा। ६. विशाखा नक्षत्र। ७. बिजली। ८. आँवला। ९. विष्णुक्रांता लता।

राधाकांत—संज्ञा पुं० [सं० राधाकान्त] श्रीकृष्ण।

राधाकुंड—संज्ञा पुं० [सं० राधाकुण्ड] गोवर्धन के निकट का एक प्रख्यात सरोवर।

राधातंत्र—संज्ञा पुं० [सं० राधातन्त्र] एक तंत्र का नाम जिसमें मंत्रों आदि के अतिरिक्त राधा की उत्पत्ति का भी रहस्यपूर्ण वर्णन है।

राधापति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

राधाभेदी—संज्ञा पुं० [सं० राधाभेदिन्] अर्जुन का एक नाम [को०]।

राधारमण—संज्ञा पुं० [सं०] राधा से रमण करनेवाले, श्रीकृष्ण।

राधारमनⓟ—संज्ञा पुं० [सं० राधारमण] श्रीकृष्ण। उ०—लीला राधारमन की, सुंदर जस अभिराम।—मतिराम (शब्द०)।

राधावल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

राधावल्लभी—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक प्रसिद्ध संप्रदाय। विशेष दे० 'वैष्णव'।

राधावेधी—संज्ञा पुं० [सं० राधावेधिन्] अर्जुन [को०]।

राधासुत—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण का एक नाम [को०]।

राधास्वामी—संज्ञा पुं० [हिं०] एक मतप्रवर्तक आचार्य और उनका संप्रदाय।

राधाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी।

राधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृषभानु गोप की कन्या राधा। विशेष दे० 'राधा—४'। उ०—प्रभु माया फेरी प्रबल सब लागे ग्रिह दंद। पल न सुहाई राधिका बिन वृंदाबनचंद।—पृ० रा०, २।५५८। २. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १३ और ९ के विश्राम से २२ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—सब सुधि बुधि गइ क्यों भूल, गई मति मारी। माया को चेरो भयो, भूलि असुरारी। कटि जैहैं भव के फंद, पाप नसि जाई। रे सदा भजौ श्री कृष्ण, राधिका माई।—छंद०, पृ० ५१।

विशेष—लावनी इसी छंद में होती है। यह छंद प्रस्तार की रीति से नया रचा गया है।

राधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख मास की पूर्णिमा [को०]।

राधेय—संज्ञा पुं० [सं०] (धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ की पत्नी राधा द्वारा पालित) कर्ण।

राध्य—वि० [सं०] आराधना करने के योग्य। आराध्य।

रान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जंघा। जाँघ। उ०—खाइ सेर बोसक की रानैं। थकाथकी हाथिन सों ठानैं।—लाल (शब्द०)।

रानतुरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रानी + तुरई] कड़ुई तरोई।

राना[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'राणा'।

रानाⓟ[2]—क्रि० अ० [हिं० राचना] अनुरक्त होना। उ०—कौन कली जो भौंर न राई। डार न टूट पुहुप गरुआई।—जायसी (शब्द०)।

राना—वि० [फ़ा० राना] १. सुंदर। हसीन। २. अच्छे डीलडौल का [को०]।

रानाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रानाई] सुंदरता। सौंदर्य [को०]।

रानापति—संज्ञा पुं० [हिं० राणा + पति] सूर्य।

विशेष—चित्तौर के राना सूर्यवंश के माने जाते हैं।

रानी—संज्ञा स्त्री० [सं० राज्ञी, प्रा० राणी] १. राजा की स्त्री। राजा की पत्नी। २. स्वामिनी। मालकिन। जैसे,—मधुमक्खियों की रानी। ३. स्त्रियों के लिये आदरसूचक शब्द।

रानीकाजर—संज्ञा पुं० [हिं० रानी + काजल] एक प्रकार का धान। उ०—राजभोग औ रानीकाजर। भाँति भाँति के सीझे चावर।—जायसी (शब्द०)।

रापड़[1]—संज्ञा पुं० [?] बंजर। ऊसर।

रापती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी नदी जो नैपाल के पहाड़ों से निकलकर गोरखपुर के निकट सरयू में गिरती है।

रापरंगाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य। उ०—शूलं बध्वैक पादेन सहैवालुपतेद्यदि। द्वितीयोऽपि तदा रापरगालं तद्विदो विदुः।—केशव (शब्द०)।

रापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राँपी] चमारों का राँपी नाम का औजार जिससे वे चमड़ा साफ करते और काटते हैं। उ०—अस कहि रापी ताहि को तामें दियो छुवाइ। तुरतै कंचन की भई तेहि गुण दियो दिखाइ।—रघुराज (शब्द०)।

राब¹—संज्ञा स्त्री० [पुं० द्रावक (= गीला)] आँच पर औटाकर खूब गाढ़ा किया हुआ गन्ने का रस जो गुड़ से पतला और शीरे से गाढ़ा होता है। इसी को साफ करके खाँड़ बनाई जाती है।

राब²—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में वह बड़ी लकड़ी जो उसकी पेंदी में लंबाई के बल एक सिरे से दूसरे सिरे तक होती है। पहले यही लकड़ी लगाकर तब उसपर से अहार चढ़ाते हैं।

राबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राब + ड़ी (प्रत्य०)] औटाकर गाढ़ा किया हुआ दूध। बसौंधी। रबड़ी। † २. राजपूताने की ओर का एक विशिष्ट खाद्य।

राबना—क्रि० स० [सं०] खेत में खाद देने की एक विशेष प्रणाली।

विशेष—इसमें पहले खेत में खाद, सूखी पत्तियाँ और टहनियाँ आदि रखकर जला देते हैं; फिर उनकी राख समेत जमीन को एक बार जोत देते हैं। वही राख खेत में खाद का काम देती है।

राम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवंशी महाराज दशरथ के पुत्र जो दस अवतारों में से एक माने जाते हैं। विशेष दे० 'रामचंद्र'। २. परशुराम जो विष्णु के अंशावतार माने जाते हैं। विशेष दे० 'परशुराम'। ३. कृष्ण के बड़े भाई बलराम या बलदेव। विशेष दे० 'बलराम'।

मुहा०—**राम शरण होना** = (१) साधु होना। विरक्त होना। (२) मर जाना। परलोकवासी होना। उ०—राम राम कहि राम सिय राम शरण भए राउ।—तुलसी (शब्द०)। **राम जाने** = (१) मुझे नहीं मालूम। ईश्वर जाने। (२) यदि मैं झूठ कहता होऊँ तो उसके साक्षी भगवान हैं (एक शपथ)। **राम राम करना** = (१) अभिवादन करना। प्रणाम करना। (२) भगवान् का नाम जपना। **राम नाम सत्य है** = एक वाक्य जिसका प्रयोग कुछ हिंदू जातियों में मृतक को श्मशान ले जाने के समय होता है और जिससे संसार की असारता और मिथ्यात्व तथा ईश्वर की सत्यता का बोध होता है। **राम राम करके** = बड़ी कठिनता से। किसी प्रकार। उ०—राम राम करके बासमती से पीछा छूटा है; फिर यह बिपत कहाँ से आई।—अयोध्या (शब्द०)। **राम राम होना** = भेंट होना। मुलाकात होना। उ०—कैसे ह्वै है दई मेरे आनंद की जई राम, भई राम राम आज नई राम राम सों।—रामकवि (शब्द०)। **राम राम हो जाना** = मर जाना। गत हो जाना। उ०—तौ लौ रहे प्राण दशरथ जू के नीके, पाछे राम नाम लेत राजा राम राम ह्वै गयो।—रामकवि (शब्द०)।

४. तीन की संख्या। ५. ईश्वर। भगवान्। ६. एक मात्रिक छंद जिसमें ९ और ८ के विराम से प्रत्येक चरण में १७ मात्राएँ होती हैं और अंत में यगण होता है। जैसे,—सुनिए हमारी, विनय मुरारी। दीजै हमारी, विपत्ति टारी। ७. वरुण। ८. घोड़ा। ९. अशोक वृक्ष। १०. रति। ११. बथुआ। एक साग। १२. तेजपत्ता। १३. प्रेम करनेवाला। प्रेमी (को०)। १४. अरुण का एक नाम (को०)। १५. रात्रि का अंधकार। १६. कुष्ठ। १७. तमालपत्र (को०)।

राम²—वि० १. मनोज्ञ। सुंदर। २. आनंददायक। ३. सुफेद। श्वेत। ४. काला। असित [को०]।

रामअंजीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + फ़ा० अंजीर] पाकर वृक्ष। पकरिया।

रामक¹—वि० [सं०] आनंदयुक्त। आनंददायक।

रामक²—संज्ञा पुं० मंदिर का एक आकार प्रकार [को०]।

रामकजरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

रामकपास—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + कपास] देवकपास। नरमा। विशेष दे० 'नरमा'।

रामकरी, रामकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी।

विशेष—यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है। इसके गाने का समय प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड तक है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं।

रामकांड—संज्ञा पुं० [सं० रामकाण्ड] एक प्रकार का बेंत [को०]।

रामकाँटा—संज्ञा पुं० [हिं० राम + काँटा] एक प्रकार का बबूल।

रामकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रामकली'।

रामकुतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम [को०]।

रामकेला—संज्ञा पुं० [हिं० राम + केला] १. एक प्रकार का बढ़िया केला।

विशेष—इसके पेड़ का तना, फूल आदि गहरे लाल रंग के होते हैं। इसका फल पतला और प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है। यह बंबई प्रांत की ओर अधिकता से होता है और बंगाल के केलों से आकार प्रकार में बिलकुल भिन्न होता है।

२. एक प्रकार का बढ़िया आम जो बंगाल और मिथिला में होता है।

रामक्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राग। दे० 'रामकरी' [को०]।

रामक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दक्षिण देश का प्राचीन तीर्थ।

रामखंड—संज्ञा पुं० [सं० रामखण्ड] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ।

रामगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० रामगङ्गा] एक छोटी नदी जो पीलीभीत के निकट से निकलकर कन्नौज के आगे गंगा में मिलती है।

रामगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नागपुर जिले की एक पहाड़ी जिसका वर्णन कालिदास ने अपने मेघदूत में किया है। आजकल इसे रामटेक कहते हैं।

विशेष—कुछ लोग चित्रकूट को रामगिरि मानते हैं। पर मेघदूत में जो स्थिति दी हुई है, उससे वह नागपुर ही के पास होना चाहिए।

रामगिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रामकली'।

रामगोती—संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३६ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—यहि भाँति बरणे सुभट गण कहँ जीत लव रणधीर।

रामचंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक तरह की तोप। उ०—चलैं रामचंगी धरा में धमंकैं। सुनै तें अवाजैं बली बैरि संकैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०।

रामचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० रामचन्द्र] अयोध्या के राजा इक्ष्वाकुवंशी महाराजा दशरथ के बड़े पुत्र जो ईश्वर वा विष्णु भगवान् के मुख्य अवतारों में माने जाते हैं और जिनकी कथा रामायण में वर्णित है।

विशेष—इनका जन्म कौशल्या के गर्भ से हुआ था और इन्होंने वशिष्ठ मुनि से शिक्षा पाई थी। जब ये बालक थे, तभी विश्वामित्र मुनि इन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिये अपने साथ वन में ले गए थे, जहाँ इन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया था। जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब ये अपने छोटे भाई लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र के साथ राजा जनक के यहाँ सीता के स्वयंवर में गए। वहाँ इन्होंने शिवजी का धनुष तोड़कर सीता का पाणिग्रहण किया। जब ये लौटकर अयोध्या आए, तब राजा दशरथ इनका अभिषेक करके इन्हें राजगद्दी देना चाहते थे, पर रानी कैकेयी के कहने से उन्होंने इन्हें चौदह वर्षों तक वन में रहने के लिये भेज दिया। जब ये वन जाने लगे, तब इनकी स्त्री सीता और इनके छोटे भाई लक्ष्मण भी इनके साथ हो लिए। इनके वन जाने पर पीछे इनके दुखी पिता दशरथ की मृत्यु हो गई। कैकेयी अपने पुत्र भरत को सिंहासन पर बैठाना चाहती थीं; पर भरत ने स्पष्ट कह दिया कि यह राज्य मेरे बड़े भाई रामचंद्र का है; और मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता। पीछे भरत रामचंद्र को समझा बुझाकर लाने के लिये वन में भी गए, पर रामचंद्र ने कह दिया कि मैं पिता की आज्ञा से चौदह वर्षों के लिये वन में आया हूँ। और जब तक यह अवधि पूरी न हो जायगी, तब तक मैं लौटकर अयोध्या नहीं चल सकता। इसपर भरत इनके खड़ाऊँ ले जाकर और उसे सिंहासन पर स्थापित करके, इनकी ओर से, इनकी अनुपस्थिति में शासन करने लगे। वनवास काल में रामचंद्र अनेक वनों और पर्वतों पर और ऋषियों आदि के आश्रमों पर घूमा करते थे। दंडकारण्य में एक बार लंका का राजा रावण आकर छल से सीता को हर ले गया। इसपर इन्होंने बहुत से वानरों आदि को साथ लेकर लंका पर चढ़ाई की और युद्ध में रावण तथा उसके साथी राक्षसों को मारकर और उसका राज्य उसके छोटे भाई विभीषण को देकर अपनी स्त्री सीता को अपने साथ ले आए। वनवास की अवधि पूरी हो गई थी; इसलिये ये सीधे अयोध्या चले आए और वहाँ आकर सुख से राज्य करने लगे। इनका शासन प्रजा के लिये इतना अधिक सुखद था कि अब तक लोग इनके राज्य को आदर्श समझते हैं; और अच्छे राज्य की उपमा 'रामराज्य' से देते हैं।

रामचक्रा†—संज्ञा पुं० [सं० राम + चक्र] १. बरा नामक पकवान जो उड़द की पीठी का बनता है। २. बड़ा और मोटी रोटी जो किसान लोग खाते हैं। लिट्टी। बाटी।

रामचना—संज्ञा पुं० [हिं० राम + चना] खटुआ बेल। अत्यम्लपर्णी।

रामचिड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + चिड़िया] एक प्रकार का जलपक्षी जो मछलियाँ पकड़कर खाता है। मछरंगा।

रामजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रामचंद्र की माता, कौशल्या। २. बलराम की माता, रोहिणी। ३. परशुराम की माता, रेणुका।

रामजना—संज्ञा पुं० [हिं० राम + जना (= उत्पन्न)] १. एक संकर जाति जिसकी कन्याएँ वेश्यावृत्ति करती हैं।

विशेष—कई बातों में यह जाति गंधर्व जाति से मिलती जुलती होती है, पर साधारणतः उससे नीची समझी जाती है। इस जाति के लोग प्रायः राजपूताने, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में पाए जाते हैं।

२. वह जिसके माता पिता का पता न हो। वर्णसंकर।

रामजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + जना (= उत्पन्न)] १. रामजना जाति की स्त्री। २. वेश्या। रंडी। ३. वह स्त्री जिसके पिता का पता न हो। उ०—रामजनी संन्यासिनी पटु पटवा की बाल। केशव नायक नायिका सखी करहिं सब काल।—केशव (शब्द०)।

रामजमानी—संज्ञा पुं० [सं० राम + यवानी (अजवायन)] एक प्रकार का बहुत बारीक चावल।

रामजयती—संज्ञा स्त्री० [सं० रामजयन्ती] देवी की एक मूर्ति का नाम।

रामजामुन—संज्ञा पुं० [सं० राम + जामुन] मझोले आकार का एक प्रकार का जामुन का वृक्ष, जो प्रायः सारे उत्तरी और पूर्वी भारत तथा बरमा और लंका में होता है।

विशेष—इसके फल बहुत बड़े बड़े और स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी यद्यपि साधारण जामुन की लकड़ी के समान उत्तम नहीं होती, तो भी इमारत तथा खेती के औजार बनाने के काम में आती है। यह छोटी नदियों के किनारे अधिकतर होता है।

रामजौ—संज्ञा पुं० [सं० राम + हिं० जौ] एक प्रकार की जई जिसके दाने साधारण जौ से कुछ बड़े होते हैं।

रामझोल—संज्ञा स्त्री० [सं० राम + हिं० झूलना] पाजेब। पायल।

रामटेक—संज्ञा पुं० [हिं० राम + टेक (= टेकड़ी, पहाड़ी)] नागपुर जिले की एक पहाड़ी जहाँ रामचंद्र का एक मंदिर है। यह एक तीर्थस्थान माना जाता है। विशेष दे० 'रामगिरि'।

रामटोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जिसमें गांधार कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं ।

रामठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो पश्चिम में है। २. इस देश का निवासी। ३. हींग। ४. अखरोट का वृक्ष। ५. मैनफल। ६. चिचड़ा।

रामठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग।

रामणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रावण] दे० 'रावण'। उ०—रामण नह सोनौ दियो, लहि सोना री लंक।—बी० रासो, पृ० ५४।

रामणीयक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] रमणीयत्व। मनोहरता।

रामणीयक[२]—वि० रमणीय। मनोहर।

रामतⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रामति] दे० 'रामति'। उदा०—फिर रामत की आज्ञा लीन्ही।—चरण० बानी, पृ० २०१।

रामतरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवती। २. सीता जी।

रामतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+तरोई या तुरई] भिंडी नामक फली जिसकी तरकारी बनती है।

रामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] राम का गुण। रामपन। रामत्व। उ०—आजु राम रामता निहारौं। नेकु शंकु मन महँ नहिं धारौं।—रघुराज (शब्द०)।

रामतापनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जो प्राचीन उपनिषदों में नहीं है, बल्कि एक सांप्रदायिक पुस्तक है।

रामतारक—संज्ञा पुं० [सं०] राम जी का मंत्र जो रामोपासक लोग जपते हैं।

विशेष—कहते हैं, काशी में जो लोग मरते हैं, उन्हें शिव जी इसी मंत्र का उपदेश करते हैं, जिसके प्रभाव से उनकी मुक्ति हो जाती है। यह मंत्र इस प्रकार है 'रां रामाय नमः'।

रामतिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रमन (=घूमना फिरना)] भिक्षा के लिये इधर उधर घूमना। भिक्षुकों की फेरी।

रामतिल—संज्ञा पुं० [सं० राम+तिल] एक प्रकार का तिल।

रामतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामगिरि नामक स्थान। रामटेक। २. बंगाल के एक प्रसिद्ध संत।

रामतुलसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रामा तुलसी'।

रामतेजपात—संज्ञा पुं० [हिं० राम+तेजपात] तेजपात की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो पूर्वी बंगाल, बरमा, और अंडमन टापू में अधिकता से होता है।

विशेष—इसके पत्तों का व्यवहार तेजपत्ते के समान होता है और लकड़ी संदूक तथा तख्ते आदि बनाने के काम में आती है।

रामत्व—संज्ञा पुं० [सं०] राम का भाव। रामता। रामपन।

रामदल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की बंदरोंवाली सेना, जिसके नीचे लिखे १८ मुख्य यूथप थे—(१) लक्ष्मण, (२) सुग्रीव, (३) नील, (४) नल, (५) सुखेन, (६) जामवंत, (७) हनुमान, (८) अंगद, (९) केशरी, (१०) गवय, (११) गवाक्ष, (१२) गज, (१३) विभीषण, (१४) द्विविद, (१५) तार, (१६) कुमुद, (१७) शरभ और (१८) दधिमुख। २. कोई बड़ी और प्रबल सेना जिसका मुकाबला करना कठिन हो।

रामदाना—संज्ञा पुं० [सं० राम+हिं० दाना] १. मरसे या चौराई की जाति का एक पौधा जिसमें सफेद रंग के एक प्रकार के बहुत छोटे छोटे दाने लगते हैं।

विशेष—ये दाने कई प्रकार से खाए जाते हैं और इनकी गिनती 'फलाहार' में होती है। पहाड़ों में यह बैसाख जेठ में बोया और कुआर में तैयार हो जाता है; पर उत्तरी, पश्चिमी तथा मध्य भारत में यह जाड़े के दिनों में भी होता है। कहीं कहीं बागों में भी शोभा के लिये इसके पौधे लगाए जाते हैं।

२. एक प्रकार का धान।

रामदास—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। २. एक प्रकार का धान। ३. दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध महात्मा जो छत्रपति महाराज शिवाजी के गुरु थे और जिन्हें लोग स्वामी रामदास या समर्थ रामदास भी कहते हैं।

विशेष—स्वामी रामदास का जन्म शक सं० १५३० की रामनवमी के दिन गोदावरी के तट पर जंबू नामक स्थान में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। पहले इनका नाम नारायण था। ये बाल्यावस्था से ही बहुत रामभक्त थे। कहते हैं कि जब ये ८ वर्ष के थे, तब एक बार रामचंद्र जी ने इन्हें दर्शन देकर कहा था कि तुम म्लेच्छों का नाश करके धर्म को दुर्दशा से बचाओ और उसे पुनः स्थापित करो। तभी से इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ जिसे दूर करने के लिये माता पिता ने इनका विवाह करना चाहा। पर ये विवाहमंडप से उठकर भाग गए और नासिक के पास की एक गुफा में जाकर तपस्या करने लगे। फिर बहुत दिनों तक इधर उधर तीर्थयात्रा करते रहे। उस समय तक दक्षिण भारत में इनकी साधुता की बहुत प्रसिद्धि हो चुकी थी जिसको सुनकर शिवाजी इनके दर्शन के लिये आए और तब से इनके परम भक्त हो गए। महाराज शिवाजी प्रायः सब कामों में इनसे परामर्श और आज्ञा ले लिया करते थे। कहते हैं, इन्होंने अपने जीवन में अनेक विलक्षण चमत्कार दिखाए थे। इनकी मृत्यु शक सं० १६०३ के माघ मास में हुई थी। इनके उपदेशों और भजनों का दक्षिण भारत के अंचलों में अब तक बहुत अधिक प्रचार है।

रामदूत—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान जी।

रामदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की तुलसी।

पर्या०—पर्वपुष्पी। विशल्या। सूक्ष्मपर्णी। भवान्धाक्षा।

२. नागदंती। नागदौन। ३. नागपुष्पी।

रामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र। २. एक संप्रदाय जो राजपूताने में प्रचलित है और जिसके अधिकांश अनुयायी चमार आदि अस्पृश्य जातियों के लोग हैं।

रामधनुष—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

रामधाम—संज्ञा पुं० [सं०] साकेत लोक जहाँ भगवान् नित्य राम रूप में विराजमान माने जाते हैं।

रामनतुआ—संज्ञा पुं० [हिं० राम+नतुआ] १. घीया । २. कद्दू । लौकी । लौआ ।

रामनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र सुदी नवमी जिस दिन रामचंद्र जी का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू रामजन्म का उत्सव मनाते और व्रत रखते हैं ।

रामना(पु)—क्रि० अ० [सं० रमण] घूमना । फिरना । विचरना । उ०—(क) एक समय कहुँ रामत नाहीं । पर्‌यो अकेल रहेउ कोउ नाहीं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) एक समय रामन हितै कीन्ह्यौ कहूँ पयान ।—रघुराज (शब्द०) ।

रामनामी—संज्ञा पुं० [हिं० राम+नाम+ई (प्रत्य०)] १. वह चादर, दुपट्टा या धोती आदि जिसपर 'राम राम' छपा रहता है और जिसका व्यवहार राम के भक्त लोग इसलिये करते हैं जिसमें राम का नाम हरदम आँखों के सामने रहे ।

विशेष—इसी प्रकार कुछ कपड़ों पर कृष्ण या शिव का नाम भी छपा रहता है ।

२. गले में पहनने का एक प्रकार का हार जो प्रायः सोने का होता है ।

विशेष—इसमें छोटे छोटे कई टिकड़े या पान आदि होते हैं, जो आपस में एक दूसरे के साथ जंजीर के कई छोटे छोटे टुकड़ों या लड़ों से जड़े होते हैं । इसके बीच में प्रायः एक पान होता है, जिसमें 'राम' शब्द, किसी देवता की मूर्ति अथवा चरणचिह्न अंकित होता और जो पहनने पर छाती पर लटकता रहता है । इसी के कारण इसे रामनामी कहते हैं ।

रामनौमी—संज्ञा स्त्री० [सं० रामनवमी] दे० 'रामनवमी' ।

रामपात—संज्ञा पुं० [हिं० राम+पत्र] नील की जाति की एक प्रकार की झाड़ी जो आसाम देश में होती है और जिसकी पत्तियों तथा छाल से वहाँ के लोग रंग बनाते हैं ।

रामपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । वैकुंठ । २. अयोध्या ।

रामफटाका—संज्ञा पुं० [हिं० राम+फटाका ?] तीन खड़ी लकीरों-वाला तिलक जिसे रामानंदीय साधु लगाते हैं । इसे ऊर्ध्वपुंड्र भी कहते हैं ।

रामफल—संज्ञा पुं० [हिं० राम+फल] शरीफा । सीताफल ।

रामबँटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+बाँटना] वह विभाग जिसमें आधा एक व्यक्ति और आधा दूसरे व्यक्ति को मिले । आधे आध की बँटाई ।

विशेष—यह न्याययुक्त होती है, इसी से इसे रामबँटाई कहते हैं ।

रामबबूल—संज्ञा पुं० [सं० राम+बबूल] एक प्रकार का बबूल या कीकर जो गुजरात, झंग और झेलम में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी डालियाँ सरो की डालियों की तरह तने से सटी रहती हैं । इसकी लकड़ी कम मजबूत होती है । इसे काबुली कीकर भी कहते हैं ।

रामबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० राम+बाँस] १. एक प्रकार का मोटा बाँस जो प्रायः नालकी के डंडे बनाने के काम में आता है । २. केतकी या केवड़े की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते नाले और खाँड़े की तरह दो ढाई हाथ लंबे होते हैं ।

विशेष—यह सारे भारत में या तो आपसे आप होता है या कहीं कहीं बोया भी जाता है । इसकी पत्तियाँ कूटकर एक प्रकार का रेशा निकाला जाता है, जो रस्से और रस्सियाँ आदि बनाने के काम में आता है । इन पत्तियों में एक प्रकार का तेजाबी रस होता है जिसके हाथ में लगने से छाले पड़ जाते हैं; इसलिये पत्तियाँ कूटने के समय कहीं कहीं हाथों में एक प्रकार के दस्ताने पहन लेते हैं । इसकी जड़ और पत्तियों का ओषधि के रूप में भी व्यवहार होता है । रेल की सड़कों के किनारे यह अकसर लगाया जाता है ।

रामबान—संज्ञा पुं० [हिं० राम+सं० बाण] १. एक प्रकार का नरसल । रामशर । विशेष दे० 'रामशर' । ३. दे० 'रामबाण' ।

रामबिलास—संज्ञा पुं० [सं० राम+विलास] एक प्रकार का धान ।

रामबोला—संज्ञा पुं० [हिं० राम+बोला] वह जो राम राम बोलता हो । गोस्वामी तुलसीदास का एक नाम । उ०—राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम, काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४९९ ।

रामभक्त[१]—वि० [सं०] रामचंद्र का उपासक ।

रामभक्त—संज्ञा पुं० हनुमान् ।

रामभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र ।

रामभोग—संज्ञा पुं० [सं० राम+भोग] १. एक प्रकार का चावल । २. एक प्रकार का आम ।

राममंत्र—संज्ञा पुं० [सं० राममन्त्र] 'रामतारक'

रामरक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] राम जी का एक स्तोत्र जिसके कर्ता विश्वामित्र जी माने जाते हैं ।

विशेष—कहते हैं कि इस स्तोत्र के मंत्रों से अभिमंत्रित किया हुआ व्यक्ति विशेष रूप से सुरक्षित रहता है ।

रामरज—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं । यह मध्य प्रदेश में नदियों (जैसे, चित्रकूट की मंदाकिनी) के किनारे बहुत मिलती है ।

रामरतन—संज्ञा पुं० [हिं० राम+रत्न] चंद्रमा । (डिं०) ।

रामरस—संज्ञा पुं० [हिं० राम+रस] १. नमक । २. पीसी या बनी हुई भंग । (मदरास) ।

रामरसडाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+रस+डाली] एक प्रकार की ऊख जो कनारा में पैदा होती है ।

रामराज—संज्ञा पुं० [सं० रामराज्य] दे० 'रामराज्य' ।

रामराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी का शासन जो प्रजा के लिये अत्यंत सुखदायक था । २. वह शासन जिसमें रामचंद्र के शासनकाल का सा सुख हो । अत्यंत सुखदायक शासन । ३. मैसूर देश ।

राम राम[1]—संज्ञा पुं० [हिं० राम] प्रणाम । नमस्कार । जैसे,—उनसे हमारा राम राम कह देना ।

विशेष—इस पद का प्रयोग हिंदुओं में परस्पर अभिवादन के लिये होता है ।

राम राम[2]—संज्ञा स्त्री० भेंट । मुलाकात । सामना । जैसे,—कभी तो हमारी उनकी राम राम होगी ।

रामल—वि० [सं०] रमल संबंधी । रमल का ।

रामलवण—संज्ञा पुं० [सं०] साँभर नमक ।

रामलीला—संज्ञा पुं० [सं०] १. राम जी के जीवनकाल के किसी कृत्य का नाटच । राम के चरित्रों का अभिनय । २. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं और अंत में 'जगण' का होना आवश्यक होता है । उ०—अजर अमर अनंत जय जय चरित श्री रघुनाथ । करत सुर नर सिद्ध अचरज श्रवण सुनि सुनि गाथ । काय मन बच नेम जानत शिला सम पर नारि । शिला ते पुनि परम सुंदर करत नेक निहारि ।—केशव (शब्द०) ।

रामवल्लभी—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक संप्रदाय जिसके अनुयायी बंगाल के कुछ जिलों में पाए जाते हैं ।

रामबाण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, सींगिया आदि के योग से बनता है और जो अजीर्ण के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है ।

रामबाण[2]—वि० जो तुरंत उपयोगी सिद्ध हो । तुरंत प्रभाव दिखानेवाला (औषध) ।

रामवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा ।

रामशर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकल या सरकंडा जो ऊख के खेतों में आप ही आप उगता है और ऊख ही के आकार प्रकार और रूप रंग का होता है । अंतर केवल इतना ही होता है कि इसमें कुछ भी रस नहीं होता । उ०—तुलसी तुम जो कहत ते संगत ही गुन होत । माँझ उखारी रामसर रस काहे नहिं होत ।—तुलसी (शब्द०) ।

रामशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गया की एक पहाड़ी जिसे लोग तीर्थ मानते हैं ।

रामश्री—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग जिसे कुछ लोग हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं ।

रामसंडा—संज्ञा पुं० [सं० रामशर] एक प्रकार की घास जिससे रस्सी या बाध बनाते हैं । काँस ।

रामसखा—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुग्रीव । २. निषादराज । गुह । उ०—राम सखा सुनि संदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ।—मानस, २।१९३ ।

रामसनेही[1]—संज्ञा पुं० [हिं० राम + स्नेह] वैष्णवों का एक संप्रदाय जो राजपूताने के शाहपुरा राज्य में प्रचलित है ।

विशेष—इस मत का प्रवर्तक 'रामचरण' नामक एक साधु था । इस मत में जोर जोर से 'राम राम' पुकारना ही मुख्य कृत्य माना जाता है ।

रामसनेही[2]—वि० राम में स्नेह रखनेवाला । रामभक्त ।

रामसर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

रामसीता—संज्ञा पुं० [हिं० राम + सीता] शरीफा । सीताफल ।

रामसुंदर—संज्ञा पुं० [हिं० राम + सुंदर] एक प्रकार की नाव । उ०—निवाड़े, भौलिये, बजरे, चलके, मोरपंखी, सोनामुखो, श्याममुंदर, राममुंदर और जितने ढब की नावें थीं, सुथरे रूप से सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खाती आती जाती लहराती पड़ी फिरती थीं ।—इंशाअल्ला खाँ (शब्द०) ।

रामसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत की अंतिम सीमा पर रामेश्वर तीर्थ के पास समुद्र में पड़ी हुई चट्टानों का समूह जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही पुल है जिसे राम ने लंका की चढ़ाई के समय बँधवाया था ।

रामसेनुरा—संज्ञा पुं० [देश०] कास नाम का एक तृण ।

रामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुंदर स्त्री । २. गानकला में प्रवीण स्त्री । ३. कार्तिक वदी ११ की तिथि । ४. हींग । ५. ईंगुर । शिंगरफ । ६. नदी । ७. सफेद भटकटैया । ८. घीकुआर । ९. शीतला । १०. अशोक । ११. गोरोचन । १२. सुगंधबाला । १३. गेरू । १४. त्रायमाणा लता । १५. तमालपत्र । १६. लक्ष्मी । १७. सीता । १८. रुक्मिणी । १९. राधा । २०. इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से बना हुआ एक उपजाति वृत्त जिसके प्रथम दो चरण इंद्रवज्रा के और अंतिम दो चरण उपेंद्रवज्रा के होते हैं । उ०—रामै भजौ मित्त सुप्रेमधारी । देहैं जु तेरे सब दुःख टारी । सुनेम याही जब सत्य धारो । सुधाम अंतै हरिके सिधारो ।—जगन्नाथप्रसाद (शब्द०) । २१. आर्या छंद का १७ वाँ भेद जिसमें ११ गुरु और ३५ लघु वर्ण होते हैं । २२. आठ अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और दो लघु वर्ण होते हैं । उ०—कामा तजु कामा तजु । रामा भजु रामा भजु ।—जगन्नाथप्रसाद (शब्द०) । २३. प्रियतमा । पत्नी (को०) ।

रामातुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तुलसी जिसके डंठल का रंग सफेदी लिए हरा होता है, काला नहीं होता ।

विशेष—तुलसी दो प्रकार की होती है—रामा और कृष्णा ।

रामानंद—संज्ञा पुं० [सं० रामानन्द] एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य जिनका चलाया हुआ 'रामावत' नामक संप्रदाय अबतक प्रचलित है ।

विशेष—रामानंद जी का जन्म सं० १३५६ ई० में प्रयाग में पुण्यसदन या भूरिकर्मा नामक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर हुआ था । पहले इनका नाम रामदत्त था । बाल्यावस्था में इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी । कहते हैं, बारह वर्ष की अवस्था में ही ये सब शास्त्र पढ़कर पूर्ण पंडित हो गए थे और दर्शन शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन करने के लिये काशी चले आए थे । पहले

ये एक स्मार्त अध्यापक से पढ़ने लगे। एक दिन रामानुज की शिष्यपरंपरा के राघवानंद से इनकी भेंट हुई, जिन्होंने इन्हें देखकर कहा कि तुम्हारी आयु बहुत थोड़ी है और तुम अभी तक हरि की शरण में नहीं आए हो। इसपर ये राघवानंद से मंत्र लेकर उनके शिष्य हो गए और उनसे योग सीखने लगे। उसी समय इनका नाम रामानंद रखा गया। इनके समय में प्राय: सारे भारत में मुसलमानों के अनेक प्रकार के अत्याचार हुए थे, जिन्हें देखकर इन्होंने जाति पाँति का बंधन कुछ ढीला करना चाहा; और सबको राम नाम के महामंत्र का उपदेश देकर अपने 'रामावत' संप्रदाय में संमिलित करना आरंभ किया। रामानुज के श्रीवैष्णव संप्रदाय की संकुचित सीमा तोड़कर इन्होंने उसे अधिक विस्तृत तथा उदार बनाया था। इनका शरीरांत सं० १४६७ में हुआ था। इनके मुख्य शिष्यों में पीपा, कबीर, सेना, धना, रैदास आदि हैं।

रामानंदी—वि० [हिं० **रामानंद+ई** (प्रत्य०)] १. रामानंद संबंधी। २. रामानंद के संप्रदाय का अनुयायी।

रामानुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र के छोटे भाई लक्ष्मण। उ०—(क) रामानुज लघु देख खचाई।—मानस, ६।३५। (ख) रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ।—मानस, ५।२०। वैष्णव मत के एक प्रसिद्ध आचार्य और श्रीवैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक।

विशेष—कहते हैं, रामानुज का जन्म सं० १०७३ में हुआ था। बाल्यावस्था में ये कांचीपुर (कांजीवरम्) में रहते थे। पहले ये वैष्णव यामुन मुनि के अनुयायी हुए और फिर उनकी गद्दी भी इन्हीं को मिली और ये श्रीरंगम् में रहने लगे। पर वहाँ के राजा शंकराचार्य के अद्वैत मत के अनुयायी थे। अत: उनसे अनबन हो जाने के कारण ये मैसूर चले गए। वहाँ के जैन राजा विष्णुवर्धन को इन्होंने वैष्णव बना लिया था। उसी राज्य में सं० ११९४ में १२१ वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हुआ था। इन्होंने वेदांतसार, वेदांतदीप तथा वेदार्थसग्रह ये तीन ग्रंथ बनाए थे और ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता पर भाष्य किए थे। इनके दार्शनिक सिद्धांतों के आधार उपनिषद् हैं। वेदांत में इनका सिद्धांत विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है।

रामाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] दार चीनी।

रामायण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रंथ जिसमें रामचरित वर्णित हो। रामचंद्र के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ।

विशेष—संस्कृत में रामायण नाम के बहुत से ग्रंथ हैं, जिनमें से वाल्मीकि कृत रामायण सबसे प्राचीन और अधिक प्रसिद्ध है। यह आदिकाव्य है और इसके रचयिता वाल्मीकि आदिकवि हैं। वाल्मीकि ऋषि रामचंद्र के समकालीन थे; अत: उनका ग्रंथ रामायण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इसमें सात कांड हैं जिनमें से प्रत्येक कांड अनेक सर्गों में विभक्त है। साधारणत: भारत में तीन प्रकार के वाल्मीकीय रामायण पाए जाते हैं—औदीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ीय। इन तीनों रामायणों के सर्गों की संख्या और पाठ आदि में बहुत कुछ अंतर है। इतने प्राचीन काव्य की भिन्न भिन्न प्रतियों में इतना अधिक अंतर होना स्वाभाविक भी है। बहुत कुछ इसी रामायण के आधार पर और स्थान स्थान पर अन्यान्य रामायणों की सहायता लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' नामक जो प्रसिद्ध भाषाकाव्य लिखा है उसका बोध भी इस 'रामायण' शब्द से होता है। वाल्मीकि कृत रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण आदि जो कई रामायण हैं, वे सांप्रदायिक हैं।

रामायणी१—वि० [सं० **रामायणीय**] रामायण संबंधी। रामायण का।

रामायणी२—संज्ञा पुं० [सं० **रामायण+ई** (प्रत्य०)] १. वह जो रामायण का विशेष रूप से जानकार और पंडित हो। २. वह जो रामायण की कथा कहता हो। ३. वह जो रामलीला में रामायण गाता या पाठ करता हो।

रामायन—संज्ञा पुं० [सं० **रामायण**] दे० 'रामायण'।

रामायुध—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष।

रामावत—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव आचार्य रामानंद का चलाया हुआ एक प्रसिद्ध संप्रदाय।

विशेष—इस संप्रदाय के अनुसार मनुष्य ईश्वर की भक्ति करके सांसारिक संकटों तथा आवागमन से बच सकता है। यह भक्ति राम की उपासना से प्राप्त हो सकती है और इस उपासना के अधिकारी मनुष्य मात्र हैं। जाति पाँति का भेद इसमें किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित नहीं कर सकता।

रामिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रमण। २. कामदेव। ३. स्वामी। पति। ४. वह जिससे प्रेम किया जाय। प्रेमपात्र।

रामी—संज्ञा स्त्री० [सं० **रामा**] कास नामक घास।

रामेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत में समुद्र के तट पर स्थापित एक प्रसिद्ध शिवलिंग।

विशेष—इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसे रामचंद्र जी ने लंका का पुल बाँधने के समय स्थापित किया था। यह भारत के चार मुख्य और सबसे बड़े तीर्थों में से एक तीर्थ है।

रामेषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामशर। २. एक प्रकार की ईख।

रामोद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

रामोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद् का नाम।

राम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

राय१—संज्ञा पुं० [सं० राजन्, राज, प्रा० राय (संस्कृत में भी प्रयुक्त)] १. राजा। २. छोटा राजा या सरदार। सामंत। उ०—सब राजा रायन कै बारी। बरन बरन पहिरे सब सारी।—जायसी (शब्द०)। ३. संमान की एक उपाधि।

यौ०—रायबहादुर। राय साहब।

विशेष—किसी किसी शब्द के पहले लगकर यह श्रेष्ठता या बड़ाई भी सूचित करता है, जैसे,—रायकरौंदा, रायमुनिया।

४. भाट। बंदीजन। ५. गंधर्वों की उपाधि। ६. दे० 'रायबेल'।

उ०—पीपल रूना फूल बिन फल बिन रूनो राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया आय।—कबीर (शब्द०)।

राय²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] संमति। अनुमति। मत। सलाह।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—ठहराना।

मुहा०—राय कायम करना = किसी विषय में मत निश्चित करना। संमति स्थिर करना। निर्णय करना।

रायकरौंदा—संज्ञा पुं० [हिं० राय (= बड़ा) + करौंदा] बड़ा करौंदा जिसके फल छोटे बेर के बराबर, सफेद और गुलाबी रंग मिले बहुत सुंदर होते हैं।

रायकवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

रायज वि० [अ०] जिसका रवाज हो। जो व्यवहार में आ रहा हो। प्रचलित। चलनसार।

रायजादा—संज्ञा पुं० [सं० राज, प्रा० राय + फ़ा० ज़ादह्] १. राय का पुत्र। २. एक जाति।

रायजादीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० राज, प्रा० राअ, राय + फ़ा० ज़ादी] राजकुमारी। राजपुत्री। उ०—रायजादी घर अंगणइ छुटे पटे छंछाल।—ढोला०, दू० ५४०।

रायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा। दर्द। २. आवाज करना। ध्वनि होना [को०]।

रायता—संज्ञा पुं० [सं० राजिकाक्त] दही या मठे में उबाला हुआ साग, कुम्हड़ा, लौआ या बुँदिया आदि जिसमें नमक, मिर्च, जीरा, राई आदि मसाले पड़े रहते हैं। उ०—पानौरा रायता पकौरी। डभकौरी मुँगछी सुठि सौंरी।—सूर (शब्द०)।

राय बहादुर—संज्ञा पुं० [हिं० राय + फ़ा० = बहादुर] एक प्रकार की उपाधि जो पहले भारत को अंगरेजी सरकार की ओर से रईसों, जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों आदि को दी जाती थी।

रायबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० राय + बेल] एक प्रकार की लता जिसमें बहुत ही सुंदर और सुगंधित दोहरे फूल लगते हैं।

रायबेलि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रायबेल'। उ०—रायबेलि महकति सखी अति सुगध रस झेलि। क्यों न रमत तू श्याम सों कंठ भुजा दोउ मेलि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

रायभाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी की धारा। नदी का प्रवाह [को०]।

रायभोग—संज्ञा पुं० [सं० राजभोग] १. एक प्रकार का धान। राजभोग। उ०—रायभोग औ काजर रानी। झिनवा रूद औ दाउदखानी।—जायसी (शब्द०)।

रायमुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राय + मुनिया] लाल नामक पक्षी की मादा। सदिया। रायमुनिया। उ०—जनु रायमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने।—मानस, ६।१०२।

रायरंगाल—संज्ञा पुं० [सं० रायरङ्गाल] एक प्रकार का नृत्य जिसे केशव ने रायरंगाल लिखा है। दे० 'रायरंगाल'।

रायरायान—संज्ञा पुं० [हिं० राय + राय + फा० आन (प्रत्य०)] १. राजाओं के राजा। राजाधिराज। २. मुगलों के समय का एक उपाधि जो प्रायः रईसों, जमींदारों और राजकर्मचारियों आदि को दी जाती थी।

रायरासिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० राजराशि] राजा का कोष। शाही खजाना। उ०—भई मुदित सब ग्राम वधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी।—तुलसी (शब्द०)।

रायल—वि० [अं०] १. राजकीय। शाही। २. छापने की कलों तथा कागज की एक नाप जो २० इंच चौड़ी और २६ इंच लंबी होती है।

रायसा—संज्ञा पुं० [सं० रहस्य या राजसूय ?] १. वह काव्य जिसमें किसी राजा का जीवनचरित्र वर्णित हो। रासो। जैसे—पृथ्वीराज रायसा। २. युद्ध। लड़ाई। संग्राम। उ०—भयौ रायसौ दुहुनि कौ, जेहि बिधि सो निरधारि। हम्मीर०, पृ० २।

राय साहब—संज्ञा पुं० [हिं० राय + फ़ा० साहब] एक प्रकार की पदवी जो पहले भारत की अंगरेजी सरकार की ओर से रईसों और राजकर्मचारियों आदि को दी जाती थी।

रार¹—संज्ञा पुं० [सं० रारि, प्रा० राड़ि (= लड़ाई)] झगड़ा। टंटा। हुज्जत। तकरार। उ०—खंजन जुग माना करत लराई की बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—मचाना।

रार²—संज्ञा स्त्री० [सं० राल] दे० 'राल'।

रारⓅ**³**—संज्ञा स्त्री० [सं० रराट (= भ्रू)] नेत्र। आँख। उ०—(क) याँ मुख झूठी आखनैं पूगौ साह दवार। अरज हुवंता असपती कीधो रत्ती रार।—रा० रू०, पृ० १०२। (ख) नवहत्थो मत्थो बड़ो रोस भटक्कै रार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ११।

रारिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रार] लड़ाई। झगड़ा। रार। उ०—राम रावनहि परसपर होति रारि रन घोर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८६।

राल¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो दक्षिण भारत के जंगलों में होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी किसी काम की नहीं होती, पर इसका निर्यास बहुत काम का होता है, जो 'राल' के नाम से बाजारों में मिलता है। यह निर्यास दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। जब वृक्ष प्रायः दो वर्ष का होता है, तब उसके तने में जगह जगह काट देते हैं, जहाँ से चैत से अगहन तक निर्यास निकला करता है। यह निर्यास प्रायः दस वर्ष तक निकलता रहता है। इसका व्यवहार प्रायः बार्निश आदि के काम में होता है; और कुछ औषधों में भी इसका प्रयोग होता है।

२. इस वृक्ष का निर्यास। धूना। धूप।

यौ०—रालकार्य—शाल वृक्ष।

राल²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कंबल।

राल³—संज्ञा स्त्री० [सं० लाला] १. वह पतला लसदार थूक जो प्रायः बच्चों और कभी कभी बुड्ढों के मुँह से आपसे आप बहा करता है। दाँतों की पीड़ा आदि में कोई कोई दवा लगाने पर भी यह मुँह से निकलकर गिरने लगती है। लार।

मुहा० **राल गिरना, चूना या टपकना** = किसी पदार्थ को देखकर उसे पाने की बहुत इच्छा होना। मुँह में पानी भर आना। जैसे,—जहाँ कोई अच्छी चीज दिखाई दी कि तुम्हारे मुँह से राल टपकी।

२. चौपायों का एक रोग जिसमें उन्हें खाँसी आती है और उनके मुँह से पतला लसदार पानी गिरता है।

रालनाⓅ†¹—क्रि० स० [हिं० रलना] १. डालना। फेंकना। उ०—(क) माँड पाँवइ कण रालजे लाल विहूणी बाजै है घंट।—बी० रासो, पृ० ७६। (ख) बरंगा राल वरमाल सूरा वरैं, त्रिपत पंखाल दिल खुले ताला।—रघु० रू०, पृ० २०। २. ढालना। बहाना। उ०—रोय सुत किम नीर रालै, दलैं, भावी कौण, टालै, हुवो होवण हार।—रघु० रू०, पृ० ११६।

रालनाⓅ†²—क्रि० अ० [सं० लल (=चाहना), प्रा० लल्ल ?] पसंद करना। चाहना। इच्छा करना। उ०—कंत कहै सुनि सर्व सोहागिनि तेरा बोल न रालौं। अब कै क्यौंही छूटन पाऊँ बहुरि न तोहि सँभालौ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ८२७।

राली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजरा जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं।

विशेष—यह प्रायः संयुक्त प्रांत और बुंदेलखंड में होता है। यह फागुन चैत में बोया जाता है और बैसाख में तैयार होता है।

राव¹—संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राय] १. राजा। २. सरदार। दरबारी। ३. भाट। बंदीजन। ४. कच्छ और राजपूताने के कुछ राजाओं की एक पदवी। ५. श्रीमंत। अमीर। धनाढ्य।

राव²—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। गुंजार। २. चिल्लाहट। रंभण (को०)।

राव³—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी कुछ ललाई लिए, चिकनी और मजबूत होती है।

विशेष—यह हिमालय की तराई में हजारे और शिमले से भूटान तथा शिकम तक होता है। इसकी लकड़ी की प्रायः छड़ियाँ बनाई जाती हैं।

रावचाव—संज्ञा पुं० [हिं० राव (=राजा) + चाव] १. नृत्य गीत आदि का उत्सव। राग रंग। २. प्यार। लाड़। दुलार।

रावट†¹—संज्ञा पुं० [हिं० रावल] महल। राजभवन।

रावटⓅ²—संज्ञा पुं० [सं० राजवर्तक] दे० 'लाजवर्द'। उ०—रावन लंका मैं डहो ओई हम डाहन आइ। कनै पहार होत है रावट को राखै गहि पाइ।—पदमावत, पृ० १९६।

रावटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रावट] १. कपड़े का बना हुआ एक प्रकार का छोटा घर या डेरा जिसके बीच में एक बँडेर होती है और जिसके दोनों ओर दो ढालुएँ परदे होते हैं। यह बड़े खेमों के साथ प्रायः नौकरों आदि के ठहरने के लिये रखी जाती है। छोलदारी। २. किसी चीज का बना हुआ छोटा घर। उ०—जिहि निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति। तिहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।—बिहारी (शब्द०)। ३. बारहदरी। ४. दे० 'लाजवर्द'।

रावण¹—वि० [सं०] जो दूसरों को रुलाता हो। रुलानेवाला।

रावण²—संज्ञा पुं० १. लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे युद्ध में भगवान् रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—एक बार लंका में राक्षसों के साथ विष्णु का घोर युद्ध हुआ था जिसमें राक्षस लोग परास्त होकर पाताल चले गए थे। उन्हीं राक्षसों में सुमाली नामक एक राक्षस था, जिसको कैकसी नाम की कन्या बहुत सुंदरी थी। सुमाली ने सोचा कि इसी कन्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करा के विष्णु से बदला लेना चाहिए; इसी लिये उसने अपनी कन्या को पुलस्त्य के लड़के विश्रवा के पास संतान उत्पन्न कराने को भेजा। विश्रवा के वीर्य से कैकसी के गर्भ से पहला पुत्र यही रावण हुआ जिसके दश सिर थे। इसका रूप बहुत ही विकराल और स्वभाव बहुत ही क्रूर था। इसके उपरांत कैकसी के गर्भ से कुंभकर्ण और विभीषण नाम के दो और पुत्र तथा शूर्पणखा नाम की एक कन्या हुई। एक दिन अपने वैमात्रेय कुबेर को देखकर रावण ने प्रतिज्ञा की कि मैं भी इसी के समान संपन्न और तेजवान् बनूँगा। तदनुसार वह अपने भाइयों को साथ लेकर घोर तपस्या करने लगा। दस हजार वर्ष तक तपस्या करने के उपरांत भी मनोरथ सिद्ध होता न देखकर इसने अपने दसों सिर काटकर अग्नि में डाल दिया। तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर इसे वर दिया कि दैत्य, दानव, यक्ष आदि में से कोई तुम्हें मार न सकेगा। तब सुमाली ने रावण से कहा कि अब तुम लंका पर अधिकार करो। उस समय लंका पर कुबेर का अधिकार था। रावण का बहुत जोर देखकर विश्रवा की आज्ञा से कुबेर तो लंका छोड़कर कैलाश चले गए और रावण ने लंका पर अधिकार कर लिया तथा मय दानव की कन्या मंदोदरी से विवाह कर लिया। इसी मंदोदरी के गर्भ से मेघनाद का जन्म हुआ। ब्रह्मा के वर के प्रभाव से रावण ने तीनों लोक जीत लिए और इंद्र, कुबेर, यम आदि को परास्त कर दिया। अब इसका अत्याचार बहुत बढ़ गया। यह सबको बहुत सताने लगा और लोगों की कन्याओं तथा पत्नियों का हरण करने लगा। एक बार सहस्रार्जुन ने इसे युद्ध में परास्त करके कैद कर लिया था, पर पुलस्त्य के कहने पर छोड़ दिया। बाली से भी यह एक बार बुरी तरह परास्त हुआ था। जिस समय भगवान् रामचंद्र अपने साथ लक्ष्मण और सीता को लेकर दंडकारण्य में वनवास का समय बिता रहे थे, उस समय यह सीता को एकांत में पाकर छल से उठा लाया था। तब रामचंद्र ने समुद्र पर सेतु बाँधकर लंका पर चढ़ाई की और इसके साथ घोर युद्ध करके अंत में इसे मार डाला और इसके अत्याचार से पृथ्वी की रक्षा की।

पर्या०—पौलस्त्य । दशकंधर । दशानन । राचसेंद्र ।

२. चिल्लाना । आक्रंदन (को०) । ३. एक मुहूर्त का नाम (को०) ।

रावणगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० रावणगङ्गा] पुराणानुसार सिंहल द्वीप की एक नदी का नाम ।

रावणारि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण को मारनेवाले, रामचंद्र ।

रावणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रावण का पुत्र । २. मेघनाद ।

रावत—संज्ञा पुं० [सं० राजपुत्र, प्रा० राय+उत्त] १. छोटा राजा । २. शूर । वीर । बहादुर । सेनापति । बड़ा योद्धा । ४. सामंत । सरदार । उ०—हो रावत मंडली कोरि मच्छर मन मंडहु । सो तुरंग तन पिथ्थी संग बाहिर गहि कढ्ढहु । —पृ० रा०, ६४।३६ ।

रावन[१]—संज्ञा पुं० [सं० रावण] दे० 'रावण' ।

रावन[२]—वि० [सं० रमण] रमण करनेवाला । उ०—हौं रामा तू रावन राऊ ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३६ ।

रावनगढ़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० रावण+गढ़] लंका ।

रावना(पु)—क्रि० स० [सं० रावण (रुलाना)] दूसरे को रोने में प्रवृत्त करना । रुलाना । उ०—इहाँ भँवर मुख बात हिलावसि । उहाँ सुरुज कहँ हँसि हँसि रावसि ।—जायसी (शब्द०) ।

रावबहादुर—संज्ञा पुं० [हिं० राव+फ़ा० बहादुर] एक प्रकार की उपाधि जो पहले भारत की अँगरेजी सरकार प्रायः दक्षिण भारत के रईसों आदि को देती थी ।

रावर(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० राजपुर+प्रा० राय+उर] रनिवास । राजमहल । अंतःपुर । उ०—(क) रावर में नृप बोलि लिए गुनि । ठाढ़ किए परदा तट लै मुनि ।—केशव (शब्द०) । (ख) रावण जैहै गूढ़ थल, रावर लुटै बिशाल । मंदोदरी कठोरिवो, अरु रावण को काल ।—केशव (शब्द०) ।

रावर[२]—वि० [हिं० राउ+कर (विभक्ति)] [वि० स्त्री० राउरि, रावरी] आपका । भवदीय । उ० – टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ।—तुलसी (शब्द०) ।

रावरखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा और ऊँचा पेड़ । बुरुल ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में १३,००० फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी छाल बहुत सफेद और चमकीली होती है । इसकी लकड़ियों से पहाड़ी मकानों की छतें और छाल से झोपड़ियाँ छाई जाती हैं । इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं ।

रावरा—सर्व० [हिं०] दे० 'रावर' ।

रावराजा—संज्ञा पुं० [हिं०] संमानसूचक एक उपाधि ।

रावल[१]—संज्ञा पुं० [सं० राजपुर, हिं० राउर] अंतःपुर । राजमहल । रनिवास । उ०—भए बिनु भोर वधू शोर करि रोइ उठी भोइ गई रावल में सुनी साधु भाषिए ।—प्रियादास (शब्द०) ।

रावल[२]—संज्ञा पुं० [पा० राउल] [स्त्री० रावलि, रावली] १. राजा । उ०—चेतन रावल पावन खंडा सहजहि मूलै बाँधै । ध्यान धनुष धरि ज्ञानवान बन योग सार सर साधै ।—कबीर (शब्द०) । २. राजपूताने के कुछ राजाओं की उपाधि । ३. प्रधान । सरदार । ४. एक प्रकार का आदरसूचक संबोधन । उ०—(क) रावल जी ड्योढ़ी के भीतर न जाना ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । (ख) 'रावलि कहाँ है' ? किन कहत हौ कातें ? 'अरी रोष तज्ज' 'रोष कै कियो मैं का अचाहे को ?—पद्माकर (शब्द०) । ५. श्रीबदरीनारायण के प्रधान पंडे की उपाधि । ६. मथुरा के पास के एक गाँव का नाम । कहते हैं, यहीं राधिका का जन्म हुआ था ।

रावसाहब—संज्ञा पुं० [हिं० राव+फ़ा० साहब] एक प्रकार की उपाधि जो पहले भारत की अँगरेजी सरकार की ओर से दक्षिण भारत के रईसों आदि को दी जाती थी ।

रावी—संज्ञा स्त्री० [सं० इरावती] पंजाब की पाँच नदियों में से एक नदी जो हिमालय से निकलकर प्रायः दो सौ कोस बहती हुई मुलतान से बीस कोस ऊपर चनाब में मिलती है ।

राशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. रोजमर्रा की निश्चित खुराक । २. नियंत्रित तथा निश्चित मात्रा में वस्तुओं का वितरण । जैसे, चीनी का राशन, तेल का राशन ।

राशनिंग—संज्ञा पुं० [अं०] खाद्य पदार्थों या अन्य वस्तुओं की समान अनुपात में वितरण की व्यवस्था ।

राशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही तरह की बहुत सी चीजों का समूह । ढेर । पुंज । जैसे,—अन्न की राशि ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—राशि बैठना = गोद बैठना । दत्तक पुत्र होना ।

२. क्रांतिवृत्त में पड़नेवाले विशिष्ट तारासमूह जिनकी संख्या बारह है और जिनके नाम इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन ।

विशेष—आकाश में पृथ्वी जिस मार्ग से होकर सूर्य की परिक्रमा करती है, वह क्रांतिवृत्त कहलाता है । परंतु पृथ्वी पर से देखने पर साधारणतः यही जान पड़ता है कि सूर्य ही उस क्रांतिवृत्त पर होकर चलता और पृथ्वी की परिक्रमा करता है । इस क्रांतिवृत्त पर दोनों ओर प्रायः ८० अंश तक अनेक तारासमूह फैले हुए हैं । इनमें से प्रत्येक तारासमूह में से होकर गुजरने में सूर्य को प्रायः एक मास लगता है; इसी विचार से समस्त क्रांतिवृत्त बराबर बराबर बारह भागों में बाँट दिया गया है जिन्हें राशि कहते हैं । प्रत्येक तारासमूह की आकृति के अनुसार ही उनका नाम भी रख लिया गया है और उसमें के तारे भी गिन लिए गए हैं । जैसे,—मेष कहलानेवाली राशि का आकार भी मेष या भेड़े के समान है और उसमें ६६ तारे हैं । इसी प्रकार १४१ तारों के एक समूह का आकार वृष या बैल के समान है; और इसी लिये उसे वृष कहते हैं । फलित ज्योतिष में भिन्न भिन्न राशियों के भिन्न भिन्न स्वरूप, वर्ण, स्वभाव, गुण, कार्य, अधिपति, देवता आदि दिए गए

हैं और उनमें से प्रत्येक में जन्म लेने का अलग अलग फल कहा गया है। विद्वानों का अनुमान है कि राशिविभाग भारतीय आर्यों के प्राचीन ज्योतिष में नहीं था, केवल नक्षत्रविभाग था। राशिविभाग बाबुलवालों से लिया गया है। वैदिक साहित्य में राशियों के नाम नहीं हैं, केवल नक्षत्रों के नाम हैं। विशेष दे० 'नक्षत्र'।

मुहा०—राशि आना = अनुकूल होना। मुआफिक होना। राशि मिलना = (१) दो व्यक्तियों का एक ही राशि में जन्म होना। (२) मेल मिलना। पटरी बैठना।

राशिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] मेष, वृष, मिथुन आदि राशियों का चक्र या मंडल। ग्रहों के चलने का मार्ग या वृत्त। भचक्र। विशेष दे० 'राशि'।

राशिनाम—संज्ञा पुं० [सं० राशिनामन्] फलित ज्योतिष के अनुसार किसी व्यक्ति का वह नाम जो उसके जन्म समय की राशि के अनुसार होता है।

विशेष—यह नाम व्यक्ति के उस नाम से भिन्न होता है, जिससे वह लोक में प्रसिद्ध होता है। लोग प्रायः अपना राशिनाम नहीं लेते। इस नाम का व्यवहार धर्मकार्यों और ज्योतिष संबंधी गणनाओं में ही होता है।

राशिप—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राशि का स्वामी या अधिपति देवता।

राशिभाग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राशि का भाग या अंश। भग्नांश। (ज्योतिष)।

राशिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी ग्रह का किसी राशि में कुछ समय तक रहना। २. उतना समय जितना किसी ग्रह को किसी राशि में रहने में लगता है। विशेष दे० 'राशि'।

राशिवर्धन—वि० [सं०] १. संख्यापूरक। २. (लाक्ष०) मात्र संख्या बढ़ानेवाला। व्यर्थ का। बेकार [को०]।

राशी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] दे० 'राशि'।

राशी[२]—वि० [अ०] रिश्वत खानेवाला। घूसखोर।

राष्ट—संज्ञा [?] फारसी संगीत में १२ मुकामों में से एक।

राष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्य। २. देश। मुल्क। ३. प्रजा। ४. पुराणानुसार पुरुरवा के वंशज काशी के पुत्र का नाम। ५. वह बाधा जो संपूर्ण देश में उपस्थित हो। ईति। ६. वह लोकसमुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक या समभाषा भाषी जनसमूह। नेशन। जैसे, भारतीय राष्ट्र।

राष्ट्रक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्य। २. देश।

राष्ट्रक[२]—वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का।

राष्ट्रकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या शासक का प्रजा पर अत्याचार करना।

राष्ट्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश जो आजकल राठौर नाम से प्रसिद्ध है। विशेष दे० 'राठौर'।

राष्ट्रगोप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. राजा का प्रतिनिधि कोई बड़ा शासक।

राष्ट्रगोप[२]—वि० राज्य की रक्षा करनेवाला।

राष्ट्रतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रतन्त्र] राज्य का शासन करने की प्रणाली।

राष्ट्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी राष्ट्र का स्वामी। २. आधुनिक प्रजातंत्र शासनप्रणाली में वह सर्वप्रधान शासक जो बहुमत से, राजा के समान शासन का सब काम करने के लिये, चुना जाता है। ३. किसी मंडल का शासक। हाकिम।

विशेष—गुप्तों के समय में एक प्रदेश। जैसे,—कुरु पांचाल के शासक राष्ट्रपति कहलाते थे।

राष्ट्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. कंस के आठ भाइयों में एक भाई का नाम।

राष्ट्रभाषा—संज्ञा स्त्री० [राष्ट्र + भाषा] १. वह भाषा जिसमें राष्ट्र के काम किए जायँ। राष्ट्र के कामधाम या सरकारी कामकाज के लिये स्वीकृत भाषा। २. वह भाषा जिसे राष्ट्र के समग्र नागरिक अन्य भाषा भाषी होते हुए भी जानते समझते हों और उसका व्यवहार करते हों। राष्ट्र द्वारा मान्यताप्राप्त भाषा।

राष्ट्रभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. शासक। ३. राजा भरत के एक पुत्र का नाम। ४. प्रजा। रिआया।

राष्ट्रभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो राज्य की रक्षा या शासन करता हो। २. प्रजा।

राष्ट्रभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन राजनीति के अनुसार वह उपाय जिसके द्वारा किसी शत्रु राजा के राज्य में उपद्रव या विद्रोह खड़ा किया जाता है। २. किसी राष्ट्र के शासनाधिकारियों में फुटमत या एका न होना। ३. राज्य का विभाजन।

राष्ट्रवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा दशरथ और रामचंद्र के एक मंत्री का नाम।

राष्ट्रवादी—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रवादिन्] वह व्यक्ति, संस्था, दल आदि जो राष्ट्र की एकता, संपन्नता आदि हितों को सर्वोपरि माने और उसी को प्रमुखता दे। संपूर्ण राष्ट्र के हित को सर्वोपरि माननेवाला। (अं० नेशनलिस्ट)।

राष्ट्रवासी—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रवासिन्] [स्त्री० राष्ट्रवासिनी] १. राष्ट्र में रहनेवाला। २. परदेसी। विदेशी।

राष्ट्रविप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य में होनेवाला विप्लव। विद्रोह। बलवा।

राष्ट्रांतपालक—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रान्तपालक] राज्य की सीमा की रखवाली करनेवाला।

राष्ट्रिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. प्रजा।

राष्ट्रिक[२]—वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का।

राष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारि। भटकटैया।

राष्ट्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राष्ट्र का स्वामी, राजा। २. प्राचीन संस्कृत नाटकों की भाषा में राजा का साला।

राष्ट्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रीन्] १. राज्य का अधिकारी, राजा। २. प्रधान शासक।

राष्ट्री[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] रानी। राजपत्नी।

राष्ट्रीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन नाटकों की भाषा में राजा का साला।

राष्ट्रीय[2]—वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का। विशेषतः अपने राष्ट्र या देश से संबंध रखनेवाला। जैसे,—(क) यह ग्रंथ राष्ट्रीय भावों से पूर्ण है। (ख) आपको अपना राष्ट्रीय वेश धारण करना चाहिए।

राष्ट्रीयकरण—संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रीय + करण] १. भूमि, संपत्ति, व्यवसाय, रेलवे आदि को राष्ट्रीय व्यवस्था के अंतर्गत कर लेना। २. राष्ट्रीय बनाना।

राष्ट्रीयता—संज्ञा स्त्री० [सं० राष्ट्रीय + ता] १. अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम। देशभक्ति। २. किसी राष्ट्र का नागरिक होने का भाव।

रास[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोलाहल। शोरगुल। हल्ला। २. गोपों की प्राचीन काल की एक क्रीड़ा जिसमें वे सब घेरा बाँधकर नाचते थे।

विशेष—कहते हैं, इस क्रीड़ा का आरंभ भगवान् श्रीकृष्ण ने एक बार कार्तिकी पूर्णिमा को आधी रात के समय किया था। तब से गोप लोग यह क्रीड़ा करने लगे थे। पीछे से इस क्रीड़ा के साथ कई प्रकार के पूजन आदि मिल गए और यह मोक्षप्रद मानी जाने लगी। इस अर्थ में यह शब्द प्रायः स्त्रीलिंग बोला जाता है।

यौ०—रासमंडल।

३. एक प्रकार का नाटक जिसमें श्रीकृष्ण की इस क्रीड़ा तथा दूसरी क्रीड़ाओं या लीलाओं का अभिनय होता है।

यौ०—रासधारी।

४. एक प्रकार का चलता गाना। ५. शृंखला। जंजीर। ६. विलास। ७ लास्य नामक नृत्य। ८. नाचनेवालों का समाज।

रास[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. घोड़े की लगाम। बागडोर।

मुहा०—**रास कड़ी करना** = घोड़े की लगाम अपनी ओर खींचे रहना। **रास में लाना** = अधिकार में लाना। वशीभूत करना।

२. सिर (को०)। ३. पशुओं के लिये संख्यावाचक शब्द।

रास[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] १. ढेर। समूह। २. ज्योतिष की राशि। विशेष दे० 'राशि'। ३. एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ८ + ८ + ६ के विराम से २२ मात्राएँ और अंत में सगण होता है। प्रस्तार की रीति से यह छंद नया रचा गया है। जैसे,—ईस भजौ जगदीश भजौ यह बान धरौ। सीख हमारी अति हितकारी कान धरौ।—छंद०, पृ० ५१। ४. जोड़। ५. चौपायों का झुंड। ६. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है। ७. गोद। दत्तक।

मुहा०—**रास बैठाना या लेना** = गोद बैठाना। दत्तक लेना।

८. सूद। ब्याज।

रास(पु)[4]—वि० [फ़ा० रास्त (= दाहिना)] अनुकूल। ठीक। मुआफिक। उ० काँचे बारह परा जो पाँसा। पाके पैंत परी तनु रासा।—जायसी (शब्द०)।

रासक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद।

विशेष—यह केवल एक अंक का होता है और इसमें केवल पाँच नट या अभिनय करनेवाले होते हैं। यह हास्यरस का होता है, और इसमें सूत्रधार नहीं होता। इसमें नायिका चतुर तथा नायक मूर्ख होता है।

रासचक्र—संज्ञा पुं० [सं० राशिचक्र] दे० 'राशिचक्र'।

रासताल—संज्ञा पुं० [सं०] १३ मात्राओं का एक ताल जिसमें ८ आघात और ५ खाली होते हैं। इसके मृदंग के बोल यह हैं—

+	०	१	२	०	३	४	५	०	६
कता कता		केट	ताग्	धा	केटे	खन्	गदि	घेने	नागे
०		७		०		+			
देत तेरे		केटे		कड़ान्।		धा।			

रासधारी—संज्ञा पुं० [सं० रासधारिन्] वह व्यक्ति या समाज जो श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा अथवा अन्य लीलाओं का अभिनय करता है।

विशेष—ये लोग एक प्रकार के व्यवसायी होते हैं जो घूम घूमकर इस प्रकार के अभिनय करते हैं। इनके नाटक में गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय आदि सभी होते हैं।

रासन[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रासनी] १. स्वादिष्ट। जायकेदार। २. रसना संबंधी। जीभ संबंधी (को०)।

रासन[2]—संज्ञा पुं० १. स्वाद लेना। चखना। २. ध्वनि करना। शब्द करना।

रासनशीन—वि० [सं० राशि + फ़ा० नशीन] गोद बैठाया हुआ। दत्तक। मुतबन्ना।

रासना—संज्ञा पुं० [सं०] रास्ना नाम की लता जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। विशेष दे० 'रास्ना'।

रासनृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] गति के अनुसार नृत्य का एक भेद।

रासपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्गशीर्ष की पूर्णिमा जिस दिन श्रीकृष्ण ने रासक्रीड़ा आरंभ की थी।

रासभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रासभी] १. गर्दभ। गधा। गदहा। खर। उ०—(क) बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गैवर भेंटि चढ़ावत रासभ प्रभुता मेटि करत हिनती।—सूर (शब्द०)। २. अश्वतर। खच्चर। ३. एक दैत्य जिसे ब्रज के ताल वन में बलदेव जी ने मारा था। यह गर्दभ के रूप में ही रहा करता था।

रासभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रासक्रीड़ा होती हो। रास करने का स्थान।

रासमंडल—संज्ञा पुं० [सं० रासमण्डल] १. श्रीकृष्ण के रासक्रीड़ा करने का स्थान। २. रासक्रीड़ा करनेवालों का समूह या मंडली।

रास करनेवालों का वृत्ताकार समूह। उ०—रासमंडल बने श्याम श्यामा। नारि दुहुँ पास गिरिधर बने दुहुनि बिच सहस शशि बीस द्वादश उपमा।—सूर (शब्द०)। ३. रासधारियों का अभिनय। ४. रासधारियों का समाज।

रासमंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० रासमण्डली] रासधारियों का समाज या टोली।

रासयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार एक प्रकार का उत्सव जो शरत्पूर्णिमा को होता है। २. शाक्तों का एक उत्सव जो शक्ति के उद्देश्य से चैत्र की पूर्णिमा को होता है।

रासलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह क्रीड़ा या नृत्य जो श्रीकृष्ण ने गोपियों को साथ लेकर शरत्पूर्णिमा को आधी रात के समय किया था। २. रासधारियों का कृष्णलीला संबंधी अभिनय।

रासविलास—संज्ञा पुं० [सं०] रासक्रीड़ा।

रासबिहारी—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

रासायन—वि० [सं०] रसायन संबंधी। रसायन का।

रासायनिक—वि० [सं०] १. रसायन शास्त्र संबंधी। २. रसायन शास्त्र का ज्ञाता।

रासायनिकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रसायन शास्त्र संबंधी परीक्षाएँ या प्रयोग होते हों।

रासि—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] दे० 'राशि'।

रासी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. तीसरी बार खींची हुई शराब जो सबसे निकृष्ट समझी जाती है। २. सज्जी।

रासी[2]—वि० नकली या खराब। जैसे,—रासी तार।

रासी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] दे० 'राशि'।

रासु⁕†—वि० [फ़ा० रास्त] १. सीधा। सरल। २. ठीक। उ०—भूले तैं कर तार के रागु न आवै रासु। यहै समुझ कै राख तूँ मन करतारैं पासु।— रसनिधि (शब्द०)।

रासेरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोष्ठी। रासक्रीड़ा। ३. शृंगार। ४. उत्सव। ५. हँसी मजाक। ठट्ठा। चुहल।

रासेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा।

रासो—संज्ञा पुं० [सं० रासक या रासऊ रहस्य था राजयश, हिं० रायसा] किसी राजा का पद्यमय जीवनचरित्र, विशेषतः वह जीवन चरित्र जिसमें उसके युद्धों और वीरता आदि का वर्णन हो। जैसे—पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, हम्मीर रासो।

रास्त—वि० [फ़ा०] १. सीधा। सरल। नेक। २. सही। दुरुस्त। ठीक। ३. उचित। वाजिब। ४ अनुकूल। मुताबिक।

रास्तगो—वि० [फ़ा०] सच बोलनेवाला। सत्यवक्ता।

रास्तबाज—वि० [फ़ा० रास्तबाज़] सच्चा। निष्कपट। ईमानदार।

रास्तबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० रास्तबाजी] सचाई। सत्यता। ईमानदारी।

रास्ता—संज्ञा पुं० [फा० रास्तह्] १. मार्ग। राह। मग। पथ।

मुहा०—**रास्ता काटना** = किसी के चलने के समय उसके सामने से होकर निकल जाना। जैसे—बिल्ली रास्ता काट गई। **रास्ता देखना** = प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। **रास्ता पकड़ना** = (१) मार्ग का अवलंबन करना। राह से चलना। (२) चल देना। चले जाना। **रास्ता बताना** = (१) चलता करना। टालना। हटाना। (२) सिखाना। तरकीब बताना। जैसे—वह तुम्हारे जैसों को रास्ता बतलाता है। **रास्ते पर लाना** = सुमार्ग पर चलाना। ठीक करना। दुरुस्त करना।

२. प्रथा। रीति। चाल। जैसे—अब तो आपने यह रास्ता चला ही दिया है। ३. उपाय। तरकीब। जैसे—इस विपत्ति से निकलने का भी कोई रास्ता निकालो।

रास्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंधनाहुली नामक कंद। घोड़रासन।

विशेष—यह आसाम, लंका, जावा आदि में अधिकता से होती है। वैद्यक में यह गुरु, तिक्त, उष्ण और विष, वात, खाँसी, शोथ, कंप, कफ आदि की नाशक और पाचक मानी गई है। वैद्यक में इससे रास्ना गुग्गुल, रास्नादशमूल, रास्नादिक्वाथ, रास्नादिलौह, रास्नापंचक, रास्नासप्तक आदि अनेक औषध बनते हैं।

२. एलापर्णी नाम की ओषधि। ३. रुद्र की प्रधान पत्नी का नाम। ४. रस्सी। रज्जु (को०)। ५. करधनी। मेखला (को०)।

रास्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।

रास्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक पात्र जिसमें यज्ञ के समय घी रखकर दान किया जाता था।

रास्य—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

राह[1]—संज्ञा पुं० [सं० राहु] दे० 'राहु'। उ०—आव चाँद पुनि राह गिरासा। वह बिन राह सदा परकासा।—जायसी (शब्द०)।

राह[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. मार्ग। पथ। रास्ता।

मुहा०—**राह देखना या ताकना** = प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। डाका पड़ना। लूट पड़ना। बाट पड़ना। उ०—कहैं पदमाकर त्यों रोगन की राह परी दुःखन में गाह अति गाज का।—पद्माकर (शब्द०)। (२) रास्ते से आना। रास्ते पर जाना। **राह लगना** = (१) रास्ते से जाना। (२) अपना काम देखना। अपने काम से काम रखना। (अन्य मुहा० के लिये दे० 'रास्ता' के मुहा०)।

२. प्रथा। रीति। चाल। ३. नियम। कायदा। ४. कोल्हू की नाली।

यौ०—राहखर्च। राहगीर। रहजन। राहदार = चौकीदार। राहनुमा = रहनुमा। रहनुमाई। राहनुमाई। राहबर = रहबर। राहबरी = रहबरी। राहरस्म = राहरीति आदि।

राह[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोहू] दे० 'रोहू'। उ०—पाहन ऊपर हेरै नाहीं। हना राह अर्जुन परछाहीं।—जायसी (शब्द०)।

राह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. हर्ष। खुशी। २. मदिरा। शराब [को०]।

राहखर्च—संज्ञा पुं० [फ़ा० राह + खर्च] कहीं जाने आने के समय रास्ते में होनेवाला खर्च। मार्गव्यय।

राहगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मार्ग चलनेवाला। मुसाफिर। पथिक।

राहचबैनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राह + चबैनी] वैशाख में अक्षय तृतीया के दिन किया जानेवाला दान जिसमें भूजे चने, बेसन के लड्डू आदि रहते हैं। पितरों के तृप्त्यर्थ भी इसका विधान है। सरग चबैनी।

राहचलता—संज्ञा पुं० [फ़ा० राह + हिं० चलता] १. रास्ता चलनेवाला। पथिक। राहगीर। बटोही। २. कोई साधारण या तीसरा मनुष्य जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो। अजनबी। गैर। जैसे,—यों राहचलते को कोई ऐसा काम सुपुर्द करता है।

राहचौरंगी†—संज्ञा पुं० [फ़ा० राह + हिं० चौरंगी] चौमुहानी। चौरस्ता। उ०—सो किमि छानो जाय राहचौरंगी सोहै। —सुधाकर द्विवेदी (शब्द०)।

राहजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० राहज़न] डाकू। लुटेरा।

राहजनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० राहज़नी] डकैती। लूट।

राहड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की संगीतरचना [को०]।

राहड़ी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घटिया कंबल।

राहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] आराम। सुख। चैन।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

राहदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. राह पर चलने का महसूल। सड़क का कर।

यौ०—परवाना राहदारी = वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी मार्ग से होकर आने या माल ले जाने का अधिकार प्राप्त हो।

२. चुंगी। महसूल।

राहना†[1]—क्रि० स० [हिं० राह ? (= राह बनाना) या देश०] १. चक्की के पाटों को खुरदुरा करके पीसने योग्य बनाना। जाँता कूटना। २. रेती आदि को खुरदुरा करके रेतने के योग्य बनाना।

राहना(५)†[2]—क्रि० अ० [हिं० रहना] दे० 'रहना'। उ०—हम सों तोसों बैर कहा, अलि, श्याम अजान ज्यों राहत।—सूर० (शब्द०)।

राहर(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० अरहर] अरहर नामक अन्न जिसकी दाल होती है। उ०—बहु गोधूम चनक तंदुल अति। राहर ज्वार मसूर लेहु रति।—प० रासो, पृ० १७।

राहरीति—संज्ञा स्त्री० [हिं० राह + सं० रीति] १. राह रस्म। लेन देन। व्यवहार। २. जान पहचान। परिचय।

राहा—संज्ञा पुं० [हिं० राह] मिट्टी का वह चबूतरा जिसपर चक्की के नीचे का पाट जमाया रहता है।

राहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] विहीनता। अभाव। (किसी वस्तु का) न होना। उ०—यदपि निश्चित रहो तुम नित्य यहाँ राहित्य नहीं, साहित्य।—साकेत, पृ० ४०।

राहिन—संज्ञा पुं० [अ०] रेहन रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

राहिम—वि० [अ०] जो रहम करे। कृपा करनेवाला [को०]।

राहिम्म(५)—वि० [अ० राहिम] दे० 'राहिम'। उ०—अबदुल्ल रोम राहिम्म मीर।—पृ० रा०, ६१।५४४।

राही—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राहगीर। मुसाफिर। पथिक। यात्री।

मुहा०—राही करना = चलता करना। धता बताना। हटाना। राही होना = चल देना। हट जाना।

राहु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार नौ ग्रहों में से एक जो विप्रचित्ति के वीर्य से सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उ०—(क) राहु शशि सूर्य के बीच में बैठि कै सौहनी सों अमृत माँगि लीनो।—सूर (शब्द०)। (ख) उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।—तुलसी (शब्द०)। (ग) हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह बहुत बलवान था। कहते हैं, समुद्रमंथन के समय देवताओं के साथ बैठकर इसने चोरी से अमृत पी लिया था। सूर्य और चंद्र ने इसे यह चोरी करते हुए देख लिया था और विष्णु से यह कह दिया था। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसकी गरदन काट दी। पर यह अमृत पी चुका था इससे इसका मस्तक अमर हो गया था। उसी मस्तक से यह सूर्य और चंद्र को ग्रसने लगा था। और तब से अब तक समय समय पर बराबर ग्रसता आता है जिससे दोनों का ग्रहण लगता है। यही मस्तक राहु और कबंध केतु कहलाता है।

२. ग्रहण (को०)। ३. उपसर्जन। परित्याग (को०)। ४. उपसर्जक। ५. दक्षिणपश्चिम कोण का।

राहु[2]—संज्ञा पुं० [सं० राघव] रोहू मछली। उ०—(क) राहु बेधि भूपति करौ नहिं समर्थ जग कोय।—सबल (शब्द०)। (ख) राहु बेधि अर्जुन होइ जीत दुरपदी ब्याह।—जायसी (शब्द०)।

राहुग्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य या चंद्रमा को राहु का ग्रसना। ग्रहण। उपराग।

राहुग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

राहुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुभेदी—संज्ञा पुं० [सं० राहुभेदिन्] विष्णु।

राहुमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] राहु की माता, सिंहिका।

राहुरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेद मणि जो राहु के दोष का शमन करनेवाली मानी जाती है।

राहुल—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध के पुत्र का नाम।

राहुशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

राहुसूतक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहूच्छिष्ट, राहूत्सृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

राहेल—संज्ञा पुं० [यहू०] यहूदियों की एक उपजाति।

रिंखण—संज्ञा पुं० [सं० रिङ्खण] १. फिसलना। लड़खड़ाना। २. विचलित होना। डिगना। ३. दे० 'रिंगण' (को०)।

रिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. अँगूठी। छल्ला। २. किसी प्रकार की गोल बड़ी चूड़ी। ३. घेरा। मंडल।

यौ०—रिंग मास्टर = सरकस का वह खिलाड़ी जो घिरी हुई भूमि में विभिन्न जानवरों के कर्तब दिखलाता है।

रिंगण—संज्ञा पुं० [सं० रिङ्गण] १. रेंगना। २. फिसलना। सरकना। ३. विचलित होना। डिगना।

रिंगनⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रिङ्गण] घुटनों के बल चलना। रेंगना। उ०—पुनि हरि आय यशोदा के गृह रिंगन लीला करिहैं।—सूर (शब्द०)।

रिंगनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ज्वार जो मध्य प्रदेश में होती है।

रिंगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो दारजिलिंग में होता है।

रिंगानाⓅ†—क्रि० स० [सं० रिंगण] रेंगने की क्रिया कराना। रेंगना। उ०—सुनतहि बचन नाथ तब नाई। तब भीतर कहँ दीन्ह रिंगाई।—कबीर सा०, पृ० २५६। २. धीरे धीरे चलाना। ३. घुमाना। फिराना। दौड़ाना। चलाना। (बच्चों के लिये)। उ०—मैं पठवति अपने लरिका को आवइ मन बहराइ। सूर श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

रिंगिन—संज्ञा स्त्री० [अं० रिगिंग] वह रस्सी जिससे जहाज के मस्तूल आदि बाँधे जाते हैं। (लश०)।

रिंछⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० रीछ] दे० 'रीछ'। उ०—आषेटनि पुनि लषि जीव घात। गज सिंघ रिंछ कुपि कोल घात।—पृ० रा०, ६।८।

रिंद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह व्यक्ति जो धर्म के विषय में बहुत स्वच्छंद और उदार विचार रखता हो। धार्मिक बंधनों को न माननेवाला पुरुष। उ०—रिंदों में अगर जावें तो मुश्किल है फिर आना।—नजीर (शब्द०)। २. मनमौजी आदमी। स्वच्छंद पुरुष। ३. मद्यप। शराबी (को०)।

रिंद[2]—वि० १. मतवाला। मस्त। बेफिक्र। उ०—(क) जिंद सरिस रन रिंद चलत हल चल फनिंद ध्रुव।—गिरधर (शब्द०)। (ख) बिंध्याचल पर बसहिं पुलिंदे। तहँ के नृप ते झगरहिं रिंदे।—गिरधर (शब्द०)।
२. रसिया। रँगीआ (को०)।

रिंदगी—वि० [फा० रिंद + गी (प्रत्य०)] बुराई। पाप। मैलापन। उ०—सुंदर मन कै रिंदगी होइ जात सैतान।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२६।

रिंदा†—वि० [फा० रिंद] निरंकुश। उद्दंड।

रिअना†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कीकर। रीआँ।

रिआयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह अनुग्रहपूर्ण व्यवहार जो साधारण नियमों का ध्यान छोड़कर किया जाय। कोमल और दयापूर्ण व्यवहार। नरमी। जैसे—गरीबों के साथ रिआयत होनी चाहिए। २. न्यूनता। कमी। छूट। जैसे,—दाम में कुछ रिआयत कीजिए। (ख) अब बीमारी में कुछ रिआयत है। ३. खयाल। ध्यान। विचार। जैसे,—इस दवा में बुखार की भी रिआयत रखी है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

रिआयती—वि० [अ० रिआयत + ई (प्रत्य०)] रिआयत किया हुआ। जिसमें रिआयत की गई हो।

रिआया—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा।

रिकवँछ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक भोज्य पदार्थ जो उर्द की पीठी और अरुई के पत्तों से बनता है।

विशेष—अरुई की पत्तियों को बारीक काटकर उर्द की पीठी के साथ मिला देते हैं और फिर उसी के गुलगुले को घी या तेल में छान लेते हैं।

रिकशा—संज्ञा स्त्री० [अं० रिक्शा] एक प्रकार की छोटी गाड़ी जिसे आदमी खींचते हैं और जिसमें एक या दो आदमी बैठते हैं।

विशेष—आजकल साइकिल रिक्शा और मोटर साइकिल रिक्शों का भी व्यवहार होने लगा है।

रिकसा†—संज्ञा स्त्री० [सं० रिक्षा] लीख।

रिकाब—संज्ञा स्त्री० [अ० रकाब] दे० 'रकाब'।

रिकाबी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'रकाबी'।

रिक्त[1]—वि० [सं०] १. खाली। शून्य। जैसे,—रिक्त घट, रिक्त स्थान। २. निर्धन। गरीब।

रिक्त[2]—संज्ञा पुं० वन। जंगल।

रिक्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० रिक्तकुम्भ] ऐसी भाषा जो समझ में न आवे। गड़बड़ बोली।

रिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रिक्त या खाली होने का भाव। २. किसी पद, नौकरी या ध्यान का खाली होना (वैकेंसी) (को०)।

रिक्तहस्त—वि० [सं० रिक्त + हस्त] १. खाली हाथ। अर्थशून्य। जिसके हाथ में कुछ न हो। उ०—बोला मैं हूँ रिक्तहस्त, इस समय विवेचन में समस्त।—अनामिका, पृ० १३१।

रिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी की तिथियाँ।

रिक्तार्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह रिक्ता तिथि जो रविवार को पड़े। रविवार को होनेवाली चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी।

रिक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पद या स्थान जिसपर अभी किसी की नियुक्ति न हुई हो (को०)।

रिक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तराधिकार या वरासत में मिला हुआ धन या संपत्ति। २. कारबार में लगी हुई वह पूँजी जो संपत्ति, सामान आदि के रूप में हो (को०)।

यौ०—रिक्थग्राह, रिक्थभागी, रिक्थहर = (१) उत्तराधिकारी। दायाद। (२) पुत्र।

रिक्थहारी—संज्ञा पुं० [सं० रिक्थहारिन्] [स्त्री० रिक्थहारिणी] १. वह जिसे उत्तराधिकार में धन संपत्ति मिले। २. मामा। ३. न्यग्रोध बीज या उदुंबर का बीज (को०)।

रिक्थी—संज्ञा पुं० [सं० रिक्थिन्] [स्त्री० रिक्थिनी] १. वह जिसे उत्तराधिकार में धन या संपत्ति मिले। दायाद। उत्तराधिकारी। २. वह जो मृत्युलेख लिखता हो। मृत्युलेख लिखनेवाला व्यक्ति (को०)। ३. धनी व्यक्ति। धनवान् (को०)।

रिक्षⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] दे० 'ऋक्ष'।

रिक्षपतिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्षपति] दे० 'ऋक्षपति'।

रिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लीक्षा। लीख। जूँ का अंडा। २. त्रिसरेणु। त्रसरेणु।

रिक्वा—संज्ञा पुं० [सं० रिक्वन्] तस्कर। चोर [को०]।

रिखभⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋषभ] दे० 'ऋषभ'।

रिखि—संज्ञा पुं० [सं० ऋषि] ऋषि। मुनि।

रिगⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्] दे० 'ऋक्'।

रिचा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋचा] दे० 'ऋचा'।

रिचीक—संज्ञा पुं० [सं० ऋचीक] दे० 'ऋचीक'।

रिच्चिकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋचीक] दे० 'ऋचीक'। उ०—ब्रह्मा कै सुत भृगु भए, भार्गव भृगु कै गेह। ऋषि रिच्चिक ताकै भए, तेज पुंज तप देह। —ह० रासो, पृ० ७।

रिच्छⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] भालू।

रिछकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रक्षक] रक्षा करनेवाला। रक्षक। उ०—नमो परम परमेश सकल कूँ चूण चुगाए। चौरासी में रिछक सकल कूं चूण चुगाए।—राम धर्म०, पृ० २२३।

रिछ्छ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] भालू। रीछ। उ०—दूत कपि रिछ्छ उत रछ्छसन ही की चमू, डंका देत बंका गढ़ लंका ते कढ़ै लगी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०३।

रिजⓅ—वि० [सं० ऋजु] दे० 'ऋजु'। उ०—सब्बउँ केरा रिज नअन तरुणी हेरहि बंक।—कीर्ति०, पृ० ३२।

रिजक—संज्ञा पुं० [अ० रिज़्क़] रोजी। जीविका। जीवनवृत्ति।

क्रि० प्र०—देना। पाना।—मिलना।

मुहा०—रिजक मारना = किसी की जीविका में बाधा डालना। रोजी में खलल डालना।

रिजर्व—वि० [अं० रिज़र्व] किसी विशेष कार्य के लिये निश्चित या रक्षित किया हुआ। जैसे,—रिजर्व कुरसी, रिजर्व गाड़ी, रिजर्व सेना।

रिजर्विस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वे सैनिक जो आपत्काल के लिये रक्षित रखे जाते हैं। रक्षित सैनिक।

विशेष—रिजर्विस्ट सैनिक कम से कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं। जिस पल्टन में ये भर्ती होते हैं, रिजर्विस्टों या रक्षित सैनिकों में नाम रहने पर भी ये उस पलटन के ही बने रहते हैं। केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीने के लिये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के वास्ते अपनी पलटन में जाना पड़ता है। २५ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है।

रिजल्ट—संज्ञा पुं० [अं०] परीक्षाफल। इम्तहान का नतीजा। जैसे,—इस बार एम० ए० का रिजल्ट बहुत अच्छा हुआ है।

क्रि० प्र०—निकलना।—होना।

मुहा०—रिजल्ट आउट होना = परीक्षाफल का प्रकाशित होना। इम्तहान का नतीजा निकलना।

रिजाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रज़ील (= नीच)] रजीलपन। निर्लज्जता। बेहयाई। उ०—काउ ग्वाली की प्रीति सम्हाली, स्याम रसाली। सुकवि रिजाली दई बहाली भइ नभ लाली।—व्यास (शब्द०)।

रिजु—वि० [सं० ऋजु] दे० 'ऋजु'।

रिझकवारⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + वार (प्रत्य०)] किसी के गुण पर प्रसन्न होनेवाला। रीझनेवाला। उ०—रिझकवार दृग देखि कै मनमोहन की ओर। मोहन मोरत रीझ जनु डारत है न निहोर।—रसनिधि (शब्द०)।

रिझवना—क्रि० स० [हिं० रिझाना] प्रसन्न करना। रिझाना। उ०—सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुर मौरहि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०४।

रिझवार†—संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + वार (प्रत्य०)] [स्त्री० रिझवारि] १. किसी बात पर प्रसन्न होनेवाला। २. रूप पर मोहित होनेवाला। उ०—(क) कपटी जब लौं कपट नहिं साँच बिगुरदा धार। तब लौं कैसे मिलैगो प्रभु साँचो रिझवार।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) मोहि भरोसो रीझिहौ उझकि झाँकि इक बार। रूप रिझावनहार वह ये नैना रिझवार।—बिहारी (शब्द०)। (ग) नंदनंदन के रूप पर रीझ रही रिझवारि।—मति० ग्रं०, पृ० ३३२। ३. अनुराग करनेवाला। प्रेमी। ४. गुण पर प्रसन्न होनेवाला। कदरदान। गुणग्राहक।

रिझवैया—संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + वैया (प्रत्य०)] दे० 'रिझवार'।

रिझाना—क्रि० स० [सं० रञ्जन] १. किसी को अपने ऊपर प्रसन्न कर लेना। किसी को अपने ऊपर खुश करना। उ०—सूरदास प्रभु विविध भाँति करि मन रिझयो हरि पी को।—सूर (शब्द०)। २. अपना प्रेमी बनाना। अनुरक्त करना। मोहित करना। लुभाना।

रिझायलⓅ†—वि० [हिं० रीझना + आयल (प्रत्य०)] किसी के ऊपर प्रसन्न होनेवाला। रीझनेवाला। उ०—कवि नाथ लई उर लाय पिया रति रंग तरंग रिझायल की।—नाथ (शब्द०)।

रिझाव—संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + आव (प्रत्य०)] किसी के ऊपर प्रसन्न होने या रीझने का भाव।

रिझावनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० रिझाना] दे० 'रिझाना'। उ०—

ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीन्हें।—सूर (शब्द०)।

रिझौना५—वि० [हिं० रीझ+औना (प्रत्य०)] जिसपर रीझा जाय। अपने पर रिझानेवाला। उ०—रूप रिझौने मुसकि चलति जब काम अहेरी के टटाबक टोने।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४५।

रिटर्निंग अफसर—संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो निर्वाचन के समय वोटों या मतों को गिनता है और कौन अधिक वोट मिलने से नियमानुसार निर्वाचित हुआ, इसकी घोषणा करता है।

रिटायर—वि० [अं० रिटायर्ड] जिसने काम से अवसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेन्शन ली हो। अवसरप्राप्त।

रिटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्योति फूटना। लपट निकलना। २. काला नमक। ३. एक वाद्ययंत्र। ४. शिव के एक पार्षद का नाम [को०]।

रिणवास†—संज्ञा पुं० [हिं०] रनिवास। अंतःपुर।

रित५—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु'।

रितना५—क्रि० अ० [हिं० रीता+ना (प्रत्य०)] खाली होना। उ०—दीजै दादि देखि ना तो बलि मही मोद मंगल रितई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२८।

रितवंती५—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतुमती] दे० 'रितुवंती'।

रितवना५—क्रि० स० [हिं० रीता+ना (प्रत्य०)] खाली करना। रिक्त करना। उ०—(क) मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चलिबे को घरै न करै मन नेकु घरै फिर फेर भरै रितवै।—देव (शब्द०)।

रिताना५—क्रि० स० [सं० रिक्त+करण] खाली करना। रिक्त करना। उ०—अपने को सोच बिचार से तो रिताया ही है।—सुनीता, पृ० २२८।

रितु५—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु'।

रितुराज—संज्ञा पुं० [सं० ऋतुराज] वसंत। उ०—सोह मदन मुनि वेष जनु रति रितुराज समेत।—मानस, २।१३३।

रितुवंता—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतुमती] रजस्वला स्त्री।

रिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्धि] दे० 'ऋद्धि'।

रिद्धि सिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्धि सिद्धि] दे० 'ऋद्धि सिद्धि'।

रिधम—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. वसंत।

रिधि५—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्धि] दे० 'ऋद्धि'।

यौ०—रिधिसिधि=ऋद्धि सिद्धि।

रिन—संज्ञा पुं० [सं० ऋण] दे० 'ऋण'।

रिनिबंधी†—संज्ञा पु० [सं० ऋण+बन्ध] कर्जदार। ऋणी।

रिनिआँ†—वि० [सं० ऋणिन्] जिसने ऋण लिया हो। ऋणी। कर्जदार। उ०—दैबे को न कछू रिनिआँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ।—तुलसी (शब्द०)।

रिनियाँ—वि० [सं० ऋणिन्] दे० 'रिनिआँ'।

रिनी†—वि० [सं० ऋणिन्] जिसने ऋण लिया हो। ऋणी। कर्जदार।

रिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी। २. शत्रु। ३. हिंसा।

रिपटना†—क्रि० अ० [?] रपटना। फिसलना। बिछलाना।

रिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु। दुश्मन। बैरी। २. जन्मकुंडली में लग्न से छठा स्थान। ३. पुराणानुसार ध्रुव के पोते और शिलष्टि के पुत्र का नाम। ४. विरुद्ध ग्रह (ज्यौतिष)।

रिपुघाती—संज्ञा पुं० [सं० रिपुघातिन्] दे० 'रिपुघ्न'।

रिपुघ्न—वि० [सं०] शत्रुओं का नाश करनेवाला।

रिपुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैर। शत्रुता। दुश्मनी। उ०—जो रिपुता करि हमको मार्‍यो। ताको हमहि सपदि संहारचो।—रघुराज (शब्द०)।

रिपुदवन—संज्ञा पुं० [सं० रिपु+दमन] शत्रुघ्न। उ०—पवन सुवन रिपुदवन भरत लाल लखन दीन की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७५।

रिपुसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रिपुदवन'। उ०—रिपुसूदन पदकमल नमामी।—मानस।

रिपुहन—संज्ञा पुं० [सं० रिपुघ्न] शत्रुघ्न। उ० सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी।—मानस, २।१६३।

रिपोर्ट—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. किसी घटना का वह सविस्तार वर्णन जो किसी को सूचना देने के लिये किया जाय। २. किसी संस्था आदि के कार्यों का विस्तृत विवरण। ३. किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध की जानने योग्य बातों का ब्योरा।

रिपोर्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी समाचारपत्र के संपादकीय विभाग का वह कार्यकर्त्ता जिसका काम सब प्रकार के स्थानीय समाचारों और घटनाओं का संग्रह कर उन्हें लिखकर संपादक को देना और अपने पत्र के लिये सार्वजनिक सभा, समिति, उत्सव, मेले आदि का विवरण लिखकर लाना, स्थानांतर में होनेवाली सभा, संमेलन, उत्सव, मेले आदि के अवसर पर जाकर वहाँ का ब्योरा लिखकर भेजना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिलकर महत्व के सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है। २. वह जो किसी सभा या समिति का विवरण और व्याख्यान लिखता हो। जैसे, कांग्रेस रिपोर्टर। ३. वह जो सरकार की ओर से अदालत या किसी सभा समिति या कौंसिल की काररवाई और व्याख्यान लिखता हो। जैसे,—कौंसिल रिपोर्टर, सी० आई० डी० रिपोर्टर।

रिप्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पातक। २. धूल। गंदगी (को०)।

रिप्र[२]—वि० बुरा। निम्न। नीच [को०]।

रिप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे पाप या पातक का नाश होता हो।

रिफार्म—संज्ञा पुं० [अं० रिफ़ार्म] दोषों या त्रुटियों का दूर किया जाना। किसी संस्था या विभाग में परिवर्तन किया जाना। सुधार। संस्कार। परिवर्तन।

रिफार्मर—संज्ञा पुं० [अं० रिफ़ार्मर] वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आंदोलन करता हो। सुधारक। संस्कारक।

रिफार्मेटरी—संज्ञा पुं० [अं० रिफ़ार्मेटरी] वह संस्था या स्थान जहाँ अपराधी कैदी बालक रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिसमें वे लोग वहाँ से बाहर निकलकर जीविकानिर्वाह कर सकें और भलेमानस बनकर रहें। चरित्रसंशोधनालय।

रिफार्मेटरी स्कूल—संज्ञा पुं० [अं० रिफार्मेटरी स्कूल] दे० 'रिफार्मेटरी'।

रिबन—संज्ञा पुं० [अं०] १. सिल्क, साटन या सूती कपड़े आदि की पतली लंबी पट्टी जिससे कोई वस्तु बाँधने का काम लेते हैं। फीता। २. टाइप राइटर में लगाया जानेवाला स्याही का फीता। ३. स्त्रियों, कन्याओं की चोटी में लगाया जानेवाला रेशम, सूत आदि का कुछ चौड़ा फीता। उ०—पाउडर, रिबन आदि शृंगार प्रसाधन की प्रायः सभी आवश्यक वस्तुएँ खरीद-कर मैं होटल को लौट चला।—जर्सी, पृ० ७१।

रिभु—संज्ञा पुं० [सं० ऋभु] दे० 'ऋभु'।

रिभ्वा—संज्ञा पुं० [सं० रिभ्वन्] चोर। तस्कर [को०]।

रिम[1]—संज्ञा पुं० [सं० अरिम् या ऋपु] शत्रु। (डिं०)।

रिम—संज्ञा स्त्री० [अं० रीम] दे० 'रीम'।

रिमझिम[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटी छोटी बूँदों का लगातार गिरना। हलकी फुहार पड़ना।

रिमझिम[2]—क्रि० वि० वर्षा की छोटी छोटी बूँदों से। उ०—बादल घिरे हुए हैं; बिजली चमक रही है; रिमझिम झड़ी लगी हुई है।—बालमुकुंद (शब्द०)।

रिमहर—संज्ञा पुं० [सं० अरिम्+हर] शत्रु। (डिं०)।

रिमाइंडर—संज्ञा पुं० [अं०] अनुस्मारक। याददाश्त।

रिमार्क—संज्ञा पुं० [अं०] मत। राय।

रिमिका—संज्ञा [हिं०] काली मिर्च की लता। (अनेकार्थ)।

रिम्मना(पु)—क्रि० अ० [हिं० रमना] रमण करना। रमना। उ०—नारि सो धिकु जेहि पुरुष न रिम्मे, पुरुष सो धिकु जीवन अप-कारी। बचन सो धिकु जो बोलि पलट्टिय दानि सो धिक जो करकस भारी।—अकबरी०, पृ० ३२२।

रिया—संज्ञा स्त्री० [अ०] दिखावा। मक्कारी [को०]।

यौ०—रियाकार=मक्कार। रियाकारी=फरेब। मक्कारी।

रियाज—संज्ञा पुं० [अ० रियाज़, रौज़ह् का बहुव०] १. बाग। उपवन। उद्यान। २. मिहनत। श्रम। ३. अभ्यास। ४. दे० 'रियाजत'।

मुहा०—रियाज मारना=(१) कसरत करना। (२) परिश्रम करना।

रियाजत—संज्ञा स्त्री० [अ० रियाज़त] १. कसरत। व्यायाम। २. इबादत। जपतप। ३. दे० 'रियाज' [को०]।

रियाजी[1]—वि० [अ० रियाज़ी] १. मेहनती। २. कसरती।

रियाजी[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० रियाज़ी] गणित विद्या [को०]।

रियायत—संज्ञा स्त्री० [अ० रिआयत] दे० 'रिआयत'।

रियासत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. राज्य। अमलदारी। २. रईस होने का भाव। अमीरी। वैभव। ऐश्वर्य। स्वामित्व। सरदारी।

रियासती—वि० [अ० रियासत+हिं० ई (प्रत्य०)] रियासत से संबंधित।

रियाह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वायु। २. अपान वायु [को०]।

रिरंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संभोग की इच्छा। २. आनंद लेने की इच्छा [को०]।

रिर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रार] हठ। जिद। उ०—रस मैं रिसान्यौ अनरस कै खिसान्यौ देव पीछे पछितान्यौ सो बरोवत रिर पर्यो।—देव (शब्द०)।

रिरकना(पु)—क्रि० अ० [सं० √रिख्] १. सरकना। खिसकना। उ०—प्यौं लखि सुंदरि सुंदरि सेज तें यों रिरकी थिरकी थहरानी। बात के लागे नहीं ठहरात है ज्यों जलजात के पात पै पानी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६६। २. गिड़गिड़ाना। रिरियाना।

रिरना†—क्रि० अ० [अनु०] बहुत दीनता प्रकट करना। गिड़-गिड़ाना।

रिरियाना—क्रि० अ० [हिं० रिरना] दे० 'रिरना'।

रिरिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० रिरना (=गिड़गिड़ाना)] वह जो गिड़गिड़ाकर और रट लगाकर कुछ माँगता हो। उ०—द्वार हौं भोर ही को आज। रटत रिरिहा आरि और न कौर ही ते काज।—तुलसी (शब्द०)।

रिरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल। (धातु)।

रिरी[2]—वि० [हिं० रिर+ई (प्रत्य०)] जिद्दी। हठी।

रिलना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० रेलना। तुल० पं० रलना (=मिलना)] प्रवेश करना। पैठना। घुसना। उ०—नौरँग भरि भामिनी दिखावति सौ रँग हिय रिलि।—सुकवि (शब्द०)। २. हिल मिलकर एक हो जाना। मिल जाना। उ०—बेसर मानिक लखि न परत यों रंग रह्यौ रिलि।—सुकवि (शब्द०)।

रिलीफ—संज्ञा पुं० [अं० रिलीफ़] वह सहायता जो आर्त पीड़ित या दीन दुःखी जनों को दी जाय। सहायता। साहाय्य। मदद। जैसे,—मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी। रिलीफ वर्क।

रिवाज—संज्ञा पुं० [अ०] प्रथा। रस्म। रीति। चलन।

क्रि० प्र०—उठना।—चलना।—निकलना।—पड़ना।—होना।

रिवाल्वर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का तमंचा जिसमें एक साथ कई गोलियाँ भरने का चक्र होता है जो घूमता है और गोलियाँ लगातार एक के बाद दूसरी छोड़ी जा सकती हैं।

रिव्यू—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. किसी नवीन प्रकाशित पुस्तक की परीक्षा कर उसके गुण दोषों को प्रकट करना। आलोचना। समालोचना। जैसे,—आपने अपने पत्र में अभी मेरी पुस्तक की रिव्यू नहीं की।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तक की आलोचना की गई हो। समालोचना। जैसे,—'संदेश' में 'समाज' की जो रिव्यू निकली है वह सद्भावपूर्ण नहीं कही जा सकती। ३. वे सामयिक पत्रपत्रिकाएँ जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखों का संग्रह रहने के साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकों

की भी आलोचना रहती हो। जैसे—माडर्न रिव्यू, सैटरडे रिव्यू। ४. किसी निर्णय या फैसले का पुनर्विचार। नजरसानी। जैसे,—नीचे की अदालत का फैसला रिव्यू के लिये हाईकोर्ट भेजा गया है।

रिश—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। अरि [को०]।

रिशा—संज्ञा स्त्री० [अ०] उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र [को०]।

रिश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० रिश्तह्] १. नाता। संबंध। २. डोरा। तागा (को०)। ३. नहारू या नारू रोग (को०)।

रिश्तेदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० रिश्तह् दार] संबंधी। नातेदार। स्वजन।

रिश्तेदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रिश्तह् दारी] रिश्ता होने का भाव। संबंध। नाता।

रिश्तेमंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० रिश्तह् मंद] संबंधी। नातेदार।

रिश्य—संज्ञा पुं० [सं०] मृग।

रिश्वत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह धन जो किसी को उसके कर्तव्य से विमुख करके अपना लाभ करने के लिये अनुचित रूप से दिया जाय। घूस। लाँच। उत्कोच। जैसे,—उसने दो सौ रुपए रिश्वत देकर उस मुकदमे से अपनी जान बचाई।

क्रि० प्र०—खाना।—देना। जैसे,—रुपया दो रुपया रिश्वत देकर अपना काम निकाल लो।—पाना।—मिलना।—लेना।

रिश्वतखोर—संज्ञा पुं० [अ० रिश्वत+फ़ा० खोर] वह जो रिश्वत लेता हो। घूस खानेवाला।

रिश्वतखोरी—संज्ञा स्त्री० [अ० रिश्वत+फ़ा० खोरी] रिश्वत खाने का काम। घूस लेने का काम।

रिषभ—संज्ञा पुं० [सं० ऋषभ] दे० 'ऋषभ'।

रिषिⓟ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋषि'।

रिषीक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

रिषीक[2]—वि० हानि पहुँचानेवाला।

रिष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्याण। मंगल। सौभाग्य। २. अभाग्य। अमंगल। दुर्भाग्य। ३. अभाव। न होना। ४. नाश। ५. पाप। ६. खड्ग। ७. रीठा का वृक्ष (को०)।

रिष्ट[2]—वि० नष्ट। बरबाद।

रिष्टⓟ[3]—वि० [सं० हृष्ट] १. प्रसन्न। २. मोटा ताजा।

यौ०—रिष्टपुष्ट = हृष्टपुष्ट। उ०—रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना।—मानस, १।६३।

रिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तशिग्रु। रीठा [को०]।

रिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खड्ग। २. अमंगल।

रिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] रिश्य। मृग [को०]।

रिष्यमूक—संज्ञा पुं० [सं० ऋष्यमूक] दक्षिण का एक पर्वत जहाँ राम जी से सुग्रीव की मित्रता हुई थी। उ०—आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत नियराया।—मानस, ४।१।

रिष्व—वि० [सं०] घातक। वधक। हंता [को०]।

रिस—संज्ञा स्त्री० [सं० रुष] क्रोध। गुस्सा। कोप। नाराजगी। उ०—(क) सुनि सु दान राजै रिस मानी।—जायसी (शब्द०)। (ख) महाप्रभु कृपाकरन रघुनंदन रिस न गहैं पल आधु।—सूर (शब्द०)। (ग) जात पुकारत आरत बानी। देखि दुशासन अति रिस मानी।—सबल (शब्द०)।

मुहा०—रिस मारना = क्रोध को रोकना। उ०—(क) धर्मज बदन निहारि, बिकल सकल रिस मारि उर। दीन गदा महि डारि, भीम बिकल पारथ अतिहि।—सबल (शब्द०)। (ख) रामै राम पुकार हनुमान अंगद कह्यौ। तब रावण रिस मारि रामचंद्र मन में धरे।—हृदयराम (शब्द०)।

रिसना†—क्रि० स० [हिं० रसना] बहुत ही छोटे छोटे छिद्रों द्वारा छन छनकर बाहर निकल जाना। रसना। उ०—वहाँ की मिट्टी ऐसी दरदरी थी कि जो दीया बनाते तो जलाने के समय सारी चरबी पिघलकर उसके भीतर से रिस जाती।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

रिसवाना†—क्रि० स० [हिं० रिसाना] दे० 'रिसाना'। उ०—ताही समय नंद घर आए। सुनि जसुमति को बहु रिसवाए।—विश्राम (शब्द०)।

रिसहा†—वि० [हिं० रिस+हा (प्रत्य०)] १. बात बात पर क्रोध करनेवाला। गुस्सैवर। क्रोधी। उ०—सूधे न काहू बतायो कछू मन याही ते मेरो भयो रिसहा है।— मन्नालाल (शब्द०)।

रिसहाया†—वि० [हिं० रिसाया] [वि० स्त्री० रिसहाई] क्रुद्ध। कुपित। नाराज। उ०—(क) लखि लीनी तब चतुर नागरी ये मो पर सब हैं रिसहाई।—सूर (शब्द०)। (ख) जननी अतिहि भई रिसहाई। बार बार कहैं कुँवरि राधिका री मोतीसरि कहाँ गमाई।—सूर (शब्द०)।

रिसान—संज्ञा पुं० [देश०] ताने के सूतों को फैलाकर उनको साफ करने का काम। (जुलाहे)।

रिसाना†[1]—क्रि० अ० [हिं० रिस+आना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। खफा होना। गुस्सा होना। उ०—(क) और की ओर तकै जब प्यो तब त्यौरी चढ़ाइ चढ़ाइ रिसाति है। (ख) सखी सदन लाई जहँ रानी। मातु ताहि लखि बहुत रिसानी।—विश्राम (शब्द०)।

संयो क्रि०—जाना।—उठना।

रिसाना[2]—क्रि० स० किसी पर क्रुद्ध होना। बिगड़ना। उ०—इनकी बात न जानति मैया मोकों बारंबार रिसाति।—सूर (शब्द०)।

रिसानि, रिसानीⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रिस+आनि (प्रत्य०)] क्रोध। गुस्सा। नाराजगी। उ०—घोर धार भृगुनाथ रिसानी।—मानस, १।४१।

रिसाल†—संज्ञा पुं० [अ० इरसाल] राज्यकर जो मुफस्सल से राजधानी को भेजा जाता है। उ०—मानो हय हाथी उमराव करि साथी अवरंग डरि सिवा जी पै भेजत रिसाल है।—भूषण (शब्द०)।

रिसालदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घुड़सवार सेना का अफसर। २,

रिसाल या राजकर ले जानेवालों का प्रधान संचालक। चढ़नदार।

रिसाला—संज्ञा पुं० [फा० रिसालह्] १. घोड़सवारों की सेना। अश्वारोही सेना। २. किसी विषय पर छोटी पुस्तक (को०)। ३. नियत समय पर मासिक, पाक्षिक, त्रैमासिक आदि रूपों में प्रकाशित होनेवाला पत्र (को०)।

रिसिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रिस] दे० 'रिस'।

रिसिआना, रिसियाना†[1]—क्रि० अ० [हिं० रिस + आना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। कुपित होना। उ०—(क) कबहूँ रिसियाई कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) शाप दीन सुनि अति रिसियाने। कीन्हें कपट अकाज अजाने।—विश्राम (शब्द०)।

रिसिआना, रिसियाना[2]—क्रि० स० किसी पर क्रुद्ध होना। बिगड़ना।

रिसिकⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रिष्टीक] तलवार। उ०—रिसिक कुसेह कृपान असि विशसनपा करवाल।—नंददास (शब्द०)।

रिसौहाँ—वि० [हिं० रिस + औहाँ (प्रत्य०)] १. क्रुद्ध सा। कुछ कोपयुक्त। थोड़ा नाराज। उ०—(क) सी करति ओठनि बसी करति आँखिन रिसौंही सी हँसी करति, भौंहनि हँसी करति।—देव (शब्द०)। (ख) करी रिसौंहीं जाहिगी सहज हँसौंहीं भौंह।—बिहारी (शब्द०)। २. क्रोध से भरा। कोपसूचक। उ०—माखे लखन कुटिल भई भौंहें। रदपुट फरकत नयन रिसौहैं।—तुलसी (शब्द०)।

रिस्क—संज्ञा स्त्री० [अं०] झोंका। जवाबदेही। भार। बोझ। जैसे—रेलवे रिस्क। जैसे,—यदि तुम गाँठ न उठाओगे तो वे तुम्हारी रिस्क पर बेच दी जायँगी।

क्रि० प्र०—उठाना।—लेना।

रिस्टवाच—संज्ञा स्त्री० [अं०] कलाई पर बाँधने की घड़ी।

रिहन—संज्ञा पुं० [अ० रह्न] दे० 'रेहन'।

रिहननामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह लेख जिसमें किसी पदार्थ के रेहन रखे जाने और उसके संबंध की शर्तों का उल्लेख हो।

रिहर्सल—संज्ञा पुं० [अं०] १. नाटक के अभिनय का अभ्यास। २. वह अभ्यास जो किसी कार्य को ठीक समय पर करने के पहले किया जाय।

रिहल—संज्ञा स्त्री० [अ०] काठ की बनी हुई कैंचीनुमा चौकी जिसपर रखकर लोग पुस्तक पढ़ते हैं और जिसका आकार इस प्रकार का × होता है।

रिहा—वि० [फ़ा०] १. (बंधन आदि से) मुक्त। छूटा हुआ। २. (किसी बाधा या संकट से) छुटा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

रिहाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] छुटकारा। मुक्ति। छुट्टी।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

रींधना—क्रि० स० [सं० रन्धन] तैयार करने के लिये खाद्य पदार्थ को तलना, उबालना या पकाना। राँधना। उ०—(क) जगन्नाथ दरसन कहँ आए। भोजन रींधा भात पकाए।—जायसी (शब्द०)। (ख) रसोई के घर में ब्रह्मानंद की भतीजी रोहिणी रींध रही थी।—अयोध्या (शब्द०)।

री[1]—अव्य० [सं० रे] सखियों के लिये संबोधन। अरी। एरी। उ०—नेकु सुमुखि चित लाइ चितौ री। नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितो री। साँवर रूप सुधा भरिबे कहँ नयन कमल कल कलस रितो री।—तुलसी (शब्द०)।

री[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गति। २. वध। हत्या। ३. शब्द। रव। ४. क्षरण। चूना।

रीगन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो भादों या कुआर में तैयार होता है।

रीगना—क्रि० अ० [देश०] चिढ़ना।

रीछ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] [स्त्री० रीछनी] भालू।

यौ०—रीछपति = जामवंत। उ०—कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।—मानस,—४।३०। रीछराज।

रीछराजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्षराज] जामवंत। उ०—रीछराज कपिराज नील नल बोलि बालि नंदन लए।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८६।

रीजेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी राजा की नाबालिगी, अनुपस्थिति या अयोग्यता की अवस्था में राज्य का प्रबंध या शासन करता हो। राज्यप्रतिनिधि। अस्थायी शासक। वली। जैसे,—स्वर्गीय महाराज सरदारसिंह जी की नाबालिगी में ईडर के महाराज सर प्रतापसिंह कई वर्ष तक जोधपुर के रीजेंट रहे।

रीजेंसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] रीजेंट का शासन या अधिकार। जैसे,—जोधपुर में कई वर्ष तक रीजेंसी रही।

रीड्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घृणा। नफरत। २. भला बुरा कहना। लानत मलामत। कुत्सा। निंदा। भर्त्सना।

रीझ—संज्ञा स्त्री० [सं० रञ्जन] १. किसी के ऊपर रीझने की क्रिया या भाव। किसी की किसी बात पर प्रसन्नता। २. किसी के रूप, गुण आदि पर मोहित होना। मुग्ध होने का भाव।

रीझना—क्रि० अ० [सं० रंजन] १. किसी की किसी बात पर प्रसन्न होना। उ०—केतिकौ कोऊ बकै रघुनाथ मैं साँवरे के रँग रीझि रजौंगी। देह तजौंगी संदेह तजौंगी पै देह तजौंगी न नेह तजौंगी।—रघुनाथ (शब्द०)। २. मोहित होना। मुग्ध होना। उ०—(क) रीझहि राज कुँवरि छवि देखी। इनहि बरै हरि जानि विशेषी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहत नटत रीझत खिझत हिलत मिलत लजियात। भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना। उ०—रूप निकाई मीत की ह्याँ तक लों अधिकात। जा तन हेरौ निमिष कै रीझहु रीझी जात।—रसनिधि (शब्द०)।

रीझिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रीझना] प्रसन्नता। आनंद। उ०—तेरी खीझिबे की लख रीझि मनमोहन को याते वहै साज सजि सजि नित आवते।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १३५।

रीठⓅ[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रिष्ट] १. तलवार । २. युद्ध । (डिं०) ।

रीठ[२]—वि० अशुभ । खराब।

रीठा[१]—संज्ञा पुं० [सं० रिष्ट, प्रा० रिट्ठ या सं० रीठा (=करंज भेद)] १. एक बड़ा जंगली वृक्ष जो प्राय: बंगाल, मध्य प्रदेश, राजपूताने तथा दक्षिण भारत में पाया जाता है। यह देखने में बहुत सुंदर होता है। २. इस वृक्ष का फल जो बेर के बराबर होता है।

विशेष—इसको लोग सुखाकर रखते हैं। इसे पानी में भिगोकर मलने से फेन निकलता है जिससे कपड़े धोए जाते हैं। काश्मीर में शाल आदि प्राय: इसी से साफ किए जाते हैं। यह रेशम तथा जवाहिरात धोने के काम में भी आता है। इसे फेनिल भी कहते हैं।

रीठा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० भट्ठा] वह भट्ठा जिसमें चूना बनाने के लिये कंकर फूँके जाते हैं। (बुंदेलखंड)।

रीठाकरंज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रीठा[१]'।

रीठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रीठा] दे० 'रीठा'।

रीडर[१]—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह जो पढ़े। पढ़नेवाला। पाठक। २. कालेज या विश्वविद्यालय का अध्यापक जो लेक्चरर (अध्यापक) से ऊँचा होता है। व्याख्याता। ३. वह जो लेख या पुस्तकों के प्रूफ पढ़ता या संशोधन करता है। संशोधक।

रीडर[२]—संज्ञा स्त्री० पाठ्य पुस्तक। जैसे,—पहली रीडर। बेसिक रीडर। किंग रीडर।

रीडिंग रूम—संज्ञा पुं० [अं०] अध्ययनकक्ष। दे० 'वाचनालय'।

रीढक—संज्ञा पुं० [सं०] देखो 'रीढ़' [को०]।

रीढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० रीढक] पीठ के बीचोबीच की वह खड़ी हड्डी जो गर्दन से कमर तक जाती है और जिससे पसलियाँ मिली हुई रहती हैं। मेरुदंड।

विशेष—यह वास्तव में एक ही हड्डी नहीं होती, बल्कि बहुत सी हड्डियों की गुरियों की एक शृंखला होती है। इसे शरीर का आधार समझना चाहिए। इसका सीधा लगाव मस्तिष्क से होता है और बहुत से संवेदनसूत्र इसमें से दोनों ओर निकलकर फैले रहते हैं।

रीढा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। उपेक्षा [को०]।

रीण—वि० [सं०] १. तिरोभूत। तिरोहित। अंतर्धान। २. स्पंदित। प्रस्रवित। क्षरित [को०]।

रीत—संज्ञा स्त्री० [हिं० रीति] दे० 'रीति'। उ०—सखीन सों सीखै सोहाग की रीतहि।—देव (शब्द०)।

रीतनाⓅ†[१]—क्रि० अ० [सं० रिक्त, प्रा० रित्त+हिं० ना (प्रत्य०)] खाली होना। रिक्त होना। उ०—हमहूँ समुझि परी नीके करि यह आशा तनु रीत्यो।—सूर (शब्द०)।

रीतना[२]—क्रि० स० खाली करना। रिक्त करना।

रीता—वि० [सं० रिक्त, प्रा० रित्त] [वि० स्त्री० रीती] जिसके अंदर कुछ न हो। खाली। रिक्त। शून्य। उ०—(क) साँची कहि जाउ कब ऐहौ भौन रीते पर।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) हम हम करि धन धाम सँवारे अंत चले उठि रीते।—तुलसी (शब्द०)। (ग) रीते घट धरि लेत सिर देति भरन को ढारि।—रसनिधि (शब्द०)।

रीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोई कार्य करने का ढंग। प्रकार। तरह। ढब। उ०—जाति मुरी बिछुरत घरी जल सफरी की रीति।—बिहारी (शब्द०)। २. रस्म। रिवाज। परिपाटी। उ०—(क) मतलब मतलब प्यार सों तन मन दै कर प्रीति। सुनी सनेहिन मुख यहै प्रेम पंथ की रीति।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं बरु बचन न जाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. कायदा। नियम। ४. साहित्य में किसी विषय का वर्णन करने में विशिष्ट पदरचना अर्थात् वर्णों की वह योजना जिससे ओज, प्रसाद या माधुर्य आता है। ५. पीतल। ६. लोहे की मैल। मंडूर। ७. जले हुए सोने की मैल। ८. सीसा। ९. गति। १०. स्वभाव। ११. स्तुति। प्रशंसा।

यौ०—रीतिकाल=हिंदी साहित्य के इतिहास का वह काल जब रीति ग्रंथों की रचना विशेष रूप से होती थी। रीतिग्रंथ, रीतिशास्त्र=वे लक्षणग्रंथ जिनमें नायिकाभेद, नखसिख, अलंकार आदि का लक्षण एवं सोदाहरण विवेचन किया गया हो।

रीतिक—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल का भस्म। पुष्पांजन [को०]।

रीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जस्ते का भस्म। २. पीतल। कुसुमांजन।

रीम[१]—संज्ञा स्त्री० [अं०] कागज की वह गड्डी जिसमें बीस दस्ते (अर्थात् ५०० शीट) होते हैं।

रीम[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मवाद। पीब।

रीर[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रीढ़] दे० 'रीढ़'।

रीर[२]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

रीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल।

रीशमाल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह व्यक्ति जो अपनी स्त्री के व्यभिचार की कमाई खाता हो [को०]।

रीषमूक—संज्ञा पुं० [सं० ऋष्यमूक] दे० 'ऋष्यमूक'।

रीस[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'रीसि'। उ०—वृद्ध जो सीस डुलावै सीस धुनहिं तेहि रीस।—जायसी (शब्द०)।

रीस[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्या] १. डाह। उ०—बरनौं गीउ कंबु कै रीसी।—जायसी (शब्द०)। २. स्पर्धा। बराबरी। उ०—(क) सेमल बिना सुगंध तू करत मालती रीस।—दीनदयाल (शब्द०)। (ख) कह्यो हिमालय शिव प्रभु ईस। हमकों उनसों कैसी रीस।—सूर (शब्द०)।

रीसनाⓅ—क्रि० अ० हिं० रिस+ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। खफा होना। उ०—मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा।—जायसी (शब्द०)।

रीसा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसकी छाल के रेशों

से रस्सियाँ बनती हैं। यह झाड़ी हिमालय और खासिया पहाड़ी पर होती है। इसे बनकठकीरा या बनरीहा भी कहते हैं।

रीहा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक झाड़ी। दे० 'रीसा'।

रुंज—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—(क) रुंज मुरज डफ झाँझ झालरी यंत्र पखावज तार।—सूर (शब्द०)। (ख) रुंज मुरज डफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार।—सूर (शब्द०)।

रुंड—संज्ञा पुं० [सं० रुण्ड] १. बिना सिर का धड़। कबंध। २. बिना हाथ पैर का शरीर। वह शरीर जिसके हाथ पैर कटे हों। उ०—(क) जीव पाउँ नहिं पाछे धरहीं। रुंडमुंड मय मेदिनि करहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रुंडनि के झुंड झूमि झूमि झुकरिसे नाचैं समर सुमार सूर भारे रघुबीर के।—तुलसी (शब्द०)।

रुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रुण्डिका] १. युद्धभूमि। समरक्षेत्र। २. विभूति। ३. दरवाजे की चौखट (को०)।

रुंधती—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुन्धती] वशिष्ठ मुनि की स्त्री। उ०—रतनालिका सी रुंधती सी रोहिणी सी रुचि रति सी रमा सी लसी अंगन में आइकै।—रघुराज (शब्द०)।

रुंधना—क्रि० अ० [सं० रुध, हिं०] 'रुँधना'। उ०—सिर तुहै रुंध्यो गयंद कढ्यौ कट्टारौ।—पृ० रा०, ६१।२२६७।

रुँदवाना—क्रि० स० [हिं० रौंदना का प्रेर०] पैरों से कुचलवाना। रौंदवाना। उ०—अब नहि राखौं उठाइ वैरी नहि नान्हों। मारौं गज तें रुँदाइ मनहि यह अनुमान्हों।—सूर (शब्द०)।

रुँधना—क्रि० अ० [सं० रुद्ध+ना (प्रत्य०)] १. मार्ग न मिलने के कारण अटकना। रुकना। २. उलझना। फँस जाना। उ०—रुंधे रति संग्राम नीके। एक ते एक रणवीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नेक अति सबल जी के।—सूर (शब्द०)। ३. किसी काम में लगना। ४. रोक या रक्षा के लिये काँटेदार झाड़ों आदि से घिरना या छाना। घेरा जाना। जैसे,—रास्ता रुँधना, खेत रुँधना।

रु[१]—अव्य० [हिं० अरु का संक्षिप्त रूप] और। उ०—(क) हम हारी कै कै हहा पायन परयौ प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेरे त्यौरु।—बिहारी (शब्द०)। (ख) संवत् भुज श्रुति निधि मही मधुमास रु सित पच्छ। शनिवासर शुभ पंचमी किन्हों ग्रंथ प्रतच्छ।—मन्नालाल (शब्द०)।

रु[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। २. वध। ३. गति। ४. काटना। अलग करना (को०)। ५. भय। खतरा (को०)।

रुआँली—संज्ञा स्त्री० [रूई+आलि] रूई की बनी हुई एक प्रकार की पोली बत्ती या पूनी जो स्त्रियाँ चरखे पर सूत कातने के लिये एक सिरकी पर लपेट कर बनाती हैं। पूना। पौनी।

रुआ[१]—संज्ञा पुं० [सं० रोम] शरीर पर के छोटे छोटे बाल। रोम। रोआँ।

रुआ[२]—संज्ञा पुं० [देश०] आणक का चतुर्थांश। एक पण वा पैसा।

रुआ घास—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूसा] १. एक प्रकार की बहुत सुगंधित घास जो तेल आदि बासने के काम आती है। इस घास से बासा हुआ तेल।

रुआना—क्रि० स० [हिं० रुलाना] दे० 'रुलाना'।

रुआब—संज्ञा पुं० [अ० रोअब] १. धाक। दबदबा। रोब। २. भय। डर। खौफ। आतंक।

क्रि० प्र०—डाँटना।—छाना।—बैठना।—बैठाना।—मानना।

रुआली—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूई+आलि] दे० 'रुआँली'।

रुई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह पेड़ हिमालय की तराई में काश्मीर से पूर्व दिशा में होता है। इसकी छाल और पत्तियाँ रँगाई के काम में आती हैं।

रुई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रूई'।

रुईदस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० रू ?+दस्त (=हाथ)] कुश्ती में छाती या बगल के पास से हाथ अड़ाकर निकालना।

रुईदार—वि० [हिं० रूईदार] दे० 'रूईदार'।

रुक—वि० [सं०] उदार। बहुत देनेवाला (को०)।

रुकना—क्रि० अ० [हिं० रोक] १. मार्ग आदि न मिलने के कारण ठहर जाना। आगे न बढ़ सकना। अवरुद्ध होना। अटकना। जैसे,—(क) यहाँ पानी रुकता है। (ख) रास्ता न मिलने की वजह से सब लोग रुके हैं। २. अपनी इच्छा से ठहर जाना। आगे न बढ़ना। जैसे,—(क) हम रास्ते में एक जगह रुकना चाहते हैं। (ख) यह गाड़ी हर स्टेशन पर रुकती है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

३. किसी कार्य में आगे न चलना। किसी काम में सोच विचार या आगा पीछा करना। जैसे,—मैं कुछ निश्चय नहीं कर सकता, इसी से रुका हूँ; नहीं तो कब का दावा कर चुका होता। ४. किसी कार्य का बीच में ही बंद हो जाना। काम आगे न होना। जैसे,—(क) रुपए के बिना सब काम रुका है। (ख) इस साल विवाह की सब तैयारी हो चुकी थी; पर लड़की मर जाने से विवाह रुक गया। ५. किसी चलते क्रम का बंद होना। सिलसिला आगे न चलना। जैसे—बाढ़ रुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

६. वीर्यपात न होने देना। स्खलित न होना (बाजारू)।

रुकमंगद—संज्ञा पुं० [सं० रुक्माङ्गद] दे० 'रुक्मांगद'।

रुकमंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्माञ्जनी] १. एक प्रकार का पौधा जो बागों में सजावट के लिये लगाया जाता है। २. इस पौधे का फूल।

रुकमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्मिणी] श्रीकृष्णचंद्र की पटरानी। विशेष दे० 'रुक्मिणी'।

रुकरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊख या गन्ना।

रुकवाना—क्रि० स० [हिं० रुकना का प्रेर०] दूसरे को रोकने में प्रवृत्त करना। रोकना। रोकने का काम दूसरे से कराना।

रुकाव—संज्ञा पुं० [हिं० रुकना] १. रुकने का भाव। रुकावट। अटकाव। अवरोध। रोक। २. मलावरोध। कब्ज। ३. स्तंभन।

रुकुम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रुक्म] दे० 'रुक्म'।

रुकुमी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रुक्मी] दे० 'रुक्मी'।

रुक्[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रुच्] १. शोभा। द्युति। कांति। २. आकांक्षा। इच्छा। ३. तेज। ४. आनंद। ५. शुक सारिका की बोली या कूजन [को०]।

रुक्[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० रुज्] रोग। व्याधि [को०]।

यौ०—रुक्प्रतिक्रिया = रोग का प्रतिकार। चिकित्सा।

रुक्का—संज्ञा पुं० [अ० रुक्अ़] १. छोटा पत्र या चिट्ठी। पुरजा। परचा। २. वह लेख जो हुंडी या कर्ज लेनेवाले रुपया लेते समय लिखकर महाजन को देते हैं।

रुक्ख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, प्रा० रुक्ख] रुख। पेड़। वृक्ष।

रुक्म[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ण। सोना। उ०—चल्यो रुक्मनी बंधु रुक्म रथ चढ़ि भट रुक्मी।—गोपाल (शब्द०)। २. स्वर्ण-भूषण। स्वर्णाभरण (को०)। ३. धस्तूर। धतूरा। ४. लोहा। ५. नागकेसर। ६. रुक्मिणी के एक भाई का नाम। उ०—कुंदनपुर को भीषम राई। विष्णु भक्ति को तन मन चाई। रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुक्मिणि पुत्री हरि रँग राँच।—सूर (शब्द०)।

रुक्म[२]—वि० १. चमकीला। २. सुनहरा [को०]।

यौ०—रुक्मकेशी = सुनहले बालोंवाला। स्वर्णकेश। जिसके केश स्वर्णाभ हों।

रुक्मकारक—संज्ञा पुं० [सं०] सुनार।

रुक्मकेश—संज्ञा पुं० [सं०] विदर्भ के राजा भीष्मक के छोटे पुत्र का नाम।

रुक्मपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रुक्मपात्री = स्वर्णथाली] सोने का बर्तन [को०]।

रुक्मपाश—संज्ञा पुं० [सं०] सूत का बना हुआ वह फंदा या लड़ जिसकी सहायता से गहने आदि पहने जाते हों।

रुक्मपुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नगर का नाम जहाँ गरुड़ निवास करते हैं।

रुक्मपृष्ठक—वि० [सं०] जिसपर सोने का पानी चढ़ाया गया हो।

रुक्ममाली—संज्ञा पुं० [सं० रुक्ममालिन्] पुराणानुसार भीष्मक के एक पुत्र का नाम।

रुक्ममाहु—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भीष्मक के एक पुत्र का नाम।

रुक्मरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शल्य के एक पुत्र का नाम। २. भीष्मक के एक पुत्र का नाम। ३. द्रोणाचार्य।

रुक्मवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में 'भ म स ग' (ऽ।।, ऽऽऽ, ।।ऽ, ऽ) होते हैं। इसके और नाम 'रूपवती' तथा 'चंपकमाला' भी हैं।

रुक्मवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोणाचार्य।

रुक्मसेन—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी का छोटा भाई। उ०—तब छोटा बालक नृप केरा। रुक्मसेन बोला यहि बेरा।—विश्राम (शब्द०)।

रुक्मांगद—संज्ञा पुं० [सं० रुक्माङ्गद] एक राजा का नाम। उ०—रुक्मांगद महिपाल, भयो एक भगवान प्रिय। ताकी कथा रसाल, मैं वर्णों संक्षेप ते।—रघुराज (शब्द०)।

रुक्माभ—वि० [सं०] सोने की तरह चमकीला। सुनहरा [को०]।

रुक्मि—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार पाँचवें वर्ष का नाम जो रम्यक और हैरण्यवत् वर्ष के मध्य में स्थित है।

रुक्मिण—संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्मिणी] दे० 'रुक्मिणी'।

रुक्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानियों में से बड़ी और पहली जो विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या थी। उ०—(क) यह सुनि हरि रुक्मिणि सों कह्यौ। ज्यों तुम मोकों चित पर चह्यो। सूर (शब्द०)। (ख) लखि रुक्मिणी कह्यो मुनि नारद यह कमला अवतार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि रुक्मिणी के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण उसपर आसक्त हो गए थे। उधर श्रीकृष्ण के रूपगुण की प्रशंसा सुनकर रुक्मिणी भी उनपर अनुरक्त हो गई थी। पर श्रीकृष्ण ने कंस की हत्या की थी, इसलिये रुक्मी उनसे बहुत द्वेष रखता था। जरासंध ने भीष्मक से कहा था कि तुम अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ कर दो। भीष्मक भी इस प्रस्ताव से सहमत हो गए। जब विवाह का समय आया, तब श्रीकृष्ण और बलराम भी वहाँ पहुँच गए। विवाह से एक दिन पहले रुक्मिणी रथ पर चढ़कर इंद्राणी की पूजा करने गई थी। जब वह पूजन करके मंदिर से बाहर निकली, तब श्रीकृष्ण उसे अपने रथ पर बैठाकर ले चले। समाचार पाकर शिशुपाल आदि अनेक राजा वहाँ आ पहुँचे और श्रीकृष्ण के साथ उन लोगों का युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण उन सबको परास्त करके रुक्मिणी को वहाँ से हर ले गए। पीछे से रुक्मी ने श्री कृष्ण पर आक्रमण किया और नर्मदा के तट पर श्रीकृष्ण से उसका भीषण युद्ध हुआ। उस युद्ध में रुक्मी को मूर्छित और परास्त करके श्रीकृष्ण द्वारका पहुँचे। वहीं रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण को दस पुत्र और एक कन्या हुई थी। पुराणों में रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार कहा है।

रुक्मिदर्प, रुक्मिदारण—संज्ञा पुं० [सं०] बलदेव।

रुक्मिदार—संज्ञा पुं० [रुक्मिदारिन्] बलदेव।

रुक्मिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम। बलदेव।

रुक्मी—संज्ञा पुं० [सं० रुक्मिन्] विदर्भ देश के राजा भीष्मक का बड़ा पुत्र और रुक्मिणी का भाई।

विशेष—जिस समय श्रीकृष्ण इसकी बहन रुक्मिणी को हर ले चले थे, उस समय इसके साथ उनका घोर युद्ध हुआ था।

रुक्मी ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं श्रीकृष्ण को मार न डालूँगा, तब तक घर न लौटूँगा। पर युद्ध में यह श्री कृष्ण से परास्त हो गया था; अतः लौटकर कुंडिननगर नहीं गया और विदर्भ में ही भोजकर नामक एक दूसरा नगर बसाकर रहने लगा था। उ०—चल्यो रुक्मिनो बंधु रुक्म रथ चढ़ि भट रुक्मी।—गिरधर (शब्द०)।

रुक्मी²—वि० १. सोने के आभूषणों से युक्त। २. जिसपर सोने का पानी चढ़ा हुआ हो (को०)।

रुक्ष¹—वि० [सं० रुक्ष, रूक्ष] १. जिसमें चिकनाहट न हो। जो स्निग्ध न हो। रूखा। २. जिसका तल चिकना न हो। ऊबड़ खाबड़। खुदबुदा। ३. बिना रस का। नीरस। ४. सूखा। शुष्क।

रुक्ष²—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] १. वृक्ष। पेड़। २. नरकट नाम की घास।

रुक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं० रूक्षता] रुखाई। रूखापन।

रुख¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० रुख] १. कपोल। गाल। २. मुख। मुँह। चेहरा। ३. चेहरे का भाव। आकृति। चेष्टा। उ०—(क) रुख रूखे भौंहें सतर नहि सौहें ठहरात। मान हितू हारे बात तें धूमजात लौं जात।—स० सप्तक, पृ० २६७। (ख) पुनि मुनिवर शंकर रु(ख)ष चीन्हों। चरण गुहा ते बाहर कीन्हों।—स्वामी रामकृष्ण (शब्द०)। (ग) संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहिं तजेउ हृदय अकुलानी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**रुख मिलाना** = मुँह सामने करना।

४. मन की इच्छा जो मुख की आकृति से प्रकट हो। चेष्टा से प्रकट इच्छा या मरजी। उ०—राम रुख निरखि हरषौ हिये हनुमान मानो खेलवार खोली सीस ताज बाज की।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**रुख देना** = प्रवृत्त होना। ध्यान देना। **रुख फेरना या बदलना** = (१) ध्यान किसी दूसरी ओर कर लेना। प्रवृत्त न होना। (२) अवकृपा करना। नाराज होना।

५. कृपादृष्टि। मेहरबानी की नजर। ६. सामने या आगे का भाग। जैसे,—(क) वह मकान दक्खिन रुख का है। (ख) कुरसी का रुख इधर कर दो। ७. शतरंज का एक मोहरा जो ठीक सामने, पीछे, दाहिने या बाएँ चलता है, तिरछा नहीं चलता। इसे रथ, किश्ती और हाथी भी कहते हैं।

रुख²—क्रि० वि० १. तरफ। ओर। पार्श्व। उ०—मनहुँ मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे।—तुलसी (शब्द०)। २. सामने। उ०—निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम विशेषा।—तुलसी (शब्द०)।

रुख³—संज्ञा पुं० [सं० रुक्ष] १. दे० 'रूख'। २. एक प्रकार की घास जिसे वरक तृण कहते हैं।

रुख⁴—वि० [हिं० रूखा] दे० 'रूखा'।

रुखचढ़वा†—संज्ञा पुं० [हिं० रूख + चढ़ना] १. बंदर। २. पेड़ पर रहनेवाला, भूत।

रुखड़ा—वि० [हिं० रूखा + डा (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० रुखड़ी] दे० खुरदुरा। 'रूखा'। उ०—रेशम से रुखड़ी चीज न कोई सटती है।—दिल्ली, पृ० १६।

रुखदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० रुख + दार (प्रत्य०)] (बाजार का भाव) जो घट रहा हो।

रुखसत¹—संज्ञा स्त्री० [अ० रुख़सत] १. आज्ञा। परवानगी। (क्व०)। २. रवानगी। कूच। विदाई। प्रस्थान। ३. काम से छुट्टी। अवकाश। जैसे,—बड़ी मुश्किल से चार दिन की रुखसत मिली है। ४. मुहलत। अवकाश। फुर्सत (को०)।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

रुखसत²—वि० जो कहीं से चल पड़ा हो। जिसने प्रस्थान किया हो।

रुखसताना—संज्ञा पुं० [फ़ा० रुखसतानह्] वह इनाम जो किसी को रुखसत होने के समय राजा या रईस आदि के यहाँ से सत्कारार्थ दिया जाता है। विदा होने के समय दिया जानेवाला धन। बिदाई।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

रुखसती¹—वि० [अ० रुखसत + ई (प्रत्य०)] जिसे छुट्टी मिली हो।

रुखसती²—संज्ञा स्त्री० [अ० रुखसती] १. विदाई, विशेषतः दुलहिन की विदाई। विदाई के समय दिया जानेवाला धन। बिदाई।

रुखसदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुखसती] दे० 'रुखसती'। उ०—मुखिया को काका चिरौरी करना पड़ा था तब कहीं कांता के ससुराल वाले रुखसदी के लिये राजी हुए थे।—नई०, पृ० १३६।

रुखसार—संज्ञा पुं० [फ़ा० रुखसार] कपोल। गाल।

रुखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा + आई (प्रत्य०)] १. रूखे होने की क्रिया या भाव। रूखापन। रुखावट। २. शुष्कता। खुश्की। ३. व्यवहार की कठोरता। शील का त्याग। बेमुरौवती।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।

रुखान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुखानी] दे० 'रुखानी'। उ०—सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १३१।

रुखानल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रोषानल] क्रोधाग्नि। (डिं०)।

रुखाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० रूखा + आना (प्रत्य०)] १. रूखा होना। चिकना न रह जाना। २. नीरस होना। सूखना। ३. किसी से रुष्ट या रुष्ट होना।

रुखानी—संज्ञा स्त्री० [सं० रोक (= छेद) + खनित्र (= खोदने की चीज)] १. बढ़इयों का लोहे का एक औजार जो प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है।

विशेष—इसका अगला सिरा धारदार होता है, और पीछे की ओर लकड़ी का दस्ता होता है जिसपर हथौड़ी या बसूले आदि से चोट लगाकर लकड़ी छोली या काटी जाती है, अथवा उसमें बड़ा छेद किया जाता है।

२. संगतराशों की वह टाँकी जिसका व्यवहार प्रायः मोटे कामों में होता है। ३. लोहे का प्रायः एक बालिश्त लंबा एक औजार जिसमें काठ का दस्ता लगा होता है और जिसकी सहायता से तेली अपनी घानी चलाते हैं।

रुखावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा+आवट (प्रत्य०)] दे० 'रुखाई'।

रुखाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा+आहट (प्रत्य०)] रूखापन। रुखाई।

रुखिता—संज्ञा स्त्री० [सं० रुषिता] वह नायिका जो रोष या क्रोध कर रही हो। मानवती नायिका। उ०—कलहंतरिता कोइ विप्रलब्धा कोइ रुखिता।—विश्राम (शब्द०)।

रुखिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा+इया (प्रत्य०)] पेड़ों से छाई हुई भूमि।

रुखुरी†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा] भूना हुआ चना आदि। चबैना।

रुखुरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुख] बहुत छोटा पौधा।

रुखौहाँ—वि० [हिं० रूखा+औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० रुखौहीं] रुखाई लिए हुए। रूखा सा। उ०—रुख रूखे मिस रोष मुख कहति रुखौहैं बैन। रूखे कैसें होत ये नेह चीकने बैन।—बिहारी (शब्द०)।

रुगटना†(पु)—क्रि० अ० [हिं० रोना] बेइमानी करना। हार के कारण खीझकर मुकर जाना। उ०—पीरी हरी मिलाय कै देत रुगटि करि दाव। गहि ठोढ़ी प्यारी कहै झूठे झूठे भाव।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६६।

रुगदैया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [रोना+दैया (=दैया दैया कर रोते हुए बेईमानी) ?] बेईमानी। अन्याय। रोगदैया। रोगदई।

रुगना†—संज्ञा पुं० [हिं० रोग] पशुओं का टपका नामक रोग।

रुगिया†—वि० [हिं० रोगी] दे० 'रोगी'।

रुगौना‡—संज्ञा पुं० [देश०] घलुआ। घाल।

रुग्—संज्ञा पुं० [सं० रुज] दे० रुज'।

यौ०—रुग्दाह (सन्निपात ज्वर)। रुग्भय=रोग का डर। रुग्भेषज=रोग की चिकित्सा।

रुग्ण—वि० [सं०] १. घायल। चोट खाया हुआ। २. दे० 'रुग्न' [को०]।

रुग्दाहसन्निपात ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर।

विशेष—यह ज्वर बीस दिनों तक रहता है। इसमें रोगी व्याकुल होता और बकता है, उसके शरीर में जलन होती है, पेट में दर्द होता है, और उसे विशेष प्यास लगती है। यह बहुत कष्टसाध्य माना जाता है।

रुग्न—वि० [सं० रुग्ण] १. जिसे कोई रोग हुआ हो। रोगग्रस्त। रोगी। बीमार। २. (रोगादि से) झुका हुआ। नमित। टेढ़ा। ३. टूटा हुआ। ४. बिगड़ा हुआ। ५. दे० 'रुग्ण'।

रुग्नता—संज्ञा स्त्री० [सं० वरुग्णता] रोगी होने का भाव। बीमारी।

रुग्मी—संज्ञा पुं० [सं०] जैन हरिवंश के अनुसार जंबू द्वीप के एक पर्वत का नाम।

रुच(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुचि] दे० 'रुचि'।

यौ०—रुचदान।

रुचक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वास्तुविद्या के अनुसार ऐसा घर जिसके चारों ओर के अलिंद (चबूतरा या परिक्रमा) में से पूर्व और पश्चिम का सर्वथा नष्ट हो गया हो और दक्षिण का समूचा ज्यों का त्यों हो। इसका उत्तर का द्वार अशुभ और शेष द्वार शुभ माने गए हैं। २. वह खंभा जो गोल न हो, बल्कि चौकोर हो। ३. सज्जीखार। ४. घोड़ों का गहना या साज। ५. माला। ६. काला नमक। ७. मांगल्य द्रव्य। ८. रोचना। ९. बायबिडंग। १०. नमक। ११. बीजपूरक। बिजौरा नीबू। १२. प्राचीन काल का सोने का निष्क नामक सिक्का। १३. दाँत। १४. कबूतर। १५ पुराणानुसार सुमेरु पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम। १६. जैन हरिवंश के अनुसार हरिवर्ष के एक पर्वत का नाम। १७. दक्षिण दिशा।

रुचक[2]—वि० स्वादिष्ट। जायकेदार। २. रुचनेवाला। रुचिकर (को०)।

रुचदान†—वि० [सं० रुचि+दान] भला लगने योग्य। जो अच्छा लग सके। रुचनेवाला।

रुचना—क्रि० अ० [सं० रुच+हिं० ना (प्रत्य०)] रुचि के अनुकूल होना। अच्छा जान पड़ना। भला लगना। प्रिय लगना। पसंद आना।

मुहा०—रुच रुच=बहुत रुचि से। अच्छी तरह मन लगाकर। उ०—खबरी के बेर सुदामा के तंदुल रुचि रुचि भोग लगाए।—भजन (शब्द०)।

रुचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। प्रकाश। २. शोभा। ३, इच्छा ख्वाहिश। ४. मैना, बुलबुल, तोते आदि पक्षियों का बोलना।

रुचि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रजापति जो रौच्य मनु के पिता थे।

रुचि[2]—संज्ञा स्त्री० १. प्रवृत्ति। तबीयत। जैसे,—जिस काम में आपकी रुचि हो, वही कीजिए। २. अनुराग। प्रेम। चाह। ३. किरण। ४. छवि। शोभा। सुंदरता। उ० त्यों पद्माकर आनन में रुचि कानन भौंहैं कमान लगी हैं।—पद्माकर (शब्द०)। ५. खाने की इच्छा। भूख। ६. स्वाद। जायका। उ०—तब तब कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई।—तुलसी (शब्द०)। ७. गोरोचन। ८. कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन जिसमें नायिका नायक के सामने उसके घुटने पर बैठकर उसे गले से लगाती है। ९. एक अप्सरा का नाम। उ०—देखी न जाति बिसेखी बधू किधौं हेम बरेखी रमा रुचि रंभौं। मन्नालाल (शब्द०)।

रुचि[3]—वि० शोभा के अनुकूल। फबता हुआ। योग्य। मुनासिब। उ०—भीनी सादी कंचुकी कुच रुचि दीसी आज। जनु बिधि सीसी सेत मैं केसरि पीसी राज।—स० सप्तक, पृ० २३५।

रुचिकर[1]—वि० [सं०] रुचि उत्पन्न करनेवाला। अच्छा लगनेवाला। दिलपसंद। जैसे,—इसके सेवन से तुम्हें भोजन रुचिकर लगेगा।

रुचि[2]—संज्ञा पुं० केशव के एक पुत्र का नाम।

रुचिकारक—वि० [सं०] १. रुचि उत्पन्न करनेवाला। रुचिकारक। २. अच्छे स्वादवाला। बढ़िया स्वादवाला। स्वादिष्ठ। ३. अच्छा लगनेवाला। मनोहर।

रुचिकारी—वि० [सं० रुचिकारिन्] १. रुचि उत्पन्न करनेवाला। रुचिकारक। २. अच्छे स्वादवाला। स्वादिष्ट। ३. अच्छा लगनेवाला। मनोहर।

रुचित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीठी वस्तु। २. इच्छा। अभिलाषा।

रुचित[2]—वि० जिसे जी चाहता हो। अभिलषित।

रुचिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुचि का भाव। रोचकता। २. अनुराग। ३. सुंदरता। खूबसूरती। ४. अतिजगती वृत्त का एक भेद।

रुचिधाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० रुचिधामन्] सूर्य।

रुचिधाम[2]—वि० १. प्रकाशपूर्ण। द्युतिमान्। २. खूबसूरत। सुंदर।

रुचिप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक दैत्य का नाम।

रुचिफल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] नासपाती।

रुचिभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० रुचिभर्तृ] १. रवि सूर्य। २. स्वामी। मालिक। भर्ता।

रुचिभर्ता वि० जिसके द्वारा आनंद की वृद्धि होती हो। सुखकर।

रुचिमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] उग्रसेन की रानी और देवकी की माता जो श्रीकृष्णचंद्र की नानी थी।

रुचिमान—वि० [सं० रुचिमत] कांतिमान। दीप्तियुक्त। प्रकाशपूर्ण। उ०—रजत तार सी शुचि रुचिमान।—पल्लव, पृ० ८६।

रुचिर[1]—वि० [सं०] १. सुंदर। अच्छा। भला। २. मीठा। ३. चमकीला (को०)। ४. भूख बड़ानेवाला (को०)। ५. प्रसन्न (को०)।

रुचिर[2]—संज्ञा पुं० १. मूलक। मूली। कुंकुम। केसर। ३. लौंग। ४. सेनजित् के एक पुत्र का नाम।

रुचिरकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रुचिरवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र का एक प्रकार का संहार। उ०—रुचिरवृत्ति मतपितृ सौमनस धनधानहु धृत माली।—रघुराज (शब्द०)।

रुचिरश्रीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रुचिरांगद—संज्ञा पुं० [सं० रुचिराङ्गद] विष्णु [को०]।

रुचिरांजन—संज्ञा पुं० [सं० रुचिराञ्जन] शोभांजन। सहिंजन।

रुचिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का छंद जिसके पहले और तीसरे पदों में १६ तथा दूसरे और चौथे पदों में १४ मात्राएँ तथा अंत में दो गुरु होते हैं। २. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, भ, स, ज, ग (ISI, SII, IS, ISI S) होते हैं। ३. एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है। ४. केसर। ५. लौंग। ६. मूलिका। मूली।

रुचिराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० रुचिर+हिं० आई (प्रत्य०)] सुंदरता। मनोहरता। खूबसूरती। उ०—कंबु चिबुकाधर सुंदर क्यौं कहौं दसनन की रुचिराई।—तुलसी (शब्द०)।

रुचिरचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

रुचिवर्द्धक—वि० [सं०] १. रुचि उत्पन्न करनेवाला। २. भूख बढ़ानेवाला।

रुचिष्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाने का मीठा पदार्थ। २. श्वेत नमक (को०)।

रुचिष्य[2]—वि० १. जिसपर रुचि हो। जिसे प्राप्त करने को जी चाहे। अभिप्रेत। २. मधुर। मीठा (को०)। ३. पौष्टिक (को०)। क्षुधावर्धक (को०)।

रुची—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रुचि'।

रुच्छ(पु)[1]—वि० [सं० रुक्ष] १. रूखा। उ०—प्रच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौ इमि तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।—रत्नाकर (शब्द०)। २. व्यवहार में कठोर। ३. नाराज। क्रुद्ध।

रुच्छ[2]—संज्ञा पुं० [सं० रुक्ष] दे० 'रूख'।

रुच्य[1]—वि० [सं०] १. रुचिकर। २. सुंदर। खूबसूरत। ३. कांतिमत्। चमकीला (को०)।

रुच्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक। २. शालि धान्य। जड़हन। ३. पति। स्वामी। ४. तुष्टिकारक वस्तु (औषधि)। ५. कतक का वृक्ष।

रुच्यकंद—संज्ञा पुं० [सं० रुच्यकन्द] सूरन। ओल।

रुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंग। भाँग। २. वेदना। कष्ट। ३. क्षत। घाव। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था। ५. रोग। व्याधि (को०)।

रुजगार†—संज्ञा पुं० [हिं० रोजगार] दे० 'रोजगार'।

रुजग्रस्त—वि० [सं० रुज् (=रोग)+ग्रस्त] जिसे कोई रोग हो। रोगग्रस्त। बीमार।

रुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोग। बीमारी। २. भंग। भाँग। ३. पीड़ा। ४. क्लांति। थकावट। थकान (को०)। ५. भेड़ी। ६. कुष्ठ। कोढ़।

रुजाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिससे कोई रोग उत्पन्न हो। बीमारी पैदा करनेवाला। २. रोग। बीमारी। ३. कमरख नामक फल।

रुजापह—वि० [सं०] रोग को दूर करनेवाला। व्याधिनाशक [को०]।

रुजार्त—वि० [सं०] व्याधि से पीड़ित। रोग से आर्त वा दुखी [को०]।

रुजाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोगों या कष्टों का समूह। उ०—हिम करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दहन रुजाली।—तुलसी (शब्द०)।

रुजासह—संज्ञा पुं० [सं०] धन्वन वृक्ष। धामिन का पेड़ [को०]।

रुजी—वि० [सं० रुज् (=रोग)+हिं० ई (प्रत्य०)] जिसे कोई रोग हो। अस्वस्थ। बीमार। उ०—बहुत रोज आए भए अहै रुजी यह देश। याते अब निज पुरी को कीन्हें गमन नरेश।—रघुराज (शब्द०)।

रुजू—वि० [अ० रुजूअ (=प्रवृत्त)] १. जिसकी तबीयत किसी

ओर झुकी या लगी हो। प्रवृत्त। उ०—(क) प्रेम नगर की रीत कछु बैनन कहत बनै न। रुजू रहत चित चोर सौ नेहिन के मन नैन।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) अमरैया कूकत फिरै कोइल सब जताइ। अमल भयौ ऋतुराज को रुजू होहु सब आइ।—सं० सप्तक, पृ० २३७। २. जो ध्यान दिए हो।

रुझना⑤†—क्रि० अ० [सं० रुद्ध, प्रा० रुज्झ] घाव आदि का भरना या पूजना। उ०—मर्मबेधी बात का नासूर किसी तरह नहीं रुझता।—श्रीनिवासदास (शब्द०)।

रुझना⑤†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' या 'उलझना'।

रुझनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है।

रुझान—संज्ञा स्त्री० [अ० रुजहान] आकर्षण। झुकाव। २. पक्षपात। एकतरफा होने का भाव।

रुट्, रुड्—संज्ञा स्त्री० [सं० रुष्] रोष [को०]।

रुठ—संज्ञा पुं० [सं० रुष्ट, प्रा० रुट्ठ] क्रोध। अमर्ष। गुस्सा। उ०—कामानुज आमर्ष रुठ क्रोध मन्यु क्रुध होय। छोभ भरी तिय को निरखि खिड़की सहचरि सोय।—नंददास (शब्द०)।

रुठना†—क्रि० अ० [हिं० रूठना] दे० 'रूठना'।

रुठाना—क्रि० स० [हिं० रूठना का प्रेर० रूप] किसी को रूठने में प्रवृत्त करना। नाराज करना। उ०—मनु न मनावन कौ करै देत रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया खिझहूं रिझवति जाय।—बिहारी (शब्द०)।

रुड़ना⑤—क्रि० अ० [सं० रणन] बजना। ध्वनित होना। उ०—रिणतूर नफेरिय भेर रुड़ै। गहरै स्वर तांम दमांम गुड़ै।—रा० रू०, पृ० ३३।

रुढ़ाना—क्रि० अ० [हिं० रूढ़+आना (प्रत्य०)] १. फल, तरकारी आदि का कड़ा पड़ जाना। २. जवान होना।

रुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी की एक शाखा जिसका उल्लेख महाभारत में है।

रुणित—वि० [सं०] शब्द करता हुआ। झनकारता हुआ। बजता हुआ। उ०—चरण रुणित नूपुर ध्वनि मानो सर बिहरत हैं बाल मराल।—सूर (शब्द०)।

रुत¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु'।

रुत²—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षियों का शब्द। कलरव। उ०—(क) सुनि घोर अर्धारन के रुत कौं। चकि कै दृग फेरि किए उतकौं।—गुमान (शब्द०)। (ख) पल्लव अधर मधु मधुपनि पीवत ही सूचित खचर पिक रुत सुख लागरा।—केशव (शब्द०)। २. शब्द। ध्वनि।

रुतबा—संज्ञा पुं० [अ० रुतबह्] १. दरजा। मर्तबा। ओहदा। पद। २. इज्जत। प्रतिष्ठा। बड़ाई। ३. बुजुर्गी। श्रेष्ठता (को०)।

क्रि० प्र०—घटाना।—पाना।—बढ़ाना।—मिलना।

रुति⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु'। उ०—अँगना बुहारत सीक जौ टूटी, रुति साँमन की।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६४३।

रुदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रुदन्तिका] दे० 'रुदंती'।

रुदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रुदन्ती] एक प्रकार का छोटा क्षुप जिसे संजीवनी या महामांसी कहते हैं। विशेष दे० 'रुद्रवंती'।

रुदंती²—वि० स्त्री० रोनेवाली। रोती हुई। विलाप करती हुई। उ०—उन रुदंती विरहिणी के रुदन रस के लेप से, और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से।—साकेत, पृ० २५०।

रुदू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रंदन ध्वनि। २. वेदना। पीड़ा। ३. बीमारी। ४. ध्वनि। शब्द। आवाज [को०]।

रुद्द⑤—संज्ञा पुं० [सं० रुद्र] दे० 'रुद्र'। उ०—जेतिक अहै काय रुद्द अंगू। तेतिक करहुँ ताल मिरदंगू।—इंद्रा०, पृ० ३४।

रुदथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। छोटा बच्चा। ३. मुर्गा (को०)।

रुदन—संज्ञा पुं० [सं० रुदन, रोदन] रोने की क्रिया। क्रंदन। रोना। विलाप करना। उ०—(क) हरि बिन को पुरवै मेरो स्वारथ। मुंडहि धुनत शीश कर मारत रुदन करत नृप पारथ।—सूर (शब्द०)। (ख) सकल सुरभी यूथ दिन प्रति रुदति पुर दिश धाई।—सूर (शब्द०)। (ग) आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहि। जाउँ समीप गहै पद फिरि फिरि चितइ पराहिं।—तुलसी (शब्द०)।

रुदराज⑤—संज्ञा पुं० [सं० रुद्राक्ष] दे० 'रुद्राक्ष'।

रुदित¹—वि० [सं०] जो रो रहा हो। रोता हुआ। उ०—(क) रुदित दक्ष की नारि गिरत ऋत्विज मुँह के बल।—बालमुकुंद गुप्त (शब्द०)। (ख) हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कवि धनु जाग की।—तुलसी (शब्द०)।

रुदित²—संज्ञा पुं० रोदन क्रिया। रोना। क्रंदन [को०]।

रुदुवा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल सालों तक रह सकता है।

रुद्ध—वि० [सं०] १. जो किसी से घेरकर रोका गया हो। घेरा हुआ। रोका हुआ। २. वेष्टित। आवृत। उ०—(क) तिमि सोहै यमुना की धारा। गंग प्रवाह रुद्ध परिचारा।—स्वामी रामकृष्ण (शब्द०)। (ख) रुद्ध सर्प से क्रुद्ध हिये मागधे विद्ध करि।—गिरधर (शब्द०)। ३. जिसमें कोई चीज अड़ या फँस गई हो। मुँदा हुआ। बंद। ४. जिसकी गति रोक ली गई हो।

यौ०—**रुद्धकंठ**=जिसका गला रुँध गया हो। जो प्रेम आदि मनोवेगों के कारण बोलने में असमर्थ हो। **रुद्धमूत्र**। **रुद्धवक्त्र**=ढके हुए मुखवाला। जिसने मुँह तोप रखा हो।

रुद्धक—संज्ञा पुं० [सं०] नमक।

रुद्धमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ्र नामक रोग।

रुद्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणदेवता।

विशेष—इनकी उत्पत्ति सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा की भौंहों से हुई थी। ये क्रोध रूप माने जाते हैं और भूत, प्रेत, पिशाच

आदि इन्हीं के उत्पन्न कहे जाते हैं। ये कुल मिलाकर ग्यारह हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—अज, एकपाद, अहिव्रध्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर। गरुड़ पुराण में इनके नाम इस प्रकार हैं—अजैकपाद, अहिव्रध्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यंबक, उपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी और रैवत। कूर्म पुराण में लिखा है कि जब आरंभ में बहुत कुछ तपस्या करने पर भी ब्रह्मा सृष्टि न उत्पन्न कर सके, तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ और उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसुओं से भूतों और प्रेतों आदि की सृष्टि हुई; और तब उनके मुख से ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। ये उत्पन्न होते ही जोर जोर से रोने लगे थे; इसलिये इनका नाम रुद्र पड़ा था। इसी प्रकार और भी अनेक पुराणों में इसी प्रकार की कथाएँ हैं। वैदिक साहित्य में अग्नि को ही रुद्र कहा गया है और यह माना गया है कि यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये रुद्र ही यज्ञ में प्रवेश करते हैं। वहाँ रुद्र को अग्निरूपी वृष्टि करनेवाला, गरजनेवाला देवता कहा गया है, जिससे वज्र का भी अभिप्राय निकलता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं 'रुद्र' शब्द से इंद्र, मित्र, वरुण, पूषण और सोम आदि अनेक देवताओं का भी बोध होता है। एक जगह रुद्र को मरुद्गण का पिता और दूसरी जगह अंबिका का भाई भी कहा गया है। इनके तीन नेत्र बतलाए गए हैं और ये सब लोकों का नियंत्रण करनेवाले तथा सर्पों का ध्वंस करनेवाले कहे गए हैं।

२. ग्यारह की संख्या। उ०—तेहि मधि कुश करि विटप सुहावा। रुद्र सहस योजन कर गावा।—विश्राम (शब्द०)। ३. शिव का एक रूप। उ०—(क) रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) केशव बरणहुँ युद्ध में योगिनि गण युत रुद्र।—केशव (शब्द०)। (ग) रुद्र के चित्त समुद्र बसैं नित ब्रह्महुँ पैं बरणी जो न जाई। केशव (शब्द०)। (घ) दशरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निशिचर बपुरा भू क्यों नरयो मूल नासै।—केशव (शब्द०)।

विशेष—कहा गया है कि इसी रूप में इन्होंने कामदेव को भस्म किया था, उमा और गंगा आदि के साथ विवाह किया था, आदि।

४. विश्वकर्मा के एक पुत्र का नाम। ५. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। ६. मदार का पेड़। आक। ७. रौद्र रस। उ०—प्रथम शृंगार सुहास्य रस करुणा रुद्र सुवीर। भय बीभत्स बखानिए अद्भुत शांत सुधीर।—केशव (शब्द०)।

रुद्र²—वि० भयंकर। डरावना। भयावना। भयानक। उ०—हम बूड़त हैं बिपदा समुद्र। इन राखि लियो संग्राम रुद्र।—केशव (शब्द०)। २. क्रंदन करनेवाला।

रुद्रक¹—संज्ञा पुं० [सं० रुद्राक्ष] रुद्राक्ष। उ०—मेखल ब्रह्म कपालनि की यह नूपुर रुद्रक माल रचे जू।—केशव (शब्द०)।

रुद्रकमल—संज्ञा पुं० [सं० रुद्र+कमल] रुद्राक्ष।

रुद्रकलस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कलश जिसका उपयोग ग्रहों आदि की शांति के समय होता है।

रुद्रकवल—संज्ञा पुं० [सं० रुद्र+कमल] रुद्राक्ष। उ०—पहुँची रुद्रकवँल कै गटा। ससि माथे औ सुरसरि जटा।—जायसी (शब्द०)।

रुद्रकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति या दुर्गा की एक मूर्ति का नाम।

रुद्रकुंड—संज्ञा पुं० [सं० रुद्रकुण्ड] व्रज के एक तीर्थ का नाम।

रुद्रकोटि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रुद्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार शिव के पारिषद् जिनकी १,००,००,००० और किसी किसी के मत से ३६,००,००,००० है।

विशेष—कहते हैं, ये सब जटा धारण किए रहते हैं; इनके मस्तक पर अर्ध चंद्र रहता है; ये बहुत बलवान होते हैं; और योगियों के योगसाधन में पड़नेवाले विघ्न दूर करते हैं।

रुद्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

रुद्रज - संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

रुद्रजटा - संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इसरौल। ईसरमूल। २. सौंफ। ३. तीन चार हाथ ऊँचा एक प्रकार का क्षुप जिसके पत्ते मयूरशिखा के पत्तों के समान होते हैं।

विशेष—इसके पत्ते पहले तो बड़े होते हैं; पर ज्यों ज्यों क्षुप बढ़ता हैं, त्यों त्यों वे छोटे होते जाते हैं। इसमें लाल रंग के बहुत सुंदर फल लगते हैं, जिनका आकार प्रायः जटा के समान हुआ करता है। इसके बीज मरसा के बीजों के समान काले और चमकीले होते हैं। वैद्यक में रुद्रजटा कटु और श्वास, कास, हृदयरोग तथा भूत प्रेत की बाधा दूर करनेवाली मानी गई है।

पर्या०—रौद्री। जटा। रुद्रा। सौम्या। सुगंधा। घना। ईश्वरी। रुद्रलता। सुपना। सुगंधपत्रा। सुरभि। शिवाह्वा। पत्रवल्ली। जटावल्ली। रुद्राणी। नेत्रपुष्करा। महाजठा। जटरुद्रा।

रुद्रट—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य के एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका बनाया हुआ 'काव्यालंकार' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। ये रुद्रभट्ट और शतानंद भी कहलाते थे। इनके पिता का नाम भट्ट वामुक था।

रुद्रतनय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन हरिवंश के अनुसार तीसरे श्रीकृष्ण का एक नाम।

रुद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्र + ता (प्रत्य०)] दे० 'रुद्रत्व'।

रुद्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] मृदंग का एक ताल जो सोलह मात्राओं का होता है। इसमें ११ आघात और ५ खाली होते हैं।

\+ ० १ २
इसका बोल इस प्रकार है—धा धिन धा दित धेत्ता देन्ना
० १ २ ३ ० १ ० १
खुनखुन धा धा केटे ताग् देन्ता कड़ान् धाम्या ता देत ताग
२ ३ ४ ० +
देत ताक कडआन् तेरे केटे ताग् खून धा।

रुद्रतेज—संज्ञा पुं० [सं० रुद्रतेजस्] स्वामि कार्त्तिक। कार्त्तिकेय। उ०—अग्नि के फेंके हुए रुद्रतेज को गंगाजी ने, लोकपालों के बड़े प्रतापों से भरे हुए गर्भ को रानी ने राजा के कुल की प्रतिष्ठा के निमित्त धारण किया।—लक्ष्मण (शब्द०)।

रुद्रत्व—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र का भाव या धर्म। रुद्रता।

रुद्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। उ०—रुद्रपति छुद्रपति लोकपति वोकपति धरनिपति गगनपति अगम बानी।—सूर (शब्द०)।

रुद्रपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. अतसी। अलसी।

रुद्रपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक पीठ या तीर्थ का नाम।

रुद्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मनु रुद्रसावर्णि का एक नाम।

रुद्रप्रमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह स्थान जहाँ से शिव जी ने त्रिपुरासुर पर बाण चलाया था।

रुद्रप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के एक तीर्थ का नाम जो गढ़वाल जिले में है।

रुद्रप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. हर्रे।

रुद्रभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नद का नाम।

रुद्रभू—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

रुद्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्योतिष में एक प्रकार की भूमि। २. श्मशान। मरघट।

रुद्रभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की एक मूर्ति का नाम।

रुद्रयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो रुद्र के उद्देश्य से किया जाता है।

रुद्रयामल—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें भैरव और भैरवी का संवाद है।

रुद्ररोदन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना।

रुद्ररोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

रुद्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा नाम का क्षुप।

रुद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या लोक जिसमें शिव और रुद्रों का निवास माना जाता है।

रुद्रवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्रवन्ती] एक प्रसिद्ध वनौषधि जिसकी गणना दिव्यौषधि वर्ग में होती है।

विशेष—यह प्रायः सारे भारत में और विशेषतः उष्ण प्रदेशों की बलुई जमीन में जलाशयों के पास और समुद्र तट पर अधिकता से होती है। इसके क्षुप प्रायः हाथ भर ऊँचे होते हैं और देखने में चने के पौधों के से जान पड़ते हैं। इसके पत्ते भी चने के समान ही होते हैं, शरद ऋतु में जिनमें से पानी की बूँदें टपका करती हैं। काले, पीले, लाल और सफेद फूलों के भेद से यह चार प्रकार की होती है। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, कड़वी, गरम, रसायन, अग्निजनक, वीर्यवर्धक और श्वास, कृमि, रक्तपित्त, कफ तथा प्रमेह को दूर करनेवाली होती है।

पर्या०—स्रवतोया। सजीवनी। अमृतस्रवा। रोमांचिका। महामांसा। चणकपत्री। सुधास्रवा। मधुस्रवा।

रुद्रवट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

रुद्रवत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रुद्रवान्'।

रुद्रवदन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव के पाँच मुख।

रुद्रवदन[2]—वि० पाँच की संख्या।

रुद्रवान्[1]—वि० [सं० रुद्रवत्] रुद्रगणों से युक्त।

रुद्रवान्[2]—संज्ञा पुं० १. सोम। २. अग्नि। ३. इंद्र।

रुद्रविंशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभव आदि साठ संवत्सरों या वर्षों में से अंतिम बीस वर्षों का समूह, जिसे 'रुद्रबीसी' भी कहते हैं।

रुद्रवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा।

रुद्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रुद्रसावर्णि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मनु का नाम।

रुद्रसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्रसुन्दरी] देवी की एक मूर्ति का नाम।

रुद्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए हों।

रुद्रस्वर्ग—संज्ञा पुं० [सं० रुद्र+स्वर्ग] दे० 'रुद्रलोक'।

रुद्रहिमालय—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की एक चोटी का नाम।

विशेष—यह चोटी चीन की ओर पूर्वी सीमा पर है और सदा बरफ से ढकी रहती है।

रुद्रहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जो प्राचीन दस उपनिषदों में नहीं है।

रुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा नामक क्षुप। २. नलिका नाम का गंधद्रव्य। विद्रुम लता। ३. अदितमंजरी। मुक्तवर्चा।

रुद्राक्रीड़—संज्ञा पुं० [सं० रुद्राक्रीड] श्मशान। मरघट।

रुद्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष जो नेपाल, बंगाल, आसाम और दक्षिण भारत में अधिकता से होता है।

विशेष—इसके पत्ते सात आठ अंगुल लंबे, दो तीन अंगुल चौड़े और किनारे पर कटावदार होते हैं। नए निकले हुए पत्तों पर एक प्रकार की मुलायम रोईं होती है, जो पीछे झड़ जाती है। जाड़े के दिनों में यह फूलता और वसंत ऋतु में फलता है। इसके फल के अंदर पाँच खाने होते हैं और प्रत्येक खाने में एक एक छोटा कड़ा बीज रहता है।

२. इस वृक्ष का बीज जो गोल और प्रायः छोटी मिर्च से लेकर आँवले तक के बराबर होता है। रुद्राछ।

विशेष—इस बीज पर छोटे छोटे दाने उभरे होते हैं। प्रायः शैव लोग इनमें छेद करके मालाएँ बनाते और गले या हाथ में पहनते हैं। इसकी माला पहनने और उससे जप करने का बहुत अधिक माहात्म्य माना जाता है। कहते हैं, इन बीजों को काली मिर्च के साथ पीसकर पीने से शीतला का भय नहीं रहता। वैद्यक में इसे शीतल, बलकारी, ओजप्रद, कृमिनाशक और खाँसी तथा प्रसूति आदि में हितकारी माना है।

पर्या०—शिवाक्ष। भूतनाशन। शिवप्रिय। पुष्पचामर।

रुद्राख[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्राक्ष] दे० 'रुद्राक्ष'। उ०—मेखल सिंगी चक्र धंधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२६।

रुद्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्र की पत्नी, पार्वती। शिवा। भवानी। २. रुद्रजटा नाम की लता जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार ओषधि के रूप मे होता है। ३. एक प्रकार की रागिनी जो कुछ लोगों के मत से मेघ राग की पुत्रवधू है; पर कुछ लोग इसे जैती, ललित, पंचम और लीलावती के मेल से बनी हुई संकर रागिनी भी मानते हैं।

रुद्रारि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रुद्रावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रुद्रावास—संज्ञा पुं० [सं०] काशी क्षेत्र, जिसमें रुद्र या शिव का निवास माना जाता है।

रुद्रिय[1] वि० [सं०] १. रुद्र संबंधी। रुद्र का। २. आनंददायक। प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला। ३. भयानक। खौफनाक।

रुद्रिय—संज्ञा पुं० आनंद। प्रसन्नता। मोद [को०]।

रुद्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा जिसे रुद्रवीणा भी कहते हैं।

रुद्री[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्र+ई (प्रत्य०)] १. वेद के रुद्रानुवाक् या अघमर्षण सूक्त की ग्यारह आवृत्तियाँ। २. यजुर्वेद के रुद्र तथा विष्णुपरक कतिपय मत्रों का आठ अध्यायों में किया गया संकलन। रुद्राष्टाध्यायी।

रुद्रैकादशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रानुवाकों (रुद्रों) की या अघमर्षण सूक्त की ग्यारह आवृत्तियाँ। रुद्री।

रुद्रोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

रुद्रोप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

रुधि ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० रुधिर] दे० 'रुधिर'। उ०—गहि संग सूर लीनी हवकि जं जै सुर आकास कहि। रुध धार छुट्टि समुह चली मनों मेर सरसत्ति बहि।—पृ० रा०, १।६५३।

रुधिर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर में का रक्त। शोणित। लहू। खून। (मुहा० के लिये दे० 'खून' के मुहा०)। २. रक्तवर्ण। लाल रग (को०)। ३. कुंकुम। केसर। ४. मंगल ग्रह। ५. एक प्रकार का रत्न। विशेष दे० 'रुधिराख्य'।

रुधिर[2]—वि० लाल। लाल रंग का। रक्तवर्ण का [को०]।

रुधिरगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का एक प्रकार का रोग।

विशेष—इससे पेट में शूल और दाह होता है और एक गोला सा घूमता है। इसमे पित्तगुल्म के सब चिह्न मिलते हैं और कभी कभी इससे गर्भ रहने का भी धोखा होता है। कहते हैं, गर्भपात होने पर अनुचित आहार बिहार करने के कारण ऋतुकाल में वायु कुपित होती है, जिससे रक्त इकट्ठा होकर गोला सा बन जाता है।

रुधिरपायी—संज्ञा पुं० [सं० रुधिरपायिन्] [वि० स्त्री० रुधिरपायिनी] १. वह जो रक्त पीता हो। लहू पीनेवाला। २. राक्षस।

रुधिरपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तपित्त। नकसीर।

रुधिरप्लीहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्लीहा रोग का एक भेद।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर का रंग बदल जाता है, अंग भारी और पेट लाल हो जाता है और भ्रम, दाह तथा मोह होता है।

रुधिरवृद्धिदाह—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें रक्त की अधिकता से सारे शरीर से धूआँ सा निकलता है और शरीर तथा आँखों का रंग ताँबे का सा हो जाता है और मुँह से लहू की गंध आती है।

रुधिरांध—संज्ञा पुं० [सं० रुधिरान्ध] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

रुधिराक्त—वि० [सं०] १. लहू से तर या भीगा हुआ। खून से भरा हुआ। २. लहू का सा लाल।

रुधिराख्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न या मणि।

विशेष—इसकी गणना कुछ लोग उपरत्नों में और कुछ लोग स्वल्प मणियों में करते हैं। इसका रंग बीच में बिलकुल सफेद और अगल बगल इंद्रनील या नीलम के समान होता है। कहते हैं, यही रत्न पककर हीरा हो जाता है। यह भी माना जाता है कि जो इसे धारण करता है, उसे बहुत सुख और ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

रुधिरानन—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मंगल ग्रह की एक वक्र गति।

विशेष—जब मंगल किसी नक्षत्र पर अस्त होकर उससे पंद्रहवें या सोलहवें नक्षत्र पर वक्री होता है, तब वह रुधिरानन कहलाता है।

रुधिरामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्तपित्त नामक एक रोग। २. बवासीर (को०)।

रुधिराशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खर राक्षस का एक सेनापति जिसे श्रीरामचंद्र जी ने मारा था। २. राक्षस।

रुधिराशन[2]—वि० रक्त ही जिसका आहार हो। रक्तपान करके जीनेवाला।

रुधिराशी—वि० [सं० रुधिराशिन्] रक्त पान करनेवाला। लहू पीनेवाला।

रुधिरासीⓟ—वि० [सं० रुधिराशिन्—रुधिराशी] लहू पीनेवाला। रुधिराशी। उ०—राक्षस संगहि सहस अठासी। भूरि भयंकर भट रुधिरासी।—रघुराज (शब्द०)।

रुधिरोद्गारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० रुधिरोद्गारिन्] बृहस्पति के साठ सवत्सरों में से सत्तावनवाँ संवत्सर।

रुधिरोद्गारी[2]—वि० रक्त का वमन करनेवाला। खून की कै करनेवाला [को०]।

रुध्रⓟ—संज्ञा पुं० [सं० रुधिर] दे० 'रुधिर'। उ०—पीया दूध रुध्र ह्वै आया। मुई गाय तब दोष लगाया।—कबीर ग्रं०, पृ० २५५।

रुनकझुनकⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] दे॰ 'रुनुकझुनुक'। उ॰—त्रिकुटी मध्य इक बाजा बाजै रुनकझुनक झनकार करै।—कबीर॰ श॰, भा॰ १, पृ॰ ५५।

रुनकनाⓅ—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] बजना। शब्दित होना। उ॰—तुलाकोट मंजीर पुनि नूपुर रुनकन पाय।—अनेकार्थ॰, पृ॰ ५०।

रुनकानाⓅ—क्रि॰ स॰ [अनु॰] बजाना। ध्वनि करना। गुंजान करना। उ॰—सेज परी नूपुर रुनकावै। कर के कल कंकन कुनकावै।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ १५६।

रुनझुन—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] नूपुर, मंजीर, किंकिणी आदि का शब्द। कलरव। झनकार। उ॰—(क) कटि किंकिणि रुनझुन सुन तन की हंस करत किलकारी।—सूर (शब्द॰)। (ख) रुचिर नूपुर किंकिनी मनु हरति रुनझुन करनि।—तुलसी (शब्द॰)। (ग) औरन के गान उन्हें कान न सुहात सुनै तेरे नूपुरन की अनूप रुनझुन है।—देव (शब्द॰)।

रुनाईⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अरुण + हिं॰ आई (प्रत्य॰)] अरुणिमा। लालिमा। ललाई।

रुनितⓅ—वि॰ [सं॰ रणित] शब्द करता हुआ। बजता हुआ। झनकार करता हुआ। उ॰—(क) चरण रुनित नूपुर कटि किंकिणि कल कूजै।—सूर (शब्द॰)। (ख) रुनित भृंग घंटावली झरत दान मद नीर। मंद मंद आवतु चल्यो कुंजर कुंज समीर।—बिहारी (शब्द॰)।

रुनित झुनितⓅ—वि॰ [अनु॰] रुनझुन करता हुआ। बजता हुआ। उ॰—नूपुर रुनित झुनित कंकन कर हार चुरी मिलि बाजै।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ४४६।

रुनी—संज्ञा पुं॰ [देश॰] घोड़े की एक जाति। उ॰—कारुनी संदली स्याह कर्नेता रूनी। नुकुरा और दुवाज वोरता है छबि दूनी।—सूदन (शब्द॰)।

रुनुक झुनुक—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] नूपुर आदि का रुनझुन शब्द। झनझनाहट। झनकार। उ॰—रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मनहरनी।—सूर॰ (शब्द॰)।

रुनुझुनु—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] नूपुर या किंकिणी आदि का शब्द। झनकार। उ॰—रुनुझुनु रुनुझुनु नूपुर झुनकें कनकन के प्रभु पायन में।—देवस्वामी (शब्द॰)।

रुनुल—संज्ञा पुं॰ [देश॰] शिकम और हिमालय में होनेवाला एक प्रकार का बेत जो झाड़ के रूप में होता है।

रुन्नी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] अमरूद। (नेपाल तराई) विशेष दे॰ 'अमरूद'।

रुपइयाⓅ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुपया] दे॰ 'रुपया'। उ॰—कोइ आवे तो दौलत माँगे भेंट रुपइया लीजै जी।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ६०३।

रुपना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ रोपना का अकर्मक] १. रोपा जाना। जमीन में गाड़ा या लगाया जाना। जमना। जैसे,—धान रुपना। २. डटना। अड़ना। उ॰—(क) जो रन में रुपि रुद्र रिझायो। दागी कौ सिर काटि चढ़ायो।—लाल (शब्द॰)। (ख) परचो जोर बिपरीत रति रुपी सुरत रनधीर। करति कोलाहल किंकिनी गह्यौ मौन मंजीर।—बिहारी (शब्द॰)।

रुपया—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रूप्यक] १. भारत में प्रचलित चाँदी का सबसे बड़ा सिक्का जो सोलह आने (चौसठ पैसे) का होता था। यह तौल में दश माशे का होता है। स्वतंत्र भारत में अब इसमें चाँदी का नाम मात्र रह गया है और इसका मूल्य १०० नए पैसे के बराबर होता है।

मुहा॰—रुपया उठाना = रुपया खर्च करना। रुपया ठीकरा करना = रुपए का अपव्यय करना।

२. धन। संपत्ति।

मुहा॰—रुपया उड़ाना = खूब धन खरचना। रुपया खा जाना = (१) कर्ज लेकर न चुकाना। ऋण हजम कर जाना। (२) गबन करना। रुपया जोड़ना = धन संचय करना। रुपया पानी में फेंकना = व्यर्थ खर्च करना। दौलत बरबाद करना।

यौ॰—रुपया पैसा = धन संपत्ति। रुपयावाला = मालदार। अमीर। धनी।

रुपवंतⓅ—वि॰ [सं॰ रूपवत् का बहु व॰] रूपवान्। रूपमंत। उ॰—(क) पुनि रुपवंत बखानों काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी (शब्द॰)। (ख) इतनि रूप भइ कन्या जेहि सुरूप नहि कोइ। धनि सुदेश रुपवंता जहाँ जनम अस होइ।—जायसी (शब्द॰)।

रुपहरा†—वि॰ [हिं॰ रुपहला] दे॰ 'रुपहला'। उ॰—सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी सी जल में कल, रुपहरे कचों में हो ओझल।—गुंजन, पृ॰ ९५।

रुपहला—वि॰ [हिं॰ रूपा (= चाँदी) + हला (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ रुपहली] चाँदी के रंग का। चाँदी का सा। जैसे,—रुपहला गोटा, रुपहला काम।

रुपहला रंग—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुपहला + रंग] भड़भाँड़ के काँटों से बचने का संकेत। (कहार)।

रुपा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुपया] १. दे॰ 'रुपया'। २. दे॰ 'रूपा'।

रुपिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] आक। मदार।

रुपैया†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुपया] दे॰ 'रुपया'।

रुपोला†—वि॰ [हिं॰ रुपहला] दे॰ 'रुपहला'।

रुप्पाⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुपया] दे॰ 'रुपया'। उ॰—माया साथ न चालई जर रुप्पा धन माल।—प्राण॰, पृ॰ २५५।

रुबाई—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] १. उर्दू या फारसी की एक प्रकार की कविता जिसमें चार मिसरे होते हैं। २. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना।

रुबाई एमन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुबाई + एमन] एक शालक राग जिसके साथ कौवाली या ठेका बजाया जाता है।

रुमंचⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोमाञ्च] दे॰ 'रोमांच'।

रुमझुमाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] बल खाना। लचकना। झुकना। झूमना। उ॰—जहर, जो गेसुओं की पर्त में सौ पेंच खाता हो।

कइर उस वक्त कोई रुमझुमाकर और ढाता हो।—ठंडा०, पृ० २३।

रुमण—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक वानर जो सौ करोड़ बानरों का यूथपति था।

रुमन्वान्—संज्ञा पुं० [सं० रुमन्वत्] १. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

रुमांचित(पु)—वि० [सं० रोमाञ्चित] दे० 'रोमांचित'।

रुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव की पत्नी का नाम। २. नमक की खान या झील (को०)।

रुमाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० रूमाल] दे० 'रूमाल'।

रुमाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रूमाल] १. एक प्रकार का लँगोट जिसमें कपड़े के एक छोटे तिकोने टुकड़े के दोनों ओर दो लंबे बंद और तीसरे कोने पर, जो नीचे की ओर होता है, एक लंबी पतली पट्टी टँकी होती है।

विशेष—इसके दोनों बंद कमर से लपेटकर बाँध लिए जाते हैं और नीचे की पट्टी से आगे की ओर इंद्रिय ढककर उसे फिर पीछे की ओर उलटकर खोंस लेते हैं। प्रायः कुश्तीबाज लोग कसरत करने या कुश्ती लड़ने के समय इसे पहनते हैं।

२. छोटा रूमाल। गमछा। ३. मुगदर हिलाने का एक हाथ या प्रकार।

विशेष—इसका हाथ सिर के ऊपर से मुगदर को ताने हुए और फिर पीठ के ऊपर के आधे ही भाग तक होता है। इसमें अधिक बल की आवश्यकता होती है।

रुमावली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रोमावली] दे० 'रोमावली'।

रुम्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का सारथी, अरुण [को०]।

रुम्र²—वि० पिंग वर्ण का। भूरे रंग का। २. चमकीला। ३. सुंदर [को०]।

रुरना(पु)—क्रि० अ० [सं० लुठन] १. लुढ़कना। पड़ना। गिरना। उ०—मधि बाजार चलि रुधिर नदि रुरत तुंड घन मुंड।—पृ० रा० ५।८९। २. हिलना डुलना। कंपित होना। उ०—सहज हसौं ही छवि फबति रँगीले मुख दसननि जोति जाल मोती माल सो रुरै। रसखान० पृ० ८६।

रुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूरा + ई (प्रत्य०)] सुंदरता। लुनाई। उ०—मैं सब लिखि सोभा जो बनाई। सजल जलद तन बसन कनक रुचि उर बहु दाम रुराई।—सूर (शब्द०)।

रुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला हिरन। कस्तूरी मृग। २. एक दैत्य का नाम जिसे दुर्गा ने मारा था। ३. पुराणानुसार एक प्रकार का बहुत ही क्रूर जंतु जिसे भारश्रृंग भी कहते हैं।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है, इस लोक में जो लोग हिंसा करते हैं, उन्हें हिंसित प्राणी, रुरु होकर, रौरव नरक में काटते हैं।

४. एक प्रसिद्ध ऋषि जो प्रमति के पुत्र और च्यवन के पौत्र थे।

विशेष—कहते हैं, जब इनकी स्त्री प्रमद्वरा का देहांत हो गया, तब इन्होंने उसे अपनी आधी आयु देकर जिलाया था।

५. विश्वेदेवा के अंतर्गत देवताओं का एक गण। ६. सावर्णि मनु के सप्तर्षियों में से एक का नाम। ७. एक भैरव का नाम। ८. एक फलदार वृक्ष का नाम। ८. श्वान। कुत्ता [को०]।

रुरुआ—संज्ञा पुं० [हिं० ररुआ, रुरुआ] बड़ी जाति का उल्लू जिसकी बोली बड़ी भयावनी होती है। उ०—ररुआ चहुँ दिसि ररत, डरत सुनि कै नर नारी।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

विशेष—प्रसिद्ध है, यह कभी कभी किसी का नाम सुनकर रटने लगता है और वह आदमी मर जाता है। इसका बोलना लोग बहुत अशुभ मानते हैं।

रुरुत्तु—वि० [सं०] चिकना का उलटा। रूखा। रुक्ष। उ०—काल जिघृत्सु रुरुत्तु क्षुधा को स्वपानन स्वच्छ स्वपक्ष त्रियाहीं।—रघुराज (शब्द०)।

रुरुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोध करने की अभिलाषा। रोकने की चेष्टा। ३. रोक। रुकावट [को०]।

रुरुभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के भैरव जिनका पूजन दुर्गा के पूजन के समय किया जाता है।

रुरुमुंड—संज्ञा पुं० [सं० रुरुमुण्ड] एक पर्वत का नाम।

रुलना—क्रि० अ० [सं० लुलन (=इधर उधर डोलना)] इधर उधर मारा मारा फिरना। आवारा फिरना। उ०—सुंदर रीझै राम जी जाकै पतिव्रत होइ। रुलत फिरै ठिक बाहरो ठौर न पावै कोइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६९१। २. खराब होना। दबा रह जाना। हिल डुलकर जहाँ का तहाँ रह जाना।

रुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोना + आई (प्रत्य०)] १. रोने की क्रिया या भाव। २. रोने की प्रवृत्ति।

क्रि० प्र०—आना। छूटना।

रुलाना¹—क्रि० स० [हिं० रोना का प्रेर० रूप] दूसरे को रोने में प्रवृत्त करना। उ०—उस कहने ने सबको रुला दिया।—सुधाकर (शब्द०)।

रुलाना²—क्रि० स० [हिं० रुलाना का सक० रूप] १. इधर उधर फिराना। २. नष्ट करना। मिट्टी खराब करना।

रुल्ल, रुल्ला†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जिसकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई हो और जिसे परती छोड़ने की आवश्यकता हो।

रुल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] रोहिणी की तरह की एक प्रकार की वनस्पति जो उससे कुछ छोटी होती है।

रुवथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्वान। कुत्ता [को०]।

रुवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० रोवाँ] सेमल के फूल के अंदर से निकला हुआ घूआ। भूआ। उ०—का सेमर के साख बढ़ाए फूल अनूपम बानी। केतिक चात्रिक लागि रहे हैं चाखत रुवा उड़ानी।—कबीर (शब्द०)।

रुवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुलाई] दे० 'रुलाई'।

रुवाब—संज्ञा पुं० [अ० रुअब] दे० 'रोब'।

रुवु, रुवुक, रुवूक—संज्ञा पुं० [सं०] एरंड वृक्ष। रेंड का पेड़ [को०]।

रुशंगु—संज्ञा पुं० [सं० रुशङ्गु] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो नृषंगु भी कहे जाते थे।

रुशद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रुशंगु'।

रुशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार रुद्र की एक पत्नी का नाम।

रुष—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रुषा' [को०]।

रुष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा। उ०—दैत्य होहु ऋषि सरुष बखाना।—गिरधर (शब्द०)।

रुष(पु)[२]—संज्ञा पुं० [हिं० रुख] दे० 'रुख'।

रुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोध। कोप। गुस्सा।

रुषान्वित वि० [सं०] क्रुद्ध। क्रोधयुक्त।

रुषित—वि० [सं०] १. क्रुद्ध। नाराज। २. रंजीदा। दुःखी।

रुषेसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऋषीश्वर] ऋषिश्रेष्ठ। ऋषीश्वर। उ०—पालकाव्य लघु वेस रहत एक तहाँ रुषेसर।—पृ० रा०, २६।६।

रुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिलावाँ। २. कस्तूरी बूटी। नेपरी।

रुष्ट—वि० [सं०] जिसे रोष हुआ हो। क्रुद्ध। अप्रसन्न। नाराज। कुपित। रुषित।

रुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुष्ट होने का भाव। नाराजगी। अप्रसन्नता।

रुष्ट पुष्ट(पु)†—वि० [सं० हृष्टपुष्ट] दे० 'हृष्टपुष्ट'।

रुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोप। क्रोध। गुस्सा।

रुसना(पु)[१]—क्रि० अ० [हिं० रूसना] दे० 'रूसना'।

रुसना(पु)[२]—क्रि० स० रुठाना। रुष्ट करना। नाराज करना। उ०—नंददास प्रभु ऐसी काहे कौं रुसए बलि जाके मुख देखे ते मिटत दुख दंदा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

रुसना†[३]—वि० [वि० स्त्री० रुसनी] रूसनेवाला। रुष्ट होनेवाला। जैसे,—रुसना स्वभाव।

रुसनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोशनाई] १. चमक। प्रकाश। आभा। उ०—कंचन खंभ नगंन घरां सब जोबन संग लिए रुसनाई।—अकबरी०, पृ० ३३१। २. कीर्ति। यश। उ०—जे जन ऐसी करी कमाई। तिनकी फैली जग रुसनाई।—कबीर सा० सं०, पृ० ६०।

रुसवा—वि० [फ़ा०] जिसकी बहुत बदनामी हो। निंदित। जलील। लांछित।

रुसवाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रुसवा होने का भाव। अपमान और दुर्गति। कुत्सा और निंदा। जिल्लत।

रुसा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिष] दे० 'रूसा'।

रुसा[२]—संज्ञा पुं० [सं० रुषक] दे० 'अड़ूसा'।

रुसित(पु)—वि० [सं० रुषित] रुष्ट। अप्रसन्न। नाराज। उ०—गरुड़ासन पैं करत रुसित हासन भरि गाँसन। ज्वलित हुतासन सरिस भरत परकासन आसन।—गोपाल (शब्द०)।

रुसुख—संज्ञा पुं० [अ० रुसूख़] १. प्रवेश। पहुँच। पैठ। रसाई। दक्षता। जानकारी। महारत। ३. प्रेम। २. व्यवहार। मेल-जोल [को०]।

रुसूम—संज्ञा पुं० [अ० रसूम] दे० 'रसूम'।

रुस्ट(पु)—वि० [सं० रुष्ट] दे० 'रुष्ट'।

रुस्तगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उगज। उगाव [को०]।

रुस्तनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. शाक। तरकारी। सब्जी। २. भूमि, बीज आदि जो उगने वा उगने के काबिल हो [को०]।

रुस्तम—संज्ञा पुं० [अ०] १. फारस का एक प्रसिद्ध प्राचीन पहलवान।

विशेष इसकी गणना संसार के बहुत बड़े बड़े पहलवानों में होती है। सोहराब और रुस्तम की लड़ाई की कहानी मशहूर है। फिरदौसी ने रुस्तम का उल्लेख अपने शाहनामा में किया है। इसका समय ईसा से लगभग नौ सौ वर्ष पहले माना जाता है।

मुहा०—रुस्तम का साला=बहुत बड़ा वीर। बहुत बहादुर। (व्यंग्य)।

२. वह जो बहुत बड़ा वीर हो।

मुहा० छिपा रुस्तम=वह जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव में किसी काम में बहुत वीर हो।

रुह्, रुह—वि० [सं०] जात। उत्पन्न।

विशेष—यह शब्द प्रायः यौगिक शब्दों में अंत में आता है। जैसे—महीरुह्, पंकरुह।

रुहक—संज्ञा पुं० [सं०] छेद। सूराख।

रुहठि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोहट (=रोना)] रूठने की क्रिया या भाव। उ०—रुहठि करै तासों को खेलै रहे पौढ़ि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ।—सूर (शब्द०)।

रुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूब। २. ककही। अतिबला। ३. मांसरोहिणी नाम की लता। ४. लजालू। लज्जावंती।

रुहिर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रुधिर, प्रा० रुहिर] लहू। रक्त। खून। उ०—रुहिर चुअइ जो जो कह बाता। भोजन बिन भोजन मुख राता।—जायसी (शब्द०)।

रुहीर(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० रुहिर] दे० 'रुहिर'। उ०—चलै धर पूर रुहीर प्रवाह।—पृ० रा०, ६१।१४७९।

रुहेलखंड—संज्ञा पुं० [हिं० रुहेल + सं० खण्ड] अवध के उत्तर-पश्चिम पड़नेवाला प्रदेश जहाँ रुहेले पठान बसे थे।

रुहेला—संज्ञा पुं० [हिं० रुहेलखंड] पठानों की एक जाति जो प्रायः रुहेलखंड में बसी हुई है।

रुँख—संज्ञा पुं० [हिं० रूख] दे० 'रूख'।

रुँखड़[१]—संज्ञा पुं० [हिं० रूखा] एक प्रकार के भिक्षुक जो दरियाई नारियल का खप्पर लेकर 'अलख' कहकर भीख माँगते हैं और कमर में एक बड़ा सा घुँघरू बाँधे रहते हैं।

विशेष—इनका एक और भेद होता है जो गूदड़ कहलाता है। ये कहीं अड़कर भिक्षा नहीं माँगते; केवल तीन बार 'अलख' कहकर ही आगे बढ़ जाते हैं।

रूँखड़[2]—संज्ञा पुं० [हिं० रूख+ड़ (प्रत्य०)] दे० 'रूख'।

रूँगटा—संज्ञा पुं० [हिं० रोंगटा] दे० 'रोंगटा'।

रूँगटाली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूँगटा+वाली (=आली)] भेंड। गाडर।

रूँगा†—संज्ञा पुं० [सं० रुक (=उदारता)] घेलुआ। घाल। रूगा।

रूँदना—क्रि० स० [हिं० रौंदना] दे० 'रौंदना'। उ०—माटी कहै कुम्हार कों तू क्या रूँदै मोंहि। इक दिन ऐसा होइगा मैं रूँदूँगी तोहि।—कविता कौ०, भा० १, पृ० ३२।

रूँथना—क्रि० स० [हिं० रौंदना] दे० 'रौंदना'। उ०—जैसे कमल बन को रूँथकर मतवाला हाथी आता हो तैसे रणधीर सिंह इस समय रणभूमि से इस तरफ चले आते है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२८।

रूँध—वि० [सं० रुद्ध] रुका हुआ। अवरुद्ध। उ०—बाढ़त तो उर भर भर तरुनई विकास। बोझनि सौतनि के हिए आवतु रूँध उसास।—बिहारी (शब्द०)।

रूँधना—क्रि० स० [सं० रुन्धन] १. किसी स्थान या वस्तु को बाहर-वालों के आक्रमण से बचाने के लिये उसके चारों ओर कँटीले झाड़ आदि लगाना। कँटीले झाड़ आदि से घेरना। बाढ़ लगाना। उ०—जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी पदार्थ को चारों ओर से इस प्रकार घेरना कि वह बाहर न जा सके। रोकना। छेकना। जैसे,—गाय रूँधना। ३. गमनागमन का मार्ग बंद करना। जैसे,—राह रूँधना, द्वार रूँधना आदि। उ०—बबुर बहेरे की बबाइ बाँग लाइयत रूँधिबे को सोऊ सुरतरु काटियतु है।—तुलसी (शब्द०)।

रूँहीⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोआँ का स्त्री० रोईं] रोम। लोम। रोआँ। उ०—वै ब्रह्मा विष्णु महेश प्रलै मैं जिसदी पुसै न रूँहीं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २७६।

रू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मुँह। चेहरा। २. द्वार। सबब। ३. आशा। उम्मेद। ४. ऊपरी भाग। सिरा। ५. आगा। सामना।

यौ०—रूपुश्त=बाहर भीतर। आगे पीछे। दोनों ओर। **रू रिआयत**=(१) पक्षपात। (२) मुरौवत। शील संकोच।

मुहा०—**रू से**=अनुसार। जैसे;—ईमान की रू से तुम्हीं बतलाओ कि क्या बात है।

रूई—संज्ञा स्त्री० [सं० रोम, प्रा० रोवँ, हिं० रोवाँ, रोईं] १. कपास के डोरे या कोश के अंदर का घूआ। उ०—हरि हरि कहत पाप पुनि जाई। पवन लागि ज्यों रूई उड़ाई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह डोडा पककर चिटकने पर ऊन के लच्छे की तरह बाहर निकलता है। इसके रेशे कोमल और घुँघराले होते हैं, जो बीज के ऊपर चारो ओर लगे होते हैं, और जिनके अंदर बीज लिपटे रहते है। मोटी और बारीक के भेद से रूई अनेक प्रकार की होती है। कितनी रूइयाँ तो रेशम की भाँति कोमल और चिकनी होती हैं। डेढ़ या डोडे से फूटकर बाहर निकलने पर रूई इकट्ठी की जाती है। इसके बाद सूख जाने पर लोग इसे ओटनी में ओटकर बीजों से अलग कर लेते हैं। ओटी हुई रूई धुनी जाती है जिससे उसमें जो बचे खुचे बीज रहते हैं, अलग हो जाते हैं और उसके रेशे फूटकर खुल जाते हैं। इस रूई से पेंउनी या पूनी बनाई जाती है, जिससे सूत काता जाता है। धुनी हुई रूई गद्दे आदि में भरी जाती है; और उससे सूत कातकर कपड़े बुनते हैं। इसका प्रयोग रासायनिक रीति से बारूद बनाने में भी होता है। रूई को शोरे के तेजाब में गलाते हैं, जिससे यह अत्यंत विस्फोटक हो जाता है। इसे 'गन काटन' कहते हैं और उत्तम बारूद में इसका प्रयोग होता है। इस 'गन काटन' को ईथर या ईथर मिले हुए अलकोहल में मिलाने से एक प्रकार का लेप बनता है। इस लेप को 'कलोडीन' कहते हैं। यह घाव पर तुरंत लगाए जाने पर झिल्ली की तरह सूखकर उसे जोड़ देता है। कलोडीन में थोड़ी सी मात्रा ब्रोमाइड और आयोडाइड को मिलाकर शीशे पर लगाकर फोटो के लिये गीला "प्लेट" बनाया जाता है। हिंदुस्तान में रूई के कपड़े का प्रचार वैदिक काल से चला आता है। ब्राह्मण और गृह्य सूत्रों में तो इसके यज्ञोपवीत और वस्त्र का विधान वर्णभेद से स्पष्ट देखा जाता है; पर युरोप में इसके कपड़े का प्रचार कुछ ही शताब्दियों से हुआ है। सूत के लिये उत्तम रूई वही समझी जाती है, जिसके रेशे लंबे और दृढ़ होने पर भी पतले और चमकीले होते हैं।

क्रि० प्र०—तूमना।—धुनना।—धुनकना।

पर्या०—तूल। पिचु।

मुहा०—**रूई का गाला**=रूई के गाले की तरह कोमल या सफेद। **रूई की तरह तूम डालना**=(१) अच्छी तरह नोचना। (२) बहुत मारना पीटना। (३) गालियाँ देना, बखानना। (४) अच्छी तरह छान बीन करना। **रूई की तरह धुनना**=खूब मारना। अच्छी तरह पीटना। **रूई सा**=रुई की भाँति नरम। कोमल। जैसे,—रूई से हाथ पाँव। **अपनी रूई सूत में उलझना या लिपटना**=अपने काम काज में फँसना।

२. इसी प्रकार का कोई रोआँ। विशेषतः बीजों के ऊपर का रोआँ।

रूईदार—वि० [हिं० रूई+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें रूई भरी गई हो। जैसे,—रूईदार अंगा, रूईदार बंडी।

रूक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्म] तलवार। (डिं०)।

रूक[2]—संज्ञा पुं० [सं० रुक (=उदार)] भूँगा। घलुआ। घाल।

रूक[3]—संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, प्रा० रुक्ख हिं० रूख] एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्तियाँ औषध के रूप में काम आती हैं और पचपानड़ी के साथ मिलकर बिकती हैं।

रूक्ष[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रूक्षा] जो चिकना या कोमल न हो। रूखा। स्निग्ध का उलटा। दे० 'रुक्ष'।

यौ०—**रूक्षगंध, रूक्षगंधक**=(१) गुग्गुल। (२) गुग्गुल का वृक्ष।

रूक्षपत्र = शाखोट या शाखोटक वृक्ष। रूक्षभाव = रूखापन। बेरुखी। रूक्षवर्ण = गहरे रंग का। जैसे बादल। रूक्षवालुक = छोटी मधुमक्खियों का मधु। रूक्षस्वर = (१) जिसकी आवाज रूखी हो। (२) गदहा। रासभ।

रूक्ष[2]—संज्ञा पुं० १. वृक्ष। पेड़। २. वरक नाम का एक तृण। ३. पारुष्य। कठोरपन। ४. अच्छे किस्म का लोहा। ५. काली मिर्च [को०]।

रूक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार शरीर की चर्बी कम करना [को०]।

रूक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रुक्षता' [को०]।

रूक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दंतीवृक्ष। २. मधु शर्करा [को०]।

रूख[1]—संज्ञा पुं० [सं० रूक्ष या वृक्ष, प्रा० रुक्ख] पेड़। वृक्ष। उ०—(क) ऊपर ताल चहूँ दिस अमृत फल सब रूख। देखि रूप सरवर कै गा पियास औ भूख।—जायसी (शब्द०)। (ख) रूख कलपतरु सागर खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) बन डोंगर ढूँढत फिरी घर मारग तजि गाउँ। बूझों द्रुम प्रति रूख ए, कोउ कहै न पिय को नाउँ।—सूर (शब्द०)।

रूख[2]—वि० [सं० रूक्ष, हिं० रूखा] दे० 'रूखा'।

रूखड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० रूख+ड़ा] पेड़। वृक्ष। उ०—कबिरा माया रूखड़ा दो फल की दातार। खावत खरचत मुकि गए संचत नरक दुवार।—कबीर (शब्द०)।

रूखना(पु)—क्रि० अ० [सं० रुष्] रूसना। रूठना।

रूखरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'रूखड़ा'।

रूखरा[2]—वि० [हिं०] दे० 'रूखा'।

रूखा[1]—वि० [सं० रुक्ष, रूक्ष, प्रा० रुक्ख] १. जो चिकना न हो। जिसमें चिकनाहट का अभाव हो। चिकना का उलटा। अस्निग्ध। जैसे,—रूखा बाल, रूखा शरीर। २. जिसमें घी, तेल आदि चिकने पदार्थ न पड़े हों। जैसे—रूखी रोटी, रूखी दाल। ३. जो चटपटा न हो। जो खाने में रुचिकर और स्वादिष्ट न हो। सीठा। उ०—(क) कैसे सहब खिनहिं खिन भूखा। कैसे खाब कुरकुटा रूखा।—जायसी (शब्द०)। (ख) साँच झूठ करि माया जोरी आपुन रूखो खातो। सूरदास कछु थिर नहिं रहिहै जो आयो सो जातो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—रूखा सूखा = जिसमें चिकना और चरपरा पदार्थ न हो। बिना घी और चटपटे पदार्थों के। जैसे,—रूखा सूखा जो मिला, वही खाकर पड़ रहा।

४. जिसमें रस न हो। सूखा। शुष्क। नीरस। ५. जिसका तल सम न हो। खुरदरा। जैसे,—यह कागज कुछ रूखा दिखाई पड़ता है।

यौ०—रूखा माल = नक्काशी किया हुआ बरतन (कसेरा)।

६. जिसमें प्रेम न हो। स्नेहरहित। नीरस। फीका। उदासीन। उ०—(क) रूखे सूखे जे रहत नेह बास नहिं लेत। उनतें वे अखियाँ भली नेह परसि जिय देत।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) सतर भौंह रूखे बचन करत कठिन मन नीठि। कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंहीं दीठि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) वे ही नैन रूखे से लगत और लोगन को वेई नैन लागत सनेह भरे नाह कै।—मतिराम (शब्द०)। ७. परुष। कठोर। उ०—(क) मुख रूखी बातैं कहै जिय में पी की भूख। धीर अधीरा जानिए जैसे मीठी ऊख।—केशव (शब्द०)। (ख) उतर न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जस बाघिन भूखी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—रूखा पड़ना या होना = (१) बेमुरौवती करना। शील संकोच का त्याग करना। (२) क्रुद्ध होना। नाराज होना। रोष प्रकट करना। तीखा पड़ना। उ०—पूँछे क्यों रूखो पड़ति सग-बग रही सनेह। मनमोहन छबि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी (शब्द०)। (ख) भोजन देहु भए वे भूखे। यह सुनिकै ह्वैगे वे रूखे।—सूर (शब्द०)।

८. उदासीन। विरक्त। उ०—(क) नाहिन राम राज के भूखे। धरम धुरीन विषय रस रूखे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) नेह लगे से ये बदन चिकने सरस दिखाइ। नेह लगाए भावतो क्यों रूखो होइ जाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

रूखा[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की छेनी।

रूखापन—संज्ञा पुं० [हिं० रूखा+पन (प्रत्य०)] १. रूखे होने का भाव। रुखाई। २. खुश्की। नीरसता। ३. कठोरता (व्यवहार की)। ४. उदासीनता। ५. स्वादहीनता।

रूगा†—संज्ञा पुं० [सं० रुक (= उदारता)] किसी सौदे का वह थोड़ा भाग जो खरीदनेवाले को बेचनेवाला अंत में अधिक दे दिया करता है। घाल। घलुआ। भूँगा।

रूचना(पु)—क्रि० स० [हिं० रुचना] दे० 'रुचना'। उ०—चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी।—तुलसी (शब्द०)।

रूज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की बुकनी जिसे मलकर सोना, चाँदी आदि धातुओं की चीजों पर जिला किया जाता है।

विशेष—यह तूतिए या हीराकसीस से बनाया जाता है। पहले तूतिए या कसीस को आग पर तपाते हैं; और जब वह जल जाता है, तब उसे बारीक पीस डालते हैं। कभी कभी तूतिए को पानी में गलाकर और निथार तथा धोकर फूँकने से भी रूज बनता है। यह जौहरियों के काम आता है। रूज में खड़िया भी मिलाई जाती है। खड़िया और पारा मिलाकर रूज से बरतन पर जिला या कलई की जाती है।

२. एक पाउडर या चूर्ण जिससे कपोलों पर लालिमा लाई जाती है। श्रृंगार का एक प्रसाधन।

रूझना(पु)—क्रि० अ० [सं० √ रुध्] दे० 'अरुझना' या 'उलझना'। उ०—निज अवगुन गुन राम रावरे, लखि सुनि मति मन रूझै।—तुलसी (शब्द०)।

रूठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रुष्टि, प्रा० रुट्ठि] १. रूठने की क्रिया या भाव । २. क्रोध । कोप ।

रूठड़ा(पु) वि० [हिं० रूठ+ड़ा (प्रत्य०)] रुष्ट । नाराज । अप्रसन्न । उ०—कबीर हरि का भाँवता, दूरैं थैं दीसंत । तन पीणाँ मन उनमनाँ जग रूठड़ाँ फिरंत ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५१ ।

रूठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूठना] रूठने की क्रिया या भाव । नाराजगी ।

रूठना—क्रि० अ० [सं० रुष्ट, प्रा० रुट्ठ+हिं० ना (प्रत्य०)] किसी से अप्रसन्न होकर कुछ समय के लिये संबंध छोड़ना । नाराज होना । रूसना । उ०—(क) कबीर ते नर अंध हैं गुरु को कहते और । हरि के रूठे ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर ।—कबीर (शब्द०) । (ख) उलटि दृष्टि माया सों रूठी । पलट न फेरि जान कै झूठी ।—जायसी (शब्द०) । (ग) जेहि कृत कपट कनक मृग झूठा । अजहुँ सो दैव मोहिं पर रूठा ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) रूठिबे को तूठिबे को मृदु मुसुकाइ कै बिलोकिबे को भेद कछू कह्यो न परतु है ।—केशव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।—बैठना ।

रूठनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रूठन' । उ०—भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि, किलकनि अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

रूड—संज्ञा पुं० [अं०] लंबाई या विस्तार नापने का एक मान जो ५ गज का होता है ।

रूड़, रूड़ो—वि० [हिं० रूरा, (डिं०)] [वि०स्त्री० रूड़ी] श्रेष्ठ । उत्तम । उ०—भाइरे तेन्हौ रूडौ थाए । जे गुरु मुख मारगि जाए ।—दादू (शब्द०) ।

रूढ़—वि० [सं० रूढ] [वि० स्त्री० रूढ़ा] १. चढ़ा हुआ । आरूढ़ । २. उत्पन्न । जात । ३. प्रसिद्ध । ख्यात । प्रचलित । जैसे—इसका रूढ़ अर्थ यही है । ५. गवाँर । उजड्ड । उ०—और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौं जू जान जाहु प्रौढ़ रूढ़ केशवदास नीके करि जाने हो ।—केशव (शब्द०) । ५. कठोर । कठिन । उ०—चाकी चली गोपाल की सब जग पीसा झारि । रूढ़ा शब्द कबीर का डारा चाक उखारि ।—कबीर (शब्द०) । ६. अकेला । अविभाज्य । जैसे,—रूढ़ संख्या । ७ फल, तरकारी आदि का कड़ा हो जाना ।

रूढ़²—संज्ञा पुं० अर्थानुसार शब्द का वह भेद जो दो शब्दों या शब्द और प्रत्यय के योग से बना हो तथा जिसके खंड सार्थ न हों । यह यौगिक का उलटा है । रूढ़ि । जैसे,—कुब्जा, घोड़ा इत्यादि ।

रूढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० रूक्षता या रूढ+ता (प्रत्य०)] कठोरता । उ० सोचने लगा, ऐसी स्थिति में क्या किया जाय ? इन्कार करने से रूढ़ता सिद्ध होगी, यह भी जानता था । इसके पहले यथेष्ट अशिष्टता हो चुकी थी ।—संन्यासी, पृ० ११ ।

रूढ़यौवना—संज्ञा स्त्री० [सं० रूढयौवना] दे० 'आरूढ़यौवना' ।

रूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० रूढा] एक प्रकार की लक्षणा । वह लक्षणा जो प्रचलित चली आती हो और जिसका व्यवहार प्रसिद्ध से भिन्न अभिप्रायव्यंजना के लिये न हो । प्रयोजनवती लक्षणा का उलटा ।

रूढ़ि संज्ञा स्त्री० [सं० रूढि] १. चढ़ाई । चढ़ाव । २. वृद्धि । बढ़ती । ३. उभार । उठान । ४. उत्पत्ति । जन्म । प्रादुर्भाव । ५. ख्याति । प्रसिद्धि । ६. प्रथा । चाल । रीति । ७. विचार । निश्चय । उ०—प्रौढ़ रूढ़ि कै सो मूढ़ गूढ़ गेह में गयो । सूक्त मंत्र सोधि सोधि होम को जहीं भयो । केशव (शब्द०) । ८. रूढ़ शब्द की शक्ति जिससे वह यौगिक न होने पर भी अपने अर्थ का बोध कराता है ।

रूढ़िवादी—वि० [सं० रूढि+वादिन्] पुराने रीति रिवाज या परंपरा आदि को ज्यों का त्यों स्वीकार करनेवाला ।

रूत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] दे० 'ऋतु' । उ०—बिना नीर जहँ कमल है बिन बरषा बरसात । बिना माम बिन रुत्त है मात पिता बिन बाल ।—राम० धर्म०, पृ० ६१ ।

रूदना(पु)—क्रि० स० [हिं० रौंदना] रौंद देना या तहस नहस करना । ध्वस्त करना । उ०—सूदन समत्थ अरि रूदन कौं पथ्थ सम कीरति अकथ्य रत्नाकर लौं भू जाकी ।—सुजान० पृ० २४ ।

रूदाद—संज्ञा स्त्री० [फा० रूएदाद] १. समाचार । वृत्तांत । हाल । २. दशा । अवस्था । हालत । ३. विवरण । कैफियत । ४. व्यवस्था । ४. अदालत की कारखाई । कार्यक्रम । ६. मुकदमे का रंग ढंग । जैसे,—इस मुकदमे की रूदाद अच्छी नहीं जान पड़ती ।

रूप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का वह गुण जिसका बोध द्रष्टा को चक्षुरिंद्रिय द्वारा होता है । पदार्थ के वर्णों और आकृति का योग जिसका ज्ञान आँखों को होता है । शकल । सूरत । आकार ।

विशेष—पदार्थों में एक शक्ति रहती है, जिससे उनका तेज इस प्रकार विकृत होता है कि जब वह आँखों पर लगता है, तब द्रष्टा को उस पदार्थ की आकृति, वर्णादि का ज्ञान होता है । इस शक्ति को भी रूप ही कहते हैं । दर्शन शास्त्रों में रूप को चक्षुरिंद्रिय का विषय माना है । वैशेषिक दर्शन में यह गुण माना गया है । सांख्य ने इसे पंचतन्मात्राओं में एक तन्मात्रा माना है । बौद्ध दर्शन में इसे पाँच स्कंधों में पहला स्कंध कहा है । महाभारत में सोलह प्रकार के गुण (ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु और दारुण) रूप के भेद या प्रकार माने गए हैं । वेदांत दर्शन ने इसका एक प्रकार की उपाधि माना है और अविद्याजनित लिखा है ।

यौ०—रूपरेखा=आकार । शकल ।

२. स्वभाव । प्रकृति । ३. सौंदर्य । सुंदरता । उ०—मुनि मन हरष रूप अति मोरे । मोहि तजि आनहि बरहि न भोरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—**रूप हरना**=लज्जित करना। उ०—दीपसम दीपति उदीपति अनूप निज रूप कै सरूप रति रूपहि हरति है।—व्यंग्यार्थ (शब्द०)।

यौ०—**रूपरेख, रूपरेखा**=(१) चिह्न। उ०—कहा करौं नीके करि हरि को रूपरेख नहिं पावति।—सूर (शब्द०)। (२) पता। निशान।

४. शरीर। देह। उ०—(क) मसक समान रूप कपि धरी। लंका चले सुमिरि नरहरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**धारण करना**।—**बनाना**।—**होना**।

मुहा०—**रूप लेना**=रूप धारण करना। देह धरना। उ०—पाछे पृथु को रूप हरि लीनों नाना रस दुहि काढ़े। तापर रचना रची विधाता बहु बिधि यत्नन बाढ़े।—सूर (शब्द०)।

५. वेष। भेष। उ०—डीठ बचाय के जाइए कंत छए निज रावरो रूप बने हैं।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) विप्र रूप धरि कपि तहँ गयउ। माथ नाइ पूँछत अस भयऊ।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना**।—**धरना**।—**बनाना**।

मुहा०—**रूप भरना**=(१) भेस बनाना। वेष धारण करना। जैसे,—वह बहुरूपिया अच्छा रूप भरता है। (२) स्वाँग रचना। मजाक या तमाशा खड़ा करना।

६. दशा। अवस्था। देश काल का भेद। ७. शब्द या वर्ण का स्वरूप या उसका वह रूपांतर जो उसमें विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि विकारों के लगने से बन जाता है।

क्रि० प्र०—**लेना**।—**बनाना**।

८. समान। तुल्य। सदृश। अनुरूप। उ०—बोलहु सुआ पियारे नाहाँ। मोरे रूप कोऊ जग माहाँ।—जायसी (शब्द०)। ९. भेद। विकार। १०. चिह्न। लक्षण। आकार। जैसे,—(क) युरोप की लड़ाई भयंकर रूप धारण करती जाती थी। (ख) उसकी बीमारी का रूप अच्छा नहीं है। उ०—उपमा ही के रूप से मिल्यौ बरणि को रूप। ताही सों सब कहत हैं केशव रूपक रूप।—केशव (शब्द०)। ११. रूपक। १२. चाँदी। रूपा। उ०—(क) कहाँ सो खोयो बिरवा लोना। जेहि ते होय रूप औ सोना।—जायसी (शब्द०)। (ख) सोन रूप भल भयो पसारा। धवल सिरी पोतहिं घरबारा।—जायसी (शब्द०)। १३. श्वेत वर्ण (को०)। १४. सिक्का। जैसे-रुपया (को०)। १५. गणित में एक की संख्या (को०)। १६. मृग। हिरन (को०)। १७. पशु। जानवर (को०)। १८. पशुओं का झुंड। पशुसमूह (को०)।

रूप[2]—वि० १ रूपवाला। रूपवान। खूबसूरत। उ०—समय समय सुंदर सबै रूप कुरूप न कोइ। मन की रुचि जेती जितै तितै तिती रुचि होइ।—बिहारी (शब्द०)। २ समान। तद्रूप। अनुरूप। उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परख भया टकसार।—कबीर (शब्द०)।

रूपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्ति। प्रतिकृति। उ०—बाहुलता रति कंठ बिराजत केशव रूप को रूपक जो है।—केशव (शब्द०)। २. वह काव्य जो पात्रों द्वारा खेला जाता है या जिसका अभिनय किया जाता है। दृश्यकाव्य।

विशेष—इसके प्रधान दस भेद हैं, जिन्हें नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन कहते हैं। इनके अतिरिक्त नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रस्थान, उल्लाप्यक, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाण को उपरूपक कहते हैं। विशेष दे० 'नाटक'।

३. एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय में उपमान के साधर्म्य का आरोप करके उसका वर्णन उपमान के रूप से या अभेदरूप किया जाता है।

विशेष—रूपक दो प्रकार का होता है—तद्रूप और अभेद। जिसमें उपमेय का वर्णन उपमान रूप से होता है उसे तद्रूप रूपक, और जिसमें दोनों की अभेदता का वर्णन होता है, उसे अभेद रूपक कहते हैं। रूपक में आकृति, स्वभाव और शील का अभेद और तद्रूपता दिखाई जाती है। तद्रूप का उ०—रच्यौ विधाता दुहुन लै सिगरी शोभा साज। तू सुंदरि शचि दूसरी यह दूजो सुरराज। अभेद का उ०—नारि कुमुदनी अवध सर रघुबर बिरह दिनेश। अस्त भए विकसित भई निरखि राम राकेश।

४. एक परिमाण का नाम। तीन गुंजा की तौल। ५. चाँदी। ६. रुपया। ७. संगीत में सात मात्राओं का एक दोताला ताल।

विशेष—इसमें दो आघात और एक खाली होता है। इसमें खाली ताल पर ही सम होता है। जब यह द्रुत में बजाया जाता है, तब इसे तेवरा कहते हैं। इसका मृदंग का बोल इस प्रकार है—

+ २ +

धा दिंता तेटेकता गदिघेने धा। और तबले का बोल इस प्रकार है—

+

धिन् धा, धिन् धा, तिन् तिन् ता। धा।

यौ०—**रूपक ताल**=दे० 'रूपक—७।' **रूपकनृत्य**=एक प्रकार का नृत्य या नाच **रूपकरूपक**=रूपक अलंकार का एक भेद। **रूपक शब्द**=लाक्षणिक या अलंकृत कथन।

रूपकरण—संज्ञा पुं० [सं० रूप+करण] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज नुकरा जरदे भले। रूपकरण बोलसर चले।—जायसी (शब्द०)।

रूपकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वकर्मा। २. मूर्तिकार। शिल्पी (को०)।

रूपकातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की अतिशयोक्ति जिसमें केवल उपमान का उल्लेख करके उपमेयों का अर्थ समझाया जाता है। उ०—कनक लता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बाण।

रूपकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रूपकर्ता'।

रूपकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के स्थपति। त्वष्टा। विश्वकर्मा। २. मूर्तिकार। शिल्पी (को०)।

रूपकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० रूपकान्ता] सत्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और अंत में एक गुरु और एक लघु मात्रा होती है। उ०—अशेष पुण्य पाप के कलाप आपने बहाइ। विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम के कहाइ। लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि। कहै सुनै पढ़ै गुनै जो रामचंद्र चंद्रिकाहि।—केशव (शब्द०)।

रूपगरबिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रूपगर्विता] दे० 'रूपगर्विता'। उ०—जाके अपने रूप को, अतिही होय गुमान। रूपगरबिता कहत हैं, तासौं परम सुजान।—मति० ग्रं०, पृ० २६३।

रूपगर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्विता नायिका का एक भेद। वह नायिका जिसे अपने रूप या सुंदरता का अभिमान हो। उ०—ये अँग दीपित पुंज भरे तिनकी उपमा छनजोन्ह सों दीजत। आरसी की छबि त्यो द्विजदेव सुगोल कपोल समान कहींजत। चतुर स्याम कहाय कहो, उर अंतर लाज कछूक तौ लीजत। रागमयी अधराधर की समता कैसे कै प्रवाल सों कीजत।—द्विजदेव (शब्द०)।

रूपग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] चक्षु। नेत्र [को०]।

रूपग्राही—संज्ञा पुं० [सं० रूपग्राहिन्] आँख। नेत्र।

रूपघनाक्षरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दंडक छंद।

विशेष- इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस वर्ण होते हैं। इसके अंत में लघु तथा आठ आठ वर्णों पर विश्राम होना आवश्यक है।

रूपघात—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार सूरत बिगाड़ना। कुरूप करने का अपराध।

रूपचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी।

विशेष—यह दीपमालिका के एक दिन पहले होती है। इसे नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। इस दिन लोग शरीर में उबटन आदि लगाते हैं।

रूपजीविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० रूपजीविन्] नट। बहुरूपिया।

रूपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आरोपण। आरोप करना। २. प्रमाण। ३. परीक्षा।

रूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रूप का भाव या धर्म। २. सौंदर्य। खूबसूरती।

रूपदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का सिक्कों का निरीक्षण करनेवाला राज कर्मचारी। २. सराफ। (को०)।

रूपधर[१]—वि० [सं०] सुंदर। खूबसूरत।

रूपधर[२]- संज्ञा पुं० किसी का रूप धारण करनेवाला। अभिनेता [को०]।

रूपधारी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० रूपधारिन्] दे० 'रूपधर' [को०]।

रूपनाशक रूपनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

रूपपति—संज्ञा पुं० [सं०] त्वष्टा। विश्वकर्मा।

रूपपरिकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी रूप का अनुकरण करना। वेश बदलना। कोई अन्य रूप धारण करना [को०]।

रूपमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० रूपमञ्जरी] १. एक प्रकार का फूल। उ०—सोनजरद बहु फूली सेवती। रूपमंजरी और मालती।—जायसी (शब्द०)। २. एक प्रकार का धान। उ०—राजहंस और हंसी भोरी। रूपमंजरी औ गुनगौरी।—जायसी (शब्द०)।

रूपमनी(पु)—वि० [हिं० रूपमान] रूपवती। उ०—तेहि गोहन सिंहल पद्मिनी। इक सो एक चाहि रूपमनी।- जायसी (शब्द०)।

रूपमय—वि० [हिं० रूप+मय] [वि० स्त्री० रूपमयी] अति सुंदर। बहुत खूबसूरत। उ०—(क) नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन रोम रोम पट उदित रूपमय।—सूर (शब्द०)। (ख) मों मन मोहन को सबही मिलिकै मुसकानि दिखाय दई। वह मोहनी मूरति रूपमयी सबही चितई तब हौं चितई। उनतों अपने अपने घर की रसखानि भली विधि राह लई। कछु मोहि को पाप पर्यो पल में पग पावत पौरि पहार भई।—रसखानि (शब्द०)।

रूपमान(पु)—वि० [सं० रूपवान्] [स्त्री० रूपमनी] सुंदर। मनोहर।

रूपमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूप+माला] एक मात्रिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १४ और १० के विश्राम से २४ मात्राएँ और एक गुरु एक लघु होता है। इसको मदन भी कहते हैं। उ०—रावरे मुख के बिलोकत ही भए दुख दूरि। सुप्रलाप नहीं रहे उर मध्य आनंद पूरि। देह पावन हो गयो पदपद्म को पय पाइ। पूजते भयो वश पूजित आशु हो मनुराइ।—केशव (शब्द०)।

रूपमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीन मगण या नौ दीर्घ वर्ण होते हैं। उ०—अंग बंगा कालिंगा काशी। गंगा सिंधू सगामा वासी।—(शब्द०)।

रूपया—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रुपया'।

रूपरूपक—संज्ञा पुं० [सं० रूप+रूपक] रूपक अलंकार का एक भेद। केशव के अनुसार रूपकालंकार के 'सावयव रूपक' भेद का एक नाम।

रूपवंत—वि० [सं० रूपवत् या रूपवान् का बहु व०] [वि० स्त्री० रूपवंती] जिसमें सौंदर्य हो। खूबसूरत। रूपवान। सुंदर। उ०—(क) तापसी कौ वेष किए राम रूपवंत किधौं मुक्ति फल दोऊ टूटे पुण्य फल डारि ते।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। (ख) साईं सुआ विचित्र अति बानी बदत विचित्र। रूपवंत गुण आगरे राम नाम सो चित्र।—गिरधर (शब्द०)।

रूपवती[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केशव के अनुसार एक छंद का नाम। इसे छंदप्रभाकर में गौरी लिखा है। उ०—कीजै न विडंबन संतत सीते। भावी न मिटै सुकहू जग गीते। तू पति देवनि की

गुरु बेटी। तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी।—केशव (शब्द०)। २. चंपकमाला वृत्ति का एक नाम। रुक्मवती।

रूपवती²—वि० स्त्री० सुंदरी। खूबसूरत। (स्त्री)।

रूपवान्—वि० [सं० **रूपवत्**] [वि० स्त्री० **रूपवती**]। सुंदर। रूपवाला। खूबसूरत।

रूपवान—वि० [सं० **रूपवत्**] दे० 'रूपवान्'।

रूपशाली—वि० [सं० **रूपशालिन्**] [वि० स्त्री० **रूपशालिनी**] रूपवान्। सुंदर। खूबसूरत।

रूपश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जिसमें ऋषभ कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रूपसंपद्, रूपसंपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० **रूपसम्पद्, रूपसम्पत्ति**] सौंदर्य। उत्तम रूप। सुंदरता।

रूपसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **रूपस्विनी**] रूपवती स्त्री। सुंदरी स्त्री। उ०—उषा उन्हें एक रूपसी की भाँति दिखाई पड़ती है जो अंबर पनघट पर तारों के घट को डुबो रही है।—हिं० का० प्र०, पृ० १५६।

रूपसी²—वि० स्त्री० सौंदर्ययुक्त। रूप से भरी हुई। रूपवाली। उ०—बोलति क्यों न सुधा सी धारा। डोलति क्यों न रूपसी डारा।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

रूपसेन—संज्ञा दे० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

रूपस्वी—वि० [सं० **रूपस्विन्**] रूपवान्। सुंदर।

रूपहरा—वि० [हिं० **रुपहला**] दे० 'रुपहला'।

रूपांकक—संज्ञा पुं० [सं० **रूपाङ्कक**] वह व्यक्ति जो किसी निर्माणाधीन वस्तु की रूपरेखा, बनावट आदि का रूप, आकार निश्चित करता हो। डिजाइनर।

रूपांतर—संज्ञा पुं० [सं० **रूप+अन्तर**] १. परिवर्तन। नए रूप में स्थापन। उ०—विश्व सभ्यता का होना था नख शिख नव रूपांतर।—ग्राम्या, पृ० ५२। २. अनुवाद। एक भाषा से दूसरी भाषा में किया गया परिवर्तित रूप।

यौ०—**रूपांतरकर्ता, रूपांतरकार** = अनुवादक।

रूपांतरण—संज्ञा पुं० [**रूपान्तरण**] दे० रूपांतर।

रूपांतरित—वि० [सं० **रूपान्तरित**] १. परिवर्तित। अन्य रूप युक्त। २. अनूदित। अनुवाद किया हुआ।

रूपा—संज्ञा पुं० [सं० **रूप्य**] १. चाँदी। उ०—(क) हरिमन मथिबे को मानों मनमथ्थ लिखे रूपे के रुचिर अंक पट्टिका कनक की।—केशव (शब्द०)। (ख) यह सुन नंद जी ने कंचन के शृंग, रूपे के खुर, ताँबे की पीठ समेत दो लाख गऊ पाटंबर उढ़ाय संकल्प की।—लल्लू (शब्द०)। २. घटिया चाँदी, जिसमें कुछ मिलावट हो। ३. वह बैल जो बिलकुल सफेद रंग का हो। इस रंग के बैल मजबूत और सहिष्णु माने जाते हैं। ४. स्वच्छ सफेद रंग का घोड़ा। नुकरा।

रूपाजीवना, रूपाजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपातीत—वि० [सं० **रूप+अतीत**] रूप से परे। जिसका कोई रूप स्थिर न किया जा सके। कल्पना से परे। उ०—त्रितिय ध्यान रूपस्थ पुनि चतुर्थ रूपातीत।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५३।

रूपात्मक—वि० [सं० **रूप+आत्मक**] आकारवाला। रूपमय। शकल सूरत का। उ०—हमें अपने मन का और अपनी सत्ता का बोध रूपात्मक ही होता है।—रस०, पृ० ३०।

रूपाधिबोध—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्य वस्तु का वह ज्ञान जो इंद्रियों द्वारा होता है।

रूपाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रूप्याध्यक्ष'।

रूपायन—संज्ञा पुं० [सं० **रूप+अयन**] बनाना। आकृति देना। रूप देना। उ०—साहित्य में इसी रूपायन का महत्व है।—इति०, पृ० २०।

रूपायित—वि० [सं० **रूप**] रूपयुक्त। रूप और आकार से युक्त। आकृतिवाला। उ०—मानव मात्र के अचेतन मानसिक जीवन को रूपायित करनेवाला प्राणी स्वीकार किया है।—हिंदी०, आ०, पृ० ५।

रूपावचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्ध मत के अनुसार एक प्रकार के देवता। २. चित्त का एक भेद जिससे रूपलोक का ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त की इस वृत्ति के कुशल, विपाक् क्रियादि भेद से अनेक प्रकार माने जाते हैं। ३. योग में ध्यान की एक भूमि का नाम, जिसके प्रथमा आदि चार भेद हैं।

रूपाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर पुरुष। खूबसूरत आदमी।

रूपास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रूपिक—संज्ञा पुं० [सं०] सिक्का। रुपया [को०]।

रूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल का आक का पेड़। श्वेत मदार। श्वेतार्क।

रूपित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उपन्यास, जिसमें ज्ञान, वैराग्यादि पात्र बनाए जाते हैं।

रूपी—वि० [सं० **रूपिन्**] [वि० स्त्री० **रूपिणी**] १. रूप। विशिष्ट रूपवाला। रूपधारी। उ०—पढ़ पढ़ फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्या रूपी सागर की थाह नहीं पाते।—लल्लू (शब्द०)। २. तुल्य। सदृश। जैसे—कमल रूपी चरण। उ०—पारस रूपी जीव हैं लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परख भया टकसार।—कबीर (शब्द०)। ३. सुंदर। खूबसूरत।

रूपेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० **रूपेन्द्रिय**] चक्षु। आँख।

रूपेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **रूपेश्वरी**] एक शिवलिंग का नाम।

रूपेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

रूपोपजीविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० **रूपोपजीवन्**] [स्त्री० **रूपोपजीविनी**] बहुरूपिया।

रूपोश—वि० [फ़ा०] [संज्ञा **रूपोशी**] १. छिपा हुआ। गुप्त। २. जो दंड आदि से बचने के लिये भाग गया हो। फरार।

रूपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मुँह छिपाने की क्रिया। गुप्ति। छिपना।

रूप्य¹—वि० [सं०] १. सुंदर। खूबसूरत। २. उपमेय।

रूप्य[२]—संज्ञा पुं० १. रुपा। चाँदी। २. सोने या चाँदी का मुहर लगा सिक्का। जैसे—रुपया, गिन्नी आदि (को०)। ३. अंजन। सुरमा (को०)। ४. परिष्कृत स्वर्ण। तपाया हुआ सोना (को०)।

यौ०—**रूप्यद** = चाँदी देनेवाला। **रूप्यधौत** = रजत। चाँदी। **रूप्यशतमान** = साढ़े तीन पल की एक तौल।

रूप्यक—संज्ञा पुं० [सं० रूप्य] रुपया।

रूप्यकूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैरण्यवत वर्ष की एक नदी का नाम।

रूप्याचल—संज्ञा पुं० [सं०] कैलाश पर्वत [को०]।

रूप्याध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] टकसाल का प्रधान अधिकारी। नैष्किक।

रूबकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सामने उपस्थित करने का भाव। पेशी। २. वह तजवीज या फैसला जो किसी काररवाई में हाकिम अदालत के सामने लिखा जाय। अदालत का हुक्म। ३. कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में किसी को अदालत आदि में उपस्थित होने के लिये लिखा हुआ आज्ञापत्र। ४. आज्ञापत्र। हुकुमनामा।

रूबकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मुकदमे की पेशी। २. मुकदमे की कारखाई।

रूबरू—क्रि० वि० [फ़ा०] संमुख। सामने। समक्ष। उ०—(क) हमारे रूबरू आने की जरूरत नहीं।—राधाकृष्ण (शब्द०)। (ख) महाराज की आज्ञा पावों तो रूबरू ले आवों।—लल्लू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—जाना।—लाना।—होना।

रूबल—संज्ञा पुं० [रूसी] रूस का चाँदी का सिक्का जो प्राय: दो शिलिंग डेढ़ पेनी के बराबर मूल्य का होता है। एक शिलिंग = प्राय: बारह आने = ७५ पैसे (नए)। एक पेनी = प्राय: तीन पैसे = पाँच नए पैसे।

रूबुक—संज्ञा पुं० [सं०] एरंड वृक्ष। रेंड का पेड़।

रूम[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] टर्की या तुर्की देश का एक नाम। उ०—चारि दिसा महिं दंड रचो है रूम साम बिच दिल्ली। ता ऊपर कुछ अजब तमाशा मारे है यम किल्ली।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—ईसा के जन्म से पहले पाँचवीं शताब्दी से रोमक जातियों की शक्ति बढ़ने लगी थी और यूनान का पतन होने पर वह एक प्रभावशाली जाति हो गई थी। इस जाति की राजधानी रोम नगर थी। यह जाति इतनी शक्तिशाली हो गई थी कि स्पेन से लेकर अरब, मिस्र आदि तक के देशों पर इसका अधिकार हो गया था। तीसरी शताब्दी के अंत में यह बृहत् साम्राज्य शासकों में विभक्त होने लगा और सन् ३३० में कैसर कानिस्तंताइन ने कुस्तुंतुनिया नगर में अपनी राजधानी बनाई। ३६५ में रोम राज्य, पूर्वीय और पश्चिमीय राज्य, जिसकी राजधानी रोम थी, धीरे धीरे निर्बल होता गया और उसे गाथ, फ्रेंच आदि जातियों ने ध्वंस कर दिया; और पूर्वीय राज्य ही सन् ४७६ से रोम राज्य कहलाने लगा। यूरोप के दक्षिणपूर्व का भाग, एशिया का पश्चिमी भाग तथा उत्तरी अफ्रीका और अनेक टापू इस साम्राज्य के अंतर्भूत थे। तब से तुर्की को, जिसका प्रधान नगर कुस्तुंतुनिया है, रूम कहने लगे, और अब तक उसे रूम ही कहते हैं।

रूम(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० रोम] दे० 'रोम'। उ०—रूम रूम में ठाकुर रम रहए कोइ बरले जन चिना।—रामानंद०, पृ० १६।

रूमना(पु)—क्रि० स० [हिं० झूमना का अनु०] झूमना। झूलना। उ०—कहि आपनो तू भेद न तु चित्त उपजत खेद। कहि बेग वानर पाप। न तु तोहिं देहौं शाप। तब वृक्ष शाखा रूमि। कपि उतरि आयो भूमि।—केशव (शब्द०)।

रूमपाट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रोमपाट] ऊनी वस्त्र। दे० 'रोमपाट'। उ०—रूमपाट पाटंबर अंबर जरी बफ्त का बाना। तेरे काज गजी गज चारिक भरा रहै तोसाखाना।—संतबाणी०, भा० २, पृ० ७।

रूमानी—वि० [अं० रोमांस] प्रणयकथा युक्त। शारीरिक प्रेमव्यापार से युक्त। मन जिससे सरस हो उठे।

रूमारी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० रोमावली] दे० 'रोमावली'। उ०—त्रै सै साठ करी हड़वारी। अनील असंख करी रूमारी।—प्राण०, पृ० २०।

रूमाल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कपड़े का वह चौकोर टुकड़ा जो हाथ, मुँह पोछने के काम में आता है। उ०—पोंछि रूमालन सों श्रम सीकर भौंर की भीर निवारत ही रहे।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

मुहा०—रूमाल पर रूमाल भिगोना = बहुत रोना। आँसुओं की धारा बहाना।

२. चौकोना शाल या चिकन का टुकड़ा जिसके चारों ओर बेल और बीच में काम बना रहता है और जो तिकोना दोहर कर ओढ़ने के काम में लाया जाता है। मुसलमानी समय में इसे कमर में भी बाँधते थे। ३. पायजामे की काट में वह चौकोर कपड़ा जो दोनों मोहरियों की संधि में लगाया जाता है। मियानी। ४. ठगों का रूमाल जिसके एक कोने में चाँदी का एक टुकड़ा बँधा रहता है।

विशेष—ठग आदि इसे आदमियों के गले में लपेटकर चाँदी के टुकड़े को उसके गले पर घाँटी के पास अँगूठे से इस प्रकार दबाते थे कि वह मर जाता था।

क्रि० प्र०—लगाना।

रूमाली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रुमाली'।

रूमी—वि० [फ़ा०] १. रूम देश संबंधी। रूम का। २. रूम देश में उत्पन्न होनेवाला। जैसे,—रूमी मस्तगी। ३. रूम देश में रहनेवाला। रूप देश का निवासी। उ०—हबशी रूमी और फिरगी। बड़ बड़ गुनी और तेहि संगी।—जायसी (शब्द०)।

रूर—वि० [सं०] १. जो गरम हो गया हो। उत्तप्त। २. जला हुआ। दग्ध।

रूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० रोरवण (= चिल्लाना)] चिल्लाना।

जोर से शब्द करना। उ०—(क) एक मुई रुर सुई सो दूजी। रहा न जाय आयु अब पूजी।—जायसी (शब्द०)। (ख) हमरे श्याम चलन कहत हैं दूरि। मधुबन बसत आस हुती सजनी अब मरिहौं जु बिसूरि। कौन कहाँ कौन सुनि आई केहि रुख रथ की धूरि। संगहि सबै चलो माधव के ना तौ मरिहौं रुरे। दक्षिण दिशि यह नगर द्वारिका सिंधु रह्यौ जल पूरे। सूरदास प्रभु बिनु क्यों जीवौं जात सजीवन मूरि।—सूर (शब्द०)।

रूरा—वि० [सं० रुढ (=प्रशस्त)] [वि० स्त्री० रूरी] १. प्रशस्त। श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा। उ० (क) जिन्हके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हार सुभग सरि नाना। भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह रूरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लटकति ललित ललाट लटूरी। दमकति दूध दँतुरिया रूरी।—सूर०, १०।११७। २. बहुत बड़ा। उ०—चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगहरे माँहि शंबर छड़ाय लई कामिनी कै काम की।—केशव (शब्द०)। ३. सुंदर। मनोहर। उ०—मेघ मंदाकिनी, चारु सौदामिनी, रूप रूरे लसैं देह धारी मनो।—केशव (शब्द०)।

रूल—संज्ञा पुं० [अं०] १. नियम। कायदा। २. लकीर खींचने का डंडा। रूलर। ३. लकीर जो लिखावट सीधी रखने के लिये कागज पर खींची जाती है।

क्रि० प्र०—खींचना।

यौ०—रूलदार = (कागज) जिसपर लकीरें खिंची हुई हों।

रूलनाⓊ—क्रि० स० [देश०] दबाना। हूलना।

रूलर—संज्ञा पुं० [अं०] १. लकीर खींचने का डंडा। शलाका। २. लकीर खींचने की पटरी। पैमाना। ३. शासक।

रूषⓊ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० रूख] दे० 'रूख'।

रूष[2]—वि० [सं०] १. निर्दय। कठोर। २. अम्ल। खट्टा [को०]।

रूषक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रूसा। अडूसा। वासक।

रूषक[2]—वि० १. सजानेवाला। २. लीपनेवाला [को०]।

रूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूषित करना। अलंकरण। २. अनुलेपन। ३. आच्छादन।

रूषाⓊ—वि० [हिं० रूखा] दे० 'रूखा'।

रूषित—वि० [सं०] १. टूटा हुआ। खंडित। भग्न। २. सज्जित। भूषित (को०)। ३. लिप्त (को०)। ४. मलिन। दूषित (को०)। ५. सुगंधित। सुवासित (को०)। ६. जड़ा हुआ। जटित (को०)।

रूस[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक देश का नाम जो यूरोप और एशिया दोनों महाद्वीपों के उत्तरी भाग में फैला हुआ है।

विशेष—इसके उत्तर में उत्तरीय हिमसागर, पूर्व में प्रशांत महासागर, दक्षिण में चीन, तुर्किस्तान, फारस, कश्यप सागर, काकेशस या काफ पहाड़, काला सागर और रूमानिया, तथा पश्चिम में हंगरी, जर्मनी, बालटिक की खाड़ी, स्वीडन और नारवे हैं। इस देश में बड़ी बड़ी नदियाँ और बड़े बड़े मैदान तथा जंगल हैं। आबादी इस देश में घनी नहीं है। यह देश ८६,६०,२८२ वर्ग मील है। इसकी राजधानी पहले लेनिनग्राड थी और अब (मास्को) है।

रूस[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रविश] चाल। (लश०)।

रूसना—क्रि० अ० [हिं० रोष] १. रोष करना। नाराज होना। रूठना। उ० (क) खोला आगे आनि मजूषा। मिल निकसी बहु दिन कर रूसा।—जायसी (शब्द०)। २. मान करना। रूठना। उ०—(क) बारहिं बार को रूसिबो बारो बहाउ जु बुद्धि वियोग बसाई।—केशव (शब्द०)। (ख) जगत जुगाफा ह्वै जियत तज्यो तजे निज भान। रूसि रहे तुम पूस में यह धौं कौन समान।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जाना।—बैठना।—रहना।

रूसाⓊ†[1]—वि० [सं० रुष् (=रोष)] [वि० स्त्री० रूसी] रूठा हुआ। रुष्ट। उ०—श्याम अचानक आए री। पाछे ते लोचन दोउ मूँदे मो को हृदय लगाए री। लहनो ताको जाके आवैं मैं बड़भागिनि पाए री। यह उपकार तुम्हारो सजनी रूसे कान्ह मिलाए री।—सूर (शब्द०)।

रूसा[2]—संज्ञा पुं० [सं० रूषक] अडूसा। अड़सा। विशेष दे० 'अड़ूसा'।

रूसा[3]—संज्ञा पुं० [सं० रोहिष] एक सुगंधित घास का नाम। भूतृण। रोहिष।

विशेष—यह घास नेपाल, शिमला, अलमोड़ा, काश्मीर, पंजाब, राजमहल, मध्यप्रदेश के पहाड़ी प्रदेशों, बंबई और मद्रास के पर्वतों में होती है। इस घास से गुलाब की सी सुगंध आती है और इसका तेल निकाला जाता है। इसकी प्रधान दो जातियाँ होती हैं। एक का फूल सफेद और दूसरी का फूल नीले रंग का होता है। जब यह घास नरम रहती है, तब इसकी पत्तियों का रंग नीलापन लिए होता है, पर पकने पर उनका रंग लाल हो जाता है। जब इसकी पत्तियाँ नरम होती हैं, तब इसे 'मोतिया' कहते हैं; और जब पककर लाल हो जाती हैं, तब उन्हें 'सोफिया' कहते हैं। सावन भादों में यह फूलने लगती है और कातिक अगहन तक फूलती है।। इसी समय इसकी पत्तियाँ तेल निकालने के योग्य हो जाती हैं। जब घास फूलने लगती है, तब काट ली जाती है और इसकी छोटी छोटी पूलियाँ बाँध ली जाती हैं। तेल निकालते समय देग में पानी भरकर ढाई तीन सौ पूलियाँ उसमें छोड़ दी जाती हैं। फिर देग पर सरपोश लगा देते हैं, जिसमें दो नलियाँ, जो तीन चार अंगुल मोटी और चार हाथ लंबी होती हैं, लगी रहती हैं। यह देग आग पर रख दिया जाता है और नलियों का सिरा तांबे के दो घड़ों के मुँह से लगा दिया जाता है, जो पानी में डूबे रहते हैं। इस प्रकार घास का आसव खींचा जाता है। जब आसव निकल आता है, तब उसे एक चौड़े मुँह के बरतन में उंडेल लेते हैं। इस बरतन में रूसे का अर्क थोड़ी देर तक रहता है और तेल छोटे चम्मच से धीरे धीरे ऊपर से काछ लिया जाता है। यह तेल गुलाब के अतर में मिलाया जाता है और इसमें ताड़पीन

या मिट्टी का तेल मिलाकर सुगंधित द्रव्य तैयार किया जाता है। मध्यप्रदेश के जंगलों से रूसा का तेल बहुत अधिक मात्रा में बाहर जाता है। यूरोप और अमेरिका में इस तेल का बहुत व्यवहार तथा व्यापार होता है।

पर्या०—रोहिष। गंधवेना। भूतृण। कत्तृण। गंधतृण।

रूसियाह[१]—वि० [फ़ा०] जिसका मुँह काला हो। कदाचारी। पापात्मा। बदचलन। गुनहगार। पापी। बदनाम। उ०—काश दस पाँच साल पहले तुम मुझे मिल जाते तो तैमूर तवारीख में इतना रूसियाह न होता।—मान०, भा० १, पृ० १६४।

रूसियाह[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सूर्य। २. आसमान [को०]।

रूसियाही संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बदचलनी। पाप। गुनाह [को०]।

रूसी[१]—वि० [हिं० रूस] १. रूस देश का रहनेवाला। रूस देश का निवासी। २. रूस देश में उत्पन्न। ३. रूस देश का।

रूसी[२]—संज्ञा स्त्री० रूस देश की भाषा।

रूसी[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर के चमड़े पर जमा हुआ भूसी के समान छिलका जो सिर न मलने से जम जाता है।

क्रि० प्र०—जमना।—निकलना।

रूस्त—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का किनारा। दामन। अंचल [को०]।

रूह—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मा। जीवात्मा। उ०—चाम चश्म के नजर न आवै देखु रूह के नैना। चून चिगून वजूद नमाजु तैं सुभा नमूना ऐना।—कबीर (शब्द०)। २. सत्त। सार। जैसे,—रूह गुलाब, रूह केवड़ा, रूह पानड़ी (यह इत्र का एक भेद होता है)।

यौ०—रूह अफजा = प्राणवर्धक।

मुहा०—रूह कब्ज हो जाना, रूह फना होना = भय से स्तब्ध हो जाना।

रूहड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० रूई] पुरानी रूई जो पहले किसी ओढ़ने या बिछाने आदि के कपड़ों में भरी रही हो।

रूहना(पु)[१]—क्रि० अ० [सं० रोहण] चढ़ना। उमड़ना। छा जाना। उ०—चहुँ दिसि दिष्टि परी गज जूहा। श्यामल घटा मेघ जस रूहा।—जायसी (शब्द०)।

रूहना[२]—क्रि० सं० [हिं० रूँधना] आवेष्टित करना। घेरना। उ०—इमि वसु षोडश बत्तिस जूहा। मधि मोहन शशि के सम रूहा।—गोपाल (शब्द०)।

रूहानियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अध्यात्मवाद। आत्मवाद।

रूहानी—वि० [अ०] आध्यात्मिक। आत्मिक।

रूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। अर्कमूल। चौरी। ईसर मूल।

विशेष—रूही का वृक्ष हिमालय पर्वत के नीचे रावी नदी के पूर्व में तथा मध्यभारत और मद्रास प्रांत में पाया जाता है। इसे चौरी और मामरी भी कहते हैं। इसकी छाल देशी ओषधियों में काम आती है और जड़ साँप काटने की ओषधि मानी जाती है। इसकी लकड़ी तौल में प्रति घनफुट २७ सेर तक होती है। यह बहुत मजबूत और चिकनी होती है। रंग देने और वार्निश करने से इसपर बहुत अच्छी चमक आती है। इससे मेज, कुरसी, आलमारी और तसवीर के चौखटे बनाए जाते हैं। यह वृक्ष बीज से बरसात में उगता है। इसको संस्कृत में 'अहिगंधा' कहते हैं। इसकी पत्तियाँ उत्तेजक और कटु होती हैं। इसकी छाल पेट को पीड़ा और अँतरिया ज्वर में दी जाती है। इसकी मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है। यह मधु के साथ कुष्ठ रोग में और काली मिर्च के साथ पीसकर विशूचिका तथा अतिसार में दी जाती है। इसे वैद्य लोग ईसरमूल, अर्कमूल और रूहीमूल कहते हैं।

रूहीमूल—संज्ञा पुं० [हिं० रूही + मूल] रूही नामक वृक्ष की छाल और जड़। ईसरमूल। अर्कमूल। अतिगंधा। विशेष दे० 'रूही'।

रेंट—संज्ञा पुं० [अं० रेन्ट] घर, मकान या जमीन का किराया।

रेंकना—क्रि० अ० [अनु० या सं० रिङ्खण] १. गदहे का बोलना। उ० तिसका शब्द सुनकर धेनुक खर रेंकता आया। लल्लू (शब्द०)। २. बुरे ढंग से गाना। उ०—पर हमारे राम भी जब रेंकते हैं; तो तीसों रागिनी हुड़दंगा नाचने लगती हैं।—प्रतापनारायण (शब्द०)।

रेंगटा—संज्ञा पुं० [अनु० रेंकना] गदहे का बच्चा।

रेंगना—क्रि० अ० [सं० रिङ्गण] १. कीड़ों और सरीसृपों का गमन। च्यूँटी आदि कीड़ों का चलना। उ०—रकत के आँसु परैं भुइँ टूटी। रेंग चली जनु बीर बहूटी।—जायसी (शब्द०) २. धीरे धीरे चलना। उ०—(क) कोउ पहुँचे कोउ रेंगत मग में कोउ घर में ते निकसे नाहिं।—सूर (शब्द०)। (ख) गऊ सिघ रेंगहि एक बाटा।—जायसी (शब्द०)।

रेंगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेंगना] भटकटैया।

रेंट—संज्ञा पुं० [देश०] श्लेष्मा मिश्रित मल जो नाक से (विशेषतः जुकाम होने पर) निकलता है। नाक का मल।

क्रि० प्र०—निकलना।—बहना।

रेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] लिसोड़े का फल।

रेंड़—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड] १. एक पौधा। एरंड। रेंडी। उ०—नाम जाको कामतरु देत फल चारि ताहि तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड गोड़िए।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह ६-७ हाथ ऊँचा होता है और इसकी पेड़ी और टहनी पोली तथा मुलायम होती है। इसके चारों ओर बड़ी बड़ी शाखाएँ नहीं निकलतीं; सिरे पर छोटी छोटी टहनियाँ होती हैं; जिनमें पत्तों की पोली डाँड़ियाँ लगी रहती हैं। इन डाड़ियों के छोर पर बालिश्त डेढ़ बालिश्त के बड़े बड़े गोल कटावदार पत्ते लगे रहते हैं। कटाव बहुत लंबे होते हैं और पत्तों तथा टहनियों के रंग में कुछ नीली झाई सी रहती है। फूल सफेद होते हैं और फल गोल गोल तथा कँटीले होते हैं। फलों के अंदर कई बड़े बड़े बीज होते हैं जिनमें से बहुत तेल निकलता है। यह तेल जलाने और औषध के काम में आता है। यह दस्तावर होता है। यद्यपि इसके बीज बहुत काम के होते

हैं, तथापि खाने योग्य फल या छाया न होने के कारण लोग इसे निकृष्ट पेड़ों में गिनते हैं।

२. एक प्रकार की ईख जिसे रेंड़ा भी कहते हैं।

रँड़खरबूजा—संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़ + खरबूजा] पपीता।

रँड़ना†—क्रि० अ० [हिं० रेंड़] १. फसल के पौधे का बढ़ना। २. पौधे (विशेषतः धान, गेहूँ, जौ आदि का) गर्भित होना। पौधे का उस अवस्था को प्राप्त होना जिसके कुछ समय बाद उसमें से बालें निकलती हैं।

रँड़मेवा—संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़ + मेवा] अंडकाकुनी। रेंड़खरबूजा। पपीता।

रँड़ा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़] १. एक प्रकार का धान जिसकी फसल कुआर कातिक में तैयार हो जाती है। २. धान, गेहूँ, जौ आदि का गर्भ।

क्रि० प्र०—लेना। आना।

रँड़ा[२]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की ईख।

रँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेंड़] अरंडी या रेंड़ के बीज जिनसे तेल निकलता है और जो रेचक होने के कारण दवा के काम में आते हैं।

रँदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खरबूजे का छोटा फल। ककड़ी या खरबूजे की बतिया।

रँन—संज्ञा स्त्री० [हिं० रैन] दे० 'रैन'। उ०—किते दिन गए रेंन सुख सोएँ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३८।

रँ रँ—अ० [अनु०] अनमने लड़कों के रोने का शब्द।

मुहा०—रेँ रेँ करना = बच्चों का धीरे धीरे और कभी कभी देर तक रोना। जैसे,—यह लड़का जब देखो, तब रेँ रेँ करता रहता है।

रँवझा‡ – संज्ञा पुं० [देश०] बबूल से मिलता जुलता एक पेड़।

रे[१]—अव्य० [सं०] १. संबोधन शब्द। उ०—क्यों मन मूढ़ छबीली के अंगनि जाय पर्‍यो रे ससा जिमि भीर में।—मन्नालाल (शब्द०)।

विशेष—इस संबोधन से आदर का भाव सूचित होता है और इसका प्रयोग उसी के प्रति होता है, जिसके प्रति 'तू' सर्वनाम का व्यवहार होता है।

२. तुच्छता वा अपमानसूचक संबोधन।

रे[२]—संज्ञा पुं० [सं० ऋषभ का आदि र] संगीत में ऋषभ स्वर। जैसे—स, रे, ग, म, प, ध, नी।

रेउँछना‡—क्रि० अ० [देश०] किसी वस्तु या व्यक्ति के आस पास चक्कर मारना।

रेउँछा—संज्ञा पुं० [हिं० रेवँछा] दे० 'रेवँछा'।

रेउड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० रेवड़ा] दे० 'रेवड़ा'।

रेउड़ी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेवड़ी] दे० 'रेवड़ी'।

रेउरा†—संज्ञा पुं० [हिं० रेवरा] दे० 'रेवरा'।

रेउरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेवड़ी] दे० 'रेवड़ी'।

रेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस्त लाना। विरेचन। २. अधम। नीच। ३. संदेह। शक। शंका। ४. मेढक। मंडूक (को०)। ५. एक प्रकार की मछली (को०)।

रेकण—संज्ञा पुं० [सं० रेकणस्] स्वर्ण। सोना (को०)।

रेकान—संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के पानी की पहुँच के बाहर हो।

रेकार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्था के कागजपत्र। २. अदालत की मिसिल। ३. कुछ विशिष्ट मसालों से बना तवे के आकार का गोल टुकड़ा जिसमें वैज्ञानिक क्रिया से किसी का गाना बजाना या कही हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफ के संदूक के बीच में निकली हुई कील पर इसे लगाकर कुंजी देने पर यह घूमने लगता है और इसमें से शब्द निकलने लगते हैं। चूड़ी। विशेष दे० 'फोनोग्राफ'।

रेक्टर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी संस्था का विशेषकर शिक्षा संस्था का प्रधान। जैसे,—यूनिवर्सिटी का रेक्टर।

रेख—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा] १. रेखा। लकीर। उ०—दुहुँ नैनन बीच में काजर रेख विराजत रूप अनूप जग्यो।—(को०)।

मुहा०—रेख खींचना या खीचना, खचाना = (१) लकीर बनाना। रेखा अंकित करना। (२) फलाफल का विचार करने के लिये चक्र आदि बनाना। (३) कहने में जोर देना। दृढ़ता प्रकट करना। निश्चय उत्पन्न करना। प्रतिज्ञा करना। कोई बात जोर देकर निश्चित रूप से कहना। उ०—(क) पूछा गुनिन्ह, रेख तिन खाँची। भरत भुवाल होहिं, यह साँची।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। भामिनि भइउ दूध के माखी।—तुलसी (शब्द०)। **रेख काढ़ना** = दे० 'रेख खींचना'—१। उ०—तृन तोरचो गुन जात जिते गुन काढ़ति रेख मही।—सूर (शब्द०)।

२. चिह्न। निशान। उ०—बिना रूप, बिनु रेख के जगत नचावै सोइ।—(शब्द०)।

यौ० — रूप रेख = आकार। स्वरूप। सूरत। उ०—ना ओहि ठावँ न ओहि बिनु ठाऊँ। रूपरेख बिन निरमल नाऊँ।—जायसी (शब्द०)।

३. गिनती। गणना। शुमार। हिसाब। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी।—मानस, १। ४. नई नई निकलती हुई मूछें। मूछों का आभास। उ०—देखैं छैल छबीले रेख उठान।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—रेख आना, भींजना या भींनना = निकलती हुई मूछों का दिखाई पड़ना।

५. हीरे के पाँच दोषों में से एक जिसमें हीरे में महीन महीन लकीरें सी पड़ी दिखाई पड़ती हैं।

रेखता—संज्ञा पुं० [फ़ा० रेख़्तह्] एक प्रकार का गाना या गजल जिसका प्रचार अरबी फारसी मिली हिंदी में पहले पहल मुसलमानों द्वारा हुआ था। इसी से उर्दू को बहुत दिनों तक लोग

रेखता ही कहते थे। उ०—दिल किस तरह न खींचे अशआर रेखते के। बेहतर किया है मैंने इस ऐब को हुनर से।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १५८। (ख) रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब। कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२२।

रेखती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रेख्ती] स्त्रियों की बोली में की हुई कविता। उ०—नाक पर हाथ रख रखकर रेखती पढ़नेवाले।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

विशेष—रेखती सम्रादतयार खाँ रंगी की ईजाद है। यह जनाना बोली है। रंगीं के बाद इंशा ने इसमें कुछ कलम चलाई और जान साहब ने तो दीवान ही बना डाला।

रेखना—क्रि० स० [सं० रेखन या लेखन] १. रेखा खींचना। रेख बनाना। लकीर खींचना। अंकित करना। चिह्न करना। उ०—(क) शोभित स्वकीय गण गुण गनती में तहाँ तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियत है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) सत्य कहौं कहा झूँठ में पावत देखो वेई जिन रेखी कथा।—केशव (शब्द०)। (ग) उरज करज रेख रेखी बहु भाँति है।—केशव (शब्द०)। २. खरोचना। खरोंच डालना। छेदना। उ०—देखति जनु रेखत तनु बान नयन कोरहीं।—केशव (शब्द०)।

रेखांकन—संज्ञा पुं० [सं० रेखा+अङ्कन] १. चित्र बनाना। उरेहना। २. रेखाओं द्वारा आकृति बनाना। ३. (साहित्य में) शब्दचित्र।

रेखांकित—वि० [सं० रेखा+अङ्कित] चिह्नित।

विशेष—लेख आदि में किसी शब्द या वाक्य के नीचे विशेष रूप से पाठक का ध्यान आकृष्ट करने के लिये रेखा खींच देते हैं। ऐसे शब्द या वाक्य 'रेखांकित' कहे जाते हैं।

रेखांश—संज्ञा पुं० [सं०] द्राघिमांश। याम्योत्तर वृत्त की एक एक डिग्री या अंश।

रेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूत के आकार का लंबा गया हुआ चिह्न। दंडाकार चिह्न। डाँड़ी। लकीर। उ०—रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खींचना।

२. किसी वस्तु का सूचक चिह्न। दृढ़ अंक।

यौ०—कर्मरेखा = भाग्य की लिपि जो प्राणियों के मस्तक पर पहले से ही अंकित मानी जाती है। भाग्य का लेख। उ०—नेम प्रेम शंकर कर देखा। अविचल हृदय भगति कै रेखा।—तुलसी (शब्द०)। ३. गणना। शुमार। गिनती। उ०—साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा।—तुलसी (शब्द०)। ४. आकृति। आकार। सूरत।

यौ०—रूपरेखा।

५. हथेली, तलवे आदि में पड़ी हुई लकीरें जिनसे सामुद्रिक में मनुष्य के शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है। जैसे,—कमल रेखा, अंकुश रेखा, उर्ध्व रेखा आदि। विशेष दे० 'सामुद्रिक'।

६. हीरे के बीच में दिखाई पड़नेवाली लकीर जो एक दोष मानी जाती है।

विशेष—रत्नपरीक्षा में रेखाएँ चार प्रकार की कहीं गई हैं—सव्य रेखा, अपसव्य रेखा, ऊर्ध्व रेखा और दीर्घाविद्धि रेखा। इसमें से सव्य रेखा को छोड़कर और सबका फल अशुभ माना गया है।

७. पंक्ति। कतार। सिलसिला (को०)। ८. छद्म (को०)। ९. थोड़ा अंश। किंचिन्मात्र अंश।

रेखागणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित का वह विभाग जिसमें रेखाओं द्वारा कुछ सिद्धांत निर्धारित किए जाते हैं। देश संबंधी सिद्धांत स्थिर करनेवाला गणित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग पहले पहल पंडितराज जगन्नाथ ने किया। उन्होंने 'इउक्लिड' के अरबी अनुवाद का महाराज जयसिंह की आज्ञा से संस्कृत में अनुवाद किया। पर वैदिक ऋषियों ने भी इस शास्त्र का आरंभ किया था। इसके प्रमाण 'शुल्व सूत्र' हैं, जिनमें यज्ञ की वेदियाँ बनाने के लिये नाना आकारों का विचार किया गया है। पीछे भास्कराचार्य की लीलावती बनी जो क्षेत्रमिति पर ही है। कुछ लोगों का कहना है कि प्राचीन आर्य क्षेत्रमिति (मेन्सुरेशन) तो जानते थे, पर रेखागणित नहीं जानते थे। पर यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि मिस्र और यूनान में भी भूमि की माप के लिये ही रेखागणित का पहले पहल व्यवहार हुआ था।

रेखाचित्र—संज्ञा पुं० [सं० रेखा+चित्र] १. वह चित्र या आकृति जिसमें मात्र रेखाओं का प्रयोग किया गया हो। २. (साहित्य में) शब्द चित्र। थोड़े शब्दों में प्रस्तुत वह वर्णन जिसमें वर्ण्य संबंधी समग्र विशेषताएँ सुस्पष्ट हों।

रेखाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेरु और लंका के मध्य कल्पित रेखा की सीध में पड़नेवाले देश। (ज्यौतिष)।

विशेष—प्राचीन ज्योतिषी अक्षांश स्थिर करने के लिये सुमेरु और लंका के मध्य से जो रेखा कल्पित करते थे, उसका सीध में पड़नेवाले देशों को रेखापुर या रेखाभूमि कहा जाता था।

रेखामात्र—क्रि० वि० [सं०] जरा सा भी। किंचिन्मात्र भा (को०)।

रेखित—वि० [सं० रेखा] १. खिंचा हुआ। अंकित। लिखित। (रेखा)। २. जिसपर रेखा या लकीर पड़ी हो। ३. मसका हुआ। फटा हुआ। उ०—रेखित रंचु की कंचुकी के बिच होत छिपाए कहा कुच कजन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०२।

रेग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बालू।

यौ०—रेगिस्तानी। रेगदान = रेत रखने का पात्र जो बही खाते की स्याही सुखाने के काम आता है। रेगमाल = एक प्रकार का बालू जमा खुरदुरा मोटा कागज जिससे लकड़ी, लोहे आदि साफ करते हैं।

रेगिस्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बालू का मैदान। मरुदेश।

रेगिस्तानी—वि० [फ़ा० रेगिस्तान] रेगिस्तानवाला। उ०—असुर और सीरिया के बीच मितन्नी लोग थे तथा पैलस्टाइन (फलस्तीन) का रेगिस्तानी पूर्वी भाग था।—प्रा० भा० प०, पृ० १३५।

रेगुलेशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वे नियम या कायदे जो राजपुरुष अपने अधीन देश के सुशासन के लिये बनाते हैं। विधि। विधान। कानून। जैसे,—बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार कितने ही युवक निर्वासित किए गए। २. वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्था के संचालन और नियंत्रण के लिये बनाए जाते हैं। नियम। कायदे।

रेग्यूलेटर—संज्ञा पुं० [अं०] किसी मशीन या कल का वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गति का नियंत्रण करता है। यंत्रनियामक।

रेघनाⓅ[१]—क्रि० अ० [सं० रिङ्गण, हिं० रेंगना] धीरे धीरे चलना या गमन करना। उ०—प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा। बिनु रेघे कोउ तहँ न पहूँचा।—चित्रा०, पृ० ४०।

रेघना[२]—क्रि० अ० [हिं० रेंकना] १. देर तक एक ही बात को फेटते रहना। २. एक ही सुर में रोना। मिमियाना। (बच्चों का)। ३. चिल्लाना। पुकारना।

रेचक[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रेचिका] १. जिसके खाने से दस्त आवे। कोष्ठशुद्धि करनेवाला। दस्तावर।

रेचक[२]—संज्ञा पुं० १. पिचकारी। २. जवाखार। ३. जमालगोटा। ४. प्राणायाम की तीसरी क्रिया, जिसमें खींचे हुए साँस को विधिपूर्वक बाहर निकालना होता है। उ०—(क) पूरक कुंभक रेचक करई। उलटि ध्यान त्रिकुटी को धरई।—विश्राम (शब्द०)। (ख) सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ। बिन गुरु निकट सँदेसन कैसे यह अवगाह्यो जाइ।—सूर (शब्द०)।

रेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस्त लाना। कोष्ठशुद्धि करना। पेट से मल निकालना। २. वह औषध जो मल निकालकर कोठा साफ करे। जुल्लाब।

विशेष—सुश्रुत ने छह प्रकार के रेचन द्रव्य कहे हैं—फल, मूल, छाल, तेल, रस और पेड़ों के दूध।

रेचनक—संज्ञा पुं० [सं०] कंपिल्लक। कमीला।

रेचनाⓅ[१]—क्रि० स० [सं० रेचन] वायु या मल को बाहर निकालना। उ०—प्रथमै सूरज भेदिनी पूरै पिंगल बात। रेचै बावें रोकि कछु हरै वायु रुज गात।—विश्राम (शब्द०)।

रेचना[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांपिल्ल वृक्ष। कमीला।

रेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमीला। दंती। ३. कालांजली। ४. वटपत्री।

रेचित[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ों की एक चाल। २. नाचने में हाथ हिलाने का एक ढंग।

रेचित[२]—वि० साफ किया हुआ। जिससे मल आदि बाहर किया गया हो [को०]।

रेच्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम में बाहर छोड़ी हुई वायु। २. भेदक। जुल्लाब।

रेजⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० रिस, रेस अथवा सं० √रेज (=चमकना; हिलना, काँपना)] लाग डाट। प्रतिस्पर्धा। उ०—महल महमही महक मग मनधर मैन मजेज। सौति सुहागहि रेज करि साजी सुंदर सेज।—स० सप्तक, पृ० ३८६।

मुहा०—रेज करना=(१) नखरा करना। इतराना। (२) अकड़ना। (३) घोड़े का एक ही स्थान पर उछलना, कूदना।

रेज[२]—संज्ञा पुं० [सं० रेज्] अग्नि।

रेजगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रुपए का फुटकर अंश। रेजगी। खरीज। छुट्टा [को०]।

रेजगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'रेजगारी'।

रेजस—संज्ञा पुं० [फ़ा० रेज़िश] घोड़ों का जुकाम।

रेजसख़्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रेजिस] दे० 'रेजस'।

रेजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रेज़ह्] १. किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। सूक्ष्म खंड। उ०—(क) रेजा रेजा करि तीखे नैनन की कोरन सों काकरेजा वारी सो करेजा काढ़ि लै गई।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) परिघ, परशु, नेजे मेघनाद के जे भेजे, तिन्हैं कै कै रेजे रोजे महावीर भायो है।—रघुराज (शब्द०)। २. मजदूर लड़का जो बड़े राजगीरों के साथ काम करता है। ३. अँगिया। सीनाबंद। (बुंदेलखंडी)। ४. सुनारों का एक औजार जिसमें गला हुआ सोना या चाँदी डालकर पाँसे के आकार का बना लेते हैं। यह लोहे की बनी नाली के आकार का होता है। इसे 'परघनी' भी कहते हैं। ५. नग। थान। अदद। ६. महीन कपड़ा। महीन काम किया हुआ रेशमी वस्त्र आदि। उ०—ज्यों कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर।—कबीर सा०, पृ० ७७।

रेजिस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रेज़िश] जुकाम।

रेजीडेंट—संज्ञा पुं० [अं० रेज़िडेंट] वह अंग्रेजी राजकर्मचारी जो किसी देशी राज्य में प्रतिनिधि के रूप में रहता है।

रेजीमेंट—संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना का एक भाग। रिजमिट।

रेजू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का रेशा जो ब्रश (कपड़ा, आदि साफ करने की कूँची) बनाने के लिये कलकत्ते में विलायत से आता है।

रेज्योल्यूशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह नियमित बाकायदा प्रस्ताव जो किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्था के अधिवेशन में विचार और स्वीकृति के लिये उपस्थित किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे,—वे परिषद् के आगामी अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेज्योल्यूशन उपस्थित करनेवाले हैं। २. किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ है। निर्णय। मंतव्य। जैसे,—इस संबंध में कांग्रेस और मुसलिम लीग के रेज्योल्यूशनों में विरोध नहीं है। (ख) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेज्योल्यूशन निकला है उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि गत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. भाव। निर्ख। २. चाल। गति।

रेट पेयर्स—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी म्युनिसीपैलिटी को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे,—रेट पेयर्स ऐसोसिएशन।

रेडियम—संज्ञा पुं० [अं०] एक मूलद्रव्य धातु जिसका पता वैज्ञानिकों को हाल में ही लगा है।

विशेष—यह धातु अत्यंत विलक्षण और अतीव बहुमूल्य है। इसे शक्ति का संचित रूप ही समझना चाहिए। यह उज्वल प्रकाशमय होती है। इसके मिलने से परमाणु संबंधी सिद्धांत में बहुत परिवर्तन हुआ है। पहले वैज्ञानिक परमाणु को अयौगिक मूलद्रव्य मानते थे। पर अब यह पता लगा है कि परमाणु भी अत्यंत सूक्ष्म विद्युत्कणों की समष्टि हैं। यह 'कैन्सर' जैसे दुःसाध्य रोग तथा धातु रोग की चिकित्सा के काम में भी आती है।

रेडियो—संज्ञा पुं० [अं०] ध्वनियों को सुनने और भेजने का बेतार का एक यंत्र।

रेणु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल। २. बालू। ३. पृथ्वी। (डिं०)। ४. संभालू के बीज। ५. विडंग। ६. अत्यंत लघु परिमाण। कणिका। ७. फूल की धूल। पराग (को०)।

रेणुक—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रचालन में प्रयुक्त एक मंत्र [को०]।

रेणुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालू। रेत। २. रज। धूल। ३. पृथ्वी। (डिं०)। ४. संभालू के बीज। ५. सह्याद्रि पर्वत का एक तीर्थ। ६ परशुराम की माता का नाम।

विशेष—रेणुका विदर्भराज की कन्या और जमदग्नि की पत्नी थीं। एक बार ये गंगास्नान करने गईं। वहा राजा चित्ररथ को स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते हुए देख रेणुका के मन में कुछ विकार पैदा हुआ। पर वह तुरंत घर लौट आईं। जमदग्नि को उनके मनोविकार का पता लग गया, इससे वे बहुत क्रुद्ध हुए और अपने पुत्रों से उनका बध करने को कहा। और कोई पुत्र तो मातृहत्या करने को राजी न हुआ; परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का वध किया। जमदग्नि ने परशुराम पर अत्यत प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। परशुराम ने पहला वर यही माँगा कि माता फिर से जीवित हो जायँ।

रेणुकासुत - संज्ञा पुं० [सं०] रेणुका के तनय, परशुराम [को०]।

रेणुरूषित—संज्ञा पुं० [सं०] गदहा।

रेणुवास—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।

रेणुसार, रेणुसारक—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

रेतःकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नरक का नाम।

रेतःमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] रेतोमार्ग। वह प्रणाली जिससे होकर वीर्य बाहर निकलता हो।

रेतःसेक—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग [को०]।

रेत¹—संज्ञा पुं० [सं० रेतस्] १. वीर्य। शुक्र। २. पारा। पारद। ३. जल। ४. प्रवाह। बहाव। धारा (को०)। ५. पाप (को०)।

रेत²—संज्ञा स्त्री० [सं० रेतजा] १. बालू। २. बलुआ मैदान। मरुभूमि। उ०—जै जै जानकीस जै जै लषन कपीस कहि कूदैं कपि कौतुकी नचत रेत रेत हैं।—तुलसी (शब्द०)।

रेत³—संज्ञा पुं० [हिं० रेतना] लोहार का वह औजार जिससे वह लोहे को रेतता है। रेती।

रेतकुंड—संज्ञा पुं० [सं० रेतकुण्ड] १. रेतःकुल्या नाम का नरक। २. कुमाऊँ में हिमालय पहाड़ पर एक तीर्थस्थान।

रेतज—संज्ञा पुं० [सं०] संतान। औलाद [को०]।

रेतजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू [को०]।

रेतन—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र। वीर्य।

रेतना—क्रि० स० [हिं० रेत] १. रेती के द्वारा किसी वस्तु को रगड़कर उसमें से छोटे छोटे कण गिराना जिससे वह चिकनी या आकार में कम हो जाय।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

२. किसी वस्तु को काटने के लिये औजार की धार रगड़ना। जैसे,—आरी से रेतना। ३. औजार से रगड़कर काटना। धीरे धीरे काटना। जैसे,—गला रेतना। उ०—(क) भूला सो भूला बहुरि कै चेतु। शब्द छुरी संशय को रेतु।—कबीर (शब्द०)। (ख) लियो छुड़ाइ चले कर मींजत पीसत दाँत गए रिस रेते।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जाको नाम रेत सो रेतत रेतन के बन को।—देवस्वामी (शब्द०)।

रेतल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जिसका रंग भूरा और लंबाई छह इंच होती है।

विशेष—यह युक्तप्रांत (वर्तमान उत्तरप्रदेश) और नेपाल में नदियों के किनारे रहता है। यह किसी झाड़ी या पत्थर के नीचे घास से प्याले के आकार का घोंसला बनाता है और भूरे रंग के २, ३ अंडे देता है।

रेतला—वि० [हिं० रेतीला] दे० 'रेतीला'।

रेतवा—संज्ञा पुं० [हिं० रेतना] १. वह वस्तु जिससे कोई चीज रेती जाय। २. रेतनेवाला व्यक्ति। वह जो किसी वस्तु को रेतता हो।

रेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वीर्य। शुक्र। २. पारा। ३. जल। ४. दे० 'रेतस्'।

रेता—संज्ञा पुं० [हिं० रेत] १. बालू। २. मिट्टी। धूल। ३. बालू का मैदान।

रेतिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेत + इया (प्रत्य०)] दे० 'रेता', 'रेती'।

रेतिया²—संज्ञा पुं० [हिं० रेतना] रेतनेवाला। रेतवा।

रेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेतना] रेतने का औजार।

विशेष—यह लोहे का एक मोटा फल होता है जिसपर खुरदरे दाने से उभरे रहते हैं और जिसे किसी वस्तु पर रगड़ने से उसके महीन कण छूटकर गिरते हैं। इससे सतह चिकनी और बराबर करते हैं।

रेती²—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेत + ई (प्रत्य०)] १. नदी या समुद्र के किनारे पड़ी हुई बलुई जमीन। बालू का मैदान जो नदी या समुद्र के किनारे हो। बलुवा किनारा। उ०—खेलत रही सहेली सेंती। पाट जाइ लागा तेहि रेती।—जायसी (शब्द०)। २. नदी की धारा के बीचोबीच टापू की तरह की बलुई जमीन जो पानी घटने पर निकल आती है। नदी का द्वीप। जैसे—गंगा

जी में इस साल रेती पड़ जाने से दो धाराएँ हो गई हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

रेतीला—वि० [हिं० रेत + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० रेतीली] बालूवाला। बालुकामय। बलुआ। जैसे,—रेतीला किनारा या मैदान।

रेत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

रेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. रेतस्। शुक्र। २. पीयूष। अमृत। ३. सुगंधित बुकनी। पटवास। ४. पारद। पारा (को०)।

रेना†—क्रि० स० [देश०] किसी वस्तु में डालकर या टिकाकर लटकाना।

रेनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० रञ्जनी] वह वस्तु जिससे रंग निकलता हो।

रेनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेना (=लटकाना)] वह अलगनी जिसपर रँगरेज लोग कपड़ा रँगकर सूखने को डालते हैं।

रेनु ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० रेणु] दे० 'रेणु'।

रेनुका ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० रेणुका] दे० 'रेणुका'।

रेप—वि० [सं०] १. निंदित। २. क्रूर। ३. कृपण।

रेप²—संज्ञा पुं० [सं० रेपस्] कलंक। धब्बा। दोष। खराबी। उ०—मेरी यही अर्ज है हुजूर कि मेरी पेंशन पर रेप न आए।—काया०, पृ० १९६।

मुहा०—रेप लगाना = कलंक लगाना।

२. अपराध। पाप (को०)।

रेफ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. रकार का वह रूप जो अन्य अक्षर के पहले जाने पर उसके मस्तक पर रहता है। जैसे, सर्प, दर्प, हर्ष, आदि में। २. रकार र अक्षर। ३. राग। ४. शब्द।

रेफ²—संज्ञा पुं० [सं० रेफस्] कलंक। दोष। ऐब। रेप।

मुहा०—रेफ लगाना = दे० 'रेप लगाना'।

रेफ³—वि० [सं०] कुत्सित। अधम।

रेफरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह जिससे कोई झगड़ा निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे,—इस बार फुटबाल मैच में कप्तान स्वीडन रेफरी थे।

रेभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वैदिक ऋषि जिन्हें असुरों ने एक कुँए में डाल दिया था। दस रातें और नौ दिन बीतने पर अश्विनीकुमारों ने इन्हें निकाला था। (ऋग्वेद)। २. कश्यपवंशीय एक दूसरे ऋषि।

रेफ्यूज—संज्ञा पुं० [अं० रेफ़्यूज] वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयों को अस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे,—इंडियन रेफ्यूज।

रेफ्यूजी—संज्ञा पुं० [अं०] जिसका सब कुछ छीन लिया गया हो। घर द्वार, संपत्ति आदि लूटकर जिन्हें भगा दिया गया हो। अनाथ व्यक्ति। निराश्रित वा शरणार्थी।

रेरिहान—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. असुर। ३. चोर।

रेरुआ, रेरुवा—संज्ञा पुं० [अनु०] बड़ा उल्लू पक्षी। रुरुआ। घुग्घू।

रेल—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. सड़क की वह लोहे की पटरी जिसपर रेलगाड़ी के पहिए चलते हैं। २. भाप के जोर से चलनेवाली गाड़ी। रेलगाड़ी।

विशेष—भाप के इंजन से चलनेवाली गाड़ी का आविष्कार पहले पहल सन् १८०२ ई० में इंगलैंड में हुआ। तब से इसका प्रचार बहुत बढ़ता गया, यहाँ तक कि अब पृथ्वी पर बहुत कम ऐसे सभ्य देश हैं जिनमें रेलगाड़ी न हो।

यौ०—रेल इंजिन = रेलगाड़ी चलाने का यंत्र या मशीन। रेलगाड़ी = दे० 'रेल'। रेलमंत्री = रेल महकमा का सर्वोच्च मंत्री। रेलवे।

रेल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना] १. बहाव। धारा। उ०—भूषण भनत जाके एक एक शिखर ते केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।—भूषण (शब्द०)। २. आधिक्य। भरमार। उ०—सघन कुंज में अमित केलि लखि तनु सुगंध की रेल।—सूर (शब्द०)।

यौ०—रेल ठेल। रेल पेल।

रेल ठल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रेलपेल'। उ०—कहै पदमाकर हमेसा दिव्य बीथिन मो बानन की रेलठेल ठेलन ठिलति है।—पदमाकर (शब्द०)।

रेलना¹—क्रि० स० [देश०] १. आगे की ओर झोंकना। ढकेलना। धक्का देना। उ०—(क) एक द्विज छुधित घुस्यो तँह पेली। दियो सिपाही ता कहँ रेली।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

२. अधिक भोजन करना। ठूस ठूसकर खाना। उ०—फूले बर वसंत बन बन से कहुँ मालती नवेली। तापै मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

रेलना²—क्रि० अ० ठसाठस भरा होना। अधिक होना। उ०—फूली माधवी मालती रेलि। फूले ही मधुप करत है केलि।—सूर (शब्द०)।

रेल पेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना + पेलना] १. भीड़ जिसमें लोग एक दूसरे को धक्का देते हैं। २. भरमार। अधिकता। ज्यादती।

रेलवे—संज्ञा स्त्री० [अं० रेल (= लाइन की पटरी) + वे (रास्ता)] १. रेलगाड़ी की सड़क। २. रेल का महकमा। जैसे,—वह रेलवे में काम करता है।

रेला—संज्ञा पुं० [देश०] १. तबले पर महीन और सुंदर बोलों को बजाने की रीति। २. जल का प्रवाह। बहाव। तोड़। ३. समूह में चढ़ाई। धावा। दौड़। ४. धक्कमधक्का। ५. अधिकता। बहुतायत। ६. पंक्ति। समूह।

रेलिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] बरामदे आदि पर रोक के लिये लगाया जानेवाला एक प्रकार का घेरा जो लोहा, काठ मिट्टी वा ईंट पत्थरों से बनाया जाता है।

रेवँछा—संज्ञा पुं० [देश०] एक द्विदल अन्न जिसकी दाल खाई जाती है।

विशेष—इसकी फलियाँ गोल, पतली और लगभग एक बालिश्त लंबी होती हैं। इसके दाने लंबोतरे, गोल, उर्द से कुछ बड़े और रंग में बादामी होते हैं। इसकी लोग दाल खाते हैं।

रेवंत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र जो गुह्यकों के अधिपति हैं और जिनकी उत्पत्ति सूर्य की बड़वा रूपधारिणी संज्ञा नाम की पत्नी से हुई थी।

रेवंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर ग्यारह बारह हजार फुट की ऊँचाई पर होता है।

विशेष—काश्मीर, नैपाल, भूटान और सिक्किम के पहाड़ों में यह जंगली पेड़ पाया जाता है। इसकी उत्तम जाति तिब्बत के दक्षिणपूर्व भागों और चीन के उत्तरपश्चिम भागों में होती है और रेवंद चीनी कहलाती है। हिंदुस्तानी रेवंद वैसी अच्छी नहीं होती। उसमें महक भी वैसी नहीं होती जैसी कि चीनी की होती है। बाजारों में इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवद चीनी के नाम से बिकती है और ओषधि के काम में आती है। इसमें क्राइसोफानिक एसिड होता है, जिससे इसका रंग पीला होता है। क्राइसोफानिक एसिड दाद की बहुत अच्छी दवा है। रेवंद चीनी रेचक होती है और पेट के दर्द को दूर करती है। यह पौष्टिक भी मानी जाती है।

रेवट—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूकर। सुअर। २. वेणु। बाँस। ३. विषवैद्य। ४. दक्षिणावर्त शंख। ५. बवंडर। वायु का आवर्त (को०)।

रेवड़—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ बकरी का झुंड। लेहड़ा। गल्ला।

रेवड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ के लंबे लंबे टुकड़े जिनपर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ की छोटी टिकिया जिसपर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवत[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंबीरी नीबू। २. आरग्वध वृक्ष। अमलतास। ३. एक राजा जिसकी कन्या रेवती बलराम जी को ब्याही थी।

विशेष—देवी भागवत के अनुसार यह आनर्त्त का पुत्र और शर्याति का पौत्र था। ब्रह्मा के कहने से इसने अपनी कन्या रेवती बलराम को ब्याही थी।

रेवतⓅ[२]—संज्ञा पुं० [हिं० रय+वत (प्रत्य०)] दे० 'रैवंता'। उ०—आया अवधेसर सुणे सहोदर, भडा परसपर अंक भरे। रेवत गज राजा सुभट समाजा, कर रथ साजा त्यार करे।—रघु० रू०, पृ० २३४।

रेवतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारावत। परेवा। २. एक प्रकार का खजूर। पारेवत वृक्ष (को०)।

रेवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईसवाँ नक्षत्र जो ३२ तारों से मिलकर बना है और जिसका आकार मृदंग का सा कहा गया है। इस नक्षत्र के अंतर्गत मीन राशि पड़ती है। २. एक मातृका का नाम। ३. गाय। ४. दुर्गा। ५. एक बालग्रह जो बच्चों को कष्ट देता है। ६. रेवत मनु की माता। ७. बलराम की पत्नी जो राजा रेवत की कन्या थी।

रेवतीभव—संज्ञा पुं० [सं०] शनि।

रेवतीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलराम। २. विष्णु।

रेवना†—क्रि० स० [हिं० रेना] दे० 'रेना'।

रेवरा†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० रेवड़ा] दे० 'रेवड़ा'।

रेवरा[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

रेवरेंड—संज्ञा पुं० [अं०] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे,—रेवरेंड कोलमैन।

रेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्मदा नदी। २. काम की पत्नी रति। ३. नील का पौधा। ४. दुर्गा। ५. एक प्रकार का साम। ६. एक प्रकार की मछली जो नदियों में पाई जाती है। ७. दीपक राग की एक रागिनी। ८. भारत का वह देशखंड जहाँ नर्मदा नदी बहती है। रीवां राज्य। बघेलखंड।

रेवाउतन—संज्ञा पुं० [सं० रेवा+उत्पन्न] हाथी। (डिं०)।

विशेष—पुराने समय में नर्मदा के किनारे हाथी बहुत पाए जाते थे।

रेवेन्यू—संज्ञा पुं० [अं०] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी इनकमटैक्स, कस्टम ड्यूटी आदि करों से होती है। आमदे मुल्क। मालगुजारी।

रेवेन्यू बोर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] कई बड़े बड़े अफसरों का वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियंत्रण हो।

रेवोल्यूशन—संज्ञा पुं० [अं०] समाज में ऐसा उलट फेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार, विचार, राजनीति, रूढ़ियाँ आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरफार। उलट-फेर। क्रांति। विप्लव। २. देश या राज्य की शासनप्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासनप्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविप्लव।

रेवोल्यूशनरी—वि० [अं०] १. राज्य क्रांतिकारी। विप्लवपंथी। जैसे,—रेवोल्यूशनरी लीग। २. रेवोल्यूशन संबंधी। जैसे,—रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेशम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक प्रकार का महीन चमकीला और दृढ़ तंतु या रेशा जिससे कपड़े बुने जाते हैं। यह तंतु कोश में रहनेवाले एक प्रकार के कीड़े तैयार करते हैं।

विशेष—रेशम के कीड़े पिल्लू कहलाते हैं और बहुत तरह के होते हैं; जैसे,—विलायती, मदरासी या कनारी, चीनी, अराकानी, आसामी, इत्यादि। चीनी, बूलू और बड़े पिल्लू का रेशम सबसे अच्छा होता है। ये कीड़े तितली की जाति के हैं। इनके कई कायाकल्प होते हैं। अंडा फूटने पर ये बड़े पिल्लू के आकार में होते हैं और रेंगते हैं। इस अवस्था में ये पत्तियाँ बहुत खाते हैं। शहतूत की पत्ती इनका सबसे अच्छा भोजन है। ये पिल्लू बढ़कर एक प्रकार का कोश बनाकर उसके भीतर हो जाते हैं। उस समय इन्हें कोया कहते हैं। कोश के भीतर ही यह कीड़ा वह तंतु निकालता है, जिसे रेशम कहते हैं। कोश के भीतर रहने की अवधि जब पूरी हो जाती है, तब कीड़ा रेशम को काटता हुआ निकलकर उड़ जाता है। इससे कीड़े

पालनेवाले निकलने के पहले ही कोयों को गरम पानी में डालकर कीड़ों को मार डालते हैं और तब ऊपर का रेशम निकालते हैं।

पर्या०—कौशेय। पाट कोशा।

२. रेशम का सूत, रेशा या बुना हुआ वस्त्र।

यौ०—रेशम की या रेशमी गाँठ = वह ग्रंथि, उलझन या समस्या जो जल्दी सुलझ न सके। कोई कठिन काम। रेशमी लच्छा = एक मिष्टान्न।

रेशमी—वि० [फ़ा०] १. रेशम का बना हुआ। २. रेशम के समान। रेशम सा।

रेशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रेशह्] १. तंतु या महीन सूत जो पौधों की छालों आदि से निकलता है या कुछ फलों के भीतर पाया जाता है।

यौ०—रेशेदार।

रेप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षति। हानि। २. हिंसा।

रेपⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेख] दे० 'रेख'।

रेपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ों का हिनहिनाना। २. बाघ का गरजना, या गुर्राना।

रेपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़े की हिनहिनाहट। २. बाघ की गुर्राहट या दहाड़।

रेस—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. बाजी बदकर दौड़ना। दौड़ में प्रतियोगिता करना। २. घुड़दौड़।

यौ०—रेसकोर्स। रेस ग्राउंड।

रेसकोर्स—संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का रास्ता या मैदान।

रेसग्राउंड—संज्ञा पुं० [अं०] दौड़ या घुड़दौड़ का मैदान।

रेसम—संज्ञा पुं० [हिं० रेशम] दे० 'रेशम'। उ०—मुखमंडल पै फल कुंतल को, कहि रेसम के सम दूसत हैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २१०।

रेसमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० रीसमान (=रस्सी)] सुतरी। डोरी। रस्सी। (लशकरी)।

रेसमीⓅ—वि० [फ़ा० रेशमी] दे० 'रेशमी'। उ०—रेसमी रेसना रीति भल्ली। सिरी सीस सिंदूर सोभा सु मिल्ली।—पृ० रा०, ६१।१३७५।

रेस्टोरेंट—संज्ञा पुं० [फ़रा० रेस्तोराँ] दे० 'रेस्तराँ'।

रेस्तराँ—संज्ञा पुं० [फरा० रेस्तोराँ] जलपानगृह। भोजनालय।

रेह[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रेचक (=एक प्रकार की मिट्टी या भूमि)] खार मिली हुई वह मिट्टी जो ऊसर मैदानों में पाई जाती है। उ०—(क) जावत खेह रेह दुनियाई। मेघ बूँद औ गगन तराई।—जायसी (शब्द०)। (ख) जँह जँह भूमि जरी भइ रेहू। बिरह के वाह भई जनु खेहू।—जायसी (शब्द०)।

रेहⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० रेख, प्रा० रेह] दे० 'रेखा'। उ०—नव जलधर तर चमकए रे जनि बीजुरि रेह।—विद्यापति, पृ० ५।

रेहकला†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रहँकला] दे० 'रहँकला'। उ०—क्या बुर्ज रेहकला तोप किला क्या शीशा दारू और गोला।—राम० धर्म०, पृ० ६१।

रेहन—संज्ञा पुं० [अ० रह्न] रुपया देनेवाले के पास कुछ माल जायदाद इस शर्त पर रहना कि जब वह रुपया पा जाय, तब माल या जायदाद वापस कर दे। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

यौ०—रेहनदार। रेहननामा।

रेहनदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसने कोई जायदाद रेहन रखी हो।

रेहननामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कागज जिसपर रेहन की शर्तें लिखी हों।

रेहल—संज्ञा स्त्री० [अ० रिह्ल] पुस्तक रखने की पेंचदार तख्ती। विशेष दे० 'रिहल'।

रेहाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा, प्रा० रेहा] दे० 'रेखा'। उ०—सिरिहि मिलिल देहा, न कुचे चान रेहा। घामे न पिउल सुगंधा।—विद्यापति, पृ० ६४।

रेहुआ—वि० [हिं० रेह] जिसमें रेह बहुत हो।

रेहू—संज्ञा पुं० [हिं० रोहू] दे० 'रोहू'।

रैंगनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० रेंगना] दे० 'रेंगना'। उ०—जानु पानि डोलनि जगमगे। मनिमय आँगन रैंगन लगे।—नंद० ग्रं०, पृ० २४५।

रैंगलर—संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड में प्रचलित सर्वोच्च गणित परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति।

रैंनीⓅ—वि० [सं० रमणी या रञ्जित (=रँगी हुई=पगी हुई)] १. दे० 'रमणी'। आप्लुत। सराबोर। रँगी या पगी हुई। उ०—अति प्रगल्भ बैनी रस रैंनी। सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख दैनी।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७।

रै—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन दौलत। संपत्ति। २. सोना। स्वर्ण। ३. आवाज। शब्द। ध्वनि [को०]।

रैअतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रैयत] दे० 'रैयत'।

रैक—संज्ञा पुं० [अं०] लकड़ी या लोहे का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं।

विशेष—यह आलमारी के ढंग का होता है, पर भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रैकेट—संज्ञा पुं० [अं०] टेनिस के खेल में गेंद मारने का डंडा जिसका अग्र भाग प्रायः वर्तुलाकार और ताँत से बुना हुआ होता है।

रैट†—क्रि० वि० [अं० 'राइट' का ग्राम्य रूप] ठीक। दुरुस्त। तैयार। उ०—सात दिनों में ही सब काम रैट हो जायगा।—मैला०, पृ० १३।

रैतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रैअति] दे० 'रैयत'। उ०—और काहू रैति कै स्वरूप होइ सोभनीक ताहू कौं ती देषि करि निकट बुलाइए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६७।

रैतिक—वि० [सं०] पीतल संबंधी। पीतल का।

रैतुवा—संज्ञा पुं० [हिं० रायता] दे० 'रायता'। उ०—रुचिर स्वाद बहु रैतुवा घृत के विविध विधान।—रघुराज (शब्द०)।

रैत्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल का बना बर्तन।

रैत्य[२]—वि० दे० 'रैतिक' [को०]।

रैदास—संज्ञा पुं० [हिं० रवि दास] १. प्रसिद्ध भक्त जो जाति का चमार था यह रामानंद का शिष्य और कबीर, पीपा आदि का समकालीन था। २. चमार।

रैदासी—संज्ञा पुं० [हिं० रैदास + ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार मोटा जड़हन धान। २. रैदास भक्त के संप्रदाय का।

रैन, रैनि(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी] रात्रि। उ०—ओही छाँह रैनि होइ आवै।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—रैनपति = चंद्रमा। रैनमसि = अंधकार। रैनिचर।

रैनिचर(प)—संज्ञा पुं० [हिं० रैन + चर] निशाचर। राक्षस। उ०—हेम मृग होहिं नाह रैनिचर जानिया।—केशव (शब्द०)।

रैनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेना] चाँदी या सोने की वह गुल्ली जो तार खींचने के लिये बनाई जाती है।

रैमय—संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण [को०]।

रैमुनिया[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० राजमुद्ग (= मोठ)] १. एक प्रकार की अरहर।

विशेष—यह काले छिलके की और अपेक्षाकृत छोटी होती है। यह जल्द पकती है और खाने में स्वादिष्ट होती है।

रैमुनिया[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रायमुनी] १. लाल पक्षी की मादा। रायमुनी।

रैयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा। रिआया।

रैया(प)—संज्ञा पुं० [सं० राजा] नरेश। राजा। जैसे, जदुरैया।

रैयाराव(प)—संज्ञा पुं० [हिं० राजा + राव] १. छोटा राजा। २. एक पदवी जो प्राचीन समय में राजा लोग अपने सरदारों को देते थे। उ०—रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह, भूषन भनत गजराज जोम जमके।—भूषण ग्रं०, पृ० १०५।

रैवंता संज्ञा पुं० [सं० रय् (= गमन करना) + हिं० वंत (प्रत्य०)] घोड़ा (डिं०)।

रैवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक साम मंत्र। २. गुजरात का एक पर्वत जिसपर से अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया था। ३. शंकर। शिव। ४. एक दैत्य जो बालग्रहों में से है। ५. अनर्त देश का एक राजा। वर्तमान कल्प के पाँचवें मनु जो रेवती के गर्भ से उत्पन्न कहे गए हैं। ७. मेघ। बादल।

रैवत[२]—वि० १. धनी। संपत्तिशाली। २. परिपूर्ण। पर्याप्त। प्रचुर। ३. श्रेष्ठ। भव्य। सुंदर [को०]।

रैवतक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुजरात का एक पर्वत।

विशेष—यह आधुनिक जूनागढ़ के पास है और गिरनार कहलाता है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया था।

रैवतक[२]—वि० सामयिक। समयानुसार सगत [को०]।

रैवत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साम। २. धन। संपत्ति।

रैसा†—संज्ञा पुं० [सं० रेष् (= हिंसा) तुल० हिं० रायसा, रासा] झगड़ा। कलह। युद्ध।

रैहर—संज्ञा पुं० [सं० रेष (= हिंसा)] झगड़ा। लड़ाई।

रैहाँ—संज्ञा पुं० [अ०] १. एक प्रकार की वनस्पति।

यौ०—गुलेरैहाँ। तुख्मरैहाँ।

२. संतति। औलाद (को०)। ३. वसीका। गुजारा (को०)। ४. कृपा। मेहरबानी। दया (को०)।

रोँगा—संज्ञा पुं० [सं० रोमक, प्रा० रोअक] शरीर पर का बाल। लोम।

रोँगटा—संज्ञा पुं० [सं० रोमक, प्रा० रोअंक, + हिं० रोंगा + टा (प्रत्य०)] मनुष्य के सिर को छोड़कर और सारे शरीर के बाल।

मुहा०—रोंगटे खड़ा होना = किसी भयानक या क्रूर कांड को देखकर शरीर में क्षोभ उत्पन्न होना। जी दहलना। रोमांच होना।

रोँगटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोन + टी (प्रत्य०)] खेल में बुरा मानना या बेईमानी करना। उ०—रोंगटि करत तुम खेलत ही में परी कहा यह बानि।—सूर (शब्द०)।

रोँघट†—संज्ञा स्त्री० [?] धूल। मिट्टी। रजःकण।

रोँठा—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। आमकली। अमहर।

रोँत(प)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रावत + ई] ठकुराई। रावपन। रौताई।

रोँव(प)—संज्ञा पुं० [सं० रोम] शरीर के बाल। रोआँ। लोम। उ०—(क) जानि पुछारि जो भा बनबासी। रोंव रोंव परे फंद नगवासी।—जायसी (शब्द०)। (ख) रोंव रोंव मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सुत बेध अस गाढ़े।—जायसी (शब्द०)।

रोँसा†—संज्ञा पुं० [देश०] लोबिया की फली। बोड़े की फली।

रोआँ—संज्ञा पुं० [हिं० रोयाँ] दे० 'रोयाँ'।

रोआई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुलाई] दे० 'रुलाई'।

रोआब†—संज्ञा पुं० [अ० रोअब] रोबदाब। प्रभाव। आतंक।

रोईसा—संज्ञा पुं० [देश०] रूसा घास जिसकी जड़ से सुगंधित तेल निकलता है। विशेष दे० 'रूसा'।

रोइयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोआँ] रोम। लोम।

रोइया—संज्ञा पुं० [देश०] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुंदा जिसपर रखकर गन्ने के टुकड़े काटते हैं।

रोउँ(प)—संज्ञा पुं० [हिं० रोंव] दे० 'रोंव'।

रोक[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रोधक] १. ऐसी स्थिति जिससे चल या बढ़ न सकें। गति में बाधा। अटकाव। छेक। अवरोध। जैसे,—इसी बगीचे से होकर गाएँ जाती हैं, उनकी रोक के लिये दीवार उठानी चाहिए। २. मनाही। निषेध। मुमानियत।

यौ०—रोक टोक।

३. किसी कार्य में प्रतिबंध। काम में बाधा। ४. वह वस्तु जिससे आगे बढ़ना या चलना रुक जाय। रोकनेवाली कोई वस्तु। जैसे,—ऐसी कोई रोक खड़ी करो जिससे वे इधर न आने पावें। ५. दहेज। तिलक। उ०—एक ठौर ब्याह ठीक भी हुआ है, वो

वह पाँच सौ रोक माँगते हैं। इसी से कुछ अटक है।—ठेठ०, पृ० ८।

रोक³—संज्ञा पुं० [सं० **रोक** (= नकद)] १. नकद रुपया। रोकड़। उ०—धावन तहाँ पठावहु देहि लाख दस रोक।—जायसी (शब्द०)। २. नगद व्यवहार या सौदा। ३. दीप्ति। ४. छिद्र। ५. नौका। ६. कंप। कँपकँपी (को०)।

रोकझोंक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रोकटोक'।

रोकटोक—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोकना + टोकना**] १. बाधा। प्रतिबंध। २. मनाही। निषेध। जैसे,—इधर से चले जाओ, कोई रोक टोक करनेवाला नहीं है।

रोकड़—संज्ञा स्त्री० [सं० **रोक** (= नकद)] १. नगद रुपया पैसा आदि, विशेषतः वह रकम जिसमें से आय व्यय होता है। नगद रुपया। २. जमा। धन। पूँजी।

मुहा०—**रोकड़ मिलाना** = आय व्यय का जोड़ लगाकर यह देखना कि रकम बढ़ती या घटती तो नहीं है।

यौ०—**रोकड़ बही**। **रोकड़ बिक्री**।

रोकड़बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोकड़ + बही**] वह बही या किताब जिसमें नकद रुपए का लेन देन लिखा रहता है।

रोकड़बिक्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोकड़ + बिक्री**] नकद दाम पर की हुई बिक्री।

रोकड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० **रोकड़ + इया** (प्रत्य०)] रोकड़ रखनेवाला। नकद रुपया रखनेवाला। खजांची। मुनीम।

रोकथाम—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोकना + थामना**] दे० 'रोकटोक'।

रोकना—क्रि० स० [हिं० **रोक + ना** (प्रत्य०)] १. गति का अवरोध करना। चलते हुए को थामना। चलने या बढ़ने न देना। जैसे,—गाड़ी रोकना, पानी की धार रोकना।

संयो० क्रि०—**देना**। —**लेना**।

२. जाने न देना। कहीं जाने से मना करना। ३. किसी क्रिया या व्यापार को स्थगित करना। किसी चली आती हुई बात को बंद करना। जारी न रखना। ४. मार्ग में इस प्रकार पड़ना कि कोई वस्तु दूसरी ओर न जा सके। छेंकना। जैसे,—रास्ता रोकना, प्रकाश रोकना। ५. अड़चन डालना। बाधा डालना। ६. बाज रखना। वर्जन करना। मना करना। ७. ऊपर लेना। ओढ़ना। जैसे,—तलवार को लाठी पर रोकना। ८. वश में रखना। प्रतिबंध में रखना। काबू में रखना। संयत रखना। जैसे,—मन को रोकना, इच्छा को रोकना। ९. बढ़ती हुई सेना या दल का सामना करना।

रोक्य—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। लहू। खून (को०)।

रोखⓅ‡—संज्ञा पुं० [सं० **रोष**] दे० 'रोष'।

रोग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **रोगी, रुग्न**] १. वह अवस्था जिससे शरीर अच्छी तरह न चले और जिसके बढ़ने पर जीवन में संदेह हो। शरीर भंग करनेवाली दशा। बीमारी। व्याधि। मर्ज।

पर्या०—गद। आमय। रुज। उपताप। अपाटव। अम। मांद्य। आकल्प।

रोगकारक—वि० [सं०] बीमारी पैदा करनेवाला। व्याधिजनक।

रोगकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम की लकड़ी।

रोगग्रस्त—वि० [सं०] रोग से पीड़ित। बीमारी में पड़ा हुआ।

रोगघ्न¹—वि० [सं०] रोग को नष्ट करनेवाला (को०)।

रोगघ्न²—संज्ञा पुं० १. दवाई। २. आयुर्वेद (को०)।

रोगज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सक। वैद्य। हकीम (को०)।

रोगदई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोना**] १. अन्याय। बेईमानी।

रोगदैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोगदई**] दे० 'रोगदई'। उ०—खेलत खात परसपर डहकत छीनत करत रोगदैया।—तुलसी (शब्द०)।

रोगन—संज्ञा पुं० [फ़ा० **रौगन**] १. तेल। चिकनाई। २. पतला लेप जिसे किसी वस्तु पर पोतने से चमक, चिकनाई और रंग आवे। पालिश। वारनिश। ३. लाख आदि से बना हुआ मसाला जिसे मिट्टी के बर्तनों आदि पर चढ़ाते हैं। ४. चमड़े को मुलायम करने के लिये कुसुम या बर्रे के तेल से बनाया हुआ मसाला।

यौ०—**रोगनजोश** = एक तरह का साबुन। **रोगनदाग** = छौंकने का चम्मच। **रोगनदार**। **रोगनफरोश** = तैलविक्रेता। तेली।

रोगनदार—वि० [फ़ा०] जिसपर रोगन किया गया हो। पालिशदार। चमकीला।

रोगनाशक—वि० [सं०] बीमारी को दूर करनेवाला।

रोगनिदान—संज्ञा पुं० [सं०] रोग के लक्षण और उत्पत्ति के कारण आदि की पहचान। तशखीस।

रोगनी—वि० [फ़ा०] रोगन किया हुआ। रोगन लगाया हुआ। रोगनदार। जैसे,—रोगनी बर्तन।

रोगपरीसह—संज्ञा पुं० [सं०] उग्र रोग होने पर कुछ ध्यान न करके उसका सहन। (जैन)।

रोगप्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] बुखार। ज्वर (को०)।

रोगभू—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। देह (को०)।

रोगमुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, विष, लोहा, त्रिकुट और ताँबा सम भाग और शीशा अर्ध भाग लेकर पीस डाले और दो दो रत्ती की गोलियाँ बना ले।

रोगराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। २. क्षय रोग। तपेदिक।

रोगशांतक—संज्ञा पुं० [सं० **रोगशान्तक**] वैद्य। हकीम (को०)।

रोगशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

रोगशिल्पी—संज्ञा पुं० [सं०] सोनालु का पेड़।

रोगह—संज्ञा पुं० [सं०] दवा। औषध (को०)।

रोगहर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो रोगों का हरण करे। २. दवा। औषध (को०)।

रोगहा[१]—संज्ञा पुं० [सं० रोगहन्] वैद्य । चिकित्सक । हकीम [को०] ।

रोगहा[२]—वि० [हिं० रोग + हा (प्रत्य०)] रोगयुक्त । रुग्ण । रोगी ।

रोगहारी—संज्ञा पुं० [सं० रोगहारिन्] १. वह जो रोग का हरण करे । व्याधि दूर करनेवाला । २. वैद्य । चिकित्सक [को०] ।

रोगाक्रांत—वि० [सं० रोगाक्रान्त] रोग से घिरा हुआ । व्याधि से पीड़ित ।

रोगातुर—वि० [सं०] रोग से घबराया हुआ । व्याधि से पीड़ित ।

रोगार्त्त—वि० [सं०] रोग से दुखी ।

रोगाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठौषध । कुट ।

रोगिणी—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'रोगी' ।

रोगित[१]—वि० [सं०] पीड़ित । रोगयुक्त ।

रोगित[२]—संज्ञा पुं० कुत्ते का पागलपन ।

रोगितरु—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।

रोगिया—संज्ञा पुं० [हिं० रोग + इया (प्रत्य०)] रोगी । बीमार । उ०—रोगिया की को चालै बैदहिं जहाँ उपास ।—जायसी (शब्द०) ।

रोगिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] औषध । दवा । चिकित्सा [को०] ।

रोगी—वि० [सं० रोगिन्] [वि० स्त्री० रोगिणी, रोगिनी] जो स्वस्थ न हो । जिसकी तंदुरुस्ती ठीक न हो । रोगयुक्त । व्याधिग्रस्त । बीमार । माँदा ।

रोचⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० रुचि] दे० 'रुचि' । उ०—ना काहू से दुष्टता, ना काहू से रोच ।—पलटू०, पृ० १५ ।

रोचक[१]—वि० [सं०] १. रुचिकारक । रुचनेवाला । अच्छा लगनेवाला । प्रिय । २. जिसमें मन लगे । मनोरंजक । दिलचस्प । जैसे;—रोचक वृत्तांत ।

रोचक[२]—संज्ञा पुं० १. क्षुधा । भूख । २. कदली । केला । ३. राजपलांडु । ४. एक प्रकार की ग्रंथिपर्णी जिसे नैपाल में 'भंडेउर' कहते हैं । ५. काँच की कुप्पी या शीशी बनानेवाला ।

रोचकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोचक होने का भाव । मनोहरता । मनोरंजकता । दिलचस्पी ।

रोचकद्रय—संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण और सैंधव लवण । (वैद्यक) ।

रोचन[१]—वि० [सं०] १. अच्छा लगनेवाला । रुचनेवाला । रोचक । २. दीप्तिमान् । शोभा देनेवाला । ३. प्रिय लगनेवाला । ४. लाल । उ०—बारि भरित भए वारिद रोचन ।—केशव (शब्द०) ।

रोचन[२]—संज्ञा पुं० १. कूट शाल्मलि । काला सेमर । २. कांपिल्ल । कमीला । ३. श्वेत शिग्रु । सफेद सहिंजन । ४. पलांडु । प्याज । ५. आरग्वध । अमलतास । ६. करंज । करंजुवा । कंजा । ७. अंकोट । ढेरा । ८. दाड़िम । अनार । ९. हरिवंश पुराण के अनुसार रोगों के अधिष्ठाता एक प्रकार के देवता । १०. स्वारोचिष् मन्वतर के इंद्र । ११. मार्कंडेय पुराण में वर्णित एक पर्वत का नाम । १२. कामदेव के पाँच बाणों में से एक । १३. रोली । रोचना । १४. गोरोचन ।

रोचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंबीरी नीबू । २. वंशलोचन ।

रोचनफल—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू ।

रोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त कमल । २. गोरोचन ३. श्रेष्ठ स्त्री । ४. वसुदेव की स्त्री । ५. दीप्त आकाश । ६. काला सेमर । ७. वंशलोचन । ८. हरिद्रा ।

रोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी । आँवला । २. गोरोचन । ३. मनःशिला । मैनसिल । ४. श्वेत त्रिवृता । सफेद निसोथ । ५. कमीला । ६. दंती । ७. तारका । तारा ।

रोचमान[१]—वि० [सं०] चमकता हुआ । शोभित होता हुआ ।

रोचमान[२]—संज्ञा पुं० १. घोड़े की गर्दन पर की एक भँवरी । २. स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

रोचि—संज्ञा स्त्री० [सं० रोचिस्] १. प्रभा । दीप्ति । २. प्रकट होती हुई शोभा । उ०—साहस के उर मध्य धर्यो कर, जागति, रोम की रोचि जनाई ।—केशव (शब्द०) । ३. किरण । रश्मि ।

रोचित—वि० [सं० रोचन] शोभित । उ०—तन रोचित रोचन लहै, रंचन कचन गोतु ।—केशव (शब्द०) ।

रोचिष्णु—वि० [सं०] १. चमकदार । २. आभूषणों आदि से जगमगाता हुआ । ३. रुचि उत्पन्न करनेवाला । बुभुक्षा (भूख) बढ़ानेवाला ।

रोचिस्—संज्ञा पुं० [सं०] दीप्ति । प्रभा । चमक ।

रोची—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचिका ।

रोजⓅ[१]—संज्ञा पुं० [सं० रोदन] १. रोना धोना । रुदन । २. रोना पीटना । विलाप । स्यापा । उ०—(क) रोज सरोजनि के परै हँसी ससी की होय ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज ।—जायसी । (शब्द०) ।

रोज[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज] दिन । दिवस । जैसे,—उसे गए चार रोज हो गए ।

रोज[३]—अव्य० प्रतिदिन । नित्य । जैसे,—वह हमारे यहाँ रोज आता है ।

रोजगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़गार] १. जीविका या धनसंचय करने के लिये हाथ में लिया हुआ काम जिसमें कोई बराबर लगा रहे । व्यवसाय । धंधा । उद्योग । उद्यम । पेशा । कारबार ।

मुहा०—**रोजगार चमकना** = व्यवसाय में खूब लाभ होना । **रोजगार छूटना** = जीविका न रहना । **रोजगार चलना** = कारबार में लाभ होना । व्यवसाय जारी रहना । **रोजगार लगना** = जीविका का प्रबंध होना । गुजर के लिये काम मिलना । **रोजगार लगना** = जीविका का प्रबंध करना । कोई काम देना । निर्वाह के लिये कोई मार्ग बताना । **रोजगार से होना** = निर्वाह के लिये किसी काम में लगना ।

२. क्रय विक्रय आदि का आयोजन । व्यापार । तिजारत । जैसे,—वहाँ गल्ले का रोजगार खूब है ।

रोजगारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़गारी] रोजगार करनेवाला । व्यापारी । सौदागर । वणिक् ।

रोजनामचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़नामचह्] १. वह किताब या बही जिसपर रोज का किया हुआ काम लिखा जाता है। दिनचर्या की पुस्तक। २. प्रतिदिन का जमा खर्च लिखने की बही। कच्चा चिट्ठा। खाता। ३. दैनिक विवरण लिखने की पुस्तिका। डायरी। दैनंदिनी। जैसे,—सौर रोजनामचा।

रोजमर्रा—अव्य० [फ़ा०] प्रतिदिन। हर रोज। नित्य।

रोजमर्रा—संज्ञा पुं० नित्य के व्यवहार में आनेवाली भाषा। बोलचाल। चलती बोली।

रोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़ह्] १. व्रत। उपवास। २. वह व्रत जो मुसलमान रमजान के महीने में ३० दिन तक रहते हैं और जिसका अंत होने पर ईद होती है।

क्रि० प्र०—रखना।

मुहा०—**रोजा टूटना** = व्रत खंडित होना। व्रत का निर्वाह न हो पाना। **रोजा तोड़ना** = व्रत खंडित करना। व्रत पूरा न करना। **रोजा खोलना** = दिन भर भूखे रहकर शाम को पहले पहल कुछ खाना।

रोजाना—क्रि० वि० [फ़ा० रोज़ानह्] प्रति दिन। हर रोज। नित्य।

रोजी[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रोज़ी] १. रोज का खाना। नित्य का भोजन।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

यौ०—रोजी रोजगार।

मुहा०—**रोजी चलना** = भोजन वस्त्र मिलता जाना। **रोजी चलाना** = भोजन वस्त्र आदि का ठिकाना करना।

२. वह जिसके सहारे किसी को भोजन वस्त्र प्राप्त हो। काम धंधा जिससे गुजर हो। जीवननिर्वाह का अवलंब। जीविका। रोजगार। जैसे,—किसी की रोजी लेना अच्छी बात नहीं। ३. एक प्रकार का पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार व्यापारियों के चौपायों को एक एक दिन राज्य का काम करना पड़ता था।

रोजी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुजरात में होनेवाली एक प्रकार की कपास जिसके फूल पीले होते हैं।

रोजीदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़ीदार] वह जिसको रोजाना खर्च के लिये कुछ मिलता हो।

रोजीना[१]—वि० [फ़ा० रोज़ीनह्] रोज का। नित्य का।

रोजीना[२]—संज्ञा पुं० १. प्रतिदिन की मजदूरी। वेतन या वृत्ति आदि। जैसे,—उसको २) रोजीना मिलता है। २. पेंशन। गुजारा (क्व०)। ३. रोज मिलनेवाली खुराक।

रोजीबिगाड़—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़ी + हिं० बिगाड़ना] लगी हुई रोजी को बिगाड़नेवाला। जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला। निखट्टू। निकम्मा।

रोजुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रुदते, प्रा० रुज्जइ, रोजई] रोना। रोदन। रुदन। उ०—बरजा पितै हँसी और रोजू। —जायसी ग्रं०, पृ० १०६।

रोझ—संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा सं० ऋश्य, प्रा०, रोज्झ, रोह] नील गाय। गवय। उ०—

रोट—संज्ञा पुं० [हिं० रोटी] १. गेहूँ के आटे की बहुत मोटी रोटी। लिट।

विशेष—ऐसी रोटी गरीब लोग खाते हैं या हाथियों को रातिब में दी जाती है।

२. मीठी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओं को चढ़ाया जाता है।

रोटका—संज्ञा पुं० [देश०] बाजरा।

रोटाⓅ—वि० [हिं० रोटी] पिसी हुई। पिसा हुआ। चूर किया हुआ। उ०—औ जौं छुटहिं वज्र कर गोटा। बिसरहिं भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी (शब्द०)।

रोटिका†—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी रोटी। फुलकी।

रोटिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + हा (प्रत्य०)] रोटियों पर रहनेवाला नौकर। केवल भोजन पर रहनेवाला चाकर। उ०—कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोलहि बिकाउँगो।—(शब्द०)।

रोटिहान†—संज्ञा पुं० [सं० रोटिक + स्थान; हिं० रोटी + हान] चूल्हे के पास का वह मिट्टी का छोटा चबूतरा जिसपर रोटियाँ पकाकर रखी जाती हैं।

रोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुँधे हुए आटे की आँच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया जो नित्य के खाने के काम में आती है। चपाती। फुलका।

क्रि० प्र०—पकाना।—बनाना।—सेंकना।

मुहा०—**रोटी पोना** = (१) रोटी पकाना। (२) चकले पर बेलकर गुँधे हुए आटे की पतली टिकिया बनाना।

२. भोजन। रसोई। खाना। जैसे,—तुम्हारे यहाँ कब रोटी तैयार होती है।

यौ०—रोटी दाल।

मुहा०—**रोटी कपड़ा** = भोजन वस्त्र। खाना कपड़ा। जीवननिर्वाह की सामग्री। जैसे,—उस औरत ने रोटी कपड़े का दावा किया है। **रोटी कमाना** = जीविका उपार्जन करना। **रोटी को रोना** = भूखों मरना। अन्नकष्ट भोगना। **किसी बात की रोटी खाना** = किसी बात से जीविका कमाना। जैसे,—वह इसी की तो रोटी खाता है। **रोटियों का मारा** = भूखा। अन्न बिना दुखी। **किसी के यहाँ रोटियाँ तोड़ना** = किसी के घर पड़ा रहकर पेट पालना। बैठे बैठे किसी का दिया खाना। **किसी को रोटियाँ लगना** = किसी को खाना पूरा मिलने से मोटाई सूझना। भरपेट भोजन पाने से मोटाई सूझना। भरपेट भोजन पाने से इतराना। **दाल रोटी से खुश** = जिसे खाने पीने का अच्छा सुबीता हो। **रोटी दाल चलना** = जीवन निर्वाह होना। **रोटी का पेट** = रोटी का वह पार्श्व या तल जो पहले गरम तावे पर डाला जाता है। **रोटी की पीठ** = रोटी का वह पार्श्व जो उलटने पर सेंका जाता है।

रोटीफल—संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + फल] १. एक फल जो खाने में बहुत अच्छा होता है। २. इस फल का पेड़।

विशेष—इसका पेढ़ मझोले आकार का होता है और दक्षिण में मद्रास की ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोठा—संज्ञा पुं० [देश०] बाजरे की एक जाति।

रोड[1]—वि० [सं०] तुष्ट। प्रीत। कृतार्थ। तोषित [को०]।

रोड[2]—संज्ञा पुं० पेषण। चूर्णीकरण [को०]।

रोड[3]—संज्ञा स्त्री० [अं०] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे,—हैरिसन रोड।

रोडवे, रोडवेज—संज्ञा पुं० [अं०] १. मोटर गाड़ियों के आवागमन की सरकारी व्यवस्था वा तंत्र। २. शासन की ओर से यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जानेवाली मोटर बस गाड़ी।

रोड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० लोष्ट, प्रा० लोट्ठ] १. ईंट या पत्थर का बड़ा ढेला। बड़ा कंकड़। जैसे,—कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुनबा जोड़ा। २. (लाक्ष०) बाधा। विघ्न। रोक। ३. एक प्रकार का पंजाबी धान जो बिना सींचे उत्पन्न होता है।

मुहा०—**रोड़ा अटकाना या डालना** = विघ्न या बाधा डालना।

रोड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० आरट्ट ?] पंजाब की अरोड़ा नामक जाति।

रोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० रौद्र (= भयंकर)] १. मुसलमान। (डिं०)। २. धूप। घाम।

रोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलाप करना। क्रंदन करना। रोना। उ०—माता ताको रोदन देखि। दुख पायो मन माहिं विसेखि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**करना।—ठानना।—होना।**

२. अश्रु। आँसू (को०)।

रोदनिका, रोदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा। धमासा [को०]।

रोदसी—संज्ञा स्त्री० [सं०]१. द्यावाभूमि। २. स्वर्ग। ३. भूमि। उ०—पूरित है भूरि धूरि रोदसिहि आस पास दिसि दिसि बरषा ज्यों बल निबलति है।—केशव (शब्द०)।

रोदा—संज्ञा पुं० [सं० रोध (= किनारा)] १. कमान की डोरी। धनुष की पतंचिका। चिल्ला। उ०—मानो अरबिंद पै चंद्र को चढ़ाय दीनी मानो कमनैत बिनु रोदा की कमानैं द्वै।—पद्माकर (शब्द०)। २. सितार के परदे बाँधने की बारीक ताँत।

रोदित—वि० [हिं० रोदन या सं० रुदित] [वि० स्त्री० रोदिता] रोती हुई। उ०—कब सोई यह दृष्टि रोदिता।—साकेत, पृ० ३४८।

रोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोक। रुकावट। २. किनारा। तट। ३. बारी। बाड़ा। घेरा। ४. पर्वत का निम्न भाग या अवसर्पिणी भूमि। गिरिनितंब (को०)। ५. स्त्री की कटि। श्रोणि (को०)।

रोधक—संज्ञा पुं० [सं०] रोकनेवाला।

रोधकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार साठ संवत्सरों में से पैंतालीसवाँ संवत्सर।

रोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोक। रुकावट। अवरोध। २. दमन। उ०—अति क्रोधन रन सोधन सदा अरिखल रोधन पन किए।—गोपाल (शब्द०)। ३. बुध ग्रह [को०]।

रोधना(पु)—क्रि० स० [सं० रोधन] रोकना। बाधा डालना।

रोधवक्रा, रोधवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तटिनी। स्रोतस्विनी। नदी। २. तेज धारवाली नदी।

रोधवप्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोधवती' [को०]।

रोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपराध। दोष। पाप। पातक। २. लोध्र। लोध का वृक्ष।

रोध्र पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधूक वृक्ष। महुआ का पेड़। २. एक जाति का साँप [को०]।

रोध्रपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसे पुष्पशूक भी कहते हैं [को०]।

रोध्र पुष्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी नाम का वृक्ष [को०]।

रोना[1]—क्रि० अ० [सं० रोदन, प्रा० रोअन] १. पीड़ा। दुःख या शोक से व्याकुल होकर मुँह से विशेष प्रकार का स्वर निकालना और नेत्रों से जल छोड़ना। चिल्लाना और आँसू बहाना। रुदन करना।

संयो० क्रि०—**उठना।—देना।—पड़ना।—लेना।**

मुहा०—**रोना कलपना या रोना धोना** = विलाप करना। **रोना पीटना** = छाती या सिर पर हाथ मारकर विलाप करना। बहुत विलाप करना। **रो बैठना** = (किसी व्यक्ति या वस्तु के लिये) शोक कर चुकना। निराश होकर रह जाना। **रो रोकर** = (१) ज्यों त्यों करके। कठिनता से। दुःख और कष्ट के साथ। प्रसन्नतापूर्वक नहीं। जैसे,—उसने रो रोकर काम किया है। (२) बहुत धीरे धीरे। बहुत रुक रुककर। जैसे,—जब रुपया देना ही है, तब रो रोकर क्यों देते हो ! **रो रोकर घर भरना** = बहुत विलाप करना। **किसी वस्तु को रोना** = किसी वस्तु के लिये पछताना या शोक करना। किसी वस्तु का दुःख मानना। जैसे,—किस्मत को रोना। नाम को रोना। रुपए को रोना। **रोना गाना** = बिनती करना। दुःखपूर्वक निवेदन करना। गिड़गिड़ाना। जैसे,—उसने रो गाकर जुर्माना माफ करा लिया।

२. बुरा मानना। रंज मानना। चिढ़ना। जैसे,—तुम तो हँसी में रोने लगते हो। ३. दुःख करना। पछताना। जैसे,—रुपया डूब गया; अब रो रहे हैं। ४. शिकायत करना। दुःख बयान करना। दुखड़ा रोना।

रोना[2]—संज्ञा पुं० दुःख। रंज। खेद। शोक। जैसे—इसी का तो रोना है।

मुहा०—**रोना आना** = दुःख होना। तरस खाना। जैसे,—तुम्हारी अक्ल पर रोना आता है। **रोना पड़ना या रोना पीटना पड़ना** = विलाप होना। शोक छाना। जैसे,—घर घर रोना पीटना पड़ गया।

रोना[३]—वि० [वि०स्त्री० **रोनी**] १. थोड़ी सी बात पर भी दुःख माननेवाला। रोनेवाला। जैसे,—वह रोना आदमी है, उससे मत बोलो। २. बात बात में बुरा माननेवाला। चिड़चिड़ा। ३. रोनेवाले का सा। मुहर्रमी। रोवाँसा। जैसे,—रोनी सूरत।

रोनीधोनी[१]—वि० स्त्री० [हिं० **रोना धोना**] रोने धोनेवाली। शोक या दुःख की चेष्टा बनाए रखनेवाली। मुहर्रमी।

रोनीधोनी[२]—संज्ञा स्त्री० रोने धोने की वृत्ति। शोक या दुःख की चेष्टा। मनहूसी। जैसे,—रोनीधोनी पीछे जा, हँसनी खेलनी आगे आ। (स्त्रियाँ)।

विशेष—स्त्रियाँ बच्चों को नहलाते समय उनका अंग पोंछती हुई उक्त वाक्य कहा करती हैं।

रोप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठहराव। रुकावट। २. मोहन। बुद्धि फेरना। ३. छेद। सूराख। ४. रोपना। पौधे आदि लगाने की क्रिया। रोपण (को०)। ५. बाण। तीर।

यौ०—**रोपशिखी** = वाणाग्नि। वाण से उत्पन्न अग्नि।

रोप[२]—संज्ञा पुं० [देश०] हल की एक लकड़ी जो हरिस के छोर पर जंघे के पार लगी रहती है।

रोपक—वि० [सं०] १. स्थापित करनेवाला। उठानेवाला। २. स्थित करनेवाला। ३. जमानेवाला। लगानेवाला। ४. सोने चाँदी की एक तौल या मान जो सुवर्ण का ७०वाँ भाग होता है।

रोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **रोपित, रोप्य**] १. ऊपर रखना या स्थापित करना। २. लगाना। जमाना। बैठाना (बीज या पौधा)। ३. स्थापित करना। खड़ा करना। उठाना (दीवार आदि)। ४. मोहित करना। मोहन। ५. विचारों में गड़बड़ी डालना। बुद्धि फेरना। ६. घाव का सूखना या उसपर पपड़ी बँधना। ७. घाव पर किसी प्रकार का लेप लगाना। ८. तीर। बाण (को०)।

रोपना[१]—क्रि० स० [सं० **रोपण**] १. जमाना। लगाना। बैठाना। २. पौधे को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर जमाना। पौधा जमीन में गाड़ना। ३. अड़ाना। ठहराना। स्थापित करना। दृढ़ता के साथ रखना। उ०—बीच सभा अंगद पद रोप्यो, टरयो न, निसिचर हारे।—सूर (शब्द०)। ४. बीज रखना। बोना। जैसे,—बीज रोपना। ५. कोई वस्तु लेने के लिये हथेली या कोई बरतन सामने करना।

मुहा०—**हाथ रोपना** = माँगने के लिये हाथ फैलाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

रोपना(पु)[२]—क्रि० स० [हिं० **रोक**] दे० 'रोकना'। उ०—राजहिं तहाँ गएउ लेइ कालू। होइ सामुहँ रोपा देवपालू।—जायसी (शब्द०)।

रोपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोपना**] रोपने का काम। धान आदि के पौधे को गाड़ने का काम। रोपाई। जैसे,—आजकल रोपनी हो रही है।

रोपित—वि० [सं०] १. लगाया हुआ। जमाया हुआ। २. स्थापित। रखा हुआ। ३. मोहित। भ्रांत। ४. उठाया हुआ। खड़ा किया हुआ। ५. लक्ष्य या निशाने पर साधा हुआ। जैसे, बाण (को०)।

रोब—संज्ञा पुं० [अ० **रुअब**] [वि० रोबीला] बड़प्पन की धाक। आतंक। प्रभाव। दबदबा। तेज। प्रताप।

यौ०—**रोबदार**। **रोबदाब**।

मुहा०—**रोब जमाना** = बड़प्पन की धाक पैदा करना। आतंक उत्पन्न करना। **रोब मिट्टी में मिलना** = बड़प्पन की धाक न रह जाना। प्रभाव नष्ट होना। **रोब दिखलाना** = बड़प्पन का प्रभाव डालना। आतंक उत्पन्न करनेवाली चेष्टा प्रकट करना। **रोब में आना** = (१) आतंक के कारण कोई ऐसी बात कर डालना जो यों न की जाती हो। दबदबे में पड़ जाना। बड़प्पन की चेष्टा देख प्रभावित होना। (२) भय मानना।

रोबदाब—संज्ञा पुं० [अं०] आतंक। दबदबा। प्रभाव।

रोबदार—वि० [अ०] जिसकी चेष्टा से तेज और प्रताप प्रकट हो। रोब दाबवाला। भड़कीला। प्रभावशाली। तेजस्वी।

रोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० **रोमन्थ**] १. सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को फिर से मुँह में लाकर धीरे धीरे चबाना। जुगाली। पागुर। २. लगातार दोहराना। अनवरत आवृत्ति (को०)।

रोमंथन—संज्ञा पुं०[सं० रोमन्थन] दे० 'रोमंथ'। उ०—स्वर्णांचला अहा खेतों में उतरी संध्या श्याम परी। रोमंथन करती गाएँ आ रहीं रौंदती घास हरी।—रेणुका, पृ०।

रोम[१]—संज्ञा पुं० [सं० **रोमन्**] १. देह के बाल। रोयाँ। लोम।

यौ०—**रोमराजी**। **रोमावली**। **रोमलता**।

मुहा०—**रोम रोम में** = शरीर भर में। **रोम रोम में रमना** = भीतर बाहर सर्वत्र व्याप्त होना। उ०—कबीर प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय। रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ५०। **रोम रोम से** = तन मन से। पूर्ण हृदय से। जैसे,—रोम रोम से आशीर्वाद देना।

२. ऊन। ऊर्ण। उ०—दासी दास बासि बास रोम पाट को कियो। दायजो बिदेह राज भाँति भाँति को कियो।—केशव (शब्द०)। ३. चिड़ियों का पर। पंख (को०)।

४. मछलियों का वल्क या शल्क (को०)। ५. एक जनपद का नाम। दे० 'रोमक'।

रोम[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. छेद। छिद्र। सूराख। २. जल। पानी।

यौ०—**रोमबिलय** = चमड़ा जिसके छेद से रोएँ निकलते हैं।

रोमकंद—संज्ञा पुं० [सं० **रोमकन्द**] वह कंद जिसमें रोएँ हों। पिंडालू [को०]।

रोमक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँभर झील का नमक। साकंभरी लवण। पांशु लवण। २. एक प्रकार का चुबक (को०)।

रोमक[२]—संज्ञा पुं० १. रोम नगर का वासी। रोम देश का मनुष्य। रोमन। २. रोम नगर या देश। ३. ज्योतिष सिद्धांत का एक भेद।

रोमकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] खरगोश । खरहा ।

रोमकूप—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के वे छिद्र जिनमें से रोएँ निकले हुए होते हैं । लोमछिद्र ।

रोमकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर । चामर ।

रोमगत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोमकूप' [को०] ।

रोमगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर । चामर ।

रोमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोमकूप' ।

रोमन—संज्ञा पुं० [अं०] रोम देश का निवासी ।

रोमन कैथलिक—संज्ञा पुं० [अं०] ईसाइयों का प्राचीन संप्रदाय ।

विशेष—इस संप्रदाय में ईसा की माता मरियम की, तथा अनेक संत महात्माओं की उपासना चलती है और गिरजों में मूर्तियाँ भी रखी जाती हैं ।

रोमपाट—संज्ञा पुं० [सं०] ऊनी कपड़ा । दुशाला आदि । उ०—चामर चरम बसन बहु भाँती । रोमपाट पट अगनित जाती ।—तुलसी (शब्द०) ।

रोमपाद—संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक प्राचीन राजा जिनका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण के बालकांड, सर्ग ६ में है ।

विशेष—यह राजा बड़ा अन्यायी और अत्याचारी था । इसके पापों से एक बार भयंकर अनावृष्टि हुई । राजा ने शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर उपाय पूछा । सबने ऋष्यश्रृंग मुनि को बुलाकर उनके साथ राजकन्या शांता का विवाह कर देने की राय दी । वेश्याओं के प्रयत्न से ऋष्यश्रृंग मुनि लाए गए और खूब वृष्टि हुई । तब राजा ने अपनी कन्या शांता उन्हें ब्याह दी ।

रोमपुलक—संज्ञा पुं० [सं०] रोमांच । रोओं का खड़ा होना [को०] ।

रोमबद्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्त्र जो रोयों से बँधा या बुना हो ।

रोमबद्ध[2]—वि० जो रोयों से बँधा या बुना हो ।

रोमभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा । त्वक् । रोमनिभय ।

रोमरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० रोमरन्ध्र] दे० 'रोमकूप' [को०] ।

रोमराजि, रोमराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोमावलि । रोयों की वह पंक्ति जो पेट के बीचोबीच नाभि से ऊपर को ओर जाती है ।

रोमराजाव(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० रोमराजी] दे० 'रोमराजी' । उ०—उर बीच रोमराजाव रष । गुरु राह भर भांवि चल्यो भष ।—पृ० रा०, २।२७४ ।

रोमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोमावलि । रोमराजी । उ०—कटि अति सूक्ष्म उदर द्युति चलदल दल उपमान । रोमलता तन धूम अति चारु चिरान समान ।—केशव (शब्द०) ।

रोमविकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोमहर्ष' [को०] ।

रोमविक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'रोमहर्ष' [को०] ।

रोमशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काष्ठमार्जार । वृत्तगायिका । चमरपुच्छ [को०] ।

रोमश[1]—वि० [सं०] १. रोएँदार । २. ऊनी । ३. क्रिया के सदोष उच्चारण से युक्त ।

रोमश[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेंड़ । मेष । २. शूकर । सुअर । ३. पिंडालु । कुंभी । ४. योनि । भग [को०] ।

रोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दग्धा नाम का वृक्ष । २. बृहस्पति की कन्या लोमशा ।

रोमशातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोओं का उखाड़ना । २. जैनियों का एक तप । केशलुंचन [को०] ।

रोमसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालों को व्यवस्थित रखने के लिये लगाया जानेवाला काँटा ।

रोमहर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रोंगटे खड़े होना । रोमांच । पुलक ।

रोमहर्षण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोयों का खड़ा होना जो आनंद के सहसा अनुभव से अथवा भय से होता है । २. वेदव्यास का शिष्य, सूत पौराणिक ।

रोमहर्षण[2]—वि० जिससे रोंगटे खड़े हों । भयंकर । भीषण । जैसे,—रोमहर्षण घटना ।

रोमांकुर—संज्ञा पुं० [सं० रोमाङ्कुर] दे० 'रोमांच' ।

रोमांच—संज्ञा पुं० [सं० रोमाञ्च] १. आनंद से रोयों का उभर आना । पुलक । २. भय से रोंगटे खड़े होना ।

रोमांचक—वि० [सं० रोमाञ्च+क (प्रत्य०)] रोमांचकारी । भयानक । रोमांच पैदा करनेवाला । उ०—सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक ।—ग्राम्या, पृ० १४ ।

रोमांचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रोमाञ्चिका] रुदंती नाम की लता [को०] ।

रोमांचित—वि० [सं० रोमाञ्चित] १. पुलकित । हृष्टरोमा । २. भय से जिसके रोंगटे खड़े हो गए हों ।

रोमांटिक—वि० [अं० रोमैंटिक] जिसमें रोमांस हो । उ०—तुलसी निषेध के कवि नहीं हैं; वह सहज अपावन नारि के सौंदर्यवर्णन में हर रोमांटिक कवि को परास्त करने के लिये तत्पर हैं ।—प्र० सा०, पृ० ३३ ।

रोमांतिका मसूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० रोमान्तिका मसूरिका] चेचक की तरह का एक रोग जिसमें रोमकूप के समान महीन महीन दाने शरीर भर में निकलते हैं और कई दिनों तक रहते हैं । खाँसी, ज्वर और अरुचि भी रहती है । इस रोग को छोटी माता भी कहते हैं ।

रोमांस—संज्ञा पुं० [अं०] १. प्रणयकथा । प्रेमकहानी । २. साहसिक कथा । ३. वह कथा या घटना जिसमें अद्भुत साहस, प्रेमप्रसंगों आदि का रोमांचक वर्णन हो । ४. प्रणयव्यापार ।

रोमाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] रोएँ की नोक ।

रोमानी—वि० [अं० रोमांस] दे० 'रूमानी' ।

रोमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति । रोमावली । रोमराजी ।

रोमालु—संज्ञा पुं० [सं०] पिंडालु [को०] ।

यौ०—रोमालु विटपी = कुंभी वृक्ष ।

रोमावलि, रोमावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति जो पेट

के बीचोबीच नाभि से ऊपर की ओर गई होती है। रोमाली। रोमराजी। उ०—नाभि ह्रद रोमावली अलि चारु सहज सुभाव। - सूर (शब्द०)।

रोमिल—वि० [सं० रोम + इल (प्रत्य०)] रोएँदार। रोमवाला। उ०—वहाँ गिलहरी दौड़ा करती तरु डालों पर, चंचल लहरी सी मृदु रोमिल पूँछ उठाकर।—ग्राम्या, पृ० ७५।

रोमोद्गम—संज्ञा पुं० [सं०] रोयों का हर्ष या भय से खड़ा होना।

रोमोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] रोमहर्ष।

रोयाँ—संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] बाल जो सब दूध पिलानेवाले प्राणियों के शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं। लोम। रोम।

क्रि० प्र०—**उखड़ना**। —**निकलना**। —**जमना**।

मुहा०—**एक रोयाँ न उखड़ना** = कुछ भी हानि न होना। **रोयाँ खड़ा होना** = हर्ष या भय से रोमकूपों का उभरना। **रोयाँ दुखित होना** = अत्यंत मानसिक वेदना होना। **रोयाँ पसीजना** = हृदय में दया उत्पन्न होना। करुणा होना। तरस होना। तरस आना। उ०—ईगुर भा पहार जौ भीजा। पै तुम्हार नहि रोयँ पसीजा जायसी।—(शब्द०)।

रोर[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रवण] १. बहुत से लोगों के मुँह से निकलकर उठी हुई संमिलित ध्वनि। कलकल। हल्ला। कोलाहल। रौला। शोरगुल। चिल्लाहट। उ०—(क) परी भोर ही रोर लंक गढ़, दई हाँक हनुमान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जिनके जात बहुत दुख पायो, रोर परी एहि खेरे।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**उठना**।—**करना**।—**पड़ना**।—**मचना**।

२. बहुत से लोगों के रोने चिल्लाने का शब्द। उ०—घरी एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा।—जायसी (शब्द०)। ३. धूम। धमासान। उपद्रव। हलचल। आंदोलन।

रोर[२]—वि० १. प्रचंड। तेज। दुर्दमनीय। उ०—(क) देव बंदीछोर, रन रोर केसरीकिसोर, जुग जुग तेरे बर बिरद बिराजे हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ते रन रोर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।—तुलसी (शब्द०)। २. उपद्रवी। उद्धत। दुष्ट। अत्याचारी। उ०—(क) आपनी न बूझै, न कहे को राड़ रोर रे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तालाने को बाँधबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता खरिए जू।—केशव (शब्द०)।

रोरा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० रोड़ा] चूर गाँजा।

रोरा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० रोर] दे० 'रोर'।

रोरी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रोचनी] हलदी चूने से बनी हुई लाल रंग की बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। रोली। उ०—मुख मंडित रोरी रँग सेंदुर माँग छुही।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**लगाना**।

रोरी(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोर] चहल पहल। धूम। उ०—सकल सुढंग अंग भरी भोरी। पिय निर्तत मुसकनि मुख मोरी, परिरंभन रस रोरी।—हरिदास (शब्द०)।

रोरी[३]—वि० [हिं० रूरा] सुंदर। रुचिर। उ०—स्याम तनु राजत पीत पिछोरी। उर बनमाल काछनी काछे, कटि किंकिनि छवि रोरी।—सूर (शब्द०)।

रोरी[४]—संज्ञा पुं० [हिं० रोली] लहसुनिया नग। एक प्रकार का रत्न।

रोरुदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुदन और विलाप।

रोलंब[१]—संज्ञा पुं० [सं० रोलम्ब] १. भ्रमर। भौंरा। भँवर। २. सूखी जमीन।

रोलंब[२]—वि० विश्वास न करनेवाला। अविश्वासी।

रोल(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० रवण, हिं० रोर] १. रोर। हल्ला। कोलाहल। २. शब्द। ध्वनि। उ०—आजु भोर तमचुर की रोल। गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने ढोल।—सूर (शब्द०)।

रोल[२]—संज्ञा पुं० पानी का तोड़। रेला। बहाव।

रोल[३]—संज्ञा सं० [देश०] रुखानी की तरह का एक औजार जिससे बर्तन की नक्काशी की जमीन साफ की जाती है।

रोल[४]—संज्ञा पुं० [सं०] हरा अदरक।

रोल[५]—संज्ञा पुं० [अं०] १. नामों की तालिका या फेहरिस्त। २. नाटक या चलचित्र में अभिनेता की भूमिका। उ०—पंतजी ने एक नए मसीहा का रोल भी अख्तियार किया।—प्र० सा०, पृ० ४९। ३. जीवन में किए जानेवाले विशिष्टताव्यंजक कार्य। जैसे,—पुत्र के चरित्रनिर्माण में माता का रोल महत्वपूर्ण होता है।

रोलनंबर—संज्ञा पुं० [अं०] नामों की तालिका या सूची का क्रम। क्रमसंख्या।

रोलर—संज्ञा पुं० [अं०] १. ढुलकनेवाली वस्तु। बेलन। बेलना। २. छापेखाने में स्याही देने का बेलन।

विशेष—यह सरेस और गुड़ मिलाकर बनता है। इसी पर स्याही लगाकर टाइपों पर फेरा जाता है।

रोलर फ्रेम—संज्ञा पुं० [अं०] बेलन की कमानी।

विशेष - इसमें रोलर लगाकर स्याही तथा टाइपों पर फेरते है। यह लोहे का एक हलका सा घेरा होता है जिसमें एक पेंचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठ की दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़कर सिल पर स्याही पीसते हैं और हरफों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] सरेस का बेलन ढालने का साँचा।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—(१) चोगा, जिसमें से बेलन ठेलकर निकाला जाता है। बेलन ढालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंडी का तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्ड में सरेस न पकड़ ले। (२) दोफाँका, जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देने से रोलर सहज में निकल आता है।

रोला[१]—संज्ञा पुं० [सं० रावण] १. रोर। शोरगुल। कोलाहल। हल्ला। २. घमासान युद्ध।

रोला[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ + १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। किसी किसी का मत है, इसके अंत में दो गुरु अवश्य आने चाहिए, पर यह सर्वसंमत नहीं है।

रोला³—संज्ञा पुं० [देश०] जूठे बरतन माँजने का काम। चौका बरतन करने का काम।

रोली—संज्ञा स्त्री० [सं० **रोचनी**] १. चूने हलदी से बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। श्री।

विशेष—लोहे की कड़ाही में चूने का पानी भरकर उसमें हल्दी खटाई और सोना गलाने का सुहागा डालकर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखाकर छान लेते हैं।

२. एक नग। लहसुनियाँ।

रोवँ—संज्ञा पुं० [हिं० **रोम**] रोम। रोवाँ। लोम। उ०—तेहि समुंद महँ राजा परा। चहै जरै पै रोवँ न जरा।—जायसी ग्रं०, पृ० २२४।

रोवनहार, रोवनहारा(५)—संज्ञा पुं० [हिं० **रोवना + हार = हारा** (प्रत्य०)] १. रोनेवाला। २. किसी के मर जाने पर उसका शोक करनेवाला कुटुंबी। उ०—राम बिमुख अस हाल तुम्हारा रहा न कुल कोउ रोवनहारा।—तुलसी (शब्द०)।

रोवना²—क्रि० अ० [प्रा० **रोवण**] दे० 'रोना'।

रोवना³—वि० [वि० स्त्री० **रोवनी**] १. बहुत जल्दी रोनेवाला। बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। २. हँसी या खेल में भी बुरा मान जानेवाला। चिढ़नेवाला। उ०—तहौ न पायो सुयश आजु रोवना सब बोलै।—विश्राम (शब्द०)।

रोवनिहारा(५)—वि० [हिं०] दे० 'रोवनहारा'। उ०—राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।—मानस, ६।१०३।

रोवनी धोवनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोवना धोना**] रोनी धोनी। रोने धोने की वृत्ति। दुःख या शोक की चेष्टा। मनहूसी। दे० 'रोनी धोनी'। उ०—सुख नींद कहति आली आइहौ। रोवनि धोवनि, अनखानि, अनरसनि डीठि मूठि निठुर नसाइहौं। हँसनि खेलनि, किलकनि आनंदनि भूपति भवन बसाइहौं।—तुलसी (शब्द०)।

रोवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० **रोयाँ**] दे० 'रोयाँ'।

रोवासा—वि० [हिं० **रोवना**] [वि० स्त्री० **रोवासी**] जो रोने पर तैयार हो। जो रो देना चाहता हो।

रोशन—वि० [फ़ा०] १. जलता हुआ। प्रदीप्त। प्रकाशित। जैसे,—चिराग रोशन करना। २. प्रकाशमान। चमकदार। ३. प्रसिद्ध। मशहूर। जैसे, नाम रोशन होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. प्रकट। जाहिर। जैसे,—जो बात है, वह आप पर रोशन है।

मुहा०—किसी पर रोशन होना = किसी पर जाहिर होना। प्रकट होना। मालूम होना।

रोशन चौकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फूँक कर बजाने का एक बाजा। शहनाई का बाजा। नफीरी।

विशेष—इसे प्रायः पाँच आदमी मिलकर बजाते हैं। एक केवल स्वर भरता है, दो उसके द्वारा राग रागिनी का गान करते हैं, एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और एक झाँझ के द्वारा ताल देता है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बाबुओं के द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है। इसी से चौकी कहलाता है।

रोशन जमीर—वि० [फ़ा० **रोशन + ज़मीर**] उज्वल मनवाला। जिसका हृदय स्वच्छ हो। साफदिल। उ०—तब मलूक रोशन जमीर होय पाँव पसारे सोवै।—मलूक०, पृ० ४।

रोशनदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रकाश आने का छिद्र। गवाक्ष। मोखा।

रोशनाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अक्षर लिखने की स्याही। काली। मसि। स्याही। २. प्रकाश। रोशनी। उजाला। उ०—घाट घाट बाट बाट हाट हाट दीप ठाठ जागी रोशनाई जगती के ग्राम ग्राम में।— रघुराज (शब्द०)।

रोशनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. उजाला। प्रकाश। २. दीपक। चिराग। जैसे,—रोशनी लाओ तो सूझे। ३. दीपमाला का प्रकाश। दीपकों की पंक्ति का उजाला। जैसे,—इस खुशी में शहर भर रोशनी हुई। ४. ज्ञान का प्रकाश। शिक्षा का प्रकाश। जैसे,—नई रोशनी के युवक।

रोष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रुष्ट] १. क्रोध। कोप। गुस्सा। २. चिढ़। कुढ़न। ३. बैर। विरोध। द्वेष। उ०—भूलि गयो सब सों रस रोष मिटैं भव के भ्रम रैनि बितो।—केशव (शब्द०)। ४. लड़ाई की उमंग। जोश। उ०—विगत जलद नभ नील खड्ग यह रोष बढ़ावत।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

रोषण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. कसौटी। ३. ऊसर जमीन।

रोषण²—वि० [वि० स्त्री० रोषणी] क्रोध करनेवाला। क्रुद्ध।

रोषणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोध। कोप। रोषयुक्त होना [को०]।

रोषान्वित—वि० [सं०] क्रुद्ध।

रोषित—वि० [सं०] क्रुद्ध। नाराज। रुष्ट।

रोषी—वि० [सं० **रोषिन्**] रोषयुक्त। क्रोधी। गुस्सावर। उ०—तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अति रोषी।—तुलसी (शब्द०)।

रोस¹—संज्ञा पुं० [सं० **रोष**] दे० 'रोष'।

रोस²—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रौस**] दे० 'रौस'।

रोसना(५)—क्रि० स० [हिं० **रोस + ना** (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। उ०—मुरगी को मोसता है, बकरी को रोसता है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४०४।

रोसनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोशनाई**] दे० 'रोशनाई'।

रोसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **रोशनी**] दे० 'रोशनी'।

रोसा—संज्ञा पुं० [सं० **रोहिश**] रुसा नामक सुगंधित घास।

रोसार—वि० [सं० **रोषालु**] प्रकृति से क्रोधी। रोषयुक्त।

रोसारी(५)—वि० [हिं० **रोसार + ई** (प्रत्य०)] रोष करनेवाला। उ०—धूहड़ तजै तखत छत्रधारी। रायपाल प्रतपै रोसारी।—रा० रू०, पृ० १३।

रोहंत—संज्ञा पुं० [सं० रोहन्त] १. एक प्रकार का वृक्ष । २. विटप । वृक्ष । पेड़ (को०) ।

रोहंती—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहन्ती] लता । वल्ली ।

रोह[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढ़ना । चढ़ाई । २. कली । कुड्मल । ३. अंकुर । अँखुवा । ४. निकलना । उगना । अंकुरित होना (को०) । ५. उत्पत्ति का निदान या निमित्त (को०) । ६. सवार (को०) ।

रोह[२]—संज्ञा पुं० [सं० ऋश्य, प्रा० रोज्भ, रोह] नील गाय । उ०—रोह मृगा संशय बन हाँके पारथ बाना मेलै ।—कबीर (शब्द०) ।

रोहⓅ**[३]**—संज्ञा पुं० [सं० रोह (= अंकुर) अथवा रोध(= रोक)] घाव भरने के समय बँधनेवाली पपड़ी । अंगूर । अकुर । उ०—विरह कुल्हारी तन बहै, घाव न बाँधे रोह । मरने का संसय नहीं, छूट गया भ्रम मोह ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४७ ।

रोहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढ़नेवाला । २. रथ, घोड़े आदि पर सवारी करनेवाला । सवार । ३. एक प्रकार का प्रेत (को०) ।

रोहग—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल द्वीप का एक पहाड़ जिसे अब 'आदम की चोटी' कहते हैं । विदूराद्रि ।

रोहजⓅ—संज्ञा पुं० [डिं०] नेत्र ।

रोहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढ़ना । चढ़ाई । २. ऊपर को बढ़ना । ३. (पौधे का) उगना । जमना । अंकुरित होना । ४. शुक्र । वीर्य । ५. एक राजा का नाम । ६. विदूराद्रि पर्वत । रोहग पर्वत ।

रोहणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन का वृक्ष ।

रोहन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे सूहन और सूमी भी कहते हैं ।

विशेष—यह बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्यभारत के जंगलों में बहुत होता है । इसकी लकड़ी मकानों में लगती है और मेज, कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । हीर की लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिए काले रंग की होती है । शिशिर में यह पेड़ पत्ते झाड़ता है ।

रोहनाⓅ**[१]**—क्रि० अ० [सं० रोहण] १. चढ़ना । २. ऊपर की ओर जाना । ३. सवार होना ।

रोहना[२]—क्रि० स० १. चढ़ाना । ऊपर करना । २. सवार कराना । ३. अपने ऊपर रखना । धारण करना । उ०—एक दमयंती ऐसी हरै हँसि हंस, बंस, एक हंसिनी सी विष हार हिये रोहिए ।—केशव (शब्द०) ।

रोहारोहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना] रुदन । विलाप । क्रंदन । उ०—हाहाकार मच गया रोहारोहट की आवाजें आने लगीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८ ।

रोहि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । पेड़ । २. बीज । २. व्रती । तपस्वी । ४. एक प्रकार का मृग (को०) ।

रोहिⓅ**[२]**—संज्ञा पुं० [सं० रोहिन्] मार्ग । राह । जिसपर चढ़ा जाय । उ०—सँकरे रोहि मिलि गज सुरेह ।—पृ० रा०, ५७।२३ ।

रोहिण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल । २. गूलर । ३. रोहिस घास । ४. दिन का दूसरा पहर । पंद्रह भागों में विभक्त दिन का नवाँ मुहूर्त जिसमें श्राद्धादि कृत्य किए जाते हैं । ५. वट वृक्ष । बरगद ।

रोहिणका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोध से लाल स्त्री । २. लाल मुख-वाली स्त्री । ३. गले की जलन (को०) ।

रोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाय । २. तड़ित् । बिजली । ३. कटुंभरा । कटुका । तिक्ता । कुटकी । ४. करंज । कंजा । ५. रीठा । ६. महाश्वेता । सफेद कौवाठोंठी । ७. लोहिता । रक्तपुनर्नवा । लाल गदहपूरना । ८. जैनों की विद्यादेवी । ९. काश्मरी । कंभारी । गभारी । १०. छोटी लंबी पीली हड़ जो गोल न हो । (इसे 'अरुरोहिणी' भी कहते हैं) । ११. धैवत स्वर की तीन श्रुतियों में दूसरी श्रुति । १२. रोहू की तरह एक मछली जिसमें काँटे कम होते हैं । १३. मंजिष्ठा । मजीठ । १४. वसुदेव की स्त्री रोहिणी जो बलराम की माता थीं । १५. नौ वर्ष की कन्या की संज्ञा । (स्मृति) । १६. पाँच वर्ष की कुमारी । १७. सत्ताईस नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र जो पाँच तारों से मिलकर बना हुआ और रथ की आकृति का माना गया है । पुराणों के अनुसार यह दक्ष की कन्याओं में से है और चंद्रमा की स्त्री है । १८. काली बूटी । १९. गले का एक रोग । २०. त्वचा की छठी परत ।

रोहिणीकांत—संज्ञा पुं० [सं० रोहिणीकान्त] 'रोहिणीपति' ।

रोहिणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । शशि । २. वसुदेव । ३. वृषभ । बैल (को०) ।

रोहिणीयोग—संज्ञा पुं० [सं०] आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में रोहिणी का चद्रमा के साथ योग ।

रोहिणीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोहिणीपति' ।

रोहिणीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोहिणीपति' ।

रोहिणीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसुदेव । २. चंद्रमा ।

रोहिण्यष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिणी + अष्टमी] भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की रोहिणी नक्षत्र से युक्त अष्टमी तिथि जिस समय कृष्ण ने जन्म लिया था (को०) ।

रोहित्[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. एक प्रकार की मछली (को०) । ३. एक प्रकार का रंग (को०) ।

रोहित्[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मृगी । २. एक लता । ३. लाल रंग की घोड़ी । बड़वा । ४. नदी ।

रोहित[१]—वि० [सं०] लाल रंग का । रक्तवर्ण । लोहित ।

रोहित[२]—संज्ञा पुं० १. लाल रंग । २. रोहू मछली । ३. एक प्रकार का मृग । ४. रोहितक नाम का पेड़ । ५. इंद्रधनुष । ६. कुसुम का फूल । बर्रे का फूल । ७. केसर । कुंकुम । ८. रक्त । लहू । खून । ९. वाल्मीकि रामायण के अनुसार गंधर्वों की एक

जाति । १०. लोमड़ी (को०) । ११. लाल रंग का घोड़ा (को०) । १२. राजा हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम ।

रोहितक—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहित का पेड़ । रोहेड़ा । कूट शाल्मली । २. महाभारतकालीन एक गणराज्य तथा उसके निवासी (को०) ।

रोहितवाह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

रोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जैनों के अनुसार हैमवत् की एक नदी का नाम । २. रागादि से रक्त दर्शवाली स्त्री (को०) ।

रोहिताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. राजा हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम । ३. एक प्राचीन गढ़ का नाम जो सोन के किनारे पर था । रोहतासगढ़ ।

रोहितास्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम ।

रोहितिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रागादि से रक्त वर्णवाली स्त्री ।

रोहितेय—संज्ञा पुं० [सं०] रोहित वृक्ष । रोहेड़ा ।

रोहिनिधवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रोहिणी+धव] दे० 'रोहिणीपति' । —अनेकार्थ०, पृ० ३० ।

रोहिनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिणी] दे० 'रोहिणी' ।

रोहिनेयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० रौहिणेय] दे० 'रौहिणेय' ।—अनेकार्थ०, पृ० ४८ ।

रोहिश—संज्ञा पुं० [सं०] रूसा या रोहिष नामक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है ।

रोहिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूसा घास । २. रोहू मछली । ३. एक प्रकार का मृग जो गधे से मिलता जुलता होता है ।

रोही[1]—वि० [सं० रोहिन्] [वि० स्त्री० रोहिणी] १. रोहण करनेवाला चढ़नेवाला २. लंबा । ऊँचा (को०) ।

रोही[2]—संज्ञा पुं० १. गूलर का पेड़ । २. पीपल का पेड़ । ३. एक प्रकार का मृग । रोहिप । ४. रोहिष या रूसा घास । ५. कूट शाल्मली । रोहित का पेड़ । रुहेड़ा । ६. रोहू मछली । ७. वट वृक्ष । बरगद का पेड़ ।

रोही[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक हथियार । उ०—तेगा, असील रोही । सिप्पर कि दो सिरोही ।—सूदन (शब्द०) ।

रोहीⓅ[4]—संज्ञा पुं० [सं० रोहि (=वृक्ष)] जहाँ वृक्ष हो, वन । जंगल । उ०—रोही मझि डेरा किया ऊजल जलधर देखि ।—ढोला०, पृ० ५९८ ।

रोहीतक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक नाम का वृक्ष । रोहेड़ा ।

रोहुल—संज्ञा पुं० [देश०] रोहन नाम का पेड़ ।

रोहू—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिष] १ एक प्रकार की बड़ी मछली ।

विशेष—इसका मांस अति स्वादिष्ट होता है । इसके सिरे को लोग अत्यंत स्वादिष्ट बताते हैं । इसके ऊपर सेहरा होता है ।

२. एक वृक्ष जो पूर्व हिमालय में, विशेषत: दारजिलिंग में, होता है ।

रौंग—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद कीकर ।

रौंट† संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना] १. खेल या हँसी में बुरा मानना या रोना । जैसे,—तुमसे क्या खेलें, तुम तो खेल में रौंट करते हो । २. चिढ़कर बेईमानी करना ।

क्रि० प्र०—करना ।

रौंद[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं रौंदना] रौंदने का भाव या क्रिया ।

रौंद[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० राउंड] चक्कर । गश्त । (सिपाही) ।

मुहा०—रौंद पर जाना = गश्त के लिये निकलना ।

रौंदन—संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] रौंदने की क्रिया या भाव । मर्दन ।

रौंदना—क्रि० स० [सं० मर्दन (=पीड़ित करना) या रुन्धन] १. पैरों से कुचलना । मर्दित करना । पददलित करना । जैसे,—(क) मिट्टी रौंदना । (ख) तुमने सारे पौधों को रौंद डाला । उ०—माटी कहै कुम्हार सों तू क्या रौंदे मोहिं । एक दिन ऐसा होयगा मैं रौंदौंगी तोहि ।—कबीर (शब्द०) । २. बरबाद करना । नष्ट भ्रष्ट करना । तहस नहस करना ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।

३. लातों से मारना । खूब पीटना ।

रौंदी†—संज्ञा स्त्री० [सं० रुंधन हिं० रौंदना] चौपायों के रहने का घेरा । चौपायों के रहने का बाड़ा ।

रौंनⓅ—वि० [सं० रमण] रमण करनेवाला । विलासी । विलास करनेवाला । उ०—बिभचारणी यौं कहत है मेरो पिय अति रौंन । सुंदर पतिव्रता कहै तेरी जिह्वा लौन ।—सुंदर ग्रंथ०, भा० २, पृ० ६९२ ।

रौंस—संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंस] दे० 'रौस' । उ०—कुंजन कुंजन, रौंस रौंस पै अब तू नैंकु न डोल रे ।—श्वासि, पृ० ८२ ।

रौंसा—संज्ञा पुं० [सं० लोमश, रोमश (=रोएँवाला)] १. केवाँच । २. केवाँच के बीज । ३. लोबिया । बोड़ा । ४. लोबिया के बीज ।

रौ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ गति । चाल । रफ्तार । २. वेग । झोंक । जैसे,—उसकी रौ के सामने जो कुछ पड़ेगा, वह सब समेट लेगा । ३. पानी का बहाव । तोड़ । ४. किसी बात की धुन । किसी काम के करने की झोंक । वेग से चलता हुआ सिलसिला । जैसे,—बात की रौ में मैंने ध्यान नहीं दिया । ५. चाल । ढंग ।

रौⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० रव] दे० 'रव' ।

रौⓅ[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

रौक्म—वि० [सं०] [वि० स्त्री० रौक्मी] १. रुक्म संबंधी । २. सोने का बना हुआ ।

रौक्मिणेय—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के पुत्र । प्रद्युम्न [को०] ।

रौक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूखापन । रुखाई । रूक्षता । २. कठोरता (को०) । ३. निर्धनता (को०) ।

रौखुर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो बाढ़ की बालू पड़ने से खराब हो गई हो ।

रौगन—संज्ञा पुं० [अ० रौग़न] १. तेल । २. लाख आदि का बना

हुआ पक्का रंग जो चीजों पर चमक आदि लाने के लिये चढ़ाया जाता है।

रौगनी—वि० [अ० रौग़नी] १. तेल का। २. रोगन फेरा हुआ। जिसपर लाख आदि का पक्का रंग चढ़ाया गया हो। जैसे,—रौगनी बरतन।

रौचनिक[1]—वि० [सं०] १. गोरोचन या रोली संबंधी। २. गोरोचन या रोली से रँगा हुआ। ३. गोरोचन के रँग का।

रौचनिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों पर जमी हुई मैल।

रौच्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल्वदंड धारण करनेवाला संन्यासी। २. एक मनु। तेरहवें मनु का नाम (को०)। ३. बेल के पेड़ का पंचांग अर्थात् जड़, डाली, पत्ती, फूल, फल (को०)।

रौजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० रौज़न] १. छिद्र। बिल। सूराख। २. दरार। दरज। ३. गवाक्ष। मोखा। रोशनदान।

रौजा—संज्ञा पुं० [अ० रौज़ह्] १. बाग। बगीचा। २. बड़े पीर, बादशाह या सरदार आदि की कब्र के ऊपर बनी हुई इमारत। बड़े लोगों की कब्र। समाधि। जैसे,—ताज बीबी का रौजा।

रौत†—संज्ञा पुं० [हिं० रावत] ससुर। श्वसुर।

रौताइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० राव, रावत] १. राव या रावत की स्त्री। ऊँचे पद की स्त्री। ठकुराइन। २. स्त्रियों के लिये आदरसूचक संबोधन। ३.† कहार की स्त्री। कहारिन।

रौताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० रावत+आई (प्रत्य०)] १. राव या रावत होने का भाव। २. राव या रावत का पद। ठकुराई। सरदारी। उ०—(क) दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मीठो अरु कठवति भरो, रौताई अरु पेम।—तुलसी (शब्द०)। (ग) रौताई औ कूसल पेमा।—जायसी (शब्द०)।

रौदा†—संज्ञा पुं० [हिं० रोदा] दे० 'रोदा'।

रौद्र[1]—वि० [सं०] १. रुद्र संबंधी। २. अत्यंत उग्र और प्रचंड। भयंकर। डरावना। ३. क्रोधपूर्ण या क्रोधसूचक। गजबनाक।

रौद्र[2]—संज्ञा पुं० १. क्रोध। गुस्सा। रोष। २. काव्य के नौ रसों में से एक जिसमें क्रोधसूचक शब्दों और चेष्टाओं का वर्णन होता है। ३. धूप। घाम। ४. यमराज। ५. ग्यारह मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर १४४ हो सकते हैं। ६. साठ संवत्सरों में से ५४वाँ संवत्सर। ७. एक प्रकार का अस्त्र। ८. एक केतु जिसकी चोटी नोकीली और ताम्रवर्ण कही गई है।

रौद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार आकाश के पूर्व-दक्षिण मार्ग में शूल के अग्रभाग के समान कपिश (कपासी), रूक्ष (रूखा), ताम्रवर्ण किरणों से युक्त और आकाश के तीन भाग तक में गमन करनेवाला एक केतु।

रौद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डरावनापन। भयंकरता। भीषणता। २. प्रचंडता। प्रखरता। उग्रता।

रौद्रदर्शन—वि० [सं०] देखने में डरावना। भयंकर रूप का। भीषण आकृति और चेष्टावाला।

रौद्रार्क—संज्ञा पुं० [सं०] २३ मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर ४६,३६८ प्रकार के हो सकते हैं।

रौद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्र की पत्नी, गौरी। देवी। २. गांधार स्वर की दो श्रुतियों में से पहली श्रुति।

रौन(५)—संज्ञा पुं० [सं० रमण] दे० 'रमण'।

रौनक—संज्ञा स्त्री० [अ० रौनक़] १. वर्ण और आकृति। रूप। २. चमक दमक। तेज। दीप्ति। कांति। जैसे—चेहरे पर रौनक होना। ३. प्रफुल्लता। विकास। जैसे—सुनते ही चेहरे की रौनक उड़ गई। ४. शोभा। छटा। चहल पहल। सुहावनापन। जैसे—व्यापार गिर जाने से शहर की रौनक जाती रही।

यौ०—**रौनक अफरोज**=रौनक बढ़ानेवाला। शोभावृद्धि करनेवाला। उ०—दरबार में रौनक अफरोज हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७। **रौनकदार**। **रौनके महफिल**=समाज या महफिल की शोभा बढ़ानेवाला।

रौनकदार—वि० [अ० रौनक़+फा० दार (प्रत्य०)] रौनकवाला। शोभायुक्त (को०)।

रौना[1]—संज्ञा पुं० [सं० रमण] द्विरागमन। गौना। मुकलावा।

रौना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० रोना] दे० 'रोना'। उ०—टौना आँखि बस करन कौ करे हेत इन जाइ। अब उलटे रौना परयो गरै दृगन के आइ।—रसनिधि (शब्द०)।

रौनी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० रमणी, प्रा० रवनी] दे० 'रमणी'।

रौप्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी। रूपा।

रौप्य[2]—वि० चाँदी का बना हुआ। चाँदी का। रूपे का।

रौप्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० रौप्य+ता] रुपहलापन। सफेदी। उ०—रात की इस चाँदनी की रौप्यता कुछ खो गई है।—अपलक, पृष्ठ ८९।

रौमक—संज्ञा पुं० [सं०] साँभर नमक।

रौमलवण—संज्ञा पुं० [सं०] साँभर नमक।

रौर(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० रोर] दे० 'रार'। उ० बालक धुनि सुनि परी जु रौर। उठे पहरुआ ठौरहिं ठौर।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

रौरव[1]—वि० [सं०] १. भयंकर। डरावना। घोर। २. बेईमान, धूर्त। कपटी। ३. बात पर दृढ़ न रहनेवाला। चंचल। ४. रुरु मृग संबंधी।

रौरव[2]—संज्ञा पुं० एक भीषण नरक का नाम जो २१ नरकों में से पाँचवाँ कहा गया है।

रौरा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं रौला] दे० 'रौला'।

रौरा†[2]—सर्व० [हिं० रावरा] [स्त्री० रौरी] आपका।

रौराना†—क्रि० स० [हिं० रोर, रौरा] प्रलाप करना। व्यर्थ बोलना या हल्ला करना। बहकना। उ०—अब यह और सृष्टि बिरहिन की बकत बाइ रौरानी।—सूर (शब्द०)।

रौरे†—सर्व० [हिं० राव, रावल, रावर] आप (आदर वा संबोधन) उ०—भलउ कहत दुख रौरेहि लागा।—तुलसी (शब्द०)।

रौल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'रौलि'।

रौला—संज्ञा पुं० [सं० रवण] १. हल्ला। गुल। शोर। हुल्लड़। धूम। २. ऊधम। हलचल।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

रौलि†—संज्ञा स्त्री० [देश०] धौल। चपत। झापड़। तमाचा। उ०—बाँका गढ़ बाँका मता बाँकी गढ़ की पौलि। काढ़ि कबीरा नीकसा जम सिर घाली रौलि।—कबीर (शब्द०)।

रौलेबाजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रौला] चिल्लपों। हुल्लड़बाजी। ऊधम।

रौशन—वि० [फ़ा० रोशन] दे० 'रोशन'।

रौशनदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० रोशनदान] दे० 'रोशनदान'।

रौशनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रोशनी] दे० 'रोशनी'।

रौस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रविश] १. गति। चाल। २. रंग ढंग। तौर तरीका। चाल ढाल। ३. बाग की पटरी। बाग की क्यारियों के बीच का मार्ग। उ०—रौस हौज बहु कटी कियारी। चौक चारु चहुँ कित चित हारी।—रघुराज (शब्द०)।

रौसली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिकनी उपजाऊ मिट्टी। डाकर।

रौसा—संज्ञा पुं० [हिं० रौंसा] दे० 'रौंसा'।

रौहाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घोड़े की एक चाल। २. घोड़े की एक जाति। उ०—यदपि तेज रौहाल बर लगी न पलकौ बार। तउ ग्वैडौं घर कौ भयौ पैंडौ कोस हजार।—बिहारी (शब्द०)।

रौहिण[१]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० रौहिणी] रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न [को०]।

रौहिण[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन वृक्ष। २. श्रीकृष्ण, जो रोहिणी नक्षत्र में जनमे थे। ३. गूलर का वृक्ष (को०)। ४. अग्नि का नाम (को०)।

रौहिणिक—संज्ञा पुं० [सं०] रत्न। मणि आदि।

रौहिणेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिणी के पुत्र, बलराम। २. बुध ग्रह। ३. पन्ना। मरकत। ४. गाय का बछड़ा। ५. शनि ग्रह का नाम (को०)।

र्‍यासद†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रियासत] दे० 'रियासत'। उ०—दुर्जन दुरासद वर सभासद विश्व रचासद शाह हैं।—रघुराज (शब्द०)।

र्‍योरी, र्‍यौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० रेवड़ी] दे० 'रेवड़ी'।

र्‍वाब†—संज्ञा पुं० [फ़ा० रुअब] रुआब। रोब।

ल

ल—व्यंजन वर्ण का अट्ठाईसवाँ वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंत है। इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं। यह अल्पप्राण है।

लंक[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्क] कमर। कटि। उ०—अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भटै मधुरी डग लंक लफै।—घनानंद, पृ० २०६।

लंक[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कन] लंका नामक द्वीप। उ०—कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष विषाद विवस सुरलोकू।—मानस, २।८१।

विशेष—इस रूप में इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है। जैसे,—लंकनाथ, लंकपति।

लंकटंकटा—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कटङ्कटा] १. सुकेश राक्षस की माता और विद्युत्केश की कन्या का नाम। २. संध्या की कन्या का नाम।

लकनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० लंक+सं० नाथ] १. रावण। २. विभीषण। उ०—तब लंकनाथ रिसाय कै। भो चलत लव पहँ धाय कै।—लवकुशचरित्र (शब्द०)।

लंकनायक—संज्ञा पुं० [हिं० लंक सं० नायक] दे० 'लंकनाथ'। उ० जाति वानर लकनायक दूत अंगद नाम है।—केशव (शब्द०)।

लंकलाट—संज्ञा पुं० [अं० लॉंगक्लाथ] एक प्रकार का मोटा बढ़िया कपड़ा जो प्रायः धुला हुआ होता है। उ०—नीचे लंकलाट का चूड़ीदार पैजामा और ऊपर कत्थई रंग की बनिआइन पहने थे।—जिप्सी (अनुक्रमणिका), पृ० १।

लंका—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्का] १. भारत के दक्षिण का एक टापू जहाँ रावण का राज्य था। लोगों का विश्वास है कि रावण के समय यह टापू सोने का था। २. शिंबी धान्य। द्विदल अन्न। ३. असबरग। स्पृक्का। ४. काला चना। ५. शाखा। डाली। ६. असती नारी। वेश्या। पुंश्चली (को०)।

लंकादाही—संज्ञा पुं० [सं० लङ्कादाहिन्] हनुमान।

लंकाधिप—संज्ञा पुं० [सं० लङ्काधिप] दे० 'लंकाधिपति' [को०]।

लंकाधिपति—संज्ञा पुं० [सं० लङ्काधिपति] १. रावण। २. विभीषण।

लंकानाथ—संज्ञा पुं० [सं० लङ्कानाथ] दे० 'लंकापति'।

लंकापति—संज्ञा पुं० [सं० लङ्कापति] १. रावण। २. विभीषण। उ०—भेटचौ हरि भरि अंक भरत ज्यौं लंकापति मनु भायो।—तुलसी (शब्द०)।

लंकापिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कापिका] दे० 'लंकायिका' [को०]।

लंकायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कायिका] असबरग। स्पृक्का।

लंकारि—संज्ञा पुं० [सं० लङ्कारि] रामचंद्र।

लंकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कारिका] दे० 'लंकायिका' [को०]।

लंकाल(५)†—संज्ञा पुं० [सं० लङ्क+हिं० आल ?] १. सिंह। शेर। २. वीर। योद्धा। उ०—जूटा भाटी जंग मैं, कमधाँ छल लंकाल।—रा० रू०, पृ० २८४।

लंकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्किनी] रामायण के अनुसार एक राक्षसी जिसे हनुमान जी ने लंका में प्रवेश करते समय घूसों से मार डाला था। उ०—नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।—मानस, ६।७।

लंकीस†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंक] कटि। कमर। लंक। उ०—अलप केस कुच सूत्र थूलदंती उच्चारन। थूल उदर लंकीस थूल किसलंग बारन।—पृ० रा०, २५।१२६।

लंकूरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गूली] लंगूर।

लंकेश—संज्ञा पुं० [सं० लङ्केश] १. रावण। २. विभीषण।

लंकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० लङ्केश्वर] १. रावण। २. विभीषण।

लंकेसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० लङ्केश] विभीषण। उ०—सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे।—मानस, ६।४६।

लंकेसर†—संज्ञा पुं० [सं० नागकेसर ? या देश०] एक प्रकार के फूल का पौधा। उ०—उसमें लंकेसर, तारा, मधुरी और गेंदा के पौधे लगाए।—नई०, पृ० ८०।

लंकेसुरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० लंकेश्वर] रावण। उ०—मन नहचै लंकेसुर मारण।—रघु० रू०, पृ० १७८।

लंकोई—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कोटिका] दे० 'लंकोदक'।

लंकोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्कोटिका] दे० 'लंकोदक' [को०]।

लंकोदक—संज्ञा पुं० [सं० लङ्कोदक] असबरग। स्पृक्का।

लंखनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्खनी] लगाम का वह भाग जो घोड़े के मुँह में रहता है [को०]।

लंग[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाँग] दे० 'लाँग'। उ०—लोगन की लंग ज्यौं लुगाइन की लाग री।—देव (शब्द०)।

लंग[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लँगड़ापन।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

२. वह जो पंगु हो। लँगड़ा व्यक्ति वा प्राणी (को०)। लिंग। शिश्न (को०)।

लंग[3]—संज्ञा पुं० [सं० लङ्ग] १. स्त्री का यार। उपपति। २. मेल। मिलन (को०)। ३. खंजता। पंगुता। लँगड़ापन (को०)।

लंगक—संज्ञा पुं० [सं० लङ्गक] स्त्री का यार। उपपति।

लंगड़[1]—वि० [सं० लङ्ग+हिं० ड़ (प्रत्य०)] दे० 'लँगड़ा'।

लंगड़[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० लंगर] दे० 'लंगर'।

लंगन—संज्ञा पुं० [सं० लङ्घन] लाँघना। लाँघकर पार करना [को०]।

लंगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्गनी] वह डोरी या डंडा जिसपर कपड़े टाँगे जाते हैं। अलगनी [को०]।

लंगर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०। मि० अं० एन्कर] १. बड़ी बड़ी नावों या जहाजों को रोक रखने के लिये लोहे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत बड़ा काँटा।

विशेष—इस काँटे या लंगर के बीच में एक मोटा लंबा छड़ होता है, और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी झुकी हुई नुकीली शाखाएँ और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है। इसका व्यवहार बड़ी बड़ी नावों या जहाजों को जल में किसी एक ही स्थान पर ठहराए रखने के लिये होता है। इसके ऊपर कड़े में मोटा रस्सा या जंजीर आदि बाँधकर इसे नीचे पानी में छोड़ देते हैं। जब यह तल में पहुँच जाता है, तब इसके टेढ़े अँकुड़े जमीन के ककड़ पत्थरों में अड़ जाते हैं, जिसके कारण नाव या जहाज उसी स्थान पर रुक जाता है, और जबतक यह फिर खींचकर ऊपर नहीं उठा लिया जाता, तबतक नाव या जहाज आगे नहीं बढ़ सकता।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—छोड़ना।—डालना।—फेंकना।—होना।

यौ०—लंगरगाह।

२. लकड़ी का वह कुंदा जो किसी हरहाई गाय के गले में रस्सी द्वारा बाँध दिया जाता है। इसके बाँधने से गाय इधर उधर भाग नहीं सकती। ठेंगुर। ३. रस्सी या तार आदि से बँधी और लटकती हुई कोई भारी चीज जिसका व्यवहार कई प्रकार की कलों में और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदि में होता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—हिलाना।

विशेष—इस प्रकार का लंगर प्रायः निरंतर एक ओर से दूसरी ओर आता जाता रहता है। कुछ कलों में इसका व्यवहार ऐसे पुरजों का भार ठीक रखने में होता है, जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधर उधर हटते बढ़ते रहते हैं, बड़ी घड़ियों में जो लंगर होता है, वह चाभी दी हुई कमानी के जोर से एक सीधी रेखा में इधर से उधर चलता रहता है और घड़ी की गति ठीक रखता है।

४. जहाजों में का मोटा बड़ा रस्सा। ५. लोहे की मोटी और भारी जंजीर। उ०—हाथी ते उररि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में।—भूषण (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

६. चाँदी का बना हुआ तोड़ा जो पैर में पहना जाता है। इसकी बनावट जंजीर की सी होती है। ७. किसी पदार्थ के नीचे का वह अंश जो मोटा और भारी हो। ८. कमर के नीचे का भाग। ९. अंडकोश। (बाजारू)। १०. पहलवानों का लँगोट।

मुहा०—लंगर बाँधना = (१) पहलवानी करना। (२) ब्रह्मचर्य धारण करना। लंगर लँगोट कसना या बाँधना = लड़ने को तैयार होना। लंगर लँगोट (किसी को) देना या आगे रखना = पहलवानी सीखने के लिये किसी पहलवान का शिष्य बनना।

११. वह (स्थान या व्यक्ति आदि) जिसके द्वारा किसी को किसी प्रकार का आश्रय या सहारा मिलता हो। (क्व०)। १२. कपड़े में के वे टाँके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा अथवा एक साथ सीए जानेवाले दो कपड़े अपने स्थान से हट न जायँ।

विशेष—इस प्रकार के टाँके पक्की सिलाई करने से पहले डाले जाते हैं, और इसीलिये इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—तोड़ना ।—भरना ।

१३. वह उभड़ी हुई रेखा जो अंडकोश के नीचे के भाग से आरंभ होकर गुदा तक जाती है। सीयन। सीवन। १४. वह पका हुआ भोजन जो प्राय: नित्य किसी निश्चित समय पर दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटा जाता है।

क्रि० प्र०—देना ।—बाँटना ।—लगाना ।

यौ०—लंगरखाना।

१५. वह स्थान जहाँ दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटने के लिये भोजन पकाया जाता हो। १६. वह स्थान जहाँ बहुत से लोगों का भोजन एक साथ पकता हो।

लंगर²—वि० १. जिसमें अधिक बोझ हो। भारी। वजनी। २. शरीर। नटखट। ढीठ। उ०—(क) लरिका लैबे के मिसन लंगर मो ढिग आय। गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) सूर श्याम दिन दिन लंगर भयो दूरि करौं लँगरैया।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—लगर करना = शरारत या ढिठाई करना। उ०—बोलि लियो बलरामहिं यशुमति। आवहु लाल सुनहु हरि के गुण कालिहि ते लँगर्‌यो करत अति।—सूर (शब्द०)।

लंगर³—वि० [हिं० लँगडा] दे० 'लँगड़ा'।

लंगरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० लंगरखानह्] वह स्थान जहाँ से दरिद्रों को बना बनाया भोजन बाँटा जाता हो।

लंगरगाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] किनारे पर का वह स्थान जहाँ लंगर डालकर जहाज ठहराए जाते हैं।

लंगल—संज्ञा पुं० [सं० लङ्गल] हल (को०)।

लंगा‡—वि० [सं० नग्न] १. नंगा। वस्त्ररहित। नग्न। उ०—पय पीवहि फल करहि अहारा। लंगा फिरे तन रहे उघारा।—सत० दरिया, पृ० ५६। २. युद्ध के लिये सदा सन्नद्ध। जिसका स्वभाव लड़ाई करने का हो।

लंगिमा—संज्ञा पुं० [सं० लङ्गिमन्] १. सौंदर्य। शोभा। सुंदरता। २. मेल। संगम। समागम (को०)।

लंगुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्गुरा] एक प्रकार का अन्न। प्रियंगु (को०)।

लंगूर—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गूली] १. बंदर। २. पूँछ। दुम। (बंदर की)। ३. एक विशेष प्रकार का बंदर।

विशेष—लँगूर साधारण बंदर से बड़ा होता है और इसकी पूँछ बहुत अधिक लंबी होती है। इसके सारे शरीर पर सफेद रंग के रोएँ होते हैं और मुँह, हाथ की हथेलियाँ तथा पैर के तलवे और उँगलियाँ आदि काली होती हैं।

लंगूरफल—संज्ञा पुं० [हिं० लंगूर + सं० फल] नारियल। उ०—बानरमुख लंगूरफल नारिकेलि सुभ काम। ये तरुनी के नारियर तो कहँ करत प्रनाम।—नंददास (शब्द०)।

लंगूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगूर + ई (प्रत्य०)] १. घोड़े की एक चाल जिसमें वह उछल उछलकर चलता है। २. वह इनाम जो चोरों को उस समय दिया जाता है, जब वे चोरी गए हुए मवेशियों का पता लगा देते हैं।

लंगूल—संज्ञा पुं० [सं० लङ्गूल] लांगूल। पूँछ। दुम।

लंगेतंगे—क्रि० वि० [फ़ा० नंगतंग] साधनहीन स्थिति में। जैसे तैसे करके। येन केन प्रकारेण। उ०—लंगे तंगे पाँच छः महीने कट जायँगे।—गोदान, पृ० १०७।

लंघक—वि० [सं० लङ्घक] १. लाँघनेवाला। अतिक्रमण करनेवाला। २. नियम का भंग करनेवाला। कायदा तोड़नेवाला।

लंघन—संज्ञा पुं० [सं० लङ्घन] १. उपवास। अनाहार। फाका। कुछ न खाना। उ० (क) जिन नैनन को है सही मोहन रूप अहार। तिनको वैद बतावहीं लंघन को उपचार।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) धाम धाम माँगै भीख लंघन सुनाई है।—रघुराज (शब्द०)। २. लाँघने की क्रिया। डाँकना। ३. अतिक्रमण। ४. घोड़े की एक चाल जिसमें वह बहुत तेज चलता है। ५. वह उपाय जिससे किसी काम में लाघव या सुभीता हो। ६. संभोग। संप्रयोग (को०)।

लंघनक—संज्ञा पुं० [सं० लङ्घनक] १. वह जिसके द्वारा लाँघा जाय। सेतु। पुल।

लंघना(पु)¹ क्रि० स० [सं० उल्लङ्घन या लङ्घन = लाँघने की क्रिया] किसी वस्तु के ऊपर से होकर इस ओर से उस ओर जाना। लाँघना। नाँघना। डाँकना।

लंघना²—संज्ञा स्त्री० [सं० लङ्घना] १. अवमानना। उपेक्षा। लापरवाही। (पु) २. लंघन। उपवास। फाका।

लंघना(पु)³—वि० जो लंघन या उपवास किए हुए हो। बुभुक्षित। भूखा। उ०—पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय। सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ३०।

लंघनीय—वि० [सं० लङ्घनीय] लाँघने के योग्य। २. उल्लंघन करने के योग्य।

लंघ्य—वि० [सं० लङ्घ्य] दे० 'लंघनीय' (को०)।

लंघित—वि० [सं० लङ्घित] १. डाँका हुआ। लाँघा हुआ। २. उल्लंघित। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित। ४. आक्रमित (को०)।

लंच—संज्ञा पुं० [अं०] दोपहर का नाश्ता। अल्पाहार (को०)।

लंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० लञ्चा] घूस। उत्कोच। रिश्वत (को०)।

लंछण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लाञ्छन] कलंक। दाग। दे० 'लांछन'। उ०—राउद कुँवर, सूड़उ कहइ, मालवणी मुख जोइ।—ढोला०, दू० ५०२।

लंछन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लाञ्छन, प्रा० लंछन] चिह्न। निशानी। लांछन। उ०—परभास पेत परब्रह्म द्युति भृगु लंछन जनु धरि-हरिय।—पृ० रा०, ७।१०३।

लंज¹—संज्ञा पुं० [सं० लञ्ज] १. पैर। पाँव। २. काछ। ३. पूँछ। दुम। ४. लंपटता। ५. स्रोत। सोता।

लंज²—संज्ञा स्त्री० लक्ष्मी।

लंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० लञ्जा] १. धारा। प्रवाह। २. पुंश्चली। कुलटा। ३. लक्ष्मी। ४. निद्रा (को०)।

लंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लञ्जिका] वेश्या। रंडी।

लंठ—वि० [हिं० लट्ठ] मूर्ख । उजड्ड ।

लंड[१]—संज्ञा पुं० [सं० लण्ड] पुरीष । विष्ठा । गू ।

लंड[२]—संज्ञा पुं० [सं० लङ्ग; तुल० फ़ा० लंग = शिश्न] पुरुष की मूत्रेंद्रिय ।

लंतरानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] व्यर्थ की बड़ी बड़ी बातें । शेखी ।

क्रि० प्र०—**करना** ।—**हाँकना** ।

लंदराज—संज्ञा पुं० [अं० लाँग क्लाथ] वस्त्र जो आकार में लंबा चौड़ा और मोटा हो । एक प्रकार की मोटी चादर ।

लंप—संज्ञा पुं० [अं० लम्प] दीपक । चिराग ।

लंपक—संज्ञा पुं० [पुं० लम्पक] जैनियों का एक संप्रदाय ।

लंपट[१]—वि० [सं० लम्पट] व्यभिचारी । विषयी । कामी । कामुक । स्वेच्छाचारी । स्वैरी । उ०—लोभी लंपट लोलुप चारा । जो ताकहिं पर धन पर दारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

लंपट[२]—संज्ञा सं० स्त्री का उपपति । यार ।

लंपटता—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्पटता] १. लंपट होने का भाव । दुराचार । कुकर्म । २. लोभ । लालच [को०] ।

लंपाक—संज्ञा पुं० [सं० लम्पाक] १. लंपट । दुराचारी । २. पुराणानुसार एक देश का नाम जिसे मुरंड भी कहते थे । यह देश भारत के उत्तरपश्चिम में था ।

लंपारह—संज्ञा पुं० [सं० लम्पापटह] पटह वाद्य । नगाड़ा [को०] ।

लंफ—संज्ञा पुं० [सं० लम्फ] उछाल । कूद । फलाँग [को०] ।

लंफन—संज्ञा पुं० [सं० लम्फन] उछलकूद [को०] ।

लंब[१]—संज्ञा पुं० [सं० लम्ब] १. वह रेखा जो किसी दूसरी रेखा पर इस भाँति गिरे कि उसके साथ समकोण बनावे ।

क्रि० प्र०—**गिराना** ।—**डालना** ।

२. एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । इसी को प्रलंबासुर भी कहते हैं । ३. शुद्ध राग का एक भेद । ४. वह जो नाचता हो । नाचनेवाला । ५. अंग । ६. पति । ७. एक दैत्य का नाम । ८. एक मुनि का नाम । ९. ज्योतिष में एक प्रकार की रेखा जो विषुव रेखा के समानांतर होती है । १०. ज्योतिष में ग्रहों की एक प्रकार की गति । ११. उत्कोच । भेंट । रिश्वत (को०) ।

लंब[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'विलंब' ।

लंब[३]—वि० [सं०] १. लंबा । उ०—(क) युक्त अवलंब लंब भुज चारी ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) अस कहि लंब फरस बिछवायो ।—रघुराज (शब्द०) । २. बड़ा (को०) । ३. लटकता हुआ । अवलंबित । संलग्न । लगा हुआ (को०) । ५. विस्तृत । फैलावदार । प्रशस्त (को०) ।

लंबक—संज्ञा पुं० [सं० लम्बक] १. किसी पुस्तक का एक अध्याय । २. लंबरेखा (को०) । ३. एक प्रकार का विशिष्ट उपकरण या पात्र (को०) । ४. मुख का एक रोग । ५. ज्योतिष में एक प्रकार के योग जो संख्या में पंद्रह होते हैं ।

लंबकर्ण[१]—संज्ञा सं० [सं० लम्बकर्ण] १. बकरा । २. हाथी । ३. अंकोट वृक्ष । ४. राक्षस । ५. बाज पक्षी । ६. गदहा । खर । ७. खरगोश ।

लंबकर्ण[२]—वि० जिसके कान लंबे हों ।

लंबकेश[१]—संज्ञा पुं० [सं० लम्बकेश] कुश का आसन । कुश का विष्टर जो विवाह में वर के बैठने के लिये दिया जाता है ।

लंबकेश[२]- वि० लंबे बालोंवाला [को०] ।

लंबग्रीव—संज्ञा पुं० [सं० लम्बग्रीव] ऊँट ।

लंबजठर—वि० [सं० लम्बजठर] तुंदिल । तोंदवाला ।

लंबतड़ंग—वि० [सं० लम्ब + हिं० ताड़ + अंग] ताड़ के समान लंबा । बहुत लंबा ।

लंबदंता—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बदन्ता] सिंहल देश की पिप्पली ।

लंबन—संज्ञा पुं० [सं० लम्बन] १. गले का वह हार जो नाभि तक लटकता हो । २. झूलने की क्रिया । ३. अवलंब । आश्रय । सहारा । ४. कफ । ५ शिव का नाम (को०) ।

लंबपयोधरा—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बपयोधरा] १. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । २. लंबस्तनी स्त्री ।

लंबबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बबीजा] दे० 'लंबदंता' [को०] ।

लंबमान—वि० [सं० लम्बमान] लटकता हुआ । दूर तक गया हुआ । फैला हुआ । लंबायमान [को०] ।

लंबर[१]—संज्ञा पुं० [अं० नम्बर] दे० 'नंबर' ।

लंबर[२]—संज्ञा पुं० [सं० लम्बरः] एक प्रकार का ढोल या पटह [को०] ।

लंबरदार—संज्ञा पुं० [अ० नंबर + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'नंबरदार' ।

लंबरा—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बरा] कौटिल्य अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट एक प्रकार का कंबल । ऊर्णायु [को०] ।

लंबस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बस्तनी] लंबे स्तनोंवाली नारी [को०] ।

लंबा[१]—वि० [सं० लम्ब] [वि० लंबी] १. जिसके दोनों छोर एक दूसरे से बहुत अधिक दूरी पर हों । जिसका विस्तार, आयतन की अपेक्षा, बहुत अधिक हो । जो किसी एक ही दिशा में बहुत दूर तक चला गया हो । 'चौड़ा' का उलटा । जैसे,—लंबा बाल, लंबा बाँस, लंबा सफर ।

मुहा०—**लंबा करना** = (१) (आदमी को) रवाना करना । चलता करना । (२) जमीन पर पटक या लेटा देना । चित करना । उ०—खर नास्यो इन समर अनल खर नासै जैसे । कियो भूमि पर लंब नासि परलंबहि तैसे ।—गि० दास (शब्द०) । **लंबा बनना या होना** = चल देना । रवाना होना । प्रस्थान करना । धता होना । (व्यंग्य और परिहास में) । उ०—थानेदार साहब तहकीकत करके लंबे हुए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७२ ।

यौ०—**लंबा चौड़ा** = जिसका आयतन और विस्तार दोनों बहुत अधिक हों । जैसे,—लंबा चौड़ा मैदान ।

२. जिसकी ऊँचाई अधिक हो । ऊपर की ओर दूर तक उठा हुआ ।

जैसे; लंबा आदमी। ३. (समय) जिसका विस्तार अधिक हो। जैसे,—(क) गरमी में दिन बहुत लंबा होता है। (ख) तुम तो सदा लंबी मुद्दत का वादा करते हो। ४. विशाल। दीर्घ। बड़ा। जैसे,—इतना लंबा खर्च करना ठीक नहीं।

लंबा² संज्ञा स्त्री० [पुं० लम्बा] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. उपहार। घूस। रिश्वत। ४. रिक्त तुंबी। कटु तुंबी। तितलौकी [को०]।

लबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा होने का भाव। लंबापन। जैसे,—(क) इस जमीन की लंबाई पचास गज है। (ख) यह कपड़ा लंबाई में कुछ कम है।

यौ०—लंबाई चौड़ाई = लंबान और चौड़ान।

लबान—संज्ञा पुं० [हिं० लंबा] लंबाई।

लबाना—क्रि० स० [हिं० लंबा] लंबा करना। फैलाना। बढ़ाना।

लबायमान वि० [सं० लम्बायमान] १. जो लंबा हो। दे० 'लबमान'। २. लेटा हुआ।

लंबिक—संज्ञा पुं० [सं० लम्बिक] कोकिल [को०]।

लंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बिका] गले के अंदर कौघटी। उ०—नासिका तालिका त्रिकुटी ध्याना। लंबिका उलटि पीवै गगन पानी।—प्राण०, पृ० ७३।

लंबित—वि० [सं० लम्बित] १. लंबा। २. लटकता हुआ (को०)। ३. अवलंबित। आधारित (को०)। ४. डूबा हुआ। धँसा हुआ (को०)। ५. कार्यच्युत। पदच्युत (को०)। ६. शब्दित। ध्वनित (को०)।

लंबी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बी] १. व्रीहि से निर्मित एक खाद्य पदार्थ। २. पुष्पित शाखा। फूल से भरी डाली [को०]।

लंबी²—वि० [सं० लंबिन्] अवलंबित। लटकनेवाला [को०]।

लंबी³—वि० स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा का स्त्रीं लिंग रूप।

मुहा०—लंबी तानना—लेटकर सो जाना। उ०—इस समय मेरे अतिरिक्त सब लंबी ताने सोते होंगे।—हरिऔध (शब्द०)। लंबी साँस लेना = अत्यंत दुःख या खेद से साँस लेना। ठंढी साँस लेना।

लबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बिनी] स्कंद की एक मातृका का नाम [को०]।

लंबुक—संज्ञा पुं० [सं० लम्बुक] १. एक नाग का नाम। २. ज्योतिष में एक प्रकार के योग जिनकी संख्या पंद्रह है। लंबक।

लंबुषा—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्बुषा] सतलड़ा हार [को०]।

लंबू—वि० [हिं० लंबा] लंबा। (आदमी के लिये, व्यंग)।

लंबोतरा—वि० [हिं० लंबा + ओतरा (प्रत्य०)] जो आकार में कुछ लंबा हो। लंबापन लिए हुए। जैसे—आम के फल लंबोतरे होते हैं।

लंबोदर—संज्ञा पुं० [सं० लम्बोदर] १. गणेश। २. वह जो बहुत अधिक खाता हो। पेटू।

यौ०—लंबोदरजननी = गणेश की माता, पार्वती।

लंबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० लम्बोष्ठ, लम्बौष्ठ] १. वह जिसके होठ लंबे हों। लंबे ओठवाला। २. ऊँट। ३. एक प्रकार का क्षेत्रपाल देवता।

लंभ—संज्ञा पुं० [सं० लम्भ] प्राप्ति। पाना। लाभ। मिलना। अधिगम [को०]।

लभक—वि० [सं० लम्भक] प्राप्त करनेवाला। पानेवाला [को०]।

लंभन—संज्ञा पुं० [सं० लम्भन] १. ध्वनि। २. लांछना। कलंक। ३. प्राप्ति। अधिगम (को०)।

लंभनीय—वि० [सं० लम्भनीय] प्राप्त करने योग्य। प्राप्य [को०]।

लंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० लम्भा] प्राचीर, आवेष्टन अवरोध, आदि का एक प्रकार। वाटशृंखला [को०]।

लंभुक—वि० [सं० लम्भुक] निरंतर अधिगम या प्राप्त करनेवाला। जिसे बराबर प्राप्ति या लाभ होता रहे [को०]।

लँगटा†—वि० [सं० नग्न हिं० नंगा + टा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लँगटी] १. निर्वस्त्र। नंगा। नग्न। २. शरारती। नटखट।

लँगटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. लँगोटी। २. पैर से विपक्षी के पैरों में मारना जिससे वह गिर पड़े। अड़ाना।

लँगड़ा¹—वि० [फ़ा० लंग + हिं० ड़ा (प्रत्य०)] १. व्यक्ति या पशु आदि जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हुआ हो। २. जिसका एक पाया टूटा हो। जैसे—कुर्सी, खाट आदि।

लँगड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बढ़िया कलमी आम जो प्रायः वाराणसी में होता है।

लँगड़ाना—क्रि० अ० [हिं० लँगड़ा] चलने में दोनों या चारों पैरों का ठीक ठीक और बराबर न बैठना, बल्कि किसी एक पैर का कुछ रुक या दबकर पड़ना। लंग करते हुए चलना। लँगड़े होकर चलना।

लँगड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगड़ा] एक प्रकार का छंद। उ०—साजै आलै अवज म, तिहि प्रकाश चहुँ ओर। सब तिथि निशि में आतिथ सी राकी कर्या अंजोर।—गुमान (शब्द०)।

लँगड़ी²—वि० [हिं०] बली। बलवान्। जोरावर।

लँगड़ी³—वि० स्त्री० [फ़ा० लंग] लँगड़ा का स्त्री रूप।

लँगड़ी⁴—संज्ञा स्त्री० लँगटी। अड़ानी।

लँगर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] ढीठ। नटखट। शरारती।

लँगरई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] ढिठाई। शरारत। नटखटपन। उ०—बाँधौं आजु कौन तोहि छोरै। बहुत लँगरई कीन्हीं मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै।—सूर (शब्द०)।

लँगराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर + आई (प्रत्य०)] ढिठाई। शरारत। उ०—अजहूँ छाड़ोगे लँगराई दोउ कर जोरि जननि पै आए।—सूर (शब्द०)।

लँगड़ाना†—क्रि० अ० [हिं० लंगड] दे० 'लँगड़ाना'।

लँगरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] दे० 'लँगराई'।

लँगरैया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] ढीठपन। शरारत। धृष्टता। उ०—सूर स्याम दिन दिन लंगर भयो दूरि करौ लँगरैया।—सूर (शब्द०)।

लँगोचा—संज्ञा पुं० [देश०] जानवर की आँत पो मसालेदार कीमे से भरकर और तलकर खाई जाती है। कुलमा। गुलमा।

लँगोट, लँगोटा—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्ग+ओट] [स्त्री० लँगोटी] कमर पर बाँधने का एक प्रकार का बना हुआ वस्त्र जिससे केवल उपस्थ ढका जाता है।

विशेष—यह प्रायः लंबी पट्टी के आकार का अथवा तिकोना होता है, जिसमें दोनों ओर कमर पर लपेटने के लिये बंद लगे रहते हैं। प्रायः पहलवान लोग कुश्ती लड़ने या कसरत करने के समय इसे पहना करते हैं। रुमाली।

यो०—लँगोट का कच्चा या ढीला = विषयी। कामी। लँगोट-बंद = ब्रह्मचारी। स्त्रीत्यागी।

मुहा०—लँगोट कसना या बाँधना = लड़ने को तैयार होना। **लँगोट रखना** = (१) 'लंगर लँगोट रखना'। (२) पहलवानी छोड़ देना।

लँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगोट + ई (प्रत्य०)] कोपीन। कछनी। भगई। उ०—रोटी गहे हाथ में, लुचोटी गुहे माथ में, लँगोटी कछे नाथ साथ बालक बिलासी है।—(शब्द०)।

मुहा०—लँगोटिया यार = बचपन का मित्र। उस समय का मित्र, जब कि दोनों लँगोटी बाँधकर फिरते हों। **लँगोटी पर फाग खेलना** = थोड़ा ही साधन होने पर भी विलासी होना। कम सामर्थ्य होने पर भी बहुत अधिक व्यय करना। **लँगोटी बँध-वाना** = बहुत दरिद्र कर देना। इतना धनहीन कर देना कि पास में लँगोटी के सिवा और कुछ न रह जाय। **लँगोटी बिकवाना** = इतना दरिद्र कर देना कि पहनने के वस्त्र तक न रह जाँय।

लँडूरा[१]—वि० [देश० या सं० लाङ्गूल] बिना पूँछ का। जिसकी सब पूँछ कट गई हो (पक्षी)। २. आवारा। नंगा। लुच्चा।

ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. पृथ्वी। ३. छंदःशास्त्र में लघु मात्रा के लिये प्रयुक्त संक्षिप्त रूप (को०)। ४. पाणिनि व्याकरण में क्रिया के काल एवं अवस्था के लिये प्रयुक्त विशेष संज्ञा। ४. पचास की संख्या (को०)।

लउⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौ] लाग। लगन। लौ।

लउआ†—संज्ञा पुं० [सं० लावुक] दे० 'घिया'।

लउकी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लावुक] दे० 'घिया'।

लउटीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लकुटी। लकुड़ी। उ०—बाटे खेल तरुन वह सोवा। लउटी बूढ़ लेइ पुनि रोवा।—जायसी (शब्द०)।

लक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ललाट। २. जंगली धान की बाल (को०)।

लक[२]—संज्ञा पुं० [अं०] किस्मत। भाग्य।

लकच—संज्ञा पुं० [सं०] एक फल। दे० 'लकुच' (को०)।

लकड़तोड़—वि० [हिं० लकड़ी + तोड़] लकड़ी की तरह कड़ा। बहुत कड़ा (व्यंग्य)। उ०—इनका लकड़तोड़ जूता पहनकर पेशकार साहब बड़े साहब के इजलास पर गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४९।

लकड़दादा—संज्ञा पुं० [हिं०] दादाओं का भी दादा। अति प्राचीन पुरखा। (व्यंग्य)। उ०—एक शाप! दाँत पीसकर, हाथ उठाकर, शिखा खोलते हुए चाणक्य का लकड़दादा बन जाऊँगा।—स्कंद०, पृ० १०६।

लकड़बग्घा—संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + बाघ] एक मांसाहारी जंगली जंतु जो भेड़िए से कुछ बड़ा होता है। यह कुत्तों का मांस बहुत पसंद करता है। लग्घड़।

लकड़हारा—संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + हार] जंगल से लकड़ी तोड़-कर बेचनेवाला।

लकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] १. लकड़ी का मोटा कुंदा। लक्कड़। २. बाजरे, अरहर आदि का सूखा डंठल।

लकड़ाना†—क्रि० अ० [हिं० लकड़ा + ना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु का सूखकर लकड़ी की तरह कड़ा हो जाना। २. दुबला होना। शरीर सूखकर लकड़ी की तरह हो जाना।

लकडिया†—क्रि० अ० [हिं० लकड़ी] दे० 'लकड़ा'।

लकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] १. पेड़ का कोई स्थूल अंग (डाल, तना आदि) जो कटकर उससे अलग हो गया हो। काष्ठ। काठ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः मेज, कुरसी, किवाड़े आदि सामान बनाने में होता है।

२. ईंधन। जलावन।

मुहा०—लकड़ी देना = मुरदे को जलाना।

३. गतका। ४. छड़ी। लाठी।

मुहा०—लकड़ी सा = बहुत दुबला पतला। **लकड़ी चलना** = लाठी से मार पीट होना। **लकड़ी होना** = (१) सूखकर काँटा होना। बहुत दुबला पतला होना। (२) सूखकर बहुत कड़ा हो जाना। जैसे,—रोटी सूखकर लकड़ी हो गई।

लक दक—वि० [अ० लक़ दक़] १. (मैदान) जिसमें वृक्ष या वनस्पति आदि कुछ भी न हो। बंजर या चाटयल (मैदान)। २. साफ। चिकना। स्वच्छ।

लकब—संज्ञा पुं० [अ० लक़ब] उपाधि। खिताब। पदवी।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

लकरियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी, लकरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'लकड़ी'। उ०—उठत लकरिया टेक तिमिर आँखिन मैं आयौ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०८।

लकरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लकुटी] दे० 'लकड़ी'।

लकलक[१]—संज्ञा पुं० [अ० लक़्लक़] १. लंबी गरदन का एक पक्षी। ढेंक। २. जाम। जिह्वा (को०)।

लकलक[२]—वि० १. बहुत दुबला पतला। २. लंबे पैरोंवाला। जिसकी टाँगें लंबी हों।

लकलका—संज्ञा पुं० [अ० लक़्लक़ह्] लकलक पक्षी की तीखी आवाज। रटन। उ०—बमुआफिकत हदीस याने लकलका उसे

बोलते हैं के हमेशा जबान हरकत में अछे।—दक्खिनी०, पृ० ३९५।

लकवा—संज्ञा पुं० [अ० लक़्वह्] एक वातरोग जिसमें प्रायः चेहरा टेढ़ा हो जाता है।

विशेष—यह रोग चेहरे के अतिरिक्त और अंगों में भी होता है, और जिस अंग में होता है, उसे बिलकुल बेकाम कर देता है। इसमें शरीर के ज्ञानतंतुओं में एक प्रकार का विकार आ जाता है, जिससे कोई कोई अंग हिलने डोलने या अपना ठीक ठीक काम करने के योग्य नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं। पक्षाघात।

क्रि० प्र०—गिरना।

मुहा०—लकवा मारना या मार जाना = शरीर के किसी अंग में लकवे का रोग हो जाना।

लकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी + अँकुसी] फल आदि तोड़ने की लग्गी जिसके ऊपरी सिरे पर लोहे का चंद्राकार फल या एक तिरछी छोटी लकड़ी बँधी रहती है।

विशेष—इसी लग्गी को हाथ में लेकर ऊपरी सिरे में बँधी हुई छोटी लकड़ी या फल की सहायता से ऊँचे वृक्षों के फल आदि तोड़ते हैं।

लका[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० लक्का] दे० 'लक्का'।

लका[2]—संज्ञा पुं० [अ० लक़ा] सहवास। मैथुन (को०)।

लका[3]—संज्ञा पुं० [अ० लक़ा, लिक़ा] चेहरा। मुख। उ०—ये हदिया ले जा बादशाह वास्ते, वो रोशन लका मेहरोमा वास्ते।—दक्खिनी०, पृ० २१५।

लकाटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके नर जाति के अंडकोशों में से एक प्रकार का मुश्क निकलता है।

लकालक—वि० [अ० लक़्लक़] साफ। स्वच्छ।

लकीर—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा, हिं० लीक] १. कलम आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार बनी हुई वह सीधी आकृति जो बहुत दूर तक एक ही सीध में चली गई हो। रेखा। खत।

मुहा०—लकीर का फकीर = वह जो बिना समझे बूझे किसी प्राचीन प्रथा पर चला चलता हो। आँखें बंद करके पुराने ढंग पर चलनेवाला। लकीर पीटना = बिना समझे बूझे पुरानी प्रथा पर चले चलना। लकीर पर चलना = दे० 'लकीर पीटना'।

क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।

२. वह चिह्न जो दूर तक रेखा के समान बना हो। ३. धारी। ४. पंक्ति। सतर। ५. क्रम (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।

लकुच[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़हर का वृक्ष और फल।

लकुच[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लकुट'।

लकुट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लकुट(= लगुड)] लाठी। छड़ी। उ०—छोटी सी लकुट हाथ, छोटे छोटे बचवा साथ, छोटे से कान्हैं देखति गोपी आई घरन की।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३८।

लकुट[2]—संज्ञा पुं० [सं० लकुच] १. मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में और विशेषतः बंगाल में अधिकता से पाया जाता है।

विशेष—इसकी डालियाँ टेढ़ी मेढ़ी और छाल पतली और खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों के सिरे पर गुच्छों में पत्ते लगते है जो अनीदार और कँगूरेदार होते हैं। साथ में सफेद रंग के छोटे छोटे फूलों के भी गुच्छे लगते हैं।

२. इस वृक्ष का फल जो प्रायः गुलाब जामुन के समान होता और वसंत ऋतु में पकता है। वह फल मीठा होता है और खाया जाता है। लुकाठ। लखोट।

लकुटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड + हिं० इया] दे० 'लकुटी'।

लकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लाठी। छड़ी। उ०—या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।—रसखान०, पृ० १३।

लकुलीश—संज्ञा पुं० [सं०] एक शैव संप्रदाय और उसके प्रवर्तक आचार्य का नाम।

विशेष—लकुलीश या नकुलीश संप्रदाय के प्रवर्तक लकुलीश माने जाते हैं। लिंगपुराण (२४।१३१) में उनके मुख्य चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य मिलते हैं। प्राचीन-काल में इसके अनुयायी बहुत थे, जिनमें मुख्य साधु (कनफटे, नाथ) होते थे। इस संप्रदाय का विशेष वृत्तांत शिलालेखों तथा विष्णुपुराण, लिंगपुराण आदि में मिलता है। इसके अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते और उनका उत्पत्ति-स्थान कायावरोहण (कायारोहण, कारवान्, बड़ौदा राज्य में) बतलाते थे। (विस्तृत विवरण के लिये देखें उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१५)।

लक्कोटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जिसके बालों से शाल, दुशाले आदि बनाए जाते हैं।

लक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] काठ का बड़ा कुंदा।

लक्का—संज्ञा पुं० [अ० लक्क़ा] एक प्रकार का कबूतर जो खूब छाती उभाड़कर चलता है और जिसकी पूँछ पंखे सी होती है।

लक्का कबूतर—संज्ञा पुं० [हिं० लक्का + कबूतर] १. नाच की एक गत जिसमें [illegible] कमर के बल इतना झुकता है कि सिर प्रायः भूमि के निकट तक पहुँच जाता है। यह झुकाव बगल की ओर होता है। २. दे० 'लक्का'।

लक्ख—वि० [सं० लक्ष, प्रा० लक्ख] दे० 'लक्ष'।

लक्खन[1]—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण, प्रा० लक्खण, लक्खण] दे० 'लक्षण'। उ०—कुँवर बतीसौ लक्खन राता। दसएँ लखन कहै एक बाता।—जायसी ग्रं०, पृ० २५१।

लक्खन[2] ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] लक्ष्मण जी। उ०—जल को गए लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।—तुलसी ग्रं०, पृ०……।

लक्खना ⓟ—वि० [सं० लक्षणक] लक्षणोंवाला। लक्षणों से युक्त। उ०—कुँवर बतीसौ लक्खना सहस करा जस भान।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०६।

लक्खी[1]—वि० [हिं० लाख] लाख के रंग का। लाखी।

लक्खी[2]—संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति।

लक्खी[3]—संज्ञा पुं० [हिं० लाख (संख्या)] वह जिसके पास लाखों रुपए हों। लखपती।

लक्खी[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, प्रा०, बँग० लक्खी] लक्ष्मी। उ०—बंगाली के लक्खी कहने को लक्ष्मी न मानें तो कभी ठीक न होगा।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ७।

लक्त—वि० [सं०] लाल। सुर्ख।

लक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अलता, जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। अलक्तक। २. बहुत फटा हुआ पुराना कपड़ा। चीथड़ा। लत्ता।

लक्तकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० लक्तकर्मन्] लाल लोध।

लक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली [को०]।

लक्ष[1]—वि० [सं०] एक लाख। सौ हजार।

लक्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अंक जिससे एक लाख की संख्या का ज्ञान हो। जैसे,—१,००,००० । २. पैर। ३. चिह्न। निशान। ४. दे० 'लक्ष्य'। ५. अस्त्र का एक प्रकार का संहार। उ०—लक्ष अलक्ष युगल दृढ़नाभ सुनाभ दशाक्ष शतानन।—रघुराज (शब्द०)। ६. व्याज। दिखावा। बहाना (को०)। ७. मुक्ता। मोती (को०)।

लक्षक[1]—वि० [सं०] १. (वह) जो लक्ष करा दे। जता देनेवाला। २. (वह शब्द) जो संबंध या प्रयोजन से अपना अर्थ सूचित करे।

लक्षक[2]—संज्ञा पुं० एक लाख की संख्या [को०]।

लक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ की वह विशेषता जिसके द्वारा वह पहचाना जाय। वे गुण आदि जो किसी पदार्थ में विशिष्ट रूप से हों और जिनके द्वारा सहज में उसका ज्ञान हो सके। चिह्न। निशान। आसार। जैसे,—आकाश के लक्षण से जान पड़ता है कि आज पानी बरसेगा। २. नाम। ३. परिभाषा। ४. शरीर में दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोग के सूचक हों। जैसे,—इस रोगी में क्षय के सभी लक्षण दिखाई देते हैं। ५. दर्शन। ६. सारस पक्षी। ७. सामुद्रिक के अनुसार शरीर के अंगों में होनेवाले कुछ विशेष चिह्न। जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। जैसे,—चक्रवर्ती और बुद्ध के लक्षण एक से होते हैं। ८. शरीर में होनेवाला एक विशेष प्रकार का काला दाग जो बालक के गर्भ में रहने के समय सूर्य या चंद्रग्रहण लगने के कारण पड़ जाता है। लच्छन। ९. चाल-ढाल। तौर तरीका। रग ढंग। जैसे,—आजकल तुम्हारे लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। १०. दे० 'लक्ष्मण'। ११. पुरुषेंद्रिय। शिश्न [को०]। १२. योनि। भग (को०)। १३. अध्याय। परिच्छेद। स्कंध (को०)। १४. व्याज। छल छद्म (को०)। १५. लक्ष्य। उद्देश्य (को०)। १६. बँधी हुई सीमा। दर (को०)। १७. प्रस्तुत प्रसंग। उपस्थित विषय (को०)। १८. कारण (को०)। १९. नतीजा। परिणाम। असर (को०)।

लक्षणक—संज्ञा पुं० [सं०] चिह्न। निशान। लच्छन [को०]।

लक्षणकर्म—संज्ञा पुं० [सं० लक्षणकर्मन्] परिभाषा [को०]।

लक्षण ग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण+ग्रंथ] काव्य या साहित्य के लक्षणों का विवेचन करनेवाला ग्रंथ। साहित्यिक समीक्षा की पुस्तक। समालोचना शास्त्र। उ०—पहली बात तो ध्यान देने की यह है कि लक्षण ग्रंथों के बनने के बहुत पहले से कविता होती आ रही थी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ९२।

लक्षणज्ञ—वि० [सं०] लक्षणों को जाननेवाला। शुभ अशुभ चिह्नों का ज्ञाता [को०]।

लक्षणभ्रष्ट—वि० [सं०] जो शुभ लक्षणों से हीन या रहित हो। अभागा। भाग्यहीन [को०]।

लक्षण लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्षण शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अर्थ लक्षित हो जाता है। शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अभिप्राय सूचित होता है।

विशेष—कभी कभी ऐसा होता है कि शब्द के साधारण अर्थ से उसका वास्तविक अभिप्राय नहीं प्रकट होता। वास्तविक अभिप्राय उसके साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है। शब्द को जिस शक्ति से उसका वह साधारण से भिन्न और दूसरा वास्तविक अर्थ प्रकट होता है, उसे लक्षणा कहते हैं। साहित्य में यह शक्ति दो प्रकार की मानी गई है—निरूढ़ और प्रयोजनवती (विशेष दे० ये दोनों शब्द)।

२. मादा हंस। हंसी। ३. मादा सारस। सारसी। ४. छोटी भटकटैया। ५. एक अप्सरा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। ६. दुर्योधन की पुत्री का नाम जिसका विवाह कृष्ण के पुत्र सांब से हुआ था। लक्ष्मणा।

लक्षणान्वित—वि० [सं०] शुभ चिह्नोंवाला [को०]।

लक्षणी—वि० [सं० लक्षणिन्] १. जिसमें कोई लक्षण या चिह्न हो। २. लक्षण जाननेवाला।

लक्षण्य[1]—वि० [सं०] १. चिह्न या निशान का काम देनेवाला। २. शुभचिह्नों से युक्त।

लक्षण्य[2]—संज्ञा पुं० दैवज्ञ। भविष्यवक्ता [को०]।

लक्षना ⓟ—क्रि० स० [सं० लक्ष+हिं० ना (प्रत्य०)] लखना। देखना। उ०—पक्ष है संधि संध्या सँधी हैं मनोत लक्षिए स्वच्छ प्रत्यक्ष ही देखिए।—केशव (शब्द०)।

लक्षन ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] दे० 'लक्ष्मण'-१। उ०—बाण की वायु उड़ाय कै लक्षन लक्ष करों अरिहा समरत्थहिं।—केशव (शब्द०)।

लक्षना ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्षणा] शब्दों की एक शक्ति। विशेष दे० 'लक्षणा'।

लक्षशः—क्रि० वि० [सं० लक्षशस्] लाखों की संख्या में। २. अत्यधिक। अगणनीय। बहुत अधिक [को०]।

लक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लाख की संख्या।

लक्षि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] दे० 'लक्ष्मी'। उ०—सुनहिं सुमुखि तो को त्यावतो लक्षि दासी।—केशव (शब्द०)।

लक्षि[2]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्य] दे० 'लक्ष्य'। उ०—बाण की वायु

उड़ाय कै लच्छन लक्षि करौ अरिहा समरत्थहि ।—केशव (शब्द० ।

लक्षित[1]—वि० [सं०] १. बतलाया हुआ। निर्दिष्ट। २. देखा हुआ। ३. अनुमान से समझा या जाना हुआ। ४. जिसपर कोई लक्षण या चिह्न बना हो।

लक्षित[2]—संज्ञा पुं० वह अर्थ जो शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षित लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा ।

लक्षितव्य—वि० [सं०] १. परिभाषा या व्याख्या करने योग्य। २. चिह्नित करने योग्य [को०]।

लक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियों को मालूम हो जाय। वह स्त्री जिसका पर-पुरुष-प्रेम दूसरों को ज्ञात हो।

लक्षितार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ जो शब्द की अभिधा शक्ति द्वारा प्राप्त न हो। लक्षणा शक्ति द्वारा प्राप्त अर्थ [को०]।

लक्षी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गगाधर और खंजन भी कहते हैं। उ०—कोटि बाधा कटैं पाप सारे घटैं शभु शंभू रटैं नाथ जो मान कै।—जगन्नाथप्रसाद (शब्द०)।

लक्षी[2]—वि० [सं० लक्षिन्] [वि०स्त्री० लक्षिणी] शुभ लक्षणोंवाला। शुभ चिह्नों से युक्त।

लक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मन्] १. चिह्न। निशान। २. धब्बा। दाग। लांछन। ३. प्रधान। मुख्य। ४. परिभाषा। ५. मुक्ता। मोती [को०]।

लक्ष्मण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रघुवंशी राजा दशरथ के चार पुत्रों में में से दूसरे पुत्र, जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—जब मिथिला में रामचंद्र जी ने धनुष तोड़ा था, तब परशुराम के बिगड़ने पर इन्होंने उनसे वादविवाद किया था। उसी अवसर पर उर्मिला के साथ इनका विवाह हुआ था। यद्यपि इनका स्वभाव बहुत ही उग्र और तीव्र था, तथापि ये अपने बड़े भाई रामचंद्र के बहुत बड़े भक्त थे; और सदा उनके अनुगामी रहते थे। जब रामचंद्र जी वन को जाने लगे थे, तब ये भी अयोध्या का सारा सुख छोड़कर केवल भक्ति और प्रेम-वश उनके साथ हो लिए थे। वन में ये सदा सब प्रकार से उनकी सेवा किया करते थे। रावण की बहन शूर्पनखा की नाक इन्हीं ने काटी थी। जिस समय मारीच सोने के मृग का रूप धरकर आया था और रामचंद्र उसे मारने निकले थे, उस समय सीता की रक्षा के लिये यही कुटी में थे। पर पीछे से सीता के बहुत आग्रह करने पर ये रामचंद्र का पता लगाने के लिये जंगल में गए। राम-रावण-युद्ध के समय ये बहुत वीरता-पूर्वक लड़े थे और मेघनाद का बध इन्होंने किया था। उस युद्ध में ये एक बार शक्ति बाण लगने के कारण मूर्छित हो गए थे, जिसपर रामचंद्र जी ने बहुत अधिक विलाप किया था। पर हनुमान द्वारा ओषधि लाए जाने पर उसके सेवन से शीघ्र ही इनकी मूर्छा दूर हो गई थी और ये फिर उठकर लड़ने लगे थे। जिस समय सीता जी अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिये अग्निप्रवेश करने को प्रस्तुत हुई थीं, उस समय रामचंद्र की आज्ञा से इन्हीं ने सीता के लिये चिता तैयार की थी। रामचंद्र के वनवास के कारण ये अपने पिता राजा दशरथ और भाई भरत से बहुत अप्रसन्न हो गए थे; पर पीछे से भरत की ओर से इनका मन साफ हो गया था और इन्होंने समझ लिया था कि इसमें भरत का कोई दोष नहीं है। ये बहुत ही तेजस्वी, वीर और शुद्ध चरित्र के थे। उर्मिला से इन्हें अंगद और चंद्रकेतु नाम के दो पुत्र थे। पुराणानुसार ये शेषनाग के अवतार माने जाते हैं।

२. दुर्योधन के पुत्र का नाम। ३. चिह्न। लक्षण। ४. नाग। ५. आख्या। नाम (को०)। ६. सारस।

लक्ष्मण[2]—वि० १. चिह्न या लक्षणों से युक्त। २. जो श्री से युक्त हो। भाग्यशाली। जिसमें शोभा और कांति हो।

लक्ष्मणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मद्र देश के राजा बृहत्सेन की कन्या जो श्रीकृष्ण जी को ब्याही थी और उनकी आठ पटरानियों में से एक थी। २. दुर्योधन की बेटी का नाम। यह कृष्ण के पुत्र सांब की स्त्री थी। ३. एक जड़ी।

विशेष—यह पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उनपर लाल चंदन की सी बूँदें होती हैं। इसका कंद सफेद होता है और वही ओषधि के काम में आता है।

पर्या०—पुत्रकंदा। पुत्रका। नागपत्री। जननी। नागिनी। नागाह्वा। मञ्जिका। तुलिनी।

४. श्वेत कंटकारी। सफेद भटकटैया (को०)। ५. सारस की मादा या हंसी।

लक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मन्] १. दे० 'लक्ष्म'। २. हंस या सारस पक्षी। ३. लक्ष्मण [को०]।

लक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिंदुओं की एक प्रसिद्ध देवी जो विष्णु की पत्नी और धन की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं।

विशेष—भिन्न भिन्न पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में प्रसिद्ध है कि देवताओं और दानवों के समुद्रमथने से जो चौदह रत्न निकले थे, उन्हीं में से एक यह भी थीं। इनका वर्ण श्वेत चंपक या कंचन के समान, कमर बहुत पतली, नितंब बहुत विशाल और चार भुजाएँ मानी जाती हैं। यह भी कहा गया है कि ये अत्यंत सुंदरी हैं। और सदा युवती रहती हैं। ये महालक्ष्मी भी कही जाती हैं और इनकी पूजा अनेक अवसरों पर, विशेषतः धनतेरस और दीवाली की रात को होती है। मूर्तियों में ये या तो अकेली बैठी हुई और या क्षीरसागर में सोते हुए विष्णु भगवान् के चरण दबाती हुई दिखलाई जाती हैं।

पर्या०—पद्मालया। पद्मा। कमला। श्री। हरिप्रिया। इंदिरा। लोकमाता। माँ। क्षीराब्धितनया। रमा। जलधिजा। भार्गवी। हरिवल्लभा।
२. धन संपत्ति। दौलत।
यौ०—लक्ष्मीवान्। लक्ष्मीपति = धनवान।
३. शोभा। सौंदर्य। छवि। उ०—जय अरि जय हित चलयौ बदन लक्ष्मी बर ढंगी।—गिरिधर (शब्द०)। ४. दुर्गा का एक नाम। ५. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण, एक गुरु और एक लघु अक्षर होता है। जैसे,—जाहि पावैं नहीं संत। खेल सो लक्ष्मी कंत। ६. आर्या छंद के २६ भेदों में से पहला भेद जिसके प्रत्येक चरण में २७ गुरु और ३ लघु वर्ण होते हैं। ७. सीता जी का एक नाम। ८. ऋद्धि नाम की ओषधि। ९. वृद्धि नाम की ओषधि। १०. वीर स्त्री। ११. घर की मालकिन। गृहस्वामिनी। १२. हल्दी। १३. शमी वृक्ष। १४. मोती। १५. मोक्ष की प्राप्ति। १६. वह वृक्ष जो फलता हो अथवा जिसमें फल लगे हों। १७. पद्म। कमल। १८. सफेद तुलसी। १९. मेढ़ासिंगी। २०. अभ्युदय। सौभाग्य (को०)। २१. प्रभुशक्ति। राज्यशक्ति (को०)। २२. चंद्रमा की ग्यारहवीं कला (को०)। २३. कन्या। पुत्री।

लक्ष्मीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनवान्। अमीर। २. भाग्यवान्।

लक्ष्मीकांत—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीकान्त] १. नारायण। विष्णु। २. राजा। नरेश (को०)।

लक्ष्मीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

लक्ष्मीजनार्दन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिनपर एक ओर चार चक्र रहते हैं।

लक्ष्मी टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी + हिं० टोड़ी] एक प्रकार की संकर रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

लक्ष्मीताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत में १८ मात्राओं का एक ताल जिसमें १५ आघात और ३ खाली होते हैं। इसके मृदंग के बोल इस प्रकार हैं—

+	१	२	०	३	४	५	०	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०	+
धा	केटे	धा	धा	केटे	ताग	धा	केटे	तागे	नेना	आन	खून	ग्रेदे	ने	ताधेम	गे	तेटे	गदि	घेने	धा

२. श्रीताल नामक वृक्ष।

लक्ष्मीधर—संज्ञा पुं० [सं०] स्रग्विणी छंद का दूसरा नाम। २. विष्णु।

लक्ष्मीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. धनी। ३. राजा।

लक्ष्मीनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिनपर एक ओर चार चक्र बने होते हैं। लक्ष्मीजनार्दन।

लक्ष्मीनिकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] आमलक चूर्ण से किया हुआ स्नान [को०]।

लक्ष्मीनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा जनक के पुत्र का नाम। २. धनी व्यक्ति।

लक्ष्मीनृसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जिनपर दो चक्र और एक बनमाला बनी होती है। ऐसे शालग्राम गृहस्थों के लिये बहुत शुभ माने जाते हैं।

लक्ष्मीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। नारायण। २. कृष्ण। ३. राजा। ४. लौंग का वृक्ष। ५. सुपारी का वृक्ष।

लक्ष्मीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. घोड़ा। ३. सीता के पुत्र लव और कुश।

लक्ष्मीपुत्र—वि० धनवान्। अमीर।

लक्ष्मीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. माणिक। लाल। २. पद्म। कमल। ३. लौंग का फूल।

लक्ष्मीपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पर्व जिसमें लक्ष्मी का पूजन करते हैं। दीपावली।

लक्ष्मीफल—संज्ञा पुं० [सं०] बेल। श्रीफल।

लक्ष्मीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] नारायण।

लक्ष्मीवत्[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. कटहल का वृक्ष। ३. अश्वत्थ का वृक्ष।

लक्ष्मीवत्[२]—वि० धनवान। अमीर।

लक्ष्मीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

लक्ष्मीवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल कमल जो लक्ष्मी का निवास माना जाता है। लक्ष्मीगृह [को०]।

लक्ष्मीवार—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुवार।

लक्ष्मीवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़पीन।

लक्ष्मीश[१]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। २. आम का वृक्ष।

लक्ष्मीश[२]—वि० धनवान्। अमीर।

लक्ष्मीसमाह्वया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता जी का एक नाम [को०]।

लक्ष्मीसहज, लक्ष्मीसहोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कपूर (को०) ३. इंद्र का घोड़ा। उच्चैःश्रवा (को०)। ४. शंख (को०)।

लक्ष्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जिसपर किसी प्रकार का निशाना लगाया जाय। निशाना। २. वह जिसपर किसी प्रकार का आक्षेप किया जाय। ३. अभिलषित पदार्थ। उद्देश्य। ४. अस्त्रों का एक प्रकार का संहार। ५. वह जिसका अनुमान किया जाय। अनुमेय। ६. वह अर्थ जो किसी शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा निकलता हो। ७. व्याज। व्यपदेश। बहाना (को०)। ८. एक लाख की संख्या (को०)।

लक्ष्य[२]—वि० १. देखने योग्य। दर्शनीय। २. जिसका लक्षण या परिभाषा की जाय (को०)।

लक्ष्यक्रम—वि० [सं०] जिसका क्रम लक्षित हो। जैसे, लक्ष्यक्रम ध्वनि।

लक्ष्यग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्य साधना। निशाना लेना [को०]।

लक्ष्यज्ञ—वि० [सं०] लक्ष्य का जानकार। लक्ष्य को जाननेवाला।

लक्ष्यज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ज्ञान जो चिह्नों को देखकर उत्पन्न हो। २. वह ज्ञान जो दृष्टांत के द्वारा उत्पन्न हो।

लक्ष्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्य का भाव या धर्म। लक्ष्यत्व।

लक्ष्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्य का भाव या धर्म। लक्ष्यता।

लक्ष्यभेद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निशाना जिसमें तेजी से चलते या उड़ते हुए लक्ष्य को भेदते हैं। जैसे,—आकाश में फेंके हुए पैसा या उड़ते हुए पक्षी पर निशाना लगाना। लक्ष्यवेध।

लक्ष्यवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह उपाय या कर्म जिससे जीवन का उद्देश्य सिद्ध होता हो। २. ब्रह्मलोक का मार्ग, जिसे देवयान पथ भी कहते हैं।

लक्ष्यवेध, लक्ष्यवेधन—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्य का वेधन करना। लक्ष्यभेद [को०]।

लक्ष्यवेधी—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्यवेधिन्] वह जो लक्ष्यवेध करता हो। उड़ते या तेजी से चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना लगानेवाला व्यक्ति।

लक्ष्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह अर्थ जो लक्षणा से निकले। शब्द की लक्षणा शक्ति द्वारा व्यक्त अर्थ।

लखघर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षागृह] लाख का वह घर जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था। लाक्षागृह। उ०—जैसे जारत लखघर साहस कीन्हाँ भीउ। जरत खंभ तस काढ़हु कै पुरुषारथ जोउ।—जायसी (शब्द०)।

लखन[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] श्रीरामचंद्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण का नाम। उ०—लखन लख्यो प्रभु हृदय खभारू।—तुलसी (शब्द०)।

लखन[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लखना] लखने की क्रिया या भाव।

लखनवी—वि० [हिं० लखनऊ + ई (प्रत्य०)] १. लखनऊ का। २. ठाट बाट और शान शौकत पसंद करनेवाला (व्यंग्य)। उ०—मैं अपने एक लखनवी दोस्त के साथ साँची का स्तूप देखने गया।—रस०, पृ० १५४।

लखना(पु)†—क्रि० स० [सं० लक्ष] १. लक्षण देखकर अनुमान कर लेना। समझ या जान लेना। ताड़ना। उ०—(क) लखन लखेउ भा अनरथ आजू। यह सनेह बस करहि अकाजू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लखै न रानि निकट दुख कैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. देखना। उ०—(क) लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास।—बिहारी (शब्द०) (ख) चाहियत किसोर लाख लोचन जुगुल अनेक।—बिहारी (शब्द०)।

लखपती—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष + पति] लाखों रुपयों का अधिपति। जिसके पास लाखों रुपयों की संपत्ति हो।

लखपेड़ा—वि० [हिं० लाख + पेड़] (बाग आदि) जिसमें बहुत अधिक वृक्ष हों।

लखमी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, प्रा० लक्खमी, लखिमी] दे० 'लक्ष्मी'।

लखमीताल—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + ताल] समुद्र। (डिं०)।

लखमीवर—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + वर] विष्णु। (डिं०)।

लखर—संज्ञा पुं० [देश०] काकड़ासिंगी का पेड़। इसे अरकोल भी कहते हैं।

लखराउँ, लखराँव†—संज्ञा पुं० [सं० वृक्षराजि, प्रा० लुक्खराइ > लक्खराइ > लखराउ, लखराँव] विशाल उपवन या बाग। लाखों पेड़ों से भरा बगीचा।

लखलख—वि० [फ़ा० लखलख] दे० 'लकलक'।

लखलखा—संज्ञा पुं० [फ़ा० लखलखह्] १. कोई सुगंधित द्रव्य। २. एक विशेष प्रकार का बना हुआ सुगंधित द्रव्य जो प्रायः मिट्टी पर गुलाब जल छिड़ककर अथवा इसी प्रकार के और द्रव्यों से तैयार किया जाता है और जिसे सुँघाकर बेहोश आदमी को होश में लाते हैं। मूर्छा दूर करने का कोई सुगंधित द्रव्य।

लखलखावी†—संज्ञा [हिं० लखना + लखाव] परस्पर अवलोकन। निगाहों का मिलना। देखादेखी।

लखलुट(पु)—वि० [हिं० लाख + लुटाना] जो लाखों रुपए लुटा दे। बहुत बड़ा अपव्ययी।

लखाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लखना] १. लक्षण। पहचान। २. देखादेखी।

लखाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० लखना] १. लक्षण। पहचान। चिह्न। उ०—(क) अउर एक तोहि कहौं लखाऊ। मैं एहि भेस न आउब काऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बूझ भरत सतभाउ कुभाऊ। आयहु बेगि न होइ लखाऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. चिह्न के रूप में दिया हुआ कोई पदार्थ। निशानी में दी हुई चीज। उ०—कियो सीय प्रबोध मुँदरी दियो कपिहि लखाउ।—तुलसी (शब्द०)।

लखाघर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षागृह, प्रा० हर] लाख या लाह का घर। लखघर। लाक्षागृह। उ०—जैसे जारत लखाघर साहस कीना भीउ।—जायसी (शब्द०)।

लखाना(पु)†[१]—क्रि० अ० [हिं० लखना] दिखाई पड़ना। उ०—मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखाय। ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाय।—बिहारी (शब्द०)।

लखाना[२]—क्रि० स० १. दिखलाना। २. अनुमान करा देना। समझा देना। सुझा देना। उ०—मेराइ फोरिबे जोग कपार किधों कछु काहू लखाइ दयो है।—तुलसी (शब्द०)।

लखाव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० लखना] दे० 'लखाउ'।

लखिमी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] १. धन संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी। २. धन संपत्ति। दौलत।

लखिया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० लखना + इया (प्रत्य०)] १. लखनेवाला। जो लखता हो। २. वह जिसकी आयु लाख वर्षों की हो। बहुत दिनों तक जीवन रखनेवाला।

लखी—संज्ञा पुं० [हिं० लाखी] लाख के रंग का घोड़ा। लाखी। उ०—अबलक अरबी लखी सिराजी। चौधर चाल, समँद भल ताजी। जायसी (शब्द०)।

लखुआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा (=लाख)+हिं० उआ (प्रत्य०)] १. लाखा या लाही नामक रोग जो गेहूँ के पौधों में लगता है। २. लाल मुँहवाला बंदर।

लखुआ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लखना+उआ (प्रत्य०) दे० लखिया'।

लखुवा—संज्ञा पुं० (सं० लाक्षा+हिं उवा (प्रत्य०)] दे० 'लखुआ'।

लखेदना(प्रा)†—क्रि० स० (सं० लक्ष्य=प्रा० लक्ख, हिं० लख+ऐदना<सं० भेदन, अथवा हिं० खेदना या रगेदना] खदेड़ना। भगाना। खेदना। स्थानच्युत करना वा हटा देना।

लखेरा—संज्ञा पुं० [हिं० लाख+एरा (प्रत्य०) १, वह जो लाख की चूड़ी आदि बनाता हो। २. हिंदुओं में एक जाति जो लाख की चूड़ियाँ आदि बनाती है।

लखोट, लखाट—संज्ञा पुं० [हिं० लकुट] दे० 'लकुट' (फल)।

लखौट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाख+औट (प्रत्य०)] लाख की चूड़ी आदि जो स्त्रियाँ हाथों में पहनती हैं। उ०—हाथन लखौट पाइ चूरा पचमणी गरे, गोरी की जुगुल जानु कोरी मनो केरा की। —देव (शब्द०)।

लखौटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लाख+औटा (प्रत्य०)] १. चंदन, केसर आदि से बना हुआ अंगराग वा अधर राग। उ०—दरशन तो मुख को भयो सुमुखी मोंहि रसाल। बिना लखौटा हू लगे अधर ओठ अति लाल। लक्ष्मण (शब्द०)। २. एक प्रकार का छोटा डिब्बा जो प्रायः पीतल का बनता है और जिसमें स्त्रियाँ प्रायः सिंदूर आदि सौभाग्य के द्रव्य रखती हैं। इसके ढकने में प्रायः शीशा भी लगा होता है।

लखौटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लेख+औटा (प्रत्य०)] लिखावट।

लखौटा(प्रा)†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाख+औटा (प्रत्य०)] लाख की चूड़ी। लखौट।

लखौटा[4]—वि० [हिं० लखना (=देखना)+औटा (प्रत्य०)] परिचायक। लखानेवाला। सूचित करनेवाला। उ०—जसे समुद्र में नाव पर सबके आगे मार्ग दिखलानेवाला माँझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २०१।

लखौरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाखा+औरी (प्रत्य०) (तु० आवृत्ति)] १. एक प्रकार की भ्रमरी का घर जो वह मिट्टी से घरों के कोनों में बनाती है। भृंगी का घर। २. भारत की एक प्रकार की छोटी पतली ईंट जो प्रायः पुराने मकानों में पाई जाती है और जिसका व्यवहार अब कम होता जा रहा है। नौतेरही ईंट। ककैया ईंट। लखौरिया ईंट।

लखौरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष, हिं० लाख (संख्या)] किसी देवता को उसके प्रिय वृक्ष की एक लाख पत्तियाँ या फल आदि चढ़ाना। जैसे,—शिव जी को बेलपत्र की या लक्ष्मीनारायण को तुलसी की लखौरी चढ़ाना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—जलाना या बालना=लाख बत्तियों की आरती करना।

लख्त—संज्ञा पुं० [फा० लख्त] टुकड़ा। खंड। अंश। उ०—कि चश्मे खूँ चकाँ से लख्ते दिल पैहम निकलते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८।

यौ०—लख्ते जिगर=हृदय का टुकड़ा। पुत्र वा अत्यंत प्रिय व्यक्ति।

लगंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना+अंत (प्रत्य०)] १. लगन होने की क्रिया या भाव। उ०—आलम में जब बहार की आकर खिलत है। दिल की नई लगन को मजे की लगंत है।—नजीर (शब्द०)। २. लगने या स्त्रीप्रसंग करने की क्रिया या भाव।

लग[1]—क्रि० वि० [हिं० लौं] १. तक। पर्यंत। ताईं। उ०—एक मुहूरत लग कर जोरी। नयन मूँदे श्रीपति तहि निहोरी।—रघुराज (शब्द०)। २. निकट। समीप। नजदीक। पास। उ०—यहि भाँति दिगीश चले मग में। इस सोर सुन्यो अति ही लग में।—गुमान (शब्द०)।

लग[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लिग्] लगन। लाग। प्रेम। उ०—झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिबे की इहाँ झेल नहीं फिर। —पद्माकर (शब्द०)।

लग[3]—अव्य० १. वास्ते। लिये। उ०—भृगुपति जीति परसु तुम पायो। ता लग हौं लंकेश पठायो।—हृदयराम (शब्द०)। २. साथ। संग। उ०—लगलगी बातनि अलग लग लगी आवैं लोगनि की लंग ज्यों लुगाइन की लाग री।—देव (शब्द०)।

लगड—वि० [सं०] खूबसूरत। सुंदर [को०]।

लगढग—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'लगभग'।

लगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पलक पर एक छोटी, चिकनी, कड़ी गाँठ हो जाती है। इस गाँठ में न तो पीड़ा होती है और न यह पकती है।

लगदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बिछौना जिसे बच्चेवाली स्त्रियाँ बच्चों के नीचे इसलिये बिछाकर उन्हें अपने पास सुलाती हैं कि जिसमें उनके मलमूत्र से और बिछौने खराब न होने पावें। कथरी। पोतड़ा।

लगन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] १. किसी ओर ध्यान लगने की क्रिया। प्रवृत्ति का किसी एक ओर लगना। लौ। जैसे,—आज कल तो आपको बस कलकत्ते जाने की लगन लगी है।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

२. प्रेम। स्नेह। मुहब्बत। प्यार।

क्रि० प्र० लगना।—लगाना।

३. लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध।

लगन[2]—संज्ञा पुं० [सं० लग्न] १. विवाह के लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त। ब्याह का मुहूर्त या साइत। २. वे दिन जिनमें विवाह आदि होते हों। सहालग। ३. दे० 'लग्न'।

मुहा०—लगन धरना=विवाह की तिथि निश्चित करना।

लगन[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. ताँबे, पीतल आदि की थाली जिसमें रखकर मोमबत्ती जलाई जाती है। २. कोई बड़ी थाली जिसमें आटा गूँधते या मिठाई आदि रखते हैं। ३. मुसलमानों की एक रीति जिसमें विवाह से पहले थालियों में मिठाइयाँ आदि भरकर वर के लिये भेजी जाती हैं।

लगन(पु)† —संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मृग। दे० 'लगना'।

लगनपत्री— संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नपत्रिका] विवाहसमय के निर्णय की चिट्ठी जो कन्या का पिता वर के पिता को भेजता है।

लगनवट(पु)†[१]— संज्ञा स्त्री० [हिं० लगन+वट (प्रत्य०)] १. लगन। प्रेम। मुहब्बत। उ०—पाही खेती लगनवट ऋन कुब्याज मग खेत। बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत।—तुलसी (शब्द०)।

लगनवट†[२]—संज्ञा पुं० दे० 'लगनहट'।

लगनहट†—संज्ञा पुं० [हिं० लगन+हट (प्रत्य०)] लग्न का समय। वह समय जब विवाह शादियाँ होती हैं। लगनवट।

लगना[१]—क्रि० अ० [सं० लग्न] १. दो पदार्थों का तल आपस में मिलना। एक चीज की सतह पर दूसरी चीज की सतह का होना। सटना। जैसे,—टेबुल पर कपड़ा लगना, तसवीर पर शीशा लगना, दीवार पर इश्तहार लगना। उ०—मिट्टी में सनी हुई बदहवास एक पत्थर से लगी हुई थी।—देवकीनंदन (शब्द०)। २. एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में संलग्न होना। मिलना। जुड़ना। जैसे,—तसवीर में चौखटा लगना, अलमारी में शीशा लगना, किसी के गले लगना। उ०—लागति है जाय कठ नाग दिगपालन के मेरे जान सोई हुत कीरति तिहारी है।—केशव (शब्द०)। ३. किसी पदार्थ के तल पर पड़ना। जैसे,—पैर में कीचड़ लगना, कपड़े में मिट्टी लगना, कागज में दाग लगना। ४. एक चीज का दूसरी चीज पर सीना, जड़ा, टाँका या चिपकाया जाना। जैसे,—चादर में बेल लगना, धोती में फीता लगना, कोट में बटन लगना। उ०—(क) जटित जराय की जँजीर बीच नीलमणि लागि रहे लोगनि के नैन मानो मनहर।—केशव (शब्द०)। (ख) सिर पर फौलादी टोपी जिसमें एक हुमा के पर की लंबी कलगी लगी हुई थी।—देवकीनंदन (शब्द०)। ५. संमिलित होना। शामिल होना। मिलना। जैसे,—पुस्तक में परिशिष्ट लगना, रजिस्टर में पन्ने लगना। ६. उत्पन्न होना। जमना। उगना। जैसे,—(क) यह गुलाब इस जमीन में न लगेगा। (ख) इस पेड़ में खूब आम लगे हैं। ७. छोर या प्रांत आदि पर पहुँचकर टिकना या रुकना। ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—किनारे पर नाव लगना, दरवाजे पर गाड़ी या बरात लगना। ८. क्रम से रखा या सजाया जाना। सिलसिले से रखा जाना। जैसे,—अलमारी में किताबें लगना, दूकान पर माल लगना, बरात लगना, हाट लगना, नुमाइश लगना। ९. व्यय होना। खर्च होना। जैसे,—(क) ब्याह में दस हजार रुपए लगे। (ख) उसे दौड़ने दो, तुम्हारा क्या लगता है। १०. जान पड़ना। मालूम होना। अनुभव होना। जैसे,—डर लगना, मोह लगना, पेशाब लगना, अच्छा लगना, बुरा लगना, जाड़ा लगना, गरमी लगना। उ०—चंद्रकांता के विरह में मोरों की आवाज तीर सी लगती है।—देवकीनंदन (शब्द०)। ११. स्थापित होना। कायम होना। जैसे,—मकान में कल लगना, छत के नीचे खंभा लगना। १२. संबंध या रिश्ते में कुछ होना। जैसे,—वह हमारा भाई लगता है। उ०—दशरथ आपके कौन लगते हैं और आप दशरथ के कौन लगते हो।—बाल्मीकीय रामायण (शब्द०)। १३. आघात पड़ना। चोट पहुँचना।—जैसे,—लाठी लगना, थप्पड़ लगना, तलवार लगना। उ०—धौल का लगना था कि वह पत्थर का आदमी उठ बैठा।—देवकीनंदन (शब्द०)। १४. टक्कर खाना। टकराना। जैसे,—जरा सा ढकेलते ही उसका सिर दीवार से जा लगा। १५. किसी चीज के ऊपर लेप किया जाना। पोता जाना। मला जाना। जैसे,—लकड़ी पर वारनिश लगना, फोड़े पर दवा लगना, पान पर कत्था लगना, सिर में तेल लगना। १६. किसी पदार्थ का किसी प्रकार की जलन या चुनचुनाहट आदि उत्पन्न करना। जैसे,—(क) यह सूरन बहुत लगता है। (ख) यह दवा पहले तो कुछ लगेगी, पर फिर ठंढक डाल देगी। १७. खाद्य पदार्थ का (पकने के समय जल आदि के अभाव या आँच की अधिकता के कारण) बरतन के तल में जम जाना। जैसे,—खिचड़ी में पानी छोड़ो; नहीं तो लग जायगी। १८. किसी प्रकार की प्रवृत्ति आदि का आरंभ होना। जैसे,—चाट लगना, चसका लगना। १९. आरंभ होना। शुरू होना। जैसे,—(क) अब तो ग्रहण लग गया है। (ख) कल से चैत लगेगा। (ग) उनकी नौकरी लग गई है। २०. उपयोग में आना। काम में आना। जैसे,—(क) जितना मसाला आया था, वह सब एक ही मकान में लग गया। (ख) तुम्हारी चारो साड़ियाँ लग गईं। २१. काम के लिये आवश्यक होना। जरूरी होना। जैसे,—(क) इस महीने में हमें चार गाड़ी भूसा लगेगा। (ख) अब तो उन्हें भी चश्मा लगता है। (ग) रजिस्टरी में दो आने का टिकट लगता है। (घ) तुम्हें जो जो चीजें लगें, सब मुझसे माँग लेना। २२. जारी होना। चलना। जैसे,—(क) आजकल दोनों में खूब लड़ाई लगी है। (ख) अब तो तुम्हारा ही काम लगा है, दो चार दिन में पूरा हो जायगा। (ग) दो चार दिन में काम लगेगा। २३. एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना। जैसे,—चलने में घोड़े के पैर लगना, गाड़ी का पहिया लगना। २४. सड़ना। गलना। जैसे,—(क) यह आम लग गया है। (ख) इस बैल का कंधा लग गया है। २५. किसी ऐसे कार्य का आरंभ होना जिसमें बहुत से लोगों के एकत्र होने की आवश्यकता हो। जैसे,—महफिल लगना, मेला लगना। २६. प्रभाव पड़ना। असर होना। जैसे,—(क) परदेस में हमें पानी बहुत जल्दी लगता है। (ख) कड़ाही में आँच लग रही है। (ग) तुम्हें डाक्टरी दवा नहीं लगती। (घ) तुम्हें उसी का शाप लगा है। (च) सुरती बहुत तेज थी; लग गई है।

मुहा०—लगती बात कहना=ऐसी पते की बात कहना कि सुननेवाला मन मसोसकर रह जाय। मर्मभेदी बात कहना। चुटकी लेना।

२७. दातव्य नियत होना। देना। निश्चित होना। जैसे,—टैक्स लगना, ब्याज लगना, किराया लगना। २८. आरोप होना। जैसे,—दफा लगना, हत्या लगना, पाप लगना। २९. प्रज्वलित होना। जलना। जैसे,—

आग लगना, दीया लगना। उ०—औचक ही कर माँझ साँझ ही आगिनि लगी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारिए।—प्रियादास (शब्द०)। ३०. काम में आने योग्य होना। ठीक बैठना। उपयुक्त होना। जैसे,—यह ताली इस ताले में लग जाती है। ३१. हिसाब होना। गणित होना। जैसे,—पुरजा लगना, जोड़ लगना। ३२. पीछे पीछे चलना। साथ होना। शामिल होना। जैसे,—(क) बाजार में पहुँचते ही दलाल लगते हैं। (ख) तुम्हारे साथ भी सदा एक न एक आदमी लगा रहता है। उ०—लगे वाके पाछे काछे काछ की न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तनु छोजिए।—प्रियादास (शब्द०)।

मुहा०—लग चलना = किसी के साथ या पीछे हो लेना। जैसे—जहाँ तुमने कोई मालदार असामी देखा, वहाँ तुम उसके पीछे लग चले।

३३. संबद्ध होना। चिमटना। जैसे,—रोग लगना। ३४. किसी कार्य में प्रवृत्त या तत्पर होना। जैसे,—(क) तुम्हें इन सब झगड़ों से क्या मतलब; तुम अपने काम में लगो। (ख) वह सबेरे से लिखने में लगा है। ३५. स्पर्श करना। छूना। उ०—कृपा करी निज धाम पठायो अपनो रूप दिखाय। वाके आश्रम जोऊ बसत है माया लगत न ताय।—सूर (शब्द०)। ३६. गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं का दूहा जाना। जैसे,—यह भैंस दिन में तीन बार लगती है। ३७. गड़ना। चुभना। धँसना। उ०—इह काँटे मो पाय लगि लीन्हीं मरति जिवाय। प्रीति जनावति भीति सों मीत जु काढ्यो आय।—बिहारी (शब्द०)। ३८. बदले में जाना। मुजरा होना। जैसे,—उनके दोनों मकान कर्ज में लग गए। ३९. समीप पहुँचना। पास जाना। छूना। जैसे,—पैरों लगना। उ०—(क) उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। जानो उलट गगन कहँ लागा।—जायसी (शब्द०)। (ख) चितचोरन चितचोर मैं ब्यौरो इतनो आइ। इन्हैं पाय कै मारिए, उनके लागियै पाय।—(शब्द०)। ४०. छेड़खानी करना। छेड़छाड़ करना। जैसे,—ऐसे आदमियों से मत लगा करो। उ०—औरन सों कार रहे अचगरी मोसों लगत कन्हाई।—सूर (शब्द०)। ४१. बंद होना। मुँदना। जैसे, किवाड़ लगना। उ०—अर्जुन के मंदिर पगु धारा। देखे लगे कपाट दुआरा।—सबल (शब्द०)। ४२. जुए की बाजी पर रखा जाना। दाँव पर रखा जाना। बदना। जैसे,—(क) पाँच रुपए इस दाँव पर लगे हैं। (ख) अच्छा, इसी बात पर शर्त लगी। ४३. अंकित होना। चिह्नित होना। जैसे,—तिलक लगना, निशान लगना, मोहर लगना, ठप्पा लगना। ४४. धारदार चीज की धार का तेज किया जाना। जैसे,—उस्तरा लगना, कैंची लगना। ४५. घात में रहना। ताक में रहना। जैसे,—(क) उस रास्ते में संध्या के बाद डाकू लगते हैं। (ख) इस जंगल में शेर लगते हैं। ४६. किसी स्थान पर एकत्र होना। जैसे,—(क) इस घाट पर मछलियाँ लगती हैं। (ख) बाग में मच्छड़ लगते हैं। ४७. दाम आँका जाना। जैसे,—बाजार में घड़ी का दाम २०) लगा है। ४८. किसी चीज का, विशेषत: खाने की चीज का, अभ्यस्त होना। परचना। सधना। जैसे,—लड़का रोटी पर लग गया है। ४९. अपने नियत स्थान या कार्य आदि पर पहुँचना। जैसे,—पारसल लगना, रजिस्टरी लगना। ५०. फैलना। बिछना। जैसे,—बिछौना लगना, जाल लगना। ५१. संभोग करना। मैथुन करना। स्त्रीप्रसंग करना। (बाजारू)। ५२. होना। जैसे,—(क) अभी हमें यहाँ देर लगेगी। (ख) यहाँ से हट जाओ; नहीं तो तुम्हारा ही नाम लगेगा। (ग) यह गाँव यहाँ से चार कोस लगता है। (घ) अबकी अमावस को ग्रहण लगेगा। (च) यहाँ तो किताबों का ढेर लगा है। ५३. जहाज का छिछले पानी में अथवा किनारे की जमीन पर चढ़ जाना। (लश०)। ५४. एक जहाज का दूसरे जहाज के सामने या बराबर आना। (लश०)। ५५. पाल का खींचकर चढ़ाया जाना (लश०)।

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ यह क्रिया लगकर भिन्न भिन्न अर्थ देती है। जैसे,—नींद लगना, दाँत लगना, बात लगना, समाधि लगना, नैवेद्य लगना, आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहावरों में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में जाना, पड़ना आदि अलग अलग संयोजक क्रियाएँ लगती हैं।

लगना²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली मृग। उ०—हरिन रोझ लगना बन बसे। चीतर गोइन झाँख औ ससे।—जायसी (शब्द०)।

लगनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लग्न, हिं० लगन] दे० 'लगन'। उ०—नैन लगे तिहिं लगनि सौं छुटै न छूटैं प्रान। काम न आवत एकहू तेरे सौ कि सयान।—बिहारी (शब्द०)।

लगनियाँ—संज्ञा पुं० [सं० लग्न, हिं० लगन + इया (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का गीत। लग्न या विवाह के अवसर पर गाया जानेवाला गीत। उ०—दास कबीर यह गवल लगनियाँ हो। कबीर० श०, भा० ४, पृ० १६। २. विवाह का लग्न लेकर जानेवाला व्यक्ति।

लगनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लगन (= थाली)] १. छोटी थाली। रिकाबी। २. पानदान में की वह तश्तरी जिसमें पान रखे जाते हैं। ३. परात।

लगनीय—वि० [सं०] लगने योग्य। जो संलग्न या संयोजित हो सके [को०]।

लगभग—क्रि० वि० [हिं० लग (= पास) + अनु० भग] प्रायः करीब करीब। जैसे,—(क) वहाँ लगभग सौ आदमी उपस्थित थे। (ख) इस काम में लगभग एक महीना लगेगा।

लगमात—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + सं० मात्रा] स्वरों के वे चिह्न जो उच्चारण के लिये व्यंजनों में जोड़े जाते हैं। स्वरों के चिह्न। जैसे,—ए का े, ओ का ो। उ०—ना लगमात न

न माथे बिंदी अरुण पीत नहिं काला। ऐंड़ा बेंड़ा टेढ़ा नाहीं ना वह आत जंजाला।—चरण० बानी, पृ० ३८४।

लगर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] चील की तरह का एक शिकारी पक्षी। लग्घड़। उ०—(क) नैन लगर घूँघुट खुलहि पवन खोल जब लेत। नेही मन किरवान कन झपट सतूना देत।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने टोने जरकटी त्यों सचान सानवारे हैं।—(शब्द०)।

लगलग—वि० [अ० लकलक] बहुत दुबला पतला। अति सुकुमार। उ०—अँखियाँ अधर चूमि, हाहा छाँडो कहै भूमि, छतियाँ सों लगी लगलगी सी हलकि कै।—देव (शब्द०)

लगव(पु)†—वि० [अ० लग्व] १. झूठ। मिथ्या। असत्य। २. व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन।

लगवाना—क्रि० स० [हिं० लगाना का प्रेर० रूप] लगाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लगाने में प्रवृत्त करना। उ०—प्रथम खबरि लगवाइ कै कूबर दीन्ह सुधारि।—विश्राम (शब्द०)।

लगवावना(पु)‡—क्रि० स० [हिं० लगाना] दे० 'लगवाना'। उ०—तहाँ एक दिन नंद कन्हाई। गए खरिक लगवावन गाई।—विश्राम (शब्द०)।

लगवार†—संज्ञा पुं० [हिं० लगना (=प्रसंग करना)+वार (प्रत्य०)] स्त्री का उपपति। यार। आशना। उ०—साँझ सकार दिया लै बारे। खसम छोड़ि सुमिरै लगवारै।—कबीर (शब्द०)।

लगवियत—संज्ञा स्त्री० [अ० लग्वियत] १. बदमाशी। बेहूदगी। लुच्चई। २. व्यर्थता। निरर्थकता [को०]।

लगहर†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लाग+हर (प्रत्य०)] वह काँटा या तराजू जिसमें पासंग हो।

लगहर†[2]—वि० [हिं० लगना+हर (प्रत्य०)] वि० लगनेवाली। दूध आदि देनेवाली। २. सड़ा गला हुआ फल या सब्जी।

लगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगाना] १. संबंध। लगाव। सगाई। २. चुगली। आरोप।

यौ०—लगाई बझाई=(१) झूठी सच्ची लगाना। इधर की बात उधर करना। (२) किसी से लगने या अवैध संबंध करनेवाली स्त्री।

लगाऊ‡—वि० [हिं० लगाना+ऊ (प्रत्य०)] इधर की बात उधर करनेवाला। चुगलखोर।

लगातार—क्रि० वि० [हिं० लगाना+तार (=सिलसिला)] एक के बाद एक। सिलसिलेवार। बराबर। निरंतर। सतत। जैसे,—(क) आज चार दिन से लगातार पानी बरस रहा है। (ख) वह लगातार दो घंटे तक व्याख्यान देता रहा।

लगान—संज्ञा पुं० [हिं० लगना या लगाना] १. लगने या लगाने की क्रिया या भाव। २. किसी मकान के ऊपरी भाग से मिला हुआ कोई ऐसा स्थान जहाँ से कोई वहाँ आ जा सकता हो। लाग। जैसे,—इस मकान में दोनों तरफ से लगान है। ३. वह स्थान जहाँ पर मजदूर आदि सुस्ताने के लिये अपने सिर का बोझ उतारकर रखते हैं। ४. वह स्थान जहाँ पर नावें आकर ठहरा करती हैं। ५. वह स्थान जहाँ जंगल में रात को पशु आते हैं। शिकारी लोगों के छिपकर बैठने का वह स्थान जहाँ से शिकार किया जाता है। ६. भूमि पर लगनेवाला वह कर जो खेतिहरों की ओर से जमींदार या सरकार को मिलता है। राजस्व। भूकर। जमाबंदी। पोत।

यौ०—लगान मुकर्ररी=नियत भूकर। लगान वाकई=वास्तविक भूकर।

लगाना—क्रि० स० [हिं० लगना का सक० रूप] १. एक पदार्थ के तल के साथ दूसरे पदार्थ का तल मिलाना। सतह पर सतह रखना। सटाना। जैसे,—दीवार पर कागज लगाना, दफ्ती पर तसवीर लगाना, कपड़े में अस्तर लगाना, लिफाफे पर टिकट लगाना। २. दो पदार्थों को परस्पर संलग्न करना। मिलाना। जोड़ना। जैसे,—दराज में मुठिया लगाना, चाकू में दस्ता लगाना। ३. किसी पदार्थ के तल पर कोई चीज डालना, फेंकना, रगड़ना, चिपकाना या गिराना। जैसे,—चेहरे पर गुलाल लगाना, सिर में तेल लगाना। उ०—दीन्ह लगाय चून निज पानी। तेहि फल भई अवध की रानी।—विश्राम (शब्द०)। ४. एक चीज पर दूसरी चीज सीना, टाँकना, चिपकाना या जोड़ना। जैसे,—टोपी में कलगी लगाना, कोट में बटन लगाना। ५. संमिलित करना। शामिल करना। साथ में मिलाना। जैसे,—किताब में जिल्द लगाना, मिसिल में चिट्ठी लगाना, शब्द में प्रत्यय लगाना। ६. वृक्ष आदि आरोपित करना। जमाना। उगाना। जैसे,—बाग में पेड़ लगाना। ७. एक ओर या किसी उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना। जैसे,—बंदरगाह में जहाज लगाना। ८. क्रम से रखना या सजाना। कायदे या सिलसिले से रखना। सजाना। चुनाना। जैसे,—दस्तरखान लगाना, कमरे में तसवीरें लगाना, गुच्छा लगाना, बाजार लगाना। ९. खर्च करना। व्यय करना। जैसे,—उन्होंने हजारों रुपए लगाए, तब जाकर मकान मिला। उ०—धन निज रघुपति हेतु लगावै। राम भक्ति हिय में उपजावै।—रघुराज (शब्द०)। १०. अनुभव कराना। मालूम कराना। जैसे,—यह दवा तुम्हें बहुत भूख लगावेगी। ११. स्थापित करना। कायम करना। जैसे,—उन्होंने अपने यहाँ बिजली का इंजन लगा रखा है। १२. आघात करना। चोट पहुँचाना। जैसे, थप्पड़ लगाना, मुक्का लगाना। १३. लेप करना। पोतना। मलना। जैसे,—जूते पर स्याही लगाना। १४. किसी में कोई नई प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना। जैसे,—आपने ही तो उन्हें सिगरेट का चसका लगाया है। १५. उपयोग में लाना। काम में लाना। जैसे,—झगड़ा लगाना, नौकरी लगाना। १६. सड़ाना। गलाना। जैसे,—(क) तुमने लापरवाही से सब पान लगा दिए। (ख) खाली जीन कसते कसते तुमने घोड़े की पीठ लगा दी। १७. ऐसा कार्य करना जिसमें बहुत से लोग एकत्र या संमिलित हों। जैसे,—तुम तो जहाँ जाते हो, मेला लगा देते हो। १८. दातव्य निश्चित करना। यह तै करना कि इतना अवश्य दिया जाय। जैसे,—कर लगाना। १९. आरोपित करना। अभियोग लगाना। जैसे,—जुर्म लगाना।

मुहा०—किसी को लगाकर कुछ कहना या गाली देना = बीच में किसी का संबंध स्थापित करके किसी प्रकार का आरोप करना।

२०. प्रज्वलित करना। जलाना। जैसे,—कड़ाही के नीचे आँच लगा दो। उ०—सेवा प्रभु करौ नेक रहौं पाँव धरौ जाइ कहो तुम बैठो कहीं आग सी लगाई है।—प्रियादास (शब्द०)। २१. ठीक स्थान पर बैठाना। जड़ना। जैसे,—घड़ी में सूई लगाना, चौखटे में शीशा लगाना। २२. गणित करना। हिसाब करना। जैसे,—ब्याज लगाना, जोड़ लगाना। २३. किसी के पीछे या साथ नियुक्त करना। शामिल करना। जैसे,—तुम भी उनके पीछे अपना दूत लगा दो। २४. किसी प्रकार साथ में संबद्ध करना। जैसे,—तुमने यह अच्छी बला मेरे पीछे लगा दी। २५. किसी के मन में दूसरे के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना। कान भरना। चुगली खाना। जैसे,—(क) किसी ने उन्हें मेरी तरफ से कुछ लगा दिया है। (ख) तुम तो यों ही इधर की उधर लगाया करते हो।

यौ०—लगाना बुझाना = लड़ाई झगड़ा कराना। दो आदमियों में वैमनस्य उत्पन्न करना।

२६. अपने साथ या पीछे ले चलना। जैसे,—वह बहुतों को अपने साथ लगाए फिरता है। २७. किसी कार्य में प्रवृत्त या तत्पर करना। नियुक्त करना। जैसे,—(क) लड़के को किसी रोजगार में लगा दो। (ख) जो काम किया करो, वह मन लगाकर किया करो। उ०—जिनको चारिहु द्वारन प्रथम लगायो राम।—रघुराज (शब्द०)। २८. गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं को दूहना। जैसे,—वह गौ लगाने गया है। २९. गाड़ना। धँसाना। ठोंकना। जड़ना। जैसे,—दीवार में कील लगाना। ३०. समीप पहुँचाना। पास ले जाना। सटाना। जैसे,—वह दरवाजे के पास कान लगाकर सुनने लगा। ३१. स्पर्श कराना। छुआना। जैसे,—उसने तुरंत गिलास उठाकर मुँह से लगाया। ३२. बंद करना। जैसे,—दरवाजा लगाना, कुरते की घुंडी लगाना, ताला लगाना। ३३. जूए की बाजी पर रखना। दाँव पर रखना। जैसे,—(क) उसने अपके पास के सब रुपए दाँव पर लगा दिए। (ख) मैं तुमसे बाजी नहीं लगाता। उ०—देश कोश नृप सकल लगाई। जीति लेव सब रहि नहिं जाई।—सबल (शब्द०)। ३४. किसी विषय में अपने आपको बहुत दक्ष या श्रेष्ठ समझना। किसी बात का अभिमान करना। जैसे,—वह गाने में अपने आपको बहुत लगाता है। ३५. अंग पर पहनना, ओढ़ना या रखना। धारण करना। जैसे,—चश्मा लगाना, छाता लगाना। ३६. बदले में लेना। मुजरा करना। जैसे,—यह अँगूठी तो हमने अपने लहने में लगा ली। ३७. अंकित करना। चिह्नित करना। जैसे,—तिलक लगाना, निशान लगाना, मोहर लगाना। ३८. धारदार चीज की धार तेज करना। सान पर चढ़ाना। जैसे,—खुरपा लगाना, कैंची लगाना। ३९. खरीदने के समय चीज का मूल्य कहना। दाम आँकना। जैसे,—मैंने उनके मकान का दाम ५,०००) लगा दिया है। ४०. किसी चीज का, विशेषत: खाने की चीज का अभ्यस्त करना। परचाना, साधना। जैसे,—लड़के को दाल रोटी पर लगा लो; दूध कहाँ तक दिया करोगे। ४१. नियत स्थान या कार्य पर पहुँचाना। जैसे, पारसल लगाना, मनीआर्डर लगाना। ४२. फैलाना। बिछाना। जैसे,—बिछौना लगाना, जाल लगाना। ४३. संभोग करना। मैथुन करना। प्रसग करना। (बाजारू)। ४४. करना। जैसे,—(क) आपने वहाँ बहुत दिन लगा दिए। (ख) यहाँ कागजों का ढेर मत लगाना। उ०—अब जनि देर लगावहु स्वामी। देखि प्रीति बोले ऋषि ज्ञानी।—विश्राम (शब्द०)। ४५. जहाज को छिछले या किनारे की जमीन पर चढ़ाना। (लश०)। ४६. एक जहाज को दूसरे जहाज के सामने या बराबर ले जाना। (लश०)। ४७. पाल खींचकर चढ़ाना। (लश०)।

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ इस क्रिया के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। जैसे,—दाँत लगाना, समाधि लगाना, कान लगाना, दम लगाना आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहावरों में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में छोड़ना, डालना, देना, रखना आदि अलग अलग संयोजक क्रियाएँ लगती हैं।

लगाम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. लोहे का वह काँटेदार ढाँचा जो घोड़े के मुँह के अंदर रखा जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़े का तस्मा आदि बँधा रहता है। दंतालिका। कविका।

क्रि० प्र० —उतारना।—चढ़ाना।—लगाना।

मुहा०—लगाम चढ़ाना या देना = (१) किसी को कोई कार्य करने से, विशेषत: बोलने से रोकना। (२) लँगोट कसना। (बाजारू)।

२. इस ढाँचे के दोनों ओर बँधा हुआ रस्सा या चमड़े का तस्मा जो सवार या हाँकनेवाले के हाथ में रहता है। सवार या हाँकनेवाला इसी रस्से या तस्मे को सहायता से घोड़े का चलाता, रोकता, इधर उधर मोड़ता और अपने वश में रखता है। रास। बाग।

मुहा०—लगाम लिए फिरना = किसी को पकड़ने, बाँधने या वश मे करने के लिये उसका पीछा करना। बराबर ढूँढ़ते फिरना।

लगामी(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लगाम] लगाम। रास। उ०—हथि लगामी ताजणौ, पारकइ सेवइ राजदुवार —बी० रासो, पृ० ६६।

लगाय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगाव] प्रेम संबंध। लगन।

लगायत—अव्य० [अ० लगायत] १. लेकर। शुरू कर। २. अंत तक।

लगार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + आर (प्रत्य०)] १. नियमित रूप से कोई काम करने या कोई चीज देने की क्रिया या भाव। बंधी। बंधेज। २. लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध। उ०—बार बार फन घात कै विष ज्वाला की झार। सहसौ फन फन फूँकरै नैक न तनहि लगार।—सूर (शब्द०)। ३. तार। क्रम। सिलसिला। उ०—सात दिवस नहिं मिटी लगार। बरष्यो सलिल अखंडित धार।—सूर० (शब्द०)। ४. लगन। प्रीति। लगावट। मुहब्बत। उ०—चकोर भरोसे चंद के ताता

गिलै अँगार। कहै कबीर छोड़ै नहीं ऐसी वस्तु लगार। —(शब्द०)। ५. वह जो किसी की ओर से भेद लेने के लिये भेजा गया हो। वह जो किसी के मन की बात जानने के लिये किसी की ओर से गया हो। उ०—और सखी एक श्याम पठाई। हरि को बिरह देखि भइ व्याकुल मान मनावन आई। बैठो आइ चतुरई काछे वह कछु नहीं लगार। देखति हौ कछु और दसा तुम बूझति बारंबार।—सूर० (शब्द०)। ६. वह जिससे घनिष्ठता का व्यवहार हो। मेत्री। संबंधी। ७. रास्ते के बीच का वह स्थान जहाँ से जुआरी लोग जूआ खेलने के स्थान तक पहुँचाए जाते हैं। टिकान।

विशेष—प्रायः जूआ किसी गुप्त स्थान पर होता है, जिसके कहीं पास ही संकेत का एक और स्थान नियत होता है। जब कोई जुआरी वहाँ पहुँचता है, तब या तो उसे जुए के स्थान का पता बतला दिया जाता है और या उसे वहाँ पहुँचाने के लिये कोई आदमी उसके साथ कर दिया जाता है। इसी संकेत स्थान को, जहाँ से जुआरी जूआ खेलने के स्थान पर भेजे जाते हैं, जुआरी लोग 'लगार' कहते हैं।

८. वह जो पास या निकट हो। समीप की वस्तु। लगी या सटी हुई चीज। उ०—दरिया सब जग आँधरा, सूझै नहीं लगार।—दरिया० बानी, पृ० ३७।

लगालगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना (लग का द्वित्वीकृत रूप)] १. लाग। लगन। प्रेम। स्नेह। प्रीति। उ०—(क) क्यौं बसिए क्यों निबहिए नीति नेहपुर नाहिं। लगालगी लोचन करैं नाहक मन बँध जाहिं।—बिहारी (शब्द०)। (ख) लगालगी लोपौं गली लगे लागलै लाल। गैल गोर गोरी लगे पालागों गोपाल।—केशव (शब्द०)। २. संबंध। मेलजोल। ३. उलझाव। फँसाव। उलझन (को०)।

लगाव—संज्ञा पुं० [लगना+आव (प्रत्य०)] लगे होने का भाव। संबंध। वास्ता। जैसे,—(क) इन दोनों मकानों में कोई लगाव नहीं है। (ख) मैं ऐसे लोगों से कोई लगाव नहीं रखता।

लगावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना+आवट (प्रत्य०)] १. संबंध। वास्ता। लगाव। २. प्रेम। प्रीति। लगन। मुहब्बत। जैसे,—लगावट की बातें।

लगावन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगाव] लगाव। संबंध। वास्ता। उ०—हम हैं अफसर तुम हौ बावन। हमरी तुमरी कहाँ लगावन।—रामकृष्ण (शब्द०)। २. वह जिसके सहारे कुछ कुछ खाया जाय। जैसे,—दाल, शाक, चटनी, आचार, नमक, मिर्च आदि। ३. जलाने की लकड़ी, उपला आदि ईंधन।

लगावना—क्रि० स० [हिं० लगाव+ना (प्रत्य०)] दे० 'लगाना'। उ०—केती लाए फौज और क्या आवनी। सो सब लेउ बुलाइ न देर लगावनी।—सूदन (शब्द०)।

लगि(पु)[1]—अव्य० [हिं०] दे० 'लग'।

लगि[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लग्घो] दे० 'लग्घी'। उ०—(क) लहलहाति तन तरुनई लचि लगि लौं लपि जाइ। लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाइ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) नाम लगि ल्याय लासा ललित बचन कहि व्याध ज्यौं विषय बिहंगनि बझावौं।—तुलसी (शब्द०)।

लगित—वि० [सं०] १. संलग्न। संयुक्त। संबंधित। २. प्राप्त। आलब्ध। उपलब्ध। ३. प्रविष्ट। घुसा हुआ [को०]।

लगी†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] दे० 'लग्गी'। उ०—एहि विषचारइ सब बुधि ठगी। अउ भा काल हाथ लेइ लगी।—जायसी (शब्द०)।

लगी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] १. प्रेम। मुहब्बत। आशनाई। उ०—हुजूर यह लगी बुरी होती है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३३२। २. ख्वाहिश। इच्छा। ५. भूख।

मुहा०—लगी बुझना = मन की भूख मिटना। इच्छा पूरी होना। लगी लिपटी कहना = पक्षपातपूर्ण बात कहना। लल्लो चप्पो कहना। उ०—जो लगाए कहें लगी लिपटी। वे कभी बन सके नहीं सच्चे।—चुभते०, पृ० १७।

लगु(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'लग'।

लगुड़—संज्ञा पुं० [सं० लगुड] १. डंड। डंडा। लाठी। २. प्रायः दो हाथ लंबा लोहे का एक विशेष प्रकार का डंडा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में पैदल सैनिक अस्त्रों के समान करते थे। ३. लाल कनेर।

यौ०—लगुडवंशिका = छोटी जाति का और पतला एक प्रकार का वाँस। लगुडहस्त = छड़ी बरदार।

लगुडी—वि० [सं० लगुडिन्] हाथ में लगुड लिए हुए। लगुडहस्त। दंडधारी।

लगुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लगुड' [को०]।

लगुल[1]—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गूल ?] शिश्न। (डिं०)।

लगुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लगुड़' [को०]।

लगुवा†—वि० [हिं० लगना+उवा (प्रत्य०)] १. पीछे लगनेवाला। पीछे पीछे चलनेवाला। पिछलग्गू। २. प्रेम करनेवाला। प्रेमी। लगनवाला। उ—मतवार मोहन होरी को। लटुवा भयौ फिरत दिन रजनी लगुवा गोरी भोरी को।—घनानंद, पृ० ५१६।

लगूर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गूल] पूँछ। दुम। उ०—जरा लगूर सु राता उहाँ। निकसि जो भागि भएउँ करमुहाँ।—जायसी (शब्द०)।

लगूल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गूल] पूँछ। दुम। उ०—हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल। सुर बार बार बरनहिं लगूल।—तुलसी (शब्द०)।

लगे†—अव्य० [हिं०] दे० 'लग'।

लगे लगे†—संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] बंदर।

विशेष—बहुधा बंदरों के आने पर स्त्रियाँ और बच्चे 'लगे लगे' का शोर मचाते हैं, और बंदर का नाम लेना लोग ठीक नहीं समझते; इसलिये प्रायः 'बंदर' के अर्थ में इस सांकेतिक शब्द का प्रयोग करते हैं।

लगो—वि० [अ० लग़ो] निरर्थक। अर्थहीन। बेकार। असंगत। बेतुका [को०]।

लगौहाँ—वि० [हिं० लगना + औहाँ (प्रत्य०)] जिसे लगन लगाने की कामना हो। लगने का आकांक्षी। रिझवार। उ०—(क) लगौहीं चितवनि औरहि होति। दुरति न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ख) कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न। कहा करौ जो जाहि ये लगें लगौहैं नैन।—बिहारी (शब्द०)।

लग्गत†—संज्ञा स्त्री० दे० 'लागत'।

लग्गा[1]—संज्ञा पुं० [सं० लगुड] १. लंबा बाँस। २. वृक्षों से फल आदि तोड़ने का वह लंबा बाँस जिसके आगे एक अँकुसी लगी रहती है। लकसी। ३. वह लंबा बाँस जिसके सहारे से छिछले पानी में नाव चलाते हैं। लग्गी। ४. घास या कीचड़ आदि हटाने का एक प्रकार का फरसा जिसमें दस्ते की जगह एक लंबा बाँस लगा रहता है।

लग्गा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लगना] १. कार्य आरंभ करना। काम में हाथ लगाना। २. मुख्य खिलाड़ियों की रजामंदी पर अन्य दर्शकों द्वारा जूए का दाँव लगाना जिनकी हार जीत मुख्य खिलाड़ी की हार जीत पर निर्भर करती है।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल 'लगना' और 'लगाना' क्रियाओं के साथ ही होता है।

लग्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लंबा बाँस। दे० 'लग्गा'।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

लग्गू†—वि० [हिं० लगना (=संभोग करना)] १. संभोग करनेवाला। २. उपपति। जार। यार। (बाजारू)।

यौ०—लग्गूबझभू = जो लगा बझा हो। पिछलग्गू।

लग्घड़—संज्ञा पुं० [देश०] १. (बड़ा) बाज। सचान। २. एक प्रकार का चीता जो सामान्य चीते से बड़ा होता है।

विशेष—इसे शिकार करना सिखाया जाता है। यह प्रायः छह फुट लंबा होता है। इसकी आँखों पर एक जंजीर से पट्टियाँ बँधी रहती हैं। इसी को 'लकड़बग्घा' भी कहते हैं।

लग्घा—संज्ञा पुं० [हिं० लग्गा] दे० 'लग्गा'।

लग्घी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लग्गी] दे० 'लग्गी'।

लग्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में दिन का उतना अंश, जितने में किसी एक राशि का उदय रहता है।

विशेष—पृथ्वी दिन रात में एक बार अपनी धुरी पर घूमती है; और इस बीच में वह एक बार मेष आदि बारह राशियों को पार करती है। जितने समय तक वह एक राशि में रहती है, उतने समय तक उस राशि का लग्न कहलाता है। किसी राशि में उसे कुछ कम समय लगता है और किसी में अधिक। जैसे,—मीन राशि में प्रायः पौने चार दंड, कन्या में प्रायः साढ़े पाँच दंड, और वृश्चिक में प्रायः पौने छह् दंड। लग्न का विचार प्रायः बालक की जन्मपत्री बनाने, किसी प्रकार का मुहूर्त निकालने अथवा प्रश्न का उत्तर देने में होता है।

२. ज्योतिष के अनुसार कोई शुभ कार्य करने का मुहूर्त। ३. विवाह का समय। उ०—एकहि लग्न सबहि कर पकरेउ, एक मुहूर्त बियाहे।—सूर (शब्द०)। ४. विवाह। शादी। ५. विवाह के दिन। सहालग। ६. वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। बंदीजन। सूत। ७. मत्त द्विप। मस्त हाथी (को०)। ८. बारह की संख्या क्योंकि लग्न बारह होते हैं। ९. शिव। शुभ। भद्र (को०)।

लग्न[2]—वि० १. लगा हुआ। मिला हुआ। २. लज्जित। शरमिंदा। ३. आसक्त।

लग्न[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० लगन] दे० 'लगन'।

लग्न[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] दे० 'लगन'।

लग्नकंकण—संज्ञा पुं० [सं० लग्नकङ्कण] वह कंकण या मंगलसूत्र जो विवाह के पूर्व वर और कन्या के हाथ में बाँधा जाता है।

लग्नक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो जमानत करे। प्रतिभू। जामिन। २. एक राग जो हनुमत् के मत से मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

लग्नकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शुभ समय। शुभ घड़ी। कोई शुभ कार्य, विवाह, यज्ञ आदि करने के लिये निर्धारित शुभ समय।

लग्नकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नकुण्डली] फलित ज्योतिष में वह चक्र या कुंडली जिससे यह पता चलता है कि किसी के जन्म के समय कौन कौन से ग्रह किस किस राशि में थे। जन्मकुंडली।

लग्नग्रह—वि० [सं०] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक अड़नेवाला। आग्रही [को०]।

लग्नदंड—संज्ञा पुं० [सं० लग्नदण्ड] गाने या बजाने के समय स्वर के मुख्य अंशों या श्रुतियों को आपस में एक दूसरे से अलग न होने देना और सुंदरता से उनका संयोग करना। लाग डाँट। (संगीत)।

लग्नदिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह के लिये निश्चित दिन। २. किसी शुभ कार्य के करने के लिये चुना गया दिन।

लग्नदिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लग्नदिन' [को०]।

लग्नपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे संबंध रखनेवाले दूसरे कृत्यों का लग्न स्थिर करके ब्योरेवार लिखा जाता है।

लग्नपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लग्नपत्र'।

लग्नमुहूर्त, लग्नवासर—संज्ञा पुं० [सं०] लग्नदिन। लग्नकाल। शुभ समय [को०]।

लग्नवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लग्नकाल' [को०]।

लग्नसमय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लग्नकाल' [को०]।

लग्नाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी। ज्योतिर्विद्।

लग्नायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में वह आयु जो लग्न के अनुसार स्थिर की जाती है।

लग्नाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लग्नदिवस' [को०]।

लग्निका—संज्ञा स्त्री० [सं० नग्निका का असाधु रूप] १. नंगी औरत। बेहया स्त्री (को०)। २. कन्या जो अरजस्का हो। कम अवस्थावाली लड़की।

लग्नेश—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो लग्न का स्वामी हो।

लग्नोदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी लग्न के उदय होने का समय। २. लग्न के उदय होने का कार्य।

लग्वगो—वि० [अ० लग्व + फ़ा० गो] १. मिथ्यावादी। २. बाचाल। बातूनी [को०]।

लग्वगोई—संज्ञा स्त्री० [अ० लग्व + फ़ा० गोई] १. झूठ बोलना। मिथ्याकथन। उ०—थोड़ी जिंदगी के वास्ते कौन लग्वगोई करके दोजख में जाने का काम करे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६७। २. बकवास। वाचालता।

लघट्, लघटि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०]।

लघडबग्गा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीता। लग्घड़।

लघमीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीपुष्प] पद्मराग मणि। लाल। माणिक्य। मानिक (डिं०)।

लघाट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वायु' [को०]।

लघिना—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का धारदार अस्त्र जिसमें दस्ता लगा होता था और जिससे भैंसे आदि काटे जाते थे।

लघिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० लघिमन्] १. आठ सिद्धियों में से चौथी सिद्धि (कहते हैं, इसे प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता है)। २. लघु या ह्रस्व होने का भाव। लघुत्व।

लघु[१]—वि० [सं०] १. शीघ्र। जल्दी। २. जो बड़ा न हो। कनिष्ठ। छोटा। जैसे,—लघु स्वर, लघु मात्रा। ३. सुंदर। बढ़िया। आनंददायक। इष्ट। अभिप्रेत। ४. जिसमें किसी प्रकार का सार या तत्व न हो। निःसार। महत्वहीन। अनावश्यक। ५. स्वल्प। थोड़ा। कम। ६. हलका। सरल। आसान। ७. नीच। क्षुद्र। नगण्य। ८. दुर्बल। दुबला। ९. अमिश्रित। शुद्ध। निर्मल (को०)। १०. फुर्तीला (को०)।

लघु[२]—संज्ञा पुं० १. काला अगर। २. उशीर। खस। ३. हस्त, अश्विनी और पुष्य ये तीनों नक्षत्र जो ज्योतिष में छोटे माने गए हैं और जिनका गण 'लघुगण' कहा गया है। ४. समय का एक परिमाण जो पंद्रह क्षणों का होता है। ५. तीन प्रकार के प्राणायामों में से वह प्राणायाम जो बारह मात्राओं का होता है (शेष दो प्राणायाम मध्यम और उत्तम कहलाते हैं)। ६. व्याकरण में वह स्वर जो एक ही मात्रा का होता है। जैसे,—अ, इ, उ, ओ, ए आदि। ७. वह जिसमें एक ही मात्रा हो। एकमात्रिक। इसका चिह्न (।) है।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग संगीत में ताल के संबंध में और छंदःशास्त्र में वर्ण के सबंध में होता है।

८. वंशी का छोटा होना, जो उसके छह् दोषों में से एक माना जाता है। ९. चाँदी। १०. पृक्का। असबरग। ११. वह जिसका रोग छूट गया हो (रोग छूटने पर शरीर कुछ हलका जान पड़ता है)।

लघुकंकोल—संज्ञा पुं० [सं० लघुकङ्कोल] एक प्रकार का कंकोल जो साधारण कंकोल से छोटा होता है।

लघुकंटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुकण्टकी] लजालू।

लघुक—वि० [सं०] १. लघु। हल्का। २. महत्वहीन। तुच्छ [को०]।

लघुकटाई—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुकण्टकारी] दे० 'कंटकारी'।

लघुकण—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा।

लघुकर्कंधु—संज्ञा पुं० [सं० लघुकर्कन्धु] भुँई बेर।

लघुकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

लघुकाम—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी।

लघुकाय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] छाग। अज। बकरा [को०]।

लघुकाय[२]—वि० हलके शरीरवाला [को०]।

लघुकाश्मर्य—संज्ञा सं० [सं०] कटहल का वृक्ष।

लघुकिन्नरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

लघुकोष्ठ—वि० [सं०] १. जिसका पेट हलका हो। २. खाली पेटवाला [को०]।

लघुकौमुदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरदराज कृत सिद्धांतकौमुदी के संक्षिप्त रूप का नाम।

लघुक्रम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जल्दी जल्दी चलने की क्रिया। तेज चाल।

लघुक्रम[२]—वि० [सं०] द्रुतगामी। तेज कदम बढ़ानेवाला [को०]।

लघुखट्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मचिया। छोटो खाट। खटोला [को०]

लघुग—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। पवन [को०]।

लघुगण—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में अश्विनी, पुष्य और हस्त इन तीनों नक्षत्रों का समूह।

लघुगति—वि० [सं०] तेज चलनेवाला [को०]।

लघुगर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेरा नाम की मछलो। २. टेंगरा या त्रिकंटक नाम की मछली।

लघुगोधूम—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटी किस्म का गेहूँ [को०]।

लघुचंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुचञ्चरी] संगीत में एक ताल [को०]।

लघुचंदन—संज्ञा पुं० [सं० लघुचन्दन] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।

लघुचित्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका मन बहुत दुर्बल या चंचल हो।

लघुचित्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन के बहुत ही दुर्बल या चंचल होने का भाव।

लघुचिर्भिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद इंद्रायण। श्वेत इंद्रवारुणी [को०]।

लघुचेता—संज्ञा पुं० [सं० लघुचेतस्] वह जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और बुरे हों नीच।

लघुच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महा शतावरी। बड़ी शतावर।

लघुजंगल—संज्ञा पुं० [सं० लघुजङ्गल] दे० 'लघुजांगल' [को०]।

लघुजल—संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी।

लघुजांगल—संज्ञा पुं० [सं० लघुजाङ्गल] लवा नामक पक्षी।

लघुतम—वि० [सं०] सबसे छोटा।

यौ०—लघुतम समापवर्त्य = दे० 'लघुत्तमापवर्त्य'।

लघुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लघु होने का भाव। छोटापन। लाघव। २. हलकापन। तुच्छता।

लघुताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल [को०]।

लघुतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] मुरदा संग।

लघुतुपक—संज्ञा स्त्री० [सं० लघु + हिं० तुपक] तमंचा। पिस्तौल।

लघुत्तम—संज्ञा पुं० [सं० लघुतम] गणित की एक क्रिया। लघुत्तमापवर्त्य।

लघुत्तमापवर्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सबसे छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओं में से प्रत्येक को पूरा पूरा भाग दे सके।

लघुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. लघु होने का भाव। लघुता। २. हलकापन। छोटापन। तुच्छता।

लघुदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुदन्ती] छोटी दंती। विशेष दे० 'दंती'।

लघुदुंदुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुदुन्दुभी] एक प्रकार की छोटी दुदुभी। डुग्गी।

लघुद्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

लघुद्रावी—वि० [सं०] सरलता से द्रवण होने या गलनेवाला [को०]।

लघुनामकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह कर्म जिससे जीव का शरीर न तो बहुत भारी होता है और न बहुत हलका होता है; बल्कि साधारण सम विभक्त होता है।

लघुनामा—संज्ञा पुं० [सं० लघुनामन्] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।

लघुनालिका संज्ञा स्त्री० [सं०] तुपक। छोटी बंदूक [को०]।

लघुपंचक संज्ञा पुं० [सं० लघुपञ्चक] शालिपर्णी, पिठवन, कटाई (छोटी), कटेहरी (बड़ी) और गोखरू इन पाँचों की जड़ों का समूह जो वैद्यक के अनुसार पाचक, बलकारक, ग्राहक और ज्वर, श्वास तथा अश्मरी आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

लघुपंचमूल—संज्ञा पुं० [सं० लघुपञ्चमूल] दे० 'लघुपंचक'।

लघुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।

लघुपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोचना नामक वृक्ष [को०]।

लघुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वत्थ वृक्ष।

लघुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्वा। मरोड़फली। २. शतमूली। सतावर।

लघुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] वह खाद्य पदार्थ जो सहज में पच जाय।

लघुपाकी—संज्ञा पुं० [सं० खघुपाकिन्] चेना नामक कदन्न।

लघुपाती—संज्ञा पुं० [सं० लघुपातिन्] कौवा।

लघुपिच्छिल—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मातक [को०]।

लघुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ कदंब।

लघुपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला केवड़ा। स्वर्ण केतकी।

लघुप्रयत्न संज्ञा पुं० [सं०] आलसी।

लघुफल—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर।

लघुबदर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० लघुबदरी] छोटा बेर। झरबेरी [को०]।

लघुब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलोद्भवा। सूक्ष्मपत्रा। क्षुद्रब्राह्मी [को०]।

लघुभव—वि० [सं०] नीच वंश या निम्न कोटि में जन्म लेनेवाला।

लघुभुक्—वि० [सं० लघुभुज्] स्वल्पभोजी। अल्पाहारी [को०]।

लघुभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] हलका भोजन। अल्पाहार।

लघुमंथ—संज्ञा पुं० [सं० लघुमन्थ] छोटी गनियारी।

लघुमति—वि० [सं०] छोटी समझवाला। कमसमझ। मूर्ख।

लघुमांस—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर नामक पक्षी।

लघुमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जटामाँसी।

लघुमान—संज्ञा पुं० [सं०] नायिका का वह मान या अल्प रोष जो नायक को किसी दूसरी स्त्री से बातचीत करते देखकर उत्पन्न होता है।

लघुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में समीकरण की न्यूनतर संख्या या पद [को०]।

लघुमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] मूली [को०]।

लघुमेरु—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल [को०]।

लघुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. करेले की बेल। २. अनंतमूल।

लघुलय—संज्ञा पुं० [सं०] १. उशीर। खस। २. पीला बाला या लामज (लामंजक) नाम की घास।

लघुलोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनी का साग।

लघुवासा—वि० [सं० लघुवासस्] हल्का अथवा विशुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला [को०]।

लघुविक्रम—वि० [सं०] द्रुतगामी। जल्दी चलनेवाला [को०]।

लघुवृत्ति—वि० [सं०] १. दुर्विनीत। बदतमीज। २. हलका। छिछला। ३. अव्यवस्थित। बेढंगेपन से संपन्न [को०]।

लघुवेधी—वि० [सं० लघुवेधिन्] ठीक, शीघ्र और लक्ष्य भेद करनेवाला। चतुर निशानेबाज [को०]।

लघुशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० लघुशङ्का] मूत्रोत्सर्ग। पेशाब करना।

लघुशंख—संज्ञा पुं० [सं० लघुशङ्ख] घोंघा।

लघुशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल। इसे 'लघुशेखर' भी कहते हैं।

लघुशीत—संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा।

लघुसत्व—वि० [सं०] दुर्बल या चंचल चित्तवाला।

लघुसदाफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी गूलर। कठूमर [को०]।

लघुसमुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह राजा या राज्य जो लड़ाई के लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

विशेष—गुरु समुत्थ और लघु समुत्थ इन दो प्रकार के मित्रों में कौटिल्य ने दूसरे को ही अच्छा कहा है; क्योंकि उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर खड़ा तो हो सकता है। पर प्राचीन आचार्य गुरु समुत्थ को ही अच्छा मानते थे, क्योंकि यद्यपि वह जल्दी उठ नहीं सकता, पर जब उठता है, तब कार्य पूरा करके ही छोड़ता है।

लघुसमुत्थान—वि० [सं०] १. शीघ्र उठनेवाला। २. तेज चलनेवाला [को०]।

लघुसार—वि० [सं०] निस्सार। उपेक्षणीय [को०]।

लघुहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत जल्दी जल्दी बाण चला सकता हो। शीघ्रवेधी।

लघुहृमदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठगूलर [को०]।

लघूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] संक्षेप में अभिव्यंजना का ढंग [को०]।

लघूत्थान—वि० [सं०] दे० 'लघुसमुत्थान' [को०]।

लघ्वाशी—वि० [सं० लघ्वाशिन्] अल्पाहारी। थोड़ा खानेवाला [को०]।

लघ्वाहार—वि० [सं०] दे० 'लघ्वाशी' [को०]।

लघ्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेर नामक फल। २. असबरग। स्पृक्का। ३. छोटा स्यंदन। एक प्रकार का रथ (को०)। ४. दुबली पतली कोमलांगिनी। तन्वंगी स्त्री (को०)।

लच—संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचकने की क्रिया। लचक।

लचक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] १. लचकने की क्रिया या भाव। लचन। झुकाव।

क्रि० प्र०—खाना।—जाना।

२. वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु दबती या झुकती हो।

यौ०—लचकदार = दे० 'लचाकेदार'।

लचक²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जो ६०-७० हाथ लंबी होती है।

विशेष—यह मकसूदाबाद की तरफ बनती है और इसे बहुत से लोग मिलकर खेते हैं।

लचकना—क्रि० अ० [हिं० लच (अनु०)] १. किसी लंबे पदार्थ का बोझ पड़ने या दबने आदि के कारण बीच से झुकना। लचना। जैसे,—यह छड़ी बहुत कमजोर है जरा सा बोझ देने से ही लचक जाती है।

संयो० क्रि०—जाना।

२. स्त्रियों की कमर का कोमलता या नखरे आदि के कारण झुकना। जैसे,—जब चलती है, तब उसकी कमर लचकती है। ३. स्त्रियों का कोमलता या नखरे आदि के कारण चलने के समय रह रहकर झुकना। जैसे,—वह जब चलती है, तब लचकती चलती है।

लचकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] १. लचीलापन। २. लचक। झुकाव।

लचका—संज्ञा पुं० [हिं० लचकना] एक प्रकार का गोटा।

लचकाना—क्रि० स० [हिं० लचकना] किसी पदार्थ को लचने में प्रवृत्त करना। झुकाना। लचाना।

लचकीला—वि० [हिं० लचक + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लचकीली] १. जो सहज में लच या दब जाय। लचकने योग्य। २. लचकदार।

लचकौहाँ(पु)†—वि० [हिं० लचकना] दे० 'लचकीला'।

लचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० लचक] दे० 'लचक'।

लचना—क्रि० अ० [हिं० लच + ना (प्रत्य०)] दे० 'लचकना'।

लचनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लच] दे० 'लचक'।

लचर—वि० [?] १. लचने या झुकनेवाला। कमजोर। तथ्यहीन। २. जो किसी स्तर पर टिक न सके। लचनेवाला। जैसे—लचर दलील, लचर तर्क।

लचलचा—वि० [हिं० लचना] जो लचक जाय। लचीला। लचकनेवाला।

लचलचापन—संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचीला होने का भाव। लचीलापन।

लचाकेदार—वि० [हिं० लचक + फ़ा० दार (प्रत्य०)] मजेदार। बढ़िया। (बाजारू)।

लचाना—क्रि० स० [हिं० लचना का सक० रूप] लचकाना। झुकाना।

लचार(पु)†—वि० [फ़ा० लाचार] दे० 'लाचार'।

लचारी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लाचारी] दे० 'लाचारी'।

लचारी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह कर जो कोई व्यक्ति अपने से बड़े को देता है। भेंट। नजर। उ०—विमल मुक्तमाल लसत उच्च कुचन पर मदन महादेव मनो दई है लचारी।—सूर (शब्द०)। २. एक प्रकार का गीत। नचारी।

लचारी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार] एक प्रकार का आम का अचार जो खाली नमक से बनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता। अचारी।

लचुई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे की बनी हुई पतली और मुलायम पूरी। लुच्ची। लुचुई।

लच्छ(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्य] १. ब्याज। बहाना। मिस। २. वह वस्तु या स्थान जिसपर शस्त्र चलाना हो। निशाना। ताक। उ०—जीभ कमान बचन सर नाना। मनहु महिप मृदु लच्छ समाना।—मानस, २।४१।

लच्छ²—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] सौ हजार की संख्या। लाख।

लच्छ³—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, प्रा० लच्छमी, लच्छी] दे० 'लक्ष्मी'। उ०—(क) चहुं लच्छ बावर कबि साई। जहं सरस्वती लच्छ कित होई।—जायसी (शब्द०)। (ख) मरकतमय साखा सुपत्र मंजरिन्ह लच्छ जेहि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२५।

लच्छण[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] स्वभाव । (डिं०) ।

लच्छण(पु)†[२]—संज्ञा पुं० दे० 'लक्षण' ।

लच्छन(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] दे० 'लक्षण'। उ०—(क) नहिं दारद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू । राम भक्त कर लच्छन एहू ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कछु देख कै लच्छन छोटो बड़ो सम बात चलै कहि आवतु है ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

लच्छन[२]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] दे० 'लक्ष्मण' ।

लच्छना[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्षणा] दे० 'लक्षणा' ।

लच्छना(पु)[२]—क्रि० स० [सं० लक्ष्य, हिं० लच्छ+ना (प्रत्य०)] भलीभाँति देखना । उ०—तिनके लच्छन लच्छ अब, आछे कहे बखानि ।—मतिराम (शब्द०) ।

लच्छमण[१]—वि० [सं० लक्ष्मीवान्] धनवान् । अमीर। (डिं०) ।

लच्छमण[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] दे० 'लक्ष्मण' ।

लच्छमी—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] दे० 'लक्ष्मी' ।

लच्छा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. कुछ विशेष प्रकार से लगाए हुए बहुत से तारों या डोरों आदि का समूह । गुच्छे या झुप्पे आदि के रूप में लगाए हुए तार । जैसे,—रेशम का लच्छा, सूत का लच्छा ।

यौ०—लच्छे की साड़ी=बनारसी काम की वह साड़ी जिसके किनारे आदि के तार ताने के साथ ही तने गए हों ।

२. किसी चीज के सूत की तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े । जैसे,—प्याज का लच्छा, आदी का लच्छा । ३. इस आकार की किसी तरह बनाई हुई कोई चीज । जैसे,—रबड़ी का लच्छा । ४. मैदे की एक प्रकार की मिठाई जो प्राय: पतले लंबे सूत की तरह और देखने में उलझी हुई डोर के समान होती है । ५. एक प्रकार का गहना जो तारों की जंजीरों का बना होता है । यह हाथों में पहनने का भी होता है और पैरों में पहनने का भी । ६. एक प्रकार का घटिया केसर जो नीबल या निकृष्ट श्रेणी के केसर में थोड़ा सा बढ़िया केसर मिलाकर बनाया जाता है ।

लच्छा साख—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की संकर रागिनी ।

लच्छि(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, प्रा० लच्छमी] लक्ष्मी । उ०—(क) एहि बिधि उपजइ लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ।—तुलसी (शब्द०) ।

लच्छि[२]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] लाख की संख्या ।

लच्छित(पु)—वि० [सं० लक्षित] १. आलोचित । देखा हुआ । २. निशान किया हुआ । अंकित । चिह्नित । ३. लक्षणयुक्त। लक्षणवाला । उ०—शुभ लच्छन लच्छित हय सोई । तुरँग साल देखिय जो होई ।—मधुसूदन (शब्द०) ।

लच्छिन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण, हिं० लच्छन] दे० 'लक्षण'। उ०—एक धृष्ट, इक सठ, एक दच्छिन । इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५९ ।

लच्छिनाथ—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनाथ] लक्ष्मीपति, विष्णु । (डिं०) ।

लच्छिनिवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनिवास] विष्णु । नारायण। उ०—दुलहिनि लेइगे लच्छिनिवासा । नृप समाज सब भयउ निरासा ।—तुलसी (शब्द०) ।

लच्छी[१]—वि० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—कोइ कबुली अँबोज कोइ कच्छी । बीत मेमना मुसी लच्छी ।—विश्राम (शब्द०) ।

लच्छी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, हिं० लच्छमी, लच्छि, लच्छी] दे० 'लक्ष्मी' ।

लच्छी[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लच्छा] सूत, रेशम, ऊन, कलाबत्तू इत्यादि की लपेटी हुई गुच्छी । अट्टी ।

लच्छेदार—वि० [हिं० लच्छा+फ़ा० दार (प्रत्य०) १. (खाद्य पदार्थ) जिसमें लच्छे पड़े हों । लच्छोंवाला । २. (बातचीत या इबारत) जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुनने में मन लगता हो । मजेदार या श्रुतिमधुर (बात) । उ०—वैसी लच्छेदार इबारत कोई लिखी नहीं सकता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६ ।

लछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्य] दे० 'लक्ष्य' । उ०—कोउ कहैं ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे । लछ लाघव संधान धरे आयुध के सूरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१ ।

लछन(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] राम के छोटे भाई, लक्ष्मण। उ०—दसरथ सों ऋषि आनि कह्यो । असुरन सों यज्ञ होन न पावत राम लछन तब संग दयो ।—सूर (शब्द०) ।

लछन[२]—संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] दे० 'लक्षण' ।

लछना†—क्रि० अ० [सं० √लक्ष्, प्रा० लख लच्छ] दे० 'लखना' ।

लछमन[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] दे० 'लक्ष्मण' ।

लछमन[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मणा] दे० 'लक्ष्मणा'-४ ।

लछमन झूला—संज्ञा पुं० [हिं० लछमन+झूला] १. बदरीनारायण के मार्ग में एक स्थान ।

विशेष—यहाँ पहले पुरानी चाल का रस्सों का एक लटकौआँ पुल था, जिसे झूला कहते थे ।

२. रस्सों या तारों आदि से बना हुआ वह पुल जो बीच में झूले की तरह नीचे लटकता हो । ३. एक प्रकार की लता या बेल ।

लछमना—संज्ञा स्त्री० [सं० लछमना] दे० 'लक्ष्मणा' । उ०—बहुरि लछमना सुमिरन कीन्हों । ताहि स्वयंबर में हरि लीन्हों ।—सूर (शब्द०) ।

लछमी—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] दे० 'लक्ष्मी' ।

लछारा(पु)†—वि० [अनु० लच्छा+रा (प्रत्य०)] लच्छा । शृंखला । गुच्छा । उ०—कैसे छबिदार काकपच्छ से सँवारे कहिए जैसे यह राजत सुगंध के लछारे हैं ।—पजनेस०, पृ० ४१ ।

लछिमी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] दे० 'लक्ष्मी' ।

लज(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] शर्म । हया । लाज । उ०—सुघर

सौति बस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास। लखी सखी तत दीठि करि सगरब सलज स हास।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—'लज्जा' शब्द का 'लज' रूप समस्त पदों में ही पाया जाता है। जैसे,—लजवंती नारी।

लजना—क्रि० अ० [सं० √लज्ज्] लजाना। शरमाना। लज्जित होना।

लजनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लजाना] १. लजालू का पौधा। २. शरमानेवाली स्त्री। लजानेवाली या शरमीली स्त्री। उ०—मन तजि मान मेरी बारी मैं निहारी नेकु, पीतम बुलावै मग लीजिए अवास को। लजनी बनी है अजौ रजनी रही न आधी, सजनी प्रकास गयो रजनी प्रकास को।—नट०, पृ० ८९।

लजवाना—क्रि० स० [हिं० लजाना] दूसरे को लज्जित करना।

लजाधुर†[१]—वि० [सं० लज्जाधर] जो बहुत लज्जा करे। लज्जावान्। शर्मीला।

लजाधुर[२]—संज्ञा पुं० लजालू नाम का पौधा। (लज्जावंती)।

लजाना[१]—क्रि० अ० [सं० √लज्जा] अपने किसी बुरे या भद्दे व्यवहार का ध्यान करके वृत्तियों के संकोच का अनुभव होना। शर्म में पड़ना। उ०—कंप किसोरी दरस ते खरे लजाने लाल।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

लजाना[२]—क्रि० स० लज्जित करना। लजवाना।

लजारू†—संज्ञा पुं० [सं० लज्जालू] लजाधुर। लजालू पौधा। उ०—जनक बचन छुए बिरवा लजारु के से, बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै।—तुलसी (शब्द०)।

लजालू—संज्ञा पुं० [सं० लज्जालु] हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक काँटेदार छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ छूने से सुकड़कर बंद हो जाती हैं, और फिर थोड़ी देर में धीरे धीरे फैलती हैं।

विशेष—इसके डंठल का रंग लाल होता है और महीन महीन पत्तियाँ शमी या बबूल की पत्तियों के समान एक सीके के दोनों ओर पंक्ति में होती हैं। हाथ लगते ही दोनों ओर की पत्तियाँ संकुचित होकर परस्पर मिल जाती हैं; इसी से इस पौधे का नाम लजालू पड़ा। इसके फूल गुलाबी रंग की गोल गोल घुंडियों की तरह के होते हैं, जिनके झड़ जाने पर छोटे छोटे चिपटे बीज पड़ते हैं। भारत के गरम भागों में यह सर्वत्र होता है; जैसे, बंगाल के दक्षिण भाग में कहीं कहीं बहुत दूर तक रास्ते के दोनों ओर यह लगा मिलता है।

वैद्यक में यह कटु, शीतल, कषाय तथा रक्तपित्त, अतिसार, दाह, श्रम, श्वास, व्रण, कुष्ठ कफ तथा योनिरोग को दूर करनेवाला माना जाता है। कहीं कहीं पथरी की पीड़ा शांत करने के लिये तथा भगंदर अच्छा करने के लिये इसकी जड़ और डंठल का काढ़ा और पत्तियों का चूर्ण सेवन करते हैं। रासायनिक परीक्षा से पता चला है कि इस पौधे में सौ में दस भाग कषाय धातु (टैनीन) होती है। इसके डंठल के चूर्ण को हीरा कसीस के साथ मिलाने से बड़ी अच्छी स्याही बनती है।

पर्या०—लज्जावती लता। वाराहक्रांता। रक्तपादी। शमीपत्रा। स्पृक्का। खदिरपत्रिका। संकोचिनी। समंगी। नमस्कारी। प्रसारिणी। समपर्णी। खदिरी। गंडमालिका। लज्जा। लज्जिरी। स्पर्शलज्जा। अस्त्ररोधिनी। रक्तमूला। ताम्रमूला। स्वगुप्ता। महाभीता। वशिनी। महौषध।

लजावन†—क्रि० स० [सं० लजाना] दे० 'लजावना' या 'लजाना'।

विशेष—समस्त पद में किसी शब्द के आगे आने से इसका अर्थ होता है 'लज्जित करनेवाला'। जैसे,—सोभा कोटि मनोज लजावन।

लजावनहार—संज्ञा पुं० [हिं० लजाना या लजावन+हार (प्रत्य०)] लज्जित करनेवाला। शर्मिंदा करनेवाला। उ०—कोटि मनोज लजावनहारे।—तुलसी (शब्द०)।

लजावनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० लजवाना] दे० 'लजवाना'।

लजियाना†Ⓟ[१]—क्रि० अ० [हिं० लजाना] दे० 'लजाना'।

लजियाना[२]—क्रि० स० दे० 'लजवाना'।

लजीज—वि० [अ० लज़ीज़] १. लज्जतदार। स्वादिष्ट। सुस्वादु। (खाद्य पदार्थ)। २. प्यारा। प्रिय।

लजीला—वि० [हिं० लाज+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लजीली] जिसमें लज्जा हो। लज्जायुक्त। लज्जाशील। जैसे,—लजीला मनुष्य, लजीली आँखें।

लजुरी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, माग० लज्जु] कुएँ से पानी भरने की डोरी। रस्सी।

लजोरⓅ†—वि० [हिं० लाज+आवर (प्रत्य०)] लज्जाशील। जो बहुत जल्दी लज्जित हो। उ०—विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखिया बड़ी लजोर।—रसनिधि (शब्द०)।

लजोहा†—वि० [सं० लज्जावह] [वि० स्त्री० लजोही] जिसमें लज्जा हो; या जिससे लज्जा सूचित होती हो। लजीला। शर्मीला। उ०—कुंज भवन राधा मनमोहन। रति बिलास करि मगन भए अति निरखत नैन लजोहन।—सूर (शब्द०)।

लजौनाⓅ†—वि० [सं० लज्जावत्] १. लज्जावान्। शर्मीला। उ०—लोइन लौने ललित लजौने चलि चलि हँसत ह्वै काननि कौने।—नंद० ग्रं०, पृ० १२६। २. आगे पीछे में पड़ा हुआ। हिचकिचाहटवाला।

लजौहाँ—वि० [सं० लज्जावह] [वि० स्त्री० लजौहीं] जिसमें लज्जा हो या जिससे लज्जा सूचित होती हो। लज्जाशील। लजीला। शर्मीला। जैसे,—लजौही स्त्री, लजौही आँखें। उ०—मेरे ललचौहैं मुख फेरि के लजौहैं, ललचौहैं चारु चखनि चितै कै सो चली गई।—मति० ग्रं०, पृ० ३२६।

लज्जⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा, तुल० पं० लाजो] लज्जा जिनका भूषण है, प्रिया। प्रियतमा। उ०—(क) नह चल्लै पृथिराज रिन लज्ज लपट्टिय पाइ।—पृ० रा०, २५।७३०। (ख) लज्ज परब्बत ह्वै रही बैन तजै नृप पास।—पृ० रा०, २५।७३१।

लज्जका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनकपास।

लज्जत—संज्ञा स्त्री० [अ० लज्ज़त] स्वाद । जायका । मजा । (खाने पीने की वस्तुओं के लिये) ।

लज्जतदार—वि० [अ० लज्ज़त+फ़ा० दार] स्वादिष्ट । मजेदार । जायकेदार ।

लज्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू लता । लज्जावंती ।

लज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० लज्जित] १. अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें स्वभावतः अथवा अपने किसी भद्दे या बुरे आचरण की भावना के कारण दूसरों के सामने वृत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं, चेष्टा मंद पड़ जाती है, मुँह से, शब्द नहीं निकलता सिर नीचा हो जाता है और सामने ताका नहीं जाता । लाज । शर्म । हया ।

पर्या०—ह्री । त्रपा । व्रीड़ा । मंदास्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—(किसी बात की) लज्जा करना = किसी बात की बड़ाई की रक्षा का ध्यान करना । मर्यादा का विचार करना । इज्जत का ख्याल करना । जैसे,—अपने कुल की लज्जा करो ।

२. मान मर्यादा । पत । इज्जत । जैसे,—भगवान् लज्जा रखे ।

क्रि० प्र०—रखना ।

३. लज्जालु लता । लजाधुर का पौधा (को०) ।

लज्जाकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० लज्जाकरा, लज्जाकरी] दे० 'लज्जाप्रद' [को०] ।

लज्जाकुल—संज्ञा पुं० [सं० लज्जा+आकुल] लज्जा से व्याकुल। लज्जाभिभूत । शर्म में गड़ा । उ०—खुलते स्तवकों की लज्जाकुल, नत बदना मधुमाधवी अतुल ।—अपरा, पृ० १४८ ।

लज्जाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्रिम मान मर्यादा या लज्जा । दिखावटी लज्जा [को०] ।

लज्जान्वित—वि० [सं०] हयादार । संकोची स्वभाव का । शर्मदार [को०]।

लज्जापयिता—वि० [सं०] दे० 'लज्जाप्रद' [को०] ।

लज्जाप्रद—वि० [सं०] जिससे लज्जा उत्पन्न हो । लज्जाजनक ।

लज्जाप्राया संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक ।

लज्जारहित—वि० [सं०] निर्लज्ज । लज्जाशून्य [को०] ।

लज्जारुण—वि० [सं० लज्जा+अरुण] लज्जा से अभिभूत । शर्म के मारे सुर्ख । उ०—प्रणय सुरा हो, हृदय भरा हो, लज्जारुण मुख हो प्रतिबिंबित । पी अधरामृत हों मृत जीवित, प्रीति सुरा भर, प्रीति सुरा नित ।—मधुज्वाल, पृ० ३ ।

लज्जालु—संज्ञा पुं० [सं०] लजालू का पौधा । लाजवंती ।

लज्जावंत[१]—वि० [सं० लज्जावत्] शर्मीला । लज्जायुक्त । लजीला ।

लज्जावंत[२]—संज्ञा पुं० लजालू का पौधा । लाजवंती ।

लज्जावती[१]—वि० स्त्री० [सं०] लज्जाशील । शर्मीला । उ०—सुसंयत सकुसुम केशपाश सुशीला लज्जावती ।—वर्ण०, पृ० ६ ।

लज्जावती[२]—संज्ञा स्त्री० लजालू का पौधा ।

लज्जावह—वि० [सं०] दे० 'लज्जाप्रद' [को०] ।

लज्जावान्—वि० [सं० लज्जावत्] [वि० स्त्री० लज्जावती] लज्जाशील। जिसमें लज्जा हो । शर्मदार । हयादार ।

लज्जाशील—वि० [सं०] जिसमें लज्जा हो । जो बात बात में शरमाता हो । लजीला ।

लज्जाशून्य—वि० [सं०] जिसे लज्जा न हो । जिसे कोई अनुचित या भद्दी बात करते कुछ संकोच या हिचक न हो । बेहया ।

लज्जास्पद—वि० [सं०] लज्जाजनक । उ०—काँग्रेस की ऐसी लज्जास्पद दुर्दशा होगी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३२५ ।

लज्जाहीन—वि० [सं०] लज्जाशून्य । बेहया ।

लज्जित—वि० [सं०] लज्जा के वशीभूत । शर्म में पड़ा हुआ । शर्माया हुआ ।

लज्जिनी, लज्जिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लजारू । लजालू [को०] ।

लज्जी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] प्रिया । लज्जाशील प्रियतमा । उ०- (क) फिरि बुल्ली लज्जी सुनहि हों मंडन तन बीर ।—पृ० रा०, २५।७३२ । (ख) तू लज्जी मो सत्थ है दान खग्ग अरु रूप ।—पृ० रा०, २५।७३४ । (ग) सुन रे वै लज्जी चवै हूँ मंडन नर लोइ ।—पृ० रा०, २५।७३५ ।

लज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लज्जा' । उ०—भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्या लोपी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १८६ ।

लटंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा में होता है ।

लट[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लट्वा (= घुँघराले केश)] १. सिर के बालों का समूह जो नीचे तक लटके । बालों का गिरा हुआ गुच्छा । केशपाश । अलक । केशलता ।

मुहा०—लट छिटकाना = सिर के बालों को खोलकर इधर उधर बिखराना ।

२. एक में उलझे हुए बालों का गुच्छा । परस्पर चिमटे हुए बाल ।

मुहा०—लट पड़ना = बालों का परस्पर उलझ या चिपट जाना ।

३. एक प्रकार का बेंत जो आसाम की ओर बहुत होता है । ४. एक प्रकार के सूत के से महीन कीड़े जो मनुष्य की आँतों में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं । चनूना ।

लट[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लपट] लपट । लौ । अग्निशिखा । ज्वाला । उ०—(क) झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत, फल चटकि लट लटकि द्रुम नवायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) चट पट बोलहि बाँस बहु सिखि लट लागि अकास ।—गोपाल (शब्द०)।

लट[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्ख । बुद्धिहीन । २. दोष । गलती । ऐब । ३. डाकू । बटमार [को०] ।

लटक[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटकना] १. लटकने की क्रिया या भाव । नीचे की ओर गिरता सा रहने का भाव । २. झुकाव । लचक । ३. अंगों की मनोहर गति या चेष्टा । लुभावनी चाल । अंग-भंगी । उ०—प्राणनाथ सों प्राणपियारी प्राण लटक सों लीन्हें । —सूर (शब्द०) ।

यौ०—लटक चाल ।

४. ढालू जमीन । ढाल । (पालकी के कहार) ।

लटक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] धोखेबाज । ठग । धूर्त । पाजी । दुष्ट । खल [को०] ।

लटकन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लटकना] [स्त्री० लटकनी] १. लटकने की क्रिया या भाव । नीचे की ओर गिरता सा रहने का भाव । २. किसी वस्तु में लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो । लटकनेवाली चीज । ३. मनोहर अंगभंगी । लुभावनी चाल । लटक उ०—बझे जाइ खग ज्यों प्रिय छबि लटकनी लस ।—सूर (शब्द०) । ४. नाक में पहनने का एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है । (यह या तो नाक के दोनों छेदों के बीच में पहना जाता है, अथवा नथ में लगा रहता है) । ५. कलगी या सिरपेंच में लगे हुए रत्नों का गुच्छा जो नीचे की ओर झुका हुआ हिलता रहता है । उ० लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत मन्मथ कोटि वारने गए री ।—सूर (शब्द०) । ६. मलखम की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों के अँगूठों में बेंत फँसाकर पिंडली को लपेटते हैं और पिंडली के ही बल पर अँगूठों से बेंत को ऊपर खींचते हुए जंघों के बल पर का सारा धड़ नीचे को लटका देते हैं ।

लटकन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लटकना ?] एक पेड़ जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं और जिसके बीजों को पानी में पीसने पर गेरुआ रंग निकलता है । इस रंग से कपड़े रँगते हैं ।

लटकना—क्रि० अ० [सं० लडन (=झूलना)] १. किसी ऊँचे स्थान से लग या टिककर नीचे की ओर अधर में कुछ दूर तक फैला रहना । ऊपर से लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । झूलना । जैसे,— छत से फानूस लटकना, पेड़ से लता लटकना, कूएँ में डोरी लटकना ।

संयो० क्रि०—आना ।—जाना ।

विशेष—'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है । 'टँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकने या अड़ने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या अधर में हिलने डोलने का । जैसे,—(क) तसवीर बहुत नीचे तक लटक आई है । (ख) कूएं में डोरी लटक रही है । ऐसे स्थलों पर 'टँगना' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

२. ऊंचे आधार पर टिकी हुई वस्तु का कुछ दूर नीचे तक आकर इधर से उधर हिलना डोलना । झूलना । ३. किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग नीचे की ओर अधर में हों । टँगना । जैसे,—वह एक पेड़ की डाल से लटक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. किसी खड़ी वस्तु का किसी ओर को झुकना । नम्र होना । जैसे,—खंभा पूरब की ओर कुछ लटका दिखाई देता है । ५. लचकना । बल खाना । उ०—लटकत चलत नंदकुमार ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—लटकती चाल = बल खाती हुई मनोहर चाल । उ०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल । चल चख चितवनि चोर चित लियो बिहारी लाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

६. कोई काम पूरा न होने या किसी बात का निर्णय न होने के कारण दुबिधा में पड़ा रहना । झूलना । जैसे,—अभी तक लटक रहे हैं; कुछ फैसला नहीं हो रहा है । ७. किसी काम का बिना पूरा हुए पड़ा रहना । देर होना ।

लटकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटकना] लटकने की क्रिया या भाव । उ०—बैसियै हँसनि चहनि पुनि बोलनि । बैसियै लटकनि, मटकनि, डोलनि ।– नंद०, ग्रं० पृ० २६५ ।

लटकवाना—क्रि० स० [हिं० लटकाना का प्रेर० रूप] लटकाने का काम दूसरे से कराना ।

लटकहुर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] तेली ।

लटका—संज्ञा पुं० [हिं० लटक] १. गति । चाल । ढब । २. बनावटी चेष्टा । हाव भाव । ३. बातचीत करने में स्वर का एक विशेष प्रकार से चढ़ाव उतार । बातचीत का बनावटी ढंग । जैसे,—लटके के साथ बात करना । ४. कोई शब्द या वाक्य जिसके बार बार प्रयोग का किसी को अभ्यास पड़ गया हो । सखुनतकिया । ५. मंत्र तंत्र की छोटी युक्ति । टोटका । ६. किसी रोग या बाधा की शांति की छोटी युक्ति । संक्षिप्त उपचार । छोटा नुसखा । जैसे,—यह फकीरी लटका है; इससे जरूर फायदा होगा । ७. एक प्रकार का चलता गाना । ८. लिंग । (बाजारू) ।

लटकाना—क्रि० स० [हिं० लटकना] १. किसी ऊँचे स्थान से एक छोर लगा या टिकाकर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । जैसे,—छत में फानूस लटकाना; कूएँ में डोरी लटकाना ।

संयो क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—'टाँगना' और 'लटकाना' इन दोनों शब्दों के मूल भाव में अंतर है । 'टाँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकाने या अड़ाने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैलाने या हिलाने डुलाने का । जैसे,—(क) धोती और नीचे तक लटका दो । (ख) कूएँ में डोरी लटका दो ।

२. किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग अधर में हों । एक छोर या अंश ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु जमीन पर न गिरे । टाँगना । जैसे,—अँगरखा खूँटी में लटका दो । ३. किसी खड़ी वस्तु को किसी ओर झुकाना, लचकाना या नम्र करना । ४. किसी का कोई काम पूरा न करके उसे दुबधा में डालना । आसरे में रखना । इंतजार कराना । जैसे,—उसे क्यों लटकाए हो; जो कुछ देना हो, दे दो । ५. किसी काम को पूरा न करके डाल रखना । देर करना ।

लटकीला—वि० [हिं० लटक + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लटकीली]

झूमता हुआ। बल खाता हुआ। लचकदार। जैसे,—लटकीली चाल।

लटकू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसकी छाल को उबालने से रंग निकलता है।

लटकौआ, लटकौवा—वि० [हिं० लटकना] लटकनेवाला। जो लटकता हो।

यौ०—लटकौवा मालखंभ = वह मालखंभ जिसकी लकड़ी गड़ा न रहकर ऊपर से लटकाई रहती है।

लटजीरा—संज्ञा पुं० [सं० लट् (=लट ?) + हिं० जीरा] १. अपामार्ग। चिचड़ा। २. एक प्रकार का जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना[१]—क्रि० अ० [सं० लड (=हिलना डोलना)] १. थककर गिर जाना। लड़खड़ाना। उ०—मर्कट विकट भट जुटत कटत, न लटत तन जर्जर भए।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना। उ०—लटे तन जात किते छत जात।—सूदन (शब्द०)।

२. श्रम, रोग आदि से शिथिल होना। अशक्त होना। दुबला और कमजोर होना। जैसे,—आजकल वे बीमारी से बहुत लट गए हैं। उ०—(क) श्री रघुबीर, निबारिए पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कटी कटीली कांति पै, लटी लटी अति जाय।—रामसहाय (शब्द०)। ३. ढीला पड़ना। मंद पड़ना। शक्ति और उत्साह से रहित होना। उ०—देखि भीरु लटैं लगे, मन मन घटैं लगे, पाछे पग हटैं लगे, क्रम क्रम नटैं लगे।—गोपाल (शब्द०)। ४. श्रम से निकम्मा हो जाना। अधिक काम करने के योग्य न रह जाना। शिथिल होना। थक जाना। उ०—रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।—तुलसी (शब्द०)। ५. व्याकुल होना। उ०—फटे फन फनि कै औ लटे दिगदंती दीह, घटे बल कूरम बिकलता को पाई है।—रघुनाथ (शब्द०)।

लटना[२]—क्रि० अ० [सं० लल, लड (=ललचाना)] १. ललचाना। लेने के लिये लपकना। चाह करना। लुभाना। उ०—परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत।—तुलसी (शब्द०)। २. लिप्त होना। अनुरक्त होना। प्रेमपूर्वक तत्पर होना। लीन होना। उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिए जासों मन मान्यो। छपद कंज तजि वेलि सों लटि लटि प्रेम न जान्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) कित बिमोह लटो फटो गगन मगन सियत।—तुलसी (शब्द०)।

लटपट—वि० [हिं० लट + (अनुकरणात्मकभिन्नव्यंजन द्वित्व पट] दे० 'लटपटा'।

लटपटा[१]—वि० [हिं० लटपटाना] [वि० स्त्री० लटपटी] १. गिरता पड़ता। लड़खड़ाता हुआ। निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुकता हुआ। जैसे,—लटपटी चाल। उ०—धूरि धौत तनु, नैननि अंजन, चलत लटपटी चाल।—सूर (शब्द०)। २. जो ठीक बँधा न रहने के कारण ढीला होकर नीचे की ओर सरक आया हो। ढीलाढाला। जो चुस्त और दुरुस्त न हो। अस्तव्यस्त। बिना सँवारा हुआ। उ०—(क) लटपटी पाग उनींदे नैना डग डग डोलत डगमगात।—सूर (शब्द०)। (ख) सूर देखि लटपटी पाग पर जावत को छबि लाल।—सूर (शब्द०)। ३. (शब्द आदि) जो स्पष्ट या ठीक क्रम से न निकले। टूटा फूटा। उ०—ज्यों ज्यों बलकति बैन लटपटे कहति छबीली।—व्यास (शब्द०)। ४. जो ठीक क्रम से न हो। अव्यवस्थित। अंडबंड। अटसट। ५. थककर गिरा हुआ। हारा हुआ। अशक्त। बेबस। उ०—तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो।—तुलसी (शब्द०)।

लटपटा[२]—वि० १. जो लेई की तरह गाढ़ा हो। जो न पानी की तरह पतला हो और न बहुत अधिक गाढ़ा। लुटपुटा। जैसे,—लटपटी तरकारी। २. मींजा हुआ। गिंजा हुआ। मलादला हुआ। जो इधर उधर सुकड़ा हुआ हो, साफ या बराबर न हो। जिसमें शिकन या सिलवट पड़ी हो। (कपड़ा इत्यादि)। उ०—त्रिबली पलोटन सलोट लटपटो सारी चोट चटपटी अटपटी चाल अटकयो।—सूर (शब्द०)।

लटपटान—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] १. लटपटाने की क्रिया या भाव। लड़खड़ाहट। २. मनोहर गति या चाल। लटक। लचक।

लटपटाना[१]—क्रि० अ० [सं० लड (=हिलना डोलना) + पत् (=गिरना)] १. सीधे ढंग से न चलकर निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना। गिरता पड़ना। लड़खड़ाना। उ०—करत विचार चल्यो सम्मुख ब्रज। लटपटाइ पग धरनि धरत गज।—सूर (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

२. स्थिर न रहना। जमा न रहना। डिगना। विचलित होना। ३. ठीक तरह से न चलना। च्युत होना। चूक जाना। जैसे,—पैर लटपटाना, जीभ लटपटाना।

लटपटाना[२]—क्रि० अ० [सं० लल, लड (=लुभाना)] १. लुभाना। मोहित होना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लटपटाइ रहे मानि सबै सुख चैन।—हरिदास (शब्द०)। २. लीन होना। लिप्त होना। अनुरक्त होना।

लटपटानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] १. दे० 'लटपटान'। २. मनोहर गति या चाल। लचक। लटक। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी के राग रंग लटपटानि के भेद न्यारे न्यारे जैसे पानी में पानी नरीच।—हरिदास (शब्द०)।

लटपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दारुसिता। बड़ी दारचीनी [को०]।

लटभ—वि० [सं०] सुंदर [को०]।

लटह—वि० [सं०, प्रा०] सुंदर। खूबसूरत [को०]।

लटा[१]—वि० [सं० लट्ट] [वि० स्त्री० लटी] १. लोलुप। लंपट। २. लुच्चा। नीच। ३. तुच्छ। हीन। ४. गिरा हुआ। पतित। ५. बुरा। खराब। उ०—जग में करो जो न कृत मानै। नीकी करी, लटी उर आनै।—लाल (शब्द०)।

लटापटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] १. लटपटाने की क्रिया या भाव। २. लड़ाई झगड़ा। भिड़ंत। उ०—लटापटी होवन लगी मोहि जुदा करि देहु।—गिरधर (शब्द०)।

लटापोटⓟ†—वि० [हिं० लोटपोट] लोटपोट। मोहित। मुग्ध। उ०—अटकि मुबारक मति गई लूटि सुखन की ओट। लटापोट ह्वै लपटि गो लटकत लट की ओट।—मुबारक (शब्द०)।

लटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सूत आदि का लच्छा। लच्छी। आँटी।

मुहा०—लटिया करना = सूत को लपेटकर आँटी या लच्छे के रूप में करना।

लटियासन—संज्ञा पुं० [हिं० लट + सन] पटसन।

लटी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लटा (= बुरा)] १. बुरी बात। २. झूठी बात। गप।

मुहा०—लटी मारना = गप हाँकना। सीटना। झूठी बात कहना।

३. साधुनी। भक्तिन। ४. वेश्या। रंडी।

लटी[२]—वि० [सं० लट्ट] दे० 'लटा'।

लटुआ—संज्ञा पुं० [सं० लुठन या लुण्ठन] दे० 'लट्टू'। उ०—लटुआ लौ प्रभु कर गहै निगुनी गुन लपटाय। वहै गुनी कर तैं छुटै निगुनीयै ह्वै जाय।—बिहारी (शब्द०)।

लटुक—संज्ञा पुं० [सं० लकुच] लकुट नाम का पेड़ और उसका फल। विशेष दे० 'लकुट' या 'लुकाट'।

लटुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट + उरी (प्रत्य०)] दे० 'लटूरी'। उ०—लटकन ललित लटुरियाँ मसि बिंदु गोरोचन।—सूर (शब्द०)।

लटू—संज्ञा पुं० [सं० लुठन] दे० 'लट्टू'। उ०—(क) चारु चकई लै घुनघुना लटू कंचन को खेलि घरे लाल बाल सखन बुलाय रे।—दीनदयाल (शब्द०)। (ख) रन करत लटू को करम रथ, होत छटूको सत्रु उर।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—(किसी पर) लटू होना = (१) मोहित होना। आसक्त होना। लुभाना। आशिक होना। उ०—(क) हम तौ रीझि लटू भई लालन महाप्रेम तिय जाति।—सूर (शब्द०)। (ख) रही लटू ह्वै लाल ही लखि वह बाल अनूप।—बिहारी (शब्द०)। (ग) ब्याह ही तें भए कान्ह लटू तब ह्वै है कहा जब होयगो गौनो ?—पद्माकर (शब्द०)। (२) चाह में हैरान होना। प्राप्ति के लिये उत्कंठित होना। उ०—जा सुख की लालसा लटू सिव सनकादि उदासी।—तुलसी (शब्द०)।

लटूरा†—संज्ञा पुं० [हिं० लट्टू] कुप्पा।

लटूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सिर के बालों का लटकता हुआ गुच्छा। केश। अलक। उ०—लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरी।—तुलसी (शब्द०)।

लटेरा†—संज्ञा पुं० [हिं० लटजीरा या देश०] एक प्रकार का धान जिसका स्वाद बहुत अच्छा होता है।

लटोरा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० लट (= चिपचिपाहट)] एक प्रकार का छोटा पेड़। श्लेष्मांतक। सपिस्ताँ। लिटोरा। लिसोड़ा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं। यह बसंत में पत्तियाँ झाड़ता है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है। फलों में बहुत सा लसदार गूदा होता है। इसका फल औषध के काम में आता है और सूखी खाँसी को ढीली करने के लिये दिया जाता है। फारसी में इसे 'सपिस्ताँ' कहते हैं, और हकीम लोग मिस्री मिलाकर इसका 'लऊक सपिस्ताँ' नामक अवलेह बनाते हैं और खाँसी में चाटने के लिये देते हैं। संस्कृत में भी इसे 'श्लेष्मांतक' कहते हैं।

लटोरा[२]—संज्ञा पुं० [देश०] दस इंच के करीब लंबा एक भारतीय पक्षी।

विशेष—इसकी गरदन और मुँह काला, डैने नीलापन लिए हुए भूरे और दुम काली होती है। इसकी लंबाई दस इंच होती है। यह भारत में स्थायी रूप से रहता है और प्रायः मैदानों में ही पाया जाता है। यह तीन से छह तक अंडे देता है। इसके कई भेद होते हैं। जैसे,—मटिया, कजला, खरखला।

लट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आदमी। दुर्जन।

लट्ट पट्ट‡—वि० [अनु०] दे० 'लथपथ'। उ०—प्रेम रंग लट्ट पट्ट आवैं जायं झट्ट पट्ट देववृंद देखे परैं मानो नट्ट बट्ट हैं।—रघुराज (शब्द०)।

लट्टू—संज्ञा पुं० [सं० लुठन (= लुढ़कना)] गोल बट्टे के आकार का एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूत के द्वारा जमीन पर फेंककर लड़के नचाते हैं।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक कील जड़ी होती है, जिसे 'गूँज' कहते हैं। इसमें डोरी लपेटकर विशेष ढंग से जोर से फेंकते हैं, जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

क्रि० प्र०—नचाना।—फिराना।

मुहा०—(किसी पर) लट्टू होना = दे० 'लटू' शब्द का मुहावरा।

यौ०—लट्टूदार = (१) लट्टू के आकार के समान। लट्टू जैसा। (२) लट्टू से युक्त। उ०—कतीदार, लट्टूदार या······।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०७।

लट्टूदार पगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्टूदार + पगड़ी] एक प्रकार की पगड़ी जिसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा सा भी निकला होता है। इसे छज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ—संज्ञा पुं० [सं० यष्ठि, प्रा० लट्ठि] बड़ी लाठी। मोटा लंबा डंडा।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

यौ०—लट्ठगँवार। लट्ठबंद। लट्ठबाज। लट्ठबाजी। लट्ठमार।

मुहा०—किसी व्यक्ति या वस्तु के पीछे लट्ठ लिए फिरना = किसी का बराबर विरोध करना। किसी वस्तु के प्रतिकूल आचरण करना। जैसे,—तुम तो अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरते हो।

लट्ठ गँवार—वि० [हिं० लट्ठ + गँवार] महामूर्ख। उजड्ड। उ०—आज विनय ने जितनी बातें की, उतनी शायद और कभी न की थी, और भी नायकराम जैसे लट्ठगँवार से।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ६५४।

लट्ठबंद—संज्ञा पुं० [हिं० लट्ठ + बाँधना] लाठी रखनेवाला। लाठी बाँधनेवाला। लाठी से लैस। लठैत। उ०—लट्ठबंद चौकसी करते चपरासियों और माली…।—भस्मावृत०, पृ० ५४।

लट्ठबाज—वि० [हिं० लट्ठ + फ़ा० बाज़] १. लाठी लड़नेवाला। लठैत। २. बड़ी लाठी बाँधनेवाला।

लट्ठबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठबाज + ई (प्रत्य०)] लाठी की लड़ाई या मार पीट।

लट्ठमार—वि० [हिं० लट्ठ + मारना] १. लट्ठ मारनेवाला। २. (बात या वचन) अप्रिय या कठोर। कर्कश। कड़वा। जैसे,—उसकी बात लट्ठमार होती है।

लट्ठर†—वि० [हिं० लट्ठ] १. कठोर। कड़ा। कर्कश। २. गफ। मोटा। (कपड़ा आदि)।

लट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० लट्ठ लाठी लट्ठी का पुंवत् रूप] १. लकड़ी का बहुत लंबा टुकड़ा। बल्ला। शहतीर। २. घर की छाजन या पाटन में लगा हुआ लकड़ी का बल्ला। धरन। कड़ी। ३. लकड़ी का खंभा। जैसे,—तालाब का लट्ठा, सरहद का लट्ठा। ४. खेत या जमीन नापने का बाँस या बल्ला जो ५½ गज का होता है और नाप के रूप में चलता है। ५. एक प्रकार का गाढ़ा मोटा कपड़ा। गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा + फ़ा० बंदी] जमीन की साधारण नाप जो लट्ठे से की जाय।

लट्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. एक प्रकार का राग। ३. एक जाति का नाम (को०)। नाचनेवाला बालक। नृत्य करता हुआ बालक (को०)।

लट्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का करंज। २. एक प्रकार का बाजा। ३. गौरा पक्षी। ४. कुसुंभ। ५. चित्र बनाने की कूँची। कलम। तूलिका। ६. व्यभिचारिणी स्त्री। ७. बालों की लट। अलक। ८. खेल। क्रीड़ा (को०)।

लट्वाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

लठ—संज्ञा पुं० [प्रा० लट्ठ] दे० 'लट्ठ'।

लठा†—संज्ञा पुं० [हिं० लाठी] दे० 'लट्ठ'। उ०—भारी लठा कोऊ लिए कोउ लकुट निज कर मैं धरे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११४।

लठियल†—वि० [हिं० लाठी + इयल (प्रत्य०)] लाठी बाँधने या चलानेवाला। लठैत।

लठिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाठी + इया (प्रत्य०)] लाठी। लकड़ी। डंडा।

लठैत—संज्ञा पुं० [हिं० लठ + ऐत (प्रत्य०)] लाठी चलानेवाला। लाठी की लड़ाई लड़नेवाला। लट्ठबाज।

लड़ंगाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० लड़ना + अंगा (प्रत्य०)] लड़ाका। योद्धा। लड़ैत। सैनिक। उ०—सनाहे असल्लों, हिले फौज हल्लों। लड़गे अलेखै, दिली ख्याल देखै।—रा० रू०, पृ० ३१।

लड़ंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] १. लड़ाई। भिड़ंत। २. सामना। मुकाबला।

लड़ंतिया—संज्ञा पुं० [हिं० लड़ंत + इया (प्रत्य०)] लड़नेवाला। कुश्तीबाज। उ०—वहाँ नित्य सौ पचास लड़ंतिये आ जुटते हैं।—गोदान, पृ० १७७।

लड़—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि, हिं० लड़ी] १. सीध में गुछी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे मोतियों की लड़। २. रस्सी का एक तार (जैसे, कई एक साथ मिलाकर बटे जायँ)। पाम। पान। ३. पंक्ति। पाँत। कतार। सिलसिला। श्रेणी।

मुहा०—(किसी के साथ) लड़ मिलाना = मेल करना। मित्रता करना। (किसी की) लड़ में रहना = दल या पक्ष में रहना। अनुयायियों में रहना।

४. पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़इता†—वि० दे० 'लड़ैता'।

लड़कई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + ई (प्रत्य०)] १. लड़कपन। बचपन। बाल्यावस्था। २. अज्ञता। नादानी। ३. चपलता। चंचलता। चिलबिलापन।

लड़कखेल—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] १. बालकों का खेल। २. सहज काम। साधारण बात।

लड़कखेलवा†—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] १. बालकों का खेलवाड़। २. सहज काम।

लड़कना†—क्रि० अ० [हिं० ललकना] ललकना। उमंग में भरना। आनंदित होना। उ०—जुगल कुँवर कों लड़कि लड़ावै। परम प्रेमरस पारस पावै।—घनानंद, पृ० २६१।

लड़कपन—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + पन] १. वह अवस्था जिसमें मनुष्य बालक हो। बाल्यावस्था। जैसे,—लड़कपन में मैं वहाँ प्रायः जाया करता था। लड़कों का सा चिलबिलापन। चपलता। चंचलता। जैसे, हर दम लड़कपन मत किया करो।

क्रि० प्र०—करना।

लड़कबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + बुद्धि] बालकों की सी समझ। अपरिपक्व बुद्धि। अज्ञता। नासमझी।

लड़का—संज्ञा पुं० [सं० लट (= लड़कों का सा आचरण करना) सं० लालन् = (जिसका लाड़ किया जाय) अथवा लाड़ (= दुलार)] [स्त्री० लड़की] १. थोड़ी अवस्था का मनुष्य। वह जिसकी उम्र कम हो। बालक। २. पुत्र। बेटा।

यौ०—लड़कावाला।

मुहा०—लड़कों का खेल = (१) बिना महत्व की बात। (२) सहज बात या काम। ऐसा काम जिसका करना बहुत सहज हो। जैसे,—यह काम करना लड़कों का खेल नहीं है। राह बाट का लड़का = ऐसा लड़का जिसे किसी ने रास्ते में पड़ा पाया हो, और जिसके माता पिता का पता न हो। लड़की लड़का = संतान। औलाद।

लड़काई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + ई (प्रत्य०)] दे० 'लड़कई'।

लड़का बाला—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + सं० बालक, प्रा० बालअ]

१. संतति । संतान । औलाद । बाल बच्चा । जैसे,—उन्हें कोई लड़का बाला नहीं है । २. पुत्र, कलत्र आदि । परिवार । कुटुंब । कुनबा । जैसे,—(क) परदेस में लड़के बालों की खबर न मिलने से जी घबराता है । (ख) वह अपने लड़के बालों की खबर नहीं लेता ।

लड़किनी‡=संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़की+इनि (स्त्री० प्रत्य०)] लरकिनी । दे० 'लड़की' ।

लड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का] १. छोटी अवस्था की स्त्री । बालिका । २. कन्या । पुत्री । बेटी ।

लड़कीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० लड़की+वाला (प्रत्य०)] विवाह संबंध में कन्या का पिता या संरक्षक । जैसे,—लड़कीवाले को सदा दबकर रहना पड़ता है ।

लड़कैया—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का+ऐया (प्रत्य०)] दे० 'लड़कपन' । उ०—करो जतन सखि साईं मिलन की । गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तज दे बुध लड़कैया खेलन की ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३३ ।

लड़कोरी—वि० [हिं० लड़का+ओरी (प्रत्य०)] दे० 'लड़कौरी' । उ०—बेचारी अधमरी लड़कोरी औरत को मारकर तुमने कोई बड़ी जवाँमर्दी का काम नहीं किया है ।—गोदान, पृ० २७३ ।

लड़कौरी—वि० स्त्री० [हिं० लड़का+औरी (प्रत्य०)] (स्त्री) जिसकी गोद में लड़का हो । जिसके पास पालने पोसने के योग्य अपना बच्चा हो । जैसे,—लड़कौरी स्त्री को तो बच्चे से ही छुट्टी नहीं मिलती ।

लड़खड़ाना—क्रि० अ० [सं० लड़ (=डोलना)+खड़ा (या अनुरणनात्मक)] १. न जमने या न ठहरने के कारण इधर उधर हिल डोल जाना । पूर्ण रूप से स्थित न रहने के कारण खड़ा न रह सकना, इधर उधर झुक पड़ना । झोंका खाना । डगमगाना । डिगना । जैसे,—पैर लड़खड़ाना, आदमी का लड़खड़ाकर गिरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. डगमगाकर गिरना । झोंका खाकर नीचे आ जाना । ३ ठीक तौर से न चलना । अपनी क्रिया में ठीक न रहना । विचलित होना । च्युत होना । चूकना । जैसे,—कोई चीज उठाने में उसका हाथ लड़खड़ाता है ।

मुहा०—जीभ लड़खड़ाना=(१) ठीक ठीक या पूरे शब्द और वाक्य मुँह से न निकलना । मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना । टूटे फूटे शब्द या वाक्य निकलना । (२) मुँह से रुक रुककर शब्द निकलना ।

लड़खड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़खड़ाना] लड़खड़ाने की क्रिया या भाव । डगमगाहट ।

लड़ना—क्रि० अ० [सं० रणन] १. आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने का व्यापार करना । आघात प्रतिघात करना । एक दूसरे पर वार करना । एक दूसरे को चोट पहुँचाना । युद्ध करना । भिड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

यौ०—लड़ना भिड़ना ।

२. एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न करना । कुश्ती करना । मल्लयुद्ध करना । जैसे,—पहलवानों का अखाड़े में लड़ना । ३. एक दूसरे को कठोर शब्द कहना । वाग्युद्ध करना । झगड़ा करना । कलह करना । हुज्जत करना । तकरार करना । जैसे,—इसी बात पर दोनों घंटों से लड़ रहे हैं । ४. वादविवाद करना । बहस करना । ५. दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरे से जा लगना । टक्कर खाना । टकराना । भिड़ना । जैसे,—रेलगाड़ियों का लड़ना, नावों का लड़ना । ६. विरोधी या प्रतिपक्षी के हानि पहुँचानेवाले प्रयत्न को निष्फल करने और उसे विफल करने का उद्योग करना । व्यवहार आदि में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न करना । जैसे,—मुकदमा लड़ना । ७. पूर्ण रूप से घटित होना । एक बात का दूसरी बात के अनुकूल पड़ना । लक्ष्य के अनुकूल होना । मेल मिल जाना । उपयुक्त उतरना । सटीक बैठना । जैसे,—बात ही तो है, लड़ गई ।

मुहा०—हिसाब लड़ना=(१) लेखा ठीक उतरना । (२) किसी बात का सुभीता होना ।

८. अनुकूल पड़ना । ठीक होना । मुआफिक उतरना । जैसे,—युक्ति लड़ना, किस्मत लड़ना । †९. बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना । जैसे,—भिड़ लड़ गई । (पश्चिम) । १०. किसी स्थान पर पड़ना । किसी वस्तु से संयुक्त होना । लक्ष्य पर पहुँचना । भिड़ना । जैसे,—आँख लड़ना । निशाना लड़ना ।

लड़बड़ा†—[अनु०] १. (व्यंजन) जो न बहुत गाढ़ा और न बहुत पतला हो । लटपटा । २. जिसमें पौरुष का अभाव हो । नपुंसक ।

लड़बड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'लड़खड़ाना' ।

लड़बावरा—वि० [सं० लड़ (=लड़कों का सा) अथवा लाड (=प्यार दुलार)+बावरा] [वि० स्त्री० लड़बावरी] १. जो लड़कपन लिए हो । जो चतुर और गंभीर न हो । भोला भाला और उजड्ड । अल्हड़ । मूर्ख । नासमझ । अहमक । उ०—(क) सखियाँ लड़बावरी रावरी हैं तिनकी मति में अति दौरति हौं ।—बेनीप्रवीन (शब्द०) । (ख) नूर कहै न सुनै, लड़बावरी चदहि दोष कछू न भलाई ।—नूर (शब्द०) । २. गँवार । अनाड़ी । उ०—एरी लड़बावरी ! अहीरि ऐसी बूझौं तोहि नाहिं सो सनेह कीजै, नाह सों न कीजिए ।—केशव (शब्द०) । ३. मूर्खता से भरा हुआ । जिससे मूर्खता प्रकट हो । उ०—रावरी जो लड़बावरी बात है सो सुनि राखियो, मैं न सहूँगी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

लड़बावला†—वि० [हिं० लड़+बावला] मूर्ख । बेवकूफ । दे० 'लड़बावरा' ।

लड़बौरा—वि० [हिं० लाड़+बौरा<बावरा] [वि० स्त्री० लड़बौरी] दे० 'लड़बावरा' । उ०—सुन री राधा अति लड़बौरी जमुन गई तब संग कौन ही ।—सूर (शब्द०) ।

लड़ह—वि० [सं०, प्रा० लट, लटह] सुंदर । खूबसूरत [को०] ।

लड़ाइता†—वि० [हिं० लाड़ (=प्यार)] दे० 'लड़ैता'। उ०—नंदरु यशोदा के लड़ाइते कुँवर हिय हरे ग्वार गोरिन के खोरिन बगे रहैं।—देव (शब्द०)।

लड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना+आई (प्रत्य०)] १. आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने की क्रिया। आघात प्रतिघात। एक दूसरे पर वार। एक दूसरे को चोट पहुँचाने की क्रिया या भाव। भिड़ंत। युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—लड़ाई भिड़ाई।

२. सेनाओं का परस्पर आघात प्रतिघात। संग्राम। जंग। युद्ध। जैसे,—दोनों राज्यों के बीच लड़ाई हो रही है।

क्रि० प्र०—करना।—छिड़ना।—ठनना।—मचना।—होना।

मुहा०—लड़ाई का मैदान = रणक्षेत्र। लड़ाई पर जाना = योद्धा या सैनिक के रूप में रणक्षेत्र में जाना।

३. एक दूसरे को पटकने का प्रयत्न। मल्लयुद्ध। कुश्ती। ४. परस्पर कठोर शब्दों का व्यवहार। वाग्युद्ध। झगड़ा। कलह। तकरार हुज्जत। कहा सुनी।

यौ०—लड़ाई झगड़ा।

५. वादविवाद। बहस। ६. दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरी से जा लगना। टक्कर। ७ विरोधी या प्रतिपक्षी के व्यवहार से अपनी रक्षा करने और उसे विफल करने का परस्पर प्रयत्न। व्यवहार या मामले में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न या चाल। जैसे,—जमीन के लिये अदालत में लड़ाई। ८. अनबन। विरोध। बैर। बिगाड़। दुश्मनी। जैसे,—उन दोनों में आजकल लड़ाई है।

लड़ाका—वि० [हिं० लड़ना+आका (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लड़ाकी] १. लड़नेवाला। योद्धा। सिपाही। २. बात बात में लड़ जानेवाला। बहुत झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। फसादी।

लड़ाकू—वि० [हिं० लड़ना+आकू] १. युद्ध में व्यवहृत होनेवाला। लड़ाई में काम आनेवाला। जैसे,—लड़ाकू जहाज। २. दे० 'लड़ाका'।

लड़ाना[१]—क्रि० स० [हिं० लड़ना का प्रेर० रूप] १. लड़ने का काम दूसरे से कराना। लड़ने में प्रवृत्त करना। जैसे,—उन दोनों को तुम्हीं लड़ा रहे हो। २. झगड़े में प्रवृत्त करना। कलह के लिये उद्यत करना। ३. एक वस्तु को दूसरी से वेग या झटके के साथ मिला देना। टक्कर खिलाना। भिड़ाना। ४. लक्ष्य पर पहुँचाना। किसी स्थान पर फेंकना या डालना। जैसे,—निशाना लड़ाना, आँख लड़ाना। ५. परस्पर उलझाना। जैसे,—पतंग लड़ाना, डोरा लड़ाना। ६. सफलता के लिये व्यवहार में लाना। सिद्धि के लिये संचालित करना। जैसे, युक्ति लड़ाना, बुद्धि लड़ाना।

लड़ाना[२]—क्रि० स० [हिं० लाड़ (=प्यार)] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। प्रेम से पुचकारना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाई लाड़ली नाहीं नाहीं यहाँ ब्रज जावरो।—हरिदास (शब्द०)।

लड़ायता†—वि० [हिं० लाड़ (=प्यार)] दे० 'लड़ैता'।

लड़िक†—संज्ञा पुं० [हिं० लाड़+इक] दे० 'लाड़'। उ०—बहुरि कहति अति लाड़क न कीजै। लरिकहिं तनक कछू सिख दीजै।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

लड़ित—वि० [सं०] इतस्ततः भ्रमणशील। इधर उधर घूमनेवाला [को०]।

लड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि] १. सीध में गुछी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़ी। २. रस्सी या गुच्छे का तार (जैसे, कई एक साथ मिलाकर बटे या गुछे जायँ)। ३. पंक्ति। कतार। सिलसिला। श्रेणी। जैसे,—यहाँ से वहाँ तक टीलों की एक लड़ी चली गई है। ४. पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़ीला†—वि० [हिं० लाड़+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लड़ीली] दुलारा। प्यारा।

लड़ुआ, लड़ुवा—संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक, लड्डुक] मोदक। लड्डू। उ०—काकि भूखि मन लडुवन गई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२८।

लड़ैता[१]—वि० [हिं० लाड़ (=प्यार)+ऐता (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लड़ैती] १. जिसका बहुत लाड़ प्यार हो। जिसपर बहुत प्रेम किया जाय। लाड़ला। दुलारा। जैसे,—लड़ैते लड़के बिगड़ जाते हैं। २. जो लाड़ प्यार के कारण बहुत इतराया हो। जिसका स्वभाव किसी के बहुत प्रेम दिखाने के कारण बिगड़ गया हो। धृष्ट। शोख। ३. प्यारा। प्रिय। उ०—जितहीं जित रुख करैं लड़ैती तितहीं आपुन आवै।—सूर (शब्द०)।

लड़ैता[२]—वि० [हिं० लड़ना] लड़नेवाला। योद्धा। वीर। उ०—कहा लड़ैते हम करें परे लाल बेहाल।—बिहारी (शब्द०)।

लड्ड—संज्ञा पुं० [सं० लटक, लड्ड] धूर्त। धोखेबाज। बदमाश। दुष्ट [को०]।

लड्डू—संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] गोल बँधी हुई मिठाई। मोदक।

विशेष—लड्डू कई प्रकार के और कई चीजों के बनते हैं। जैसे,—बेसन के लड्डू, खोए के लड्डू, बेसन की बुँदिया के लड्डू जो बाबर के लड्डू और मोतीचूर कहलाते हैं।

मुहा०—(मन के) लड्डू खाना या फोड़ना = व्यर्थ किसी बड़े लाभ की कल्पना करना जिसका होना बहुत कठिन हो। लड्डू खिलाना = उत्सव मनाना। दावत करना। लड्डू मिलना = कोई अच्छा लाभ होना। जैसे,—वहाँ जाने से क्या लड्डू मिल गया? लड्डू बँटना = लाभ या प्राप्ति होना। जैसे,—वहाँ क्या लड्डू बँटता है? ठग के लड्डू खाना = पागल होना। नासमझी करना। होश हवाश में न रहना।

विशेष—पहले ठग लोग मुसाफिरों को धोखे से मादक वस्तु या विष मिला लड्डू खिला देते थे; और जब वे बेहोश हो जाते थे, तब उनका माल लूट लेते थे।

लड्याना(पु)†—क्रि० स० [हिं० लाड़ (=प्यार)] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। उ०—(क) मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजे जाहिं पूत लों लाड लड्यावति है।—लक्ष्मण (शब्द०)। (ख) कहते हैं कि भर्त्ता की लड्याई हुई उस चंडी ने उसके प्रतिज्ञा किए हुए दो बरदान उगले।—लक्ष्मण (शब्द०)।

लढ़ंत—संज्ञा पुं० [सं० लुण्ठन (=लुढ़कना)] कुश्ती का एक पेच जो मुरगों या खरगोशों की लड़ाई का अनुकरण है।

लढ़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० लुढ़ना] बैलगाड़ी।

लढ़िया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुढ़ना, लुढ़कना या हिं० लढ़ा+इया (प्रत्य०)] बैलगाड़ी।

लत¹—संज्ञा स्त्री० [सं० रति (=अनुरक्ति, लीनता)] किसी बुरी बात का अभ्यास और प्रवृत्ति। बुरी आदत। दुर्व्यसन। बुरी टेव। उ०—यह एक घृणा उत्पादक लत है।—कबीर मं०, पृ० १६७।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

लत²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लात। पाँव। पाद। यौगिक शब्दों में व्यवहृत। जैसे,—लतखोर, लतड़ी आदि।

लतखोर—वि० [हिं० लात+फ़ा० खोर] दे० 'लतखोरा'।

लतखोरा¹—वि० [हिं० लत+फ़ा० खोर (=खानेवाला)] [वि० स्त्री० लतखोरिन] [संज्ञा लतखोरी] १. सदा लात खानेवाला। सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। २. नीच। कमीना।

लतखोरा²—संज्ञा पुं० १. दास। किंकर। गुलाम। २. देहली। दहलीज चौखट। ३. दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पोछने का कपड़ा। पायंदाज। गुलमगर्दा।

लतड़ो¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी नाम का अन्न।

लतड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० लात (=पैर+ड़ी (प्रत्य०)] एक प्रकार की जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत†—वि० [अनु०] दे० 'लथपथ'। उ०—एक भैंसा कीचड़ से लतपत आया और उस फर्श के ऊपर बैठ गया।—कबीर मं०, पृ० १५६।

लतमर्दन—संज्ञा स्त्री० [हिं० लत (=लात)+सं० मर्दन] १. लातों से दबाने की क्रिया। पैरों से रौंदने की क्रिया। २. लातों की मार। पदाघात।

लतर—संज्ञा स्त्री० [सं० लता] बेल। वल्ली।

लतरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जिसे 'बरबरा' और 'रेंवछ' भी कहते हैं। इसकी फलियों की तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लतरी+इया (प्रत्य०)] दे० 'लतड़ी'। उ० सास ससुर को लातन मारत खसम को मारत लतरिया।—कबीर श०, भा० २ पृ० ५६।

लतरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास या पौधा जो खेतों में मटर के साथ बोया जाता है और जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं।

विशेष—इसके दानों से दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'मोंट' और 'खेसारी' भी कहते हैं। पशुचारा के रूप में काम आता है।

लतरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० लात] एक प्रकार की हलकी जूती जो केवल तले के रूप में होती है और अँगूठे को फँसाकर पहनी जाती है। चप्पल।

लतहा†—वि० [हिं० लात+हा (प्रत्य०)][वि० स्त्री० लतही] लात मारनेवाला (बैल या घोड़ा)। जैसे,—लतही घोड़ी।

लतांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कट शृंगी। काकड़ासींगी।

लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह पौधा जो सूत या डोरी के रूप में जमीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तु के साथ लिपटकर ऊपर की ओर चढ़े। वल्ली। बेल। बौंर।

विशेष—जिस लता में बहुत सी शाखाएँ इधर उधर निकलती हैं और पत्तियों का झापस होता है, उसे संस्कृत में 'प्रतालिनी' कहते हैं।

२. कोमल कांड या शाखा। जैसे,—पद्मलता।

विशेष—सौंदर्य, कोमलता और सुकुमारता का सूचक होने के कारण 'बाहु' या 'भुज' शब्द के साथ कभी कभी 'लता' शब्द लगा दिया जाता है। जैसे,—बाहुलता, भुजलता। सुंदरी स्त्री के लिये भी 'कंचनलता', 'कनकलता', 'कामलता', 'हेमलता' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे,—(क) गहि शशिवृत्त नरिंद सिढ़ी लंघत ढहि थोरी। कामलता कल्हरी प्रेम मारुत झकझोरी।—पृ० रा०, २५।३८१। (ख) मानो कलिता कचन लहरि मत्ता बीर गजराज गहि।—पृ० रा०, २५।३७४।

३. प्रियंगु। ४. स्पृक्का। ५. अशनपर्णी। ६. ज्योतिष्मती लता। ७. माधवी लता। ८. दूर्वा। दूब। ९. कैवर्तिका। १०. सारिवा। ११. जातिपुष्प का पौधा। १२. सुंदरी स्त्री। कृशोदरी। १३. मोतियों की लरी (को०)। १४. कशाघात या चाबुक। कोड़ा (को०)।

लताकरंज—संज्ञा पुं० [सं० लताकरञ्ज] एक प्रकार का करंज या कंजा। कंटकरेज।

पर्या०—दुष्पर्श। वीराख्य। वज्रबीजक। धनदाक्षी। कंटफल। कुबेराक्षी।

विशेष—वैद्यक में यह कटु, उष्ण और वात-कफ-नाशक कहा गया है। इसका बीज दीपन, पथ्य तथा गुल्म और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

लताकर—संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक प्रकार।

लताकस्तूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो दक्षिण में होता है।

विशेष—वैद्यक में इसे तिक्तस्वादु, वृष्य, शीतल, लघु, नेत्रों को हितकारी तथा श्लेष्मा, तृष्णा और मुखरोग को दूर करनेवाली माना है। इसे लताकस्तूरी भी कहते हैं।

लताकुंज—संज्ञा पुं० [सं० लताकुञ्ज] लताओं से छाया हुआ स्थान। उ०—लताकुंज में मधुप पुंज के 'गुन गुन गुन' गुंजन में।—अनामिका, पृ० २६।

लतागण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में सूत या डोरी के रूप में फैलनेवाले पौधों का वर्ग।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत ये पौधे हैं—पान, गुर्च, सोमवल्ली, विष्णुक्रांता, स्वर्णवल्ली हड़संहारी, ब्रह्मदंडी, आकाशबेल, वटपत्री, हिंगुपत्री, वंशपत्री, बृहन्नला, अर्कपुष्पी, सर्पाची, मूसा, मूसाकानी, पोई, मोरशिखा, बंधवल्ली, कनकलता (नागकेसर), जाती और माधवी।

लतागुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] लताओं का झुरमुट। उ०—पेड़, पौदे, लतागुल्म आदि भी इसी प्रकार कुछ भावों या तथ्यों की व्यंजना करते हैं।—रस०, पृ० १६।

लतागृह—संज्ञा संज्ञा [सं०] लताओं से मंडप की तरह छाया हुआ स्थान। लताकुंज।

लताजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

लताड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० लथाड़] दे० लथाड़'।

मुहा०—लताड़ बताना = भर्त्सना करना। झिड़कियाँ सुनाना। उ०—अलंकार प्रेमियों को लताड़ बताकर शुक्ल जी ने उन्हें सावधान कर दिया है कि हैसियत से बाहर न बोला करें।—आचार्य०, पृ० १३५।

लताड़ना—क्रि० स० [हिं० लात] १. पैरों से कुचलना। रौंदना। २. लातों से मारना। ३. हैरान करना। श्रम से शिथिल करना। थकाना। ४. फटकारना। झिड़की सुनाना। ५. लेटे हुए आदमी के शरीर पर खड़े होकर धीरे धीरे इधर उधर चलना, जिससे उसके बदन की थकावट दूर होती है। (पश्चिम)।

लतातरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारंगी का पेड़। २. ताड़ का पेड़। ३. शाल या साखू का पेड़।

लताताल—संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

लताद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लतातरु'।

लतानन—संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक ढंग।

लतापता—संज्ञा पुं० [सं० लतापत्र] १. लता और पत्ते। पेड़ पत्ते। पेड़ों और पौधों का समूह। २. पौधों की हरियाली। ३. जड़ी बूटी। जैसे,—गाँव के लोग लतापता से दवा कर लेते हैं।

लतापनस—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। कलींदा।

लतापर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

लतापर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तालमूला। २. मधूरिका। मेउँड़ी।

लतापाश—संज्ञा पुं० [सं०] लता का झापस या समूह। लताओं का जाल।

लताप्रतान—संज्ञा पुं० [सं०] लता के रेशे या तंतु [को०]।

लताफत—संज्ञा स्त्री० [अ० लताफ़त] १. कोमलता। २. मृदुलता। नजाकत। ३. शोभा। लालित्य। सुंदरता। उ०—नन्ही एक मह्बूब महताब थे, लताफत में निर्मल निछल आब थे।—दक्खिनी०, पृ० ७८। ३. बारीकी। सूक्ष्मता (को०)। ४. स्वच्छता। शुद्धता (को०)। ५. नवीनता (को०)। ६. भाव की गंभीरता (को०)।

लताफल—संज्ञा पुं० [सं०] पटोल। परवल।

लताभद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रा या भद्राली नाम की एक लता [को०]।

लताभवन—संज्ञा पुं० [सं०] लताओं का कुंज। लतागृह। उ०—लताभवन तें प्रगट भए तेहि अवसर दोउ भाइ। निकसे जनु जुग विमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।—तुलसी (शब्द०)।

लतामंडप—संज्ञा पुं० [सं० लतामण्डप] छाई हुई लताओं से बना हुआ मंडप या घर।

लतामंडल—संज्ञा पुं० [सं० लतामण्डल] छाई हुई लताओं का घेरा या कुंज।

लतामणि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

लतामरुत्—संज्ञा पुं० [सं०] पृक्का।

लतामृग—संज्ञा पुं० [सं०] शाखामृग। वानर। बंदर [को०]।

लतायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजिष्ठा। मजीठ।

लतायावक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाल। मूँगा। २. कनखा। अंकुर [को०]।

लतारद—संज्ञा पुं० [सं०] हस्ती। हाथी [को०]।

लतारसन—संज्ञा पुं० [सं०] लताजिह्व। सर्प [को०]।

लतार्क—संज्ञा पुं० [सं०] प्याज का पौधा। हरा प्याज।

लतालक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

लतावलय—संज्ञा पुं० [सं०] लताकुंज। लतागृह [को०]।

लतावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. शल्लकी। सलई का पेड़। २. नारियल का वृक्ष (को०)।

लतावेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामशास्त्र में सोलह प्रकार के रतिबंधों में से तीसरा। २. एक पर्वत जो द्वारकापुरी से दक्षिण की ओर पड़ता है। (हरिवंश)।

लतावेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आलिंगन। बैठे हुए प्रिय का लेटी हुई प्रिया द्वारा आलिंगन।

लतावेष्टित—वि० [सं०] लताओं से घिरा हुआ या आच्छादित [को०]।

लतावेष्टितक—संज्ञा सं० [सं०] दे० 'लतावेष्टन' [को०]।

लताशंकुतरु—संज्ञा पुं० [सं० लताशङ्कुतरु] लताशंख वृक्ष [को०]।

लताशंख—संज्ञा पुं० [सं० लताशङ्ख] शाल या साखू का पेड़।

लतासाधन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र या वाममार्ग की एक साधना जिसका प्रधान अधिकरण लता या स्त्री है।

विशेष—इसमें महारात्रि (शिवरात्रि) के दिन एक रजस्वला स्त्री को लेकर उसके योनिदेश पर इष्टदेव का पूजन और जप करते हैं।

लतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी लता। बँवर। बेल। विशेष दे० 'लता'।

लतियर, लतियल—वि० [हिं० लात + इयल (प्रत्य०)] जो सदा लात खाता रहता हो। लतखोर।

लतियाना†—क्रि० स० [हिं० लात + आना (प्रत्य०)] १ पैरों से दबाना या रौंदना। २. खूब लातें मारना। प्रहार करना। दंड देना। जैसे,—इसे खूब लतियाओ, तब मानेगा।

लतिहर, लतिहल—वि० [हिं० लात + इहर (प्रत्य०)] दे० 'लतियर'।

लतीफ—वि० [अ० लतीफ़] १. मजेदार। सुस्वादु। जायकेदार। २ अच्छा। बढ़िया। मनोहर।

यौ०—लतीफ मिजाज = खुशदिल।

लतीफा—संज्ञा पुं० [अ० लतीफ़ा] १. हास्य रस पूर्ण छोटी कहानी। चुटकुला। २. चुहल की बात। हँसी की बात। ३. चमत्कार-पूर्ण बात। अनूठी बात।

यौ०—लतीफा गो = लतीफा कहनेवाला। लतीफा बाज = विनोदी। चुहलभरी बातें कहनेवाला।

मुहा०—लतीफा छोड़ना या कसना = चुहल या विनोद की बातें कहना।

लत्त—संज्ञा स्त्री० [देशी लत्ता, लत्तिया] १. लात। २. बुरी आदत। लत।

लत्ता—संज्ञा पुं० [सं० लत्तक] १. फटा पुराना कपड़ा। चीथड़ा। २. कपड़े का टुकड़ा। वस्त्रखंड। ३. कपड़ा। वस्त्र। उ०—तन पर लत्ता नाहि खसम ओढ़ाती सोई।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६।

यौ०—कपड़ा लत्ता = पहनने का वस्त्र।

मुहा०—लत्ते लेना = आड़े हाथ लेना। व्यंग्य द्वारा उपहास करना। बनाना। लत्ते उड़ाना = धज्जियाँ उड़ाना। बखिया उधेड़ना। पोल खोलना। उ०—भली भाँति निर्णय किया और उसके भली प्रकार लत्ते उड़ाए हैं। कबीर मं०, पृ० ३७१।

लत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधा। गोह।

लत्ती¹—संज्ञा स्त्री० [देशी लत्तिया, हिं० लात] १. प्रहार के लिये उठाया या चलाया हुआ घोड़े, गदहे आदि का पैर। पशुओं का पादप्रहार। लात। २. लात मारने की क्रिया। उ०—कोऊ लरत लत्ती चलावत कोउ काई मारतो।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११३।

क्रि० प्र०—चलाना।—फटकारना।—मारना।

यौ०—दुलत्ती = घोड़े, गधे आदि जानवरों का अपने पिछले दोनों पैरों से किसी पर प्रहार करना।

लत्ती²—संज्ञा पुं० [हिं० लत्ता] १. कपड़े की लंबी धज्जी। २. बाँस में बँधी हुई कपड़े की धज्जी जिसे ऊँचा करके कबूतर उड़ाते हैं। २. पतंग की दुम अर्थात् नीचे बंधी हुई कपड़े की लंबी धज्जी। पुछिल्ला। ३. किसी ओर झुकती या कन्नी खाती हुई पतंग को ठीक रखने के लिये उसके विपरीत ओर की कमाची में बाँधने का लत्ता या धज्जी।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

लथपथ—वि० [अनु०] १. जो भीगकर भारी हो गया हो। भीगा हुआ। तराबोर। जैसे,—(क) वह पानी में लथपथ हो गया। (ख) काम करते करते पसीने से लथपथ हो गए। २. (कीचड़ आदि में) सना हुआ। जो कीचड़ आदि के लगने से भारी हो गया हो। जैसे,—वह कीचड़ में फिसलकर फिर लथपथ दौड़ा।

लथाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु० लथपथ] १. जमीन पर पटककर इधर उधर लोटाने या घसीटने की क्रिया। चपेट। जैसे,—ऐसी लथाड़ दी कि होश ठिकाने हो गए। २. हार। पराजय। ३. डाँटडपट। झिड़की। फटकार। ४ नुकसान। हानि।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—लथाड़ खाना = झिड़का जाना। डाँटा जाना। घुड़की सुनना। लथाड़ पड़ना = डाँटा जाना। झिड़की सुनाई जाना। जैसे,—आज उसपर खूब लथाड़ पड़ी।

लथाड़ना—क्रि० स० [अनु० लथाड़] १. दे० 'लथेड़ना'। २. दे० 'लताड़ना'।

लथेड़ना, लथेरनाⓅ†—क्रि० स० [अनु० लथपथ] १. कीचड़ आदि से लपेटना। कीचड़ आदि पोतकर भारी करना। जैसे,—दुपट्टे को क्यों कीचड़ में लथेड़ रहे हो। २. मिट्टी, कीचड़ आदि लिपटाकर गंदा करना। जैसे,—कल ही कुरता पहना, आज ही मिट्टी में लथेड़ डाला। ३. जमीन पर पटककर इधर उधर लोटाना या घसीटना। उ०—हरि तेहि गहि महि माहि लथेरा।—गोपाल (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।

४. कुश्ती या लड़ाई में पछाड़ना। पटकना। हराना। ५. श्रम से शिथिल करना। हैरान करना। थकाना। ६. बातों या गालियों की बौछाड़ से व्याकुल करना। भर्त्सना करना। झिड़कियाँ सुनाना। भला बुरा कहना। डाँटना। डपटना।

लदन—संज्ञा स्त्री० [हिं० लदना] लदाव।

लदना¹†—वि० [हिं०] लदी वस्तु को ढोनेवाला। बोझा ढोनेवाला। लद्दू।

लदना²—क्रि० अ० [अनुकरणात्मक देश०] भाराक्रांत होना। भारयुक्त होना। बोझ ऊपर लेना। बोझ से भरना। ऊपर पड़ी हुई वस्तुओं के ढेर से भरना। जैसे,—(क) मेज किताबों से लदी हुई है। (ख) गाड़ी असबाब से लदी हुई आ रही है।

संयो० क्रि०—जाना।

२. किसी वस्तु का किसी वस्तु के समूह से ऊपर ऊपर भर जाना। आच्छादित होना। पूर्ण होना। जैसे,—(क) यह पेड़ फलों या फूलों से लदा है। (ख) वह स्त्री गहनों से लदी है। ३. सामान ढोनेवाली सवारी (जैसे, गाड़ी, घोड़ा, बैल, ऊँट) का वस्तुओं

से पूर्ण होना। बोझ से भर जाना या भरा जाना। जैसे,—गाड़ी लद रही है। ४. किसी भारी या वजनी चीज का दूसरी चीज के ऊपर होना या रखा जाना। किसी वस्तु के ऊपर बोझ के रूप में पड़ना या रखा जाना। जैसे,—(क) तुम उसकी पीठ पर लद जाओ। (ख) मेज पर किताबें लदी हुई हैं। ५. सामान ढोनेवाली सवारी पर वस्तुओं का रखा जाना। बोझ का डाला या रखा जाना। जैसे,—गाड़ी पर उनका असबाब लद रहा है। ६. जेलखाने जाना। कैद होना। जैसे,—वह सात बरस के लिये लद गया। ७. परलोक सिधारना। मर जाना। जैसे,—आज वे भी लद गए। ८. समाप्त होना। खत्म होना।

लदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लदना] १. व्यापार। कारबार। २. लदन। लदाव। जैसे. लदनी लादना। उ०—करै पाप पुन्न की लदनी जग ख्याल हो जग ख्याल हो।—भीखा० श०, पृ० ८३।

लदलद—क्रि० वि० [अनु०] किसी गीली और गाढ़ी या जमी हुई वस्तु के गिरने के शब्द का अनुकरण। जैसे,—भीगी मिट्टी ऊपर से लद लद गिर रही है।

लदवाना—क्रि० स० [हिं० लादना का प्रे० रूप] लादने का काम दूसरे से कराना। उ०—पाँच सहस इक सौ रथ आए। सहस निसान तोप लदवाए।—सबल (शब्द०)।

लदाउ, लदाऊ(पु)†—वि० [हिं० लदना (=भरना)] लदाव। भराव। उ०—रेणुका की रासन में कीच कुस कासन में निकट निवासन में आसन लदाऊ के।—पद्माकर (शब्द०)।

लदान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लादने की क्रिया। लदाव। लदन।

लदाना—क्रि० स० [हिं० लादना का प्रेर० रूप] लादने का काम दूसरे से कराना। दे० 'लदवाना'।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

लदाफँदा—वि० [हिं० लदना+फँदना] भारपूर्ण। बोझ से भरा या लदा हुआ।

लदाव—संज्ञा पुं० [हिं० लादना] १. लादने की क्रिया या भाव। २. भार। बोझ। ३. छत आदि का पटाव। ४. ईंटों की जोड़ाई जो बिना धरन या कड़ी के अधर में ठहरी हो। कड़े की जोड़ाई। जैसे,—लदाव की छत। ५. वह छत या महराब जिसमें ईंटों की जोड़ाई बिना धरन या कड़ी के सहारे अधर में ठहरी हो।

लदुवा—वि० [हिं० लादना उवा (प्रत्य०)] बोझ ढोनेवाला। पीठ पर बोझ लेकर चलनेवाला। जैसे,—लदुवा घोड़ा; लदुआ बैल।

लदूषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

लद्दू—वि० [हिं० लादना] बोझ ढोनेवाला। लदुवा। जैसे,—लद्दू घोड़ा।

लद्धड़—वि० [हिं० लदना (=भारी होना)] जिसमें तेजी और फुरती न हो। सुस्त। काहिल। आलसी। जैसे,—लद्धड़ आदमी, लद्धड़ घोड़ा।

लद्धड़पन—संज्ञा पुं० [हिं० लद्धड़+पन (प्रत्य०)] काहिली। सुस्ती ढिलाई।

लद्धना(पु)—क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध (=प्राप्त)] प्राप्त करना। हासिल करना। मिलना। पाना। भेंटना। उ०—चीठर जमिया चून का बैरी बिरहा खद्ध। बीछुरिया सो साजना बेद न काहू लद्ध।—कबीर (शब्द०)।

लनटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या घास जिसका साग बनाकर खाया जाता है।

लना—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक पेड़ जिससे पंजाब में सज्जी निकाली जाती है। इसका एक भेद 'गोरानला' है। २. शोरा।

लनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की बारी में की क्यारी।

लनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पंजाब में होनेवाला एक पेड़ जिससे सज्जी निकाली जाती है। छोटी जाति का 'लना' नाम का पेड़।

लप[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास, जिसे 'सुरारी' भी कहते हैं।

लप[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बेंत या लचीली छड़ी को पकड़कर हिलाने से उत्पन्न शब्द या व्यापार। २. छुरी, तलवार आदि की चमक की गति।

मुहा०—लप लप करना=(१) बेत या लचीली छड़ी आदि का पकड़कर जोर से हिलाए जाने से शब्द करना। (२) झलकना। चमाचम करना। लप से=लौ या लपट की तरह तेजी से। झट से।

लप—संज्ञा पुं० [देश०] १. दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके। अँजली। जैसे,—लप भर आटा। २. अँजली भर वस्तु। जसे,—लप भर निकालकर देना।

लपक—संज्ञा स्त्री० [अनु० लप] १. ज्वाला। लपट। लौ। अग्निशिखा। २. चमक। कांति। लपलपाहट। जैसे,—बिजली की लपक से आँखें चौंधिया गईं। ३. लौ या लपट की तरह निकलने या चलने की तेजी। वेग। ४. चलने का वेग। झपट। फुरती।

लपकना—क्रि० अ० [हिं० लपक] १. चटपट या तेजी से चल पड़ना। तुरंत दौड़ पड़ना। जैसे,—उसने लपककर भागते हुए चोर को पकड़ लिया। २. वेग से गमन करना। तेजी से जाना या चलना। जैसे,—वह उसी ओर लपका चला जा रहा है।

मुहा०—लपक कर=(१) तुरंत तेजी से जाकर। (२) तुरंत। झट से। जैसे,—लपककर तुम्हीं चले जाओ; लेते आओ। उ०—ताही समय उठे घन घोर दामिनी सी धाय उर लागी जाय स्याम घन सों लपकि कै।—केशव (शब्द०)।

३. आक्रमण के लिये दौड़ पड़ना। झपटना। जैसे,—शेर उसकी ओर लपका। ४. कोई वस्तु लेने के लिये झट से हाथ बढ़ाना। जैसे,—तुम सभी चीजें लेने के लिये लपकते हो।

लपकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लपकना] एक प्रकार की सीधी सिलाई।

लपचा—संज्ञा पुं० [देश०] सिकिम के पहाड़ों की एक जंगली जाति।

लपझप—वि० [अनु० लप+हिं० झपट] १. चंचल। चपल। स्थिर न रहनेवाला। २. चुपचाप न बैठनेवाला। अधीर। जैसे,—बाप चुपचुप, पूत लपझप। ३. तेज। फुरतीला।

मुहा०—लपझप चाल = बेढंगी चाल। चपलता की चाल।

लपझप[२]—संज्ञा स्त्री० १. चंचलता। चपलता। २. तेजी। तीव्रता। ३. सुकुमारता। कोमलता ४. एक प्रेम व्यंजक चेष्टा।

लपट[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लोक, हिं० लौ+पट (=विस्तार)] १. आग के दहकने से उठा हुआ जलती वायु का स्तूप। अग्नि-शिखा। ज्वाला। आग की लौ। उ०—इंद्रजाल कंदर्प को कहैं कहा मतिराम। आगि लपट वर्षा करै ताप धरै घनस्याम।—मतिराम (शब्द०)। २. तपी हुई वायु। हवा में फैली हुई गरमी। आँच।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

३. किसी प्रकार की गंध से भरा हुआ वायु का झोंका। जैसे,—क्या अच्छी गुलाब की लपट आ रही है। ४. गंध। महक। भभक। बू। उ०—सूरदास प्रभु को बानक देखे गोपी टारे न टरत निपट आवै सोंधे की लपट।—सूर (शब्द०)।

लपट†[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपटना] दे० 'लिपट'।

लपटना†—क्रि० अ० [सं० लिप्त+हिं० ना (प्रत्य०)] १. अंगों से घेरना। लिपटना। चिमटना। आलिंगन करना। २. किसी सूत की सी वस्तु का दूसरी वस्तु के चारों ओर कई फेरों में घेरना। ३. लग जाना। संलग्न होना। सटना। ४. उलझना। फँसना। लिप्त होना। उ०—आइ गयो काल मोहजाल में लपटि रह्यो महा विकराल यमदूत ही दिखाइए।—प्रियादास (शब्द०)। ५. परिवेष्टित होना। घिर जाना। ६. लगा रहना। रत रहना।

लपटा—संज्ञा पुं० [हिं० लपटा सा लपसी] १. गाढ़ी गीली वस्तु। २. लपसी। लेई। ३. कढ़ी।† ४. एक प्रकार की घास। लपटौआँ।

लपटाना[१]†—क्रि० स० [हिं० लपटना] १. अंगों से घेरना। लिपटाना। चिमटाना। २. आलिंगन करना। गले लगाना। ३. किसी सूत की सी वस्तु को कई फेरे करके टिकाना या बाँधना। लपेटना। उ०—दरसन आयो राना रूप चतुर्भुज जू के रहे प्रभु पौढ़ि हार सीस लपटायो है।—प्रियादास (शब्द०)। ४. परिवेष्टित करना। घेरना।

लपटाना[२]†Ⓟ—क्रि० अ० १. सलग्न होना। सटना। उ०—यह नहिं भली तुम्हारी बानी। मैं गृहकाज रहौं लपटानी।—सूर (शब्द०)। २. उलझना। फँसना।

लपटौआँ[१]—संज्ञा पुं० [हिं० लपटना] एक प्रकार का जंगली तृण जिसकी बाल कपड़े में लिपट या फँस जाती है और कठिनता से छूटती है।

लपटौआँ[२]—वि० १. लिपटनेवाला। चिमटनेवाला। २. सटा या लिपटा हुआ।

लपटौना†—देश० पुं०, वि० [हिं० लपटना] दे० 'लपटौआँ'।

लपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख। मुँह। २. भाषण। कथन। ३. बोलने वा कहने का भाव (को०)।

लपनाⓅ†[१]—क्रि० अ० [सं० लपन] कहना। बोलना।

लपना[२]†—क्रि० अ० [अनु० लप लप] १. बेंत या लचीली छड़ी का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना। झोंक के साथ इधर उधर लचना। २. झुकना। लचना। ३. लपकना। ४. ललचना। उ०—साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।—तुलसी (शब्द०)। ५. हैरान होना। परेशान होना।

मुहा०—लपना झपना = हैरान होना। उ०—साठि बरस जो लपई झपई। छन एक गुपुत जाय जो जपई।—जायसी (शब्द०)।

लपलपाना[१]—क्रि० अ० [अनु० लप लप] १. बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना। झोंक के साथ इधर उधर लचना या लपना। जैसे,—बेंत का लपलपाना। २. किसी लंबी कोमल वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकलना। जैसे,—साँप की जीभ लपलपाती है।

मुहा०—जीभ लपलपाना = चखने की इच्छा या लोभ करना। जैसे,—मिठाई खाने के लिये उसकी जीभ लपलपाया करती है।

३. छुरी, तलवार आदि का चमकना। झलकना।

लपलपाना[२]—क्रि० स० १. बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर जोर से इधर उधर झुकाना या झोंका देना। झोंक के साथ इधर उधर लचाना। फटकारना। लगाना। जैसे,—मारने के लिये बेंत लपलपाना। २. किसी लंबी नरम चीज को इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकालना। जैसे,—साँप जीभ लपलपाता है। ३. छुरी, तलवार आदि को निकालकर चमकाना। चमचमाना।

लपलपाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लपलपाना+आहट (प्रत्य०)] १. लपलपाने की क्रिया या भाव। लचीली छड़ी या टहनी आदि का झोंक के साथ इधर उधर लचकना। एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाते हुए बेंत आदि का झोंका। २. चमक। झलक। जैसे,—तलवारों की लपलपाहट।

लपसी—संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिका] १. भुने हुए आटे में चीनी का शरबत डालकर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लेई जो खाई जाती है। थोड़े घी का हलुवा। २. गीली गाढ़ी वस्तु। जैसे,—आज की तरकारी तो लपसी हो गई। ३. पानी में औटाया हुआ आटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेल में कैदियों को दिया जाता है। लपटा।

लपहा—संज्ञा पुं० [देश०] पान का एक रोग। पान की गेरुई।

लपाना—क्रि० स० [अनु० लपलप] १. लचीली छड़ी आदि को झोंक के साथ इधर उधर चलाना। फटकारना। २. नरम लंबी चीज को डुलाना। ३. आगे बढ़ाना।

लपित[१]—वि० [सं०] कहा हुआ। बोला हुआ। कथित।

लपित[२]—संज्ञा पुं० कथन। बोल। आवाज [को०]।

लपिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शार्ङ्गिका नामक पक्षी की एक जाति।

लपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना तुल० सं लिप्त (लेप किया हुआ)] १. लपेटने की क्रिया या भाव। २. किसी सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु की परिधि से लपेटने या बाँधने की स्थिति। बंधन का चक्कर। घुमाव। फेरा। जैसे,—कई लपेट बाँधोगे, तब मजबूत होगा। ३. बँधी हुई गठरी में कपड़े की तह की मोड़। उ०—खोलिकै लपेट मध्य संपुट निहारि कौड़ा, समुझि बिचारे हारैं, मत में न आयो है।—प्रियादास (शब्द०)। ४. ऐंठन। बल। मरोड़। ५. किसी लंबी वस्तु की मोटाई के चारो ओर का बिस्तार। घेरा। परिधि। जैसे,—(क) इस खंभे की लपेट ३ फुट है। (ख) इस पेड़ के तने की लपेट ५ फुट है। ६. उलझन। फँसाव। जाल या चक्कर। जैसे,—तुम उसकी बातों की लपेट में पड़ गए। उ०—आए इश्क लपेट में लागी चसम चपेट।—रसनिधि (शब्द०)। ७. कुश्ती का एक पेच।

विशेष—जब दोनों लड़नेवाले एक दूसरे की बगल से सिर निकालते हैं और कमर को दोनों हाथों से पकड़कर भीतर अड़ानी टाँग से लपेटते हैं, तब उसे लपेट कहते हैं।

८. पकड़। बंधन। उ०—बानर भालु लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो। —(शब्द०)।

लपेटन[१]—संज्ञा स्त्री०[हिं० लपेटना] लपेटने की क्रिया या भाव। लपेट। २. फेरा। बल। ३. ऐंठन। मरोड़। ४. उलझन। फँसाव।

लपेटन[२]—संज्ञा पुं० १. लपेटनेवाली वस्तु। वह जो चारों ओर सटकर घेर ले। २. वह वस्तु जिसे किसी वस्तु के चारो ओर घुमा घुमाकर बाँधें। ३. वह कपड़ा जिसे किसी वस्तु के चारों ओर घुमाकर बाँधें। बाँधने का कपड़ा। वेष्टन। बेठन। ४. पैरों में उलझनेवाली वस्तु। जैसे,—रस्सी का टुकड़ा। (पालकी में कहारों का प्रयोग)। उ०—काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहि ठाँव बझाऊ रे।—तुलसी (शब्द०)। ५. वह लकड़ी जिसपर जुलाहे बुनकर तैयार कपड़ा लपेटते हैं। तूर। बेलन।

लपेटना - क्रि० स० [सं० लिप्त, हिं० लिपटना] १. किसी सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु के चारों ओर घुमाकर बाँधना। घुमाव या फेरे के साथ चारो ओर फँसाना। चक्कर देकर चारों ओर ले जाना। जैसे,—(क) इस लकड़ी में तार लपेट दो। (ख) छड़ों में कपड़ा लपेटा हुआ है।

संयो० क्रि० – देना।—लेना।

२. सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु चारो ओर ले जाकर घेरना। परिवेष्ठित करना। जैसे, इस डंडे को कपड़े से लपेट दो। ३. डोरी, सूत या कपड़े की सी फैली हुई वस्तु को तह पर तह मोड़ते या घुमाते हुए सकुचित करना। फैली हुई वस्तु को लच्छे या गट्ठर के रूप में करना। समेटना। जैसे,—(क) कपड़े का थान लपेटकर रख दो। (ख) तागा लपेटकर रख दो। ४. मोड़े हुए कपड़े आदि के अंदर करके बंद करना। कपड़े आदि के अंदर बाँधना। जैसे,—पुस्तक लपेटकर रख दो। ५. हाथ पैर आदि अंगों को चारों ओर सटाकर घेरे में करना। पकड़ में कर लेना। जैसे,—(क) उसे देखते ही उसने हाथों से लपेट लिया। (ख) अजगर ने शेर को चारों ओर से लपेट लिया। ६ ऐसी स्थिति में करना कि कुछ करने न पावे। गति विधि बंद करना। चारों ओर से चाल रोकना। जैसे,—तुमने तो उसे चारो ओर से ऐसा लपेटा है कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। ७. पकड़ में लाना। काबू में करना। रसना। उ०—जिमि करि निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।—तुलसी (शब्द०)। ८. उलझन में डालना। झंझट में फँसाना। ९. गीली गाढ़ी वस्तु पोतना। लेपन करना। जैसे,—वह बदन में कीचड़ लपेटे आ पहुँचा।

विशेष—यद्यपि 'लिपटाना' और 'लपेटना' दोनों सकर्मक क्रियाएँ 'लिपटना' ही से बनी हैं, पर दोनों के प्रयोगों में अंतर है। 'लिपटाना' में संलग्न करने या सटाने का भाव प्रधान है। इसी से 'छाती से लिपटाना', 'बदन में रूई लिपटाना' आदि बोलते है। 'लपेटना' में घुमाकर या मोड़कर घेरने का भाव प्रधान है। इसी से 'डोरा लपेटना', 'कपड़ा लपेटना' आदि बोलते हैं।

लपेटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] जुलाहों की लपेटन नाम की लकड़ी। लपेटना। तूर।

लपेटवाँ—वि० [हिं० लपेटना] १. जो लपेटा हो। जिसे लपेट सकें। २. जो लपेटकर बना हो। ३. जिसमें सोने चाँदी के तार लपेटे गए हों। ४. जिसका अर्थ छिपा हो। गूढ़। व्यंग्य। जैसे,—लपेटवाँ गाली। ५. जो सीधे ढंग से न कहा या किया गया हो। घुमाव फिराव का। चक्करदार। जैसे,—लपेटवाँ बात।

लपेटा[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लपेट'।

लपेटा†[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] लप्पड़। झापड़।

लपेत—संज्ञा पुं० [सं०] पारस्कर गृह्यसूत्र में कथित बालरोगों के अधिष्ठाता एक देवता।

लपेरा†—संज्ञा पुं० [देश०] लिसोड़ा। लबेरा।

लपोटा†, **लप्पड़**†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'थप्पड़'।

लप्पा—संज्ञा पुं० [देश०] १. छत में लगी हुई वह लकड़ी जिसमें रेशमी कपड़े बुननेवाले जुलाहों के करघे की रस्सियाँ बँधी रहती हैं। २. एक प्रकार का गोटा।

लप्सिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लपसी।

लप्सुद—संज्ञा पुं० [सं०] (बकरे की) दाढ़ी [को०]।

लप्सुदी—वि० [सं०] दाढ़ीवाला (बकरा) [को०]।

लफंगा—वि० [फ़ा० लफ़ंग] १. लंपट। व्यभिचारी। दुश्चरित्र। २. शोहदा। आवारा। कुमार्गी।

लफ†—संज्ञा स्त्री० [?] दे० 'लय'।

लफटंट—संज्ञा पुं० [अं० लेफ्टिनेंट] सेना का एक छोटा अफसर।

लफटंट गवर्नर—संज्ञा पुं० [अं० लेफ्टिनेंट गवर्नर] किसी प्रांत का शासक। छोटे सूबे का हाकिम।

लफनाⓅ†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'लपना'। उ०—तिलक चिकनई चटक स्यों लफति सटक लौं आय। नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डसि जाय।—बिहारी (शब्द०)।

लफलफानाⓅ†—क्रि० अ० [अनु०] लपलपाना।

लफलफानिⓅ†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'लपलपाना' या लपलपाहट' उ०—राधासर तीर द्रुम डारि गहि झूलैं फूले देखत सफ लफलफानि गति मति बौरी है।—प्रियादास (शब्द०)।

लफानाⓅ†—क्रि० स० [अनु०] दे० 'लपाना'।

लफ्ज—संज्ञा पुं० [अ० लफ़्ज़] १. शब्द। २. बात। बोल।

लफ्जी—वि० [अ० लफ़्ज़ी] शब्द संबंधी। शब्द का। शाब्दिक [को०]।

यौ०—लफ्जी माने = शब्दार्थ। शब्द का अर्थ।

लफ्तरा—वि० [अ० लफ़्तरह्] नीच। अधम। कमीना [को०]।

लफ्फा—संज्ञा स्त्री० [अ० लफ़्फ़ा] लपेटने या तह करने की क्रिया।

मुहा०—लफ्फा मारना = बिना दाँतों से अच्छी तरह कूँचे हुए खाद्य पदार्थ जल्दी जल्दी निगलना।

लफ्फाज—वि० [अ० लफ़्फ़ाज़] बातूनी। बहुत बात करनेवाला। वाचाल [को०]।

लफ्फाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० लफ़्फ़ाज़ी] वाचालता। बातूनीपन। मुखरता [को०]।

लब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. ओष्ठ। ओंठ। होंठ। २. तट। कूल। किनारा (को०)।

यौ०—लबगीर = तंबाकू पीने की नली या पाइप। लबचरा। लबजदा = (१) दे० 'लबबंद'। (२) बातें करने या बोलने वाला। लब बंद = (१) चुप। खामोश। (२) बहुत मीठी वस्तु। लबे सड़क = पथ के किनारे। लबरेज।

लबगुरानया—संज्ञा स्त्री० [देश०] गहरे बैंगनी रंग के रतालू की लता जो भारतवर्ष में कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लबचरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दोस्तों के बीच में रखा मेवा, दाना, चना आदि जिसे बातें करते हुए लोग खाते रहते हैं [को०]।

लबझनाⓅ†—क्रि० अ० [देश०] उलझना। फँसना। उ०—लबझी अंग तरग बहु, सरिता रंग अनूप। नव पकज अंकुर जहाँ, धरत प्रवाल स्वरूप।—गुमान (शब्द०)

लबड़ धोंधों—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनुकरणात्मक] १. निरर्थक या झूठ मूठ का हल्ला। व्यर्थ का गुल गपाड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

२.क्रम और व्यवस्था का अभाव। गड़बड़ी। अंधेर। बदइंतजामी। कुव्यवस्था। ३. अन्याय। अनीति।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

४. बातों का भुलावा। असल बात को टालने के लिये बकवाद और कहासुनी। बेईमानी की चाल। जैसे,—यहाँ तुम्हारी यह लबड़धोंधों न चलेगी।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—लबड़धोंधों चलना = बेईमानी की चाल सफल होना।

लबड़नाⓅ†—क्रि० अ० [सं० लप = बकना] १. झूठ बोलना। लबारी करना। २. गप हाँकना।

लबड़ा†—वि० [सं० लपन] दे० 'लबरा'।

लबदा—संज्ञा पुं० [सं० लगुड] मोटा बेडौल डंडा।

लबदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लबदा] छोटी छड़ी। पतली छड़ी। हलकी लाठी।

लबनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. मिट्टी की लंबी हाँड़ी या मटकी जो ताड़ के पेड़ों में बाँध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है। २. काठ की लंबी डाँड़ी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाह में से शीरा निकालते हैं। डोई। डौवा।

लबरा†—वि० [सं० लपन (= बोलना)] [वि०स्त्री० लबरी] १. झूठ बोलनेवाला। उ०—मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रँगौलै गीता बाँच के होइ गैले लबरा।—क० बचनावली, पृ० २४३। २. गप हाँकनेवाला। गप्पी। उ०—आप सभा महँ सत्य जू संहत लालची और लबरान को लबरा।—रघुराज (शब्द०)। ३. † बायाँ। बाईं ओर का। बाम।

लबरी[१]—वि० स्त्री० [हिं० लबरा] झूठ बोलनेवाली। गप्पी। झूठी।

लबरी[२]—संज्ञा स्त्री० दे० 'लिबड़ी'।

लबरेज—वि० [फ़ा० लबरेज़] ऊपर तक भरा हुआ। किनारे तक भरा हुआ। मुहाँमुँह। लबालब [को०]।

लबलबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लब] बंदूक के घोड़े की कमानी।

लबलहका†—वि० [हिं० लपना + लहकना] [वि० स्त्री० लबलहकी] १. किसी वस्तु को देखते ही उसकी ओर लपकनेवाला। अधीर और लालची। २. बिना प्रयोजन सब वस्तुओं को हाथ लगानेवाला। चंचल। चपल।

लबाचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० लबाचह्] कुर्ते आदि के ऊपर पहनने का एक विशेष पहनावा। लबादा। विशेष दे० 'अबा' [को०]।

लबाद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बरसाती कोट [को०]।

लबादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० लबादह्] १. रूईदार चोगा। दगला। २. वह लंबा ढीला पहनावा जो अँगरखे आदि के ऊपर से पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है। अबा। चोगा।

लबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वक्ष। सीना। छाती। २. लोबान [को०]।

लबाब[१]—वि० [अ० लुआब] चेप। लस। लुआब।

लबाब[२]—संज्ञा पुं० [अ० लुबाब] १. सारांश। खुलासा। सार तत्व। २. गूदा। मग्ज। तत्व [को०]।

लबार†—वि०[सं० लपन (= बकन + आर (प्रत्य.)] १. झूठा। मिथ्यावादी। २. गप्पी। प्रपंची। उ०—(क) आजु गए औरहि काहू के रिस पावति कहि बड़े लबार।—सूर (शब्द०)। (ख) तौलौं

लोल लोलुप ललात लालची लबार बार बार लालच धरनि धन धाम को।—तुलसी (शब्द०)। (ग) बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा।—तुलसी (शब्द०)।

लबारी'—संज्ञा स्त्री० [हिं० लबार] झूठ बोलने का काम।

लबारी[2]—वि० १. झूठा। २. चुगुलखोर। उ०—यह पापी अति चोर लबारी। ताहि दीन हम साँसति भारी।—विश्राम (शब्द०)।

लबालब—क्रि० वि० [फ़ा०] मुँह या किनारे तक। छलकता हुआ। जैसे,—(क) यह तालाब भरा है। (ख) प्याला लबालब भरा है।

लबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपड़ा] ईख का रस जो पकाकर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो। राब।

लबूब—संज्ञा पुं० [अ० लुबूब] काम-शक्ति-वर्धक एक पाक [को०]।

यौ०—लबूब कबीर, लबूब सगीर = लबूब नाम का पाक।

लबेचू—संज्ञा पुं० [देश०] जैन वैश्यों की एक जाति। लमेचू।

लबेद—संज्ञा पुं० [सं० वेद का अनु०] १. बेद के विरुद्ध रीति, रूढ़ि वचन या प्रसंग। २. लोकाचार और दंतकथा। (बोलचाल)। जैसे,—वेद में यह सब कुछ नहीं हैं; तुम्हारे लबेद में हों, तो हों।

लबेदा—संज्ञा पुं० [सं० लगुड] [स्त्री० अल्पा० लबेदी] मोटा बड़ा डंडा।

लबेदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लबेदा] १. छोटा डंडा। लाठी। २. डंडे का बल। जबरदस्ती।

लबेरा—संज्ञा पुं० [देश०] लसोड़े का पेड़ या फल। लपेरा।

लब्ध'—वि० [सं०] १. मिला हुआ। पाया हुआ। प्राप्त। २. उपार्जित। कमाया हुआ। ३. भाग करने से आया हुआ फल। (गणित)।

लब्ध[2]—संज्ञा पुं० स्मृति के अनुसार दस प्रकार के दासों में से एक।

लब्धक—वि० [सं०] १. प्राप्त। उपलब्ध। मिला हुआ (को०)। २. पाने वाला। लब्ध करनेवाला।

लब्धकाम—वि० [सं०] जिसकी कामना सिद्ध हो गई हो। जिसका मनोरथ सफल हो गया हो। जिसका मतलब हासिल हो गया हो।

लब्धकीर्ति—वि० [सं० लब्धकीर्त्ति] १. जिसने कीर्ति पाई हो। जिसने यश प्राप्त किया हो। २. विख्यात। प्रसिद्ध। नामवर।

लब्धचेता—वि० [सं० लब्धचेतस्] जिसकी चेतना लौट आई हो। जिसकी बेहोशी दूर हो गई हो [को०]।

लब्धजन्मा—वि० [सं० लब्धजन्मन्] जन्मा हुआ। उत्पादित [को०]।

लब्धतीर्थ—वि० [सं०] जिसने कोई अवसर प्राप्त किया हो लब्धावसर [को०]।

लब्धदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो दूसरे से मिला हो।

लब्धनाम—वि० [सं० लब्धनामन्] जिसने नाम पाया हो। नामवर। प्रसिद्ध।

लब्धनाश—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्त वस्तु का नष्ट हो जाना। २. उपार्जन का विनाश [को०]।

लब्धप्रणाश—संज्ञा पुं० [सं०] पंचतंत्र का एक तंत्र जिसमें प्राप्त का नाश दिखाया गया है।

लब्धप्रतिष्ठ—वि० [सं०] जिसने प्रतिष्ठा पाई हो। प्रतिष्ठित। संमानित।

लब्धप्रत्यय—वि० [सं०] जिसने विश्वास प्राप्त किया हो। विश्वास-भाजन। विश्वसनीय [को०]।

लब्धप्रशमन—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति के अनुसार मिले हुए धन आदि का सत्पात्र को दान। (मनु०)।

लब्धप्रसर—वि० [सं०] स्वच्छंद। अबाधित [को०]।

लब्धप्रसाद—वि० [सं०] प्रियपात्र। स्नेहभाजन [को०]।

लब्धलक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे। २. जिसे अभिप्रेत वस्तु मिल गई हो।

लब्धलक्षण—वि० [सं०] दे० 'लब्धावसर' [को०]।

लब्धलक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लब्धलक्षण'।

लब्धवर—वि० [सं०] जिसने वर प्राप्त किया हो।

लब्धवर्ण—वि० [सं०] विद्वान्। पंडित।

लब्धविद्य—वि० [सं०] विद्वान्। शिक्षित। प्राज्ञ [को०]।

लब्धव्य—वि० [सं०] प्राप्य। पाने के योग्य [को०]।

लब्धशब्द—वि० [सं०] विख्यात। प्रसिद्ध [को०]।

लब्धश्रुत—वि० [सं०] विद्वान्। निष्णात। बहुश्रुत [को०]।

लब्धसंज्ञ—वि० [सं०] दे० 'लब्धचेता'।

लब्धसिद्धि—वि० [सं०] जिसने पूर्णता प्राप्त की हो। दे० 'लब्ध-काम' [को०]।

लब्धांक—संज्ञा पुं० [सं० लब्धाङ्क] गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो। जवाब।

लब्धांतर—वि० [सं० लब्धान्तर] दे० 'लब्धावकाश'।

लब्धा[1]—वि० [सं० लब्धृ] लब्ध करनेवाला। प्राप्त करनेवाला [को०]।

लब्धा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्रलब्धा नायिका।

लब्धातिशय—वि० [सं०] जिसे असाधारण शक्ति प्राप्त हुई हो।

लब्धानुज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसने आज्ञा पा ली हो। २. जो उपनयन में गृहीत ब्रह्मचारी के कर्तव्यों से मुक्त हो [को०]।

लब्धावकाश—वि० [सं०] जिसने कोई अवसर प्राप्त किया हो। जिसे (कार्य का) क्षेत्र या, अवसर मिला हो [को०]।

लब्धावसर—वि० [सं०] दे० 'लब्धावकाश'।

लब्धास्पद—वि० [सं०] कोई सहारा या पद प्राप्त करने योग्य।

लब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। लाभ। २. हिसाब का जवाब। गणित का लब्धांक। भागफल।

लब्धोदय—वि० [सं०] १. जन्मा या उगा हुआ । २. समृद्ध । उन्नतिप्राप्त [को०] ।

लभधर†—संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल के मुँह पर का टेढ़ा भाग।

लभन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लभ्य, लब्ध] १. प्राप्त करना । हासिल करना । पाना । २. गर्भ धारण करना । गर्भवती होना (को०) ।

लभनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'लबनी' ।

लभस—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा बाँधने की रस्सी । पिछाड़ी । २. धन । ३. याचक । माँगनेवाला ।

लभ्य—वि० [सं०] १. पाने योग्य । जो मिल सके । २. न्याययुक्त । उचित । मुनासिब ।

लम—प्रत्य० [हिं० लंबा] लंबा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है । जैसे,—लमतड़ंग ।

लमई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मधुमक्खी का एक भेद । जिसे 'कठयाल' भी कहते हैं ।

लमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जार । उपपति । २. लंपट । विलासी ।

लमकना†—क्रि० अ० [हिं० लपकना] १. लपकना । २. उत्कंठित होना । उ०—सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलैं के लिये, लगनि लगालगी में लमकि लमकि उठै ।—पद्माकर (शब्द०) । ‡३. धीमे (वायु) चलना । शनैः शनैः चलना ।

लमगला—संज्ञा पुं० [देश०] इकतारा । ठिठवा ।

लमगिरदा—संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + फ़ा० गिर्द] लोहे की दानेदार मोटी रेती जिसके दाने कटहल के छिलके के दानों के सदृश होते हैं । यह रेती नारियल के छिलके (खोपड़ी) को रेतने के काम में आती है ।

लमगोड़ा†—वि० [हिं० लंबा + गोड़] जिसकी टाँगें लंबी हों ।

लमघिचा वि० [हिं० लंबा + घींच या घैंचा (= गर्दन)] लंबी गर्दनवाला ।

लमचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो काली चिकनी मिट्टी की जमीन में बहुत पाई जाती है ।

लमछड़ संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + छड़] १. साँग । बरछी । भाला । २. कबूतरबाजों की लग्गी । ३. पुरानी चाल की लंबी बदूक ।

लमछड़²—वि० पतला और लंबा ।

लमछुआ—वि० [हिं० लंबा + छूना] दे० 'लंबोतरा' ।

लमजक—संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] कुश की तरह की एक घास जिसमें सुंदर महक होती है । इसे 'ज्वरांकुश' भी कहते हैं और ज्वर में औषध के रूप में देते हैं । लामज ।

लमज्जुक—संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] दे० 'लमजक' ।

लमटंगा¹— वि० [हिं० लंबा + टाँग] [वि० स्त्री० लमटंगी] जिसकी टाँगें लंबी हों ।

लमटंगा²—संज्ञा पुं० सारस पक्षी ।

लमढींग†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर ।

लमतड़ंग—वि० [हिं० लंबा + ताड़ + अंग [वि० स्त्री० लमतड़ंगी] बहुत लंबा या ऊँचा । जैसे,—लमतड़ंगा आदमी ।

लमधी†—संज्ञा पुं० [देश०] समधी का बाप । उ०—समधी के घर लमधी आयो आयो बहू को भाई —कबीर (शब्द०) ।

लमहा—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'लहमा' ।

लमाना(पु)†¹—क्रि० स० [हिं० लंबा + ना (प्रत्य०)] १. लंबा करना । २. दूर तक आगे बढ़ाना । उ०—कैधों दसकंधर की मीचु मँडराति व्योम कैधों महाकाल कोपि रसना लमाई है ।—रघुराज (शब्द०) ।

लमाना²—क्रि० अ० दूर निकल जाना । चलने में बहुत दूर बढ़ जाना ।

लय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में मिलना या घुसना । प्रवेश । २. एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में इस प्रकार मिलना कि वह तद्रूप हो जाय उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय । विलीन होना । लीनता । मग्नता । ३. चित्त की वृत्तियों का सब ओर से हटकर एक ओर प्रवृत्त होना । ध्यान में डूबना । एकाग्रता । ४. लगन । गूढ़ अनुराग । प्रेम । उ०—मन ते सकल वासना भागी । केवल राम चरण लय लागी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

५. कार्य का अपने कारण में समाविष्ट होना या फिर कारण के रूप में परिणत हो जाना । ६. सृष्टि के नाना रूपों का लोप होकर अव्यक्त प्रकृति मात्र रह जाना । प्रकृति का विरूप परिणाम । जगत् का नाश । प्रलय । उ०—जो संभव, पालन लय कारिनि । निज इच्छा लीला वपु धारिनि ।—तुलसी (शब्द०) । ७, विनाश । लोप । उ०—गो वहेउ हरि बैकुंठ सिधारे । शमदम उनहीं संग पधारे । तप संतोष दया अरु गयो । जान यमादि सबै लय भयो ।—सूर०, १।२६० । ८. मिल जाना । सश्लेष । ९. संगीत में नृत्य, गीत और वाद्य की समता । नाच, गाने और बाजे का मेल ।

विशेष—यह समता नाचनेवाले के हाथ, पैर, गले और मुँह से प्रकट होती है । संगीत दामोदर में हृदय, कंठ और कपाल लय के स्थान माने गए हैं । कुछ आचार्यों ने लय के द्विपदी, लतिका और भल्लिका इत्यादि अनेक भेद माने हैं ।

१०. स्थिरता । विश्राम । ११. मूर्छा । बेहोशी । १२. ईश्वर । ब्रह्म । परमेश्वर (को०) । १३. आलिंगन (को०) । १४. बाण का नीचे की ओर तीव्र गमन (को०) । वह समय जो किसी स्वर को निकालने में लगता है ।

विशेष यह तीन प्रकार का माना गया है । द्रुत, मध्य और विलंबित ।

१६. एक प्रकार का पाटा जिससे वैदिक काल में खेत जोतकर उसकी मिट्टी को सम या बराबर करते थे । इसका उल्लेख शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में है ।

लय²—संज्ञा स्त्री० १. गाने का स्वर । गाने में स्वर निकालने का ढंग । जैसे,—वह बड़ी सुंदर लय से गाता है । २. गीत गाने का ढंग या तर्ज । धुन ।

मुहा० - लय देखना = ठीक लय में गाना।
३. संगीत में सम।

लयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्राम। लय। शांति। २. आश्रय। विश्रामस्थान। ३. आश्रयग्रहण। आड़ लेना। पनाह लेना।

लयनालक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध वा जैन संप्रदाय का मंदिर [को०]।

लयपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नटी। अभिनेत्री [को०]।

लयारंभ—संज्ञा पुं० [सं० लयारम्भ] अभिनेता। नर्तक [को०]।

लयार्क—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलयकालीन सूर्य [को०]।

लयालंभ—संज्ञा पुं० [सं० लयालम्भ] नट। अभिनेता [को०]।

लरⓅ†—संज्ञा स्त्री० [प्रा० लट्ठि] दे० 'लड़'। उ०—नंद के लाल होउ मन मोर। हौं बैठि पोवत मोतियन लर काँकर डारि चले सखि भोर।—सूर (शब्द०)।

लरकईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'लड़काई' या 'लरिकाई' उ०—जदपि हते जोबन नवल मधुर लरकई चारु। पै उत चतुराई अधिक प्रगटन रस व्यवहारु। - हरिश्चंद्र (शब्द०)।

लरकनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० लड़न (= झूलना)] १. लटकना। उ०—चोटी गुही मोती अमल, तिन जानु लौं लर लरकती। मनु शरद वारिद की घटा जल बिंदु अवली ढरकती।—रघुराज (शब्द०)। २. झुकना। ३. खिसककर नीचे आना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

लरकाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० लड़का] दे० 'लड़का'।

लरकानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० लरकना] १. लटकाना। २. झुकाना। ३. नीचे खिसकाना।

लरकिनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़की] दे० 'लड़की'। उ०—बधू लरकिनी पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं।—तुलसी (शब्द०)।

लरखरनाⓅ†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'लरखराना' वा 'लड़खड़ाना'। उ०—दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्ख भर।—तुलसी (शब्द०)।

लरखरनिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लरखराना] १. लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट। २. चलने या खड़े होने में पैर न जमने का भाव। उ०—(क) हरिजू को बाल छबि कहौं बरनि। सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि। ······पुण्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि के नंदघरनि। सूर प्रभु की बसी उर किलकनि ललित लरखरनि।—सूर (शब्द०)।

लरखराना—क्रि० अ० [हिं०] १. झोंका खाना। डगमगाना। डिगना। उ०—(क) धनि जसुमति बड़ भागिनी लिए स्याम खेलावै।···लरखरात गिरि परत है चलि घुटुरुवनि धावै।—सूर (शब्द०)। (ख) रघुनाथ दौरत में दामिनी सी लसति है, गिरति है, फेरि उठि दौरति है लरखराति।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) बेचते लरखराते पैरों से। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४३। २. डगमगाकर गिरना। उ०—गंजेउ सो गरजेउ घोर। धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।—तुलसी (शब्द०)।
३. दे० 'लड़खड़ाना'—३।

लरजना—क्रि० अ० [फ़ा० लरजा (= कंप)] १. काँपना। हिलना। उ०—(क) पात बिनु कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के, परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) चंचला चमाकै चहुँ ओरन ते चाह भरी, चरज गई ती फेर चरजन लागी री। कहै पद्माकर लवंगन की लोनी लता, लरज गई ती फेर लरजन लागी री।—पद्माकर (शब्द०)।

संयो क्रि०—उठना।—जाना।

२. भयभीत होना। दहल जाना। डरना। उ०—(क) शरण राखि ले हो नंदताता। घटा आई गरजि, युवति गई मन लरजि, बीजु चमकति तरजि, डरत गाता।—सूर (शब्द०)। (ख) लाजन हौं लरजों गहिरी बरजों गहिरी कहिरी किहि दाइन।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठना। जाना।—पड़ना।

लरजाँ—वि० [फ़ा० लरज़ाँ] काँपनेवाला [को०]।

लरजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० लर्ज़ह्] १. कंप। कँपकँपी। थरथराहट। २. भूकंप। भूचाल। ३. एक प्रकार का ज्वर जिसमें रोगी का शरीर ज्वर आते ही काँपने लगता है। जूड़ी।

लरजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लरज़िश] काँपने या थरथराने का भाव। कँपकँपी [को०]।

लरझरⓅ‡—वि० [हिं० लड़ + झड़ना] बरसता हुआ। बहुत अधिक परिमाण में प्राप्त। प्रचुर। उ०—लोचन लेति लगाइ ललकि कै लाल सलोनी। लरझर ललित लुनाई ऐसी भई न होनी।—व्यास (शब्द०)।

लरना—क्रि० अ० [हिं० लड़ना] दे० 'लड़ना'। उ०—भाजि गई लरिकाई मनो लरि कै करि कै दुहुँ दुंदुभ औंधे। पद्माकर (शब्द०)।

लरनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] १. युद्ध लड़ाई। उ०—मेरे जिय इई सोच पर्यो। मन के ढंग सुनो री सजनी जैसे, मोहिं निदर्यो। आपुनि गयो संग संग लीन्हें प्रथमहिं इहै कर्यो। मा सों बर प्रीति करि हर सों ऐसी लरनि लर्यो। ज्यों त्यों नैन रहे लपटाने तिनहूँ भेद भर्यो। सुनहु सूर अ नाइ इनहुँ को अब लौं रह्यो डर्यो।—सूर (शब्द०)।
२. युद्ध करने का ढंग। लड़ने का ढब। उ०—लामी लूम लसत लपेटि पटकत भट, देखा देखो लखन लरनि हनुमान की। —तुलसी (शब्द०)।

लराईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] दे० 'लड़ाई'। उ०—(क) जहँ तहँ परे अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) खजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खंजन युग मानो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

लराकⓅ—वि० [हिं० लड़ना लरना + आका (प्रत्य०)] दे० 'लड़ाका'। उ०—लरे लराक लाख महँ एका तीर अचूक चलावै।—संत० दरिया, पृ० ११५।

लराकाⓅ—वि० [हिं०] 'लड़ाका'।

लरिक¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० लरिका] बचपन। उ०—लटकि लटकि खेलत लरिकाई। लरिक समैं जनु भूपन पाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२०।

लरिक²—संज्ञा पुं० [सं० लाल, हिं० लरिका] दे० 'लड़का'। उ०—अबर लरिक की संका पाइ। तासौं ठाढ़ो कितौ लिलाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४७।

लरिकई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका] १. लड़कपन। बाल्यावस्था। उ०—निरखि नवोढ़ा नारि तस छुटत लरिकई लेस। भो प्यारो प्रीतम तियन मानहुँ चलत बिदेस।—बिहारी (शब्द०)। २. लड़कपन की चाल। लड़कों का व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।

३. चपलता। चचलता। उ०—लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति। आज काल्हि में देखियत उर उकसौहीं भाँति।—बिहारी (शब्द०)।

लरिक सलोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका + लोल (= चंचल)] लड़कों का खेल। खेलवाड़।

लरिका†Ⓟ—संज्ञा पुं० [स्त्री० लरिकिनी] दे० 'लड़का'। उ०—(क) देखि कुठार बान धनुधारी। भई लरिकहिं रिस बीरु बिचारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) खेलन को मैं जाउँ नहीं। और लरिकनी घर घर खेलति मोंटी को पै कहत तु ही।—सूर (शब्द०)।

लरिकाईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + आई (प्रत्य०)] १. लड़कपन। बालपन। बाल्यावस्था। उ०—(क) लरिकाई को नेह कहौ सखि कैसे छूटै।—सूर (शब्द०)। (ख) तात कहहुँ कछु करहुँ ढिठाई। अनुचित छमउ जानि लरिकाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) भाजि गई लरिकाई मनौ लरिकै करि कै दुहुँ दुंदुभि औंध।—पद्माकर (शब्द०)। २. लड़कों का व्यवहार या आचरण। ३. चपलता।

लरिकिनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का] दे० 'लड़की'। उ०—तब वह लरिकिनि वाके घर में जैन धर्मं अनाचार भ्रष्ट देखि कै मन में बोहोत दुख करन लागी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३८।

लरिया—संज्ञा पुं० [देश०] उपवस्त्र। दुपटा। दुपट्टा।

लरिकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़की] दे० 'लड़की'। उ०—या लरिकी कौ तुमहीं कहूँ आछौ घर, वर देखिकै यहाँ तै दूरि देस में कहूँ याकौ विवाह करि आओ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २५३।

लरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [प्रा० लट्ठि] दे० 'लड़ी'। उ०—(क) चंपक बरन चरन करि कमलनि दाड़िम दशन लरी। गति मराल अरु बिंब अधर छबि अहि अनूप कबरी। अति करुना रघुनाथ गुसाइँ युग भर जात घरी।—सूरदास प्रभु प्रिया प्रेमबस निज महिमा बिसरी।—सूर (शब्द०)। (ख) कबिरा मोतिन की लरी हीरन को परगास। चाँद सुरज की गम नहीं तहँ दरसन पावै दास।—कबीर (शब्द०)।

लर्ज—संज्ञा पुं० [हिं० लरजना] सितार के एक तार का नाम। यह छह् तारों में पाँचवाँ और पीतल का होता है।

लर्लतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ललन्तिका] १. नाभि तक लटकती हुई माला या हार। २. गोह।

लल¹—वि० [सं०] १. विनोदी। क्रीड़ाप्रिय। २. कंपित। हिलता हुआ। लपलपाता हुआ। जैसे, ललजिह्व। ३. इच्छुक। आकांक्षी [को०]।

लल—संज्ञा पुं० [सं० ललम्] १. शाखा। फुनगी। अंकुर। २. वाटिका। उद्यान [को०]।

ललक—संज्ञा स्त्री० [सं० ललन (= लालसा करना)] प्रबल अभिलाषा। गहरी चाह। उ०—महारानी कौशल्यादिक तुम लिखती बारहिं बारा। दुलहिन दूलह देखव केहि दिन लागी ललक अपारा।—रघुराज (शब्द०)।

ललकना—क्रि० अ० [हिं० ललक + ना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को पाने की गहरी इच्छा करना। लालसा करना। ललचना। उ०—(क) ललकत स्याम, मन ललचात।—सूर (शब्द०)। (ख) ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी (शब्द०)। २. अभिलाषा से पूर्ण होना। चाह की उमग से भरना। उ०—बलकि बलकि बोलत बचन, ललकि ललकि लपटाति।—(शब्द०)।

ललकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना या 'लेले' अनु० + कार] १. युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान। लड़ने के लिये तैयार होकर शत्रु या विपक्षी से पुकारकर कहना कि यदि हिम्मत हो, तो आकर लड़। प्रचारण। हाँक। जैसे,—ललकार सुनकर वह सामने आया। २. किसी को किसी पर आक्रमण करने के लिये पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने का बढ़ावा।

ललकारना—क्रि० स० [हिं० ललकार + ना (प्रत्य०)] १. युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान करना। लड़ने के लिये तैयार होकर विपक्षी से पुकारकर कहना कि हिम्मत हो, तो आ लड़। प्रचारण। हाँक लगना। जैसे,—युद्ध के लिये सुग्रीव ने बालि को ललकारा। २. किसी पर आक्रमण करने के लिये किसी को पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने के लिये उकसाना या बढ़ावा देना। जैसे,—तुम्हारे ललकारने से ही उसकी हिम्मत बढ़ी।

ललचना—क्रि० अ० [हिं० लालच + ना (प्रत्य०)] १. लालच करना। पाने की प्रबल इच्छा करना। प्राप्त करने की अभिलाषा से अधीर होना। २. मोहित होना। आसक्त होना। लुब्ध होना। उ०—मनि मँदिर सुंदर सब साजू। जाहि लखत ललचत सुरराजू।—रघुराज (शब्द०)। ३. किसी बात की प्रबल इच्छा

करना। अभिलाष से अधीर होना। लालसा करना। उ०—तौ मुख चंद निरीछन को ललचै चख चारु चकोर लला के।—दीनदयाल (शब्द०)।

मुहा०—जी ललचना = मन में पाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होना।

ललचाना[१]—क्रि० स० [हिं० ललचना] १. किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। प्राप्ति की अभिलाषा से अधीर करना। लालसा उत्पन्न करना। २. मोहित करना। लुभाना। उ०—चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली हरी अँगिया ललचावै।—पद्माकर (शब्द०)। ३. कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रखकर किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। कोई वस्तु दिखा दिखाकर उसके पाने के लिये अधीर करना। जैसे,—उसे दूर से दिखाकर ललचाना, देना कभी मत।

मुहा०—जी या मन ललचाना = मन मोहित करना। मुग्ध करना। लुभाना। उ०—गली में आय, तान मोहिनी सुनाय, मेरो मन ललचाय भरचो कानन में रस है।—(शब्द०)।

ललचाना(पु)[२]—क्रि० अ० दे० 'ललचना'। उ०—(क) भौंहन चढ़ाय छिनु रहै लखि ललचाय, मुरि मुसुकाय छिन सखी सों लगटि जाय।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) साँझ समै दीप को बिलोकि ललचाय सोऊ लैबे को चहत दोऊ कर को उठावै री।—दीनदयाल (शब्द०)।

ललचौहाँ—वि० [हिं० लालच + औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० ललचौहीं] लालच से भरा। ललचाया हुआ। जिससे प्रबल लालसा प्रकट हो। उ०—(क) खरी खरी मुसुकाति है, लखि ललचौहें लाल।—बिहारी (शब्द)। (ख) चितई ललचौहैं चखनि डटि घूँघट पट माहिं।—बिहारी (शब्द०)।

ललछौंहाँ—वि० [हिं० लाली + छूना] लाली लिए हुए। कुछ कुछ लाल। उ०—आः, समदृष्टि प्रकृति! बिपरासा आँगन में स्वर्गिक स्मिति भर, फूल उठे ये झाड़, ललछौहें मुकुलों में सुंदर।—अतिमा, पृ० १५।

ललजिह्व[१]—वि० [सं०] १. जीभ लपलपाता हुआ। २. भयंकर। खूँखार।

ललजिह्व[२]—संज्ञा पुं० १. कुत्ता। २. ऊँट।

ललडिंब—संज्ञा पुं० [सं० ललडिम्ब] भौंरा। लकड़ी या धातु का बना हुआ एक प्रकार का खिलौना [को०]।

विशेष—यह लट्टू के आकार का होता है। बच्चे इसके बीच की कील में रस्सी लपेटकर इस प्रकार फेंकते हैं जिससे वह देर तक नाचता रहता है।

ललत्—वि० [सं०] १. खेलता हुआ। क्रीड़ारत। २. हिलता डुलता या काँपता हुआ। ३. लपलपाता हुआ। जैसे जीभ [को०]।

यौ०—ललज्जिह्व = ललजिह्व। ललड्डिंब = ललडिंब।

ललताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल] दे० 'लालिमा'। उ०—मुख पर छबि बाढ़ी अधिकाई। गइ पियराइ भई ललताई।—इंद्रा०, पृ० १६३।

ललदंबु—संज्ञा पुं० [सं० ललदम्बु] नीबू का वृक्ष [को०]।

ललदेया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जिसकी फसल अगहन में तैयार होती है।

ललन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्यारा बालक। दुलारा लड़का। २. लड़का। बालक। कुमार। ३. नायक के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—(क) ललन चलन की चित धरी, कल न पलन की ओट।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मानहुँ मुख दिखरावनी दुलहिहिं करि अनुराग। सासु सदन, मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग।—बिहारी (शब्द०)। ४. केलि। क्रीड़ा। ५. जीभ को लपलपाना। जीभ लपलप करना या हिलाना डुलाना (को०)। ६. साल। साखू का पेड़। ७. पियार या चिरौंजी का पेड़। प्रियाल।

ललना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। कामिनी। २. जिह्वा। जीभ। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण और दो सगण होते हैं। उ०—डारत ही सोए मुखरे पलना। चारिउ भैया री सुघरी ललना।—छंदःप्रभाकर (शब्द०)। ४. विलासिनी या कामुक औरत। स्वैरिणी (को०)।

यौ०—ललनाप्रिय = (१) औरतों को प्रिय। जो स्त्रियों को प्रिय हो। (२) स्वादु। स्वादिष्ट। ललनावरूथी = औरतों से घिरा हुआ। महिलाओं से आवृत।

ललनाप्रिय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ह्रीवेर नामक गंधद्रव्य। २. कदंब। कदंब का वृक्ष।

ललनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललना। स्त्री। साधारण स्त्री।

ललनी†[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] बाँस की नली।

ललनी(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० ललन] ललन का स्त्री० रूप। दे० 'ललन'। उ०—झरि झरि झरोखा झाँकि रही ललनी ललना मुख जोहत है।—संत० दरिया, पृ० ६३।

ललरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लता] १. कान का नीचे का लटकता हुआ भाग। २. गले के भीतर लटकता मांसपिंड। घाँटी। कौवा। लंगर।

ललल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] तुतलाहट। हकलाकर बोलना [को०]।

ललहा छठ—संज्ञा स्त्री० [देश०] हलषष्ठी। भाद्रपद कृष्ण षष्ठी जिस दिन स्त्रियाँ देवी का व्रत और पूजन करती हैं और हल के कर्षण से उत्पन्न अन्न नहीं खातीं।

लला—संज्ञा पुं० [सं० ललना। हिं० 'लाल' का रूप] [स्त्री० लली] १. प्यारा या दुलारा लड़का। २. लड़का। कुमार। ३. लड़के या कुमार के लिये प्यार का शब्द। ४. नायक या पति के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—नैन नचाइ कह्यौ मुसुकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर (शब्द०)।

ललाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + आई (प्रत्य०)] लालिमा। सुर्खी। लाली। उ०—(क) रँगीले नैन में औरी ललाई दौरि आई है।—प्रताप (शब्द०)। (ख) लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय।—रामसहाय (शब्द०)।

ललाक—संज्ञा पुं० [सं०] शिश्न। लिंगेंद्रिय।

ललाटंतप[१]—वि० [सं० ललाटन्तप] १. शिर को जलाने या तपानेवाला (सूर्य)। २. अति पीड़ादायक [को०]।

ललाटंतप[२]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०]।

ललाट—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाल। मस्तक। माथा। उ०—नीको लसत ललाट पर टीको जटित जराय। छबिहिं बढ़ावत रवि मनो ससि मंडल में आय।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—ललाट में लिखा होना = भाग्य में होना। किस्मत में होना।

२. भाग्य का लेख। किस्मत का लिखा। जैसे,—जो ललाट में होगा, वही होगा।

ललाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाल। २. दे० 'ललाट'। ३. सुंदर मस्तक [को०]।

ललाटतट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ललाटपटल'।

ललाटपटल—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक का तल। माथे की सतह। उ०—भृकुटि मनोज चाप छबिहारी। तिलक ललाटपटल दुतिकारी।—तुलसी (शब्द०)।

ललाटपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ललाटपटल' [को०]।

ललाटफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ललाटपटल।

ललाटरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपाल का लेख। मस्तक पर ब्रह्मा का किया हुआ चिह्न जिसके अनुसार संसार में प्राणी का सुख या दुःख माना माना जाता है। भाग्यलेख। २. ललाट पर का रेखा। मस्तक पर की लकीर (को०)। ३. मस्तक पर लगाया हुआ रंगीन तिलक (को०)।

ललाटलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ललाटरेखा' [को०]।

ललाटाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जिनके तृतीय नेत्र का ललाट पर होना पुराणों में वर्णित है।

ललाटाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ललाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माथे पर बाँधने का एक गहना। २. माथे पर का टीका। तिलक।

ललाटूल—वि० [सं०] ऊँचे या सुंदर मस्तकवाला [को०]।

ललाट्य—वि० [सं०] ललाट संबंधी। ललाट के योग्य [को०]।

ललाना(पु)—क्रि० अ० [सं० ललन (= लालच करना)] किसी वस्तु को पाने की इच्छा से अधीर होना। लोभ करना। ललचना। लालायित होना। जैसे,—तुम सब कुछ खाते हो, फिर भी ललाते रहते हो। उ०—(क) नीच निरादर भाजत कादर कूकर टूकन हेतु ललाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृस गात ललात जो रोटिन को घरबात घरे खुरपा खरिया।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—'किसी वस्तु को ललाना' ऐसे प्रयोगों में 'को' कर्म का चिह्न नहीं है, 'के लिये' के अर्थ में संप्रदान का चिह्न है।

ललाम[१]—वि० [सं०] १. रमणीय। सुंदर। बढ़िया। उ०—ठाढ़ो रूप ललाम लै सन्मुख मेरे भेट।—शकुंतला, पृ० ६१। २. लाल रंग का। सुर्ख। उ०—स्याम पै ललाम औ ललामन पै स्याम ऐसी सोभा सुभ सुभित है नाना रंग गुल की।—गोपाल (शब्द०)। ३. श्रेष्ठ। बड़ा। प्रधान। ४. मस्तक पर लक्षण से युक्त। चिह्नवाला (को०)।

ललाम[२]—संज्ञा पुं० १. भूषण। अलंकार। गहना। २. रत्न। उ०—रामनाम ललित ललाम कियो लाखन को, बेड़ा कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—चंद्रमाललाम = शिव, जिनका भूषण चंद्रमा है। उ०—चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमाललाम को।—तुलसी (शब्द०)।

३. चिह्न। निशान। ४. दंड और पताका। ध्वज। ५. सींग। शृंग। ६. घोड़ा। ७. घोड़े या गाय के माथे पर का चिह्न। अर्थात् दूसरे रंग का चिह्न। ८. घोड़े का गहना। ९. प्रभाव। १०. घोड़े या सिंह की गर्दन पर का बाल। अयाल। ११. कतार। पंक्ति। श्रेणी (को०)। १२. पुच्छ। दुम (को०)। १३. तिलक। ललाट पर का तिलक (को०)।

ललाम[३]—संज्ञा पुं० [सं० ललामन्] १. आभूषण। साज सज्जा। २. अपने वर्ग में उत्कृष्टतम वस्तु। ३. सांप्रदायिक चिह्न या तिलक। ५. दे० 'ललाम'—४ और १२।

ललामक—संज्ञा पुं० [सं०] माथे में लपेटने की माला।

ललामी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान में पहनने का एक गहना।

ललामी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० ललाम + ई (प्रत्य०)] १. सुंदरता। २. लालिमा। लाली। सुर्खी।

ललार—संज्ञा पुं० [सं० ललाट] ललाट। लिलार। उ०—इसके ललार की खाल सिकुड़ गई थी, दाँत और ओंठ दोनों बदरंग पड़ गए थे।—श्यामा०, पृ० १४५।

ललित[१]—वि० [सं०] १. सुंदर। मनोहर। २. ईप्सित। मनचाहा। प्यारा। ३. हिलता डोलता हुआ। चलता हुआ। ४. निर्दोष। सरल (को०)। ५. क्रीडाशील। विनोदी (को०)। ६. रसिक। रसिया (को०)।

ललित[२]—संज्ञा पुं० १. शृंगार रस में एक कायिक हाव या अंगचेष्टा।

विशेष—इसमें सुकुमारता (नजाकत) के साथ भौं, आँख, हाथ, पैर आदि अंग हिलाए जाते हैं। कहीं भूषण आदि से सजाने को ललित हाव कहा है।

२. एक विषम वर्णवृत्त जिसके पहले चरण में सगण, जगण, सगण, लघु; दूसरे चरण में नगण, सगण, जगण, गुरु; तीसरे में नगण, नगण, सगण, सगण; और चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण होता है। जैसे,—सब त्यागिए असत काम। शरण गहिए सदा हरी। भव जानित सकल दुःख टरी। भजिए अहोनिशि हरी, हरी, हरी। ३. कुछ आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें वर्ण्य वस्तु (बात) के स्थान पर उसका प्रतिबिंब वर्णन किया जाता है। जैसे,—कहना तो यह था कि 'राम को गद्दी मिलनी चाहिए थी, पर बनवास मिला।' पर गोस्वामी तुलसीदास जी इसे इस प्रकार कहते हैं—(क) लिखत

सुधाकर लिखि गा राहू। इसी प्रकार 'जिसे ब्रह्मा अच्छा बनाना चाहते थे, उसे बुरा बना दिया' इसके स्थान पर यह कहना—(ख) बिरचत हंस काक किय जेही। ४. षाड़व जाति का एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है और जिसमें निषाद स्वर नहीं लगता; तथा धैवत और गांधार के अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय रात्रि के तीस दंड बीत जाने पर अर्थात् प्रातःकाल है। ५. नृत्य में हाथों की एक विशेष मुद्रा (को०)। ६. क्रीड़ा। विनोद (को०)। ७. सौंदर्य। लावण्य। सुंदरता (को०)।

ललितईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० ललित+ई (प्रत्य०)] सौंदर्य। दे० 'ललिताई'। उ०—लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय। दरसो सारस रस भरे दृग आदरस मँगाय।—रामसहाय (शब्द०)।

ललितक संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक तीर्थ का नाम।

ललित कला—संज्ञा स्त्री० [सं० ललित+कला] वे कलाएँ या विद्याएँ जिनके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौंदर्य की अपेक्षा हो। जैसे, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला इत्यादि। विशेष दे० 'कला'।

ललितकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० ललितकान्ता] दुर्गा।

ललितपद[१]—वि० [सं०] जिसमें सुंदर पद या शब्द हों।

ललितपद[२]—संज्ञा पुं० एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १२ के हिसाब से २८ मात्राएँ होती हैं। इसे सार, नरेंद्र और दोवे भी कहते हैं। जैसे,—प्रात समय उठि जनक नंदिनी त्रिभुवननाथ जगावै।

ललितपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का 'ललितविस्तर' नामक ग्रंथ जिसमें बुद्ध का चरित्र वर्णित है।

ललितप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] हलका या मृदु आघात। प्यार से मारना [को०]।

ललितप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल [को०]।

ललितललित—वि० [सं०] अति सुंदर। सुंदरतम।

ललित लुलित—वि० [सं०] कंपित, हतोत्साह या दुर्बल होने पर भी सुंदर [को०]।

ललितलोचन—वि० [सं०] सुंदर आँखोंवाला। प्रिय नेत्रोंवाला [को०]।

ललितवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री। रूपवती स्त्री [को०]।

ललितविस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ललितपुराण'।

ललितव्यूह -संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्ध शास्त्र के अनुसार एक समाधि। २. एक बोधिसत्व का नाम।

ललिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं। जैसे—तैं भाजि री अलि छिपी फिरै कहाँ। तूही बता थल हरी नहीं जहाँ। २. पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि के अनुसार राधिका की प्रधान आठ सखियों में से एक। ३. एक रागिनी जो संगीतदामोदर और हनुमत के मत से मेघ राग की और सोमेश्वर के मत से बसंत राग की पत्नी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स ग म ध नि स अथवा स रे ग म प ध नि स (प्रथम); ध नि स ग म ध (द्वितीय) ४. कस्तूरी। ५. पुराणोक्त एक नदी।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब निमि राजा के शाप से वशिष्ठ देहहीन हो गए, तब उन्होंने कामरूप देश में संध्याचल पर्वत पर घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें वर दिया। वर के प्रभाव से वशिष्ठ ने एक अमृतकुंड बनाया। उसी अमृतकुंड के पूर्व ललिता नाम की एक मनोहर नदी है, जिसे शिव जी ले आए थे। वैशाख शुक्ल ३ को इसमें नहाने का बड़ा फल है।

६ महिला। कामिनी। सुंदरी स्त्री (को०)। ७. दुर्गा का एक नाम (को०)।

यौ०—ललितापंचमी। ललितापष्ठी। ललितासप्तमी।

ललिताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ललित+आई (प्रत्य०)] सुंदरता। सौंदर्य। उ०—(क) दक्षभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुकवि लली के यों ललिताई लहलहात तन।—सुकवि (शब्द०)।

ललितापंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० ललितापञ्चमी] आश्विन महीने की शुक्ला पंचमी जिसमें ललिता देवी (पार्वती) की पूजा होती है।

ललिताभिनय—वि० [सं०] उत्तम या उत्कृष्ट अभिनय करनेवाला [को०]।

ललितार्थ—वि० [सं०] ललित अर्थ से युक्त या सुंदर (काव्य)। (रचना) जो शृंगार रसात्मक हो [को०]।

ललितापष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण षष्ठी। भादों बदी छठ, जिस तिथि को स्त्रियाँ पुत्र की कामना से या पुत्र के हितार्थ ललितादेवी (पार्वती) का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं। पूजन कुश और पलाश की टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ाकर होता है।

ललितासप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी सप्तमी। भाद्र शुक्ल सप्तमी।

ललितोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, तुल्य, लौं, इव आदि के वाचक पद न रखकर ऐसे पद लाए जाते हैं, जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं। जैसे,—साहि तनै सरजा सिवा की सभा जामधि है मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामें नखतावली सों बहस दीपावली करति है।—भूषण (शब्द०)।

ललिया†—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+इया (प्रत्य०)] लाल रंग का बैल।

लली—संज्ञा स्त्री० [हिं० लला] १. लड़की के लिये प्यार का शब्द। २. दुलारी लड़की। लाड़ली लड़की। जैसे, - वृषभानु लली,

जनक लली। ३. नायिका के लिये प्यार का शब्द। प्रेयसी। प्रेमिका।

ललीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ। (महाभारत)।

ललौहाँ—वि० [हिं० लाल + औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० ललौंही] सुर्खी मायल। ललाई लिए हुए। उ०—लाल लिलार लला को लखे गए लोचन ह्वै ललना के ललौ हैं।—(शब्द०)।

लल्लर—वि० [सं०] हकला हकलाकर बोलनेवाला [को०]।

लल्ला संज्ञा पुं० [हिं० लाल; लला] [स्त्री० लल्ली] १. लड़के या बेटे के लिये प्यार का शब्द। (पश्चिम)। २. दुलारा लड़का।

लल्लो—संज्ञा स्त्री० [सं० ललन] जीभ। जिह्वा। जबान।

लल्लो चप्पो—संज्ञा स्त्री० [सं० लल (=जीभ इधर उधर डोलना) + अनु० चप] चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसी को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। ठकुरसुहाती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लल्लो पत्तो—संज्ञा स्त्री० [सं० लल + पत] दे० 'लल्लो चप्पो'। उ०—(क) तुमको हमारे ऊपर कुछ शक है, तो इसमें लल्लो पत्तो काहे का है ? —बालकृष्ण भट्ट (शब्द०)। (ख) लल्ला पत्ता और जाहिरदारी इसे आती ही न थी।—बालकृष्ण भट्ट (शब्द०)।

लल्लू लाल—संज्ञा पुं० [हिं०] हिंदी गद्य के आरंभिक लेखकों में प्रमुख लेखक। इनका समय सन् १८२० से १८८५ तक है। हिंदी गद्य में प्रेमसागर, बैताल पचीसी, माधवविलास, सिंहासन बतीसी आदि इनकी रचनाएँ है।

ललहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा या घास जिसका साग खाया जाता है।

लवंक—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्क] एक प्रकार का वृक्ष [को०]।

लवंग—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्ग] १. मलक्का द्वीप, जंजिबार तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक पेड़ जिसकी सूखी कलियाँ मसाले और दवा के काम में आती हैं। विशेष—दे० 'लौंग'। २. उक्त वृक्ष की सूखी कली।

लवंगक—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्गक] लौंग [को०]।

लवंगकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लवङ्गकलिका] लौंग का फूल। लौंग [को०]।

लवंगपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्गपुष्प] देवकुसुम। लौंग।

लवंगलता—संज्ञा स्त्री० [सं० लवङ्गलता] १. लौंग का पेड़ या उसकी शाखा।

विशेष—यद्यपि 'लौंग' के बड़े बड़े पेड़ होते हैं जो बीस बरस तक खड़े रहते हैं, तथापि भारतीय कविसंप्रदाय में 'चूत लता' आदि के समान 'लवंगलता' शब्द का भी व्यवहार होता है। ऐसे स्थलों में लता का अर्थ शाखा या टहनी ही लेना चाहिए।

२. राधिका की एक सखी का नाम। ३. प्रायः समोसे के आकार की एक बँगला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लौंग खोंसा हुआ होता है और जिसके अंदर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।

लवंगादि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्गादि चूर्ण] वैद्यक में एक प्रसिद्ध चूर्ण जो संग्रहणी, अतिसार आदि में दिया जाता है।

विशेष—लौंग, मोथा, मोचरस, जीरा, धाय के फूल, लोध, इंद्रजौ, सुगधवाला, जवाखार, सेंधा नमक और रसांजन बराबर लेकर पीस डाला जाता है। इसकी मात्रा दस रत्ती से बीस रत्ती तक है।

लवगादि वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० लवङ्गादि वटी] वैद्यक में लवंग के योग से निर्मित एक गोली।

लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत थोड़ी मात्रा। बहुत छोटी मिकदार। अत्यंत अल्प परिमाण।

मुहा०—लवभर = थोड़ा सा। नाम मात्र को। जैसे,—उसे लव भर भी डर नहीं है।

२. काल का एक मान। दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेष का अल्प समय। (कुछ लोग एक निमेष के आठवें भाग को लव मानते हैं)। उ०—लव निमेष परिमान जुग वर्ष कलपसत चंड।—तुलसी (शब्द०)। ३. लवा नाम की चिड़िया। ४. जातीफल। ५. लवंग। ६. लामज्जक, ज्वरांकुश नाम का तृण। ७. काटना। छेदना। कटाई। ८. विनाश। ९. ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियों के शरीर से कतर कर निकाले जाते हैं। १०. सुरागाय की पूँछ के बाल, जो चँवर बनाने के लिये कतरे जाते हैं। ११. श्रीरामचंद्र के दो यमज पुत्रों में से एक।

विशेष—जब लोकापवाद के कारण राम ने सीता जी को गर्भावस्था में वन में भेजवा दिया था, तब वहीं वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश इन दो जोड़ुएँ पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। वाल्मीकि ऋषि ने इन्हें रामायण का गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचंद्र की सभा में जाकर वह गान सुनाया, तब राम ने उन्हें पहचाना।

लवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौनो या लवाई करनेवाला। फसल काटनेवाला किसान। २. एक द्रव्यविशेष [को०]।

लवकना—क्रि० अ० [सं० अवलोकन] लौकना। दिखाई पड़ना। झलकना।

लवढ़ना—क्रि० स० [हिं० लिपटना] लिपटना। उ०—ज्यौं मैं खोले किवार त्यौं ही आनि लवढ़ि गौ गरें।—घनानंद, पृ० २८९।

लवण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नमक। लोन। विशेष—दे० 'नमक'। २. काटना। काटने की क्रिया। लवना (को०)। ३. खड्गयुद्ध का एक प्रकार (को०)। ४. वस्तु जिससे लवाई की जाय। काटने की वस्तु हँसिया आदि (को०)। ५. एक असुर जो मधु दानव का पुत्र था और जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। विशेष दे० 'लवणासुर'। ६. एक नरक का नाम (को०)। ७. पुराणोक्त

सात समुद्रों में से एक। खारे पानी का समुद्र। विशेष दे० 'लवणसमुद्र'।

लवण[2]—वि० [सं०] १. नमकीन। खारा। २. जिससे काटा जाय। काटनेवाला (को०)। ३. लावण्ययुक्त। सलोना। सुंदर।

लवणकिंशुका—संज्ञा स्त्री० [सं० लवणकिंशुका] महाज्योतिष्मती लता [को०]।

लवणक्रतक—संज्ञा पुं० [सं०] नमक का व्यापारी [को०]।

लवणक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊख के रस से बनाया हुआ एक प्रकार का द्रव्य। २. एक प्रकार का नमक [को०]।

लवणजल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र [को०]।

यौ०—लवणजलोद्भव = शंख। शुक्ति।

लवणतृण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमलोनी घास जिसका साग खाते हैं। लोनी। लोनिया। २. कुलफा नामक साग।

लवणत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में तीन प्रकार के नमकों का समूह, सैंधव, विट् और रुचक (सौवर्चल)।

लवणधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का वराहपुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

विशेष—गोबर से लिपे स्थान में कुश के आसन पर सोलह प्रस्थ नमक का एक ढोंका रखे और उसे गाय के रूप में कल्पित करे। चार प्रस्थ और नमक पास में रखकर उसे उस गाय का बछड़ा माने। फिर चार गन्ने रखकर चार पैर, सोना रखकर सींग, चाँदी रखकर खुर, गुड़ या स्वर्ण रख कर मुँह, फल रखकर दाँत, चीनी रखकर जीभ, गंधद्रव्य रखकर नाक, रत्न रखकर नेत्र, पत्र रखकर कान, मक्खन रखकर स्तन, तागा रखकर पूँछ, ताँबे का पत्तर रखकर पीठ, कुश रखकर रोएँ और काँसा रखकर दोहनी कल्पित करे। फिर यथाविधि पूजन करके सब चीजें दान कर दे।

लवणपाटलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नमक की पोटली या थैली [को०]।

लवणप्रगाढ़—वि० [सं०] जिसमें अत्यधिक नमक हो। जिसमें बहुत तेज नमक मिला हो।

लवणभास्कर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध चूर्ण जिसमें तीनों नमक और अन्य कई औषधियाँ पड़ती हैं और जो पेट की अपच आदि बीमारियों में दिया जाता है।

लवणमद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक। क्षार नमक [को०]।

लवणमेद—संज्ञा पुं० [सं०] खारी नमक।

लवणमेह—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्रमेह रोग का एक भेद जिसमें पेशाब के साथ लवण के समान स्राव होता है।

लवणयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० लवणयन्त्र] दो मुहँड़ेदार बरतनों के मुँह जोड़कर बनाया हुआ एक यंत्र जिसमें कुछ औषधियों का पाक होता है। इनमें से एक बरतन में नमक भर दिया जाता है।

लवणवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुश द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष या खंड।

लवणव्यापत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों की एक प्रकार की गहरी पीड़ा जो अधिक नमक खाने से होती है।

लवणशाक—संज्ञा पुं० [सं०] लवण द्वारा संचित वस्तु। संधान। अचार [को०]।

लवणसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] खारे पानी का समुद्र।

विशेष—यह पुराणोक्त सात समुद्रों में से एक है। पुराणों में तो सातो समुद्रों की उत्पत्ति सागर के पुत्रों के खोदने से या प्रियव्रत राजा के रथ के चलने से बताई गई है; पर ब्रह्मवैवर्त में लिखा है कि श्रीकृष्ण की एक पत्नी विरजा के गर्भ से सात पुत्र हुए, जो सात समुद्र हुए। इनमें से एक पुत्र के रोने के कारण थोड़ी देर के लिये कृष्ण का वियोग हो गया। इसपर विरजा ने उसे शाप दिया कि 'तू लवण समुद्र होगा और तेरा जल कोई न पीएगा'। यह कथा बहुत पीछे की कल्पित जान पड़ती है।

लवणांतक—संज्ञा पुं० [सं० लवणान्तक] १. लवणासुर को मारनेवाले शत्रुघ्न। २. नीबू।

लवणांबुराशि—संज्ञा पुं० [सं० लवणाम्बुराशि] समुद्र [को०]।

लवणांभ—संज्ञा पुं० [सं० लवणाम्भस्] समुद्र। सागर [को०]।

लवणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। आभा। २. महाज्योतिष्मती लता। ३. चुक्र। ४. चँगेरी। ५. अमलोनी शाक। ६. एक नदी का नाम। लूनी।

लवणाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नमक की खान। २. समुद्र। ३. (लाक्ष०) सुंदरता का खान। उ०—उसकी (स्थायी भाव) अवस्था लवणाकर के समान होती है।—रस क०, पृ० ११।

लवणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का मत्स्यपुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

लवणाब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] नमक का समुद्र [को०]।

लवणापण—संज्ञा पुं० [सं०] नमक का हाट या बाजार [को०]।

लवणालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। लवणाकर। २. लवणासुर की बसाई हुई मधुपुरी जो पीछे मथुरा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

लवणासुर—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक असुर का पुत्र जो मथुरा में रहता था और जिसे रामचंद्र की आज्ञा से शत्रुघ्न ने मारा था।

विशेष—रामायण में इसकी कथा इस प्रकार है। सत्ययुग में दैत्य कुल में लोला के गर्भ से 'मधु' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने घोर तप द्वारा शिव को प्रसन्न करके उनसे एक शूल प्राप्त किया। फिर दूसरी बार तप करके उसने शिव से यह वर माँगा कि वह शूल कुल में सदा बना रहे। शिव ने ऐसा वर न देकर यह वर दिया कि शूल तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को मिलेगा। विश्वावसु की कन्या अनला के गर्भ से कुंभीनसी नाम की एक कन्या थी। मधु ने उसके साथ विवाह किया, और उसी के गर्भ से लवणासुर उत्पन्न हुआ। शूल पाकर वह अवध्य हो गया और अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा। जब रामचंद्र जी राजा हुए, तब ऋषियों ने

जाकर उनकी दुहाई दी। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न उसे मारने गए, और जिस समय उसके हाथ में शूल नहीं था, उस समय उसे मारा।

लवणित—वि॰ [सं॰] लवणयुक्त। नमकीन। नमक मिलाया हुआ [को॰]।

लवणिमा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ लवणिमन्] १. लवणयुक्त होना। नमकीनी। २. सलोनापन। सौंदर्य। लावण्य [को॰]।

लवणोत्कट—वि॰ [सं॰] दे॰ 'लवणप्रगाढ़' [को॰]।

लवणोत्तम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सेंधा नमक, जो सब नमकों से अच्छा माना जाता है। २. यवक्षार। जवाखार (को॰)।

लवणोत्था—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ज्योतिष्मती लता।

लवणोद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'लवणोदक' [को॰]।

लवणोदक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नमक मिला हुआ पानी। २. क्षार समुद्र। ३. समुद्र। सागर (को॰)।

लवणोदधि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] लवणसमुद्र। लवणोदक।

लवन[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ लवनीय, लव्य] १. काटना। छेदना। २. खेत की कटाई। लुनाई। ३. खेत काटने की मजदूरी में दिया हुआ अन्न। लौनी। ४. खेत की कटाई या लुनाई करने का औजार हँसिया [को॰]।

लवन(पु)[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ लवण] नमक। उ॰—इम नीर महि गरि जाय लवनं एकमेकहि जानिए।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५५।

लवना[1]—क्रि॰ स॰ [सं॰ लवन, हिं॰ लुनना] पके हुए अन्न के पौधों को खेतों से काटकर एकत्र करना। लुनना। उ॰—तुलसी यह तन खेत है, मन बच करम किसान। पाप पुन्य द्वै बीज हैं बोवै सो लवै निदान।—तुलसी (शब्द॰)।

लवना(पु)†[2]—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ लप या लौ] दीप्त होना। चमकना। उ॰—चटक चोप चपला हिय लवै। सबही दिस रस प्यासनि तवै।—घनानंद, पृ॰ १८७।

लवना[3]—वि॰ [सं॰ लवण] दे॰ 'लोना'।

लवनाई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ लावण्य] लावण्य। सुंदरता।

लवनि†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ लवन] १. खेत में अनाज की पकी फसल की कटाई। लुनाई। २. वह अन्न जो मजदूरी में दिया जाता है। उ॰—तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जात कही री। रूप रासि विरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।—तुलसी (शब्द॰)।

लवनी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शरीफे का पेड़ या फल।

लवनी†[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ लवन] १. दे॰ 'लवनि'। २. औजार जिससे खेत की लुनाई की जाती है। हँसिया।

लवनी†[3]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नवनीत] नवनीत। मक्खन।

लवनीय—वि॰ [सं॰] लुनाई करने लायक। काटने योग्य [को॰]।

लवर†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लपट] अग्नि की लपट। ज्वाला। उ॰—नारी गारी देत रावनहिं जरत लवर की झाग।—देवस्वामी (शब्द॰)।

लवलासी†(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लव (=प्रेम)+लासी (=लसी, लगाव)] प्रेम की लगावट।

लवली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. हरफारेवरी नाम का पेड़ और उसका फल जो खाया जाता है। २. एक विषम वर्णवृत्त जिसके प्रथम चरण में १६, दूसरे चरण में १२, तीसरे चरण में ८ और चौथे चरण में २० वर्ण होते हैं। जैसे,—दनुज कुल अरि जग हित धरन धर्ता। साँचो अहहि प्रभु जगत भर्ता। रामा असुर सुहर्ता। सरबस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्ता।

लवलीन—वि॰ [हिं॰ लय+लीन] तन्मय। तल्लीन। मग्न। उ॰—(क) अधर मधुर मुसुकान मनोहर कोटि मदन मन हीन। सूरदास जहँ दृष्टि परत है होत तहीं लवलीन।—सूर (शब्द॰)। (ख) जय जय धुनि मुनि करत अमर गन नर नारी लवलीन।—सूर (शब्द॰)। (ग) अरु जे विषयन के आधीना। तिनके उधम में लवलीना।—विश्राम (शब्द॰)।

लवलेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अत्यंत अल्प मात्रा। बहुत थोड़ी मिकदार। २. जरा सा लगाव। अल्प संसर्ग। जैसे,—इस दूध में पानी का लवलेश नहीं है।

लवलेस(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ लवलेश] दे॰ 'लवलेश'। उ॰—(क) जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।—मानस, ६।२१। (ख) जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हू।—मानस, ७।१३०।

लवहरा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक साथ उत्पन्न दो बालक। यमज। जोड़वाँ।

लवा[1]†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ लाजा] अनाज का दाना जो भूनने से फूल गया हो। भुने हुए धान या ज्वार की खील। लावा। उ॰—मिलि माधवी आदिक फूल के ब्याज बिनोद लवा बरसायो करैं।—द्विजदेव (शब्द॰)।

लवा[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ लव] तीतर की जाति का एक पक्षी जो तीतर से बहुत छोटा होता है। उ॰—बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी (शब्द॰)।

विशेष—यह तीतर की तरह जमीन पर अधिक रहता है। पंजे बहुत लंबे होते हैं। नर और मादा में देखने में कोई भेद नहीं होता। मादा भूरे रंग के अंडे देती है। जाड़े के दिनों में इस चिड़िया के झुंड के झुंड झाड़ियों और जमीन पर दिखाई पड़ते हैं। यह दाना और कीड़े खाता है।

लवाई[1]—वि॰ स्त्री॰ [देश॰] हाल की ब्याई हुई गाय। वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। उ॰—(क) पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई। बालबच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं।—तुलसी (शब्द॰)।

लवाई[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लवना+आई (प्रत्य॰)] १. खेत की फसल की कटाई। लुनाई। २. फसल कटाई की मजदूरी।

लवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हँसिया। २. कटाई का काम। ३. काटनेवाला [को०]।

लवाजमा—संज्ञा पुं० [अ० लवाज़िम, लवाज़िमा] १. किसी के साथ रहनेवाला दल बल और साज सामान। साथ में रहनेवाली भीड़भाड़ या असबाब। जैसे,—इतना लवाजमा साथ लेकर क्यों परदेश चलते हो? २. आवश्यक सामग्री। सामान जो किसी बात के लिये जरूरी हो। जैसे,—सब लवाजमा इकट्ठा कर लो, तब तस्वीर में हाथ लगाओ।

लवाजमात—संज्ञा पुं० [अ० लवाज़मात] लवाजिम का बहुवचन। सामग्री। उपकरण।

लवाणक—संज्ञा पुं० [सं०] हँसिया [को०]।

लबारा†—संज्ञा पुं० [हिं० लबाई] गौ का बच्चा। बछड़ा।

लवासी(पु)†—वि० [सं० लप, या लव (=बकना) + आसी (प्रत्य०)] १. बकवादी। गप्पी। झूठा। २. लंपट। उ०—काहे दियो सूर सुख में दुःख कपटी कान्ह लवासी।—सूर (शब्द०)।

लवि¹—वि० [सं०] तेज धारवाला। काटने में तेज।

लवि²—संज्ञा स्त्री० लवित्र। हसिया [को०]।

लवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] काटने का औजार। दाव। हँसिया [को०]।

लवेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न। अनाज [को०]।

लवोपल—संज्ञा पुं० [सं०] ओला। बर्फ का टुकड़ा।

लश—संज्ञा पुं० [सं०] गोंद [को०]।

लशकर—संज्ञा पुं० [फा०] १. सेना। फौज। योद्धाओं का दल। २. मनुष्यों का भारी समूह। भीड़भाड़। दल। जैसे,—इतना बड़ा लशकर क्यों साथ लेकर चलते हो? ३. फौज के टिकने का स्थान। सेना का पड़ाव। ४. जहाज में काम करनेवालों का दल। जहाजी आदमी।

यौ०—लशकर आरा=(१) सेना सज्जित करनेवाला। (२) सेना के साथ सामना करनेवाला। लशकर आराई—(१) युद्धार्थ सेना का व्यूहन। (२) सेना लेकर मुकाबला करना। लशकरकशी=चढ़ाई। धावा। आक्रमण। लशकरगाह=शिविर। छावनी।

लशकरी—वि० [फ़ा० लशकर] १. फौज का। सेना संबंधी। सेना से संबंध रखनेवाला। २. जहाज पर काम करनेवाला। खलासी। जहाजी। ३. जहाज से संबंध रखनेवाला।

लशकरी—संज्ञा पुं० १. सैनिक। सिपाही। २. जहाजी आदमी। ३. जहाजियों या खलासियों की भाषा।

यौ०—लशकरी कोश=जहाजियों की बोलचाल की भाषा का एक कोशग्रंथ।

लशकारना—क्रि० स० [अ० लश्कर] शिकारी कुत्तों को शिकार पकड़ने के लिये पुकारकर बढ़ावा देना। लहकारना। (शिकारी)।

लशुन, लशून—संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

लषण—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा। इच्छा। आकांक्षा [को०]।

लषन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] दे० 'लखन'।

लषन²—संज्ञा स्त्री० [हिं० लखना] लखने की क्रिया या भाव।

लषना—क्रि० स० [सं० लक्ष] दे० 'लखना'।

लषित—वि० [सं०] वांछित। अभिलषित [को०]।

लष्ष(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] लाख की संख्या।

लष्ष²—संज्ञा पुं० [सं०] नट। नाचनेवाला। नर्तक। अभिनेता [को०]।

लष्षन—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] दे० 'लक्खन'।

लस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिपकने या चिपकाने का गुण। श्लेषण। चिपचिपाहट। २. वह जिसके लगाव से एक वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। लासा। ३. चित्त लगने की बात। आकर्षण। जैसे,—वहाँ कुछ लस है; तभी वह नित्य जाता है।

लस²—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्त चंदन। २. ऊँट का ज्वर [को०]।

लस³—वि० [सं०] १. चमकता हुआ। शोभित। २. इधर उधर हिलता हुआ। कंपित [को०]।

लसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाचनेवाला। नर्तक। २. एक वृक्ष का नाम (को०)।

लसकर—संज्ञा पुं० [फ़ा० लशकर] दे० 'लशकर'। उ०—बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरो दुहाई।—पलटू०, भा० १, पृ० ६।

लसदंशु—वि० [सं०] दीप्त या चमकीली किरणोंवाला, जैसे, सूर्य [को०]।

लसदार—वि० [हिं० लस + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें लस हो। जिसमें चिपकने या चिपकाने का गुण हो। गोंद की तरह का। लसीला।

लसना¹—क्रि० स० [सं० लसन] एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटाना कि वह अलग न हो। चिपकाना। जैसे,—इस कागज को किताब पर लस दो।

संयो० क्रि०—देना।

लसना(पु)²—क्रि० अ० १. शोभित होना। छजना। फबना। २. विराजना। विद्यमान होना। उ०—(क) लसत चारु कपोल दुहुँ बिच सजल लोचन चारु।—सूर (शब्द०) (ख) तहँ राजत दसरथ लसैं देव देव अनूप।—केशव (शब्द०)।

लसनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लसना] १. स्थिति। विद्यमानता। २. शोभित होने की क्रिया या भाव। शोभा। छटा। उ०—कहत ही बातें श्री गोपाललाल जू सों बाल सुने खरिका में खरी माधुरी लसनि सों।—रघुनाथ (शब्द०)।

लसम—वि० [देश०] जो खरा और चोखा न हो। दागी। दूषित। खोटा। जैसे,—लसम सोना। उ०—और भूप परखि कै ताइके सुलाखि लेत लसम को खसम तुही पै दशरत्थ के।—तुलसी (शब्द०)।

लसरका—संज्ञा पुं० [सं० लग्ना या लस्तगा] संबंध। लगाव। ताल्लुक। (लखनऊ)।

लसलसा—वि० [हिं० लस] [वि०स्त्री० लसलसी] लसदार। चिपचिपा। जो गोंद की तरह चिपकनेवाला हो।

लसलसाना—क्रि० अ० [अनु०] गोंद या लसदार चीज की तरह चिपकना। चिपचिपाना।

लसलसाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लसलसा] लसदार होने का भाव। चिपक। चिपचिपाहट।

लसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी। २. केशर (को०)।

लसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाला। थूक।

लसित—वि० [सं०] १. लसता हुआ। शोभित। २. व्यक्त। स्थित। प्रकट। ३. जो क्रीड़ा कर रहा हो। क्रीड़ाशील [को०]।

लसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] १. लस। चिपचिपाहट। २. दिल लगने की वस्तु। आकर्षण। जैसे,—वह कुछ लसी पाकर वहाँ जाता है। ३. लाभ का योग। फायदे का डौल। जैसे,—बिना लसी के आप क्यों कहीं जाने लगे। ४. संबंध। लगाव। मेलजोल। जैसे,—ऐसे आदमी से लसी लगाना ठीक नहीं।

क्रि० प्र०—लगाना।

५. दूध और पानी मिला शरबत।

लसीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माँस और चमड़े के बीच में रहनेवाला रस या पानी। २. लाला। ३. पीव (को०)। ४. मांसपेशी (को०)। ५. ऊख का रस। इक्षुरस (को०)।

लसीला—वि० [हिं० लस + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लसीली] १. लसदार। जिसमें लस हो। जिसके लगाने से कोई वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। चिपचिपा। २. सुंदर। शोभायुक्त। उ०—लाड़ लड़ीली रस बरसीली लसीली हँसीली सनेहसगमगी। —घनानंद, पृ० ४४७।

लसुन—संज्ञा पुं० [सं० लशुन] दे० 'लहसुन'।

लसुनिया—संज्ञा पुं० [हिं० लहसुन] दे० 'लहसुनिया'।

लसुप—वि० [सं०] चमकदार। दीप्त। चमकीला [को०]।

लसोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लस (=चिपचिपाहट)] एक प्रकार का छोटा पेड़। सपिस्ताँ। श्लेष्मांतक। लसोढ़ा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं। यह बसंत में पत्तियाँ झाड़ता है; और हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। फल में बहुत ही लसदार गूदा होता है। यह फल औषध के काम में आता है और सूखी खाँसी को ढीली करने के लिये दिया जाता है। फारसी में इसे सपिस्ताँ कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिलाकर इसका अवलेह (चटनी) बनाते हैं, जो खाँसी में चाटने के लिये दिया जाता है। संस्कृत में भी इसे श्लेष्मांतक कहते हैं। इसका अचार भी बनता है।

लसोढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लसोड़ा'।

लसौटा—संज्ञा पुं० [हिं० लासा + औटा (प्रत्य०)] बाँस का चोंगा जिसमें बहेलिए चिड़िया फँसाने का लासा रखते हैं।

लस्टम पस्टम—क्रि० वि० [देश०] १. धीरे धीरे। २. किसी न किसी तरह से। अच्छी तरह या पूरे सामान के साथ नहीं। जैसे,—लस्टम पस्टम काम चला जाता है।

लस्त[1]—वि० [सं०] १. क्रीड़ित। २. शोभायुक्त। सजावट से भरा। ३. प्रवीण। कुशल। दक्ष। चतुर (को०)। ४. आलिंगित। आलिंगनबद्ध (को०)।

लस्त[2]—वि० [हिं० लटना] १. थका हुआ। शिथिल। श्रम या थकावट से ढीला। जैसे,—चलते चलते शरीर लस्त हो गया है। २. जिसमें कुछ करने की शक्ति या साहस न रह गया हो। अशक्त। उ०—वारी सुकुमारी······जर्जर लस्त को ब्याह दी जावे। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८७।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष का मध्य भाग। मूठ।

लस्तकी—संज्ञा पुं० [सं० लस्तकिन्] धनुष [को०]।

लस्तगा—संज्ञा पुं० [?] १. परस्पर संबंध या लगाव। २. शृंखला। २. सिलसिला। ३. शुरुआत। प्रारंभ।

लस्सान—वि० [अ०] बातूनी। वाचाल। बावदूक [को०]।

लस्सानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] वाचालता। बातूनीपन। उ०—बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७८।

लस्सी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] १. लस। चिपचिपाहट। वि० दे० 'लसी'। २. छाँछ। मठा। तक्र। (पच्छिम)। ३. दही को चीनी के साथ मथकर बर्फ मिला या हुआ शर्बत।

यौ०—कच्ची लस्सी = अधिक पानी मिला हुआ दूध।

लहँगा—संज्ञा पुं० [हिं० लंक (=कमर) + अंगा] कमर के नीचे का सारा अंग ढाँकने के लिये स्त्रियों का एक घेरदार पहनावा। उ०—छुद्र घंटिका कटि लहँगा रँग तन तनसुख की सारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह सूत की डोरी या नाले (इजारबंद) से कमर में कसकर पहना जाता है और इसमें बहुत सी चुनटें पड़ी रहती है। इसमें नाली के आकार का घेरेदार नाला पड़ा रहता है, जिसे नेफा कहते हैं। लहँगे से केवल कटि के नीचे का भाग ढँकता है; इससे इसके साथ ओढ़नी भी ओढ़ी जाती है।

लहक—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहकना] १. लहकने की क्रिया या भाव। २. आग की लपट। ३. चमक। द्युति। ४. शोभा। छबि। ५. उमंग। उत्साह। जोश। उ०—देशभक्ति की लहक उसके अंग प्रत्यंग में व्याप्त है।—सुनीता, पृ० ११।

लहकना—क्रि० अ० [सं० लता (=हिलना डोलना) या अनु०] १. हवा में इधर उधर डोलना। झोंके खाना। लहराना। उ०—(क) सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहर भरे, लहकहिं अति कारे।—जायसी (शब्द०)। (ख) बैठ्यो ससि ऊपर सँभारि न सकति भार बेली मानो लहकै नवेली सोनजुही की।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) नव मालती चहूँ दिसि महकत। जमुन लहर तट लह लह लहकत।—गोपाल (शब्द०)। (घ) लाल लाल की लर लटकाए लहकति छन छन।—(शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना ।

२. हवा का बहना । हवा का झोंके देना । उ०—कंत बिनु बासर बसंत लागे अंतक से तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन । —देव (शब्द०) । ३. आग का इधर उधर लपट छोड़ना । लपट का निकलना । दहकना । जैसे,—आग लहकना । ४. चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ना । लपकना । ५. चाह से भरना । उत्कंठित होना । ललकना । उ०—अँखियाँ अधर चूमि हा हा छाँड़ो कहै भूमि छतियाँ सों लगी लग लगी सी लहकि कै । —(शब्द०) । ६. किसी वस्तु का ठीक से न जमने के कारण हिलना या हचकना ।

लहका†—संज्ञा पुं० [हिं० लहक] पतला गोटा । लचका ।

लहकाना—क्रि० स० [हिं० लहकना] १. हवा में इधर उधर हिलाना डुलाना । झोंका खिलाना । २. आगे बढ़ाना । ३. चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ाना । लपकाना । जैसे,—तुमने लहका दिया, इसी से वह पीछे लगा । ४. उत्साह दिलाकर आगे बढ़ना । आगे बढ़ने के लिये उत्साहित करना । किसी ओर अग्रसर होने के लिये बढ़ावा देना । ५. किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये भड़काना । ताव दिलाना । बरगलाना । ६. दीप्त करना । प्रज्वलित करना । जैसे, आग लहकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

लहकारना—क्रि० स० [हिं० ललकारना] १. किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये बहकाना । ताव दिलाना । २. उत्साहित करके आगे बढ़ाना । ३. कुत्ते को उत्साहित या क्रुद्ध करके किसी के पीछे लगाना ।

लहकौर—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना + कौर] दे० 'लहकौरि' ।

लहकौरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना + कौर (= ग्रास)] विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा और दुलहिन कोहबर में एक दूसरे के मुँह में कौर (ग्रास) डालते हैं । उ०—(क) लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) गोदा रंगनाथ मुख माँही । मेलति है लहकौरि तहाँ हीं ।—रघुराज (शब्द०) ।

लहजा[१]—संज्ञा पुं० [अ० लहजह्] गाने या बोलने का ढंग । स्वर । लय । जैसे,—वह बड़े अच्छे लहजे से गाता है ।

लहजा[२]—संज्ञा पुं० [अ० लहज़ा] पल । अल्पकाल । क्षण ।

मुहा०—लहजा भर = क्षण भर । थोड़ी देर ।

लहटना†—क्रि० अ० [देश०] परचना ।

लहटाना†—क्रि० स० [देश०] परचाना ।

लहद—संज्ञा स्त्री० [अ०] कब्र । उ०—हो ढेर अकेला जंगल में तू खाक लहद की फाँकेगा ।—राम० धर्म०, पृ० ६१ ।

लहदिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लादी] दे० 'लादी' । उ०—धोबी घर के गदहा ह्वै हो ओदी लहदि लदैहौ ।—कबीर श०, पृ० २२ ।

लहदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना या प्रा० लद्द] दे० 'लादी' ।

लहन—संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कँटीली भाड़ी । विशेष दे० 'कंजा' ।

लहन‡[२]—संज्ञा पुं० [सं० लभन] दे० 'लहना' ।

लहनदार—संज्ञा पुं० [हिं० लहना + फ़ा० दार] वह मनुष्य जिसका कुछ लहना किसी पर बाकी हो । ऋण देनेवाला महाजन । उ०—जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल लाल आँखें नहीं देखी हैं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८५ ।

लहना[१]—क्रि० स० [सं० लभन, प्रा० लहन] प्राप्त करना । लाभ करना । पाना । उ०—जाचत ही निसि दिवस मरचो, पै नहि सुख कबहूँ लह्यो ।—सूर (शब्द०) ।

लहना[२]—क्रि० स० [सं० लवन] १. काटना । छेदना । २. खेत की फसल काटना । ३. छीलना । तराश करना । कतरना ।

लहना[३]—संज्ञा पुं० [सं० लभन, प्रा० लहन] १. किसी को दिया हुआ धन जो वसूल करना हो । उधर दिया हुआ रुपया पैसा । जैसे,—हमारा सब लहना साफ कर दो । उ०—लहना देना विधि सौ लिखैं । बैठे हाट सराफी सिखैं ।—अर्ध०, पृ० ६ ।

यौ०—लहना देना = प्राप्य एवं देय धन द्रव्य आदि । लहना पटवना = उधार चुकाने की क्रिया ।

मुहा०—लहना चुकाना, पटाना या साफ करना = किसी से लिया हुआ कर्ज अदा करना । लिया हुआ ऋण दे देना ।

२. वह धन जो किसी काम के बदले में किसी से मिलनेवाला हो । रुपया पैसा जो किसी कारण किसी से मिलनेवाला हो । ३. भाग्य । किस्मत । जैसे,—जिसके लहने का होगा, उसे मिलेगा ।

लहना बही—संज्ञा पुं० [हिं० लहना + बही] वह बही जिसमें ऋण लेनेवालों के नाम और रकमें लिखी जाती हैं, और जिसके अनुसार वसूली होती है ।

लहनी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना] १. प्राप्ति । २. फलभोग । उ०—लहनी करम के पाछे । दियो आपनो लैहे सोई मिलै नहीं पाछे ।—सूर (शब्द०) ।

लहनी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना (= काटना, छीलना)] वह औजार जिससे ठठेरे बरतन छीलते हैं ।

लहबर—संज्ञा पुं० [हिं० लहर बहर ?] १. एक प्रकार का बहुत लंबा और ढीला ढाला पहनावा । चोंगा । लबादा । २. एक प्रकार का तोता जिसकी गरदन बहुत लंबी होती है । ३. झंडा । निशान । पताका ।

लहम—संज्ञा पुं० [अ०] गोश्त । मांस [को०] ।

लहमा—संज्ञा पुं० [अ० लहमह्] निमेष । पल । क्षण । अत्यंत अल्प काल । उ०—इक लहमा पकड़ि के खूब मला ।—पलटू०, भा० २, पृ० ६ ।

लहमी—वि० [अ०] लहम अर्थात् मांस का विक्रेता । मांस बेचनेवाला [को०] ।

लहर—संज्ञा स्त्री० [सं० लहरी] १. हवा के झोंके से एक दूसरे के पीछे ऊँची उठती हुई जल की राशि । बड़ा हिलोरा । मौज । उ०—लोल लहर उठि एक एक पै चलि इमि आवत । —हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—उठना ।

मुहा०—लहर लेना = समुद्र के किनारे लहर में स्नान करना ।

२. उमंग । वेग । जोश । उठान । जैसे,—आनद की लहर । उ०—फूली धेनु, फूले धाम, फूली गोपी अंग अंग फिर तरुवर आनंद लहर के ।—सूर (शब्द०) । ३. मन की मौज । मन में आपसे आप उठी हुई प्रेरणा । मन में वेग के साथ उत्पन्न भावना । जैसे,—उनके मन की लहर है; आज इधर ही निकल आए । ४. शरीर के अंदर के किसी उपद्रव (जैसे, बेहोशी, पीड़ा आदि) का वेग जो कुछ अंतर पर रह रहकर उत्पन्न हो । झोंका । जैसे,—साँप के काटने पर लहर आती है । उ०—(क) सुनि के राजा गा मुरझाई । जानौ लहरि सुरुज कै आई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सूर सुरति तनु की कछु आई उतरत लहरि के ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—लहर देना या मारना = रह रहकर किसी प्रकार की पीड़ा उठना । साँप काटने की लहर = साँप काटे आदमी की वह अवस्था जिसमें बेहोशी के बीच बीच में वह जाग उठता है । उ०—लाओ गुनी गोविंद को बाढ़ी है अति लहरि । —सूर (शब्द०) ।

५. आनंद की उमंग । हर्ष या प्रसन्नता का वेग । मजा । मौज । जैसे,—वहाँ चलो; बड़ी लहर आवेगी ।

यौ०—लहर बहर = सब प्रकार का आनंद और सुख ।

मुहा०—लहर आना = आनंद आना । लहर लेना या मारना = आनंद भोगना । मौज करना ।

६. आवाज की गूँज । स्वर का कंप जो वायु में उत्पन्न होता है । ७. वक्र गति । इधर उधर मुड़ती हुई टेढ़ी चाल । जैसे,— वह लहरें मारता चलता है ।

मुहा०—लहर मारना या देना = सीधा न जाकर इधर उधर मुड़ना ।

८. बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होती हुई जानेवाली रेखा । चलते सर्प की सी कुटिल रेखा । ९.†कसीदे की धारी । १०. हवा का झोंका । ११. किसी प्रकार की गंध से भरी हुई हवा का झोंका । महक । लपट । उ०—खुलि रही खूब खुसबोयन की लहरि तैसे सीतल समीर डोलै तनिकऊ न डोली मैं ।— निहाल (शब्द०) ।

लहरदार—वि० [हिं० लहर + फा० दार (प्रत्य०)] १. जो सीधा न जाकर टेढ़ा मेढ़ा गया हो । जो बल खाता गया हो । कुटिल या वक्रगति से गया हुआ । जैसे,—यह लकीर सीधी नहीं है, लहरदार है । २. दे० 'लहरियादार' ।

लहरना— क्रि० अ० [हिं० लहर + ना (प्रत्य०)] १. दे० 'लहराना' । उ०—बरसाती तरिवर लहरत तहँ लता रहीं लूमि लूमि । —देवस्वामी (शब्द०) । २. दे० 'लहटना' ।

लहरपटोर—संज्ञा पुं० [हिं० लहर + पट] [स्त्री० लहर पटोरी] पुरानी चाल का एक प्रकार का रेशमी धारीदार कपड़ा । उ०—पुनि बहु चीर आनि सब छोरी । सारी कंचुकि लहर-पटोरी ।—जायसी (शब्द०) ।

लहरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लहर] १. लहर । तरंग । २. मौज । आनंद । मजा । ३. बाजों की वह गत जो आरंभ में नाचने या गाने के पहले समाँ बाँधने और आनंद बढ़ाने के लिये बजाई जाती है । (इसमें कुछ गाना नहीं होता, केवल ताल और स्वरों की लय मात्र होती है ।) ४. कुछ देर तक बादलों का बरसना । कुछ समय तक जोरों की वर्षा होना । झर । झड़ी । झोंका ।

लहरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

लहराना[1]—क्रि० अ० [हिं० लहर + आना (प्रत्य०)] १. हवा के झोंके से इधर उधर हिलना डोलना । प्रकंपित होना । लहरें खाना । जैसे,—खेत लहराना, या खेतों में धान लहराना, लता लहराना बाल लहराना, पताका लहराना । उ०—(क) आतप परयो प्रभात ताहि सो खिल्यो कमलमुख । अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत बिविध सुख ।—व्यास (शब्द०) । (ख) मनु प्रगट मनोरथ की लता ललकि ललकि लहराति है ।—गोपाल (शब्द०) । २. हवा का चलना या पानी का हवा के झोंके से उठना और गिरना । बहना या हिलोर मारना । ३. सीधे न चलकर साँप की तरह इधर उधर मुड़ते या झोंका खाते हुए चलना । जैसे,—यह लकीर लहराती हुई गई है । ४. मन का उमंग में होना । उल्लास में होना । जैसे,—यह सुनकर उनका मन लहरा उठा । ५. किसी वस्तु के लिये उत्कंठित होना । प्राप्त करने की इच्छा से अधीर होना । लपकना । जैसे,—उसके लिये वह लहरा उठा । ६. आग की लपट का निकलकर इधर उधर हिलना । दहकना । भड़कना । उ० – श्रीपति सुकवि यो वियोगी कहरन लागे, मदन की आगि लहरान लागी तन में ।—श्रीपति (शब्द०) । ७. शोभित होना । लसना । विराजना । शोभा-पूर्वक रहना । उ०—(क) कहै पद्माकर अधीन की अवाई पर साहब सवाई की ललाई लहराति है ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) त्यागि भय भाव चहूँ घूमत अनंद भरे विपिन बिहारी पर सुखसाज लहरत ।—(शब्द०) ।

लहराना[2]—क्रि० स० १. हवा के झोंके में इधर उधर हिलाना या हिलने डोलने के लिये छोड़ देना । जैसे,—सिर के बाल लहराना । २. सीधे न चलाकर साँप की तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना । वक्र गति से ले जाना । ३. बार बार इधर से उधर हिलाना डुलाना । उ०—सूरदास प्रभु सोइ कन्हैया लहरावति मल्हरावति है ।—सूर (शब्द०) ।

लहरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लहर' ।

लहरिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लहर] १. ऐसी समानांतर रेखाओं का समूह जो सीधी न जाकर क्रम से इधर उधर मुड़ती हुई गई हों । लहरदार चिह्न । टेढ़ी मेढ़ी गई हुई लकीरों की श्रेणी । जैसे,—(क) इसका लहरिया किनारा है । (ख) इसमें लहरिया काम बना हुआ है । २. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंग बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं । ३. वह साड़ी या धोती जिसकी रँगाई टेढ़ी मेढ़ी लकीरों के रूप में हो । उ०—(क) लहरत लहर लहरिया लहर बहार । मोतिन जड़ी किनरिया बिथुरे बार ।—रहीम (शब्द०) । (ख) फहर फहर होत प्रीतम को

पीतपट, लहर लहर होत प्यारी को लहरिया।—देव (शब्द०)। ४. जरी के कपड़ों के किनारे बनी हुई बेल। ५. गोटे, लेस आदि की लहरदार टँकाई।

लहरिया२—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहर+इया] 'लहर' शब्द का पूरबी निर्देशात्मक रूप। उ०—में गैलिउँ सोई पिया मोर जागे, आइ गई सुषमन लहरिया हो रामा।—कबीर (शब्द०)।

लहरियादार—वि० [हिं० लहरिया+दार (प्रत्य०)] १. जिसमें लहरिया बना हो। बेलबूटेदार। २. जिसमें बहुत सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ हों। लहरदार।

लहरी१—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहर। तरंग। हिलोर। मौज। उ०—ऊधो, बसुधा में सुधालहरी लला की बरनी, मैन कलावारी कहि प्यारी कब बोलिहै।—दीनदयाल (शब्द०)।

लहरी२—वि० [हिं० लहर+ई (प्रत्य०)] मन की तरंग के अनुसार चलनेवाला। आनंदी। मनमौजी। खुशमिजाज। उ०—लहरी जवान हैं। कभी तो रात को तीन तीन बजे तक जागते हैं कभी दिन को दो दो पहर तक सोया करते हैं—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२।

लहरीला—वि० [हिं० लहर+ईला (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० लहरीली] दे० 'लहरदार'। उ०—मेरी लहरीली नीली अलकावली समान।—लहर, पृ० ६६।

लहल—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का राग जो दीपक राग का पुत्र कहा जाता है।

लहलह—वि० [हिं० लहलहाना का अनु०] १. लहलहाता हुआ। हरा भरा। सरस। उ०—लाल नील सित पीत कमल कुल सब ऋतु में लहलहाई।—देवस्वामी (शब्द०)। २. हर्ष से फूला हुआ। खुशी से खिला हुआ। प्रफुल्लित।

लहलहा—वि० [हिं० लहलहाना] [वि० स्त्री० लहलही] १. लहलहाता हुआ। फूल पत्तों से भरा और सरस। हरा भरा। २. आनंद से पूर्ण। खुशी से भरा हुआ। प्रफुल्ल। ३. हृष्ट पुष्ट। जैसे,—देह लहलही होना।

लहलहाना—क्रि० अ० [हिं० लहरना (पत्तियों का)] १. लहरानेवाली हरी पत्तियों से भरना। हरा भरा होना। फूल पत्तों से सरस और सजीव दिखाई देना। जैसे,—चारो ओर लहलहाते खेत चले गए हैं।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. प्रफुल्ल होना। आनंद से पूर्ण होना। खुशी से भरना। जैसे,—इतना सुनते ही वे लहलहा उठे। ३. टेढ़ो मेढ़ी रेखाओं के रूप में होना। रह रहकर दीप्त या व्यक्त होना। उ०—तहाँ कहति है ब्रजभामिनी। लहलहाति जनु नव दामिनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१। ४. सूखे पेड़ या पौधे में फिर से पत्तियाँ निकलना। पनपना। जैसे,—चार ही दिन पानी पाने से यह पौधा लहलहा-उठा। ५. दुर्बल शरीर का फिर से हृष्ट और सजीव होना। शरीर पनपना।

संयो० क्रि०—उठना।

लहलही—वि० स्त्री० [हिं० लहलहाना] दे० 'लहलहा'।

लहली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दलदल जो किसी जलाशय के सूख जाने पर रह जाती है।

लहसुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'लसोड़ा'।

लहसुन—संज्ञा पुं० [सं० लशुन] १. एक केंद्र से उठकर चारों ओर गिरी हुई लंबी लंबी पतली पत्तियों का एक पौधा, जिसकी जड़ गोल गाँठ के रूप में होती है। उ०—तुलसी अपनो आचरण भलौ न लागत कासु। तेहि न बसाति जो खात नित लहसुन हू की बासु।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी जड़ या कंद प्याज के ही समान तीक्ष्ण और उग्र गंधवाली होती है; इससे इसे बहुत से आचारवान् हिंदू विशेषत: वैष्णव नहीं खाते। प्याज की गाँठ और लहसुन की गाँठ की बनावट में बहुत अंतर होता है। प्याज की गाँठ कोमल कोमल छिलकों की तहों से मढ़ी हुई होती है; पर लहसुन की गाँठ चारों ओर एक पंक्ति में गुछी हुई फाँकों से बनी होती हैं जिन्हें जवा कहते हैं। वैद्यक में यह मांसवर्धक, शुक्र-वर्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगह को ठीक करनेवाला, कफवातनाशक, कंठशोधक, गुरु, रक्तपित्तवर्धक, बलकारक, वर्णप्रसादक, मेधाजनक, नेत्रों को हितकारी, रसायन तथा हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, अर्श, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वायु, श्वास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाश में लिखा है कि लहसुन खानेवालों के लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक है; तथा कसरत, धूप, क्रोध, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर है। वैद्यक में इसके बहुत गुण कहे गए हैं। यह तरकारी के मसाले में पड़ता है। 'भावप्रकाश' में लहसुन के संबंध में यह आख्यान लिखा है—जिस समय गरुड़ इंद्र के यहाँ से अमृत हरकर लिए जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूँद जमीन पर गिर पड़ी। उसी से लहसुन की उत्पत्ति हुई। मनु आदि स्मृतियों में इसके खाने का निषेध पाया जाता है।

पर्या०—महौषध। अरिष्ट। महाकंद। म्लेच्छकंद। रसोनक। भूतघ्न। उग्रगंध।

२. मानिक का एक दोष जिसे संस्कृत में 'अशोभक' कहते हैं।

लहसुनिया—संज्ञा पुं० [हिं० लहसुन] धूमिल रंग का एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर। रुद्राक्षक।

विशेष—यह नवरत्नों में है तथा लाल, पीले और हरे रंग का भी होता है। जिसपर तीन अर्ध रेखाएँ हों, वह उत्तम समझा जाता है और 'ढाई सूत का' कहलाता है।

लहसुनी हींग—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहसुन+हींग] एक प्रकार की कृत्रिम हींग जो लहसुन के योग से बनाई जाती है।

लहसुवा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. लसोड़ा। दे० 'लहसुआ'। २. एक प्रकार का साग।

लहा⑤—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा] दे० 'लाह'।

लहाछेह—संज्ञा पुं० [लध्वाक्षेप ?] १. नृत्य की क्रियाओं में से चौथी

क्रिया। नाच की एक गति। २. नाचने में तेजी और झपट। उ०—गोपिन सँग निस सरद की रमत रसिक रसराज। लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास।—बिहारी (शब्द०)। ३. तीव्र वर्षा। जोरदार वर्षा। ४. झपट। कूद। धूमधड़क्का।

लहालह⑤†—वि० [हिं० लहलह] दे० 'लहलहा'। उ०—(क) मालति औ मुचकंद है केदलि के परकास। पुरइन जामें लहालहि शोभा अधिक प्रकास।—कबीर (शब्द०)। (ख) नभ पुर मगल गान निसान गहागहे। देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे।—तुलसी (शब्द०)।

लहालोट—वि० [हिं० लाभ, लाह+लोटना] १. हँसी से लोटता हुआ। हँसी में मग्न। २. खुशी से भरा हुआ। आनंद के मारे उछलता हुआ। उल्लासमग्न। जैसे,—यह कविता सुनते ही वह लहालोट हो गया। ३. प्रेममग्न। लुभाया हुआ। लुब्ध। मोहित। लट्टू। जैसे,—वह उसका रूप देखते ही लहालोट हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लहास†—संज्ञा स्त्री० [तु० लाश] मुर्दा। मृत शरीर।

लहासन—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काली भेंड़ जिसकी कनपटी से माथे तक का भाग लाल होता है। (गड़ेरिए)।

लहासी—संज्ञा स्त्री० [सं० लभस, प्रा० लहस (=रस्सी)] १. वह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज बाँधे जाते हैं। २. रस्सी। डोरी। ३. रास्ते में निकली हुई जड़। (पालकी के कहार)।

लहि†—अव्य० [हिं० लहना (=प्राप्त होना, पहुँचना।)] पर्यंत। तक। ताईं। उ०—आवहु करहु कदरमस साजू। चढ़हिं बजाइ जहाँ लहि राजू।—जायसी (शब्द०)।

लहिला†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'रहिला'।

लहु⑤†[1]—अव्य [हिं० लग] दे० 'लौं'।

लहु[2]—वि० [सं० लघु, प्रा० लहु] छोटा। अल्प। थोड़ा। उ०—बड़ कलेसु कारज अलप बड़ी आस लहु लाहु। उदासीन सीतारमनु समय सरिस निरबाहु।— तुलसी (शब्द०)।

लहुआ†—वि० [सं० लघुक, प्रा० लहुअ] अत्यल्प। छोटा। हलका।

लहुरा†—वि० [सं० लघु, प्रा० लहु+रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लहुरी] छोटा। कनिष्ठ। जैसे,—लहुरा भाई।

लहुरी†—वि० स्त्री० [हिं० लहुरा] छोटी। कनिष्ठा।

लहू—संज्ञा पुं० [सं० लोह, हिं० लोहू] रक्त। लोहू। रुधिर। खून।

मुहा०—लहूलुहान होना=खून से भर जाना। अत्यंत लहू बहना। विशेष रक्तस्राव होना। (अन्य मुहा० के लिये दे० 'खून' और 'रक्त' शब्द के मुहा०)।

लहेर—संज्ञा पुं० [हिं० लहना (=पाना)] ब्राह्मण। (सुनार)।

लहेरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लाह (=लाख)+ऐरा (प्रत्य०)] १. एक जाति जो रेशम रँगने का काम करती है। २. लाह का पक्का रँग चढ़ानेवाला। ३. पक्का रेशम रँगनेवाला। रँगरेज। उ०—तारकसौ अत्तार घनेरे। जोलहा पुनि कलवार लहेरे।—गोपाल (शब्द०)।

लहेरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे डील का एक सदाबहार पेड़ जो पंजाब, दक्खिन, गुजरात और राजपूताने में बहुत होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत चिकनी, साफ और मजबूत होती है और कुरसी, मेज, आलमारी इत्यादि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है।

लहेसना†—क्रि० स० [देश०] १. साँचे के पल्लों को गाभे पर बैठाना। (बरतन बनानेवाले)। २. किसी लेप आदि को चढ़ाना। पोतना। पलस्तर करना।

लह्न—संज्ञा पुं० [अ०] १. स्वर। आवाज २. गाने का मधुर स्वर। धुन [को०]।

लह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

लांगल—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गल] १. खेत जोतने का हल। २. हल के आकार का काष्ठ (को०)। ३. एक प्रकार की मजबूत लकड़ी जो मकानों के बनाने में काम आती है (को०)। ४. फल तोड़ने का एक प्रकार का लग्गा जिसके सिरे पर एक जाली बँधी रहती है (को०)। ५. चंद्रमा का अर्धोन्नत शृंग। ६. शिश्न। लिंग। ७. एक प्रकार का फूल। ८. एक प्रकार का चावल (को०)। ९. ताड़ का पेड़।

लांगलक—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलक] सुश्रुत के अनुसार हल के आकार का वह घाव जो भगंदर रोग में गुदा में शस्त्र चिकित्सा करके किया जाता है।

लांगलकी—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलकी] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलग्रह—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्लगह] खेतिहर। किसान।

लांगलचक्र—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलचक्र] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसकी सहायता से खेती के संबंध में शुभाशुभ फल जाने जाते हैं। इसका आकार इस प्रकार का होता है—



लांगलदंड—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलदण्ड] हरिस। हल का लट्ठा [को०]।

लांगलध्वज—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलध्वज] बलराम।

लांगलपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलपद्धति] कूँड़। हल जोतने से बनी रेखाएँ [को०]।

लांगलफाल—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलफाल] हल का फाल। हल के अग्रभाग में लगी लोहे की नोक [को०]।

लांगलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलमार्ग] दे० 'लांगलपद्धति' [को०]।

लांगला—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गला] नारियल का पेड़ [को०]।

लांगलाख्य—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलाख्य] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलि—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलि] १. कलियारी नाम का जहरीला

पौधा। २. मजीठ। ३. जलपीपल। ४. पिठवन। ५. कौंछ। केवाँच। ६. गजपीपल। ७. चव्य। चाब। ८. महाराष्ट्री या मराठी नाम की लता। ९. ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

लांगलिक—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलिक] एक प्रकार का स्थावर विष।

लांगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलिका] दे० 'लांगलि'।

लांगलिकी—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलिकी] कलियारी।

लांगलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलिनी] कलियारी। कलिहारी।

लांगली[1]—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलिन्] १. श्री बलराम जी। नारियल। २. सर्प। साँप।

लांगली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गली] १. पुराणानुसार एक नदी का नाम। २. कलियारी। ३. मजीठ। ४. पिठवन। ५. कौंछ। केवाँच। ६. जलपीपल। ७. गजपीपल। ८. चव्य। चाब। ९. महाराष्ट्री नाम की लता। १०. ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय औषधि।

लांगलीश—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलीश] एक शिवलिंग का नाम।

लांगलीशाक—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गलीशाक] जलपीपल।

लांगलीषा—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गलीषा] हल का लट्ठा। हरिस।

लांगुल—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गुल] १. पूँछ। दुम। २. शिश्न। लिंग।

लांगुली—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गुलिन्] १. बंदर। २. ऋषभ नामक ओषधि। ३. पिठवन। ४. कौंछ। केवाँच।

लांगुलीका—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गुलीका] पृश्निपर्णी। पिठवन।

लांगूल—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गूल] १. दुम। पूँछ। २. शिश्न। लिंग। ३. धान्यकोष्ठ। धान्यागार (को०)।

यौ०—लांगूलचालन, लांगूलविक्षेप = (१) दुम हिलाना। (२) पूँछ फटकारना।

लांगूला—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गूला] १. केवाँच। कौंछ। २. पिठवन। पृश्नपर्णी।

लांगूली[1]—संज्ञा पुं० [लाङ्गूलिन्] बंदर। वानर।

लांगूली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गूली] १. ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। २. पिठवन। पृश्निपर्णी। लांगुलिका। लांगूलका। ३. केवाँच। कौंछ।

लांचुल—संज्ञा पुं० [सं० लाञ्चुल] धान्य। धान।

लांछन—संज्ञा पुं० [सं० लाञ्छन] १. चिह्न। निशान। २. दाग। ३. चंद्रमा का धब्बा (को०)। ४. आख्या। नाम (को०)। ५. भूमिसीमांकन। अंकन (को०)। ६. दोष। कलंक। जैसे,—तुम तो यों ही सबको लांछन लगाया करते हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

लांछना—संज्ञा स्त्री० [सं० लाञ्छना] दे० 'लांछन'।

लांछनितⓤ—वि० [सं० लाञ्छन] जिसे लांछन लगा हो। कलंकित। दोषयुक्त। लांछित।

लांछित—वि० [सं० लाञ्छित] १. चिह्नित। अंकित। २. अभिहित। नामक। ३. अलंकृत। सज्जित। ४. कलंकित। जिसे लांछन लगा हो [को०]।

लांठनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लाण्ठनी] पुंश्चली। कुलटा। असती [को०]।

लांतकज—संज्ञा पुं० [सं० लान्तकज] जैनियों के एक प्रकार के देवताओं का गण।

लांतव—संज्ञा पुं० [सं० लान्तव] जैनों के अनुसार सातवें स्वर्ग का नाम।

लांपट्य—संज्ञा पुं० [सं० लाम्पट्य] १. लंपट होने का भाव। लंपटता। २. व्यभिचार।

लाँक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लक (= डंठल या बाल)] १. जौ, गेहूँ, चने, अरहर इत्यादि के पके और कटे हुए पौधों का समूह जो झाड़ने के वास्ते एकत्र हो। ताजी कटी हुई फसल। २. भूसा।

लाँक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंक] १. कमर। कटि। उ०—लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाय।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—लगाना।

२. परिमाण। मिकदार।

लाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० लाङ्गूल (= पूँछ)] धोती का वह भाग जो दोनों जाँघों के नीचे से निकालकर पीछे की ओर कमर से खोंस लिया जाता है। काछ। जैसे,—धोती का लाँग।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।—मारना।—लगाना।

लाँगड़ो—संज्ञा पुं० [सं० लाङ्गूल] हनुमान जी। (डिं०)।

लाँग प्राइमर—संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में एक प्रकार का टाइप जिसका आकार आदि इस प्रकार का होता है लाँग प्राइमर।

लाँघना—क्रि० स० [सं० लङ्घन] १. किसी चीज के इस पार से उस पार जाना। डाँकना। नाँघना। जैसे,—लड़के को लाँघकर मत जाया करो। २. किसी वस्तु को उछलकर पार करना। जैसे,—यह नाला तो तुम यों ही लाँघ सकते हो।

संयो० क्रि०—जाना।

लाँघनी उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाँघना + उड़ी (= कुदान)] मालखंभ की एक कसरत जो साधारण उड़ी के ही समान होती है। इसमें विशेषता यह है कि इसमें बीच का कुछ स्थान कूद या लाँघकर पार किया जाता है।

लाँच—संज्ञा स्त्री० [देश०] रिशवत। घूस। उत्कोच।

लाँजी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

लाँझि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाँघना] बाधा। उल्लंघन।

लाँड़†—संज्ञा पुं० [लिङ्ग, हिं० लंड] दे० 'लंड'।

लाँबा†—वि० [सं० लम्बक] दे० 'लंबा'। उ०—(क) चारहि हैं खुर वाके गरो अति लाँबो सो मूँड़ उठावत है।—सीताराम (शब्द०)। (ख) सत योजन लाँबो अरु ऊँचो।—गिरधर (शब्द०)। (ग) लाँबी डग भरी ठौर ठौर गिर परी राम, देखौ जेहि घरी देख रही मुख रूप को।—हृदयराम (शब्द०)। (घ) लहलही लाँबी लटैं लपटी सुलंक पर।—पद्माकर (शब्द०)।

ला¹—संज्ञा पुं० [अं० लॉ] १. वे राजनियम या कानून जो देश या राज्य में शांति या सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये बनाए जायँ। २. ऐसे राजनियमों या कानूनों का संग्रह। व्यवहारशास्त्र। धर्मशास्त्र। कानून। जैसे,—हिंदू लॉ। महमडन लॉ।

ला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रहण या प्राप्ति की क्रिया। २. देना। प्रदान [को०]।

ला³—अव्य० [अ०] न। विना। नहीं। जैसे,—लाइलाज, लाइल्म, लापरवा आदि।

लाइ(५)†—संज्ञा पुं० [सं० अलात (=लुक), प्रा० अलाय] अग्नि। उ०—(क) तब लंक हनूमत लाइ दई।—केशव (शब्द०)। (ख) ज्यों ज्यों बरसत घोर घन घनघमंड गरुआइ। त्यों त्यों परति प्रचंड अति नई लगन की लाइ।—पद्माकर (शब्द०)।

लाइक—वि० [अ० लाइक़] दे० 'लायक'।

लाइची—संज्ञा स्त्री० [सं० एला + फ़ा० ची ('च' प्रत्य०)] दे० 'इलायची'।

लाइट—संज्ञा स्त्री० [अं०] प्रकाश। दीप्ति। रोशनी। उजाला।

लाइट हाउस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का स्तंभ या मीनार जिसके सिरे पर एक बहुत तेज रोशनी रहती है जिसमें जहाज चट्टान आदि से न टकरायें, या और किसी प्रकार की दुर्घटना न हो। प्रकाशस्तंभ।

लाइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. कतार। अवली। २. पंक्ति। सतर। ३. रेखा। लकीर। ४. रेल की सड़क। ५. घरों की वह पंक्ति जिनमें सिपाही रहते हैं। बारिक। लैन। ६. व्यवसाय क्षेत्र। पेशा। जैसे,—(क) डाक्टरी लाइन अच्छी है, उसमें दो पैसे मिलते हैं। (ख) अनेक नवयुवक पत्रकार का काम करना चाहते हैं। राष्ट्रीय विद्यापीठों, गुरुकुलों के कितने ही स्नातक इस लाइन में आना चाहते हैं।

लाइन क्लियर—संज्ञा पुं० [अं०] रेलवे में संकेत या पत्र जो किसी रेलगाड़ी के ड्राइवर को यह सूचित करने के लिये दिया जाता है कि तुम्हारे जाने के लिये रास्ता साफ है। (बिना यह संकेत या पत्र पाए वह गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता।)

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

लाइफ—संज्ञा पुं० [अं० लाइफ़] जीवन। जिंदगी।

यौ०—लाइफ इन्श्योरेंस = जीवन बीमा। विशेष दे० 'बीमा'। लाइफ बॉय। लाइफबेल्ट = एक प्रकार की पेटी जो डूबने से बचाने के काम आती। लाइफबोट।

लाइफ बॉय—संज्ञा पुं० [अं० लाइफ़बॉय] एक प्रकार का यंत्र जो ऐसे ढंग से बना होता है कि पानी में डूबता नहीं, तैरता रहता है और डूबते हुए व्यक्ति के प्राण बचाने के काम में आता है। तरेंदा।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है और प्राय: जहाजों पर रखा रहता है। यदि दैवात् कोई मनुष्य पानी में गिर पड़े तो यह उसकी सहायता के लिये फेंक दिया जाता है। इसे पकड़ लेने से मनुष्य डूबता नहीं।

लाइफ बोट—संज्ञा स्त्री० [अं० लाइफ़ बोट] एक प्रकार की नाव जो समुद्र में लोगों के प्राण बचाने के काम में लाई जाती है। जीवनरक्षक नौका।

विशेष—ये नावें विशेष प्रकार की बनी हुई होती हैं और जहाजों पर लटकती रहती हैं। जब तूफान या अन्य किसी दुर्घटना से जहाज के डूबने की आशंका होती है, तब ये नावें पानी में छोड़ी जाती हैं। लोग इनपर चढ़कर प्राण बचाते हैं।

लाइब्रेरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह स्थान जहाँ पढ़ने के लिये बहुत सी पुस्तकें रखी हों। पुस्तकालय। २. वह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकों का संग्रह हो। पुस्तकालय।

लाइलाज—वि० [अ०] १. जिसकी चिकित्सा न हो सके। जिसका उपचार न हो। असाध्य। २. जिसका कोई उपाय न हो। दुष्कर [को०]।

लाइल्म—वि० [अ०] १. इल्म रहित। अशिक्षित। विद्याविहीन। २. नावाकिफ। अपरिचित। अनजान [को०]।

लाइसेंस—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'लैसंस'।

लाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लाजा, हिं० लावा] उबाले हुए धान को सुखाकर गरम बालू में भूनने से बनी हुई खीलें। धान का लावा।

लाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाना (=लगाना)] छिपी शिकायत। चुगली। निंदा।

क्रि० प्र०—लगाना।

यौ०—लाई लुतरी = (१) चुगली। शिकायत। (२) वह जो इधर उधर दूसरों की चुगली खाती फिरती हो। एक से दूसरे की निंदा करनेवाली। चुगुलखोर (स्त्री)।

लाई³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। २. एक प्रकार की ऊनी चादर। ३. शराब की तलछट।

लाऊ—संज्ञा पुं० [हिं० अलाबू] लौकी। कद्दू। घिया। विशेष दे० 'घिया'।

लाक—संज्ञा पुं० [अं० लॉक] ताला।

लाक अप—संज्ञा पुं० [अं० लॉक अप] हवालात। जैसे,—अभियुक्त लाक अप में रखा गया है।

लाकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी] दे० 'लकड़ी'।

लाकर—संज्ञा पुं० [अं० लॉकर] सुरक्षा की दृष्टि से बंकों में ग्राहकों की मूल्यवान् वस्तुओं के रखने का स्थान।

लाकरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी] दे० 'लकड़ी'।

लाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक योगिनी का नाम।

लाकुच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लकुच'।

लाकुटिक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० लाकुटिकी] लाठी या दंड धारण करनेवाला [को०]।

लाघव—संज्ञा पुं० [सं०] १. लघु होने का भाव। लघुता। हलकापन या छोटापन। २. थोड़ा होने का भाव। कमी। अल्पता। ३. हाथ की सफाई। फुर्ती। तेजी। जैसे, हस्तलाघव। ४. नपुंसकता। ५. आरोग्यता। नीरोगता। तंदुरुस्ती। ६. विवेक का अभाव। विवेकहीनता (कौ०)। ७. महत्वहीनता। कुछ महत्व का न होना (कौ०)। ८. चपलता। चंचलता। जैसे, बुद्धिलाघव (कौ०)।

लाघव—अव्य० [सं०] फुरती से। जल्दी से। सहज में। उ०—अति लाघव उठाय धनु लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)।

लाघवकारी—वि० [सं० लाघवकारिन्] क्षुद्र। अपमानजनक। अशोभन।

लाघविक—वि० [सं०] लघु। छोटा [को०]।

लाघवी⁽ᵖ⁾¹—संज्ञा पुं० [सं० लाघव+ई (प्रत्य०)] फुर्त्ती। शीघ्रता।

लाघवी²—संज्ञा पुं० [सं० लाघविन्] जादूगर [को०]।

लाचार¹—वि० [फ़ा०] १. जिसका कुछ वश न चलता हो। विवश। मजबूर। २. असहाय। अशक्त। दीन दुखी।

लाचार²—क्रि० वि० विवश होकर। मजबूर होकर।

लाचारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लाचार होने का भाव। मजबूरी। विवशता।

लाची—संज्ञा स्त्री० [हिं० इलायची] दे० 'इलायची'। उ०—करत प्रनामासीस पान लाची त्यों वितरित।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३३।

लाचीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० इलायची+दाना] खाली चीनी की एक प्रकार की मिठाई जो छोटे छोटे गोल दानों के आकार की होती है। कभी कभी इसके अंदर सौंफ या इलायची का दाना भी भरा होता है। इलायची दाना।

लाछन⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [सं० लाञ्छन] दे० 'लांछन'।

लाछो⁽ᵖ⁾†—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी, प्रा० लच्छि, लछ्छी, बँग० लक्खी (लाखी ?)] लक्ष्मी।

लाज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] लज्जा। शर्म। हया।

क्रि० प्र०—आना।—करना।

मुहा०—लाज रखना = प्रतिष्ठा बचाना। आबरू खराब न होने देना। लाज से गठरी होना या गड़ जाना = अत्यंत शर्मिंदा होना। लज्जा के कारण नीचे सिर किए रहना।

लाज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. खस। उशीर। २. पानी में भींगा हुआ चावल। ३. धान का लावा। खील।

लाजक—संज्ञा पुं० [सं०] धान का भूना हुआ लावा। लाई।

लाजना⁽ᵖ⁾†—क्रि० अ० [हिं० लाज+ना (प्रत्य०)] लज्जित होना। शरमाना। उ०—(क) ये अरुन अधर लखि लखि बिंबाफल लाजै।—प्रताप (शब्द०)। (ख) जेहि तुरंग पर राम बिराजे। गति बिलोकि खगनायक लाजे।—तुलसी (शब्द०)।

लाजपेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माँड़ जो खोई या लावा उबालने से निकले। इसका व्यवहार रोगियों को पथ्य देने में होता है।

लाजभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का पकाया हुआ भात, जो रोगियों को पथ्य में दिया जाता है।

लाजमंड—संज्ञा पुं० [सं० लाजमण्ड] लावा का माँड़। दे० 'लाजपेया' [को०]।

लाजवंत⁽ᵖ⁾—वि० [हिं० लाज+वंत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लाजवंती] जिसे लज्जा हो। शर्मदार। हयादार। उ०—लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज गुन निज मुख कहसि न काऊ।—मानस, ६।२९।

लाजवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जावती, हिं० लजालू] लजालू नाम का पौधा। छुईमुई।

लाजवर्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० लाजवर्द] दे० 'लाजवर्द'। उ०—जनु लाजवर्त शिला जटित चुन्नीन राजी सोहती।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११७।

लाजवर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक प्रकार का प्रसिद्ध कीमती पत्थर जिसे संस्कृत में 'राजवर्तक' कहते हैं। रावटी।

विशेष—यह जंगाली रंग का होता है और इसके ऊपर सुनहले छींटे होते है। यह वातज रोगों के लिये बलकारी और उन्माद आदि रोगों में उपकारी माना जाता है। आँखों में सुरमा लगाने के लिये इसकी सलाई भी बनती है जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है।

२. विलायती नील जो गंधक के मेल से बनता और बहुत बढ़िया होता है।

लाजवर्दी—वि० [फ़ा०] लाजवर्द के रंग का। हलका नीला।

लाजवाब—वि० [फ़ा०] १. जिसके जोड़ का और कोई न हो। अनुपम। बेजोड़। २. जो कुछ जवाब न दे सके। निरुत्तर। चुप। खामोश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लाजशक्तु—संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का सत्तू।

लाजहोम—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का होम जिसमें खोई या धान का लावा आहुति में दिया जाता था।

लाजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चावल। २. भूनकर फुलाया हुआ धान। खील। लावा। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—लाजाहुति = विवाह में एक प्रकार का होम जो धान के लावे से होता है। लाजाहोम = लाजहोम।

लाजिक—संज्ञा पुं० [अ०] १. तर्क। २. तर्कशास्त्र।

लाजिम—वि० [अ० लाज़िम] १. जो अवश्य कर्त्तव्य हो। २. उचित। मुनासिब। वाजिब। ३. संबद्ध। लगा हुआ। सटा हुआ (को०)।

लाजिमा—वि० [अ० लाज़िमह्] १. आवश्यक वस्तु। जरूरी सामान। २. अनिवार्य। लाजिमी [को०]।

लाजिमी—वि० [अ० लाज़िम+ई (प्रत्य०)] जो अवश्य कर्तव्य हो। जरूरी। आवश्यक।

लाट¹—संज्ञा पुं० [अं० लार्ड] १. किसी प्रांत या देश का सबसे बड़ा शासक। गवर्नर।

लाट[२]—संज्ञा पुं० [अं० लॉट] बहुत सी चीजों का वह विभाग या समूह जो एक ही साथ रखा, बेचा या नीलाम किया जाय।

यौ०—लाटबंदी।

लाट[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा ?] लकड़ी, पत्थर या किसी धातु का बना हुआ मोटा और ऊँचा खंभा। जैसे,—अशोक की लाट, कुतुब साहब की लाट, तालाब के बीच में की लाट, कोल्हू के बीच की लाट, आदि।

लाट[४]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जहाँ अब भड़ौच, अहमदाबाद आदि नगर हैं। गुजरात का एक भाग। २. इस देश के निवासी। ३. एक अनुप्रास जिसमें शब्द और अर्थ एक ही होते हैं, पर अन्वय में हेरफेर होने से वाक्यार्थ में भेद हो जाता है। ('शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्य मात्रतः।'—मम्मट, काव्यप्रकाश)। ४. वह लंबा बाँध जो किसी मैदान के पानी के बहाव को रोकने के लिये बनाया जाता है। ५. फटा पुराना कपड़ा या गहना (को०)। ६. कपड़ा। वस्त्र (को०)। ७. बालकों जैसी भाषा (को०)। ८. शिक्षित व्यक्ति (को०)।

लाटक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० लाटिका] लाट देश संबंधी।

लाटपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटरी—संज्ञा स्त्री० [अं० लॉटरी] एक प्रकार की योजना जिसका आयोजन विशेषकर किसी सार्वजनिक कार्य के लिये धन एकत्र करने के निमित्त किया जाता है और जिसमें लोगों को किस्मत आजमाने का मौका मिलता है।

विशेष—इसमें एक निश्चित रकम के टिकट बेचे जाते हैं और यह घोषणा की जाती है कि एकत्र धन में से इतना धन उन लोगों को बाँटा जायगा जिनके नंबर या नाम की चिटें पहले निकलेंगी। टिकट लेनेवालों के नाम या नंबर की चिटें किसी संदूक आदि में डाल दी जाती हैं और कुछ निर्वाचित विशिष्ट व्यक्तियों की उपस्थिति में वे चिटें निकाली जाती हैं। जिनके नाम की चिट सबसे पहले निकलती है, उसे पहला पुरस्कार अर्थात् सबसे बड़ी रकम दी जाती है। इस प्रकार पहले निकलनेवालों में निश्चित धन यथाक्रम बाँट दिया जाता है। इसके लिये सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है।

लाटा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. भूने हुए महुओं और तिलों को कूटकर बनाए हुए लड्डू। २. भुना हुआ महुआ।

लाटानुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें शब्दों की पुनरुक्ति तो होती है, परंतु अन्वय में हेरफेर करने से तात्पर्य भिन्न हो जाता है। जैसे,—पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि। पीय निकट जाके, नहीं घाम चाँदनी ताहि। दे० 'लाट[४]—३'।

लाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साहित्य में चार प्रकार की रचनाओं में से एक प्रकार की रचना या रीति जिसमें वैदर्भी और पांचाली दोनों ही रीतियों का कुछ कुछ अनुसरण किया जाता है। इसमें छोटे छोटे पद और छोटे छोटे समास हुआ करते हैं। २. एक प्राकृत बोली (को०)।

लाटी†[१]—संज्ञा स्त्री० [अनु० लट लट (=गाढ़ा या चिपचिपा होना)] १. वह अवस्था जिसमें मुँह का थूक और होंठ सूख जाते हैं। उ०—सूखहि अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

लाटी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाटिका रीति। २. एक प्राकृत बोली (को०)।

लाटीय—वि० [सं०] दे० 'लाटक' [को०]।

लाठ†[१]—संज्ञा पुं० [अं० लाट] दे० 'लाट'।

लाठ†[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा] दे० 'लाट'।

लाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्ठी, प्रा० लट्ठी] वह लंबी और गोल बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलने में सहारे के लिये अथवा मारपीट आदि के लिये होता है। डंडा। लकड़ी।

क्रि प्र०—बाँधना।—मारना।—रखना।—लगाना।

मुहा०—लाठी चलना=लाठियों की मारपीट होना। लाठी चलाना=लाठी से मारना। लाठी से मारपीट करना। लाठी बाँधना=लाठी लिए रहना। दंड धारण करना।

लाठी चार्ज—संज्ञा पुं० [हिं० लाठी+अं० चार्ज] भीड़ को हटाने के लिले पुलिस द्वारा लाठी चलाना।

लाड़—संज्ञा पुं० [सं० लालन] बच्चों का लालन। प्यार। दुलार।

क्रि० प्र०—करना।—लड़ाना।

यौ०—लाड़चाव।

लाड़लड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप जो प्रायः वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़लड़ैता—वि० [हिं० लाड़+लड़ाना+ऐता (प्रत्य०)] जिसका बहुत अधिक लाड़ हो। प्यारा। दुलारा। उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हौं गँवारि ब्रजवासी। पठै देहु मेरो लाड़लड़ैतो वारौं ऐसी हाँसी।—सूर (शब्द०)।

लाड़ला—वि० [हिं० लाड़=ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० लाड़ली] जिसका लाड़ किया जाय। प्यारा। दुलारा।

लाड़ा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाड़] [स्त्री० लाड़ी, लाड़ो] वर। दूल्हा।

लाड़िक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भृत्य। दास। नौकर। २. लड़का [को०]।

लाड़ू†—संज्ञा पुं० [हिं० लड्डू] १. लड्डू। मोदक। २. दक्षिणी नारंगी।

लाढ़िया—संज्ञा पुं० [देश०] वह दलाल जो दूकानदार से मिला रहता है और ग्राहकों को धोखा देकर उसका माल बिकवाता है।

लाढ़ियापन—संज्ञा पुं० [हिं० लाढ़िया=पन (प्रत्य०)] १. लाढ़िया का काम। २. धूर्तता। चालाकी। धोखेबाजी।

लात[१]—स्त्री० स्त्री० [देश० लता, लत्तिया ?] १. पैर। पाँव। पद। उ०—तेहि अंगद कहँ लात उठाई। गहि पद पटक्यो भूमि

भँवाई।—तुलसी (शब्द०)। २. पैर से किया हुआ आघात या वार। पदाघात। पादप्रहार।

मुहा०—लात खाना=(१) पैरों की ठोकर या मार सहना (२) मार खाना। लात चलाना=लात से मारना। लात से आघात करना। लात जाना=गौ भैंस आदि का दूध देते समय दुहनेवाले को लात मारकर दूर हट जाना। बिसुकना। लात मारना=तुच्छ समझकर छोड़ देना। त्याग देना। जैसे,—(क) हम ऐसी दौलत को लात मारते हैं। (ख) तुमने जान बूझकर रोजी को लात मारी है। लात मारकर खड़ा होना=बहुत अधिक रुग्णावस्था से, विशेषतः स्त्रियों का प्रसव के उपरांत, नीरोग होकर चलने फिरने के योग्य होना।

लात[२]—वि० [सं०] गृहीत। प्राप्त [को०]।

लातरा†[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लतरी] पुराना जूता।

लातरा†[२]—वि० [देश०] लालची। (बच्चों के लिये प्रयुक्त)।

लातरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० लात+री] लतरी। पुराना जूता।

लाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेना। प्राप्त करना [को०]।

लातीनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] रूमियों की प्राचीन भाषा। लैटिन भाषा [को०]।

लाथ†—संज्ञा पुं० [देश०] व्याज। बहाना।

लाद—संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] १. किसी को बैल या गाड़ी पर रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने का कार्य। लादने की क्रिया।

यौ०—लाद फाँद=लादने की क्रिया।

२. मिट्टी का वह ढोंका जो पानी निकालने की ढेंकी के दूसरी ओर लगा रहता है। ३. पेट। उदर (जिसमें अँतड़ी आदि भरी रहती है)।

मुहा०—लाद निकलना=पेट फूलकर आगे निकलना। तोंद निकलना।

४. आँत। अँतड़ी। जैसे,—उसने पेट में ऐसी छुरी मारी कि लाद निकल पड़ी।

लादना—क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध (=प्राप्त)+हिं० ना (प्रत्य०)] १. किसी चीज पर बहुत सी वस्तुएँ रखना। एक पर एक चीजें रखना। जैसे,—गाड़ी पर असबाब लादना। २. गाड़ी या पशु को भार से युक्त करना। ढोने या ले जाने के लिये वस्तुओं को भरना। जैसे,—बैल लादना, गाड़ी लादना।

यौ०—लादना फाँदना=लादना और रखना।

३. किसी के ऊपर किसी बात का भार रखना। जैसे,—तुम सब काम मुझ पर ही लादते चले जाते हो।

संयो० क्रि०—देना।

४. कुश्ती लड़ते समय विपक्षी को अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना। (पहल०)।

संयो० क्रि०—लेना।

लादावा—वि० [अ०] जिसका कोई दावा न रह गया हो। जो अधिकार से रहित हो गया हो। जैसे,—उसने अपने लड़के को ला दावा कर दिया है। (कानून)।

मुहा०—ला दावा लिखना=यह लिखना कि अमुक वस्तु पर अब हमारा कोई दावा या अधिकार नहीं रह गया। दस्तबरदारी लिखना।

लादिया—संज्ञा पुं० [हिं० लादना+इया (प्रत्य०)] वह जो किसी चीज पर बोझ लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता हो।

लादी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] १. कपड़ों की वह गठरी जो धोबी गदहे पर लादता है। २. वह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है।

लाधना†Ⓟ—क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध+हिं० ना (प्रत्य०)] प्राप्त करना। हासिल करना। पाना। उ०—(क) इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छिन छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधा।—सूर (शब्द०)।

लानंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अंगूर।

विशेष—यह कुमाऊँ और देहरादून में अधिकता से होता है। इससे अर्क निकाला जाता है और एक प्रकार की शराब बनाई जाती है।

लान[१]—संज्ञा पुं० [अं० लॉन] हरी घास का बड़ा मैदान जिसपर गेंद आदि खेलते हैं। उ०—कहीं चमन, तो कहीं लान।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७६।

लान[२]—संज्ञा स्त्री० [अ०] धिक्कार। फटकार [को०]।

लान टेनिस—संज्ञा पु० [अं०] गेंद का एक खेल जो छोटे से मैदान में खेला जाता है।

लानत—संज्ञा स्त्री० [अ० लअनत, लानत] धिक्कार। फटकार। भर्त्सना। उ०—हजार लानत उस दिल पर जिसमें कि इश्के दिलदार न हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

यौ०—लानत मलामत=धिक्कार और फटकार। जैसे—मामूली बात पर इतनी लानत मलामत, ठीक नहीं।

मुहा०—लानत बरसना=लज्जित होना। तिरस्कृत होना। लानत की बौछार=अत्यधिक तिरस्कार। लानत भेजना=ठुकरा देना। धिक्कारना।

लानती—संज्ञा पुं० [हिं० लानत+ई (प्रत्य०)] वह जो सदा लानत मलामत सुनने का अभ्यस्त हो। सदा फिटकार सुननेवाला। वह जो तिरस्कार करने लायक हो।

लाना[१]—क्रि० अ० [हिं० लेना+आना, ले आना] १. कोई चीज उठाकर या अपने साथ लेकर आना। कोई चीज उस जगह पर ले जाना, जहाँ उसे ग्रहण करनेवाला हो; अथवा जहाँ ले जानेवाला रहता हो। ले आना। जैसे,—(क) जरा वह किताब तो लाना। (ख) आप जब जाते हैं, तब कुछ न कुछ लाते हैं। (ग) उनकी स्त्री मैके से बहुत सा धन लाई है।

संयो० क्रि०—देना।

२. प्रत्यक्ष करना। उपस्थित करना। सामने रखना। जैसे,—(क) अब आप यह नया रंग लाए हैं। (ख) वह जब आता है, तब नया रूप लाता है। (ग) अब वह उनपर मुकदमा लावेगा। ३. उत्पन्न करना। पैदा करना। देना या सामने रखना। जैसे,—इस साल ये पेड़ बहुत फल लाए हैं।

लाना[३]—क्रि० स० [हिं० लाय (=आग)+ना (प्रत्य०)] आग लगाना। जलाना। उ०—(क) कंत बीसलोचन बिलोकिए कुमत फल, ख्याल लंक लाई कपि राँड की सी झोपड़ी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यौं लाय लंक, निपट निशंक पर पुर गलबक भो।—तुलसी (शब्द०)।

लाना(पु)[४]—क्रि० स० [हिं० लगाना] लगाना। उ०—(क) राम कुचरचा करहिं सब सीतहिं लाइ कलंक।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लै परजंक निसंक नवेली को लाय गरे से लगे गहि गूमन।—शंभु (शब्द०)।

मुहा०—लाना लगाना या लाने लगाना = ऋण के बदले में कोई पदार्थ दे देना या ले लेना।

लाने(पु)—अव्य० [हिं० लाना (=लगाना)] वास्ते। लिये। (बुंदेल०)। उ०—तू अलबेली अकेली डरै किन, क्यौं डरौं मेरी सहाय के लाने। हैं सखि संग मनोभव सो भट कान लौं बान सरासन ताने।—पद्माकर (शब्द०)।

लाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. संलाप। बोलना। बात करना। २. कलरव। चहचहाना। उ०—लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि, पापिन की आप नेकु बेग सुधि लाहियौ।—घनानंद, पृ० ५९२।

लापता—वि० [अ० ला (=बिना)+हिं० पता] १. जिसका पता न लगे। जो कहीं मिल न रहा हो। खोया हुआ। २. गुप्त। गायब।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

लापनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गपशप। बातचीत। वार्तालाप [को०]।

लापरवा—वि० [अ० ला+फ़ा० परवाह] [संज्ञा स्त्री० लापरवाई] १. जिसे किसी बात की परवा न हो। बेफिक्र। २. जो सावधानी से न रहता हो। असावधान।

लापरवाह—वि० [फ़ा०] दे० 'लापरवा'।

लापरवाही—संज्ञा स्त्री० [अ० ला+फ़ा० परवाह] १. लापरवा होने का भाव। बेफिक्री। २. असावधानी। प्रमाद।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—होना।

लापसी—संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिका] दे० 'लपसी'। उ०—लुचुई ललित लापसी सोहै। स्वादु सुबास सहज मन मोहै।—सूर (शब्द०)।

लापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पहेली या बुझौवल [को०]।

लापी—वि० [सं० लापिन्] १. आलापी। बोलनेवाला। २. पछतानेवाला [को०]।

लापु[१]—संज्ञा पुं० [सं० आलाप] दे० 'लाप'। उ०—चित धरि पितु बानी सूरज मानी कर जोरें करि लापु।—सुजान०, पृ० २६।

लापु[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बनौषधि। रुद्रवंती। रुदंती। २. एक औजार [को०]।

लाप्य—वि० [सं०] कथनीय। कहने योग्य। बोलने योग्य [को०]।

लाब, लाबक—संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी जिसका प्रायः शिकार करते हैं [को०]।

लाबर(पु)—वि० [सं० लपन (=बकना)] दे० 'लबार'। उ०—कालिह के लाबर बीस बिसे परौं बीस बिसे व्रत ते न टरौं जू।—केशव (शब्द०)।

लाबु—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी। कद्दू [को०]।

लाबुकायन—संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि द्वारा उल्लिखित एक प्राचीन दार्शनिक विद्वान् [को०]।

लाबुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा [को०]।

लाबू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लाबु'।

लाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिलना। प्राप्ति। लब्धि। २. फायदा। मुनाफा। नफा। ३. उपकार। भलाई। ४. सुख। प्रसन्नता (को०)। ५. विजय। परिग्रहण। वश। पकड़ (को०)। ६. प्रत्यक्ष ज्ञान। अनुभूति (को०)। ७. गड़ा हुआ धन। निखात निधि (को०)। ८. धन संपत्ति (को०)।

यौ०—लाभकारी। लाभदायक।

लाभक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्ति। लब्धि। २. मुनाफा। फायदा। नफा [को०]।

लाभकर, लाभकारक—वि० [सं०] जिससे लाभ होता हो। फलदायक। लाभदायक। फायदेमंद।

लाभकारी—वि० [सं० लाभकारिन्] [वि०स्त्री० लाभकारिणी] फायदा करनेवाला। गुण करनेवाला। फायदेमंद।

लाभक्षायिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह अनंत लाभ जो समस्त कर्मों का क्षय या नाश हो जाने पर आत्मा की शुद्धता के कारण प्राप्त होता है।

लाभदायक—वि० [सं०] जिससे लाभ हो। गुणकारी। फायदेमंद।

लाभमद—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार वह मद जिससे मनुष्य अपने आपको लाभवाला और दूसरे को हीनपुण्य समझे।

लाभलिप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाभ की प्रबल तृष्णा [को०]।

लाभलिप्सु—वि० [सं०] १. लालची। लोभी। २. लाभेच्छु। लाभ का इच्छुक [को०]।

लाभस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में लग्न से ग्यारहवाँ स्थान, जिसे देखकर यह निश्चय किया जाता है कि धन, संपत्ति, संतान, आयु और विद्या आदि कैसी रहेगी।

लाभांतराय—संज्ञा पुं० [सं० लाभान्तराय] वह अंतराय कर्म जिसके उदय होने से मनुष्य के लाभ में विघ्न पड़ता है।

लाभालाभ—संज्ञा पुं० [सं० लाभ+अलाभ] फायदा और नुकसान। हानि और लाभ।

लाभ्य—वि० [सं०] लाभ के योग्य। प्राप्ति के योग्य [को०]।

लाम—संज्ञा पुं० [फ़ा० लार्म] १. सेना। फौज।

मुहा०—लाम पर जाना = लड़ाई पर जाना। मोर्चे पर जाना। लाम बाँधना = चढ़ाई के लिये सेना तैयार करना।

२. बहुत से लोगों का समूह।

मुहा०—लाम बाँधना = (१) बहुत से लोगों को एकत्र करना। (२) बहुत सा सामान जमा करना।

लामा†[२]—क्रि० वि० [सं० लम्ब] फासले पर। दूर।

लाम[३]—संज्ञा पुं० [अ०] अरबी का एक अक्षर।

लामकाफ—संज्ञा पुं० [अ० लाम काफ़] गाली गलौज। अपशब्द। उ०—लामकाफ वे कहैं इमान को नाहीं डरते।—पलटू०, पृ० १८।

लामज—संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] एक प्रकार का तृण।

विशेष—यह तृण उत्तर प्रदेश, पंजाब और सिंध में प्रायः बारहो महीने पाया जाता है। यह खस की तरह का और कुछ पीले रंग का होता है; इसलिये इसे 'पीलाबाला' भी कहते हैं। इसकी जड़ के पास का भाग मोटा होता है और उसपर रोएँ होते हैं। इसका डंठल सीधा होता है, जिसपर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। वैद्यक में इसे उत्तेजक, आमवात में पसीना लानेवाला, रुधिर को साफ करनेवाला, अजीर्ण, खाँसी आदि दूर करनेवाला और विशूचिका तथा ज्वर में लाभकारी माना जाता है।

लामज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लामज नामक तृण। वि० दे० 'लामज'। २. खस। उशीर।

लामन‡—संज्ञा पुं० [सं० लम्बन] १. लटकना। झूलना। २. लहँगा। ३. स्त्रियों की साड़ी का निचला भाग।

लामय—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर भूमि में पाई जाता है।

लामा[१]—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत या मंगोलिया के बौद्धों का धर्माचार्य, जो अनेक अंशों में उनका राजनीतिक शासक भी होता है। ऐसा धर्माचार्य सदा साधु और विरक्त हुआ करता है और मठों में रहता है।

लामा[२]—संज्ञा पुं० [पेरू देश की भाषा] घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु जो ऊँट की तरह का होता है।

विशेष—आकार में यह जंतु ऊँट से कुछ छोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता है। यह बहुत चपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है तब तक पानी की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उँगलियाँ अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उंगली में एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोएँ बहुत मुलायम होते हैं और इसकी खाल का चरसा बहुत अच्छा होता है; इसीलिये कुत्तों की सहायता से इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है तब यह उसपर थूक देता है, जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशा में इसे 'ग्वाना' और पालतू दशा में 'लामा' कहते हैं।

लामा[३]—वि० [सं० लम्ब] [वि० स्त्री० लामी] दे० 'लंबा'। उ०—(क) ऊधो हरि काहे के अंतर्यामी। अजहुँ न आइ मिले इहि औसर अवधि बतावत लामी।—सूर (शब्द०)। (ख) लामी लूम लसत लपेटि पटकत भट देखो देखो लखन लरनि हनुमान की।—तुलसी (शब्द०)।

लामी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फल जो प्रायः बालिश्त डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और दिल्ली तथा राजपूताने की ओर पाया जाता है। इसकी तरकारी बनाई जाती है।

लामें‡—क्रि० वि० [हिं० लाम (=दूर)]। अंतर पर। फासले पर। उ०—बूटी के तार में मिललऽ कि तोहें ले गेलौ। लामें लामें जे बहुत सान बुझावत बाटऽ।—तेग अली (शब्द०)।

यौ०—लामें लामें = दूर दूर से। फासले से।

लाय(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० अलात, प्रा० अलाय] १. लपट। ज्वाला २. आग। अग्नि। उ०—कबीर चित चंचल किया चहुँ दिसि लागी लाय। हरि सुमिरन हाथैं घड़ा लीजे बेगि बुझाय।—कबीर (शब्द०)।

लायक[१]—वि० [अ० लायक़] १. उचित। ठीक। वाजिब। २. उपयुक्त। मुनासिब। जैसे,—लड़के के लायक टोपी चाहिए। उ०—देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. सुयोग्य। गुणवान्। सब बातों में अच्छा। जैसे,—(क) उनके घर के सभी लड़के बहुत लायक हैं। (ख) अब तुम सयाने हुए; कुछ लायक बनो। उ०—सो हम तो सिर बैठन लायक श्रेष्ठ सदा।—गिरधर (शब्द०)। ४. समर्थ। सामर्थ्यवान्। उ०—(क) सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक गुनग्राम को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बहुनायक हौ सब लायक हौ सब प्यारिन के रस को लहिए।—रघुनाथ (शब्द०)।

लायक(५)[२]—संज्ञा पुं० [सं० लाजा] धान का भूना हुआ लावा। लाजक। उ०—बरषा फल फूलन लायक की। जनु है तरुनी रति नायक की।—केशव (शब्द०)।

लायकी—संज्ञा स्त्री० [अ० लायक़+ई (प्रत्य०)] १. लायक होने का भाव या धर्म। २. सुयोग्यता। काबिलियत। जैसे,—यह आपकी लायकी है, जो आप ऐसा कहते हैं।

लायची—संज्ञा स्त्री० [सं० एला] दे० 'इलायची'।

लायन†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० लगना (=बदले में देना)] वह वस्तु जो नगद रुपए लेकर उसके बदले में किसी के पास रखी या उसे दी जाय। बेची या रेहन रखी हुई चीज।

लायन†[२]—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह में कन्या पक्ष की ओर से वर को मिलनेवाला सामान।

लायल—वि० [अं०] राजभक्त।

लायलटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] राजभक्ति।

लार[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाला] १. वह पतला लसदार थूक जो कोई बहुत कड़ूई खट्टी आदि चीज खाने या मुँह में कोई दवा आदि लगाने पर तार के रूप में निकलता है।

मुहा०—मुँह में लार आना = दे० 'मुँह से लार टपकना'। मुँह से लार टपकना = किसी चीज को देखकर उसके पाने की परम लालसा होना। मुँह में पानी भर आना।

२. कतार। पंक्ति। ३. लासा। लुआब। उ०—सो मुख चूमति महरि यशोदा दूध लार लपटानी हो।—सूर (शब्द०)।

लार[2]—क्रि० वि० [? मि० मरा० लैर (=पीछे)] साथ। पीछे। उ०—(क) सत्ती जरि कोइला भई मूए मरे की लार। जउँ वह जरती राम सों साँचे सँग भरतार।—दादू (शब्द०)। (ख) अंधे अंधा मिल चले दादू बाँधि कतार। कूप पड़े हम देखनाँ अंधे अंधा लार।—दादू (शब्द०)। (ग) जो निर्गुण सुमिरन करैं दिन में सौ सौ बार। नगर नायका सत करै जरै कौन की लार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—लार लगाना = फँसाना। बझाना। उ०—(क) षट दरसन पाखंड छ्यानवे भरमि परयो संसार। बेद पुरान सबै मिलि गावैं कर्म लगायो लार।—कबीर (शब्द०)। (ख) जन्म जन्म के दूत तिरोवन कोनहि लार लगाए।—सूर (शब्द०)।

लारी—संज्ञा स्त्री० [अं० लॉरी] यात्रियों के आवागमन के काम आनेवाली बड़ी मोटरगाड़ी। बस [को०]।

लारू(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० लाडू] लड्डू।

लार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १. परमेश्वर। ईश्वर। २. मालिक। स्वामी। ३. भूम्यधिकारी। जमींदार। ४. इंग्लैंड के बड़े बड़े जमीदारों और रईसों आदि को मिलनेवाली कतिपय बड़ी उपाधियों का सूचक शब्द, जो उनके नाम के पहले लगाया जाता है। जैसे,—लार्ड कर्जन, लार्ड रीडिंग।

लार्ड सभा—संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आव लार्ड्स] ब्रिटिश पार्लमेंट की वह शाखा या सभा जिसमें बड़े बड़े तालुकेदारों और अमीरों के प्रतिनिधि होते हैं। इनकी संख्या लगभग ७०० है। इसे हाउस आव लार्ड्स् कहते हैं।

लाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० लालक] १. छोटा और प्रिय बालक। प्यारा बच्चा। २. बेटा। पुत्र। लड़का। उ०—(क) जसुमति माय लाल अपने को शुभ दिन डोल झुलायो। फगुवा दियो सकल गोपिन को भयो सबन मन भायो।—सूर (शब्द०)। (ख) केहिके अब मैं शरणै जावों। बोलौ लाल बहुत दुख पावों।—विश्राम (शब्द०)। ३. प्रिय व्यक्ति। प्यारा आदमी। उ०—(क) आजु यासों बोलि चालि हँसि खेलि लेहु लाल काल्हि ऐसी ग्वारि लाऊँ काम की कुमारी सी।—केशव (शब्द०)। (ख) बरनत कबि जोहै मुग्धा के भेदन में ललिता ललित सों प्रघट लाल लखि लेहु।—रघुनाथ (शब्द०)। ४. प्रणयी। प्रेमी। उ०—(क देत जताए प्रगट जो जावक लागौ भाल। नव नागरि के नेह सों भले बने हौ लाल।—रसनिधि (शब्द०)। (घ) मेरेई उर गड़ि गए तेरेई दृग लाल। जनि पतियाउ लखौ इन्हैं दरपन लैकै लाल।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः कविता और बोलचाल में किसी प्रिय व्यक्ति के लिये संबोधन के रूप में होता है।

५. श्रीकृष्ण चंद्र का एक नाम। उ०—सुमन कुंज बिहरत सदा दै गलबाँहीं लाल। बंदौं चरन सरोज नित जुगुल लाडिली लाल।—मन्नालाल (शब्द०)।

लाल[2]—संज्ञा पुं० [सं० लालन] दुलार। लाड़। प्यार। उ०—जो बन सायर मुरझै रसिया लाल कराय। अब कबीर पाँजी परे पंथी आवहिं जाय।—कबीर (शब्द०)।

लाल[3]—संज्ञा पुं० [सं० लाला] पतला थूक जो प्रायः बच्चों और वृद्धों के मुँह से बहा करता है। लाला। लार।

लाल(पु)†[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० लालसा] लालसा। इच्छा। अभिलाषा। चाह। उ०—(क) सुभ्र कलाई अति बनी सुभ्रजघ गज चाल। सोरह शृंगार बरन के करहिं देवता लाल।—जायसी (शब्द०) (ख) सुर नर गंध्रब लाल कराहीं। उलटे चलहिं स्वर्ग कहँ जाहीं।—जायसी (शब्द०)।

लाल[5]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मानिक या माणिक्य नाम का रत्न। विशेष दे० 'मानिक'। उ०—(क) कंचन के खंभ मयारि मरुवा-डाँडी खचि हीरा बिच लाल प्रबाल।—सूर (शब्द०)। (ख) यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को।—केशव (शब्द०)। (ग) कुंदन सी यह बाल कौं हीरा लाल लगाइ। रतन जटित की दुति तबै लीला दृग सरसाइ।—रसनिधि (शब्द०)। (घ) नख नग जाल लाल अंगुलि प्रबाल माल नूपुर मराल ये अनूप रव नाँउड़े।—देव (शब्द०)।

मुहा०—लाल उगलना = बहुत अच्छी और प्यारी बातें कहना। मीठी और सुंदर बातें कहना।

लाल[6]—वि० १. मानिक, बीरबहूटी या लहू आदि के रंग का। रक्त वर्ण। सुर्ख। उ०—(क) लोचन लाल विसाल चारु मंदार माल गर।—गोपालचंद्र (शब्द०)। (ख) फूल फूले हैं क्या ही रंगीले। कोई ऊजरो कोई लाल पीले।—सं० शार्कु० (शब्द०)। (ग) कौने दियो यह भाल मैं लाल गुलाब को फूल कहो कहँ पायौ।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

यौ०—लाल अंगारा या लाल भभूका = जो जलने आदि के कारण अंगारों की तरह लाल रंग का हो गया हो। ताप के कारण बहुत अधिक लाल। लाल बिंब = बहुत अधिक लाल।

२. जिसका चेहरा क्रोध के मारे तमतमा गया हो। जिसके चेहरे से गुस्सा मालूम होता हो। बहुत अधिक क्रुद्ध। जैसे,—बातों बातों में लाल क्यों होते हो ?

मुहा०—लाल आँखें निकालना या दिखाना = क्रोध से आँखें लाल करना। गुस्से से देखना। लाल पड़ना या होना = क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—दशरथ लाल ह्वै कराल कछु लाल परि, भाषत भयोई नेनु रावणै न गनहौं।—पद्माकर (शब्द०)। लाल पीले होना = गुस्सा होना। क्रोध करना। उ०—हैं हैं! एक बारगी इतने लाल पीले हो गए।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। लाल हो जाना = क्रोध में भर जाना। गुस्से में होना। लाल होना = क्रुद्ध होना। नाराज होना।

३. (चौसर के खेल में गोटी) जो चारो ओर से घूमकर बिलकुल बीच के खाने में पहुँच गई हो, और जिसके लिये कोई चाल बाकी न रह गई हो। ४. (चौसर के खेल में खिलाड़ी) जिसकी सब गोटियाँ बीच के घर में पहुँच गई हों और जिसे कोई चाल चलना बाकी न रह गया हो। (ऐसा खिलाड़ी जीता हुआ समझा जाता है।) ५. जो खेल में औरों से पहले जीत गया हो (खेलाड़ी)।

मुहा०—लाल होना = (१) बहुत अधिक सपत्ति पाकर संपन्न होना। निहाल होना। जैसे, उस मकान में गड़ा हुआ खजाना पाकर वह लाल हो गया। (२) चौसर आदि के खेल में जीत जाना।

लाल[७]—संज्ञा पुं० १. एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया। लालमुनी। रायमुनी। उ०—(क) तूती लाल कर करे सारस झगर तोते तीतर तुरमनी बटेर गहियत हैं।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) लालन को पिंजरा कर लाल लिए प्रति कुंजन कुंजन ज्वै रहे। —जसवंत (शब्द०)।

विशेष- इसका शरीर कुछ भूरापन लिए लाल रंग का होता है और जिसपर छोटी छोटी सफेद बुंदकियाँ पड़ी रहती हैं। यह बहुत कोमल और चंचल होता है और इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे प्रायः पालते हैं। इसकी मादा को 'मुनियाँ' कहते हैं।

२. चौपायों के मुँह का एक रोग।

लाल अंबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + अंबारी] एक प्रकार का पटुआ जिसके बीज दवा में काम आते हैं। २. पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा जिसे पटवा भी कहते हैं। विशेष दे० 'पटवा'।

लाल अगिन—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + अगिन] प्रायः एक बालिश्त लंबा भूरे रंग का एक प्रकार का अगिन पक्षी।

विशेष—इस पक्षी का गला नीचे की ओर सफेद होता है। यह मध्य भारत तथा उड़ीसा में अधिकता से पाया जाता है; और घास फूस से प्याले के आकार का घोंसला बनाकर उसमें चार तक अंडे देता है।

लाल आलू—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + आलू] १. रतालू। २. अरुई।

लाल इलायची—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + इलायची] बड़ी इलायची। विशेष दे० 'इलायची'।

ललाक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] विदूषक [को०]।

ललाक[२]—वि० [सं०] लाड़ प्यार करनेवाला [को०]।

लला कच्चू—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + कच्चू] गजकर्ण आलू। बंडा।

लाल कलमी—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + कलमी] चाँदनी या गुल-चाँदनी नाम का पौधा या उसका फूल।

लालकीन—संज्ञा पुं० [चीनी० नानकिङ्] एक प्रकार का वस्त्र। विशेष दे० 'नानकीन'।

लाल घास—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + घास] गोमूत्र नामक तृण।

लाल चंदन—संज्ञा पुं० [हिं० लाल = चंदन] एक प्रकार का चंदन। रक्त चंदन। देवी चंदन।

विशेष—लाल चंदन का पेड़ कद में छोटा होता है और यह मैसूर प्रांत तथा अरकाट में बहुतायत से पाया जाता है। इसके ऊपर की लकड़ी सफेद और हीर की लकड़ी कुछ कालापन लिए लाल होती है। इसे घिसने से बहुत ही लाल रंग और अच्छी सुगंध निकलती है। यह भी चंदन की तरह माथे पर लगाया जाता है। विशेष दे० 'चंदन'।

लालच—संज्ञा पुं० [सं० लालसा] [वि० लालची] कोई पदार्थ, विशेषतः धन आदि प्राप्त करने की इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो। कोई चीज पाने की बहुत बुरी तरह इच्छा करना। लोभ। लोलुपता। जैसे,—हर काम में बहुत ज्यादा लालच करना ठीक नहीं है।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—छाना।—पकड़ना।—बढ़ना।—मरना।—होना।

मुहा०—लालच देना = किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। जैसे,—उसने लड़के को मिठाई का लालच देकर उसके सब गहने ले लिए।

लाल चकवी—संज्ञा पुं० [सं० लालिक] भैंसा। (डिं०)।

लालचहा—वि० [हिं० लालच + हा (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लालची। लोभी। उ०—घुघुरुन को सोर सुने सकुचै पिय होत ज्यौं ज्यौं अति लालचहा।—मन्नालाल (शब्द०)।

लालचोंच—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चोंच] शुक। तोता। (डिं०)।

लालची—वि० [हिं० लालच + ई (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लोभी।

लाल चीता—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीता] लाल फूल का चित्रक या चीता। विशेष दे० 'चीता'।

लाल चीनी—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीनी] एक प्रकार का कबूतर, जिसका सारा शरीर सफेद और सिर पर लाल छिटकियाँ होती हैं।

लालटेन- संज्ञा स्त्री० [अं० लैंटर्न] किसी प्रकार का वह खाना आदि जिसमें तेल का खजाना और जलाने के लिये बत्ती लगी रहती है; और जिसके चारों ओर, तेज हवा और पानी आदि से बचाने के लिये शीशा या इसी प्रकार का और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। कंडील।

विशेष—इसका व्यवहार प्रकाश के लिये ऐसे स्थानों पर होता है, जहाँ या तो प्रकाश को प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की अवश्यकता होती है और या ऐसी जगह स्थायी रूप से रखने के लिये होता है, जहाँ चारों ओर से हवा आया करती हो।

लामड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० लाल (= रत्न) + ड़ी (प्रत्य०)] लाल रंग का एक प्रकार का नगीना जो प्रायः नथों और बालियों आदि में मोती के दोनों ओर लगाया जाता है।

लाल दाना—संज्ञा पुं० [हिं० लाल + दाना] लाल रंग का पोस्ते का दाना। लाल खसखस। (पूरब)।

लालन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यंत स्नेह करना। प्रेमपूर्वक बालकों का आदर करना। लाड़। प्यार।

यौ०—लालन पालन।

३. एक प्रकार का चूहा जो विषैला होता है (को०)।

लालन[२]—संज्ञा पुं० [हिं० लाला] १. प्रिय पुत्र। प्यारा बच्चा। उ०—भूख लगी ह्वै है लालन को लाबो वेगि बुलाई।—सूर (शब्द०)। २. कुमार। बालक। उ०—भाल के लाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीन्हे।—केशव (शब्द०) दे० 'लाल'।

लालन[३]—क्रि० अ० लाड़ करना। प्यार करना। उ०—लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहि न होने।—तुलसी (शब्द०)।

लालन[४]—वि० [सं०] प्यार करनेवाला। दुलार करनेवाला [को०]।

लालनी[५]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चिरौंजी। प्रियाल।

लालनाⓟ—क्रि० स० [सं० लालन] दुलार करना। लाड़ करना। प्यार करना। उ०—(क) चाहि चुचुकारि चूमि लालन लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कल्पबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।—तुलसी (शब्द०)।

लालनीय—वि० [सं०] लालन करने योग्य। दुलार या प्यार करने लायक।

लालपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+परी] शराब। मदिरा।

लालपानी—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+पानी] शराब। मद्य।

लाल पिलका—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+पिलका] लाल रंग का एक प्रकार का कबूतर जिसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लालपेठा—संज्ञा पुं० [हिं लाल+पेठा] कुम्हड़ा।

लाल बुझक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+बूझना] बातों का अटकल-पच्चू मतलब लगानेवाला। वह जो कोई बात जानता तो न हो, पर यों ही अंदाज लड़ाता हो। (व्यंग्य)।

लालबेग—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+तु० बेग] १. लाल रंग का एक प्रकार का परदार कीड़ा। २. मुसलमान भंगियों और मेहतरों के एक कल्पित पीर का नाम।

लालबेगी—संज्ञा पुं० [हिं० लालबेग+ई (प्रत्य०)] वह जो लालबेग का अनुयायी हो। भंगी। मेहतर।

लालभरेंडा—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+भरेंड़ा ?] एक प्रकार का छोटा झाड़। उँदरबीबी।

विशेष—यह झाड़ भारत के गरम प्रांतों में उत्पन्न होता है। इसके बीजों में से तेल निकलता है, जो गठिया के रोग में काम आता है। इसको उँदरबीबी भी कहते हैं।

लालमन—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+मणि] १. श्रीकृष्ण। उ०—कीन्हे चरित लालमन जोई। सुमिरि सुमिरि अब आवत रोई।—विश्राम (शब्द०)। २. एक प्रकार का तोता जिसका सारा शरीर लाल, डैने हरे, चोंच गुलाबी और दुम काली होती है।

लालमिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मिर्च'—१।

लालमी—संज्ञा पुं० [देश०] खरबूजा।

लालमुहाँ—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+मुँह] एक प्रकार का निनावाँ जिसमें मुँह के अंदर छाले पड़ जाते हैं और उसका रंग लाल हो जाता है।

लालमुनी—संज्ञा पुं० [हिं०] लाल पक्षी। विशेष दे० 'लाल'। उ०—ते अपने अपने मिलि निकसी भाँति भली। मनु लाल मुनिन की पाँति पिंजर दूरि चली।—सूर (शब्द०)।

लालमुरगा—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+मुरगा] १. एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है। यह दो फुट से अधिक लंबा होता है। २. मयूरशिखा। ३. गुल मखमली नामक पौधा।

लालमूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+मूली] शलजम। सलगम।

लालरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+री] दे० 'लालड़ी'। उ०—(क) छबि होती भली गजमोती के बीच जौ होती बड़ी बड़ी लालरिया।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। (ख) लाल की बेंदुली लालरी की लरिया जुत आइ निछावरि कीने।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ६८।

लाललाडू—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+लाडू (=लड्डू)] दक्षिण भारत में होनेवाली एक प्रकार की नारंगी।

लालशक्कर—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+शक्कर] बिना साफ की हुई चीनी। खाँड़।

लालस[१]—वि० [सं०] १. चंचल। २. लोलुप। ३. किसी वस्तु की तीव्र कामनावाला। ४. लीन। तल्लीन [को०]।

लालस[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लालसा। उ०—लालस चिंता गुन कथन स्मृति उद्वेग प्रलाप।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १५५। २. तल्लीनता [को०]।

लालसक—वि० [सं०] दे० 'लालस'[१] [को०]।

लालसफरी—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+सफरी ?] अमरूद।

लालसमुद्र—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+समुद्र] दे० 'लालसागर'।

लालसर—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+सर] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और सिर लाल रंग का होता है, छाती चितकबरी और पीठ काली होती है तथा डैना सुनहरे रंग का होता है।

लालसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक उत्कंठा या अभिलाषा। बहुत अधिक इच्छा या चाह। लिप्सा। उ०—एक लालसा बड़ि उर माँही। सुगम अगम सुजात कहि नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. उत्सुकता। ३. वह अभिलाषा जो गर्भिणी स्त्री के मन में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है। दोहद। विशेष दे० 'दोहद'। ४. किसी से कुछ माँगना या चाहना। ५. दुःख। अनुताप। खेद (को०)। ६. एक छंद का नाम (को०)।

लालसा—वि० लोल। चंचल।

लालसाग—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+साग] मरसा नाम का साग।

लालसागर—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+सागर] भारतीय महासागर का वह अंश जो अरब और अफ्रिका के मध्य में पड़ता है, और जो बाब एल मंदब से स्वेज तक फैला हुआ है। लाल समुद्र। रेड सी (अं०)।

विशेष—यह सागर प्रायः १४०० मील लंबा है और इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई २३० मील है। इसके किनारों पर बहुत से छोटे छोटे टापू और प्रवालद्वीप हैं, जिनके कारण जहाजों को इसमें से होकर आने जाने में बहुत कठिनता होती है। पहले यह भूमध्यसागर से अलग था; पर स्वेज की नहर खुद जाने से यह उससे मिल गया है। इसके पानी में कुछ ललाई झलकती है; इसी से इसे लाल सागर कहते हैं।

लालसिखा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लालशिखी'।

लालशिखी†—संज्ञा पुं० [हिं० लाल+शिखा] अरुणचूड़। मुर्गा। उ०—प्रात उठी रतिमान भट्ट धुनि लालसिखी को हिये खटकी है।—मन्नालाल (शब्द०)।

लालसिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+सिरा (=सिर)] एक प्रकार की बत्तख जिसका सिर लाल होता है।

लालसी(पु)—वि० [सं० लालसा+ई (प्रत्य०)] अभिलाषा करनेवाला। इच्छा करनेवाला। उत्सुक। उ०—सो हरि के पद के हम लालसी माया कि है न जहाँ प्रभुताई।—रघुराज (शब्द०)।

लालसीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिलगिला। पिच्छिल। २. रसयुक्त वस्तु। सूप। शोरबा (को०)।

लाला[1]—संज्ञा पुं० [सं० लालक] १. एक प्रकार का संबोधन जिसका व्यवहार किसी का नाम लेते समय उसके प्रति आदर दिखलाने के लिये किया जाता है। महाशय। साहब। जैसे,—लाला गुरदयाल आज यहाँ आनेवाले हैं।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पश्चिम में खत्रियों, और बनियों आदि के लिये अधिकता से होता है।

मुहा०—लाला भइया करना=किसी को आदरपूर्वक संबोधन करना। इज्जत के साथ बातचीत करना।

२. कायस्थ जाति या कायस्थों का सूचक एक शब्द।

यौ०—लाला भाई=कायस्थ।

३. छोटे प्रिय बच्चे के लिये संबोधन। प्रिय व्यक्ति, विशेषतः बालक। उ०—आनँद की निधि मुख लाला को, ताहि निरखि निसिवासर सो तो छबि क्योंहूँ न जाति बखानी।—सूर (शब्द०)।

लाला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुँह से निकलनेवाली लार। थूक।

लाला[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पोस्ते का लाल रंग का फूल जिसमें प्रायः काली खसखस पैदा होती है। गुले लाला। उ०—कोऊ कहै गुल लाला गुलाल की कोऊ कहै रँग रोरी के आब की।—द्विज (शब्द०)।

लाला[4]—वि० [हिं० लाल] लाल रंग का। विशेष दे० 'लाल'। उ०—(क) पारथ भयो विलोचन लाला। लाखि अनर्थक धर्म भुवाला।—सबल (शब्द०)। (ख) केकी के काकी कका कोक कीक का कोक। लोल लालि लोलै लली लाला लीला लोल।—केशव (शब्द०)।

लाला[5]—संज्ञा पुं० [सं० लाला या लालायित] १. दे० 'लाले'। २. संकट। आफत।

लालाक्लिन्न—वि० [सं०] लार से भीगा हुआ [को०]।

लालाटिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० लालाटिकी] ललाट संबंधी। २. भाग्याधीन। ३. निम्न। नीच। निकम्मा। बेकार। ४. सावधान। दत्तचित्त [को०]।

लालाटिक[2]—संज्ञा पुं० १. स्वामी के कार्य में दत्तचित्त सेवक। २. बेकार या बेपरवाह व्यक्ति। ३. एक प्रकार का आलिंगन [को०]।

लालाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाट [को०]।

लालाध—संज्ञा पुं० [सं०] गश। मूर्छा [को०]।

लालापान—संज्ञा पुं० [सं०](बच्चों द्वारा) अपना अँगूठा चूसना [को०]।

लालाप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मुँह की लार की तरह तार बँधकर पेशाब होता है।

लालाभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

विशेष—कहते हैं, जो लोग बिना देवताओं आदि को भोग लगाए अथवा बिना अतिथियों को भोजन कराए आप भोजन कर लेते हैं, वे इसी नरक में जाते हैं।

लालामेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लालाप्रमेह'

लालायित—वि० [सं०] १. जिसके मुँह में बहुत अधिक लालच के कारण पानी भर आया हो। ललचाया हुआ। २. जिसका बहुत अधिक लालन किया गया हो। दुलारा।

लालालु—वि० [सं०] दे० 'लालायित'।

लालाविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके मुँह की लार में विष हो। जैसे,—मकड़ी आदि।

लालासव—संज्ञा स्त्री० [सं० लालास्रव] मकड़ी। (डिं०)।

लालास्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह से लार बहना। २. मकड़ी।

लालास्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँह से थूक या लार गिरना। २. मकड़ी का जाला।

लालिक—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा। महिष।

लालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विनोदपूर्ण उत्तर [को०]।

लालित[1]—वि० [सं०] १. जिसका लालन किया गया हो। दुलारा हुआ। लड़ाया हुआ। प्रिय। प्यारा। २. जो पाला पोसा गया हो। उ०—मुझसे ही विद्रोह कर चले मेरे ये लालित इंद्रियगण।—अपलक, पृ० ७७।

लालित[2]—संज्ञा पुं० १. प्रसन्नता। आनंद। २. प्रेम। प्रियता। दुलार [को०]।

लालितक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रिय या दुलारा व्यक्ति [को०]।

लालित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ललित होने का भाव। सौंदर्य। सुंदरता। सरसता। मनोहरता। जैसे,—आपकी भाषा में बहुत अधिक लालित्य होता है। २. शृंगारिक चेष्टा। हाव भाव। विभ्रम (को०)।

लालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुंश्चली या कामुक स्त्री। दुश्चरित्रा औरत।

लालिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाली। ललाई। अरुणता। सुर्खी।

लाली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + ई (प्रत्य०)] १. लाल होने का भाव। अरुणता। लालपन। सुर्खी। २. इज्जत। पत। आबरू। जैसे,—(क) आज आपकी ही कृपा से उनकी लाली रह गई। (ख) मेरी लाली तुम्हारे हाथ है।

विशेष—कभी कभी खाली 'लाली' और कभी कभी 'मुँह की लाली' भी बोलते हैं।

३. पीसी हुई ईंटें जो चूने में मिलाई जाती हैं। सुरखी।

लाली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] आसाम की एक नदी का नाम।

लाली[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० लालिन्] वह व्यक्ति जो स्त्रियों को बहकाकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करता हो।

लाली[4]—वि० दुलार करनेवाला। प्यार करनेवाला [को०]।

लाली[5]—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूत प्रेत आदि से आविष्ट होना [को०]।

लालील—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

लालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले में पहनने का एक प्रकार का हार।

लाले—संज्ञा पुं० [सं० लाला या लालायित] लालसा। अभिलाषा। इच्छा। अरमान। जैसे,—हमें तो आपके देखने के ही लाले हैं।

मुहा०—किसी चीज के लाले पड़ना = किसी चीज के देखने या पाने के लिये बहुत तरसना। किसी चीज के अप्राप्य या पहुँच के बाहर होने के कारण बहुत अधिक लालायित होना।

२. आफत। विपत। संकट।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में होता है।

लालो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लाले'।

लालोलाल—वि० [हिं० लाल + लाल] आनंदमग्न। मस्त। सुर्खरू। उ०—रामसिंह गाड़ी ले जाते थे, माल अधिक बिकता था। आजकल लालोलाल हैं।—काले०, पृ० २१।

लाल्य—वि० [सं०] लालन करने योग्य। दुलार करने लायक।

लाल्हा†—संज्ञा पुं० [हिं० लाल साग (= मरसा)] मरसा नामक साग। उ०—चौलाई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआनि निचोई।—सूर (शब्द०)।

लाव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लवा नामक पक्षी। विशेष दे० 'लवा'। २. लौंग। ३. काटना या खंडित करना।

लाव[2]—वि० १. काटनेवाला। खंडित करनेवाला। २. अवचयन करनेवाला। चयनकर्ता। एकत्र करनेवाला। ३. नष्ट भ्रष्ट या विध्वस्त करनेवाला [को०]।

लाव(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाय (= आग)] १. अग्नि। आग। आँच। २. लौ। लगन।

लाव[4]—संज्ञा स्त्री० [देश० या सं० रज्जु] १. वह मोटा रस्सा जिससे चरसा खींचते या इसी प्रकार का और कोई काम करते हैं। रस्सा। लास।

मुहा०—लाव चलाना = चरसे के द्वारा कूएँ से पानी खींचकर खेत सींचना।

२. रस्सी। डोरी। रज्जु। उ०—फिरि फिरि चितउत ही रहतु टुटी लाज की लाव। अंग अंग छबि झौर में भयौ भौर की नाव।—बिहारी (शब्द०)। ३. उतनी भूमि जितनी एक दिन में एक चरसे से सींची जा सके।

लाव[5]—संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] वह ऋण जो किसी की चीज अपने पास बंधक रखकर उसे दिया जाय।

मुहा०—लाव उठाना = (१) चीज बंधक रखकर रुपया उधार देना। (२) किसानों को उनके कष्ट के समय ऋणस्वरूप धन देना। तकावी बाँटना।

लावक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लवा पक्षी। उ०—तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा।—तुलसी (शब्द०) २. काटने या खंड करनेवाला व्यक्ति (को०)। ३. वह जो अवचयन करे। काटकर इकट्ठा करनेवाला। कटैया (को०)।

लावक[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. चावल की जाड़े की फसल। २. चरसा। ३. मोट खींचने में बैलों के एक बार जाने और आने का काल।

लावज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

लावज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंघनी। नस्य। २. लवणसमुद्र।

लावण—वि० [सं०] १. जिसका संस्कार लवण द्वारा हुआ हो। २. लवण का। नमकीन। उ०—लावण लाडु अरी पकवाँन। सेना सहित राज जीमीयौ।—बी० रासो, पृ० १११।

लावणसैंधव—वि० [सं० लावण सैन्धव] समुद्रतट पर स्थित [को०]।

लावणा—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

लावणिक[1]—वि० [सं०] १. जिसका लवण द्वारा संस्कार हुआ हो। २. लवण संबंधी। नमक का। ३. लावण्ययुक्त। मनोहर। सुंदर (को०)।

लावणिक[2]—संज्ञा पुं० १. वह जो नमक बेचता हो। २. नमक का सौदागर। ३. वह पात्र जिसमें नमक रखा जाता है। नमकदान।

लावण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. लवण का भाव या धर्म। नमकपन। २. अत्यंत सुंदरता। नमक। लोनाई। उ०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन विशाल। नीलकंठ लावण्य निधि सोह बालविधु भाल।—तुलसी (शब्द०)। ३. शील की उत्तमता। स्वभाव का अच्छापन।

यौ०—लावण्यकलित = रूपसंपन्न। सौंदर्ययुक्त। लावण्यकांति = सौंदर्य की दीप्ति वा प्रभा। लावण्यनिधि = सौंदर्य वा शोभा के समुद्र वा खजाना। लावण्यमय = सौंदर्ययुक्त। प्रिय। सुंदर। लावण्यलक्ष्मी, लावण्यश्री = अत्यंत शोभा। अतिशय सौंदय।

लावण्यवान्—वि० [सं० लावण्यवत्] सौंदर्ययुक्त। प्रिय। सुंदर [को०]।

लावण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की बूटी।

लावण्यार्जित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रीधन। वह धन जो विवाहिता स्त्री को सास, ससुर आदि से प्राप्त हो [को०]।

लावण्यार्जित²—वि० सुंदरता के कारण प्राप्त । लोनाई के माध्यम से अर्जित ।

लावदार¹—वि० [हिं० लाव (=आग)+फ़ा० दार (प्रत्य०)] (तोप) जो छोड़ी जाने या रंजक देने के लिये तैयार हो । उ०—लावदार रक्खो किए सबै अरावौ एहु । ज्यौं हरीफ आवै नजरि तबै धड़ाधड़ देहु ।—सूदन (शब्द०) ।

लावदार²—संज्ञा पुं० तोप में बत्ती लगानेवाला । तोप छोड़नेवाला । तोपची । उ०—किते जजालदार आवदार लावदार हौं । किते निसानवान सान के भरे तयार हौं ।—सूदन (शब्द०) ।

लावन†—संज्ञा पुं० [हिं० लाव (=अग्नि) जलाने के काम आनेवाले पदार्थ । ईंधन । जैसे लकड़ी, कोयला आदि ।

लावनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य+ता (प्रत्य०)] बहुत अधिक सौंदर्य । सुंदरता । खूबसूरती । नमक । उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनता दसचारि नव तीनि एकीस सबै ।—तुलसी (शब्द०) ।

लावना¹—(पु)†—क्रि० स० [हिं० लाना] । उ०—(क) विप्र कह्यौ धन लावनो करन सुता को ब्याह । यहि थल चोर चुराय लिए भयो भोर दुख दाह । —रघुराज (शब्द०) । (ख) जाहि अधप पापी हम चीन्हा । तेहि तव ढिग लावन मन कीन्हा । विश्राम (शब्द०) । (ग) कीन्हेसि मधु लावइ लेइ माखी । कीन्हेसि भँवर पंखि अरु पाँखी ।—जायसी (शब्द०) ।

लावना—क्रि० स० [हिं० लगाना] १. लगाना । स्पर्श कराना । उ०—(क) लावत मैन सुगध लख्यौ सब सौरभ की तन देत दसीहै ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) तुलसिदास कह रूप देखावहु । मेरे शीश पानि निज लावहु ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) मेरे अंग सहत सुगंध सो सही है सदा लावन न देत और ऐसे हैं सुधर्मी ।—रघुनाथ (शब्द०) । (घ) सो मोहि लेइ मँगावई लावइ भूख पिआस । जउँ न होंत अस बइरी केहि काहू कर आस ।—जायसी (शब्द०) । २. जलाना । आग लगाना । उ०—बहुरि इंद्रजित ब्रह्मअस्त्र कृत हनुमत बंधन गाया । सभागमन रावण समुझावन लावन लंक गनायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

लावनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य] सौंदर्य । लावण्य । सुंदरता । नमक । उ०—(क) कोटि काम लावनि बिहारी जा देखत सब दुख नसंत ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ख) सुंदर मुख की बलि बलि जाऊँ । लावनि निधि गुणनिधि सोभानिधि निरखि निरखि जीवत सब गाऊँ ।—सूर (शब्द०) ।

लावनि²—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'लावनी' ।

लावनिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० लखनि (=लावण्य)+ता (प्रत्य०)] दे० 'लावनता' ।

लावनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गाने का एक प्रकार का छंद । २. इस छंद का एक प्रकार जो प्रायः चंग बजाकर गाया जाता है । इसे ख्याल भी कहते हैं । ३. इस प्रकार का कोई गीत ।

लावनीबाज—संज्ञा पुं० [हिं० लावनी+फ़ा० बाज़] लावनी गाने या रचनेवाला । लावनी का प्रेमी ।

लावन्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लावण्य] दे० 'लावण्य' । उ०—छबिन नाम लावन्य भरचौ है । मधुरिम सार सकेलि धरचौ है ।—घनानंद, पृ० २५१ ।

लावबाली¹—संज्ञा पुं० [अ० लाउबाली] १. वह जिसे किसी प्रकार की चिंता आदि न हो । लापरवाह । बेफिक्र । २. वह जिसके विचार, धार्मिक दृष्टि से, बहुत ही स्वतंत्र और उच्छृंखल हों । ३. वह जो सदा निकम्मा घूमा करता हो । आवारा ।

लावबाली²—संज्ञा स्त्री० लावबाली होने का भाव । लावबालीपन ।

लावर—वि० [सं० लपन (=बकना)] दे० 'लाबर' । उ०—भकुआ भरंगो अरु हिलसी हरामजादे लावर दगैल स्यार आँखिन दिखाए तैं ।—ठाकुर०, पृ० २७ ।

लावल्द—वि० [फ़ा०] जिसके बाल बच्चा न हो । निःसंतान ।

लावल्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लावल्द या निःसंतान होने का भाव या अवस्था ।

लावा¹—संज्ञा पुं० [सं० लावक] लवा नामक पक्षी । विशेष दे० 'लवा' । उ०—गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

लावा²—संज्ञा पुं० [सं० लाजा] भुना हुआ धान, ज्वार, बाजरा या रामदाना आदि जो भुनने के कारण फूलकर फूट जाता है और जिसके अंदर से सफेद गूदा बाहर निकल आता है । यह बहुत हलका और पथ्य समझा जाता है और प्रायः रोगियों को दिया जाता है । खील । लाई । फुल्ला ।

क्रि० प्र०—फूटना ।—भूनना ।

यौ०—लावा परछन ।

लावा³—संज्ञा पुं० [अं०] राख, पत्थर और धातु आदि मिला हुआ वह द्रव पदार्थ जो प्रायः ज्वालामुखी पर्वतों के मुख से विस्फोट होने पर निकलता है ।

लावातक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

लावाणक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम जो मगध के पास था ।

लावा परछन—संज्ञा पुं० [हिं० लावा+परछना] विवाह के समय की एक रीति ।

विशेष—इसमें वर के आगे कन्या खड़ी की जाती है और उसके हाथ में एक डलिया दी जाती है । कन्या का भाई उसी डलिया में धान का लावा डालता है । हवन और सप्तपदी इसके बाद होती है ।

लावारा†—वि० [हिं०] आवारा ।

लावारिस—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह मनुष्य जिसका कोई उत्तराधिकारी या वारिस न हो । २. वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी या स्वामी न हो । (क्व०) ।

लावारिसी—वि० [अ० लावारिस] (संपत्ति) जिसका कोई अधिकारी न हो ।

लाविक—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा । महिष [को०] ।

लाविका—संज्ञा स्त्री० [सं० लावा] १. लवा नामक पक्षी । २. भैंस ।

लावु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] लौग्रा । कद्दू । घिग्रा ।

लाव्य—वि० [सं०] लवाई के लायक । काटने योग्य [को०] ।

लाश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी प्राणी का मृतक देह । लोथ । मुरदा । शव ।

मुहा०—लाश उठना = मुर्दा उठना । मौत होना । लाश पर लाश गिरना = लोथ पर लोथ गिरना । लड़ाई में शवों का ढेर लग जाना ।

लाशा[१]—वि० [फ़ा० लाशह्] दुर्बल । क्षीण । कृशकाय [को०] ।

लाशा[२]—संज्ञा पुं० मुरदा । लोथ । शव [को०] ।

लाष[१]—संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] लाख की संख्या वा अंक । दे० 'लाख' ।

लाष[२]—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा] लाख नामक लाल द्रव्य । लाह । उ०—लाष भवन बैठार दुष्ट ने भोजन में विष दीन्हों । सूर (शब्द०) । विशेष दे० 'लाख[२]' ।

यौ०—लाषभवन = लखावर । लाक्षागृह ।

लाषना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'लखना' ।

लापुक—संज्ञा पुं० [सं०] लोभी । लालची ।

लास[१]—संज्ञा पुं० [सं० लास्य] १. एक प्रकार का नाच । दे० 'लास्य' । ललित नृत्य । २. मटक । उ०—लास भरी भौंहन विलास भरे भाल मृदु हास भरे अधर सुधारस चुरे परैं ।—देव (शब्द०) ।

लास[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जूस । रसा । शोरबा । २. उछलकूद । स्वच्छंद क्रीड़ा (को०) । ३. लास्य । एक नृत्य, विशेषतः स्त्रियों का (को०) ।

लास[३]—संज्ञा पुं० [?] उस छड़ के दोनों कोने जिसे पाल बाँधने के लिये मस्तूल में लटकाते हैं । (लश०) ।

मुहा०—लास करना = चलती हुई नाव को रोकने के लिये डाँडों को बहते हुए पानी में बेड़े बल में ठहराना । (लश०) ।

लासक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मयूर । मोर । २. नाचनेवाला । नचनिया । नर्तक । ३. मटका । घड़ा । ४. शिव का एक नाम । (को०) । ५. आलिंगन करना (को०) । ६. इमारत की सबसे ऊँची मंजिल पर बना हुआ कक्ष (को०) । ७. एक अस्त्र का नाम (को०) ।

लासक[२]—वि० १. चमकानेवाला । दीप्तिकारक । २. इधर उधर करता हुआ । क्रीड़ारत (को०) ।

लासकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नटी । नाचनेवाली स्त्री । नर्तकी ।

लासन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाचना । क्रीड़ा करना । २. इधर उधर संचालन करना [को०] ।

लासन[२]—संज्ञा पुं० [अं० लैशिंग] जहाज बाँधने का मोटा रस्सा । लहासी ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०—लासन देना = मस्तूल के चारों ओर रस्सी लपेटना । कौड़ी लेना । (लश०) ।

लासा—संज्ञा पुं० [हिं० लस] १. कोई लसदार या चिपचिपी चीज । चेप । लुआब । उ०—(क) नाम लगि ल्याय लासा ललित वचन कहि व्याध ज्यौं विषय विहंगनि बझावौ ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) चितवनि ललित लकुट लासा लटकनि पिय कापै अलक तरंग ।—सूर (शब्द०) । २. एक विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ जो बहेलिए लोग चिड़ियों को फँसाने के लिये बरगद और गूलर के दूध में तीसी का तेल पकाकर बनाते हैं ।

विशेष—इस लासे को प्रायः वे लोग वृक्षों की डालियों पर लगा देते है; और जब पक्षी उनपर आकर बैठते हैं, तब उनके परों में यह लग जाता है, जिससे वे उड़ नहीं सकते । उस समय बहेलिए उन्हें पकड़ लेते हैं ।

मुहा०—लासा लगाना = किसी को फँसाने के लिये किसी प्रकार का लालच या धोखा देना । फंदे में फँसाना । लासा होना = हरदम साथ लगे रहना । पीछा न छोड़ना ।

लासानी—वि० [अ०] जिसका कोई सानी या जोड़ न हो । अनुपम । अद्वितीय । बेजोड़ ।

लासि—संज्ञा पुं० [सं० लास्य] दे० 'लास्य' । उ०—तांडव लासि और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जा के ।—स्वा० हरिदास (शब्द०) ।

लासिक—वि० [सं०] नर्तक । नाचनेवाला [को०] ।

लासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्तकी । २. पुंश्चली । दुश्चरित्रा । वेश्या । ३. एक नाट्यभेद । एक उपरूपक [को०] ।

लासी[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] जूँ की तरह का एक प्रकार का काला कीड़ा जो गेहूँ के पेड़ों से लगकर उन्हें निकम्मा कर देता है ।

लासी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'लसी' या 'लस्सी' ।

लासु—संज्ञा पुं० [सं० लास्य] दे० 'लास्य' ।

लास्फोटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छेदने का औजार । गिलमिट । बरमा [को०] ।

लास्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य । नाच । २. नाच या नृत्य के दो भेदों में से एक । वह नृत्य जो भाव और ताल आदि के सहित हो, कोमल अंगों के द्वारा हो और जिसके द्वारा शृंगार आदि कोमल रसों का उद्दीपन होता हो ।

विशेष—साधरणतः स्त्रियों का नृत्य ही लास्य कहलाता है । कहते हैं, शिव और पर्वती ने पहले पहल मिलकर नृत्य किया था । शिव का नृत्य तांडव कहलाया और पार्वती का 'लास्य' । यह लास्य दो प्रकार का कहा गया है—छुरित और यौवत । साहित्यदर्पण में इसके दस अंग बतलाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधबाख्य, द्विगूढ़क, उत्तमोत्तमक और युक्तप्रयुक्त ।

३. नट । अभिनेता । नर्तक (को०) ।

लास्यक—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य । नाच [को०] ।

लास्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचनेवाली । नर्तकी [को०] ।

लाह[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा] लाख । चपड़ा । लाही । उ०—जाकी बाँकी वीरता सुनत सहमत धीर जाकी आँच अजहु लसत लंक लाह सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

लाह[२]—संज्ञा पुं० [सं० लाभ, हिं० लाख] लाभ। फायदा। नफा। उ०—(क) दावा धरि पाहरू को आवागौन मिसि ताके भानु ससि अभिमति लाहा में फिरत हैं।—चरण (शब्द०)। (ख) सारहि सब्द विचारिए सोइ सब्द सुख देय। अनसमझा सब्देक है कछू न लाहा लेय।—कबीर (शब्द०)। (ग) लहि जीवनमूरि को लाह अली वै भले जुग चारि लौं जीवो करैं।—द्विजदेव (शब्द०)। (घ) मैं तुमसों कहि राखत हौं यह मान किए कछु ह्वै है न लाहे।—रघुनाथ (शब्द०)।

लाह[३]—संज्ञा स्त्री० [? या सं० लाभ] चमक। आभा। कांति। दीप्ति। उ०–सीसफूल बेनी बेंदी बेसरि और बीरनि मैं हीरनि की लाह में हँसनि छबि छहरी।—देव (शब्द०)।

लाहन†—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह महुआ जो मद्य खींचने के उपरांत देग में बच रहता है। यह प्रायः पशुओं को खिलाया जाता है। २. जूसी और महुए को मिलाकर उठाया हुआ खमीर। ३. किसी प्रकार के पदार्थ का खमीर। ४. वे पेय ओषधियाँ जो गौओं को बच्चा होने पर दी जाती हैं। ५. अनाज ढोने की मजदूरी।

लाहल—संज्ञा पुं० [अ० लाहौल] दे० 'लाहौल'। उ०—लाहल पारख शब्द के जो परखे सो पाक। तामें जो हल्ला करै सोई होइ हलाक।—कबीर (शब्द०)।

लाहिक—वि० [अ० लाहिक़] युक्त होनेवाला। मिलनेवाला [को०]।

लाहीक—संज्ञा पुं० [अ० लाहिक़ह्] किसी शब्द के अंत में लगनेवाला अक्षर या शब्द। प्रत्यय [को०]।

लाही†[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाख, लाह] १. लाल रंग का वह छोटा कीड़ा जो वृक्षों पर लाख उत्पन्न करता है। विशेष दे० 'लाख'। २. इससे मिलता जुलता एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः माघ फागुन में पुरवा हवा चलने पर उत्पन्न होता है और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

लाही[२]—वि० लाह के रंग का। मटमैलापन लिए लाल। उ०—तनसुख सारी, लाही अँगिया, अतलस अँतरौटा, छबि, चारि चारि चूरी पहुँचीनि पहुँची षमकि बनी नकफूल जेब मुख बीरा चोका कौंधें सभ्रम भूली।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

लाही[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लावा] धान, बाजरे आदि के भूने हुए दाने। लावा। लाजा। खील।

यौ०—लाही का सत्तू = धान की खीलों को पीसकर बनाया हुआ सत्तू जो बहुत हलका होता है और प्रायः रोगियों को पथ्य के रूप में दिया जाता है।

लाही[४]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. सरसों। २. काली सरसों। ३. तीसरी बार का साफ किया हुआ शोरा।

लाहुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० लाभ] नफा। फायदा। प्राप्ति। लाभ। उ०—(क) हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु, बेद बिदित सब काहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मूकनि बचन लाहु मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन तारे।—तुलसी (शब्द०)।

लाहूत—संज्ञा पुं० [अ०] १. संसार। दुनिया। जगत्। मर्त्य लोक। २. समाधि। ब्रह्मलीनता की अवस्था [को०]।

लाहौर—संज्ञा पुं० [देश०] भारत के पश्चिम पंजाब का एक प्रख्यात एवं प्राचीन नगर जो अब पाकिस्तान में है।

लाहौरी नमक—संज्ञा पुं० [हिं० लाहौरी + नमक] सैंधव लवण। सेंधा नमक। विशेष दे० 'नमक'।

लाहौल—संज्ञा पुं० [अ०] एक अरबी वाक्य का पहला शब्द जिसका व्यवहार प्रायः भूत, प्रेत आदि को भगाने या घृणा प्रकट करने के लिये किया जाता है। पूरा वाक्य यह है—'लाहौल बला कूव्वत इल्ला बिल्लाह।' इसका अर्थ है—ईश्वर के सिवा और किसी में कोई सामर्थ्य नहीं।

मुहा०—लाहौल पढ़ना = (१) उक्त वाक्य का उच्चारण करना। (२) बहुत अधिक घृणा प्रकट करना।

लाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू पक्षी।

लिंग—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्ग] १. वह जिससे किसी वस्तु की पहचान हो। चिह्न। लक्षण। निशान। २. न्याय शास्त्र में वह जिससे किसी का अनुमान हो। साधकहेतु। जैसे,—पर्वत में आग है, वहाँ धूम होने के कारण—यहाँ धूम अग्नि का लिंग है; अर्थात् धूम से अग्नि के होने का अनुमान होता है।

विशेष—लिंग चार प्रकार के होते हैं—(क) संबद्ध; जैसे,—धूम अग्नि के साथ संबद्ध है। (ख) न्यस्त; जैसे,—सींग गाय के साथ है। (ग) सहवर्ती; जैसे,—भाषा मनुष्य के साथ है। और (घ) विपरीत; जैसे भला बुरे के साथ है।

३. सांख्य के अनुसार मूल प्रकृति।

विशेष—विकृति फिर प्रकृति में लय को प्राप्त होती है; इसी से प्रकृति को लिंग कहते हैं।

४. पुरुष का चिह्नविशेष जिसके कारण स्त्री से उसका भेद जाना जाता है। पुरुष की गुप्त इंद्रिय। शिश्न।

पर्या०—उपस्थ। मदनांकुश। मोहन। कंदर्पमुषल। शेफस्। मेढ़। ध्वज। साधन।

५. शिव की एक विशेष प्रकार की मूर्ति। ६. एक पुराण का नाम।

विशेष—लिंग पुराण में लिखा है कि शिव के दो रूप हैं। निष्क्रिय और निर्गुण शिव अलिंग हैं और जगत्कारण रूप शिव लिंग हैं। अलिंग शिव से ही लिंग शिव की उत्पत्ति हुई है। शिव को लिंगी भी कहते हैं; और वह इसलिये कि लिंग या प्रकृति शिव की ही है। इस प्रकार लिंग जगत्कारण रूप शिव का प्रतीक है। पद्मपुराण में शिव के इस रूप के संबंध में यह कथा है—एक बार मंदराचल पर ऋषियों ने बड़ा भारी यज्ञ किया। वहाँ उन्होंने यह चर्चा छेड़ी कि ऋषियों का पूज्य देवता किसे बनाना चाहिए। अंत में यह निश्चय हुआ कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनों के पास चलकर इसका निर्णय करना चाहिए। सब ऋषि पहले शिव के पास गए। पर उस समय वे पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे; इससे नंदी ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। ऋषियों को प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया। इस-पर भृगु ऋषि ने कोप करके शाप दिया—'हे शिव! तुमने

कामक्रीड़ा के वशीभूत होकर हमारा अपमान किया, इससे तुम्हारी मूर्त्ति योनि लिंग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा'। पर इस कथा के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पद्मपुराण वैष्णवों का पुराण है।

किसी समय जगत्कारण के रूप में देवता या ईश्वर की उपासना के लिये लिंग का ग्रहण प्राचीन मिस्र, अरब, यहूद, यूनान और रोम आदि देशों में भी था। प्राचीन यूनानी लिंग को 'फेलस' कहते थे। यहूदियों में 'बाल' देवता की प्रतिष्ठा लिंग रूप में ही थी। बाबुल के खंडहरों में मंदिरों के अंदर बहुत से 'लिंग' निकलते हैं, जो भारतीयों के शिवलिंग से बिल्कुल मिलते हैं। पर प्राचीन आर्यों में इस प्रकार की उपासना का पता नहीं लगता। वैदिक समय में कुछ अनार्य जातियों में 'लिंगपूजा' प्रचलित थी, इसका कुछ आभास वेद के एक मंत्र में मिलता है। उसमें 'शिश्नदेवा:' के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट किया गया है। पर कब से वह शिव की प्रतिमा के रूप में गृहीत हुआ, इसका ठीक पता नहीं। इसके अतिरिक्त 'मोहनजोदड़ों' और 'हरप्पा' की खोदाई से प्राप्त अवशेषों में लिंग या उससे मिलते जुलते आकार की उपास्य मूर्तियाँ मिली हैं।

६. व्याकरण में वह भेद जिससे पुरुष और स्त्री का पता लगता है। जैसे,—पुल्लिंग, स्त्रीलिंग। ७. मीमांसा में छह् लक्षण जिनके अनुसार लिंग का निर्णय होता है। यथा—उपक्रम, उपसंहार अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति। ८. अठारह पुराणों में से एक। विशेष दे० 'लिंगपुराण'। ९. जाति। यह दो प्रकार की होती है—पुरुष तथा स्त्री (कौ०)। १०. वेदांत दर्शन के अनुसार सूक्ष्म शरीर। विशेष दे० 'लिंगदेह' (कौ०)। ११. धब्बा। निशान। दाग (कौ०)। १२. संज्ञा का मूल रूप। प्रातिपदिक (कौ०)। १३. कार्य। विपाक। परिणाम। फल (कौ०)। १४. उपाधि (कौ०)। १५. एक प्रकार का संकेत या संबंध (संयोग, वियोग, साहचर्य आदि) जो किसी शब्द के किसी विशिष्ट अर्थ का द्योतन करने में सहायक होता है। अर्थद्योतक शक्ति (कौ०)। १६. प्रमाण। सबूत (कौ०)। १७. छद्म चिह्न, निशान या वेष (कौ०)। १८. रोग का निदान (कौ०)। १९. ईश्वर का प्रतीक चिह्न। देवमूर्ति (कौ०)।

लिंगक—संज्ञा सं० [सं० लिङ्गक] कपित्थ वृक्ष। कैथ।

लिंगजोत्री—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गज्योति] एक विशेष प्रकार से गढ़ा हुआ शिवलिंग। ज्योतिर्लिंग।

लिंगदेह—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गदेह] वह सूक्ष्म शरीर जो इस स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी संस्कार के कारण कर्मों का फल भोगने के लिये जीवात्मा के साथ लगा रहता है। (अध्यात्म)।

विशेष—इसमें ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की सब वृत्तियाँ रहती हैं, केवल उनके स्थूल रूप नहीं रहते। इस देह में सत्रह तत्व माने गए हैं—१० इंद्रियाँ, मन, ५ तन्मात्र और बुद्धि। उ०—लिंगदेह नृप की निज गेह। दस इंद्रिय दासी सों नेह।—सूर (शब्द०)।

लिंगधर—वि० [सं० लिङ्गधर] जो केवल चिह्न धारण किए हो। ढोंगी [कौ०]।

लिंगधारी—वि० [सं० लिङ्गधारिन्] चिह्न धारण करनेवाला।

लिंगन—संज्ञा पुं० [सं०] आलिंगन। छाती से लगाना [कौ०]।

लिंगनाश—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गनाश] १. अँधेरा, जिसमें वस्तु की पहचान न हो सके। तिमिर। अंधकार। २. आँखों का एक रोग जिसमें आँखों के सामने कभी अँधेरा, कभी लाल पीला आदि दिखाई पड़ता है। नीलिका नामक रोग।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार आँख के चौथे पटल में विकार होने से यह रोग होता है। वात, पित्त और कफ के भेद से यह रोग तीन प्रकार का कहा गया है।

३. शिश्न का नाश (कौ०)। ४. उस चिह्न का न रहना जिससे कोई वस्तु जानी जाय। परिचायक निशान, लक्षण आदि का नाश (कौ०)।

लिंगपरिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गपरिवर्तन] दे० 'लिंगविपर्यय'।

लिंगपीठ—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गपीठ] वह आधार जिसपर शिवलिंग स्थापित होता है। जलहरी। अरघा [कौ०]।

लिंगपुराण—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गपुराण] अठारह पुराणों में से एक जिसमें शिव का माहात्म्य और लिंग की पूजा की महिमा वर्णित है।

विशेष—इसकी श्लोकसंख्या ११,००० है। ब्रह्मा इसके मुख्य वक्ता हैं। इसमें शिव ही ब्रह्मा और विष्णु दोनों के अधिष्ठान कहे गए हैं। शिव जी ने अपने मुख से २८ अवतारों का वर्णन किया है। यह एक सांप्रदायिक पुराण है। जिस प्रकार विष्णु ने अपने उपासक अंबरीष राजा की रक्षा की थी, उसी ढंग पर इसमें शिव द्वारा परम शैव दधीचि की रक्षा की कथा लिखी गई है। पहले पद्मकल्प की सृष्टि की उत्पत्ति की कथा देकर फिर वैवस्वत मन्वंतर के राजाओं की वंशावली श्रीकृष्ण के समय तक कही गई है। योग और अध्यात्म्य की दृष्टि से लिंगपूजा का गुह्यार्थ भी बताया गया है।

लिंगप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० लिङ्गप्रतिष्ठा] शिवलिंग की स्थापना [कौ०]।

लिंगवर्धन[1]—वि० [सं० लिङ्गवर्धन] पुरुषेंद्रिय को उत्तेजित करनेवाला [कौ०]।

लिंगवर्धन[2]—संज्ञा पुं० कपित्थ। कैथ [कौ०]।

लिंगवर्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लिङ्गवर्धिनी] अपामार्ग। चिचड़ा।

लिंगवर्धी—वि० [सं० लिङ्गवर्धिन्] दे० 'लिंगवर्धन' [कौ०]।

लिंगवस्तिरोग—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गवस्ति रोग] लिंगार्श नामक रोग।

लिंगवान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गवत्] १. चिह्नवाला। लक्षणवाला। २. जिसमें शब्द के कई लिंग हों। ३. शिवलिंग धारण करनेवाला। जैसे, जंगम आदि।

लिंगवान्[2] संज्ञा पुं० शैवों का लिंगायत नामक संप्रदाय।

लिंगविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गविपर्यय] १. व्याकरण में लिंग का परिवर्तन। २. मानव का पुरुष से स्त्री या स्त्री से पुरुष हो जाना।

लिंगवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० लिङ्गवेदी] शिवलिंग का आधार। जलहरी। अरघा [कौ०]।

लिंगवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गवृत्ति] वह जो केवल बाहरी चिह्न या वेश बनाकर अपनी जीविका पैदा करता हो। आडंबरी। ढकोसलेबाज।

लिंगशरीर—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गशरीर] दे० 'लिंगदेह'।

लिंगशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गशास्त्र] व्याकरण में लिंगविवेचन का प्रकरण। लिंगानुशासन [को०]।

लिंगशोफ—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गशोफ] शिश्नेंद्रिय का शोथ या सूजन [को०]।

लिंगस्थ—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गस्थ] ब्रह्मचारी। (मनुस्मृति)।

लिंगांकित—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गाङ्कित] एक शैव संप्रदाय। वि० 'लिंगायत'।

लिंगाख्य—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गाख्य] सांख्य मतानुसार सृष्टि का एक उपभेद [को०]।

लिंगाग्र—संज्ञा दे० [सं० लिङ्गाख्य] शिश्नेंद्रिय का अगला भाग। मणि [को०]।

लिंगानुशासन—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गानुशासन] लिंगविवेचन शास्त्र। लिंगशास्त्र (व्याकरण)।

लिंगायत—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गायत] एक शैव संप्रदाय जिसका प्रचार दक्षिण में बहुत है।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग शिव के अनन्य उपासक हैं और सोने या चाँदी के संपुट में शिवलिंग रखकर बाहु या गले में पहने रहते हैं। ये लोग 'जंगम' भी कहलाते हैं। इनके आचार और संस्कार भी औरों से विलक्षण होते हैं।

लिंगार्चन—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गार्चन] शिवलिंग का पूजन।

लिंगार्श—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गार्शस्] जननेंद्रिय का एक रोग।

लिंगालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लिङ्गालिका] एक प्रकार का छोटा चूहा [को०]।

लिंगिक—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गिक] लँगड़ापन [को०]।

लिंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लिङ्गिनी] १. एक लता जिसे पँचगुरिया कहते हैं और जो वैद्यक में कटु, उष्ण, दुर्गंधनाशक तथा रसायन कही गई है। २. धर्मध्वजी या आडंबर करनेवाली स्त्री।

लिंगी[१]—वि० [सं० लिङ्गिन्] १. चिह्नवाला। निशानवाला। २. किसी चिह्न को धारण करने का अधिकारी (को०)। ३. जिसका मन और काम समान हो। विचार और कार्य में एक सा (को०)। ४. चिह्नित। अंकित (को०)। ५. सूक्ष्म शरीरी या लिंगदेही (को०)। ६. बाहरी रूपरंग या वेश बनाकर काम निकालनेवाला। आडंबरी। धमध्वजी।

लिंगी[२]—संज्ञा पुं० १. वर्णिलिंगी। ब्रह्मचारी। २. शिवलिंग का पूजक। ३. दंभी या छली व्यक्ति। ४. हाथी। ५. कारण। मूल। ६. परमात्मा। ७. एक शैव संप्रदाय [को०]।

लिंगेंद्रिय—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गेन्द्रिय] पुरुषों की मूत्रेंद्रिय।

लिंट—संज्ञा पुं० [अं०] तेलिए में रँगा हुआ मुलायम कपड़ा या फलालीन जो घाव में मरहम लगाकर इसलिये भर दी जाती है, जिसमें मुँह एकबारगी बंद न हो जाय और मवाद न रुके।

लिंटर, लिंटल—संज्ञा पुं० [अं० लिंटेल] लोहे की छड़ों का जाल बाँधकर, उनके बीच इकहरी ईंटों की जोड़ाई तथा सीमेंट की ढलाई से बनी छत आदि जिसमें नीचे धरन आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती [को०]।

लिंदु—वि० [सं० लिन्दु] पिच्छिल। फिसलनवाली। जिसपर फिसलन हो [को०]।

लिंप—संज्ञा पुं० [सं० लिम्प] १. शिव का एक गण। २. लीपना। लेप करना [को०]।

लिंपट—वि० संज्ञा पुं० [सं० लिम्पट] कामी। कामुक [को०]।

लिंपाक—संज्ञा पुं० [सं० लिम्पाक] १. एक प्रकार का नीबू। २. खर। गदहा।

लिंपि—संज्ञा स्त्री० [सं० लिम्पि] दे० 'लिपि' [को०]।

लिंफ—संज्ञा पुं० [अं०] शीतला का चेप जो टीका लगाने के काम में आता है।

लिए—हिंदी का एक कारक चिह्न जो संप्रदान में आता है, और जिस शब्द के आगे लगता है, उसके अर्थ या निमित्त किसी क्रिया का होना सूचित करता है। जैसे,—मैं तुम्हारे लिए आम लाया हूँ। यह चिह्न शब्द के संबंध कारक रूप 'का' के साथ लगता है। जैसे,—उसके लिए। बहुत से लोग इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृते' से बताते हैं, पर 'लग्न' और 'लग्ग' शब्द से इसका अधिक लगाव जान पड़ता है। पुरानी काव्यभाषा विशेषत: अवधी में 'लगि' और 'लागि' रूप बराबर मिलते हैं यह प्राय: 'लिये' भी लिखा जाता है।

लिकिन—संज्ञा पुं० [देश०] मटियाले रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी टाँगें हाथ हाथ भर की और गरदन एक बालिश्त की होती है।

लिकुच—संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर का पेड़। लकुच। चुक्र।

लिक्खाड़—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना { हिं० लिक्ख + आड़ (प्रत्य०) }] बहुत लिखनेवाला। भारी लेखक। (व्यंग्य या विनोद)।

लिक्विडेटर—संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो किसी कंपनी या फर्म का कारबार उठाने, उसकी ओर से मामला मुकदमा लड़ने या दूसरे आवश्यक कार्य करने के लिये नियुक्त किया जाता है।

लिक्विडेशन—संज्ञा पुं० [अं०] संमिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी या फर्म का कारबार बंद कर उसकी संपत्ति से लेहनदारों का देना निपटाना और बची हुई रकम को हिस्सेदारों में बाँट देना। जैसे,—वह कंपनी लिक्विडेशन में चली गई।

क्रि० प्र०—जाना।

लिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यूकांड। जूँ का अंडा। लीख। २. एक परिमाण जो कई प्रकार का कहा गया है; जैसे,—कहीं चार अणुओं की लिक्षा कही गई है, कहीं आठ बालाग्र की। (८ परमाणु = रज। ८ रज = बालाग्र)। ६ लिक्षा का एक सर्षप (सरसों या राई) माना गया है।

लिक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीख। जूँ [को०]।

लिखंत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० लेख] भाग्य का लिखा। विधाता का लिखा। विधाता का लेख। भाग्य की बात। उ०—तजी है पीतम ने प्रीति मेरी, सखी ये लीला लिखंत की है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८४८।

लिखक—संज्ञा पुं० [सं०] लेखक [को०]।

लिखत—संज्ञा स्त्री० [सं० लिखित] १. लिखी हुई बात। लेख। लिपिबद्ध विषय।

यौ०—लिखत पढ़त।

मुहा०—लिखत पढ़त होना = लिखा पढ़ी होना। लेख के रूप में पक्का होना।

२. लिखित पत्र। ३. दस्तावेज।

लिखधार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना + धार (प्रत्य०)] लिखनेवाला। मुहर्रिर या मुंशी। उ०—साँचो सो लिखधार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै।—सूर (शब्द०)

लिखन—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिपि या लेख। लिखावट। २. लिखित पत्र। दस्तावेज (को०)। ३. चित्रांकन। चित्रकारी (को०)। ४. कर्म की रेखा। भाग्य में निश्चित बात।

लिखना—क्रि० स० [सं० लिखन] १. किसी नुकीली वस्तु से रेखा के रूप में चिह्न करना। अंकित करना। २. स्याही में डूबी हुई कलम से अक्षरों की आकृति बनाना। अक्षर अंकित करना। लिपिबद्ध करना।

यौ०—लिखना पढ़ना। लिखापढ़ी। लिखालिखी = दे० 'लिखापढ़ी'। उ०—लिखालिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।—कबीर सा०, पृ०८५।

मुहा०—किसी के नाम लिखना = यह लिखना कि अमुक वस्तु किसी के जिम्मे है। जैसे,—१००) तुम्हारे नाम लिखे हैं। लिखना पढ़ना = विद्योपार्जन करना। विद्या का अभ्यास करना। जैसे,—वह लड़का कुछ लिखता पढ़ता नहीं। लिखा पढ़ा = शिक्षित।

३. रंग से आकृति अंकित करना। चित्रित करना। चित्र बनाना। तसवीर खींचना। जैसे,—चित्र लिखना। उ०—देखी चित्र लिखी सी ठाढ़ी।—सूर (शब्द०)। ४. पुस्तक, लेख या काव्य आदि की रचना करना। जैसे,—यह पुस्तक किसकी लिखी है?

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिखनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लेखनी] १. कलम। २. भाग्यलिपि। प्रारब्ध। होनी। ३. लिखन की क्रिया या भाव [को०]।

लिखवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना] दे० 'लिखाई'।

लिखवाना—क्रि० स० [हिं० लिखाना] दे० 'लिखाना'।

लिखवार, लिखहार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] दे० 'लिखधार'।

लिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना] १. लेख। लिपि। २. लिखने का कार्य। ३. लिखने का ढंग। लिखावट।

यौ०—लिखाई पढ़ाई = विद्याभ्यास।

४. लिखने की मजदूरी।

लिखाना—क्रि० स० [सं० लिखन] अंकित कराना। लिपिबद्ध कराना। दूसरे के द्वारा लिखने का काम कराना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—लिखाना पढ़ाना = (१) शिक्षा देना। तालीम देना। (२) लेखबद्ध कराना।

लिखापढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + पढ़ना] १. पत्रव्यवहार। चिट्ठियों का आना जाना। परस्पर लेखों द्वारा व्यवहार होना। जैसे,—(क) लिखापढ़ी करके उनसे यह बात तै कर लो। (ख) इसके बारे में बहुत दिनों तक लिखापढ़ी होती रही। २. किसी विषय को कागज पर लिखकर निश्चित या पक्का करना। जैसे,—पहले लिखापढ़ी करके तब रुपए दीजिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिखार†—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] १. दे० 'लिक्खाड़'। २. दे० 'लिखधार'।

लिखारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना] दे० 'लिखना'।

लिखावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + आवट (प्रत्य०)] १. लिखे हुए अक्षर आदि। लेख। लिपि। जैसे,—तुम्हारी लिखावट तो किसी से पढ़ी ही नहीं जाती। २. लिखने का ढंग। लेखप्रणाली।

लिखास—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + आस (प्रत्य०)] लिखने की उतावली। उ०—तब एक सज्जन ने मेरी लिखास और युग की धारणा की दूरी को इन शब्दों में मुझे लिखा था—आदमी बड़े भले हो। - हिम० (दो शब्द), पृ० ५।

लिखित[1]—वि० [सं०] लिखा हुआ। लिपिबद्ध किया हुआ। अंकित।

लिखित[2]—संज्ञा पुं० १. लिखी हुई बात। लेख।

विशेष—व्यवहार (मामले, मुकदमे) में 'लिखित' चार प्रकार के प्रमाणों में से एक है। साक्षियों में भी एक 'लिखित' साक्षी होते हैं। अर्थी जिसे लाकर लिखा दे, वह लिखित साक्षी होगा। (मिताक्षरा)।

२. रचना, लेख या पुस्तक आदि। ३. लिखी हुई सनद। प्रमाणपत्र। ४. एक स्मृतिकार ऋषि। ४. चित्र। तसवीर (को०)।

लिखितक—संज्ञा पुं० [सं० लिखित] एक प्रकार के प्राचीन चौखूँटे अक्षर जो खुतन (मध्य एशिया) में पाए गए शिलालेखों में मिलते हैं।

लिखितव्य—वि० [सं०] आलेखन के योग्य। लिखने योग्य [को०]।

लिखिता—संज्ञा पुं० [सं० लिखितृ] चित्रकार। चितेरा [को०]।

लिखेरा संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] लिखनेवाला। लेखक।

लिख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लिख्या' [को०]।

लिख्या - संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जूँ का अंडा। लीख। १. एक परिमाण। विशेष दे० 'लिक्षा'।

लिगदी— संज्ञा स्त्री० [देश०] कमजोर छोटी घोड़ी।

लिगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मन। २. मूर्ख। ३. मृग। ४. भूप्रदेश।

लिचेन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है।

लिच्छवि, लिच्छिवि—संज्ञा पुं० [सं०] एक इतिहासप्रसिद्ध राजवंश जिसका राज्य किसी समय में नैपाल, मगध और कोशल में था।

विशेष—प्राचीन संस्कृत साहित्य में क्षत्रियों की इस शाखा का नाम 'निच्छवि' या 'निच्छिवि' मिलता है। पाली रूप 'लिच्छवि' है। मनुस्मृति के अनुसार लिच्छवि लोग व्रात्य क्षत्रिय थे। उसमें इनकी गणना झल्ल, मल्ल, नट, करण, खश और द्रविड़ के साथ की गई है। ये 'लिच्छवि' लोग वैदिक धर्म के विरोधी थे। इनकी कई शाखाएँ दूर दूर तक फैली थीं। वैशालीवाली शाखा में जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए और कोशल की शाक्य शाखा में गौतम बुद्ध प्रादुर्भूत हुए। किसी समय मिथिला से लेकर मगध और कोशल तक इस वंश का राज्य था। जिस प्रकार हिंदुओं के संस्कृत ग्रंथों में यह वंश हीन कहा गया है, उसी प्रकार बौद्धों और जैनों के पालि और प्राकृत ग्रंथों में यह वंश उच्च कहा गया है। गौतम बुद्ध के समसामयिक मगध के राजा बिंबसार ने वैशाली के लिच्छवि लोगों के यहाँ संबंध किया था। पीछे गुप्त सम्राट् ने भी लिच्छवि कन्या से विवाह किया था।

लिट्—वि० [सं०] लेहन करनेवाला। जैसे, मधुलिट् (समासांत में प्रयुक्त)।

लिटरेचर—संज्ञा पुं० [अं०] साहित्य। वाङ्मय। जैसे,—इंग्लिश लिटरेचर।

लिटरेरी—वि० [अं०] साहित्य संबंधी। साहित्यिक। जैसे,—लिटरेरी कानफरेंस।

लिटाना—क्रि० स० [हिं० लेटना] लेटने की क्रिया कराना। दूसरे को लेटने में प्रवृत्त कराना।

लिटोरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'लिसोड़ा'।

लिट्ट—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लिट्टी] मोटी रोटी जो बिना तवे के आग ही पर सेंकी जाय। अंगाकड़ी। बाटी।

लिठोर संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नमकीन पकवान।

लिड़ार[१]†—संज्ञा पुं० [देश०] शृगाल। गीदड़।

लिड़ार[२]—वि० [देश०] डरपोक। कायर। बुजदिल। उ०—त्रिशुद्ध होइ शुद्ध को विरुद्ध बात ना कहौ। न बाचिहौ घरै घुसे लिड़ार हान ना चहौ।—केशव (शब्द०)।

लिड़ौरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अनाज के वे दाने जो पीटने के पीछे बाल में लगे रह जाते हैं। भुंडारी। दाबरी। पकुरी। चित्ती।

विशेष—यह शब्द रबी की फसल के लिये बोला जाता है।

लिप—संज्ञा पुं० [सं०] लेपन। लेप करना [को०]।

लिपटना—क्रि० अ० [सं० लिप्त] १. एक वस्तु का दूसरी को घेरकर उससे खूब सट जाना। किसी वस्तु से दृढ़तापूर्वक जा लगना। वेष्टित करके संलग्न होना। चिमटना। जैसे,—साँप का पैर से लिपटना, बच्चे का माँ से लिपटना, लता का पेड़ से लिपटना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. इस प्रकार लग जाना कि जल्दी न छूटे। चिपकना। ३. गले लगना। आलिंगन करना। जैसे,—वह उससे लिपटकर रोने लगा। ४. किसी काम में जी जान से लग जाना। तन्मय होकर प्रवृत्त होना। जैसे,—जिस काम में लिपटता हूँ, उसे पूरा करके छोड़ता हूँ। ५. दखल देना। हस्तक्षेप करना।

लिपटाना—क्रि० स० [हिं० लिपटना का स० रूप] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु से खूब सटाना। संलग्न करना। चिमटाना। २. किसी को हाथों से घेरकर अपने शरीर से खूब सटाना। आलिंगन करना। गले लगाना। उ०—कान्ह के कानन आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता सी।—पद्माकर (शब्द०)। ३. परचाना।

लिपड़ा[१]—संज्ञा पुं० [देश०] लुगड़ा। कपड़ा। (कलंदर)।

विशेष—कलंदर भालू नचाकर जब उससे लोगों से कपड़ा माँगने को कहते हैं, तब 'लिपड़', 'लिपड़ा' कहते हैं।

लिपड़ा[२]—वि० [हिं० लेप] लेई की तरह गीला और चिपचिपा।

लिपड़ी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपड़ा] लेई की तरह गीला और चिपचिपा पदार्थ। जैसे,—हलुवा पानी अधिक होने से लिपड़ी हो गया।

लिपड़ी[२]—संज्ञा स्त्री० [अं० लिवरी] दे० 'लिबड़ी'।

लिपना—क्रि० अ० [सं० लिप्] १. किसी रंग या गीली वस्तु की पतली तह से ढक जाना। पोता जाना। जैसे,—सारा घर गोबर से लिप गया।

यौ०—लिपा पुता = स्वच्छ। साफ। झक।

२. रंग या गीली वस्तु का फैल जाना। जैसे,—हाथ पड़ने से कागज पर स्याही लिप गई।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—लिपा पुता = जिसपर धब्बे आदि हों। बदरंग।

लिपवाना—क्रि० स० [हिं० लीपना] लीपने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लीपने में प्रवृत्त करना।

लिपस्टिक—संज्ञा स्त्री० [अं०] ओठ रँगने की लाली। मोम इत्यादि में रंग मिलाकर बनी हुई एक बत्ती जिसे स्त्रियाँ ओठों पर रगड़कर उसे लाल करती हैं। उ०—उसमें से एक गुलाबी रंग की साड़ी से सुसज्जित, पौडर की चमक और लिपस्टिक की रंगीनी से सुशोभित रमणी तथा चार पुरुषों ने उतरकर भीतर प्रवेश किया।—सन्यासी, पृ० १३२।

लिपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपना] १. किसी रंग या घुली हुई गीली वस्तु की तह फैलाने की क्रिया या भाव। २. दीवार या जमीन पर घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह फैलाना। लेपना। पोताई। ३. लीपने की मजदूरी।

लिपाना—क्रि० स० [हिं० लीपना] १. रंग या किसी गीली वस्तु की तह चढ़वाना। पुताना। २. दीवार या जमीन पर सफाई के लिये घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह चढ़वाना। मिट्टी, गोबर आदि का लेप कराना। उ०—जागी महरि पुत्र मुख

देख्यो आनंद तूर बजायो हो। कंचन कलस होय द्विज पूजा चंदन भवन लिपायो हो।—(शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अक्षर या वर्ण के अंकित चिह्न। लिखावट। २. अक्षर लिखने की प्रणाली। वर्ण अंकित करने की पद्धति। जैसे,—ब्राह्मी लिपि, खरोष्ठी लिपि, अरबी लिपि। ३. लिखे हुए अक्षर या बात। लेख। जैसे—भाग्यलिपि। उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।—तुलसी (शब्द०)। ४. लेप। लेपन (को०)। ५. चित्रकारी। रेखांकन (को०)। ६. बाह्य आकृति। गढ़न (को०)।

लिपिक—संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। कर्णिक। क्लार्क [को०]।

लिपिकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेखक। लिखनेवाला। २. रँगाई पुताई का काम करनेवाला (को०)। ३. उत्कीर्ण। करनेवाला। नक्काश (को०)।

लिपिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० लिपिकर्मन्] अंकन। लिखाई। चित्रकारी [को०]।

लिपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट। दे० 'लिपि'।

लिपिकार—संज्ञा पुं० [सं०] लिखनेवाला। लेखक। दे० 'लिपिकर'।

लिपिज्ञ—वि० [सं०] जो लिख सकता हो। लिपि का जानकार [को०]।

लिपिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने की कला [को०]।

लिपिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] लेखनकला अथवा लिखने की क्रिया [को०]।

लिपिफलक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर, तख्ती, धातुपत्र आदि जिनपर अक्षर खोदे जायँ।

लिपिबद्ध—वि० [सं०] लिखा हुआ। लिखित।

लिपिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शाला जहाँ लिखना सिखाया जाता हो। लेखन विद्यालय।

लिपिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] विभिन्न लिपियों के लिखने की विद्या।

लिपिसंनाह—संज्ञा पुं० [सं० लिपिसन्नाह] मणिबंध या कलाई पर पहनने का एक पट्टा [को०]।

लिपिसज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने का उपकरण। लिखने का सामान [को०]।

लिप्त—वि० [सं०] १. जिसपर किसी गीली वस्तु (जैसे,—घुली मिट्टी, चंदन आदि) की तह चढ़ी हो। जिसपर लेप किया गया हो। लिपा हुआ। पुता हुआ। चर्चित। २. जो लीपा गया हो। जिसकी पतली तह चढ़ी हो। ३. गाढ़ा लगा हुआ। खूब संलग्न। ४. खूब तत्पर। लीन। अनुरक्त। फँसा हुआ। जैसे,—विषय भोग में लिप्त। ५. जहरीला किया हुआ। विषाक्त किया हुआ। जैसे,—वाण का फल (को०)। ६. खाया हुआ। भक्षित (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] विष में बुझाया हुआ तीर। जहरीला तीर [को०]।

लिप्तवासित—वि० [सं०] सिक्त और सुवासित [को०]।

लिप्तहस्त—वि० [सं०] किसी वस्तु से लिपटे या रँगे हुए हाथोंवाला [को०]।

लिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार काल का एक मान जो एक मिनट के बराबर होता है।

लिप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेप। लेपन [को०]।

लिप्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लिप्ता' [को०]।

लिप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति की कामना। लालच। लोभ। २. चाह। इच्छा। आकांक्षा।

लिप्सित—वि० [सं०] इच्छित। अभिलषित। आकांक्षित [को०]।

लिप्सितव्य—वि० [सं०] प्राप्त करने के योग्य। अभिलषणीय। जो प्राप्त करने योग्य हो [को०]।

लिप्सु—संज्ञा पुं० [सं०] लाभ की इच्छा रखनेवाला। लोलुप। लोभी। लालची। जैसे,—यशोलिप्सु।

लिफाफ—संज्ञा पुं० [अ० लिफ़ाफ़] शव का आच्छादन। कफन [को०]।

लिफाफा—संज्ञा पुं० [अ० लिफ़ाफ़ह्] १. कागज की बनी हुई चौकोर खोली या थैली जिसके अंदर चिट्ठी या कागजपत्र रखकर भेजे जाते हैं। जैसे,—लिफाफे में बंद करके चिट्ठी डाल देना।

मुहा०—लिफाफा खुल जाना = भेद खुल जाना। छिपी हुई बात का प्रकट हो जाना।

२. ऊपरी आच्छादन। सजावट की पोशाक। दिखावटी कपड़े लत्ते। जैसे,—आज तो खूब लिफाफा बदलकर निकले हो।

मुहा०—लिफाफा बदलना = भड़कदार कपड़े पहनना।

३. ऊपरी आडंबर। झूठी तड़क भड़क। मुलम्मा। कलई।

मुहा०—लिफाफा खुल जाना = असली रूप प्रकट हो जाना। लिफाफा बनाना = (१) ठाठ बाट बनाना। (२) आडंबर करना। ढकोसला रचना।

४. खोल। थैला (को०)। ५. शवाच्छादन वस्त्र। कफन (को०)। ६. जल्दी नष्ट हो जानेवाली वस्तु। दिखाऊ चीज। काजू भोजू चीज।

लिफाफिया—वि० [अ० लिफ़ाफ़ा + इया (प्रत्य०)] तड़क भड़क वाला। दिखाऊ। कमजोर। निस्तत्व।

लिबड़ना¹—क्रि० अ० [देश०] सन जाना। लथपथ होना। लिभड़ना।

लिबड़ना²—क्रि० स० दे० 'लिभड़ना'।

लिबड़ी—संज्ञा स्त्री० [अ० लिबरी, तुल० हिं० लुगड़ी] कपड़ा लत्ता।

यौ०—लिबड़ी बरताना या बारदाना = निर्वाह का सामान। असबाब। जैसे,—अपना लिबड़ी बरताना उठाओ, और चल दो।

लिबरल¹—वि० [अं०] उदार नीतिवाला।

लिबरल²—संज्ञा पुं० १. इंग्लैंड का एक राजनीतिक दल जिसकी नीति अधीनस्थ देशों की व्यवस्था के संबंध में तथा अन्य राज्यों के

साथ व्यवहार करने में उदार कही जाती है। २. (स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व का) भारत का एक राजनीतिक दल जो बहुत ही सौम्य उपायों से अपने देश को स्वतंत्र करना चाहता था।

लिबास—संज्ञा पुं० [अ०] पहनने का कपड़ा। आच्छादन। पहनावा। पोशाक। उ०—तुमने यह कुसुम बिहग लिबास, क्या अपने सुख से स्वयं बुना ?—युगांत, पृ० ५०।

लिबिंकर—संज्ञा पुं० [सं० लिविङ्कर] प्रतिलिपि करनेवाला। लेखक [को०]।

लिबि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट।

लिभड़ना[१]—क्रि० अ० [हिं० लिबड़ना] दे० 'लिबड़ना'। उ०—अपनी छाती पर कत्था चून से लिभड़ी हुई उँगलियों का छापा लिए हुए पावे पान के शौकीनों को फिर भी घूर रहे थे।—नई०, पृ० ६६।

लिभड़ना[२]—क्रि० स० लथपथ करना। इधर उधर लेप देना। सान देना।

लिमुवा⊕—संज्ञा पुं० [हिं० नीबू, निबुआ] नीबू। उ०—गोई के अँगना म एक पेड़ लिमुवा, ओ मोरे दाई पंछी करत हूँय बसेर।—शुक्ल० अभि० ग्रं० (साहित्य), पृ० १४३।

लियाकत—संज्ञा स्त्री० [अ० लियाकत] १. योग्यता। पात्रता। काबिलियत। २. गुण। हुनर। ३. सामर्थ्य। समाई। हौसला। ४. शील। शिष्टता। भद्रता।

लियानत⊕—संज्ञा स्त्री० [अ० लियामत, या लअनत, ला'नत] दे० 'लानत'। उ०—बड़ा काम फरमा जो मुजकूँ सजे, है इस काम ते भोत लियानत मुजे।—दक्खिनी०, पृ० २८६।

लिलाट⊕†—संज्ञा पुं० [सं० ललाट] दे० 'ललाट'। उ०—जीउ काढ़ि भुंइ धरौ लिलाटू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८५।

लिलाना⊕—क्रि० अ० [हिं०] अनुरोध करना। रिरिया कर बात करना। खीस निकालना। उ०—लाभ कवन पैहो इत आइ। तहँ बिधि कहतु लिलाइ लिलाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७३।

लिलाम†—संज्ञा पुं० [पुर्त० लीलाम] दे० 'नीलाम'। उ०—किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।—गोदान, पृ० १०।

लिलार⊕†—संज्ञा पुं० [सं० ललाट] १. भाल। माथा। मस्तक। उ०—लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है।—घनानंद, पृ० २३। २. कूएँ का वह सिरा जहाँ मोट का पानी उलटते हैं।

लिलारी†—संज्ञा पुं० [हिं० नील, लील+कार] नीलगर। रँगरेज।

लिलाही—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का बटा हुआ देशी सूत।

लिलोही†—वि० [सं० लल (=चाह करना)] लालची। अति लोभी। उ०—बूझिबे की जक लागी है कान्हहि केशव कै रुचि रूप लिलोही।—केशव (शब्द०)।

लिव⊕†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लगन। लौ।

लिवर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'लीवर' [को०]।

लिवाना[१]—क्रि० स० [हिं० लेना का प्रे० रूप] १. लेने का काम दूसरे से कराना। ग्रहण कराना। थमाना। पकड़ाना। उ०—सूरदास भीषम परतिज्ञा शस्त्र लिवाऊँ पैज करी।—सूर (शब्द०)।

लिवाना[२]—क्रि० स० [हिं० लाना का प्रेर० रूप] लाने का काम दूसरे से कराना। जैसे,—लकड़ी मजदूर से लिवा लाना।

विशेष—इस क्रि० का प्रयोग संयोज्य क्रिया 'लाना' के साथ होता है।

संयो० क्रि०—लाना।

मुहा०—लिवा लाना=साथ ले आना।

लिवाल—संज्ञा पुं० [हिं० लेना+वाला] खरीदनेवाला। लेनेवाला।

लिवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लिपि' [को०]।

लिवैया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० लेना] लेनेवाला।

लिवैया[२]—संज्ञा पुं० [हिं० लाना] लानेवाला।

लिष्ट—वि० [सं०] लघुताप्राप्त। संकुचित [को०]।

लिष्व—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक। नाचनेवाला।

लिसान—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. जिह्वा। रसना। जीभ। २. भाषा। बोली। जबान [को०]।

लिसोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लस (= चिपचिपाहट)] मझोले डील का एक पेड़।

विशेष—इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए होते हैं। इसके फल छोटे बेर के बराबर होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। पकने पर इसमें लसदार गूदा हो जाता है, जो गोंद की तरह चिपकता हैं। यह गूदा हकीम लोग खाँसी में देते हैं। पत्ते बीड़ी (तंबाकू की) के ऊपर लपेटने के काम में आते है। छाल के रेशे से रस्से बटे जाते हैं। अंदर की लकड़ी मजबूत होती है और किश्ती तथा खेती के सामान बनाने के काम की होती है। इसके फूलों की तरकारी और कच्चे फल के अचार भी बनाते हैं। इसे 'लभेरा' और 'लिटोरा' भी कहते हैं।

पर्या०—श्लेष्मांतक। भूकर्बुदार।

लिस्ट—संज्ञा स्त्री० [अं०] फेहरिस्त। तालिका। फर्द।

लिह[१]—संज्ञा पुं० [सं०] चाटना।

लिह[२]—वि० चाटनेवाला। जैसे,—अभ्रंलिह।

लिह[३]⊕—वि० [सं० लेह्य] वह व्यंजन जिसका स्वाद जीभ के द्वारा हो। उ०—चारि प्रकार विचित्र सुव्यंजन। भक्ष्य, भोज्य, चुस, लिह, मनरंजन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२।

लिहा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वल्कल। छाल। बकला।

लिहाज—संज्ञा स्त्री० [अ० लिहाज़] १. व्यवहार या बरताव से किसी बात का ध्यान। कोई काम करते हुए उसके संबंध में किसी बात का ख्याल। जैसे,—(क) उसकी तंदुरुस्ती के लिहाज से मैंने उसे हलका काम दिया। (ख) दवा में मैंने खाँसी का लिहाज भी रखा है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

२. कृपापूर्वक किसी बात का ध्यान। मेहरबानी का खयाल। कृपा-

दृष्टि । ३. किसी को कोई बात अप्रिय या दुःखदायी न हो, इस बात का खयाल । मुरव्वत । मुलाहजा । शील संकोच । जैसे,—काम बिगड़ने पर वह कुछ भी लिहाज न करेगा । ४. पक्षपात । तरफदारी । ५. बड़ों के सामने ढिठाई आदि न प्रकट हो, इस बात का ध्यान । संमान या मर्यादा का ध्यान । अदब का खयाल । जैसे,—बड़ों का लिहाज रखा करो । ६. लज्जा । शर्म । हया ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—रखना ।

मुहा०—लिहाज उठना या टूटना = लिहाज न रहना । मर्यादा, संमान आदि का ध्यान न रहना । उ०—अब लिहाज टूट गया । शर्म मंजिलों दूर है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४८ ।

लिहाजा—अव्य० [अ० लिहाज़ा] अतः । अतएव । इसलिये ।

लिहाड़ा—वि० [देश०] १. नीच । वाहियात । गिरा । २. खराब । निकम्मा ।

लिहाड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] उपहास । विडंबना । निंदा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—लिहाड़ी लेना = (१) उपहास करना । ठट्ठा करना । बनाना । (२) निंदा करना ।

लिहाड़ी(पु)—वि० [हिं० लेना ?] लेनेवाला । उच्चारण करनेवाला । उ०—चाके कुल में भक्त मम नाम लिहाड़ी होय । एक एक शत आपनी पीढ़ी तारत सोय ।—(शब्द०) ।

लिहाफ—संज्ञा पुं० [अ० लिहाफ़] १. रात को सोते समय ओढ़ने का रूईदार कपड़ा । भारी रजाई । †२. मोटा चदरा । ३. भूल (हाथी या घोड़े की) ।

लिहित(पु)—वि० [सं० लिह] चाटता हुआ । उ०—उन्नत कंध कटि खीन विशद भुज अंग अंग प्रति सुखदाई । सुभग कपोल नासिका, नैन छबि अलक लिहित घृत पाई ।—सूर (शब्द०) ।

लीक[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० लिख्] १. लंबा चला गया चिह्न । लकीर । रेखा ।

क्रि० प्र०—खींचना ।

मुहा०—लीक करके = दे० 'लीक खींचकर' । उ०—आगम निगम पुरान कहत करि लीक ।—तुलसी (शब्द०) । लीक खींचना = (१) किसी बात का अटल और दृढ़ होना । इस प्रकार स्थिर किया जाना कि न टले । (२) मर्यादा बँधना । व्यवहार का प्रतिबंध या नियम स्थापित होना । हद या कायदा मुकर्रर होना । (३) साख बँधना । प्रतिष्ठा स्थिर होना । उ०—हरि चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची । सूरदास भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ दिसि खाँची ।—सूर (शब्द०) । लीक खींचकर = इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि ऐसा ही होगा । निश्चयपूर्वक । जोर देकर । उ०—सूर श्याम तेरे बस राधा, कहति लीक मैं खाँची ।—सूर (शब्द०) ।

२. गहरी पड़ी हुई लकीर । ३. गाड़ी के पहिए से पड़ी हुई लकीर । उ०—लीक लीक गाड़ी चलै लीकै चलै कपूत ।—(शब्द०) । ४. चलते चलते बना हुआ रास्ते का निशान । ढुर्री । जैसे,—यही लीक पकड़े सीधे चले जाओ ।

मुहा०—लीक पकड़ना = ढुर्री पर चलना । पगडंडी पर होना । लीक पीटना = पुराने निकले हुए रास्ते पर चलना । चली आती हुई प्रथा का ही अनुसरण करना । बँधी हुई रीति या प्रणाली पर ही चलना । लीक लीक चलना = दे० 'लीक पीटना' ।

५. महत्व या प्रतिष्ठा । मर्यादा । नाम । यश । उ०—दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका ।—तुलसी (शब्द०) । ६. बँधी हुई मर्यादा । लोकव्यवहार की बँधी हुई सीमा या व्यवस्था । लोकनियम । उ०—नँदनदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी ।—सूर (शब्द०) । ७. बँधी हुई विधि । रीति । प्रथा । चाल । दस्तूर । ८. हद । प्रतिबंध । ९. कलंक की रेखा । धब्बा । बदनामी । लाछन । उ०—तिहि देखत मेरो पट काढ़त लीक लगी तुम काज ।—सूर (शब्द०) । १०. गिनती के लिये लगाया हुआ चिह्न । गिनती । गणना । उ०—अरिदनाद जेठ सुत तासू । भट मह प्रथम लीक जग जासू ।—तुलसी (शब्द०) ।

लीक[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मटियाले रंग की एक चिड़िया जो बत्तख से कुछ छोटी होती है । २. दे० 'लीख' ।

लीक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लिक्षा' [को०] ।

लीख—संज्ञा स्त्री० [सं० लिक्षा] १. जूँ का अंडा । २. लिक्षा नामक परिमाण ।

लीग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. संघ । सभा । समाज । जैसे,—मुसलिम लीग । लीग आफ नेशन्स । २. एक नाप वा दूरी जो जल पर साढ़े तीन और स्थल पर तीन मील की होती है (को०) ।

लीगल रिमेंबरेंसर—संज्ञा पुं० [अं०] वह अफसर जो सरकार के कानूनी कागजपत्र रखता है और कानूनी सलाह देता है ।

विशेष—अंग्रेजी शासन में कलकत्ता, बंबई और युक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में लीगल रिमेंबरेंसर होते रहे हैं जो प्रायः सिविलियन होते थे । इनका दर्जा ऐडवोकेट जनरल के बाद है । इनका काम सरकारी मामले मुकदमों के कागजपत्र रखना और तैयार करना है और सरकार को कानूनी सलाह देना है ।

लीचड़—वि० [देश०] १. सुस्त । काहिल । निकम्मा । २. जल्दी न छोड़नेवाला । चिमटनेवाला । ३. जिसका लेन देन ठीक न हो ।

लीचर(पु)—वि० [देश०] चिमटनेवाला । जल्दी न छोड़नेवाला । दे० 'लीचड़' । उ०—बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि मुँह पीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

लीची—संज्ञा स्त्री० [चीनी लीचू, लूचू] एक सदाबहार पेड़ और उसका फल जो खाने में बहुत मीठा होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी होती हैं; फल गुच्छों में लगते और देखने में बहुत सुंदर होते हैं । छिलके के ऊपर कटावदार

दाने से उभरे होते हैं। गूदा सफेद खोली की तरह बीज से चिपका रहता है, पर बहुत जल्दी छूटकर अलग हो जाता है। यह पेड़ चीन से आया है और बंगाल तथा बिहार में अधिक होता है।

लीज—संज्ञा पुं० [अं० लीज़] दे० 'लीस'।

लीझी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. देह में मले हुए उबटन के साथ छूटी हुई मैल की बत्ती। २. वह गूदा या रेशा जिसका रस चूस या निचोड़ लिया गया हो। सीठी।

लीझी[2]—वि० १. नीरस। निस्सार। २. निकम्मा। उ०—श्री रघुराज कहे कह रीझो भई तनु लीझो अजौं दशा एती।—रघुराज (शब्द०)।

लीडर—संज्ञा पुं० [अं०] अगुआ। मुखिया। नेता। २. अग्रलेख। किसी समाचारपत्र में संपादक का लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख। संपादकीय अग्रलेख। जैसे,—संपादक महोदय ने इस विषय पर जोरदार लीडर लिखा है। ३. किसी कथन की असमाप्ति आदि का बोधक एक टाइप जिसमें तीन बिंदियाँ रहती हैं। (मुद्रण)।

लीडर आफ दी हाउस—संज्ञा पुं० [अं०] पार्लमेंट या व्यवस्थापिका सभा का मुखिया जो प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल का बड़ा सदस्य, विशेषकर स्वराष्ट्र सदस्य, होता है और जिसका काम विरोधी पक्ष का उत्तर देना और सरकारी कामों का समर्थन करना होता है। प्रांतीय शासन में यही मुख्य मंत्री होता है।

लीडिंग आर्टिकल—संज्ञा पुं० [अं०] किसी समाचारपत्र में संपादक का लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख। संपादकीय अग्रलेख। जैसे,—इस पत्र के लीडिंग आर्टिकल बहुत गवेषणापूर्ण होते हैं।

लीढ—वि० [सं०] चाटा हुआ। आस्वादित [को०]।

लीथो—संज्ञा पुं० [अं० लीथो (=पत्थर)] पत्थर का छापा, जिसपर हाथ से लिखकर अक्षर या चित्र छापे जाते हैं।

लीथोग्राफ—संज्ञा पुं० [अं० लीथोग्राफ़] दे० 'लीथो'।

लीथोग्राफर—संज्ञा पुं० [अं० लीथोग्राफ़] वह जो लीथोग्राफी का काम करता हो। लीथो का काम करनेवाला।

लीथोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [अं० लीथोग्राफ़ी] लीथो की छपाई में एक विशेष प्रकार के पत्थर पर हाथ से अक्षर लिखने और खींचने की कला।

लीद—संज्ञा स्त्री० [देश०। तुल० सं० लेण्ड (लेंड़)] घोड़े, गधे, ऊँट और हाथी आदि पशुओं का मल। घोड़े आदि का पुरीष।

मुहा०—लीद करना = घोड़े आदि का मलत्याग करना।

लीन—वि० [सं०] १. लय को प्राप्त। जो किसी वस्तु में समा गया हो। २. तन्मय। मग्न। डूबा हुआ। ३. बिलकुल लगा हुआ। तत्पर। जैसे,—कार्य में लीन होना। ४. ख्याल में डूबा हुआ। ध्यानमग्न। अनुरक्त। उ०—अति ही चतुर सुजान जानमनि वा छवि पै भइ मैं लीना।—सूर (शब्द०)। ५. किसी के सहारे टिका हुआ (को०)। ६. लुप्त। छिपा हुआ (को०)। ७. अपने रूप का त्याग करके मिला हुआ। घुला हुआ। जैसे, जल में नमक (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तन्मयता। तत्परता। २. ऐसा संकुचित होकर रहना जिसमें किसी को दुःख न पहुँचे। (जैन)।

लीनो टाइप मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की कल या यंत्र जिसमें अक्षरों की कंपोज होने के समय लाइन की लाइन ढलकर निकलती है।

विशेष—आजकल हिंदुस्तान में बड़े बड़े अँगरेजी अखबार इसी मशीन से कंपोज होते हैं।

लीपना—क्रि० स० [सं०√लिप् > लेपन] १. घुले हुए रंग, मिट्टी, गोबर या और किसी गीली वस्तु की पतली तह चढ़ाना। पोतना। २. सफाई के लिये जमीन या दीवार पर घुली हुई मिट्टी या गोबर फेरना। पोतना।

यौ०—लीपना पोतना = सफाई करना।

मुहा०—लीप पोतकर बराबर करना = किसी काम को बिगाड़ना। चौपट करना। चौका लगाना। सत्यानाश करना।

लीफ्लेट—संज्ञा पुं० [अं० लीफ़लेट] पुस्तिका। पर्चा।

लीबर, लीभर—संज्ञा पुं० [देश० लिबड़ना, लिभड़ना] कीचड़। गंदगी। मैल।

लीम—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का चीड़ का पेड़ जिसमें से तारपीन या अलकतरा निकलता है। २. एक प्रकार की चिड़िया।

लीमू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नीबू [को०]।

लीर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े की धज्जी। चीर [को०]।

यौ०—लीर कथीर = कपड़े की चीर या धज्जी।

लील[1]—†—संज्ञा पुं० [सं० नील] नील।

लील[2]—वि० नीला। नीलवर्ण का। नीले रंग का। उ०—लीलांबुज तनु लील बसन मणि चितयौ न जात धूर के भौरे।—सूर (शब्द०)।

लीलकंठ†—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठ] दे० 'नीलकंठ'।

लीलक[1]—देश० पुं० [हिं० लील] वह हरा चमड़ा जो जूतों की नोक पर लगाया जाता है।

लीलक[2]—वि० नीला।

लीलगऊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + गऊ] नील गाय।

लीलगर†—संज्ञा पुं० [हिं० नील + गर] रंगसाज। नीलगर। रंगरेज।

लीलना—क्रि० स० [सं० गिलन या लीन] गले के नीचे पेट में उतारना। मुँह में लेकर पेट में डालना। निगलना। खा जाना। उ०—(क) बालधी बिसाल बिकराल ज्वालमाल मानो लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बीच गए सुरसा मिली और सिंहिका नारि। लीलि लियो हनुमंत तेहि, चढ़े उदर कहँ फारि।—केशव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

लीलया—क्रि० वि० [सं०] १. खेल में। २. सहज में ही। बिना प्रयास।

लीलयैव—क्रि वि० [सं० लीलया + एव] खेल में ही। सहज में ही।

उ०—रामचंद्र कटि सों पट बाँध्यो । लीलयैव हर को धनु साध्यो ।—केशव (शब्द०) ।

लीलहिंपु—क्रि० वि० [हिं० लीला] खेल खेल में । बिना प्रयास के । सहज में । उ०—(क) अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ ।—मानस, ६।१ । (ख) अति उतंग गरु सैलगन लीलहिं लेहिं उठाइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

लीलांग—वि० [सं० लीलाङ्ग] सुंदर अंगोंवाला [को०] ।

लीलांचित—वि० [सं० लीलाञ्चित] रम्य । सुंदर [को०] ।

लीलांबुज—संज्ञा पुं० [सं० लीलाम्बुज] दे० 'लीलाकमल' [को०] ।

लीला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह व्यापार जो चित्त की उमंग से केवल मनोरंजन के लिये किया जाय । केलि । क्रीड़ा । खेल । जैसे,—बाललीला । २. शृंगार की उमंगभरी चेष्टा । प्रेम का खेलवाड़ । प्रेमविनोद । ३. नायिकाओं का एक हाव जिसमें वे प्रिय के वेश, गति, वाणी आदि का अनुकरण करती हैं । ४. सौंदर्य । सुंदरता । (को०) । ५. रहस्यपूर्ण व्यापार । विचित्र काम । जैसे,—यह ईश्वर की लीला है जो ऐसे स्थान में ऐसा सुंदर पेड़ होता है । ६. मनुष्यों के मनोरंजन के लिये किए हुए ईश्वरावतारों का अभिनय । चरित्र । जैसे,—रामलीला, कृष्ण-लीला । ७. बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक जगण होता है । ८. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण और एक गुरु होता है । ९. चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें ७ + ७ + ७ + ३ के विराम से २४ मात्राएँ और अंत में सगण होता है ।

लीला[2]—संज्ञा पुं० [सं० नील] १. स्याह रंग का घोड़ा । उ०—लीले, सुरंग, कुमैत स्याम तेहि परदे सब मन रंग ।—(शब्द०) । २. गोदना ।

लीला[3]—वि० नीला । उ०—कटि लहँगा लीलो बन्यो धौं को जो देखि न मोहे ।—सूर (शब्द०) ।

लीलाकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल का फूल जिसे क्रीड़ा के लिये हाथ में लिए हों ।

लीलाकलह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणयकलह । प्यार की लड़ाई [को०] ।

लीलागृह—संज्ञा पुं० [सं०] क्रीडागृह । आमोदभवन । प्रमोदभवन [को०] ।

लीलाचतुर—वि० [सं०] क्रीड़ाकुशल । सुंदर [को०] ।

लीलातनु—संज्ञा पुं० [सं०] खेलवाड़ के लिये धारण किया हुआ रूप [को०] ।

लीलातामरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लीलाकमल' [को०] ।

लीलादग्ध—वि० [सं०] बिना प्रयास के जला हुआ । सहज ही जला हुआ [को०] ।

लीलानटन—संज्ञा पुं० [सं०] आनंद मात्र के लिये किया जानेवाला नृत्य [को०] ।

लीलानृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लीलानटन' [को०] ।

लीलापुरुषोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

विशेष—राम और कृष्ण इन दो प्रधान अवतारों में राम मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाते हैं और कृष्ण लीलापुरुषोत्तम ।

लीलाब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लीलाकमल' [को०] ।

लीलाभरण—संज्ञा पुं० [सं०] केवल लीला या शौक के लिये पहना हुआ गहना [को०] ।

लीलामनुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] छद्ममानव । नकली आदमी [को०] ।

लीलामय—वि० [सं०] क्रीड़ा के भाव से भरा हुआ । क्रीड़ायुक्त ।

लीलामात्र—संज्ञा पुं० [सं०] खेल कूद । केवल खेलवाड़ (को०) ।

लीलायित—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ाविनोद । आमोद प्रमोद । २. कार्य जो सहजसाध्य हो [को०] ।

लीलारति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमोद प्रमोद । मनबहलाव [को०] ।

लीलारविंद—संज्ञा पुं० [सं० लीलारविन्द] दे० 'लीलाकमल' [को०] ।

लीलावज्र—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के वज्र के समान एक शस्त्र [को०] ।

लीलावती[1]—वि० स्त्री० [सं०] क्रीड़ा करनेवाली । विलासवती ।

लीलावती[2]—संज्ञा स्त्री० १. प्रसिद्ध ज्योतिर्विद भास्कराचार्य की पत्नी का नाम जिसने लीलावती नाम की गणित की एक पुस्तक बनाई थी । पीछे भास्कराचार्य ने भी इस नाम की एक गणित की पुस्तक बनाई । २. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । यह रागिनी ललित, जयतश्री और देशकार से मिलकर बनी कही गई है । कोई कोई इसे दीपक राग की पुत्रवधू कहते हैं । ३. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०,८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं और अंत में एक जगण होता है । ४. दुर्गा का एक नाम (को०) । ५. सुंदरी स्त्री । सौंदर्यशील महिला (को०) । ६. कामुकी या विलासप्रिय औरत (को०) । ७. मय दानव की पत्नी का नाम (को०) ।

लीलावान्—वि० [सं० लीलावत्] १. क्रीड़ापूर्ण । २. सुंदर । रमणीय [को०] ।

लीलावापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलविहार के लिये निर्मित बावली [को०] ।

लीलावेश्म—संज्ञा पुं० [सं०] लीलागृह । आमोदगृह [को०] ।

लीलाशुक—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू तोता [को०] ।

लीलासाध्य—वि० [सं०] सहज ही होनेवाला । बिना प्रयास किया जानेवाला [को०] ।

लीलास्थल—संज्ञा पुं० [सं०] क्रीड़ा करने का स्थान ।

लीली—वि० स्त्री० [सं० नील] नीले रंग की । नीली । उ०—बंदन शिरताटंक गंड पर रतन जटित मणि लीली ।—सूर (शब्द०) ।

लीलोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवबन । नंदनवन । २. क्रीड़ा या खेलकूद का उपवन । आमोद प्रमोद करने का बाग [को०] ।

लीव—संज्ञा स्त्री० [अं०] छुट्टी । अवकाश । जैसे,—प्रिविलेज लीव । फरलो लीव ।

लीवर—संज्ञा पुं० [अं० लिवर] १. यकृत । जिगर । विशेष दे० 'यकृत' । २. किसी भारी वस्तु को सरलता से उठाने का यंत्र

(को०)। ३. किसी मशीन, ताले या घड़ी आदि में लगा वह पुरजा जो किसी दूसरे पुरजे को उठाता गिराता है (को०)।

लीस—संज्ञा पुं० [अं० लीज़] जमीन या दूसरी किसी स्थावर संपत्ति के भोगमात्र का अधिकारपत्र जो किसी को जीवनपर्यंत या निश्चित काल के लिये दिया जाय। पट्टा। जैसे,—(क) १९०३ में निजाम ने सदा के लिये अँगरेजी सरकार को बरार का लीस लिख दिया। (ख) यह अपना मकान लीस पर देनेवाला है।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—लिखना।

लुंग—संज्ञा पुं० [सं० लुङ्ग] मातुलंग वृक्ष।

लुंगा- संज्ञा पुं० [देश०] १. पंजाब में धान रोपने की एक रीति। माच। २. दे० 'लुँगाड़ा'।

लुंगाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] शोहदा। लुँगाड़ा।

लुंगी[1]—संज्ञा स्त्री० [बरमी। मि०हिं० लँगोट या लाँग] १. धोती के स्थान पर कमर में लपेटने का छोटा टुकड़ा। तहमत।

विशेष—इस देश में मुसलमान, मदरासी और बरमी लोग इस प्रकार कमर में कपड़ा लपेटते हैं, जिसमें पीछे लाँग नहीं बाँधी जाती।

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।

२. कपड़े का टुकड़ा जो प्रायः खारुए का होता है और जो हजामत बनाते समय नाई इसलिये पैर पर आगे डाल देता है जिसमें बाल उसी पर गिरें। ३. लाल रंग का एक मोटा कपड़ा। खारुवा।

लुंगी[2]— संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ी चिड़िया।

विशेष—यह हिमालय के जंगलों में, कुमाऊँ से लेकर नैपाल और भूटान तक, तालों के किनारे पाई जाती है। इसकी लंबाई सवा या डेढ़ हाथ क लगभग और आकृति मोर की सी होती है। इसका अगला भाग काला और लाल होता है। सफेद चित्तियाँ भी होती हैं। चोंच भूरे रंग की होती है। जाड़े के दिनों में यह मैदान में उतर आती है और कीड़े मकोड़े खाकर रहती है। कुत्तों की सहायता से लोग इसका शिकार करते हैं।

लुंगुष—संज्ञा पुं० [सं० लुङ्गुष] नीबू। छोलंग [को०]।

लुंच, लुंचन—संज्ञा पुं० [सं० लुञ्च, लुञ्चन] १. चुटकी से पकड़कर झटके के साथ उखाड़ना। नोचना। उत्पाटन। जैसे,—केश-लुंचन। २. जैन यतियों की एक क्रिया जिसमें उनके सिर के बाल नोचे जाते हैं। ३. काटना। तराशना। अलग करना। दूर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लुंचना—संज्ञा स्त्री० [सं० लुञ्चना] संक्षिप्त भाषण [को०]।

लुंचित—वि० [सं० लुञ्चित] उखाड़ा हुआ। नोचा हुआ। उत्पाटित।

लुंचितकेश—संज्ञा पुं० [सं० लुञ्चित केश] जैन यति, जो अपने सिर के बाल नोचे रहते हैं।

लुंचित मूर्धज—वि० [सं० लुञ्चित मूर्धज] दे० 'लुंचित केश' [को०]।

लुंज—वि० [सं० लुञ्चन (= काटना, उखाड़ना)] १. बिना हाथ पैर का। जिसके हाथ पैर बेकाम हो गए हों। लँगड़ा लूला। उ०—ए ऊधो, कहियो माधव सों मदन मारि कीन्हों हम लुंजै। —सूर (शब्द०)। २. बिना पत्ते का पेड़। ठूँठ। उ०—पात बिनु कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के परत न चीन्हे जैसे लरजत लुंज हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

लुंटक—संज्ञा पुं० [सं० लुण्टक] एक शाक [को०]।

लुंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्टा] १. चोरी। लूट। २. लोटना। लुंठन। [को०]।

लुंटाक[1]—वि० [सं० लुण्टाक] [वि० स्त्री० लुंटाकी] चुरानेवाला। लूटनेवाला। डाका मारनेवाला।

लुंटाक[2]—संज्ञा पुं० १. चोर। तस्कर। २. काक। कौआ [को०]।

लुंटि—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्टि] दे० 'लुंठ [को०]।

लुंटित—वि० [सं० लुण्ठित] दे० 'लुंठित' [को०]।

लुंठक—संज्ञा पुं० [सं० लुण्ठक] चोर। लुटेरा।

लुंठन—संज्ञा पुं० [सं० लुण्ठन] [वि० लुण्ठित] १. लुढ़कना। २. लूटना। चुराना।

लुंठना(पु)—क्रि० स० [सं० लुण्ठन] लूटना।

लुंठा—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्ठा] दे० 'लुंटा' [को०]।

लुंठाक - संज्ञा पुं० [सं० लुण्ठाक] दे० 'लुंटाक' [को०]।

लुंठि—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्टि] चोरी। लूटपाट [को०]।

लुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्ठी] १. घोड़े का लोटना। २. दे० 'लुंठि'। ३. लुढ़कना। लुढ़कने की क्रिया या भाव [को०]।

लुंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० लुण्ड] चोर।

लुंड[2]—संज्ञा पुं० [सं० रुण्ड] बिना सिर का धड़। कबंध। रुंड। उ०—लुंड मुंड बिनु चल्यो प्रचंडा। तब प्रभु काटि किए युग खंडा।—विश्राम (शब्द०)।

लुंडमुंड—वि० [सं० रुण्ड+मुण्ड] १. जिसका सिर, हाथ, पैर आदि कटे हों, केवल धड़ का लोथड़ा रह गया हो। २. बिना हाथ पैर का। लँगड़ा लूला। ३. बिना पत्ते का ठूँठ। (पेड़)। ४. योंही गठरी की तरह लपेटा हुआ।

लुंडा[1]—वि० [सं० रुण्ड] [वि० स्त्री० अल्पा० लुंडी] १. जिसकी पूँछ और पर झड़ गए हों या उखाड़ लिए गए हों। (पक्षी)। २. जिसकी पूँछ पर बाल न हों। (बैल)।

लुंडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० लुण्डिका] साफ किए हुए लपेटे सूत की पिंडी। कुकड़ी।

लुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्डिका] १. न्यायसारिणी। सदाचार। सद्व्यवहार। २. पिंडी। कुकड़ी [को०]।

लुंडी[1]—वि० स्त्री० [हिं० लुंडा] जिसकी पूँछ या पर झड़ गए हों।

लुंडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्डिका] लपेटे हुए सूत की पिंडी या गोली।

लुंडी[3]— संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्डी] न्यायसारिणी। विवेकपूर्ण व्यवहार। सद्व्यवहार [को०]।

लुंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० लुम्बिका] एक प्रकार का बाजा।

लुंबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लुम्बिनी] कपिलवस्तु के पास का एक वन या उपवन जहाँ गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

लुँगाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] शोहदा। लफंगा। लुच्चा।

लुँडियाना†—क्रि० स० [हिं० लुंडी] सूत या रस्सी आदि को पिंडी के रूप में लपेटना।

लुआठ†—संज्ञा पुं० [सं० लोककाष्ठ] दे० 'लुआठा'।

लुआठा—संज्ञा पुं० [सं० लोक (=चमकना, प्रज्वलित होना)+काष्ठ] [स्त्री० अल्पा० लुआठी] वह लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। सुलगती हुई लकड़ी। लुआती।

लुआठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुआठा की स्त्री० अल्पा०] सुलगती या दहकती हुई लकड़ी।

लुआब—संज्ञा पुं० [अ०] लसदार गूदा। चिपचिपा गूदा। लासा। जैसे,—बिहीदाने का लुआब।

लुआबदार—वि० [अ० लुआब+फ़ा० दार] १. लसदार। चिपचिपा। २. जिसमें लसदार गूदा हो।

लुआर†—संज्ञा स्त्री० [सं० लुक (=जलना)+हिं० आर (प्रत्य०); या हिं० लौ+आर] दे० 'लू'।

लुकंजन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० लोकाञ्जन] वह अंजन जिसे आँख में आँज लेने से आँजनेवाला सबको देखता है, पर उसे कोई नहीं देखता। उ०—बीतिबे ही सु तो बीति चुकी अब आँजती हौ केहि काज लुकंजन।—पद्माकर (शब्द०)।

लुकंदर‡—वि० [हिं० लुकना] छिपनेवाला।

लुक—संज्ञा पुं० [सं० लोक (=चमकना)] १. वह लेप जिसे फेरने से वस्तुओं (मिट्टी के बरतन आदि) पर चमक आ जाती है। चमकदार रोगन। वार्निश।

क्रि० प्र०—फेरना।

२. आग की लपट। लौ। ज्वाला। ३. स्फुलिंग। चिनगारी।

लुकटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुक] वह लकड़ी जिसका एक सिरा जल रहा हो या जल चुका हो। लुआठा। लुआती।

लुकदार—वि० [हिं० लुक+फ़ा० दार] चमकदार। वार्निश किया हुआ। जिसपर लुक फेरा गया हो।

लुकना—क्रि० अ० [सं० लुक (=लोप)] ऐसी जगह हो रहना, जहाँ कोई देख न सके। आड़ में होना। गुप्त स्थान में हो रहना। छिपना। उ०—कातिक के द्यौस कहूँ आई न्हाइबे को वह गोपिन के संग जऊ नेसुक लुकी रही।—द्विजदेव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

मुहा०—लुक छिपकर=गुप्त रूप से। अप्रकट में। किसी के देखने में नहीं। जैसे,—लुक छिपकर बहुत से लोग शराब पीते हैं।

लुकमा—संज्ञा पुं० [अ० लुक़मह्] ग्रास। कौर। निवाला।

लुकमान—संज्ञा पुं० [अ०] एक बहुत बड़े हकीम और वैज्ञानिक जिनकी चर्चा कुरान में आई है।

लुकसाज—संज्ञा पुं० [हिं० लुक (=चमकीला रोगन)+फ़ा० साज़] एक प्रकार का चमड़ा जो सिझाया और चमकीला किया हुआ होता है।

लुकाछिपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुकना+छिपना] एक प्रकार का खेल। आँखमिचौनी।

लुकाट—संज्ञा पुं० [सं० लकुच] एक प्रकार का पेड़ जिसके फल आमड़े के बराबर और खाने में खटमीठे होते हैं।

लुकाठ¹†—संज्ञा पुं० [सं० लुक (=चमकना)+काष्ठ] दे० 'लुआठ'।

लुकाठ²—संज्ञा पुं० [सं० लकुच] दे० 'लुकाट'।

लुकाना¹—क्रि० स० [हिं० लुकना] ऐसी जगह करना जहाँ कोई देख न सके। आड़ में करना। छिपाना। उ०—चाँपी पूँछ लुकावत अपनी जुवतिन को नहिं सकत दिखाय।—सूर (शब्द०)।

लुकाना²†—क्रि० अ० लुकना। छिपना। उ०—मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।—तुलसी (शब्द०)।

लुकार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० लुक] दे० 'लुकाठा'।

लुकारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुक] फूस का पूला या लकड़ी जिसका एक छोर जलता हो। मशाल की तरह जलती हुई लकड़ी।

लुकेठा†—संज्ञा पुं० [हिं० लुक] जलती हुई लकड़ी। लुआठा। उ०—कबहुँ प्रवेश करत घर जब हीं। मारहिं नारि लुकेठन तब हीं।—रघुराज (शब्द०)।

लुकोना(पु)—क्रि० स० [हिं० लुकाना] दे० 'लुकाना'।

लुक्क‡—संज्ञा पुं० [सं० लोक (=चमकना)] दे० 'लुक'।

लुक्कायित—वि० [सं०] लुका हुआ। छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृश्य।

लुख—संज्ञा स्त्री० [देश०] शर या सरपत की तरह की एक घास।

लुखरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लोखरी।

लुखिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. धूर्त स्त्री। चालबाज औरत। २. पुंश्चली। छिनाल। ३. वेश्या। रंडी।

लुगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] दे० 'लुगरा'।

लुगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूगा] दे० 'लुगरी'।

लुगत—संज्ञा पुं० [अ० लुगअत] १. शब्दकोश। अभिधान। जैसे,—लुगत किशोरी। २. शब्द।

यौ०—लुगतदाँ=अत्यधिक शब्दों का जानकार। लुगतनवीस=कोशकार। शब्दकोश तैयार करनेवाला।

लुगदा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लुगदी] गीली वस्तु का गोला या पिंड। लोंदा।

लुगदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गीली वस्तु (जैसे,—कीचड़, सना हुआ आटा) का पिंडा या गोला। छोटा लोंदा। जैसे,—भाँग की लुगदी।

लुगरा†¹—संज्ञा पुं० [हिं० लूगा+ड़ा (प्रत्य०)] १. कपड़ा। वस्त्र। २. ओढ़नी। छोटी चादर। उ०—पीरे पीरे आँचर स्वेत लुगरा

लहर लेत लहँगा की लुगी लाल रंगी रँगहेरा की।—देव (शब्द०)। ३. फटा पुराना कपड़ा। लत्ता।

लुगरा†²—संज्ञा पुं० [देश०] पीठ पीछे बुराई करनेवाला। चुगलखोर।

लुगरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुगरा] फटी पुरानी धोती।

लुगरी†²—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीठ पीछे की हुई निंदा। चुगली।

लुगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग] स्त्री। औरत। उ०—(क) लगलगा बातनि अलग लग लगी आवै लोगन की लंग ज्यों लुगाइन की लागरी।—देव (शब्द०)। (ख) औध तजी मग वास के रूष ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।—तुलसी (शब्द०)। २. पत्नी। जोरू।

लुगात—संज्ञा पुं० [अ० लुग़अत] १. लुगत का बहुवचन। २. शब्द-संग्रह। शब्दकोश। जैसे, नूर उल् लुगात।

लुगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूगा] १. छोटा कपड़ा। २. फटी पुरानी धोती। ३. लहँगे का संजाफ या चौड़ा किनारा। उ०—पीरे अँचरान स्वेत लुगरा लहरि लेत लुगी लहँगा की रँगी रंगी रंगहेरा की।—देव (शब्द०)।

लुगुरा†—संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] दे० 'लुगरा'।

लुग्गा‡—संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] दे० 'लूगा'। उ०—चूर चूर देख्यो जब सुग्गा। शकुनि नैन पोंछत लै लुग्गा।—गोपाल (शब्द०)।

लुघड़ना—क्रि० अ० [सं० लुएठन] दे० 'लुढ़कना'।

लुचकना—क्रि० स० [सं० लुञ्चन (=नोचना खसोटना)] दूसरे के हाथ से झटका देकर ले लेना। झटके से छीनना। जैसे,—वह मेरे हाथ से मिठाई लुचककर ले गया।

संयो० क्रि०—लेना।

लुचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुचुई + री (प्रत्य०)] दे० 'लुचुई'।

लुचवाना—क्रि० स० [सं० लुञ्चन] नोचवाना। उखड़वाना। चोंथवाना।

लुचुई†—संज्ञा स्त्री० [सं० रुचि, मा० लुचि] मैदे की पतली और मुलायम पूरी। लूची। उ०—लुचुई पूरि सुहारी पूरी। इक तो ताती औ सुठ कँवरी।—जायसी (शब्द०)।

लुच्चा—वि० [हिं० लुचकना] [वि० स्त्री० लुच्ची] १. दूसरे के हाथ से वस्तु लुचककर भागनेवाला। चाईं। २. दुराचारी। कुमार्गी। कुचाली। ३. खोटा। कमीना। लफंगा। शोहदा। बदमाश।

लुच्ची¹—वि० स्त्री० [हिं० लुच्चा] खोटी या बदमाश (औरत)।

लुच्ची²—संज्ञा स्त्री० [सं० रुचि, मा० लुचि] दे० 'लुचुई'।

लुज्जा—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र में वह स्थल जो बहुत गहरा हो। (लश०)।

लुटंतⓅ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूट] लूट।

लुटकना—क्रि० अ० [सं० लडन (=झूलना)] दे० 'लटकना'। उ०—गजगाह निहारि निगाह पुरै मुकुता लर पायन लौं लुटकैं।—गोपाल (शब्द०)।

लुटना¹—क्रि० अ० [सं० √लुट् (=लुटना)] १. दूसरे के द्वारा लूटा जाना। डाकुओं के हाथ धन खोना। जैसे,—रास्ते में बहुत से मुसाफिर लुट गए।

मुहा०—घर लुटना=घर का माल चोरी जाना या अपहृत होना। २. तबाह होना। बरबाद होना। सर्वस्व खोना। ३. बलि जाना। न्यौछावर होना। मुग्ध होना।

संयो० क्रि०—जाना।

लुटनाⓅ²—क्रि० अ० [सं० लुएठन] दे० 'लुठना'।

लुटरना—क्रि० अ० [हिं० लोटना] दे० 'लुढ़कना'। २. लोटना।

लुटरा—वि० [हिं० लट्टूरा] [वि० स्त्री० लुटुरी] घूँघरदार। कुंचित।

लुटाना—क्रि० स० [हिं० लूटना का प्रेर० रूप] १. दूसरे को लूटने देना। डाकुओं आदि को छीन लेने देना। जैसे,—तुम रात को टल गए और हमारा माल लुटा दिया। ३. मुफ्त में देना। बिना पूरा मूल्य लिए दे देना। जैसे,—तुम्हारा माल है, चाहे योंही लुटा दो। ३. बरबाद करना। व्यर्थ फेंकना या व्यय करना। ४. मुट्ठी भर भर चारों ओर इसलिये फेंकना जिसमें जो चाहे, सो ले। बहुतायत से बाँटना। स्वच्छंद वितरण करना। सबको बिना रोक टोक देना। अंधाधुंध दान करना। जैसे,—बरात में उसने खूब रुपए लुटाए।

संयो क्रि०—देना।

लुटावनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० लूटना का प्रेर० रूप] दे० 'लुटाना'।

लुटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + इया (प्रत्य०)] जल भरने या रखने का धातु का छोटा बरतन। छोटा लोटा।

लुटेरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० लुटेरा] एक प्रकार की पक्षी।

लुटेरा—संज्ञा पुं० [हिं० लूटना + एरा (प्रत्य०)] जबरदस्ती छीन लेने-वाला। डर दिखाकर या मार पीटकर दूसरे का माल ले लेने-वाला। लूटनेवाला। डाकू। दस्यु।

लुट्टुर¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भेड़ जिसके कान छोटे हों। (गड़ेरिए)।

लुट्टुर†²—वि० [हिं० लट्टूरा] घुँघराला (केश)।

लुठन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु के लुढ़कने, ढरकने और लोटने की क्रिया या भाव [को०]।

लुठनाⓅ—क्रि० अ० [सं० लुठन] १. भूमि पर पड़ना। सारा शरीर पृथ्वी से लगाए हुए पड़ना। लोटना। उ०—राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।—तुलसी (शब्द०)। २. पृथ्वी पर नीचे ऊपर फिरते हुए बढ़ना या गमन करना। लुढ़कना।

लुठानाⓅ—क्रि स० [हिं० लुटना] १. भूमि पर या नीचे डालना। लोटाना। उ०—माथो चरणारविंद ऊपर लुठाय रघुराय सु उठाय कियो छाती सों लगावनों।—हृदयराम (शब्द०)। २. लुढ़काना।

लुठित¹—वि० [सं०] लुढ़का हुआ। जमीन पर लेटा या ढरका हुआ जैसे,—भूलुठित [को०]।

लुठित²—संज्ञा पुं० जमीन पर लोटना। भूमि पर लोटना। जैसे, घोड़े आदि का [को०]।

लुड़कना¹—क्रि० अ० [सं० लुठना] दे० 'लुढ़कना'।

लुड़कना²—क्रि० स० [हिं० लुढ़कना का प्रेर० रूप] दे० 'लुढ़काना'।

लुड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोंदा] दे० 'लुदकी'।

लुड़खुड़ाना—क्रि० अ० [सं० लड (=डोलना)+अनु० खड़] दे० 'लड़खड़ाना'।

लुढ़क†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लुढ़कने की क्रिया वा भाव।

लुढ़कना—क्रि० अ० [सं० लुठन, हिं० लुठना+क] १. जमीन पर नीचे ऊपर फिरते हुए बढ़ना या चलना। गेंद की तरह नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए गमन करना। ढुलकना। जैसे,—पहाड़ की चोटी से एक पत्थर लुढ़कता हुआ आया।

संयो० क्रि०—जाना। पड़ना।

२. गिरकर नीचे ऊपर होते हुए गमन करना। जैसे,—सँभलकर खड़े होना; नहीं तो लुढ़क पड़ोगे।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—लुढ़कना पुड़कना=गिरना पड़ना। जैसे,—लुढ़कते पुढ़कते किसी तरह आ गया।

लुढ़काना—क्रि० स० [हिं० लुढ़कना] जमीन पर इस प्रकार चलाना कि नीचे ऊपर होता हुआ कुछ दूर बढ़ता जाय। इस प्रकार फेंकना या छोड़ना कि चक्कर खाते हुए कुछ दूर चला जाय। ढुलकाना। जैसे,—गेंद लुढ़काना, ढाल पर से पत्थर लुढ़काना।

संयो० क्रि०—देना।

लुढ़ना¹—क्रि० अ० [सं० लुठन] १. लुढ़कना। २. गिरना। उ०—बरही मुकुट लुढ़त अवनी पर नाहिन निज भुज भरतु।—सूर (शब्द०)।

लुढ़ना†²—क्रि० स० [हिं०] लोढ़ना। चयन करना। (फूल)।

लुढ़ाना(पु)—क्रि० स० [हिं० लुढ़ना का प्रेर०] १. दे० 'लुढ़काना'। उ०—(क) माखन खाय खवावत ग्वालन जो उबरयो सो दियो लुढ़ाइ।—सूर (शब्द०)। (ख) मियाँ जोड़े पली पली और खुदा लुढ़ावे कुप्पा। (कहावत)। †२. चयन कराना फूल आदि। चुनने में लगाना।

लुढ़ियाना—क्रि० स० [हिं० लुंडी या लोढ़िया] गोल बत्ती की तरह उभरी हुई सिलाई करना। गोल तुरपना।

संयो० क्रि०—देना।

लुतरा—वि० [देश०] [वि० स्त्री० लुतरी] १. इधर की उधर लगानेवाला। पीठ पीछे निंदा करके झगड़ा लगानेवाला। चुगुलखोर। २. नटखट। शरारती।

लुतरी—वि० स्त्री० [हिं० लुतरा] झगड़ा लगानेवाली। चुगलखोर (स्त्री)।

लुत्ती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूका] लुआठी। लूती।

क्रि० प्र०—लगाना।

लुत्थ, लुत्थि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० लोष्ठ या लोठ] दे० 'लोथ'।

लुत्फ—संज्ञा पुं० [अ० लुत्फ़] १. कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। २. भलाई। खूबी। उत्तमता। ३. मजा। आनंद। ४. स्वाद। जायका। ५. रोचकता।

क्रि० प्र०—आना।—मिलना।

मुहा०—लुत्फ उठाना=मजा पाना।

लुत्मा—संज्ञा पुं० [अ०] थप्पड़। झापड़। तमाचा (को०)।

लुथ्थ, लुथ्थि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'लोथ'।

लुदकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोंदा] १. दही में बनी हुई भाँग। लुड़की। २. घोड़े की एक प्रकार की चाल।

लुद्रा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लुनना—क्रि० स० [सं० लवन (=काटना), लून (=कटा हुआ) + हिं० ना (प्रत्य०)] १. खेत की तैयार फसल काटना। खेत काटना। उ०—(क) अनबोए लुनना नहीं बोए लुनना होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बया सो लुनिय, लहिय जो दीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २. दूर करना। हटाना। नष्ट करना। उ०—कस्तूरी अगर सार, चोवा रस घनसार दीपक हजार ते अँध्यार लुनियत है।—देव (शब्द०)।

लुनाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना+आई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। सलोनापन। खूबसूरती। उ०—(क) टूटे हरा हियरा पै परे पदमाकर लीक सी लंक लुनाई।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी।—देव (शब्द०)।

लुनाई†²—संज्ञा स्त्री० [सं० हिं० लुनना+आई (प्रत्य०)] १. फसल कटाई। २. फसल काटने की मजदूरी।

लुनेरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० लुनना] खेत की फसल काटनेवाला। लुननेवाला।

लुनेरा²—संज्ञा पुं० [हिं० लोन] एक जाति जिसे लोनिया या नोनिया भी कहते हैं। यह जाति पहले नमक निकालती थी।

लुन्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] मँजकर तैयार लपेटी हुई पाई। (जुलाहे)।

लुपना(पु)—क्रि० अ० [सं० लुप्] छिपना। गुप्त होना। उ०—एक दोय तीन लुपैं, लुप्तोपमा हैं आठ तिनको उदाहरण ही सों पहिचानिए।—दूलह (शब्द०)।

लुप्त¹—वि० [सं०] १. छिपा हुआ। गुप्त। अंतर्हित। २. गायब। अदृश्य। ३. नष्ट। ४. टूटा हुआ। भग्न (को०)। ५. व्याकरण में लोप। अदर्शन (को०)। ६. उपेक्षित। त्यक्त (को०)। ७. लुटा हुआ। जो लूट लिया गया हो (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—लुप्तधर्मक्रिय=जिसने अपना धार्मिक कर्तव्य छोड़ दिया हो। लुप्तपद=(वाक्यादि) जिसमें शब्द न हों। लुप्तपिंडोदकक्रिय=जिस (मृत) की तर्पण, श्राद्ध आदि क्रिया न होती हो। श्राद्धतर्पणादि से वंचित। लुप्तप्रतिज्ञ= =वचनभंग करनेवाला। जिसने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी हो। लुप्तप्रतिभ=जिसकी प्रतिभा लुप्त हो गई हो।

लुप्त[२]—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी का माल। चौर्य का धन।

लुप्तोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा अलंकार जिसमें उसका कोई अंग (जैसे,—उपमेय, धर्म, वाचक शब्द) लुप्त हो, अर्थात् न कहा गया हो।

लुबधⓅ—वि० [सं० लुब्ध] लोलुप। दे० 'लुब्ध'। उ०—काम लुबध बोली सब कामिनि।—पृ० रा०, १।४१०।

लुबरी—संज्ञा स्त्री० [अ० लुब (=लासा)] किसी तरल पदार्थ के नीचे की बैठी हुई मैल। तरौंछ। गाद।

लुबुधⓅ‡[१]—वि० [सं० लुब्ध] दे० 'लुब्ध'। उ०—व्याध बिशिख बिलोक नहिं कल गान लुबुध कुरंग।—तुलसी (शब्द०)।

लुबुध[२]—संज्ञा पुं० लुब्धक। अहेरी। बहेलिया।

लुबुधना†—क्रि० अ० [हिं० लुबुध+ना (प्रत्य०)] लुब्ध होना। मोहित होना। लुभाना। उ०—बीन नाद सुनि लुबुधे मृग ज्यों त्यों भइ दसा हमारी।—सूर (शब्द०)। (ख) भँवर न उड़हिं जो लुबुधे बासा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

लुबुधाⓅ—वि० [सं० लुब्ध, या लुब्धक] १. लोभी। लालची। २. चाहनेवाला। इच्छुक। प्रेमी। उ०—घालि नैन ओहि राखिय, पल नहिं कीजिय ओट। पेम क लुबुधा पाव ओह, काह सो बड़ का छोट।—जायसी (शब्द०)।

लुब्ध[१]—वि० [सं०] १. लोभयुक्त। प्रबल आकांक्षायुक्त। अत्यंत रागयुक्त। लुभाया हुआ। ललचाया हुआ। २. तन मन की सुध भूला हुआ। मोहित। उ०—जाके पदकमल लुब्ध मुनि मधुकर निकर परम सुगति हू लोभ नाहिन।—तुलसी (शब्द०)।

लुब्ध[२]—संज्ञा पुं० १. व्याध। बहेलिया। लुब्धक। २. कामुक (को०)।

लुब्धक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशु पक्षियों को लालच दिखाकर पकड़ लेनेवाला। व्याध। बहेलिया। शिकारी। उ०—सूरदास प्रभु सों मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तरयो।—सूर (शब्द०)। २. उत्तरी गोलार्ध का एक बहुत तेजवान तारा। (आधुनिक)। ३. लालची आदमी। लोभी व्यक्ति (को०)। ४. वह व्यक्ति जो अत्यंत रागी वा कामुक हो (को०)। ५. पिछला भाग। पीछे का हिस्सा (को०)।

लुब्धनाⓅ—क्रि० अ० [सं० लुब्ध] दे० 'लुबुधना'।

लुब्धापति—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार प्रौढ़ा नायिका का चतुर्थ भेद। वह प्रौढ़ा नायिका जो पति और कुल के सब लोगों की लज्जा करे। यथा,—सो लुब्धापति जानिए केशव प्रगट प्रमान। कानि करै कुलपति सबै प्रभुता प्रभुहि समान।—केशव (शब्द०)।

लुब्ब—संज्ञा पुं० [अ०] १. बुद्धि। अक्ल। २. तत्व या सार भाग। ३. विशुद्ध। खालिस। ४. मग्ज। मींगी। गिरी [को०]।

लुब्बलुबाब—संज्ञा पुं० [अ० लुब्बे लुबाब] १. गूदा। सार। २. किसी बात का तत्व। सारांश।

लुभाना[१]—क्रि० अ० [हिं० लोभ+आना (प्रत्य०)] १. लुब्ध होना। अत्यंत रागयुक्त होना। मोहित होना। आकर्षित होना। रीझना। उ०—कूबरी के कौन गुन पै रहे कान्ह लुभाइ।—सूर (शब्द०)। २. लालसा करना। लालच में पड़ना। ३. तन मन की सुध भूलना। मोह में पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

लुभाना[२]—क्रि० स० १. लुब्ध करना। अत्यंत रागयुक्त करना। अपने ऊपर गहरा प्रेम उत्पन्न कराना। मोहित करना। रिझाना। २. प्राप्त करने की गहरी चाह उत्पन्न करना। ललचाना। जैसे,—उसकी कारीगरी ने हमें लुभा लिया। २. सुध बुध भुलाना। भ्रांत करना। मोह में डालना। उ०—सूर हरि की प्रबल माया देति मोहिं लुभाय।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—लेना।

लुभित—वि० [हिं० लुभाना] १. क्षुब्ध। २. मुग्ध। मोहित। ३. लुब्ध। ललचाया हुआ [को०]।

लुर[१]—वि० [फ़ा०] उजड्ड। घामड़। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

लुर‡[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुर। शऊर। समझ।

लुरकना†—क्रि० अ० [सं० लुलन (=झूलना)] अधर में टँगकर हिलना डोलना। नीचे की ओर झुकना। लटकना। झूलना।

लुरका—संज्ञा पुं० [हिं० लुरकना (=लटकना)] झुमका।

लुरकी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुरकना (=लटकना)] कान में पहनने की बाली। मुरकी। उ०—देव जगामग जोतिन का लर मोतिन की लुरकीन सों नाधी।—देव (शब्द०)।

लुरकी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंदा] दे० 'लुदकी'।

लुरनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० लुलन (= झूलना)] १. ऊपर से नीचे तक चली आई हुई वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना। लटकना। झूलना। लहरना। उ०—(क) छतियाँ पर लोल लुरैं अलकें सिर फूल अरुझि सों यों दुति है।—(शब्द०)। (ख) झरकैं पलकैं बिथुरी अलकें अरु हार लुरैं मुकुता गल में।—सुंदर (शब्द०)। २. ढल पड़ना। झुक पड़ना। टूट पड़ना। ३. कहीं से एकबारगी आ जाना। उ०—ब्रह्म की बिभूति, करतूति विश्वकर्मा की, साहिबी सकल पुरहूत की लुरै परी।—(शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

४. आकर्षित होना। लुभा जाना। लट्टू होना। प्रवृत्त होना। उ०—संग ही संग बसौ उनके, अँग अंगन देव तिहारे लुरी है।—देव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

लुरयाना†[१]—क्रि० अ० [हिं० लुरना] १. प्रेमपूर्वक स्पर्श करना या अंग रखना। प्यार करना। २. एकाएक आ पड़ना। दे० 'लुरना'—३।

लुरियाना[२]†—क्रि० स० [हिं०] लुंडी करना। लपेटना।

लुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लेरुवा (=बछड़ा ?)] वह गाय जिसे

बच्चा दिए थोड़े ही दिन हुए हों। उ०—लाडिली लीली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहाँ आग लगाइके।—केशव (शब्द०)।

लुलन—संज्ञा सं० [सं०] [वि० लुलित] लटकते हुए इधर उधर हिलना डोलना। आंदोलित होना। झूलना।

लुलना—क्रि० अ० [सं० लुलन] लटकते हुए हिलना डोलना। झूलना। लहराना। दोलित होना।

लुलाप—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा [को०]।

यौ०—लुलापकंद = महिषकंद। लुलापकांता = भैंस।

लुलाय—संज्ञा [सं०] दे० 'लुलाप' [को०]।

यौ०—लुलायकंद = महिषकंद। लुलायकांता। लुलायकेतु।

लुलायकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० लुलायकान्ता] भैंस।

लुलायकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक गण [को०]।

लुलित—वि० [सं०] १. लटकता या झूलता हुआ। आंदोलित। २. छितराया हुआ। अस्तव्यस्त (को०)। ३. लटका हुआ। बिखरा हुआ। जैसे, केश। ४. कुचला, दबा या चोट खाया हुआ (को०)। ५. थकामाँदा। क्लांत (को०)। ७. सुंदर। शानदार (को०)।

यौ०—लुलितकुंडल = हिलते हुए कुंडलोंवाला। लुलितपल्लव = हिलते हुए पत्तोंवाला। लुलितमंडन = अस्तव्यस्त आभरण-वाला।

लुवार—वि० [हिं० लू] गरमी के दिनों की तपी हुई गरम हवा। तप्त वायु। लू।

क्रि० प्र०—चलना।

लुशाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय जो आसाम और कछार में होती है।

लुशभ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लुषभ' [को०]।

लुष—संज्ञा पुं० [सं०] निषाद और चाराकी से उत्पन्न संतति [को०]।

लुषभ—संज्ञा पुं० [सं०] मत्त वारण। मस्त हाथी [को०]।

लुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष का छोर या सिरा [को०]।

लुहँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० लोहाङ्ग] लोहा जड़ी हुई लाठी। ऐसी लाठी जिसके मोटे सिरे पर लोहा जड़ा रहता है। लोहबदा।

लुहना—क्रि० अ० [सं० लुभन] लुभाना। ललचना। मोहित होना। उ०—अरि कै वह आजु अकेली गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही।—देव (शब्द०)।

लुहनी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिन रह सकता है।

लुहार—संज्ञा पुं० [सं० लौहकार, प्रा० लोहार] [स्त्री० लुहारिन, लुहारी] १. लोहे का काम करनेवाला। लोहे की चीजें बनाने-वाला। २. वह जाति जो लोहे की चीजें बनाती है।

लुहारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार + इन (प्रत्य०)] लुहार जाति की स्त्री।

लुहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार] १. लुहार जाति की स्त्री। २. लोहे की वस्तु बनाने का काम। जैसे,—वह लुहारी सीख रहा है।

लुहुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० लघु, हिं० लहुरा] छोटे कानोंवाली भेंड़। (गड़ेरिए)।

लूँण—संज्ञा पुं० [सं० लवण, प्रा० लूण] नमक। लवण।

लूँबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोमड़ी] दे० 'लोमड़ी'।

लू—संज्ञा स्त्री० [सं० लुक (= जलना); हिं० लौ (= लपट)] गरमी के दिनों की तपी हुई हवा। गरम हवा का लपट या झोंका। तप्त वायु।

क्रि० प्र०—चलना।—बहना।

मुहा०—लू मारना या लगना = शरीर में तपी हवा लगने से ज्वर आदि उत्पन्न होना।

लूक[१]—संज्ञा पुं० [सं० लुक] एक प्रकार का जलता हुआ पिंड जो आकाश से गिरता हुआ कभी कभी दिखाई पड़ता है। टूटा हुआ तारा। विशेष दे० 'उल्का'। उ०—(क) दिन ही लूक परन विधि लागे।—मानस, ६।३१। (ख) लूक न असनि केतु नहिं राहू।—मानस, ६।३१।

लूक[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० लुक (= जलना)] १. अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। २. पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हुआ हो। जलती हुई लकड़ी। लुत्ती। उ०—दोउ लियो ठीक बिचारि, इक लूक लीन्हो बारि।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—लूक लगाना = जलती लकड़ी या बत्ती छुलाना। आग लगाना। उ०—मारि मुलुक में लूक लगायो।—लाल (शब्द०)।

३. गरमी के दिनों की तपी हवा। तप्त वायु का झोंका जो शरीर में लपट की तरह लगे। लू। उ०—ए ब्रजचंद! चलौ किन वा ब्रज, लुकैं बसंत की ऊकन लागीं।—पद्माकर (शब्द०)। ४. टूटा हुआ तारा। उल्का। लूक। उ०—सुमिरि राम तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आया।—तुलसी (शब्द०)।

लूकट—संज्ञा पुं० [हिं० लूक] जलता हुई लकड़ी। लूक। लुकाठी।

लूकना—क्रि० स० [हिं० लूक + ना] आग लगाना। जलाना। उ०—हिय अंदर रावरो मंदिर है तोहू यों बिरहानल लूकिए ना।—(शब्द०)।

लूकना—क्रि० अ० [सं० √लुक्] दे० 'लुकना'। उ०—लूकि केते रहे, धूकि केते गए, चूकि केते दए, सूक केते चहे।—सूदन (शब्द०)।

लूका[१]—संज्ञा पुं० [सं० लुक (= जलना)] [स्त्री० अल्पा० लूकी] १. अग्नि की ज्वाला। आग की लौ या लपट। उ०—नखत अका-सहि चढ़े दिपाई। तत तत लूका परहिं दिखाई।—जायसी (शब्द०)। २. चिनगी। चिनगारी। स्फुलिंग। ३. पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हो। लकड़ी जिसके एक सिरे में आग हो। लुत्ता।

मुहा०—लूका लगाना = आग छुलाना। आग लगाना। जलाना। मुँह में लूका लगाना = मुँह जलाना। तिरस्कार करना। (स्त्रियों की गाली)।

लूका[२]—संज्ञा पुं० [देश०] मछली फँसाने का एक प्रकार का जाल।

लूका[३]—संज्ञा पुं० [अं० लूकस] बाइबिल का लूकस नामक संत।

लूकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूका] १. आग की चिनगारी । स्फुलिंग । उ०—हिया फाट वह जब ही कूकी । परैं आँसु सब होइ होइ लूकी ।—जायसी (शब्द०) । २. पतली लकड़ी या तिनके का टुकड़ा जिसका सिरा जलता हो । लूका ।

मुहा०—लूकी लगाना = आग लगाना । जलाना ।

लूक्ष—वि० [सं०] रूक्ष । रूखा [को०] ।

लूखा(पु)—वि० [सं० लुक्ष या (लूक्ष = रूक्ष, रूखा)] बिना चिकनाहट का । रूखा । उ०—मना मनोरथ छाँड़ि दे तेरा किया न होय । पानी में घी नीकसै लूखा खाइ न कोय ।—कबीर (शब्द०) ।

लूगड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] १. वस्त्र । कपड़ा । २. ओढ़नी । चादर ।

लूगा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. वस्त्र । कपड़ा । उ०—रोटी लूगा नीके राखैं आगेहु की बेद भाषैं भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं ।—तुलसी (शब्द०) । २. धोती ।

लूघर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० लूका] जलती हुई लकड़ी । लुकारी ।

लूघा—संज्ञा पुं० [देश०] कब्र खोदनेवाला । गोरकन । (ठग) ।

लूट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना] १. बलात् अपहरण । किसी के माल का जबरदस्ती छीना जाना । किसी की धन संपत्ति या वस्तु का बलपूर्वक लिया जाना । डकैती । जैसे,—(क) दगे में बाजार की लूट हुई । (ख) सिपाहियों को लूट का माल खूब मिला ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—मचना ।—होना ।

यौ०—लूट खसोट = (१) छीना झपटी । लूटमार । (२) शोषण । लूटखूँद, लूटमार, लूटपाट = लोगों को मारने पीटने और उनका धन छीनने का व्यापार । डकैती और दंगा ।

२. लूटने से मिला हुआ माल । अपहृत धन । जैसे,—लूट में सब सिपाहियों का हिस्सा लगा ।

लूटक—संज्ञा पुं० [हिं० लूट + क (प्रत्य०)] १. जबरदस्ती छीननेवाला । लूटनवाला । २. डाकू । लुटेरा । ३. कांति हरनेवाला । शोभा में बढ़ जानेवाला । उ०—असनि सरासन लसत, सुचि सर कर, तून कटि मुनिपट लूटक बसन के ।—तुलसी (शब्द०) ।

लूटखूँद—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना + खूँदना] लोगों को मारने और उनका धन छीनने का व्यापार । डाका और दंगा । लूटमार ।

लूटना—क्रि० स० [सं० लुट् (= लूटना)] १. बलात् अपहरण करना । जबरदस्ती छीनना । भय दिखाकर, मार पीटकर या छीन झपटकर ले लेना । जैसे,—रास्ते में डाकुओं ने सारा माल लूट लिया । उ०—(क) केशव फूलि नचैं भ्रुकुटी, कटि लूटि नितंब लई बहु काली ।—केशव (शब्द०) । (ख) जानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में केहि धौं कटि बीच हीं लूटि लई सी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) चोर चख चोरिन चलाक चित चोरी भयो, लूटि गई लाज, कुल कानि को कटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—लेना ।

यौ०—लूटना पाटना । लूटना मारना ।

मुहा०—लूट खाना = दूसरे का धन किसी न किसी प्रकार ले लेना ।

२. बरबाद करना । तबाह करना । ३. धोखे से या अन्यायपूर्वक किसी का धन हरण करना । अनुचित रीति से किसी का माल लेना । जैसे,—कचहरी में जाओ, तो अमले लूटते हैं ।

मुहा०—(किसी को) लूट खाना = किसी का धन अनुचित रीति से ले लेना । किसी का माल मारना ।

४. बहुत अधिक मूल्य लेना । वाजिब से बहुत ज्यादा कीमत लेना । ठगना । जैसे,—वह दूकानदार गाहकों को खूब लूटता है । ५. मोहित करना । मुग्ध करना । वशीभूत करना । मन हाथ में करना । उ० छूटो घुँघरारी लट, लूटी हैं बधूटी बट, टूटी चट लाज तें न जूटी परी कहरैं ।—दीनदयाल (शब्द०) । ५. भोग करना । भोगना । जैसे,—सुख लूटना, आनंद लूटना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सुख या आनंद का भोग करने के अर्थ में भी सुख, आनंद, मौज आदि कुछ शब्दों के साथ होता है । जैसे,—आनंद लूटना, सुख लूटना ।

लूटि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना] दे० 'लूट' । उ०—गए कंचुकि बँद टूटि लूटि हिरदय सो पाई । करति मनहि मन सेव निकट रथ दयो देखाई ।—सूर (शब्द०) ।

लूत[1]—संज्ञा पुं० [इबरानी] यहूदियों के एक पुराने पैगंबर का नाम ।

लूत[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लूता] मकड़ी । ऊर्णनाभ । उ०—लगे लूत के जाल ए, लखो लसत रहि भौन ।—मतिराम (शब्द०) ।

लूत[3]—वि० [फ़ा०] नग्न । नंगा [को०] ।

लूत[4]—वि० [सं०] छिन्न । खंडित । टूटा हुआ । विभक्त ।

लूता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मकड़ी । ऊर्णनाभ । २. फफोले की तरह की फुंसी जो, कहते हैं, मकड़ा के मूतने से निकलती है । वृक्का । मर्मव्रण ।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में 'लूता' रोग कई प्रकार का कहा गया है और कई प्रकार की विषैली मकड़ियों की चर्चा है । जैसे,—त्रिमडला, श्वेता, कपिला, रक्तलूता इत्याद । विष के संबंध में कहा गया है कि मकड़ी के थूक, नख, मूत्र, रज, शुक्र और पुरीष के द्वारा विष का संचार होता है । लूता रोग यदि अच्छा न हो, तो आदमी मर जाता है ।

३. पिपीलिका । च्यूँटी ।

लूता[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लूका] [स्त्री० अल्पा० लूती] लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो । लूका । लुआठा । उ०—सोवत मनसिज आनि जगायो पठै सँदेस स्याम के दूते । बिरह समुद्र सुखाय कौन बिधि किरचक योग अग्नि के लूते ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—लूता लगाना = आग लगाना ।

लूतातंतु—संज्ञा पुं० [सं० लूतातन्तु] मकड़ी का जाला [को०] ।

लूतात—संज्ञा पुं० [सं०] चींटा [को०] ।

लूतापट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी का अंडा [को०] ।

लूतामय—संज्ञा पुं० [सं० लूता+आमय] मकड़ी फरने का रोग। वृक्का। लूता रोग [को०]।

लूतामर्कट, लूतामर्कटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वनमानुष। २. एक प्रकार की चमेली [को०]।

लूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लूता। मकड़ी [को०]।

लूती¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूता] पतली लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो। लुआठी।

मुहा०—लूती लगाना = आग लगाना।

लूती²—वि० [अ०] १. धृष्ट। बेहया। ढीठ। २. स्वेच्छाचारी। धर्म अधर्म का विचार न करनेवाला। ३. अप्राकृतिक व्यभिचार करनेवाला। गुदामैथुन करनेवाला। ४. लूत द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय या वंश का [को०]।

लून¹—वि० [सं०] १. छिन्न। कटा या लुना हुआ। २. चयन किया हुआ। जैसे,—फूल। ३. क्षत। घायल। आहत। ५. विध्वस्त। नष्ट। ५. कतरा हुआ [को०]।

लून²—संज्ञा पुं० [सं० लवण, प्रा० लूण] दे० 'लोन'।

लून³—संज्ञा पुं० [सं०] पूँछ। लूम [को०]।

लूनक¹—संज्ञा पुं० [हिं० लोना] १. सज्जी खार। २. अमलोनी का साग।

लूनक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभाजन। २. व्रण। घाव। ३. भेद। प्रकार। जाति। ४. एक जानवर [को०]।

लूनक³—वि० [सं०] कटा हुआ। विभाजित [को०]।

लूननाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'लुनना'।

लूम¹—संज्ञा पुं० [सं०] लांगूल। पूँछ। दुम।

लूम²—संज्ञा पुं० संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय रात ११ दंड से १५ दंड तक है। यह मेघ राग का पुत्र कहा गया है। (हनुमत)।

लूम³—संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू की लच्छी।

लूम⁴—संज्ञा पुं० [अं० लूम] कपड़ा बुनने का करघा। जैसे, हैंडलूम, पावरलूम।

लूमड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशा] दे० 'लोमड़ी'।

लूमनाⓅ—क्रि० अ० [सं० लम्बन (=दोलन)] लटकना। झूलना। लहराना। उ०—(क) लपकि चढ़े हरि तासु पैं लूमि डहडही डार। कियो सदंब कदंब हूँ नाथ कृपा आगार।—व्यास (शब्द०)। (ख) जूमि जूमि बरसाती तरिवर लहरत तहँ लता रहीं लूमि लूमि।—देवस्वामी (शब्द०)।

लूमर—वि० [देश०] सयान। जवान। युवा। (व्यंग या तिरस्कार) जैसे,—इतने बड़े लूमर हुए, कुछ शऊर न आया।

लूमविष—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा जंतु जिसकी पूँछ में विष होता है। पूँछ से डंक मारनेवाला जंतु [को०]।

लूर†—संज्ञा स्त्री० [?] गुर। गुन। शऊर।

लूरनाⓅ—क्रि० अ० [सं० लुलन (=झूलना)] दे० 'लुरना'। उ०—सिरसि जटा कलाप पानि सायक चाप-उरसि रुचिर बनमाल लूरति।—तुलसी (शब्द०)।

लूला—वि० [सं० लून (=कटा हुआ)] [वि० स्त्री० लूली] १. जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लुंजा। टुंडा। २. बेकाम। असमर्थ। उ०—कोकिल केकी कुलाहत हूल उठी उर में, मति की गति लूली।—(शब्द०)।

लूलुक—संज्ञा पुं० [सं०] मंडूक। मेंढक [को०]।

लूलू—वि० [देश०] मूर्ख। बेवकूफ। उजड्ड। उल्लू। बुद्धिहीन।

मुहा०—लूलू बनाना = (१) बेवकूफ बनाना। बातों में मूर्ख प्रमाणित करना। (२) उपहास करना।

लूसन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़।

लूह†—संज्ञा स्त्री० [सं० लुत (=जलहा)+हिं० लौ (=लपट)] दे० 'लू'।

लूहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लूह] दे० 'लू'। उ०—ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोध सो जो बहि लूहर लावत भारे।—केशव (शब्द०)।

लेंगा†—संज्ञा पुं० [हिं० लहगा] दे० 'लहँगा'।

लेंड—संज्ञा पुं० [सं० लेण्ड] मल। लेंड़ [को०]।

लेंस—संज्ञा पुं० [अं०] शीशे का ताल जो प्रकाश की किरनों को एकत्र या केंद्रीभूत करे। जैसे,—चश्मे का लेंस, फोटोग्राफी का लेंस।

लेँड़—संज्ञा पुं० [सं० लेण्ड] [स्त्री० अल्पा० लेंड़ी] मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है। बँधा मल।

लेँड़हरा†—संज्ञा पुं० [देश०] मक्का। भुट्टा।

लेँड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० लेंड़] १. मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है। बँधा मल। २. बकरी या ऊँट का मल जो बँधी गोलियों के आकार में निकलता है।

लेँड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० लेज] छह हाथ लंबी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर घुंडी होती है। यह घोड़े के दुम में चूतड़ों पर से लगाई जाती है। (घोड़े का साज)।

लेँड़ुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] कागज का एक खिलौना जो उछालकर फेंक देने पर जमीन में गिरते ही फिर खड़ा हो जाता है। इसे खड़ेखाँ और मतवाला भी कहते हैं।

लेँडौरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] (चौपायों को) दाना या चारा खिलाने का बर्तन।

लेँहड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों या दूसरे चौपायों का झुंड।

लेँहड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] झुंड। दल। समूह। कतार। गल्ला। (चौपायों के लिये)। उ०—सिंहन के लेँहड़े नहीं, हंसन की नहिं पाँत। लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात।—कबीर (शब्द०)।

ले¹—अव्य० [हिं० लेना, लेकर] आरंभ होकर। शुरू होकर। जैसे,—यहाँ से ले वहाँ तक।

ले‡²—[सं० लग्न, हिं० लग, लगि] तक। पर्यंत।

ले³—क्रि० स० [सं० लभन] दे० 'लेना'।

लेइ†—अव्य० [सं० लग्न, हिं० लगि] तक। पर्यंत।

लेई—संज्ञा स्त्री० [सं० लेहिन्, लेह्री या लेह्य] १. पानी में घुले हुए किसी चूर्ण को गाढ़ा करके बनाया हुआ लसीला पदार्थ जिसे उँगली से उठाकर चाट सकें। अवलेह। २. आँटे को भूनकर उसमें शरबत मिलाकर गाढ़ा किया हुआ पदार्थ जो खाया जाता है। लपसी।

यौ०—लेई पूँजी = सारी जमा। सर्वस्व।

३. घुला हुआ आटा जो आग पर पकाकर गाढ़ा और लसदार किया गया हो और जो कागज आदि चिपकाने के काम में आवे। ४. सुरखी मिला हुआ बरी का चूना जो गाढ़ा घोला जाता है और ईटों की जोड़ाई में काम आता है।

लेक्चर—संज्ञा पुं० [अं०] व्याख्यान। वक्तृता।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—लेक्चर झाड़ना = धूमधाम से व्याख्यान देना। (व्यंग्य)।

लेक्चरबाजी—संज्ञा स्त्री० [अं० लेक्चर + फ़ा० बाजी]। १. खूब लेक्चर देने की क्रिया। २. बकवास। बकबक।

लेक्चरर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह जो लेक्चर देता हो। व्याख्याता। २. उपप्राध्यापक [को०]।

लेख¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. लिखे हुए अक्षर। लिपि। २. लिखी हुई बात। ३. लिखावट। लिखाई। ४. लेखा। हिसाब किताब। उ०—गुन औगुन बिधि पूछब होइहि लेख अउ जोख।—जायसी (शब्द०)। ५. पंक्ति। लकीर। रेखा। ६. पत्र। चीठी (को०)। ७. देव। देवता। उ०—चढ़े विमानन लेख अलेखन वर्षहिं मुदित प्रसूना।—रघुराज (शब्द०)।

लेखⓅ²—वि० १. लेख्य। लिखने योग्य। २. लेखा करने योग्य। हिसाब के लायक।

लेख³—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीक] लकीर। पक्की बात। उ०—विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति वेद विदित यह लेख।—तुलसी (शब्द०)।

लेखक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० लेखिका] १. जो किसी बात को अक्षरों में उतारे। लिखनेवाला। लिपिकार। लिपिक। २. चित्र लिखनेवाला। चित्रकार (को०)। ३. किसी विषय पर लिखकर अपने विचार प्रकट करनेवाला। लेख लिखनेवाला। ग्रंथकार। जैसे,—इस पुस्तक का लेखक कौन है? ३. एक प्रत का नाम। उ०-लेखक कहता बात बिचारी। बाम्हन सुन अपराध हमारी।—सबल० (शब्द०)।

यौ०—लेखकदोष, लेखकप्रमाद = लेखक की लिखने में त्रुटि। लिखनेवाले की भूल या प्रमाद।

लेखन¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेखनीय, लेख्य] १. लिखने का कार्य। अक्षरविन्यास। अक्षर बनाना। २. लिखने की कला या विद्या। ३. चित्र बनाना। उ०—जल बिनु तरंग, भीति बिनु लेखन बिनु चेतहि चतुराई।—सूर (शब्द०)। ४. हिसाब करना। लेखा लगाना। कूतना। ५. छर्दन। उलटी करना। वमन करना। कै करना। ६. औषध द्वारा रसादि सप्त धातुओं या वात आदि दोषों का शोषण करके पतला करना। ७. इस काम के लिये उपयुक्त औषध। ८. शल्य क्रिया में काटना, चीरना या खरोंचना (को०)। ९. इस काम में प्रयुक्त होनेवाला औजार आदि (को०)। १०. एक प्रकार का सरकंडा या नरसल जिसकी कलम बनाते हैं (को०)। ११. भोजपत्र का वृक्ष (को०)। १२. भोजपत्र या ताड़पत्र, जिसपर प्राचीन काल में लिखा जाता था। १३. खाँसी। १४. उद्दीपन। उत्तेजन (को०)।

लेखन²—वि० [सं०] १. खुरचनेवाला। २. दीप्त करनेवाला। उत्तेजक [को०]।

लेखनवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसादि सप्त धातु या वातादि त्रिदोष और वमन इत्यादि को पतला कर देनेवाली पिचकारी।

लेखनसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लेखसाधन' [को०]।

लेखनहारⓅ—वि० [हिं० लेखन + हार] लिखने का काम करनेवाला। जो लिखता हो। लेखक।

लेखनाⓅ—क्रि० स० [सं० लेखन] १. अक्षर या चित्र बनाना। लिखना। उ०—कुंदन लीक कसौटी में लेखी सी देखी सुनारि सुनारि सलोनी।—देव (शब्द०)। २. हिसाब, संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। गिनती करना।

यौ०—लेखना जोखना = (१) नाप, तौल या गिनती करके संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। ठीक ठीक अंदाज करना। हिसाब करना। (२) जाँच करना। परीक्षा करना। उ०—लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित, नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।— तुलसी (शब्द०)।

३. मन ही मन ठहराना। समझना। सोचना। विचारना। मानना। उ०—(क) हौं आहि आपन दरपन लेखौं। करौं सिंगार भोर मुख देखौं।— जायसी (शब्द०)। (ख) जे जे तव सूर सुभट कीट सम न लेखौं।—सूर (शब्द०)। (ग) सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं।—तुलसी (शब्द०)।

लेखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्रवाहक। २. वह जो लिखना पढ़ना न जानता हो। वह जो अपने बदले किसी को प्रतिनिधि बनाकर अधिकारपत्र लिखावे। ३. लिखक। लिखनेवाला। नकल उतारनेवाला [को०]।

लेखनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलम। लेखनी। २. तूलिका। चित्र लिखने की कलम [को०]।

लेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु जिससे लिखें या अक्षर बनावें। वर्णतूलिका। कलम। लिखनी। फौंटेन पेन। २. चमचा। कलछी (को०)।

मुहा०— लेखनी उठाना = लिखना आरंभ करना।

लेखनीय—वि० [सं०] १. लिखने, खींचने या चित्र बनाने के योग्य। २. जिससे घटाया या पतला किया जा सके (को०)।

लेखपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लेखपत्र' [को०]।

लेखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. लिखित पत्र। लिखा हुआ कागज। २. दस्तावेज।

लेखपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लेखपत्र' [को०]।

लेखपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लेखप्रणाली' [को०]।

लेखपाल—संज्ञा पुं० [हिं० लेख+पाल] जमीन की नापजोख का लेखा रखनेवाला सरकारी कर्मचारी। पटवारी।

लेखप्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की शैली। लिखने का ढंग।

लेखर्षभ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र।

लेखशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखना सिखानेवाला विद्यालय [को०]।

लेखशालिक—संज्ञा पुं० [सं०] लेखशाला का विद्यार्थी [को०]।

लेखशैली—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखप्रणाली।

लेखसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने का साधन कलम, स्याही, कागज, पटरी आदि [को०]।

लेखहार, लेखहारक—संज्ञा पुं० [सं०] चिट्ठी ले जानेवाला। पत्रवाहक।

लेखहारी—संज्ञा पुं० [सं० लेखहारिन्] दे० 'लेखहार' [को०]।

लेखा¹—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] १. गणना। गिनती। हिसाब किताब। जैसे,—(क) आमदनी और खर्च का लेखा लगा लो। (ख) इसका लेखा लगाओ कि वह आठ कोस रोज चलकर वहाँ कितने दिनों में पहुँचेगा। २. ठीक ठीक अंदाज। कूत।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. रुपए पैसे या और किसी वस्तु की गिनती आदि का ठीक ठीक लिखा हुआ ब्योरा। आय व्यय आदि का विवरण। जैसे,—तुम अपना लेखा पेश करो; रुपया चुका दिया जाय।

यौ०—लेखा बही। लेखा पत्तर।

मुहा०—लेखा जाँचना=यह देखना कि हिसाब ठीक है या नहीं। लेखा डेवढ़ करना=(१) हिसाब चुकता करना। (२) हिसाब बराबर करना। (३) चौपट करना। नाश करना। लेखा पूरा या साफ करना=हिसाब साफ करना। पिछला देना चुकाना। लेखा डालना=हिसाब किताब खोलना। लेनदेन के व्यवहार को बही में लिखना।

४. अनुमान। विचार। समझ।

मुहा०—किसी के लेखे=(१) किसी की समझ में। किसी के विचार के अनुसार। जैसे,—हमारे लेखे तो सब बराबर हैं। (२) किसी के लिये या वास्ते।

लेखा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिपि। लिखावट। २. रेखा। लकीर। जैसे,—चंद्रलेखा। ३. कतार। पंक्ति (को०)। ४. निशान। चिह्न (को०)। ५. किनारा। छोर। सिरा (को०)। ६. चंद्रांश। चंद्रमा की कला। चंद्रशृंग (को०)। ७. किरीट (को०)। ८. शरीर पर चंदन आदि से रेखानिर्माण (को०)।

८-६८

लेखाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] लिखावट [को०]।

लेखाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्र आदि लिखने लिखाने का अधिकारी। २. मंत्री। सचिव [को०]।

लेखानुजीवी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लेखानुजीविन्] अनुचर। देवता [को०]।

लेखानुजीवी²—वि० लेखन द्वारा जीविका चलानेवाला।

लेखाबही—संज्ञा स्त्री० [हिं० लेखा+बही] वह बही जिसमें रोकड़ के लेन देन का ब्योरा रहता है।

लेखावलय—संज्ञा पुं० [सं०] लकीरों का घेरा। चारों ओर से गोलाकार घेरी हुई रेखा [को०]।

लेखाविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिखने की प्रक्रिया। २. रेखांकन। चित्रलेखन की प्रक्रिया [को०]।

लेखासंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० लेखासन्धि] नासिकामूल का ऊपरी भाग जहाँ दोनों ओर की भौंहें मिलती हैं। भ्रूसंधि [को०]।

लेखिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिखनेवाली। २. ग्रंथ या पुस्तक बनानेवाली। ३. छोटी या हलकी लकीर या रेखा (को०)।

लेखित—वि० [सं०] १. लिखाया हुआ। लिखवाया हुआ। २. लिखित। लिखा हुआ (को०)।

लेखिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलम। लेखनी। २. करछी। चमचा [को०]।

लेखी—वि० [सं० लेखिन्] १. स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला या छूता हुआ। २. लेखन करनेवाला [को०]।

लेखीलक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रवाहक। चिट्ठीरसा [को०]।

लेखें†—अव्य० [हिं० लेखा] १. विचार से। अनुमान से। २. लिये।

लेख्य¹—वि० [सं०] १. लिखने योग्य। २. जो लिखा जाने को हो।

लेख्य²—संज्ञा पुं० १. लिखी बात। लेख। २. दस्तावेज।

विशेष—धर्मशास्त्र में 'लेख्य' मनुष्यप्रमाण के दो भेदों में से एक है। इसके भी दो भेद हैं—शासन और जानपद। (वीरक)।

लेख्यक—वि० [सं०] लिखा हुआ। लिखित [को०]।

लेख्यकृत—वि० [सं०] लिखित। लेखबद्ध [को०]।

लेख्यगत—वि० [सं०] चित्रित। चित्र द्वारा वर्णित [को०]।

लेख्यचूर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की कूँची या लिखने की कलम, पेंसिल आदि [को०]।

लेख्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लेख्य पत्रक'।

लेख्यपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'लेखपत्र'। २. ताड़पत्र [को०]।

लेख्यप्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० लेख्यप्रसङ्ग] दस्तावेज [को०]।

लेख्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] लिखने का स्थान [को०]।

लेख्यारूढ़—वि० [सं०] जिसके संबंध में लिखा पढ़ी हो गई हो। दस्तावेजी। जैसे,—लेख्यारूढ़ आधि।

लेज†—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] रस्सी। डोरी।

लेजम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लेज़म] १. एक प्रकार की नरम और लचकदार कमान जिससे धनुष चलाने का अभ्यास किया जाता है। २. वह कमान जिसमें लोहे की जंजीर लगी रहती है और जिससे पहलवान लोग कसरत करते हैं।

विशेष—इसे हाथ में लेकर कई तरह के पैतरों और बैठकों के साथ कसरत करते हैं।

प्राइमरी स्कूलों में भी क्रीड़ा में इसको भाँजना सिखाया जाता है।

क्रि० प्र०—भाँजना।—हिलाना।

लेजरंग—संज्ञा पुं० [लेज + हिं० रंग] मरकत या पन्ने की एक रंगत जो उसका गुण मानी जाती है।

लेजिम—संज्ञा पुं० [फ़ा० लेज़म] दे० 'लेजम'।

लेजिस्लेटिव एसेंब्ली—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'व्यवस्थापिका परिषद्'।

लेजिस्लेटिव काउंसिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] प्रधान शासक या गवर्नर की वह सभा जो देश के लिये कानून बनाती है।

लेजिस्लेटिव कौंसिल—संज्ञा स्त्री० [अं० लेजिस्लेटिव काउंसिल] दे० 'व्यवस्थापिका सभा'।

लेजुर†—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] १. रस्सी। डोरी। २. कूएँ से पानी खींचने की रस्सी। उ०—लेजुरि भइउँ, नाथ, बिनु तोहीं।—जायसी (शब्द०)।

लेजुरा¹—संज्ञा पुं० [मा० प्रा० लेज्जु] दे० 'लेजुर'।

लेजुरा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लेजुरी†—संज्ञा स्त्री० [मा० प्रा० लेज्जु] दे० 'लेजुर'।

लेट¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुरखी, कंकड़ और चूना पीटकर बनाई हुई कड़ी चिकनी सतह। गच।

लेट²—वि० [अं०] जो निश्चित या ठीक समय के उपरांत आवे, रहे या हो। जिसे देर हुई हो। जैसे,—यह गाड़ी प्रायः लेट रहती है।

यौ०—लेट फी।

लेट³—संज्ञा पुं० [सं०] मनु द्वारा उल्लिखित एक जाति का नाम। (मनु०)।

लेटना—क्रि० अ० [सं० लुण्ठन, हिं० लोटना] १. हाथ पैर और सारा शरीर जमीन या और किसी सतह पर टिकाकर पड़ रहना। पीठ जमीन या बिस्तरे आदि से लगाकर बदन की सारी लंबाई उसपर ठहराना। खड़ा या बैठा न रहना। पौढ़ना। जैसे,—जाकर चारपाई पर लेट रहो।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

२. किसी चीज का बगल की ओर झुककर जमीन पर गिर जाना।

मुहा०—खेती लेट जाना = (१) फसल का अधिक पानी या हवा के कारण सीधा खड़ा न रहना, झुककर जमीन पर पड़ जाना। (२) नत होना। विनीत हो जाना। प्रभुत्व मान लेना। गुड़ लेट जाना = ताव बिगड़ने के कारण गुड़ का गीला और चिपचिपा हो जाना।

३. मर जाना।

लेटपेट—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय।

लेट फी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह फीस जो निश्चित समय के बाद डाकखाने में कोई चीज दाखिल करने पर देनी पड़ती है।

विशेष—डाकखाने में प्रायः सभी कामों के लिये समय निश्चित रहता है। उस निश्चित समय के उपरांत यदि कोई व्यक्ति कोई चीज रजिस्टरी कराना या चिट्ठी रवाना करना चाहे, तो उसे कुछ फीस देनी पड़ती है जो लेट फी कहलाती है।

२. स्कूल, कालेज आदि में फीस जमा होने की निश्चित तिथि के बाद उक्त फीस के साथ देय कुछ अतिरिक्त द्रव्य।

लेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वर्ण। अक्षर। २. पत्र। चिट्ठी [को०]।

लेटर बाक्स—संज्ञा पुं० [अं० लेटर + बाक्स] डाकखाने का वह संदूक जिसमें कहीं भेजने के लिये लोग चिट्ठियाँ डालते हैं। चिट्ठी डालने का संदूक।

लेटर्स पेटेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें किसी को कोई पद या स्वत्व आदि देने या कोई संस्था स्थापित करने की बात लिखी रहती है। राजकीय आज्ञापत्र। शाही फरमान। जैसे,—१८६१ में पार्लमेंट ने कानून बनाकर महारानी को अधिकार दे दिया था कि अपने लेटर्स पेटेंट से कलकत्ता, बंबई, मद्रास और आगरा प्रदेशों में हाईकोर्ट स्थापित करें।

लेटा—संज्ञा पुं० [देश०] गल्ले का बाजार। मंडी।

लेटाना—क्रि० स० [हिं० लेटना का प्रेर० रूप] दूसरे को लेटने में प्रवृत्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

लेड—संज्ञा पुं० [अं०] १. सीसा नामक धातु। २. प्रायः दो अंगुल चौड़ी सीसे की ढली हुई पत्तर की तरह पतली पटरी जो छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में अक्षरों को ऊपर नीचे होने से रोकने के लिये दी जाती है।

लेडमोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में रखने के लिये सीसे की पटरियाँ ढालने का साँचा। लेड ढालने का साँचा।

लेडी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. भले घर की स्त्री। महिला। २. लार्ड या सरदार की पत्नी। ३. अंग्रेजी फैशन में ढली हुई औरत।

लेत—संज्ञा सं० [सं०] अश्रु। आँसू [को०]।

लेथो—संज्ञा पुं० [अं० लीथो] दे० 'लीथो'।

लेद¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत जो फागुन में गाया जाता है।

लेद²—संज्ञा पुं० [अं० लेथ] खरादने की मशीन। खराद मशीन।

लेदवा†—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में होनेवाली एक प्रकार की ककड़ी। फूट।

लेदार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

लेदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. जलाशयों के किनारे रहनेवाली एक प्रकार की छोटी चिड़िया। उ०—बोलहिं सुआ ढेक बक लेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी (शब्द०)। २. घास का

पूला जिसे हल के नीचे के भाग में इसलिये बाँध देते हैं जिसमें चौड़ी कूँड़ बने। ३. चारा। घास। पुआल आदि।

लेन²—संज्ञा पुं० [हिं० लेना] १. लेने की क्रिया या भाव।

यौ०—लेन देन।

२. वह रकम जो किसी के यहाँ बाकी हो या मिलनेवाली हो। लहना। पावना।

लेन³—संज्ञा स्त्री० [अं०] गली। कूचा। जैसे,—प्यारीचरण सरकार लेन, कलकत्ता।

लेनदार—संज्ञा पुं० [हिं० लेन + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसका कुछ बाकी हो। जिसका ऋण चुकाना हो। महाजन। लहनेदार।

लेनदेन—संज्ञा पुं० [हिं० लेना + देना] १. लेने और देने का व्यवहार। आदान प्रदान। २. रुपया ऋण देने और ऋण लेने का व्यवहार जो किसी के साथ किया जाय। जैसे, हमारा उसका लेनदेन नहीं है। ३. रुपए लेने देने का व्यवसाय। महाजनी। जैसे,—उसके यहाँ रुपए का लेनदेन होता है।

मुहा०—लेनदेन न होना = व्यवहार न होना। सरोकार न होना। संबंध या प्रयोजन न होना। उ०—हमें कछु लेन न देन है ऐ बीर तुम्हारे।—सूर (शब्द०)।

लेनहार—वि० [हिं० लेना + हार (प्रत्य०)] लेनेवाला। लेनदार। लहनेदार।

लेना—क्रि० स० [सं० लभन, हिं० लहना] १. दूसरे के हाथ से अपने हाथ में करना। ग्रहण करना। प्राप्त करना। लाभ करना। जैसे,—उसने रुपया दिया, तो मैंने ले लिया।

संयो० क्रि०—लेना।

२. ग्रहण करना। थामना। पकड़ना। जैसे,—छड़ी अपने हाथ में ले लो और किताब मुझे दे दो।

मुहा०—ऊपर लेना = सिर या कंधे पर रखना।

३. मोल लेना। क्रय करना। खरीदना। जैसे,—बाजार में तुम्हें क्या क्या लेना है ?

मुहा०—ले देना = दूसरे को मोल लेकर देना। खरीद देना।

४. अपने अधिकार में करना। कब्जे में लाना। जीतना। जैसे,—उसने सिंध के किनारे का देश ले लिया। ५. उधार लेना। कर्ज लेना। ऋण ग्रहण करना। जैसे,—१०००) महाजन से लिए, तब काम चला। ६. कार्य सिद्ध करना या समाप्त करना। काम पूरा करना। जैसे,—आधे से अधिक काम हो गया है; अब ले लिया। ७. जीतना। जैसे,—बाजी लेना। ८. भागते हुए को पकड़ना। धरना। जैसे—लेना, जाने न पावे। ९. गोद में थामना। जैसे,—जरा बच्चे को ले लो। १०. किसी आते हुए आदमी से आगे जाकर मिलना। अगवानी करना। अभ्यर्थना करना। जैसे—शहर के सब रईस स्टेशन पर उन्हें लेने गए हैं। उ०—भरत आइ आगे भै लीन्हे।—तुलसी (शब्द०)। ११. प्राप्त होना। पहुँचना। जैसे,—घर लेना मुश्किल हो गया है। १२. किसी कार्य का भार ग्रहण करना। किसी काम को पूरा करने का वादा करना। जिम्मे लेना। जैसे,—जब इस काम को लिया है, तब पूरा करके ही छोड़ूँगा।

मुहा०—ऊपर लेना = जिम्मे लेना। भार ग्रहण करना। जैसे—इस काम को मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

१३. सेवन करना। पीना। जैसे—कभी कभी वे थोड़ी सी भाँग ले लेते हैं। १४. धारण करना। स्वीकार करना। अंगीकार करना। जैसे,—योग लेना, संन्यास लेना, बाना लेना। १५. काटकर अलग करना। काटना। जैसे,—(क) नाखून लेना, बाल लेना (ख) धीरे से ऊपर का हिस्सा ले लो, अंदर छुरी न लगने पावे। १६. किसी को उपहास द्वारा लज्जित करना। हँसी ठट्ठा करके या व्यंग्य बोलकर शरमिंदा करना। जैसे,—आज उनको खूब लिया।

मुहा०—आड़े हाथों लेना = गूढ़ व्यंग्य द्वारा लज्जित करना। छिपा हुआ आक्षेप करके लज्जित करना।

१७. पुरुष या स्त्री के साथ संभोग करना। १८. संचय करना। एकत्र करना। जैसे,—मैं गुरु के लिये फूल लेने गया था।

मुहा०—ले आना = लेकर आना। लाना। ले उड़ना = (१) लेकर भाग जाना। (२) किसी बात को लेकर उसपर बहुत कुछ कह चलना। किसी बात का संकेत पाते ही वितंडावाद खड़ा करना। जैसे—तुमने तो जहाँ कोई बात सुनी, बस ले उड़े। लेने के देने पड़ना = (१) लेने के स्थान पर उलटे देना पड़ना। भले के लिये कुछ करते हुए बुरा होना। (किसी मामले में) लाभ के बदले हानि होना। (२) बहुत कठिन समय आना। जान पर आ बनना। जैसे,—देखते देखते बच्चे के लेने के देने पड़ गए। ले चलना = (१) लेकर चलना। थामकर या ऊपर उठाकर चलना। (२) चलते समय किसी को साथ करना। साथ साथ गमन करना या पहुँचाना। जैसे—मेले में उन्हें भी ले चलो। ले जाना = लेकर जाना। पास में रखकर प्रस्थान करना। जैसे—(क) यह किताब ले जाओ; अब काम नहीं है। (ख) यह पत्र उनके पास ले जाओ। ले डालना = (१) खराब करना। चौपट करना। नष्ट करना। (२) पराजित करना। हराना। (३) किसी काम को निबटा देना। पूरा करना। समाप्त करना। ले डूबना = अपने साथ दूसरे को भी खराब करना। ले दे करना = (१) हुज्जत करना। तकरार करना। (२) बहुत प्रयत्न करना। बड़ी कोशिश करना। जैसे—बड़ी ले दे की, तब जाकर काम पूरा हुआ। ले देकर = (१) लेना देना सब जोड़कर। खर्च या देना आदि घटा कर। जैसे—सब ले देकर १००) बचते हैं। (२) सब मिलाकर। जोड़ जोड़कर। जैसे—ले देकर इतने ही रुपए तो होते हैं। (३) बड़ी मुश्किल से। कठिनता से। लेना देना = (१) लेने और देने का व्यवहार। (२) रुपया उधार देने और लेने का व्यवसाय। लेनादेना होना = मतलब या प्रयोजन होना। सरोकार होना। जैसे,—मुझे किसी से कुछ लेना देना है जो परवा करूँ। लेना एक न देना दो = कुछ मतलब नहीं। कुछ प्रयोजन नहीं। कुछ सरोकार

नहीं। उ०—माँगि के खैबो, मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ। तुलसी (शब्द०)। ले निकलना=लेकर चल देना। ले पड़ना (१) अपने साथ जमीन पर गिरा देना। (२) संभोग करने लगना। ले पालना=गोद लेना। दत्तक लेना। ले बैठना=(१) बोझ लिए डूब जाना। (नाव आदि का)। (२) अपने साथ नष्ट या खराब करना। ३. किसी व्यवसाय का नष्ट होकर लगे हुए धन को नष्ट करना। जैसे—यह कारखाना सारी पूँजी ले बैठेगा। ले भागना=लेकर भाग जाना। ले मरना=अपने साथ नष्ट या बरबाद करना। ले रखना=लेकर रख छोड़ना। कान में लेना=सुनना। उ०—करैं घरी दस ता मैं कोऊ जो खबरि देत लेत नहि कान और मरवावही।—प्रियादास (शब्द०)। ले=इस शब्द का प्रयोग किसी को संबोधन करके इन अर्थों का बोध कराने के लिये किया जाता है—(१) अच्छा, जो तू चाहता है, वही होता है। जैसे—ले, मैं चला जाता हूँ, जो चाहे सो कर। (२) अच्छा, जो तू किसी तरह नहीं मानता है, तो मैं यहाँ तक करता हूँ। जैसे,—ले, तेरे हाथ जोड़ूँ हूँ, क्यों न गावेगी?—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. किसी के प्रतिकूल कोई बात हो जाने पर उसे चिढ़ाने या लज्जित करने के लिये प्रयुक्त। देख! कैसा फल मिला। जैसे,—(क) ले! और बढ़ बढ़कर बातें कर। (ख) ले! कैसी मिठाई मिली।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रिया के रूप में सकर्मक और अकर्मक दोनों क्रियाओं के धातुरूप के आगे कहीं तो (क) केवल पूर्ति सूचित करने के लिये होता है; जैसे—इस बीच में उसने अपना काम कर लिया। और (ख) कहीं स्वयं वक्ता द्वारा किसी क्रिया का किया जाना सूचित करने के लिये। जैसे,—तुम रहने दो, मैं अपना काम आप कर लूंगा।

लेनिहार(पु)—वि० [हिं० लेना+हार] लेनेवाला। लेनदार। लहनेदार। उ०—जनु लेनिहार न लेहिं जिउ हरहिं तरासहिं ताहि। एतने बोल आय मुख करै करै तराहि तराहि।—जायसी (शब्द०)।

लेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीली या पानी आदि के साथ मिली हुई वस्तु जिसकी तह किसी वस्तु के ऊपर फैलाकर चढ़ाई जाय। पोतने, छोपने या चुपड़ने की चीज। लेई के समान गाढ़ी गीली वस्तु। मरहम। जैसे,—जहाँ चोट लगी है, वहाँ यह लेप चढ़ा देना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

२. गाढ़ी गीली वस्तु की तह जो किसी वस्तु के ऊपर फैलाई जाय। ३. उबटन। बटना। ४. लगाव। संबंध। ५. धब्बा। दाग (को०)। ६. किसी वस्तु में मिट्टी लगाना। मृत्तिकालेपन (को०)। ७. नैतिक पतन या दोष। पाप। ६. खाद्यपदार्थ। १०. श्राद्ध के समय पिंडदान के अनंतर हाथों में लगा हुआ पिंड का अन्न जिसे वेदी पर बिछे हुए कुशमूल में लगाते हैं। यह अन्न चौथी, पाँचवीं और छठी पीढ़ी के लेखभागी पितर प्राप्त करते हैं।

लेपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेप करनेवाला। पोतने या लगानेवाला। २. एक जाति या वर्ग। राजगीर (को०)। ३. साँचे बनानेवाला। ढलाई करनेवाला (को०)।

लेपकर—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करनेवाला। दे० 'लेपक' [को०]।

लेपकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँचे के द्वारा ढाली हुई नारीमूर्ति। दे० 'लेप्यनारी—२' [को०]।

लेपची—संज्ञा पुं० [देश०] नैपालियों की एक जाति।

लपचू—संज्ञा पुं० [अं० ?] एक किस्म की उत्तम कोटि की चाय।

लेपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेपिता, लेप्य, लिप्त] १. गाढ़ी गीली वस्तु की तह चढ़ाना। लेई सी गीली चीज पोतना या छोपना। २. तुरुष्क नामक एक गंधद्रव्य (को०)। ३. लेपनीय वस्तु, उबटन, अंगराग, आदि (को०)। ४. मांस (को०)।

लेपना—क्रि० स० [सं० लेपन] गाढ़ी गीली वस्तु की तह चढ़ाना। कीचड़ या लेई सी गाढ़ी चीज फैलाकर पोतना। छोपना।

लेपभागी—संज्ञा पुं० [सं० लेपभागिन्] पिता की ओर चौथी, पाँचवीं और छठी पीढ़ी के पूर्वज [को०]।

लेपभुज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लेपभागी' [को०]।

लेपालक—संज्ञा पुं० [हिं० लेना+पालना] गोद लिया हुआ पुत्र। दत्तक पुत्र। पालट।

लेपी[१]—वि० [सं० लेपिन्] लेप करनेवाला।

लेपी[२]—संज्ञा पुं० १. लेखक। लिपिकार। २. राजगीर। थवई (को०)।

लेप्य—वि० [सं०] १. लेपन करने योग्य। लेपनीय। ढालने लायक। साँचे के द्वारा ढालने के योग्य (को०)।

यौ०—लेप्यकार=लेप्यकृत्=दे० 'लेपक', 'लेपकर'। लेप्यनारी। लेप्यमयी। लेप्यस्त्री=दे० 'लेप्यनारी'।

लेप्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसपर चंदन आदि का लेप लगा हो। पत्थर या मिट्टी की बनी स्त्री की मूर्ति।

लेप्यमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी, पत्थर या काठ की बनी पुतली [को०]।

लेफ्टिनेंट—संज्ञा पुं० [अं० लेफ्टिनेन्ट] १. वह सहायक कर्मचारी जिसे यह अधिकार हो कि अपने से उच्च कर्मचारी के आज्ञानुसार या उसकी आज्ञा के अभाव में यथाभिमत कोई काम कर सके। जैसे,—लेफ्टिनेंट कर्नल, लेफ्टिनेंट गवर्नर, लेफ्टिनेंट जनरल इत्यादि। २. सेना का वह अध्यक्ष जो कप्तान के मातहत होता है और कप्तान की अनुपस्थिति में सेना पर पूर्ण अधिकार रखता है।

लेफ्टिनेंट कर्नल—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा कर्नल के बाद ही है।

लेफ्टिनेंट जनरल—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का एक अफसर जिसका दर्जा जेनरल के बाद ही है। सहायक सैन्याध्यक्ष।

लेबर—संज्ञा पुं० [अं०] १. श्रम। मेहनत (विशेषतः शारीरिक)। २. श्रमिक वर्ग [को०]।

यौ०—लेबरपार्टी=वह संगठन या दल जो श्रमिकों का प्रति-

निधित्व करता हो। लेबर मैंबर=शासन में श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधि सदस्य। लेबर यूनियन=मजदूरों का संघ।

लेबरना† —क्रि० स० [हिं० लपेटना, लिबड़ना या लेभरना] ताने में माँड़ी लगाना। (जुलाहा)।

लेबरर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो शारीरिक परिश्रम द्वारा जीविका निर्वाह करता हो। मेहनत मजदूरी करके गुजर करनेवाला। श्रमजीवी। मजदूर।

लेबुल—संज्ञा पुं० [अं०] पते या विवरण आदि की सूचक वह चिट जो पुस्तकों, ओषध आदि की पुड़ियों, बोतलों या गठरियों आदि पर लगाई जाती है। नामविधि।

लेबोरेटरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शाला या मंदिर जिसमें वैज्ञानिक परीक्षाएँ की जाती हों, किसी प्रक्रिया की जाँच की जाती हो, अथवा रासायनिक पदार्थ, औषधियाँ इत्यादि बनाई या तैयार की जाती हों। प्रयोगशाला।

लेमन—संज्ञा पुं० [अं०। तुल० अ० लीमूँ] नीबू [को०]।

यौ०—लेमनचूस। लेमनजूस।

लेमनचूस—संज्ञा पुं० [अं० लेमन+हिं० चूसना] नीबू आदि के योग से बनी चीनी की गोलियाँ [को०]।

लेमनेड—संज्ञा पुं० [अं०] नीबू का शरबत जो पहले नीबू के रस को शरबत में मिलाकर बनाते थे; पर जो अब नीबू के सत्त को शरबत में मिलाकर बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बंद करके रखते हैं। विलायती मीठा पानी। (यह प्रायः पाचक होता है।)

लेमर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का जंतु।

विशेष—यह पेड़ों पर रहता है और फल, फूल, अंकुर, पत्तियाँ, अंडे और कीड़े मकोड़े, जो पेड़ों पर रहते है, खाता है। पहले मेडागास्कर टापू में इसका पता लगा था। यह बंदरों से मिलता जुलता होता है। इसकी अनेक जातियों का पता चला है, जो अफ्रीका और पूर्वीय टापुओं में फिलिपाइन और सिलीबीज तक मिलती हैं। इनके सिवा इसकी एक और जाति है, जो बिना पूँछ के होती है और मलाया, बोर्निओ, सुमात्रा आदि में मिलती है। इसकी पूँछ लंबी होती है। इसकी कुछ जातियों के जंतुओं को दिन में दिखाई नहीं देता।

लेमू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नीबू [को०]।

लेमूनी—वि० [फ़ा०] नीबू का। नीबू से युक्त। जिसमें नीबू का योग हो [को०]।

लेय—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह राशि [को०]।

लेर—संज्ञा स्त्री० [हिं० लहर] दे० 'लहर'। (लश०)।

लेरुआ†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० लड्डुआ] दे० 'लड्डू'।

लेरुआ(पु)[२]—संज्ञा पुं० [देश०] १. गाय का छोटा बच्चा। बछड़ा। २. बच्चा। शिशु। उ०—ललन लोने लरुआ बलि मैया। सुख सोइए नींद बेरिया भइ चारु चरित चारयौ भैया। —तुलसी ग्रं०, पृ० २७७।

लेरुआरी†—संज्ञा पुं० [हिं० लट+आरी (प्रत्य०)] वह भेंड़ जिसके गले में लट लटकी रहती है। (गड़रिया)।

लेरुवा—संज्ञा पुं० [सं० लह] १. बछड़ा। उ०—(क) जो न बसौं, लोल नैन, लरुवा मरहिं सब खरक खरेई आजु सूनैं सुनियतु है।—केशव (शब्द०)। (ख) लाड़िली लाली कलोरी लुरी कहँ लाल लके कहाँ अंग लगाइ कै। आजु तो केशव कैसहु लरुवै लागत देत न कैसहूँ आइ कै।—केशव (शब्द०)। २. शिशु। बच्चा। बालक।

लेला[१]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० लेली] १. भेंड या बकरी का बच्चा। २. वह जो साथ लगा रहता हो। पिछलग्गू'।

लेला[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंप। कंपन [को०]।

लेलापमाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में एक का नाम [को०]।

लेलितक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक [को०]।

लेलिह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जूँ। लीख। २. साँप।

लेलिहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र में अंगुलियों की एक प्रकार की मुद्रा [को०]।

लेलीतक—संज्ञा पुं० [सं०] लेलितक। गंधक [को०]।

लेलिहान[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प। साँप। २. शिव [को०]।

लेलिहान[२] वि० [सं०] बार बार जीभ से स्वाद लेनेवाला। चाटनेवाला।

लेव—संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] १. अच्छी तरह घुली हुई मिट्टी या पिसी हुई ओषधियाँ जो किसी स्थान पर लगाई जायँ। लेप। २. मिट्टी आदि का लेप जो हंडी या और बर्तनों की पेंदी पर, उन्हें आग पर चढ़ाने से पहले, जलाने से बचाने के लिये, किया जाता है। ३. दीवार पर लगाने का गिलावा। कहगिल।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—देना।

मुहा०—लेव चढ़ना=मोटा होना। मोटाई आना। (व्यंग्य)।

४. दे० 'लेवा'।

लेवक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसको लकड़ी इमारत के काम मे आती है।

लेवड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० लेव+ड़ा (प्रत्य०)] १. लेव। लेप। २. पलस्तर। किसी लेप आदि का वह चप्पड़ जो फूलकर गिरने लगता है। जैसे, लेवड़ा उखड़ना।

लेवरना†—क्रि० स० [हिं० लेव, या लेवड़ा] लेवा लगाना। कहगिल करना। लेव लगाना।

लेवा[१]—संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] १. गिलावा। २. मिट्टी का गिलावा। कहगिल। ३. नाव की पेंदी का वह तख्ता जो सिरे से पतवार तक लगाया जाता है। ४. लेप। ५. पानी का इतना बरसना कि जोतने पर खेत की मिटो और पानी मिलकर गिलावा बन जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

६. गाय, भैंस आदि का थन।

†७. कथरी।

लेवा[२]—वि० [हिं० लेना] लेनेवाला। जैसे,—नामलेवा। जानलेवा।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार केवल यौगिक शब्दों के अंत में होता है।

यौ०—लेवा देई = लेनदेन। आदान प्रदान। उ०—अपनो काज सँवार सूर सुनि हमहि बनावत कूर। लेवा देई बराबर में है कौन रंक को भूप।—सूर (शब्द०)।

लेवार[१]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार।

लेवार†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० लेव] लेव। गिलावा।

लेवारना‡—क्रि० स० १. दे० 'लेवरना'। २. दे० 'लेवरना'।

लेवाल—संज्ञा पुं० [हिं० लेना + वाल (प्रत्य०)] लेने या खरीदनेवाला।

लेवी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. एक प्रकार का दरबार जो विलायत में राजा लोग और हिंदुस्तान में वायसराय करते थे। २. उद्देश्य-विशेष से खड़ी की हुई पल्टन। जैसे,—मकरान लेवी कोर। विशेष दे० 'मिलिशा'।

लेश[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अणु। २. छुटाई। सूक्ष्मता। ३. चिह्न। निशान। उ०—राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा।—तुलसी (शब्द०)। ४. संसर्ग। लगाव। संबंध। उ०—जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सनमुख हतै गिरा सर पैना। तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं। सो सीतल कहिए जग माहीं।—तुलसी (शब्द०)। ५. एक अलंकार, जिसमें किसी वस्तु के वर्णन के केवल एक ही भाग या अंश में रोचकता आती है। ६. एक प्रकार का गाना। ७. समय का एक मान जो दो 'कला' (कुछ के मत से १२ कला) के बराबर होता है (को०)।

लेश[२]—वि० अल्प थोड़ा।

लेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] घास काटनेवाला। घसियारा [को०]।

लेशी—वि० [सं० लेशिन्] सूक्ष्म अंश से युक्त। लवलेशवाला [को०]।

लेशोक्त—वि० [सं०] इंगित मात्र। संकेतित। इशारे में या दबी जबान से सुझाया हुआ। संक्षेप में कहा गया [को०]।

लेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश [को०]।

लेश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जैनियों के अनुसार जीव की वह अवस्था जिसके कारण कर्म जीव को बाँधता है। यह छह प्रकार की मानी गई है—कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

विशेष—इसे जैन लोग जीव का पर्याय भी मानते हैं।

२. प्रकाश (को०)।

लेषⓅ[१]—संज्ञा पुं० [सं० लेश] दे० 'लेश'।

लेषⓅ[२]—संज्ञा पुं० [सं० लेख] दे० 'लेख'।

लेषनाⓅ[१]—क्रि० स० [हिं० लखना] दे० 'लखना'। उ०—दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सब सम लेषहिं बिपति बिहाई।—तुलसी (शब्द०)।

लेषनाⓅ[२]—क्रि० स० [सं० लेखन] दे० 'लिखना'। उ०—सीय स्वयंबरु माई दोऊ भाई आए देषन। सुनत चली प्रमदा प्रमुदित मन, प्रेम पुलकि तन मनहुँ मदन मंजुल मेषन। निरषि मनोहरताई सुषुमाई कहैं एक एक सों भूरि भाग हम धन्य आलो ए दिन एषन। तुलसी सहज सनेह सुरंग सब, सो समाज चित चित्रसार लागी लेषन।—तुलसी (शब्द०)।

लेषनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० लेखनी] दे० 'लेखनी'।

लेषेⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लेखे'।

लेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का ढोका [को०]।

यौ०—लेष्टभेदन = मिट्टी के ढोंके तोड़ने का औजार।

लेस†[१]—वि० [सं० लेश] दे० 'लेश' उ०—(क) लरिका और पढ़त शाला में, तिनहिं करत उपदेश। हरि को भजन करो सबहीं मिलि और जगत सब लेस।—सूर (शब्द०)। (ख) राज देन कहि दीन बन, मोहि न सो दुख लेस। तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेस।—तुलसी (शब्द०)।

लेस[२]—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. कलाबत्तू या किनारे पर टाँकने की इसी प्रकार की और कोई पटरी। गोटा। २. बेल।

यौ०—लेसदार = (१) बेलदार। जिसपर बेल लगी हो। (२) गोटेदार। जिसपर गोट टँकी हो।

लेस[३]—संज्ञा पुं० [हिं० लासा] १. मिट्टी का गिलावा जो दीवार पर लगाने के लिये बनाया जाता है। २. किसी वस्तु को पानी में घोलकर गाढ़ा किया हुआ। गिलावा। चेप। लस।

यौ०—लेसदार = लसीला। चिपचिपा।

लेसक—संज्ञा पुं० [सं०] गजारोही। हाथी का सवार [को०]।

लेसना[१]—क्रि० स० [सं० लेश्या (= प्रकाश)] जलाना। उ०—एहि बिधि लेसइ दीप तेजरासि बिज्ञानमय। जातहि जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

लेसना[२]—क्रि० स० [हिं० लेस या लस] १. किसी चीज पर लेस लगाना। पोतना। २. घर की दीवार पर मिट्टी का गिलावा पोतना। कहगिल करना। ३. चिपकाना। सटाना। ४. इधर की बात उधर लगाना। चुगली खाना। ५. दो आदमियों में विवाद उत्पन्न करने के लिये उन्हें उत्तेजित करना।

लेसिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लेसक' [को०]।

लेसो†—संज्ञा पुं० [देश०] छह ढोली पान का एक गट्ठा।

लेह[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अवलेह'। २. लेहन करनेवाला (को०)। ३. खाना। आहार। भोजन (को०)। ४. ग्रहण का एक भेद जिसमें पृथ्वी की छाया (या राहु) सूर्य या चंद्रबिंब को जीभ के समान चाटता हुआ जान पड़ता है।

लेह[२]—संज्ञा पुं० [देश०] लोध नामक वृक्ष। विशेष दे० 'लोध'।

लेहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेहक, लेह्य] चाटना। उ०—जहँ जहँ भीर परत भक्तन को तहँ तहँ होत सहाय। अस्तुति कारे मन हरष बढ़ायो लेहन लाभ कराय।—सूर (शब्द०)।

लेहना¹†—संज्ञा पुं० [सं० लेह (= आहार)] पशुओं का चारा।

लेहना²—संज्ञा पुं० [हिं० लहना] १. खेत में कटे हुए शस्य या फसिल की वह डाँठ जो काटनेवाले मजदूरों को काटने की मदूजरी में दी जाती है। २. कटी हुई फसिल का वह बाल सहित डंठल जो नाई, धोबी आदि को दिया जाता है। ३. डंठल या बयाल आदि की वह मात्रा जो उठानेवाले के दोनों हाथों के बीच में आ सके। ४. दे० 'लहना'।

लेहसुआ—संज्ञा पुं० [हिं० लेस] एक प्रकार की घास। कनकौवा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार अंगुल लंबी, तीन अंगुल चौड़ी, ऊपर को नुकीली और धारीदार होती हैं। यह घास बरसात में उत्पन्न होती है और बहुत कोमल तथा लसीली होती है। इसका साग भी बनाया जाता है और इसे पशु भी खाते हैं। इसके फूल नीले रंग के और छोटे छोटे होते हैं। इसकी पत्तियाँ बेसन में लपेटकर तेल आदि में तलने से रोटी की भाँति फूल जाती है।

लेहसुर—संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों का एक औजार जिससे वे मिट्टी को मिलाते हैं। पाँसू।

लेहाजा—क्रि० वि० [अ० लिहाज़ा] इसलिये। इस वास्ते। इस कारण।

लेहाड़ा†—वि० [देश०] दे० 'लिहाड़ा'।

लेहाड़ापन—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'लिहाड़ापन'।

लेहाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिहाड़ी] अप्रतिष्ठा। अपमान। (दलाल)।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।—होना।

लेहाफ—संज्ञा पुं० [अ० लिहाफ़] दे० 'लिहाफ'।

लेहिन—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा [को०]।

लेही¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान के अग्रभाग में या ऊपर होनेवाला एक रोग [को०]।

लेही²—वि० [सं० लेहिन्] आस्वादन करनेवाला। चाटनेवाला [को०]।

लेह्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो चाटने के लिये हो। वह जो चाटा जाय। यह भोजन के छह प्रकारों में से एक है। चटनी। उ०—विविध भाँति के रुचिर अचारा। लेह्य चोष्य वर पेय प्रकारा।—रघुराज (शब्द०)। २. अवलेह।

लेह्य²—वि० चाटने के योग्य। जो चाटा जाय।

लैंग¹—वि० [सं० लैङ्ग] व्याकरण में लिंग से संबंधित [को०]।

लैंग²—संज्ञा पुं० अठारह पुराणों में एक पुराण।

लैंगधूम—संज्ञा पुं० [सं० लैङ्गधूम] अज्ञ पुरोहित। मूर्ख पुरोहित [को०]।

लैंगिक—संज्ञा पुं० [सं० लैङ्गिक] १. वैशेषिक दर्शन के अनुसार अनुमान प्रमाण। वह ज्ञान जो लिंग द्वारा प्राप्त हो।

विशेष—इसका स्पष्ट लक्षण सूत्र में न कहकर इसे उदाहरण द्वारा इस प्रकार लक्षित किया गया है कि यह इसका कार्य है, यह इसका कारण है, यह इसका संयोगी है, यह इसका विरोधी है, यह इसका समवायी है, आदि; इस प्रकार का ज्ञान लैंगिक ज्ञान कहलाता है। इसी को न्याय में अनुमान कहते हैं।

२. मूर्तिकार। शिल्पी। भास्कर। कारीगर (को०)।

लैंगिक²—वि० [वि० स्त्री० लैंगिकी] १. चिह्नों या लक्षणों पर आधारित। अनुमित (को०)। २. लिंग संबंधी। जननेंद्रिय संबंधी। ३. मूर्तिकार (को०)।

लैंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० लैङ्गी] लिंगिनी नाम की बूटी [को०]।

लैंगोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० लैङ्गोद्भव] लिंग की उत्पत्ति की कथा या आख्यान [को०]।

लैंडो—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ागाड़ी।

विशेष—इस घोड़ागाड़ी में ऊपर की ओर टप होता है। यह टप बीच में से इस प्रकार खुलता है कि पिछला अंश पीछे की ओर और अगला आगे की ओर सिकुड़कर दब और नीचे बैठ जाता है। इससे आमने सामने दोनों ओर बैठने की चौकियाँ होती हैं।

लैंप—संज्ञा पुं० [अं०] दीपक। चिराग।

लैंसर—संज्ञा पुं० [अं०] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में से एक जो भाला लिए रहते हैं और जिनके घोड़े भारी होते हैं।

लैⓅ—अव्य [हिं० लगना] तक। पर्यंत।

लैकुची—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष प्रकार के रेशों, तंतुओं या सूत्रों से निर्मित एक परिधान [को०]।

लैटिन—संज्ञा स्त्री० एक भाषा जो पूर्व काल में इटली देश में बोली जाती थी।

विशेष—किसी समय में सारे यूरोप में यह विद्वानों और पादरियों की भाषा थी। इस भाषा का साहित्य बहुत उन्नत था; और इसीलिये अब भी कुछ लोग इसका अध्ययन करते हैं।

लैतोलाल—संज्ञा पुं० [अ०] हीला हवाला। टाल मटूल [को०]।

लैन—संज्ञा स्त्री० [अं० लाइन] १. सीधी लकीर जिसमें लंबाई मात्र हो। २. सीमा की लकीर। ३. कतार। पंक्ति। ४. पैदल सिपाहियों की सेना।

यौ०—लैनडोरी = पेशखेमा।

५. सिपाहियों के रहने की जगह। बारक।

लैया†—संज्ञा पुं० [हिं० लपना ?] वह धान जो अगहन में कटता है। जड़हन। शाली। लवक।

लैरू—संज्ञा पुं० [सं० लेह] दे० 'लेरुवा'। उ०—उद्विग्ना और विपुल विकला क्यों न सो धेनु होगी। प्यारा लैरू अलग जिसकी आँख से हो गया है।—प्रिय०, पृ० १३१।

लैल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रात्रि। निशा। यामिनी।

लैला—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. 'कैस' की प्रेमिका, जिसके प्रेम में वह पागल हो गया था। अतः सब उसे 'मजनूँ', 'मज्नूँन' (पागल) कहने लगे थे। 'लैलामजनूँ' की प्रेमकथा की नायिका।

यौ०—लैला मजनूँ = (१) लैला और मजनूँ का प्रेमाख्यान। इस नाम की प्रेमकथा। (२) प्रेमी प्रेमिका।

२. प्रिया। प्रेयसी। ३. सुंदरी। श्यामा (को०)।

लैली—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'लैला'।

लैवेंडर—संज्ञा पुं० [अं०] एक सुगंधित तरल पदार्थ जो एक पौधे के फूलों से निकाला जाता है और जो इतर की भाँति कपड़ों में, या ठंढक पहुँचाने के लिये सिर में लगाया जाता है।

लैसंस—संज्ञा पुं० [अं० लाइसेंस] वह प्रमाणपत्र जिसके द्वारा किसी मनुष्य को विशेष अधिकार प्रदान किया जाता है। सनद। अधिकारपत्र। जैसे,—अफीम बेचने का लैसंस, एक्का या गाड़ी हाँकने का लैसंस, बंदूक रखने का लैसंस।

लैस¹—वि० [अं० लेस] वर्दी और हथियारों से सजा हुआ। कटिबद्ध। तैयार।

क्रि० प्र०—होना।

लैस²—संज्ञा पुं० कपड़े पर चढ़ाने का फीता।

लैस(पु)³—संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाण जिसकी नोक लंबी और बड़ी होती है। उ०—किहूँ लैस कत्ती धरत्ती घुमाई। किहूँ सैल की रेल हत्थों चलाई।—सूदन (शब्द०)।

लैस⁴—संज्ञा पुं० [हिं० लेस] १. एक प्रकार का सिरका। २. कमानी।

लैस⁵—संज्ञा पुं० [अ०] शेर। सिंह।

लौं—अव्य० [हिं० लग] दे० 'लौं'।

लोंडी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लेला] कान का लोलक।

लोंदा—संज्ञा पुं० [सं० लुण्ठन] किसी गीले पदार्थ का वह अंश जो ढेले की तरह बँधा हो। जैसे,—घी का लोंदा, दही का लोंदा, मिट्टी का लोंदा।

लो—अव्य० [हिं० लेना] एक अव्यय जिसका प्रयोग श्रोता को संबोधन करके उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने एवं आश्चर्य व्यक्त करने में किया जाता है। जैसे,—(क) लो! खाली बैठे देख तुम्हें कैसी पत्र लिखाने की सूझी। (ख) लो! चलो मैं जाता हूँ। (ग) लो! देखते जाओ, यह क्या कर रहा है। (घ) लो! क्या से क्या हो गया।

लोअर—वि० [अं०] नीचे का। निम्न [को०]।

लोअर कोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] नीचे की अदालत। निम्न विचारालय। मातहत अदालत।

लोइ(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० लोक, प्रा० लोओ या लोयो] लोग। उ०—(क) देवि बिनु करतूति कहिबो जानिहै लघु लोइ। कहौं जो मुख की समर सरि कालि कारिख धोइ।—तुलसी (शब्द०)

लोइ²—संज्ञा स्त्री० [सं० रोचि, प्रा० लोई] १. प्रभा। सौंदर्य। दीप्ति। उ०—(क) इनमें होइ दरसात है हर मूरत की लोइ। या तैं लोइन कहत हैं इनसौं मिलि सब कोइ।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ। भूतल से निकसति वहीं बिज्जु छटा का लोइ।—लक्ष्मण (शब्द०)। २. लव। शिखा। उ०—ईंधन के टारे बिना बढ़ति न पावक लोइ। फन न उठावत नागहू जो छेड्यो नहिं होइ।—लक्ष्मण (शब्द०)।

लोइन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० लावण्य] लावण्य। नमक। सौंदर्य। नमकीनी। उ०—लीने हू साहस सहस, कीने जतन हजार। लोइन लोइन सिंधु तन, पैरि न पावत पार।—लल्लूलाल (शब्द०)।

लोइन²—संज्ञा पुं० [सं० लोचन, प्रा० लोयण, लोइण] दे० 'लोयन'। उ०—इनमें ह्वै दरसात है हर मूरत को लोइ। या तैं लोइन कहत हैं इन सौं मिल सब कोइ।—स० सप्तक, पृ० १६३।

लोई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लोप्ती = प्रा० लोब्बी] गुँधे हुए आटे का उतना अंश जो एक रोटी मात्र के लिये निकालकर गोली के आकार का बनाया जाता है और जिसे बेलकर रोटी बनाते हैं। उ०—भाजी भावती है महा मोदक मही की शोभा पूरी रची है कर लोनाई बिधि लोई में।—रघुनाथ (शब्द०)।

लोई²—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमीय (= लोई)] एक प्रकार का कंबल जो पतले ऊन से बुना जाता है और कंबल से कुछ अधिक लंबा और चौड़ा होता है। इसकी बुनावट प्रायः दुसुत्ती की सी होती है। उ०—सीतलपाटी टाट, लोई कम्बल ऊन के। बची न एकौ हाट, खेस निवारहि आदिहै।—सूदन (शब्द०)।

लोई³—संज्ञा पुं० [सं० लोक] लोग। दे० 'लोइ'। उ०—(क) नागर नवल कुँअार वर सुंदर मारग जात लेत मन गोई।—सूर (शब्द)। (ख) सूरश्याम मनहरण मनोहर गोकुल बसि मोहे सब लोई।—सूर (शब्द०)। (ग) बल बसुदेव कुशल सब लोई। अर्जुन यह सुन दीने रोई।—सूर (शब्द०)।

लोकंजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लोपाञ्जन या हिं० लुकना + अंजन] वह कल्पित अंजन जिसे आँख में लगाने से मनुष्य का अदृश्य होना माना जाता है। लोपांजन। उ०—जो कहिए बिधना ही रची सिख तें धर क्यों पग को सँग लीन्हो। जो कहिए कि बिरंचि रची है तौ देखी न जाति कितौ दृग दीन्हों। कीन्हे बिचार न आवै मनै नृप संभु भनै तब मो मति चीन्हो। जो चितचोर को चित्त चुरावत राधे के लंक लोकंजन कीन्हो।—शंभु (शब्द०)।

लोकंदा†—संज्ञा पुं० [हिं० लोकना ?] [स्त्री० लोकंदी] विवाह में कन्या के डोले के साथ दासी को भेजना। उ०—छेरी बाघहि व्याह होत है मंगल गावे गाई। बन के रोझ धौ दायज दीन्हों गोह लोकंदे जाई।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जाना।—भेजना।

लोकंदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोकना ?] वह दासी जो कन्या के पहले पहल ससुराल जाते समय उसके साथ भेजी जाती है।

लोकल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थानविशेष जिसका बोध प्राणी को हो।

विशेष—उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं—इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख मिलता है—पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' है। ये महाव्याहृति कहलाते हैं। इन तीन महाव्याहृतियों की भाँति चार और 'महः', 'जनः', 'तपः' और 'सत्यम्' शब्द हैं, जो तीनों महाव्याहृतियों के साथ मिलकर सप्तव्याहृति कहलाते हैं। इन सातो महाव्याहृतियों के नाम से पौराणिक काल में सात लोकों की

कल्पना हुई, जिनके नाम इस प्रकार हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। फिर पीछे इनके साथ सात पाताल —जिनके नाम अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान, तल, सुतल और पाताल हैं—और सब मिलाकर चौदह लोक किए गए। पुराणों में पातालों के नाम में मतभेद है। पद्मपुराण में इनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल बतलाए गए हैं। अग्निपुराण में अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमान्, महातल, रसातल और पाताल; तथा विष्णुपुराण में अतल, वितल, नितल, गभस्तिस्मान्, महातल, सुतल और पाताल इनके नाम लिखे गए हैं। इस प्रकार चौदह लोक या भुवन माने गए हैं। सुश्रुत में लोक दो प्रकार का माना गया है—स्थावर और जंगम।

२. संसार। जगत्। ३. स्थान। निवासस्थान। जैसे,—ब्रह्म लोक, विष्णु लोक इत्यादि। ४. प्रदेश। विषय। दिशा। जैसे,—लोकपाल, लोकपति इत्यादि। ५. लोग। जन। उ०—माधव या लगि है जग जीजतु। जाते हरि सों प्रेम पुरातन बहुरि नयो करि कीजतु। कहँ रवि राहु भयो रिपुमति रचि विधि संजोग बनायो। उहि उपकारि आजु यह औसर हरि दर्शन सचु पायो। कहाँ बसहिं यदुनाथ सिंधु तट कहँ हम गोकुल बासी। वह वियोग यह मिलनि कहाँ अब काल चाल औरासी। सूरदास मुनि चरण चरचि करि सुर लोकनि रुचि मानी। तब अरु अब यह दुसह प्रमानी निमिषो पीरि न जानी। सूर (शब्द०)। ६. समाज। मानव जाति। उ०—(क) सब से परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी।—सूर (शब्द०)। (ख) सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ।—तुलसी (शब्द०)। ७. प्राणी। उ०—उगेहु अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।—तुलसी (शब्द०)। ८. यश। कीर्ति। उ०—लोक में लोक बड़ो अपलोक सुकेशव दास जो होउ सो होऊ।—केशव (शब्द०)। ९. दृश्य या देखने योग्य वस्तु (को०)। १०. प्रकाश (को०)। ११. ७ या १४ की संख्या। १२. अपना या निज का स्वरूप (को०)। १३. फल (को०)। १४. भोग्य वस्तु (को०)। १५. चक्षुरिंद्रिय। देखने की इंद्रिय। नेत्र (को०)।

लोक[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो बत्तख से बड़ा और खाकी रंग का होता है।

लोककंटक—संज्ञा पुं० [सं० लोककण्टक] वह जो समाज का कंटक, विरोधी या हानिकर हो। लोगों को कष्ट या हानि पहुँचानेवाला। दुष्ट प्राणी।

लोककथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरा से जनसामान्य में प्रचलित कथाएँ [को०]।

लोककर्ता—संज्ञा पुं० [सं० लोककर्तृ] १. विश्व का निर्माता। ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव [को०]।

लोककल्प[१]—वि० [सं०] १. विश्व के अनुरूप। संसार से मिलता जुलता। २. विश्व के द्वारा मानित [को०]।

लोककल्प[२]—संज्ञा पुं० [सं०] विश्व की अवधि। विश्व की आयु [को०]।

लोककांत—वि० [सं० लोककान्त] सर्वजनप्रिय। सबका प्रिय जिसे सब चाहते हों [को०]।

लोककांता—संज्ञा स्त्री० [सं० लोककान्ता] औषध के काम आनेवाला ऋद्धि नामक एक पौधा [को०]।

लोककार—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

लोककारण कारण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

लोकक्षिति—वि० [सं० लोकक्षित्] स्वर्ग लोक का निवासी।

लोकगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्यों के क्रियाकलाप [को०]।

लोकगाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरा से जनसमाज में चले आते हुए गीत। लोकगीत जो जनभाषा (बोलचाल की भाषा) में निबद्ध हों [को०]।

लोकचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

लोकचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] संसार की चलन। लोक का चरित्र वा आचार आदि। लोकाचार [को०]।

लोकजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी। लोकमाता।

लोकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. एक संत का नाम (को०)। वह जिसने संसार को जीत लिया हो।

लोकज्येष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकटोⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लोमड़ी।

लोकतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० लोक + तन्त्र] १. संसार का मार्ग या चलन। २. जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा चलाया जानेवाला शासन।

लोकतुषार—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

लोकत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोकों की समष्टि। त्रिलोक [को०]।

लोकदंभक—वि० [सं० लोकदम्भक] संसार को या सबको धोखा देनेवाला [को०]।

लोकद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का द्वार [को०]।

लोकधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. सांसारिक विषय। २ बौद्ध मतानुसार संसार की अवस्था [को०]।

लोकधाता—संज्ञा पुं० [सं० लोकधातृ] शिव [को०]।

लोकधातु—संज्ञा पुं० [सं०] जंबुद्वीप का एक नाम [को०]।

लोकधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

लोकधुनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० लोकध्वनि] जनरव। अफवाह। उ०—चरचा चरनि सो चरची जानि मन रघुराइ। दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी जाइ।—तुलसी (शब्द०)।

लोकन—संज्ञा पुं० [सं०] अवलोकन। देखना [को०]।

लोकना—क्रि० स० [सं० लोपन] १. ऊपर से गिरती हुई किसी वस्तु

को भूमि पर गिरने से पहले ही हाथों से पकड़ लेना। २. बीच में से ही उड़ा लेना। उ०—जाते जेर सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो विष लोक लियो है।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

लोकनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. लोकपाल। ३. बुद्ध।

लोकनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'लोकंदी'।

लोकनीय—वि० [सं०] देखने योग्य। अवलोकनीय [को०]।

लोकनेता—संज्ञा पुं० [सं० लोकनेतृ] शिव [को०]।

लोकप, लोकपति संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. दिक्पाल। नरेश। लोकपाल। ३. राजा।

लोकपक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानव का आदरभाव। सहज संमान [को०]।

लोकपथ—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वसंमत मार्ग। समाज द्वारा मान्य सामान्य चलन [को०]।

लोकपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लोकपथ' [को०]।

लोकपरोक्ष—वि० [सं०] संसार से परे वा छिपा हुआ। गुप्त [को०]।

लोकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिक्पाल।

विशेष—पुराणानुसार आठ दिशाओं के अलग अलग लोकपाल हैं। यथा—इंद्र पूर्व दिशा का; अग्नि दक्षिणपूर्व का; यम दक्षिण का; सूर्य दक्षिणपश्चिम का; कुबेर उत्तर का और सोम उत्तर-पूर्व का। किसी किसी ग्रंथ में सूर्य और सोम के स्थान पर निर्ऋति और ईशानी या पृथ्वी के नाम मिलते हैं।

२. अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का एक नाम। ३. नरेश। राजा। नृपति। उ०—दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव (शब्द०)।

लोकपितामह—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

लोकप्रकाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

लोकप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संसार में सर्वत्र मिलता हो।

लोकप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] जिसे संसार के सभी लोग कहते और समझते हों। साधारण बात।

लोकप्रसिद्ध—वि० [सं०] सब पर प्रकट। लोगों में ख्यात। सर्वविदित। उजागर [को०]।

लोकबंधु—संज्ञा पुं० [सं० लोकबन्धु] १. शिव। २. सूर्य।

लोकबांधव संज्ञा पुं० [सं० लोकबान्धव] दे० 'लोकबंधु' [को०]।

लोकबाह्य—वि० [सं०] १. समाज से बहिष्कृत। जातिच्युत। अजाती। २. संसार से विपरीत मत रखनेवाला। सनकी [को०]।

लोकभर्ता—वि० [सं० लोकभर्तृ] जगत् का पालक। संसार का पालन पोषण करनेवाला [को०]।

लोकभावन—वि० [सं०] संसार का कल्याण करनेवाला [को०]।

लोकमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचलित या समाज द्वारा स्वीकृत रीति रिवाज या प्रथा [को०]।

लोकमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० लोकमातृ] १. गौरी। पार्वती। २. रमा। लक्ष्मी [को०]।

लोकमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वस्वीकृत प्रथा [को०]।

लोकयज्ञ संज्ञा पुं० [सं०] जनता के समर्थन की इच्छा। लोकैषणा [को०]।

लोकयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यवहार। २. व्यापार। ३. क्रम। सांसारिक अस्तित्व (को०)। ४. जीवनयापन का साधन। योगक्षेम (को०)।

लोकरंजन—संज्ञा पुं० [सं० लोकरञ्जन] लोकप्रियता। सबको प्रसन्न रखना [को०]।

लोकरक्षक—संज्ञा पुं० [सं० लोकरक्षक] राजा। शासक [को०]।

लोकरव—संज्ञा पुं० [सं०] अफवाह। प्रवाद।

लोकरा†—संज्ञा पुं० [देश०] चीथड़ा।

लोकरावण—वि० [सं०] जनता या प्रजा का उत्पीड़क [को०]।

लोकल—वि० [अं०] १. प्रांतिक। प्रादेशिक। २. किसी एक ही स्थान, जिले, नगर या प्रदेश आदि से संबंध रखनेवाला। स्थानीय। प्रादेशिक।

यौ०—लोकल बोर्ड। लोकल गवर्नमेंट।

लोकल बोर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थानीय समिति जिसके सभ्यों का चुनाव किसी स्थान के कर देनेवाले करते हों और जिसके अधिकार में उस स्थान की सफाई आदि की व्यवस्था हो।

लोकलीकⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक + लीक] लोकमर्यादा। उ०—सरस असम सर सरसिज लोचनि बिलोकि लोकलीक लाज लोपिबे को आगरी।—केशव (शब्द०)।

लोकलेख—संज्ञा पुं० [सं०] १. सार्वजनिक अभिलेख या दस्तावेज। २. सामान्य पत्र [को०]।

लोकलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

लोकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] जनश्रुति। अफवाह [को०]।

लोकवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] विश्व के पोषण का आधार या साधन [को०]।

लोकवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनश्रुति। अफवाह। २. सर्वसाधारण की चर्चा का विषय। सर्वविदित विवरण [को०]।

लोकवार्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लोकवाद' [को०]।

लोकविद्विष्ट—वि० [सं०] सबका अप्रिय। जिससे सारा संसार घृणा करता हो [को०]।

लोकविधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समाजसंमत मार्ग। प्रशस्त पथ। २. विश्व का स्रष्टा। ब्रह्मा [को०]।

लोकविनायक—संज्ञा पुं० [सं०] लोगों का अधिपति देवतावर्ग [को०]।

लोकविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोकव्यवहार' [को०]।

लोकविरुद्ध—वि० [सं०] जो लोकाचार के विपरीत हो [को०]।

लोकविश्रुत—वि० [सं०] संसार भर में प्रसिद्ध। जगद्विख्यात।

लोकविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रलय। विश्व की समाप्ति। २. विश्व का उद्भव। संसार की उत्पत्ति [को०]।

लोकवृत्त संज्ञा पुं० [सं०] लोकव्यापार। लोक में प्रचलित प्रथा [को०]।

लोकवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० लोकवृत्तान्त] १. संसार का तौर तरीका। लोकाचार। प्रचलन। २. घटनाक्रम [को०]।

लोकव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोकवृत्तांत [को०]।

लोकव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] संसार का सामान्य व्यापार [को०]।

लोकश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जनश्रुति। अफवाह। २. लोकप्रसिद्धि [को०]।

लोकसंकरता—संज्ञा स्त्री० [सं० लोकसङ्करता] समाज में संकरता या मिश्रण। संसार म घालमेल या अस्तव्यस्तता [को०]।

लोकसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० लोकसङ्ग्रह] १. ससार के लोगों को प्रसन्न करना। २. संसार का कल्याण या सबकी भलाई चाहना।

लोकसंग्रही—वि० [सं० लोकसङ्ग्रहिन्] लोककल्याण की कामना करनेवाला।

लोकसंपन्न - वि० [सं० लोकसम्पन्न] लौकिक ज्ञान से युक्त [को०]।

लोकसंबाध—संज्ञा पुं० [सं० लोकसम्बाध] मनुष्यों का आवागमन। भीड़भाड़ [को०]।

लोकसंसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाग्य। विधियोग। २. संसारमार्ग [को०]।

लोकसाक्षिक —वि० [सं०] १. संसार को साक्षी माननेवाला। संसार के समक्ष। अगोपनीय। २. साक्षी द्वारा प्रमाणित [को०]।

लोकसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० लोकसाक्षिन्] १. ब्राह्मण। २. अग्नि [को०]।

लोकसाधक — वि० [सं०] लोकों का बनानेवाला [को०]।

लोकसाधारण वि० [सं०] सर्वसामान्य (विषय) [को०]।

लोकसारंग—संज्ञा पुं० [सं० लोकसारङ्ग] विष्णु का एक नाम [को०]।

लोकसिद्ध—वि० [सं०] १. लोकप्रचलित। सामान्य। प्रथानुसारी। २. सामान्यतः स्वीकृत [को०]।

लोकसीमातिवर्ती—वि० [सं० लोकसीमातिवर्तिन्] असाधारण। असामान्य। लोकोत्तर [को०]।

लोकसुंदर¹—वि० [सं० लोकसुन्दर] सर्वानुमोदित। लोकप्रशंसित।

लोकसुंदर²—संज्ञा पुं० बुद्ध का एक नाम [को०]।

लोकसेवक —संज्ञा पुं० [सं० लोक + सेवक] समाज या लोक की सेवा करनेवाला। जनता का सेवक।

लोकस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य घटना [को०]।

लोकस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मांड का नियमन या अवस्थिति। २. लोकसंमत विधिविधान [को०]।

लोकहाँदी —संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक + हल्दी] एक प्रकार की हल्दी।

लोकहार—वि० [सं० लोक + हरण] लोक को हरण करनेवाला। संसार को नष्ट करनेवाला। उ०—वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिए।—केशव (शब्द०)।

लोकहास्य—वि० [सं०] जगहँसाई का पात्र [को०]।

लोकहित¹—संज्ञा पुं० [सं०] सबकी भलाई। सार्वजनिक कुशल [को०]।

लोकहित²—वि० [सं०] सर्वजनहितकारी। सर्वोपकारक [को०]।

लोकांतर—संज्ञा पुं० [सं० लोकान्तर] वह लोक जहाँ मरने पर जीव जाता है। अन्य लोक।

यौ०—लोकांतरगमन = अन्य लोक में गमन। स्वर्गवास।

लोकांतरिक—वि० [सं० लोकान्तरिक] जो लोकों के मध्य स्थित हो।

लोकांतरित—वि० [सं० लोकांतरित] १. जो इस लोक से दूसरे लोक में चला गया हो। २. मरा हुआ। मृत। स्वर्गीय।

लोकाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] विश्व जिसमें सब प्रकार के जीव और तत्व रहते हैं। (जैन)।

लोकाक्ष —संज्ञा पुं० [सं०] आकाशदिक्। दिशा। शून्य [को०]।

लोकाचार—संज्ञा पुं० [सं०] संसार में बरता जानेवाला व्यवहार। लोकव्यवहार।

लोकाट—संज्ञा पुं० [चीनी लुः + क्यू] एक पौधा जिसका फल खाया जाता है। लकुच। लुकाट।

विशेष—इस पौधे की पत्तियाँ लंबी और नुकीली, तेंदू की पत्तियों के आकार को, पर उससे कुछ बड़ी होती हैं। इसका पेड़ बीस पचीस हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता। इसके पेड़ में फागुन चैत के महीने में मंजरियाँ लगती हैं और बड़े बेर के बराबर फल लगते हैं, जो पकने पर पीले होते हैं और खाने में प्रायः मीठे, गुदार और स्वादिष्ट होते हैं। सहारनपुर में लोकाट बहुत अच्छा और मीठा उत्पन्न होता है। यह फल चीन और जापान देश का है और वहीं से भारतवर्ष में आया है।

लोकातिग—वि० [सं०] असाधारण। लोकोत्तर [को०]।

लोकातिशय—वि० [सं०] लोकोत्कृष्ट। असामान्य [को०]।

लोकात्मा —संज्ञा पुं० [सं० लोकात्मन्] विश्व का आत्मा [को०]।

लोकादि—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्व का आरंभ। २. विश्व का स्रष्टा। विधाता [को०]।

लोकाधिक—वि० [सं०] दे० 'लोकातिग' [को०]।

लोकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोकपाल। २. बुद्ध। ३. राजा (को०)।

लोकाना†—क्रि० स० [हिं० लोकना का प्रे० रूप] अधर में फेंकना। उछालना।

लोकानुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] लोक या जगत् का कल्याण। लोकसंपन्नता [को०]।

लोकानुभावी—वि० [सं० लोकानुभाविन्] १. विश्व को पराभूत करनेवाला। विश्वव्यापी। जैसे, प्रकाश [को०]।

लोकानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] मानवप्रेम। विश्वप्रेम। उदारता। दानशीलता [को०]।

लोकानुवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] लोकसेवा को भावना। लोकसेवाभाव [को०]।

लोकापवाद—संज्ञा पुं० [सं०] बदनामी। अपयश [को०]।

लोकाभिलक्षित—वि० [सं०] सर्वप्रिय [को०] ।

लोकाभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] लोक का अभ्युदय । सबका कल्याण । सबका उदय [को०] ।

लोकायत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनुष्य जो इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक को न मानता हो । २. चार्वाक दर्शन, जिसमें परलोक या परोक्षवाद का खंडन है । ३. किसी किसी के मत से दुर्मिल नामक छंद का एक नाम ।

लोकायतिक—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक । भौतिकवादी [को०] ।

लोकायन—संज्ञा पुं० [सं०] नारायण का एक नाम [को०] ।

लोकालोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । चक्रवाल ।

विशेष—कहते हैं, यह सातो समुद्रों और द्वीपों को चारों ओर से आवेष्ठित किए हुए है, जिसके बाहर सूर्य या चंद्र का प्रकाश नहीं पहुंचता । बौद्ध ग्रथों में इसे चक्रवाल कहा है ।

लोकित—वि० [सं०] अवलोकित । देखा हुआ [को०] ।

लोकी—वि० [सं० लोकिन] १. लोक में रहनेवाला । २. लोक का अधिपति ।

लोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्व का स्वामी । ईश्वर । २. राजा । ३. ब्राह्मण । ४. पारा [को०] ।

लोकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध । २. भुवन और जनों का प्रभु । ३. दे० 'लोकपाल' [को०] ।

लोकेश्वरात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम [को०] ।

लोकैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सांसारिक अभ्युदय की कामना । २. स्वर्ग के सुख की कामना ।

लोकोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कहावत । मसल । २. काव्य में वह अलंकार जिसमें किसी लोकोक्ति का प्रयोग करके कुछ रोचकता या चमत्कार लाया जाय ।

लोकोत्तर—वि० [सं०] जो इस लोक में होनेवाले पदार्थों आदि से श्रेष्ठ हो । बहुत ही अद्‌भुत और विलक्षण । अलौकिक । जैसे,—(क) वहाँ एक योगी ने कई लोकोत्तर चमत्कार दिखलाए थे । (ख) यह कौन सी लोकोत्तर वस्तु है जिसके लिये तुम इतना अभिमान करते हो ।

लोकोपकार—संज्ञा पुं० [सं०] संसार के उपकार का काम ।

लोकोपकारक—वि० [सं०] लोक का उपकार करनेवाला ।

लोखड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमश] दे० 'लोमड़ी' ।

लोखर—संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + खंड] १. नाई के औजार । जैसे,—छुरा, कैंची, नहरनी आदि । २. लोहारों या बढ़इयों आदि के लोहे के औजार । ३. इन औजारों को रखने का बक्स या पेटी ।

लोखरिया, लोखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोखड़ी] दे० 'लोखड़ी' ।

लोग—संज्ञा पुं० [सं० लोक] [स्त्री० लुगाई, लोगाई] जन । मनुष्य । आदमी । उ०—(क) देख रतन हीरामन रोवा । राजा जिव लोगन हठ खोवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भए कित लोग । कहहि कबीर कामो नहीं जीवहि मरन न जोग ।—कबीर (शब्द०) । (ग) जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में और मनुष्यों के समूह के लिये ही होता है । जैसे,—लोग चले आ रहे हैं ।

यौ०—लोगबाग = जनसमाज । सर्वसाधारण जन ।

लोगचिरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फूल ।

लोगाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग + आई (प्रत्य०)] स्त्री । औरत । उ०—(क) बृंद बृंद मिल चलीं लोगाई । सहज सिंगार किए उठि धाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पुनि ज्वर दौ दीनी पुर लाई । जरन लगे पुर लोग लुगाई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का शुद्ध रूप प्रायः 'लुगाई' ही माना जाता है ।

लोच१—संज्ञा पुं० [हिं० लचक] १. लचलचाहट । लचक । २. कोमलता । उ०—चलौ चले छुटि जायगो हठ रावरे सँकोच । खरे चढ़ाए देत अब, आए लोचन लोच ।—बिहारी (शब्द०) । ३. अच्छा ढंग ।

लोच२—संज्ञा पुं० [सं० रुचि] अभिलाषा । उ०—मोको पर्यो सोच यज्ञ पूरण को लोच, हिये लिए वाको नाम जिनि गाम तजि जाइए ।—प्रियादास (शब्द०) ।

लोच३—संज्ञा पुं० [सं० लुञ्चन] जैन साधुओं का अपने सिर के बालों को उखाड़ना । लुंचन ।

लोच४—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू [को०] ।

यौ०—लोचमर्कट = दे० 'लोचमस्तक' ।

लोचक१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्खजन । २. आँख की पुतली । ३. काजल । ४. कान का एक गहना । ५. काला या नीला कपड़ा । ६. प्रत्यंचा । धनुष की डोरी । ७. माथे पर पहनने का एक गहना । बंदी । ८. मांस का लोथड़ा । ९. साँप की केंचुल । १०. झुर्री पड़ी खाल । ११. तनी हुई भौंहें । १२. केले का वृक्ष [को०] ।

लोचक२—वि० १. मूर्ख । अज्ञ । बुद्धिहीन । २. दूध का आहार करनेवाला । पयहारी ।

लोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख । नेत्र । नयन ।

मुहा०—लोचन भर आना = आँखों में आँसू डबडबा आना । आँखें भर आना । उ०—यह सुनिकै हलधर तहँ धाए । देखि श्याम ऊखल सों बाँधे, तबही दोउ लोचन भरि आए ।—सूर (शब्द०) ।

२. देखना अवलोकने या देखने की क्रिया (को०) ।

लोचनगोचर१—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि में आनेवाला दायरा । दृष्टिपथ ।

लोचनगोचर२—वि० आँखों द्वारा देखने योग्य । उ०—मम लोचनगोचर

सोइ आवा। बहुरि कि अस प्रभु बनिहि बनाया।—मानस, पृ० १०।

लोचनपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोचनगोचर' [को०]।

लोचनपरुष—वि० [सं०] कठोर या शुष्क दृष्टिवाला। क्रोधपूर्ण नेत्रोंवाला [को०]।

लोचनमग(५)—संज्ञा पुं० [सं० लोचन + सं० मार्ग, प्रा० मग्ग] नेत्रमार्ग। उ०—लोचनमग रामहि उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी।—मानस, १।२३२।

लोचनमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोचनपथ' [को०]।

लोचनमालक—संज्ञा पुं० [सं०] आधी रात के पहले का सपना। पूर्व निशा का स्वप्न [को०]।

लोचनहिता—संज्ञा पुं० [सं०] तुत्थांजन। नीला थोथा। शिखिग्रीव [को०]।

लोचनांचल—संज्ञा पुं० [सं० लोचनाञ्चल] अपांग। कटाक्ष। आँखों की कोर [को०]।

लोचना[१]—क्रि० स० [हिं० लोचन] १. प्रकाशित करना। २. रुचि उत्पन्न करना। उ०—निसि बासर लोचन रहत अपनो मन अभिराम। या तें पायो रसिक निधि इन नै लोचन नाम।—रसनिधि (शब्द०)। ३. अभिलाषा करना। उ०—स्वर्ग में देवगण भी लोचते हैं और इस बात के लिये तरसते हैं कि भारत की कर्मभूमि में किसी तरह एक बार हमारा जन्म होता। - हिंदी प्रदीप (शब्द०)।

लोचना[२]—क्रि० अ० शोभित होना। उ०—लोचैं परी सियरी पर्यंक पै बीती घरीन खरी खरी सोचै।—पद्माकर (शब्द०)।

लोचना[३]—क्रि० अ० १. अभिलाषा करना। कामना करना। उ०—(क) कहति है सकोचति है सखी को बोलाइबे को लोचति है भट्ट बैठी सोचति है मन तें।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) कुँअरि सयानि बिलोकि मातु पितु सों कहि। गिरिजा जोग जुरहि बर अनुदिन लोचहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. ललचना। तरसना। उ०—अब तिनके बंधन मोचहिंगे। दास बिना पुनि हम लोचहिंगे।—सूर (शब्द०)।

लोचना[४]—संज्ञा पुं० [सं० लुञ्चन] नाई। हज्जाम (क्व०)।

लोचना[५]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम। लोकेश्वरात्मजा [को०]।

लोचना[६]—संज्ञा पुं० [सं० रोचन(= रोली, हरिद्रा)] १. कन्या के संतान होने पर कन्या के पितृगृह से भेजा जानेवाला मांगलिक उपहार। २. बहू के संतानवती होने पर उसके पिता तथा अन्य सगे संबंधियों के यहाँ भेजा जानेवाला शुभ संदेश।

लोचनापात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिनिक्षेप [को०]।

लोचनामय—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्ररोग [को०]।

लोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक औषध। महाश्रावणिका [को०]।

लोचमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूरशिखा। रुद्रजटा नाम का क्षुप [को०]।

लोचारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

लोचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दही, घी तथा गरम जल से गुँधे हुए आँटे की घी में छानी गई महीन पूरी [को०]।

लोचून—संज्ञा पुं० [सं० लोहचूर्ण]। १. लोहे का चूरा। २. लोहे की कीट का चूर्ण।

लोजंग—संज्ञा स्त्री० [देश० लोहा + जंग ?] एक प्रकार की नाव जिसके दोनों ओर के सिक्के लंबे होते हैं।

लोट[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटना] लोटने का भाववाचक रूप। लोटने की क्रिया या भाव। लुढ़कना।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—लोट मारना = (१) लेटना। सोना। (२) किसी के प्रेम में बेसुध होना। लोट होना या हो जाना = (१) आसक्त होना। रीझना। (२) व्याकुल होना।

लोट[२]—संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] १. उतार। घाट। उ०—चारो तरफ पुख्ता लोट बने।—लल्लू (शब्द०)। २.(५)त्रिवली। उ०—(क) नार नवाए तकि हरी करी काँकरी चोट। चौंकि कँपी झझकी चकी चँपी हँसी गहि लोट।—शृंगार० (शब्द०)। (ख) बढ़ति निकसि कुच कोर रुचि कढ़त गौर भुज मूल। मन लुटिगो लोटन चढ़त चूँटति ऊँचे फूल।—बिहरी (शब्द०)।

लोट[३]—संज्ञा पुं० [अं० नोट] कागज की मुद्रा। नोट।

लोटन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] लुढ़कना। लुंठन [को०]।

लोटन[२]—संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] १. एक प्रकार का हल जिसकी जोताई बहुत गहरी नहीं होती। २. एक प्रकार का कबूतर जो चोंच पकड़कर भूमि में लुढ़का देने से लोटने लगता है; और जबतक उठाया न जाय, लोटता रहता है। ३. राह में की पड़ी हुई छोटी कंकड़ियाँ जो वायु चलने से इधर उधर लुढ़कती रहती हैं। उ०—काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठांव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज बासना भेंट लगाऊ रे।—तुलसी (शब्द०)।

लोटनसज्जी—संज्ञा स्त्री० [देश० लोटन + सज्जी] एक प्रकार की सज्जी जो सफेद और गुलाबी रंग की होती है। यह प्रायः मुरब्बे आदि के गलाने में काम आती है।

लोटना[१]—क्रि० अ० [सं० लुण्ठन] १. भूमि पर या किसी ऐसे ही आधार के सहारे, उसे स्पर्श करते हुए, ऊपर नीचे होते हुए किसी का एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाना या गमन करना। सीधे और उलटे लेटते हुए किसी ओर को जाना। उ०—(क) परी कया भुँइ लोटै कहँ रे जीव बिनु भीव। को उठाय बैठारै बाज पियारे जीव।—जायसी (शब्द०)। (ख) काम नारि अति लोटत फिरै। कंत कंत कहि छाति भुज भरै।—लल्लू (शब्द०)। २. लुढ़कना। उ०—जानहुँ लोटहि चढ़े भुअंगा। बेधी बार मलय गिरि अंगा।—जायसी (शब्द०) ३. कष्ट से करवट बदलना। तड़पना।

क्रि० प्र०—जाना।

मुहा०—लोट जाना = (१) बेसुध होना। बेहोश हो जाना।

(३) मर जाना। जैसे,—एक ही बार में पाँच कबूतर लोट गए।

४. विश्राम करना। लेटना।

मुहा०—लोट पोट करना = लेटना। विश्राम करना।

५. मुग्ध होना। चकित होना। उ०—सुनि गए नारद लोटि तामें देखि प्रभु बोलत भये।—रघुनाथ (शब्द०)।

लोटना²—स्त्री० [सं०] दाक्षिण्य। सौजन्य। शिष्टता। शालीनता [को०]।

लोटपटा†—संज्ञा पुं० [हिं० लोटना + पाटा] १. विवाह के समय पीढ़ा या स्थान बदलने की रीति। इसमें वर के स्थान पर वधू और वधू के स्थान पर वर बैठाया जाता है। फेरपटा या पटाफेर।

विशेष—फेरपटा की रस्म हो जाने के बाद द्विरागमन या गौने की रस्म आवश्यक नहीं मानी जाती और कन्या बेरोक टोक ससुराल आने जाने लगती है।

२. बाजो का उलट फेर। दाँव का इधर से उधर हो जाना। उलटफेर। उ०—कीजै कहा विधि की विधि को दियो दाँवन लोटपटा करिबे को।—पद्माकर (शब्द०)।

लोटपोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटना + पोटना (= फैल जाना)] १. लेटने या शयन करने की क्रिया। २. हँसी आदि के कारण लुढ़कना। ३. मुग्ध होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लोटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] [स्त्री० अल्पा० लुटिया] धातु का एक पात्र जो प्रायः गोल होता है और पानी रखने के काम में आता है। यह कलसे से छोटा होता है। कभी कभी इसमें टोंटी भी लगाई जाती है; और ऐसे लोटे को टोंटीदार लोटा कहते हैं।

मुहा०—लोटा या लुटिया डुबोना = (१) कलंक लगाना। (२) सब काम चौपट करना। सर्वनाश करना।

लोटा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी का शाक। [को०]।

लोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी का शाक [को०]।

लोटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + इया (प्रत्य०)] छोटा गोल जलपात्र जो लोटे के आकार का हो। छोटा लोटा।

लोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + ई (प्रत्य०)] १. छोटा लोटा। २. वह बर्तन जिससे तमोली पान सींचते हैं।

लोट—संज्ञा पुं० [सं०] जमीन पर लोटना या लुढ़कना [को०]।

यौ०—लोटभू = स्थान जहाँ घोड़े लोटते हैं।

लोठन—संज्ञा पुं० [सं०] शिर हिलाना [को०]।

लोठारी लंगर—संज्ञा पुं० [हिं० लोठारी + लंगर] एक प्रकार का लंगर जो जहाजी या बड़े लंगर से छोटा और केज लंगर से बड़ा होता है। (लश०)।

लोडन—संज्ञा पुं० [सं०] विलोड़न। हिलाना डुलाना। क्षुभित करना। मंथन [को०]।

लोड़ना⑤†—क्रि० स० [पं० लोड़ (= आवश्यकता)] आवश्यकता होना। दरकार होना। उ०—(क) तिसो घड़ी नव्वाब से कर जोरि बखाना। जेहा जिसनूँ लोड़िया तेहा फुरमाना। ('कलपाना' शुद्ध पाठ)।—सूदन (शब्द०)। (ख) असी हाल एहा हुआ राख्यो निजु साया। जेहा जिसनूँ लोड़िए तेहा फल पावा।—सूदन (शब्द०)।

लोढ़कना†—क्रि० अ० [सं० लुठन] दे० 'लुढ़कना'।

लोढ़ना¹—क्रि० स० [सं० लुण्ठन] १. चुनना। तोड़ना। जैसे,—फूल लोढ़ना। उ०—कुसुम लोढ़न हम जाइब हो रामा।—गीत (शब्द०)। २. ओटना। जैसे,—कपास लोढ़ना।

लोढ़ना†²—क्रि० अ० [सं० लुण्ठन] जमीन पर लोटना या घसिटना [को०]।

लोढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० लोष्ठ] [स्त्री० अल्पा० लोढ़िया] १. पत्थर का वह गोल लंबोतरा टुकड़ा जिससे सिल पर किसी चीज को रखकर पीसते हैं। बट्टा। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुकि पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहर डहार।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—लोढ़ा डालना = बराबर करना। उ०—घूमि चहुँ दिसि भूमि रहे घन बूँदन ते छिति डारत लोढ़े।—रघुनाथ (शब्द०)। लोढ़ाढाल = चौपट। सत्यानाश। उ०—विष्णु कलोहल रव कहिं कोप कियो विकराल। झटकि पटकि झट लटकि कीस कीन्हों लोढ़ाढाल।—(शब्द०)।

२. बुंदेलखंड के बराबर नामक हल का एक अंश।

विशेष—यह हल मोटी लकड़ी का होता है। इसमें दतुआ या लोहे की कीलें लगी होती हैं, जिनमें पास लगाया जाता है।

लोढ़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोढ़ा + इया (प्रत्य०)] छोटा लोढ़ा। बट्टा। जैसे,— सिल लोढ़िया ले आओ।

लोण¹—संज्ञा पुं० [सं०] लोनी साग।

लोण²—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोन'।

लोणक—संज्ञा पुं० [सं०] नमक। लवण [को०]।

लोणा, लोणाम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनी। क्षुद्राम्लिका [को०]।

लोणार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षारविशेष। नमक [को०]।

लोणिका—संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी साग। लोणाम्ला।

लोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्राम्लिका। अमलोनी [को०]।

लोत—संज्ञा पुं० [सं०] १. आसू। लोर। २. चिह्न। निशान। ३. लूट का माल वा धन। ४. नमक [को०]।

लोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेत्रजल। आँसू। लोर। २. चोरी का धन। लूट का माल [को०]।

लोथ, लोथि—संज्ञा स्त्री० [सं० लोष्ठ या लोठ] किसी प्राणी का मृत शरीर। लाश। शव। उ०—(क) लोथिन्ह तें लहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ, मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गृध्र शृगाल कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते।—लल्लू (शब्द०)। (ग) तब कंस की लोथ को घसीट जमुना तीर आए।—लल्लू (शब्द०)। (घ) भूषन बखानै

भूरि भूतन मैं टँगे चंद्रायतन लोथैं लटकत हैं।—भूषण (शब्द०)।

मुहा०—लोथ गिरना = मारा जाना। लोथ डालना = मार गिराना। प्राणांत करना। हत्या करना। लोथपोथ होना = थकने से चूर होना। अत्यंत शिथिल होना। लथपथ होना।

लोथड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लोथ + ड़ा] मांस का बड़ा खंड जिसमें हड्डी न हो। मांसपिंड।

लोथरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० लोथड़ा] दे० 'लोथड़ा'।

लोथारी—संज्ञा स्त्री० [सं० लुण्ठन] १. कम पानी में से नाव को खींचते या धीरे धीरे खेते हुए किनारे लगाना। २. लोथारी लंगर डालकर पानी की तह का पता लेते हुए मार्ग से किनारे की ओर नाव बढ़ाना। (लश०)।

यौ०—लोथारी लंगर।

मुहा०—लोथारी डालना = लोथारी लंगर को थोड़े पानी में डालकर तल की थाह लेते हुए नाव को किनारे लगाना। लोथारी तानना = ठीक और नाव जाने के योग्य मार्ग से होकर नाव को किनारे ले जाना।

लोथारी लंगर—संज्ञा पुं० [हिं० लोथारी + लंगर] सबसे छोटा लंगर।

विशेष—यह उस जगह डाला जाता है, जहाँ पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि यह किनारे जाने का मार्ग है या नहीं।

लोद—संज्ञा स्त्री० [सं० लोध] दे० 'लोध'।

लोदी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पठानों की एक जाति [को०]।

लोध—संज्ञा स्त्री० [सं० लोध्र, लोध] १. एक प्रकार का वृक्ष जो भारतवर्ष के जंगलों में उत्पन्न होता है।

विशेष—इस वृक्ष की छाल रँगने, चमड़ा सिझाने और ओषधियों में काम आती है। छाल को गरम पानी में भिगो देने से पीला रंग निकलता है। कहीं कहीं इसकी छाल पानी में उबालकर भी रंग निकाला जाता है। छाल को सज्जी मिट्टी के साथ पानी में उबालने से लाल रंग निकलता है, जिससे छींट छापते हैं। वैद्यक में इसकी छाल और लकड़ी दोनों का प्रयोग होता है। इसकी छाल कुछ कसैली होती है और पेचिश आदि पेट के कई रोगों में दी जाती है। इसका गुण ठंढा है और २० ग्रेन तक इसकी मात्रा है। इसके काढ़े का भी प्रयोग किया जाता है। लोध की लकड़ी के काढ़े से कुल्ला करने से मसूढ़े से रक्त निकलना जाता रहता है और वह दृढ़ हो जाता है। इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है; पर मजबूत होती है और कई तरह के काम में लाई जाती है।

२. एक जाति का नाम।

लोधरा—संज्ञा पुं० [सं० लोध्र] एक प्रकार का ताँबा जो जापान से आता है।

लोधी—संज्ञा [फ़ा० लोदी] पठानों की एक जाति।

लोध्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोध नामक वृक्ष।

विशेष—इसके दो भेद होते हैं—श्वेत लोध और रक्त लोध। यह कसैला, ठंढा और वात, पित्त नाशक माना जाता है। विशेष दे० 'लोध'।

पर्या०—तिल्वक। गालव। शावर। तिरीट। तिल्वक। मार्जन। भिल्लतरु। कांडकीलक। शंवर। कांडनीलक। हेमपुष्पक। भिल्ली।

२. एक जाति का नाम।

लोध्र[2]—संज्ञा पुं० [सं० लोध्र, हिं० लोधरा] जापानी ताँबा। लोधरा।

लोध्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोध्र'।

यौ०—लोध्रकवृक्ष = लोध का पेड़।

लोध्रतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जो उपमा का एक भेद माना जाता है।

लोध्ररेणु—संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र के फूल का चूर्ण जिसका अंगराग की तरह उपयोग होता था।

लोन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० लवण या लोण] १. लवण। नमक।

मुहा०—किसी का लोन खाना = अन्न खाना। पाला जाना। दास होना। उ०—पाछे कह्यो लंकापति सुनो हनुमान कपि रामचंद्र ही को एक तही लोन खायो है।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। किसी का लोन निकलना = निमकहरामी का फल मिलना। अकृतज्ञता का फल पाना। उ०—ताते मन पोखियत घोर बरतोर मिसि फूटि फूटि निकसत है लोन राम राय को।—तुलसी (शब्द०)। किसी का लोन न मानना = किसी का उपकार न मानना। कृतघ्न होना। उ०—नैनन को अब नाहिं पत्याऊँ। बहुर्यो उनको बोलति हौं तुम हाइ हाइ लीजै नहिं नाऊँ। अब उनको मैं नाहिं बसाऊँ मेरे उनको नाहीं ठाऊँ। व्याकुल भई डोलत हौं ऐसेहि वे जहँ हैं महाँ नहिं जाऊँ। खाइ खवाइ बड़े जब कीन्हें बसे जाइ अब औरहि गाऊँ। आनो कियो आप पावैंगे मैं काहे उनको पछिताऊँ। जैसे लोन हमारो मान्यो कहा कहौं कहि काहि सुनाऊँ। सूरदास मैं इन बिन रहिहौं कृपा करैं उनको सरमाऊँ।—सूर (शब्द०)। जले पर लोन लगाना या देना = दुःख पर दुःख देना। दुखी को दुखी करना। उ०—अति कटु वचन कहै कैकेई। मानो लोन जले पर देई।—तुलसी (शब्द०)। किसी बात का लोन सा लगना = अरुचिकर होना। अप्रिय होना। उ०—राजै लोन सुनाव लागहु हूँ जस लोन। आइ कुँहाइ महिर कहँ सिंह जान औ गौन।—जायसी (शब्द०)। लोन चराना = नमकीन बनाना। जैसे,—आम को लोन चराना।

२. सौंदर्य। लावण्य। उ०—जो उन महँ देखेसि इक दासी। देखि लोन होय लोन बिलासी।—जायसी (शब्द०)। विशेष दे० 'नमक'।

लोनहरामी†—वि० [हिं० लोन + अ० हरामी] कृतघ्न। नमकहराम। उ०—मन भयो ढीठ इनहिं के कीन्हे ऐसे लोनहरामी। सूरदास प्रभु इनहि पत्याने आखिर बड़े निकामी।—सूर (शब्द०)।

लोना[1]—वि० [हिं० लोन] [भाव० संज्ञा लोनाई] १. नमकीन। सलोना। २. सुंदर। उ०—(क) लालन जोग लखन अति लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नाउन अति गुन खानि तौ बेगि बोलाइहो। करि सिंगार अति लोनि तौ बिहँसति आइहो।—तुलसी (शब्द०)।

लोना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० लोन] १. एक प्रकार का रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टी की दीवारों में लगता है। नोना।

विशेष—इससे दीवार झड़ने लगती और कमजोर हो जाती है; थोड़े दिनों में उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं; और वह कटकर गिर पड़ती है। यह रोग प्रायः नींव के पास के भाग में आरंभ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

२. वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवार से झड़कर गिरती है। यह खेत में डाली जाती है और खाद का काम देती है। ३. नमकीन मिट्टी, जिससे शोरा बनाया जाता है। ४. वह क्षार जो चने की पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसकी पत्तियाँ चाटने में खट्टी जान पड़ती हैं। ५. एक प्रकार का कीड़ा जो घोंघे की जाति का होता है और प्रायः नाव के पेंदे में चपका हुआ मिलता है। ६. अमलोनी नाम की घास जिसे रसायनी धातु सिद्ध करने के काम में लाते हैं। उ०—(क) कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना। जेहि तें होइ रूप औ सोना।—जायसी (शब्द०)। (ख) जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती।—जायसी (शब्द०)।

लोना[3]—क्रि० स० [सं० लवण] फसल काटना। उ०—बीज बोई जोई अंत लोनिए सोइ समुझि यह बात नहिं चित्त धरई।—सूर (शब्द०)।

लोना[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कल्पित स्त्री जो जाति की चमार और जादू टोने में बहुत प्रवीण कही जाती है। नोना चमाइन। उ०—तू काँवरू परा बस टोना। भूला जोग छरा तोहि लोना—जायसी (शब्द०)।

लोनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना + ई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। उ०— हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।—तुलसी (शब्द०)।

लोनार†—संज्ञा पुं० [हिं० लून (= नमक) + आर (प्रत्य०) या सं० लोन + हिं० आर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ से नमक आता हो। जैसे,—नमक की खान, झील या क्यारी।

लोनिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] लोनी नामक साग। विशेष दे० 'लोनी'। उ०—रुचितल जानि लोनिका फाँगी। कढ़ी कृपालु दूसरी माँगी।—सूर (शब्द०)।

लोनिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लवण, लोन + इया (प्रत्य०)] एक जाति जो लोन या नमक बनाने का व्यवसाय करती है। यह जाति शूद्रों के अंतर्गत मानी जाती है। नोनियाँ। (अब ये लोग अपने को चौहान कहते हैं)।

लोनिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोन] लोनी नामक साग।

लोनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] १. कुलफे की जाति का एक प्रकार का साग।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ठंढी जगह पर, जहाँ सीड़ होती है, उत्पन्न होती है। यह स्वाद में खटास लिए होती है। इसमें रंग बिरंग के फूल लगते हैं। इसे लोग गमलों में बोते हैं और विलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायत से आते हैं।

२. वह क्षार जो चने की पत्तियों पर बैठता है। ३. एक प्रकार की मिट्टी जिससे लोनियाँ लोग शोरा और नमक बनाते हैं। ४. दे० 'लोना'।

लोनी[2]—वि० स्त्री० [हिं० लोना] लावण्यमयी। सुंदरी

लोनी(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] लौनी। मक्खन। नवनीत।

लोप—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा लोपन] [वि० लुप्त, लोपक, लोप्ता, लोप्य] १. नाश। क्षय। २. विच्छेद। जैसे,—कर्म का लोप होना। ३. अदर्शन। अभाव। ४. व्याकरण के चार प्रधान नियमों में से एक, जिसके अनुसार शब्द के साधन में किसी वर्ण को उड़ा देते हैं। जैसे,—अपिधान में अ का लोप करके पिधान शब्द बनाया जाता है। ५. छिपना। अंतर्धान होना। उ०—बहु बरषि आयुध बारिधर सम दियो पटरथ लोप कै। —गिरिधर (शब्द०)। ६. तोड़ना। भंग (को०)। ७. अतिक्रमण। उल्लंघन (को०)। ८. अवहेलना। उपेक्षा (को०)। ९. व्याकुलता। आकुलता (को०)।

लोपक[1]—वि० [सं०] बाधक। नाशक (को०)।

लोपक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] भंग। खंड (को०)।

लोपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लुप्त करना। तिरोहित करना। २. नष्ट करना। भंग करना। विनाशन।

लोपना(पु)†[1]—क्रि० स० [सं० लोपन] १. लुप्त करना। मिटाना। उ०—(क) कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचालि चलाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सब ते परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी।—सूर (शब्द०)। (ग) लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल। गिरिधारी राखे सबै गो, गोपी, गोपाल।—बिहारी (शब्द०)। २. छिपाना। ३. भंग करना (को०)।

लोपना[2]—क्रि० अ० १. लुप्त होना। मिटना। उ०—राय दसरत्थ के समर्थ राम राय मनि तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की।—तुलसी (शब्द०)। २. छिपना। (क्व०)।

लोपांजन—संज्ञा पुं० [सं० लोपाञ्जन] वह कल्पित अंजन जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसके लगाने से लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. दे० 'लोपामुद्रा'।

लोपाक, लोपाशक—संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोपापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शृगाली। मादा सियार (को०)।

लोपामुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अगस्त्य ऋषि की स्त्री का नाम। लोपा।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि अगस्त्य ने बहुत दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य धारण किया था और वे विवाह नहीं करते थे। एक बार उन्होंने स्वप्न में देखा कि हमारे पितर गड्ढे में उलटे लटके हुए हैं। अगस्त्य ने उन्हें इस प्रकार अधोमुख लटका देखकर उनसे कारण पूछा। पितरों ने कहा कि यदि तुम विवाह करके संतान उत्पन्न करो, तो हम लोगों को इस यातना से छुट्टी मिले। अगस्त्य ने बहुत ढूँढा, पर उनको सर्वलक्षणों से युक्त कोई कन्या विवाह करने योग्य नहीं मिली। निदान उन्होंने सब प्राणियों के उत्तम उत्तम अंग लेकर एक कन्या बनाई। उस समय विदर्भ देश का राजा पुत्र के लिये तप कर रहा था। अगस्त्य जी ने लोपामुद्रा उसी विदर्भराज को प्रदान की। जब वह बड़ी हुई, तब अगस्त्य जी ने विदर्भराज से कन्या की याचना की। विदर्भराज ने लोपामुद्रा अगस्त्य जी को सौंप दी और अगस्त्य जी ने उसका पाणिग्रहण कर उसे अपनी पत्नी बनाया।

पर्या०—लोपा। कोशीतकी। वरप्रदा।

२. एक तारे का नाम जो दक्षिण में अगस्त्य मंडल के पास उदय होता है।

लोपायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोपाक'।

लोपायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

लोपाश, लोपाशक—संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मिठाई [को०]।

लोपी—वि० [सं० लोपिन्] १. भंग करनेवाला। नष्ट करनेवाला। २. हानि पहुँचानेवाला। ३. वह जो लुप्त हो सके [को०]।

लोप्ता—वि० [सं० लोप्तृ] भंग करनेवाला। तोड़नेवाला। नाशक [को०]।

लोप्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] लूट का माल। चोरी की संपत्ति [को०]।

लोबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. पुतली। गुड़िया। २. खिलौना [को०]।

यौ०—लोबतबाज = कठपुतली का खेल करनेवाला।

लोबा†—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमाश या हिं० लोमड़ी] लोमड़ी। उ०—कीन्हेसि लोबा इंदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी।—जायसी (शब्द०)।

लोबान—संज्ञा पुं० [अ०] एक वृक्ष का सुगंधित गोंद।

विशेष—यह वृक्ष अफ्रिका के पूर्वी किनारे पर, सुमालीलैंड में अरब के दक्षिणी समुद्रतट पर होता है और वहीं से लोबान अनेक रूपों में भारतवर्ष में आता है। कुहुर जकर, कुहुर उनस, कुहुर शफ, कुहुरकशफा आदि इसी के भेद हैं। इनमें से कई दवा के काम में आते हैं। इनमें लोबानकशफा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्ष में लोबान के नाम से बिकता है। यह गोंद वृक्ष की छाल के साथ लगा रहता है। अरब से लोबान बंबई आता है। वहाँ छाँट छाँटकर उसके भेद किए जाते हैं। जो पीले रंग की बूँदों के रूप के साफ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छाँटकर युरोप भेज देते हैं तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीन के लिये रख लेते हैं। एक और प्रकार का लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानों से आता है, जिसे जावी लोबान कहते हैं। युरोप में इससे एक प्रकार का क्षार बनाया जाता है जिसे बैंजोइक एसिड कहते हैं। लोबान प्रायः जलाने के काम में लाया जाता है, जिससे सुगंधित धूआँ निकलता है। वैद्यक में कुहुरलोबान का प्रयोग सुजाक में और जावी लोबान का प्रयोग खाँसी में होता है। यह अधिकतर मरहम के काम में लाया जाता है।

लोबानी—वि० [अ०] १. लोबान से युक्त। लोबानवाला। लोबान जैसा।

यौ०—लोबानी ऊद = एक प्रकार का सफेद ऊद या सुगंधित लकड़ी।

लोबिया—संज्ञा पुं० [सं० लोभ्य, मि० अ०] एक प्रकार का बोड़ा।

विशेष—यह सफेद रंग का और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और तीन अंगुल तक चौड़े और बहुत कोमल होते हैं और पकाकर खाए जाते हैं। बीजों से दाल और दालमोट बनाते हैं। इसकी और भी जातियाँ हैं; पर लोबिया सबसे उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियाँ उर्द के सदृश पर उससे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजी के लिये बागों में बोया जाता है और बहुमूल्य होता है। उ०—कंचन के धाम कहि काम जहाँ ये उपाधि, राम राज भलो जहाँ सबै खाय लोबिया।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

लोबिया कंजई—संज्ञा पुं० [हिं० लोबिया + कंजई] एक रंग जो गहरा हरा होता है।

लोभ—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लुब्ध, लोभी] १. दूसरे के पदार्थ को लेने की कामना।

पर्या०—तृष्णा। लिप्सा। स्पृहा। कांक्षा। शंस। गर्द्ध। इच्छा। वांछा। अभिलाषा।

२. जैन दर्शन के अनुसार वह मोहनीय कर्म जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ को त्याग नहीं सकता। अर्थात् यह त्याग का बाधक होता है। अधैर्यता। अधीरता (को०)। ४. कृपणता। कंजूसी।

लोभन[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० लोभनी] लुभानेवाला। उलझाने या फँसानेवाला [को०]।

लोभन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रलोभन। लालच। आकर्षण। उलझन। २. सुवर्ण। सोना [को०]।

लोभनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० लोभ] लुब्ध होना। मुग्ध होना। उ०—(क) करनफूल नासिक अति सोभा। ससि मुख आइ सूक जनु लोभा।—जायसी (शब्द०)। (ख) सोहत सुबरन सुरथ फनद मंदिर सम ओभा। जिनमें रतन बिहंग बने जेहि लखि जग लोभा।—जरासंधबध (शब्द०)।

लोभना[2]—क्रि० स० [सं० लोभन] लुभाना । मुग्ध करना ।

लोभनीय—वि० [सं०] लुभानेवाला । आकर्षक [को०] ।

लोभविजयी—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो असल में लड़ाई न करना चाहता हो, कुछ धन आदि चाहता हो ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे को कुछ धन देकर मित्र बना लेना चाहिए ।

लोभानाⓟ† —क्रि० स० [हिं० लोभाना का सक०] मोहित करना । मुग्ध करना । उ.—माँगहु बर बहु भाँति लोभाए । परम धीर नहिं चले चलाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

लोभाना[2]—क्रि० अ० मोहित होना । मुग्ध होना । उ०—(क) अस विचारि हरि भजत सयाने । मुक्ति निरादरि भगति लोभाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बहुरि भगवान को निरखि सुंदर परम कह्यो एहि माहि है सब भलाई । पै न इच्छा इन्हैं है कछू वस्तु की, अरुन ए देखि मोहइ लोभाई ।—सूर (शब्द०) ।

लोभारⓟ†—वि० [हिं० लोभ+आर (प्रत्य०)] लुभानेवाला । मुग्ध करनेवाला । उ०—वय किशोर वय तड़ित बरन तन नख सिख अंग लोभारे । है चितु कैं हित लै सब छबि बितु बिधि निज हाथ सँवारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

लोभित—वि० [सं०] लुब्ध । मुग्ध । लुभाया हुआ । उ०—नलिन पराग मेघ माधुरि सों मुकुलित अंब कदंब । मुनि मन मधुप सदा रस लोभित सेवत अज शिव अंब ।—सूर (शब्द०) ।

लोभी—वि० [सं० लोभिन्] [वि० स्त्री० लोभिनी] १. जिसे किसी बात का लोभ हो । उ०—नए नए हरि दरसन लोभी श्रावण शब्द रसाल । प्रथम ही मन गयो तनु तजि तब भई बेहाल ।—(शब्द०) । २. बहुत अधिक लोभ करनेवाला । लालची । ३. लुब्ध । लुभाया हुआ । उ०—ए कैसी हैं लोभिनी छबि धरति चुराई । और न ऐसी करि सकै मर्यादा जाई ।—सूर (शब्द०) ।

लोभ्य—वि० [सं०] आकर्षक । लोभनीय [को०] ।

लोम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर भर के छोटे छोटे बाल । रोवाँ । रोम । उ०—शतशत इंद्र लोम प्रति लोमनि । शत लोमनि मेरे इक लोमनि ।—सूर (शब्द०) । २. बाल । जैसे,—गोलोम । ३. पूँछ (को०) । ४. ऊर्णा । ऊन (को०) ।

लोम[2]—संज्ञा पुं० [सं० लोमश] लोमड़ी । उ०—भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं भीतर भवन भेर लीलगऊ लोम हैं ।—भूषण (शब्द०) ।

लोमकरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी । २. माँसी नामक घास ।

लोमकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा ।

लोमकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] शशक । खरगोश ।

लोमकी—संज्ञा पुं० [सं० लोमकिन्] एक पक्षी [को०] ।

लोमकीट—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ [को०] ।

लोमकूप—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में का वह छिद्र जो रोएँ की जड़ में होता है । लोमगर्त ।

लोमगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रोमकूप' [को०] ।

लोमघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] गंज नामक रोग । इंद्रलुप्तक ।

लोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशा] कुत्ते या गीदड़ की जाति का एक जंतु जो ऊँचाई में कुत्ते से छोटा होता है, पर विस्तार में लंबा ।

विशेष—भारतवर्ष की लोमड़ी का रंग गीदड़ सा होता है; पर यह उससे बहुत छोटी होती है । इसकी नाक नुकीली, पूँछ झबरी और आँखें बहुत तेज होती हैं और यह बहुत तेज भागनेवाली होती है । अच्छे अच्छे कुत्ते इसका पीछा नहीं कर सकते । चालाकी के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है । ऋतु के अनुसार इसका रोवाँ झड़ता और रंग बदलता है । यह कीड़े मकोड़ों और छोटे छोटे पक्षियों को पकड़कर खाती है । अन्य देशों में इसकी अनेक जातियाँ मिलती है । अमेरिका में लाल रंग की एक लोमड़ी होती है; और शीतकटिबंध प्रदेशों में काले रंग की लोमड़ी होती है, जिसके रोएँ जाड़े में सफेद रंग के हो जाते हैं । कहीं कहीं बिल्कुल काली लोमड़ी भी होती है । उन सबके बाल या रोएँ बहुत कोमल होते हैं, और उनका शिकार उनकी खाल के लिये किया जाता है, जिसे समूर या पोस्तीन कहते है । शीतकटिबंध प्रदेश की लोमड़ियाँ बिल बनाकर झुंड में रहती हैं । यूरोप की लोमड़ियाँ बड़ी भयानक होती हैं । वे गाँवों में घुसकर अंगूर आदि फलों का और पालतू पक्षियों का नाश कर देती हैं । भारत की लोमड़ी चैत बैसाख में बच्चे देती है । बच्चों की संख्या पाँच छह होती है; और वे डेढ़ वर्ष में पूरी बाढ़ को पहुँचते हैं । इनकी आयु तेरह चौदह वर्ष की कही गई है ।

लोमपाद—संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक राजा का नाम ।

विशेष—यह राजा दशरथ के मित्र थे । एक बार इन्होंने ब्राह्मणों का अपमान किया । उससे क्रोध कर ब्राह्मण उनका देश छोड़कर चले गए । ब्राह्मणों के चले जाने से अंग देश में अवर्षण पड़ा । इसके निवारणार्थ राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को राज्य में बुलाकर उन्हें अपने मित्र दशरथ की कन्या, जिसका नाम शांता था, प्रदान की, जिससे अनावृष्टि दूर हो गई । इन्हें रोमपाद भी कहते हैं ।

लोमपादपुर—संज्ञा पुं० [सं०] चंपा नगरी जिसे अब भागलपुर कहते हैं ।

लोमफल—संज्ञा पुं० [सं०] रोएँदार फल । भव्य नामक फल [को०] ।

लोममणि—संज्ञा पुं० [सं०] बाल से बना रक्षाकवच ।

लोमयूक—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ । यूका [को०] ।

लोमरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० लोमरन्ध्र] दे० 'रोमकूप' [को०] ।

लोमर†—वि० [हिं० लोमड़ी] डरपोक । भग्गू । कायर । (उपेक्षा०) ।

लोमराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोमावलि [को०] ।

लोमरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशा] दे० 'लोमड़ी' ।

लोमरोग—संज्ञा पुं० [सं०] गंज रोग । गंजा होने का रोग । वह रोग जिसमें बाल झड़ जाते हैं [को०] ।

लोमलतावर—संज्ञा पुं० [सं०] पेट । उदर । तोंद [को०] ।

लोमवाही—वि० [सं० लोमवाहिन्] १. पंखवाला । २. रोएँदार । ३. तेज धारवाला [को०] ।

लोमविष[1]—वि० [सं०] (पशु) जिसके रोएँ में विष होता है [को०] ।

लोमविष[2]—संज्ञा पुं० व्याघ्र । बाघ ।

लोमश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम ।

विशेष—पुराणों में इनको अमर कहा गया है । महाभारत के अनुसार ये युधिष्ठिर के साथ तीर्थयात्रा को गए थे और उन्हें सब तीर्थों का वृत्तांत बतलाया था ।

२. मेष । मेढ़ा । ३. एक पौधा ।

लोमश[2]—वि० १. अधिक और बड़े बड़े रोएँवाला । झबरा । २ ऊनी । ऊन का (को०) । ३. बालों से भरा या ढका हुआ (को०) । ४. घास से ढका हुआ (को०) ।

लोमशकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक जानवर जो बिल या माँद में रहता है [को०] ।

लोमशकांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशकाण्डा] कर्कटी । ककड़ी ।

लोमशपर्णिना—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी नामक ओषधि ।

लोमशपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लोमशपर्णिनी' ।

लोमशपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस । शिरीष ।

लोमशमार्जार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके बाल कोमल होते हैं और जिससे मुश्क निकलता है । गंधमार्जार । विशेष दे० 'गंधबिलाव' ।

पर्या०—पूतिक । मारजातक । सुगंधी । मूत्रपातन ।

लोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैदिक काल की एक स्त्री जो कई मंत्रों की रचयित्री मानी जाती है । २. काकजंघा । माँसी । ३. बच । ४. अतिबला । ५. कौंछ । केवाँच । ६. नीला कसीस । कसीस । ७. लोमड़ी (को०) । ८. शृगाली । सियारिन (को०) । ९. दुर्गा की एक अनुचरी या शाकिनी (को०) ।

लोमशातन—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।

लोमशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष [को०] ।

लोमश्य—संज्ञा पुं० [सं०] झबरापन । झबरे या घने लंबे बालों का होना [को०] ।

लोमस—संज्ञा पुं० [सं० लोमश] दे० 'लोमश' ।

लोमहर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रोमहर्ष । रोमांच [को०] ।

लोमहर्षक—वि० [सं०] रोंगटे खड़े करनेवाला । रोमांचकारी [को०] ।

लोमहर्षण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणों के अनुसार व्यास के एक शिष्य का नाम जो उग्रश्रवा के पुत्र थे । इन्हीं को सूत कहते हैं । २. रोमांच ।

लोमहर्षण[2]—वि० ऐसा भीषण जिससे रोएँ खड़े हो जायँ । बहुत अधिक भयानक ।

लोमहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल । लोमशातन [को०] ।

लोमांच—संज्ञा पुं० [सं० लोमाञ्च] १. रोमांच । २. कोमल ऊन । मुलायम ऊन (को०) । ३. दुम । पूँछ (को०) ।

लोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बचा । बच ।

लोमाद—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ की एक जाति [को०] ।

लोमालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाती से नाभि तक उगे घने रोएँ । रोमावली [को०] ।

लोमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोमड़ी [को०] ।

लोमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लोमालि' ।

लोमावलि, लोमावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'लोमालि' [को०] ।

लोमाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सियार । गीदड़ । २. नर लोमड़ी ।

लोमाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गीदड़ी । सियारिन । २. लोमड़ी (को०) ।

लोय†[1]—संज्ञा पुं० [सं० लोक] लोग । उ०—जहाँ प्रगट भूषण भनत हेतु काज ते होय । सो विभावना औरऊ कहत सयाने लोय ।—भूषण (शब्द०) ।

लोय[2]—संज्ञा पुं० [सं० लोचन, हिं० लोयन] आँख । नेत्र । नयन ।

लोय[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लव या लाव] लौ । लपट । ज्वाला । उ०—दुति निर्मल रत्न प्रदीप धरे बड़ी लोय सो आँखन ओरी जरे ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

लोय[4]—अव्य० [हिं० लौं] तक । पर्यंत ।

लोयनⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० लोचन, प्रा० लोयण] आँख । उ०—जनक सुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

लोयनⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० लावण्य] लावण्य । सौंदर्य ।

लोर†[1]—वि० [सं० लोल] १. लोल । चंचल । उ०—यह वाणी कहत ही लजानी समुझि भई जिय ओर । सूरश्याम मुख निरखि चली घर आनंद लोचन लोर ।—सूर (शब्द०) । २. उत्सुक । इच्छुक ।

लोर[2]—संज्ञा पुं० [सं० लोल] १. कान का कुंडल । २. लटकन । ३. कान के नीचे का लटका हुआ भाग । लोलक ।

लोर[3]—संज्ञा पुं० [देशी या सं० लोल (=अश्रु या हिं० लोण)] आँसू । उ०—बाल ढिग बैठारि ताको पोंछि लोचन लोर । सूर प्रभु के बिरह व्याकुल सखी लखि मुख ओर ।—सूर (शब्द०) ।

लोरनाⓅ—क्रि० अ० [सं० लोल] १. चंचल होना । २. लपकना । ललकना । उ०—गुनि उठि जागि देखैं मुकुर नारि ललचान अक भरि लैन लोरैं । सूर प्रभु भावती के सदा रस भरे नैन भरि भरि प्रिया रूप चोरैं ।—सूर (शब्द०) । ३. लिपटना । उ०—लोरहिं आइ भूमि तरु शाखाफल फूलन के भारा । नाना रंग कुरंग संग एक चरैं सुढंग अपारा ।—रघुराज (शब्द०) । ४. झुकना । उ०—देव कर जोरि जोरि बदति सुरांत लघु लोगन के लोरि लोरि पायन परति है ।—देव (शब्द०) । ५. लोटना । उ०—कलप लता से लता वृंदन विलासे, झुके अजब किता से भूमि लोरन के आसे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

लोरवा†—संज्ञा पुं० [देशी लोर + वा (प्रत्य०)] आँसू । लोर । (पूरब) ।

लोरा—संज्ञा स्त्री० [सं० लोल] १. एक प्रकार का गीत जो स्त्रियाँ बच्चों को सुलाने के लिये गाती हैं । साथ ही वे बच्चे को गोद

में लेकर हिलाती भी जाती हैं; अथवा खाट पर लेटाकर थपकी देती जाती हैं। २. तोते की एक जाति।

लोलंब - संज्ञा पुं० [सं० लोलम्ब] बड़ा भौंरा [को०]।

लोल[1]—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। कंपायमान। क्षुब्ध। अशांत २. चंचल। उ०—भाल तिलक कंचन किरीट सिर कुंडल लोल कपोलनि झाँई। निरखहिं नारि निकर विदेह पुर निमिशा की मरजाद मिटाई। तुलसी (शब्द०)। ३. परिवर्तनशील। ४. क्षणिक। क्षणभंगुर। ५. उत्सुक। अति इच्छुक।

लोल[2]—संज्ञा पुं० लिंगेंद्रिय।

लोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लटकन जो बालियों में पहना जाता है। यह मछली के आकार का या किसी और आकार का होता है। स्त्रियाँ इसे नथ या बालो में पिरोकर पहनती हैं। उ०—करनफूल खुटिला अरु खुभिय। लोलक सोन सींक हूँ चुंभिय।—सूदन (शब्द०)। २. कान की लव। लोलकी। ३. करघे में मिट्टी का एक लट्टू जो राछ में इसलिये लगाया जाता है कि उसको ऊपर या नीचे करके राछ उठा या दबा सकें। ४. घंटी या घंटे के बीच में लगा हुआ लटकन जो हिलाने से इधर उधर टकराकर घंटी में लगकर शब्द उत्पन्न करता है।

लोलकर्ण—वि० [सं०] लोगों की बात सुनने का आदती। सबकी बातें सुननेवाला (को०)।

लोलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोमक] कान का वह भाग जो गालों के किनारे इधर उधर नीचे को लटकता रहता है। इसी में छेद करके कुंडल या बाली आदि पहनते हैं।

लोलघट—संज्ञा सं० [सं०] पवन जिसका शरीर चंचल है [को०]।

लोलचक्षु—वि० [सं० लोलचक्षुस्] १. कामनायुक्त नेत्रों से देखनेवाला। प्रेम से देखनेवाला। ३. जिसके नेत्र चारो ओर नाचते हों। चंचलनेत्र [को०]।

लोलजट – संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक राज्य जो ईशान कोण में है।

लोलजिह्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प जिसकी जीभ लपलपाती रहती है [को०]।

लोलजिह्व[2]—वि० [सं०] लालची। चटोरा [को०]।

लोलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चापल्य। चंचलता। २. लालसा। लालच। लोभ [को०]।

लोलत्व – संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोलता' [को०]।

लोलदिनेश—संज्ञा पुं० [सं०] लोलार्क नामक सूर्य। उ०—लोमदिनेस त्रिलोचन लोचन करणघंट घंटा सी। तुलसी (शब्द०)।

लोलनयन—वि० [सं०] दे० 'लोलचक्षु'।

लोलना(पु)—क्रि० अ० [सं० लोलन] हिलना। डोलना। उ०—गागरि नागरि लिए पनिघट तें चली घरहिं आवै। ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहिं चुरावै।—सूर (शब्द०)।

लोलनेत्र, लोललोचन—वि० [सं०] दे० 'लोलचक्षु' [को०]।

लोललांगूल—संज्ञा पुं० [सं० लोललाङ्गूल] १. चंचल पूँछ। आस्फालन करता हुआ पुच्छ। २. एक स्तोत्र। हनुमान जी की एक स्तुति।

लोला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिह्वा। जीभ। २. लक्ष्मी। ३. मधु दैत्य की माता। ४. एक योगिनी का नाम। ५. युक्तिकल्पतरु के अनुसार एक प्रकार की नाव। ६४ हाथ चौड़ी, ८ हाथ लंबी और ६३ हाथ ऊँची नौका। ६. चंचला स्त्री। अत्यत चपल औरत (को०)। ७. विद्युत्। तड़ित्। चपला (को०)। ८. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, मगण, भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। इसमें सात सात पर यति होती है। उ०—मा सौमै भग गौ रो काहू ती मुख देखे। सिंहौरी कटि जोहे हस्ती चालहिं पेखे। लोला सी मृदुबैना पूछै बाल नवीना। बोली मातु फबै ना वाणी नीति विहीना।—छंद:०, पृ० २००।

लोला[2] - संज्ञा पुं० [देश०] लड़कों का एक खिलौना। यह एक डंडा होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो लट्टू होते हैं।

लोलाक्षि, लोलाक्षिका, लोलाक्षी,—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके नेत्र चपल हों। चंचल नेत्रोंवाली स्त्री [को०]।

लोलार्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. काशी के एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम। जिसे लोलार्क कुंड कहते हैं। २. सूर्य का एक नाम (को०)।

लोलबिंराज—संज्ञा पुं० [सं० लोलिम्बराज] आयुर्वेद के एक ग्रंथ के लेखक [को०]।

लोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक शाक। चांगेरी। अमलोनी [को०]।

लोलित—वि० [सं०] १. श्लथ। २. ढोला। शिथिल। क्षुब्ध। कंपित। हिलाया हुआ [को०]।

लोलिनी—वि० स्त्री० [सं० लोल] चंचल प्रकृतिवाली। उ०—कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं।—केशव (शब्द०)।

लोलुप—वि० [सं०] १. लोभी। लालची। २. चटोर। चट्टू। ३. किसी बात के लिये परम उत्सुक। ४. विध्वंसक। तोड़फोड़ करनेवाला। नाशक (को०)।

लोलुपता—संज्ञा स्त्री० [सं० लोलुप + ता] लालच। तीव्र आकांक्षा। लालसा [को०]।

लोलुपत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोलुपता' [को०]।

लोलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बलवती आकांक्षा। तीव्र इच्छा। गहरी लालसा [को०]।

लोलुभ—वि० [सं०] तीव्र आकांक्षा से युक्त। गहरी लालसावाला। लोलुप [को०]।

लोलुव—वि० [सं०] बहुत अधिक या बारबार कहनेवाला [को०]।

लोलेक्षण—वि० [सं०] चंचल नेत्रवाला। लोलचक्षु [को०]।

लोवा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशा] १. लोमड़ी। उ०—(क) बाएँ अकासे धँवरे आए। लोवा दरस आइ देखराए।—जायसी (शब्द०)। (ख) लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख शिशुहि पियावा।—तुलसी (शब्द०)।

लोवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० लव, हिं० लवा] तीतर की जाति का एक पक्षी । लवा ।

विशेष—यह बटेर से छोटा होता है और कश्मीर, मध्य प्रदेश तथा संयुक्त प्रांत में पाया जाता है। नर प्रायः मादा से कुछ अधिक बड़ा होता है। शिकारी इसका शिकार करते हैं। इसे गुरगा भी कहते हैं।

लोशन—संज्ञा पुं० [अं०] अधिक पानी में घुली हुई ओषधि जो शरीर में ऊपर से लगाने, किसी पीड़ित अंश को धोने या तर रखने आदि के काम में आती है।

लोष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्थर। २. ढेला। डला। ३. लोहे का मोरचा (को०)।

यौ०—लोष्टगुटिका=मिट्टी की डली या गोली। लोष्टघात=ढेले से मारना। लोष्टभंजन, लोष्टभेदन=जिससे मिट्टी के ढेले तोड़े जायँ। पटेला। लोष्टमर्दी=(१) ढेला तोड़नेवाला। मिट्टी के डले तोड़नेवाला। (२) दे० 'लोष्टघ्न'।

लोष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिट्टी का ढेला। २. धब्बा। ३. किसी चिह्न या निशान को बतानेवाली वस्तु [को०]।

लोष्टघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] खेती का वह औजार जिससे खेत के ढेले फोड़ते हैं। पटेला। पाटा।

लोष्टभंजन—संज्ञा पुं० [सं० लोष्टभञ्जन] दे० 'लोष्टघ्न' [को०]।

लोष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोष्ट'।

लोहँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० लौहभाण्ड या हिं० लोह+ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० लोहँड़ी] १. लोहे का एक प्रकार का पात्र जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। २. तसला। उ०—चुंबक लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ केर निचोवा।—जायसी (शब्द०)।

लोह[1]—वि० [सं०] १. लाल रंगवाला। ताँमड़ा। ३. ताँबे का बना हुआ। २. लोहे का बना हुआ।

लोह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा नामक प्रसिद्ध धातु। २. रक्त। खून। ३. लाल बकरा। ४. ताँबा (को०)। ५. इस्पात (को०)। ६. कोई धातु (को०)। ७. सोना (को०)। ८. शस्त्र। हथियार। उ०—लोह गहे लालच करि जिय को औरौ सुभट लजावैं। सूरदास प्रभु जीति शत्रु को कुशल क्षेम घर आवैं।—सूर (शब्द)। ९. मछली पकड़ने की काँटिया (को०)। १०. अगुरु। अगर नामक गंधद्रव्य (को०)।

लोहकंटक—संज्ञा पुं० [सं० लोहकण्टक] मदनफल का वृक्ष। मैनफल का पेड़। २. लोहे का काँटा [को०]।

लोहकटक—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की साँकल। सिक्कड़ [को०]।

लोहकांत—संज्ञा पुं० [सं० लोहकान्त] चुंबक। अयस्कांत।

लोहकार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

लोहकार्षापण—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का सिक्का या बाट।

लोहकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की कीट या मैल जो भट्ठे में डालकर लोहे को गलाने या ताव देने से निकलती है।

विशेष—वैद्यक में इसे कृमि, वात, पित्त, शूल, मेह, गुल्म और शोथ का नाशक लिखा है। इसका स्वाद मधुर और कटु तथा प्रकृति उष्ण मानी गई है। इसे मंडूर भी कहते हैं।

पर्या०—किट्ट। लोहचूर्ण। अयोमल। लोहज। कृष्णचूर्ण। लोष्ट।

लोहकुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० लोहकुम्भी] लोहे का वह पात्र जिसमें कोई वस्तु खौलाई जाय। कड़ाहा [को०]।

लोहगंध—संज्ञा पुं० [सं० लोहगन्ध] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

लोहघातक—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकार नामक जाति। इस जाति के लोग लोहे को तपाकर पीटते हैं। लोहार।

लोहचर्मवान्—वि० [सं० लोहचर्मवत्] (व्यक्ति) जो लोहे का कवच पहने हो [को०]।

लोहचारक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक [को०]।

लोहचालिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बख्तर जिससे सारा शरीर ढका रहता था [को०]।

लोहचून—संज्ञा पुं० [सं० लोहचूर्ण] दे० 'लोहचूर्ण'।

लोहचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे का बुरादा या चूरा। लोहे की रेत। २. मोरचा। मैल [को०]।

लोहज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसकुट। काँसा। २. लोहे का चूरा [को०]।

लोहजाल—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। जिरहबख्तर [को०]।

लोहजित्—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा [को०]।

लोहदारक संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम। दे० 'लौहचारक' [को०]।

लोहद्रावी—संज्ञा पुं० [सं० लोहद्राविन्] १. सोहागा। २. अम्लवेत।

लोहनाल संज्ञा पुं० [सं०] नाराच नामक अस्त्र। विशेष दे० 'नाराच'।

लोहनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोहकिट्ट' [को०]।

लोहनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोह+नी (प्रत्य०)] लोहे का तसला जिससे मल्लाह नाव का पानी उलीचते हैं।

लोहपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] सारस। बगुला [को०]।

लोहप्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निहाई जिसपर तपाया हुआ लोहा रखकर पीटते हैं। २. लोहे की बनी मूर्ति [को०]।

लोहबंदा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लोहा+बाँधना] वह डंडा या छड़ी जिसका सिरा लोहे से मढ़ा हो।

लोहबद्ध—वि० [सं०] लोहे से मढ़े हुए सिरेवाला [को०]।

लोहबान—संज्ञा पुं० [अ० लोबान] दे० 'लोबान'।

लोहमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का पाँसा [को०]।

लोहमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोहकिट्ट' [को०]।

लोहमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाला। बर्छा [को०]।

लोहमारक[1]—वि० [सं०] लोहशोधक [को०]।

लोहमारक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक साग [को०]।

लोहमुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल मोती [को०]।

लोहरज—संज्ञा स्त्री० [सं० लोहरजस्] मोरचा। जंग [को०]।

लोहराजक—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी [को०]।

लोहलंगर—संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + लंगर] १. जहाज का लंगर। २. बहुत भारी वस्तु।

लोहल[1]—वि० [सं०] १. लौहनिर्मित। लोहे का बना हुआ। २. अस्पष्ट बोलनेवाला [को०]।

लोहल[2]—संज्ञा पुं० शृंखला का मुख्य छल्ला [को०]।

लोहलिंग—संज्ञा पुं० [सं० लोहलिङ्ग] खून से भरा फोड़ा [को०]।

लोहवर—संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण। सोना [को०]।

लोहवर्म—संज्ञा पुं० [सं० लोहवर्मन्] लोहे का कवच [को०]।

लोहशंकु—संज्ञा पुं० [सं० लोहशङ्कु] १. पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम। २. लोहे का भाला (को०)।

लोहशुद्धिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा [को०]।

लोहश्लेषण, लोहश्लेष्मक—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

लोहसंकर—संज्ञा पुं० [सं० लोहसङ्कर] १. धातुओं का मिश्रण। २. वर्तलोह। नीला इस्पात [को०]।

लोहसश्लेषक—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा [को०]।

लोहसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. फौलाद। २. फौलाद की बनी जंजीर। उ०—लोहसार हस्ती पहिराए। मेघ साम जनु गरजत आए।—जायसी (शब्द०)।

लोहहारक—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम।

लोहांगारक—संज्ञा पुं० [सं० लोहाङ्गारक] दे० 'लोहहारक'।

लोहांगी, लोहाँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोह + अंग + ई] वह छड़ी या डंडा जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा[1]—संज्ञा पुं० [सं० लोह] १. एक प्रसिद्ध धातु जो संसार के सभी भागों में अनेक धातुओं के साथ मिली हुई पाई जाती है।

विशेष—इसका रंग प्रायः काला होता है। वायु या जल के संसर्ग से इसमें मोर्चा लग जाता है। भारतवर्ष में इस धातु का ज्ञान वैदिक काल से चला आता है। वेदों में लोहे को साफ करने की विधि पाई जाती है और उसके बने कठिन और तीक्ष्ण हथियारों का उल्लेख मिलता है। लोहे का ज्ञान पहले पहल संसार में किसे, कब, कहाँ और किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। वैद्यक शास्त्र के अनुसार लोहा पाँच प्रकार का होता है—कांची, पांडि, कांत, कालिंग और वज्रक। इनमें कांची, पांडि और कालिंग क्रमशः दक्षिण की कांचीपुरी, पंडा और कलिंग देश के लोहे के नाम हैं, जो वहाँ की खानों से निकलते थे। जान पड़ता है, वज्रक उस लोहे को कहते थे, जो आकाश से उल्का के रूप में गिरता था; क्योंकि बहुत दिनों से संसार में यह बात चली आती है कि बिजली से या उल्कापात में लोहा गिरता है। कांत हर एक स्थान के शुद्ध किए लोहे को कहते हैं। इन्हीं पाँच प्रकार के लोहों का प्रयोग वैद्यक में सर्वश्रेष्ठ मानकर लिखा गया है। यह बलप्रद, शोथ, शूल, अर्श, कुष्ठ, पांडु, प्रमेह मेद और वायु का नाशक, आँखों की ज्योति और आयु को बढ़ानेवाला, गुरु तथा सारक माना जाता है। कुछ लोगों का तो यह भी मत है कि लोहा सब रोगों का नाश कर सकता है; और मृत्यु तक को हटा देता है। वैद्यक में लोहे के भस्म का प्रयोग होता है। भारतवर्ष का लोहा प्राचीन काल में संसार भर में प्रख्यात था। यहाँ के लोगों को ऐसे उपाय मालूम थे जिनसे लोहे पर सैकड़ों वर्षों तक ऋतु का प्रभाव नहीं पड़ता था; और वर्षा तथा वायु के सहन से तथा मिट्टी में गड़े रहने से उसमें मोर्चा नहीं लगता था। दिल्ली का प्रसिद्ध स्तंभ इसका उदाहरण है, जिसे पंद्रह सौ वर्ष से अधिक बीत चुके हैं। उसपर अभी तक कहीं मोर्चे का नाम तक नहीं है। आज कल लोहे को जिस प्रणाली से साफ करते हैं, वह यह है,—खान से निकले हुए लोहे को पहले आग में डालकर जला देते हैं, जिससे पानी और गंधक आदि के अंश उसमें से निकल जाते हैं। फिर उस लोहे को कोयले या पत्थर के चूने के साथ मिलाकर बड़ी में डालकर गलाते हैं। इससे आक्सिजन का अंश, जो पहली बार जलाने से नहीं निकल सकता है, निकल जाता है। इतना साफ करने पर भी लोहे में प्रति सैकड़ा दो से पाँच अंश तक गंधक, कार्बन, सिलिका, फासफोरस, अलुमीनम आदि रह जाते हैं। उन्हें अलग करने के लिये उसे फिर भट्टी तैयार करके लगाते हैं, और तब घन से पीटते हैं। पहले को देगचून और दूसरे को लोहा या कमाया हुआ लोहा कहते हैं। इस कच्चे लोहे में भी सैकड़ा पीछे ०·१५ से ०·५ तक कार्बन मिला रहता है। उसी कार्बन का निकालना प्रधान काम है। इस्पात में सैकड़े पीछे ०·६ से ०·२ तक कार्बन होता है। उत्तम लोहा वही माना जाता है, जिसपर अम्ल या एसिड आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़े। विशुद्ध लोहे का रंग चाँदी की तरह सफेद होता है और जिला करने पर वह चमकने लगता है। यदि लोहे को घिसा जाय, तो उससे एक प्रकार की गंध सी निकलती है। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन काल में जब देवताओं ने लोमिल दैत्य का वध किया, तब उसी के शरीर से लोहा उत्पन्न हुआ। तीक्ष्ण, मुंड और कांत लोहों के पर्याय भी अलग अलग हैं। तीक्ष्ण के पर्याय शस्त्रायस, शास्त्र्य, पिंड, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खग, चित्रायस, मुंडज इत्यादि। मुंड के पर्याय—दृषत्सार, शिलात्मज, अश्मज, कृषिलौह इत्यादि। कुछ लोगों का कथन है कि आदि में 'लोहा' ताँबे को कहते थे। कारण यह है कि 'लोह' शब्द का प्रधान या यौगिक अर्थ है—लाल। पीछे इसका प्रयोग लोहे के लिये करने लगे। पर यह कथन कई कारणों से ठीक नहीं जान पड़ता। एक कारण यह है कि वेदों में लौह और अयस् शब्दों का प्रयोग प्रायः सब धातुओं के लिये मिलता है। दूसरे यह कि अब लोहे को आधुनिक विद्वान् लाल रंग का कारण मानने लगे हैं। उनकी धारणा है कि रक्त में लोहे के अंश ही के कारण ललाई है, और मिट्टी में लोहे का अंश मिला रहने से ही मिट्टी के बर्तन और ईंटें आदि पकाने पर लाल हो जाती हैं।

मुहा०—लोहे के चने = अत्यंत कठिन और दुःसाध्य काम। लोहे के चने चबाना = अत्यंत कठिन काम करना।

यौ०—लोहे की स्याही = एक प्रकार का रंग जो लोहे से तैयार किया जाता है।

विशेष—यह रंग तैयार करने के लिये पहले गुड़ या शीरे को पानी में घोल लेते हैं और उसमें लोहचून छोड़कर धूप में रख देते हैं। कई दिनों में वह उठने लगता है, और उसके ऊपर झाग काले रंग का हो जाता है, तब जान लेते हैं कि रंग तैयार हो गया है। इसे 'कसेरे की स्याही' और 'कत्थ' भी कहते हैं। यह रँगाई के काम में आता है।

२. अस्त्र। हथियार। उ०—नेही लोहा नूर लखि कटत कटाच्छन माँहि। असनेही हित खेत तजि भागत लोहे जाँहि।—रसनिधि (शब्द०)। ३. लड़ाई। युद्ध।

मुहा०—लोहा गहना = हथियार उठाना। युद्ध करना। उ०—काशीराम कहैं रघुवंशिन की रीति यही जासों कीजै मोह तासों लोह कैसे गहिए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)। लोहा बजना = युद्ध होना। उ०—दोनों वीर ललकार के ऐसे टूटे कि हाथियों के यूथ पै सिंह टूटे और लगा लोहा बजने।—लल्लू (शब्द०)। लोहा बरसना = तलवार चलना। घमासान मचना। किसी का लोहा मानना = (१) किसी विषय में किसी का प्रभुत्व स्वीकार करना। किसी विषय में किसी से दबना। (२) पराजित होना। हार जाना। लोहा लेना = लड़ना। युद्ध करना। लड़ाई करना। उ०—सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

४. लोहे की बनाई हुई कोई चीज या उपकरण। जैसे,—लगाम, कवच आदि। उ०—(क) राजा धरा आन के तन पहिरावा लोह। ऐसो लोह सो पहिरे चेत श्याम की ओह।—जायसी (शब्द०)। (ख) पवन समान समुद पर धावहिं। बूड़ि न पाँव पार होइ आवहिं। थिर न रहहिं रिस लोह चलाहीं। भाजहिं पूँछ सीस उपराहीं।—जायसी (शब्द०)। ४. लाल रंग का बैल। ५. धाक। दबदबा। प्रभुत्व (को०)। ६. कपड़े की शिकन दूर करनेवाली धोबी की इस्तिरी।

लोहा[२]—वि० [वि० स्त्री० लोही] १. लाल। २. बहुत अधिक कड़ा। कठोर।

लोहाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु [को०]।

लोहाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] बाण के आगे लगी लोहे की नोक [को०]।

लोहाज—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बकरा [को०]।

लोहाना[१]—क्रि० अ० [हिं० लोहा + आना (प्रत्य०)] लोहे के बर्तन में रखी रहने के कारण किसी वस्तु में लोहे के गुण या रंग आदि का उतर आना। किसी पदार्थ में लोहे का रंग या स्वाद आ जाना।

लोहाना[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का नाम।

लोहाभिसार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोहाभिहार'।

लोहाभिहार—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का एक उत्सव जिसमें युद्धार्थ अस्त्र शस्त्रों की सफाई की जाती है।

लोहामिष—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बकरे का मांस [को०]।

लोहायस—वि० [सं०] दे० 'लौहायस'।

लोहार—संज्ञा पुं० [सं० लौहकार, प्रा० लोह + आर (प्रत्य०)] [स्त्री० लोहारिन या लोहाइन] एक जाति जो लोहे का काम करती है।

विशेष—इस जाति के अनेक भेद हैं। उनमें से कुछ अपने को ब्राह्मण कहते हैं और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनकी अंतर्जातियों के नाम भी ओझा आदि होते हैं। पर अधिकतर आचारहीन होते हैं और शूद्र माने जाते हैं। प्रत्येक अंतर्जाति का खान पान और विवाह संबंध पृथक् पृथक् होता है; और उनके नाम भी भिन्न होते हैं।

यौ०—लोहार की स्याही = कसीस। हीरा कसीस।

लोहारखाना—संज्ञा पुं० [हिं० लोहार + फ़ा० खानह्] लोहारों के काम करने का स्थान।

लोहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लोहार + ई (प्रत्य०)] लोहारों का काम। लोहार का व्यवसाय या पेशा।

लोहार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वराहपुराण में वर्णित एक तीर्थ का नाम। २. लोहे का सिक्कड़ [को०]।

लोहि—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत वर्ण का टंकणक्षार। एक किस्म का सुहागा [को०]।

लोहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे का पात्र, तमला आदि [को०]।

लोहित[१]—वि० [सं०] रक्त। लाल। उ०—दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला।—प्रिय०, पृ० १।

लोहित[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। उ०—प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनि गन दुति अपनी। मानहुँ प्रगटि विपुल लोहित पुर पठइ दिए अवनी।—तुलसी (शब्द०)। २. लाल रंग (को०)। ३. साँप। ४ एक प्रकार का मृग। ५. ब्रह्मपुत्र नद का एक नाम (को०)। ६. एक प्रकार का धान (को०)। ७. आँख का एक विशेष रोग (को०)। ८. एक रत्न। लाल। ९. ताँबा (को०)। १०. खून। रक्त (को०)। ११. केसर (को०)। १२. युद्ध (को०)। १३. लाल चंदन (को०)। १४ एक समुद्र (को०)। १५. रोहू मछली (को०)। १६. अपूर्ण या हीन इंद्रधनु (को०)।

लोहितक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्मराग मणि। लाल मणि। २. मंगल ग्रह। ३. एक प्रकार का धान। ४ फूल नामक धातु। ५. ताँबा। ६. आजकल के रोहतक नगर का प्राचीन नाम।

लोहितक[२]—वि० लाल। रक्त वर्ण का [को०]।

लोहितकल्माष—वि० [सं०] लाल धब्बोंवाला [को०]।

लोहितकृष्ण—वि० [सं०] गहरा लाल [को०]।

लोहितक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] रक्ताल्पता रोग [को०]।

लोहितग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम [को०]।

लोहितचंदन—संज्ञा पुं० [सं०लोहितचन्दन] १. केसर। कुंकुम। २. लाल चंदन [को०]।

लोहिततूल—वि० [सं०] लाल चोटीवाला [को०]।

लोहितनयन—वि० [सं०] जिसकी आखें (क्रोध से) लाल हो गई हों। लाल आँखोंवाला [को०]।

लोहितपादक—वि० [सं०] लाल तलवोंवाला (शिशु)।

लोहितपित्त—वि० [सं०] रक्तपित्त रोग का रोगी।

लोहितपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] अनार का वृक्ष [को०]।

लोहितमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मूल्यवान् रत्न [को०]।

लोहितमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गेरू। गैरिक धातु। २. लाल रंग की मिट्टी।

लोहितराग—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग।

लोहितवासा—वि० [सं० लोहितवासस्] जिसके वस्त्र रक्त वर्ण या लाल रंग के हों।

लोहित शतपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल [को०]।

लोहितशवल—वि० [सं०] लाल रंग में ओतप्रोत [को०]।

लोहितस्मृति—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिग्रंथ।

लोहितांग—संज्ञा पुं० [सं० लोहिताङ्ग] १. मंगल ग्रह। २. कांपिल्ल नामक वृक्ष (को०)।

लोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम [को०]।

लोहिताक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल पासा। २. एक जाति का सर्प। ३. कोयल। ४. कोकिल। विष्णु। ५. बगल। काँख। कुक्षि। ६. नितंब [को०]।

लोहिताक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

लोहिताधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

लोहितानन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] शिकारी नेवला। एक प्रकार का नेवला जो घड़ियाल के अंडे नष्ट कर देता है [को०]।

लोहितानन[२]—वि० लाल मुख का। लाल मुखवाला [को०]।

लोहितायस—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा [को०]।

लोहितार्द्र—वि० [सं०] खून से तर। खून से भींगा हुआ [को०]।

लोहिताशोक—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष का एक भेद। रक्ताशोक। लाल फूलोंवाला अशोक [को०]।

लोहिताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. पावक। अग्नि। २. शिव का एक नाम [को०]।

लोहितिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० लोहितिमन्] रक्तता। रक्तिमा। लालिमा [को०]।

लोहितीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पुराना सिक्का। २. बटखरा। बाट [को०]।

लोहितेक्षण—वि० [सं०] लाल लाल नेत्रोंवाला। दे० 'लोहित-नयन' [को०]।

लोहितोद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम। जहाँ का जल रक्तमय कहा गया है।

लोहितोद[२]—वि० १. जिसका जल लाल हो। २. रक्तमय जलवाला [को०]।

लोहित्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन गाँव का नाम। वाल्मीकि ने कपीवती नदी का इसमें होकर बहना लिखा है। २. ब्रह्मपुत्र नद। ३. एक समुद्र का नाम। पुराणानुसार यह कुश द्वीप के पास है। ४. एक प्रकार का चावल (को०)। दे० 'लौहित्य'।

लोहित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी का नाम। २. एक अप्सरा का नाम।

लोहिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीरस्थ एक नाड़ी। २. एक पौधे का नाम [को०]।

लोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके शरीर का वर्ण लाल हो। लाल चमड़ीवाली स्त्री [को०]।

लोहिनीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त कांति। लाल कांति [को०]।

लोहिया—संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + इया (प्रत्य०)] १. लोहे की चीजों का व्यापार करनेवाला। २. बनियों और मारवाड़ियों की एक जाति का नाम। ३. लाल रंग का बैल। ४. लोहे की बनी हुई गोली।

लोही‡—संज्ञा स्त्री० [सं० लोह] १. अरुणिमा। ऊषा की लाली। २. चुगली। शिकायत। निंदा। ३. दे० 'लौही'।

लोहू—संज्ञा पुं० [सं० लोहित(=लाल)] रक्त। विशेष दे० 'लहू'। उ०—(क) तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्रान बियापल मोहू।—कबीर (शब्द०)। (ख) राते बिंब भए तेहि लोहू। परवर पाक फटे हिय गोहूँ।—जायसी (शब्द०)। (ग) लोथिन्ह ते लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।—तुलसी (शब्द०)। (घ) माता ही को मांस तोहि लागतु है मीठो मुख पियत पिता को लोहू नेक न अघाति है।—केशव (शब्द०)।

यौ०—लोहू लुहान = खून से लथपथ। उ०—'अरे यह क्या! मनू और नाना साहब दोनों लोहूलुहान हैं।—झाँसी०, पृ० २५।

लोहोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोहकिट्ट'।

लोहोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।

लोहोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोहकिट्ट' [को०]।

लोह्य—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल [को०]।

लौंडा[१]—संज्ञा पुं० [सं० लावण्य या लावण्यक या लुण्टक अथवा देशी] [स्त्री० लौंडी, लौंडिया] १. छोकरा। बालक। लड़का। २. खूबसूरत और नमकीन लड़का।

यौ०—लौंडेबाज। लौंडेबाजी।

लौंडा[२]—वि० १. अबोध। २. छिछोरा।

लौंडापन—संज्ञा पुं० [हिं० लौंडा + पन (प्रत्य०)] १. लौंडा होने का भाव। २. लड़कपन। नादानी। ३. छिछोरापन।

लौंडेबाज—वि० [हिं० लौंडा + फ़ा० बाज] १.(पुरुष) जो सुंदर बालकों से

प्रेम रखता हो और उनके साथ प्रकृतिविरुद्ध आचरण करता हो। २. (स्त्री) जो कम अवस्था के युवकों से प्रेम रखती हो। (बाजारू)।

लौंडेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा + फ़ा० बाजी] लौंडेबाज का काम। लौंडों से प्रेम रखना।

लौं(पु)—अव्य० [हिं० लग] १. तक। पर्यंत। उ०—अजहूँ लौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार। सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरण सुचार।—सूर (शब्द०)। (ख) चलत चलत लौं लै चले सब सुख संग लगाय। ग्रीषम वासर सिसिर निसि पिय मो पास बसाय।—बिहारी (शब्द०)। २. समान। तुल्य। बराबर। उ०—(क) दुतिये के शशि लौं बाढ़ै शिशु देखैं जननि जसोई। यह सुख सूरदास के नैनन दिन दिन दूनौ होई।—सूर (शब्द०)। (ख) कहति न देवर की कुबत कुलतिय कलह डराति। पंजर गत मंजार ढिग सुक लौं सूखति जाति—बिहारी (शब्द०)।

लौंकना(पु)†—क्रि० अ० [सं० लोकन] १. दृष्टिगोचर होना। दिखाई देना। उ०—लौंकत चीर ध्वजा रतनारे। सावन भादों के घन वारे।—गुमान (शब्द०)। २. चमकना। ३. आँखों में चकाचौंध होना।

लौंग—संज्ञा पुं० [सं० लवङ्ग] १. एक झाड़ की कली जो खिलने से पहले ही तोड़कर सुखा ली जाती है। इसके वृक्ष मालाबार, अफ्रीका के समुद्रतट, जंजिबार, मलाया, जावा आदि में होते हैं।

विशेष—लौंग की खेती के लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखी की राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी मानी जाती है। पहले इसको पनीरी में एक एक फुट पर बो देते हैं। इसका बीज जहाँ तक हो, जब तक ताजा रहे, तभी तक बोया जाता है; क्योंकि फूल सूख जाने पर बीज नहीं जमते। चार पाँच सप्ताह में बीज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरी से उखाड़कर बीस बीस फुट की दूरी पर बाग में लगाते हैं। जहाँ यह लगाया जाय वहाँ की भूमि पोली और दोमट होनी चाहिए। मटियार, बालू या दलदल में यह पौधा नहीं रह सकता। यदि काली मिट्टी में बालू मिला हो और उसके नीचे पीली मिट्टी और कंकड़ पड़ जाय, तो लौंग का पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। अत्यंत घनी छाया इसको हानिकर होती है। पनीरी बैठाने का समय प्रायः वर्षा का आरंभ है। बैठाए हुए पौधे को दो तीन वर्ष तक धूप से बचाने के लिये प्रायः छाया की आवश्यकता पड़ती है; और आँधी से बचाने के लिये इसके बाग की घनी झाड़ी से रुँधाई करने की आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपर से छाजन हटा ली जाती है; और छठे वर्ष से फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है; और बीस पचीस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूल कम आने लगते हैं। कलियाँ पहले हरी रहती हैं; फिर पीली और अंत को गुलाबी रंग की होती हैं। वही उनके तोड़ने का समय है। ये कलियाँ या तो बँधी हुई चुन ली जाती हैं अथवा लकड़ियों से पीटकर नीचे गिरा दी जाती हैं, और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लौंग है जो बाजारों में बिकता है। कोई कोई कलियाँ जो पेड़ों में रह जाती हैं, बढ़कर फूल जाती हैं और फूल झड़ जाने पर नीचे का भाग फूलकर छोटी सी घुंडी के आकार का हो जाता है, जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंडी बोने के काम में आती है। लौंग की कलम भी उसकी डाली को मिट्टी में दबाने से तैयार की जाती है। डेढ़ दो महीने में उसमें जड़ें निकल आती हैं। इस प्रकार की कलम जल्दी फूलने लगती है। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा, कड़ुआ, गुण शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकारक कफ-पित्त-नाशक, प्यास और वमन को मिटानेवाला, आँखों के लिये हितकर और शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षय रोग का नाशक माना गया है। लौंग से भबके द्वारा एक प्रकार का तेल निकलता है। उसका व्यवहार सभी देशी और विदेशी औषधों में होता है। वैद्यक में इसके तेल को वातनाशक, अग्निदीपक, कफनाशक और गर्भिणी के वमन को दूर करनेवाला लिखा है। दाँत की पीड़ा में जब दूषित कृमि हो जायँ, इसको लगाना विशेष लाभदायक होता है। लौंग का प्रयोग विशेषकर मसाले में होता है।

पर्या०—देवकुसुम। श्रीसंज्ञ। कलिकोत्तम। भृंगार। सुषिर। तीक्ष्ण। वारिज। शेखर। लव। श्रीपुष्प। रुचिर। वारिपुष्प। दिव्यगंध। तीक्ष्णपुष्प।

२. लौंग के आकार का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ नाक या कान में पहनती हैं। उ०—यदपि लौंग ललितौ तऊ तू नयहरि इक आँक। सदा संक बढ़िऐ रहै रहै चढ़ी सी नाक।—बिहारी (शब्द०)।

लौंगचिड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + चिड़ा (= चिड़िया)] १. एक प्रकार का कबाब जो बेसन मिलाकर बनाया जाता है। २. फुलकी रोटी (क्व०)।

लौंगमुश्क—संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + मुश्क] एक प्रकार के फूल का नाम।

लौंगरा—संज्ञा पुं० [हिं० लौंग] एक प्रकार की वार्षिक घास। एक घास जो बरसात में होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल और नुकीली, बरियारे से कुछ अधिक बड़ी और चमकीली होती हैं। यह घास बरसात में उगती है और इसमें लौंग के आकार की कलियाँ लगती हैं, जिनके डंठल प्रायः चौकोर होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं और पक जाने पर नीचे के डंठल कुछ मोटे हो जाते हैं, जिनमें बीजों से भरे चार बीजकोश निकलते हैं। बीज काले रंग के और चिपटे होते हैं। बंगाल में लोग इसकी पत्तियों का साग बनाते हैं।

लौंगियामिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंग + इया(प्रत्य०) + मिर्च] एक प्रकार की बहुत कड़वी मिर्च जिसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे होते हैं। इसे मिरची भी कहते हैं।

लौंड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० लिङ्ग वा देश०] पुरुष की मूत्रेंद्रिय।

लौंड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंड़ी + आ (प्रत्य०)]। दे० 'लौंड़ी'। उ०—तेकर होइबों लौंड़िया, जे रहिया बतावैं हो।—धरनी०, पृ० १२७।

लौंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा] दासी। मजदूरनी। उ०—मन मनसा द्वै लौंड़ी निकारि डारो, मारो हंकार तृष्णा कुबुधि कुबाद की।—कबीर (शब्द०)।

लौंद—संज्ञा पुं० [सं० लब्ध या लब्धि = (प्राप्ति) ?] अधिमास। मलमास।

लौंदरा†—संज्ञा पुं० [हिं० लव (= बालू)] वह पानी जो ग्रीष्म ऋतु में वर्षा आरंभ होने से पहले बरसता है। लवंदरा। लवंद। दौंगरा।

लौंदाⓅ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लोंदा'।

लौंदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह करछी जिससे खंडसार में पाक चलाया जाता है। (बुंदेला)।

लौंन[1]—संज्ञा पुं० [सं० लवन] १. दे० 'लवन'। २. दे० 'लौंद'।

लौंन[2]—संज्ञा पुं० [सं० लवण] दे० 'लोन'। उ०—तैसो इह कहिए अब कौन। दाधे पर जस लागत लौंन।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१।

लौ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा] १. आग की लपट। ज्वाला। उ०—जोरि जो धरी है बेदरद द्वारे तौन होरी, मेरी बिरहागि की उलूकनि लौ लाइ आव।—पद्माकर (शब्द०)। २. दीपक की टेम। दीपशिखा।

लौ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाग] १. लाग। चाह। राग। उ०—लौ इनकी लागी रहै निज मन मोहन रूप। तातें इन रसनिधि लयौ लोचन नाम अनूप।—रसनिधि (शब्द०)। २. चित्त की वृत्ति।

यौ०—लौलीन = किसी के ध्यान में डूबा हुआ या मस्त। उ०—खसम न चीन्हें बावरी पर पुरुषै लौलीन। कहहिं कबीर पुकारि के परी न बानी चीन्ह।—कबीर (शब्द०)।

३. आशा। कामना। उ०—लौ लगी लोयन में लखिबे की उते गुरु लोगन को भय भारी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

लौ[3]—संज्ञा पुं० [सं० लोलक] कान का लटका हुआ भाग। लोलकी।

लौआ—संज्ञा पुं० [सं० लावुक] कद्दू। घीआ।

लौकना—क्रि० अ० [सं० लोकन] दूर से दिखाई देना। उ०—मनि कुंडल झलकैं अति लोनै। जनु कौंधा लौकहि दुइ कोने।—जायसी (शब्द०)।

लौकांतिक—संज्ञा पुं० [सं० लौकान्तिक] जैनों के अनुसार वे स्वर्गस्थ जीव जो पाँचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक में रहते हैं। ऐसे जीवों का जो दूसरा अवतार होता है, वह अंतिम होता है और उसके उपरांत फिर उन्हें अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

लौका†—संज्ञा पुं० [सं० लावुक] [स्त्री० लौकी] कद्दू। उ०—भइ भूजी लौका परबती। रौंता कीन्ह काटि कै रती।—जायसी (शब्द०)।

लौकायतिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चार्वाक मत को मानता हो। नास्तिक। भौतिकवादी [को०]।

लौकिक[1]—वि० [सं०] १. लोक संबंधी। सांसारिक। २. पार्थिव। भौतिक। ३. व्यावहारिक। ४. सामान्य। साधारण। प्रचलित। सार्वजनिक।

लौकिक[2]—संज्ञा पुं० १. सात मात्राओं के छंदों का नाम। ऐसे छंद इक्कीस प्रकार के होते हैं। २. सांसारिक व्यवहार। लोकव्यवहार या चलन (को०)।

लौकिकन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] लोक में पाला जानेवाला नियम। साधारण नियम।

लौकिकाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि जिसका विधिपूर्वक संस्कार न हुआ हो। सामान्य अग्नि।

लौकिकज्ञ—वि० [सं०] लोकव्यवहार को जाननेवाला [को०]।

लौकी†—संज्ञा स्त्री० [सं० लावुक] १. कद्दू। घीआ। २. काठ की वह नली जिसे भबके में लगाकर मद्य चुआते हैं।

लौक्य—वि० [सं०] १. लौकिक। पार्थिव। २. साधारण। सामान्य। प्रचलित [को०]।

लौगाक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के कर्ता एक प्राचीन आचार्य का नाम।

लौज—संज्ञा पुं० [अ० लौज़] १. बादाम। २. एक प्रकार की मिठाई जो काटकर तिकोनिया बरफी के आकार की बनाई जाती है। इसमें प्रायः बादाम पीसकर डालते हैं।

यौ०—लौजात की गोट = वह ऐंठ की गोट जो समोसे के जोड़ों पर बनाई जाती है।

लौजीना—संज्ञा पुं० [अ० लौज़ीना] १. बादाम का हलवा। २. पिस्ते बादाम से बनी मिठाई [को०]।

लौजोराⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० लौ + जोड़ना] पीतल या काँसे के कारखाने में वह काम करनेवाला जो भट्ठी के पास बैठा हुआ यह देखता रहता है कि धातु गल गई या नहीं। धातु गलानेवाला।

लौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया, भाव या ढंग। घुमाव। मुड़ना। उ०—करु उठाय घूघुट करत उझरत पट गुझरौट। सुख मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी र०, दो० ४२४।

लौटनहाराⓅ†—वि० [हिं० लौटना + हारा (प्रत्य०)] लौटने, वापस होने या मुड़ जानेवाला । उ०—साँकरी खोर में काँकरी की करि चोट चलौ फिरि लौटनहारो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

लौटना[1]—क्रि० अ० [हिं० उलटना] १. कहीं जाकर पुनः वहाँ से फिरना । वापस आना । पलटना । उ०—(क) नख तें सिख लौं लखि मोहन को तन लाड़िली लौटन पीठ दई । कबि बेनी छबीले भरी अँकवारि पसारि भुजा करि नेहमई । यह गुंज की माल कठोर अहो रहो मो छतियाँ गड़ि पीर भई । उचकी लची चौंकी चकी मुख फेरि तरेरि बड़ी अँखियाँ चितई ।—बेनी (शब्द०) । २. इधर से उधर मुँह फेरना । पीछे की ओर मुँह करना । उ०–ताही समय उठो घन घोर शोर दामिनी सी लागी लौटि श्याम घन उर सों लपकि कै ।—केशव (शब्द०) ।

संयो क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

लौटना[2]—क्रि० स० इधर से उधर करना । पलटना । उलटना । जैसे—पुस्तक के पन्ने लौटना । (क्व०) ।

लौटपटा—संज्ञा पुं० [हिं० लौट + पटा] १. दे० 'लोटपोट' । २. 'लहालोट' ।

लौटपौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौट + अनु० पौट] १. दोरुखी छपाई । वह छपाई जिसमें दोनों ओर एक से बेल बूटे दिखाई पड़ें । वह छपाई जिसमें उलटा सीधा न हो । २. उलटने पलटने की क्रिया । ३. दे० 'लोटपोट' ।

लौटफेर—संज्ञा पुं० [हिं० लौट + फेर] इधर का उधर हो जाना । उलटफेर । हेर फेर । भारी परिवर्तन ।

लौटान—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया या भाव ।

लौटाना—क्रि० स० [हिं० लौटना का सक० रूप] १. फेरना । पलटाना । २. वापस करना । जैसे,—(क) यदि आप वहाँ जायँ, तो उन्हें लौटाकर ला सकते हैं । (ख) अब आप ये सब पुस्तकें उन्हें लौटा दें । ३. किसी को उल्टे मुँह फेरना । वापस करना । ४. ऊपर नीचे करना । जैसे,—कपड़ा लौटाना । (क्व०) ।

लौटानी क्रि० वि० [हिं० लौटना] लौटते समय । लौटती बार ।

लौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० लोल या हिं० लंड] पुरुष की मूत्रेंद्रिय ।

लौद, लौदरा†—संज्ञा पुं० [सं० नव + डाली] [स्त्री० लौदड़ी, लौदरी] अरहर आदि की नरम डाली जिससे छानी छाने का का काम लेते हैं । (दुआब या अंतर्वेद) ।

लौनⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० लवण] नमक । लवण । उ०—(क) कीन्हेहू कोटक जतन अब गहि काढ़ै कौन । भो मनमोहन रूप मिलि पानी में को लौन ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) प्रीतम पै चाख्यो दृगन रूप सलोने लौन । कहैं इश्क मैदान में तौ कहु अचरज कौन ।—रसनिधि (शब्द०) ।

लौन†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० लवन] फसल की कटाई । लौनी ।

लौनहार†—संज्ञा पुं० [हिं० लौना + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० लौनहारिन] खेत काटनेवाला । लौनी करनेवाला ।

लौना†[1]—संज्ञा पुं० [सं० लूम या रोम] वह रस्सी जिससे किसी पशु के एक अगले और एक पिछले पैर को एक साथ बाँधते हैं, जिसमें खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके ।

लौना[2]—संज्ञा पुं० [सं० ज्वलन] ईंधन ।

लौना[3]—संज्ञा पुं० [सं० लवन] फसल काटने का काम । कटनी । कटाई । लौनी ।

लौनाⓅ[4]—वि० [सं० लावण्य (= लोन)] [वि० स्त्री० लौनी] लावण्ययुक्त । सुंदर । उ०—खेलत है हरि बागे बने जहाँ बैठी प्रिया रति तें अति लौनी ।—केशव (शब्द०) ।

लौनी‡[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौना] १. फसल की कटनी । कटाई । २. वह कटा हुआ डंठल जो अँकवार में आवे । अँकोरा । डाबी । लहना ।

लौनीⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवनीत] नैनू । नवनीत । उ०—लौनी कर आनन परसत हैं कछुक खाइ कछु लग्यो कपोलनि । कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं धन्य नंद जीवन युग तोलनि ।—सूर (शब्द०) ।

लौमना†—संज्ञा पुं० [सं० लूम] दे० 'लौना' ।

लौमनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौना या लौनी] १. दे० 'लौना' । २. दे० 'लौनी' ।

लौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० लेह, हिं० लेरू] बछिया । उ०—सो सुनि राधिका काँपि गई डरि दौरि के लौरिहिं सी लपटानी ।—सुधानिधि, पृ० ११९ ।

लौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्थिरता । चंचल वृत्ति । २. उत्सुकता । उत्कट अभिलाषा । लालच [को०] ।

लौस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लिप्त होना । २. मिलावट । मिश्रण । ३. धब्बा । दाग [को०] ।

लौह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा । २. शस्त्रास्त्र । ३. लाल बकरे का मांस (को०) ।

लौह[2]—वि० [सं०] १. लोहे का बना हुआ । २. ताम्रनिर्मित । ३. तामड़ा । ताँबे के रंग का । लाल । ४. धातुनिर्मित [को०] ।

लौह[3]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तख्ती । २. पुस्तक का सफा । पृष्ठ । पन्ना । पत्र ।

लौहकार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहार ।

लौहचारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक भीषण नरक का नाम ।

लौहज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडूर । २. लोहे का मोरचा । जंग [को०] ।

लौहबंध—संज्ञा पुं० [सं० लौहबन्ध] लोहे की बेड़ी या सिक्कड़ [को०] ।

लौहभांड—संज्ञा पुं० [सं० लौहभाण्ड] लोहे का पात्र [को०]।

लौहभू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लौहात्मा' [को०]।

लौहमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'लौहज'।

लौहशंकु—संज्ञा पुं० [सं० लौहशङ्कु] लोहे का भाला [को०]।

लौहशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] धातुविद्या। धातुविज्ञान [को०]।

लौहसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो लोहे से बनाया जाता है। यह रासायनिक परिक्रिया द्वारा बनता है और औषधों में काम आता है।

लौहा—संज्ञा पुं० [सं० लौह] दे० 'लोहा'।

लौहाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं के तत्व को जाननेवाला आचार्य। वह जो धातुविद्या का अच्छा ज्ञाता हो। धातुविद्याविद्।

लौहात्मा—संज्ञा पुं० [सं० लौहात्मन्] लोहे का पात्र। कड़ाही। केतली [को०]।

मौहायस—वि० [सं०] लोहे या ताँबे का बना हुआ।

लौहासव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसव जो लोहे के योग से बनाया जाता है। (वैद्यक)।

लौहि—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार अष्टक के एक पुत्र का नाम।

लौहित—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का त्रिशूल।

लौहिता—संज्ञा पुं० [हिं० लोहा] वैश्यों की एक जाति जो लोहे का व्यापार करती है। लोहिया।

लौहितायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र का नाम।

लौहिताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] लोहिताश्व। अग्नि [को०]।

लौहितिक—वि० [सं०] लालिमायुक्त। ललौंहा [को०]।

लौहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का धान जिसके चावल लाल रंग के होते हैं। २. ब्रह्मपुत्र नद। ३. एक पर्वत का नाम। ४. एक तीर्थ का नाम। ५. लाल सागर। ६. लालिमा। ललाई। लाली (को०)।

लौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौहपात्र। कड़ाही आदि [को०]।

लौहेष्ट—वि० [सं०] लोहे या अन्य किसी धातु के बने हुए बम से युक्त रथ [को०]।

ल्यानाⓟ—क्रि० स० [हिं० ले + आना] १. दे० 'लाना'। उ०—(क) ल्याई लाल बिलोकिए जिय की जीवन मूलि। रही भौन के कौन में सोनजुही सी फूलि।—बिहारी (शब्द०)। (ख) काहे ते ल्याई फिरि मोहन बिहारी जू को, कैसे वाही ल्यावों, जैसे वाको मन ल्याई है।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) विप्र वचन सुनि सखी सुआसिनि चली जानकिहि ल्याई। कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँअरि रही सकुचाई।—तुलसी (शब्द०)।

ल्यारी†—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़िया। उ०—श्रीकृष्णचंद्र ने मुसकरा के कहा—बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया और सब ग्वाल बाल होवें भेड़ा। सो सुनते ही भौमासुर तो फूलकर ल्यारी हुआ और ग्वाल बाल सब बने भेड़े।—लल्लू (शब्द०)।

ल्यावनाⓟ—क्रि० स० [हिं० लाना] दे० 'लाना'। उ०—पितहि भू ल्यावते, जगत यज्ञ पावते।—केशव (शब्द०)।

ल्यौⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० लौ] ध्यान। लौ।

ल्वाब—संज्ञा पुं० [अ० लुआब] दे० 'लुआब'।

ल्वारिⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लुआर] दे० 'लूह'।

ल्वीन वि० [सं०] गत। गया हुआ [को०]।

ल्हासा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० लस] दे० 'लासा'।

ल्हासा[2]—संज्ञा पुं० तिब्बत की राजधानी जिसे लासा भी कहते हैं।

ल्हीक†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीख] १. जूँ। २. दे० 'लीख'।

हिंदी शब्दसागर

आठवाँ भाग

['मनः' से 'ल्हीक' तक, शब्दसंख्या–२०,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट   रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह   जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन   रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

कमलापति त्रिपाठी

धीरेंद्र वर्मा   हरवंशलाल शर्मा
नगेंद्र   शिवनंदनलाल दर
रामधन शर्मा   सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी